हिन्दी
विश्वकोष

बंगला विश्वकोषके सम्पादक

श्रीनगेन्द्रनाथ वसु प्राच्यविद्यामहार्णव

शब्द-वारिधि शब्दरत्नाकर, तत्त्वचिन्तामणि एम, आर ए एस

तथा हिन्दीके विद्वानों द्वारा सङ्कलित ।

———◦———

त्रयोविंश भाग

[शाहजहानपुर—साइमन]

THE ENCYCLOPÆDIA INDICA

VOL XXIII

COMPILED WITH THE HILLP OF HINDI EXPPRTS

BY

NAGENDRANATH VASU Prāchyavidyāmahārnava

Siddhānta-vāridhi, Sabda-ratnākara, Tattva-chintāmani M R A S

Compiler of the Bengali Encyclopædia, the late Editor of Bangiya Sāhitya Parishat and Kayastha Patrikā; author of Castes & Sects of Bengal, Mayurbhanj Archæological Survey Reports and Modern Buddhism

Honorary Archæological Secretary Indian Research Society,

Associate Member of the Asiatic Society of Bengal &c. &c. &c.

———

Printed by A. C. Sen at the Visvakosha Press

Published by

Nagendranath Vasu and Visvanath Vasu

9, Visvakosha Lane Bagbazar Calcutta

1930

त्रयोविंश भाग

शाहजहानपुर—युक्तप्रदेशके रोहिलखण्ड विभागका एक जिला। इसका भूपरिमाण १७२७ वर्गमील है और अक्षा० २७ ३५´ से ले कर २८ २९´ उ० तथा देशा० ७९ २०´ से ले कर ८० २३ पू०के मध्य अवस्थित है। इसके उत्तर पश्चिम और उत्तर पिलीभीत तथा बरेली जिला, पूरबमें अयोध्या प्रदेशान्तर्गत खेरी जिला, दक्षिणमें गंगा नदी और फरुखाबाद जिला एवं पश्चिममें बुदाउन और बरेली जिला है। शाहजहानपुर नगरमें इसका सदर विचारालय है।

यह जिला गंगाके उत्तरसे ले कर हिमालयपाद भूमि प्रवाहित शारदानदीके किनारे तक फैला हुआ है। उत्तरपूर्व भागमें जमीन ऊंची नीची पहाड़ी समभूमि है। इसके बीच हो कर सर्वदा पहाड़ी जल धाराओंसे बहता रहता है इस कारण यह स्थान सदा ही सिक्त रहता है। यह मलेरियाका प्रधान स्थान है और प्रायः जनशून्य है।

गोमती और खानौत नदियोंका मध्यवर्त्ती भूभाग समधिक उर्वरा है। यहांकी जनसंख्या भी अधिक है। यहांके लोग इस भूमिको खेती द्वारा अपना जीविका चलाते हैं। शाहजहानपुर नगरके निकट खानौत और देवहा नदी एक साथ मिल गई है।

उक्त देवहा और गर्रा नदीका मध्यवर्त्ती भूभाग उन्नत है। गर्रा नदीके दक्षिण रामगंगा नदीके उत्तर तककी भूमि बालुकामय है। इस बालुकापूर्ण भूखण्डको पार करनेसे गंगातटवर्त्ती जलभूमि दृष्टिगोचर होता है। सोत प्रभृति कई छोटी छोटी स्रोतस्विनी इस स्थानको सींचती रहती हैं। रामगंगा और बगहा नदी सर्वदा अपनी धार बदलती रहती है।

शाहजहानपुरके इतिहासका उतना पता नहीं चलता। रोहिला अफगान जातिके प्रताप और अधिकारसे ही यहांके इतिहासका कुछ पता पाया जाता है। पहले मुसलमानोंके शासनकालमें यह कठोरिया राजपूतोंका निवासस्थान था। इस कारण यह स्थान कठेर मुल्क नामसे विख्यात था। पीछे यह मुसलमानोंके शासनाधीन हुआ। मुगलसम्राट् शाहजहान बादशाहके राजत्वकालमें नवाब बहादुर खान् नामक एक मुसलमानने इस नगरको बसाया था और सम्राट्के नाम पर उस का नाम शाहजहानपुर रखा। १७२० ई०में सरदार अली रोहिला प्रभृति अफगानोंको साथ ले कर बरेली और मुरादाबादके शासनकर्त्ताको पराजय किया एवं आप उन दोनों जिले तथा शाहजहानपुरका शासनभार ग्रहण

किया। १७५२ ई०में उनकी मृत्यु हो गई। इसके बाद उनके पुत्र अभिभावक हाफिज रहमत खाँ रोहिला जातिका सर्दार बन बैठा। इस समय रोहिला जातिके उपद्रवसे पार्श्ववर्त्ती स्थानवासी विद्रुत हो उठे। अन्तमें दिल्लीके बादशाहने विद्रोही रोहिला जातिका दमन करनेके लिये सेना भेजी। किन्तु हाफिज महम्मदने सम्राट्‌की सेनाको हरा दिया। १७७४ ई० तक शाहजहानपुर बरेली के पठान सर्दारवंशके शासनाधीन रहा। इस समय अयोध्याके नवाबके वजीरने वारेन हेष्टिंग्सकी सहायतासे रोहिलखण्ड विभागको मथ डाला।

इस जिलेके पश्चिमांशमें रोहिला जातिका आधिपत्य स्थापित होने पर भी पूर्वांश पर उनका कोई अधिकार न था। उत्तरके वन प्रदेशमें गौड़ वा कटोरिया वंशीय ठाकुरोंने अपना प्रभुत्व जमा रखा था। अयोध्या और रोहिलखण्डके सामान्त देशमें इस जिलेके स्थापित होनेसे अनुमान होता है, कि इस पर एक एक बार उक्त दोनों प्रदेशोंके राजेश्वरोंने अपना अपना अधिकार जमाया था। शाहजहानपुरके पठानोंने कभी भी रोहिलाजातिकी अधीनता स्वीकार नहीं की। वे लोग अयोध्याके नवाबके अधीन थे। १७७४ ई०से ले कर १८०१ ई० तक यह जिला अयोध्याके नवाबके अधीन रहा। १८०१ ई०में अंग्रेज कम्पनीके साथ लखनऊमें नवाबकी जो सन्धि हुई थी, उसमें शाहजहानपुर अंग्रेजोंके अधिकारमें आ गया।

उस समयसे ले कर सिपाही-विद्रोहके तक यहां किसी प्रकारका विप्लव उपस्थित नहीं हुआ। इस पार्श्ववर्त्ती अयोध्या प्रदेशमें उपद्रव और अत्याचारकी पराकाष्ठा होने पर भी शाहजहानपुरमें अंग्रेजोंके शासन कौशलसे किसी प्रकारकी दुर्घटना न घटी। १८५७ ई०की १५वीं मईको मेरटके सिपाहियोंके विद्रोहका संवाद पा कर यहांके सिपाही भी मन ही मन षड्यन्त्र रचने लगे, किन्तु २५वीं मई तक ये लोग शान्तिपूर्वक अपने मनका भाव छिपाये बैठे रहे। ३१वीं तारीखको इन लोगोंने अंग्रेजोंके राजकोष पर छापा मारा तथा उसे लूटा और जला डाला। इस समय स्थानीय अंग्रेज लोग गिर्जाघरमें छिप कर अपनी आत्मरक्षाकी चेष्टा करते रहे। अन्तमें दूसरा दूसरी जगहोंसे अंग्रेजीसेनाके पहुंच जाने पर वे लोग धीरे धीरे पावायनकी ओर भागे और अपनी इच्छाके अनुसार धनरत्न लूट कर नगरके अंग्रेजी निवासस्थानको जला दिया। इसके बाद वे लोग बरेलीकी ओर चले गये। यहां पहलेसे ही बहुतसे विद्रोही एकत्र हो गये थे, शाहजहानपुरके पठानोंने वहां पहुंच कर उन लोगोंके दलकी पुष्टि की।

१ली जूनको विद्रोही दलके नेता कादिर अली खाँने शाहजहानपुरमें अपना अधिकार जमा लिया। १८वीं जूनको गुलाम कादिर खाँने बरेली जा कर वहां हुर खाँसे सारी बातें कह सुनाईं। बहादुर खाँने उन्हें शाहजहानपुरका नाजिम बना कर फिर वहीं ही भेज दिया। गुलाम कादिर खाँ २७वीं तारीखको फिर अपने देशमें आ कर नवाबी मसनद पर बैठे सही, किन्तु किसीने भी उनकी आज्ञाका पालन न किया। उस समय सर्वत्र ही विद्रोहिदलने अपना प्रभुत्व जमा लिया था। १८५७ ई०के जूनसे ले कर १८५८ ई०के जनवरी महीने तक यहां अफगानियोंकी हुकूमत चलती रही। शेषोक्त मासमें अंग्रेजी सेनाने फतहगढ़ पर अधिकार जमा लिया। आत्मरक्षाका उपाय न देख कर फतहगढ़के नवाब और फिरोज शाहने शाहजहानपुर होते हुए बरेली जा कर शरण ली। इधर लखनऊ नगरके अधःपतनके बाद नानासाहबने भी शाहजहानपुरमें १० दिन रहनेके बाद बरेली जा कर आश्रय लिया। उक्त जनवरी महीनेमें नवाबने हमीद हसन खाँ और महम्मद हसन नामक दो कर्मचारियोंको अंग्रेजोंका षड्यन्त्रकारी समझ कर प्राणदण्ड दिया। उक्त वर्षकी ३०वीं अप्रैलको लार्ड क्लाइडके अधीन एक अंग्रेजी सेनादल शाहजहानपुर आ पहुंचा। विद्रोही दल महम्मदी नामक स्थानमें भाग गया। दूसरी मईको थोड़ीसी अंग्रेजी सेना यहां रख कर लार्ड क्लाइडने बरेलीकी ओर यात्रा की। यहां विद्रोहियोंने नौ दिन तक अंग्रेजी सेनाको घेर रखा। ब्रिगेडियर जोन्सने अपने दलबलके साथ १२वीं तारीख को वहां पहुंच कर उन लोगोंकी मुक्ति की। इसके बाद शाहजहानपुरमें फिरसे शान्ति स्थापित हो गई।

शाहजहानपुर, तिलहर, जलालाबाद, खुदागंज, मीरनपुर, कटरा और पावायन नगर यहांके व्यापारका

शाहज़ादी (फा० स्त्री०) १ बादशाहकी लड़की, राजकुमारी। २ कमलके फूलके अन्दरका पीला जीरा।

शाह नकी—एक मुसलमान फकीर। ये १४२० ई० तक जीवित थे। फाँसीमें इनका समाधिमन्दिर इस समय भी वर्त्तमान है। इस स्थान पर प्रतिवर्ष मुसलमान लोग एकत्र हो कर इनके स्मरणार्थ महोत्सव करते हैं।

शाह ताहीर जुनाइदी—शाह जाफरका सबसे छोटा भाई। हुमायुन् बादशाहके समय यह भारतवर्षमें आया एवं दाक्षिणात्य प्रदेशमें अहमदनगरके बुरहान निजाम शाहका मन्त्री नियुक्त हुआ। यह शिया सम्प्रदायका अनुयायी था। १५३७ ई०में शाह ताहीरने सम्राट्को शिया मतकी दीक्षा दी। १५०४ ई०में इनकी मृत्यु हुई। ये एक सुविख्यात कवि थे। इनके रचे हुए अनेक ग्रन्थ इस समय भी पाये जाते हैं।

शाहदरा—पंजाब प्रदेशके लाहोर जिलेके अन्तर्गत एक बड़ा ग्राम। यह ग्राम इरावती नदीके पश्चिमी किनारे लाहोर नगरसे ६ मीलकी दूरी पर अवस्थित और अक्षा० ३१° ४०' उ० एवं देशा० ७४ २०' पू०के मध्य विस्तृत है। यहां एक विस्तीर्ण उद्यानके बीच मुगल सम्राट् जहान्गीर, उनकी स्त्री जगत् प्रसिद्ध नूरजहान् बेगम तथा राजाके साले आसफ खाँका समाधिमन्दिर विद्यमान है। इस मसजिदका शिल्प और गठननैपुण्य देखने योग्य है। लाहोरवासी इस उद्यानमें प्रायः घूमने जाते हैं। सिखोंके अभ्युदयसे ये सब समाधिमन्दिर बहुत कुछ श्रीहीन हो गये हैं। सिखोंने इन मसजिदोंसे संगमर्मर निकाल कर अमृतसरके शिवमन्दिरमें लगा दिया है। यहां पंजाब-नार्दर्न स्टेट रेलपथका एक स्टेशन है।

शाहदरा—युक्तप्रदेशके मेरठ जिलेकी गाजियाबाद तहसीलके अन्तर्गत एक नगर। यह पूर्व यमुना-नालकी ओर अवस्थित तथा अक्षा० २८° ४०' ५" उ० एवं देशा० ७७° २०' १०" पू०के मध्य विस्तृत है। यहां सिन्ध-पंजाब दिल्ली रेलपथका एक स्टेशन है। मुगल बादशाहने इस नगरकी स्थापना की और इसका नाम 'शाह द्वार" रखा। इसीसे यह नगर शाहदराके नामसे विख्यात हुआ। उक्त सम्राट्के राजत्व कालमें यहां सेना-विभागका शस्त्र-भंडार स्थापित हुआ था। भरतपुरके जाट सर्दार राजा सूर्यमल तथा पानीपत युद्धके पहले अहमद शाह दुर्रानीने इस नगरको लूटा था। जूता और अन्यान्य चर्मनिर्मित वस्तु तथा चीनीके कारखानेके लिये यह स्थान प्रसिद्ध है।

शाहदादपुर—बम्बई-प्रेसिडेन्सीके सिन्ध प्रदेशके उत्तर सिन्ध सीमान्त जिलेका एक तालुक। सुजावल, रोहेरो और सक्खर तालुकोंका कितना ही अंश ले कर यह तालुक सुगठित है।

शाहदादपुर—१ बम्बई प्रेसिडेन्सीके सिन्ध विभागमें हैदराबाद जिलेके हाला उपविभागके अन्तर्गत एक तालुक। इसका भूपरिमाण ६४४ वर्गमील और अक्षा० २५° ४२' से २६° १६' उ० तथा देशा० ६८° २७ से ६९° ७' पू०के मध्य विस्तृत है। जनसंख्या ७० हजारसे ऊपर है। यहां ७ थाने और तीन फौजदारी अदालतें हैं। इसमें १११ ग्राम हैं। यहां रूई अच्छी मिलती है।

२ उक्त तालुकका प्रधान नगर। यह अक्षा० २७° ४०' से २८° ३' उ० तथा देशा० ६७° २२ से ६८° ११ पू०के मध्य अवस्थित है। भू-परिमाण ६२२ वर्गमील और जनसंख्या ३० हजारसे ऊपर है। प्रायः ढाई सौ वर्ष हुए मीर शाहदाद नामक एक मुसलमानने इस नगरकी स्थापना की थी। यहां तेल, चीनी और कपास वस्त्रका विस्तृत कारबार है।

शाहधेरी (धेरी शाहान्)—पंजाब-प्रदेशके रावलपिंडी जिलेके अन्तर्गत एक बड़ा गांव। यह अक्षा० ३३° १७' उ० तथा देशा० ७२° ४६' पू०के मध्य विस्तृत है। प्रत्नतत्त्वविद् डा० कनिंहमका कहना है, कि यही नगर प्राचीन तक्षशिला नगर है। प्रायः ६ मील विस्तीर्ण स्थानमें इस नगरका ध्वस्त स्तूप गिरा पड़ा है। उसके बौद्ध स्तूप तथा संघाराम प्रभृतिका निदर्शन आज भी प्रत्नतत्त्वानुसंधित्सु लोगोंके हृदयमें नूतन आलोक और आनन्द उड़ेल देता है। मर्गाला गिरिसंकटके कुछ मील उत्तर यह नगर प्रतिष्ठित था। पाश्चात्य भौगोलिक परियनने इसे सिन्ध और झेलमके मध्यवर्त्ती बहु जनाकीर्ण समृद्धिशाली नगर कहा है। माकिदनवीर अलेकसन्द्रने यहां अपनी सेनाके साथ तीन दिन तक राजाका आतिथ्य स्वीकार किया था। करीब ४०० ई०में चीन-

परिव्राजक फाहियान यह पवित्र तक्षशिलापुरीमें आये थे। पीछे उनके सहधर्मी यूएन् चुयङ्गने ६३० और ६४३ ई० में यहां वास किया था। इस समय यहांका शासनकेन्द्र उठ कर काश्मीर चला गया है।

प्राचीन तक्षशिलाका ध्वंसावशेष छः भागों में विभक्त है। वर्तमानमें स्थापित वर्त्तमान शाहधेरी ग्रामके पास जो 'चीर' नामक सुवृहत् स्तूप दृष्टिगोचर होता है, उसके भीतरसे ईंट, मिट्टीके बरतन, बहुत से सिक्के तथा रत्नालङ्कारादि पाये गये हैं। मर्गाला पर्वतके शिखर पर हाथीयाल नामका एक दुर्ग है, यही प्राचीन नगर और राजप्रासादका निदर्शन है। प्राचीरपरिवेष्टित शिरकाप नामक स्थान दूसरे एक दुर्गका निदर्शन ज्ञात पड़ता है। शावरखाना एक सुवृहत् स्तूपका ध्वंसावशेष है। डा० कनिंहम् कहते हैं कि चीनपरिव्राजक यूएन् चुङ्गने जिस अशोक निर्मित स्तूपकी बात लिखी है, यह शावरखाना उसका ही दूसरा निदर्शन है। इसके अलावे यहां बौद्ध प्रभावज्ञापक अनेक विहार और सङ्घाराम प्रभृतिके बहुत से निदर्शन पाये जाते हैं।

शाह नवाज खाँ—अबदुल रहीम खाँ खान खानाका लड़का। युवराज शाहजहानसे इसकी कन्याका विवाह हुआ था।

शाह नवाज खाँ—बादशाह शाहजहान्‌के शासनकालका एक उमराव। यह वजीर आसफ खाँके पुत्र आलमगीर बादशाह और उनके भाई युवराज मुराद बख्शका ससुर था। किन्तु "मासिर उल उमरा" नामक ग्रन्थमें लिखा है कि इसके पिताका नाम मिर्जा रुस्तम कन्दाहारी था। इसे गुजरातके शासनकर्तृपद पर नियुक्त किया गया था। किन्तु १६५८ ई०में मुराद बख्शके घरमें इसके भाई आलमगीरके आदेशसे इसे बन्दी किया गया। दाराशिकोह जब मूलतानसे भाग कर अहमदाबाद आया था, उस समय शाह नवाज खाँ यहीं रहता था। मुराद बख्शकी स्त्री भी उसके साथ थी। आलमगीरके प्रति उसका घोर विद्वेष था क्योंकि आलमगीरने उसके स्वामीको कैद की थी। मुरादबख्शकी स्त्रीके परामर्शसे शाह नवाज खाँने दाराका पक्ष लिया और वह आलमगीरके साथ युद्ध करनेके लिये दूलहलके साथ अजमेर पहुंचा। १६५९ ई०की १०वीं मार्चको रविवारको अजमेरमें दोनोंमें गहरी मुठभेड़ हुई। इस युद्धमें दारा भाग गया और शाह नवाज खाँ मारा गया।

शाह नवाज खाँ—शाह आलमका एक उमराव। इन्होंने 'मीरट आफताब नुमाई' नामक एक ग्रन्थकी रचना की। आफताब नुमाई वर्त्तमान दिल्लीका एक ऐतिहासिक ग्रन्थ है।

शाह नवाज खाँ—इसका असल नाम था अबदुल रज्जाक। इसने समसाम उद्दौलाकी पदवी पाई थी। इसने खुरासानके खवाफ देशके सादत वंशमें जन्म ग्रहण किया था। इसके प्रपितामह अमीर कमालुद्दीन खोवाफ प्रदेशका परित्याग कर अकबरके शासनकालमें हिन्दुस्तान आये और दिल्लीकी राजसभाके सम्भ्रान्त उमरावोंके मध्य प्रतिपालित हुए। कमालउद्दीनका लड़का मीरहुसेन जहांगीरके समयमें राजकार्यमें नियुक्त हुआ था। मीर हुसेनके पुत्रका नाम था मीर कमाल उद्दीन। लोग इसे अमानत खाँ भी कहते थे। शाहजहान अमानत खाँको बहुत मानते थे। आलमगीरने भी अमानत खाँको लाहौर मूलतान, काबुल और काश्मीर आदि स्थानों में ऊंचे ओहदे पर नियुक्त किया था। अमानत खाँ किसी समय दाक्षिणात्यमें दीवानी पद पर नियुक्त हुआ। इसका बड़ा लड़का अबदुल कादर दौलत खाँ सरकारी प्रधान खजाञ्ची था। दूसरा लड़का मीर हुसेन अमानत खाँ सूरतके शासनकर्तृपद पर नियुक्त हुआ था। तीसरा लड़का अबदुल रहमान उजारद खाँ मालव और बीजापुरके दीवानके पद पर काम करता था। कविता करनेमें इसकी अच्छी योग्यता थी। इसके बनाये दीवान ग्रन्थमें इसका विकामी नाम मिलता है। ४था कासिम मूलतानका दीवान था। इसी कासिमके पुत्र मीर हुसेन अलीके औरससे १७०० ई०की १५वीं माचको शाह नवाज खाँका जन्म हुआ था। इसने बेरार आदि अनेक स्थानों में कार्य किया और पीछे सलावत जङ्गके अधीन ७ हजारी पद पर नियुक्त हुआ। इस समय इसने समसामुद्दौलाकी उपाधि पाई। १७ / ई०की १ली मईको यह हठात् मारा गया। इसके साथ इसका एक लड़का भी यमपुर सिधारा था। शाह नवाज खाँ भी एक सुलेखक था। इसने मासिर उल उमराइ तैमुरिया

नामका एक ग्रन्थ लिखा। तैमूरवंशीय जो सब प्रधान मनुष्य हिन्दुस्तान और दाक्षिणात्यमें कार्य करते थे, इस ग्रन्थमें उन्हींकी जीवनी है। उसके मृत्युकालमें यह ग्रन्थ असम्पूर्ण और असंगृहीत था। मीर गुलाम अली आजतने इस ग्रन्थका संग्रह किया और उसमें ग्रन्थकारकी जीवनी लिख दी। इसके बाद शाह नवाज खाँका लड़का मीर अबदुल हाद खाँ इस ग्रन्थको समाप्त कर गया।

शाहनूर—एक विख्यात दरवेश। १६९३ ई०की २री फरवरीको इसकी मृत्यु हुई। औरङ्गाबादके समीप इसका मकबरा बनाया गया। यह मकबरा देखनेके लिये दूर दूरके मुसलमान यहां आते हैं।

शाहनूर असादी—एक विख्यात कवि। यह जाहिरउद्दीन फारियाबीका शिष्य था। सुलतान महम्मद ख्वारिजम शाहके शासनकालमें इसने अच्छी ख्याति पाई थी। इसके पिताका नाम था ताकाम। १२०४ ई०को नाविजामें इसकी मृत्यु हुई।

शाहपुर—पञ्जाबके रावलपिण्डी विभागका एक जिला। यह अक्षा० ३१° ३२´ से ३१° ४२´ उ० तथा देशा० ७१° ३७´ से ७३° २३´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४८४० वर्गमील है। इसके उत्तरमें पिण्डदादन खाँ और झेलमकी तलागङ्ग तहसील, पूर्वमें गुजरात और गुजरानवाला जिला तथा चनाब नदी, दक्षिणमें झङ्ग जिला, पश्चिममें डेरा इस्माइल खाँ और बानू जिला है। यह जिला फिर तीन तहसीलोंमें विभक्त है—पूर्वभागमें भेरा, पश्चिममें शाहपुर और झेलमके दूसरे किनारे खुसाब तहसील। पञ्जाबके जिलाओंके भूपरिमाणके हिसाबसे शाहपुर सप्तम स्थानीय है किन्तु अन्यान्य जिलाओंकी तुलनामें इसकी जनसंख्या बहुत कम है। झेलम नदी-तटवर्त्ती शाहपुर नामक छोटे शहरमें इस जिलेका शासनसंक्रांत सदर कार्यालय अवस्थित है।

झेलम नदीके द्वारा यह जिला दो भागोंमें विभक्त हुआ है। इसका अधिकांश स्थल ही अनुर्वर है, परन्तु जलसिञ्चनकी व्यवस्था होनेसे स्थलविशेष फलप्रद हो सकता है। चनाब इस जिलेकी एक दूसरी नदी है। इस जिलेका दक्षिण अंश निरवच्छिन्न बालुकाराशि द्वारा विस्तीर्ण मरुभूमिमें परिणत हो गया है। कहीं कहीं बालुकाराशि ऊंचे पहाड़की तरह शोभा दे रही है। उत्तरांशमें लवणपर्वतश्रेणी क्रमशः प्रसारित हो कर लोकेश्वर पर्वतसे मिल गई है। सोमेश्वर पर्वत प्रदेशमें बहुतसे सुदृश्य ह्रद दिखाई देते हैं। पर्वतमालाकी उपत्यकामें शस्यश्यामल भूखण्ड दृष्टिगोचर होता है। इन सब स्थानोंमें छोटी छोटी निर्झरिणी कल-कल शब्द करती हुई निम्न भूखण्डमें बह गई हैं, जिससे भूभागकी उर्वरता बहुत कुछ बढ़ गई है।

झेलम नदी उत्तर दिशासे आ कर समस्त जिलेको दो खण्डमें विभक्त कर दक्षिणकी ओर बह गई है। पार्वत्य प्रदेशमें जब मूषलाधारसे वृष्टि होती, तब झेलममें इतनी बाढ़ आ जाती है, कि आस पासके अनेक ग्राम डूब जाते हैं। इसमें अधिवासियोंको कष्ट होता है सही पर जमीन बहुत उर्वरा हो जाती है।

चनाब नदी शाहपुर और गुजरानवाला जिलेके मध्यवर्त्ती सीमारूपमें विद्यमान है। इस जिलेमें इस नदीकी लंबाई २५ मील है। चनाब झेलमसे विस्तृत होने पर भी झेलमकी तरह उसमें तेज स्रोत नहीं है। झेलमका स्रोत एक घण्टेमें ढाई मील जाता है। झेलमकी बाढ़से जमीन जैसी उर्वरा हो जाती है, चनावकी बाढ़से वैसी नहीं होती।

शाहपुरमें वनविभाग है, किन्तु उस सम्बन्धमें उल्लेखयोग्य कुछ भी नहीं है। खनिजद्रव्योंमें विशुद्ध लवण यथेष्ट है। झेलम जिलेमें ही सर्वापेक्षा लवणका कारखाना है। शाहपुर जिलेके वर्चा नामक स्थानमें सिर्फ एक नमककी खानसे कार्य चलता है। शाहपुरमें क्रिमियन युद्धके समय सोरेके कारखानेमें कार्य होता था, पर अभी वह कारबार बिलकुल विलुप्त हो गया है। लोह, सीसा, उद्भिद्‌क्षार, सलफट आव लाइम और अभ्रादि इस स्थानकी पर्वतमालामें दिखाई देता है। किन्तु इन सब द्रव्योंका परिमाण इतना अल्प है, कि उससे कोई व्यवसाय नहीं चल सकता।

मुगल-साम्राज्य ध्वंस होनेके पहले इस जिलेका इतिहास अति अस्पष्ट है। किन्तु भूमिकी अवस्थाकी पर्यालोचना करनेसे मालूम होता है, कि प्राचीन कालमें

यहां लोकनिवास था। इस जिलेके विस्तीर्ण परित्यक्त भूखण्डमें कहीं जमीनमें गड़ी हुई ईंट, कहीं छिछला कूआं, कहीं मिट्टीके बने मन्नपात्रादिके स्तूप देखनेमें आते हैं। क्रमशः जलका अभाव होनेसे ये सब स्थान धीरे धीरे लोकनिवासके अयोग्य हो गये थे। सम्भवतः इसी कारण आज भी इस जिलेमें अनेक स्थान मनुष्यके रहने लायक न रह गये हैं। ६० फुट तक जमीन खोदने पर भी कूपमें जल नहीं निकलता, निकलने पर भी वह जल काममें नहीं लाया जा सकता। किन्तु पहले ऐसा नहीं था। महावीर अलेक्सन्दरके सम सामयिक इतिहास लेखकोंका कहना है, कि यहां एक समय लोगोंकी अच्छी आबादी थी। अकबरके शासन कालमें भी शाहपुर जिलेकी अच्छी उन्नति थी।

महम्मद शाहके शासनकालसे ही हम शाहपुरके परिस्फुट इतिहासका प्रमाण पाते हैं। आनन्दवंशीय राजपूत राजा सलामत रायने भेरामें राजधानी बसाई था। ये इस स्थानके आस पासके ग्रामोंको अपने आयत्तमें रख कर शासन करते थे। नवाब अहमदयार खाँ खुशावके शासनकर्त्ता थे। इस जिलेके दक्षिणपूर्वस्थ भूखण्डमें मुलतानके शासनकर्त्ता महाराज कुमारमलका शासन विस्तृत था। कभी कभी सिक्ख और अफगानोंने यहां अपना शासन प्रभाव फैलाया था। अहमदशाह दुर्रानीने १७५७ ई०में नूरुद्दीन बमीजईको अपने पुत्र तैमूरको सहायता करने भेजा। इस समय मराठोंके साथ तैमूरका भीषण संग्राम छिड़ा हुआ था। सेनाओंने खुशावके निकट झेलम नदी पार कर भेरा, मियानी और चकसानु नामक तीन समृद्धिशाली नगरोंको एकदम विध्वस्त कर डाला था। कालक्रमसे भेरा और मियानीने फिर कुछ कुछ तरक्की की, किन्तु चकसानु अभी केवल नाम मात्रके लिए प्राचीन परिचय दे रहा है। नवाब अहमदयार खांकी मृत्युके बाद खुशाव राज्य सलामत रायके शासनाधीन हुआ था।

अब्बास खाँ नामक एक शासनकर्त्ता अहमदशाहके प्रतिनिधिरूपसे पिण्डदादन खाँ नामक स्थानमें रहते थे। लवणपर्वतश्रेणी भी इन्हींके शासनाधीन था। इन्होंने भेराके राजाको विश्वासघातकता द्वारा मार डाला तथा भेरामें अपना अधिकार जमा लिया। अब्बास खाँ इन सब स्थानोंसे जो राजस्व वसूल करते थे, वह स्वयं हड़प कर लेते थे। इस अपराधमें उनका अवशिष्ट जीवन कारागारमें ही व्यतीत हुआ था। इस समय सलामत रायके भतीजे फतेमहन भेराको अधिकार किया।

१७६३ ई०में अहमदशाहके साथ सिक्खोंका घोर युद्ध हुआ। इस युद्धमें सिक्खोंकी जीत हुई। सुकर चकिया मिशिलके नेता चढ़तसिंहने विजयगौरवसे स्पर्द्धित हो लवणपर्वतश्रेणीको दखल करनेकी कोशिश की। इधर भाङ्गि सरदारने पार्श्वस्थप्रदेशसे चनाब नदीके तट तकके भूखण्डमें अपना आधिपत्य फैला कर उसे आपसमें बाँट लिया। मुसलमान शासनकर्त्ता सम्राट्की जरा भी अपेक्षा न करके अपनी अपनी क्षमतासे साहिवाल, मिठाटिवाना और खुसावमें सिक्खोंके विरुद्ध अपना प्रभाव अक्षुण्ण रखनेमें समर्थ हुए थे। इसके बाद अराजकताके अस गान आक्रमणसे तथा सीमा सम्बन्धीय विवादसे इस अञ्चलमें सदा अशान्ति विराजती रहती थी। इसी अवस्थामें सिक्खवीर महासिंहका अभ्युदय हुआ। उनके प्रभावगौरवसे छोटी छोटी राजशक्तियोंका परस्पर कलह बिलकुल दब गया। इसके बाद उनके पुत्र स्वनामधन्य पाञ्जाबकेशरी रणजित्सिंहने पञ्जाबमें अपना असाधारण प्रभुत्व स्थापन किया। १७८३ ई०में मियानी नगर महासिंहके दखलमें आया और १८०३ ई०में उनके लड़के महाराज रणजित्सिंहने भेरामें अपना शासनगौरव प्रतिष्ठित किया था। इसके कुछ दिन पीछे रणजित् साहिवाल और खुशावके दो बलूच शासनकर्त्ताओंको भगा कर इन दोनों स्थानोंमें अपना आधिपत्य फैलाया। इस समय उन्होंने और भी कितने छोटे छोटे ताल्लुके अपने शासनाधीन कर लिए थे। १८१० ई०में झंगके सियाल पञ्जाब सामन्तराजाओंके शासित स्थान भी रणजित्के शासनाधीन हुए।

१८१६ ई०में रणजित्‌की विजयपताका मिठाटिवानामें फहराने लगी। मिठाटिवानाके मालिकगण रणजित्की विजयोन्मत्त सेनाओंकी चाल देख भयभीत हो गये और युद्धके बहुत दूर भाग गये। परन्तु रणजित् टिवानोंका दमना अच्छा नहीं समझते थे। खुदनुर

नामका एक ग्रन्थ लिखा। तैमूरवंशीय जो सब प्रधान मनुष्य हिन्दुस्तान और दाक्षिणात्यमें कार्य करते थे, इस ग्रन्थमें उन्हींकी जीवनी है। इसके मृत्युकाल में यह ग्रन्थ असम्पूर्ण और असंगृहीत था। मीर गुलाम अली आजदने इस ग्रन्थका संग्रह किया और उसमें ग्रन्थकारकी जीवनी लिख दी। इसके बाद शाह नवाज खाँका लड़का मीर अबदुल हाइ खाँ इस ग्रन्थको समाप्त कर गया।

शाहनूर—एक विख्यात दरवेश। १६९३ ई०की २री फरवरीको इसकी मृत्यु हुई। औरङ्गाबादके समीप इसका मकबरा बनाया गया। वह मकबरा देखनेके लिये दूर दूरके मुसलमान यहां आते हैं।

शाहनूर अमारी—एक विख्यात कवि। यह जाहिरउद्दीन फारियावीका शिष्य था। सुलतान महम्मद ख्वारिजम शाहके शासनकालमें इसने अच्छी ख्याति पाई थी। इसके पिताका नाम था नाकाम। १२०४ ई०को नाखिजामें इसकी मृत्यु हुई।

शाहपुर—पञ्जाबके रावलपिण्डी विभागका एक जिला। यह अक्षा० ३१° ३२´ से ३१° ४२´ उ० तथा देशा० ७१° ३७ से ७३° २३´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४८४० वर्गमील है। इसके उत्तरमें पिण्डदादन खाँ और झेलम-की तलागङ्ग तहसील, पूर्वमें गुजरात और गुजरानवाला जिला तथा चनाव नदी, दक्षिणमें झङ्ग जिला, पश्चिममें डेरा इस्माइल खाँ और बानू जिला है। यह जिला फिर तीन तहसीलोंमें विभक्त है—पूर्वभागमें भेरा, पश्चिममें शाहपुर और झेलमके दूसरे किनारे खुसाव तहसील। पञ्जाबके जिलाओंके भूपरिमाणके हिसाबसे शाहपुर सप्तम स्थानीय है; किन्तु अन्यान्य जिलाओंकी तुलनामें इसकी जनसंख्या बहुत कम है। झेलम नदी-तटवर्त्ती शाहपुर नामक छोटे शहरमें इस जिलेका शासनसंक्रान्त सदर कार्यालय अवस्थित है।

झेलम नदीके द्वारा यह जिला दो भागोंमें विभक्त हुआ है। इसका अधिकांश स्थल ही अनुर्वर है, परन्तु जलसिञ्चनकी व्यवस्था होनेसे स्थलविशेष फल-प्रद हो सकता है। चनाव इस जिलेकी एक दूसरी नदी है। इस जिलेका दक्षिण अंश निरवच्छिन्न बालुका-राशि द्वारा विस्तीर्ण मरुभूमिमें परिणत हो गया है। कहीं कहीं बालुकाराशि ऊंचे पहाड़की तरह शोभा दे रही है। उत्तरांशमें लवणपर्वतश्रेणी क्रमशः प्रसारित हो कर लीलेश्वर पर्वतसे मिल गई है। सोमेश्वर पर्वत प्रदेशमें बहुतसे सुदृश्य दर दिखाई देते हैं। पर्वतमाला-की उपत्यकामें शस्यश्यामल भूखण्ड दृष्टिगोचर होता है। इन सब स्थानोंमें छोटी छोटी निर्झरिणी कल-कल शब्द करती हुई निम्न भूखण्डमें बह गई हैं, जिससे भूभागकी उर्वरता बहुत कुछ बढ़ गई है।

झेलम नदी उत्तर दिशासे आ कर समस्त जिलेको दो खण्डमें विभक्त कर दक्षिणकी ओर बह गई है। पार्वत्य प्रदेशमें जब मुषलधारसे वृष्टि होती, तब झेलममें इतनी बाढ़ आ जाती है कि आस पासके अनेक ग्राम डूब जाते हैं। इसमें अधिवासियोंको कष्ट होता है सही पर जमीन बहुत उर्वरा हो जाती है।

चनाव नदी शाहपुर और गुजरानवाला जिलेके मध्य-वर्त्ती सीमारूपमें विद्यमान है। इस जिलेमें इस नदी की लंबाई २५ मील है। चनाव झेलमसे विस्तृत होने पर भी झेलमकी तरह उसमें तेज स्रोत नहीं है। झेलम-का स्रोत एक घण्टेमें ढाई मील जाता है। झेलमकी बाढ़से जमीन जैसी उर्वरा हो जाती है, चनावकी बाढ़से वैसी नहीं होती।

शाहपुरमें वनविभाग है, किन्तु उस सम्बन्धमें उल्लेखयोग्य कुछ भी नहीं है। खनिजद्रव्योंमें विशुद्ध लवण यथेष्ट है। झेलम जिलेमें ही सर्वापेक्षा लवणका कारखाना है। शाहपुर जिलेके वर्चा नामक स्थानमें सिर्फ एक नमककी खानसे कार्य चलता है। शाहपुर-में क्रिमियन युद्धके समय सोरेके कारखानेमें कार्य होता था, पर अभी वह कारबार बिलकुल विलुप्त हो गया है। लौह, सीसा, उद्भिदङ्गार, सलफट आव लाइम और अभ्रादि इस स्थानकी पर्वतमालामें दिखाई देता है। किन्तु इन सब द्रव्योंका परिमाण इतना अल्प है, कि उससे कोई व्यवसाय नहीं चल सकता।

मुगल-साम्राज्य ध्वंस होनेके पहले इस जिलेका इतिहास अति अस्पष्ट है। किन्तु भूमिकी अवस्थाकी पर्यालोचना करनेसे मालूम होता है, कि प्राचीन कालमें

यहां लोकनिवास था। इस जिलेके विस्तीर्ण परित्यक्त भूखण्डमें कहीं जमीनमें गड़ा हुए ईंट, कहीं छिद्रका कूआं, कहीं मिट्टीके बने भग्नपात्रादिके स्तूप देखनेमें आते हैं। क्रमशः जलका अभाव होनेसे ये सब स्थान धीरे धीरे लोक निवासके अयोग्य हो गये थे। सम्भवतः इसी कारण आज भी इस जिलेमें अनेक स्थान मनुष्यके रहने लायक न रह गये हैं। ६० फुट तक जमीन खोदने पर भी कूपमें जल नहीं निकलता, निकलने पर भी वह जल काममें नहीं लाया जा सकता। किन्तु पहले ऐसा नहीं था। महावीर अलेकसन्दरके समसामयिक इतिहास लेखकोंका कहना है, कि यहां उस समय लोगोंकी अच्छी आबादी थी। अकबरके शासन कालमें भी शाहपुर जिलेकी अच्छी उन्नति थी।

महम्मद शाहके शासनकालसे ही हम शाहपुरके धारावाहिक इतिहासका प्रमाण पाते हैं। आनन्दवंशीय राजपूत राजा सलामत रायने भेरामें राजधानी बसाई थी। वे इस स्थानके आसपासके ग्रामोंको अपने कब्जेमें रख कर शासन करते थे। नवाब अहमदयार खाँ खुशाबके शासनकर्त्ता थे। इस जिलेके दक्षिणपूर्वस्थ भूखण्डमें मुलतानके शासनकर्त्ता महाराज कुमारमलका शासन विस्तृत था। कभी कभी सिख और अफगानोंने यहां अपना शासन प्रभाव फैलाया था। अहमदशाह दुर्रानीने १७५७ ई०में नूरुद्दीन बमीजईको अपने पुत्र तैमूरकी सहायता करने भेजा। इस समय मराठोंके साथ तैमूरका भीषण संग्राम छिड़ा हुआ था। सेनानीने खुशाबके निकट झेलम नदी पार कर भेरा, मियानी और चकसानु नामक तीन समृद्धशाली नगरोंको एकदम विध्वस्त कर डाला था। कालक्रमसे भेरा और मियानीने फिर कुछ कुछ तरक्की की, किन्तु चकसानु अभी केवल नाम मात्रके लिये प्राचीन परिचय दे रहा है। नवाब अहमदयार खाँकी मृत्युके बाद खुशाब राजा सलामत रायके शासनाधीन हुआ था।

अब्बास खाँ नामक एक शासनकर्त्ता महम्मद खाँके प्रतिनिधिरूपसे पिण्डदादनखां नामक स्थानमें रहते थे। कच्छप्रदेश भी इन्हींके शासनाधीन था। इन्होंने राजाके लड़केको विश्वासघातकता द्वारा मार डाला तथा भेरामें अपना अधिकार जमा लिया। अब्बास खाँ इन सब स्थानोंसे जो राजस्व वसूल करते थे, वह स्वयं हड़प कर लेते थे। इस अपराधमें उनका अवशिष्ट जीवन कारागारमें ही व्यतीत हुआ था। इस समय सलामत रायके भतीजे फतेसिंहने भेराको अधिकार किया।

१७८३ ई०में अहमदशाहके साथ सिखोंका घोर युद्ध हुआ। इस युद्धमें सिखोंकी जीत हुई। सुकरचकिया मिसिलके नेता चरतसिंहने विजयगौरवसे उन्मत्त हो लवणपर्वतश्रेणीको दखल करनेकी कोशिश की। इधर भांगी राजाने पार्वत्यप्रदेशसे चनाब नदीके तट तकके भूखण्डमें अपना आधिपत्य फैला कर उसे आपसमें बांट लिया। मुसलमान शासनकर्त्ता सम्राटकी जरा भी अपेक्षा न करके अपनी अपनी वीरतासे साहिवाल, मिठाटिवाना और खुशाबमें सिखोंके विरुद्ध अपना प्रभाव अक्षुण्ण रखनेमें समर्थ हुए थे। इसके बाद मराठोंके अनवरत आक्रमणसे तथा सीमा सम्बन्धीय विवादसे इस अञ्चलमें सर्वदा अशान्ति विराजती रहती थी। इसी अवस्थामें सिखवीर महासिंहका अभ्युदय हुआ। उनके प्रभावगौरवसे छोटी छोटी राजशक्तियोंका परस्पर कलह बिलकुल दब गया। इसके बाद उनके पुत्र स्वनामधन्य शेरेपंजाब रणजित्सिंहने पञ्जाबमें अपना असाधारण प्रभुत्व स्थापन किया। १७८३ ई०में मियानी नगर मानसिंहके हाथमें आया और १८०३ ई०में उनके लड़के महाराज रणजित्सिंहने भेरामें अपना शासनगौरव प्रतिष्ठित किया था। इसके कुछ ही पीछे रणजित् साहीवाल और खुशाबके दो बलूच शासनकर्त्ताओंको भगा कर इन दोनों स्थानोंमें अपना आधिपत्य फैलाया। इस समय अहमद खाँने भी तीन छोटे छोटे तालुक अपने शासनाधीन कर लिये थे। १८१० ई०में झंगके टिवाना व आवन सामन्तराजाओंके शासित स्थान भी रणजित्के शासनाधीन हुए।

१८१६ ई०में रणजित्की विजयवैजयन्ती मिठाटिवानामें फहराने लगी। मिठाटिवानाके मालिकगण रणजित्की विजयोन्मत्त सेनाओंकी धारणा देख भयभीत हो गये और शुवक बहुत दूर भाग गये। परन्तु रणजित् मिठाटिवानाका दमन अच्छा नहीं समझते थे। फलतः

रणजित् उन्हें पराजय कर पीछे उनके साथ मित्रता-बंधनमें आबद्ध हुए। पीछे उन्होंने हरिसिंह नामक एक सिख सरदार पर तिवानादका शासन भार सौंप दिया। हरिसिंहकी मृत्युके बाद १८३७ ई०में तिवानाद प्रतिनिधि फते खांको रणजित्ने जामरुद नगरमें प्रतिष्ठित किया। रणजित् अपने पुत्र और पौत्रके साथ थोड़े ही समयमें धीरे धीरे इस लोकसे चल बसे। रणजित्सिंह देखो। इस समय मालिक फते खाँका खूब चला बना था।

फते खाँके दुर्व्यवहारसे सिखगण तंग तंग आ गये। फते खाँके चक्रान्तसे सिखनेता ध्यानसिंह मारे गये। इस पर सिखोंने क्रोधसे उन्मत्त हो फते खाँको कैद कर लिया। इस समय लेफ्टेनाण्ट एडवार्डने फते खाँको कारामोचन कर उसे मुलतान-विद्रोह दमन करनेके लिये बानु नगरमें भेज दिया। इसके कुछ समय बाद ही एक छोटी लड़ाईमें सिखोंने फते खाँको गोलीसे उड़ा दिया। फते खांके भाई और पुत्रने अंगरेजोंका पक्ष लिया था।

द्वितीय सिखयुद्धके समयमें ही शाहपुर अङ्गरेजोंके हाथ आया। अङ्गरेजी शासनके प्रारम्भमें शाहपुर एक श्रेणीकी भ्रमणशील असभ्यप्राय जातिका आवास था। ये लोग कहीं भी निर्दिष्टरूपसे घर बना कर नहीं रहते थे, केवल जहाँ तहाँ भ्रमण करते रहते थे। वृटिश-शासन विस्तारके साथ ये लोग घर बाँध कर रहने लगे हैं।

इस जिलेमें ५ शहर और ७८६ ग्राम लगते हैं। जन संख्या पाँच लाखसे ऊपर है। जिसमेंसे मुसलमानोंकी संख्या सैकड़े पीछे ८४ है। इन लोगोंकी भाषा पश्चिमी पञ्जाबी या लहनदा है।

शासनकार्यकी सुविधाके लिये यह जिला तीन तह-सीलमें विभक्त है, शाहपुर, भेरा और खुशाब। समूचा जिला एक डिपटी कमिश्नर और दो असिष्टांट कमि-श्नरके अधीन है।

विद्याशिक्षामें इस जिलेका स्थान सूबाके अट्ठाईस जिलोंमें दशवाँ पड़ता है। अभी कुल मिला कर ७ सिक-एडरी और ८० प्राइमरी स्कूल, १५ अडमांइ और २४० एलिमेण्टरी स्कूल हैं। इनके सिवा दो हाई स्कूल और बारह बालिका स्कूल हैं। जिनमेंसे पण्डित दीवान-चन्द्रका स्कूल सूबे भरमें बड़ा है। स्कूल और कालेजके अलावा सिविल अस्पताल और चिकित्सालय हैं।

२ उक्त जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० ३१° ४२´ से ७२° ५१´ पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण १०२१ वर्गमील है। इसके पश्चिम और उत्तर-पश्चिम में झेलम नदी बहती है। यहांकी जनसंख्या डेढ़ लाखसे ऊपर है। इसमें शाहीवाल नामक एक शहर और २८६ ग्राम लगते हैं।

३ शाहपुर जिलेका एक प्रधान शहर। यह अक्षा० ३२° १८´ ३० और देशा० ७२° २७´ पू०के मध्य झेलम नदीके बाएं किनारे अवस्थित है। जनसंख्या १० हजारके करीब है। इस शहरके दो सैयदवंशीय सम्भ्रान्त मुसलमानोंने इस शहरको बसाया। शाह सामस उनके नेता थे। सामके वंशधर ही आज भी इस स्थानके अधिकारी हैं। शहरके पूर्व भागमें शाह सामकी समाधि आज भी नजर आती है। शाह सामको मुसलमान लोग भगवत् प्रेमिक साधु मानते थे। आज भी उनकी समाधिके निकट प्रति वर्ष एक बड़ा मेला लगता है। इस जिलेमें कमसे कम बीस हजार आदमी जमा होते हैं। शहरमें एक ऐङ्गलो-वर्नाक्युलर मिडिल स्कूल और पण्डित दीवान-चन्द्रका एक बालिका-स्कूल है।

शाहपुर—बम्बईके काठियावाड़का एक छोटा राज्य। इस-का परिमाण दश वर्गमील है।

शाहपुर—हैदराबाद राज्यके गुलबर्गा जिलेका एक तालुक। भूपरिमाण ५८५ वर्गमील और जनसंख्या लाखसे ऊपर है। इसमें सागर नामक एक शहर और १५० ग्राम लगते हैं। भीमा नदी इसके दक्षिण पूर्वमें बहती है।

शाहपुर—मथुरा जिलेकी कोशी तहसीलका एक छोटा ग्राम। इस ग्राममें समृद्धिका कोई परिचय नहीं है। किन्तु पहले नवाब असरफ अलीकी राजधानी थी। ग्रामके बाहर आज भी उनके दुर्गका भग्नावशेष नजर आता है। नवाबके समय यह स्थान सब प्रकारसे समृद्धिशाली था।

शाहपुर—पञ्जाबके गुरुदासपुर जिलेका एक शहर।

शाहपुर—मध्यप्रदेशके सागर जिलान्तर्गत एक बड़ा ग्राम।

शाहपुर—मध्यप्रदेशके अन्तर्गत निमार जिलेके बुरहानपुर-के अधीन एक बड़ा ग्राम।

शाहपुर—मध्यप्रदेशके अन्तर्गत मण्डला जिलेकी पर्वत-श्रेणी। यह स्थान नर्मदा नदीके उत्तरी किनारे अवस्थित

है। गाड़ और येगा इस स्थानके अधिवासी हैं। गेहर और गजाइ निकट इस स्थान हो कर बह गया है। यहां बहुतसे छोटे छोटे सोते उनमें मिल गये हैं। सबसे ऊँचे जलप्रपातकी ऊंचाई ६० फुट है। इस जलप्रपातके पश्चात् भागमें अन्धकारसमाच्छन्न व्याघ्र भालूसे परिपूर्ण एक घना जङ्गल है। जनसाधारणका विश्वास है, कि यह भयङ्कर स्थान महादेवके अनुचर भूत प्रेत पिशाच और प्रमथोंके महाभैरव ताण्डव नृत्यका रङ्गालय है। भूतनाथ भवानीपति महादेव ही इस पर्वतमालाके अधिपति हैं।

शाहपुर—राजपूतानेका टाँक एजेन्सीके अधीन एक देशीय राज्य। यह अक्षा० २५ २६´ से २५ ५३ उ० तथा देशा० ७४ ४४´ से ७५ ७´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४०५ वर्गमील है। इसके उत्तर और उत्तर पूर्वमें वृटिश सरकारका अजमेर जिला और बाकी तीन दिशाओंमें उदयपुर राज्य है। यह अञ्चल वृक्षादि विच्छिन्न होने पर भी अनुर्वर नहीं है। गोचारणकी भूमि भी यहां काफी है। यहांके राजा शिशोदिया राजपूत वंशीय हैं। उदयपुरके पुरातन राणा ही इनके पूर्वपुरुष हैं। सूजामल इस राज्यके प्रतिष्ठाता हैं। सम्राट् शाहजहांने सूजामलके लड़के सुजानसिंहकी वीरता पर प्रसन्न हो कर उन्हें फुलिया परगना जागीरस्वरूप दिया। इस कृतज्ञतामें सुजानसिंहने बादशाह शाहजहान्के नाम पर जिलेका शाहपुर नाम रखा और उसी नाम पर शहर बसाया। ये ही शाहपुरके प्रथम सामन्त माने जाते हैं। १६५८ ई०में उज्जैनके निकट फतेहाबादमें दारा और औरङ्गजेबके बीच जो लड़ाई छिड़ी थी उसमें दाराकी ओरसे लड़ते हुए ये मारे गये थे। उनके पौत्र भरतसिंह तृतीय सामन्त थे। उन्होंने औरङ्गजेबसे राजाकी उपाधि पाई थी। उनके बाद उम्मेदसिंह सामन्त हुए। १७६८ ई०को उज्जैनमें मेवारके राणा अरिसिंहकी ओरसे लड़ते हुए ये महादजी सिन्धियाके हाथसे मारे गये। सातवें सामन्त अमरसिंह हुए। इन्होंने १७९६से १८२७ ई० तक राज्य किया। पहल ८, फि इन्होंने मेवारके महाराणासे 'राजाधिराज'की पदवी पाई थी। ग्यारहवें और वर्तमान सामन्तका नाम राजाधिराज नाहरसिंह है। १८७० ई०में ये राजसिंहासन पर अधिरूढ़ हुए और १८७९ ई०में उन्होंने राजकार्यका कुल अधिकार अपने हाथ लिया। वृटिश सरकारकी ओरसे उन्हें K. C. I. E. की उपाधि दी गई। ये वृटिश सरकारको दस हजार रुपया कर देते हैं।

इस राज्यमें शहर और ग्रामको मिला कर १३३ और जनसंख्या ४० हजारसे ऊपर है। यह राज्य चार तहसीलमें विभक्त है,—शाहपुर, धिराल, कोठियान और फूलिया।

राजाधिराज एक कामदार द्वारा राजकार्य चलाते हैं। कामदारके अधीन राजस्व कलक्टर और चार तहसीलदार हैं। राज्यकी आमदनी तीन लाख रुपयेसे ऊपर है। सामन्तके पास ४४ घुड़सवार, ६५ सशस्त्र पुलिस और १७६ पदातिक सेना हैं। राजपूतानाके सामन्त राज्योंमें विद्याशिक्षामें इस राज्यका स्थान तीसरा भाग है। अभी कुल मिला ८ स्कूल हैं जिनमेंसे दो बालिका स्कूल हैं। स्कूलके अलावा एक अस्पताल भी है।

२ उक्त सामन्तराज्यकी राजधानी। यह अक्षा० २५ ३८´ उ० तथा देशा० ७४ ५६ पू०के मध्य विस्तृत है। १६२९ ई०में शाहजहान् बादशाहके नाम पर शाहपुरके प्रधान सामन्त सुजानसिंहने इस नगरको बसाया। यहांकी जनसंख्या १० हजारके लगभग है। शहर चारों ओर दीवारसे घिरा है जिसमें चार फाटक लगे हैं। यहां डाक और तार घर, कारागार, एङ्गलो वर्नाक्युलर स्कूल और एक अस्पताल है। दीवारके बाहर और पूरब फाटकके समीप रामद्वार या रामसनेही सम्प्रदायका मठ खड़ा है। करीब दो सौ वर्ष बीत गए, रामचरणदासने इस सम्प्रदायको प्रवर्तित किया। मठमें एक महन्त रहते हैं।

शाहपुर—राजपूतानेके जयपुर राज्यकी सवाई जयपुर निजामतका एक शहर। यह अक्षा० २७ २३ उ० तथा देशा० ७५ ५८´ पू०के मध्य जयपुर शहरसे ३४ मील उत्तरमें अवस्थित है। यह मनोहरपुरके राजके अधिकारमें है। यहांकी जनसंख्या पांच हजारसे ऊपर है।

शाहपुरी—चट्टग्राम विभागका एक द्वीप। यह अक्षा० २०° ३८' ३० तथा देशा० ९२° १६ पू०के मध्य नायफ नदीके मुख पर अवस्थित है। इसी स्थानको ले कर पहले ब्रह्मवासियोंके साथ अंगरेजोंका युद्ध हुआ था। अंगरेज लोग बहुत दिनों तक बिना किसी छेड़छाडके इस द्वीपका भोग करते रहे थे। पीछे ब्रह्मराजने उस द्वीपको अपने अधिकारभुक्त बतला कर दावा किया। ब्रह्मदेशके कस्टुपक्षने इस स्थानमें घाटकर संस्थापन कर चट्टग्रामके नौव्यवसायियोंसे कर मांगा। इस पर उन्होंने आपत्ति की। फलतः ब्रह्मराजके आदेशानुसार नाविकोंकी नाव जला दी गई तथा एक मांझीको भी मार डाला गया। इसके बाद ही नायफ नदके पूर्वी किनारे अस्त्रधारी ब्रह्मसेना एकत्र हुई। यह देख चट्टग्रामवासी बहुत डर गये और उन्होंने वृटिशसरकारको इसकी खबर दी। १८२३ ई०की २४वीं सितम्बरको ब्रह्मदेशके राजकीय कर्मचारी ससैन्य आ कर शाहपुरी अधिकार करनेमें प्रवृत्त हुए। प्रायः एक हजार लोगोंने समरसाजसे सजधज कर अंगरेजोंके पहरूदार आदिको निहत और आहत कर शाहपुरीमें अपनी गोटी जमाई। यह संवाद पा कर अंगरेजोंने कलकत्तेसे एक दल सैन्य भेजा। इसका फल हुआ कि बहुत दिनों तक मगोंको चट्टग्रामकी पूर्वी सीमा पर अग्रसर हो वीरता दिखानेका साहस न हुआ। किन्तु कुछ दिन बाद ही अंगरेजोंको शाहपुरीसे निकाल भगाने के लिये ब्रह्मराजने आराकानके राजाको हुक्म दिया। पीछे आवासे राजकर्मचारी शाहपुरी दखल करनेके लिये दल-बलके साथ शाहपुरी आये। फलतः शाहपुरका अधिकार निर्वाचन ही ब्रह्मयुद्धका मूलकारण था। इन्हीं सब कारणोंसे १८२४ ई०की २४वीं फरवरीको प्रथम ब्रह्मयुद्ध घोषित हुआ।

शाहपुर—मथुरा जिलेकी शाहाबाद तहसीलका एक शहर यह अक्षा० २७ २७' ३० तथा देशा० ७८° ११' पू०के मध्य शाहाबाद शहरसे ७ मील पश्चिममें अवस्थित है। यहां इष्ट इण्डियन रेलवेके अलेश्वर-रोड स्टेशनके पास ही है। यहां पुलिसथाना और डाकघर दोनों ही हैं। रविवार और बुधवारको यहां हाट लगता है।

शाहबन्दर—१ बम्बई प्रेसिडेन्सीके करांची जिलेका एक महकमा। यह अक्षा० २४° १०' ३० तथा देशा० ६७° ५६' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ३३७८ वर्गमील और जनसंख्या आठ सौ के करीब है।

यह स्थान प्रधानतः एक समतल भूमि और नदीमातृक है। सिन्धुनदके स्रोत जलसे यह बहुत कुछ उक्त नद या द्वीपमें परिणत हो गया है। यहां बहुत सी नदियां बह गई हैं। उन सब नदियोंमें कोरी खाल और बिझारी या शिरनदी प्रधान है। इसके नाना स्थानोंमें आम और इमलीके वन देखे जाते हैं। इसका दक्षिण पश्चिमांश सिन्धुकी बाढ़से डूब जाया करता है। इसका कटिदेश समुद्रकी ओर अग्रसर हो गया है। उस चर-भूमिमें महिषादि स्वच्छन्दपूर्वक विचरण कर सकते हैं। धान ही यहांकी प्रधान उपज है। इसके सिवा गेहूं, कपास, तमाकू और ईख भी उत्पन्न होती है।

२ इस महकमेका एक तालुक। इसका भूपरिमाण १३८८ वर्गमील है।

३ शाहबन्दर तालुकका प्रधान नगर। मुगलभीनसे ३० मील दक्षिण-पूर्व तथा सुजावालसे ३२ मील दक्षिण सिन्धुनदीके डेल्टा अंशमें यह बन्दर अवस्थित है। पहले यह स्थान मोसिर नदीके पूर्वप्रान्तमें था। इसके दक्षिण पूर्वभागमें लवणभूमि, पश्चिममें सुदीर्घ तृणपूर्ण जङ्गल है। सिन्धुनदकी बाढ़से आरङ्गाबादका कुछ अंश जब नष्ट हो गया, तब अंगरेज लोग आरङ्गाबादसे शाहबन्दरमें अपना कारखाना उठा लाये। १८१९ ई०की सिन्धुबाढ़से शाहबन्दर एक नगण्यग्राममें परिणत हो गया।

शाहबलूत (फा० पु०) बलूत देखो।

शाहबाज (फा० पु०) सफेद रङ्गका एक प्रकारका शिकारी पक्षी।

शाहबाज खाँ कम्बू—सम्राट् अकबरशाहकी सभाका एक अमीर। यह हाजी जमालका वंशधर और उससे छः पीढ़ी नीचे था। हाजी जमाल मुलतानके शेख बाहउद्दीनके धर्मशिष्य थे। जीवनके प्रथमाशमें ये दरवेश या फकीर थे। पीछे अकबर बादशाहने इन्हें उमरावके पद पर नियुक्त किया। धीरे धीरे अमीरके पद पर इनको तरक्की हुई। १५८४ ई०में शाहबाज खाँ पङ्गालका

शासनकर्त्ता हुआ। १५९६ ई०में ७० वर्षकी अवस्थामें इसकी मृत्यु हुई। अजमीरके ख्वाजा मइन उद्दीन चिस्तीके वृहत् समाधिमन्दिरके पास इसका मकबरा है। शाहबाज खाँ एक विख्यात दाता था। इसकी दान शीलता देख कर बहुतों की धारणा थी, कि इसके पास कोई मन्त्रपूत अक्षयखण्ड है।

शाहबाजनगर—शाहजहान्पुर तहसीलका एक बड़ा ग्राम। यह अक्षा० २७ ५७ उ० तथा देशा० ७९ ५६ पू० देवानदी पर शाहजहान्पुरसे ३ मील दूरमें अवस्थित है। शाहबाज खाँके नामानुसार १७वीं सदीके मध्यभागमें यह नगर बसाया गया। शाहबाज खाँ यहां दुर्ग बना कर अकसर रहा करता था। उसके वंशधर सिपाही युद्धके समय तक इस स्थानका भोग करते रहे। ये लोग विद्रोहियोंके साथ मिल गये थे इस कारण वृटिश गवर्मेण्टने यह स्थान उनसे छीन लिया और बरेलीके डिप्टी कलक्टर मौलवी शेख गैर उद्दीनको दे दिया।

शाहबाजपुर - युक्तप्रदेशके फतेपुर जिलान्तर्गत कल्याणपुर तहसीलका एक ग्राम। यह अक्षा० २५ ५६´ उ० तथा देशा० ८० ४०´ पू० बिन्दकीसे ७ मील फतेपुर शहरसे १३ मील दूरमें अवस्थित है।

शाहबाज बन्दा नवाज—इश्कनामा और सादत्-नामा नामक दो ग्रन्थके रचयिता। इन दोनों पुस्तकोंमें ऐश्वरिक प्रेम आत्मा और जीवनकी भावी अवस्थाके विषयमें अनेक प्रकारके सम्बन्धोंका समावेश है।

शाहबाला (फा० पु०) शहबाला देखो।

शाहबेग अरघन—सिन्धुदेशके राजा और अरघन वंशके स्थापयिता। इनके पिता जुलानयन अरघन खुरासानके राजा सुल्तान हुसेन मिर्जाके सेनानायक और प्रधान अमात्य तथा कन्धहार, गारमसिरादिक और अरघन प्रदेशके शासनकर्त्ता थे। महम्मद खाँ सैवानी उजबेगको रोकने गये और वहीं मारे गये। पीछे कन्धहारके अधिपतिके लड़केने शाह बेग अरघनको उस पद पर नियुक्त किया। बाबर शाहने जब कन्धहार प्रदेश पर चढ़ाई कर दी तब ये उनका मुकाबला न कर सके और सिन्धुदेशको भाग गये। १५२१ ई०में सामवंशके अन्तिम राजा जाम फिरोजको परास्त कर यहांके राजा हुए।
किन्तु ये यहां अधिक दिन तक राज्य न कर सके। क्योंकि दो ही वर्ष बाद अर्थात् १५२४ ई०को उनकी मृत्यु हो गई।

शाह बेगम—भगवान् दासकी कन्या और जहांगीरकी प्रथम पत्नी। जहांगीर बादशाहने ही इसको शाहबेगम उपाधि दी थी। १५८५ ई०में युवराज सलीम (पीछे जहांगीर) के साथ इसका विवाह हुआ। इसीके गर्भसे १५८७ ई०में खुसरूने जन्म लिया। जहांगीर अकबरके राजदरबारमें एकबार बागी हो गये और कुछ समय इलाहाबादमें जा कर स्वतन्त्र और स्वाधीन भावसे रहने लगे थे। इस समय उन्होंने अस यन्त्र भावसे अपना इन्द्रिय वृत्तिका चरितार्थ किया। अपने बड़े लड़के सुलतान खुसरूको वे देखना नहीं चाहते थे। यह उनके चरित्रकी एक अद्भुत विशेषता थी। खुसरू भी पिताकी तरह असंयतचित्त और मदिरासेवी थे। मालूम होता है कि यह भी उनके विवादका एक प्रधान तथा असन्तुष्टिका कारण था। पिता पुत्रका इस प्रकार कलह देख शाहबेगम इतनी मर्माहत हो गई, कि इलाहाबादमें रहते ही उसने अफीम खा कर प्राणत्याग किया। सुल्तान खुसरूके उद्यानमें दफनाई गई। पीछे सुलतान खुसरू भी इस लोकसे चल बसे और उनका भी उसी जगह मकबरा बन या गया।

शाह बेगम—बदाकशानके खाँ मिर्जाकी माता। यह महावीर अलेकसन्दरकी वंशावली बद्ध कर अपना परिचय देती थी।

शाह मदार—एक मशहूर दरवेश। इसका असल नाम बदीउद्दीन था। यह शेख महम्मद तयफूरी बुस्तामीका धर्मशिष्य और मदारिया सम्प्रदायका स्थापयिता था। इसके सम्बन्धमें बहुत सी अद्भुत बातें सुनी जाती हैं। १४३४ ई०की २०वीं दिसम्बरको १२४ वर्षकी उमरमें इसका देहान्त हुआ। कन्नौजके अन्तर्गत मकानपुरमें इसकी कब्र है। यहां प्रति वर्ष महोत्सव होता है। यह काजी साहब उद्दीन् दौलताबादीका समसामयिक था। दौलताबादी जैनपुरके सुल्तान इब्राहिम सर्कीके राजदरबारमें शामिल थे।

शाह मनसूर—मुजफ्फरका लड़का और मुजफ्फरवंशका अन्तिम सुल्तान। इसने पैन उल आबिदिनको अन्धा

पद पर था। जहांगीरके समय सात हजारीके पद पर इनकी तरक्की हुई थी। १६०७ ई०को उज्जयिनीमें इनका देहान्त हुआ।

शाह सदर—एक सुविख्यात पीर। अरबसे ये सिन्धु देशमें आये थे। यहां बहुतोंने इनका धर्ममत ग्रहण किया। शिविरस्थान एधतके पाददेशमें आज भी इनका मकबरा दिखाई देता है। यह स्थान सिन्धुप्रदेशके लकी ग्रामके पास ही है। पारस्याधिपति नाजिर शाह इनके परम भक्त थे। नाजीरजको इन्होंने अपना दर्शन दे कर गुप्तधनका स्थान कह दिया था। नाजिरने स्वप्नादेशानुसार निर्दिष्ट स्थानमें धन पाया और पीछे वे पीर साहबके परम भक्त हुए। सिन्धु प्रदेशमें अभी जो सब सैयद वंशीय व्यक्तिगण नाजिर सैयद कहलाते हैं, वे इन्हींके वंशधर हैं। इमाम अली नकिके वंशसे इस वंशकी उत्पत्ति हुई है। 'लकि' शब्द 'नकि' शब्दका ही रूपान्तर या अपभ्रंश है।

शाह सरफउद्दीन—एक पीर। १३३६ ई०में इनका देहान्त हुआ। विहारमें आज भी इनकी समाधि है। मुसलमान लोग यह समाधि देखने आते हैं। मृत तिथिमें प्रति वर्ष इस दरगाहके समीप इनके स्मरणार्थ मेला लगता है। इनका दूसरा नाम शेख शराफ था। बहोल लोदीके पुत्र सम्राट् सिकन्दर शाह १४९५ ई०में इनकी समाधि देखने आये थे।

शाह सुजा—काबुलके अहमदशाह अबदल्लाके पौत्र और तैमूरशाहके कनिष्ठ पुत्र। १८१२ ई०में इनके भाइने इन्हें कारारुद्ध किया। रणजितसिंहने इन्हें कारामुक्त कर दिया था। १८०६ ई०को ८वीं मईको वृटिश गवर्मेण्टने इन्हें काबुलके सिंहासन पर प्रतिष्ठित किया। १८४२ ई०में इनके मन्त्रीजेने इनका काम तमाम किया। इन्होंने इनका जो आत्म जीवनी लिखी थी वह एशियाटिक सोसाइटीकी पत्रिकामें प्रकाशित हुई है।

शाहसुजा—मुवारकशीव सुल्तान। मिराजमें इनकी राजधानी थी। इन्हें एक भारी रोग था, कि ये हमेशा क्षुधातुर रहते थे। किसीसे भी क्षुधा निवृत्ति नहीं होती थी। १३५६ ई०में इन्होंने अपने पिताकी आंखें फोड़ डालीं और स्वयं राज्य शासन करने लगे। १३८५ ई०में इनकी मृत्यु हुई। सिराजके निकटस्थ हफ्तान उद्यानमें आज भी इनकी समाधि नजर आती है।

शाह सुफा—पारस्यराज शाह अब्बासके पौत्र। इनका असल नाम बहराम मिर्जा था। १६२६ ई०के जनवरी मास में ये शाह सुफी उपाधि धारण कर सिंहासन पर बैठे। ये अत्यन्त दुर्दान्त, निष्ठुर और दुश्चरित्र थे। ये प्रति वर्ष भयानक लोमहर्षण, निष्ठुरता और लोकपीडाजनक कार्य करके जनसाधारणको तंग करते रहते थे। समस्त राजपरिवारके ऊपर इनका अविश्वास था। ये किसीको यमपुर भेजते, किसीकी आंखें निकाल लेते और किसीको कारागारमें ठूंस कर कष्ट देते थे। प्रायः चौदह वर्ष राज्य करनेके बाद १६४२ ई०में इनकी मृत्यु हुई।

शाह सुफी—एक पीर। आगराके अन्तर्गत फिरोजपुर परगनेके सुफापुर ग्राममें इनकी दरगाह है। इस दरगाहके खादिमोंका कहना है कि सम्राट् अकबरके शासन कालमें शाह सुफी इस्पाहनसे भारतवर्ष आये और यमुनाके तटवर्ती पुराने चन्द्रावार नगरमें बस गये। इस स्थानके बहुत दूर तक चारों ओर बहुत सी मसजिदोंका भग्नावशेष देखनेमें आता है। शाह सुफीका मसजिद कारुकार्यके लिये विख्यात है, सचमुच यह देखने लायक है। यमुनासे यह मसजिद स्पष्ट दिखाई देता है।

शाहादा—१ बम्बई प्रदेशके खान्देश जिलेका एक महकमा। यह अक्षा० २१ २४ से २१ ४८ उ० तथा देशा० ७४ २४ से ७४ ४७ पू०के मध्य अवस्थित है। भू-परिमाण ४९६ वर्गमील है। इसमें २ शहर और १७५ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या ६० हजारके करीब है। जिसे मरम य० साजुर बहुजनताकार्य है। यहां तापी और गोमा नामकी दो नदी बहती हैं। १३७० ई०में यह स्थान गुजरातके अधीन था। इसी समय खान्देशके शासनकर्त्ता राजा मालिकने इस स्थान पर आक्रमण कर इसे बिल्कुल तहस-नहस कर डाला। इसके बाद यह महकमा मुगलों और पीछे मराठोंके शासनाधीन हुआ। १८१८ ई०में अंग्रेज सिंहने इस स्थान पर कब्जा जमाया।

२ उक्त महकमेका एक प्रधान शहर। यह अक्षा० २१ ३३ उ० तथा देशा० ७४ २८ पू० धूलियासे ४८ मील उत्तर पश्चिममें अवस्थित है। जनसंख्या पांच

हजारसे ऊपर है। १८६६ ई०में म्युनिसपलिटी स्थापित हुई है। शहरमें रुई ओटनेके तीन कारखाने, एक चिकित्सालय और चार स्कूल हैं।

शाहाना (फा० वि०) १ बादशाहोंके योग्य, राजाओंका, राजसी। (पु०) २ विवाहका जोड़ा जो दूल्हेको पहनाया जाता है। यह प्रायः लाल रंगका होता है। इसे जामा भी कहते हैं। ३ शहाना देखो।

शाहापुर—बम्बईके थाना जिलान्तर्गत पूर्वीय तालुक। यह अक्षा० १६° १८' से १६° ४४' उ० तथा देशा० ७३° १० से ७३° ४३' पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण ६१० वर्गमील और जनसंख्या ८ हजारसे ऊपर है। इसमें १६७ ग्राम लगते हैं जिनमें शाहापुर प्रधान है। यहांकी जमीन लाल और पथरीली है, आबहवा अच्छी नहीं है। धान कूटनेके शहरमें पांच कारखाने हैं।

शाहापुर—बम्बईके सङ्गली राज्यका सदर। यह अक्षा० १५° ५०' उ० तथा देशा० ७४ ३४ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या ६ हजारसे ऊपर है। सङ्गली राज्यमें यह प्रसिद्ध वाणिज्य स्थान है।

शाहाबाद—बिहार और उड़ीसाके पटना विभागका एक जिला। यह अक्षा० २४° ३१' से २५° ४६ उ० तथा देशा० ८३° १६' से ८४° ५१' पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण ४३७३ वर्गमील है। इसके उत्तरमें गाजीपुर और सारन जिला, पूर्वमें पटना और गया, दक्षिणमें लोहारडंगा और पश्चिममें मिर्जापुर, बनारस तथा गाजीपुर है। इसके उत्तरमें गंगानदी और पूर्वमें शोन नदी बहती है। ये दोनों नदियां जिलेके उत्तर पूर्वमें मिल गई हैं। कर्मनाशा नदी उत्तर-पश्चिम विभागसे इस जिलेको पृथक् करती है। कर्मनाशा चौसाके समीप गङ्गामें मिल गई है। शोननदी दक्षिणकी ओर लोहारडगाके सीमारूपसे बहती है।

शाहाबाद भूखण्डमें दो प्रकारके भावोंकी नैसर्गिक अवस्था देखी जाती है। दक्षिण भाग और उत्तर भाग जलवायुके सम्बन्धमें, प्राकृतिक दृश्यके सम्बन्धमें और मृगिजात इत्यादिके सम्बन्धमें सम्पूर्ण पृथक् है उत्तरी भागका परिमाण सारे जिलेका प्रायः त्रिचतुर्थांश है। इस अंशमें खेतीबारी खूब होती है। आम, महुआ, बांस और खजूर वृक्ष आदि देखे जाते हैं। दक्षिणांशमें कैमुर गिरिश्रेणी विराजमान है। यह गिरिश्रेणी विन्ध्यपर्वतकी शाखा है। इस पहाड़ी प्रदेशका परिमाण ७६६ वर्गमील है। शोन और गङ्गा शाहाबाद नदनदीमें प्रधान हैं। इसके सिवा कर्मनाशा, धोबा, दुर्गावती आदि नदियां भी शाहाबादमें बहती हैं। शूरा, कोरा, गनहुआ और कुद्रा ये नदनदी दुर्गावतीमें मिल गई हैं। धोबा या काउ नदीमें एक सुन्दर जलप्रपात है। दुर्गावती कर्मनाशाके साथ मिली है। गुप्तगुहा दुर्गावतीके किनारे ही अवस्थित है।

इस जिलेमें सड़क मरम्मत करने लायक बहुतसे कंकड़ पाये जाते हैं। उन कंकड़ोंको जलानेसे बढ़िया चूना तय्यार होता है। कैमूर पहाड़ पर प्रासादादि बनाने लायक काफी चुनारके पत्थर हैं। इन्हीं सब पत्थरोंसे शेरशाह अनेक प्रस्तरभवन बनवा गये हैं। करीब तीन सौ वर्ष बीत गये, वे सब भवन ज्योंके त्यों खड़े हैं, कोई अंग टूटा नहीं है। इस प्रस्तरमें ६०० वर्षका प्राचीन शिलालिपि खोदित देखनेमें आती है। कर्मनाशा नदीके गर्भमें भी ऐसे कितने पत्थर पाये जाते हैं। शाहाबादमें खेतोंमें जल सींचनेके लिये १८५५ ई०से आज तक बहुत-सी नहरें काटी गई हैं। बिहिया, आरा, बकसर, चौसा, डोमराउन आदि स्थानोंमें अनेक नहरें काट कर निकाली गई हैं।

इस जिलेमें रोतस या रोहितासगढ़ नामका एक प्रसिद्ध स्थान है। कहते हैं, कि पुराण-प्रसिद्ध राजा हरिश्चन्द्रके पुत्र रोहिताश्वने यह गढ़ बनवाया था। यहां राजा मानसिंहके बनवाये प्रासाद आज भी वर्त्तमान हैं। मानसिंह १६४६ ई०में बङ्गाल और बिहारके राजप्रतिनिधिपद पर प्रतिष्ठित हुए। उसी समय उक्त प्रासाद बनाये गये थे। शेरगढ़ एक प्रसिद्ध स्थान है। यह शेरशाह द्वारा बनवाया गया है। चैनपुर स्थान भी सुविख्यात है। यहां एक दुर्ग और कितने कीर्त्तिस्तम्भ तथा समाधि हैं। इनके अलावा दरौती, वैद्यनाथ और महास्वार आदि स्थानोंके नाम भी उल्लेखयोग्य हैं। चौसा एक इतिहास-प्रसिद्ध स्थान है। १५३६ ई०में शेरशाहने हुमायुनको यहां परास्त किया था। तिलोथू नामक स्थानमें

यह एक बृहत् प्रस्तरण तथा प्राचीन जैन प्रतिमा है। पटना एक सुविख्यात स्थान है। प्राचीन हिन्दू राजाओंने यहां राजधानी बनाई थी। आज भी बिहार उड़ीसाकी राजधानी पटना ही है। गुप्तसरकी पवित्र गुहा शहरसे ७ मील दूरमें अवस्थित है।

आरा शहर १८५८ ई०में सिपाही विद्रोहके समय सुविख्यात हो उठा था। दानापुरमें दो हजार सिपाहियों तथा नाना स्थानके और भी ८ हजार सशस्त्र अधिवासियोंने कुमारसिंहकी अधिनायकतामें जुलाई मासके शेष भागमें आराकी ओर यात्रा की। इन सब विद्रोही सेनाओंने २७वीं जुलाईको आरा पहुंच कर आरा जेलके कैदियोंको मुक्त कर दिया और धनागार लूटा। इससे पहले ही यूरोपीय महिला और बालक बालिकाओंको स्थानान्तरित किया गया था।

१२ सरकारी और रेलवेके कर्मचारी तथा नाना सम्प्रदायके ४५ सिपाही इस स्थानमें रहते थे। पटनाके कमिश्नर मि० टेलरने यहां एक दल सेना भेजी। इस सेनादलमें सिर्फ ५० सिख थे। ये लोग आठ दिन तक तमाम आक्रमणसे इस स्थानकी रक्षा करते रहे। पीछे मेजर आयरने फिर इन्हें विद्रोहियोंके कवलसे उद्धार किया। ठीक इसी समय उस स्थानके सुपरिन्टेण्डेण्ट मि० विकार बायलकी देखरेखमें ईष्ट इण्डियन-रेलवेका निर्माण कार्य शेष होने पर था। उन्हें दुर्गादिके स्थापत्यमें बहुत कुछ अभिज्ञता थी। उन्होंने पहलेसे उस स्थानके दो महलोंको दखल कर लिया। ये अभी दोनों महल जजके महल (Judge's homes) नामसे पुकारे जाते हैं। इनमें जो छोटा महल है वह दो महलका है और बड़े महलसे २० गजकी दूरी पर अवस्थित है। उस महलको दुर्गकी तरह बना कर रसद आदि रक्खी जाती थी।

विद्रोही-दल आराकी ओर अग्रसर हो रहा है। यह सुनते ही इन लोगोंने उस छोटे दुर्गमें आश्रय लिया। विद्रोहियोंने नगर लूट कर बायेल साहबके दुर्गकी ओर कदम बढ़ाया। किन्तु उन लोगोंके आक्रमण कौशलसे पीछे हट गये और बड़े [illegible] व्यर्थ हुए। पीछे इन लोगोंने विभिन्न उपायसे इस छोटे दुर्गको विध्वस्त करनेकी चेष्टा की। किन्तु उन लोगोंके पास बन्दूक आदि कुछ भी नहीं थे। कुमारसिंहने बाहिर जमीनमें गड़ा हुआ दो कमान निकाला और अपने घरकी सामग्री आदि द्वारा गोलन्दाजीके व्यवहारार्थ कुछ द्रव्य प्रस्तुत कर लिये। अंगरेजोंमेंसे कोई भी अधीनता स्वीकार करने पर प्रस्तुत न था। मजिष्ट्रेट मि० हारवाल्ड वेकने सिखसेनाओंकी परिचालना की थी। उन सिखसेनाओंने विद्रोही द्वारा प्रलुब्ध हो कर भी प्रभुभक्तिका जैसा परिचय दिया था, वह प्रशंसनीय है। इस समय दानापुरसे १५० अंगरेजी सेना उनकी रक्षाको भेजी गई। उनके शाहाबादमें पहुंचते ही विद्रोहियोंने उन पर चढ़ाई कर दी। कई दिन बीत गये पर उनकी सहायताके लिये कोई भी अग्रसर न हुआ। दुर्गमें रसद भी घट गई। दुर्गके भीतर ही कूप खोद कर बड़े कष्टसे जल निकाला गया। दो पहर रातको किसी तरह दो बकरे पकड़ गये और उन्हींके मांससे दुर्गस्थ लोगोंने प्राण रक्षा की।

२री अगस्तको मेजर विनसेण्ट आयर १५० पदातिक कुछ घुड़सवार सेना, ३ कमान और ३४ गोलन्दाज ले कर इन लोगोंकी सहायतामें अग्रसर हुए। सूर्यास्तके पहले ही विपक्ष सेना यहांसे भाग जानेको बाध्य हुई। दूसरे दिन सवेरे मेजर विनसेण्टने कुमारसिंहकी सेनाओंको फिरसे लौट आनेके लिये बाध्य किया।

इस जिलेमें ६ शहर और ५११५ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या २० लाखके करीब है। अधिवासियोंमें ब्राह्मण राजपूत और अहीरकी संख्या ही ज्यादा है।

शाहाबादके शस्यादिमें धान ही प्रधान है। गेहूं, जौ, जुनहरी, मटर, उड़द, तिल, रेंड़ा, सरसों, कपास, प्याज, पाट, ईख, पान, तमाकू, नील और अफीम आदि यहां यथेष्ट उत्पन्न होता है। अतिवृष्टि अनावृष्टि आदिके कारण यहां शस्यादिकी बड़ी हानि होती है। शाहाबाद जिलेमें हाट बाजार और मेले आदिमें वाणिज्य व्यवसाय दिखाई देते हैं। रघुनाथपुर रेलवे स्टेशनके निकटवर्ती बहरमपुर, बक्सर, अहाभी, धूमरियार, पतासिया, नासरीगंज, कस्वार, डालमार, धामर, मसाढ़ और गुप्तसर नामक स्थानमें प्रति वर्ष मेला लगता है। शाहाबादसे चावल, जौ, उड़द, मासी, रफ्तनी होती है।

इस जिलेमें २५ सिकेण्डरी, ६३० प्राइमरी और ३६० स्पेशियल स्कूल हैं। अनाथोंके लिये भी रुहेल और दहातमें दो स्कूल हैं। स्कूलके अलावा १२ अस्पताल हैं। यहांका स्वास्थ्य उतना खराब नहीं है। रोगोंमें ज्वर, उदरामय और चर्म रोग ही प्रधान हैं।

शाहाबाद—युक्तप्रदेशके हर्दोई जिलेकी उत्तरीय तहसील। यह अक्षा० २७° २५´ से २७° ४६´ ३० तथा देशा० ७९° ४´ से ८०° १६´ पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण ५४२ वर्गमील और जनसंख्या ढाई लाखसे ऊपर है। इसमें ३ शहर और ५१८ ग्राम लगते हैं। इसके उत्तरमें शाहजहानपुर, पूर्वमें आलम नगर, सारा और सुखेता नदी, दक्षिणमें सरमन नगर और पश्चिममें पाचोछा तथा पाली है। यहां गेहूं, जौ, बाजरा, जुआर, धान, अरहर और ईख उत्पन्न होती है।

यह भूखण्ड पहले ठठेरोंके शासनाधीन था। वर्त्तमान समयमें जहां शाहाबाद जिला अवस्थित है, वह स्थान अग्निखेरा कहलाता था। यह अग्निखेरा तथा इसके चारों ओरका स्थान ठठेरोंके अधिकारमें था। ८वीं सदीमें उन लोगोंने बनारससे हरिद्वार तीर्थयात्री एक दल ब्राह्मणके हाथसे इस स्थानका अधिकार खो दिया था। इन ब्राह्मणोंने औरंगजेबके शासनकाल तक यहां अपने अधिकारकी रक्षा की थी। इसके बाद दिलेर खाँ नामक एक अफगानने ब्राह्मणोंको मार कर यहां अपना दखल जमाया था। दिल्लीके सम्राट्ने उसे इस स्थानके अधिकार सम्बन्धमें सनद दी थी। दिलेर खाने ही अग्निखेरामें शाहाबाद नगर प्रतिष्ठित किया। उसने इस स्थानमें अपने अफगान आत्मीय स्वजनों और कुछ सेनाओंको ला कर बसाया तथा जङ्गल जागीर स्वरूप दिया। दिलेर खाँके वंशधरोंने खरीद, बन्धक, वंचना और जोर जुल्म द्वारा इस परगनेका अधिकारभुक्त कर लिया था। ७०।८० वर्ष तक यह स्थान उन्हींके अधिकारमें रहा। आज भी दिलेर खाँके वंशधरगण इस परगनेके प्रायः अर्द्धांशके मालिक हैं।

२ शाहाबाद परगनेका प्रधान नगर। यह अक्षा० २७° ३८´ ३० तथा देशा० ७९° ५७´ के मध्य अवध और रोहिलखण्ड रेलवेके किनारे अवस्थित है। जनसंख्या बीस हजारसे ऊपर है। शाहाबाद शहर अत्यन्त जनाकीर्ण है। अयोध्यामें यह चतुर्थ शहर माना गया है। यहां अयोध्या रोहिलखण्ड रेलवेका एक स्टेशन है। गत सदीसे इस शहरकी अवस्था शोचनीय हो गई है। १७७० ई०में यहां बहुतसे लोगोंका वास था। दिलेर खाँने यहां कारुकार्यपरिपूर्ण अत्यन्त सुन्दर बारहदुआरी प्रासाद बनवाया था। इस नगरमें बड़े बड़े दुर्ग और प्रासाद थे। सर विलियम स्लिमनने अपने 'अयोध्या भ्रमण' ग्रन्थमें लिखा है, 'शाहाबाद अति प्राचीन और प्रधान शहर है। इस शहरमें पठान मुसलमान रहते थे। वे लोग बड़े अशांतिप्रिय थे। शिवसुख राय नामक एक हिन्दू वणिक् यहां रहता था। किसी समय वह मुसलमानोंके अधीन कार्यकारकरूपमें काम चलाता था। कभी कभी वह प्रधान प्रधान पठानोंको रुपया भी कर्ज देता था। रुपये वसूल नहीं होने पर शिवसुखने कर्ज देना बन्द कर दिया। इस पर मुसलमान लोग बड़े बिगड़े और मुहर्रमके समय उस पर झूठा दोष लगा कर मकान पर टूट पड़े और ७०००) रुपये लूट लिये। शिवसुखने शाहजहानपुर भाग कर अंगरेजोंकी शरण ली। इस समय इन पठानोंने एक नकली मसजिद बनवा कर मुसलमानोंको शिवसुख रायके विरुद्ध उभाड़नेके लिये षड़यन्त्र रचा था। चूना सुरखी आदिसे वह मसजिद नहीं बनाई गई थी। बीच बीचमें पठानोंमेंसे कोई कोई दो चार ईंट फेंक दिया करते थे और लोगोंसे कहा करते थे, कि शिवसुख रायने हम लोगोंकी मसजिदको तहस नहस कर डाला है। वह मसजिद आज भी विद्यमान है। शहरमें तहसीली आफिस और मुन्सफी, अस्पताल और अमेरिकन मेथोडिस्ट मिशन है। यह स्थान साक सब्जी और फलमूलके लिये प्रसिद्ध है। शहरमें चार स्कूल हैं जिनमेंसे एक बालिकाके लिये है।

शाहाबाद—पञ्जाबके करनाल जिलान्तर्गत थानेश्वर तहसीलका एक शहर। यह अक्षा ३०° १०´ ३० तथा देशा० ७६° ५२´ के मध्य अवस्थित है। अम्बालासे १६ मील दक्षिण दिल्ली अम्बालाकालका रेलवे लाइन पर अवस्थित है। ११वीं सदीके अन्तमें अलाउद्दीन महम्मद गोरीके किसी

मनुचर द्वारा यह नगर बसाया गया है। १८६७ ई०में एक वर्नाक्युलर स्कूल और एक अस्पताल हुआ है।

शाहाबाद—१ युक्तप्रदेशके रामपुर राज्यकी दक्षिणी तह सील। यह अक्षा० २८ २(स २८ ४३ उ० तथा देशा० ७८ ५२´ पू०के मध्य विस्तृत है। भू परिमाण १६६ वर्गमील और जनसंख्या ८० हजारसे ऊपर है। इसमें शाहाबाद नामक एक शहर और १६७ ग्राम लगते हैं। रामगङ्गाके दोनों किनारे यह तहसील विस्तृत है।

२ उक्त तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० २८ ३४´उ० तथा देशा० ७१ ९´ पू०के मध्य विस्तृत है जनसंख्या ८ हजारके करीब है। यह शहर उच्च भूमिके ऊपर प्रतिष्ठित तथा रामपुर राज्यके मध्य सबसे अधिक स्वास्थ्यप्रद है। यहां मिट्टीका बना एक पुराना किला था। आस पासके ग्रामोंसे यह स्थान प्रायः एक सौ फुट ऊंचा था। यहां बहुतसे पठान व शीय मुसल मानोंका वास है। शहरका पुराना नाम लखनौर था। कहते हैं कि रोहिलखण्डके कटेरिया राजाओंकी यहां राजधानी थी। शहरमें अस्पताल और एक तहसीली स्कूल है। यह शहर चीनीके लिये प्रसिद्ध है।

शाहाबाद—काश्मीर राज्यका एक शहर। यह अक्षा० ३३ ३२´ उ० तथा देशा० ७५ १६´ पू०के मध्य पड़ता है। पूर्वतन मुगलसम्राट् इस शहरको वासोपयोगी मनोरम स्थान समझते थे। किन्तु अभी यह स्थान बिलकुल श्रीहीन हो गया है। शहरके निकट मनोरम उपत्यका पर बसा हुआ है। फल फूलसे आज भी यह स्थान बहुत कुछ सुशोभित हो रहा है।

शाहाबाद—हैदराबादके गुलबर्गा जिलान्तर्गत फिरोजाबाद तालुकका एक शहर। यह अक्षा० १७ ८ उ० तथा देशा० ७६ ५१´ पू०के मध्य विस्तृत है। जनसंख्या पांच हजारसे ऊपर है। यहां ग्रेट इण्डियन पेनिनसुला रेलवे का एक बड़ा स्टेशन है। शहरमें दो बाजार, विटिश और निजामकी पुलिस स्टेशन, एक चिकित्सालय और तीन वर्नाक्युलर प्रायमरी स्कूल हैं।

शाहिद (अ० पु०) १ वह मनुष्य जो आंखों देखा घटना का न्यायाधीशके समक्ष वर्णन करे, साक्षी गवाह (वि०) २ सुन्दर, मनोरम, खूबसूरत।

शाहिवाल—पञ्जाबकी शाहपुर तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० ३१ ५८´ उ० तथा देशा० ७२ २८´ पू०के मध्य विस्तृत है। यह किसी समय स्थानीय राजाओंकी राजधानी थी। झेलम नदीके पूर्वी किनारे पर यह नगर बसा हुआ है। कहते हैं कि गुलबहलोल नामक एक बलूचने यह शहर बसाया। रणजित्सिंहके प्रादुर्भावके पहले तक इसके पार्श्ववर्त्ती स्थान सैयाद्विकारमें थे। यहां अक्सर मलेरियाका प्रकोप देखा जाता है, इस कारण आबहवा अच्छी नहीं है। किन्तु यह स्थान शाहपुर अञ्चलका प्रधान वाणिज्य स्थान समझा जाता है।

शाही (फा० वि०) शाहों या बादशाहोंका राजसी। जैसे,—शाही दरबार, शाही महल, शाही सवारी।

शाहीन (फा० पु०) १ शाहबाज देला। २ वह सूई जो तराजूकी डंडीके मध्य भागमें लगी होती है और जिसके बिलकुल सीधे रहनेसे तौल बराबर और ठीक मानी जाती है।

शाहु—सताराका एक अधिपति। यह शम्भुजी भोंसले का पुत्र और शाहु साहब नामसे जनसाधारणमें परि चित था। राजारामने इन्हें गोद लिया था। १६९७ ई०की १२वीं दिसम्बरको यह सताराकी गद्दी पर बैठा सही पर, आजीवन उसे नजरबन्दी भावमें रहना पड़ा था। मृत्युके बाद इसके लड़के प्रतापसिंहने राजपद सुशोभित किया।

शाहुका—बम्बईके काठियावार विभागका एक छोटा राज्य। यह अक्षा० २१ २६´ उ० तथा देशा० ७८ १० पू०के मध्य शाहाबाद नहरसे ७ मील पूर्व और ग्रेट इण्डियन रेलवेके जङ्क्शन स्टेशनके पास अवस्थित है। यहांके मालिक वृटिश सरकार और जूनागढ़के नवाबको कर देते हैं।

शाहुजी भोंसले १म (शाहजी)—एक महाराष्ट्र सरदार। ये महाराष्ट्र केशरी शिवाजीके पिता थे। ये पहले अहमद नगरके सम्राट्के अधीन सेनाविभागीय कार्यमें बड़ी वीरता दिखाई थी। इस कारण कुछ दिन बाद ही इनकी तरक्की हुई। अहमदनगर जब नष्ट भ्रष्ट हो रहा था, तब इनकी जागीर विजापुर राज्यमें पड़ी, इस कारण ये अपनी जागीरकी रक्षाके लिये

अथर्ववेदमें लिखा है, कि यह काष्ठनिर्मित रथ अति शय दृढ़ होता है। 'ओनोघिदि स्यन्दने शिशपायां" (ऋक ३।५३।१६) २ अशोकका वृक्ष।

शिशुपाल्यक (स० क्ली०) स्थानभेद।

शांशपास्थल देखो।

शिशुमार (स० पु०) शिशुमार, सूंस नामक जलजन्तु। (ऋक १।११६।१८)

शिश्न (स० क्ली०) १ लौहमल, मरचाई। २ कांचका बरतन। ३ छर्दि।

शि (स० पु०) १ शिव महादेव। २ सुख, सौभाग्य। ३ शांति। ४ घैर्य।

शिकंजा (फा० पु०) १ दबाने, कसने या निचोड़नेका यन्त्र। २ पेंच कसनेका यन्त्र या औजार जिससे जिल्द बंद किताबें दबाते और उसके पन्ने काटते हैं। ३ पेरने का यन्त्र कोल्हू। ४ रूई दबानेका कल, पेच। ५ प्राचीन कालका अपराधियोंको कठोर दण्ड देनेके लिये एक यन्त्र जिसमें उनकी टांगें कस दी जाती थीं। ६ वह तागा जिससे जुलाहे घुमावदार बंद बनाते और पगिक बांधते हैं।

शिकन (फा० स्त्री०) सिकुड़नेसे पड़ा हुआ धारी, मुड़ कर दबनेसे पड़ी हुई लकीर, सिलवट।

शिकम (फा० पु०) उदर, पेट।

शिकमी (फा० वि०) पेट सम्बन्धी, निजका अपना।

शिकमी काश्तकार (फा० पु०) वह काश्तकार जिसे जोतनेके लिये खेत दूसरे काश्तकारसे मिला हो। इसका हक साधारण काश्तकारके हकसे बहुत कम होता है।

शिकरा (फा० पु०) एक प्रकारका बाज पक्षी।

शिकवा (अ० पु०) शिकायत, उलाहना।

शिकस्त (फा० स्त्री०) १ हार पराजय मात। २ भग्न, टूटना। ३ विफलता, असिद्धि।

शिकस्ता (फा० वि०) १ भग्न, टूटा हुआ। (स्त्री०) २ उर्दू या फारसीका घसीट लिखावट।

शिकायत (अ० स्त्री०) १ बुराई करना, चुगली, निन्दा। २ किसीके भूल, त्रुटि, दोष आदिकी बात जो मनमें हो। ३ उपालम्भ उलाहना। ४ शारीरिक अस्वस्थता, रोग बीमारी।

शिकार (फा० पु०) १ जंगली पशुओंको मारनेका कार्य या क्रीड़ा, आखेट, मृगया। २ वह जानवर जो मारा गया हो। ३ आहार, भक्ष्य। ४ कोई ऐसा आदमी जिसके फंसने या वशमें होनेसे बहुत लाभ हो, असामी। ५ गोश्त, मांस।

शिकारगड्ढा (हि० पु०) वह बड़ा गड्ढा जो शिकारी जानवरोंको फंसानेके लिये खोदते हैं।

शिकारगाह (फा० स्त्री०) शिकार खेलनेका स्थान।

शिकारबंद (फा० पु०) वह तसमा जो घोड़की दुमके पास चारजामेके पीछे शिकार लटकाने या आवश्यक सामान बांधनेके लिये लगाया जाता है।

शिकारी (फा० पु०) १ आखेट करनेवाला, शिकार करने वाला, अहेरी। (वि०) २ शिकार करनेवाला, जङ्गली पशुओंको पकड़ने या मारनेवाला। जैसे—शिकारी कुत्ता। ३ शिकारमें काम करनेवाला। जैसे,—शिकारी कोट शिकारी खेमा।

शिकाल (फा० पु०) वह घोड़ा जिसका अगला दाहिना पैर और पिछला बायां पैर सफेद हो। यह दोषी माना जाता है।

शिक्क (स० वि०) अव्यवसायी बिना रोजगारका।

शिक्थ (स० क्ली०) मधुजात द्रव्यविशेष मधूच्छिष्ट, मोम। पर्याय—शिक्थक मधुज, विघस मधुसम्भव मोदन, कात उच्छिष्ट मक्षिकामल क्षौद्रेय पातराग, स्निग्ध मक्षिकाज क्षौद्रज, मधुशेष, द्रावक, मक्षिकाश्रय, मधूत्थित, मधूत्थ। गुण—पिच्छिल, स्वादु, कुष्ठ, वात और अग्निदीपनाशक, मृदु, कटु और स्निग्ध। इसका प्रलेप देनेसे स्फुटितांग विलेपन अर्थात् शरीरका फटा हुआ स्थान उत्तमरूपसे निराकृत होता है। (राजनि०)

शिक्थक (स० क्ली०) शिक्थ स्वार्थे कन्। शिक्थ मोम

शिक्य (स० क्ली०) शक्यते (यस शिकुट किन्। उण् ५।१६) इति यत् सच कित् कुडागम निपातनात्। १ छतमें लटकता हुआ रस्सीका जालीदार सम्पुट जिस पर दूध दही आदिका मटका रखते हैं छींका सिकहर। पर्याय—काच शिक्या, शिक्य। २ तराजूका रस्सा। ३ वह गांठ दोनों छोरों पर बंधा हुआ रस्सीका जाल जिस पर बोझ रखते हैं।

शिक्यक (सं० स्त्री०) शिक्य-कन्। शिक्य देखो।

शिक्यित (सं० पु०) शिक्ये स्थापितमित्यर्थे प्रातिपदिका-द्धात्वर्थे इति णिच् ततः क्तः। शिक्यस्थापित वस्तु, वह वस्तु जो छींके पर रखी हो। पर्याय—काचित। (अमर)

शिक्यवत् (सं० त्रि०) शिक्ययुक्त। (कात्यायनश्रौ० १६।५।५)

शिक्या (सं० स्त्री०) शिक्य-स्त्रियां टाप्। शिक्य देखो।

शिक्याकृत (सं० त्रि०) शिक्य सदृश निर्मित, छींकाकी तरह बना हुआ। "तस्यैव मारुतो गणः स एति शिक्याकृतः।" (अथर्व १३।४।८)

शिक्व (सं० त्रि०) कार्यनिपुण, कुशली, शिल्पकार्यमें पटु।

शिक्वन् (सं० पु०) १ रज्जु, रस्सी। (ऋक् १।१४१।८) २ तेज। (ऋक् २।३५।४)

शिक्वस् (सं० त्रि०) शक्त, समर्थ। (ऋक् ५।५२।१६)

शिख (सं० पु०) गन्धर्वोंका एक नायक, रोहित।

शिक्षक (सं० पु०) शिक्ष-ण्वुल्। शिक्षादायक, सिखानेवाला, गुरु, उस्ताद।

शिक्षण (सं० क्ली०) शिक्ष-ल्युट्। शिक्षा पढ़ानेका काम, तालीम।

शिक्षणीय (सं० त्रि०) शिक्ष-अनीयर्। शिक्षार्ह, शिक्षामें उपयुक्त, सिखाने लायक।

शिक्षा (सं० स्त्री०) शिक्ष (गुरोश्च हलः। पा ३।३।१०३) इत्यः ततष्टाप्। १ किसी विद्याको सीखने या सिखानेकी क्रिया, पढ़ने पढ़ानेकी क्रिया, सीख, तालिम। २ छः वेदाङ्गोंमेंसे एक जिसमें वेदोंके वर्ण, स्वर, मात्रा आदिका निरूपण रहता है। शिक्षाके सम्बन्धमें कुछ ग्रन्थोंके नाम इसके पहले ही 'व्याकरण' शब्दमें लिखे जा चुके हैं। पदपाठ, क्रमपाठ, संहितापाठ, घनपाठ आदि विविध पाठ और उच्चारणादिके उपदेशलाभके लिये शिक्षा वेदाङ्ग आलोचित होता है। स्वर और उच्चारणादिका व्यतिक्रम होनेसे वैदिक मन्त्रादि पाठ निष्फल होता था, इससे प्रत्यवाय होता था, यहां तक, कि यज्ञादिमें विपरीत फल प्राप्त होता था। यथा—

"मन्त्रहीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्त र्न तदर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोपराधात्॥"

इससे स्पष्ट प्रमाणित होता है, कि शिक्षापाठ वेदपाठका अङ्गस्वरूप समझा जाता था। इसी कारण वेदाङ्गका प्रथम अङ्ग शिक्षा है।

शौनकीय शिक्षा प्राचीन कालमें वेदवत् स्वीकृत होती थी। पाणिनिने लिखा है—

शौनकादिभ्यश्छन्दसि (४।३।१०६)

इसकी व्याख्यामें शब्देन्दुशेखरकारने लिखा है—

"छन्दसि किम् शौनकीया शिक्षा इति।"

प्रातिशाख्योंमें भी शिक्षाके विषय आलोचित हुए हैं। प्राचीन कालमें संहितापाठ ही शिक्षाका एक आलोच्य विषय था। इसके बाद क्रमपाठ प्रवर्त्तित हुआ। पदपाठमें पदच्छेद, समास और सन्धिच्छेद करके पठनका नियम आरम्भ हुआ। जहां इस तरह पदच्छेद नहीं करने पर भी वेदका अर्थ सहजमें वेदार्थ हृदयङ्गम होता है वह पदपाठका प्रवर्त्तन यास्क और पाणिनिके अनुमोदनीय नहीं। पाणिनिके भाष्यकार पतञ्जलिका भी ऐसा ही अभिप्राय है।

प्रातिशाख्यग्रन्थमें संहितापाठ और पदपाठ दोनों ही देखे जाते हैं। प्रातिशाख्य पाणिनिसे भी पहले रचा गया है। वर्त्तमान कालमें ऋग्वेदका, सामवेदका और अथर्ववेदका एक एक, यजुर्वेदकी वाजसनेय संहिताका एक तथा तैत्तिरीय संहिताका एक प्रातिशाख्य देखनेमें आता है। ऋग्वेद प्रातिशाख्य तीन अध्यायमें विभक्त है। आश्वलायनके गुरु शौनक इस ग्रन्थके रचयिता हैं। वाजसनेय-प्रातिशाख्यमें आठ अध्याय हैं, कात्यायन इसके रचयिता हैं। अथर्ववेदके प्रातिशाख्यमें चार अध्याय हैं। इस प्रातिशाख्यमें शौनकीय शिक्षाका उपदेश है।

३ गुरुके निकट विद्याका अभ्यास, विद्याका ग्रहण। ४ दक्षता, निपुणता। ५ उपदेश, मन्त्र। ६ शासन, दबाव। ७ किसी अनुचित कार्यका बुरा परिणाम, सबक, दण्ड। ८ श्योनाक वृक्ष, सोनापाढ़ा।

शिक्षाकर (सं० पु०) करोतीति कृ-अच्, शिक्षायाः करः। १ व्यास देव। (त्रि०) २ शिक्षाकर्त्ता, सिखानेवाला।

शिक्षाक्षर (सं० क्ली०) शिक्षाप्राप्त अक्षरयुक्त वाक्य या स त आदि।

शिक्षाक्षेप (सं० पु०) काव्यमें एक प्रकारका अलंकार जिसमें शिक्षा द्वारा गमन स्वरुप कार्य रोका जाता।

शिक्षागुरु (सं० पु०) शिक्षायाः गुरु । १ विद्यादाता है। गुरु, विद्या पढ़ानेवाला गुरु। २ मन्त्रादि उपदेशकर्त्ता, दीक्षागुरु।

शिक्षाग्राहक (सं० पु०) शिक्षा प्राप्त करनेवाला व्यक्ति, पढ़नेवाला, विद्यार्थी।

शिक्षाचार (सं० पु०) १ शिक्षा और आचार। २ अभ्यस्ता चार।

शिक्षादण्ड (सं० पु०) वह दण्ड जो किसी बालकको सुधारनेके लिये दिया जाय।

शिक्षानर (सं० पु०) इन्द्र। (ऋक् १।१६५।२)

शिक्षापत्र (सं० क्ली०) वह पत्र या पुस्तक जिसके पढ़नेसे विद्यालाभ होता है।

शिक्षापद (सं० पु०) १ उपदेश। २ बौद्धों के विनयपिटकका एक प्रकरण।

शिक्षापरिषद् (सं० स्त्री०) १ वैदिक कालका शिक्षासंस्था या विद्यालय जो एक ऋषि या आचार्यके अधीन रहता था और उसीके नामसे प्रसिद्ध होता था। २ शिक्षा या पढ़ाईका प्रबन्ध करनेवाली सभा या समिति।

शिक्षार्थी (सं० पु०) शिक्षा प्राप्त करनेकी इच्छा रखने वाला व्यक्ति, विद्यार्थी।

शिक्षालय (सं० पु०) वह स्थान जहां शिक्षा दी जाय।

शिक्षावत् (सं० त्रि०) ज्ञानयुक्त, ज्ञानी।

शिक्षावल्ली (सं० स्त्री०) तैत्तिरीय उपनिषद्का पहला अध्याय।

शिक्षा विभाग (सं० पु०) वह सरकारी विभाग जिसके द्वारा शिक्षाका प्रबन्ध होता है, सरिश्ता तालीम।

शिक्षाव्रत (सं० पु०) जैनधर्मके अनुसार गार्हस्थ्य धर्मका एक प्रधान अंग जो चार प्रकारका होता है—सामयिक, देशावकाशिक, पौषध और अतिथि स विभाग।

शिक्षाशक्ति (सं० स्त्री०) ज्ञानप्राप्त करनेकी शक्ति, मेधा।

शिक्षाक्षर (सं० पु०) शिक्षाक्षर।

शिक्षाहीन (सं० त्रि०) जिसे शिक्षा न मिली हो, अशि क्षित, बेपढ़ा, गवार।

शिक्षित (सं० त्रि०) १ जिसने शिक्षा पाई हो, पढ़ा लिखा। २ निपुण।

शिक्षितव्य (सं० त्रि०) शिक्ष-तव्य। शिक्षणीय, शिक्षाके योग्य।

शिक्षिताक्षर (सं० पु०) शिक्षितानि अक्षराणि येन। १ वह जिसने शिक्षा पढ़ी हो, शिक्षाकारी छात्र। (त्रि०) २ शिक्षित।

शिक्षु (सं० त्रि०) अभिमत फलप्रदान करनेमें इच्छुक।

शिख—शिख देखो।

शिखक (सं० पु०) लेखक मुहर्रिर।

(उ ज्ञिन्तवार उणादि)

शिखण्ड (सं० पु०) १ मयूरपुच्छ, मोरकी पूंछ। २ शिखा, चोटी। ३ काकपक्ष काकुल।

शिखण्डक (सं० पु०) शिखण्ड एव कन्। १ काकपक्ष काकुल। क्षत्रिय कुमारोंके चूड़ाकरणमें तीन भाग करके जो केश वपन किया जाता है, उसीका नाम शिख ण्डक है। कोई कोई कहते हैं, कि शिखापञ्चक है फिर किसीके मतसे चूड़ा काकपक्षकी आकृति यथान काकपक्ष मस्तक पर खण्डित होता है, इसलिये शिख ण्डक है।

'द्वे क्षत्रियकुमाराणां शिखात्रये उत्कृष्ट बालानाञ्च शिरः कार्यं त्रिशिख मुण्डमेव च। शिखापञ्चक इत्यन्ये। सामान्येन चूडायामित्यन्ये। काकपक्षाकारत्वात् काक पक्ष। शिरसि खण्डते शिखण्डक, शिखण्डक शिख ण्डिकायिति वाचस्पति।' भरत) २ मयूरपुच्छ मोरकी पूंछ।

शिखण्डिक (सं० पु०) शिखण्डीव कायति शब्दायते इति कै-क, शिखण्डोऽस्यास्तीति शिखण्ड कन्। १ कुक्कुट, मुर्गा। २ एक प्रकारका मानिक।

शिखण्डिका (सं० स्त्री०) शिखा, चोटी।

शिखण्डिन् (सं० पु०) शिखण्डश्चूड़ा ऽस्त्यस्या इति इनि। १ मयूर, मोर। (मेदिनी) २ कुक्कुट, मुर्गा। ३ वाण, तार। (हम) ४ गुञ्जा घुंघची। ५ स्वर्णयूथिका पीली जुही। ६ विष्णु। (विष्णुसहस्रनाम) ७ शिव। (भारत १३।१७।३१)

८ मयूरपुच्छ, मोरकी पूंछ। ६ द्रुपदराजाका पुत्र। महाभारतमें इसका वृत्तान्त इस प्रकार लिखा है—काशिराजकी लड़की अम्बाने भीष्मको वरा, किन्तु भीष्मने अपनी पहली प्रतिज्ञाके अनुसार विवाह करनेसे इनकार किया। अम्बा इससे रुष्ट हुई एवं उन्हें मार डालनेके लिये महादेवका तपस्या करने लगी। रुद्रने उसकी तपस्यासे खुश हो उसे वरदान दिया, कि तुम्हारे द्वारा ही भीष्मका नाश होगा। अम्बाने ऐसा वर पा कर उनसे कहा—'भगवन्! मैं स्त्री हूं। किस तरह मैं विश्वविजयी भीष्मको वध कर सकूंगी?" इस पर महादेवने कहा—"भद्रे! मेरा बात कदापि झूठी नहीं हो सकती। तुम संग्राममें भीष्मका नाश करोगी और वहीं पुरुषत्व भी पाओगी तथा मरनेके बाद भी तुम्हें पहली बात याद रहेगी। तुम द्रुपदवंशमें जन्म ले कर कालक्रमसे शिवास्त्र और शिवदेवी पुरुष होगी।" इसके बाद अम्बाने अग्निप्रवेश कर शरीरका त्याग किया। पीछे वह द्रुपदका पुत्र हो कर भीष्मके वधका कारण बना।

दुर्योधनने भीष्मसे पूछा—"शिखण्डीने पहले कन्यारूपमें जन्म ले कर किस प्रकार पुरुषत्वको प्राप्त किया? आप इसका वृत्तान्त कह हम लोगोंका संशय दूर करें।" इस पर भीष्मने कहा—"राजा द्रुपदके कोई पुत्र न था। उन्होंने हम लोगोंको मारने तथा पुत्रप्राप्तिके लिये महादेवकी कठोर तपस्या की। महादेवके प्रसन्न होने पर उन्होंने भीष्मको वध करनेमें समर्थ एक पुत्रके लिये प्रार्थना की। रुद्रने उन्हें वर दिया, "तुम्हें पहले एक कन्या उत्पन्न होगी। पीछे वह कन्या पुरुषत्व प्राप्त करेगी। तुम तपस्या छोड़ घर जाओ। मेरी बात मिथ्या नहीं होगी।"

तब राजा द्रुपद तपस्या छोड़ अपने राजभवनको लौट गये। कुछ समय बाद उनके एक कन्या पैदा हुई। द्रुपदका स्त्रीने घोषित कर दिया, कि उसे पुत्र ही हुआ है। राजा द्रुपदने भी महादेवके वाक्यानुसार पुत्रकी तरह ही उस प्रच्छन्न कन्याका समुदय जातकर्मानुष्ठान किया। राजा द्रुपद तथा उनकी स्त्रीके सिवा और कोई भी यह गुप्त रहस्य नहीं जानता था। राजाने उस कन्याका नाम शिखण्डी रखा।

इस कन्याने द्रोणाचार्यके निकट यथाविधि अस्त्रशस्त्रकी शिक्षा ग्रहण की। कन्याके क्रमसे युवती होने पर राजा रानी दोनोंको बड़ी चिन्ता लगी। किन्तु दैववाक्य कभी मिथ्या होनेका नहीं, इसी पर भरोसा कर उन्होंने उसका विवाह दशार्णदेशके राजा हिरण्यवर्माकी कन्याके साथ कर दिया। कालक्रमसे दशार्णदेशाधिपतिकी कन्या युवावस्थाको प्राप्त हुई। उस समय उसने शिखण्डीको प्रकृत स्त्री समझ कर धात्री तथा सखियोंसे सारा वृत्तान्त कह सुनाया। सखियोंने यह बात राजा हिरण्यवर्मासे एकान्तमें कहा। दशार्णपति दासियोंके मुखसे यह बात सुन कर बहुत कोधित हुए। किन्तु उस समय तब भी अपना क्रोध छिपा कर पुरुषोंकी तरह कपड़ा पहनते थे।

इधर राजा हिरण्यवर्माने अत्यन्त क्रोधित हो कर राजा द्रुपदके पास एक दूत भेजा। उस दूतने एकान्तमें राजा द्रुपदसे कहा—'आपने दशार्णपतिका बड़ा अपमान किया है, अतएव थोड़े ही दिनके अन्दर आपको इसका प्रतिफल मिलेगा। राजा दूतकी बात सुन कर डर गये एवं अत्यन्त नम्रतापूर्वक दूतसे कहा—दशार्णपतिने जो कहा है, वह सरासर झूठ है। वे इस विषयकी अच्छी तरह जाँच पड़ताल करें।

राजाने दूतकी बात सुन कर प्रकृत विषयका अच्छी तरह अनुसन्धान किया। पर फिर भी राजाको मालूम हुआ, कि शिखण्डी कन्या है। तब वे और भी क्रोधित हो कर द्रुपद राजाके साथ युद्ध करने पर तुल पड़े। उन्होंने अपने दूतोंको बुला कर कहा—"तुम लोग शीघ्र द्रुपदराजासे जा कर कहो, कि दशार्णपति आपके साथ युद्ध कर शीघ्र ही आपको उचित शिक्षा देंगे। इसी कारण उन्होंने पहले हम लोगोंको आपके पास भेजा है।"

द्रुपद स्वभावसे ही डरपोक थे। इस समय इस पापाचरणके कारण और भी डर गये तथा उद्विग्न हो उठे। 'मैं अपने ही माता, पिता तथा राज्यका नाश करनेके लिये पैदा हुई हूं' ऐसा सोच सिखण्डीने आत्महत्या करनेको ठान ली। पीछे वह चुपचाप घर छोड़ अकेली एक सघन जङ्गलमें पहुंची। स्थूणाकर्ण नामक एक यक्ष उस जङ्गलकी रक्षा करता था। उसके भयसे कोई

राज भी अपने इष्ट मित्रोंके साथ अत्यन्त सन्तुष्ट हुए।
(उद्योगपर्व अम्बोपाख्यान पर्वाध्याय)

महाभारत युद्धके समय अर्जुन शिखंडीको आगे कर भीष्मके साथ युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए। भीष्मने शिखंडीका स्त्रीरूप स्मरण कर अस्त्र त्याग दिया। उस समय शिखंडी और अर्जुन दोनोंने मिल कर भीष्मका वध किया। भीष्म शब्द देखो।

१० ब्राण। ११ शिखा, बालोंकी चोटी। १२ रामके दलका एक बन्दर। १३ बृहस्पति।

शिखण्डिनी (सं० स्त्री०) शिखण्डचूड़ा अस्त्यस्या इति इनि ङीप्। १ यूथिका, जूही। २ गुञ्जा, करजनी। ३ मयूरी, मोरनी। ४ मुर्गी। ५ विजिताश्वराजकी पत्नी। (भागवत ४।२४।३) ५ शिखण्डविशिष्ट। ६ द्रुपदराजकी कन्या। इस कन्याने पीछे यक्षके वरसे पुरुषत्वलाभ किया। शिखण्डिन् देखो।

शिखण्डिमत् (सं० त्रि०) चूड़ाविशिष्ट।

शिखण्डी (सं० स्त्री०) शिखण्डिन् देखो।

शिखयुद्ध—सिखयुद्ध देखो।

शिखर (सं० क्ली०) शिखाम्याप्नोति (कुम्बनुकठलिति। पा ४।२।८०) अस्मादित्यात् र हस्वश्च। १ पर्वत शृङ्ग, पहाड़की चोटी। २ सबसे ऊपरका भाग, सिरा, चोटी। ३ अग्रभाग। ४ मन्दिर या मकानके ऊपरका निकला हुआ नुकीला सिरा, कंगूरा, कलश। ५ मण्डप, गुंबद। (पु०) ६ पुलक, रोमाञ्च। ७ एक रत्न जो अनारके दानेके समान सफेद और लाल होता है। ८ कक्ष, कांख, बगल। ९ लवङ्ग, लौंग। १० एक अस्त्रका नाम। ११ उंगलियोंकी एक मुद्रा जो तान्त्रिक पूजनमें बनाई जाती है। १२ कुन्दकी कली। १३ जैनियोंका एक तीर्थ।

शिखरदशना (सं० त्रि० स्त्री०) जिसके दांत कुन्दकी कलीके समान हों।

शिखरन (हिं० पु०) दही और चीनीका बनाया हुआ एक प्रकारका मीठा पेय पदार्थ या शरबत। इसमें केसर, कपूर तथा मेवे आदि डाले जाते हैं।

शिखरवासिनी (सं० स्त्री०) शिखरे वसतीति वस णिनि-ङीप्। शिखर पर बसनेवाली, दुर्गा।

शिखरा (सं० स्त्री०) शिखर-टाप्। १ मूर्वा, मुर्रा, मरोड़फली। २ एक गदा जो विश्वामित्रने रामचन्द्रको दी थी।

शिखराद्रि (सं० पु०) एक पर्वत। इस पर्वतके तीन शिखर हैं। (मार्क० पु० ५५।६)

शिखरिचरण (सं० पु०) अपमार्ग मूल, चिचड़ेकी जड़।

शिखरिणी (सं० स्त्री०) शिखरिन् स्त्रियां ङीप्। १ रसाला, दहीका पानी। २ नारी रत्न, स्त्रियोंमें श्रेष्ठ। ३ नवमल्लिका, बेला। ४ रोमावली। ५ नेवारीका पौधा। ६ लघुद्राक्षा, किशमिश। ७ मूर्वा, मरोड़फली। ८ सत्रह अक्षरोंकी एक वर्णवृत्ति। इसमें छठे और ग्यारहवें वर्ण पर यति होती है। ९ रसात्मक संधानविशेष, एक प्रकारका पानक। राजनिर्घण्टमें इसकी प्रस्तुत प्रणाली इस प्रकार लिखी है—दही ३२ पल, खण्ड ८ पल, मरीच चूर्ण, त्वक् और इलायची चूर्ण ८ पल मधु और घृत प्रत्येक ४ पल, इन सब द्रव्योंको एकत्र कर एक नये बरतनमें रखे। पीछे हिम वासित करनेसे उसको शिखरिणी कहते हैं। इसको मल्लिकादि प्रभृति अनेक प्रकार भेद हैं। (राजनि०)

भावप्रकाशके मतसे पहले जलविहीन अम्लरसयुक्त भैंसका दही १६ सेर, परिष्कृत चीनी ८ सेर, इन्हें एक साथ मिला कर एक परिष्कार अथच पवित्र वस्त्रखण्डमें धीरे धीरे डाल दे। अनन्तर उसमें ३२ सेर दूध मिला कर नीचे रखे हुए मिट्टीके बरतनमें छान रखे। पीछे उसमें इलायची, लवङ्ग, कपूर और मिर्च छोड़ दे। इसी प्रणालीसे वह प्रस्तुत करनी होती है। इसे रसाला भी कहते हैं। गुण—शुक्रवर्द्धक, बलकारक, रुचिजनक, वायु और पित्तनाशक, अग्निप्रदीपक, शरीरका उपचयकारक, स्निग्ध, मधुर रस, शीतल, सारक तथा रक्तपित्त, पिपासा, दाह और प्रतिश्यायविनाशक। केवल वसन्तऋतुमें इसका सेवन निषिद्ध है। जो प्रति दिन इसका सेवन करते हैं, उनके वीर्यकी अत्यन्त वृद्धि तथा इन्द्रियां सबल होती हैं। अत्यन्त परिश्रान्त हो कर इसका सेवन करनेसे उसी समय क्लान्ति दूर होती और शरीर बलवान् होता है। (भावप्र०)

शिखरिन् (सं० पु०) शिखरोऽस्यास्तीति शिखर इनि।

१ पर्वत, पहाड़। २ पहाड़ी दुर्ग। ३ वृक्ष, पेड़। ४ अपामार्ग, चिचड़ा। ५ कोट्ट। ६ कोयष्टि। ७ बन्दर, बानर। ८ कर्कटशृङ्गी, काकड़ासिङ्गी। ९ कुन्दुरु नामक गन्धद्रव्य। १० एक प्रकारका मृग। इसका मांस लघु हृद्य और फलप्रद होता है। ११ ज्वार मक्का। १२ लोबान, गोंद। (स्त्री०) १३ एक गदा जो विश्वामित्रने रामचन्द्रको दी थी शिखरा।

शिखलोहित (सं० पु०) वृक्षविशेष, कुकुरमुत्ता।

शिखा (सं० स्त्री०) शी (शीङो ह्रस्वश्च। उण् ५।२४) इति ख ह्रस्वो गुणाभावश्च, स्त्रियां टाप्। १ अग्नि ज्वाला आगकी लपट। पर्याय—ज्वाल, कील, अर्च्चिः हेति। (अमर)

होमकालमें अग्निकी शिखा कैसी होनेसे शुभ या अशुभ होता है, तिथितत्त्वमें उसका विधान इस प्रकार लिखा है—

जहां होमाग्नि अर्च्चियुक्त और पिण्डित शिखाविशिष्ट, आहुतिदत्त घृतादि काञ्चनवर्ण तथा, स्निग्ध प्रदक्षिणयुक्त होता है, वहां होमकारीका कार्य सिद्ध होता है।

जहां अग्निशिखा शान्त, रूक्ष स्फुलिङ्गयुक्त वमी यत आर्द्र काष्ठ द्वारा समुत्पन्न फुत्कारयुक्त कृष्णवर्ण और दुर्गन्ध होती तथा भिट्टीकी ओर जाती है, वहां अशुभ लक्षण जानना चाहिये। होमकालमें अग्नि शिखा उक्त लक्षणाक्रान्त होनेसे कर्त्ताका नाश होता है।'

२ मुण्डनके समय सिरके बीचोंबीच छोड़ा हुआ बालोंका गुच्छा जो फिर कटाया नहीं जाता, चोटी।

शास्त्रमें लिखा है कि चारो वर्णों का (हिन्दूमात्रका) शिखा धारण करना चाहिये। पूजा जप आदि करनेके समय शिखाबन्धन करना होता है, मुक्त शिखा हो कर कोई कार्य नहीं करना चाहिये। शिखाबन्धनकालमें मन्त्र पाठ करके शिखा बांधनी होती है। ब्राह्मणादि तीन वर्ण गायत्री पाठ करके शिखा बन्धन करे। शिखा बन्धन किये बिना आचमन करनेमें शुद्धिलाभ नहीं होता। अतएव शिखा बन्धन करके ही आचमन करे। आचमनके बाद धर्मकार्य करना चाहिये।

शूद्र भी शिखाबन्धन और मोचनकालमें निम्नोक्त मन्त्र पाठ करे। वे भी शिखा बांधे बिना कोई कार्य नहीं कर सकते हैं। शूद्रोंका शिखाबन्धनमन्त्र—

ब्रह्मवाक्यसहस्राणि शिववाक्यशतानि च।
विष्णोर्नामसहस्रेण शिखाबन्धं करोम्यहम्॥"

शिखामोचन मन्त्र—

'गच्छन्तु सकला देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
तिष्ठत्वत्राचला लक्ष्मी शिखामुक्तं करोम्यहम्॥"

(आह्निकतत्त्व)

भारतीय आर्य्य समाजमें बहुत पहले होसे शिखा धारणकी प्रथा चली आती है। शतपथब्राह्मण (१।३।३।५), गोभिल गृह्यसूत्र (३।४।१६) आदि अति प्राचीन ग्रन्थोंमें शिखा धारणकी कथा है। निष्ठावान् हिन्दुओंका विश्वास है, कि जिस हिन्दूके शिखा नहीं है उसके हाथका जल शुद्ध नहीं होता। (हरिवंश)

३ शाखा, डाली। ४ मोर, मुर्गे आदि पक्षियोंके सिर पर उठी हुई चोटी या परोंका गुच्छा, चोटी, कलगी। ५ दीपककी लौ, टेम। ६ प्रकाशकी किरन। ७ नुकीला छोर या सिरा, नोक। ८ ऊपरको उठा हुआ भाग, चोटी। ९ वस्त्रका अञ्चल दामन। १० पैरके पञ्जेका सिरा। ११ स्तनका अग्रभाग, चूचुक। १२ पेड़की जड़। १३ अधिपति नायक। १४ श्रेष्ठ पुरुष। १५ कलियारी, विषलाङ्गली। १६ मूर्वा, मरोड़फली। १७ जटामासी, बालछड़। १८ वच। १९ शिफा। २० तुलसी। २१ कामज्वर। २२ एक वर्णवृत्त। इसके विषम पादोंमें २८ लघु मात्राएं और अन्तमें एक गुरु होता है और सम पादोंमें ३० लघु मात्राएं और अन्तमें एक गुरु होता है।

शिखाकन्द (सं० क्ली०) शिखायुक्त कन्दो यस्य। गृञ्जन शलगम, शलजम।

शिखाधर (सं० पु०) मयूर मोर।

शिखाजट (सं० त्रि०) शिखायां जटा यस्य। जिसका शिखामें जटा छूटी हो। जटायुक्त शिखाविशिष्ट।

(मनु २।२१९)

शिखाण्डक (सं० पु०) काकपक्ष।

शिखातरु (सं० पु०) शिखायाः दीपशिखायास्तरुरिव। दीपवृक्ष दीयट, दीवट।

शिखादामन् (सं० क्ली०) शिरोमाल्य मस्तककी माला।

शिखाधर (सं० पु०) शिखाया धरः। १ मयूर, मोर। २ मञ्जुघोष। ३ शिखाधारी।

शिखाधार (सं० पु०) शिखां धरतीति धृ-अण्। मयूर, मोर।

शिखापति (सं० ०) एक प्राचीन ऋषिका नाम। (संस्कारकौ०)

शिखापाश (सं० पु०) चोटी, चूंदी।

शिखापित्त (सं० पु०) एक प्रकारका रोग। इसमें हाथ और पैरकी उंगलियोंमें सूजन और जलन होती है।

शिखाबन्ध (सं० पु०) शिखाया बन्धः। शिखाबन्धन, शिखा बालोंको मिला कर बांधनेकी क्रिया, चोटी बांधना। शिखा शब्द देखो।

शिखाबन्धन (सं० पु०) शिखाबन्ध देखो।

शिखाभरण (सं० क्ली०) अलङ्कारविशेष, शिरका आभूषण, मुकुट। (विक्रमोर्वशी)

शिखामणि (सं० पु०) १ वह रत्न जो शिर पर पहना जाय। (रघुवंश ६।३३) २ श्रेष्ठ व्यक्ति।

शिखामूल (सं० क्ली०) शिखायुक्तं मूलं यस्य। वह कन्द जिसके ऊपर पत्तियोंका गुच्छा हो।

शिखाल (सं० पु०) शिखा अस्त्यर्थे लच्। मयूर, मोर।

शिखालु (सं० पु०) मयूरशिखा।

शिखावत् (सं० पु०) शिखा विद्यतेऽस्य मतुप् मस्य व। १ अग्नि, आग। २ चित्रक वृक्ष, चीताका पेड़। ३ केतुग्रह। ४ मयूर, मोर। (त्रि०) ५ शिखायुक्त, शिखावाला।

शिखावती (सं० स्त्री०) १ मूर्वा, मरोड़फली। २ शिखाविशिष्टा।

शिखावर (सं० पु०) शिखा विद्यतेऽस्य-शिखा (दन्तशिखात् संज्ञायां। पा ५।२।११३) इति वलच्, यस्य लत्वं। पनस वृक्ष, कटहलका पेड़।

शिखावर्त्त (सं० पु०) एक प्रकारका यक्ष।

शिखावल (सं० पु०) शिखा अस्त्यर्थे वलच्। १ मयूर, मोर।

"शिखावलं नगरं, शिखावला स्थूणा"

(पा ५।२।११३ काशिका)

२ पनस, कटहल।

शिखावला (सं० स्त्री०) शिखा-वलच्-टाप्। मयूरशिखा।

शिखावली (सं० स्त्री०) अग्निशिखासमूह, शिखासमूह।

शिखावान् (सं० त्रि०) शिखावत् देखो।

शिखावृक्ष (सं० पु०) शिखाया वृक्ष इव। दीपवृक्ष, दीवट।

शिखावृद्धि (सं० स्त्री०) शिखेव वृद्धि यस्याः। कायिका-वृद्धि, वह व्याज जो प्रति दिन बढ़ता जाय, सूद दर सूद।

शिखि (सं० पु०) १ मयूर, मोर। २ कामदेव। ३ नाम मन्वन्तरके इन्द्रका नाम। ४ अग्नि। ५ तीनकी संख्या।

शिखिकण्ठ (सं० क्ली०) शिखिनो मयूरस्य कण्ठ इव आकृति यस्य। १ तुत्थ, तूतिया। (त्रि०) २ मोरके कंठके समान।

शिखिकुन्द (सं० पु०) कुन्दुरु, विरोजा।

शिखिग्रीव (सं० क्ली०) शिखिनः ग्रीवेव आकृतिर्यस्य। १ तुत्थ, तूतिया। २ कान्त पाषाण, एक प्रकारका नीला पत्थर।

शिखिता (सं० स्त्री०) शिखिनो भावः तल् टाप्। शिखिका भाव या धर्म।

शिखितीर्थ (सं० क्ली०) एक तीर्थका नाम।

शिखिदिश् (सं० स्त्री०) अग्निकोण।

शिखिध्वज (सं० पु०) शिखिनो वह्नेर्ध्वज इव। १ धूम, धूआं। शिखी मयूरो ध्वजो यस्य। २ कार्त्तिकेय। ३ वह जिस पर अग्नि या मोरका चिह्न बना हो। ४ मयूर-ध्वज नामक राजा। ५ एक प्राचीन तीर्थका नाम।

शिखिन् (सं० पु०) शिखाऽस्यास्तीति शिखा (व्रीह्यादिभ्यश्च। पा ५।२।११६) १ मयूर, मोर। २ अग्नि। ३ चित्रक वृक्ष, चीतेका पेड़। ४ बलीवर्द, सांड। ५ शर, बाण, तीर। ६ केतुग्रह। ७ द्रुम, वृक्ष। ८ कुक्कुट, मुर्गा। ९ घोटक, घोड़ा। १० अजलोमा। ११ सितावर। १२ मेथिका, मेथी। १३ पर्वत, पहाड़। १४ ब्राह्मण। १५ दीप। १६ एक प्रकारका विष। (पर्यायमुक्ता०) १७ सुनिषण्णशाक, सुसना साग। १८ शूकशिम्बी, केवांच। १९ बकपक्षी, बगला। २० वित्त। २१ एक

नागका नाम। २२ इन्द्र। २३ जटाधारी साधु। (त्रि०) २४ शिखायुक्त चोटीवाला।

शिखिनी (सं० स्त्री०) शिखिन् स्त्रियां ङीप्। १ मयूर स्त्रिया। २ मयूरी, मोरनी। ३ मुर्गी। ४ मुर्गकेश, जटाधारीका पौधा।

शिखिपुच्छ (सं० क्ली०) शिखिन पुच्छ। मयूरपिच्छ, मयूरपंख।

शिखिपुच्छमूर्ति (सं० स्त्री०) शिखिपुच्छस्य मूर्ति। पुच्छभस्म।

शिखिप्रिय (सं० पु०) शिखिन प्रियः। लघुबदर, जंगली बेर।

शिखिमण्डल (सं० पु०) वरुणवृक्ष, वरिया।

शिखिमोदा (सं० स्त्री०) शिखिन मोदयतीति मुद णिच् अच् टाप्। अजमोदा।

शिखियूप (सं० पु०) धोखारी नामका मृग।

शिखिवर्द्धक (सं० पु०) शिखिन जठराग्नि वर्द्धयतीति वृध ण्वुल्। गोलकद्दू, गोल घीया। यह कोष्ठाग्नि वर्द्धक होता है।

शिखिवासस् (सं० पु०) पर्वतभेद। (विष्णुपु० २।२।२७)

शिखिवाहन (सं० पु०) शिखी वाहनं यस्य। मयूर वाहन, कार्त्तिक।

शिखिव्रत (सं० क्ली०) शिखिनो व्रत। व्रतविशेष। प्रतिपद् तिथिमें एक बार भोजन कर यथाविधान यह व्रत करना होता है। यह समाप्त होने पर कपिला धेनु दान करना चाहिये। जो यह व्रत करते हैं, वे वैश्वानरलोक को जाते हैं। (गरुड़पु० १२१ अ०)

शिखिशृङ्ग (सं० पु०) चित्र मृग, चित्तीवाला हिरन।

शिखिहिल्ली (सं० स्त्री०) महाबला, सहदेई।

शिखीन्द्र (सं० पु०) १ तिंदुक, तेंदूका पेड़। २ आब नूसका पेड़।

शिखोद्भूत (सं० स्त्री०) सिनारकी झप, बच्चा। कहते हैं, कि यह साग खानेसे बढ़ी नो ह जाती हैं।

शिखोपनिषत् (सं० क्ली०) उपनिषद्भेद।

शिगाफ (फा० पु०) १ नश्तर, चीरा। २ दर्ज दरार। ३ छेद, सूराख। ४ कलमके बीचका चिराव।

शिगूडा (हिं० स्त्री०) एक जंगली क्षुप या पौधा जो दवाके काममें आता है। यह चरपरी, गरम तथा वात और पृष्ठशूलका नाश करनेवाली तथा दूसरी ओषधियों के योगसे रसायन और शरीरको दृढ़ करनेवाली कही गई है।

शिगूफा (फा० पु०) १ बिना खिला हुआ फूल, कली। २ पुष्प फूल। ३ किसी अनोखी बातका होना चुट कुला।

शिग्रु (सं० पु०) शेते स्वल्पेऽपि वायौ शो (जन् गादयश्च। उणा० ४।१०२) इति रु, ह्रस्वो गुगागमश्च। १ शाक साग। २ वृक्षविशेष सहिंजनका पेड़। (Moringa pterygosperma syn Horse radish tree) तामिल—मोरुंगा तैलंग—मुनुगचेट्टु मुनग। संस्कृत पर्याय—हरितशाक, शाकपत्र, सुपत्रक, उपदंश, क्षमादंश, कोमल पत्रक, बहुमूल, दंशमूल, तीक्ष्णमूल। गुण—कटु, तिक्त, उष्ण, तीक्ष्ण, वात, कफ मुखजाड्य और व्रणदोषनाशक, दीपन, पथ्य और पाचन। यह नील—सफेद और लाल तीन प्रकारका होता है। नील शिग्रु तीक्ष्ण कटु, स्वादु उष्ण, पिच्छिल जन्तु, वात और शूलनाशक चक्षुका हितकर और रुचिकारक।

सफेद शिग्रु—कटु, तीक्ष्ण, शोफ और वायुदोषनाशक अग्न्याधाहर, रुचिकर, दीपन और मुखका जड़ताताशक।

लाल शिग्रु—रसायन, शोफ आध्मान, वायुरोग और पित्तश्लेष्म रोगनाशक। (राजनि०)

सहिंजनका पत्ता, फूल और फल तीनों खाया जाता है। यह बड़ा मुखरोचक होता है। इसके फूलका गुण—कटु रस, तीक्ष्ण, उष्ण, वीर्य स्नायु, शोथनाशक तथा कृमि, कफ वायु विद्रधि, प्लीहा और गुल्मरोग नाशक। लाल सहिंजनका फूल—चक्षुका हितकर और रक्तपित्तप्रसादक।

इसके फलका गुण—मधुर, कषाय रस, अग्निदीपक तथा कफ, पित्त शूल, कुष्ठ, क्षय, श्वास और गुल्मनाशक। (भावप्र०) वानप्रस्थाश्रमी और विधवाको यह खाना मना है। (मनु ६।१४)

शिग्रुक (सं० पु०) शिग्रु स्वार्थे कन्। शिग्रु, सहिं जन। (मनु ६।१४)

शिग्रुज (सं० क्ली०) शिग्रोर्जायते इति जन ड। १ शोभाञ्जन

शितशिव (सं० क्ली०) १ सैंधव लवण, सेंधा नमक। २ मिश्रेया। (स्त्री०) ३ शतावहा।

शितशूक (सं० पु०) १ यव, जौ। २ गोधूम, गेहूं।

शितसार (सं० पु०) तिन्दुक वृक्ष, तेंदूका पेड़।

शिताद्रिकर्णी (सं० स्त्री०) श्वेतापराजिता, सफेद कोयल।

शिताफल (सं० पु०) सीताफल शरीफा।

शिताब (फा० क्रि० वि०) शीघ्र, जल्द।

शिताबी (फा० स्त्री०) १ शीघ्रता, जल्दी। २ तेजी, हड़बड़ी।

शितामन् (सं० क्ली०) बाहु, यकृत् योनि और मेद।
(शुक्लयजु २१।४३)

शितावर (सं० पु०) १ सोमराजी, बकुची। २ शिरियारी। ३ सतावर।

शितावरी (सं० स्त्री०) शितावर देखो।

शिति (सं० त्रि०) शति सौत्रो धातु (कमि वमि शति स्वश्यामस इच। उण ४।१२१) इति इन् सच कित् अल इत्यादरत्। १ शुक्ल, सफेद। २ कृष्ण काला। ३ उभ वर्णविशिष्ट, सफेद और काले रंगका। (पु०) ४ भूर्ज वृक्ष भोजपत्रका पेड़।

शितिककुद् (सं० त्रि०) शुभ्रवर्ण ककुद्विशिष्ट।
(तैत्तिरीयस० ५।६।१४।२)

शितिकक्ष (सं० त्रि०) शुक्लवर्ण कक्षविशिष्ट, सफेद कक्षवाला। (शुक्लयजु २४।४)

शितिकण्ठ (सं० पु०) शिति कण्ठे यस्य। १ शिव, महादेव। २ दात्यूहपक्षी, मुरगावी, जलकाक। ३ मयूर, मोर। ४ चातक, पपीहा। ५ नागदेवता।

शितिकण्ठ—१ प्रयोगदर्पणके प्रणेता पद्मनाभ दीक्षितके गुरु। २ कुन्तसूत्रके रचयिता। ३ तत्त्वचिन्तामणि टीका और शितिकण्ठीय नामक न्यायशास्त्रके प्रणेता। ४ महार्थमञ्जरी नामक तन्त्रग्रन्थके रचयिता।

शितिकण्ठक (सं० पु०) शितिकण्ठ स्वार्थे कन्। १ मयूर, मोर। (त्रि०) २ कृष्णवर्ण कण्ठयुक्त जिसका कण्ठ काला हो।

शितिकण्ठदीक्षित—भवानन्दलहरी आदि ग्रन्थके रचयिता, महादेव पुणतमाकरके गुरु। ये श्रीकण्ठ नामसे भी परिचित थे।

शितिकुम्भ (सं० पु०) करवीर वृक्ष, कनेरका पेड़।

शितिकेश (सं० पु०) स्कन्दके एक अनुचरका नाम।
(भारत ६ पर्व)

शितिङ्ग (सं० त्रि०) शुभ्रताप्राप्त जो सफेद हो गया हो।
(अथर्व ११।५।१२)

शितिचन्दन (सं० पु०) कस्तूरी।

शितिवार (सं० पु०) शाकविशेष, शिरियारी नामक साग।

शितिच्छद (सं० पु०) शिति छदौ यस्य। हंस।

शितिनस् (सं० त्रि०) शुभ्रवर्ण नासाविशिष्ट, सफेद नाकवाला। (पा ५।४।११८ वार्तिक)

शितिपक्ष (सं० पु०) शितौ शुक्लौ पक्षौ यस्य। हंस।

शितिपद् (सं० त्रि०) शुभ्रवर्ण पादविशिष्ट, जिसका पैर सफेद हो।

शितिपाद (सं० त्रि०) शुभ्रवर्ण पादविशिष्ट सफेद पैर वाला। "शिति पादोऽवन् रथ" (ऋक् १।३०।७) 'शितिपाद शितय श्वेतवर्णा पादा येषा ते शिति पादा, यद्वा शिति श्वेतवर्णस्फटिकादि स इव पादौ येषा ते।' (सायण)

शितिपृष्ठ (सं० त्रि०) शिति शुभ्रः पृष्ठ यस्य। १ शुभ्र वर्ण पृष्ठविशिष्ट सफेद पीठवाला। "शितिबाहु शितिपृष्ठस्तु मैत्रा बार्हस्पत्या" (शुक्लयजु० २४।७) शितिपृष्ठः श्वेतपृष्ठः' (महीधर)

(पु०) २ एक नाग जो एक यज्ञमें मैत्रावरुण बना था।

शितिप्रभ (सं० पु०) विष्णु। (विष्णुका सहस्रनाम)

शितिबाहु (सं० त्रि०) शुभ्रवर्ण बाहुविशिष्ट, सफेद भुजा वाला। (शुक्लयजु० २४।६)

शितिभसद् (सं० त्रि०) पश्चात् भाग शुभ्रवर्णविशिष्ट, जिसका पिछला भाग सफेद हो। (काठक १३।७)

शितिभ्रु (सं० त्रि०) श्वेतवर्णभ्रू युक्त, सफेद भौंहवाला। इसके अधिष्ठाता देवता वसु हैं। (शुक्लयजु० २४।६)

शितिमास (सं० क्ली०) मेद, मेदोधातु।

शितिमूलक (सं० क्ली०) उशीर खस।

शितिरत्न (सं० पु०) नीलमणि, नीलम।

शितिरन्ध्र (सं० त्रि०) शुभ्रवर्ण कर्णरन्ध्र।

शितिललाट (सं० त्रि०) शुभ्रवर्ण ललाटविशिष्ट। (पा ६।२।१३८ वार्त्तिक)

शितिवर (सं० पु०) शितिवार, शिरियारी नामक साग।

शितिवाल (सं० त्रि०) शितिवार रस्य लत्वं। शितिवार। (शतपथब्रा० ५।३।१।१०)

शितिवासस् (सं० त्रि०) शितिः कृष्णः वासो यस्य। नीलाम्बर, बलदेव। (भागवत ६।१६।३०)

शितिसार (सं० पु०) शितिसारक देखो।

शितिसारक (सं० पु०) शितिः सारो यस्य कन्। तिन्दुक वृक्ष, तेंदूका पेड़।

शितीक्षु (सं० पु०) वैदिक देवता उशनाके एक पुत्रका नाम। (विष्णुपुराण)

शितीमन् (सं० क्ली०) शितामन, बाहु, यकृत्, योनि और मेद। (तैत्तिरीयसं० ५।७।१६)

शितेयु (सं० पु०) उशनाके एक पुत्रका नाम। (विष्णुपु०)

शितेषु (सं० पु०) शितेयु देखो।

शित्पुट (सं० पु०) १ बिल्लीकी जातिका एक जानवर। (तैत्तिरीय ५।५।१७।१) २ एक प्रकारका काला भौंरा।

शित्यंस (सं० त्रि०) शितिकक्ष।

शित्योष्ठ (सं० त्रि०) शुभ्रवर्ण ओष्ठयुक्त, सफेद होठवाला।

शिथिर (सं० त्रि०) शिथिल। "शिथिरेव द्रवाधाते स्यामः" (ऋक् ५।८५।८) 'शिथिरेव शिथिलानीव शिथिलबन्धनानि फलानीव'

शिथिल (सं० त्रि०) श्रथ (अजिरशिशिरशिथिलेति। उण् १।५४) इति किरच् प्रत्ययेन साधु। १ श्लथ, जो कसा या जकड़ा न हो, ढीला। २ श्रान्त, जिसमें और शक्ति न रह गई हो, थका हुआ। ३ मन्द, सुस्त, धीमा। ४ अदृढ, जो अपनी बात पर खूब जमा न हो। ५ आलस्ययुक्त, जो कार्यमें पूर्ण तत्पर न हो, जो पूरा मुस्तैद न हो। ६ अस्पष्ट, जो साफ सुनाई न दे। ७ जो पूरे दबावमें न रखा गया हो, छोड़ा हुआ। ८ जिसका पालन कड़ाईके साथ न हो, जिसकी पूरी पाबंदी न हो।

शिथिलता (सं० स्त्री०) १ कसे या जकड़े न रहनेका भाव, ढीलापन, ढिलाई। २ श्रान्ति, थकावट। ३ अतत्परता, मुस्तैदीका न होना। ४ सामर्थ्यकी त्रुटि, शक्तिकी कमी। ५ वाक्योंमें शब्दोंका परस्पर गठा हुआ अर्थ-सम्बन्ध न होना। ६ तर्कमें किसी अवयवका अभाव। ७ नियम-पालनकी कड़ाईका न होना।

शिथिलित (सं० त्रि०) जो शिथिल हो गया हो, ढीला पड़ा हुआ।

शिथिलीकरण (सं० क्ली०) शिथिल-कृ-अभूततद्भावे च्वि, कृ-ल्युट्। शिथिल करना, ढीला करना।

शिथिलीभूत (सं० त्रि०) जो शिथिल हो गया हो, ढीला पड़ा हुआ।

शिद्दत (अ० स्त्री०) १ उग्रता, प्रचण्डता, तेजी। २ अधिकता, ज्यादती।

शिना (सं० क्ली०) भुइं आँवला।

शिनाख्त (फा० स्त्री०) १ वह निश्चय कि अमुक वस्तु या व्यक्ति यही है, पहचान। २ स्वरूप या गुणका बोध, परख, तमीज़।

शिनि (सं० पु०) १ गर्ग ऋषिके पुत्रका नाम। २ क्षत्रियोंका एक भेद। (उण् ४।५१) ३ एक यादव वीरका नाम। इन्होंने वसुदेवके लिये देवकीका बलपूर्वक हरण किया था। इस कारण इनका सोमदत्तके साथ घोर युद्ध हुआ था। इनके पुत्रका नाम सत्यक और पौत्रका नाम सात्यकि था जो पाण्डवोंकी ओरसे महाभारतयुद्धमें लड़ा था।

शिनिबाहु (सं० पु०) एक नदीका नाम। (विष्णुपु०)

शिनिवास (सं० पु०) एक पर्वतका नाम। (भागवत ५।१६।१६)

शिनेयु (सं० पु०) उशन्तके एक पुत्रका नाम। (हरिवंश) विष्णुपुराणके मतसे उशनाके एक पुत्रका नाम। शितेयु देखो।

शिनेनप्त (सं० पु०) सात्यकि। (त्रिका०)

शिपविन्नुक (सं० पु०) कीटभेद, एक प्रकारका कोड़ा।

शिपविष्ट (सं० पु०) शिपिविष्ट।

शिपाटक (सं० पु०) अमात्यभेद। (राजतर० ६।३५०)

शिपि (सं० पु०) १ रश्मि, किरण। (स्त्री०) २ चमड़ा, खाल। ३ कुप्पी, कोठी। (अमरटीका रायमु०)

शिपिविष्ट (सं० पु०) १ खलति, दुश्चर्मा, स्वभावतः अनावृतमेढ़्र। २ महेश्वर। (अमर) ३ कुष्ठी, कोढ़ी। (अमरटीका रायमु०) ४ विष्णु। (विष्णुस० सहस्रनाम) (त्रि०) ५ पशुविशिष्ट। (भाग० ५।१३।३५)

शिपिविष्टक (सं० त्रि०) शिपिविष्ट सदृश।

शिपिविष्टवत् (सं० त्रि०) शिपिविष्ट अस्त्यर्थे मतुप् प्रत्यय व। शिपिविष्ट सदृश।

शिपुरगड्डी (फा० स्त्री०) एक प्रकारका पौधा। इसका डाण्ठल रेशे युक्त बनानेके काममें आते हैं।

शिप्र (सं० पु०) देवभोग्य सरोवरविशेष। कालिका पुराणमें इस सरोवरका विषय इस प्रकार लिखा है— पुराकालमें विधाताने देवताओंके उपभोगके लिये हिमालय पर्वत पर शिप्र नामक एक महासरोवरकी सृष्टि की। इन्द्रादि देवगण इस सरोवरमें विहार करते हैं। देवताओंका क्रीडासरोवर होनेके कारण वे इसकी यत्न पूर्वक रक्षा करते हैं। मुनियों छोड़ और कोई भी मनुष्य वहां नहीं जा सकते। यदि वहां जाय और जलमें स्नान करे तो वे अमरत्व लाभ करते हैं। यह सरोवर वर्षाकालमें नहीं बढ़ता और न ग्रीष्मकालमें सूखता ही है। हमेशा एक भावमें रहता है। इस सरोवरसे शिप्रा नदी निकली है।

शिप्रक (सं० पु०) सुशर्माकी हत्या करनेवाला एक व्यक्ति। (विष्णुपु० ४।२४।१२)

शिप्रवत् (सं० त्रि०) शोभनहनुयुक्त सुन्दर दाढ़ी।

शिप्रा (सं० स्त्री०) १ नदीविशेष। इस नदीकी उत्पत्तिका विषय कालिकापुराणमें इस प्रकार लिखा है,—वशिष्ठ देवने जब अरुन्धतीसे विवाह किया, तब ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरने उन्हें शान्ति और आशीर्वाद दिया। यह शान्तिजल पहले मानस पर्वतकन्दरमें और पीछे सात धाराओंमें विभक्त हो मानस पर्वतसे हिमालय पर्वतकी गुहा, सानु और सरोवरमें पृथक् पृथक् भावमें गिरा। उस जलमेंसे कुछ शिप्र सरोवरमें आ कर मिल गया। उससे शिप्र सरोवर बहुत बढ़ने लगा। पीछे विष्णुने चक्र द्वारा गिरिशृङ्गको काट कर लोकहितके लिये उस महद् जलराशिको पुण्यतमा नदी बना कर पृथिवी पर भेजा। शिप्रसरोवरसे इसकी उत्पत्ति हुई, इस कारण इसका शिप्रा नाम हुआ है। यह नदी गङ्गाकी तरह पाप नाशिनी है। कार्त्तिकमासकी पूर्णिमा तिथिको इस नदीमें स्नान करनेसे मानव विष्णुलोकको जाते हैं। (कालिकापु० १६ अ० २४ अ०)

२ उज्जयिनीके निकट प्रवाहित प्रसिद्ध नदी। ३ हनु, दाढ़ी। (ऋक् ८।६५।१०)

शिप्रिणीवत् (सं० त्रि०) शिप्रवान्, इन्द्र।

(ऋक् १०।१०५।५)

शिप्रिन् (सं० पु०) शोभन हनुयुक्त इन्द्र।

(ऋक् १।२९।२)

शिफ (सं० पु०) शिफा। (अमरटीका विद्याविनोद)

शिफा (सं० स्त्री०) १ एक वृक्षकी रेशेदार जड़ जिससे प्राचीन कालमें कपड़े बनते थे। २ कोड़ेकी फटकार, चाबुककी मार। ३ एक नदीका नाम। (ऋक् १।१०४।३) ४ मासिका, जटामासी। ५ माता। ६ शतपुष्पा। ७ हरिद्रा, हल्दी। ८ पद्मकन्द, भसींड। (रायमुकुटधृत स्वामी) ९ लता। (मनु ६।२३० मेधातिथि) १० शिखा चोटी।

शिफाक (सं० पु०) शिफा इव कन्। पद्ममूल, भसींड।

शिफाकन्द (सं० पु०) शिफायुक्तः कन्दो यस्य। पद्ममूल, भसींडा। पर्याय—करहाट, शिफाक, पद्मकन्द, कन्द, शिफा, कन्द। (मुकुटधृत स्वामी)

शिफाधर (सं० पु०) शिफाया धरः। शाखा, डाल।

शिफारुह (सं० पु०) शिफाया रोहतीति रुह क। वटवृक्ष बरगदका पेड़।

शिम्र (सं० त्रि०) १ यमायुक्त, चबा वाला। (अथर्व ७।६०।२) २ सुपक्व।

शिम (सं० पु०) शिम्बी सेम।

शिमाल (अ० स्त्री०) उत्तर दिशा।

शिमि (सं० स्त्री०) शिम्बा, सेम।

शिमिका (सं० स्त्री०) काश्मीरकी एक छोटा नगरी।

शिमिदा (सं० स्त्री०) पैशाचिकभेद।

(ऋग्वे ५।२८।४)

शिमिद्वत् (सं० त्रि०) वायुयुक्त आध्मात।

शिमी (सं० स्त्री०) शिम्बा, सेम।

शिमीवत् (सं० त्रि०) शिमी-मतुप्, मस्य व। बीर्यकर्मोपेत। (ऋक् १।८७।१६)

शिमृडी (सं० स्त्री०) क्षुपविशेष, चिंगोनी या चंगोनी नामका पौधा। पर्याय—मलिदा, वल्या, पंशुलपहारिणी, द्रवन्‌पर्वा, वातघ्ना, गुच्छपुष्पी। गुण—कटु, उष्ण, वात और पृष्ठशूलनाशक। रसायनमें प्रयुक्त होनेसे शरीरका दृढ़ताकारक होता है। (राजनि०)

शिम्ब (सं० पु०) १ चक्रमर्द, चकवंड। २ फली, छीमी।

शिम्बल (सं० पु०) शाल्मलीकुसुम। (ऋक् ३।५३।२२)

शिम्बा (सं० स्त्री०) शिम्ब टाप्। १ छीमी, फली। पर्याय—शमी, सिम्बा, सिम्बी, शिम्बं, शिम्बिका, शिम्बि २ स्वनामख्यात लता, सेम। यह दो प्रकारकी है—शिम्बी पुस्तक और शिम्बी। गुण—पाकमें मधुर, शीतल, गुरु, बलकर, दाहवर्द्धक, श्लेष्मजनक तथा वातपित्तनाशक। (भावप्र०)

राजवल्लभके मतसे शिम्बा दो प्रकारकी है। यह रुक्ष, वातवर्द्धक, स्वादु और शीतल, विष्टम्भजनक, कषाय, अग्नि, विष्ठा, शुक्र और कफनाशक मानी गई है। ३ मुस्तक, मोथा। (वैद्यकनि०) ४ शिम्बी धान्य।

शिम्बाति (सं० त्रि०) सुख। (ऋक् १०।१०८।५)

शिम्बि (सं० स्त्री०) १ शिम्बा। २ परका, एक प्रकार का घास।

शिम्बिक (सं० पु०) मुद्ग, मूङ्गफली।

शिम्बिका (सं० स्त्री०) शिम्बि-कन् टाप्। शिम्बा।

शिम्बिज (सं० पु०) शिंबि जन ड। १ शिंबिधान्य। २ रक्तकुलत्थ, लाल कुलथी।

शिम्बिजा (सं० स्त्री०) द्विदल अन्न, दाल।

शिम्बिनी (सं० स्त्री०) १ असि शिंबीलता, बड़ी सेम। २ कृष्ण चटका, श्याम चिड़िया।

शिम्बिपर्णिका (सं० स्त्री०) शिम्बीपर्णी स्वार्थे कन्-टाप्। मुद्गपर्णी, वनमूंग।

शिम्बिपर्णी (सं० स्त्री०) शिम्बिपर्णिका देखो।

शिम्बिरिङ्गणी (सं० स्त्री०) वनमूंग। (वैद्यकनि०)

शिम्बिरोटिका (सं० स्त्री०) स्वर्णजीवन्ती।

शिम्बी (सं० स्त्री०) शिम्बि पक्षे ङीप्। १ शिम्बी धान्य। २ छीमी, फली। ३ सेम। ४ मुद्गपर्णी, वनमूंग। ५ कपिकच्छु, केवांच।

शिम्बीधान्य (सं० क्ली०) द्विदल अन्न, वह अन्न जिसके दानोंमें दो दल हों। जैसे,—मूंग, मसूर, मोठ, उड़द, चना, अरहर, मटर, कुलथी, लोबिया आदि। गुण—मधुर और कषाय रस, रुक्ष, कटु विपाक, वायुवर्द्धक, कफ और पित्तनाशक, मलमूत्ररोधक तथा शीतवीर्य। (भावप्र०)

शिम्बीफल (सं० क्ली०) आहुल्यक्षुप, तरवड़ नामक पौधा। (राजनि०)

शिम्बीयव (सं० पु०) शिम्बी धान्य। (भावप्र०)

शिम्यु (सं० पु०) १ वधकारी राक्षस आदि। २ शत्रु-पिता।

शिया (अ० पु०) १ मददगार, सहायक। २ अनुयायी। ३ मुसलमानोंके दो प्रधान और परस्पर विरोधी सम्प्रदायोंमेंसे एक, हजरत अलीको पैगम्बर ठीक उत्तराधिकारी माननेवाला सम्प्रदाय। उमर, अबूबक आदि जो चार खलीफा मुहम्मद साहबके पीछे हुए हैं, उन्हें इस सम्प्रदायके लोग अनधिकारी मानते हैं तथा पैगम्बरके बाद अली और उनके बेटों हसन और हुसैनको ही आदरका स्थान देते हैं। मुहर्रमके महीनेमें ये दस तक हसन हुसैनकी वीरगतिको प्राप्त होनेके दिनोंमें शोक मनाते हैं।

शिरःकपाल (सं० क्ली०) नरमस्तक, मनुष्यका माथा।

शिरःकपालिन् (सं० पु०) शिरः कपालोऽस्यास्तीति इनि। कापालिक संन्यासी। ये लोग मुंडा ले कर भीख मांगते हैं।

शिरःकम्प (सं० पु०) शिरसः कम्पः। १ मस्तक कम्पन, सिर हिलाना।

शिरःकम्पिन् (सं० त्रि०) कम्प अस्त्यर्थे इनि मस्तक-कम्पविशिष्ट, जिसका सिर हमेशा हिलता रहे।

शिरःकर्ण (सं० क्ली०) मस्तक और कर्ण, सिर और कान इन दोनोंका समाहार।

शिरःकृन्तन (सं० क्ली०) शिरसः कृन्तनः। शिरश्छेदन, मस्तक काटना।

शिरःखण्ड (सं० क्ली०) कपालास्थि, माथेकी हड्डी।

शिरःपट्ट (सं० पु०) उष्णीष, पगड़ी।

शिरःपाक (सं० पु०) शिरोरोग विशेष।

शिरःपाट (सं० क्ली०) ग्रीवा शिरोधरा।

शिरःपीड़ा (सं० स्त्री०) शिरसः पीड़ा। सिरका दर्द, माथेका पीड़ा। आयुर्वेदमें ११ प्रकारके और यूनानीमें १९ प्रकारके शिरोरोग कहे गये हैं परन्तु कोई कोई २१ प्रकारके सिर दर्द बताते हैं। आयुर्वेदके अनुसार वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, रक्तज, क्षयज, कृमिज सूर्यावर्त्त, अनन्तवात, अर्द्धावभेदक और शङ्खक ये ११ प्रकारके शिरोरोग होते हैं। शिरोरोग देखो।

शिरःप्रदान (सं० क्ली०) शिरसः प्रदान। मस्तक प्रदान सिर दान।

शिरःफल (सं० पु०) शिरस्तुल्यं फलं यस्य। नारिकेल नारियल। (त्रिका०)

शिरःशिल (सं० क्ली०) काश्मीरमें स्थित एक दुर्ग।

शिरःशूल (सं० क्ली०) शिरसः शूल। सिरकी पीड़ा। शिरोरोग देखो।

शिरःशेष (सं० त्रि०) शिरः शेषो यस्य। १ मस्तकावशेष विशिष्ट बिना सिरका। (पु०) २ राहु।

शिरःस्थान (सं० क्ली०) प्रधान स्थान।

शिरःस्नात (सं० त्रि०) सिरसे स्नान करनेवाला।

शिरःस्नान (सं० क्ली०) १ सिरसे स्नान करना। २ काकस्नान, कण्ठ समान स्नान करना।

शिर (सं० पु०) १ पिप्पलीमूल, पिपरामूल। २ मस्तक, माथा। ३ कपाल, मुण्ड, सिर, खोपड़ा। ४ शिखर। ५ किसी वस्तुका सबसे ऊंचा भाग या अंग, सिरा चोटी। ६ सेनाका अग्र भाग। ७ प्रधान मुखिया अगुआ। ८ अजगर। ९ बिस्तर। १० पद्यके चरणका आरम्भ, टीका। ११ अजगर। (शब्दार्थचि०)

शिरकत (अ० स्त्री०) १ किसी वस्तुके अधिकारमें भाग सम्मिलित अधिकार, साझा। २ किसी कार्यमें योग, किसी काम या व्यवसायमें शामिल न होना।

शिरखिश्त (फा० पु०) एक पूरबी गोंद। यह औषधके काममें आता है और साधारणतः लोग उसको कमी खारी मानते हैं।

शिरगोला (हि० पु०) दूधवाराक मागड़ पुत्र।

शिरज (सं० पु०) शिरः जायते इति जन ड। केश, बाल।

शिरस्त्राण (सं० क्ली०) शिरस्त्राण देखो।

शिरनेत (हि० पु०) गढ़वाल या श्रीनगरके आस-पासका प्रदेश।

शिरपेंच (हि० पु०) सिरपेंच देखो।

शिरफूल (हि० पु०) सिरमें पहननेका स्त्रियोंका आभूषण, सीसफूल।

शिरमौर (हि० पु०) १ शिरोभूषण, मुकुट। २ श्रेष्ठ व्यक्ति, मुख्य व्यक्ति, प्रधान। ३ अधिपति, नायक।

शिरश्चन्द्र (सं० पु०) महादेव, शिव।

शिरश्छेद (सं० पु०) शिरसश्छेदः। शिरश्छेदन, सिर काटना।

शिरस् (सं० क्ली०) श्रि श्रेयते (स्वाङ्गे शिरः किच्च। उण् ४।१९३) इति असुन्, स च कित् धातोः शिरादेशश्च। १ शिखर। २ मस्तक, माथा। सुश्रुतमें लिखा है, कि गर्भकालमें ४ महीनेमें मस्तक होता है। (सुश्रुत) ३ प्रधान। शिर देखो।

शिरसिज (सं० पु० शिरसि जायते इति जन ड सप्तम्याः अलुक्। केश बाल।

शिरसिरुह (सं० पु०) शिरसि रोहति रुह-क। केश।

शिरस्क (सं० क्ली०) शिरस् कन्। १ शिरस्त्राण खोद। (त्रि०) २ शिरस्सम्बन्धी, मस्तकका।

शिरस्तस् (सं० अव्य०) शिरस् तसिल्। मस्तकसे, मस्तक पर।

शिरस्त्र (सं० क्ली०) शिरस्त्रायते इति त्रै-क। शिरो रक्षण सन्नाह आदिकी टोपी खोद।

शिरस्त्राण (सं० क्ली०) शिरस्त्रायतेऽनेन त्रै ल्युट्। शिरोरक्षण सन्नाह युद्ध आदिके समय सिरके बचावके लिये पहनी जानेवाली लोहेकी टोपी, कूंड, खोद। पर्याय—शीर्षण्य, शीर्षक, शिरस्क, शिरस्त्र।

शिरस्य (सं० पु०) शिरस् (शरीरावयवाद्यत्। पा ५।१।६) इति यत्। १ विशद कच निर्मल केश, साफ बाल। (त्रि०) २ शिरः सम्बन्धी, सिरका।

शिरा (सं० स्त्री०) धमनी शरीरके अभ्यन्तरस्थ रक्त गमनका पथ, नस।

शिरा सन्धि स्थानकी बन्धनकारिणी है। शरीरके जो जो सन्धिस्थान हैं शिरा उन सब सन्धियोंको बा

बंधन करती है। यह दोष और धातुवाहिनी शिराएं नाभि संबद्ध हैं। उस नाभिसे सभी शिराएं शरीरके चारों ओर फैल गयी हैं। उद्यानके वृक्ष जिस प्रकार पयःप्रणाली द्वारा पुष्ट होते हैं, नहर द्वारा जिस प्रकार क्षेत्रका पोषण होता है, उसी प्रकार शिराओं द्वारा धातु वाहित हो कर शरीरको पुष्ट करता है। कुल मिला कर शिराकी संख्या ७०० है। यही सब शिराएं शरीरकी प्रसारण और आकुञ्चन सम्पन्न करती हैं। अर्थात् शिराओं द्वारा शरीरके सभी अंशोंमें रस सञ्चारित हो कर आकुञ्चन और प्रसारणादिकी सहायतासे देहकी रक्षा और पोषण होता है।

वृक्षके पत्तकी मध्यस्थित सेवनी अर्थात् उससे जिस प्रकार शाखाप्रशाखाविशिष्ट सूक्ष्म सूक्ष्म शिराएं चारों ओर फैला कर समूचे पत्तेको ढक लेती हैं, उसी प्रकार देहधारियोंकी शरीरकी शिराएं फैली हुई हैं।

सभी जीवोंके प्राण नाभिदेशमें अवस्थित हैं। यही नाभिदेश शिराओंका मूल है। नाभिदेशसे ही शिराएं निकल कर शरीरमें सभी ओर फैल गयी हैं। इसकी आकृति चक्र-सी है। चक्रकी कीलें जिस प्रकार उसकी नाभिके चारों ओर आवद्ध रहती हैं, उसी प्रकार जीवोंकी शरीरस्थ शिराएं उनकी नाभिसे उत्पन्न हुई हैं।

पहले ही कहा जा चुका है, कि शिराएं ७०० हैं। इनमेंसे मूल शिरा ४० हैं, वायुवाहिनी १० और पित्त-वाहिनी १०, कफवाहिनी १० और रक्तवाहिनी १० यही ४० मूल शिराएं हैं।

इन सब मूल शिराओंसे ही शाखाप्रशाखारूपमें ७०० सौ शिराएं निकली हैं। १७५ वायुवाहिनी शिराएं निकल कर पक्वाशयमें अवस्थित हैं। पित्तवाहिनी शिरा १७५ हैं। ये सब शिराएं पित्तके स्थान हैं अर्थात् आमाशय और पक्वाशयके मध्य स्थानमें अवस्थित हैं। कफवाहिनी १७५ हैं, ये कफ स्थान आमाशयमें रहती हैं। बाकी १७५ रक्तवाहिनी हैं। ये सब शिराएं रक्ताशय और यकृत् प्लीहादेशमें अवस्थान करती हैं।

शिराका स्थाननिरूपण—पूर्वोक्त १७५ वायुवाहिनी शिराओंमें प्रत्येक सक्थि और बाहुमें २५ करके एक सौ शिराएं, कोष्ठदेशमें ३४ जिनमेंसे नितम्ब, गुह्य और मेढ़्र देशमें ८, दोनों पार्श्वोंमें दो दो करके, ४ पृष्ठमें ६, उदरमें ६ तथा वक्षमें १० हैं। स्कन्धदेशके ऊपरी भागमें ४१ शिराएं अवस्थित हैं। जिनमेंसे ग्रीवादेशमें १४, दोनों कानमें ४, जिह्वा देशमें ६, नासिकामें ६ और दोनों आँख-में चार चार करके ८ वायुवाहिनी शिराएं इस प्रकार कुल मिला कर १७५ हैं।

अवशिष्ट शिराओंका भी इसी प्रकार विभाग कहा गया है। विशेषता सिर्फ इतनी ही है, कि पित्तवाहिनी शिरा दोनों नेत्रमें १०, दोनों कानमें २, रक्तवाहिनी शिरा दोनों चक्षु में ८, दोनों कानमें ४ और श्लेष्मवाहिनी शिरा ग्रीवादेशमें १६ और कर्णमें २, इस प्रकार ७०० शिराके विभाग जानने होंगे।

वायु जब अपनी शिरामें स्वच्छन्दपूर्वक विचरण करती है, तब यन्त्रक्रियामें कोई व्याघात नहीं पहुंचता तथा बुद्धिशक्तिका मोह नहीं होता, वरं अन्यान्य नाना प्रकारके गुण हुआ करते हैं। किन्तु जब वायु अपनी शिरामें कुपित होती है, तब वायुजन्य नाना प्रकारकी पीड़ा होती है।

पित्त यदि अपनी शिरामें सञ्चरण कर सके, तो शरीरमें कान्ति, अन्नमें रुचि, अग्निकी दीप्ति, शरीरकी स्वस्थता तथा अन्यान्य अनेक गुण उत्पन्न होते हैं। किन्तु पित्तके कुपित हो कर अपनी शिरामें अवस्थान करनेसे पित्तजनित नाना प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं।

श्लेष्मा जब तक प्रकृतिस्थ अवस्थामें अपनी शिराके मध्य विचरण करती है, तब तक सभी अङ्ग प्रत्यङ्गकी स्निग्धता, सभी सन्धियों दार्ढ्य, मनकी स्फूर्त्ति तथा और भी नाना प्रकारके गुण उत्पन्न होते हैं। किन्तु श्लेष्मा कुपित हो कर उक्त शिरामें प्रबल होनेसे श्लेष्मा जनित नाना प्रकारके रोगोंकी उत्पत्ति होती है।

रक्त यदि प्रकृतिस्थ अवस्थामें अपनी शिराके मध्य विचरण कर सके, तो सभी धातुओंका पूरण, वर्णकी उज्ज्वलता तथा स्पर्शज्ञानकी तीव्रता और बल पुष्टि आदि विविध प्रकारके गुण होते हैं। किंतु उस रक्तके कुपित हो कर विचरण करनेसे रक्तजन्य नाना प्रकारकी पीड़ा होती है।

पूर्वोक्त शिराएं केवल वायु पित्त या कफको ही वहन करती हैं सो नहीं। अवस्थाभेदमें ये वातादि त्रिदोषको भी वहन किया करती हैं।

शिराका वर्णभेद—जो सब शिराएं वायु द्वारा पूर्ण रहती हैं उनका वर्ण अरुण, जो पित्तपूर्ण हैं उनका वर्ण नील होता है तथा उन्हें स्पर्श करनेसे उष्ण मालूम होता है। कफपूर्ण शिराएं शीतल, गौरवर्ण और स्थिर तथा रक्तपूर्ण शिराएं रक्तवर्ण और न तो अति शीतल न उष्ण होती हैं।

पाश्चात्य मतसे शिरातत्त्व।

पाश्चात्य देहविज्ञानविदों ने मृतदेहको व्यवच्छेद करके मानवदेहमें जिन सब शिराओं का सन्धान पाया है, 'एनाटमी' नामक ग्रन्थमें उनका विस्तृत विवरण देखनेमें आता है। उन सब विवरणका यहां अच्छी तरह आलोचना करना असम्भव है। शिरा तत्त्वका प्रधान और सार अंश यहां लिखा जाता है। समग्र मानवदेह धमनी और स्नायुकी तरह शिराजालसे वेष्टित है। केवल चार फुसफुसीय शिराओं को छोड़ देहकी अपरिष्कृत शोणित राशिको वहन कर फुसफुसमें ले जाना ही शिराओं का प्रधानतम कार्य है। चमड़े नीचे हम अनेक नीलाभ शिराएं देख पाते हैं। शिराएं स्पन्दनहीन और अपरिष्कृत रक्तसे परिपूर्ण हैं। उधर धमनी स्पन्दनयुक्त है। धमनियां परिष्कृत और परिशोधित रक्त वहन कर देहमें सर्वत्र सञ्चारित करती हैं।

इन शिराओं द्वारा देहके सभी स्थानों का कैशिकाओं से रक्त हृत्पिण्डमें लाया जाता है। ये सब शिराएं कैशिक शिरा (वेनिउली)से आरम्भ होती हैं और परस्पर मिल कर स्थूलकाय शैरिक काण्ड बनाती हैं। साधारणतः शिराओंको दो श्रेणियोंमें विभक्त किया जा सकता है—प्रथम या अगभीर श्रेणी, सुपरफिशयल फैसियाके स्तरमें अवस्थान करती हैं, ये धमनियोंके साथ रहती हैं तथा उनके साथ एक कोष (Sheath) द्वारा परिव्याप्त रहती हैं। बड़ी बड़ी धमनियोंके साथ केवल एक शिरा रहती है किन्तु यह शिरा बहुत छोटी है यथा—, प्रकोष्ठ हाथ, पैर और धमनीके दो दो शिरा रहती हैं। इन्हें युग्म शिरा ('भेनि कमिटिज') कहते हैं।

धमनीकी अपेक्षा सभी शिराएं परस्पर बाहुल्यरूपमें सम्मिलित होती हैं। इस कारण देहके सभी स्थानोंसे हृत्पिण्डमें रक्त लौटनेकी सुविधा होती है।

कुछ शिराओं का विशेष स्वभाव दिखाई देता है, यथा,—मस्तिष्ककी शिरा, मस्तिष्ककी शैरिक प्रणाली तथा पोर्टल शिरा, ये सब धमनीकी सहवर्त्ती नहीं होतीं और इनके निर्माण सम्बन्धमें भी वैलक्षण्य दिखाई देता है। शिरामें अक्सर दूषित नीलवर्णका रक्त रहता है, किन्तु पैल्मोनारी शिरामें धमनीकी तरह लोहित विशुद्ध रक्त रहता है। ग्रन्थिपदार्थसे जो शिरा निकली है उसमें भी तरल रक्त ग्रन्थिकी क्रियाविशेष होनेसे धमनी के रक्त जैसा लोहित होता है।

शिराओंके रक्तकी तुलनामें उनका प्राचीर अत्यन्त पतला है, अतएव अनुप्रस्थ भावमें काटनेसे वह मिल जाता है।

शिरा प्राचीर प्रसारशील है, दृढ़ और धमनियोंकी तरह यह सहजमें छिन्न नहीं होता, साधारणतः सभी शिराएं तीन आवरणसे बनी हैं तथा शैरिक विधानके भिन्न भिन्न स्थानमें इस आवरणकी निर्माण विभिन्नता देखी जाती है।

आभ्यन्तरिक आवरण या शिराका जो अंश रक्तस्रोतमें संलग्न रहता है वह साधारण कोषझिल्ली (सेल मेम्ब्रान्) द्वारा बना है। इस झिल्लीके एण्डोथिलियल कोष सभी धमनियोंके उक्त कोषोंसे छोटे और अपेक्षाकृत कम होते हैं, किन्तु उनके दोनों ओरकी साधारण सन्धानप्रणाली और बाह्यावयव प्रायः एक से हैं। इस झिल्लीके बाहरी भागमें एक सूक्ष्म अस्पष्ट आवरण रहता है जिसे इण्टरमिडियेट या मध्यवर्त्ती या व्यवधायक स्तर कहते हैं। यह फिर एक आभ्यन्तरिक स्थितिस्थापक परदेसे ढका रहता है। यह सभी धमनियोंके इस स्तर की तरह परिवर्त्तित नहीं है।

मध्य आवरण पेशीय शिरा और स्थिति स्थापक तन्तुका बना है। स्थितिस्थापक तन्तुओं का परिमाण अपेक्षाकृत अल्प है। इस स्थिति स्थापक तन्तुओंके साथ श्वेतवर्णका सौत्रिक (फाइब्रस) तन्तु प्रचुर परिमाणमें वर्त्तमान रहता है। इसी कारण शिराएं धमनी की अपेक्षा दृढ़ और लसदार पु

शिरावेध करना अनुचित है। कफ और धातुक्षीण व्यक्तियोंके वायुरोग उत्पन्न होनेकी सम्भावना है। भीरु व्यक्ति स्वभावतः क्रोधी होता है और रक्त देखनेसे मूर्च्छित हो सकता है। परिश्रमकातर व्यक्तियोंका अतिरिक्त रक्तमोक्षण हो कर शरीर विनष्ट हो सकता है, स्त्रीसंसर्गके कारण क्षीण और उन्मत्त लोगोंकी वायुका प्रकोप हो सकता है, मद्यपानमें मत्त लोगोंकी अधिक मूर्च्छा हो सकती है, इन सब कारणोंसे उक्त व्यक्तियोंका शिरावेध नहीं करना चाहिये। इसके सिवा जिन्होंने वान्ति अर्थात् वमि की है, विरिक्त या विरेचन द्वारा जिन का कोष्ठ परिष्कृत है, उनका शिरावेध करनेसे वायु बिगड़ सकती है। धातुक्षय जन्य क्षीण अर्थात् जिनका धातुक्षय हुआ है, उनका तथा गर्भिणियोंका शरीर विनष्ट हो सकता है, अतएव इनका भी शिरावेध नहीं करना चाहिये। कास और यक्ष्मरोगी, जीर्ण ज्वरग्रस्त, आक्षेप और पक्षाघातरोगी, उपवासी, मूर्च्छित और पिपासित व्यक्तिका शिरावेध अकर्त्तव्य है।

विशेष विधि—पहले कहा जा चुका है, कि बालक और वृद्ध आदिका शिरावेध करना उचित नहीं। किन्तु विषोपसर्गमें अर्थात् जिनके सर्पादिके दंशनके कारण शरीरमें विष घुस गया है, उनका प्राणनाश अवश्य होता है, अतएव उक्त निषेध रहने पर भी इनका शिरावेध कर्त्तव्य है। पहले वेध्य और अवेध्य शिरा स्थिर करके शिरावेध करना होता है।

अवेध्य शिरा—हाथ और पैर प्रत्येकमें एक एक सौ शिराएं हैं। इनमेंसे जालधरा शिरा एक, उर्वी नामक मर्मस्थानकी दो, लोहिताक्ष नामक मर्मस्थानकी एक, इस प्रकार हाथ और पदकी १६ शिराएं विद्ध नहीं करनी चाहिये।

पृष्ठ, उदर और वक्षःस्थलकी ३२ शिराएं विद्ध नहीं करनी चाहिये। वहां विटप और कटीक तरुण नामके दो मर्ममें ८ हैं। प्रत्येक पार्श्वमें जो आठ आठ करके शिराएं हैं उनमें ऊर्द्ध्वगामिनी दो, पार्श्वसन्धि दो, मेरुदण्डके दोनों पार्श्वमें २४ शिराएं हैं, उनमें ऊर्द्ध्वगामिनी बृहती नामक शिरा ४; उदरकी २४ शिराओंमेंसे लिङ्गदेशमें रोमराजिके दो पार्श्वों में दो दो करके ४ हैं। वक्षमें जो ४० शिराएं हैं, उनमेंसे हृदयदेशमें दो दो करके ४, स्तनरोहित, अपलाप और अपस्तम्भ नामक मर्मोंके दो दो कर ६, इस प्रकार पृष्ठ, उदर और वक्षःस्थल की कुल ३२ शिराएं विद्ध नहीं करनी चाहिये।

स्कन्धसन्धि—स्कन्धसन्धिके ऊर्द्ध्वदेशमें जो १६४ शिराएं हैं, उनमें ग्रीवा देशकी ५६ शिराओंके मध्य कण्ठनालीके दोनों ओरकी शिरा मातृका ८, नीला २, मन्या २, कृकाटिका मर्ममें २ तथा विधुरमर्ममें २ कुल १६ शिराओंको विद्ध करना अनुचित है। हनुद्वय-के दोनों पार्श्वमें जो आठ आठ करके शिराएं हैं, उनमें से दो दो करके ४ शिराएं विद्ध नहीं करनी चाहिये। जिह्वादेशमें ३६ शिराएं हैं जिनमेंसे जिह्वाकी अधोभागस्थ १६ शिराओंमें रसवाहिनी २ और वाग्वाहिनी २ शिराओंको विद्ध करना उचित नहीं। नासिकामें २४ शिराएं हैं, इनमेंसे नासिकाके पास जो चार और तालु-देशमें जो एक शिरा है, वह अवेध्य है। चक्षुमें ३८ शिराएं हैं जिनमेंसे अपाङ्गकी दो शिराओंको विद्ध करना उचित नहीं। दोनों कानमें १० शिराएं हैं। उनमेंसे शब्दवाहिनी एक एक शिरा अवेध्य है। नासा-देशमें २४, दोनों नेत्रमें २६ और ललाटदेशमें कुल मिला कर ६० शिराएं हैं। इनमेंसे आवर्त्त नामक मर्मके पासवाली ४ शिराएं विद्ध नहीं करनी चाहिये। आवर्त्त नामक मर्मगत एक एक, स्थपनी नामक मर्मस्थित एक और शङ्ख देशस्थ १० शिराओंमें शङ्ख सन्धिगत एक एक शिरा अवेध्य है। मूर्द्धदेशमें जो १२ शिराएं हैं, उनमेंसे उत्क्षेप नामक मर्मगत दो, प्रत्येक सीमान्तकी एक एक तथा अधिपति मर्मकी एक शिरा अवेध्य है।

अज्ञ चिकित्सक ये सब अवेध्य शिराएं यदि विद्ध करे, तो नाना प्रकारकी पीड़ा तथा मृत्यु तक भी हो सकती है। अतएव अच्छी तरह सोच विचार कर बड़ी धीरतासे विद्ध करना उचित है। जो सब शिराएं अवेध्य हैं अथवा जो वेध्य होने पर भी अयन्त्रित हैं अर्थात् यन्त्र द्वारा जो बन्धन नहीं की जाती तथा यन्त्रबद्ध होने पर भी जो उसे भेद नहीं कर सकता, वैसी शिराएं भी विद्ध नहीं करनी चाहिये।

अति शीत और गरम कालमें अथवा प्रबल वायुके

बदले समय यदि आकाश मेघाच्छन्न न हो जाय, तो शिरा विद्ध नहीं करनी चाहिये। वर्षाके समय मेघशून्य कालमें, ग्रीष्मके समय शीतल कालमें और हेमन्तके समय मध्याह्नकालमें शिराविद्ध करना होती है।

शिराविद्ध करनेमें रोगीको यन्त्रित कर शिरावेध करना होता है। यन्त्रित करनेका उपाय यह है कि जब शिरा विद्ध की जाती है, तब रोगीको अरत्नि अर्थात् कनिष्ठाङ्गुल्यन्त प्रमाण पर्यन्त एक हाथ ऊंचे आसन पर सूर्य की ओर मुंह करके बैठाना होता है। उस समय रोगीके दोनों उरु आकुञ्चित रहने चाहिये, दोनों जानु सन्धिके ऊपरी भाग पर दो कुहनी रखनी होगी तथा दोनों हाथकी उंगलियोंको मुष्टिबद्ध कर गलेके दोनों पार्श्वमें रखना होगा। एक बन्धन रज्जुको दोनों ओर की गलेन्याकी उन दोनों मुष्टिके ऊपरसे पीठकी ओर फेंक देना होगा। एक दूसरा आदमी रोगीके पीछे बैठ कर अपने बायें हाथसे उत्तान भावमें उन दोनों रस्सीके छोरको पकड़े रहे तथा दाहिने हाथसे उस वेध्य शिराका पीडन और पृष्ठदेश मर्दन करे। वेध्य शिरा पीडन करनेसे वह स्पष्ट प्रकाशित हो जाता है तथा पृष्ठदेश मर्दन करनेसे शोणित सम्यक्रूपसे निकलता है। उस समय रोगी अपना मुंह वायुसे पूर्ण कर रखे। जब तक शिरावेध कार्य समाप्त नहीं होता तब तक श्वास प्रश्वास त्याग करना उचित नहीं। जिन सब शिराओंका मुख शरीरके भीतरकी ओर है, उन सब शिराओंको छोड़ मस्तककी शिराएं विद्ध करनेमें रोगीको उक्त रूपसे यन्त्रित करना उचित है।

पैरकी शिरा विद्ध करनेमें जिस पैरकी शिरा विद्ध करनी होगी, उस पैरको समतल स्थानमें स्थिर भावसे और दूसरा पैर कुछ झुका कर रखना होगा। पीछे वेध्य पादको घुटनेके नीचे रस्सा बांध कर हाथसे उस पैरकी पिण्डलीको पीडन करना होगा तथा वेध्य स्थानसे ४ उंगली ऊपर पूर्वोक्त वस्त्र पत्रकादिमेंसे किसी एकका भेद कर यह शिरा विद्ध करे।

हाथके ऊपर भागकी शिरा विद्ध करनेमें दोनों हाथको बांध कर रोगीको स्वच्छन्दभावमें पूर्वोक्त रूपसे आसन पर बैठावे तथा चिकित्सक उसकी कूर्पर सन्धिके नीचे और प्रकोष्ठको पूर्ववर्णित प्रक्रियासे बांध कर उसकी शिरा विद्ध करे।

गृध्रसी और विश्वाची नामकी वातव्याधिमें घुटना टेक कर श्रोणी, पृष्ठ और स्कन्ध देशकी शिरा विद्ध करनेमें पृष्ठ देशको उन्नत और आयत तथा मुखको अवनत कर शिरा विद्ध करनी होती है। हृदय और वक्षस्थलकी शिरा विद्ध करनेमें वक्षस्थल विस्तारित, मस्तक उन्नत और शरीर संकुचित कर बैठना होता है। दोनों पार्श्वकी शिरा विद्ध करनेमें रोगी दोनों हाथके ऊपर बल दे कर अवस्थान करे। मेढ़्देशकी शिरा विद्ध करनेमें मेढ़को झुका कर रखना होगा। जिह्वाके अधोदेशकी शिरा विद्ध करनेमें जिह्वाके अग्रभागको ऊपर उठा कर ऊपर वाले दांतोंसे दाब कर पकड़ना होगा। तालुदेश या दन्तमूलकी शिरा विद्ध करनेमें मुखको बाये रखना होता है।

शिरावेध करनेसे यदि मुहूर्त्तकाल रक्तस्राव हो कर रक्त बन्द हो जाय, तो उसे सुविद्ध हुआ जानना चाहिये। कुसुमफूल पीडन करनेसे पहले जिस प्रकार पीतवर्ण स्राव निकलता है, उसी प्रकार शिराविद्ध करनेसे दूषित रक्त सबसे पहले निकलता है।

मूर्च्छित, अत्यन्त भीत, श्रान्त और तृषित इन सब व्यक्तियोंकी शिरा विद्ध करनेसे उससे अच्छी तरह रक्त नहीं निकलता तथा जो शिरा बन्धन करने पर भी ठीक ऊपरी भाग पर दिखाई नहीं देता, उस शिरासे भी शोणित उपयुक्त परिमाणमें नहीं निकलता। शिरावेध सम्यक् रूपसे नहीं होने पर उसे फिर विद्ध करना उचित है। क्षीण, बहुदोषविशिष्ट और मूर्च्छित व्यक्तिकी शिरा जिस दिन पहले विद्ध की जाती है, उसी दिन अपराह्न कालमें अथवा तीसरे दिन फिरसे विद्ध करना उचित है।

शिरावेध करके दूषित समस्त रक्तको निकाल देना उचित नहीं क्योंकि अधिक रक्तस्राव होनेसे अनिष्ट होनेकी सम्भावना है। अतएव अवशिष्ट जो दूषित रक्त रहेगा, संशमन औषधका प्रयोग कर उसका शोधन करना आवश्यक है।

एक दोषसे प्रकुपित पूर्ण वयस्कका शोणित स्राव

करनेमें ऊर्द्धमात्रामें एक प्रस्थ रक्त मोक्षण किया जा सकता है। उससे अधिक रक्तस्राव होने पर अनिष्टकी सम्भावना है।

शिरावेधके बीस प्रकारके दोष कहे गये हैं, यथा— १ दुर्विद्ध, २ अतिविद्ध, ३ कुंचित, ४ विच्छिन्न, ५ कुट्टित, ६ अपस्रुत, ७ अभ्युदीर्ण, ८ अन्तमें अविद्ध, ९ परिशुष्क, १० कुणित, ११ वेपित, १२ अनुत्थितविद्ध, १३ शस्त्रहत, १४ तिर्यग्विद्ध, १५ अविद्ध, १६ अव्याध्य, १७ विद्रुत, १८ धेनुक, १९ पुनःपुनर्विद्ध, २० शिरा, स्नायु, अस्थि, सन्धि और मर्मस्थलमें विद्ध। ये २० प्रकारके शिरा वेध दूषणीय हैं। इनका लक्षण—

१—सूक्ष्म अस्त्र द्वारा शिरावेध करनेसे यदि रक्त अधिक परिमाणमें न निकले तथा वेदना और शोथ हो, तो उसे दुर्विद्ध कहते हैं।

२, ३—उपयुक्त परिमाणसे अधिक विद्ध होने पर यदि रक्त देहके भीतर घुस जाय अथवा अधिक परिमाणमें रक्त निकले, तो उसे अतिविद्ध और कुञ्चित कहते हैं।

४—कुण्ठ शस्त्र (हथियार) द्वारा विद्ध करनेसे यदि वह स्थान अच्छी तरह विद्ध न हो सके और फूल जाय, तो वह विच्छिन्न कहलाता है।

५—शस्त्रके अग्रभाग द्वारा अत्यन्त गभीर भावमें पुनः पुनः विद्ध करनेसे उसको कुट्टित कहते हैं।

६—शीत, भय और मूर्च्छा आदि कारणोंसे शोणित स्राव नहीं होने पर उसको अपस्रुत कहते हैं।

७—तीक्ष्ण और वृहत् मुखविशिष्ट अस्त्र द्वारा पैना विद्ध होने पर वह अभ्युदीर्ण नामसे पुकारा जाता है।

८—अल्प परिमाणमें रक्त निकलनेसे वह अविद्ध है।

९—अल्परक्तविशिष्ट व्यक्तिका विद्धस्थान वायुपूर्ण होनेसे वह परिशुष्क है।

१०—अल्प रक्त निकल कर विद्ध स्थान चार भागोंमें विच्छिन्न होनेसे उसे कुट्टित कहते हैं।

११, १२—अनुपयुक्त स्थलमें शिरावन्धन करनेसे कम्पन होता है तथा उसके कारण स्राव नहीं निकलता, ऐसी हालतमें शिरावेध होनेसे उसको वेपित और अनुत्थितविद्ध कहते हैं।

१३—शिरा छिन्न हो कर अतिरिक्त रक्त स्रावके कारण गमनादि शक्तिलोप होनेसे उसको शस्त्रहत कहते हैं।

१४—जहां तिर्यक् भावसे विद्ध करनेसे अस्त्रक्रिया अच्छी तरह सिद्ध नहीं होती, वहां उसे तिर्यक्विद्ध कहेंगे।

१५—असावधानीसे शस्त्र द्वारा बार बार विद्ध होनेसे उसका नाम अपविद्ध है।

१६—अस्त्र द्वारा छेदने लायक न होनेसे उसको अव्याध्य कहते हैं।

१७—अनवस्थित भावसे अर्थात् अत्यन्त शीघ्रतासे विद्ध करने पर वह विद्रुत कहलाता है।

१८—वेध्यस्थान अनेक बार अवघट्टित अर्थात् रगड़ कर बार बार शस्त्रपात करने तथा उससे अधिक परिमाणमें शोणित निकलने पर उसे धेनुका कहते हैं।

१९—सूक्ष्म अस्त्र द्वारा अनेक बार विद्ध करनेसे विद्धस्थानमें बहुत से छेद हो जाते हैं, इसीको पुनः पुनः विद्ध कहते हैं।

२०—स्नायु, अस्थि, शिरा, संधि और मर्मस्थलके विद्ध होनेसे उत्कट वेदना, शोथ, अङ्गवैकल्य, अथवा मृत्यु हो सकती है।

ऐसे २० प्रकारके शिरावेधों को दूषणीय कहा गया है। शिराएं चञ्चल होती हैं। ये मछलीकी तरह हमेशा परिवर्त्तित होती हैं। इस कारण शिराके सम्बन्धमें जब तक विशेष अभिज्ञता लाभ न हो लेगी, तब तक शिरावेध करना उचित नहीं।

शिरा विद्ध करनेसे व्याधि जितनी जल्द प्रशमित होती है, स्नेह और लेपनादि द्वारा उतना जल्द फल प्राप्त नहीं होता। चिकित्साशास्त्रमें शल्यतन्त्रके मध्य शिरावेध ही सर्वप्रधान है।

रोग विशेषमें भिन्न भिन्न स्थानमें शिरावेध करना होता है। उसका विषय इस प्रकार लिखा है, पाददाह, पादहर्ष, अववाहक, विसर्प, वातरक्त, वातकण्टक, विचर्चिका और पाददारी आदि रोगोंमें क्षिप्र नामक मर्मके ऊपर दो उंगलीके अन्तर पर ब्रीहिमुख नामक अस्त्र द्वारा शिरा विद्ध करे। क्रोष्टुकशीर्ष, खञ्ज और पंगु इन तीन

शिरियारी (हिं० स्त्री०) एक जंगली बूटा या शाक जो औषधमें काम आता है सुसना। यह तर जगहमें होता है। इसमें तिपतियेके समान एक साथ चार चार पत्ते होते हैं जो एक अंगुल चौड़े और नोकदार होते हैं। पत्तोंके बीचमें कली लगती है। फलोंमें दो चिपटे बीज होते हैं जो कुछ गोलाईदार होते हैं। ये बीज सूजाकमें दिये जाते हैं। शिरियारी पंजाब और सिन्धमें अधिक होती है। वैद्यकमें यह कसैली, रूखी, शीतल, हलकी, स्वादिष्ट, शुक्रजनक, रुचिकारी, मेधाजनक और त्रिदोषनाशक कही गई है। इसका साग भी लोग खाते हैं।

शिरीष (सं० पु०) शृणाति सर्दति स्नायवीनिति शॄ (शॄस्या किच्। उण् ४।२८) इति ईषन्, स च कित्। स्वनामख्यात वृक्ष सिरिसका पेड़। (Albizzia lebbek syn Acacia lebbek) तेलङ्ग—दिरसन। संस्कृत पर्याय—कपीतन, भण्डिल, भण्डिर, भण्डीर भण्डील, मृदुपुष्प, शुकतरु, विषनाशन शीतपुष्प, भण्डिक, स्वर्णपुष्पक, उद्दालक, शुकतरु, लोमशपुष्पक, कपीतक, कलिङ्ग, श्यामल, शङ्खिनीफल, मधुपुष्प, वृत्तपुष्प, भण्डी, प्लवग, शुकपुष्प। अन्य पुस्तकमें 'शिखिनीफल' पर्याय भी देखा जाता है। इसका गुण—कटु, शीतल, विष, वात, पामा, अस्र, कुष्ठ, कण्डुति और त्वग्दोषनाशक। (राजनि०)

भावप्रकाशके मतसे गुण—मधुर, अनुष्ण, तिक्त, तुवर, लघु, शोथ, विसर्प, कास और व्रणनाशक। (भावप्र०) कटभी शिरीषका पर्याय—कटभी, किणिही, श्वेता महाश्वेता और रोहिणी। इसका गुण—विष, विसर्प, स्वेद, त्वग्दोष और शोथनाशक।

शिरीषक (सं० पु०) १ सिरिसका पेड़। २ एक नागका नाम। (भारत उद्योगपर्व)

शिरीषपत्रा (सं० स्त्री०) श्वेतकटभी वृक्ष, सफेद कटभी-का पौधा।

शिरीषपत्रिका (सं० स्त्री०) शिरीषस्य पत्रमिव पत्रमस्याः, ततः स्वार्थे कन् टापि अत इत्वं। श्वेतकिणिही, सफेद कटभीका पौधा।

शिरीषिन् (सं० पु०) विश्वामित्रके एक पुत्रका नाम।

शिलयारी (हिं० स्त्री०) शिरियारी देखो।

शिरोगद (सं० पु०) शिरसो गदः पीड़ा। शिरःपीड़ा, सिरमें दर्द।

शिरोगुहा (सं० स्त्री०) शरीरके तीन बड़ों या कोठोंमेंसे एक जिसमें मस्तिष्क और सुषुम्ना नाड़ीका सिरा रहता है, सिरके भीतरका भाग।

शिरोगृह (सं० क्ली०) शिरसो गृहं। अट्टालिका, कोठा।

शिरोगेह (सं० क्ली०) अट्टालिका, कोठा।

शिरोगौरव (सं० क्ली०) शिरसो गौरवं। मस्तकका गुरुता, सिरका भारीपन।

शिरोग्रह (सं० पु०) वातव्याधिरोग विशेष, सिरका एक वातरोग, मसल बाई।

दूषित वायु रक्तको आश्रय कर शिराओंको उद्धर्षित कर डालती है, उस समय ये सब शिराएं रूक्ष, कृष्णवर्ण और वेदनायुक्त हो कर असाध्य शिरोग्रहरोग उत्पादन करती है। यह रोग होनेसे शिरोगत वायुको जिससे किया हो, उसका विचार करना उचित है। दशमूली कषाय, मातुलुङ्ग रस, शीतल तैल द्वारा अभ्यङ्ग या शिरोवस्ति प्रयोग भी उपकारक है।

शिरोग्रीव (सं० क्ली०) शिरश्च ग्रीवाश्च तयो समाहारः, समाहारत्वात् क्लीवत्वं। मस्तक और ग्रीवा इन दोनों-का समाहार।

शिरोघात (सं० पु०) शिरसो घातः। मस्तकका आघात।

शिरोज (सं० क्ली०) शिरसि जायते जन-ड। शिरोरुह, केश, बाल।

शिरोजानु (सं० क्ली०) शिर और जानु।

शिरोज्वर (सं० पु०) शिरःपीड़ा, सिरका दर्द।

शिरोत्पात (सं० पु०) चक्षुरोगविशेष, आँखका एक रोग। इसका लक्षण—चक्षुका शिराजाल कभी वेदनायुक्त, कभी वेदनाहीन तथा कभी रक्तवर्ण या विकृतवर्ण हो जानेसे वह शिरोत्पात कहलाता है। (भावप्र०)

शिरोदामन (सं० क्ली०) शिरसो दाम। मस्तककी माला, पगड़ी, साफा।

शिरोदुःख (सं० क्ली०) शिरसो दुःखं। शिरःपीड़ा, सिर दर्द होना।

शिरोधरा (सं० स्त्री०) शिरसो धरा। ग्रीवा, गरदन। इस शब्दका क्लीबलिङ्गमें प्रयोग होता है।

कालका विपरीत भाव, इन सब कारणोंसे मस्तकस्थ वातादिदोष मस्तकके रक्तको दूषित कर मस्तकमें विविध लक्षणान्वित रोग उत्पादन करते हैं। यह पांच प्रकारका है, यथा—

वातज शिरोरोगनिदान—उच्च भाषण, अतिभाषण, तीक्ष्ण मद्यपान, रात्रिजागरण, शीतल वायुसेवन, व्यायाम, मलमूत्रादिका वेगधारण, उपवास मस्तकमें अभिघात, अति विरेचन, अतिवमन, रोदन, शोक, भय, त्रास तथा भारवहन और पथगमनके कारण क्लेश, इन सब कारणों से वायु कुपित हो कर शिरोगत धमनियोंमें घुसती और मस्तकमें शूल उत्पादन करती है। उस समय शङ्खदेश में सुई चुभने-सी वेदना होती है, कंधा कटा जाता है, दोनों भ्रूका मध्यभाग और ललाटदेश अत्यन्त वेदनान्वित और तापयुक्त होता है। दोनों कानमें हमेशा भन भन शब्द हुआ करता है और दोनों नेत्र ऐसे मालूम होते हैं मानो कोई उन्हें पकड़ कर बाहर खींच रहा हो तथा समूचा मस्तक घूमने लगता है। सभी शिराएं दप् दप् करती हैं और शिरोधरा ग्रीवा स्तम्भित होती है। ये सब लक्षण दिखाई देनेसे उसे वातज शिरोरोग कहते हैं। स्निग्ध और उष्ण द्रव्यके सेवनसे यह प्रशमित होता है।

पित्तज शिरोरोग—कटु, अम्ल, लवण, क्षार, मद्य, क्रोध, सूर्यातप और अग्निसन्ताप इन सब कारणोंसे पित्त कुपित हो कर मस्तकमें शिरोरोग उत्पादन करता है। इस रोगमें मस्तकमें दाह और सुई चुभने-सी वेदना होती है, रोगी शैत्यकी आकांक्षा करता है, दोनों नेत्रमें जलन होती है, रोगीको प्यास बहुत लगती, उसका शरीर घूमता रहता और पसीना बहुत निकलता है।

कफज शिरोरोग—निरन्तर उपवेशनप्रियता, निद्रालुता, गुरुस्निग्धभोजन और अति भोजन इन सब कारणोंसे कफ दुष्ट हो कर मस्तकमें शिरोरोग पैदा करता है। इस शिरोरोगमें मस्तक मन्द मन्द वेदनान्वित, स्पर्शशक्तिहीन और भाराक्रांत होता है। इसमें तन्द्रा रोग, आलस्य और अरुचि होती है।

त्रिदोषज शिरोरोग—त्रिदोषज शिरोरोगमें वातादि त्रिदोषके ही लक्षण दिखाई देते हैं। वातप्रकोपके कारण शूलवत् वेदना, घूर्णन, कम्प, पित्त प्रकोपके कारण दाह, मत्तता और तृष्णा, कफप्रकोपके कारण मस्तककी गुरुता और तन्द्रा होती है।

कृमिज शिरोरोग—प्रबल वातादि अनेक दोषोंसे आक्रांत पापी व्यक्ति यदि तिल, दुग्ध, गुड़, पूति और विरुद्ध द्रव्य भोजन करे, तो उसका कफ, रक्त और मांस क्लिन्न होता है तथा उस क्लिन्न कफादिके क्लेदसे कृमि उत्पन्न होते हैं। ये कृमि उत्पन्न हो कर अति कष्टदायक शिरोरोग लाते हैं। उस समय नाकसे पीब निकलता है। इस रोगमें मस्तकमें विद्धवत् और छेदवत् यंत्रणा, वेदना, कण्डु और शोथ उत्पन्न होता है तथा कृमि रोगोक्त सभी लक्षण दिखाई देते हैं।

यह रोग विशेष कष्टदायक है। इसके उत्पन्न होते ही सुविज्ञ वैद्यसे चिकित्सा करावें। भावप्रकाशमें इसका चिकित्साका विषय इस प्रकार लिखा है,—

वातजन्य शिरोरोगमें स्निग्ध स्वेद तथा पान, आहार और उपनाहस्वेद प्रदान करे। कूठ, एरंडका मूल और सोंठ समान भागमें ले कर मट्ठा दे पीसे और थोड़ा गरम करके कपालमें प्रलेप दे, तो शिरोरोग प्रशमित होता है। श्वास कुठाररस द्वारा नस्य लेनेसे निश्चय ही शिरःशूल दूर होता है। यह शिरोवस्ति और शिरोरोग-में बड़ा उपकारी है। शिरोवस्ति देखो।

पित्तज शिरोरोगमें चन्दनसिक्त जल, कुमुद, उत्पल और पद्म आदि शीतल स्पर्श तथा शीतल वायु सेवन करे। शतधौत घृत मस्तक पर धारण करनेसे भी यह दूर होता है। अल्प परिमाणमें श्वासकुठाररस, कर्पूर, कुङ्कुम, चीनी और बकरीका दूध इन्हें चन्दनके साथ एकत्र घस कर उसको सुंघनी लेनेसे पित्तज शिरोरोग विनष्ट होता है। यह नस्य सभी प्रकारके शिरोरोगमें उपकारी है। पुराना गुड़ और सोंठका नस्य लेनेसे भी शिरःशूल नष्ट होता है। रक्तज शिरोरोगमें पित्तजन्य शिरोरोगकी तरह आहार, प्रलेप और सेचन करना कर्त्तव्य है। विशेषतः विपर्य्यय क्रमसे शीतक्रिया और उष्णक्रिया करे अर्थात् शीतक्रियाके बाद उष्णक्रिया और उष्णक्रियाके बाद शीतक्रिया करनी होती है। रक्तज शिरोरोगमें रक्तमोक्षण करना बहुत आवश्यक है।

कफज शिरोरोगमें कफके पाचक रूक्ष और उष्ण स्वेदका प्रयोग करे। त्रिदोषज शिरोरोगमें त्रिदोष नाशक चिकित्सा करनी उचित है। षड्बिन्दुतैल और कुमारीतैल इस रोगमें विशेष उपकारी है। षड्बिन्दु तैलका नस्य लेने और उसे मस्तकमें लगानेसे सभी प्रकारके शिरोरोग प्रशमित होते हैं।

क्षय जन्य शिरोरोगमें क्षयनाशके लिये बृंहणक्रिया, पान और नस्यमें घृतका व्यवहार तथा वातघ्न मधुर द्रव्य साधित घृतका प्रयोग करे। कृमिज शिरोरोगमें त्रिकटु, नाटाकरञ्ज और सहिजनके बीजको गोमूत्रमें पीस कर नस्य ले। गुडके साथ घृत और घृतपूर (पूआ) भक्षण, दुग्ध और घृत पान तथा नस्य प्रयोग, दुग्ध द्वारा तिल पीस कर उसके द्वारा या जीवनीयगण द्वारा स्वेद प्रदान अथवा भृङ्गराजका रस और बकरीका दूध सम परिमाणमें ले कर धूपमें सुखा कर उसका नस्य लेनेसे सूर्यावर्त्तरोग प्रशमित होता है। अर्द्धावभेदक रोगमें पहले स्निग्ध स्वेद, पीछे विरेचन द्वारा शरीर शोधण तथा धूम प्रयोग करके स्निग्ध और उष्ण द्रव्य खानेसे विशेष उपकार होता है। विडङ्ग और कृष्णतिलको पीस प्रलेप देनेसे या उसके द्वारा नस्य ग्रहण करनेसे अर्द्धावभेदक रोग नष्ट होता है। सूर्यावर्त्त और अर्द्धावभेदक रोगमें चीनी मिला हुआ दूध, नारियलका पानी, ठंढा जल या घृत नाक द्वारा पान करनेसे उसी समय उपकार होता है।

अनन्तवातरोगमें सूर्यावर्त्तनाशक क्रिया और शिरा वेध द्वारा रक्तमोक्षण करे तथा वायु और पित्तनाशक क्रिया करना भी उचित है। पथ्यादि पाथ भी विशेष उपकारी माना गया है।

दारुहरिद्रा हरिद्रा, मञ्जिष्ठा निम्ब खसकी जड और पद्मकाष्ठ समान भागमें पीस कर मस्तक पर प्रलेप देनेसे शङ्खक रोग प्रशमित होता है। शीतल जल परिषेचन, शीतल दुग्ध सेचन और क्षिरनी वृक्षके कल्क द्वारा प्रलेप देनेसे सभी प्रकारके शिरोरोग प्रशमित होते हैं।

भैषज्यरत्नावलीमें शिरोरोगाधिकारमें इसकी चिकित्साका विषय इस प्रकार कहा है—वातिक शिरो रोगमें स्नेहस्वेद नस्य वायुनाशक, अन्नपान और प्रलेपकी व्यवस्था कही गई है। कुट और रेंडीका मूल इन दोनोंका अथवा केवल मोचकन्दके मूलको काञ्जीमें पीस कर प्रलेप देनेसे शिरोरोग अति शीघ्र नष्ट होता है। मस्तक सदृश आयत ८ अंगुली ऊंचा एक चमडा रोगी के मस्तकमें लपेट कर उस वस्तिके नीचे मस्तकके ऊपरी भाग पर उड़द पीस कर प्रलेप दे। पीछे कुछ गरम तेल द्वारा वह चर्मवस्ति भर दे। जब तक रुजाका लाभ न हो जाये, तब तक वस्तिधारण कर्त्तव्य है। ४ दण्ड या एक पहर तक वस्ति धारण कर निश्चल भावमें बैठना उचित है। इससे वायुजनित शिरोरोग, मस्तक कम्पन, हनु मन्या, चक्षु और कर्णकी पीड़ा प्रशमित होती है।

पैत्तिक शिरःपीडामें घृत, दुग्ध, जलसेचन, शीतल प्रलेप, नस्य, जीवनीयगणके साथ सिद्ध घृत और पित्त नाशक अन्नपानका प्रयोग करना होता है।

कफजमें लङ्घन, स्वेद, वमन, पाचन और तीक्ष्ण, कवल विशेष उपकारी है। अनन्तमूल, कुट, उत्पल और मुलेठी इन सब वस्तुओंको काञ्जीमें पीस कर घृत और तेलके साथ प्रलेप देनेसे सूर्यावर्त्त और अर्द्धभेद दूर होता है। कुरहुरके बीजको कुरहुरके रसमें पीस कर प्रलेप देनेसे सूर्यावर्त्त और अर्द्धावभेदककी वेदना दूर होता है। सूर्यावर्त्तमें नस्यादि दे कर और गुडके साथ घृत तथा घृत संयुक्त पिष्टक भोजन करावे। इसमें शिराविद्ध कर रक्तमोक्षण और दुग्धोत्थ घृतका नस्य विशेष उपकारी है। प्रतिदिन यवक्षार और घृत भोजन तथा पेट शोधनमें उसके विरेचनसे बहुत लाभ पहुंचता है। अमलतासके पत्तोंका रस २ सेर, नव नीत १ सेर और अपामार्ग बीज २ पल एकत्र पाक करे। इसका नस्य ग्रहण करनेसे सूर्यावर्त्त रोग बहुत शीघ्र नष्ट होता है। दशमूलके क्वाथमें घृत और सैन्धव डाल उसका नस्य लेनेसे भी विशेष उपकार होता है। शिरीष मूलकी छाल और मूलीका बीज, वच और पीपर नस्यमें प्रयुक्त होनेसे उक्त रोगका उपशम होता है। वातनाशक द्रव्यके साथ शशक आदि का मांस सिद्ध कर सैन्धव लवणके साथ व्यथ स्थानमें प्रलेप देनेसे तथा उस मांसका रस पीनेसे सिरका दर्द जाता रहता है। भृङ्गराजका रस २ तोला और बकरीका

उपलक्षमें एक मेला लगता है। इस मेलेमें पहाड़ी वस्तुओं आदि ही साधारणतः जुटती हैं।

शिलरति (सं० त्रि०) शिले रतिर्यस्य। उञ्छशील, जो उञ्छवृत्तिके द्वारा जीविका निर्वाह करता हो।

शिलवट (हिं० स्त्री०) सिलवट देखो।

शिलवाहा (सं० स्त्री०) नदीभेद। शिलावहा देखो।

शिलवृत्ति (सं० स्त्री०) शिलः वृत्तिर्यस्य, जो शिलवृत्ति द्वारा अपनी जीविका चलाता हो, जो धानकी बाल या सींक चुन कर अपना गुजारा करता हो।

शिलहेटी—रायपुर जिलेकी द्रुग तहसीलके अन्तगत एक भू-सम्पत्ति। भूपरिमाण ८३ वर्गमील है। यह भू-सम्पत्ति २८ गांव ले कर गठित है। यहांके जमींदार पहले गाण्डाई राज्यके अधीन सामन्त थे। ये लोग गोंड वंशोद्भव हैं। शिलहेटी गाँव अक्षा० २१° ४७´ उ० तथा देशा० ८१° ६´ पू० तक विस्तृत है।

शिला (सं० स्त्री०) १ पाषाण, पत्थर। २ स्तम्भशीर्ष। ३ पत्थरका बड़ा चौड़ा टुकड़ा, चट्टान, सिल। ४ मनःशिला, मैनसिल। ५ कर्पूर, कपूर। ६ शिलाजतु, शिलाजीत। ७ गैरिक, गेरू। ८ नीलिका, नीलका पौधा। ९ हरीतकी, हर्रे। १० गोरोचना, गोरोचन। ११ दूर्वा, दूब। १२ पत्थरकी कंकड़ी अथवा बटिया। १३ भूमिमें पड़ा हुआ एक एक दाना बीननेका काम, उञ्छवृत्ति। शिरा-रसयोः लत्वं। १४ शिरा।

शिलाई—मानभूम जिलेमें प्रवाहित एक नदी। उक्त जिलेके लाबुका परगनेसे निकल कर धीमीचालसे पूर्व-दक्षिणकी ओर बहती हुई यह रूपनारायण नदमें आ मिली है। मेदिनीपुर बूढ़ी नदी नाडाजोलके पास तथा बाँकुड़ा जिलेमें पुरन्धर नदी और गोपा नदी इसका कलेवर पुष्ट करती है। रूपनारायणके सङ्गमसे इस नदीमें जितनी दूर ज्वारका पानी जाता है, उतनी दूर इस नदीवक्षमें पण्यद्रव्यवाही नावें जा आ सकती हैं। वर्षाकालमें बाढ़ आनेसे इस नदीका दोनों किनारा उब-डबा जाता है।

शिलाकर्णी (सं० स्त्री०) शिलेव कर्णः कोणो यस्याः ङीप्। शल्लकी वृक्ष, सलई।

शिलाकुट्टक (सं० पु०) शिलां कुट्टयति दारयतीति कुट्ट-ण्वुल्। टङ्क, पाषाणभेदनास्त्र, पत्थर तोड़नेको छेनी।

शिलाकुसुम (सं० क्ली०) शिलाद्भव, शिलाजतु, शिलाजीत।

शिलाक्षर (सं० क्ली०) शिलापट्टमें लिखा हुआ अक्षर।

शिलाक्षार (सं० क्ली०) चूना।

शिलागृह (सं० क्ली०) प्रस्तरनिर्मित गृह, पत्थरका बना घर।

शिलाचक्र (सं० क्ली०) शालग्रामकी मूर्त्ति।

शालग्राम देखो।

शिलाचय (सं० पु०) पर्वत, पहाड़।

शिलाज (सं० क्ली०) शिलाया जायते इति जन-ड। १ शैलेय, शिलाजतु, शिलाजीत। २ लौह, लोहा। ३ पत्थरका फूल, छरीला।

शिलाजतु (सं० क्ली०) पर्वतजात उपधातुविशेष, शिलाजीत। संस्कृत पर्याय—गैरेय, अर्थ्य, गिरिज, शिलाज, अगज, शैल, अद्रिज, शैलेय, शीतपुष्पक, शिलाव्याधि, अश्मोत्थ, अश्मलाक्षा, अश्मजतुक, जतजश्मक। गुण—तिक्त, कटु, उष्ण, रसायन, मेह, उन्माद, अश्मरी, शोथ, कुष्ठ और अपस्माररोगनाशक। (राजनि०)

निदाघकालमें सूर्यकिरण द्वारा सन्तप्त पर्वतोंसे निर्यासकी तरह जो धातुसार निकलता है, उसीको शिलाजतु कहते हैं। यह शिलाजतु चार प्रकारका है, सौवर्ण, राजत, ताम्र और आयस। भावप्रकाशके मतसे गुण—कटु, तिक्तरस, उष्णवीर्य, कटुविपाक, रसायन, छेदी, योगवाही तथा कफ, मेद, अश्मरी, शर्करा, मूत्रकृच्छ्र, क्षय, श्वास, वायु, अर्श, पाण्डु, अपस्मार, उन्माद, शोथ, कुष्ठ, उदर और कृमिनाशक।

सौवर्ण शिलाजतु जवापुष्पकी तरह लाल, मधुर, कटु, तिक्तरस, शीतवीर्य और कटुविपाक है। राजत शिलाजतु—श्वेतवर्ण, शीतवीर्य, कटुरस और मधुरविपाक। ताम्रशिलाजतु—मयूरकण्ठकी तरह आभाविशिष्ट, तीक्ष्ण और उष्णवीर्य। लौह शिलाजतु जटायुके पंख जैसा आभा-विशिष्ट, तिक्त, लवण रस, कटुविपाक और शीतवीर्य होता है। यही शिलाजतु सबसे श्रेष्ठ है।

औषध बनानेमें आयस शिलाजतु ही उत्तम है। शिलाजतुको शोधन कर उसका व्यवहार करना होता

है। जो शिलाजतु गोमूत्रवत् गन्धयुक्त कृष्णवर्ण स्निग्ध कोमल, गुरु, तिक्त कषायरस तथा शीतवीर्य होता है, वही आयस शिलाजतु है। यह शिलाजतु औषध बनानेमें श्रेष्ठ और मारणमें उपयोगी है।

शोधनप्रणाली—शिलाजतु ग्रिष्मऋतुमें पहाड़ पर बहुतापनसे उत्पन्न होता है। इस कारण इसमें लोहका भाग अधिक रहता है। इसलिये शोधित न होनेसे शिलाजतु किसी कामका नहीं होता। पहले शिलाजतुका छोटा छोटा खण्ड कर गरम जलमें एक पहर तक रखे। पीछे उसे मर्दन कर जलको कपड़ेमें छान ले और तब मिट्टीके बरतनमें रख धूपमें छोड़ दे। इसके बाद उस बरतनके ऊपरी घन भागको दूसरे बरतनमें उठा रखे। इस प्रकार बार बार करके घना कर लेनेसे दो मासके भीतर शिलाजतु कार्यक्षम होता है। पीछे उसे अग्निमें डाल देनेसे यदि उच्च वासित हो कर लिङ्गोपम हो, अथच धूम दिखाई न दे, तो उसे शोधित हुआ जानना चाहिये।

वाग्भटने इसकी शोधन प्रणाली इस प्रकार लिखी है,—शिलाजतुका बाहरी मल दूर करनेके लिये पहले विशुद्ध जलमें उसे धो लेना होगा। पीछे उसके भीतरकी मिट्टी और बालू आदि दोष दूर करनेके लिये उसे क्षार द्वारा भावना देनी होगी। शिलाजतुको जलमें धो कर धूपमें सुखा कर लौहपात्रमें भावना देनी होगी। जितना शिलाजतु होगा, उतना ही क्वाथ्य औषध ग्रहण कर ८ गुने जलमें पाक कर चतुर्थांश रहने उतार लेना होगा। किन्तु उस क्वाथके गरम रहते ही छान कर उसमें शिलाजतु डाल देना होता है। पीछे क्वाथके साथ यह मिल जाने पर उसे सुखा लेना और फिर क्वाथमें डाल कर सुखा लेना उचित है। इस प्रकार सात बार भावना देनी होगी। पीछे पञ्चतिक्तादि घृतमें तीन दिन, सुखा कर रखना होगा। इसके बाद त्रिफलाके क्वाथमें तीन दिन पटोलीके क्वाथमें तीन दिन, मुलेठीके क्वाथमें तीन दिन डुबोये रखनेसे शिलाजतुके सभी दोष दूर होते हैं। नीम, गुलञ्च घृत और यव इन सब द्रव्यों द्वारा क्वाथ प्रस्तुत करना होता है।

महर्षि अग्निवेशने इसकी शोधन प्रणाली इस प्रकार बताई है,—ग्रीष्मकालमें जिस दिन प्रखर रौद्र होता है, उस दिन चार काले लोहेके बरतनको समतल भूमि पर धूपमें रखे। पीछे उत्कृष्ट शिलाजतु ले कर एक बरतनमें रखे और शिलाजतुसे दो गुने उष्ण जल और पूर्वोक्त अर्द्धांश उष्ण क्वाथ द्वारा यथानियम शोधन करे। इससे मृत्तिकादि मलदोष दूर होते हैं। इसके बाद धूपमें गरम हो जाने पर जब देखे, कि उसके ऊपरी भाग पर काला सार निकल आया है, तब उस सारको दूसरे बरतनमें रख फिरसे उष्ण जलके साथ धूपमें छोड़ दे। इस बार जो सार निकलेगा उसे तीसरे बरतनमें रख फिरसे उष्ण जल डाल दे। अनन्तर सारको चौथे बरतनमें रख उक्त नियमसे उष्ण जल देना होगा। पीछे जब देखे, कि ऊपरका जल विशुद्ध हो गया है और काला मल बरतनके नीचे जम गया है, तब उस जलको छोड़ दे। इसी प्रणालीसे शिलाजतु विशुद्ध होता है।

शोधित शिलाजतुका गुण—तिक्त, कटुरस, उष्णवीर्य कटुविपाक, रसायन, योगवाही तथा कफ, मेद, अश्मरी, शर्करा, मूत्रकृच्छ्र, क्षय, श्वास, शोथ अर्श, पाण्डु वातरक्त कुष्ठ, अपस्मार और उदररोगनाशक।

रसेन्द्रसारसंग्रहमें इसकी शोधनप्रणाली इस प्रकार लिखी है—उत्तम शिलाजतु लौहपात्रमें गोदुग्ध, त्रिफला के क्वाथ और भृङ्गराजके साथ एक दिन मर्दन करनेसे विशुद्ध होता है। इसका गुण तिक्त और कटुरस, रसायन, क्षय शोथ उदर, अर्श और वस्ति वेदना नाशक माना गया है। (रसेन्द्रसार०)

शिलाजतुप्रयोग (स० पु०) प्रमेह रोगाधिकारमें प्रयोग विशेष। प्रस्तुत प्रणाली—शालसारादि गणके क्वाथमें शिलाजतुको भावना दे कर तथा उसके क्वाथमें अच्छी तरह पीस कर बलानुसार शिलाजतु सेवन करे। इसका सेवन करनेसे मधुमेह शर्करा और अश्मरीरोग विनष्ट होते तथा बल, वर्ण तथा आयुकी वृद्धि होती है। शिलाजतु सेवनके बाद यह जीर्ण होने पर जाङ्गली जानवरके मांसके जूसके साथ अन्न सेवन करना होता है।

शिलाजत्वादिलौह (स० क्ली०) औषध विशेष। प्रस्तुत प्रणाली—शिलाजतु, मुलेठी, त्रिकटु और रौप्य तथा उतना ही लौह, इन्हें एक साथ मिला कर दो रत्तीकी गोली बनाये। इसका अनुपान दूध है। इसके सेवनसे क्षय आदि रोग नष्ट होते हैं।

शिलाजा (सं० स्त्री०) श्वेतशिला नामक पाषाणभेद, संगमरमर। (राजनि०)

शिलाजीत (हिं० पु० स्त्री०) काले रंगकी एक प्रसिद्ध औषधि जिसे कुछ लोग मोमियाई भी कहते हैं।
विशेष विवरण शिलाजतु शब्दमें देखो।

शिलाञ्जनी (सं० स्त्री०) शिलामञ्जयतीति अञ्ज-ल्यु स्त्रियां ङीप्। कालाञ्जनी वृक्ष, काली कपास।

शिलाटक (सं० पु०) शिलामटतीति अट-ण्वुल्। १ अट्ट, अट्टालिका, बहुत बड़ा मकान। २ मकानके मध्यमें ऊपरी भागमें बना हुआ छोटा कमरा, चौबारा। ३ किसी इमारतके चारों ओर बना हुआ बड़ा घेरा, चहारदीवारी, परकोटा। ४ गर्त्त, गड्ढा।

शिलाटिका (सं० स्त्री०) रक्तपुनर्नवा, लाल गदह-पूरना।

शिलातल (सं० क्ली०) शिलायास्तलं। शिलाका तल, शिलाका ऊपरी भाग।

शिलात्मज (सं० क्ली०) शिलाया आत्मजमिव। लौह, लोहा।

शिलात्मिका (सं० स्त्री०) सोना या चांदी गलानेकी घरिया।

शिलात्व (सं० क्ली०) शिला भावे त्व। शिलाका भाव या धर्म।

शिलात्वच् (सं० स्त्री०) शिला या वल्का नामकी औषधि।

शिलाद (सं० पु०) एक प्राचीन ऋषिका नाम।

शिलाद्रु (सं० पु०) शिलाया द्रुरिव। १ शैलेय नामक गन्धद्रव्य, छरीला। २ शिलाजतु, शिलाजीत।

शिलादान (सं० क्ली०) १ शालग्रामशिला प्रदान। २ शालग्राम शिलादान।

शिलादित्य (सं० पु०) मालवराजभेद। हर्षवर्द्धन देखो।

शिलाद्वन्द्व (सं० क्ली०) शैलेय नामक गन्धद्रव्य, छरीला।

शिलाधातु (सं० पु०) शिलानां धातुः। १ गैरिकभेद, सोनगेरू। २ खिनौपल, खरिया मिट्टी। ३ शक्कर, चीनी।

शिलाना—बम्बई प्रेसिडेन्सीके काठियावाड़ विभागके सौराष्ट्र प्रान्तका एक छोटा सामन्तराज्य। यहांके सरदार बड़ोदाके गायकवाड़को कर देते हैं।

शिलानाथ—दरभंगा जिलेके अन्तर्गत एक बड़ा ग्राम। यह अक्षा० २६°३४´३०´´ उ० तथा देशा० ८६°६´४५´´ पू०के मध्य कमला नदीके किनारे अवस्थित है। यहां एक समय शिलानाथ महादेवका मन्दिर था। कमला नदीकी गति बदल जानेसे वह मन्दिर तहस-नहस हो गया है। प्रतिवर्ष कार्त्तिक और फाल्गुन मासमें यहां १५ दिन तक मेला लगता है। उस मेलेमें नाना प्रकारके अनाज विक्रयार्थ आते हैं। नेपालके पहाड़ी अधिवासी उस मेलेमें तेजपात, मृगनाभि, कुठार और खनिज लौह आदि द्रव्य बेचनेको आते हैं। यह मेला शिलानाथ महादेवका माहात्म्यज्ञापक है।

शिलानिचय (सं० पु०) शिलाया निचयः। शिलाओंका समूह, पत्थरका ढेर।

शिलानिर्यास (सं० पु०) शिलायाः निर्यासः। शिलाजतु, शिलाजीत।

शिलानीड (सं० पु०) शिलानीडे वासस्थानं यस्य। गरुड़।

शिलान्त (सं० पु०) अश्मन्तक वृक्ष।

शिलान्धस् (सं० क्ली०) शिलेन प्राप्तं अन्धः अन्नं। शिलवृत्ति द्वारा प्राप्त अन्न, उञ्छवृत्ति। इस वृत्तिद्वारा जो अन्न लाभ होता है, उसे शिलान्धः कहते हैं।

शिलापट्ट (सं० पु०) शिलायाः पट्टः। १ पेषणार्थ शिला, मसाला आदि पीसनेकी सिल। २ पत्थरकी चट्टान।

शिलापुत्र (सं० पु०) शिलाया पुत्र इव। पेषणयोग्य शिला, बट्टा जिससे सिल पर कोई चीज पीसी जाती है। पर्याय—वर्णपाल, शिलापुत्रक। (शब्दरत्ना०)

शिलापुष्प (सं० क्ली०) शिलायाः पुष्पमिव। १ शिलाजतु, शिलाजीत। २ शैलेय, छरीला।

शिलाप्रसून (सं० क्ली० शिलापुष्प, शैलज या छरीला नामक गन्धद्रव्य।

शिलाबन्ध (सं० पु०) शिला द्वारा ग्रथित प्राचीर आदि, वह प्राचीर या परकोटा जो पत्थरोंके टुकड़ेसे बना हो।

शिलाभव (सं० क्ली०) शिलाया भवः उत्पत्तिर्यस्य। शैलेय, छरीला।

शिलाभाव (सं० पु०) शिलात्व, पाषाणत्व।

शिलासिष्यन्द (सं० पु०) शिलाजतु, शिलाजीत।

शिलाभेद (सं० पु०) शिलां भिनत्तीति भिद् अण्। १ पाषाणभेदी वृक्ष पखानभेद। (क्ली०) २ प्रस्तरभेदक अस्त्र पत्थर तोड़नेकी छेनी।

शिलामय (सं० त्रि०) शिला विकारे मयट्। शिला विकार, पत्थरका बना हुआ।

शिलामल (सं० पु०) शिलाका मल। शिलानिर्यास, शिलाजीत।

शिलायु (सं० पु०) गलेमें होनेवाला एक प्रकारका रोग। इसमें कफ और रक्तके कुपित होनेसे गलेमें आवलेकी गुठलीके समान गांठ उत्पन्न होती है जिससे बहुत पीड़ा होता है। इसके कारण खाया हुआ अन्न गलेमें अटकता है। इसको शिलायु भी कहते हैं।

शिलायूप (सं० पु०) विश्वामित्रके एक पुत्रका नाम।

शिलारम्भा (सं० स्त्री०) शिलेव दृढा रम्भा। काष्ठ कदली, कठ केला। (राजनि०)

शिलारस (सं० पु०) लोहबानकी तरहका एक प्रकारका सुगंधित गोंद। कुछ लोग इसे खनिज भी मानते हैं, पर वास्तवमें यह एक वृक्षका गोंद अथवा जमा हुआ दूध है। इसका वृक्ष पूरबी बङ्गाल, आसाम, भूटान, पेगू, नान, मलय, मेसोपुटी आदि और यूनानमें पाया जाता है। इसका वृक्ष ६०से १०० फुट तक ऊंचा होता है। इसके पत्ते ४॥ इंच तक लंबे, जड़की ओर गोलाकार, अनीदार और किंचित् बारीक कंगूरेदार होते हैं। शाखाओंके अन्तमें गुच्छादार फूल होते हैं। फल गोलाकार होते हैं जिनमें बीजोंकी अधिकता होती है। वैद्यकके अनुसार यह कड़वा, चरपरा, स्वादिष्ट, स्निग्ध, गरम, सुगन्धित वर्णको सुन्दर करनेवाला और विकार आदिको शान्त करनेवाला होता है। यह शोधन कर व्यवहार करना होता है। शिलारस मधु द्वारा भावना देनेसे विशुद्ध होता है। इस तरह चीके साथ रमा वसरके साथ अगर, गोमूत्रके साथ ग्रन्थिपर्ण, मधुरसके साथ मधुरिका तथा भातके साथ तेजपत्र इन सब द्रव्योंसे शिलारस भावना देनेसे विशुद्ध होता है। विशुद्ध शिलारस ही उक्त गुणयुक्त होता है।

शिलालिन् (सं० पु०) एक नटसूत्रके प्रणेता।

शिलालिपि (सं० स्त्री०) पत्थरमें उत्कीर्ण लिपि, शिला फलक।

शिलालेख (सं० पु०) पत्थर पर लिखा या खोदा हुआ कोई प्राचीन लेख पुराने लेख जो पत्थरों पर लिखे पाये जाते हैं और जिनमें किसी प्रकारका अनुशासन या दान आदि उल्लिखित होता है।

शिलावर्षिन् (सं० पु०) १ पुराणानुसार एक पर्वतका नाम। (त्रि०) २ पत्थर बरसानेवाला।

शिलावल्का (सं० स्त्री०) शिलेव कठिनो वल्को यस्याः औषध द्रव्यविशेष पर्याय—शिलजा, शैलवल्कल, शैलग्राहा, शिलावल्क, श्वेता। गुण—शीतल, कटु, स्वादु, मेह, मूत्ररोध, अश्मरी, शूल, ज्वर और पित्त नाशक। (राजनि०)

शिलावह (सं० पु०) १ एक प्राचीन जनपदका नाम। २ इस जनपदका निवासी।

शिलावहा (सं० स्त्री०) एक प्राचीन नदीका नाम।

शिलावृष्टि (सं० स्त्री०) १ शिलापतन, आकाशसे ओले या पत्थर गिरना। २ शत्रु पर पत्थर फेंकना।

शिलावेश्मन् (सं० क्ली०) शिलानिर्मित वेश्म। १ प्रस्तर गृह, पत्थरका बना हुआ मकान। २ कन्दरा, गुफा।

शिलाव्याधि (सं० पु०) शिलाया व्याधिरिव। शिलाजतु, शिलाजीत। (विका०)

शिलाशस्त्र (सं० क्ली०) शिलानिर्मित अस्त्र, पत्थरका हथियार।

शिलासन (सं० क्ली०) शिला आसनं यस्य। १ शैलेय नामक गन्धद्रव्य। २ प्रस्तरनिर्मित आसन, पत्थरका बना हुआ आसन। ३ शिलाजतु, शिलाजीत।

शिलासार (सं० क्ली०) शिलावत् सारो यस्य। लौह, लोहा।

शिलास्थि (सं० स्त्री०) वह अस्थिखण्ड जिस पर मस्तक रखा है। (Petrous bone)

शिलास्तम्भ (सं० पु०) शिलाया स्तम्भः। प्रस्तरस्तम्भ, पत्थरका खम्भा।

शिलास्वेद (सं० पु०) शिलाया स्वेद। शिलाजतु, शिलाजीत।

शिलाहार—बम्बई उपकूलस्थ कांकण राज्यका एक सामन्त राजवंश। आगे चल कर यह दो भागोंमें विभक्त हो कर उत्तर और दक्षिण कोङ्कणमें स्वतन्त्र भावसे राज्य करने

लगे। किस प्रकार इस राजवंशका अभ्युदय हुआ, उस सम्बन्धमें कोई इतिहास नहीं मिलता। शिलालिपिसे जाना जाता है, कि जीमूतवाहन इस वंशके प्रतिष्ठाता थे। वे शाप-भ्रष्ट विद्याधर थे। गरुड़ जब नागोंको खानेके लिये प्रवृत्त हुआ, तब वासुकी बहुत गये और उसके भयसे प्रति-दिन उन्होंने शैल या शि खण्ड पर एक साँप रख देनेकी व्यवस्था कर दी। प इस शङ्खचूडको उस शिलातल पर देख जीमूतवाहन स्वयं वहां जा बैठ गये। गरुड़ने जीमूतवाहनकी प्रार्थना पर सर्पको छोड़ दिया और उन्हींको खा डाला, केवल मस्तक नहीं खाया। इस समय शोकविह्वला जीमूतवाहनकी स्त्री वहां आई और गरुड़से बहुत विनती करने लगी। स्तवसे प्रसन्न हो गरुड़ने जीमूतवाहनको पुनर्जीवन प्रदान किया। तभीसे वे शैलाहार या शिलाहार नामसे प्रसिद्ध हुए।

ऊपरकी किंवदन्ती चाहे जो कुछ क्यों न हो, पर इस राजवंशमें जो विद्यमान थे, उनके भक्तियोंका नाम ही उसका प्रमाण है। महाराष्ट्र-जातिमें शेलर नामकी एक वंशोपाधि देखी जाती है। अधिक सम्भव है, कि उस शेलर वंशकी किसी शाखाने सामन्तराजरूपमें अधि-ष्ठित हो शेलर शब्दको संस्कृत शैलाहार रूपमें रूपान्त-रित किया होगा।

सुविख्यात सम्राट् नौशेरवान् (५३१ ५७८ ई०) जब पारस्य सिंहासन पर अधिष्ठित थे, उस समय पश्चिम भारतोपकूल पर पारस्यवासियोंका वाणिज्य प्रभाव अप्र-तिहत था। ६३८ ई०में अरब जाति द्वारा शेष-शासनीय राज जदेजार्द जब राज्यभ्रष्ट हुए, तब बहुतसे पारसियों-ने थाना उपकूलमें आ यादव राणाके राज्यमें आश्रय लाभ किया। मुसलमान इतिहासोक्त यह यादव राणा शायद सञ्जानके यादववंशीय कोई सामन्तराज होंगे। पारस्य आक्रमणके कुछ समय बाद ही अरबवासी थाना आदि पश्चिम भारतोपकूल लूटने गये। खलीफा उमारने (६३४ ६४३) अरबोंको यह अन्याय उपद्रव करनेसे रोका था।

यदि इस हिन्दू मुसलमान संघर्षके समय शिलाहार-राजाओंकी प्रतिष्ठा जम जाती, तो इतिहासमें इस राज-वंशकी कोई न कोई स्मृति अवश्य मिलती। शिला-लिपिसे हमें मालूम होता है, कि दक्षिण कोङ्कणाधीश्वर सणफुल्ल राष्ट्रकूटराज धनञ्जयके सामन्त थे। सम्राट् ने उन्हें सह्याद्रिसे समुद्रके किनारे तक स्थान दान दे दिया था। राजा सणफुल्ल शायद ७७० ७८३ ई०के मध्य विद्यमान थे। इसके बाद इस वंशमें उनके पुत्र धम्मियर राजा हुए। उनके पुत्रने क्रमशः ऐय्यपराज, अवसर, आदित्यवर्मा, अवसर २य, इन्द्रराज, भीम, अवसर ३यने और उनके पुत्र रट्टराजने १००६ ई० पर्यन्त राज्यशासन किया था। यह राजा सत्याश्रयके अधीन सामन्त थे। इन्होंसे इस वंशका अवसान हुआ, क्योंकि उत्तर कोङ्कणाधीश्वर अरिकेशरी-को हम १०१७ ई०में समग्र कोङ्कण राज्यमें आधिपत्य विस्तार करते देखते हैं।

उत्तर-कोङ्कणका शिलाहारवंश।

- कपर्दी
  - पुल्लशक्ति
    - कपर्दी २य या लघुकपर्दी (८५२-७७)*
      - वप्पुवन्न
        - झञ्झा
          - लघियव्व
        - गोग्गी
          - वज्जडदेव
            - अपराजित
              - वज्जडदेव २य
                - छित्तराज (१०२६ ई०)
                - नागार्जुन
                  - अनन्तदेव
                    - ?
                      - † अपरादित्य (११२८ ई०)
                - मुम्मुनि (१०६० ई०) (१०८१, १०९४ ई०)
              - अरिकेशरी (१०१७ ई०)
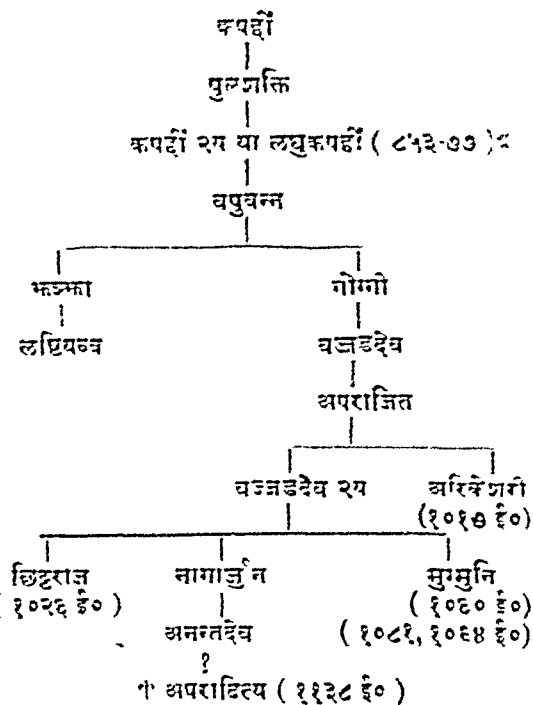
* नामकी बगलमें जो राज्यकालकी संख्या दी गई है, वह उस समयके राजाओंकी उत्कीर्ण शिलालिपिमें पाई जाती है। राज्यकालकी संख्याका निर्णय करना कठिन है।

† अनन्तदेवके पीछे अपरादित्य किस सूत्र पर राजा हुए मालूम नहीं। परवर्ती "?" वंश परम्परामें कुछ गड़बड़ी है।

२ करक। ३ विपुटा। (पु०) ४ वृक्षविशेष, भुंइछत्ता, कुकुरमुत्ता। ५ मत्स्यविशेष, शिलिन्द नामक मछली।

शिलीन्ध्रक (सं० क्ली०) गोमयछत्रिका, कुकुरमुत्ता, खुमी। यह द्विजातिको भोजन नहीं करना चाहिये।

शिलीन्ध्रपुष्प (सं० क्ली०) कदलीपुष्प, केलेका फूल।

शिलीन्ध्री (सं० स्त्री०) १ विहगीभेद, एक प्रकारकी चिड़िया। २ गण्डूपदी, केंचुआ। ३ मृत्तिका, मिट्टी।

शिलीपद (सं० पु० शिलीव स्थूलं पदमस्मात्। पादरोग-विशेष, फीलपाव नामक रोग। पर्याय—पदगण्डीर श्लीपद, पादवल्मीक। (हेम) श्लीपद शब्द देखो।

शिलीपृष्ठ (सं० क्ली०) १ वाण, तीर। २ असि, तलवार।

शिलीमुख (सं० पु०) शिलीव मुखं यस्य। १ भ्रमर, भौंरा। २ वाण, तीर। ३ युद्ध, समर, लड़ाई। ४ जडी-भूत, मूर्ख, बेवकूफ।

शिलु (सं० पु०) बहुवार वृक्ष, लिसोड़ा।

शिलूष (सं० पु०) १ एक प्राचीन ऋषि। ये नाट्यशास्त्रके आचार्य माने जाते हैं। २ बिल्ववृक्ष, बेलका पेड़।

शिलूण—प्राचीन कलानिपुण एक विद्वान्‌का नाम। इन्होंने संगीतशास्त्रसम्बन्धी एक ग्रन्थ लिखा है। उस ग्रन्थका नाम है "संगीतसर्वस्वसार"

शिलेय (सं० क्ली०) शिलाया भवं शिला ढ। १ शैलज, शिलाजीत। (त्रि०) २ शिला सम्बन्धी, शिलाका। ३ शिलासदृश, शिलाके समान। शिलेय (शिलाया ढः। पा ५।३।१०२) इति ढ। 'शिलेयं दधि' (काशिका) ४ शिला सदृश कठिन दधि, पत्थरके समान कड़ा दही।

शिलोच्च (सं० पु०) शिलाया उच्चयो यत्र। पर्वत, पहाड़। (रघु २।२७)

शिलोञ्छ (सं० पु०) उञ्छशिल वृत्ति, फसल कट जाने पर खेतमें गिरे पड़े दाने चुन कर जीवन निर्वाह करनेकी वृत्ति, शिल और उञ्छवृत्ति।

शिलोञ्छन (सं० क्ली०) शिल और उञ्छवृत्ति।

शिलोत्थ (सं० क्ली०) शिलायाः उत्तिष्ठतीति उत्‌-स्था क। १ शैलेय नामक गन्धद्रव्य। २शिलाजतु, शिला-जीत।

शिलोद्भव (सं० क्ली०) शिलाया उद्भवो यस्य। १ शैलेय, छरीला। २ शिलाजतु, शिलाजीत। ३ चन्दन-विशेष, पीला चन्दन।

शिलोद्भिदा (सं० स्त्री०) पाषाणभेद, पत्थरफोड़।

शिलौकस् (सं० पु०) शिला पर्वतः ओकः वासस्थानं यस्य। १ गरुड़। २ वह जो पर्वत पर होता हो।

शिलौन्दी—जबलपुर जिलेकी सिहोरा तहसीलके अन्तर्गत एक नगर।

शिल्गु (सं० पु०) मुन। (निघण्टु ३।६)

शिल्प (सं० क्ली०) शील समाधौ, (खष्पशिल्पशष्पबाष्प-रूपपर्पतल्पाः। उण् ३।२८) इति प ह्रस्वश्च। १ क्रियादि कर्म, हाथसे कोई चीज बना कर तैयार करनेका काम, दस्तकारी, कारीगरी, हुनर।

वात्स्यायन प्रणीत नृत्यगीत वाद्य आदि ६४ प्रकार-की बाह्यक्रिया तथा आलिङ्गन चुम्बनादि ६४ प्रकारका आभ्यन्तर क्रिया, स्वर्णकार, कर्मकार आदिका कार्य, ये सभी शिल्प कहलाते हैं। कारुकार्य मात्र ही शिल्प-पदवाच्य है। कपड़ा बिनना, नाव बनाना, अलङ्कार गढ़ना, घर बनाना आदि कार्यमात्र ही शिल्प है।

शिल्पविद्या देखो।

२ कला-सम्बन्धी व्यवसाय।

शिल्पक (सं० क्ली०) शिल्प-कन्। शिल्प देखो।

शिल्पकर (सं० पु०) शिल्पकार देखो।

शिल्पकला (सं० स्त्री०) हाथसे चीजें बनानेकी कला, कारीगरी, दस्तकारी।

शिल्पकार (सं० पु०) शिल्पं करोतीति कृ-अण्। १ शिल्पी, वह जो हाथसे अच्छी अच्छी चीजें बना कर तैयार करता हो, कारीगर, दस्तकार। २ राजमिस्त्री।

शिल्पकारक (सं० पु०) हाथसे अच्छी अच्छी चीजें बनानेवाला कारीगर।

शिल्पकारिन् (सं० पु०) शिल्पकर्त्तुं शीलमस्य, णिनि। शिल्पकर्मकर्त्ता, वह जो शिल्पका कार्य करता हो। पौरा-णिक मतसे शिल्पकारियोंके पिता विश्वकर्मा हैं। विश्व-कर्मासे ही सभी शिल्पीकी उत्पत्ति हुई है। ब्रह्मवैवर्त्त-पुराणमें लिखा है, कि विश्वकर्माने शूद्राके गर्भमें वीर्या-धान किया जिससे ६ शिल्पकारीका जन्म हुआ, १ माला-कार, २ कर्मकार, ३ शंखकार, ४ कुविन्दक, ५ कुम्भकार और ६ कांसकार, ये छः शिल्पियोंमें श्रेष्ठ हैं। इनके

अलावा ७ सूत्रधार, ८ चित्रकार और ९ स्वर्णकार ये नाम हैं।

शिल्पगृह (सं० क्ली०) शिल्पानां गृहं। शिल्पशाला, वह स्थान जहां बहुतसे शिल्पी मिल कर चीजें बनाते हैं। मनुमें लिखा है, कि राजा चोर आदिका उपद्रव होने पर शिल्पगृह या कारखानेकी रक्षा करे।

शिल्पगेह (सं० क्ली०) शिल्पगृह देखो।

शिल्पजीविका (सं० स्त्री०) शिल्पमेव जीविका। शिल्परूप उपजीविका।

शिल्पजीविन् (सं० पु०) शिल्पेन जीवति जीव णिनि। शिल्पोपजीवी, वह जो शिल्पके द्वारा जीविका निर्वाह करता हो कारीगर दस्तकार।

शिल्पता (सं० स्त्री०) शिल्पका भाव या धर्म, शिल्पत्व, कारीगरी।

शिल्पत्व (सं० क्ली०) शिल्पस्य भावः त्व। शिल्पका भाव या धर्म शिल्पता।

शिल्पप्रजापति (सं० पु०) शिल्पस्य प्रजापतिः। शिल्पकर्मद्रष्टा विश्वकर्मा। विश्वकर्मा ही समस्त शिल्पों के आविष्कर्त्ता और शिल्पिपीठके मूल पुरुष माने जाते हैं।

शिल्पयन्त्र (सं० क्ली०) शिल्पविषयक यन्त्र, कल।

शिल्पलिपि (सं० स्त्री०) शिल्पलिपि, पत्थर या तांबे आदि पर अक्षर खोदनेकी विद्या।

शिल्पवत् (सं० त्रि०) शिल्प अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। शिल्पविशिष्ट शिल्पयुक्त।

शिल्पविद्या (सं० स्त्री०) शिल्पविषयक विद्या, शिल्पशास्त्र शिल्पकर्मविषयक ग्रन्थ।

इसके द्वारा मनुष्य जो कलादि कर्म बड़ा निपुणतासे करते हैं, वही शिल्प है। स्वर्णकारादि विशेष वृत्तिजीवी जो कर्म मुख्यरूपसे कर जीविका निर्वाह करते हैं, वही शिल्प कहलाता है। किन्तु प्राचीन कालमें देवमन्दिर, प्रासाद अट्टालिका, देवमूर्त्ति और गृहादिकी दीवालमें जो कारुकार्य खोदा जाता था, वही शिल्प कहलाता था। जिस शास्त्रपद्धतिका अनुसरण कर शिल्पकार अभीष्ट वस्तुको किसी पर नियमाधीन सुप्रणालीसे गठन करते हैं, उसीको शिल्पशास्त्र कहते हैं। जिस ग्रन्थादिमें यह विषय लिखा रहता है, उसका भी नाम शिल्पशास्त्र है।

पुराणादिमें विश्वकर्माको ही देवशिल्पी कहा है। मय दानवने अट्टालिकादि बनानेके विषयमें विशेष पारदर्शिता दिखलाई है। उन्होंने गृहनिर्माणके उपयोगी नियमोंको लिपिबद्ध कर जो प्रथा चलाई, वही मयशिल्प कहलाती है। मयने लोकसमाजमें शिल्प या वास्तुविद्याका यथेष्ट प्रचार किया।

विश्वकर्मशिल्पमें भगवान् शिवने विश्वकर्माको कृतादि युगक्रमसे देवमूर्त्तिका भेद बताया है। उन शिल्पकार्यों के भी क्रमानुसार विभाग किया गया है। प्रासादादि निर्माण, दारुजव गठन पाषाण, स्वर्ण या लौहादि द्वारा प्रतिमा बनाना ही इनका मुख्य कार्य है। विश्वकर्मीय शिल्पशास्त्रके मतसे शिल्पी सात प्रकारके हैं। वे लोग एक एक कर अपना अपना कर्मांश करते थे।

"द्विबाहुर्विश्वकर्मा च तक्षकः वर्द्धकिस्तथा॥
स्थपतिः स्थापकः शिल्पी रथकार उदीरितः।
नामभिः सप्तभिश्चैव समवेत महाधमी॥" (१।६ १०)

ये सब शिल्पी किस किस कार्यके लिये इस प्रकार विशेष नामोंसे अभिहित हुए हैं उक्त ग्रन्थमें भी यह लिखा है—

अथ विश्वं करोतीति विश्वकर्माभवत् स्वयं॥
सर्वं लक्षणतः शुद्धं तस्मात्तक्षक ईरितः।
देवालयादिकान् सर्वान् वर्द्धयेदिति वर्द्धकी॥
द्वाराणि मेरुपीठादि स्थपतिनामतः स तु।
प्रतिमानि मुखस्यैव स्थापयत्यखिलानि च॥
स्थापकः प्रोच्यते सर्वं शिल्पिभिः शिल्पिरित्यपि।
त्रिपुरं दग्धकामस्य शिवस्य परमेष्ठिनः॥
रथस्तु जगदाकार कृतवान् परमं शुभं।
रथकार इति प्रोक्तो विश्वकर्मा स एव हि॥"

(१।११ १७)

दूसरी जगह स्थापक, शिल्पी, वर्द्धकी और तक्षकको देवमूर्त्तिके गठनका प्रधान शिल्पी माना गया है। देव मूर्त्तिनिर्माण स्थपतिका कार्य है। उस प्रतिमादिका स्थापन कार्य केवल स्थापक द्वारा निर्वाहित होगा। शिल्पी चित्र सम्पादन और वर्द्धकी शिल्पक्रिया करेंगे तथा तक्षक उक्त चारों शिल्पियोंके कार्यकी देखभाल करेगा। इसके सिवा तक्षकके और भी अनेक काम हैं।

प्रसिद्ध थे।(१) जलपथसे वाणिज्य करनेके लिये वे लोग नाव तैयार करते थे। ऋक् संहिताके १।११६।२-५ मन्त्रमें लिखा है, कि तुग्रने अपने पुत्र भूज्युको समुद्रमें भेजा था। भूज्यु सौ डांडवाली नाव ले कर जलशून्य समुद्रके किनारे गये। इसके पीछे उन्हें शतचक्रविशिष्ट और षट् अश्वयुक्त रथ पर बिठा कर घर लाया गया।

इस समय कर्मकारगण लौहशिल्पके पराकाष्ठारूप वर्म (१।१४०।१०), शिरस्त्राण (२।३४।३) और तनुत्राण (२।३६।४) बना सकते थे। अंसत्रा (कवच) और द्रापि (कवचकी तरह परिच्छद विशेष) को वैदिक शिल्पका एक और निदर्शन कहा जाता है।(२) शिल्पी और सूत्रधार रथ बनाना अच्छी तरह जानते थे। वे लोग खैर और शिशु काष्ठकी गाड़ी (३।५३।१७-१९) बना कर भी आर्य-सभ्यताकी पराकाष्ठा दिखा गये हैं। सङ्गीतविशारदगण क्षोणी, कर्करी आदि वीणाकी तरह वाद्ययन्त्र बनाना जानते थे।(३) आर्य रमणियां पुरुषोंके साथ मिल कर सूती कपड़े भी बिनती थीं २।३।६ और २।३८।४)।

ऊपरके शिल्प निदर्शनको छोड़ वैदिक युगमें और भी नाना प्रकारके शिल्पोंका प्रचार था। स्वर्णकार उस समय आर्यपुरुषों और स्त्रियोंके लिये अञ्जि (आभरण विशेष), स्रक् (माला), रुक्म (सुवर्णका वक्षाभरण विशेष), खादि (बाला और मल) और हिरण्मय शिप्र(४) (मस्तकाभरणविशेष) धारण करते थे। उस समय निष्ककी माला(५) गूंथ कर भी गलेमें पहननेकी व्यवस्था थी। कन्याके विवाहमें अलङ्कार दिया जाता था।(६) वे सब अलङ्कार स्वर्णकार ही बनाते थे।(७) स्वर्णकार धातु गलाता(८) और मुद्रा तय्यार भी करता था(९)।

इस समय कर्मकारका अभाव न था। सभी कर्मकारकी वृत्तिका अवलंबन कर अपने अपने व्यवहारोपयोगी लौहपात्रादि निर्माण करते थे। इस व्यवसायके लिये वे जातिभ्रष्ट नहीं होते थे।(१०) कर्मकार सूखी लकड़ा पक्षीके पर और सान देनेके लिये चिकने पत्थर ले कर वाण बनाते थे।(११) उनके पास भाथी यन्त्र रहता था(१२)। उस यन्त्रसे वे लोग आगको सुलगाते थे। अय समय कलसका व्यवहार था।(१३) कर्मकार ही उस समय ऋष्टि (बर्छा), वाशी (वाइश या खड्ग), धनु, इषु, निसङ्ग, हिरण्मय कवच, वर्म, शाणित लौह अस्त्र आदि प्रस्तुत करके आर्य जातिका युद्धभाण्डार परिपूर्ण रखते थे।(१४)

उस समय युद्धकी अन्यान्य सामग्रीका अभाव न था। सूत्रधार रथ बनाते थे।(१५) उन सब युद्धरथोंको सुदृढ़ करनेके लिये गोचर्म द्वारा आवृत किया जाता था (१६) तथा रणक्षेत्र युद्धदुन्दुभिनादसे प्रकंपित हो उठता था।(१७) घोड़े नाना प्रकारकी सज्जाओंसे सज्जित हो रणाङ्गणमें नृत्य करते थे।(१८)

आर्योंने अट्टालिका-निर्माणके साथ साथ कुआं खोदना भी सीखा था (१९)। वे लोग लोकसमाजके उपयोगी सूती कपड़े बुनना जानते थे (२०)। आर्यजनपद्के दारुण शीतसे देहकी रक्षा करनेके लिये वे लोग मेष लोमजात वस्त्रादि वयन करने और उसे परिष्कार करनेमें अभ्यस्त थे(२१)।

ऋग्वेदके युगमें आर्योंने सभ्यता और शिक्षाबलसे शिल्प विषयमें जो उन्नति की थी, ब्राह्मण और उपनिषद् युगमें उसकी सम्यक् परिपुष्टि होती है। आश्वलायनगृह्यसूत्रमें (१।२।४ और २।२।६) तथा पारस्करगृह्यसूत्रमें

---

(१) ऋक् १।११६।७ १।१४०।१२ और १०।१२६।६।

(२) ऋक् २।३४।१३, २।४३।३। (३) ४।२४।६। ४।५३।२। (४) ५।५३।४, ५।५४।११, ५।५८।२। (५) ५।१९।३। (६) ६।४६।२, १०।२६।१४। (७) ८।४।१५। (८) ६।३।४। (९) ५।२७।२, ५।३३।६।

(१०) ६।११२।२। (११) ६।११।२।२। (१२) ५।९।५। (१३) ५।३०।१५। (१४) ५।५४।६, ५।५५।६, ५।७।२, ६।२७।६, ६।४६।११, ६।२।५, ६।४७।१०।

(१५) १०।१३९।१२। (१६) ६।४४।२६।

(१७) ६।४७।२९।३०।

(१८) ऋक् ४।२।८ मन्त्रमें युद्धाश्व सज्जादिका उल्लेख मिलता है।

(१९) १०।५।२४ (२०) ८।१७।७, ८।२५।१३।

(२१) १०।२६।६।

(३।४) वास्तु देवताका उल्लेख देख कर वास्तुशिल्पकी प्रधानता प्रतीत होती है। स्वय भगवान् मनुने (३।८६) वास्तु पुरुषको नमस्कार कर उस शिल्पका गुरुत्व द्योतन किया है। अथर्ववेद ७।१०८।१, शतपथब्राह्मण १।७।३।१, ७ १७ और २।१।२।६, तैत्तिरीय संहिता ३।४।१०।३ शाङ्खायनगृह्य ३।१५ आदि प्राचीन शास्त्रोंमें वास्तुका उल्लेख देखा जाता है, इसके सिवा वैदिक शिल्पका और अधिक निदर्शन नहीं मिलता। रामायणीय युगमें प्रासादादिके वर्णनसे वास्तुशिल्पका परिचय पाया जाता है। उस समय मनुष्यके व्यवहार्य आभरणादि, शय्यास्तरण और सिंहासनादि निर्माण विभिन्न शिल्प और कला विद्याका स्पष्ट निदर्शन समझा जाता था।

महाभारतीय युगमें ही शिल्पविद्याकी विशेष उन्नति हुई है। महाभारतके उद्योग पर्वके "सभाश्चास्तूनि रम्याणि प्रवेष्टुमुपचक्रमे।" इत्यादि वचनोंसे विराटराज सभावर्णनमें उसकी सार्थकता की गई है। सभापर्वमें युधिष्ठिरके सभानिर्माणप्रसङ्गमें हमें मालूम होता है कि मयदानवने राजा युधिष्ठिरके लिये अपने इच्छानुसार एक सभा बनाई थी। भगवान् श्रीकृष्णने जब मय दानवसे पूछा, कि सभामण्डप कैसा बनाया जायगा तब शिल्पनिपुण दानवने एक नक्शा तैयार कर दिया था। पीछे वह सभामण्डप चारों ओर दस हजार हाथ लम्बा चौड़ा बनाया गया था।

मयदानवने बिन्दुसरोवरसे सभा बनाने लायक स्फटिकमय सामग्री संग्रह कर त्रिलोकविश्रुत मणिमय एक सभागृह बनाया था। वह सभा महाविस्तीर्ण, मनोहर बहुल चित्रवैचित्र्यम, रत्नप्राचीरवेष्टित थी। उसके चारों ओर पुष्पित, नीलवर्ण शीतल छायाप्रद नानाविध महावृक्षसमूह और सुगन्धित कानन तथा हंसकारण्डव चक्रवाकादि विहङ्गमाभिराम सरोवर सुशोभित हुए थे। उसके मध्यस्थलमें मयशिल्पकी निपुणताके पराकाष्ठास्वरूप एक अप्रतिम सरोवर बनाया गया था। उसमें मणिमय मृणाल और वैदूर्यमय पत्रयुक्त सैकड़ों शतपत्र तथा काञ्चनमय कहारकदम्ब शोभा देते थे। उसमें विहङ्गगण इधर उधर केलि करते थे। सुवर्ण निर्मित मत्स्यकूर्मादिसे उस चित्रस्फटिक सोपान निबद्ध सरोवरकी शोभा और बढ़ गया थी। मन्द मन्द वायुसे सरोवरका जल आन्दोलित होता था। उसके साथ सरोवरके चारों ओर महामणि शिलापट्ट द्वारा वेदिकाकारमें बद्ध हुई थी। उसका ऊपरी भाग मुक्ता बिन्दुमालासे जड़ा था। वायुके झोंकोंसे सरोवरका जल कुछ कुछ हिलोरें लेता था और भालरकी आन्दोलित मुक्ताका जो उसमें प्रतिबिम्ब पड़ता था उससे वह स्थान मानो मणिरत्न विभूषित सा प्रतीत होता था।

बुद्धाविर्भावके बादसे शिल्पतत्त्वके प्रकृत ऐतिहासिकयुगका आरम्भ हुआ। प्रत्नतत्त्वके निदर्शनस्वरूप जिन सब प्रासाद, अट्टालिका, दुर्ग, मन्दिर देवायतन, विहार वा मठादिका तथा देवमूर्त्तियोंका भग्नस्तूप निदर्शन आज भी हम लोगोंके नयनगोचर होता है, वही भारतके चिरन्तन अत्यन्त शिल्पविद्याका निदर्शन है। बुद्धगयामन्दिर, पुरीधामका जगन्नाथ मन्दिर, इलोराका गुहामन्दिर अजण्टाका गुहाशिल्प इस विषयका परिचय स्थल है। विशेष विशेष नियमोंके वशवर्ती हो कर भारतीय शिल्पकारगण वे सब मूर्त्ति, स्तम्भ और चित्रादि अङ्कन कर गये हैं। उनके शिल्पनैपुण्यकी प्रशंसा आज समस्त सभ्यजगतमें गाई जाती है।

शिल्पशाल (सं० क्ली०) शिल्पिनां शाला शिल्पशालेति क्लीवत्व। शिल्पगृह वह स्थान जहां बहुतसे शिल्पी मिल कर तरह तरहकी चीजें बनाते हों, कारखाना। पर्याय—आवेशन, शिल्पिशाला शिल्पशाला।

शिल्पशाला (सं० स्त्री०) शिल्पशाल देखो।

शिल्पशास्त्र (सं० क्ली०) शिल्पस्य शास्त्रं। १ शिल्पविद्या वह शास्त्र जिसमें हाथसे चीजें बनानेका निरूपण हो। २ वास्तुशास्त्र गृह निर्माणका शास्त्र।

शिल्पिक (सं० पु०) १ वह जो शिल्प द्वारा निर्वाह करता हो, कारीगर, दस्तकार। २ शिल्पक नाटकका एक भेद। ३ शिवका एक नाम।

शिल्पिका (सं० स्त्री०) एक प्रकारका तृण जो दक्षिणमें अधिकतासे होता और औषधिरूपमें काम आता है। महाराष्ट्र—लाहन शिल्पि। कलिङ्ग—चिरिय शिविङ्गे।

संस्कृत पर्याय—शिल्पिनी, शोना, क्षेत्रजा, मृदुच्छदा। इसका गुण—मूत्ररोध, अश्मरी, शूल, ज्वर और पित्त नाशक। (राजनि०)

शिल्पिन् (सं० पु०) शिल्पं क्रियादिशीलमस्यास्तीति इनि। १ शिल्पकार्यकारी, शिल्पकार। पर्याय—कारु। २ राज, थवई। ३ चित्रकार, चितेरा। ४ नखी नामक गन्धद्रव्य।

शिल्पिनी (सं० स्त्री०) १ शिल्पीका स्त्रीलिङ्गरूप। २ एक प्रकारकी घास।

शिल्पिशाला (सं० स्त्री०) शिल्पिना शाला। शिल्पशाला, शिल्पगृह, कारखाना।

शिल्पिशास्त्र (सं० क्ली०) शिल्पिनां शास्त्रं। शिल्पशास्त्र, शिल्पियोंका शास्त्र।

शिल्पोपजीविन् (सं० त्रि०) शिल्पेन उपजीवति उपजीव-णिनि। शिल्पजीवि, शिल्प द्वारा उपजीविका निर्वाह करनेवाला।

शिल्ह (सं० पु०) शिलारस देखो।

शिल्हक (सं० पु०) शिलारस देखो।

शिल्हन (स० पु०) कविभेद, शिह्लन कवि।

शिव (सं० क्ली०) शी (सर्वनिघृष्वरिष्वलष्वशिवपद्वप्रह्वेष्वा अतन्त्रे। उण् १।१५३) इति वन् प्रत्ययेन साधु। १ मङ्गल कल्याण। २ सुख। ३ जल, पानी। ४ सैन्धव, सेंधा नमक। ५ समुद्रलवण। ६ श्वेत टङ्कण, सुहागा। ७ धात्रीफल, आँवला। ८ फटकारिका, फिटकरी। ९ मिर्च। १० तिलपुष्प। ११ कुन्दपुष्प। १२ रौप्य, चांदी। १३ चन्दन। १४ लौह, लोहा। (वैद्यकनि०) (पु०) १५ महादेव, महेश्वर, ब्रह्माकी संज्ञाविशेष। भरतने इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार की है "शिवं कल्याणं विद्यतेऽस्य शिवः, श्यति अशुभमिति वा, शेरतेऽवतिष्ठन्ते अणिमादयोऽष्टौगुणा अस्मिन् इति वा शिवः" (भरत)

जिनमें समस्त मङ्गल विद्यमान हैं, वे शिव हैं अथवा जो अशुभ खण्डन करते हैं, वे ही शिव हैं या जिनमें अणिमादि अष्ट ऐश्वर्य अवस्थित हैं, वे ही शिव हैं।

पर्याय—शम्भु, ईश, पशुपति, शूली, महेश्वर ईश्वर, शर्व्व, ईशान, शङ्कर, चन्द्रशेखर, भूतेश, खण्डपरशु, गिरीश, गिरिश, मृड, मृत्युञ्जय, कृत्ति वासा, पिनाकी, प्रमथाधिप, उग्र, कपर्द्दी, श्रीकण्ठ, शितिकण्ठ, कपालभृत्, वामदेव, महादेव, विरुपाक्ष, त्रिलोचन, कृशानुरेताः, सर्वज्ञ, धूर्जटि, नीललोहित, हर, स्मरहर, भर्ग, त्र्यम्बक, त्रिपुरान्तक, गङ्गाधर, अन्धकरिपु, क्रतुध्वंसी, वृषध्वज, व्योमकेश, भव, भीम, स्थाणु, रुद्र, उमापति, वृषपर्वा, रेरिहाण, भगाली पांशुचन्दन, दिगम्बर, अट्टहास, कालञ्जर, पुरहिट्, वृषाकपि, महाकाल, वराक, नन्दिवर्द्धन, हीर, वीर, खरु, भूरि, कटप्रु, भैरव, ध्रुव, शिविविष्ट, गुडाकेश, देवदेव, महानट तीव्र, खण्डपर्शु, पञ्चानन, कण्ठेकाल, भरु, भीरु, भीषण, कङ्कालमाली, जटाधर, व्योमदेव, सिद्धदेव, धरणीश्वर, विश्वेश, जयन्त, हररूप, सन्ध्यानाटी, सुप्रसाद, चन्द्रापीड, शूलधर, वृषभध्वज, भूतनाथ, शिपिविष्ट, वरेश्वर, विश्वेश्वर, विश्वनाथ, काशीनाथ, कुलेश्वर, अस्थिमाली, विशालाक्ष, हिण्डी, प्रियतम, विषमाक्ष, भद्र, ऊर्द्ध्वरेताः, यमान्तक, नन्दीश्वर, अष्टमूर्त्ति, अधीश, खेचर, भृङ्गीश, अर्द्धनारीश, रसनायक, पिनाकपाणि, फणधरधर, कैलासनिकेतन, हिमाद्रितनयापति।

महाभारत अनुशासन पर्व १७वें अध्यायमें शिवका सहस्रनाम वर्णित हुआ है।

पुराणोंमें यहां तक, कि रामायण महाभारतमें शिव-माहात्म्य अच्छी तरह गाया गया है। वेदसंहितामें जो रुद्र नामसे परिचित हैं रामायण महाभारत और पुराणोंमें उन्हीं रुद्रने शिव नामसे प्रसिद्धि लाभ की है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, ब्राह्मणग्रन्थ और उपनिषदमें भी हम रुद्रदेवताका अनेक स्थानोंमें उल्लेख पाते हैं। यही रुद्र परवर्त्ती समयमें शिव और महादेव आदि नामोंसे इस देशमें पूजित होते आ रहे हैं।

ऋग्वेदमें इन्हें मरुद्गणका पिता कहा है। स्थान विशेषमें अग्नि और इन्द्रके अर्थमें भी रुद्र शब्दका प्रयोग देखनेमें आता है।

ऋग्वेद पढ़नेसे जाना जाता है, कि रुद्र देवता अति भीषण, क्रोधी और संहारक हैं। फिर वे ज्ञानी, दाता, भूमिके उर्वरतासाधक, सुखदाता, औषधोंके प्रयोगकर्त्ता और रोगारोग्यकारी हैं। ऋग्वेदका १।२७।१० ऋक पढ़नेसे जाना जाता है, कि वह रुद्र ही अग्नि हैं। किन्तु

वैदिक मन्त्रके अधिकांश स्थलोंमें रुद्र संहाररूपमें वर्णित हुए हैं। पौराणिक शिव भी इसी गुणसे विभूषित हैं।

ऋग्वेदमें लिखा है, कि रुद्र कहीं कहीं अग्नि कह कर भी स्तुत हुए हैं। यथा—

१। "त्वमग्ने रुद्र असुर"—(२।१।६)

२। "जराबोध तद्विविड्ढि विशेविशे स्तोमं रुद्राय दृशीकम्।" (१।२७।१०)

सामवेदमें (१।१५) भी यह ऋक् देखनेमें आती है। निरुक्तकार यास्कने इस ऋक्की व्याख्यामें कहा है,—

"अग्निरपि रुद्र उच्यते। तस्यैषं भवति।"

इस पुराणमें भी रुद्रकी यह अग्निमूर्त्ति देखते हैं। यथा—

"इत्युक्तः शङ्करः क्रुद्धो वदनं घोरचक्षुषा।
निर्दग्धकः प्रत्यानिशं ददर्श भगवानलः।"

(वामनपु० २ अध्याय)

मदनभस्मके समय भी हमें रुद्रका यह वैदिक आग्नेय प्रभाव देखनेमें आता है। (शिवपुराण ११।६)

ऋग्वेदमें और भी कई जगह रुद्रके आग्नेय प्रभावका विषय लिखा है। (६।१६।३९)

इस ऋक्की व्याख्यामें सायणने लिखा है—

"रुद्रो य एष यद् अग्निरिति श्रुतिः। रुद्रकृतमपि त्रिपुरदहनम् अग्निकृतमेव इति अग्निः स्तूयते।"

अर्थात् वेद कहते हैं, कि यह अग्नि ही रुद्र हैं। वेदमें अग्निकी स्तुतिमें लिखा है। यद्यपि त्रिपुरदहन रुद्रका ही कार्य है, किंतु वह अग्नि द्वारा ही किया गया है।

रुद्रके इस आग्नेय तेजके संबन्धमें पुराणमें अनेक प्रमाण वचन देखनेमें आते हैं। विस्तार हो जानेके भयसे यहां वे उद्धृत नहीं किये गये। उससे जाना जाता है, कि रुद्र जिस किसी मुहूर्त्तमें इच्छा करनेसे ही समस्त चराचरको दग्ध कर सकते हैं—"दग्धुं समर्थोमनसा क्षणेन सचराचरम्।" (शिवपु० २४।२९)

पुराणमें रुद्रके जो त्रिपुर दहनकी कथा है, वह वैदिक अभिधान नहीं है। वेदमें जो सूत्राकारमें लिखा गया है, पौराणिकगण अतीत युगांतरकी जनश्रुतिका विस्तृत विवरण संग्रह कर जनसमाजमें वही प्रकाश करते थे।

वेदसंहिताओंमें शिवका रुद्र नाम ही प्रधान रूपसे उक्त हुआ है, इसके सिवा उनके अन्यान्य नामोंका उल्लेख अधिक नहीं है। पुराणोंमें यद्यपि शिवके अनेक नाम कहे गये हैं, किन्तु वेदव्यवहृत चिरव्यवहार्य रुद्र नामका बहुत प्रयोग पुराणोंमें भी देखा जाता है। जो रुद्र हैं, वे ही शिव हैं, कर्मानुसार और भी सैकड़ों नामोंका उल्लेख किया गया है। रुद्र मङ्गलकर हैं, इस कारण उनका नाम शङ्कर है; ब्रह्माका कपाल उनके करमें संलग्न था, इस कारण वे कपाली हैं। (वामन ३ अ०)

हम लोग पुराणोंको वेदका ही पूरण समझते हैं। पुराणमें शिवलीलाके सम्बन्धमें जो कहा गया है, उसे अवैदिक अभिनव कल्पना नहीं कह सकते। पुराणमें शिवकी 'ज्ञानद' नामसे बार बार स्तुति की गई है। ज्ञानार्थियोंको शिवकी शरण लेनी चाहिये, श्रीभागवत आदि पुराणोंमें ऐसे कितने उपदेश देखे जाते हैं। ऋग्वेदमें भी लिखा है—

"रुद्राय प्रचेतसे मीढ़ुष्टमाय तव्यसे।
वोचेम शं तमं हृदे।" (१।४३।१)

इसी ऋग्वेदके पुराणकारने भावसंग्रह कर लिखा है—

"नमामि सततं भक्त्या ज्ञानदं वरदं शिवम्।"

पुराण पढ़नेसे हमें मालूम होता है, कि शिव सङ्गीताचार्य, ताण्डवनर्त्तक और विषाणवादक हैं। ऋग्वेदमें भी इसका सूत्र दिखाई देता है। यथा—

"गाथपतिं मेधपतिं रुद्रं जलाष भेषजं।
तच्छंयो सुम्नमीमहे।" (१।४३।४)

यहां जो 'गाथपति' शब्दका प्रयोग हुआ है, उससे स्पष्ट प्रमाणित होता है, कि रुद्रदेव वैदिक युगमें संङ्गीताचार्य कह कर भी सम्मानित होते थे।

शिवका दूसरा नाम पशुपति है। यद्यपि पाशुपत दर्शनमें जीवात्माको पशु और शिवको बद्ध जीवोंके पति कहा है, फिर भी ऋग्वेदमें पशुपति शब्दका मुख्य अर्थ और व्याख्या देखनेमें आती है। यथा—

"श न करोत्यर्वते सुग मेषाय मेष्ये।
नृभ्यो नारिभ्यो गवे।" (१।४३।६)

अर्थात् रुद्रदेव हम लोगों की समृद्धि बढ़ाते हैं और हमारे घोड़े, भेड़े और गाय आदि पशुओंका कल्याण करते हैं।

इस प्रकार और भी कितनी ऋचाओंमें पशु आदिके ऊपर रुद्र देवताका प्रभुत्व देखनेमें आता है। अतएव शिव का पशुपति नाम भी अवैदिक नहीं है।

पहले कहा जा चुका है कि ऋग्वेदमें भी रुद्रको कपर्दी कहा है। यथा—

"इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्रभरामहे मतीः।
यथा समसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्न नातुरम्॥" (१।११४।१)

कपर्दी रुद्र जो पशुपति हैं, वे ही गृहस्थों को आपद विपद्में 'शङ्कर' और रोगमें वैद्यनाथ हैं इस ऋक में उसका भी प्रमाण है।

शिव वीरोंके वरदाता हैं। पुराण पढ़नेसे जाना जाता है, कि कितने ही दैत्य योद्धागण और विजय लाभके लिये शिवके उद्देशसे तपस्या करते थे, शिवसे वर पाते थे। बाण, रावण आदि हजारों योद्धा शिवके अनुचर थे। शिव जो वीरोंके प्रभु हैं पुराणमें उसके दृष्टान्तका अभाव नहीं है। ऋग्वेदके १म मण्डलका ११४वा सूक्त पढ़नेसे मालूम होता है कि शिव वीरों के वर हैं; शिव सुख शान्ति और मङ्गलदाता हैं तथा रणदुर्मद योद्धा हैं और युयुत्सुओंके वरदाता हैं। समरमें विजयलाभके लिये पौराणिक शिव भक्तगण जिस तरह शिवकी प्रार्थना करते हैं वैदिक कालमें भी उसी प्रकार युयुत्सुगण रुद्रसे प्रार्थना करते थे। यथा—

"आ ते वयं सुमतिं देवयज्यया क्षयद्वीरस्य तव रुद्र मीढ्वः।
सुम्नायन्निद्विशो अस्माकमा चरारिष्टवीरा जुहवाम ते हविः॥" (१।११४।३)

हे रुद्र! आप वीरों के प्रभु हैं, आप परोपकारी हैं आप हम लोगोंके प्रति दया कीजिये, हम लोग जिससे अपने अविपन्न योद्धाओंके साथ आपके लिये हवन करनेमें समर्थ हों

ऋग्वेदके द्वितीय मण्डलके ३३वें सूक्तमें बहुत से रुद्रस्तोत्र देखनेमें आते हैं। पौराणिक रुद्रस्तोत्रकी तरह ये सब स्तोत्र भी विविध कामनाओंसे पूर्ण हैं। इन सब स्तोत्रोंका मर्म इस प्रकार है—हे रुद्र तुम हम लोगोंके प्रति दया करो, हम लोगोंको जिससे सूर्यहीन देशमें वास करना न पड़े, हम लोगोंके घोड़े नष्ट न हों और हम लोगोंके वंशकी वृद्धि हो। तुम्हारी सञ्जीवन औषधसे जिससे मैं दीर्घजीवी होऊ। हम लोगोंका पाप ताप रोग शोक विनष्ट करो।

गुणावतारोंमें शिवका सृष्टिसंहारक' कहा है। ऋग्वेदमें कई जगह रुद्रके सम्बन्धमें यह गुण आरोपित हुआ है। पुराणमें हम लोग शिवको जिस प्रकार संहारकरूपमें देखते हैं, वैदिकयुगके रुद्र भी उसी प्रकार संहारधर्मी कह कर विख्यात हैं।

पुराणमें शिवको 'वृषध्वज' कहा है। हम ऋग्वेदमें स्पष्टरूपसे ऐसे वर्णनकी भित्ति देख पाते हैं। यथा—

१। "क्वस्य ते रुद्र मृळयाकुर्हस्तो यो अस्ति भेषजो जलाषः।
अपभर्ता रपसो दैव्यस्याभी नु मा वृषभ चक्षमीथाः॥'
(२।३३।७)

२। "प्र बभ्रवे वृषभाय श्वितीचे महो महीं सुष्टुतिमीरयामि।
नमस्या कल्मलीकिनं नमोभिर्गृणीमसि त्वेषं रुद्रस्य नाम।"
(२।३३।८)

लक्षणालङ्कार द्वारा वृषवाहन रुद्र यहां पर 'वृषभ' कहे गये हैं। वे जो रजतगिरिनिभ शुभ्र वर्ण हैं, उद्धृत ऋकके 'श्वितीचे' पदमें उसका भी प्रमाण मिलता है। इसके सिवा और भी एक ऋकमें 'वृषभ' शब्दका उल्लेख है। यथा—

"एवा बभ्रो वृषभ चेकितान यथा देव न हृणीषे न हंसि।
हवनश्रुन्नो रुद्रेह बोधि बृहद्वदेम विदथे सुवीराः॥"
(२।३३।१५)

रुद्रका देहका वर्ण बभ्रु (brown) कह कर भी वर्णित हुआ है। तन्त्रमें शिवका भिन्न भिन्न ध्यान है। अतएव वैदिक रुद्रका भी भिन्न २ ध्यान रहना असम्भव नहीं। वास्तविक शिव जिस प्रकार बहुमूर्त्तिविशिष्ट हैं रुद्र भी उसी प्रकार बहुमूर्त्तिविशिष्ट हैं। ऋग्वेदमें उसका भी प्रमाण है। यथा—

"स्थिरेभिरङ्गैः पुरुरूप उग्रो बभ्रुः शुक्रेभिः पिपिशे हिरण्यैः ।
ईशानादस्य भुवनस्य भूरेर्न वा उ योषद्रुद्रादसुर्यम् ॥"
(२।३३।९)

शिव जिस प्रकार 'रजतगिरिनिभ' शुभ्र समुज्ज्वल हैं, ऋग्वेदमें रुद्र भी उसी प्रकार वर्णित हुए हैं। यथा—

"यः शुक्र इव सूर्यो हिरण्यमिव रोचते ।" (१।४३।५)

ऋग्वेदमें दूसरी जगह भी (१।११४।५) रुद्रको इस प्रकार रजतगिरिनिभ समुज्ज्वलताका प्रमाण मिलता है।

अथर्ववेदमें रुद्र 'सहस्र चक्षुः' कह कर वर्णित हुए हैं। (अथर्ववेद ११।२।१७) वाजसनेयसंहितामें भी सहस्रनयन रुद्रका परिचय पाया जाता है। यथा—

"असौ यस्ताम्रो अरुण उत बभ्रुः सुमङ्गलः ।
ये चैनं रुद्रा अभितो दिक्षु श्रिताः सहस्रशोऽवैषां हेड ईमहे ।" (१६।७)

विद्युत् शिवका ही प्रहरण है, शिवने जिससे मदनको भस्म और त्रिपुरको दहन किया, वह वैद्युतिक शक्तिका ही लीलाविकाश है। ऋग्वेदमें लिखा है—

"या ते दिद्युदवसृष्टा दिवस्परि" इत्यादि (७।४६।३)

यहां पर यह दिखलाया गया है, कि विद्युत् ही रुद्रशक्ति है। इस सप्तममण्डलके ४६वें सूक्तको १म ऋकमें ही रुद्रको "तिग्मायुध" कहा है। ऋग्वेदके २।३३।१० ११, ५।४२।११ और १०।१२५।६ इत्यादि स्थानोंमें रुद्रके आयुधका उल्लेख है। शिवके ऐसे आयुधतत्त्व भी पौराणिकोंसे विदित हैं। अथर्ववेदमें भी (१।२८।१, ६।९३।१, ६५।५।१-७) रुद्रायुधका परिचय मिलता है। पुराणकारोंने संहारक शूलीके हाथमें भी विविध अस्त्रोंका वर्णन किया है। कार्यतः रुद्रास्त्र और शिवास्त्र एक ही अर्थमें ही व्यवहृत हुआ है। महाभारतके अनुशासनपर्वमें शिवसहस्रनाममें लिखा है—

"वज्रहस्तश्च विष्कम्भी चमूस्तम्भन एव च"

हम ऋग्वेदमें भी 'वज्रहस्त' रुद्र देवको देख पाते हैं। यथा—

"श्रेष्ठो जातस्य रुद्र श्रियासि तवस्तमस्तवसां वज्रबाहो ।
पर्षि णः पारमंहसः स्वस्ति विश्वा अभीती रपसो युयोधि ॥"
(२।३३।३)

शुक्ल यजुर्वेद या वाजसनेयसंहितामें भी हम शिवनामका उल्लेख पाते हैं। यथा—

'एकस्ते रुद्रावसं तेन परो मूजवतोऽतीहि अवततधन्वा पिनाकावसः कृत्तिवासा अहिंसन्नः शिवोऽतीहि ।'
(३।६१)

रुद्र देवका शिव नाम क्यों पड़ा, वहां उसका कारण भी दिया गया है। रुद्र अपने सेवकोंकी प्रतिहिंसा नहीं करते, उन्हें क्रोध नहीं होनेसे ही प्रजाका मङ्गल होता है, अतएव वे शिव हैं। फिर वे अपने सेवकोंको सब प्रकारकी विपदोंसे बचाते हैं। इसलिये भी वे शिव हैं। वे मूजवान् नामक पर्वतवासी हैं। वे कृत्तिवास और पिनाकधारी हैं तथा शत्रुका नाश करनेके लिये हमेशा धनुष चढ़ाए हुए हैं। शुक्ल यजुर्वेदके इस मन्त्रमें पौराणिक शिवका और भी परिस्फुट परिचय पाया गया है।

शिव जो व्याधिनाशक हैं, यह ज्ञान भारतवासी हिन्दुओंके हृदयमें बहु प्राचीनकालसे चला आता है। वैदिकयुगके ऋषिगण प्राचीन ऋङ्मन्त्रमें इसे "भिषक्तमं" (२।३३।४) कहा करते थे और रोगसे मुक्त रखने (२।३३।२) तथा वीरोंकी देहको कार्यक्षम बनानेके लिये (२।४३।४) प्रार्थना करते थे। पशुओंकी रोगचिकित्साके लिये ही रुद्रदेवकी प्रार्थना की जाती थी। रुद्र औषध देते हैं (२।३३।१२), रुद्र प्रत्येक रोगकी औषध बतला देते हैं (५।४२।११), हजारों औषध उन्हें मालूम हैं (७।४६।३), अच्छी अच्छी सुनिर्वाचित औषध हमेशा उनके हाथमें रहती हैं (१।११४।५) उनकी औषधके गुणसे सभी रोग आरोग्य होता है, उनके औषधके गुणसे मनुष्य सौ वर्ष तक जीवित रहते हैं (२।३३।२), बच्चोंकी रोगमुक्तिके लिये उनकी प्रार्थना प्रयोजनीय (७।४६।२) है, मनुष्य और पश्वादिके मारिभयनिवारण और ग्रामके स्वास्थ्यसंरक्षणके लिये उनकी आराधना आवश्यक है (१।११४।१)। इसीलिये वे 'जलाष भेषज' नामसे अभिहित हुए हैं। अथर्ववेदमें भी उनके इस गुणका परिचय आया है (१।२७।६, १।४३।४, २।२७।६) यजुर्वेदमें भी रुद्रके चिकित्सा कार्यका परिचय है। यथा—

"मन्त्रमिमिषेपन गवेशाय पुष्पाय भेषजम्।
सुम सुख मेषाय गेव्य।" (३।५६)

हे रुद्र! तुम औषध स्वरूप सभी उपद्रवको नाश करो। अतएव हम मानवोंको गो अश्व मेष आदिका सर्वव्याधिविनाशक औषध दो।

इसके सिवा आश्वलायनगृह्यसूत्रमें (४।८।४०) तथा कौशिकसूत्रमें रुद्रके चिकित्साकार्यका परिचय है। महाभारतमें भी शिवसहस्रनाममें शिवको धन्वन्तरि कहा है। यथा—

धन्वन्तरिर्धूमकेतु स्कन्दो वैश्रवण स्तथा।'

इसकी टीकामें नीलकण्ठने लिखा है—धन्वन्तरि महावैद्य। 'भिषक्तमं त्वा भिषजां शृणोमि इति मन्त्र प्रामाद।'

फलतः उस प्राचीनतम वैदिक युगसे रुद्र या शिव इस देशमें वैद्यनाथरूपमें भी पूजित होते आ रहे हैं।

ऋग्वेदके युगमें आर्यगण रुद्रसे पुत्रवृद्धिकी कामना करते थे (२।३३।१), आज भी भारत रमणियां सन्तानकी कामनासे शिवके प्रसादके लिये सोमवार का उपवास करती हैं।

प्राचीन आर्यगण धनसम्पत्ति आदिके लिये रुद्रसे शुभसम्भव प्रार्थना करते थे। यथा—

"यच्छं च योश्च मनुरायजे पिता तदश्याम तव रुद्रप्रणीतिषु।" (१।११४।२)

हे रुद्र! हमारे पिता मनुने तुम्हारी आराधना करके जो धनसम्पत्ति पाई थी, तुम्हारी कृपा हो, तो हम भी वही धनसम्पत्ति पा सकते हैं। इसके सिवा कुछ और मन्त्रोंमें इसी प्रकारकी धनसम्पत्तिलाभकी प्रार्थना देखी जाती है।

वाजसनेयसंहितामें लिखा है कि रुद्र उपासकगण रुद्रसे धनसम्पत्तिकी प्रार्थना करते थे। यथा—

"अव रुद्र महीमहीयम् देवं त्र्यम्बकम्। यथा नो वस्यस करद्यथा नः श्रेयसस्करद्यथा नो व्यवसाययात्।" (३।५८)

यहां जिस प्रकार हम एक ओर धनप्रदातृत्वका परिचय पाते हैं, उसी प्रकार दूसरी ओर शिवका दूसरा सुप्रसिद्ध त्र्यम्बक नाम भी देखा जाता है। त्र्यम्बक शब्दकी व्याख्यामें महीधरने लिखा है 'त्र्यम्बकम्— त्र्यम्बकानि नेत्राणि यस्य तादृश देवं मम त्रिनेत्रोत्थय देव इत्यादि।'

यहां रुद्रदेवको स्पष्ट तौर पर त्रिनेत्र कहा गया है। हम शिवके ध्यानमें भी "पञ्चवक्त्र त्रिनेत्र" पाते हैं। अतएव इस त्रिनेत्रसे भी शिव जो यजुर्वेदके समय यजुर्मन्त्रमें उपासित होते थे, यही यह प्रमाणित होता है। पहले वाजसनेयसंहितासे एक मन्त्र (३।६१) उद्धृत किया जा चुका है, कि वे कृत्तिवास हैं। अतएव शिवके ध्यानका 'व्याघ्रकृत्ति वसानं' पद इसीसे जाना जाता है। फिर रुद्रदेव वैदिक युगमें जिस प्रकार धनप्रदान कर ऐश्वर्यकामियोंके हृदयमें सकाम भक्ति वर्द्धन करते थे पौराणिक युगमें वह भीषण संहारक रुद्र शिव नामसे प्रसिद्ध हो धनलोलुप भक्तोंकी कामना पूरी करनेमें सर्वदा तैयार रहते हैं। (भागवत १०।८८)

रुद्रके धनदातृत्वके सम्बन्धमें अथर्ववेदमें भी प्रमाण है। यथा—

"सोऽर्यमा स वरुणः स रुद्रः स महादेवः।
स रुद्रो वसुवनिर्वसुदेये नमोवाके वषट्कारोऽनुसंहितः॥" (१३।४।४)

रुद्रको यहां महादेव नामसे भी अभिहित किया गया है। अथर्ववेदमें हम कई जगह रुद्रको पशुपति नाम पाते हैं। शर्व और भव नामका उल्लेख भी यथेष्ट है। फलतः शिव, पशुपति और महादेव आदि नाम जो प्राचीन वैदिक कालमें भी सुप्रचलित था इन सब प्रमाणोंसे यह सहजमें विश्वास किया जा सकता है।

यजुर्वेदका 'शतरुद्रीय' प्रथम प्रसादनके लिये स्तुति विशेष है। इसमें पूर्वलिखित विषयों की बहुत सी बातें ही सन्निविष्ट हैं। शतरुद्रीय स्तवमें हम महादेवके निम्नलिखित पुराणप्रसिद्ध नाम देखते हैं—गिरिश ('गिरौ कैलास शेते गिरिशेरिति' महीधर) गिरित्र (गिरौ कैलासे स्थितो भूतानि त्रायते इति गिरित्र महीधरः) भिषक्, नीलग्रीव (नीलकण्ठ), कपर्दी भव, शर्व, पशुपति, शितिकण्ठ, सोम, रुद्र, उग्र, शिव, शंकर, नीललोहित (१६।४१)

शतपथब्राह्मणमें (६।१।३।१०) रुद्र और अग्निका

एक ही देवता कहा है तथा रुद्रकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें भी इतिवृत्त है। शर्व और भवादि नाम अग्निके ही पृथक् नाम हैं। भाष्यकारने लिखा है, "प्राच्यादिदेश-भेदेन शर्वादि नामभेदेऽपि देवता एक एव।" अर्थात् प्राच्यादि देशभेदसे नामभेद होने पर भी देवता एक ही हैं। सर्वादि अष्टमूर्त्तिका विवरण सबसे पहले इसी शतपथब्राह्मणमें देखनेमें आता है। मार्कण्डेय और विष्णुपुराणमें जो रुद्रोत्पत्तिका प्रसङ्ग है, वह शतपथ-ब्राह्मणके विवरणकी ही तरह है। शाङ्खायन या कौषि-तकी-ब्राह्मणमें भी यह आख्यायिका कुछ पृथक्भावसे वर्णित हुई है। रुद्रदेवताके साथ अग्निदेवताके एकता सम्बन्धमें महाभारतके वनपर्व्वमें भी परिचय पाया जाता है। यथा—

"आगम्य मनुजव्याघ्र सह देव्या परन्तप।
अर्च्चयामास सुप्रीतो भगवान् गोवृषध्वजः।
रुद्रमग्निं द्विजाः प्राहुः रुद्रसूनुस्ततस्तु सः।
रुद्रेण शुक्रमुत्सृष्टं तत् श्वेतं पर्वतोऽभवत्।"

कालाग्निरुद्र नामसे भी महादेवकी पूजा होती है। इस नामका एक उपनिषद् भी देखनेमें आता है।

श्वेताश्वतर उपनिषद्में लिखा है, कि रुद्रके विश्वतो मुख हैं। अतएव शिवप्रतिमाके पञ्चमुखकी श्रौत-भित्तिका प्रमाण भी उतना दुर्बल नहीं है। अथर्व्वशिर उपनिषद्में महेश्वर ईशान, शम्भु और महादेव आदि तथा कहीं कहीं रुद्रदेव नामसे अभिहित हुए हैं। इस उपनिषद्में उमाका नाम भी देखनेमें आता है। महे-श्वरादि नामकी व्याख्या भी अथर्व्वशीर्ष उपनिषद्में लिखी है।

कैवल्य उपनिषद्में शिवमूर्त्ति और भी प्रस्फुट है। यथा—

"उमासहाय परमेश्वरं प्रभुं त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम्।
ध्यात्वा मुनिर्गच्छति भूतयोनिं समस्तसाक्षिं तमसः परस्तात्।"

इसके सिवा नीलरुद्रोपनिषद् आदि और भी कितने उपनिषद् आदि और भी कितने उपनिषदोंमें रुद्र तथा शिवमाहात्म्य कीर्त्तित हुआ है।

कैवल्योपनिषद्में हम शिवपत्नी उमाका नाम पाते हैं। शुक्लयजुर्वेद पढ़नेसे जाना जाता है, कि अम्बिका देवी महादेवके साथ यज्ञभाग ग्रहण करती थी। (३।५७) किन्तु वे रुद्रकी भगिनी कह कर ही परिचित हैं। केन-उपनिषद्में हम सबसे पहले हैमवती उमाका परिचय पाते हैं। यथा—

"स तस्मिन्नेवाकाशे स्त्रियमाजगाम बहुशोभमानां उमां हैमवतीं तां होवाच किमेतद् यक्षमिति॥"

(केन ३।१२)

देवताओंको किस प्रकार सबसे पहले इन हैमवती उमाका दर्शन हुआ, इस उपनिषद्में उसका भी विवरण है। उसका संक्षिप्त मर्म यह है, कि ब्रह्मने एक दिन देवताओंको विजय प्रदान किया, किन्तु देवगण ब्रह्म शक्ति न समझ कर अपनेको ही प्रकृत विजेता समझने लगे। देवताओंका यह भ्रम दूर करनेके लिये ब्रह्म उनके सामने उपस्थित हुए। इस पर देवताओंने ब्रह्मके निकट वायु और अग्निको भेजा। ब्रह्मने पूछा, 'तुम लोगोंके पास कौन शक्ति है?' अग्निदेव बोले, 'मैं जिस किसी पदार्थको दहन कर सकता हूं।' वायु-ने कहा, 'मैं सभी वस्तुएं उड़ा सकती हूं।' इस पर ब्रह्मने उनकी शक्तिपरीक्षाके लिये एक तृण उनके सामने ला रख दिया, किन्तु अग्नि उसे जला न सके, और न वायु ही उसे उड़ा सकी। वायु और अग्नि अप्रतिभ हुए तथा कौन उनके सामने उपस्थित थे, उसका निर्णय वे न कर सके। तब देवताओंने इन्द्रको भेजा। इन्द्रके उपस्थित होते ही ब्रह्म अन्तर्हित हो गये। उस समय इन्द्रने आकाशमें बहुशोभमाना उमा हैमवतीको देखा। पूछने पर उमाने कहा, 'ये ब्रह्म हैं।'

भाष्यकारने उमाको ब्रह्मविद्या कहा है। स्वयं ब्रह्म-विद्या रमणीया रमणीमूर्त्ति धारण कर इन्द्रके सामने प्रकट हुई थीं।

तैत्तिरीय आरण्यकमें (१८ अनुवाक) "अम्बिका-पतये" पद है। यथा नारायणीयोपनिषद्में "अम्बिका पतये उमापतये पशुपतये नमोनमः।" सायणने इसके भाष्यमें लिखा है, "अम्बिका जगन्माता पार्वती—तस्याः भर्त्रे अम्बिकापतये।" तैत्तिरीय आरण्यकमें उमा शब्द-का भी प्रयोग है। सायणने इस उमाको भी रुद्रपत्नी ही कहा है। इसके सिवा गौरी और पार्वती नाम भी

वैदिक युगमें ही प्रचलित है। पार्वती भी रुद्राणी कह कर वैदिक युगसे परिचित है।

नारायणीय उपनिषद् कृष्ण यजुर्वेदके अन्तर्गत है। इस उपनिषद्को तैत्तिरीय आरण्यक उपनिषद् भी कहते हैं। इसमें हम रुद्र और उनकी पत्नीका यथेष्ट परिचय पाते हैं। इस उपनिषद्में रुद्रगायत्री और दुर्गागायत्री है। दुर्गा कात्यायनी नामसे प्रसिद्ध है। दुर्गा इस उपनिषद्में दुर्गि और कन्या कुमारी नामसे भी अभिहिता हैं। दुर्गाका एक प्रणाम भी इस उपनिषद्में देखा जाता है। यथा—

"तामग्निवर्णां तपसा ज्वलन्तीं वैरोचनीं कर्मफलेषु जुष्टाम्।
दुर्गां देवीं शरणमहं प्रपद्ये सुतरसि तरसे नमः॥"

यहां दुर्गा 'अग्निवर्णा' कह कर वर्णित हुई है। अग्नि रुद्रकी ही एक मूर्त्ति है। अग्नि और रुद्र एक हो कह कर जगह जगह वर्णित हुए हैं। मुण्डकोपनिषद्में लिखा है—

"काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा।
स्फुलिङ्गिनी विश्वरुची च देवी लेलायमाना इति सप्तजिह्वा॥"

काली कराली आदि नाम यहां अग्निजिह्वा कह कर वर्णित हुए हैं। तात्पर्य यह, कि ये अग्नि या रुद्रशक्ति हैं।

दुर्गा उमा हैमवती और पार्वती नाम रुद्रपत्नी अर्थमें ही व्यवहृत हुए हैं। दुर्गाके पार्वती नामकी व्युत्पत्ति तैत्तिरीय आरण्यकमें भी देखी जाती है। यथा नारायणीयोपनिषद्में लिखा है—

"उत्तमे शिखरे जाते भूम्यां पर्वतमूर्द्धनि।
ब्राह्मणेभ्योऽभ्यनुज्ञाता गच्छ देवि यथा सुखम्॥"

इस उपनिषद्में रुद्रकी भी कितनी स्तवस्तुति देखनेमें आती है।

पुराणके मतमें ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर ये तीनों ही एक हैं। जो इस जगत्की सृष्टि करते हैं वे ब्रह्मा पालनकर्त्ता विष्णु और जो संहारकारक हैं वे ही शिव कहलाते हैं।

"न ब्रह्मा भवतो भिन्नो न त्वमस्मत्तथा।
न चाहं युवयोर्भिन्नो ह्यभिन्नत्वं सनातनम्॥"

(कल्किपुरा० ११ अ०)

भगवान् गरुड़ध्वजने महादेवसे कहा था, कि ब्रह्मा आपसे भिन्न नहीं हैं और आप भी ब्रह्मासे अभिन्न हैं तथा मैं भी आप दोनोंसे भिन्न नहीं हूं। आपसकी जो यह अभिन्नता है, वह सनातन है।

एक दिन शिवने भगवान् विष्णुसे पूछा था, "ब्रह्मा, विष्णु और शिव ये तीन एक हो कर भी विभिन्न क्यों हुए हैं, इनका स्वरूप मुझसे कहिये" विष्णुने उत्तर दिया, पहले जब जगत् नहीं था, ये सभी परिदृश्यमान प्रसुप्त की तरह तमोगुणके दुर्भेद्य आवरणसे आवृत, अलक्ष्य और अपरिज्ञात थे, उस समय दिवारात्रि, पृथिवी, ज्योतिः, आकाश, जल, वायु आदि कुछ भी न था, ये सिर्फ सूक्ष्म, अतीन्द्रिय, अव्यक्त अद्वय, ज्ञानमय एक परमब्रह्म थे, उस परब्रह्मके ही ये तीन रूप हैं। उस पर ब्रह्मका काल नामक एक और नित्यरूप है। जब परब्रह्मने इस जगत्की सृष्टि करने की इच्छा प्रकट की, तब अपनी प्रकृतिको विक्षोभित तथा प्रकृतिके इच्छाक्रमसे त्रिगुण मय निज शरीरको भी तीन भागोंमें विभक्त किया। यह त्रिभक्त शरीरत्रय त्रिगुणमय हुआ। उस अखण्ड शरीर का ऊर्द्ध्वभाग चतुर्मुख चतुर्भुज और कमलकेशर सदृश आरक्तवर्ण विरिञ्चिके शरीरमें परिणत हुआ। उसके मध्य भागमें एकमुख, श्यामवर्ण शङ्ख चक्र गदा पद्मधारी चतुर्भुज विष्णु शरीर और अधोभागमें पञ्चानन चतुर्भुज स्फटिकवत् शुक्लवर्ण शिवदेह हुए। उस समय वे ब्रह्मशरीरमें सृष्टिशक्ति नियोजित कर आप ब्रह्मारूपमें सृष्टिकर्त्ता हुए। विष्णुशरीरमें स्थितिशक्ति तथा शिवशरीरमें प्रलयकारिणी शक्ति नियोजित की गई। एक परब्रह्म ही सृष्टि, स्थिति और प्रलय ये तीनों कार्य करनेमें ब्रह्मा, विष्णु और शिव पृथक् पृथक् नामसे अभिहित हुए हैं। यथार्थमें हम लोग विभिन्न नहीं हैं तीनों ही एक हैं, अभिन्न हैं।' (कालिकापु० १२ अ०)

शिवने पिताके औरस या माताके गर्भसे जन्मग्रहण किया है, ऐसा कोई भी प्रमाण न पा कर कवि कालिदासने कुमारसम्भवमें लिखा है—

'वपुर्विरूपाक्षमलक्ष्यजन्मता"

अर्थात् शिवके कुलका कोई भी परिचय नहीं है। वे स्वयं शिव स्वयम्भु हैं। पुराणमात्रमें ही शिवका बहु

लीला वर्णित हुई है। शिव पर्वतवासी हैं वेदमें भी इसका प्रमाण है। इसी कारण वे 'गिरिश' कहलाते हैं। पुराणमें कैलास ही शिवके वासस्थानरूपमें प्रकल्पित हुआ है। शिवपुराणमें शिवका जो ध्यान है, वही ध्यान सुविख्यात है। यथा—

"ओं ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसं।
रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम्।
पद्मासीनं समन्तात् स्तुतममरगणै र्व्याघ्रकृत्तिं वसानं
विश्वाद्यं विश्ववीजं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम्।
कर्पूरगौरं करुणावतारं संसारसारं भुजगेन्द्रहारम्।
सदा वसन्तं हृदयारविन्दे भवं भवानी सहितं नमामि।
कैलासपीठासनमध्यसंस्थं भक्तैश्च नन्द्यादिभिः सेव्य
मानम्।
भक्तार्त्तिदावानलमप्रमेयं ध्यायेदुमालिङ्गितविश्वरूपम्॥"

हम इन तीन श्लोकोंमें शिवदुर्गाकी अति परिस्फुट प्रतिच्छवि मानसनेत्रमें देख पाते हैं। शिवका वर्ण कर्पूरधवल है ऋग्वेदमें भी हमने उसका प्रमाण पाया है। हिमगिरिके कैलासशृङ्ग पर रजतगिरिनिभ कर्पूरगौर महादेव पद्मासन पर बैठे हैं, बाईं ओर गिरिजा हैं। वे पिनाकपाणि और त्रिगुणधारी हैं, डमरू और कपाल भी उनके हाथमें शोभा पा रहा है। इसके सिवा परशु भी उनका आयुध है। उनका पाशुपतास्त्र भुवनविख्यात है। वे जटाजूटधारी (कपर्दी), वृषवाहन, वृषध्वज और नीलकण्ठ हैं। भुजङ्गमाला ही उनके अङ्गप्रत्यङ्गका अलङ्कार है। तन्त्रमें शिवके अनेक प्रकारके ध्यान हैं, जो पीछे लिखे जायेंगे। पुराणमें शिवलीलाके अनेक आख्यान हैं। कुछ आख्यानोंमें शिवचरितका वर्णन संक्षेपमें किया जाता है।

शिवका एक नाम कपाली है। इस नामके साथ शिवकी एक लीला संश्लिष्ट है। वामनपुराणमें लिखा है, कि पूर्वकालमें समस्त जगत् एकार्णवमें जलमग्न हो कर स्थावर जङ्गम चन्द्र सूर्य नक्षत्र अनल अनिल आदि विनष्ट हुए थे। उस समय अप्रतर्क्य, अज्ञेय भाव कुछ भी न था, वृक्ष लता आदि समस्त वस्तु कारणसलिलमें निमग्न थी। अर्णवशायी भगवान् देवपरिमाण सहस्र वर्ष इस कारण सलिलमें निद्रित थे। निद्रा टूटने पर उन्हों ने रजोगुणसे पञ्चवदन ब्रह्माको और तमोगुणसे पञ्चवदन शङ्करकी सृष्टि की। कपर्दीने उत्पन्न होते ही अक्षमाला ले कर योग आरंभ कर दिया। भगवानने शङ्करका योगप्रभा देख कर समझा, कि इनसे इस प्रकार सृष्टिका कार्य नहीं चलेगा। तब उन्होंने अहङ्कारकी सृष्टि की। ब्रह्मा और शङ्कर अहङ्कारके वशीभूत हुए। दोनोंमें भीषण कलह उपस्थित हुआ। शङ्करने अपने नखसे ब्रह्माका एक मस्तक काट डाला। तभीसे ब्रह्मा चतुर्मुख हुए तथा वह छिन्नमस्तक शङ्करके करतलमें संलग्न रहा। उसी समयसे महादेव कपाली नामसे प्रसिद्ध हुए। पीछे उनके शरीरमें ब्रह्महत्या पाप घुस गया। महादेव धीरे धीरे निस्तेज होने लगे। ब्रह्महत्यापापसे मुक्तिलाभ करनेके लिये महादेवने अनेक तीर्थोंमें पर्यटन किया, किन्तु कहीं भी वह नरकपाल हाथसे न गिरा। आखिर वे नारायणकी तपस्या करने लगे। नारायणने तपस्यासे सन्तुष्ट हो उन्हें वाराणसी धाममें असिवरुणाके मध्य स्नान करनेके लिये उपदेश दिया था। वहां स्नान करनेसे ब्रह्महत्या पाप दूर हुआ सही पर ब्रह्माका कपाल हाथसे न छूटा। अनन्तर उन्होंने भगवान् केशवके दर्शन किये और उनके आदेशसे सामनेवाले एक सर्वतीर्थप्रगण्य ह्रदमें स्नान किया। स्नान करते ही उनके हाथसे कपाल नीचे गिर पड़ा। तभीसे वह स्थान 'कपालमोचन' नामसे प्रसिद्ध हुआ है।

दक्षयज्ञविनाश शिवलीलाकी एक और प्रधान घटना है। पौराणिकोंने शिवलीलाके मध्य इस लीलाकी सबसे अधिक प्रधानता दिखलाई है। इसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—दक्ष प्रजापतिकी कन्या सतीके साथ शिवका विवाह हुआ। किसी समय दक्ष प्रजापतिने एक यज्ञका आरम्भ किया। उस यज्ञमें शिवको छोड़ और सभी ऋषि देवता आदिको निमन्त्रण दिया गया। दक्षप्रजापति नाना कारणोंसे शिवके प्रति असन्तुष्ट थे। दक्षके असन्तोषका कारण भिन्न भिन्न पुराणमें भिन्न भिन्न रूपसे वर्णित है। जो हो, शिवपत्नी सती इस यज्ञमें बिना निमन्त्रणके ही गई। दक्ष प्रजापति अपनी कन्याके सामने उसके पति शिवके प्रति अवमाननासूचक कटुवाक्य कहने लगे। इस पर पतिप्राणा सती

को समान कष्ट उपस्थित हुआ और उसी समय उन्होंने प्राणत्याग किया। सतीके देहत्यागका संवाद सहसा कैलास पहुंचा। महादेवके हृदयमें क्रोधकी आग धधक उठी। वे अब क्षणकाल भी ठहर न सके और भूतप्रेत प्रमथों के साथ दक्षालयको चल दिये। वहां पहुंच कर हजारों शिवसेनाने दक्षयज्ञको विध्वंस किया और यज्ञमें आये हुए देवता और ऋषियों के प्रति घोर अत्याचार आरम्भ कर दिया। यज्ञस्थलमें भीषण युद्ध छिड़ गया। पिनाकपाणि महादेवने दक्षका शिर काट डाला। महादेवका दुर्दमनीय और प्रभाव देख कर देवगण उनका स्तव करने लगे।

आशुतोषने स्तवसे संतुष्ट हो क्षतिग्रस्त देवताओंके अङ्गकी क्षति उसी समय पूरी कर दी। जिसका जो अङ्ग विनष्ट हुआ था, महादेवके प्रभावसे उसे वह अङ्ग प्राप्त हो गया। दक्ष पर भी शिवने अनुग्रह दरसाया। परन्तु जिस मुखसे दक्षने शिवनिन्दा की थी, वह मुख अब प्राप्तियोग्य न होनेके कारण महादेवने दक्षके शरीरमें छागमुण्ड जोड़ दिया। महादेव देवताओंमें प्रधानतम चिकित्सक थे। अस्त्रविद्या और भैषज्यविद्याके वे शिक्षागुरु थे। अतएव उनकी कृपासे किसीने विनष्ट अङ्ग प्रत्यङ्ग लाभ किया, किसीने छिन्नकेश फिरसे पाया किसीका क्षत अङ्ग उसी समय चङ्गा हो गया, किसीको असहनीय गात्रवेदना उसी समय प्रशमित हो गई। देवगण विस्मित हो कर अपने अपने धामको चल दिये। किन्तु प्रियतमा प्रणयिनी सतीविरहमें महादेव बिलकुल उन्मत्त हो गये। परम प्रेमिक महादेव पत्नीप्रेमसे अधीर हो मृतदेहको अपने कंधे पर ले कर उन्मत्तकी तरह ताण्डव नृत्य करते करते बड़ी उदासीनतासे परिभ्रमण करने लगे।

विष्णु शङ्करकी यह दशा देख बड़े दुःखित हुए। वे शिवके कंधे पर रखी हुई सतीदेहको सुदर्शन चक्रसे काटने लगे। एक एक स्थानमें सतीकी देहका एक एक अंश छिन्न हो कर गिरा। जहां जहां सतीदेहका अंश गिरा था, वे सब स्थान पीठस्थान और परम पवित्र तीर्थरूपसे गिने गये हैं।

शिव देवताओंमें ज्ञान वैराग्यका आदर्शावतार हैं। तपस्या और योग शिवका स्वभावसुलभ नित्य प्रवृत्ति है। सतीके देहत्याग करने पर शिवजी एक निर्जन वनमें तपस्या करने लगे। इधर सतीदेवीने नगेन्द्रराज हिमवानकी गृहिणी मेनकादेवीके गर्भमें फिरसे जन्म लिया। उनका अलौकिकसामान्य सौन्दर्य और शङ्करको पानेके लिये असाधारण तपस्याका विवरण, विविध पुराणमें विशेषतः महाकवि कालिदासके कुमारसम्भव ग्रन्थमें विस्तृतरूपसे लिखा है। इस सम्बन्धमें शिवपुराण वामनपुराण और कुमारसम्भवके वर्णनमें यथेष्ट सादृश्य है। ये सब घटनाएं पाठकोंसे छिपी नहीं हैं, अतएव बहुत बढ़ जानेके भयसे उसका वर्णन यहां नहीं किया गया। शङ्कर जिस निभृत वनमें तपस्या करते थे, पर्वतराजतनया पार्वती भी शिवप्राप्तिके लिये उसी वनमें कठोर तपस्या करती थीं। समाधिमग्न महायोगी महेश्वर इस समय बाह्यज्ञानविरहित थे। अतएव गिरिराजनन्दिनी उनकी पार्श्ववर्त्तिनी महायोगिनीके वेशमें वहां रहने पर भी शिवजी उन्हें पहचान न सके।

इधर तारकासुरके उपद्रवसे देवगण तंग आ गये थे। शिववीर्यसमुत्पन्न सन्तानको छोड़ तारकासुर और किसीसे वध्य नहीं है, जब यह रहस्य देवताओंको मालूम हुआ तब उन्होंने हरयोगभङ्गके लिये वसन्तके साथ मदनको नियुक्त किया। अपने अनुचरोंके साथ शिवके योगस्थलमें पहुंच कर मदनने देखा कि महादेव ध्यानमग्न हैं। उन्होंने अपना परिणाम जान कर भी महायोगी महादेवके प्रति अपना बाण फेंका। मदनका बाण अव्यर्थ था। उस बाणसे देवाधिदेव महायोगी महेश्वर भी उसी समय विचलित हो उठे, जब उन्हें बाह्यज्ञान हुआ, तब उन्होंने देखा, कि पुष्पधनु उनके सामने खड़े हो कर उन पर बाण फेंक रहे हैं। क्रोधसे शङ्कर अग्निमय हो उठे। उनके तृतीय नेत्रसे भीषण अनलधारा उसी समय बहने लगी। उस धाराने तडित्वेगसे जा कर मदनको जला दिया।

रतिने धूलिधूसरित हो रोती रोती प्रस्थान किया। सुखमय वसन्तवन अचानक मानो श्मशानमें परिणत हो गया। ध्यानभङ्गके बाद महादेवने पार्वतीको मानो देख कर न देखा और वे वहांसे चल दिये। हरकोपानलसे

मदन भस्मीभूत हुए सही, पर वे शङ्करके हृदयमें जो बाण फेंक गये थे, उस बाणकी आग न बुझी। उससे महादेवके हृदयमें विकार उपस्थित हुआ। ध्यानभङ्ग होनेके बाद वे पार्वतीको देख कामबाणसे विमुग्ध हो गये थे। किन्तु वे हठात् अपनी मूर्त्तिमें पार्वतीके पास न जा कर एक जटिल ब्रह्मचारीके वेशमें तपस्विनी पार्वतीके कुटीरद्वार पर गये और उनकी शिवानुरागपरीक्षा करनेके लिये उनके सामने नाना प्रकारकी शिवनिन्दा करने लगे। पार्वतीने भी उसका यथायोग्य उत्तर दे कर ब्रह्मचारीको शिवनिन्दा करनेसे रोका। परन्तु जटिल ब्रह्मचारीने उनकी एक न सुनी और पुनः पुनः शिवनिंदा करने लगे। पार्वती शिवनिन्दा सुन कर आशङ्कासे स्थान छोड़ देनेके लिये तत्पर हो गईं। इस समय परम करुणामय महेश्वरने अपना असली रूप दिखा कर शैलाधिराजतनयाको कृतार्थ किया। उमाकी तपस्या फलवती हुई। सप्तर्षियोंने शैलराज और मेनका देवीसे कुल वृत्तान्त जा कहा। इसके बाद नगेन्द्रराज हिमवानने बड़ी धूमधामसे शिवके साथ अपनी कन्या पार्वतीका शुभविवाह कर दिया।

ये सब विषय वामनपुराण, शिवपुराण और कुमारसम्भवमें विस्तृत रूपसे लिखे हैं। विवाहके बाद बहुत दिनों तक शिव पार्वती दोनों एक साथ रहे। इस समय शिववीर्य (पार्वतीके गर्भसे नहीं) कुमार कार्त्तिकेयकी उत्पत्ति हुई। उन्होंने ही देवसेनापतिरूपमें तारकासुरको निहत किया।

शिवका एक नाम त्रिपुरारि है। शङ्करने त्रिपुरका दहन करके ही यह नाम पाया था। त्रिपुरदहन शिवलीलाकी एक दूसरी प्रधान घटना है। इसका मर्म इस प्रकार है,—तारकासुरके मारे जाने पर उसके तीन पुत्रों विद्युन्माली, तारकाक्ष और कमलाक्षने देवताओंका प्रभाव खर्व करने तथा अपना आधिपत्य फैलानेके लिये कठोर तपस्या ठान दी। तपस्यासे प्रसन्न हो ब्रह्मा वर देनेके लिये आये। ब्रह्माके वरसे तीनों भाईयोंने इन्द्रादि देवताओंके अभेद्य तीन पुर पाये, पहला स्वर्णमय, दूसरा रजतमय और तीसरा लोहमय था। ब्रह्माके कहनेसे मयदानवने इस त्रिपुरकी रचना की थी। इस त्रिपुरका अनन्त वैभव तथा अलोकसामान्य प्रभाव अति विस्तृतरूपसे शिवपुराणकी ज्ञानसंहिताके २१वें अध्यायमें लिखा है। बिना धर्मके कोई भी वैभव नित्य प्रतिष्ठित नहीं रह सकता, यह तीनों दैत्य अच्छी तरह जानते थे। इस कारण उन्होंने त्रिपुरमें धर्मकार्यके लिये अच्छी व्यवस्था कर दी थी। अतएव धर्मबलसे, ऐश्वर्यबलसे और महावीर्यसे तीनों त्रिपुराधिपोंने इन्द्रादि देवताओंको विध्वस्त कर डाला था।

देवगण दुःखित हो कर ब्रह्माके पास गये और अपना दुखड़ा रोया। ब्रह्माने कहा, 'मैं उनका वरदाता हूं, अतएव वे मुझसे नहीं मारे जा सकते। विशेषतः त्रिपुर पुण्यमय नगर है। पुण्य रहते किसीका विनाश नहीं होता। आप लोग शङ्करके पास जायं, वही आपका दुःख दूर कर सकते हैं। तदनुसार देवगण शिवके पास गये। शिवने कहा, 'त्रिपुर पुण्यमय स्थान है, पुण्य रहते त्रिपुरका विनाश नहीं हो सकता। आप लोग चक्री विष्णुके पास जायं, वही उपयुक्त मन्त्रणा देंगे।' देवताओंने विष्णुके पास जा कुल वृत्तान्त कह सुनाया। विष्णु बोले, 'इस छोटी-सी बातके लिये आप लोग चिन्ता न करें, त्रिपुरका विनाश महादेव द्वारा ही होगा, पर हां, जब तक त्रिपुरमें वेदधर्म प्रबल रहेगा, तब तक त्रिपुरका विनाश नहीं है। अतएव त्रिपुर-विनाशके लिये सबसे पहले त्रिपुरवासीका धर्म नष्ट करना होगा। धर्मके विनष्ट होनेसे ही त्रिपुरवैभव आपे आप विनष्ट होगा। तब देवादिदेव महादेव त्रिपुरको भस्म कर डालेंगे। दैत्यगण देवताओंके चिरशत्रु हैं। इनका प्रभाव जगत्का मङ्गलजनक नहीं है। अतएव इसके लिये अवश्य ही कोई व्यवस्था करनी होगी।

विष्णुकी युक्तिपूर्ण उक्ति सुन कर देवगण आश्वस्त हो चले गये। इधर विष्णुने मायी मुण्डी नामक एक धर्मध्वंसकारी पुरुषकी सृष्टि करके उसे त्रिपुरमें भेज दिया। उसका वेदविरुद्ध उपदेश त्रिपुरमें प्रचारित होने लगा। त्रिपुरवासिगण आपातमनोरम उपदेशोंको ग्रहण कर धर्मभ्रष्ट हो गये। धर्म और लक्ष्मी त्रिपुरसे निकल गईं।

देवगण सुसमयकी प्रतीक्षा कर रहे थे। वे लोग

उपयुक्त समय देख कर शिवके पास गये और उन्हें कुल वृत्तान्त कह सुनाया। महादेव बड़ा धूमधामसे अस्त्र शस्त्र सैन्य समरसज्जासे सज्जित हो त्रिपुर विनाशके लिये चल दिये। देवताओंने ससैन्य उसका साथ दिया। देवताओंके साथ पिनाकपाणि तीनों पुरके सामने गये तथा एक कालाग्निरुद्र स्वरूप पाशुपतबाणसे निमिष मात्रमें घुसते तीनों दैत्योंके अनन्तवैभवपूर्ण अमेद्य त्रिपुरको भस्मीभूत कर डाला। वे मुहूर्त्त मात्रमें केवल इच्छाशक्तिसे विशाल अनन्त ब्रह्माण्डको दग्ध कर सकते थे, त्रिपुरदहनकालमें उनका यह आडम्बरपूर्ण उद्योग केवल लौकिक लीलामात्र था। इसी घटनासे महादेवके रुद्र त्रिपुरारि और त्रिपुरान्तक आदि नाम पड़े।

रामायण और महाभारतमें महादेव वीररूपमें वर्णित हुए हैं। इन दो ग्रन्थोंमें भी उनके वीरत्वकी अनेक आख्यायिकाएं हैं। विष्णुके साथ महादेवके युद्धकी कथा रामायणमें भी देखी जाती है। श्रीकृष्ण जो महादेवकी यथेष्ट श्रद्धा करते थे तथा उनसे जो इन्होंने अस्त्रादि संग्रह किये थे, महाभारतमें इसका विवरण दिया गया है। महाभारतीय द्रोणपर्वाध्याय पढ़नेसे जाना जाता है कि जयद्रथवधके लिये कृष्णार्जुनने महादेवके पास जा कर स्तव स्तुतिसे उन्हें सन्तुष्ट किया तथा उनसे पाशुपत अस्त्र पाया था। अनुशासनपर्वमें भी कृष्ण द्वारा महादेवका माहात्म्य कीर्त्तित है। हम शिवपुराणमें उसीकी प्रतिध्वनि सुनते हैं। अनुशासनपर्वका चौदहवां अध्याय महादेवके माहात्म्यसे पूर्ण है। इसके सिवा और भी अनेक स्थलोंमें महादेवका माहात्म्य कीर्त्तित हुआ है। इस अध्यायमें उपमन्युकी माताने महादेवका जो चरित प्रकट किया है, वह शैवभावका ही अतीव समादृत तत्त्व है। महादेवकी अनन्तमूर्त्ति और अनन्त भावकी कथा यहां अभिव्यक्त हुई है। यथा—

'एकवक्त्रो द्विवक्त्रश्च त्रिवक्त्रोऽनेकवक्त्रकः।"

(महाभारत अनु० १४।१४०)

महाभारतमें शिवमाहात्म्य सम्बन्धीय अनेक कथा लिखी वर्णित हैं। भारविके किरातार्जुनीय महाकाव्यका मूल सूत्र भी महाभारतसे लिया गया है। एक दिन अर्जुनने एक शूकर देख कर उसका पीछा किया। एक दानवने मायाबलसे शूकररूप धारण किया था। इस समय महादेव अर्जुनके वीरत्वकी परीक्षा करनेके लिये किरातरूपधारण कर वहां गये। किरातरूपी महादेवने कहा 'मैं शूकरको मारूंगा, परन्तु अर्जुन इस पर सम्मत न हुए। दोनों ने ही एक साथ बाण फेंका। इस पर वीरकेशरी अर्जुन क्रुद्ध हो बोले, 'व्याध! तुमने मृगयाधर्मका लङ्घन किया है, अतएव तुझे मैं मारूंगा।' किरातने जवाब दिया, 'मैंने ही पहले शूकरको देखा था शूकरको मैंने मारा है अब तुम्हें भी मारूंगा।' इसके बाद दोनोंमें तुमुल संग्राम छिड़ गया। अर्जुनकी अलोकसामान्य वीरता पर प्रसन्न हो कर महादेवने उन्हें पाशुपत अस्त्र प्रदान किया।

रामायणमें शिवकी जटासे गङ्गाप्रादुर्भावकी कथा लिखी है।

भगीरथने पितृकुल उद्धारार्थ गङ्गावतरणके लिये घोर तपस्या की। तपस्यासे सन्तुष्ट हो कर ब्रह्माने अपने कमण्डलुसे गङ्गादेवीको निकाल कर भगीरथके प्रार्थनानुसार पृथ्वी पर छोड़ दिया। ब्रह्माने भगीरथको वर दे कर कहा, 'गङ्गा पृथ्वी पर अवतरण करेंगी सही, पर अवतरणकालमें शिवको छोड़ और कोई भी इनका वेग रोक न सकेगा। अतएव शिवसे भी प्रार्थना करना होगा।'

भगीरथ ब्रह्माके आदेशानुसार शिवजीकी आराधना करने लगे। आशुतोष भगीरथकी आराधनासे प्रसन्न हो गङ्गावेग धारण करनेमें स्वीकृत हुए। किन्तु गङ्गादेवीके मनमें इस समय एक अभिनव भावका उदय हुआ। वे अवतरणके समय सोचने लगी, 'मैं दुःसह स्रोतसे शङ्करको ले कर पाताल प्रवेश करूंगी।' सर्वज्ञ महादेवको गङ्गादेवीके इस गर्वपूर्ण दुःसाहसकी बात उसी समय मालूम हो गई। इसलिये उनका गर्वनाश करनेके लिये शिवजीने अपना जटाजाल फैला दिया। हिमालयके विशाल गह्वरकी तरह जटागर्भमें प्रविष्ट हो कर जाह्नवीने फिर निकलनेका कोई रास्ता न पाया। वे अकुला हो कर शिवकी जटामें बहुत दिनों तक विचरण

करने लगीं। कपर्द्दीने कई वर्ष तक अपने जटाजालमें जाह्नवीको छिपा रखा था।

भगीरथने फिरसे महादेवको आराधनासे सन्तुष्ट किया। आखिर भगीरथकी तपस्यासे शिव जटाजालसे जाह्नवी मुक्तिलाभ करनेमें समर्थ हुई थीं।

शिवका एक और प्रसिद्ध नाम नीलकण्ठ है। इस नामके साथ भी शिवलीलाका इतिहास विजड़ित है। किसी समय देवासुरोंने समुद्रमन्थन करके अमृत पानेकी चेष्टा की। किन्तु अमृत निकलनेके पहले ही मन्थन वेगसे समुद्रसे नीलाञ्जन सदृश भीषण हलाहल उद्गीर्ण होने लगा। वह कालकूट देख कर देवदानवगण विस्मित और भयभीत हुए और सबके सब ब्रह्माके पास गये। ब्रह्मा देवासुरको विपद्‌की कथा सुन कर उनकी भलाईके लिये स्वयं शिवका स्तव करने लगे। भगवान् भवानी पतिने ब्रह्माके स्तवसे संतुष्ट हो उसी समय ब्रह्माको दर्शन दिये। ब्रह्माने कहा, 'समुद्रमंथनसे नीलाञ्जन सदृश कालकूट उद्गीर्ण हुआ है। आप यदि इसे पान न करेंगे, तो इस विषवेगसे यह जगत् विनष्ट हो जायेगा। सभी प्राणीकी भलाईके लिये आपको यह हलाहल पान करना होगा। सिवा आपके और कोई यह विषवेग सहन नहीं कर सकता। परम करुणामय आशुतोषने इस प्रस्तावको स्वीकार कर लिया। वे उसी समय संवर्त्तकाग्निकी तरह घोर नीलवर्ण हलाहल पान करनेमें प्रवृत्त हुए। उस हलाहल पानके समय उसका तीव्र नील तेज मृणालधवल महादेवका रजतशुभ्र कण्ठ फाड़ कर निकलने लगा तथा महादेवकी इस सर्व लोकरक्षा जनक कीर्त्तिकी विजयपताका रूपमें वह नीलवर्ण उनके कण्ठमें सदाके लिये आसक्त हो रहा। इसी घटनासे महादेवका नीलकण्ठ नाम हुआ है।

जालन्धर, अन्धक और दारुक आदि भयङ्कर दैत्योंके विनाशके समय शङ्करका प्रभूत शौर्यवीर्यमयी लीलाका परिचय पाया जाता है। चन्द्रार्द्ध जटा-कलाप कीर्त्तिप्रभाद्योतितशेखर महादेवका योगवैभव, वैराग्यवैभव और शौर्यवैभव श्रुति स्मृति पुराणादिके पत्र पत्रमें वर्णित है। कोई भी उनका लीलामाहात्म्य वर्णन कर शेष नहीं कर सकता। यही सभी शास्त्रों और तन्त्रोंका अंतिम सिद्धांत है।

महाभारतके अनुशासनपर्व्वमें लिखा है—

"हृदिस्थः सर्व्वभूतानां विश्वरूपो महेश्वरः।
भक्तानामनुकम्पार्थं दर्शनञ्च यथा श्रुतम्॥" (१४।१३७)

यह विश्वरूपी महेश्वर सर्वभूतके हृदयमें अवस्थित हैं। भक्तोंके प्रति दया करके वे भिन्न भिन्न मूर्त्तिमें उन्हें दर्शन देते हैं। वास्तविक नाना तन्त्रोंमें हम शिवको नाना मूर्त्तियोंका परिचय पाते हैं। उनमेंसे सारदातिलकतन्त्र (१९वां और २०वां पटल)-से उनकी कुछ प्रधान मूर्त्तियोंका ध्यानरूप उद्धृत किया जाता है—

१। महाशिवका रूप यथा—

"मुक्तापीतपयोदमौक्तिकजवा-वर्णैर्मुखैः पञ्चभिस्त्र्यक्षैरञ्जितमीशमिन्दुमुकुटं पूर्णेन्दुकोटिप्रभं।
शूलं टङ्कृपाणवज्रदहनान्नागेन्द्रघण्टाङ्कुशान
पाशं भीतिहरन्दधानममिताकल्पोज्ज्वलं चिंतयेत्।"

२। ईशानका रूप—

"शक्तिडमरुकाभीतिवरान् सबिभ्रतं करैः।
ईशानं तीक्ष्णं शुभ्रमैशान्यां दिशि पूजयेत्॥"

३। तत्पुरुषका रूप—

"परश्वेणवराभीतीर्दधानं विद्युदुज्ज्वलं।
चतुर्मुखं तत्पुरुषं त्रिनेत्रं पूर्वतोऽर्च्चयेत्॥"

४। अघोरका रूप—

"अक्षस्रजं वेदपाशौ शृणिं डमरुकं ततः।
खट्वाङ्गं निशितं शूलं कपालं बिभ्रतं करैः॥
अञ्जनाभं चतुर्वक्त्रं भीमदंष्ट्रं भयावहं।
अघोरं तीक्ष्णं याम्ये पूजयेन्मन्त्रवित्तमः॥"

५। वामदेवका रूप—

"कुङ्कुमाभं चतुर्वक्त्रं वामदेवं त्रिलोचनं।
वराभयाक्षवलयकुठारान्दधतं करैः।
विलासिनं स्मेरवक्त्रं सौम्ये सौम्यकमर्च्चयेत्।"

६। सद्योजातका रूप—

"कर्पूरेन्दुनिभं देवं सद्योजातं त्रिलोचनं।
हरिणाक्षगुणाभीतिवरहस्तं चतुर्मुखं।
बालेन्दुशेखरो लसन्मुकुटं पश्चिमे यजेत्।"

७। हरपार्वतीका रूप—

"वन्दे सिन्दूरवर्णं मणिमुकुटलसच्चारुचन्द्रावतंसं
भालोद्यन्नेत्रमीशं स्मितमुखकमलं दिव्यभूषाङ्गरागम्।
वामोरुन्यस्तपाणेररुणकुवलयं सन्दधत्याः प्रियाया
वृत्तोत्तुङ्गस्तनाग्रे निहितकरतलं वेदटङ्केष्टहस्तं॥"

८। मृत्युञ्जयका रूप—
"चन्द्रार्काग्निविलोचनं स्मितमुखं पद्मद्वयान्तस्थितं।
मुद्रापाशमृगाक्षसूत्रविलसत्पाणिं हिमांशुप्रभं।
कोटीरेन्दुगलत्सुधाप्लुततनुं हारादिभूषोज्ज्वलं
कान्त्या विश्वविमोहनं पशुपतिं मृत्युञ्जयं भावयेत्॥"

९। महेशका रूप—
"कैलासाद्रिनिभं शशाङ्ककलिकास्फूर्ज्जज्जटामण्डितं
नासालोकनतत्परं त्रिनयनं वीरासनाध्यासिनं।
मुद्राटङ्ककुरङ्गजानुविलसत्पाणिं प्रसन्नाननं
कक्षाबद्धभुजङ्गमं मुनिवृतं वन्दे महेशं परं।"

१०। दक्षिणामूर्तिका रूप—
"स्फटिकरजतवर्णं मौक्तिकीमक्षमाला
ममृतकलसविद्याज्ञानमुद्राकराग्रे।
दधतमुरगकक्षं चन्द्रचूडं त्रिनेत्रं
विधृतविविधभूषं दक्षिणामूर्त्तिमीडे।"

११। नीलकण्ठका रूप—
"बालार्कयुततेजसं धृतजटाजूटेन्दुखण्डोज्ज्वलं
नागेन्द्रैः कृतभूषणैर्जपवटीशूलं कपालं करैः।
खट्वाङ्गं दधतं त्रिनेत्रविलसत् पञ्चाननं सुन्दरं
व्याघ्रत्वक्परिधानमब्जनिलयं श्रीनीलकण्ठं भजे।"

१२। अर्द्धनारीश्वर यथा—
"नीलप्रवालरुचिरं विलसत्त्रिनेत्रं
पाशारुणोत्पलकपालकशूलहस्तं।
अर्द्धाम्बिकेशमनिशं प्रविभक्तभूषं
बालेन्दुबद्धमुकुटं प्रणमामि रूपं।'
रक्ताममिन्दुसकलाभरणं त्रिनेत्रं
खट्वाङ्गपाशसृणिशुभ्रकपालहस्तं।
वेदाननं निविडनासमनल्पभूषं
रक्ताङ्गरागकुसुमांशुकमीशमीडे।"

१३। पञ्चानन यथा—
"घण्टाकपालसृणिमुण्डकृपाणखेटं
खट्वाङ्गशूलडमरूमभयन्दधानं।
रक्ताम्बुमिन्दुसकलाभरणं त्रिनेत्रं
पञ्चाननाब्जमरुणांशुकमीशमीडे।"

१४। अघोरका दूसरा रूप—
"सजलघनसमाभं भीमदंष्ट्रं त्रिनेत्रं
भुजगधरमघोरं रक्तवस्त्राङ्गरागं।
परशुडमरुखड्गान् खेटकं बाणचापौ
त्रिशिखनरकपाले बिभ्रतं भावयामि।"

१५। पशुपतिका रूप—
"मध्याह्नार्कसमप्रभं शशिधरं भीमाट्टहासोज्ज्वलं
त्र्यक्षं पन्नगभूषणं शिखिशिखाश्मश्रुस्फुरन्मूर्द्धजं।
हस्ताब्जैस्त्रिशिखं समुद्गरमसिं शक्तिं दधानं विभुं
दंष्ट्राभीमचतुर्मुखं पशुपतिं दिव्यास्त्ररूपं स्मरेत्।"

१६। नीलग्रीवका रूप—
"उद्यद्भास्करसन्निभं त्रिनयनं रक्ताङ्गरागस्रजं
स्मेरास्यं वरदं कपालमभयं शूलं दधानं करैः।
नीलग्रीवमुदारभूषणशतं शीतांशुचूडोज्ज्वलं
बन्धूकारुणवाससं भयहरं देवं सदा भावयेत्।
ध्यायेन्नीलाद्रिकान्तं शशिसकलधरं मुण्डमालं महेशं
दिग्वस्त्रं पिङ्गकेशं डमरुमथ सृणिं खड्गपाशाभयानि।
नागं घण्टां कपालं करसरसिरुहैर्बिभ्रतं भीमदंष्ट्रं
सर्पाकल्पं त्रिनेत्रं मणिमयविलसत्किङ्किणीनूपुराढ्यं"

१७। चण्डेश्वर—
"चण्डेश्वरं रक्ततनुं त्रिनेत्रं रक्तांशुकाढ्यं हृदि भावयामि।
टङ्कं त्रिशूलं स्फटिकाक्षमालां कमण्डलुं बिभ्रतमिन्दु
चूडम्॥"

शिवक (स० क्ली०) १ कील काँटा। २ खूटा।

शिवकर (स० पु०) शिवस्य कर। १ जैनोंके चौबीस जिनोंमेंसे एक जिनका नाम। (त्रि०) २ मङ्गल कारक, भलाई करनेवाला।

शिवकर्णी (स० स्त्री०) कार्त्तिकेयकी एक मातृकाका नाम।

शिवकवि—१ एक भाषाके कवि। ये देउतहा जिला गोंडाके रहनेवाले थे। इनका जन्म स० १७१६में हुआ था। ये वन्दीजन थे। असोथरके शम्भु कविसे इन्होंने काव्यशास्त्रका अध्ययन किया था। ये जगत् सिंह बिसेनके यहां रहते थे। इन्होंने जगत्सिंहको काव्यमें प्रवीण बनाया था। इनके बनाये रसिकविलास,

अलङ्कारभूषण और पिङ्गल ये तीन उत्तम ग्रन्थ भाषा साहित्यमें हैं।

२ एक दूसरे बन्दीजन। ये बिलग्रामके निवासी थे। सं० १७६५ में इनका जन्म हुआ था। इन्होंने शृङ्गारविषयक रसनिधि नामक एक ग्रन्थ लिखा है।

शिवकाञ्ची (सं० स्त्री०) पुरीविशेष, दक्षिण भारतका एक प्रसिद्ध नगर। कृष्णा और पोलर नदीके बीचमें स्थित करमण्डलके एक भागकी राजधानी काञ्ची थी। इसके दो हिस्से हैं—एक विष्णुकाञ्ची और दूसरा शिवकाञ्ची। शिवकाञ्ची उत्तरकी ओर है। दक्षिण भारतके शैवोंका यह एक प्रधान तीर्थ और सप्तपुरियोंमेंसे एक है। विशेष विवरण काञ्ची और काञ्चीपुरमें देखो।

शिवकान्ता (सं० स्त्री०) शिवस्य कान्ता। शिवकी पत्नी, दुर्गा।

शिवकान्ती (सं० स्त्री०) तीर्थभेद।

शिवकामदुघा (सं० स्त्री०) नदीभेद।

शिवकारिन् (सं० त्रि०) शिवं कर्त्तुं शीलमस्य कृ णिनि मङ्गलकारी, कल्याण करनेवाला।

शिवकारिणी (सं० स्त्री०) १ शिवा, दुर्गा। २ मङ्गलकारिणी।

शिवकाशी—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके तिन्नेवल्ली जिलेके सतूर तालुकके अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० ९° २७´ १०´´ पू० तथा देशा० ७७° ५८´ २०´´ पू०के बीच पड़ता है। यहां तमाकूका विस्तृत कारबार है।

शिवकिङ्कर (सं० पु०) शिवस्य किङ्करः। शिवका गण या दूत।

शिवकीर्त्तन (सं० पु०) शिवं सुखकरं, कीर्त्तनं यस्य। १ भृङ्गरीट। २ विष्णु। ३ वह जो शिवका कीर्त्तन करता हो, शैव।

शिवकुण्ड (सं० क्ली०) ग्रामभेद, एक गाँवका नाम।

शिवकेसर (सं० पु०) एक प्रकारका गुल्म।

शिवकोपमुनि (सं० पु०) एक ग्रन्थकारका नाम।

शिवक्षेत्र (सं० क्ली०) शिवस्य क्षेत्रं। शिवका अधिष्ठित स्थान, कैलास, काशी, श्मशान।

शिवगङ्गा (सं० स्त्री०) नदीभेद। शिवजीके मन्दिरके समीप जो नदी या पुष्करिणी रहती है, उसे शिवगङ्गा कहते हैं।

शिवगङ्गा—१ मन्द्राजप्रदेशके मदुरा जिलान्तर्गत एक जमींदारी। भूपरिमाण १२२० वर्गमील है। पहले यह रामनादके सेतुपतियोंके अधिकारमें था। सेतुपति कुट्टतेवनने करीब १७३० ई०में नलकोट्टईके अधिपति पलीगर सरदारसे शेषवर्ण तेवनको अपने राज्यका दो पञ्चमांश प्रदान किया। तभीसे यह रामनादके हाथसे जाता रहा। १७७२ ई०में अंगरेज सेनापति कर्नल योसेफ स्मिथने पलीगर सरदारोंका अधिकृत समस्त प्रदेश हस्तगत किया। इस समय कलैयाके कोविलदुर्गमें पलायित राजा अंगरेजोंके हाथ मारे गये तथा रानीने अपने आत्मीयवर्गसे परिवृत हो दिण्डिगलमें भाग कर हैदरअलीकी शरण ली। इसके बाद अंगरेजोंने रानीको शिवगङ्गा सम्पत्ति लौटा दी, किन्तु १८०० ई०में रानीके अपुत्रक अवस्थामें मरनेसे अंगरेज गवर्मेण्टने १८०१ ई०के जुलाई मासमें उदय तेवान नामक एक व्यक्तिके साथ उस सम्पत्तिका बन्दोबस्त कर दिया। १८०३ ई०में उसका राजस्व निर्द्धारित हुआ।

२ उक्त सम्पत्तिका प्रधान नगर। यह अक्षा० ९° ५१´ ३० तथा देशा० ७८° ३१´ ५०´´ पू० मदुरा नगरसे २५ मील पूर्वमें अवस्थित है।

शिवगङ्गा—महिसुर राज्यके बङ्गलूर जिलान्तर्गत एक शैल। यह अक्षा० १३° १०´ ३० तथा देशा० ७७° १७´ पू० समुद्रपृष्ठसे ४५९९ फुटकी ऊंचाई पर अवस्थित है। इस पर्वतके साथ हिन्दू जातिकी देवलीलाके अनेक उपाख्यान संसृष्ट हैं। इस सम्पर्कमें इसके ऊपर बहुतसे मन्दिर भी शिलालिपिसे युक्त देखे जाते हैं। पर्वतके पूर्वांशका बाह्य गठन वृष जैसा, पश्चिमांश गणेश जैसा, उत्तरांश सर्प जैसा और दक्षिणांश लिङ्ग जैसा है। यहांका गङ्गाधारेश्वर और होण्ण-देवम्मा देवदेवीका मन्दिर उल्लेखयोग्य है। यह उत्तरकी ओर अवस्थित है। पूर्व विभागमें लिङ्गायत-सम्प्रदायका एक मठ है। पर्वतके उत्तरपादमूलमें शिवगङ्गा ग्राम है। यहां रथोत्सवमें खूब धूमधाम होती है।

शिवगण (सं० पु०) शिवस्य गणः। १ शिवका अनुचर, शिवकिङ्कर। २ राजभेद, एक राजाका नाम।

शिवगति (सं० पु०) जैना के अनुसार एक अर्हत्‌का नाम।

सोम व ६, अ ८ व ८ अ २, व ६।
मङ्गल मा ६, अ २, शू २ अ ६, व ४, मा ४, शू २ अ ४।
बुध व २ अ २, व ४, अ १६, व २, शू ४।
वृह शू २, अ ८, व ६, अ ८, शू २, अ ४।
शुक्र व २ अ ८, व ६, अ ८, शू २ अ ४।
शनि व १४, शू ८, व ४, अ २, शू ६।

ज्यैष्ठ और आषाढ़ मासका दिवादण्ड।

रवि शू ४, अ ६, व ६ अ ६, व ४, मा २ शू २।
सोम व ८, अ ४ शू ६, व ८, शू ४।
मङ्गल अ ६, शू ४, अ ६ व ६, मा २, अ २, मा २, शू २।
बुध शू २ व ४, अ ८, व ६, अ ८, शू ४।
वृह मा २, शू २, व ६, मा ४, शू ४, व ६ अ ६।
शुक्र शू २, मा २, व ६ मा २ शू ४, अ ६ व ४, शू ४।
शनि मा २ शू २, व ६ मा ६, शू ४, व ४, अ ६।

ज्यैष्ठ और आषाढ़ मासका रात्रिदण्ड।

रवि अ ४, शू ४, व ४, अ ६, व ८, शू ४।
सोम व ८ अ ८, शू ४, अ ४ शू ४, मा २ शू २।
मङ्गल अ २, व ४, मा ४, शू ४, व २, अ ६ शू २, व ६।
बुध अ १०, शू ५, २, व ४ अ ४ शू १०।
वृह शू २, अ ६, शू २, व ४, शू २ अ ६ शू ४ अ ४।
शुक्र अ ६, शू २, व ४, शू ६ अ ६ शू २, अ ४।
शनि शू २ अ २, व ८, शू २, अ ६, शू ४, अ ६।

इस प्रकार दण्डादि निरूपण करके अमृतयोग और माहेन्द्रयोगमें यात्रादि करे। इसमें शुभ होता है।

शिवतत्त्व (स० पु०) तत्त्वभेद।

शिवता (स० स्त्री०) शिवस्य भाव तल् टाप्। १ शिव का भाव या धर्म। २ मनुष्यका शिवमें लीन होनेकी अवस्था मोक्ष।

शिवतातिं (स० स्त्री०) कल्याणकारिणी। (हेम)

शिवतीर्थ (स० क्ली०) तीर्थभेद। शिवनिर्मित तीर्थ काशी। शिवने यह तीर्थ निर्माण किया है, इसलिये यह शिवतीर्थ नामसे प्रसिद्ध है।

शिवतेजस (स० क्ली०) पारद पारा। (रत्नप्रकाश०)

शिवदत्त (स० क्ली०) १ विष्णुका चक्र सुदर्शन चक्र। (पु०) २ नामरत्नमालाप्रणेता एक व्यक्ति। ३ शिवकोषके प्रणेता।

शिवदत्तपुर (स० क्ली०) नगरभेद।

शिवदारु (स० क्ली०) देवदारु, देवदार।

शिवदास—बहुतसे संस्कृत ग्रन्थकार। १ कथार्णव, वैतालपचीसी और शालिवाहनचरितके प्रणेता। २ जातकमुक्तावली और ज्योतिर्निबन्धप्रकार। ३ मानवशुल्वसूत्रभाष्यके रचयिता। ४ कातन्त्रव्याकरणके उणादिसूत्रके टीकाकार। ५ एक प्राचीन कवि।

शिवदास सेन—एक आयुर्वेदवित् प्रसिद्ध पण्डित। ये पञ्चकोट या शिखरभूमके राजसभासद् साङ्गसेनके प्रपौत्र पुत्र अनन्तसेनके पुत्र थे। इन्होंने चक्रपाणिदत्तरचित चिकित्सासंग्रह और द्रव्यगुणसंग्रहकी एक उत्तम टीका लिखी।

शिवदिश (स० स्त्री०) शिवस्य दिक्। शिवका अधिष्ठाता दिशा ईशान कोण। एक एक दिशाके एक एक अधिपति हैं, ईशान कोणके अधिपति शिव हैं, इसलिये इसे शिवदिश् कहते हैं।

शिवदीन—नाथप्रमेद नामक कोषके रचयिता।

शिवदीन कवि—भिनगा जिला बहराइचके रहनेवाले एक कवि। ये भिनगाके राजा कृष्णदत्तसिंहजीके दरबारमें रहते थे। इन्होंने भाषामें कृष्णदत्तभूषण नामक एक उत्तम ग्रन्थ बनाया है।

शिवदीन दास—मणिमाला नामक ज्योतिर्ग्रन्थके रचयिता।

शिवदूतिका (स० स्त्री०) शिवदूती स्वार्थे कन्। कार्तिकेयकी एक मातृकाका नाम। (शब्दरत्ना०)

शिवदूती (स० स्त्री०) शिवेन दूतपति संदेशं प्रापयति इत्यर्थे दूत णिच्, पचाद्यच्, यद्वा शिवो दूतो यस्याः, गौरादित्वात् ङीष्। १ दुर्गा। २ योगिनीविशेष। कालिकापुराणमें इसकी उत्पत्तिका विषय इस प्रकार लिखा है कि महादेवका ध्यान करनेसे कौशिकीके हृदयसे जो सब देवियां निकली थीं, वही शिवदूती कहलाईं।

आठ योगिनियोंमेंसे शिवदूती श्रेष्ठ योगिनी है। इन सब योगिनियोंकी पूजा और साधन करनेसे अभीष्ट सिद्धि होती है।

कालिकापुराणमें इन सब योगिनियोंकी पूजा और साधनादिका विशेष विवरण लिखा हुआ है।

पश्चिमी सीमा पर अवस्थित एक नगर। यह अक्षा० २५.२१ उ० तथा देशा० ७६.४´ पू०के मध्य विस्तृत है। पहले यह नगर एक राजपूत सामन्तराजके अधीन था। १९वीं सदीके प्रारम्भमें दौलतराव सिन्देकी सेनाने इस नगरको अधिकार कर लिया। १८१६ ई०में जब सिन्दे सेनापति जेनरल बैपतिस्ते ५०० सेना ले कर नगर और दुर्गकी रक्षा कर रहे थे, उस समय राजपूत सरदार जयसिंहने सिर्फ सात सेना ले कर बैपृतिस्तेको सपरिवार कैद कर लिया।

शिवपुराण (स० क्ली०) पुराणविशेष, अठारह पुराणोंमेंसे एक पुराण जो शैवपुराण भी कहा जाता है। यह शिवप्रोक्त माना जाता है और इसमें शिवका माहात्म्य वर्णित है। विशेष विवरण पुराण शब्दमें देखो।

शिवपुरी (स० स्त्री०) शिवस्य पुरी। वाराणसी, काशी।

शिवपुष्पक (स० पु०) अर्कवृक्ष, मदार।

शिवप्रकाशसिंह—डुमरांवके महाराज जयप्रकाशसिंहके भाई। इन्होंने रामतत्त्वबोधिनी नामक विनयपत्रिका की एक सुन्दर टीका लिखा।

शिवप्रसाद सितारेहिन्द—परमारवंशीय एक क्षत्रिय। इनके पूर्वज दिल्लीमें जौहरीका काम करते थे। जैनधर्म इनका पुरुषानुक्रमसे धर्म है। नादिरशाहके समय इनके पूर्वज दिल्लीसे मुर्शिदाबाद भाग आये थे। नवाब कासिम अली खाँके अत्याचारसे पीड़ित हो कर राजा शिवप्रसादके पितामह डालचन्द आ काशी आ बसे।

इनका जन्म माघ शुक्ल २ वा स० १८८०में हुआ था। इनके पिताका नाम था बाबू गोपालचन्द्र। जब इनकी उम्र सिर्फ पांच वर्षकी थी, तभीसे इनकी शिक्षाका प्रबन्ध हो गया। पहले घर पर उर्दू और हिन्दीका अभ्यास किया। पीछे ये बीबीहरियाके स्कूलमें फारसी पढ़ने लगे। इसके बाद इन्होंने संस्कृतका भी अभ्यास किया। जब राजा साहबकी अवस्था १३।१४ वर्षकी थी उसी समय फोर्टविलियम कालेजके प्रोफेसर तारिणीचरण मित्र बंगालके लिए काशी आये। उनके पुत्रोंसे राजा साहबकी मित्रता हो गई। राजा साहबने उन्होंसे अंगरेजी और बंगला भाषाएं सीखीं और १६ वर्षकी अवस्थामें संस्कृत हिन्दी, अरबी फारसी अंगरेजी और बंगलामें अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली।

इस प्रकार शिक्षा समाप्त कर चुकने पर अपने माताकी सम्मतिसे बाबू शिवप्रसाद भरतपुर दरबारमें नौकर हुए। वहां जा कर इन्होंने राज्यके दीवानको ८० आदमियोंके साथ जेल भेजवाया, कारण यह दीवान महाराजको दबा कर राज्यमें मनमानी करता था। इस पर प्रसन्न हो कर भरतपुरके महाराजने इन्हें अपना वकील बनाया।

कुछ समय यहां रह शिवप्रसाद भरतपुरकी नौकरी छोड़ घर चले आये और फिर भरतपुर न गये। १८४५ ई०में इन्होंने अंगरेज सरकारकी सेवा स्वीकार की। उसी समय पंजाबमें सिखयुद्ध प्रारम्भ हुआ था। राजा साहब अंगरेजी सेनाके साथ सरहद पर गये और वहां गवर्नर जनरलकी आज्ञासे ये अपने साहस और वीरता पर भरोसा रख कर शत्रुसेनामें घुस पड़े और वहांकी तोपें गिन आये तथा और भी उनके भेद ले आये। फिर महाराज दिलीपसिंहको ये वह तक पहुंचा कर लाहौर पर सवार करा आये।

सिखों से सन्धि हो जाने पर गवर्नर जनरलके साथ ये शिमले गये थे। वहां ये एक विशेष पद पर नियुक्त किए गये। इन्होंने अङ्गरेज सरकारकी बड़ी सेवा की थी।

शिमलेसे आ कर राजा कुछ दिनों तक कमिश्नर साहबके मीर मुंशी रहे। परन्तु इनकी विद्याकी अभिरुचि देख कर सरकारने इन्हें स्कूलोंके इन्सपेक्टर नियुक्त किया। अपनी इन्सपेक्टरीके समय राजा साहबने हिन्दीका बड़ा उपकार किया था। इन्होंने साहित्य, भूगोल इतिहास आदि विषयोंकी पुस्तकें प्रायः ३५ लिखी हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र इनके शिष्य थे।

सन् १८७२ ई०में इन्हें सी० एस० आइ अर्थात् सितारेहिन्दकी उपाधि और १८८७ ई०में इन्हें वंशपरम्पराके लिये राजाकी उपाधि मिली। सन् १८९५ ई०में आप इहलोक छोड़ परलोक सिधारे।

शिवप्रिय (स० क्ली०) शिवस्य प्रियम्। १ रुद्राक्ष। (पु०) २ बक वृक्ष, अगस्त। ३ स्फटिक, बिल्लौर। ४ धुस्तूर, धतूरा। ५ विजिया, भांग। (त्रि०) ६ शिवका प्रिय।

शिवप्रिया (स० स्त्री०) शिवस्य प्रिया। दुर्गा।

शिवप्रीति (सं० स्त्री०) बिल्ववृक्ष, बेलका पेड़।

शिवबीज (सं० क्ली०) शिवस्य बीजं। पारद, पारा जो शिवका बीज माना जाता है।

शिवबल्ली (सं० स्त्री०) शङ्खपुष्पी, सांखाहुली।

शिवभक्त (सं० पु०) शिवस्य भक्तः। वह जो शिवका भक्त हो, शैव।

शिवभक्ति (सं० पु०) शिवस्य भक्तिः। शिवकी भक्ति।

शिवभट्ट (सं० पु०) एक राजाका नाम।

शिवभागवत (सं० पु०) शिवभक्त।

शिवभास्कर (सं० पु०) शिव और सूर्य।

शिवमत (सं० पु०) श्वेत रक्तवसुक वृक्ष। (राजनि०)

शिवमय (सं० त्रि०) शिवस्वरूपे मयट्। शिवस्वरूप, शिवके समान।

शिवमल्लक (सं० पु०) अर्जुन वृक्ष।

शिवमल्लिका (सं० स्त्री०) शिवप्रिया मल्लिका। १ वसुक, वसु नामक पुष्प वृक्ष। २ श्वेत रक्तार्क वृक्ष, सफेद और लाल मदार या आक। ३ वक वृक्ष। ४ आरुसका पेड़। ५ लिङ्गिनी नामकी लता। ६ श्रीवल्ली नामक कंटीला पेड़।

शिवमल्ली (सं० स्त्री०) शिवप्रिया मल्ली। १ पाशुपति, मौलसिरी। २ आक, मदार। ३ वक नामक वृक्ष। ४ लिङ्गिनी नामकी लता।

शिवमान (सं० पु०) बौद्धोंके मतसे एक बहुत बड़ी संख्याका नाम।

शिवयोगिन् (सं० पु०) षड्गुरुके शिष्य एक आचार्य।

शिवयोषित् (सं० स्त्री०) शिवस्य योषित्। शिवकी पत्नी, दुर्गा।

शिवरथ (सं० पु०) काश्मीरके एक सामन्त।

शिवरस (सं० पु०) तीन दिनसे अधिक बासी भातका पानी। यह दीपन, मधुर, अम्ल, अत्युग्र, दाहप्रद, लघु और तर्पण होता है। (राजनि०)

शिवराज (सं० पु०) इस नामके बहुतेरे प्राचीन उत्कलके राजे।

शिवराज—शिवराज देखो।

शिवराजधानी (सं० स्त्री०) काशी। यहां शिव सर्वदा विराजित रहते हैं, इसलिये इसको शिवराजधानी कहते हैं।

शिवराजी (हिं० पु०) एक प्रकारका बहुत बड़ा कबूतर।

शिवरात्र (सं० स्त्री०) शिवरात्रिव्रत देखो।

शिवरात्रि (सं० स्त्री०) शिवचतुर्दशी।

शिवरात्रिव्रत (सं० क्ली०) व्रतविशेष, शिवचतुर्दशी व्रत। शिवचतुर्दशी तिथिमें रातको यह व्रत करना होता है, इसीसे इसको शिवरात्रि व्रत कहते हैं। यह व्रत चण्डाल-से ले कर ब्राह्मण तक सभीको करना कर्त्तव्य है। माघ मासके शेष या फाल्गुनमासके प्रथममें जो कृष्ण चतुर्दशी पड़ती है, उसीमें यह व्रत करे। माघमासके शेष और फाल्गुन मासके प्रथममें मुख्य चान्द्र माघ और गौणचान्द्र फाल्गुन समझा जाता है। अर्थात् मुख्यचान्द्रमासकी कृष्ण चतुर्दशी तिथिमें यह व्रत होता है। अतएव यह तिथि माघमासके शेष या फाल्गुन मासके प्रथममें होती है।

इस व्रतमें उपवास ही एकमात्र प्रधान है। महादेवने स्वयं कहा था, कि स्नान पूजा आदि द्वारा मैं जिस प्रकार संतुष्ट नहीं होता, एकमात्र उपवास द्वारा उसी प्रकार संतुष्ट होता हूं।

शिवकी प्रीतिकामनासे रातको पहर पहरमें स्नान और पूजन करना होता है। रातको विशेष विशेष द्रव्य और मन्त्र द्वारा चार पहर स्नान और पूजा करनेको कहा गया है। इसमें प्रथम पहरमें जब पूजा करनी होती है, तब दुग्ध द्वारा स्नान, इसी प्रकार द्वितीय प्रहरमें दधि द्वारा स्नान, तृतीय प्रहरमें घृत और चतुर्थ प्रहरमें मधु द्वारा स्नान करा कर पूजा करनी होती है।

यह व्रत सभीको करना कर्त्तव्य है। शैव, वैष्णव आदि चाहे जो हों, वे यदि यह व्रत न करें, तो उनका सभी पूजाफल विनष्ट होता है। माघमासकी शिव-चतुर्दशी तिथिमें यदि रवि या मङ्गलवार पड़े, तो उसे शिवयोग कहते हैं। इस योगमें यह व्रत उत्तमोत्तम होता है। यह व्रत समस्त पापनाशक तथा आचण्डाल मानव-का भुक्तिमुक्तिप्रदायक है। इस तिथिमें उपवास, रात्रि जागरण और लिङ्गपूजा द्वारा अक्षयलोक और शिव सायुज्य लाभ होता है। जो यह व्रत करते हैं, उन्हें इस लोकमें नाना प्रकारके सुखसौभाग्य और परलोकमें शिवलोककी प्राप्ति होती है।

इस व्रतका विधान रात्रिको कहा गया है। किन्तु जिस दिन यह चतुर्दशी तिथि प्रदोष और निशीथ यह दोनों व्यापिनी हो, उसी दिन यह व्रत होगा और यदि यह तिथि पूर्व दिनमें निशीथव्यापिनी तथा दूसरे दिन प्रदोषमात्रव्यापिनी हो, तो पूर्वदिनमें यह व्रत होगा।

व्रतके पूर्व दिन संयत हो कर रहना होता है तथा व्रतके अन्तमें पारण करना उचित है।

व्रतपद्धति—चतुर्दशी तिथिमें सवेरे प्रातःकृत्य और नित्य क्रियादि समाप्त करके पहले स्वस्तिवाचन और 'सूर्य सोम' इत्यादिका मन्त्रपाठ और पीछे संकल्प करना होता है।

पूजाके विधानानुसार सामान्यार्घ्य आदि स्थापन, द्रव्यशुद्धि आसनशुद्धि आदि करके गणेशादिकी पूजा करनी होती है। समर्थ होने पर भूतशुद्धि करके पूजा करे। शिवपूजा शब्दमें शिवपूजाका जो विधान कहा गया है, तदनुसार पूजा करना कर्त्तव्य है। स्नान और अर्घ्य आदिमें जो विशेषता है, वही कही गई है। प्रतिष्ठित लिङ्गकी पूजा करनेमें आवाहन, प्राणप्रतिष्ठा और विसर्जन नहीं होता। मिट्टीका लिङ्ग बना कर पूजा करनेसे शिवपूजाके क्रमसे पूजा करे। चार पहरमें चार बार पूजा और दुग्धादि द्वारा स्नान करना होता है। चार पहरमें अर्घ्यमन्त्र भी पृथक् है। पहले 'ओं पशुपतये नमः' इस मन्त्रसे जल द्वारा स्नान करा कर पीछे विशेष द्रव्य और विशेष मन्त्रसे स्नान करावे। प्रथम प्रहरमें 'ओं ह्रीं ईशानाय नमः' इस मन्त्रसे दुग्ध द्वारा स्नान कराना होता है। अर्घ्य मन्त्र—

"ओं शिवरात्रिव्रतं देव पूजाजपपरायणः।
करोमि विधिवद्दत्तं गृहाणार्घ्यं महेश्वर॥
इदमर्घ्यं ओं नमः शिवाय नमः।"

द्वितीय प्रहरमें "ओं ह्रीं अघोराय नमः" इस मन्त्रसे दधि द्वारा स्नान कराना होता है। अर्घ्यमन्त्र—

"ओं नमः शिवाय शान्ताय सर्वपापहराय च।
शिवरात्रौ ददाम्यर्घ्यं प्रसीद उमया सह॥
इदमर्घ्यं ओं नमः शिवाय नमः।"

तृतीय प्रहरमें 'ओं ह्रीं वामदेवाय नमः' इस मन्त्रसे घृत द्वारा स्नान कराना होता है। अर्घ्य मन्त्र—

"ओं दुःखदारिद्र्यशोकेन दग्धोऽहं पार्वतीश्वर।
शिवरात्रौ ददाम्यर्घ्यं उमाकान्त गृहाण मे॥
इदमर्घ्यं ओं नमः शिवाय नमः।"

चतुर्थ प्रहरमें—'ओं ह्रीं सद्योजाताय नमः' इस मन्त्रसे मधु द्वारा स्नान करावे। अर्घ्य मन्त्र—

"ओं मया कृतान्यनेकानि पापानि हर शङ्कर।
शिवरात्रौ ददाम्यर्घ्यं उमाकान्त गृहाण मे॥
इदमर्घ्यं ओं नमः शिवाय नमः।"

उक्त विधानानुसार चार पहरमें चार बार पूजा करनी होती है। पूजाके अन्तमें कथाश्रवण स्तवपाठ आदि करना होता है।

कथा सुन कर मोऽपोत्सर्ग करना होता है। दूसरे दिन प्रातःकृत्यादि समापन तथा स्नान नित्य क्रिया समाप्त करके मूल मन्त्रसे शिवपूजा करे। पीछे ब्राह्मण और ज्ञाति बन्धुबान्धवोंको भोजन करा कर स्वयं पारण करे। पारणके समयमें मन्त्र पाठ करके जलपान करना होता है। पारण मन्त्र

"संसारक्लेशदग्धस्य व्रतेनानेन शङ्कर।
प्रसीद सुमुखो नाथ ज्ञानदृष्टिप्रदो भव॥"

शिवरानी (हिं० स्त्री०) शिवजीकी पत्नी, पार्वती।

शिवरानी—शेवरानी देखो।

शिवराम—बहुत से संस्कृत ग्रन्थकारोंके नाम। १ शिव गोत्र पदयार्य पुत्र। इन्होंने आरामोत्सर्गपद्धति आह्निकसंक्षेप घटार्पणभाष्य दशश्राद्धप्रयोग और दुर्गाध्यानदीपिका आदिकी रचना की। २ एक वैयाकरण शाब्दपरिनिष्ठसिद्धान्तरत्नाङ्कुर और कृष्णस्तवराज प्रणेता। ३ एक विख्यात तान्त्रिक कमलरत्न गायत्री पुरश्चरण और तन्त्रराजटीका। ४ गिरिजाशकुन विचारशास्त्र प्रणेता। ५ भावार्थदीपिका नामक भागवतपुराणकी टीकाके रचयिता। ६ मनोरञ्जन नामक ज्योतिर्ग्रन्थके प्रणेता। ७ एक प्रसिद्ध स्मार्त, त्रिपुरारि शुक्लके पुत्र। ये १७वीं सदीमें विद्यमान थे। इन्होंने छन्दोगान्हिक, मंत्रचिन्तामणि, तीर्थचिन्तामणि, श्राद्धचिन्तामणि और सुधापिता नामकी गार्हिस्थ्यसूत्रपद्धतिकी रचना की।

शिवराम आचार्य—बालिकार्चनदीपिकाके प्रणेता।

शिवरामचक्रवर्त्ती—वंद्यघटीय एक विख्यात पण्डित, सर्वानन्द मिश्रके प्रपौत्र और चंद्रनाथके पुत्र। सुविख्यात रघुनाथ तर्कवागीश और मथुरेश विद्यालङ्कारके ये पिता थे।

शिवराम त्रिपाठी—एक विख्यात टीकाकार। इनके पिताका नाम कृष्णराम और पितामहका नाम त्रिलोकचंद्र था। इन्होंने काञ्चनदर्पण नामक काव्यप्रकाशकी टीका, चरितभूषण नामक दशकुमारचरितकी टीका, नक्षत्रमाला और उसकी टीका, भूपालभूषण, रसरत्नहार, लक्ष्मीविलासाभिधान नामक एक उणादिकोष और विद्याविलास आदि ग्रंथ लिखे। इनका लक्ष्मीविलासमें जो 'परिभापेन्दुशेखर' उद्धृत हुआ है, उससे जाना जाता है, कि शिवराम १८वीं सदीमें विद्यमान थे।

शिवरामभट्ट—१ रंगतरङ्गिणीकाव्यके रचयिता। २ वेदांतसारके प्रणेता। ३ सन्निधानपरिशिष्टके प्रणेता।

शिवराम भट्टाचार्य—नव्यमुक्तिवादटिप्पणीके रचयिता।

शिवराम संन्यासी—रामायणटीकाके प्रणेता।

शिवरामेन्द्र यति—एक वैयाकरण। इन्होंने १८५० ई०में गजसूत्रव्याख्या नामकी पाणिनि की टीका लिखी।

शिवरामेन्द्र सरस्वती—१ अन्नपूर्णाकल्पवल्लीकार। २ एक प्रसिद्ध वैयाकरण। इन्होंने सिद्धांतरत्नप्रकाश नामकी महाभाष्यकी टीका तथा सिद्धांतरत्नाकर नामकी सिद्धांतकौमुदीकी टीका लिखी।

शिवलाल—१ एक ज्योतिर्विद्, अद्भुत सागर और प्रश्नमनोरमा नामक दो ज्योतिर्ग्रन्थके टीकाकार। २ श्यामलारहस्यके रचयिता। ३ सिद्धांततत्त्वबिंदुप्रदीपिकाके प्रणेता।

शिवलाल पाठक—रामार्चनसोपानके रचयिता।

शिवलाल शुक्ल—जातिसाङ्कर्य नामक धर्मशास्त्रीय ग्रन्थके प्रणेता।

शिवलिङ्ग (सं० पु०) महादेवका लिङ्ग या पिण्डी जिसका पूजन होता है।

शिवलिङ्ग चोल—चोलवंशीय एक भूपति, चतुर्वेदतात्पर्यसंग्रह व्याख्याकार।

शिवलिङ्गिनी (सं० स्त्री०) एक प्रकारकी प्रसिद्ध लता। यह चौमासेमें जङ्गलों और झाड़ियोंमें बहुत अधिकतासे मिलती है। इसकी डंडियां बहुत पतली और पत्ते करेलेके पत्तोंके समान ३से ५ इञ्चके घेरेमें गोलाकार, गहरे, कटे किनारेवाले और ५-७ भागोंमें विभक्त रहते हैं। पत्र-दण्डकी जड़में ५-६ फूलोंके छोटे छोटे गुच्छे लगते हैं। ये फूल पीले होते हैं। इसका व्यवहार ओषधिके रूपमें होता है। वैद्यकके अनुसार यह चरपरी, गरम, दुर्गन्धयुक्त, पौष्टिक, शोधक, गर्भ धारण करानेवाली और कुष्ठ आदिका नाश करनेवाली होती है। इसके फलने पर इसका सर्वाङ्ग ओषधिके निमित्त संग्रह किया जाता है। इसे शिवलिङ्गी या पचगुरिया भी कहते हैं।

शिवलोक (सं० पु०) शिवजीका लोक, कैलास।

शिववल्लभ (सं० पु०) शिवस्य वल्लभः। शिवप्रिय।

शिववल्लभा (सं० स्त्री०) शिवस्य वल्लभा। १ शिवप्रिया, दुर्गा। २ शतपत्री, सेवती।

शिववल्लिका (सं० स्त्री०) शिवस्य वल्लिका। शिवलिङ्गिनी देखो।

शिववल्ली (सं० स्त्री०) शिवस्य वल्ली। शिवलिङ्गिनी देखो।

शिववाहन (सं० पु०) शिवस्य वाहनः। शिवका वाहन, बैल।

शिववीर्य (सं० क्ली०) शिवस्य वीर्य। १ शिववीज, शिवका वीर्य। २ पारद, पारा।

शिववृषभ (सं० पु०) शिवजीकी सवारीका बैल।

शिवशक्ति (सं० स्त्री०) शिव एवं शक्ति, शिव पार्वती।

शिवशक्तिमय (सं० त्रि०) शिवशक्तिस्वरूपे मयट्। शिव और शक्ति स्वरूप।

शिवशङ्कर—विष्णुपूजाक्रमदीपिकाकार।

शिवशङ्करा (सं० स्त्री०) देवीकी एक मूर्त्तिका नाम।

शिवशर्म्मन् (सं० पु०) एक ग्रन्थकारका नाम।

शिवशेखर (सं० पु०) शिवः सुखकरः शिवप्रियो वा शेखरोऽग्रो यस्य। १ बक वृक्ष। (जटाधर) २ धुस्तूर, धतूरा। ३ शिवका मस्तक। ४ सफेद मदार।

शिवशैल (सं० पु०) कैलास पर्वत।

शिवश्री (सं० पु०) पुराणानुसार एक राजाका नाम। (विष्णुपु० ४।२४।१३)

शिवसङ्कल्प (स० त्रि०) शुभसङ्कल्पयुक्त।

शिवसमुद्र (स० पु०) जलप्रपातभेद।

शिवसमुद्रम् (शिवनासमुदरम्)—मन्द्राज प्रेसिडेंसीके कोयम्बतोर जिलेमें अवस्थित एक द्वीप। महिसुर-राज्य प्रांतमें कावेरी नदीने दो भागोंमें विभक्त हो कर इस भूभागकी सृष्टि की है। जनसाधारण इस स्थानको हेगुरा कहते हैं। किन्तु प्राचीन शिवसमुद्रम् नगरके (अक्षा० १२ १६´ उ० एवं देशा० ७७ १४´ पू०) नाम से इसका शिवसमुद्रम् नाम हुआ है। इस समय कई ध्वस्त निदर्शनके अतिरिक्त इस नगरका और कोई चिह्न नहीं पाया जाता। प्रवाद है, कि १६वीं सदीमें विजयनगर राजवंशके गङ्गा नामक राजाने इस नगर की प्रतिष्ठा की। इस राजधानीमें उन लोगोंने दो पीढ़ी तक राज्य किया। इसके बाद यह राज्य नष्ट हो गया।

१७९१ ई०में लार्ड कर्नवालिसकी अध्यक्षतामें अंगरेजी सेना श्रीरङ्गपट्टन पर आक्रमण करनेके लिये अग्रसर हुई। उनके भाग जाने पर टीपू सुलतान इसके आस पासके स्थानोंको लूटता हुआ चला गया। उस समय यहांके अधिवासियोंने अपने गोमहिष आदि ले कर इस द्वीपमें आश्रय लिया था। समय पा कर यह स्थान जंगलोंसे भर गया एवं नदीमें जो पत्थरका पुल था, वह भी जंगलसे अगम्य हो उठा।

१८२४ ई०में महिसुरके अङ्गरेज रेसिडेण्टके एक कर्मचारी रामस्वामी मुदलियरने इसके संस्कारका बीड़ा उठाया। उन्होंने अपने अध्यवसाय तथा परिश्रमसे अङ्गरेज गवर्नमेण्टसे 'जनोपकारकर्त्ता' की उपाधि प्राप्त की थी। इसके अलावा उन्हें महिसुर राजासे ६०००) रुपये और अंगरेज गवर्नमेण्टसे ८०००) रुपये वार्षिक आयकी सम्पत्ति मिली। इसके अतिरिक्त यहां नदी पर और भी कई नये पुल बनाये गये हैं।

शिवसहाय—१ महाराष्ट्रवासी एक दार्शनिक। इन्होंने स्यादिपरिष्कार नामक एक वैशेषिक ग्रन्थ लिखा। २ आतङ्कमञ्जरीके रचयिता।

शिवसागर—आसामके उत्तर लखिमपुरडिवीजनके अन्तर्गत अंगरेजी शासनाधीन एक जिला। यह अक्षा० २५ ४६´ से ले कर २७ १६´ उ० तथा देशा० ९३ ३´ से ले कर ९५ २२´ पू०के मध्य विस्तृत है। इसका भू-परिमाण ४९९६ वर्गमील है। इसके उत्तर और पूर्वमें लखिमपुर जिला और ब्रह्मपुत्र नद, दक्षिणमें नागा शैल नामक जिला एवं पश्चिममें नवगांव जिला है। शिवसागर नगर इसका विचारसदर है।

इस जिलेकी भूमि समतल प्रान्तरोंसे भरी है। बीच बीचमें घाससे भरे हुए क्षेत्र तथा जंगल दृष्टिगोचर होते हैं। इस भूमिके बीचसे कई शाखाप्रशाखाओंमें ब्रह्मपुत्रनदके बहनेके कारण नदीतीरवर्त्ती भूभाग साधारण निम्न हो गया है। प्रति वर्ष बाढ़के पानीमें यह डूब जाता है। भूतत्त्वकी आलोचना करनेसे देखा जाता है, कि दिसाइ नदीके पूर्व ओरमें स्थित भूभाग सफेद गीली मिट्टीसे परिपूर्ण है। यह जिलेके दूसरे स्थानोंकी अपेक्षा अधिक उपजाऊ है एवं धानकी खेतीके लिये विशेष उपयोगी है।

उक्त नदीके पश्चिमभागमें इस तरहकी मिट्टी होने पर भी उसके निम्न भागमें गोरटी मिट्टीका स्तर है और उसके मध्य खनिज लोहेकी खान पाई जाती है। यह विभाग कई नदी खाई तथा विस्तृत जलभूमिमें विभक्त होनेके कारण मध्यवर्त्ती शस्यक्षेत्रोंकी शोभा मनोहर है। नागाशैलके सामने यह भूमि क्रमशः ऊंची हो गई है। पर्वतकी पार्श्ववर्त्ती भूमि स्वभावतः ऊंची नीची है। इस निम्न भागमें प्रायः सरकंडे और बेंतका वन देखा जाता है। उसके ऊपर बड़े बड़े वृक्षोंका घना जंगल है। इस अरण्यके मध्य भागमें कहीं कहीं हरे भरे धानके खेत और कहीं कहीं घास फूस ऊंचे तृणोंसे आच्छादित प्रान्तरभूमि देखी जाती है। इसकी सलाहत तथा उनकी समीतध्वनि पथिककी निर्जनता दूर करता है।

यहांका प्रधान नदी ब्रह्मपुत्र है। इसकी दिहिंग शाखा लखिमपुरसे शिवसागरको अलग करता है। इसके अलावे दिसांग दिखू झांजी काकडंगा धनश्री प्रभृति शाखा नदियां सबदा जलपूर्ण रहती हैं। ब्रह्मपुत्र और लाहित्य नामक उसके पुरातन स्रोतोंके मध्यवर्त्ती 'माजुलीचरी' उर्वर गाली मिट्टीसे परिपूर्ण है। यहां कई प्रकारकी खेती होती है। सुवर्णश्री नामक शाखा नदी लोहित नदीकी धारा पुष्ट करता है।

अङ्गरेजी राज्यके शासनाधीन होनेके पहले यह जिला प्रायः ४०० वर्ष तक आहोम राजवंशके अधिकारमें था। उसके पहले छूटिया जाति ही यहांकी सर्वमय कर्त्ता थी। आहोम सेनाने छूटिया जातिको पराजित कर अपना अधिकार जमा लिया।

ऐसी किम्वदन्ती चली आती है, कि शानवंशीय आहोम लोग १२वीं सदीमें उत्तर-आसाममें आ कर बस गये। इस समय कामरूपमें हिन्दू राजे राज्य करते थे। धीरे धीरे उस राजवंशका प्रभाव घट जाने पर आहोम जाति क्रमशः ब्रह्मपुत्रनदके उपत्यका देशमें आ कर चारों ओर फैल गई। १७वीं सदीमें वे लोग गौहाटी पर अधिकार जमा कर मुगल-सम्राट्के विरुद्ध अस्त्रधारण करनेमें समर्थ हुए।

आहोम जातिने स्वजातीय वीर्य्य और बाहुबलसे आसाम पर अपना अधिकार जमा लिया सही, किन्तु उन लोगोंको वीर धर्मके उपयोगी धर्मबल न था। उन्हों ने हिन्दुओंके अधिकारमें आ कर धीरे धीरे सत्वगुण प्रधान हिन्दू धर्मका ही आश्रय लिया। सात्विक भाव से क्रमशः उन लोगोंका हृदय परिपूर्ण हो गया। वे हिंसा द्वेषको धीरे धीरे भूलने लगे। पीछे पवित्र पुण्य धर्मका आश्रय ले कर उन लोगोंने वीरधर्मको जलांजलि दे दी। जिस बाहुबलने एक दिन दूसरेकी उन्नति देख ईर्षान्वित हो कर आहोम-राज्यकी प्रतिष्ठा की थी, वही भुजा धर्मकी महिमासे हिंसासे हिचक पड़ी तथा दूसरे का सर्वनाश करना पापजनक समझ कर अस्त्र शस्त्र धारण करनेसे पराङ्मुख हो गई। इस समय आहोम-राज्यमें विप्लव उपस्थित हुआ। लड़ाई झगड़ेसे दूर रहनेके अभिप्रायसे आहोम लोगोंने ब्रह्मवासियोंसे सहायता मांगी, परन्तु दुर्वृत्त ब्रह्मसैनिकोंने निरीह आहोम जातिको युद्धसे विमुख देख कर उन्हीं लोगों पर आक्रमण करना शुरू किया और थोड़े ही दिनोंमें वह राज्य हस्त गत कर लिया। १८२३ ई०में अंग्रेजोंने ब्रह्मराजाको युद्धमें परास्त कर आसाम राज्य पर अधिकार कर लिया।

वर्त्तमान शिवसागर नगरसे थोड़ी दूर दक्षिणपूर्व दिखू नदीके किनारे गढ़गांव नामक स्थानमें आहोम लोगोंने अपनी राजधानी बसाई। इस समय भी उस नगरका ध्वंसावशेष बहुत दूरमें फैला हुआ है। प्राचीन राजप्रासादकी बाहरी दीवारकी सीमा आज भी दृष्टिगोचर होती है। उसकी परिधि प्रायः दो मीलकी होगी। इन सब ध्वस्त कीर्त्तियोंके मध्य प्रस्तर निर्म्मित एक बड़े फाटकका निदर्शन पाया जाता है। उसके सभी पत्थर लोहेके तारसे बंधे हैं। उन्हें देखने हीसे मालूम पड़ता है, कि सुप्राचीन कामरूप-राजवंश-की पूरी उन्नतिके समय प्रासादका यह द्वारा तैयार किया गया था। वर्त्तमान समयमें यह स्थान जङ्गलो-से भर गया है। प्राचीन नगरकी बहुत-सी ईंटें आदि स्थानवासी अपने व्यवहारके लिये उठा ले गये हैं। चाय बगानोंमें इस तरहकी अनेक प्राचीन ईंटें पाई जाती हैं।

किसी कारणसे उक्त राजधानीके श्रीभ्रष्ट हो जाने पर १६९० ई०में राजा रुद्रसिंहने शिवसागरके दक्षिण रङ्गपुर नामक स्थानमें अपनी राजधानी बसाई। रुद्रसिंह ने ही सबसे पहले ब्राह्मण्यधर्मकी दीक्षा ली थी। उनका बनाया हुआ प्रासाद और जयसागरतीरस्थ देवमन्दिर इस समय भी भग्नावस्थामें विद्यमान है। उनके बड़े लड़केने शिवसागर डिग्गी खोदवाई थी। उसकी जल भारा प्रायः ४ सौ बीघेमें है। इस सुविस्तृत डिग्गीके चारों पार्श्वमें शिवसागर नगर प्रतिष्ठित है। १७८४ ई० तक रङ्गपुरमें आहोम राजाओंकी राजधानी और राजप्रासाद विद्यमान था। इसी समय राष्ट्रविप्लव-की सूचना हुई और आहोम शक्ति टुकड़े टुकड़े में विभक्त हो गई। राजा गौरीनाथ इस समय विद्रोही प्रजाओंके द्वारा आक्रान्त हो कर दिशाई तीरस्थ जोड़हाट नामक स्थानमें भाग गये। शत्रुओंके पीछा करनेके कारण वे वहांसे भी गौहाटीकी ओर भाग जानेके लिये लाचार हुए। इसके बाद अङ्गरेजी-सेनाकी सहायतासे वे जोड़ हाट लौट आये। यहां १७९३ ई०में उनकी मृत्यु हो गई।

राजधानीकी ध्वस्त कीर्त्तिको छोड़ आहोम राजाओं की और भी कई अक्षय कीर्त्तियां हैं। नदीकी बाढ़से देशरक्षाके लिये उन्होंने कितने ही बाँध बंधवाये थे, जो

इस समय भी निदर्शन स्वरूप विद्यमान हैं। इस बाध परसे लोग आते जाते थे। आहोम राजाओं ने सम्भवत विना खर्चके प्रजाओंको बाध्य करके इन बाँधोंका निर्माण किया था। क्योंकि उनका शासन प्रणाली भी स्वतन्त्र थी। वे अपने अधिकृत प्रदेशको टुकड़े टुकड़ेमें विभक्त कर तथा एक एक विभागको एक एक शासनकर्त्ताके अधीन कर राज्यशासन चलाते थे। ये कर्मकर्त्ता प्रजासे किसी प्रकारका राजकर वसूल नहीं कर सकते थे।

ये प्रजाओंमेंसे प्रत्येक व्यक्ति द्वारा राजकीय या राज्य के मगलजनक कोई न कोई कार्यका कुछ अश निबटवा ही लेते थे। उसके लिये उन्होंने सरकारकी ओरसे किसी प्रकारका मेहनताना देनेकी व्यवस्था न थी। जो कार्य करनेमें आनाकानी करता था, उससे बलपूर्वक कार्य कराया जाता था। इस कारण राज्यकार्यमें उनकी विशेष आस्था न थी। धीरे धीरे आहोम राजवशकी अवनतिके साथ साथ इन सब बाधोंकी अवस्था भी बिगड़ने लगी। नदीकी बाढसे स्थान स्थान पर बाध टूट गये और खेती नष्ट होने लगी।

१८२३ ई०में ब्रह्मसेनाको भगा कर अग्रेजोंने शिव सागर पर दखल जमा लिया। ब्रह्मसेनाके पुन आक्रमणसे देशरक्षाके लिये अग्रेजी सरकारने पहले ही ब्रह्मपुत्र उपत्यकाके सीमान्तवर्त्ती सदिया नगरमें एक सेनानिवेश स्थापित कर लिया। उस समय अग्रेजी सरकारके कर्मचारी लोग नवगाँवमें बैठ कर राजकार्य सम्हालते थे। इसके बाद वर्त्तमान शिवसागर जिला तथा लखिमपुरके दक्षिण भागका कुछ अश अग्रेजी सरकारने ५०००० रुपये वार्षिक राजकर ठीक कर राजा पुरन्दर सिह नामक एक देशी राजाके हाथ सौंप दिया। राजा पुरन्दर सिह अग्रेजोंकी सहायता पा कर बहुत अत्याचार करने लगे। निर्दय ब्रह्मवासी राजाका अत्याचार उत्तरोत्तर बढ़ते देख अग्रेजी सरकारने १८३८ ई०में राजा पुरन्दरको पदच्युत कर इस प्रदेशका राजकार्य सम्हालनेके लिये एक स्वतन्त्र अग्रेज शासनकर्त्ता नियुक्त किया। उस दिनसे यहा किसी प्रकारका गोलमाल उपस्थित नहीं हुआ। नदीकी बाढसे प्रजाओंका खेती चौपट हो जाती थी जिससे उनकी बड़ी क्षति होती थी। किन्तु चायबगानकी स्थापना होनेके बादसे उनकी अवस्था बहुत कुछ सुधर गई है।

शिवसागर नगरको छोड़ जोड़हाट, गोलाघाट और नाजिरा नगर वर्त्तमान समयमें पण्यद्रव्यसे परिपूर्ण रहने के कारण एक एक वाणिज्यकेन्द्र हो गया है। प्राचीन राजधानी गढ़गाँव और रगपुर इस समय समृद्धिहीन छोटे गावमात्र हैं। इसके अतिरिक्त इस जिलेमें २१०६ ग्राम हैं। जनसख्या ६ लाखके करीब है। अधिवासियोंके मध्य आहोम, कोच, चुटिया, ब्रह्म चीन, डोम, राजपूत, कलिता प्रभृति अपेक्षाकृत उन्नतिशील हैं। निम्नश्रेणीके मध्य कचट, कनाली, मुण्डा वा मुरा, कुर्म्मी, बाडिया, भाट, गणक, हाड़ी, कुम्हार, बाउरी, कहार, घाट वाल हजाम, ग्वाला प्रभृति जातिया देखी जाती हैं। आदिम असभ्य जातिके मध्य मिरि, मिश्मि नागा खान लालुग, मेछ गारो, मणिपुरी, कोल बरायन और स थाल प्रधान हैं। शेषोक्त जातिके लोग चायबगानके कुली बन कर छोटानागपुर जिलेसे यहा आ गये हैं। सब जातियोंमें अधिक लोग ही कृषिजीवी हैं। कोई कोई कुलीका काम कर जीविका चलाते हैं।

कपास और रेशमी वस्त्र बुननेका कारबार यहाका प्रधान कारबार है। आडाकुडी वृक्ष पर जो कीड़े पाले जाते हैं उससे मेजाकुडा नामक रेशम तैयार होता है। इस रेशमके कपड़े यहाके सभी प्रकारके रेशमी वस्त्रोंसे अच्छे होते हैं। तूतके पेड़ पर जिस चीन देशीय कीड़ों की खेती होती है उससे पाट नामक रेशम तैयार होता है। सुम नामक पेड़के फूल पर जो कोड़े पाले जाते हैं, उससे मूगा और अरडी वृक्षके कीड़ोंसे अडी रेशम तैयार होता है। इन सब प्रकारके रेशमी वस्त्र भारतके सभी स्थानोंमें तथा विदेशमें भी बड़े आदरके साथ ग्रहण किये जाते हैं। इसके अलावे यहा नाना प्रकारके पीतल और कासेके बरतन तैयार होते हैं। मारवाड़ी वणिक् समिति ये सब चीजें तैयार करनेवाले कारीगरोंको मजूरी दे कर चीज तैयार कराती है और उन्हें येनतेन लिये दूर दूरके देशोंमें भेजी जाती हैं। पर लवण तेल, अफीम कपास वस्त्र और लौहनिर्मित नाना प्रकारके विदेशी द्रव्य यहा रेल तथा स्टीमर द्वारा मगाये जाते हैं।

यहांका जलवायु उतना बुरा नहीं है। कार्त्तिकसे चैत्र मास तक यहां जाड़ा पड़ता है, इसके बाद कई महीने ग्रीष्म और वर्षा रहती है। इस कारण यहां साधारणतः दो ही ऋतु देखी जाती हैं। सविराम और अविराम ज्वर, उदरामय तथा रक्तामाशय, वात, गलगण्ड, कुष्ठ प्रभृति चर्मरोग तथा नाना प्रकारके हृद्रोग यहांके अधिवासियोंको क्लिष्ट कर देते हैं। सालमें एक बार विसूचिका रोग देखा जाता है और ४।५ वर्षोंके अन्तर पर वसन्तरोगका प्रादुर्भाव होता है।

विद्या-शिक्षामें यह जिला बहुत बढ़ा चढ़ा है। अभी कुल मिला कर ३२५ प्राइमरी और २० सिकेण्डरी स्कूल हैं। स्कूलके अलावा ३ अस्पताल और ४ चिकित्सालय हैं।

२ उक्त जिलेका एक उपविभाग। यह अक्षा० २६° ४२´ से २७° १६´ उ० तथा देशा० ६४° ७४ से ६५° २२´ पू०के मध्य पड़ता है। भूपरिमाण ११६२ वर्गमील और जनसंख्या दो लाखसे ऊपर है। इसमें १ शहर और ६६६ ग्राम लगते हैं। शिवसागर और बड़नला थाना ले कर यह उपविभाग गठित है।

३ शिवसागर जिलेका प्रधान नगर और विचार सदर। यह ब्रह्मपुत्रनदके दक्षिणी कछारसे ६ मील दूर दिखू नदीके तीर पर अक्षा० २६° ५६´ उ० तथा देशा० ६४° ३८´ पू०के मध्य विस्तृत है। आहोम राजवंश हिन्दूधर्ममें दीक्षित होनेके बाद 'शिवसागर' के किनारे राजधानी बसा कर राज्य करते थे। इस समय भी वह शिवसागर और उसके चतुर्दिक्स्थ प्राचीन मन्दिरादि विद्यमान हैं। कहते हैं, कि करीब १७२२ ई०में आहोम राजा शिवसिंहने बहुत रुपये खर्च कर यह डिग्गी खोदवाई थी। प्राचीन नगरभाग ध्वस्तावस्थामें गिरा पड़ा है। गवर्मेण्टके यत्नसे वर्त्तमान नगर तथा बाजार प्रभृति श्रीसम्पन्न हो गया है। जनसंख्या छः हजारके करीब है। शहरमें दो हाई स्कूल हैं।

शिवसायुज्य (सं० क्ली०) शिवस्य सायुज्यं। १ शैवोंके अनुसार वह मोक्ष जिसमें मनुष्य शिवमें लीन हो जाता है। २ मृत्यु, मौत।

शिवसिंह—शिवसिंहसरोजके कर्त्ता। इन्होंने अपने सरोजमें अपना परिचय इस प्रकार दिया है, अपना नाम लिखना इस ग्रन्थमें बड़े अचम्भेकी बात है। कारण यह है, कि हमको इस मार्गमें कुछ भी ज्ञान नहीं है सो हमारी ढिठाईको विद्वज्जन माफ करेंगे। हमने वृहच्छिव पुराणको भाषा और उर्दू दोनों बोलियोंमें उल्था करके छपाया है। हमने ब्रह्मोत्तरखण्डका भी भाषा किया है; काव्य करनेकी मुझमें शक्ति नहीं। ग्रन्थोंको एकत्रित करनेकी हमें बड़ी अभिलाषा है। अरबी, फारसी और संस्कृतके सैकड़ों अद्भुत ग्रन्थ हमने संग्रह किये हैं। इन भाषाओंका थोड़ा बहुत ज्ञान भी हमको है।

शिवसिंह—१ मिथिलाके एक प्रसिद्ध राजा। ये देवसिंहके पुत्र और विद्यापतिके प्रतिपालक थे। मिथिला देखो। २ आसामके चन्द्रवंशीय एक राजा।

शिवसिंह मल्ल नेपालके एक राजा।

शिवसुन्दरी (सं० स्त्री०) शिवस्य सुन्दरी। दुर्गा। (तन्त्र)

शिवसूत्र (सं० क्ली०) शिवकर्तृक कथित सूत्र, दर्शन और व्याकरण।

शिवस्कन्ध (सं० पु०) एक राजाका नाम।

शिवस्तुति (सं० स्त्री०) शिवस्य स्तुतिः। शिवका स्तव, महादेवका स्तव।

शिवस्वाति (सं० पु०) एक राजाका नाम।

शिवस्वामी—बहुतेरे प्राचीन संस्कृत ग्रंथकारोंके नाम। १ काश्मीरपति अवन्तिवर्माकी सभाके एक प्राचीन कवि। २ एक प्राचीन वैयाकरण। क्षीरस्वामी और माधवने इनका नामोल्लेख किया है। ३ शिवाचार्य नामसे प्रसिद्ध एक ग्रन्थकार। इन्होंने सुखजीवन नामक एक राजाके आश्रयमें विज्ञानभैरवोद्द्योतसंग्रहकी रचना की।

शिवा (सं० स्त्री०) शिव-टाप्। १ दुर्गा। २ पार्वती, गिरिजा। ३ मुक्ति, मोक्ष।

"शिवा मुक्तिः समाख्याता योगिनां मोक्षगामिनी।
शिवाय या जपेद्देवीं शिवा लोके ततः स्मृता॥"

(देवीपु० ४५ अ०)

ब्रह्मवैवर्त्तमें शिवा शब्दकी नामनिरुक्ति इस प्रकार है—

"शश्च कल्याणवचन इकारोत्कृष्टवाचकः।
समूहवाचकश्चैव वाकारो दातृवाचकः॥

श्रेय उत्कृष्टदात्री शिवा तेन प्रकाशिता।
शिवराशि र्मूर्त्तिमती शिवा तेन प्रकीर्त्तिता॥
शिवोहि मोक्षवचनश्चाकारो दातृवाचक।
स्वयं निर्माणदात्री या सा शिवा परिकीर्त्तिता॥"

(ब्रह्मवैवर्त्तपु० श्रीकृष्णजन्मख० २७ अ०)

न शब्द कल्याणवाची, इ शब्द उत्कृष्ट और समूहवाचक या शब्दका अर्थ दाता, जो उत्कृष्ट श्रेय समूह प्रदान करते हैं, उन्हें शिवा कहते हैं।

४ शमीवृक्ष, सफेद कीकर। ५ हरीतकी हर्रे। ६ शृगाली, सियारिन। ७ आमलकी, आँवला। ८ दुष्ट नक्तविशेष। ये २३वें जिनकी माता हैं। ९ हरिद्रा, हल्दी। १० दूर्वा नीली दूब। ११ गोरोचना गोरोचन। १२ बहुपुत्री, मेथी। १३ श्यामा नामका लता। १४ भूम्यामलकी भुईं आंवला। १५ वन तमूर। १६ धौं, धव।

शिवाङ्क (स० पु०) एक प्राचीन गोत्रप्रवर्त्तक ऋषिका नाम। (पा ४।१।९६)

शिवाक्ष (स० वली) शिवस्य अक्षि कारकत्वेनास्त्यस्येति अच्। रुद्राक्ष।

शिवाख्य (स० स्त्री०) शिवा इति आख्या यस्याः। १ बन्ध्याटूव। २ शिवा देखो।

शिवागम (स० पु०) तन्त्रशास्त्र, शिवप्रोक्त तन्त्र।

शिवाघृत (स० क्ली०) वैद्यकमें एक प्रकार तैयार किया हुआ घृत। इसके प्रस्तुत करनेके लिये गीदड़का मांस बकरीका दूध मुलेठी, मजीठ, कुड़ा, लाल चन्दन, पद्मकाठ हर्रे, बहेड़ा आंवला, विडङ्ग, देवदारु, दन्तीमूल, श्यामालता, फालसी, हल्दी, दारुहल्दी, अनन्तमूल, इलायची आदि पदार्थोंको घीमें डाल कर घृतपाककी विधिसे पकाते हैं। यह घृत पागलपनके लिये बहुत उपकारी माना जाता है। इसके अतिरिक्त वात अपस्मार, मेह आदिमें भी इसका व्यवहार होता है।

शिवाद्रु (स० पु०) वकवृक्ष, अगस्तका पेड़।

शिवानी (स० स्त्री०) धवपत्ता।

शिवाजी—भोसलेवंशीय सुविख्यात महाराष्ट्र दस्यपति और दाक्षिणात्यमें स्वाधीन महाराष्ट्र राज्यके प्रतिष्ठाता। ये फलतानके नायक निम्बलकर जादवो भोसलेके लड़के थे। जिस वंशमें शिवाजीने जन्म ग्रहण किया, वह उदयपुरके सुप्रसिद्ध राणावंशके साथ संसृष्ट है। राजोपाख्यानमें इस भोसलेवंशका उत्पत्ति वृत्तान्त इस प्रकार देखा जाता है,—राजपूतानेके अन्तर्गत उदयपुर राज्यके वीरश्रेष्ठ राणा भीमसिंहके भागसिंह नामक एक पुत्र था। भागसिंहकी माता नीचवंशकी थीं। इस कारण राणावंशके लोग जारज कह कर उनकी उपेक्षा करते थे।

कुटुम्ब, भ्राता और शिशोदीय राजपूतकुल द्वारा इस प्रकार तिरस्कृत हो कर भागसिंह मातृभूमि और पितृगृहका परित्याग कर खान्देश राज्यमें चले गये तथा वहांके जमींदार राजा अली मोहनके अधीन काम करने लगे। पीछे उन्होंने अपने उपार्जित धनसे दक्षिण भारतमें पूना राजधानीके पास कुछ जमीन खरीदी और स्वयं जमींदारकी तौर पर रहने लगे।

दूसरे ग्रन्थमें लिखा है कि शिवाजीके आदिपुरुष शिवराव एक प्रकृत योद्धा थे। चितोरदुर्गमें उनका जन्म हुआ था। शिशोदिया राजपूत कुलकी प्रतिभा उन्हींसे चमक उठी थी। उनके तीन पुत्रोंमेंसे दो पठानोंके विरुद्ध युद्ध करके मारे गये तथा छोटे भीमसिंहने बड़े कौशलसे समरक्षेत्रसे भाग कर भौसले दुर्गमें आश्रय लिया था। इसी सूत्रसे उनके वंशधरगण भोंसले कहलाये।

भीमसिंहके पुत्र विजयभानु अमितबलशाली थे। वे अपने समाजमें योद्धा समझे जाते थे। विजयभानुके पुत्र खेलकर्णके जीवित कालमें मुसलमानोंने बार बार चितोर दुर्ग पर आक्रमण कर राजपूतशक्तिको ध्वंस कर डाला। खेलकर्ण दुर्द्धर्ष मुसलमानोंका मुकाबला कर न सके और दलबलके साथ देवगिरिके निकटवर्त्ती वेरुल ग्राममें जा कर रहने लगे। उनके पुत्र जयकर्ण और जयकर्णके पुत्र महाकर्ण थे। महाकर्णके पुत्र राजा शिव भीमा नदीके जलमें डूब मरे। उनके पुत्र बाबाजी या शम्भाजी १५३३ ई०में उत्पन्न हुए। इस समय इनकी भूसम्पत्ति केवल थोड़े ही ग्रामोंमें सीमाबद्ध थी।

शम्भाजीके मलोजी (मालोजी) और विठोजी नामक

दो पुत्र थे। वे दोनों ही बुद्धिमान्, उद्योगी, कर्मठ और उन्नतचेता थे। आपसका भ्रातृप्रेम इतना घनिष्ठ था, कि एक दूसरेको सलाह लिये विना कोई काम नहीं करते थे। दोनों भाई अपनी अवस्थाको सुधारनेके लिये सिन्धेड (सिन्दखेड)-निवासी लाखोजी नामक एक महाराष्ट्र सरदारके यहां नौकरी करने लगे। उक्त यादवराय वहादुर निजामशाहके एक विश्वस्त और प्रधान कर्मचारी तथा बारहहजारी मनसवदार थे। लाखोजीकी कृपासे मालोजी गृहकर्मचारी पद पर और विठोजी अश्वारोही सेनादलमें नियुक्त हुए।

यहां रहते समय मालोजीके दो पुत्रोंने जन्मग्रहण किया। शाहशरिया नामक एक फकीरके अनुग्रहसे दोनों पुत्र उत्पन्न हुए थे। इस कारण मालोजीने उनका नाम शाहजी और शरिफजी रखा। यादवराव पहलेसे ही प्रभुभक्त और कर्त्तव्यनिष्ठ मालोजीके प्रति प्रसन्न थे। १५९९ ई०की फाल्गुन पूर्णिमाके समय एक दिन मालोजी अपने बड़े लड़के शाहजीको ले कर लाखोजीके सामने खड़े हुए। शाहजीकी कमनीय मूर्त्ति देख कर लाखोजी बड़े प्रसन्न हुए और इन्होंने अपनी कन्याका विवाह उसके साथ कर देनेका वचन दिया। पीछे उन्होंने अपनी स्त्रीके परामर्शानुसार कुछ दिनोंके लिये वह विवाह बन्द रखा, किन्तु आखिर नवावकी मध्यस्थतामें अपनी कन्या जीजीबाईके साथ शाहजीका विवाह कर दिया।

इस समय मालोजी अपने अध्यवसायसे एक हजार सेना रखनेमें समर्थ हुए थे। नवावने उनकी वीरता देख कर उन्हें पांचहजारी मनसवदार बनाया और उन्हें पूना और सूप परगने जागीर स्वरूप मिले। शिवनेर और चाकन तथा उसके अधीनस्थ प्रदेशके राजस्वसंग्रहका भार भी उन पर सौंपा गया। १६१९ ई०में मालोजीकी मृत्यु हुई। मालोजी देखो।

पिताकी मृत्युके वाद शाहजीकी प्रतिभा बढ़ने लगी। इस समय निजामशाही वंशके दशवें राजा बहादुरशाहकी मृत्यु हो जानेसे राज्यमें विशृङ्खला उपस्थित हुई। शाहजी अपने पूर्व प्रभुकी विपद्वार्त्ता और मुगल कर्मचारियोंका दुर्व्यवहार सुन कर फौरन अहमदनगरको चल दिये और वेगमसाहवा द्वारा मन्त्रिपद पर अधिष्ठित हुए। इस पर उनके श्वशुर लाखोजीका ईर्षानल प्रज्वलित हो उठा। इसी सूत्रसे दोनोंमें मुठभेड हो गई। शाहजी युद्धमें वृथा वलक्षय होना अच्छा न समझ कर बीजापुरराजद्वारमें कर्मप्रार्थी हुए। नवाव इब्राहिम आदिलशाहने उनकी अच्छी खातिर की।

शाहजी जिस समय वीजापुर पहुंचे उस समय वीजापुर राज्यके साथ कर्णाटक प्रान्तमें युद्ध छिड़ा हुआ था। राजमन्त्री मुरारी जगदेवने शाहजीको उसी समय द्वितीय सेनापति और दशहजारी मनसवदार बना कर कर्णाटकप्रदेशमें भेज दिया। युद्धमें उनकी जीत हुई। इस पुरस्कारमें वीजापुरकी ओरसे उन्हें विजयलब्ध प्रदेशका कुछ अंश जागीर स्वरूप मिला।

शाहजी जब वीजापुर आये, तब उनके श्वशुर यादवरावने उनका पीछा करते हुए अपनी गर्भिणी कन्याको शिवनेर-दुर्गमें कैद कर रखा। कारागारमें ही जीजीबाईने १६२७ ई०को वैशाखी-शुक्ल-द्वितीयाके वृहस्पतिवारको महाराष्ट्रकेशरी शिवाजीको प्रसव किया। दुर्गाधिष्ठात्री शिवाई देवीके नामानुसार जातबालकका शिवाजी नाम रखा गया। इधर शाहजी अपने श्वशुरसे स्त्री लौटा देनेकी प्रार्थना करने पर भी जब व्यर्थ मनोरथ हुए, तब उन्होंने वङ्कोजीकी माता तुकाबाईसे दूसरा विवाह कर लिया।

इसके वाद निजामशाही राज्यमें शान्ति स्थापित होने पर शाहजीने वीजापुर-दरवारकी मध्यस्थतामें अपनी जागीर और स्त्रीपुत्रप्राप्तिके लिये आवेदन किया। इस बार कर्मचारियोंने विना किसी आपत्तिके उन्हें जागीर आदि लौटा दी। शाहजी देखो।

पिताके यत्नसे शिवाजीका शिक्षाभार दादाजी कोण्डदेव नामक एक उपयुक्त ब्राह्मणके हाथ सौंपा गया। उनकी चेष्टासे शिवाजी बचपनमें ही अद्वितीय अश्वारोही, स्थिर लक्ष्यनिपुण, अस्त्रपरिचालक और युद्धविद्यामें पारदर्शी हो उठे। उन्हींके उपदेशबलसे शिवाजीका शैशवकालमें ही भारतकी शोचनीय अवस्थाकी ओर ध्यान दौड़ा और उसीसे उनके हृदयमें भारतमें हिन्दू-साम्राज्य-स्थापनकी आशा बलवती हुई। बचपनसे ही उनके हृदयमें मुसलमान-विद्वेष प्रबल हो उठा। दश वर्षका लड़का शिवाजी

बीजापुर-राजदरबारमें पहुंच कर भी यह विद्वेष दिखानेसे बाज नहीं आया। शिवाजीको पासमें रखना निरापद नहीं समझ कर शाहजीने उनको विदा कर पूना भेज दिया।

पूना लौटनेके बाद अपनी आंखोंसे बीजापुरराजकी समृद्धि और गौरव गरिमायुक्त अवस्था देख शिवाजीके हृदयमें स्वजाति और स्वदेशका परिणामचित्र जाग उठा। इस समय शिवाजी आत्माभिमान और धनाभिमान पर लात मार कर स्वदेश प्रेममें विह्वल हो उठे। बालक शिवाजीके प्रेमपाशमें आबद्ध हो समीपके निवासी लोग उनके साथ आत्मभावमें मिल गये, यहां तक, कि शिवाजीका इशारा पाते ही चाहे कैसा ही काम क्यों न हो, वे लोग करनेसे बाज नहीं आते थे।

धीरे धीरे युद्धविशारद मावलजाति प्रातिनवसे इन्हें देख अपना अपना विद्वेष भूल गई और सबोंने मिल कर इन्हें अपना नेता बनाया। इससे शिवाजीका बल धीरे धीरे बढ़ने लगा।

१६४६ ई०में शिवाजीने १६वें वर्षमें कदम बढ़ाया। इस समय बीजापुरके राजा कर्णाटयुद्धमें लगे हुए थे। सुयोग देख कर शिवाजीने दुर्ग कर्मचारियोंको वशीभूत कर रात्रिकालमें तोरणादुर्ग पर धावा बोल दिया। बिना खून खराबीके यहीं मानो महाराष्ट्र साम्राज्यकी नींव डाली गई। इस समय उनके बाल्य सहचर येशाजी कङ्क, तानाजी मालुसरे, बाजी फसलकर आदि योद्धागण आजीवन विश्वस्त भावसे उनके जीवनपथके प्रधान अध्वर्यु हुए थे।

तोरणादुर्गको अधिकारमें ला कर शिवाजीने उसका जीर्णोद्धार करना चाहा। दुर्गकी चहारदीवारीके मरम्मत करते समय इन्होंने उसका एक स्थान खोदा। उस गड्ढेमें उन्हें स्वर्णमुद्रा अधिक संख्यामें मिली। उस धनसे शिवाजीने मुरबाद पर्वतके ऊपर एक दुर्ग बनवाया और उसे नाना जातीय युद्धोपयोगी द्रव्योंसे भर दिया। इस दुर्गका नाम रायगढ़ रखा गया। इसी दुर्गमें शिवाजी राज्याभिषेक काल तक रहते थे। पुत्रके इस असमसाहसिक कार्य पर विस्मित और भीत हो शाहजीने इन्हें ऐसे दुस्साहससे हाथ खींच लेनेका उपदेश दिया।

दादाजी कोण्डदेव इनकी निर्भीकता देख कर बहुत ही खुश रहा करते थे। उन्होंने महाराष्ट्र साम्राज्यकी नींव बहुत मजबूत कर दी थी। १६४७ ई०को सत्तर वर्षकी उमरमें दादाजी इस लोकसे चल बसे।

दादाजीकी मृत्युके बादमें शिवाजीके ऊपर पैतृक सम्पत्तिका शासन भार सौंपा गया। इसी समयसे इन्होंने सम्पूर्ण स्वाधीनभावसे कार्य करनेका सुयोग पाया। पराधीन देशमें रह कर किस प्रकार कार्य करनेसे अन्तमें सफलता लाभ हो सकता है, शिवाजी उसीकी चिन्ता करने लगे। इस समय पुत्र शिवाजीको शाहजीने एक पत्र लिखा, कि वह सञ्चित धन शीघ्र भेज दें। किन्तु यह सञ्चित धन हाथसे निकाल देना उचित न समझ कर शिवाजीने गुरुदेवकी मृत्युकथा, दरिद्र देशका राजस्व और शासन व्यवस्थाके कारण अधिक व्यय आदि कारणोंका उल्लेख करते हुए वर्तमान समयमें अर्थप्रेरण सम्भावित नहीं है, ऐसा लिख कर पिताके पत्रका जवाब दिया।

इसके बाद देशमें देशहितैषिता प्रचार करनेके लिये शिवाजी बद्धपरिकर हुए। वे जानते थे, कि विलासप्राण धनवान् उनकी सहायतामें हाथ न लगावेंगे इस लिये उनसे सहायता पानेकी आशा छोड़ कर उन्होंने निम्न और मध्यवित्त श्रेणीमें स्वाधीनताका माहात्म्य प्रचार किया और उन्हें अपने मतादर्श पर खींच लाया। शिवाजीकी देशोद्धारकी ऐकान्तिक इच्छा, शत्रुदमनमें असामान्य अध्यवसाय और अपूर्व वीररसपूर्ण वक्तृता सुन कर चाकन दुर्गके हवलदार फिरङ्गजी नरसालाके हृदयमें देशाभिमान और स्वधर्मानुराग प्रवृत्ति अत्यन्त बलवती हो उठी। शिवाजीके आनन्दका पारावार न रहा जब उन्होंने देखा कि फिरङ्गजी उनके पक्षमें हैं। बाद उन्होंने चाकन दुर्गको युद्धोपयोगी द्रव्योंसे परिपूर्ण कर फिरङ्गजीके हाथ उसका शासन भार सौंपा। बारामती इन्दापुर आदि महालोंके कर्मचारिगण बिना आपत्तिके शिवाजीके पास राजस्व भेजने लगे।

शिवाजीने माणकोजी दहातोण्डेको सेनापति और श्यामराव नीलकण्ठको पेशवाके पद पर नियुक्त किया।

जिन लोगोंने दुर्गादि विजय कार्यमें वीरता दिखलाई थी, वे सब तरहकी उपाधियोंसे भूषित किये गये।

शिवाजीके गुरु पर सुहृद् वीर तानाजीने एक दिन उनके पास आ कर आत्मसमर्पण किया। शिवाजी उनके प्रस्तावसे सर्वोच्च दुर्गम कोंडना दुर्ग पर आक्रमण करनेके लिये प्रोत्साहित हुए। शिवाजीने यह अभिप्राय प्रकट किया, कि यदि तानाजीकी चेष्टासे वह दुर्ग अधिकृत हुआ, तो वह कोंडनाके शासनकर्त्ता बनाये जायगे। मालूसरा तानाजीने चुपके कोंडना दुर्गका पूरा हाल मालूम कर लिया और एक दिन रातको प्रबल पराक्रान्त मावली सेना ले कर दुर्ग पर अचानक धावा बोल दिया। दुर्गस्थ मुसलमानोंने शत्रुसे आक्रान्त हो और पहले ही अस्त्रागार आक्रान्त होते देख तुरत पराभव स्वीकार कर लिया। शिवाजीने तानाजीका असाधारण बुद्धिचातुर्य और वीरता देख कोंडना दुर्गका प्राचीन नाम बदल कर तानाजीके पराक्रमप्रतिपादक सिंहगढ़ नामसे उसे प्रसिद्ध किया तथा अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार तानाजीको वहांका शासनकर्त्ता बनाया। दुर्गको सभी प्रकार सुरक्षित कर शिवाजी माताके निकट पूना गये। वहां पहुंच कर शिवाजीने सुना, कि पुरन्दरका दुर्गाध्यक्ष नीलकण्ठ राव परलोकवासी हो गया। दुर्गाधिकार के लिये झगड़ते हुए नीलकण्ठ रावके दो पुत्र शिवाजीके पास आये और विवाद मिटानेके लिये उन्हें मध्यस्थ बनाया। शिवाजीने दोनोंमें मेल करा दिया और उन्हें जागीर तथा उच्च पद दे कर दुर्गको अपने कब्जेमें कर लिया। सच यह है, कि यदि वे दुर्ग पर हस्तक्षेप न करते, तो कोई प्रबल व्यक्ति अवश्य ही उसे अधिकार कर बैठता। पुरन्दर दुर्गको हस्तगत कर उसका शासनभार उन्होंने स्वयं अपने हाथ लिया। इसके बाद मोरोपन्त पिङ्गल के हाथ उसका शासनभार सौंपा गया।

दादाजी कोण्डदेवकी मृत्युके थोड़े ही महीनोंके अन्दर बिना युद्ध रक्तपातके शिवाजी चाकन और नीराके मध्यवर्ती भूभागके अधीश्वर हुए।

बीजापुरके राजाको पहले शिवाजीके क्रियाकलाप का कुछ समझमें न आया जिससे शिवाजीको इष्ट-सिद्धिमें बड़ी सुविधा हुई था। यहां तक, कि अन्तमें बीजापुरराजको अपनी असावधानताके कारण पश्चात्ताप करना पड़ा था।

१६४८ ई०में बीजापुरके साथ शिवाजीको एक भीषण संग्राममें प्रवृत्त होना पड़ा। इस समय उनकी अवस्था सिर्फ २१ वर्षकी थी। शिवाजी युद्धका साजो सामान इकट्ठा कर अचानक इस युद्धमें प्रवृत्त हुए थे। उनकी समर-निपुणतासे प्राचीन समर-विद्या-विशारदों को भी मुग्ध होना पड़ा था। इस समयसे शिवाजीने शत्रुओंके अनेक दुर्ग दखल किये तथा स्वयं कितने दुर्ग भी बनवाये। बहुतसे ग्राम और नगर इस समय शिवाजी-के हाथ आये। नेताजी पालकर, फिरङ्गोजी नरशाले, तानाजी मालसुरे, मोरोपन्त पिङ्गले आदि महाराष्ट्रीय वीरगण इन सब कामोंमें शिवाजीके सहायक थे। छद्मवेश, गुप्तभाव, अतर्कितरूपसे आक्रमण आदि उपायों में ये सिद्धहस्त थे। इन्हीं सब उपायोंसे कांगेरी, तिकोना, लोहगढ़, राजमाटी, कुवारी, भोरोप, धनगढ़ और कोलना आदि दुर्ग इनके हाथ लगे थे।

शिवाजीके इन्द्रियसंयम और चरित्र गौरवका एक उदाहरण यहां दिया जाता है। किसी समय आवाजी सोनदेव नामक एक ब्राह्मणने बम्बईके निकटवर्त्ती कल्याण नगर पर आक्रमण किया। मौलाना अहद उस नगरके शासनकर्त्ता थे। वे पुत्रवधूके साथ कैद कर लिये गये। सोनदेव शिवाजीको प्रसन्न करनेके लिये विजयलब्ध द्रव्यादिके साथ अहदकी गर्भिणी पुत्रवधूको शिवाजीके पास ले गये। उस समय शिवाजी अपने कर्मचारी और मित्रोंके साथ बैठे हुए थे। सोनदेवके मनका भाव समझ कर उन्होंने जोर शब्दोंमें कहा, 'यदि हम लोगों-की जननी इस रमणीकी तरह सुन्दरी होती, तो हम लोग भी सुन्दर होते।' शिवाजीने इस वाक्यसे सबोंको समझा दिया, कि परस्त्री देखनेसे ही उसे माताके समान समझना होगा। इतना कह कर उन्होंने बहुमूल्य वसन-भूषण दे कर उस रमणीको सुरक्षित भावसे बीजापुर उसके अभिभावकोंके पास भेज दिया। इस उपलक्षमें शिवाजीने अपने स्वजनों और कर्मचारियोंको परस्त्रीलोभ-के विरुद्ध जो सब उपदेश दिये थे, वे सभी मूल्यवान् थे।

इसके बाद कल्याण और कोङ्कण प्रदेशके दुर्ग

शिवाजीके हाथ आये तथा अरक्षित गिरिपथमें दुर्गादि बनाये गये। इसके सिवा शिवाजीने रायरीके निकटवर्त्ती लिङ्गाना और घोपालाके निकटवर्त्ती विसाडी नामक स्थानमें दो दुर्ग बनवाये।

शिवाजीने जिस चतुराईसे अपने कैदी पिताका उद्धार किया, वह भी सराहनीय है। शिवाजीकी विजयवार्त्ता चारों ओर फैल जाने पर बीजापुरके शासनकर्त्ता बड़े विचलित हो उठे। उन्होंने शिवाजीके पिता शाहजीको क्रोधपूर्ण पत्र लिख कर इन सब कामोंसे उन्हें रोकनेको कहा। इस पर जब कोई फल न देखा तब बीजापुरपतिने शाहजीके किसी मित्रको प्रलुब्ध करके उसीके द्वारा उन्हें कैद कर लिया। उस मित्रने एक दिन रातको भोजनके लिये शाहजीको निमन्त्रण किया। शाहजीके पहुंचते ही बीजापुरराजपुरुषोंने उन्हें गिरफ्तार किया। कारागारमें डाल कर शाहजीको कहा गया कि यदि शाहजी बीजापुरके अधीन स्थानोंका अधिकार बिना आपत्तिके लौटा दें, तो उनकी प्राणरक्षा हो सकती है, नहीं तो वे प्राणसे हाथ धो बैठेंगे। शिवाजी यह रोमाञ्चकारी संवाद पा कर बड़े उद्विग्न हुए। उनकी पतिप्राणा सहधर्मिणी सईबाई ने इस समय शिवाजीको जो उपदेश दिया, वह बड़ा ही तत्त्वपूर्ण था और उसमें सईबाईकी बुद्धिमत्ता स्पष्ट झलकती थी। उन्होंने कहा कि परमाराध्य स्नेहमय श्वशुर महाशयका उद्धार करना सबसे पहला कर्त्तव्य है। किन्तु व्यक्तिगत स्वार्थके कारण जिससे देशके उद्धारमें कोई बाधा न पहुंचे, उसका भी विचार करना होगा। शिवाजीने मन्त्रियोंसे सलाह करके दिल्लीश्वर शाहजहान्‌की शरण लेना ही इस समय उचित समझा। दिल्लीश्वरने शिवाजीको पांच हजार घोड़ोंका मनसबदार बना कर शाहजीकी मुक्तिके लिये बीजापुरपतिको पत्र लिखा। इस उपायसे शाहजीने छुटकारा पाया था।

बीजापुरके महम्मद शाहने पीछे जब देखा कि शिवाजीकी क्षमता दिन पर दिन बढ़ती जा रही है तब उन्होंने शिवाजीको कैद करनेके लिये आदिलशाह चन्द्र रावके साथ परामर्श किया। बाजी श्यामराव भी इसमें शामिल थे। किन्तु शिवाजीने इन लोगोंकी अभिसन्धि जान कर चन्द्रराव और श्यामरावको युद्धमें हराया। इस संवादसे महम्मद शाह और भी निरुत्साह हो गये।

कल्याणी राज्य आक्रमणके बाद शिवाजी कुछ दिनोंके लिये हरिहरेश्वर नामक स्थानमें ठहरे। वहां एक सम्भ्रान्त वीरपुरुषने उन्हें एक उत्कृष्ट तलवार उपहारमें दी थी। इसके बदलेमें शिवाजीने उस वीरपुरुषको प्रायः आठ सौ (तीन सौ होण) रुपयेका जवाहरात और परिच्छद दिये थे। शिवाजीने इस तलवारका 'भवानी' नाम रखा था। वह तलवार आजीवन शिवाजीके साथ थी। लोगोंका विश्वास था, कि शिवाजीके भवानी तलवारके साथ रणक्षेत्रमें पहुंचते ही शत्रुकी जय आशा पर पानी फिर जाता था।

१६५५ ई०में शिवाजीने जावली पर अचानक धावा बोल दिया। चन्द्रराव जावलीके अधिकारी थे। रघुनाथ पन्त और शम्भाजी कावजी शानमें वहां पहुंच गये। चन्द्रराव और उनके भाई सूर्यराव युद्धक्षेत्रमें खेत रहे। इसके बाद जो एक युद्ध हुआ उसके फलसे जावली शिवाजीके अधिकारभुक्त हुआ था।

इस समय शृङ्गारपुरके राजा सुर्वेरायने शिवाजीकी अधीनता स्वीकार की तथा वे शिवाजीके साथ मिल कर उनके कार्योद्धारके विश्वस्त सहायक हुए। सुर्वेरायके साथ शिवाजीकी मित्रता दिनों दिन गाढ़ी होती गई। शिवाजीने इस मित्रताको और भी गाढ़ी करनेके लिये सुर्वेरायकी कन्याको अपनी पुत्रवधूके रूपमें ग्रहण किया।

शिवाजीके सेनानायकोंमें मोरोपन्तका नाम विशेष उल्लेखयोग्य है। मोरोपन्तने बहुतसे नगर जीते और कितने दुर्ग बनवाये थे। दुर्गोंमेंसे प्रतापगढ़ दुर्ग बनवानेमें मोरोपन्तने जो असाधारण क्षमताका परिचय दिया था, आज भी उसका समुज्ज्वल निदर्शन देखनेमें आता है।

दिल्लीके सम्राट् औरङ्गजेब बीजापुरके शासनकर्त्ताके साथ लड़नेके लिये ससैन्य बीजापुर आये और शिवाजीको अपने पक्षमें लानेकी कोशिश करने लगे। किन्तु चतुर शिवाजीने देखा, कि बीजापुर औरङ्गजेबके अधीन होनेसे उनके हकमें अच्छा नहीं होगा। यह सोच कर वे उन्हें मदद पहुंचानेमें राजी न हुए। इसपर

औरङ्गजेबके साथ शिवाजीकी दुश्मनी बढ़ गई। इसके बाद शिवाजीने मुगलसम्राट्के अधीन ग्रामों और नगरोंका लूटना आरंभ कर दिया। किन्तु इधर बीजापुरके अधिपति औरङ्गजेबसे मेल करनेके लिये तैयार हैं, सुन कर शिवाजी किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये और अकेला युद्ध करना अच्छा न समझ कर उन्होंने औरङ्गजेबसे मेल करनेकी इच्छा प्रकट की। औरङ्गजेबने शिवाजीको सन्धिमें आबद्ध किया। शिवाजीने भी औरङ्गजेबसे मित्रता कर ली। किन्तु बीजापुरके शासनकर्त्ताके साथ शिवाजीकी शत्रुता दिनोंदिन बढ़ती ही गई। इस समय बीजापुरके अधिपति महम्मद आदिलका देहान्त हुआ। बेगम साहबाने अफजल खाँको प्रधान सेनापति बनाया। अफजल खाँ बड़ा ही दाम्भिक और अभिमानी था। ऊंचा ओहदा पा कर उसके अत्याचारकी स्पृहा दिनों पर बढ़ने लगी। शिवाजी उसके दुर्व्यवहारकी बात सुन कर उसका काम तमाम करनेका उपाय ढूंढने लगे। इस समय कृष्णाजी पन्त इस उद्देशके प्रधान सहायक रूपमें खड़े हुए।

कृष्णजी पन्त और गोपीनाथ पन्तने अफजल खाँके पास आ कर कहा, "शिवाजी आपके अधीन होनेके लिये तैयार हैं, इसलिये एक बार आपको प्रतापगढ़ जाना पड़ेगा। शिवाजीने आपको निमन्त्रण किया है, निमन्त्रणकी रक्षा करना आपका मुनासिब है।" तदनुसार अफजल खाँ सुशोभित निमन्त्रणालयमें उपस्थित हुआ। शिवाजीने निमन्त्रणके सभी सामान अर्थात् सैन्यादि पहलेसे ही संग्रह कर रखे थे। अफजल खाँके दिलमें भी काली थी। वह भी सेनाके साथ वहां पहुंचा था। किंतु कृष्णाजीकी सलाहसे वह अपनी सेनाको बहुत दूर रख आया था। अफजल खाँ शिवाजीको आलिङ्गन करने आगे बढ़ा और गुप्त अस्त्र द्वारा उन्हें यमपुर भेजना चाहा। चतुर शिवाजीने क्षण भरमें हस्तस्थित व्याघ्रनखसे उसका पेट फाड़ डाला। इस प्रकार अफजल खाँ शिवाजी द्वारा यमपुरका मेहमान बना। इसके बाद ही मुसलमान सेनाके साथ शिवाजीकी गहरी मुठभेड़ हुई। युद्धमें शिवाजीकी जीत हुई। इस युद्धमें शिवाजीको ६५ हाथी, ४००० घोड़े, १२०० ऊंट, २००० बंडल कपड़ा और ७ लाख रुपये सोने चांदीके द्रव्य हाथ लगे थे। इसके सिवा उन्होंने बहुतसी बंदूक, कमान और तलवार आदि भी पाई थी। इसके बाद शिवाजीने स्वयं खड़े हो कर प्रतापगढ़में अफजल खाँकी लाशको दफनाया। आज भी वह मकबरा मौजूद है।

कहते हैं, कि शिवाजीने कोङ्कण प्रदेशके धीवरोंको नाविकसैन्यमें भर्त्ती किया था तथा बहुत-से अर्णवयान बना कर देशके नौबलकी वृद्धि की थी।

शिवाजीके शरीरमें कभी कभी भगवतीका आविर्भाव हुआ करता था। वे शिवाजीको अनेक प्रकारके उपदेश देती थीं। शिवाजी भगवतीके उसी उपदेशके अनुसार काम करते थे। किसी समय शिवाजी पारमार्थिक गुरुके लिये व्याकुल हुए। तब भगवतीने उन्हें सलाह दी, कि रामदास स्वामी उनके उपयुक्त गुरु होंगे। शिवाजीने इस समय रामदास स्वामीको गुरुके पद पर वरण किया। रामदास परिव्राजक थे, अतएव बहुत खोज करनेके बाद शिवाजीने उन्हें पाया था। रामदास स्वामीके परामर्शसे शिवाजी प्रायः सभी कार्य किया करते थे।

रामदास स्वामी विविध विषयोंका शिवाजीको उपदेश देते थे। शिवाजीने किसी समय अपनी सारी सम्पत्ति रामदास स्वामीके चरणोंमें न्योछावर कर दी थी। उस समय स्वामीजीने कहा था, 'राज्य सम्पत्तिका इस प्रकार परित्याग कर देनेसे भला कहो तो सही, तुम अभी कौन काम करोगे ?" शिवाजीने उत्तर दिया, "आपके सैकड़ों शिष्य हैं, मैं भी उन्हीं लोगोंकी तरह आपकी चरणसेवा करूंगा।" स्वामीजीने कहा, 'यदि ऐसा है, तो कौपीन पहन कर दरवाजे दरवाजे भिक्षा मांगनी होगी, क्या सकोगे ?" गुरुकी आज्ञासे शिवाजीने वह भी किया था। स्वामीजीने शिवाजीकी गुरुभक्ति देख कर कहा, 'शिवाजी ! तुम राजा हो, यह कार्य तुम्हारे लिये नहीं है। तुम स्वधर्म और स्वराज्यकी उन्नति करो।' गुरुकी आज्ञा शिरोधार्य कर शिवाजी तदनुसार कार्य करनेमें लग गये।

१६६१ ई०में शाइस्ता खाँके साथ शिवाजीका घोर संग्राम छिड़ा। इस युद्धमें शिवाजीकी जीत हुई। इसी साल शिवाजीके एक पुत्र-रत्नने जन्म लिया। पुत्रका

नाम राजाराम रखा गया। फिर उसी साल शिवाजीके पिता शाहजी परलोकवासी हुए। शिवाजीने लाखसे अधिक रुपये श्राद्धमें खर्च किये थे। इधर शाहजी जैसे वीर थे, उधर वैसे ही धर्मभीरु थे। वे मुगल बादशाहके अधीन ऊँचे ओहदे पर काम करते थे। अपने अन्तिम जीवनमें उन्होंने बीजापुरके सेनापतिपद पर ३१ वर्ष काम किया था।

सूरत आक्रमण भी शिवाजीके जीवनकी एक प्रधान घटना है। १६६४ ई०में शिवाजीने सूरत पर आक्रमण किया। इस युद्धमें मुगल-सेना पूरी तरहसे हार खा कर सूरत छोड़ भाग गई। इस युद्धके फलसे शिवाजीने एक करोड़ बीस लाख रुपयेकी सम्पत्ति पाई थी। इसके बादसे मुसलमान लोग शिवाजीसे यमके समान डरते थे।

शाहजीकी मृत्युके बाद शिवाजी दुर्गमें रहते थे। इसी समय उन्होंने राजाकी उपाधि पाई तथा अपने नाम पर सिक्का चलाया।

शिवाजीने कई बार मुगलशक्तिको ध्वंस करनेकी चेष्टा की थी। जलपथसे युद्ध करके भी शिवाजी अपने समरशौर्य पर यथेष्ट वीरकीर्त्ति छोड़ गये हैं। बीजापुरके शासकने जब शिवाजीकी अनुपस्थित सन्धि तोड़ डाली तब शिवाजी भेंगुरला नामक स्थानमें युद्ध करने डट गये। इस युद्धमें भी बीजापुरकी हार हुई थी। इस समय शिवाजी अकेले दशों ओर शत्रुओंकी गतिविधि देखा करते थे तथा निद्राका परित्याग कर शत्रुका दमन करनेमें तत्पर रहते थे। गोआके पुर्त्तगीजोंको भी शिवाजी अपने काबूमें लाये थे। गोआसे ६० जहाज दक्षिण रत्नगिरियोंके साथ यात्रा करके शिवाजीने अचानक बारसिलोर नगर पर चढ़ाई कर दी। यहाँ भी उन्हें काफी रकम हाथ लगी थी। कारवारनगरमें जो सब अंगरेज वणिक रहते थे, शिवाजीको आशंकासे उन्हें भी इस समय ११२०) रु० कर देना पड़ता था।

१६६५ ई०में शिवाजीने जब गोआ नगरको लूट उत्तर कनाड़ामें अपनी गोटी जमाई, तब मुगल सम्राट् औरङ्गजेब बड़े चिन्तित हुए। इसके पहले ही शिवाजीने सूरत पर आक्रमण किया था मुगल सेनाको हराया था, मुसलमान तीर्थयात्रियोंको कैद किया था और सिंहासन पर आरोहण किया था। इससे सम्राट् औरङ्गजेब जलभुन गये थे। अभी उनकी वन्धुद्धि और पूनामें शाइस्ता खाँकी अकर्मण्यताने उन्हें और भी क्षुब्ध कर डाला। उसी प्रतिहिंसाके वशवर्त्ती हो कर सम्राटने उसी साल अम्बाराधिपति सुविख्यात सेनापति जयसिंहको शिवाजीका दर्प चूर्ण करनेके लिये भेजा। जयसिंहके पुत्र रामसिंहको प्रतिभूस्वरूप रख कर और दोनोंको बहुत दूर दाक्षिणात्यमें भेज कर सम्राटने अपना मतलब गांठ लिया था।

समुद्रयात्रासे रायगढ़ लौटते ही शिवाजीको मालूम हुआ, कि विपुल मुगलवाहिनी ले कर दिलेर खाँ और जयसिंह बेरोकटोक पूना आ धमके हैं। बस फिर क्या था उन्होंने फौरन नेताजी पालकर और कर्त्तोजी गुजर आदिके अधीनस्थ योद्धाओंको मुगलसेना पर पीछेसे धावा बोलने तथा उनकी रसद भेजनेके रास्तेको रोकनेका हुक्म दे दिया। ये सब महाराष्ट्र सेनापति छुक छिप कर गोली वर्षण करते हुए मुगलवाहिनी पर एकाएक टूट पड़े और उन्हें नाकोदम लाये। मराठा सेनाको जरा भी अधीनता स्वीकार करते न देख जयसिंहने पुरन्दर दुर्गको घेर लिया। दिलेर खाँके ऊपर उसका कुल दारमदार सौंप कर वे स्वयं सिंहगढ़ पर आक्रमण करने अग्रसर हुए और रायगढ़की ओर अग्रगामी सेनादलको भेज उन्होंने मराठी सेनाको तंग करनेकी चेष्टा की।

महीने बीत गये, फिर भी पुरन्दर दुर्ग हाथ न लगा देख दिलेर खाँ पुरन्दरके पास ही रुद्रमाल पर्वत पर कमान सजा कर गोली बरसाने लगा। पुरन्दर दुर्ग समुद्रकी तहसे १७०० फुट ऊंचा है। यह दुर्भेद्य और दुरारोह है। इसके प्राय ८०० फुट नीचे और भी एक दुर्ग है। दिलेर खाने ऊपरके दुर्गका उड़ानेकी लाख चेष्टा की पर उसका कुछ भी न बिगड़ा, केवल नीचेके दुर्गकी दीवार जहां तहां टूट फूट गई।

पुरन्दरके दुर्गरक्षक प्रभुकायस्थवंशीय वीरचूडा मणि महाड़वासी मुरारि बाजी देशपाण्डे असीम साहस और निर्भीकतासे सिर्फ दो हजार मराठी सेना ले कर मुगल आक्रमणसे पुरन्दरकी तटभूमिकी रक्षा कर रहे थे। मुगलसेनाने जब निम्न दुर्गकी दीवारको तोड फोड़ कर बड़े उत्साहसे दुर्गको अधिकार कर लिया और वहांके ग्रामोंमें लूटपाट मचा दी, तब सुविधा पा कर मावलगण ऊपरसे गोलावर्षण करने लगे जिससे कितनी मुगल सेना यमपुर सिधारीं। वीरश्रेष्ठ बाजी प्रभु सात सौ मावलयोद्धा ले कर नीचे उतरे अब दोनों पक्षमें तलवारें बजने लगीं। कायस्थकुलरवि मध्याह्नकालीन सूर्यकी तरह रिपुओंका दमन कर अकाल ही राहुग्रस्त हुए। उनकी मृत्यु पर मावलगण जरा भी निरुत्साह न हुए और असीम साहससे मुगलसेनाको भुनने लगे। इस युद्धमें तीन सौ मावल योद्धा और हजारसे ऊपर मुगल योद्धा यमपुरके मेहमान बने थे। बाकी चार सौ मावल कुशलपूर्वक दुर्ग लौटे। दूसरे दिन दिलेर खाँने फिरसे अपनी सेनाको प्रोत्साहित कर दुर्ग पर आक्रमण कर दिया। बाजी प्रभुकी मृत्युसे मावलोंकी वैरनिर्यातनस्पृहा, साहस और वीर्य और भी बढ़ गया था। नायकविहीन होने पर भी वे लोग नायकके नाम और स्मृतिको हृदयमें धारण कर अपने अपने उत्साहसे परिचालित हुए। प्रचण्ड आक्रमणसे मावलोंने मुगलोंका प्रयास व्यर्थ कर डाला। इस पराजयके बाद वर्षाका आरम्भ हुआ। वृष्टिपातसे दिलेर खाँकी बारूद भींग गई जिससे बन्दूकका चलाना बंद करना पड़ा। अब मुगलसेनाको दुर्गद्वार पर क्षण भर भी ठहरनेका साहस न हुआ। इसके बाद मावलोंने विशेष यत्नसे दुर्गके टूटे फूटे स्थानोंकी मरम्मत करा ली।

यथाकालमें मुरारि बाजि प्रभुका मृत्युसंवाद शिवाजीके पास पहुंचा। मावलोंके साहस और युद्धनिपुणताका हाल सुन कर वे उन्हे मदद पहुंचानेमें बड़े चिंतित हुए। इसी समय महाराज जयसिंहका भेजा हुआ दूत संधिका प्रस्ताव ले कर उनके पास आया। आपसमें संधि स्थापित हुई। शिवाजी स्वयं महाराज जयसिंहके शिविरमें गये और एक साथ भोजन कर दोनोंने आपसका मनोमालिन्य दूर किया। संधिकी शर्तोंके अनुसार शिवाजीने खानदेश, नासिक, त्र्यम्बक आदि अधिकृत मुगलराज्य छोड दिये। पुरन्दर, सिंहगढ आदि २७ दुर्ग सम्राट्को लौटा दिये गये। श्रीमान शम्भाजी सम्राट्के अधीन पांच हजारी घुड़सवार सेनाके मनसबदार हुए। दोनोंमें यही बात रही, कि शिवाजी सभी युद्धोंमें मुगलोंकी सहायता करेंगे। उनकी अन्यान्य सम्पत्ति उन्हींके पास रही। बीजापुरका चौथ और सरदेशमुखी वे ही वसूल करेंगे। कुछ समय बाद ही शिवाजी द्वारा प्रेरित रघुनाथ बल्लाल दिल्लीसे सन्धिके सम्बन्धमें सम्राट्का स्वीकृतिपत्र ले कर आया। उसके साथ मुगल सेनापति जयसिंहने बीजापुरराज्य जीतनेके लिये यात्रा कर दी। सन्धिके अनुसार शिवाजी नेताजि पालकर आदि महाराष्ट्र सेनापति दो हजार घुड़सवार और आठ हजार पैदल सेना ले कर मुगल-वाहिनीसे मिले। इस युद्धमें बीजापुर-राजमन्त्री और सेनापति अबदुल करीम, ख्वासम खाँ, रुस्तम जमान और शिवाजीके वैमात्रेय भाई वङ्कोजी भोंसले मुगल सेनासे परास्त हुए। बीजापुरके युद्धमें शिवाजीका व्यवहार, विचार, शौर्य्य और देख कर सम्राट् औरङ्गजेबने बड़े प्रसन्न हो कर उन्हें अनेक प्रकारके बहुमूल्य उपहार दिये तथा उनकी देहरक्षामें प्रतिज्ञाबद्ध हो उन्हें बड़े आह्लादसे दिल्ली बुलाया।

बीजापुर समरसे रायगढ़ लौटने पर उन्होंने दिल्ली जानेके पहले एक बार राज्यके प्रधान प्रधान नगर और दुर्गको देख आनेका विचार किया। तदनुसार इन्होंने अपने अधिकृत नगरों और दुर्गोंमें परिभ्रमण कर वहांके नेताओंको ओजस्विनी भाषामें देशकी अवस्था समझा बुझा दी। इसके बाद वे मोरोपन्त पेशवे, नीलपन्त मजुमदार और नेताजी पालकरके हाथ राज्यका शासनभार दे कर माता जिजिबाई और रामदास स्वामीकी अनुमति ले कर १६६५ ई०के पौषमासमें दिल्लीको चल दिये। उनके साथ नीराजी रावजी न्यायाधीश, बालाजी आवजी चिटनिस, त्र्यंबक द्रोणदेव द्राविड़, जीवनराव माणको, नरहर बल्लाल सबनीस, दत्ताजी गङ्गाजी, रघुजी मिश्र, प्रतापराव गुजर सरणोबत, दावजी गाडवे, हीराजी फरजन्द आदि विश्वासी कर्मचारी तथा एक हजार चुनी

हुइ मावला सेना, तीन हजार घुड़सवार और आठ वर्षके पुत्र शम्भूजी गये थे*।

शिवाजी दिल्लीके लिये रवाने हुए। औरङ्गाबाद में उन्होंने महाराज जयसिंहका आतिथ्य स्वीकार किया। इस समय जयसिंहने उनसे कहा था, 'सम्राट् तीक्ष्णबुद्धि, पर पापमति हैं, अतएव उनके पास बड़ी सावधानीसे आपको जाना उचित है। मेरा लड़का रामसिंह आपको अपना बड़ा सहोदर भाई मानेगा, हमेशा आपकी आज्ञाका प्रतिपालन करेगा। शिवाजी धीरे धीरे मथुरा पहुंचे। सम्राट्ने उनके आनेकी खबर सुन कर राहमें पड़नेवाले ग्राम और नगरोंके प्रधान प्रधान कर्मचारियोंको हुकुम दिया था, कि जिससे शिवाजीको आनेमें किसी प्रकारका कष्ट न हो, वैसा करना। शिवाजीके दिल्ली पहुंचने पर राजा रामसिंह और कुछ राजकर्मचारियोंने उनका स्वागत किया। शिवाजी सम्राट्के इस असद्व्यवहारसे मन ही मन ताड़ गये। किन्तु उस समय उसका कोई सदुपाय होनेकी आशा न देख उन्होंने मनका भाव मन में ही छिपा रखा।

विश्राम करनेके बाद शिवाजी सम्राट्से मिलने चले। साथमें राजा रामसिंह थे। दरबारमें पहुंचने पर सम्राट्ने शिवाजीको मारवाड़पति यशोवन्त सिंहकी बगलमें बैठनेका आसन दिया। ऐसे सत्कारसे भी उनके मनमें घृणा और क्षोभका उदय हुआ। जो हो, दरबारसे आ कर शिवाजी रामसिंहके मकानमें गये†।

सम्राट्के मामा शाइस्ता खांने पूर्व शत्रुताका बदला लेनेके लिये दीवान जाफरान खांको शिवाजीके विरुद्ध उभाड़ा। उसके परामर्शानुसार सम्राट्ने शिवाजीको अरक्षित अवस्थामें रखना अच्छा नहीं समझा। इस कारण उन्होंने नगरपाल पोलद खांको शिवाजीकी गति विधि देखने तथा जिससे वे भाग न सकें, उस ओर विशेष लक्ष्य रखनेका हुक्म दिया। पोलाद खांने दूसरे दिन सवेरे पांच हजार सेनाको शिवाजीके शिविरमें रात दिन पहरा बैठा दिया। शिवाजीने सम्राट्का ऐसा आचरण देख कर गम्भीर भाव धारण कर लिया। उसी समय उन्होंने असह्य और जलवायुसे अनभ्यस्त मराठी सेनाको देश भेज देनेके लिये सम्राट्से प्रार्थना की। सम्राट्ने बड़े हर्षसे उनकी प्रार्थनाको स्वीकार कर लिया, किन्तु कोई भी मराठी सेना उन्हें इस शत्रुसकुल देशमें अकेला छोड़ जानेके लिये राजी न हुई। इस पर शिवाजीने उन्हें बुला कर समझाया 'मेरे साथ आप लोगोंको रहनेसे विपद् और भी बढ़ जायगी। दो चार होनेसे आसानीसे शत्रुको आँखोंमें धूल डाल कर भाग सकते थे। ऐसी अवस्थामें बहुत से लोगोंका एक साथ रहना उचित नहीं और सबोंका लुक छिप कर जाना भी असम्भव है। इसलिये आप लोग अपने अपने देशको चले जाय तथा निकट भविष्यमें एक लोमहर्षण युद्ध होनेकी सम्भावना है, इसके लिये सभी तैयार रहें।'

मराठी सेना और नायकोंका इस प्रकार समझा बुझा कर शिवाजीने देश भेज दिया और आप भागनेका उपाय ढूंढने लगे। एक दिन शिवाजी, नीराजी पन्त दत्ताजी पन्त और त्र्यम्बक पन्त एकत्र बैठ कर इस कारा मुक्ति पर विचार कर रहे थे; किन्तु कोई उपयुक्त विचार समझमें नहीं आता था। इस समय वे अपनी इष्टदेवी भवानीकी चरणोंकी चिन्ता करने लगे। ध्यानमें मालूम हुआ देवी उनके कानोंमें मानो कुछ उपदेश दे रही हैं। देवीके आश्वास वचनसे आह्लादित हो शिवाजीने प्रति बृहस्पतिवारको गुरुपूजा आरम्भ कर दी। रात में संकीर्तन चलने लगा। दूसरे दिन शुक्रवारको वे बड़े बड़े बक्समें नाना प्रकारके खाद्य द्रव्य भर कर प्रधान प्रधान राजकर्मचारी, ब्राह्मण, सन्यासी और फकीरोंको बांटने लगे। पहले पहरूदार बक्सको बिना देखे सुने नहीं छोड़ते थे, पीछे जब प्रति शुक्रवारको सुमिष्ट खाद्यपूर्ण ऐसे कितने बकस बांटे जाने लगे, तब उन लोगोंका जो कुछ सन्देह था, वह जाता रहा। अब वे बिना जांचे ही बकसको छोड़ देने लगे। शिवाजीने जब देखा, कि अब बकसकी जांच नहीं होती, तब वे एक दिन अस्वस्थका बहाना करके खाट पर पड़

---

* बंकके मतसे शिवाजी ५ सौ घुड़सवार और १ हजार पैदल सेना ले कर दिल्ली गये थे।

† महाराष्ट्र चिट्निसके कथनानुसार शेषोक्त व्यक्तिका जगह जसवन्तीदत्त छत्रसालका नाम मिलता है।

रहे। निर्दिष्ट व्यक्तिको छोड़ और किसीको भी उनके घरमें घुसनेका अधिकार न था। देखते देखते गुरुवार-वार आ गया। इस दिन शिवाजीकी शारीरिक अवस्था-के कारण अधिक परिमाणमें नैवेद्य रक्खा गया था। गुरुवारको सवेरेसे यथारीति पहरुओं और समा-गत दरिद्रोंको भोज्यद्रव्य मिलने लगा। नगरके भीतरी और बाहरी योगमाया और कालिका आदि देवालयोंमें तथा निजाम उद्दीन औलिया आदि पीरस्थानोंमें यथेष्ट भोग भेजा गया। इसी सुअवसरमें शिवाजी और शम्भाजी एक एक सन्दूकमें घुस गये। दो बलशाली मावलयोद्धा मस्तक पर रख कर उन्हें नगरके बाहर धीरे धीरे ले चले। यहां एक निभृत स्थानमें उन्होंने सपुत्र शिवाजी-को सन्दूकसे बाहर निकाला। अब वे यहां एक कुम्भकार-के घरमें पूर्वप्रेरित कर्मचारीके साथ मिल कर मथुराकी ओर छद्मवेशमें जाने लगे।

इधर शिवाजीके भागनेके बाद हीराजी फरजन्द उनका पहनावा पहन कर पलंग पर सो गये। सारी रात बीत गई। दूसरे दिन तीसरे पहर तक हीराजी उसी तरह मुंह ढके सो रहे थे, एक लड़का उनके शरीर पर हाथ चला रहा था। किसीको कुछ सन्देह न था।

तीसरा पहर बीतने पर हीराजी अपनी पोशाक पहन कर बाहर निकले। पहरुओंने बड़े आग्रहसे शिवाजी की स्वस्थताका हाल पूछा। उत्तरमें हीराजीने कहा, 'उन्हें अभी गाढ़ी नींद आई है, मैं औषध लाने बाहर जाता हूं। इस बीचमें देखना घरमें कोई घुस कर अथवा चीत्कार कर राजाकी नींद न तोड़े।' इस प्रकार कह कर वे भी कारागारके बाहर चले आये और रामसिंहको सभी घटना सुना कर अपने देशको चल दिये। वह रात तो इसी प्रकार निःसन्देह बीत गई।

दूसरे दिन आठ भी बज गये। शिवाजीके कमरे-से कोई शब्द सुनाई न दिया। पहरुओंने सन्दिग्ध हो कर जब घरकी ओर दृष्टि डाली, तो भीतर किसीको भी नहीं देखा—घर बिलकुल खाली पड़ा है।

पोलाद खाँ शिवाजीके चम्पत हो जानेकी खबर पा कर बहुत डर गया और तुरत उसने जा कर सम्राट्को इत्तला दी। यह घटना उनके सामने स्वप्नवत् मालूम होने लगी। हाथमें आये शत्रुको भागा हुआ देख सम्राट्-का क्रोध दूना बढ़ गया। उन्होंने पोलाद खाँ और कुँ-वर रामसिंहको अन्यतम सहायक मान कर पदच्युत किया। रामसिंहका दरबार आना बन्द हुआ। शिवाजीके भागनेके बाद जो सब मराठे पकड़े गये, वे वहीं निर्द-यतासे मारे जाने लगे। महाराष्ट्रीय कायस्थ पकड़ कर वे लोग अच्छी तरह सन्तुष्ट गये।

जो हो, शिवाजी पैरोंसे चल कर मथुरामें मोरोपन्त पेशवा-के साले मथुरावासी कृष्णाजी पन्तके घर पहुंचे। यहां उन्होंने सारी बातें खोल दीं। कृष्णाजीने शम्भाजीका रक्षाभार ग्रहण किया और प्रतिज्ञा की, कि वे बालकको रायगढ़में निरापद् पहुंचा आवेंगे। इधर शिवाजी, निराजी पन्त, दत्ताजी पन्त और राघव मित्र शिरके बाल और दाढ़ीमूछ मुंडवा कर गेरुआ वस्त्र और रुद्राक्ष धारण किये संन्यासीके वेशमें प्रयागधामको चल दिये। यहां त्रिवेणीमें स्नान कर वे पुण्यमयी वाराणसी पुरीमें आये। विश्वेश्वरादि देवमूर्त्तियोंके दर्शन और गङ्गास्नान कर वे विष्णुपादपद्मके पिण्ड देनेके लिये गयाधामको चल दिये। यहांसे बङ्गदेशमें गङ्गासागरसङ्गमके दर्शन कर उन लोगों-ने कटक नगरमें पदार्पण किया। अविरत पथ पर्यटन और यथासमय पान भोजन न मिलनेसे उनका शरीर बिलकुल अवसन्न हो गया। इस कारण यहां कुछ समय विश्राम कर वे पुरुषोत्तमधाममें आये और श्रीश्रीजग-न्नाथ मूर्त्तिके दर्शन कर गोण्डवना होते हुए भागानगर (वर्त्तमान हैदराबाद) पार कर महाराष्ट्र राज्यमें पहुंचे।

महाराष्ट्रसे जाते समय शिवाजी एक दिन दो पहरमें एक दरिद्रके घर अतिथि हुए। गृहस्वामिनी वृद्धा थी। उन्होंने संन्यासीरूपी मराठोंका विधिपूर्वक सत्कार कर जाते समय शिवाजीको लक्ष्य कर कहा 'बाबा! मैं दरिद्र हूं, कुछ दिन पहले सेनाके उपद्रवसे मेरा सर्वस्व हरण हो गया है, अतएव ऐसी हालतमें मैं अतिथि सेवा अच्छी तरह न कर सकी, अपराध क्षमा करेंगे।' शिवाजीने सेनाके उपद्रवकी बात सुन कर कहा 'किसकी सेना थी?' वृद्धाने उत्तर दिया, 'महाराजके नहीं रहने पर

महाराजका नियम पददलित करके नेल्लूराकी परिचालित मराठी सेनाने हम लोगोंको बहुत सताया है।' यह सुन कर शिवाजीको बहुत दुःख हुआ। जाते समय उन्होंने वृद्धाका नाम धाम लिख लिया। वृद्धाके प्रति शिवाजीको इतनी दया आई, कि रायगढ़ पहुंचते ही उन्होंने वृद्धाके भरण पोषणके लिये बहुत रुपये भेज दिये।

नाना प्रकारकी कठिनाइयां झेलते हुए और भिन्न भिन्न स्थानका आचार व्यवहार जानते हुए शिवाजी निराजी पन्त दत्ताजी पन्त और राघवजी मराठाके साथ १५८८ शक (१६६६ ई०) को अग्रहायण मास कृष्णपक्षकी दशमी तिथिमें रायगढ़के द्वार पर पहुंचे। उन्होंने आते ही माता जिजाबाईके चरणोंमें प्रणाम किया। जिजाबाई पहले सन्यासीके आचरण पर अवाक् सी खड़ी रह गई। पीछे परिचय पा कर आनन्दसागरमें गोता खाने लगी।

रायगढ़ पहुंचते ही शिवाजीने अपने निर्विघ्न पहुंचनेका संवाद मथुरामें कृष्णाजी पन्तके पास भेज दिया। कृष्णाजी भी अपने दोनों भाइयों और स्त्रीके साथ बालक शम्भाजीको छिपाये हुए शिवाजीके पास पहुंचे। महाराज शिवाजीने इस कार्यके लिये कृष्णाजीको विश्वास राव'की उपाधि लाख अशर्फियां और वार्षिक दश हजार रुपये आयकी सम्पत्ति दी। पीछे वे सबके सब श्रेष्ठ राजपद पर नियुक्त हुए। इस समय शिवाजीने अपने दिल्लीके सहचरोंको भी सम्मान और पुरस्कारसे सम्मानित किया था।

शिवाजीने दिल्लीसे लौट कर देखा, कि राजकार्य सुचारुरूपसे हो चलता है। १० महीनेसे वे राज्यसे चले गये हैं, यह बात जैसे किसीके भी मनमें उदय नहीं हुई। एक भी मराठा दगाबाज शत्रु बन कर शत्रुपक्षमें नहीं मिला था। राजदरबारमें कार्यावली जिसके ऊपर जिस तरह उन्होंने सौंप दी थी वह उसी तरह करता आ रहा था। कोई हेर फेर नहीं हुआ था। केवल दोष इतना हो था, कि मुगलोंने अनेक दुर्ग और देश जीत कर विशृङ्खला खड़ी कर दी थी। इसके सिवा बीजापुर राजके साथ मुगल सेनाका लगातार युद्ध चल रहा था

इस कामसें एक ओर मुगलसेनाका अत्याचार देखनेसे व्याकुल हो कर गोलकुण्डाके राजाने ... नाम भाई बीजापुर राजाकी सहायतामें सेना सहित भेजा है तथा दूसरी ओर मुगल सम्राट्की सहायता नहीं पानेसे मुगलसेना और सेनापति धीरे धीरे श्रद्धाहीन हो गये हैं, यह देख कर शिवाजी बड़े आह्लादित हुए।

इस शुभ अवसरमें शिवाजीने सेनापति और प्रधान कर्मचारियोंको बुला कर अपने अपने कर्त्तव्य पर तैयार हो जाने कहा। मोरोपन्त पेशवे, नीलोपन्त मजुमदार अन्नाजी सबनीस, नेताजी पालकर तानाजी मालसुरे, प्रतापराव गुजर आदि प्रसिद्ध महाराष्ट्र नेताओंने युद्ध ठान देनेके लिये सङ्कल्प किया तथा यह विचार किया, कि किस उपायसे सभी दुर्ग हाथ आवें। शिवाजीके परामर्शानुसार रातको छिप कर प्रबल मुगल शत्रु पर आक्रमण करना तथा रास्ता घाट और रसद बन्द कर देना ही अच्छा समझा गया।

शिवाजीके स्वराज्य आनेके पहले जब मोरोपन्तने देखा, कि महाराज जयसिंह दाक्षिणात्यसे लौट आये हैं, तब अच्छा मौका देख उन्होंने पूनाके उत्तरस्थ दुर्गोंको अधिकार कर लिया। इस सूत्रसे कल्याण प्रदेशका कुछ अंश भी उनके हाथमें आया था। उक्त नेताओंके हृदय इस घटनाके कारण पहलेसे ही उत्फुल्ल थे। अभी शिवाजीके मुखसे नाना उत्साहपूर्ण वक्तृता और उपदेश सुन कर वीरवर तानाजीने धीरगम्भीर वाक्यमें उत्तर दिया, कि मैंने सिंहगढ़ दुर्ग जीतनेका भार लिया। तानाजीकी बात पर और सभी प्रोत्साहित हो गये।

मिर्जा जयसिंह शिवाजीके हाथसे सिंहगढ़ विच्छिन्न कर उदयभानु नामक एक राजपूतसेनापतिके हाथ उसका शासनभार सौंप गया था। उसके अधीन बारह सौ राजपूत वीर प्राणकी बाजी रख कर दुर्भेद्य सिंहगढ़ दुर्गकी रक्षामें डटे हुए थे। तानाजी वीरप्राण राजपूत जातिके वीरत्व गौरवको तुच्छ समझ कर अपने छोटे भाई सूर्याजीके साथ सिंहगढ़की ओर चल दिये। उनके अधीन सिर्फ ५ सौ निर्वाचित मावलसेना गई थी। १६६७ ई०में (१५८६ शकमें) माघ मासकी कृष्णानवमी तिथिको अंधेरी रातमें सिर्फ दो सेनाके साथ तानाजी

जल्दीमें पर्वतके दुर्गम प्रदेश पर चढ़ गये और वहां उन्होंने दीवारमें एक रस्सी लटका दी। जाड़ा जोरोंसे पड़ रहा था। उनके अङ्ग प्रत्यङ्ग शिथिल हो रहे थे, बड़ी मुश्किलसे कदम उठाते थे, फिर भी उस ओर किसीका ध्यान नहीं गया। सभी तानाजीके उत्साहसे उन्मादित हो सिंहगढ़ विजयका गौरव पानेकी आशासे अग्रसर हुए। एक एक कर सभी उस रस्सीके बल दुर्ग पर चढ़ने लगे। सबके आगे तेज तलवार हाथमें लिये वीरवर तानाजी थे। सूर्याजी दो सौ सेनाके साथ दुर्गके नीचे खड़े थे। उनके पैरोंका शब्द सुन कर एक राजपूत पहरू वहां आया। ज्यों ही उसने मस्तक उठाया त्यों ही तानाजीने तीरका ऐसा निशान किया, कि उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। दुर्गकी दीवारसे उसकी देह पृथ्वी पर धड़ाम सी गिर गई। आवाज सुन कर अन्यान्य पहरू वहां आये और मावल सेना आड़में रह कर उन पर वाणकी वर्षा करने लगे। उस वाणाघातसे जर्जरित हो राजपूत पहरू एक एक कर जमीन पर गिरते गये। राजपूत सेनाकी जब नींद टूटी, तब जहां जो अस्त्र मिला, उसे ले कर मावल सेनादलके पीछे दौड़ी। तानाजी भी कब चुप बैठनेवाले थे, उन्होंने फौरन प्रचण्ड वेगसे उन लोगों पर धावा बोल दिया। राजपूतगण एक ही समय चारों ओरसे आक्रान्त हो कर लक्ष्य स्थिर कर न सके। उन्होंने मशाल जाल दिया जिससे मावल सेना-को और भी सुविधा हुई। वे लोग लक्ष्यको स्थिर कर-के वाण वर्षा करने लगे। तानाजी कृपाण हाथमें लिये एक दल सेनाके साथ उस ओर दौड़े। दोनोंमें मुठभेड़ हो गई, तलवारोंकी झंकारसे कान मानों बहरे हो गये। सूर्याजी स्थिर रह न सके। ऊपर क्या होता है, जाननेके लिये वे व्याकुल हो उठे और दलबलके साथ वहां जा धमके। तानाजी युद्ध करते करते राजपूत-सरदार उदयभानुके समीप पहुंचे। दोनों वीरोंमें घोर युद्ध हुआ। उदयभानुकी तलवारके वारसे ताना-जीका ढाल बेकाम हो गया, अब उन्होंने अपने हाथसे तलवारके वारको सहते हुए शत्रुके शरीरको दो खण्डों-में काट डाला। किन्तु वे भी उस आघातसे जमीन पर गिर पड़े। इस समय नेताजीके पतन पर मावलसेना हताश हो गई और भागनेकी तैयारी करने लगी। इसी समय सूर्याजीने दलबलके साथ वहां पहुंच ललकार कर उन लोगोंसे कहा, 'पितृतुल्य सेनापतिकी देहको अर-क्षित अवस्थामें छोड़ कर कौन आदमी भागनेकी इच्छा कर सकता है।' इतना कह कर उन्होंने दुर्ग पर चढ़ने-की जो रस्सी थी, उसे काट डाली।

सूर्याजीके उपदेशसे उत्साहित हो कर मावल सेनाने फिरसे 'हर हर महादेव' शब्दसे दिग्मण्डलको गुंजा दिया। वे लोग कालान्तक यमकी तरह राजपूतों पर टूट पड़े। उन लोगोंका वह भीमवेग सहन करनेकी किसीकी भी ताकत न थी। इस युद्धमें ५०० राजपूत वीर मारे गये, कुछ तो पर्वत पर भाग या गिर कर यम-पुर सिधारे और बाकी सूर्याजीके हाथ बन्दी हुए। सिंहगढ़ अधिकृत हुआ सही, पर युद्धमें जो तानाजी मारे गये उससे शिवाजीको बहुत दुःख हुआ। उन्होंने बाल्य सहचरकी मृत्यु पर बारह दिन पगड़ी न पहन कर सम्मान दिखलाया था।

इसके बाद शिवाजीने सूर्याजीको सिंहगढ़का किला-दार बनाया। जिन सब वीरप्राण मावल सेनाने मराठा गौरवको अक्षुण्ण रखनेके लिये प्राणपणसे युद्ध किया था, वे भी शिवाजीका अनुग्रह पानेसे वञ्चित न हुए। उन्होंने राजपूत कैदियोंको भी यथोपयुक्त पुरस्कार दे कर स्वदेश भेज दिया।

तानाजीके सिंहगढ़-विजयके दृष्टान्तका अनुसरण कर आवाजी सोणदेवने भी दुर्गाधिपति अलीवर्दी खांको रणक्षेत्रमें मार माहुली दुर्ग पर अधिकार जमाया। उन्हों-ने कल्याण भिण्डीके किलादार उजरफ खांको भी युद्धमें परास्त कर तदधिकृत प्रदेश फतह किया था। इस समयसे चार मासके भीतर मोरोपन्त, नीलोपन्त, अन्नाजीपन्त और प्रतापराव गुजर आदि वीरोंने मुगला-धिकृत अधिकांश दुर्गोंको हस्तगत कर लिया तथा महा राज जयसिंहने रणविजय कालमें जिन सब दुर्गोंको तोड़ फोड़ कर आग लगा देनेकी चेष्टा की थी, मोरोपन्त पेशवाने उन सब दुर्गोंका अभी बड़ी तत्परतासे जीर्णो-द्धार कर उन्हें कार्योपयोगी बना दिया।

१६६१ ई०के बादसे प्रायः प्रति वर्ष शिवाजी

जिञ्जिरा दुर्ग जीतनकी इच्छासे सेना भिजन रहे। मुगल नौसेनापति फते खा शिवाजीवाहिनीसे स्थलपथ और जलपथसे बार बार आक्रान्त हो आखिर शेषोक्तयुद्धमें विशेष विपदापन्न हुआ। कोई उपाय न देख उसने जिञ्जिरा दुर्ग शिवाजीके हाथ सौंप सन्धि कर ली। इस समय वर्षाका आरम्भ हो गया जिससे शिवाजी रायगढ लौट आये। वर्षाके बाद शिवाजीने प्रायः छ दह हजार घुडसवार सेना ले कर सूरत पर छापा मारा। वहांका मुगल शासनकर्त्ता नगररक्षाके लिये डटा हुआ था पर कृतकार्य न हो सका। शिवाजी नगर प्राचीर को तोड फोड कर नगरमें घुसे और वहां तीन दिन रह कर वार्षिक १२ लाख रुपये चौथका व देनेका कर बहुमूल्य उपहारके साथ स्वदेश लौटे। मुगल सेनापति दाऊद खाँने चरक मुखसे उनके सूरत आनेकी खबर सुन कर दलबलके साथ काञ्चन मञ्चन गिरिपथको रोका। शिवाजीने भी मुगलसेनाका आगमन ज्ञात कर उसी समय अपने सैनादलको तीन भागोंमें बाट लिया। एक भाग पहले ही अग्रगामी मुगल सेनापति आखलस खाँके साथ युद्धमें भिड गया। दूसरा दल ले कर उन्होंने स्वयं दाऊद खाँ पर आक्रमण किया और तीसरा दल विजयलब्ध द्रव्यकी रक्षामें नियुक्त रहा। युद्धमें मुगलपक्षकी तीन हजार सेना मारी गई, चार हजार घोडे पकडे गये और प्रधान दो सेनानायक बन्दी हुए।

इस समय उनकी गति रोकने तथा मुगल सेनाकी सहायता पानेकी इच्छासे माहुरवासी उदयरामकी विधवा स्त्री ५ हजार सेना ले कर युद्धक्षेत्रमें उतर पडी। इस वीरनारीके साथ मराठी सेनाका तुमुल संग्राम छिडा। रमणी नंगी तलवार लिये रणक्षेत्रमें खडी हो अपने सेना दलको उत्तेजित करने लगी। किन्तु विजयोद्दीप्त शिवाजी की सेनाके सामने वे ठहर न सके। युद्धमें पराजित राजहितैषी वीरनारीने शिवाजीकी अधीनता स्वीकार कर ली। शिवाजीने भी उनके पुत्र जगन्नाथको अभय दानसे सन्तुष्ट किया था।

बीजापुर समरसे औरङ्गाबाद लौट कर महाराज जय सिंह दिल्लीपथमें परलोकको प्राप्त हुए। दिल्लीश्वरको भी दाक्षिणात्यमें कोई सुव्यवस्था करते न देख सम्राट्ने उन्हें राजधानी लौट आनेको कहा। शिवाजीके नेतृत्वमें मराठोंका अभ्युत्थान और मुगल सेना उत्तरोत्तर अधःपतन देख सम्राट् और स्थिर न रह सके। उन्होंने दाक्षिणात्यमें सुश्रृङ्खला स्थापनके लिये अपने पुत्र कुमार शाह आलमको दक्षिणापथका सूबादार तथा योधपुराधिपति राणा यशोवन्तसिंहको सेनापति बना कर उनके अधीन एक विपुल मुगलवाहिनी भेजी। दिल्लीमें रहते समय कुमार शाह आलम और राणा यशोवन्तके साथ महाराष्ट्रपति शिवाजीकी मित्रता हो गई थी। शिवाजीने दोनों मित्रोंका आगमन सम्वाद पाते ही उनके सम्मानार्थ औरंगाबादमें उपहारके साथ एक बाद मीको भेजा। कुमार शाह आलमने उपहार दे कर शिवाजी प्रेरित दूतका सम्मान रक्षा की और उन्हें कहला भेजा, कि महाराज शिवाजी पूर्व सन्धिके अनुसार कार्य करें तो सम्राट् उन पर बडे प्रसन्न होंगे तथा उस विषयमें हम लोग भी उनकी सहायता करेंगे।

शिवाजीके सहमत होने पर सम्राट्ने राजाकी उपाधि दे उनका सम्मान किया। उनके पुत्र शम्भाजी पांच हजार घुडसवारके मनसबदार बनाये गये। जुन्नर और अहमद नगरके सरञ्जामके लिये सम्राट्ने उन्हें बेरार प्रदेश जागीरस्वरूप दे कर सन्तुष्ट रखा। पूर्वतन जागीर पूना चाकन और सुपा परगना उन्हें लौटा दिया गया। केवल सिंहगढ और पुरन्दर दुर्गको मुगलराजने अपने अधिकारमें रखा।

इस घटनाके बादसे महाराज शिवाजी मुगल दरबारमें एक प्रधान उमराव गिने जाने लगे। शिवाजीने भी युद्धकालमें घुडसवार सेनासे सम्राट्की मदद पहुंचाने का वचन दिया। प्रतापराव गुजर साहाय्यकारी सेनादल ले कर और गावादमें रहने लगे। इस तरह प्रायः दो वर्ष बीत गये। बीजापुरराजके साथ १६६६ ई०में मुगलसम्राट्का युद्धसमाप्ति तक यही व्यवस्था चलता रहा।

बीजापुर राजदरबारके साथ मुगल सेनापतिका जो सन्धि हुई उसमें शिवाजीका हाथ नहीं था। दाक्षिणात्यके मुगल सूबादारके साथ इस प्रकार सद्भाव रखते शिवाजीने बीजापुर और भरद्गमुण्डा उगाहनेके लिये

आदमी भेजा। पहले भी वे चौथ उगाहनेके लिये कितनी बार आदमी भेज चुके थे। इस बार बीजापुर दरबारने शिवाजीके भेजे हुए आदमीका बड़ा अपमान किया। इस अपमानका बदला चुकानेके लिये शिवाजी पहले सीमान्त प्रदेशके दुर्गों को देखने गये। उनके पनहाला दुर्गमें रहने समय सिद्दी जहर और अफजल खाँके पुत्र फजल खाँने बीस हजार सेना ले कर दुर्गको घेर लिया। छः मास घिरे रहनेके बाद शिवाजीने जब देखा, कि दुर्गमें खानेकी कोई चीज रह न गई, तब दुर्गमें अनाहार रहना उन्होंने अच्छा नहीं समझा। उन्होंने दुर्ग-मध्यस्थ सेना और सेनापतियोंको बुला कर कहा, 'मैंने कल सवेरे शत्रुव्यूहभेद कर रंगणा दुर्गमें जानेका इरादा किया है। शत्रुगण जब मेरा पीछा करेंगे, तब तुम लोग पीछेसे उन पर टूट पड़ना।'

आखिर हुआ भी वही, शिवाजी दो हजार संमस्त्र मावल सेना ले कर दुर्गसे निकल पड़े। सिद्दी जहर-के हुकुमसे फजल खाँने शिवाजीका पीछा किया। पूर्व परामर्शानुसार कायस्थवीर बाजी प्रभु पांच हजार मावली सेना ले कर फजल खाँ पर टूट पड़े। शत्रुसेनाको अब आगे बढ़नेका साहस न हुआ, उन्होने आततायी की ओर लौट कर युद्ध ठान दिया। उस अवसरमें शिवाजीने भी निरापद रङ्गना दुर्ग पहुंच कर तोपध्वनि की। बाजी प्रभु तब भी रणोन्मत्त शत्रुके गोलाघातसे बुरी तरह घायल हो घोड़े परसे गिर पड़े। इस युद्धमें पांच मुसलमानी सेना मारी गई थी।

वर्षाका आगमन देख तथा शिवाजी कहीं मौका पा कर दुर्गसे बाहर निकल बीजापुरसेना पर चढ़ाई न कर दें, इस आशङ्कासे सिद्दी जहरने दलबलके साथ बीजापुरको प्रस्थान किया। इसके बाद (१६६६ ई०) गोलकुण्डा और बीजापुरपति शिवाजीको वार्षिक ५ लाख कर देनेको राजी हुए।

शिवाजीने चौथ और सरदेशमुखी वसूल कर बहुत धन संग्रह किया है तथा कितने दुर्ग और प्रदेशोंको जीत कर अपना बल बढ़ा लिया है, यह सुन सम्राट् दंग रह गये। फिर कुमार शाह आलम करीब दो वर्षसे शिवाजीको हस्तगत करनेकी चेष्टा नहीं करते, वरं उनके साथ कुमारकी दिनोंदिन मित्रता ही बढ़ती जा रही, इस मित्र-के फलसे वे भी शिवाजीके साथ मिल कर सम्राट्के विरुद्ध खड़े हो सकते हैं। इस चिन्तास्रोतमें बह कर सम्राट्ने चुप बैठ रहना अच्छा नहीं समझा। उन्होंने छिपके एक दल सेना भेज कर निराजीपन्त और प्रताप-राव आदि शिवाजीके प्रधान प्रधान कर्मचारियोंको अव-रोध करनेका हुकुम दिया। यथासमय यह खबर राज-कुमारके कानोंमें पहुंची। उन्होंने निराजीपन्त आदि-से सचेत कर दिया। औरङ्गाबादमें अवस्थित महा-राष्ट्रीय घुड़सवार सेनादल ले कर प्रताप राव गुजर रातोरात औरङ्गाबादका परित्याग कर रायगढ़ चले गये।

सम्राट्की यह दुराकाङ्क्षा तथा १६६७ ई०के सन्धि-भङ्गकी विश्वासघातकता देख शिवाजी बहुत बिगड़े। तानाजीकी वीरता तथा मृत्युने उनके हृदयमें मुगलोंके प्रति विद्वेषानलको और भी प्रज्वलित कर दिया था। इन सब कारणोंसे अत्यन्त दुःखी हो इन्होंने वृथा समय खोना अच्छा न समझा। जलपथ और स्थलपथसे वे मुगलसेना पर आक्रमण करनेके लिये उद्यत हो गये। उनकी अनुमतिसे मोरोपन्त पेशवे बीस हजार पैदल सिपाही ले कर अन्ता, पुत्ता और शालह दुर्ग पर आक्र-मण करने रवाने हुए। दश हजार घुड़सवार सेना ले कर प्रताप राव उनकी सहायतामें चले। जिन सब ग्रामों और नगरोंका चौथ स्थिर कर दिया गया था, प्रतापके ऊपर उसकी वसूलीका भी भार सौंपा गया। इस समयसे दाक्षिणात्यकी मुगल प्रजाने भी नियमित-रूपसे चौथ देना शुरू कर दिया।

जलपथसे शिवाजीने छोटी और बड़ी १६० रणतरी पर युद्ध-सामग्री लाद बम्बई, सूरत और भरोंचकी ओर युद्धयात्रा कर दी। दुर्भाग्यक्रमसे वे सब रणपोत गन्तव्य स्थानमें न जा कर इधर उधर भटकने लगे। रातमें पुर्त्तगीजोंके साथ एक बार संग्राम छिड़ा। युद्धमें शिवाजीकी सेना पुर्त्तगीजोंका एक बड़ा रणपोत दखल कर दभोलकी ओर लौटी। युद्धमें मराठा नौ-सेनादलके अध्यक्ष मयनायक भण्डारीने जो वीरत्व और रणपाण्डित्यका परिचय दिया था, उससे नौबलमें

सुदक्ष पुर्तगीज़जातिको भी दाँतो उंगली काटनी पड़ी थी।

पूर्वव्यवस्थानुसार मोरोपन्त अन्धा, पुत्ता आदि दुर्गोंको ज्ञात कर बागलानके अन्तर्गत सल्ह दुर्ग जीतनेके लिये आगे बढ़े (१६७१ ई०)। प्रतापराव घोरघाट सङ्कटको पार कर पेनगाके कूलमें मिलने चले गये। राहमें मुगलसेनापति इखलास खाँने उन्हें रोका। इससे मराठी सेनाके साथ मुगलोंकी मुठभेड़ हुई। रणदक्ष प्रतापने इसकी जरा भी परवाह न कर बड़ी तेजीसे सल्हक दुर्गमें प्रवेश किया। मोरोपन्त और प्रतापके युगपत् आक्रमणसे मुगलसेना तितर बितर हो गई। युद्धमें १० हजार मुगलसेना और २ सेनापति मारे गये। इखलास खाँ मोकमसिंह आदि कुछ सेनापति बन्दी भावमें मराठाशिविरमें लाये गये। छ हजार ऊँट और घोड़े, १०० हाथी और नाना प्रकारके युद्धोपकरण महाराष्ट्र सेनापतिके हाथ लगे।

महाराष्ट्रपक्षमें इस इतिहास प्रसिद्ध समरमें आनन्द राव व्यङ्कोजी जगतपे शिवाजी बल्लाल, मुकुन्द बल्लाल मोरे, रङ्गनाथ रूपजी भोंसले सूर्यराव काकड़े आदि वीरोंने सिंहविक्रमसे मुगलसेनाको कुचल दिया था। इस युद्धमें जावली रायरी आदि दुर्गविजेता सूर्यराव काकड़े यमपुर सिधारे।

सल्ह दुर्गमें मुगलसेनाकी पराभयवार्त्ता सुन कर नजदीक पहुंचे हुए दिलेर खाँ शत्रु द्वारा आक्रान्त होनेके भयसे उसी समय औरङ्गाबादकी ओर चलते हुए। अवसरदस उग्रस्त प्रतापरावने उनका पीछा किया। वे खानदेशको आक्रमण कर बुरहानपुर तक अग्रसर हुए। लौटते समय वे जहां गये स्थानोंमें चौथ कायम कर तथा नाना स्थानोंसे पुराना चौथ वसूल कर रायगढ़ आये।

इस प्रकार उत्तरोत्तर महाराष्ट्रवृद्धि, मुगलवाहिनी का क्षय और यशोवन्तसिंह दिलेर खाँ, महब्बत खाँ आदि सेनापतियोंको बार बार पराजय देख कर सम्राट औरङ्गजेब डर गये और भावी अमङ्गलकी आशङ्का करके उन्होंने मुअज्जमके सूबादार बहादुर खाँको (खानजहान) दाक्षिणात्यका सूबादार बनाया। इससे कुछ भी न हुआ। बहादुर खाँको शिवाजीका अतुल प्रताप देख एक कदम आगे बढ़नेका साहस न हुआ। निश्चेष्ट भावसे उन्हें औरङ्गाबादमें अवस्थान करते देख शिवाजीने एक दल सेना उत्तरकी ओर भेजी और आपने गोलकुण्डा प्रदेशमें आक्रमण कर चौथ कायम किया।

१६७१ ई०में सल्ह दुर्ग महाराष्ट्रके हाथ आने पर भी मुगलसेनापतियोंने दूसरे वर्ष १६७२ ई०को अपनी अपनी वाहिनी ले कर फिरसे उक्त दुर्गको घेर लिया। महाराष्ट्र नायक बड़ी वीरता और साहससे आत्मरक्षा करनेमें समर्थ हुए थे। अन्तमें मोरोपन्त पेशवा उन लोगोंके दुर्भेद्य व्यूहको भेद कर विजयलक्ष्मी प्राप्त की। १६७३ ई०में पनहाला दुर्ग फिरसे शिवाजीके अधिकारभुक्त हुआ तथा उन्हीं के एक दूसरे सेनापति अन्नाजीदत्तो हुबली लूट कर प्रचुर अर्थ और बहुमूल्य द्रव्यादि सञ्चय कर लौटे।

इसी समय शिवाजीने कारवाड़ प्रदेशकी ओर एक नौवाहिनी भेजी। फलतः उक्त प्रदेशके समुद्रोपकूलवर्त्ती जिला महाराष्ट्रके हाथ लगे। यहां तक कि बेदनोरके राजा भी गोलकुण्डाधिपकी तरह शिवाजीकी अधीनता स्वीकार करनेमें बाध्य हुए।

शिवाजीकी अनुपस्थितिमें सूरत और सिद्धिराकके नौसेनापतिने समुद्रतारवर्त्ती दण्डाराजपुरा पर हठात् चढ़ाई कर दी। उस दिन रातको दुर्गके भीतरका मराठा सेनादल शिवपूजामें मस्त था सभी भङ्गके नशेमें चूर थे किसीको भी ज्ञान न था। इसी सुअवसरमें मुसलमानोंने रस्सी लटका कर ऊपर आरोहण किया और दुर्ग पर चढ़ाई कर दी। दुर्गाध्यक्ष रघुनाथ पन्तने युद्धमें प्राण विसर्जन कर असावधानताका प्रायश्चित्त किया।

इस समय बीजापुर सुलतानकी मृत्यु हो जानेसे बीजापुर राज्यमें अराजकता उपस्थित हुआ। उस समय दाक्षिणात्यमें मराठा और मुगल शक्ति प्रबल था। अब्दुल करीम खाँ प्रमुख व्यक्तिगण शिवाजीके किये हुए अपमानको स्मरण कर मुगलोंसे मिल और शत्रु बनिएमें लग गये। पारस खाँ प्रमुख दल शिवाजीको अपने पक्षमें लाना और मुगलशक्तिको खर्व

करना ही युक्तिसंगत समझा। किन्तु किसी एक सिद्धान्त पर पहुंचनेके पहले ही करीम खाँने अपने अधीनस्थ सेनाओंको शिवाजीके विरुद्ध अग्रसर होनेकी आज्ञा दी।

शिवाजीने बीजापुर सेनासे आक्रान्त होने पर प्रतापरावको दलबलके साथ उनके विरुद्ध भेजा। करीम खाँ आत्मरक्षामें असमर्थ हो रणक्षेत्रसे भाग चले। प्रताप उन्हें खदेड़ते हुए। पर्वतवेष्टित जलशून्य स्थानमें ले गये और वहीं आवद्ध किया। जलाभावसे ससैन्य मृत्युमुखमें पतित देख करीमने आत्मसमर्पण कर छुटकारा पाया। प्रतापरावने बीजापुर जीत कर हैदराबाद रामगिरि और देवगढ आक्रमण कर उन सब स्थानों मे चौथ स्थापन किया।

इधर करीम खाँ बीजापुर पहुंचते ही बहोल खाँके साथ मिले और फिरसे पनहाला प्रान्तमें आ कर आसपासके ग्रामोंमें लूटपाट मचाने लगे। यह खबर पाते ही शिवाजीने फिरसे करीम खाँको उपयुक्त शिक्षा देनेके लिये प्रतापरावको ससैन्य भेजा। तीसरी रणक्षेत्रमें दोनों पक्षमें मुठभेड़ हुई। पहले प्रतापरावने बड़ी वीरतासे मुसलमानी सेना पर आक्रमण किया। वे क्रमशः अग्रसर होते गये और केवल थोड़ेसे अनुचरोंके साथ मुसलमान सेनादलके बीच आ धमके। मावलीसेन बहुत पीछे छूट गई थी। रणक्षेत्रमें शत्रुके हाथ वे परलोक सिधारे। यह खबर पाते ही मावलसेना विचलित हो उठी। इस समय मराठा सेनानायक हंसाजी मोहितेमें पांच हजार सेना ले कर रणक्षेत्रमें उतर पड़े। यह घटना १६७४ ई०में घटी थी।

दोनो दलमें फिरसे भीषण युद्ध चलने लगा। करीम खाँ मराठाके हाथ सैन्यक्षय और पराजय अवश्यम्भावी जान बची खुची सेना ले कर रणक्षेत्रसे बीजापुरकी ओर भाग गये। युद्धमें जीत तो हुई, पर प्रतापरावकी मृत्यु पर मराठाशक्तिका एक अंश चूर हो गया। शिवाजीने हंसाजीको 'हम्बीरराव'की उपाधि दे कर सरनौबत पद पर प्रतिष्ठित किया।

इसके बाद सेनापति हम्बीररावको सम्पन गांव नामक स्थानमें आये देख बीजापुरसरदार हुसेन मयान खाँ दलबलके साथ आगे बढ़े। अब दोनोंमें घमसान लड़ाई छिड़ी। किसी समय फुरसत नहीं, ज्यों ज्यों रात चढ़ती जाती थी, त्यों त्यों लड़ाई भी बढ़ती थी। आखिर सेनापति हम्बीर रावकी जीत हुई। युद्धमें चार हजार घोड़े, बारह हाथी और ऊंट तथा कुछ रसद उनके हाथ लगी।

इस समय मोरोपन्त पेशवेने अपनी विजयवाहिनी परिचालित कर कोपल दुर्गको घेर डाला। हुसेन खाँके सहोदर भाई उस दुर्गके अधिपति थे। उन्होंने मराठा सेनानायकके अद्भुत युद्धकौशल और वीरत्व देख कर शिवाजीकी अधीनता स्वीकार कर ली। दुर्गाधिकारके बाद मोरोपन्त कनकगिरि, हर्पणपल्ली, रायदुर्ग आदि स्थानों को जीत कर तुङ्गभद्रातट पर्यन्त महाराष्ट्र राज्य फैलाया।"

इस प्रकार १६८६ ई०में नये ढंगसे मुसलमानके विरुद्ध प्रतिहिंसानल प्रज्वलित करके शिवाजीने चार वर्षके भीतर मुगलों द्वारा उनके जितने राज्य छीन लिये गये थे, अमित विक्रम और तलवारके बल उनका उद्धार किया था। इसके सिवा जल और स्थल-विभागमें बहुत दूर तक उन्होंने अपना राज्याधिकार फैलाया। उत्तरमें सूरत, दक्षिणमें वेदनोर और हुबली तथा पूर्वमें बेरार, बीजापुर और गोलकुण्डा तक उनका शासनदण्ड परिचालित हुआ था। ताप्तीनदीके दक्षिणस्थ मुगलाधिकृत सूबा उन्हें चौथ और सरदेशमुखी दे कर निश्चिन्त थे। गोलकुण्डा और वेदनोरपति महाराष्ट्रपति शिवाजीके हाथ अपनी हार स्वीकार कर उनके अधीन सामन्तरूपमें रहे।

महाराष्ट्रप्रचलित बखर नामक देशीय ऐतिहासिककी आख्यायिकामें लिखा है, कि शिवाजीने दाक्षिणात्यके प्रतापशाली तीन मुसलमान पादशाहोंको पराभूत और वशीभूत कर स्वयं हिन्दू पादशाह होनेकी इच्छा की थी। इसी कारण उनकी मन्त्रिसभाको प्रकाश्य भावसे महाराज शिवाजीका अभिषेककार्य करनेकी प्रयोजनीयता सूझ पड़ी थी। उन लोगोंने तीस वर्ष अविश्रान्त परिश्रम और अध्यवसायसे जो राजैश्वर्य पाया था, अभी उसीका महत्व उद्घाटन करनेकी सूचना हुई। शिवाजी-

का अभिषेकोत्सव और उसके कारण प्रभूत अर्थव्यय उनके स्वाधीनराज्यका परिचयस्थल है।

शिवाजीने जिस समय मुसलमान राजाओंको पद दलित कर उन्नतिके शीर्ष सोपान पर आरोहण किया था, ठीक उसी समय काशीधामसे वेदान्ततत्त्वदर्शी प्राज्ञ पण्डित गागाभट्ट तीर्थदर्शनके उपलक्षमें दाक्षिणात्य आये और शिवाजीसे मिले। इन्हींके अनुरोधसे राणावंशीय महाराज शिवाजी शास्त्रोक्त प्रक्रियानुसार अभिषिक्त हो राज्यशासन करने स्वीकृत हुए। उनके उपदेशवाक्य तथा मोरोपंत और निराजीपंतके अनु मोदनसे शिवाजीने अपने मेवाड़के कुटुम्बोंकी तरह यज्ञ सूत्र धारण कर वर्णाश्रमधर्म पालन करते हुए शास्त्र मर्यादाकी रक्षा की।

चित्तौरसे दाक्षिणात्य आ कर नाना दुर्विपाकसे शिवाजीके पूर्वपुरुषगण (६।१० पीढ़ी) उपनयनसंस्कार भ्रष्ट हो गये। इसके बाद गागाभट्टके विधानानुसार 'व्रात्यस्तोमप्रायश्चित्त' करने पर उन्हें यज्ञोपवीत प्रदान कर अभिषेककी व्यवस्था हुई। तदनुसार १५६ शक (१६७४ ई०)में ज्यैष्ठमासकी शुक्ला चतुर्थीको निमंत्रित राजाओं और ब्राह्मणों के समीप महाराष्ट्रकेशरी शिवाजी ने यज्ञोपवीत धारण किया। सच पूछिये, तो इसी दिनसे राज्याभिषेकोत्सव आरम्भ हुआ।

उसी वर्षकी ज्यैष्ठशुक्ला त्रयोदशी तिथि बृहस्पतिवारको उनका अभिषेक कार्य समाप्त हुआ और वे सिंहासन पर अधिरूढ़ हुए। इस घटनाका स्मरण कर उसी दिनसे दाक्षिणात्यमें 'शिव शक' प्रचलित हुआ। आज भी कोल्हापुर राजसरकारमें शिवाजीके वंशधर उसी शकका व्यवहार करते हैं। इस राज्याभिषेक उपलक्षमें प्राय १ करोड़ ४४ लाख ४ हजार रुपये खर्च हुए थे।

राज्याभिषेक समाप्तके बाद महाराज शिवाजीने आये हुए राजाओं और राजदूतोंका यथोचित सम्मान और सत्कार कर विदा किया। इसी समय अंगरेज कम्पनीने वाणिज्यकी सुविधाके लिये महाराष्ट्र दरबारमें दूत भेजा। अंगरेजी दूत सर हेनरी आक्सेण्डेन जब बहुमूल्य उपहारके साथ रायगढ़ आये तब महाराजने उनका यथोचित सम्मान किया। महाराज शिवाजी उनकी प्रार्थनाके अनुसार जिस वाणिज्यविषयक सन्धि सूत्रमें आबद्ध हुए, उसके मध्य राजापुर ध्वंसका क्षति पूरण तथा राजापुर दभोल, चेउल और कल्याण नगरमें अङ्गरेजका वाणिज्यकोठा निर्माण उल्लेखयोग्य घटना है। इसके ठीक बाद ही महाराजने तुलादान किया। इस उपलक्षमें उन्होंने रायगढ़के सुप्रसिद्ध 'जगदीश्वर मन्दिर'की प्रतिष्ठा की थी। उस मन्दिरके गात्रमें निम्नोक्त शिलालेख उत्कीर्ण है—

'प्रासादो जगदीश्वरस्य जगतामानन्ददोऽनुज्ञया
श्रीमच्छत्रपतेः शिवस्य नृपतेः सिंहासने तिष्ठत।
शाके षण्णवबाणभूमिगणनादानन्दसंवत्सरे
ज्योतिराजमुहूर्त्तमहिते शुक्लेशसापे तिथौ॥
वापीकूपतडागराजिरुचिरं रम्यं वनं वीतिके
स्तम्भैः कुम्भिगृहे नरेन्द्रसदनैरभ्र लिहैर्मोहिते।
श्रीमद्रायगिरौ गिरामविषये हीराजिना निर्मिता
यावच्चन्द्रदिवाकरौ विलसतस्तावत् समुज्जृम्भताम्॥"

माता और पत्नीवियोग पर शिवाजीको यद्यपि भारी शोक हुआ, फिर भी वे अविचलित भावसे राजशासन करने लगे। उनके नियोजित अष्टप्रधान उन्हें राज कार्यमें विशेष सहायता पहुंचाते थे। उन्होंने जैसी शासनविधिका अवलम्बन कर प्रजापालन तथा सामरिक विभागकी व्यवस्था की थी, उसके पुनरुल्लेखका निष्प्रयोजन है। उनका घुड़सवार सेनादल शिलेदार और बर्गीरदार भेदमें विभक्त था। ये लोग दूरदेश आक्रमणके समय जाते थे, पैदल सिपाहीमें घाटमाथाके मावली और कोङ्कण प्रदेशके हाटकारीगण प्रधान थे। महाराष्ट्र देखो।

इसके बाद शिवाजीके जीवननाटकके अन्तिम दृश्यका अभिनय आरम्भ हुआ। उत्तरमें मुगल और बीजापुर के साथ युद्ध बन्द हो जानेसे दोनों पक्षने एक तरह शान्तिभाव धारण किया था सही, पर यथार्थमें मित्रता स्थापित नहीं हुई थी, तथापि दोनों पक्ष वैरभावका परित्याग कर शान्तभाव अवलम्बन करनेके लिये बाध्य हुए।

शान्तिसुखका भोग रहे थे, शाहजी द्वारा

जागीरमें वङ्कोजीके साथ रघुनाथ नारायण नामक दो भाइयोंका मनमुटाव हो गया। दोनों भाई शाहजीके प्रधान कर्मचारी नारोत्रिमल हनुमन्तके योग्य पुत्र थे। ये लोग भी वङ्कोजीको सामने रख कर द्राविड़मण्डलमें स्वतन्त्रभावसे महाराष्ट्र-विजयपताका फहरानेकी सलाह कर रहे थे। शिवाजीके विरुद्ध खड़ा होना वङ्कोजीने नहीं चाहा, इस कारण दोनों भाई उनके दुश्मन हो गये। वे लोग अब वहां रहना अच्छा न समझ कर भागानगरमें चले गये। पीछे वहांसे उन दोनोंने शिवाजीके पास आ कर उनसे कहा, कि दाक्षिणात्य प्रदेशमें अराजकता फैल गई है तथा वहां हिन्दुराज्यस्थापनकी बड़ी सुविधा है। इतना सुनते ही शिवाजीने दक्षिण प्रदेश जीतनेका सङ्कल्प किया।

भागानगरपति तानशाह सुगल भी इस घटनाके कुछ पहले शिवाजीको वार्षिक ५ लाख हूनमुद्रा देना स्वीकार कर उनके साथ सन्धिसूत्रमें आवद्ध हुए। शिवाजीने उस मित्रताको दृढ़ करनेके लिये निराजी पन्तके लड़के प्रह्लाद पन्तको विविध प्रकारके उपहारके साथ भागानगर भेजा और उससे कह दिया था, कि शिवाजीको भागानगर देखनेकी बड़ी इच्छा है।

शिवाजी पचीस हजार मावली पदातिक सेना ले कर भागानगरको चल दिये। वहां भागानगराधिपने उनकी बड़ी खातिर की। कुछ दिन वहां आमोद-प्रमोदमें समय बिता कर शिवाजी प्रह्लाद पन्तको वहां दूत स्वरूप रख आप ससैन्य दक्षिणकी ओर रवाने हुए। जाते समय उन्होंने तुङ्गभद्रा नदी तट पर अवस्थित कर्णाल, कड़ापा आदि स्थानोंसे ५ लाख हूण चौथमें संग्रह किये। बादमें वे निवृत्तिसङ्गममें स्नानादि कार्य करके कुछ प्रधान कर्मचारियोंके साथ श्रीशैलको गये। यहां बारह दिन ठहर कर शिवाजी देश देशमें गुहा और गृहनिर्माण तथा ब्राह्मण-भोजनादि नाना पुण्यकर्मानुष्ठान कर फिरसे अपने सेनादलमें मिले। इसके बाद इन्होंने दलबलके साथ दमलचेरी घाटी हो कर पेनघाट पर्वतमाला पार कर कर्णाटदेशमें पदार्पण किया।

यहां आ कर उन्होंने मन्द्राज नगरसे ७ कोस दूर चण्डीदुर्गमें घेरा डाला (१६७७ ई०)। दुर्गाध्यक्ष रूप खां और नाजिर महम्मदने पराजय स्वीकार कर शिवाजीकी शरण ली। चान्दी और तन्‌समीपवर्त्ती प्रदेश हस्तगत कर शिवाजीने विट्ठल पिलदेव गोराड़करको सूबादार, रामजी नलगेको चण्डीदुर्गाधिपति, तिमाजी केशवको सर्वनिस और रुद्राजी मालवीको पूर्वविभागके प्रधान कर्मचारी पद पर नियुक्त किया और आप कावेरीकी ओर चल दिये। राहमें बीजापुरराज-सेनापति शेर खांने ५००० हजार घुड़सवार सेना ले कर उन्हें रोका। शिवाजीके सामने मुसलमानी सेना कब तक ठहरनेवाली थी। वे सबके सब विमर्दित हो जहां तहां भाग गये।

लौटते समय शिवाजीने ब्राह्मणवीर नरहरि बल्लालके अधीन दश हजार मावली सेना भेज कर वेलूर दुर्गको घेर लिया। दुर्ग जल्द ही महाराष्ट्रसेनाके हाथ लगा। इस समय वङ्कोजी चन्दावर (तंजोर) राज्यमें राज्य करते थे। वे भाईके आनेकी खबर सुन कर सत्कारपूर्वक उन्हें अपने यहां ले आये। आठ दिन आपसमें सम्मिलन सुखभोगके बाद एक दिन शिवाजीने भाई वङ्कोजीके निकट पितृसम्पत्तिका अपना अंश पानेकी बात छेड़ी। वङ्कोजीने इसका उत्तर न दे कर अपने परामर्शदाताओंसे कुछ बातें जा कहीं। उन लोगोंने शिवाजीकी कुटिलता समझी। वङ्कोजी डर गये, कि कहीं शिवाजी अपमान न कर दे, इस आशङ्कासे उन्होंने रातोरात भाग कर चान्देरीमें आश्रय लिया। दूसरे दिन सवेरे वङ्कोजीके भाग जानेका संवाद सुन कर शिवाज बहुत दुःखित हुए और उनकी तलाशमें द्रुतगामी अश्वारोहियोंको भेजा। वे लोग वङ्कोजीके बदले कुछ भागते हुए कर्मचारियोंको पकड़ लाये। शिवाजीने उन लोगोंके साथ सदय व्यवहार कर कहा, 'वङ्कोजी मेरा छोटा भाई है। मैं इस पवित्र तलवारको भाईके ऊपर वार करके राज्योपार्जन नहीं करने आया हूं। आप लोग अभी घोड़े पर चढ़ कर उनके पास जायं'।

इसके बाद शिवाजी नये जीते हुए प्रदेशका शासनभार रघुनाथ नारायण पर सौंप कोल्हार और बालापुर प्रदेश गये। जिन सब स्थानोंके मुसलमान दुर्गरक्षकोंने शिवाजीकी अधीनता स्वीकार करना नहीं चाहा, वे

सेनापति हम्बीररावने द्वारा पराहत और बन्दी हो मदा राजके पास भेज दिये गये। ये सब प्रदेश हाथ आने पर शिवाजीने मानसिंह मोरे और रघुनारायण नामक दो उपयुक्त कर्मचारीके ऊपर शासनभार सौंपा।

यहांसे सम्पत्‌गाँवके रास्ते पर शिवाजीका सैनान बल्लाडा दुर्गकी अधीश्वरी मालबाइ देशाइनके राज्य पर धावा बोल दिया। वीररमणी प्राणपणसे सम्मानरक्षा करने लगी। सेनादल ले कर उन्होंने शिवाजी पर आक्रमण कर दिया। दोनोंमें तुमुल युद्ध चलने लगा। आखिर मालबाइने दुर्गमें आश्रय लिया। २७ दिन घेरे रहनेके बाद उन्होंने शिवाजीके हाथ आत्मसमर्पण किया। महाराजने वीरनारीकी सम्मानरक्षा की थी। पीछे शिवाजी रानी पर ही राज्यभार सौंप कर लौटे।

कर्णाटमें रायगढ़ आने पर शिवाजीने सुना, कि वङ्कोजी मुगल, पठान और महाराष्ट्र सेना ले कर उनके ही विरुद्ध युद्धका आयोजन कर रहा है। रघुनाथपन्तको जब यह हाल मालूम हुआ, तब उन्होंने वङ्कोजीको बार बार निषेध किया, परन्तु वङ्कोजीने उनकी बात पर जरा भी ध्यान न दिया। उन्होंने संगृहीत सेनादलको ले कर वालगोंडापुरमें मराठा सेनापति हम्बीरराव पर चढ़ाइ कर दी। युद्धमें वङ्कोजीके साथ प्रतापजी भीवाजी शिवाजीपन्त प्रभृति आदि कैद हुए। शिवाजीने भाइ को मुक्तिदान दे कर धर्मभावसे राजकार्य करनेको कहला भेजा। पीछे उनको आज्ञासे रघुनाथपन्तने दश हजार सेना ले कर कर्णाट प्रदेशको प्रस्थान किया और हम्बीरराव राजधानी चले आये।

दाक्षिणात्यमें हिन्दूराज्य स्थापन करनेके लिये शिवाजीको प्रायः डेढ़ वर्ष तक यहां रहना पड़ा था। इस समय उत्तर प्रदेशके मुगल शत्रु उनके विरुद्ध खड़े हो गये और युद्धका आयोजन करने लगे। शिवाजी के रायगढ़ लौटते ही मोरोपन्तने शत्रुका दमनके लिये उनसे प्रार्थना की। शिवाजीने विपुल अनीकिनी संग्रह कर कुछ राज्यकी रक्षामें छोड़ बाकी दो दो दलोंमें विभक्त किया। एक दल मोरोपन्तके अधीन भिन्न मार्गसे गया और दूसरा दल उन्हींके अधीन परिचालित हुआ। इस बार महाराज जयसिंहके पौत्र कर्णसिंह और युद्धविद्याविशारद रणमस्त खां मुगल सेनाके नायक बन कर आये। जल्लपुर रणक्षेत्रमें शिवाजीके प्रचण्ड आक्रमणसे मुगल सेना तितर बितर हो गई। रणमस्त खाँ भी रणक्षेत्रसे भाग चले। युद्धमें विजयलाभ कर शिवाजी नाना युद्धोपकरण और बहुमूल्य द्रव्योंके साथ रायगढ़ लौटे।

इधर कर्णाट प्रदेशमें रघुनाथ पन्तको उपयुक्त सेना दे कर हम्बीरराव शिवाजीके समीप जा रहे थे इसी समय राहमें बीजापुर सेनापति हुसेन खाँ और लोदी खाने उन पर चढ़ाइ कर दी। दोनोंमें भीषण संग्राम चलने लगा। बहुत सी मुगल सेना आहत और निहत हुई। आखिर दोनों सेनापति बन्दी हो कर शिवाजीके पास लाये गये।

जब शिवाजी और हम्बीरराव इसी तरह मुसलमानों के विरुद्ध युद्धमें लिप्त थे, उस समय ब्राह्मणवीर मोरोपन्त खान्देश प्रान्तमें तलवार घुमा कर मुसलमानोंको भय दिखला रहे थे। उन्होंने असीम साहससे आउन्ध जवागढ़ आदि दुर्गों को हस्तगत कर लिया। इस समय प्रत्येक दुर्गमें मराठासेनाकी विजयपताका फहराने लगी थी। शिवाजी ने जब जल्लपुरकी ओर यात्रा की तब ब्राह्मणकन्याके ऊपर अत्याचारी पुत्र शम्भाजीको पनहाला दुर्गमें कैद कर जगन्नाथ हनुमन्तको द्वाररक्षामें रख छोड़ा। उस पकड़ लानेके लिये स्वयं शिवाजी महाराज पुरन्दर दुर्गमें गये थे।

इसके बाद शिवाजीने सुना कि मुगल सेनापति दिलेर खाँने बीजापुर राजमहिषीको बड़े कौशलसे हस्तगत किया है तथा बीजापुर राज्यमें समरानल प्रज्वलित कर वहां उसने अपना गोटा जमानेकी भी चेष्टा की है। इधर विश्वासघातक दिलेर खाँके व्यवहारसे विरक्त हो कर बीजापुर मन्त्री उन्हें बुला रहे हैं। शिवाजी कब रुकने वाले थे उन्होंने फौरन दलबलके साथ दिलेर खाँका पीछा किया। रणमस्त खांको परास्त कर हम्बीरराव भी वहां पहुंच गये। दोनोंके आक्रमणसे दिलेर खाँका बीजापुर प्राप्तिकी आशा पर पानी फिर गया। पीछे वे कृष्णानदी पार कर कर्णाट राज्य लूटने और जलाने हुए आगे बढ़े। कर्णाटमें अवस्थित ब्राह्मणवीर जनार्दनपन्तने

छः हजार घुड़सवार सेना ले कर दिलेर खाँको आक्रमण और परास्त किया।

पनहाला दुर्गसे भाग कर शम्भाजीने दिलेर खाँके शिविरमें आश्रय लिया। उन्होंने शम्भाजीका सादर सत्कार कर सम्राट्से राजाकी उपाधि और सात हजारी अश्वारोही मनसबदारका पद दिला दिया। इस क्षेत्रमें पराभूत और अपमानित दिलेर खाँने शम्भाजीको आगे कर भूपाल दुर्ग पर छापा मारा। चाकन दुर्ग पतनके बादसे ही फिरङ्गजी नरशाले भूपालगढ़की रक्षा करते आ रहे थे। वे दिलेर खाँसे दुर्ग आक्रांत होते देख मुगल-सेना पर गोला बरसाने लगे। इस पर चतुर दिलेर खाँने शम्भाजीको सामने रख कर युद्धमें बाधा डाली। फिरङ्गीजीने अपने मालिकके लडकेको न मार कर भूपालगढ़ शत्रुके हाथ लगा दिया और आप शिवाजीके निकट चले गये। शिवाजीने दिलेर खाँकी घटना सुन कर कहा, 'जब शम्भाजीने शत्रुका पक्ष लिया है, तब हम लोगोंको कभी भी उस पर दया नहीं करनी चाहिये। तुम लोग जिस प्रकार हो सके उसे मारो, घायल करो अथवा कैदमें ठूस दो, इसमें जरा भी सङ्कुचित होनेकी आवश्यकता नहीं।'

युद्धकी फिर तैयारी होने लगी। क्रूरबुद्धि औरङ्गजेबको जब मालूम हुआ दृढ़प्रतिज्ञ शिवाजी प्रजाकी भलाईके लिये प्रियपुत्रको भी छोड रहे हैं, तब उन्होंने दिलेर खाँको कहला भेजा, 'शम्भाजीको फौरन मेकाल शिविर छोड कर पनहाला दुर्गमें आश्रय लेने कहो, नहीं तो उन पर विपद्का पहाड टूटनेकी सम्भावना है।'

दिलेर खाँके मुखसे सम्राट्का अभिप्राय जान कर शम्भाजी पनहाला दुर्ग चले गये। शिवाजीने पुरन्दर दुर्गसे आ कर पुत्रको गोद लिया। पुत्रने पिताके चरणोंमें पड कर क्षमा प्रार्थना की। इसके बाद शिवाजीने उच्छृङ्खल शम्भाजीको राजकार्य चलानेका उपयुक्त उपदेश दे कर कहा, 'मेरे नहीं रहने पर तुम और राजाराम मेरा राज्य इस प्रकार बाँट लेना,—तुङ्गभद्राके किनारेसे ले कर कावेरीतट तक तुम्हारे अधिकारमें और तुङ्गभद्रासे गोदावरीतट तक राजारामके अधिकार में रहेगा। दोनोंने कभी भी लड़ाई झगड़ा न करना।

इसके कुछ दिन बाद शिवाजीने मृत सेनापति प्रतापरावकी कन्याके साथ राजारामका विवाह कर दिया। इसके बाद वे राज्यके कुछ मङ्गलजनक कार्योंमें लग गये। इस समय उनके दोनों घुटने सूज आये जिसमें वे कठिन ज्वरसे पीडित हुए। सात दिन तक रोग भुगतनेके बाद १६८० ई० (१६०२ शक) रौद्र संवत्सर चैत्र शुक्र पूर्णिमा रविवारको महाराष्ट्रगौरवने नश्वरदेह का परित्याग किया। शम्भाजी और राजाराम देखो।

शिवाजीका नैतिक और गार्हस्थ्य जीवन रमणीय और शिक्षाप्रद है, वे महापुरुषका आदर्श लक्षण कह कर ग्रहण करने योग्य हैं। वयोवृद्धिके साथ साथ उनकी बुद्धिवृत्ति भी परिस्फुट होती गई थी। बाल्यकालमें वे पितामाताको देवता समझते थे। राजेश्वर हो कर भी उनकी वह असीम पितृमातृभक्ति जरा भी विचलित न हुई थी। बीजापुर-राजदरबारसे जब शाहजी दूतरूपमें उनके पास आये, तब उन्होंने यथेष्ट पितृभक्ति दिखलाई थी। पिताके आज्ञानुसार उन्होंने अपने स्वार्थ पर जलाञ्जलि दे कर बीजापुरराजका अभिलाष पूरा किया था। मालूम होता है, कि इसी पितृभक्तिके बल उन्होंने पिताकी जीवित कालमें राजोपाधि नहीं पाई थी और न अपने नाम पर सिक्का ही चलाया था। राज्यशासन विषयक कूट या सामान्य विषयमें भी वे बिना माताकी सलाहके कोई कार्य नहीं करते थे। उनका भ्रातृ और पुत्रस्नेह प्रगाढ़ था। शम्भाजी और वङ्कोजीको क्षमा ही उसका उज्ज्वल दृष्टांत है। क्षमा उनका एक प्रधान गुण था।

वे असाधारण मुक्तहस्त थे। आत्मीय, बंधु बांधव या कर्मचारियोंकी बात तो दूर रहे, शत्रुका कैदी सेनादल भी उनसे यथेष्ट पुरस्कार और परिच्छदादि पा कर उनके आचरण पर संतुष्ट रहते थे। अन्यान्य सभी विषयोंमें वे मितव्ययी थे। सैनिक विभागके परिच्छदकी सरलता और स्वल्पव्यय अच्छी तरह दिखाई देता था। अपव्ययी कर्मचारीको वे उसी समय राजकार्यसे निकाल देते थे। ऋणग्रस्त व्यक्तिको वे घृणाकी दृष्टिसे देखते थे। उनके दृष्टांत पर महाराष्ट्र सरकारके सभी लोग मिताचारी और मितव्ययी हो गये थे।

शिवाजी।

धर्म सम्बन्धमें उनकी उदारता अनुकरणीय थी। उनके अभ्युदय कालमें दाक्षिणात्य मुसलमानोंके अधिकारमें था अतएव मुसलमानी धर्मके प्रति विद्वेषका उनके उदयमें आपे आप जागरित होना सम्भव था, किन्तु वे वर्ण या धर्मगत विभेद पर लक्ष्य नहीं रखते थे। जिसका जो धर्म है, वह अवश्य पालन कर सकता है। यही कारण है, कि उन्होंने राजकोषसे वृत्तिका बन्दोबस्त करके भी मसजिद, पीरस्थान आदिकी रक्षा की थी। किन्तु जो हिन्दूद्वेषी था, उस पर महाराजकी विशेष घृणा रहती थी। स्वार्थपरायण और हिन्दूजातिका उच्छेद करनेमें यत्नपरिकर मुगल सम्राट औरङ्गजेब उनकी दृष्टिमें विषतुल्य था। उनके सभादलमें हिन्दू मुसलमान एक सा सम्मान पाते थे। सेनापति दरिया खां और इब्राहिम खाँ मराठी सेनाको परिचालित कर अंगरेज, फरासी पुर्त्तगीज दिनमार, मुगल आदिको धता दिया था। तानाजी, प्रतापराव, मोरोपंत और हम्बीरराव आदि हिन्दू योद्धागण भी सैन्य चालनामें सिद्धहस्त थे।

अपने मिष्ट व्यवहार और मधुर सम्भाषणसे इन्होंने महाराज जयसिंह और दिल्लीके प्रधान अमात्योंको अपना मित्र बना लिया था। दिल्लीमें जब वे नजरबन्द से परिवेष्टित हो बन्दिभावमें रहते थे, उस समय इन्होंने आत्मसंयमका जो परिचय दिया था, वह किसीसे भी छिपा नहीं है। युद्धकालमें भी उनके असीम आत्मसंयमका परिचय मिलता था। उन्होंने कहीं भी महावीर अलेकसन्दर या नादिर शाहकी तरह निष्ठुरता नहीं दिखलाई। रणक्षेत्रमें नाना कार्योंमें लगे रहनेमें वे केवल खिचड़ी खा कर रहते थे। इसके सिवा निरामिष ही उनका दैनिक आहार था। युद्धयात्राकालमें सारा दिन घोड़े पर बिता कर भी वे क्लान्त नहीं होते थे।

पहले ही कहा जा चुका है कि वे कट्टर धर्मानुरागी थे। असत्‌प्रसंग या असत्‌ आलापमें उनकी विजातीय घृणा थी। राजकार्यमें व्यापृत रहने पर भी वे विद्वानों का आदर करना नहीं भूलते थे। महाराष्ट्र भाषाकी उन्नति पर इनका विशेष ध्यान रहता था। इन्हींके आन्तरिक उत्साह और अध्यवसायसे महाराष्ट्र दरबारसे 'राजव्यवहारकोष' संगृहीत हुआ। उस समय महाराष्ट्र भाषामें बहुतसे मुसलमानी शब्द प्रचलित थे। उक्त ग्रन्थमें उन्हीं सब शब्दोंका संस्कृत भाषामें परिवर्त्तन किया गया।

उनके गुरु रामदास स्वामी, धर्मशील कवि तुकाराम, भगवद्‌गीताटीकाके प्रणेता वामन कवि आदि जैसे विद्वानोंसे वे धर्मबलमें बलिष्ठ हो कर्मयोगमें रत हुए थे।

शिवाजीने अपने बाहुबलसे जिस विस्तीर्ण भूभागमें आधिपत्य फैलाया तथा जो सब दुर्ग अधिकार किये थे उनमें प्रकार हैं—

सतारा प्रदेशमें—सतारा, वैराटगढ़, वर्द्धनगढ़ परली या सज्जनगढ़, पाण्डवगढ़, महिमानगढ़, कमलगढ़ वन्दनगढ़, ताथवाड़ा चन्दनगढ़ नन्दिगिरि।

कराडप्रदेशमें—वसन्तगढ़ मच्छिन्द्रगढ़, भूषणगढ़, कमलवाकराड।

सह्याद्रि मावल प्रदेशमें—रोहिड़ा, सिंहगढ़ नारायणगढ़, कुवारी कलना पुरन्दर दौलतमङ्गल मारगिरि, लोहगढ़, रुद्रमाल राजगढ़, तुङ्ग, तिकोना, राजमाची तोरणा शैलगढ़, विशालपुर, कासोरा शिवनेर।

पन्हाला प्रदेशमें—पन्हाला, खेलना विशालगढ़, पावनगढ़ रङ्गणा, गन्धर्वगढ़, भूधरगढ़ पारगढ़, मदनगढ़, मनगढ़, भूपालगढ़ मगनगढ़ पाण्डा।

चिन्तामणिके प्रणेता। २ देवावतरण काव्यके रचयिता। ३ प्रश्नोदयतन्त्रकार। ४ निर्णयदर्पण नामक दिधीति कार। ये तारापति ठाकुरके पुत्र थे।

शिवानन्द आचार्य—कुण्डदीप नामक तन्त्रके रचयिता।

शिवानन्द गोस्वामी—विद्यारत्न और विद्याविनोद नामक दो वैद्यक ग्रन्थके प्रणेता।

शिवानन्द नाथ—एक ग्रन्थकार। ये मयरामभट्टके पुत्र और शिवराम भट्टके पौत्र तथा आगमके शिष्य थे। कालनिर्णयदीपिका कौलगजमर्दन, गणेशार्च्चनदीपिका, गुरुपूजाक्रम, गूढार्थादर्श (ज्ञानार्णवतन्त्रकी टीका) चण्डीपूजारसायन, चण्डीमाहात्म्यटीका त्रिपुरारहस्य टीका, दक्षिणाचारदीपिका, पदार्थादर्श (शारदातिलक चन्द्रो दयटीका), पुरश्चरणदीपिका षट्कार्थसन्दीपिका, मन्त्र चन्द्रिका, मन्त्रप्रदीप, मन्त्रमहोदधि, पदार्थादर्श (महीधर कृत मन्त्रमहोदधिकी टीका), सारदातिलकटीका, श्यामा सपर्याविधि और सपर्यासार नामक बहुतरे ग्रन्थ इनके रचे हैं।

शिवानन्द भट्ट—मध्यसिद्धान्तकौमुदीटीकाके प्रणेता राम शर्माके प्रतिपालक।

शिवानन्दभट्ट गोस्वामी—लक्ष्मीनारायणार्चाकौमुदी और सिद्धसिद्धान्तसिन्धु नामक दो तन्त्रके रचयिता। ये अगन्निवास गोस्वामीके पुत्र थे।

शिवानन्दसरस्वती—योगचिन्तामणिके प्रणेता। ये राम चन्द्र सदानन्द सरस्वतीके शिष्य थे।

शिवानन्द सेन—कृष्णचैतन्यचन्द्रोदयके प्रणेता। ये शिव रूप और कविकर्णपुरके पिता तथा श्रीकृष्णचैतन्यके समसामयिक थे।

शिवाना (स० स्त्री०) शिवस्य भार्या, यद्वा शिव मङ्गल मानयतीति आ-नी-ड गौरादित्वात् ङीष्। १ दुर्गा। २ जयन्ती वृक्ष।

शिवापर (स० त्रि०) अमङ्गल शिवेतर।

शिवापीड (स० पु०) १ अगस्त्य या वक नामक वृक्ष। २ शिवके शेखर।

शिवाप्रिय (स० पु०) शिवाया प्रिय। १ वकरा जिसके बलिदानसे दुर्गाका प्रसन्न होना माना जाता है। २ शिवाके पति, शिव। ३ शिवप्रियाका अप्रिय वस्तु।

शिवाफला (स० स्त्री०) शिवाया इव फलमस्या। शमी वृक्ष, सफेद कीकर।

शिवावलि (स० पु०) शिवाभ्यो दीयमानो वलि। रात्रिकालमें शिवाओंके उद्देशसे देनेयोग्य मांसप्रधान बलि अर्थात् नैवेद्य। तन्त्रसारमें शिवावलिका विषय इस प्रकार लिखा है—

साधक साधकालमें बिल्वमूल प्रान्तर या श्मशानमें शिवा देवीके उद्देशसे मांसप्रधान नैवेद्य चढ़ावे। साधक बलिद्रव्य खा कर यदि काली कह कर देवीको आह्वान करे, तो देवी परिवारोंके साथ शिवारूप धारण कर वहां पहुंचती हैं और साधकप्रदत्त बलि ग्रहण करती हैं। वह शिवा यदि बलिद्रव्य भोजन कर ईशानकोणमें रहे और मुख उठा कर सुस्वरसे ध्वनि करे, तो साधकका शुभ जानना होगा। इसका व्यतिक्रम होनेसे अशुभ होता है।

नित्यश्राद्ध, सन्ध्यावन्दन और पितृतर्पण जिस प्रकार अवश्य कर्त्तव्य है, शिवावलि भी उसी प्रकार कौलोंका कर्त्तव्य है। शिवावलि नहीं देनेसे शिवासाधककी जप पूजा और अन्यान्य सभी कर्म निष्फल होते हैं तथा शिवागण उसे शाप दे कर रोदन करती हैं। जिस समय देशमें राजभय, मारीभय आदि विपद् उपस्थित होती है, उस समय भी शिवावलि देना होता है। इससे सभी भय दूर और नाना प्रकारके शुभ होते हैं।

साधकके शिवावलि देनेसे यदि शिवा यदि उस प्रीति पूर्वक भोजन करे, तो सभी शक्तिकी परम प्रीति लाभ होती है। साधककी पशुशक्ति, पक्षिशक्ति और नरशक्ति पूजामें यदि कोई वैगुण्य हो जाय, तो भी उसके फलसे वह शुभ होता है।

शिवावलि मन्त्र पढ़ कर देना होता है। यह मन्त्र इस प्रकार है—

"गृह्ण देवि महाभाग शिवेकालाग्निरूपिणि।
शुभाशुभफलं व्यक्तं ब्रूहि गृह्न बलिं तव॥
एष सामिषान्नबलि: पशुरूपधरायै नम:।" (तन्त्रसार)

इस मन्त्रसे मांसयुक्त अन्न चढ़ाना होगा। शिवा यह बलि ग्रहण कर यदि सब भक्षण कर ले, तो शुभ और यदि भक्षण नहीं करे, तो अशुभ होता है। इस प्रकार पहले शिवावलि द्वारा शुभाशुभ ज्ञान कर पीछे शान्ति

स्वस्त्ययनादिका अनुष्ठान करना होता है। यथाविधान शिवाबलि यदि शुभ हो, तो शान्तिस्वस्त्ययन करना उचित है।

शिवाभिमर्शन (सं० त्रि०) मङ्गलस्पर्शन, मंगलस्पर्श युक्त। (सुश्रु० २।१३।१२)

शिवायतन (सं० क्ली०) शिवस्य आयतनं गृहं।
शिवालय देखो।

शिवारुति (सं० पु०) शिवायाः शृगालस्य अरुतिः। कुत्ता जो गीदड़ (शिवा) का शत्रु होता है।

शिवारि (सं० पु०) शिवायाः अरिः। शिवका अरि।
शिवाराति देखो।

शिवारुत (सं० क्ली०) शिवायाः रुतं। शृगालकी ध्वनि, गीदड़के बोलनेका शब्द। शकुनशास्त्रमें शिवारुतका शुभाशुभ विशेष रूपसे लिखा है। शृगालके किस ओर किस तरह बोलनेसे शुभ और किस ओर बोलनेसे अशुभ होता है वह इस शास्त्रमें अभिज्ञता रहनेसे जाना जा सकता है। वसन्तराजशाकुन और बृहत्संहितामें इसका विषय आलोचित हुआ है। संक्षेपमें यहां लिखा जाता है।

शृगाल यदि 'हू हू' शब्दके बाद 'टा टा' शब्द करे, तो वह उनका स्वाभाविक शब्द जानना होगा। उनका अन्य प्रकारका स्वर प्रदीप्त कहलाता है।

शृगाली यदि 'कक' ऐसा शब्द करे, तो वह उनका स्वाभाविक है। उनका अन्य प्रकारका शब्द अस्वाभाविक है तथा दीप्त कहलाता है। शृगाली यदि किसी दिशामें ऐसे दीप्त स्वरमें बोले, तो विशेष अमङ्गल होता है।

शिवागणके 'याहि याहि' ऐसा शब्द करनेसे अग्निभय होता है, 'टाटा' शब्द करनेसे महामारी तथा 'धिक् धिक्' शब्द करनेसे पाप और अग्निभय होता है। शृगालके अनुशब्दमें यदि शिवागण दक्षिणकी ओर रह कर शब्द करे, तो उद्बन्धनसे मृत्यु तथा पश्चिमकी ओर शब्द करनेसे बघ्र आदिकी जलमें मृत्यु होती है।

जिस शिवाके रवसे मनुष्यके रोंगटे खड़े हो जाते और हाथी घोड़ोंके विष्ठामूत्रत्याग हो कर भय उपस्थित होते है, वैसा शिवारव मङ्गलजनक नहीं है। मनुष्य, हाथी और घोड़ेके प्रतिशब्दसे यदि शिवा चुप रह जाय, तो मङ्गलजनक होता है। शिवा 'भे भा' शब्द करने पर अमङ्गल, 'भो भो' शब्द करने पर मृत्यु, 'फिर् फिर्' शब्द करने पर बन्धन और मृत्यु तथा 'रु रु' शब्द करने पर शुभ होता है। शिवा यदि पहले अवर्णके बाद यो शब्द करते करते पीछे 'टा टा' तथा पहले 'टे टे और पीछे 'थे थे' शब्द करे, तो शुभ होता है। यह शिवागणका सन्तोषजनक शब्द है। जो शिवा पहले उन तीनवर्ण उच्चारण करके पीछे शृगालानुरूप शब्द करे, तो मङ्गल, धनलाभ और परदेश गये हुए प्रियजनोंका मिलन होता है। (बृहत्संहिता ९० अ०)

शिवालय (सं० पु०) शिवस्य आलयः। १ वह मन्दिर जिसमें शिवजीकी मूर्त्ति या लिङ्ग स्थापित हो, शिवजीका मन्दिर। शास्त्रमें लिखा है, कि चन्द्र-सूर्यग्रहण, सिद्धक्षेत्र तथा शिवालय इन सब स्थानोंमें मन्त्र देनेसे ही दीक्षा होती है। दीक्षापद्धतिमें जो विशेष विधान है, उसके अनुसार न दे सकने पर भी दोष नहीं होता, सिर्फ मन्त्रोपदेश देने हीसे होता है।

२ कोई देव-मंदिर। ३ रक्ततुलसी, लाल तुलसी। (क्ली०) शिवा आलीयतेऽत्रेति आ-ली-अच्। ४ श्मशान, मरघट। (कथासरित्सा० ३।२३)

शिवाला (हिं० पु०) १ शिवजीका मन्दिर, शिवालय। २ देवमंदिर। ३ कोयला जलानेकी भट्टी।

शिवालु (सं० पु०) शृगाल, सियार, गीदड़।

शिवासृति (सं० स्त्री०) जयन्तीवृक्ष।

शिवाह्लाद (सं० पु०) शिवस्याह्लादो यस्मात्। १ बक वृक्ष। २ शिवका आनन्द, शिवका आह्लाद।

शिवाह्वय (सं० पु०) १ पारद, पारा। (भावप्रकाश) २ श्वेतार्क, सफेद मदार। ३ वटवृक्ष, बरगद।

शिवाह्वा (सं० स्त्री०) शिवेन आह्वा यस्याः। १ रुद्रजटा, शङ्करजटा। (त्रि०) २ शिव नामक, शिवके नामका।

शिवि (सं० पु०) १ हिंस्रपशु। (त्रिका०) २ भूर्ज्ज-वृक्ष, भोजपत्रका पेड़। ३ राजविशेष, उशीनर राजाके पुत्र। (मेदिनी) उशीनर राजाके पुत्र शिवि अत्यन्त धार्मिक और दाता थे। एक दिन देवताओंने ऐसा निश्चय किया, कि वे लोग शिविके धर्मकी परीक्षा

करेगा। पीछे एक दिन अग्निने कपोतका रूप धारण किया और इन्द्र श्येन पक्षीका रूप धारण कर कपोतको मारनेका मिस करके उसके पीछे दौड़ चले। इधर राजा शिवि अपने राजसिंहासन पर बैठे थे, इसी समय वह कपोत राजाकी गोदमें आ गिरा। इसके बाद उस कपोतने राजासे कहा "मैं श्येनपक्षीके भयसे विह्वल हो कर अपनी प्राणरक्षाके लिये आपकी शरण आया हूं, आप मेरी रक्षा कर अक्षय कीर्त्तिलाभ करें। आप मुझे स्वाध्यायसम्पन्न मुनि समझें। कर्मानुसार मैंने कपोतका शरीर धारण किया है।" इसके बाद श्येनने राजाको अभिवादन करके कहा—'महाराज! कपोत मेरा आहार है, आप मेरे भोजनमें विघ्न न डाल कर कपोतको मेरे हवाले करें। मैं इसे खा कर अपनी भूख बुझाऊं।' राजा थोड़ी देर सोच कर बोले—'शरणागतकी रक्षा करना ही राजाका धर्म है। जब यह कपोत मेरी शरणमें आया है, तब मैं इसकी रक्षा अवश्य करूंगा। विशेषतः जो मनुष्य शरणागतको शत्रुके हाथ सौंपता है, वह समय पर इच्छा करनेसे भी परित्राण नहीं पाता। उसके राज्यमें नाना प्रकारका विघ्न उपस्थित होता है। उसके पितृलोग स्वर्गसे निकाल दिये जाते हैं। पर तुम भी भूखे हो, इस लिये इस कपोतके बदले तुम्हें एक वृष अन्नके साथ सिद्ध करा कर दिया जाता है; तुम सन्तुष्ट हो कर इस कपोतको छोड़ दो।" इस पर श्येनने कहा—"राजन्! यह दैवदत्त कपोत ही विधाता द्वारा मेरा खाद्य स्थिर किया गया है। अतएव यह कपोत ही मुझे देवें। दूसरे किसी प्रकारके भोजनके लिये मैं प्रार्थना नहीं करता।' तब राजाने कहा—'मैं कपोतको किसी प्रकार नहीं छोड़ सकता, इसके बदले तुम जो कुछ मांगो मैं देनेके लिये तैयार हूं।"

इस पर श्येनने कहा—"राजन् आप यदि इस कपोतके बराबर अपनी बाईं छातीका मांस काट कर मुझे देवें तो मैं कपोतकी आशा छोड़ सकता हूं।"

राजा श्येनकी ऐसी बात सुन कर उसी समय बाईं छातीसे एक टुकड़ा मांस काट कर तराजूके पलड़े पर कपोतके बराबर मांस तौलने लगे। किन्तु कपोतने अपना वजन कुछ बढ़ा दिया। तब राजाने अपने शरीरके दूसरे स्थानसे मांस काट कर पलड़े पर चढ़ाया पर कपोतका वजन बढ़ता ही गया। फिर राजाने अपने सारे शरीरका मांस काट कर पलड़े पर चढ़ा दिया, पर फिर भी कपोतका वजन ही अधिक ठहरा। अनन्तर राजा कोई उपाय न देख आप ही तराजूके पलड़े पर चढ़ गये। राजाका यह व्यापार देख कर श्येनने कहा 'राजा! मैं कपोत और तुम्हें दोनोंको मुक्त करता हूं।" इतना कह वह वहांसे चल दिया।

उस समय राजाने अत्यन्त आश्चर्यान्वित हो कर कपोतसे पूछा—"यह श्येन कौन है? ईश्वरके सिवाय कोई ऐसा कार्य नहीं कर सकता।" शिविसे इस तरह पूछे जाने पर कपोतने कहा—"मैं अग्निदेव हूं और ये श्येन स्वयं इन्द्र हैं। तुम्हारी परीक्षा करनेके लिये ही हम दोनों इस तरह तुम्हारे सामने उपस्थित हुए हैं। तुमने जो मेरे लिये तलवार द्वारा अपने शरीरका मांस काटा है, इसलिये मैं तुम्हारे अङ्गचिह्नको शुभ मनोहर, सुगन्धित एवं हिरण्यवर्ण बनाता हूं। तुम अत्यन्त पुण्यवान् और यशस्वी हो। तुम्हारे अङ्गपार्श्वसे कपोतरोमा नामक एक पुत्र पैदा होगा। वह पुत्र अति बलवान् और धार्मिक होगा।" इस प्रकार वरदान दे कर कपोतने वहांसे प्रस्थान किया।

शिवि—दाक्षिणात्यमें तूमकूड़ जिलेके अन्तर्गत एक बड़ा गांव। यह तूमकूड़ नगरसे १५ मील उत्तरमें अवस्थित है। यहांका नरसिंह मन्दिर अधिक विख्यात है। प्रति वर्ष माघी पूर्णिमाके अवसर पर यहां इस विष्णुमूर्त्तिके माहात्म्यका प्रचार करनेके लिये १५ दिनका एक मेला लगता है। इस मेलेमें बहुतसे यात्री जुटते हैं और नाना प्रकारकी चीजें बिक्रीके लिये आती हैं।

शिवि—अफगानिस्तानके दक्षिणस्थ एक जिला। १८८१ ई०की गण्डामाक सन्धिके शर्त्तानुसार यह जिला अङ्गरेजोंके शासनाधीन हुआ। यह अक्षा० २९ २०से ले कर २९ ४५ उ० और देशा० ६७ २५ से ले कर ६८ १५ पू०के मध्य विस्तृत है। यह काची नामक प्रसिद्ध समतल प्रान्तरके सर्वोत्तरमें अवस्थित है। एक पहाड़

श्रेणी द्वारा शिवि जिला दो भागोंमें विभक्त है। यह पर्वतश्रेणी दो स्थान पर विच्छिन्न हो कर अत्यन्त गहरी खाई उत्पन्न करती है। इन दोनों खाइयोंमें एकसे हो कर नरी नदी एवं दूसरीसे हो कर थाली नदी बहती है। शिविका पूर्व भाग कन्धारस्थित अफगान शासनकर्त्ताके शासनाधीन है।

इस जिलेके उत्तर तथा उत्तर पूर्वमें मारिम और दुमार नामक पठानोंकी अविकृत पार्वत्य भूमि है। इसे छोड़ एक नरी नदी ही पूर्व, पश्चिम तथा दक्षिणकी ओर अपना अधिकार जमा रही है। उत्तर दिक्स्थ पर्वतमालाको छोड़ उक्त उपत्यकाभूमिके मध्यभागमें दूसरे दूसरे कई पर्वत हैं। इन पर्वतोंके मध्य एकके ऊपर शिवदुर्ग प्रतिष्ठित है।

उत्तरस्थ पर्वतश्रेणीसे जो नदियां निकली हैं, नरी नदी ही उन सबमें विशेष उल्लेखयोग्य है। यह गुमाल गिरिसङ्कटके दक्षिण प्रांतमें सिन्धु नदीके साथ बहनेवाली प्रवाहिकाओंमें प्रधान गिनी जाती है। नरीको छोड़ और भी कई नदियां इस जिलेमें देखी जाती हैं। उनमें थाली, आरन्द, गाजी एवं छिम प्रधान हैं। इन शेषोक्त नदियोंका जल खरीफ अनाजको परिपुष्ट करनेमें उपकारी है। नरी नदीका बाँध सभी स्थानोंमें ऊंचा है। इन ऊंचे बांधोंके एक स्थानमें नरीकाच नामक एक ऊंची समतल भूमि दृष्टिगोचर होती है। बाढ़के समय इस नदीके प्रायः दोनों कछार डूब जाते हैं, किन्तु इस स्थान पर भयका कोई कारण नहीं रहता। थाली नदीका पार्श्ववर्त्ती स्थान थाली भूभाग कहलाता है। ग्रीष्मऋतुमें इस नदीमें बाढ़ आ जाती है, उस समय इन दोनों भूभागोंमें रूई और जुआरकी खेतीके लिये अधिक परिमाणमें उसका जल व्यवहार किया जाता है।

यह अंचल देवमातृक नहीं है अर्थात् यहां अच्छी वर्षा नहीं होती। सुतरां खाई अथवा नदीके जलसे बिना खेत सींचे शस्यादि उत्पन्न नहीं होते। गेहूं, जौ, जुआर, कपास और तिल यहांके प्रधान शस्य हैं। यहां कृषिकार्यकी उपयोगी भूमिका परिमाण बहुत कम है। जमीनको दो वर्ष परती छोड़े बिना शस्य अच्छी तरह उत्पन्न नहीं होता। इस स्थानका गेहूं और कपास बहुत प्रसिद्ध है। कहीं कहीं धानकी आबादी भी देखी जाती है।

पठान, बेलुची, ब्राहुई, जाट और हिन्दू यहांके प्रधान अधिवासी हैं। इनमें पठान ही अधिक क्षमताशाली हैं। पठानोंके कई सम्प्रदाय हैं। उनमें बारकजाई, पन्नी और काजक प्रभृतिके नाम ही विशेष उल्लेखयोग्य हैं। अधिकांश ग्रामोंमें जाट लोग ही वास करते हैं, किन्तु बारकजाई पठानवंश विशेष सम्भ्रान्त है। यहांके पन्नी पठानोंमें भी पांच सम्प्रदाय हैं। मार्चाजानी, सफी, कुर्के, दकाल और मिजरी, इनके अलावे अबदुल्ला, लहर्ली, उसरानी, बदुनी, लोदी, पिरान, दहर और दोदी प्रभृति छोटे पठान सम्प्रदाय देखे जाते हैं।

शिवि जिलेमें सात शहर हैं, जैसे शिवि, कुर्क, काजक, गुलुशर, गुलामबोलाक, थाली और मल। इनके अलावे कहीं कहीं बड़े बड़े ग्राम देखे जाते हैं। इस जिलेमें पुस्तु, बेलुची और सिन्धी भाषा ही अधिक व्यवहृत होती है।

यहां स्थानीय लोगोंके व्यवहारके लिये मोटा वस्त्र तैयार किया जाता है। खुरासान और सिन्धु प्रदेशके साथ यहांका व्यापार चलता है। यहां खुरासानसे चावल, मूंग, दाल और बकरीके लोम आदिकी आमदनी होती है। सिन्धसे चीनी, गुड़, मिष्टान्न, मसाला, लवण एवं वस्त्रादि मंगाये जाते हैं। स्थानीय उत्पन्न द्रव्योंके मध्य पशम, घी, गेहूं, जौ और जुआर अधिक होता है।

शिविके प्राचीन इतिहासका अधिक पता नहीं चलता, किन्तु जनश्रुतिसे जाना जाता है, कि किसी समय शिवि एक विशाल राज्यका केन्द्र था। इसके उत्तरांशमें सुविख्यात स्यूलिस्तान नामक एक विशाल जनपद था। बाबरके आत्मजीवनीग्रंथमें शिवि नगरके नामका उल्लेख पाया जाता है। उसके पढ़नेसे मालूम होता है, कि बाबर सिन्धप्रदेशसे साथीसरवार गिरिसंकटके मध्य हो कर सटियाली प्रदेश गये थे। रास्तेमें उन्होंने रूति नामक एक नगर देखा था। उस नगरमें शिवि जिलेका दारोगा फाजिल गोकानतास नामक एक व्यक्ति २० लोगोंके साथ नगरकी रक्षाके लिये आये थे। उक्त दारोग

साइवेद अरगनके कर्मचारी थे। १५०५ ई०में बबर यहां उपस्थित हुए। साहबेद कन्धहारके शासनकर्ता आल्मनेगके पुत्र थे। १५२१ ई०में इन्होंने सारे सिन्ध प्रदेशको अपने अधिकारमें ला कर अरगन राज्यकी प्रतिष्ठा की थी। परिस्वामें विशेष विवरण देखो।

बाबर शिवि तक नहीं गये। यह स्थान उस समय भी अरगन राजाके अधीन था। इसके पहले शिव दुर्ग का उल्लेख किया गया है। कहा जाता है, कि बेलुची बीर मीर चाकरने शिवदुर्गकी प्रतिष्ठा की थी। मीर चाकर हुमायूंके समसामयिक व्यक्ति थे। हुमायूंके साथ इनकी कई लड़ाइयां भी हुई थीं। मुगलोंके सिन्ध प्रदेश विजय कर लेनेके बाद शिवि मुगल राज्यमें मिल गया एव अहमद शाहके अभ्युत्थानके पहले तक यह स्थान मुगलोंके ही अधीनमें था। दुर्रानी राज्यके नाश हो जानेके बाद शिवि अन्यान्य स्थानोंके साथ बरकजाई सर्दारके अधिकारमें चला गया। १८३९ ई० से ले कर १८४२ ई० तक शिवि अङ्गरेजोंके अधिकारमें रहा। उस समय शिविके पुरातन दुर्गका जीर्णसंस्कार और कमिसरियट डिपो रूपमें उसका व्यवहार किया गया। उस समय यहां अन्नका जो गोदाम तैयार किया गया था, आज भी वह देखा जाता। वृटिश गवर्मेंट प्रजाको उपजका एक तिहाई भाग कर स्वरूप वसूल करता था। एक समय जब खाजक लोगोंने इस प्रकारका कर देना अस्वीकार किया, तब वृटिश सरकारने एक सेना भेज कर शिवि शहरको विध्वस्त कर डाला। इसके बाद खाजकोंने अधीनता स्वीकार कर ली और वृटिश सरकार उपजका पांचवाँ भाग ही कर स्वरूप लेनेको राजी हुई। १८४३ ई०में कन्धारके सर्दार सदीक महम्मद खाँ तथा आदिल खाँने पुनः शिवि पर अधिकार कर लिया। १८७७ ई० तक शिवि उन लोगोंके अधीन रहा। बहुत दिनों तक लगातार लड़ाई दङ्गेके कारण शिवि नगरकी दुर्दशा सुधर न सकी इस पर भी बीच बीचमें दुर्दान्त मारी लोग शिवि नगरमें लूटपाट मचाते थे। गन्डामककी सन्धिके बाद यह अस्थायी जिला गवर्मेण्टके हाथमें चला आया। बेलुचिस्तान स्थित भारतीय गवर्नर जेनरलके एजेण्ट इस स्थानके शासनकर्त्ता नियुक्त हैं। मालउटियाराके पालिटिकल एजेण्टके ऊपर ही यहांके शासनका भार है। इनके अधीन तहसीलदार, मुन्सिफ तथा पुलिस नियुक्त हैं। वर्त्तमान कालमें यहां म्युनिसपल्टिी पर सिन्धु पिशिन रेलपथका एक स्टेशन स्थापित हुआ है।

शिविका (सं० स्त्री०) शिव करोतीति शिव णिच, ततो ण्वुल् टापि अत इत्वं। १ यानविशेष, पालकी। पर्याय— याप्ययान, शिवारथ।

शिविकादान महादानके अन्तर्गत है। यह दान करनेसे उसी समय नरकसे मुक्ति होती है। प्रेतके उद्देशसे यदि शिविका दान की जाय, तो नरककी दशा नहीं भरनी पड़ती। इस दानका विषय अग्निपुराणमें इस प्रकार लिखा है—

शिविका दान महाफलजनक है। यह दान करनेसे नरकका भय नहीं रहता। अग्रहायण मासके शुक्लपक्षकी एकादशी तिथिमें, माघ, फाल्गुन या वैशाख मासमें और शरत्कालमें कारसके ऊपर अवस्थित नारायणकी शुक्ला द्वादशी तिथिमें पूजा करके शिविकादान करना होता है। जो यह दान करते हैं वे सभी पापोंसे मुक्त होते तथा इस लोकमें नाना प्रकारका ऐश्वर्य भोग कर अन्तमें विष्णुलोकको जाते हैं। (अग्निपुराण शिविकादानाध्याय)

२ खाद्यद्रव्यविशेष। प्रस्तुतप्रणाली—भूसी रहित गेहूंके चूर्णको दूधमें मर्दन करे। पीछे यह तण्डुलयोग्य होनेसे पत्थरके ऊपर कूटे। बाहरमें उसे समान कराके सुखा ले। दूध या जलमें चीनीके साथ इसका पाक करनेसे शिविका प्रस्तुत होती है। गुण—तृप्तिकर, बलप्रद गुरु, ग्राहक, रुचिकर, अग्निसन्धानकारक, पित्त और वायुनाशक। (वैद्यकनि०)

शिविपिष्ट (सं० पु०) महादेव।

शिविर (सं० क्ली०) शेरत राजबलान्यत्र शाङ् इरच् बाहुलकात् किरच्। १ निवेश डेरा, खेमा। २ किला, कोट। ३ सैन्यनिवास पड़ाव छावनी।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके श्रीकृष्णजन्मखण्ड १०२ अध्याय में लिखा है, कि शिविर परिखायुक्त तथा उच्च प्राकार वेष्टित और शिविरमें १२ द्वार तथा सामुखमें सिंहद्वार होना चाहिये। इन सब द्वारोंमें चित्रविचित्र कपाट

रहेगा। इसमें निविड़ वृक्ष नहीं रहेगा तथा ब्राह्मण और सुलक्षण चन्द्रवेध होगा। ४ चरकके अनुसार एक प्रकार तृणधान्य।

शिविगिरि (सं० पु०) एक पर्वतका नाम।

शिवीरथ (सं० पु०) याप्ययान, पालकी।

शिवेतर (सं० लि०) शिवादितरः। शिव भिन्न, शुभविना।

शिवेनक—शास्त्रसिद्धान्तलेशसंग्रहसारके रचयिता।

शिवेन्द्र सरस्वती—वेदान्तनामरत्नसहस्रव्याख्यान या स्वरूपानुमानके प्रणेता। ये अभिनव नारायणेन्द्र सरस्वतीके शिष्य थे।

शिवेश (सं० पु०) शृगाल, सियार, गीदड़।

शिवेष्ट (स० पु०) शिवस्य इष्टः। १ बकवृक्ष। २ श्रीफल, वेल। (लि०) ३ शिवका प्रिय।

शिवेष्टा (स० स्त्री०) दूर्वा, दूब।

शिवोद्भेद (सं० पु०) महाभारतके अनुसार एक प्राचीन तीर्थ। इस तीर्थमें स्नान करनेसे इहलोकमें सुख और अन्तमें स्वर्गमें गति होती है। (भारत वनप०)

शिवोपनिषद् (सं० स्त्री०) एक उपनिषद्का नाम।

शिवोपपुराण—एक उपपुराण। देवीभागवतपुराणमें इसका उल्लेख है।

शिशन (सं० पु०) १ सेशन देखो। २ शिश्न देखो।

शिशय (सं० लि०) अतिशय दानशील, बड़ा दानी।

शिशयिषा (सं० स्त्री०) शयितुमिच्छा शी-सन् अ टाप्। सोनेकी इच्छा।

शिशयिषु (सं० लि०) शयितुमिच्छुः, शी-सन, शिशयिष उ। सोनेकी इच्छा करनेवाला।

शिशिर (सं० पु० क्ली० शशति गच्छति वृक्षादिशोभा यस्मात् शश-(अजिरशिशिरशिथिलेति। उण् १।५४) इति किरच् प्रत्ययेन साधुः। १ ऋतुविशेष, शिशिर ऋतु। पर्याय—कम्पन, शीत, हिमकूट, कोटन। किसी किसी पुस्तकमें कोटनकी जगह 'कोडव' ऐसा पाठ देखनेमें आता है। माघ और फाल्गुन इन दोनों महीनोंको शिशिर ऋतु कहते हैं। इस ऋतुका गुण—शीतल, अतिशय रूक्ष, वायुवर्द्धक और अग्निवृद्धिकारक। इस समय स्निग्ध और शीतल जलादिके सेवनसे श्लेष्माका सञ्चय होता है। इस समय हेमन्तकालसे भी अधिक जाड़ा पड़ता है और आदान कालके लिये स्वभावतः शरीरमें रुक्षता उत्पन्न होती है। अतएव इस समय हेमन्तकालकी तरह इन सब विधियोंका पालन करना होता है। यथा—इस समय अर्थात् एक प्रहरके मध्य भोजन, अम्लद्रव्य, मधुरद्रव्य, लवणरसयुक्त द्रव्य, तैलादि अभ्यङ्ग, रौद्रसेवन, व्यायाम, गोधूम, इक्षुविकृति, शालितण्डुल, माषकलाय, मांस, पिष्टान्न, नये चावलका भात, तिल, मृगनाभि, गुग्गुल, कुंकुम, अगुरु, शौचादि क्रियामें उष्ण जल, स्निग्ध द्रव्य, स्त्रीसंसर्ग, गुरु और उष्ण वस्त्र, इनका सेवन और व्यवहार करना कर्त्तव्य है। इससे सभी दोष प्रशमित होते हैं। इस विधिका पालन करनेसे ऋतुजन्य व्याधि होती। (भावप्रकाश)

कविकल्पलताके मतसे इस ऋतुमें वर्णनीय विषय—करीष धूम, कुन्द, पद्मनाश, शिशिरोत्कर्ष। कोष्ठीप्रदीपके मतसे इस ऋतुमें जन्म होनेसे मिष्टान्नभोजी, मधुर स्वर, फलपुष्पादियुक्त, क्षुधाकातर, क्रोधी, सुखी और सुन्दर आकृतिवाला होता है।

२ जाड़ा, शीतकाल। ३ हिम। ४ विष्णु। ५ एक प्रकारका अस्त्र। ६ सूर्यका एक नाम। ७ लाल चन्दन। (लि०) ८ शीतल, ठंढा। इस अर्थमें इस शब्दका प्रयोग यौगिक शब्दोंके बनानेमें उनके आरम्भमें होता है।

शिशिरकर (सं० पु०) शिशिरः करः किरणो यस्य। चन्द्रमा जिसकी किरणें शीतल होती हैं।

शिशिरकिरण (सं० पु०) चन्द्रमा।

शिशिरगभस्ति (सं० पु०) चन्द्रमा।

शिशिरगु (सं० पु०) शिशिरः गावोऽस्य। चन्द्रमा।

शिशिरता (सं० स्त्री०) शिशिरस्य भावः तल् टाप्। शिशिरका भाव या धर्म, शैत्य।

शिशिरदीधिति (सं० पु०) शिशिरः दीधितिर्यस्य। चन्द्रमा।

शिशिरमयूख (सं० पु०) चन्द्रमा। (वृहत्सं० ४२।१३)

शिशिरांशु (सं० पु०) शिशिरः अंशुर्यस्य। चन्द्रमा।

शिशिराक्ष (सं० पु०) पुराणानुसार एक पर्वतका नाम। यह सुमेरुके पश्चिम ओर बतलाया गया है। (मार्कण्डेयपु० ५५।९)

शिशिरात्यय (सं० पु०) शिशिरस्य अत्ययः। शिशिरापगम, शिशिरविगम।

शिशु (स० पु०) शवनाति शो (शो कितृसन्वच। उण् १।२१) इति उ। १ बालक, छोटा लड़का। पर्याय—पोत, पाक, अर्भक, डिम्भ, पृथुक शावक, शाव, अम, शिशुक, पोतक, मिथक, गर्भ। (जटाधर) किसीके मतसे जन्मकालसे अन्नप्राशनके पहले तक शिशु कहलाता है और उसके अभ्युत्थानमें शुद्धिलाभ होता है।

ब्रह्मपुराण और मनुरवचनमें देखा जाता है, कि जन्मसे आठ वर्ष तकके बालकको शिशु कहते हैं इस समय उसके भक्ष्याभक्ष्य, वाच्यावाच्य आदि कुछ भी दोषावह नहीं है। चार वर्षके बाद आठ वर्ष तक शिशुओंके बदले में जो कोई व्रत उनके माता पिता आदि गुरुजन अनुष्ठान कर सकते हैं।

मनुमें लिखा है, कि जातशिशुको चार महीनेमें सूतिकागृहसे सूर्य दिखानेके लिये बाहर निकालना होता है। जन्मके बाद चार महीने तक शिशुको सूतिकागृहमें रखना होता है। शिशुका जब प्रथम विद्यारम्भ हो, तो गुरु पूरब मुंह बैठे और शिशुको पश्चिम ओर बैठा कर उसे विद्यारम्भ करावे।

महानिर्वाणतन्त्रमें लिखा है, कि शिशुपुत्र परित्याग कर प्रव्रज्या अवलम्बन नहीं करना चाहिए। २ पशुओं आदिका बच्चा। ३ कुमार, कार्त्तिकेय। (भारत ३।२२३।१४) ४ जातकसारक रचयिता। ये घटेशक पुत्र थे।

शिशुक (स० पु०) शिशोरिव प्रतिकृत शिशु इवार्थे कन्। १ शिशुमार या सूंस नामक जलजन्तु।

शब्दरत्नावलीमें लिखा है, कि शिशुमारकी आकृति जैसी मछलीको शिशुक कहते हैं। पर्याय—उलूपी, सुलुपी, चुलुकी और शिशुक। कोई कोई उत्पल मत्स्यको इसका पर्याय बताते हैं।

२ शिशु, बालक बच्चा। ३ एक प्रकारका वृक्ष। ४ सुश्रुतके अनुसार एक प्रकारका सांप।

शिशुक—आन्ध्रभृत्यराजवंशके प्रतिष्ठाता।

शिशुकाल (स० पु०) बाल्यकाल बाल्यसमय बचपन।

शिशुकृच्छ्र (स० क्ली०) एक प्रकारका चान्द्रायणव्रत। इसे शिशुचान्द्रायण या लघुचान्द्रायण भी कहते हैं।

शिशुक्रन्द (स० पु०) शिशुओंका क्रन्दन, बच्चोंका रोना।

शिशुगन्धा (स० स्त्री०) शिशोर्गन्धो यत्र। मल्लिका मोतिया।

शिशुचान्द्रायण (स० क्ली०) शिशुरिव चान्द्रायण। लघु चान्द्रायण। इसमें कठोरता अल्प है, इसीसे इसका नाम शिशुचान्द्रायण है। ब्राह्मणको चाहिये, कि वे सयतचित्तसे प्रातःकाल चार ग्रास और सायंकाल चार ग्रास भोजन करें। चन्द्रमाकी ह्रासवृद्धि न करके उक्त नियमसे आहार करनेसे शिशुचान्द्रायण होता है।

शिशुता (स० स्त्री०) शिशुका भाव या धर्म, शिशुत्व, बचपन।

शिशुत्व (स० क्ली०) शिशोर्भाव त्व। १ शिशुका भाव या धर्म, शिशुता। २ शैशव।

शिशुदेश्य (स० त्रि०) शिशुसदृश।

शिशुनन्दि (स० पु०) एक राजाका नाम।

शिशुनाग (स० पु०) १ एक राक्षसका नाम। २ भागवतके अनुसार एक राजाका नाम। इनके पुत्र काकवर्ण और पौत्र क्षेमधर्मा थे। (भागवत १२।१।४) ३ शैशुनाग देखो।

शिशुनामन् (स० पु०) उष्ट्र ऊंट।

शिशुपाल (स० पु०) राजभेद, चेदिदेशके राजा। पर्याय—दमघोषसुत, चैद्य चेदिराट्। (जटाधर) कृष्ण द्वारा इनका नाश हुआ था। महाभारतमें इनकी उत्पत्ति प्रभृतिका विवरण इस प्रकार लिखा है—शिशुपालके पिताका नाम दमघोष था। ये श्रीकृष्णके फुफेरे भाई थे। जिस समय इनका जन्म हुआ उस समय इनके तीन नेत्र और चार भुजाएं थीं। ये जन्म लेते ही गीदड़की तरह चीत्कार करने लगे। इससे इनके माता पिता, बन्धु बान्धव सभी अत्यन्त डर गये और उन लोगोंने इन्हें परित्याग करनेका दृढ़ सङ्कल्प कर लिया। उसी समय आकाशवाणी हुई, 'राजा! तुम्हारा यह पुत्र अत्यन्त बलवान् और वीरोंका सर्दार बनेगा। अतएव इस लड़केसे तुम्हारे डरनेकी कोई जरूरत नहीं, तुम निश्चिन्तचित्तसे इसका पालन करो। तुम्हारे पुत्रसे इसकी मृत्यु न होगी तथा इसका मृत्युकाल भी इस समय उपस्थित नहीं हुआ है। यह जिसके हाथसे मारा जायगा वह उत्पन्न हो चुका है। इस शिशुका पालन करो।' ऐसी दैववाणी हुई थी; इसलिये इनका नाम शिशुपाल पड़ा।

शिशुपालकी माताने ऐसी दैववाणी सुन तथा पुत्र-स्नेहके वशीभूत हो उस अदृश्य आत्माको लक्ष्य करके कहा—'जिनके मुखसे ऐसी दैववाणी हुई है, उनके चरणोंमें मेरा कोटि कोटि प्रणाम है। मेरे पुत्रका मारनेवाला कौन है, दयाकी राह उसका नाम बता कर मुझे कृतार्थ करें।" इस पर फिर इस तरह दैववाणी हुई, 'जिसकी गोदमें जाते ही इसकी दो भुजाएं आपसे आप कट कर गिर जायगी तथा जिसे देखते ही इसके ललाटकी तीसरी आँख विलुप्त हो जायगी, उसीके द्वारा ही यह मारा जायेगा।'

सारे संसारके राजा दमघोषके त्रिलोचन और चतुर्भुजपुत्र पैदा होनेकी बात सुन कर उसे देखने आये। चेदिराजने भी समागत राजाओंको स्वागत करनेके बाद प्रत्येककी गोदमें अपने लड़केको समर्पण किया। इस तरह क्रमसे सहस्रों राजाओंकी गोदमें जाने पर भी शिशुपालके दोनों हाथ कट कर नहीं गिरे और न उसके ललाटकी तीसरी आँख ही विलुप्त हुई।

द्वारकामें जब बलराम और जनार्दनने यह वृत्तान्त सुना, तब अपनी फूफीसे मिलनेके लिये दोनों भाई चेदिनगर पहुंचे। प्रेमसे गद्गद हो कर राजमहिषीके श्रीकृष्णकी गोदमें रखते ही शिशुपालकी दोनों अतिरिक्त भुजाएं आप ही आप कट कर गिर गईं और ललाटस्थ नेत्र भी विलुप्त हो गया, यह देख कर रानी बहुत डर गईं और रो कर बोलीं "कृष्ण! मैं डरके मारे विह्वल हो रही हूं। मुझे एक वरदान दो, क्योंकि तुम आर्त्तोंकी आशा और भयभीतोंके अभयप्रद हो।"

अपनी फूफीकी ऐसी कातरवाणी सुन कर श्रीकृष्णने उन्हें धैर्य देते हुए कहा—देवि! तुम डर मत करो। मुझसे डरनेका कोई कारण नहीं है। मुझे क्या करना होगा और मैं तुम्हें कौन-सा वरदान दूंगा आज्ञा दो, वह साध्य वा असाध्य जो कुछ भी हो, मैं अवश्य तुम्हारी आज्ञाका पालन करूंगा। कृष्णकी बात सुन कर राजमहिषीने कहा, "मेरे लिये तुम शिशुपालके सभी अपराध क्षमा करोगे। मेरी यही एकमात्र प्रार्थना है।" कृष्णने कहा 'आपके पुत्रके सौ अपराध मैं क्षमा करूंगा। आप किसी प्रकारकी चिंता न करें।'

क्रमसे शिशुपालने युवावस्थामें पाँव रखा और कृष्णका घोर विरोधी हो उठा। वह कृष्णके साथ नाना प्रकारका अन्याय आचरण करने लगा, किन्तु अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार श्रीकृष्णने उसकी कोई बुराई न की।

राजा युधिष्ठिरने राजसूययज्ञ समाप्त करके सभीः उपस्थित राजाओंके सामने भीष्मसे पूछा, कि यज्ञका अर्घ्य किसे प्रदान किया जाय। इस पर भीष्मने कहा 'संसारपूज्य भगवान् कृष्णको छोड़ कर और किसे अर्घ्य प्रदान करोगे? उन्हें ही अर्घ्य प्रदान करो।' जब युधिष्ठिरने अर्घ्य द्वारा श्रीकृष्णकी पूजा की, तब शिशुपाल उसका घोर प्रतिवाद करके भीष्म और श्रीकृष्णकी निन्दा करने लगा तथा समागत राजाओंको उत्तेजित करते हुए बोला—"श्रीकृष्णको अर्घ्य प्रदान कर हमलोगोंका भारी अपमान किया गया है। अतएव हम लोग परस्पर संगठित हो कर श्रीकृष्णके विरुद्ध अस्त्र धारण करें और उसका नाश करें।" क्रमसे एक एक कर शिशुपालके सौ अपराध पूर्ण हो जाने पर भगवान् कृष्णने उसे ललकारा और उसका सर काट डाला। उस समय आकाशसे सूर्यकी तरह एक तेज प्रकट हुआ और भगवान् कृष्णके शरीरमें विलीन हो गया। चेदिपति शिशुपालके मरते ही विना बादलकी वर्षा, वज्रपात और भूकम्प होना शुरू हो गया। पीछे युधिष्ठिरके आदेशानुसार उनके भाइयोंने शिशुपालका अग्निसंस्कार किया। (भारत वनप० ३६ अ० से ४५ अ० तक)

श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके ७४वें अध्यायमें शिशुपालका वध-वृत्तान्त वर्णित है। २ माघ कविकृत काव्य, *शिशुपालवधकाव्य*। यह संस्कृत साहित्यका अत्युज्ज्वल रत्नस्वरूप है। कविने इसमें असाधारण कवित्व दिखलाया है। प्रवाद है, कि उपमामें कालिदास, अर्थगौरवमें भारवि और पदलालित्यमें नैषध सर्वश्रेष्ठ हैं, किन्तु शिशुपालवधमें उक्त तीनों ही गुण हैं।

"उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।
नैषधे पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः॥" (उद्भट)

शिशुपालक (सं० पु०) शिशुपाल स्वार्थे कन्। १ दमघोषका पुत्र शिशुपाल। २ केलिकदम्ब, नीम। (वि०)

शिशु पालयतीति पालि ण्वुल्। ३ बालकपालक, बच्चे की रक्षा करनेवाला।

शिशुपालवध (सं० पु०) महाकवि माघकृत एक प्राचीन काव्य। इसमें श्रीकृष्ण द्वारा शिशुपालके मारे जानेकी कथा वर्णित है।

शिशुपालहन् (सं० पु०) शिशुपालं हतवान् क्विप्। शिशुपालको मारनेवाले श्रीकृष्ण।

शिशुभाव (सं० पु०) शिशोर्भावः। १ शिशुत्व, शिशु का स्वभाव। २ तान्त्रिक भावविशेष।

शिशुमत् (सं० त्रि०) शिशु अस्त्यर्थे मतुप्। शिशु विशिष्ट बालकोपेत। "शिशुमती भिषग्धेनु" (शुक्ल यजु० २१।२३) 'शिशुमती बालकोपेता' (महीधर)

शिशुमार (सं० पु०) शिशून् मारयतीति मृ णिच्-अण्। १ जलजन्तुविशेष, सूंस। २ मगरकी आकृतिवाला, नक्षत्र मण्डल। ३ शिशुमारचक्र देखो। ४ कृष्ण। ५ विष्णु। श्रीमद्भागवतके ५म स्कन्धमें भगवान् विष्णुकी शिशु मारकरूपमें कल्पना करके अङ्गविशेषसे समुदय ज्योतिश्चक्र का सन्धान कल्पित हुआ है।

शिशुमारचक्र (सं० पु०) सब ग्रहों सहित सूर्य, सौर जगत्।

शिशुमारमुखा (सं० स्त्री०) कार्त्तिकेयकी एक मातृकाका नाम। (भारतशल्यप०)

शिशुरोमन् (सं० पु०) नागभेद। (भारत आदिप०)

शिशुवाहक (सं० पु०) शिशुं वहतीति वह ण्वुल्। १ वनछाग, जङ्गली बकरा। (त्रि०) २ बालकवोढा, शिशुवहनकारी।

शिशुवाहक (सं० पु०) शिशुर्वाहो यस्य, ततः कन्। वन छाग, जङ्गली बकरा।

शिश्नु (सं० पु०) शिशु बालक। (ऋक् १०।७८।६)

शिशीक—एक प्राचीन कवि।

शिश्न (सं० पु०) शशतीति शश बाहुलकात् नक् अत इत्वं च साधु। मेढ़, पुरुषका उपस्थेन्द्रिय, लिङ्ग।

शिश्नदेव (सं० पु०) अब्रह्मचर्य। उसका सेवक ऐसा नाम प्रतीत होता है। (ऋक् १०।९९।३)

शिश्विदान (सं० त्रि०) श्वेतितुमिच्छतीति श्वित-सन्, (शिश्विदान। उण् २।९१) इति सानच् सनो लुक्, ततः रस्य इकार। पापकर्मा, कृष्णकर्मा, दुराचार। (अमर) किसी किसीके मतसे शुक्लकर्माको भी शिश्विदान कहते हैं।

नाइवत् अर्थात् बहुत दिनोंसे सभी लोग निन्दा करते आये हैं, इसलिये शिश्विदान शब्दसे पापाचारीका बोध होता है। पुण्यकर्मा अर्थकी जगह श्वितधातुका अर्थ शुभ्र शुक्लकर्मविशिष्ट होता है।

शिष—१ वध, हिंसा। भ्वादि० परस्मै० सक० सेट्। लट् शेषति। २ विशेष करण। रुधादि० परस्मै० सक० अनिट्। लट् शिनष्टि, शिंष्टः, शिंषन्ति। शिष ३ असर्वोपयोग परिशेषीकरण अवशेष करण।

चुरादि० पक्षमें भ्वादि० परस्मै० सक० सेट्। लट् शेषयति। भ्वादि पक्षमें लट् शेषति। अव+शिष=अवशेष। उद्+शिष=उच्छिष्ट। निर्+शिष=निःशेष। परि+शिष=परिशेष विनाश। वि+शिष=विशेष।

शिषी (सं० पु०) शिखिन् देखो।

शिष्ट (सं० त्रि०) शास क्त (शास इदङ्हलोः। पा ६।४।३४) इति उपधाया इकारः (शासि-वसि घसीनाञ्च। ८।३।६०) इति सत्त्व ष। १ शान्त, धीर, सुबोध सुशील, सुबुद्धि। जिसके पाणि पाद नेत्र, वाक्य और अङ्ग चपल नहीं, वे ही शिष्ट हैं।

विशेष शब्दनिष्ठ अर्थात् जो श्रेष्ठ हैं, उन्हें शिष्ट कहते हैं। ये शिष्टगण मन्वन्तरकाल तक अवस्थित रहते हैं। मनु और सप्तर्षि आदि लोकविस्तार और धर्मार्थके लिये ये अवस्थान करते हैं। इन शिष्टों द्वारा धर्म पालित और युग युगमें स्थापित होता है। २ अवशिष्ट। (गीता ४।३०) ३ सौजित। ४ आज्ञापालक, आज्ञाकारी। ५ शिक्षित विशेष। ६ प्रधान विख्यात। ७ आज्ञप्त। ८ प्रसिद्ध, मशहूर। (पु०) ९ मन्त्री वजीर। १० सभ्य सभासद।

शिष्टता (सं० स्त्री०) १ शिष्ट होनेका भाव या धर्म। २ सभ्यता, सज्जनता, भद्रता। ३ श्रेष्ठत्व उत्तमता। ४ अधीनता।

शिष्टत्व (सं० क्ली०) शिष्टस्य भावः त्व। शिष्टता देखो।

शिष्टसभा (सं० स्त्री०) राज सभा, राजपरिषद्

शिष्टसमाज (सं॰ पु॰) सभ्य समाज, वह समाज जिसमें पढ़े लिखे तथा सदाचारी व्यक्ति हों, भले आदमियोंका समाज।

शिष्टाचार (सं॰ पु॰) शिष्टः आचारः, शिष्टानामाचारो वा। साधु व्यवहार, भले आदमियोंका सा बरताव। साधु जिस आचारका अवलम्बन करते हैं, उसे शिष्टाचार कहते हैं। मत्स्यपुराणमें इसका लक्षण इस प्रकार लिखा है—

वर्णाश्रमके विभागानुसार स्मृतिविहित जो धर्म है अर्थात् स्मृतिशास्त्रमें जो सब वर्णाश्रम धर्म कहे गये हैं, उन्हींको शिष्टाचार कहते हैं। शिष्टगण त्रयी वार्त्ता और दण्डनीति आदि द्वारा आचरण करते हैं, इस कारण भी यह शिष्टाचार कहलाता है। दान, सत्य, तपस्या, अलोभ, विद्या, इज्या, पूजा और दम ये आठ इसके लक्षण हैं। मनु और सप्तर्षि आदि मन्वन्तर कालमें इस आचारका अवलम्बन करते हैं। श्रुति और स्मृति शास्त्रमें वर्णाश्रम विहित जो धर्म कहा गया है, वही शिष्टाचार है तथा वह धर्म साधुसम्मत है।

शिष्टि (सं॰ स्त्री॰) शास्-क्तिन् (शास इदङ्हलोः। पा ६।४।३४) इति उपधाया इ। १ आज्ञा, अनुशासन, हुकुम। २ शासन, हुकूमत। ३ सुधार। ४ सहायता, मदद। ५ दण्ड, सजा।

शिश्ण (सं॰ पु॰) शिश्न देखो।

शिष्य (सं॰ त्रि॰) शिष्यतेऽस्माविति शास (एतिस्तु शास्वृदृजुषः क्यप्। पा ३।१।१०९) इति क्यप्। (शास इदङ्हलोः। पा ६।४।३४) इति इ (शासिवसीति। पा ८।३।६०) इति ष। १ उपदेश्य, वह जो शिक्षा या उपदेश देनेके योग्य हो। पर्याय—छात्र, अन्तेवासी, अन्तेसद् अन्तेषद्। दीक्षातत्त्व और तन्त्रसारमें शिष्यका लक्षण इस प्रकार कहा गया है—

जो वाक्य, मन, काय और धन द्वारा गुरुशुश्रूषामें रत रहते हैं, वैसे गुणविशिष्ट व्यक्ति ही शिष्य कहलाते हैं। मन, वाक्य, काय और कर्म द्वारा देवता और गुरुको जो शुश्रूषा करते हैं तथा सर्वदा शुद्धभाव और महोत्साह युक्त होते हैं वे भी शिष्यके लायक हैं। तन्त्रसारमें लिखा है, कि समादिगुणयुक्त, विनयी, विशुद्ध स्वभाव, श्रद्धावान, धैर्यशील, सर्वकर्मसमर्थ, सद्वंशजात, प्राज्ञ, सच्चरित्र और सत्याचारयुक्त ये सब गुणविशिष्ट व्यक्ति प्रकृत शिष्य पदवाच्य हैं, इसके विपरीत गुणविशिष्ट व्यक्तिको शिष्य नहीं बनाना चाहिये। पुण्यशील, धार्मिक, शुद्धान्तःकरण, गुरुभक्त, जितेन्द्रिय, दानशील और ईश्वराचनामें तत्पर, ऐसे गुणविशिष्ट व्यक्ति शिष्यके उपयुक्त हैं।

गुरु निषिद्धलक्षणविशिष्ट शिष्यको शिष्य न बनावें। निषिद्ध शिष्य ये सब हैं—जो व्यक्ति पापात्मा, क्रूरकर्मा, वञ्चक, कृपण, अतिदरिद्र, आचारभ्रष्ट, महाद्वेषी, निन्दक, मूर्ख, तीर्थद्वेषी, गुरुभक्तिहीन और मलिनांतःकरण इन सब निन्दित गुणविशिष्ट व्यक्तिको गुरु मंत्र न दें। इनके सिवा अलस, मलिनवेशी, अतिशय कातर, दांभिक, कृपण, दरिद्र, रोगी, सर्वदा क्रोधपरायण, विषयके प्रति अतिशय अनुरागी, लोभपरतंत्र, असूया और मात्सर्ययुक्त कर्कशभाषी, अन्यायसे उपार्जनसे अर्थशाली, परस्त्रीरत, पण्डितद्वेषी, पण्डिताभिमानी, आचारभ्रष्ट, सूचक, खल, बहुभोक्ता, क्रूरकर्मा, दुश्चरित्र और निंदित इन सब दोषयुक्त व्यक्तिको भी शिष्य नहीं बनाना चाहिये।

जिस व्यक्तिको शिष्य बनाना हो, उसे एक वर्ष तक गुरु अपने पास रख उसके स्वभावादिकी परीक्षा करें। क्योंकि शिष्य यदि पाप करे, तो वह पाप गुरु पर पड़ता है, अतएव गुरु बिना परीक्षा लिये मंत्र न दें। इसमें विशेषता यह है, कि गुणवान् ब्राह्मण एक वर्ष, क्षत्रिय दो वर्ष, वैश्य तीन वर्ष और शूद्र चार वर्ष गुरुके पास रह कर शिष्ययोग्यताको प्राप्त होते हैं।

शिष्यके जो सब गुण और दोष कहे गये हैं, गुरु उनकी अच्छी तरह परीक्षा करनेके बाद मंत्रप्रदान करें। शिष्य कायमनोवाक्यसे गुरुके अनुगामी होवें। कभी भी गुरुके अप्रियाचरण न करें।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें लिखा है, कि पुत्र और शिष्यमें कोई प्रभेद नहीं है, पुत्रकी तरह शिष्यके प्रति व्यवहार करना होता है।

किन्तु वामनपुराणके मतसे पुत्र और शिष्यमें थोड़ा प्रभेद है, पुन्नाम नरकसे त्राण करता है, इस कारण

पुत्र और अन्तमें पाप हरण करता है, इस कारण शिष्य कहलाता है।

"पुन्नाम्नो नरकात्त्राति पुत्रस्तनइ गीयते।
शेषपापहरः शिष्य इत्याय वैदिका श्रुतिः॥"

(वामनपु० ५७ अ०)

२ वह जो विद्या पढ़नेके उद्देश्यसे किसी गुरु या आचार्य आदिके पास रहता हो विद्यार्थी। ३ वह जिसने किसीसे शिक्षा प्राप्त की हो, शागिर्द। ४ वह जिसने किसी धार्मिक आचार्यसे दीक्षा या मन्त्र आदि ग्रहण किया हो, मुरीद, चेला। ५ वह जो हालमें श्रावक बना हो।

शिष्यता (स० स्त्री०) शिष्यस्य भाव तल् टाप्। शिष्यके होनेका भाव या धर्म, शिष्यत्व।

शिष्यत्व (स० क्ली०) शिष्य होनेका भाव या धर्म, शिष्यता।

शिष्या (स० स्त्री०) एक वृत्तका नाम। इसके प्रत्येक चरणमें सात गुरु अक्षर होते हैं। इसका दूसरा नाम शीर्षरूपक भी है।

शिस्त (फा० स्त्री०) १ मछली पकड़नेका कांटा। २ अंगूठा। ३ निशाना लक्ष्य। ४ दूरबीनकी तरहका एक प्रकारका यन्त्र। इससे जमीन नापनेके समय सीध आदि देखी जाती है।

शिस्तबाज (फा० पु०) १ निशाना लगानेवाला निशानबाज। २ शिस्त लगा कर मछली पकड़नेवाला।

शिह (स० पु०) शिह्लक देखो।

शिह्लक (स०पु०) शिह एव स्वार्थे कन्। गन्ध द्रव्यविशेष शिलारस। पर्याय—कपि, तैल, कृत्रिम, कपिल, चला, तुरुष्क, मुक्तिमुक्त पिण्डात, वर, पिण्डक, सिह, यावन। (अमर) गुण—रक्षोघ्न और ज्वर नाशक। (राजव०)

शिहन (स० पु०) एक प्रसिद्ध संस्कृत कवि।

शी—स्वप्न निद्रा। शीङ् शी धातु अदादि० आत्मने० अक सेट्। लट् शेते शयाते शेरते।

शी (सं० स्त्री०) शी क्विप। १ शान्ति। २ शयन, सोना। ३ भक्ति।

शीकर (स० क्ली०) शीकयतेऽनेनेति शीक बाहुलकादर। (उण् ३।१३१ उज्ज्वल) १ सरल द्रव। (पु०) २ तुषार, ओस, शबनम। ३ वायु, हवा। ४ गन्धा बिरोजा। ५ शीत जाड़ा। ६ जलकण, पानीकी बूंद। ७ धूप धूना। ८ वर्षाकी छोटी छोटी बूंद, फुहार।

शीकरिन् (स० त्रि०) शीकर अस्त्यर्थे इनि। शीकर युक्त, जलकणविशिष्ट।

शीघ्र (स० क्ली०) शिङ्घति व्याप्नोतीति शिघे रक् प्रत्ययेन साधुः। १ विलम्बाभाव जल्द, चटपट, तुरन्त। पर्याय—त्वरित, लघु क्षिप्र, अर, द्रुत, सत्वर, चपल, तूर्ण अविलम्बित, आशु, स्राक् झटिति, अञ्जसा, अह्नाय, सपदि, द्राक्, मङ्क्षु ये कुछ अव्यय शब्द शीघ्रवाचक हैं। (अमर) शीघ्रका वैदिक पर्याय—नु मक्षु, द्रवत्, ओष, जीरस, जूर्णि, शूर्त्तस, शूघनाश, शीभ, तृपु, तूर्णि अजिर भुरण्यु शु, आशु, तुतुजि तुतुजान, तुञ्जमानस, अज्ञा, साचिवित्, द्युगत, ताजत्, तरणि, वातरंहा।

२ लामज्जक या लामज नामका तृण। (राजनि०) (पु०) ३ कुरुवंशीय अग्निवर्णके पुत्रका नाम। ४ वायु, हवा। ५ ग्रहोंकी गतिविशेष। ग्रहोंकी स्फुट गणना करनेमें शीघ्र, मध्य, ये द्र आदि स्थिर करके पीछे स्फुट बाहर करना होता है। ६ चक्राङ्ग। (त्रि०) ७ शीघ्रविशिष्ट, जल्द चलनेवाला।

शीघ्रकारिन् (स० त्रि०) शीघ्र करोतीति कृ णिनि। १ क्षिप्रकारी, जल्दीसे काम करनेवाला। २ शीघ्र प्रमाद उत्पन्न करनेवाला। ३ तीव्र कड़ा।

(पु०) ४ सन्निपात ज्वरविशेष। इसका लक्षण—यह सन्निपात ज्वर वातश्लेष्मोल्वण है। इसमें मूर्च्छा, तन्द्रा, प्यास, श्वास और पार्श्वमें पीड़ा होती है। इस अवस्थामें यदि स्वेद न दिया जाय, तो शूल उत्पन्न होता है। यह सन्निपात ज्वर असाध्य है और इसीका नाम शीघ्रकारी है। इस ज्वरसे आक्रान्त होने पर रोगी एक दिनके भीतर मृत्युमुखमें पतित होता है। अतएव इस सन्निपात ज्वरको मृत्युका पूर्व लक्षण जानना चाहिये।

शीघ्रकृत् (स० त्रि०) शीघ्र करोतीति कृ क्विप् तुक् च। शीघ्रकारक जल्द करनेवाला।

शीघ्रकृत्य (सं० त्रि०) शीघ्रकरणीय, हठात् क्रिया जाने-योग्य।

शीघ्रकोपी (सं० त्रि०) १ जल्दी गुस्सा होनेवाला। २ चिड़चिड़ा।

शीघ्रग (सं० त्रि०) शीघ्रं गच्छतीति गम-ड। १ द्रुतगामी, शीघ्र चलनेवाला। (पु०) २ सूर्य। ३ वायु। ४ खरगोश। ५ अग्निवर्णके पुत्रका नाम।

शीघ्रगति (सं० स्त्री०) शीघ्रा गतिर्यस्य। १ द्रुतगति। (त्रि०) २ शीघ्रगतिविशिष्ट, जल्द चलनेवाला।

शीघ्रगत्व (सं० क्ली०) शीघ्रगस्य भावः त्व। शिघ्रगका भाव या धर्म्म, शीघ्रगति।

शीघ्रगामिन् (सं० त्रि०) शीघ्रं गच्छति नाम णिनि। आशु गमनशील, जल्दी या तेज चलनेवाला।

शीघ्रचेतन (सं० पु०) शीघ्रं चेततीति चित-ल्यु। १ कुक्कुर, कुत्ता। (त्रि०) २ द्रुत चेतनायुक्त, जो किसी बातको बहुत शीघ्र समझे, चतुर।

शीघ्रजन्मन् (सं० पु०) शीघ्रं जन्म यस्य। करञ्जविशेष, कण्ट करञ्ज।

शीघ्रजव (सं० त्रि०) शीघ्रः जवो यस्य। शीघ्रगतिविशिष्ट, द्रुतगति, शीघ्र चलनेवाला। (रामायण ४।४८।६)

शीघ्रजीर्ण (सं० क्ली०) तण्डुलीय शाक, चौलाईका साग।

शीघ्रता (सं० स्त्री०) शीघ्रस्य भावः तल् टाप्। शीघ्रका भाव या धर्म, जल्दी, तेजी, फुरती।

शीघ्रत्व (सं० क्ली०) शीघ्रका भाव या धर्म, जल्दी, तेजी, फुरती।

शीघ्रपतन (सं० पु०) स्त्री सहवासके समय वीर्यका शीघ्र स्खलित हो जाना, स्तम्भनशक्तिका अभाव। वैद्यकमें इसकी गणना एक प्रकारके नपुंसकमें की जाती है।

शीघ्रपाणि (सं० पु०) वायु।

शीघ्रपातिन् (सं० त्रि०) शीघ्रपतनयुक्त।

शीघ्रपुष्प (सं० पु०) शीघ्रं पुष्पं यस्य। अगस्त्य वृक्ष।

शीघ्रबाहुकायन (सं० पु०) एक ऋषिका नाम।

शीघ्रवेधिन् (सं० पु०) शीघ्रं विध्यतीति विध छिद्रीकरणे णिनि। क्षिप्र शरवेधकर्त्ता। जल्दीसे बाण चलानेवाला। पर्याय लघुहस्त।

शीघ्रबोध (सं० त्रि०) शीघ्रबोधविशिष्ट।

शीघ्रयान (सं० क्ली०) शीघ्रग, तेजीसे जानेवाला।

शीघ्रवह (सं० त्रि०) द्रुतवहनकारी, तेजीसे ढोनेवाला।

शीघ्रवहा (सं० स्त्री०) एक नदीका नाम।

शीघ्रवाहिन् (सं० त्रि०) शीघ्र-वह णिनि। शीघ्रवहनकारी।

शीघ्रसञ्चारिन् (सं० त्रि०) शीघ्रगामी, तेजीसे चलनेवाला।

शीघ्रा (सं० स्त्री०) १ एक नदीका नाम। २ उदुम्बरपर्णी, दन्ती वृक्ष।

शीघ्रास्त्र (सं० त्रि०) शीघ्र अस्त्रप्रयोगकुशल, शीघ्रतासे बाण चलानेवाला।

शीघ्रित (सं० त्रि०) त्वरान्वित।

शीघ्रिय (सं० पु०) १ विष्णु। २ महादेव। ३ बिल्लियोंका लड़ना।

शीघ्रीय (सं० पु०) १ द्रुतसम्बन्धी, शीघ्रका। २ शीघ्रभव।

शीघ्र्य (सं० त्रि०) शीघ्र-यत्। शीघ्रभव, जल्दी उत्पन्न होनेवाला। (शुक्लयजु० १६।३१)

शीत (सं० क्ली०) श्यै-गतौ क्त। (द्रवमूर्त्तिस्पर्शयोः श्यः। पा ६।१।२४) इति सम्प्रसारणं (हलः। पा ६।४।२) इति दीर्घः। १ हिमगुण, जाड़ा, सर्दी। २ जल, पानी। ३ त्वच्, चमड़ा। ४ तुषार, ओस। ५ बहुवारद्रुम, लिसोड़ा। ६ वेतसवृक्ष, बेंत। ७ अजनपर्णी, विजयसार। ८ पर्पट, पित्तपापड़ा। ९ निम्ब, नीम। १० कर्पूर, कपूर। ११ दालचीनी। १२ दुर्गन्धतृण। १४ बर्वरचन्दन। १४ हिमऋतु, जाड़ेका मोसिम। साधारणतः अगहन, पूस और माघ ये तीन मास शीत हैं। इन तीन मासोंमें खूब जाड़ा पड़ता है, इसीसे ये तीन मास शीत है। किसीके मतसे अगहन और पूस, किसीके मतसे पूस और माघ शीत ऋतु हैं। गुण—यह समय शीतल और स्निग्ध है। इस समय प्रायः सभी मधुर भावापन्न होते हैं तथा प्राणियोंका जठरानल प्रदीप्त रहता है। इस समय पित्तका उपशम तथा वायु और कफका सञ्चय होता है। अतएव इस समय इस प्रकार चलना चाहिये, जिससे वायु और कफ बढ़ न सके।

प्रातःकालमें अर्थात् एक पहरके भीतर भोजन, अम्लद्रव्य, मधुरद्रव्य लवण रसयुक्त द्रव्य, तैलादि अभ्यङ्ग,

रौद्रसेवन, व्यायाम, गेहूं, इख, शालितण्डुल, उड़द, मांस मिष्टान्न, नये चावलका भात तिल, मृगनाभि, गुग्गुल, केसर और शौचादिक्रियामें उष्ण जल, स्निग्ध द्रव्य, स्त्रीसंसर्ग, गुरु और उष्णवस्त्र, शीतकालमें इन सब द्रव्यों का व्यवहार करना उचित है।

हेमन्त शब्द देखो।

(त्रि०) १५ शीतल, ठंढा। १६ अलस, सुस्त। १७ मचधिता, कादा।

शीतक (सं० पु० शीत-स्वार्थे कन्। १ शीतकाल, जाड़ेका मौसिम। २ आलसी सुस्त, काहिल। ३ सन्तोषी पुरुष। ४ दीर्घसूत्री, वह जो हर काममें बहुत देर लगाता हो। ५ अश्मनपर्णी, वनसनई। ६ वृश्चिक, बिच्छू। ७ देशविशेष। (बृहत्संहिता १४।२७)

शीतकटिबन्ध (सं० पु०) पृथ्वीके उत्तर और दक्षिणके भूमिखण्डके वे कल्पित विभाग जो भूमध्यरेखासे $23\frac{1}{2}$ अंश दक्षिणके बाद माने गये हैं। इन विभागमें जाड़ा बहुत अधिक पड़ता है। ये दोनों विभाग उष्ण कटिबन्धके उत्तर और दक्षिणमें कर्कट और मकर रेखाके बाद पड़ते हैं।

शीतकण (सं० पु०) जीरक, जीरा।

शीतकर (सं० पु०) शीताः शीतलाः करो यस्य। १ ठंढी किरणोंवाला, चन्द्रमा। २ कर्पूर, कपूर। (त्रि०) ३ शीतल पाणियुक्त। ४ शीतल करनेवाला, ठंढा करनेवाला।

शीतकषाय (सं० पु०) वैद्यकमें किसी काष्ठौषध आदिका वह कषाय या रस जो उसे छकुने ठंढे पानीमें रात भर भिगो रखनेसे तैयार होता है।

शीतकाल (सं० पु०) शीतस्य कालः। १ हिम ऋतु, अगहन और पूसके महीने। २ हेमन्त और शिशिर, जाड़ेका मौसिम। पर्याय—शीतक हेमन्त, सहाः, हैमन।

"कूपोदकं वटच्छाया श्यामा स्त्री इष्टकागृहम्।
शीतकाले भवदुष्णं उष्णकाले च शीतलम्॥"
(चाणक्य शतक)

कूपका जल, बट वृक्षकी छाया, ईंटेका घर और श्यामास्त्री शीतकालमें उष्ण और ग्रीष्मकाल शीतल होती है।

शीतकिरण (सं० पु०) शीतः शीतलः किरणो यस्य। शीतकिरणोंवाला, चन्द्रमा।

शीतकुम्भ (सं० पु०) करवीर कनेर। (रत्नमाला)

शीतकुम्भिका (सं० स्त्री०) कुम्भीरिका नामकी लता, जल कुम्भी। (चरक)

शीतकुम्भी (सं० स्त्री०) जलजवृक्षविशेष, जलमें उत्पन्न होनेवाली एक प्रकारकी लता जिसे शीतली जटा भी कहते हैं।

शीतकुर्चिका (सं० स्त्री०) लघु वाट्यालक, बरियारा, बला।

शीतकृच्छ्र (सं० पु०) मिताक्षराके अनुसार एक प्रकारका व्रत। शीतल दूध आदि सेवन करके यह व्रत करना होता है, इसलिये इसका नाम शीतलकृच्छ्र पड़ा है। इस व्रतमें तीन दिन तक ठण्डा जल, तीन दिन तक ठण्ढा दूध और तीन दिन तक ठण्ढा घी पी कर और तीन दिन तक बिना कुछ खाये पीये रहना पड़ता है।

शीतकेशरिरस (सं० पु०) ज्वररोगाधिकारोक्त रसौषध विशेष। प्रस्तुत प्रणाली—विशुद्ध पारा, गन्धक, तूतिया, हिङ्गुल और विष इनका बराबर भाग। विषसे आठ गुना सोंठ और मिर्च इन्हें एक साथ अच्छी तरह चूर्ण कर असगन्ध, भांग, कालकासुन्दा और तुलसीके रसमें घोंट कर एक रत्तीकी गोली बनाये। इसका अनुपान तुलसी पत्तेका रस और मधु है। इसका सेवन करनेसे शीत ज्वर बहुत जल्द आराम होता है।

शीतक्रिया (सं० स्त्री०) शैत्य क्रिया, वह क्रिया जिससे शैत्यगुण हो।

शीतक्षार (सं० क्ली०) शीतः क्षारो यस्य। श्वेत टङ्कण, शुद्ध सोहागा।

शीतगन्ध (सं० क्ली०) शीतो गन्धो यस्य। श्वेतचन्दन सफेद चन्दन।

शीतगात्र (सं० पु०) एक प्रकारका सन्निपात ज्वर। इसमें रोगीका शरीर बहुत ठण्ढा रहता है। उसे श्वास, खांसी, हिचकी, मोह, कम्प, प्रलाप क्लम, बलह्रास, अंग दाह और कै होती है। उसके शरीरमें बहुत पीड़ा होती है। उसका स्वर बिलकुल बदल जाता है और वह बकता झकता है। विशेष विवरण ज्वर शब्दमें देखो।

शीतगु (सं० पु०) शीतो गौः किरणो यस्य। १ चंद्रमा। २ कर्पूर, कपूर।

शीतगुणकर्मन् (सं० क्ली०) शैत्यगुणप्रधान कर्म। गुण—ह्लादन, मूर्च्छा, तृष्णा, क्लेद और दाहनाशक।

शीतचम्पक (सं० पु०) १ दर्पण, शीशा; आइना। २ प्रदीप, दीया। (मेदिनी)

शीतच्छाय (सं० पु०) शीता शीतला छाया यस्य। १ वट वृक्ष, बरगद जिसकी छाया बहुत शीतल होती है। (त्रि०) २ शीतल छायाविशिष्ट, शीतल छायावाला।

शीतज्वर (सं० पु०) जाड़ा दे कर आनेवाला बुखार, जूड़ी, जड़ैया।

शीतता (सं० स्त्री०) शीतस्य भावः तल्-टाप्। शीतका भाव या धर्म, शीतत्व, ठण्डक।

शीतत्व (सं० क्ली०) शीतका भाव या धर्म, शीतता, ठंढापन।

शीतदन्त (सं० पु०) ठंढी वायु या ठंढे जलका दाँतोंसे लगना या एक प्रकारकी वेदना उत्पन्न करना जो वैद्यकके अनुसार दाँतोंका एक रोग माना गया है।

शीतदन्तिका (सं० स्त्री०) नागदन्ती, हाथीशुंडी।

शीतदीधिति (सं० पु०) शीतः दीधितिर्यस्य। चन्द्रमा जिसकी किरणें शीतल होती हैं।

शीतदीप्य (सं० क्ली०) श्वेत जीरक, सफेद जीरा।

शीतदूर्वा (सं० स्त्री०) श्वेत दूर्वा, सफेद दूब।

शीतद्युति (सं० पु०) शीता द्युतिर्यस्य। चन्द्रमा।

शीतद्रु (सं० पु०) क्षीर मोरट। मोरट देखो।

शीतपत्रा (सं० स्त्री०) श्वेत लज्जालुका, सफेद लजालू।

शीतपर्णी (सं० स्त्री०) शीतं पर्णं यस्याः ङीष्। अर्कपुष्पिका, अंधाहुली।

शीतपल्लवा (सं० स्त्री०) शीतं पल्लवं यस्याः। भूमिजम्बू, छोटा जामुन।

शीतपाकिनी (सं० स्त्री०) शीते पाकोऽस्या अस्तीति इनि। १ काकोली नामक अष्टवर्गीय ओषधि। २ महासमङ्गा, ककही।

शीतपाकी (सं० स्त्री०) शीते पाको यस्याः ङीप्। १ वाट्यालक, बला। २ काकोली। ३ गुञ्जा, चौंटली, घुंघची। ४ अतिबला, ककही।

शीतपित्त (सं० पु०) रोगविशेष, जुड़-पित्ती नामक रोग। इसका लक्षण—

शीतल वायुके सम्पर्कसे अर्थात् अधिक शीतल वायु सेवन करनेसे कफ और वायु बढ़ जाती है तथा वह पित्तके साथ मिल कर बहिःस्थ चर्म और आभ्यन्तरिक रसरक्तादिमें विचरण कर यह शीतपित्त रोग उत्पादन करती है। यह रोग होनेके पहले पिपासा, अरुचि, हृल्लास, शरीरकी अवसन्नता, गुरुत्व और चक्षु लाल हो जाता है।

लक्षण—जिस रोगमें चमड़ेके ऊपर बिरनी काटनेकी तरह वेदना और कण्डुयुक्त शोथ उत्पन्न होता है। तथा रोगी अत्यन्त वमन, ज्वर दाहसे पीड़ित होता है, इसका नाम शीतपित्त है। यह रोग वायुकी अधिकतासे होता है। इसकी चिकित्साका विषय भावप्रकाशमें इस प्रकार लिखा है—इस रोगमें परवलका पत्ता, नीम और अड़ूसके काढ़ेमें मदनफलचूर्ण डाल पान करा कर वमन कराना होता है। इसके बाद त्रिफलाके काढ़ेमें पिप्पलीचूर्ण और गुग्गुल डाल कर विरेचन करना होता है। ऐसा करनेसे यह रोग प्रशमित होता है। शीतपित्तरोगी सरसों तेलको शरीरमें मालिश और उष्ण जल द्वारा स्नान करे। त्रिफलाके काढ़ेमें मधु डाल सेवन करने या त्रिफला ३ कर्ष, गुग्गुल ५ कर्ष और पिप्पली १ कर्ष इन सब द्रव्यों द्वारा नवकार्षिकवटी प्रस्तुत करके सेवन करनेसे यह प्रशमित होता है। चीनी, मुलेठी, गुड़, आमलकी, यवानी, त्रिकटु और यवक्षार इन सबका चूर्ण समान भागमें ले कर उपयुक्त मात्रामें सेवन करनेसे यह रोग शीघ्र चंगा हो जाता है। अदरकके रसमें पुराना गुड़ डाल सेवन करनेसे भी उपकार होता है।

श्वेत सर्षप, हरिद्रा, इलायची और तिल इन सबका चूर्ण कर कटु तैलके साथ मिला उद्वर्त्तन करनेसे शीतपित्तरोग अच्छा हो जाता है।

इस रोगमें पहले महातिक्तघृत पान करावे। स्निग्ध और स्विन्न व्यक्तिको पहले वमन और विरेचनादि द्वारा शरीर शोधन करना आवश्यक है। इस रोगमें आर्द्रकखण्ड विशेष उपकारी है। (भावप्र० शीतपित्तरोगाधि०)

भैषज्यरत्नावलीमें इसकी चिकित्साका विषय इस

प्रकार लिखा है—दूध और हरताल एक साथ पीस कर प्रलेप देने अथवा यवक्षार और सैन्धव से युक्त तैल मर्दन करनेसे यह रोग प्रशमित होता है। मनियारीका मूल पान कर घृतके साथ सेवन करनेसे ७ दिनमें यह रोग आरोग्य होता है। इस रोगमें लक्षणानुसार कुष्ठोक्त या अम्लपित्तोक्त विधानानुसार चिकित्सा करना आवश्यक है। महातिक्तघृत पान भी इसमें विशेष उपकारी है। गायका घी २ तोला और मिर्च एक तोला सबेरे भक्षण करनेसे शीतपित्तरोग नष्ट होता है। हरिद्राखण्ड और वृहत् हरिद्राखण्ड भी इसमें विशेष उपकारी है।

पथ्यापथ्य—इस रोगमें तिक्त रसयुक्त द्रव्य, कच्ची हल्दी और नीमपत्र भोजन उपकारी है। वातरक्त रोगमें जो सब विधि और निषेध है, उसीके अनुसार चलना आवश्यक है। इसमें स्नान और उष्ण वस्त्रसे शरीर ढका रखना विशेष उपकारी है।

शीतपुष्प (स० क्ली०) शीतं पुष्पं यस्य। १ परिपेल तृण, केवटी मोथा। २ शैलेय, छरीला। (पु०) ३ शिरीष वृक्ष, सिरिस।

शीतपुष्पक (स० क्ली०) शीतं पुष्पमिव कन्। १ शैलेय छरीला। २ परिपेल तृण, केवटी मोथा। (पु०) शीत पुष्प यस्य कन्। ३ अर्क वृक्ष, आक, मदार।

शीतपुष्पा (स० स्त्री०) शीतं पुष्पं यस्याः। अतिबला, ककही।

शीतपुष्पी (स० स्त्री०) शीतपुष्प, अतिबला, ककही, कंघी।

शीतपूतना (स० स्त्री०) भावप्रकाशके अनुसार एक प्रकारका बालग्रह या बालरोग। इस रोगमें बालक कांपता और खांसता है, उसकी आंखें दुखती हैं और शरीर दुबला पड़ जाता है, शरीरसे दुर्गन्ध आती है और उसे वमन तथा अतिसार होता है।

बालरोग शब्द देखो।

शीतपूर्वज्वर (स० पु०) एक प्रकारका विषम ज्वर। इसमें त्वक् स्थित श्लेष्मा और अनिल पहले ज्वरकाल में ठढा लगता है पीछे जब यह ठढक शान्त होता है तब अतिशय दाह होने लगता है। जिस ज्वरमें ये सब लक्षण होते हैं उसे शीतपूर्वज्वर कहते हैं।

शीतप्रभ (स० पु०) शीता प्रभा यस्य। १ कर्पूर, कपूर। (त्रि०) २ शीतल प्रभायुक्त, ठढी किरणों वाला।

शीतप्रिय (स० पु०) शीतं प्रियो यस्य। पर्पट, पित्त पापड़ा।

शीतफल (स० पु०) शीतं फलं यस्य। १ उडुम्बर, गूलर। २ पीलु। ३ आमलक वृक्ष, अखरोटका पेड़। ४ आमलकी, आँवला। ५ बहुवार वृक्ष, लिसोड़ाका पेड़।

शीतबला (स० स्त्री०) महासमङ्गा, ककही।

शीतभञ्जीरस (स० पु०) रसौषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—हरिताल और शुक्तिभस्म समभाग, तूतिया उसका नवांश एक साथ घृतकुमारीके रसमें घोंटे। पीछे सूखी बनाई टीकी आगमें गजपुटमें पाक करे। जब यह ठढा हो जाय, तब चूर्ण करे। यह औषध चीनीके साथ आध रत्ती भर सेवन करनी पड़ती है। इसका सेवन करनेसे शीतज्वर नष्ट होता है। यह औषध पीनेसे किसी किसीको कै भी हो जाती है।

शीतभानु (स० पु०) शीतो भानुर्यस्य। चन्द्रमा।

शीतभीरु (स० त्रि०) शीताद् भीरुः। १ ठढकसे भय करनेवाला। (स्त्री०) २ मल्लिका, मोतिया। ३ निर्गुण्डी देखो।

शीतभीरुक (स० पु०) १ मल्लिका, जूही। २ एक प्रकार का शालिधान्य। ३ कृष्णनिर्गुण्डी, काली निसोथ। (त्रि०) ४ शीतसे भीत, जाड़े से डरा हुआ।

शीतभोजिन् (स० त्रि०) शीतं भुङ्क्ते भुज-णिनि। शीतभोग कारी, जाड़ा भुगतनेवाला।

शीतमञ्जरी (स० स्त्री०) शीता मञ्जरी यस्याः। शेफालिका, निर्गुण्डी।

शीतमय (स० त्रि०) शीत स्वरूपे मयट्। शीतस्वरूप।

शीतमयूख (स० पु०) शीतो मयूखो यस्य। १ चन्द्रमा। २ कर्पूर, कपूर।

शीतमयूखमालिन् (स० पु०) शीता मयूखमालाऽस्यास्तीति इनि। शीतमयूख, चन्द्रमा। (गहस० ९।२४)

शीतमरीचि (स० पु०) शीतो मरीचिर्यस्य। १ चन्द्रमा। २ कर्पूर, कपूर।

शीतमूलक (सं० क्ली०) शीतं मूलं यस्य बहुव्रीहौ कन्। १ उशीर, खस। (त्रि०) २ शीतल मूलयुक्त।

शीतमेह (सं० पु०) शुक्रमेह। (माधवनि०)

शीतमेहिन् (सं० पु०) प्रमेहरोगी, जिसे प्रमेह रोग हुआ हो। (चरक)

शीतरम्य (सं० पु०) शीते रम्यः। १ प्रदीप, दीया। (त्रि०) २ शीत रमणीय, शीत कालमें जो रमणीय होता हो।

शीतरश्मि (सं० पु०) शीतो रश्मिर्यस्य। १ चन्द्रमा। २ कर्पूर, कपूर।

शीतरस (सं० पु०) ईखके कच्चे रसको बनी हुई एक प्रकारकी मदिरा।

शीतरसिक (सं० पु०) शीतलरसकृत आसव। गुण—जीर्णकारक, विबन्धनाशक, स्वर और वर्णविशोधक, लेखन, शोफ, उदर और अर्शरोगमें हितकर।

शीतरुच् (सं० पु०) शीता रुक् यस्य। चन्द्रमा।

शीतरुह (सं० क्ली०) श्वेतरक्तपद्म, सफेद और लाल कमल। (वैद्यकनि०)

शीतल (सं० त्रि०) शीतोऽस्यास्तीति शीत (सिध्मादिभ्यश्च। पा ५।२।९८) लच्। १ शीतगुणविशिष्ट, ठंढा, सर्दी। पर्याय—सुषीम, शिशिर, जड़, तुषार, शीत, हिम। (अमर) २ प्रसन्न, तृप्त। ३ क्षोभ या उद्वेगरहित, जिसमें आवेशका अभाव हो। (क्ली०) शीतं लातीति ला-क। ४ कसीस। ५ शैलज, छरीला। ६ श्रीखण्डचन्दन, श्वेतचन्दन। ७ शैत्य, शीत, ठंढक। १० वीरणमूल, उशीर, खस। ११ पीतचन्दन। (पु०) १२ अशनपर्णी, वनसनई। १३ राल, धूना। १४ भीमसेनीकर्पूर। १५ शाल वृक्ष। १६ हिम, वर्फ। १७ मदर, कैराव। १८ पद्मकाठ। १९ चम्पकवृक्ष, चम्पा। २० बहुवार, लिसोड़ा। २१ अर्हद्विशेष, चौबीस तीर्थङ्करोंमें एक, दशवां तीर्थङ्कर। जैन शब्दमें विवरण देखो। २२ व्रतविशेष। मेषसंक्रान्ति अर्थात् महाविषुव संक्रान्तिमें यह व्रत करना होता है। २३ चन्द्रमा। (शब्दच०)

शीतलक (सं० क्ली०) शीतल-कन्। १ सितोत्पल। (पु०) २ मरुवक, मरुवा। (राजनि०) स्वार्थे कन्। ३ शीतल देखो।

शीतलचीनी (हिं० स्त्री०) कवावचीनी।

शीतलच्छद (सं० पु०) शीतलच्छदो यस्य। १ चम्पक, चंपा। २ शीतलपत्र।

शीतलजल (सं० क्ली०) शीतलं जलं यस्य। १ उत्पल, कमल। २ हिमजल, ठंढा पानी।

शीतलता (सं० स्त्री०) शीतलस्य भावः तल्-टाप्। १ शीतलत्व, ठंढापन, सर्दी। २ अमृतवल्ली। ३ जड़ता।

शीतलत्व (सं० क्ली०) शीतलस्य भावः त्व। शीतलता देखो।

शीतलप्रद (सं० पु०) शीतलं प्रददाति प्र-दा-क। १ चन्दन। (त्रि०) २ हिमदाता, शीतल देनेवाला।

शीतलवातक (सं० पु०) शीतलो वातो यस्य, कन्। १ अशनपर्णी, अपराजिता। (त्रि०) २ ठंढी हवावाला।

शीतलस्वामिन् (सं० पु०) जैनतीर्थङ्करभेद, अवसर्पिणीका दशवां अर्हत्। जैन शब्दमें विवरण देखो।

शीतला (सं० स्त्री०) शीतल स्त्रियां टाप्। १ देवीविशेष, शीतला देवी। यह वसन्त और विस्फोटकादिकी अधिष्ठात्री देवी मानी जाती हैं। वसन्तरोग होने पर उसके निवारणार्थ शीतला देवीकी पूजा करनी होती है।

कृत्यतत्त्वमें चैत्रकृत्यके मध्य लिखा है, कि चैत्रसंक्रान्तिमें थूहर पेड़ पर घण्टाकर्णकी पूजा करके विस्फोटक आदिके छूटनेकी इच्छासे शीतलादेवीकी यथाविधान पूजा करे। पूजा करके स्कंदपुराणोक्त शीतलाका स्तव करे। स्तव इस प्रकार है—

"नमामि शीतलां देवीं रासभस्थां दिगम्बरीं।
मार्जनीकलशोपेतां शूर्पालङ्कृतमस्तकां॥"

हिंदू और बौद्धोंका विश्वास है, कि शीतला देवीकी कृपा ही वसंत आदि दुष्ट रोगसे छुटकारा पानेका एकमात्र उपाय है। इस रोगका मन्त्र और औषध आदि कुछ भी नहीं है, केवल शीतला देवी ही त्राणकारिणी हैं। यह देवी श्वेतवर्णा रासभोपरिसंस्थिता हैं, हाथमें समार्जनी और कुम्भ तथा मस्तक पर सूर्प है। सोम और शुक्रवारको इस देवीकी पूजा होती है।

वैद्यकके मतसे मसूरिका रोगका नाम शीतला है। विशेष विवरण मसूरिका शब्दमें देखो।

२ कुटुम्बिनी लता। ३ आरामशीतला। ४ नील दूर्वा, नीली दूब। ५ शीतली वृक्ष। (सुश्रुतसू० ३६ अ०)

शीतलाषष्ठी (सं० स्त्री०) माघमासकी शुक्लाषष्ठी। सन्तानकी मंगल कामनासे द्वादश मासकी शुक्लाषष्ठी तिथिमें षष्ठी देवीकी पूजा करे। प्रति मासमें एक एक षष्ठीका नाम है। माघमासकी शुक्लाषष्ठीका नाम शीतलाषष्ठी है। स्त्रियों के सन्तान होने पर इस प्रकार षष्ठीव्रत करना अवश्य कर्त्तव्य है।

शीतली (सं० स्त्री०) १ जलमें होनेवाला एक पौधा, शीतली जटा, पातङ्गा। पर्याय—शीतकुम्भा, शुक्ल पुष्प, जलोद्भवा, कालानुसारिवा। (रत्नमाला) २ शीतवल्ली। ३ विस्फोटक, चेचक।

शीतवर (सं० पु०) सिरियारी, सुसना।

शीतवरा (सं० स्त्री०) ककड़ी कघा।

शीतवल्क (सं० पु०) शीतलो वल्को यस्य। उडुम्बर, गूलर।

शीतवल्लभ (सं० पु०) पर्पटका पित्तपापड़ा ? ाहतरा।

शीतवल्ली (सं० स्त्री०) नीलदूर्वा, नीली दूब।

शीतवहा (सं० स्त्री०) एक नदीका नाम।

शीतवातोष्णवेताली (सं० स्त्री०) भूतयोनिविशेष।

शीतवासा (सं० स्त्री०) यूथिका, जूही।

शीतवीर्य (सं० क्ली०) १ शीतगुणद्रव्य मधुर द्रव्य मात्र ही शीतवीर्य है। गुण—गुरु, कफ और वायु कारक, पित्तनाशक, वात और कफ अन्य रोगनाशक। (सुश्रुत सू०) २ पद्मकाष्ठ, पदुमकाठ। (पु०) ३ पाषाण भेद, पखानभेद। ४ पर्पटक, पित्तपापड़ा। ५ प्लक्षवृक्ष पाकड़ी पकड़ी। ६ नीलदूर्वा, नीली दूब। ७ वचा, वच। (त्रि०) ८ खानेमें जिसका प्रभाव ठंढा हो, जिसकी तासीर सर्द हो।

शीतवीर्यक (सं० पु०) शीत वीर्य यस्य कन्। १ प्लक्ष वृक्ष, पाकड़। (त्रि०) २ शीतवीर्ययुक्त।

शीतवृक्षा (सं० स्त्री०) सुवर्चला, हुरहुरका पेड़।

शीतशिव (सं० पु०) शीते शीतकाले शिवः शुभमस्मात्। १ मधुरिका, सौंफ। २ शवतुफलावृक्ष। (क्ली०) ३ सैन्धव लवण, सेंधा नमक। ४ शैलेय नामक गन्ध द्रव्य, शैलज। ५ कर्पूर, कपूर।

शीतशिवा (सं० स्त्री०) शीते शिवा मङ्गलप्रदा। १ मिश्रे याख्य क्षुप, सोआ। २ शमीवृक्ष सफेद कीकर।

शीतशूक (सं० पु०) शीते शूको यस्य। १ यव, जौ। (भावप्र०) (त्रि०) २ शीतल शूकयुक्त।

शीतशैल (सं० पु०) शीतप्रधान शैल। शीताद्रि, हिमालयपर्वत।

शीतसंवासा (सं० स्त्री०) शीतवासा, जूही।

शीतसंस्पर्श (सं० त्रि०) शीत संस्पर्शो यस्य। १ वायु। २ प्रबलस्पर्शयुक्त।

शीतसन्निपात (सं० पु०) एक प्रकारका सन्निपात जिसमें शरीर सुन्न और ठंढा हो जाता है, पक्षाघात, अर्द्धाङ्ग।

शीतसह (सं० पु०) शीत सहते इति सह अच्। १ पालू फल वृक्ष। (त्रि०) २ शीतसहनीय।

शीतसहा (सं० स्त्री०) शीतसह-टाप्। १ वासन्ती वृक्ष, नेवारी। २ नीलसिन्धुवारवृक्ष, नीली तिसिन्दा। ३ मल्लिकाभेद मोतिया, बेला। ४ जाती वृक्ष चमेली। ५ शेफालिका, निर्गुण्डी। ६ पीलू वृक्ष।

शीतहृद (सं० पु०) शीतलहृदयुक्त।

शीतांशु (सं० पु०) शीताः अंशवो यस्य। १ कर्पूर, कपूर। २ चन्द्रमा।

शीतांशुतैल (सं० क्ली०) शीतांशोः कर्पूरस्य तैल। कर्पूरतैल।

शीतांशुमत् (सं० पु०) शीतांशु मतुप्। शीतांशुविशिष्ट शीतकिरणयुक्त चन्द्रमा। (रामायण ३।६६।७५)

शीता (सं० स्त्री०) १ रामकी पत्नी। (शब्दरत्ना०) २ लाङ्गलपद्धति। ३ मद्यसामान्य। ४ मल्लिकावृक्ष। ५ अतिबला। ६ महासमङ्गा, ककही। ७ कुटुम्बिनी क्षुप। ८ नीलदूर्वा, नीली दूब। ९ शिल्पी तृण, शिल्पिका घास। १० दूबा, दूब। ११ आमलकी आंवला। १२ क्षीरणी, खिरनी। १३ तेजोवल्कल, तजवरका छाल। १४ शमीवृक्ष। १५ मेथिका, मेथी। १६ लाङ्गलिया। १७ विपलाङ्गलिया। (वैद्यकनि०)

शीताङ्ग (सं० पु०) १ शीत नामक सन्निपात। यह सन्निपात ज्वर होनेसे रोगीका गात्र शीतल श्वास, काम, हिक्का, मोह, कम्प, प्रलाप, क्लम, बलह्रास, अन्तर्दाह,

वमि, शरीरमें वेदना और ज्वर विकृत हो जाता है।
इस सन्निपात ज्वरमें सर्वांग शरीर शीतल, छर्दि, अतिसार, कम्प, क्षुधानाश, अङ्गमर्द, हिक्का, श्वास, श्रम तथा सर्वांग शिथिल ये सब लक्षण होते हैं। २ शीतल अङ्ग, ठंढा बदन। ज्वर शब्द देखो।

शीताङ्गी (सं० स्त्री०) १ शीतल अङ्गयुक्ता, वह स्त्री जिसका बदन ठंढा हो। २ हंसपदी लता।

शीतातपत्र (सं० क्ली०) शीतातपत्राणक। शीत और आतपनिवारक छत्र। (बृहत्सं० ७३।८)

शीताद (सं० पु०) शीतमादत्ते आ-दा-क। दाँतके मसूड़ोंका एक रोग। इसमें मसूड़े जगह जगह पर पक जाते हैं और उनमेंसे दुर्गन्धि निकलने लगती है।

शीताद्य (सं० पु०) एक प्रकारका विषमज्वर।

शीताद्रि (सं० पु०) शीतजनकोऽद्रिः। हिमालय पर्वत।

शीतान्त (सं० पु०) १ पर्वतविशेष। (विष्णुपु० २।२।२५) २ शीतावसान।

शीतावला (सं० पु०) महासमङ्गा, ककही।

शीताभ (सं० पु० क्ली०) १ कर्पूर, कपूर। २ चन्द्रमा।

शीताम्बु (सं० स्त्री०) १ दुग्धिका, दुद्धी नामकी घास। (क्ली०) २ शीतल जल, ठंढा पानी।

शीतारिरस (सं० पु०) रसौषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—पारा एक भाग, गन्धक एक भाग, सोहागा एक भाग, तांबा एक भाग, निस्तुष जयपाल दो भाग, सेंधा नमक एक भाग, मिर्च एक भाग, इमली छालकी राख एक भाग, चीनी या गुड़ एक भाग, इन्हें जंबीरी नीबूके रसमें एक दिन घोंट कर दो रत्तीकी गोली बनावे। इस औषधका सेवन करनेसे वातश्लेष्मज्वर और शीतज्वर आराम होता है।

शीतार्त्त (सं० त्रि०) शीतेन ऋतः 'ऋतस्य तृतीया समासे' इति सूत्रेण वृद्धिः। शीतालु, शीतसे पीड़ित।

शीताल (सं० पु०) हिन्ताल वृक्ष।

शीतालु (सं० त्रि०) शीतं न सहते इति (शीतोष्ण-तृप्रेभ्यस्तन्न सहते। पा ५।२।१२२) इति वार्त्ति-कोक्त्या आलुच्। शीतार्त्त, शीतसे पीड़ित।

शीताश्मन् (सं० पु०) शीतः शीतलोऽश्मा। १ चन्द्र-कान्तमणि। २ शीतल प्रस्तर।

शीतिकावत् (सं० त्रि०) शीतलयुक्त, शैत्यविशिष्ट।

शीतिमन् (सं० पु०) शीतस्य भावः (वर्णादृढादिभ्यः ष्यञ् च। पा ५।१।१२३) इति शीत-इमनिच्। शीतका भाव, शैत्य।

शीतीकरण (सं० क्ली०) शीत-कृ-ल्युट्, अभूततद्भावे च्वि। द्रव द्रव्यका विशेष रूपसे शीतल करनेका उपाय। सुश्रुतमें लिखा है, कि प्रवात देशमें स्थापन, उदक-क्षेपण, यष्टिका भ्रामण, व्यजन, वालुकाप्रक्षेपण और शिक्तावलम्बन, इन सब उपायोंसे द्रव्य शीतल होता है।

शीतीभाव (सं० पु०) शीत-भू-घञ्, अभूततद्भावे च्वि। १ मोक्ष, मुक्ति। (त्रिका०) २ शीतलत्व, शीत-लता। ३ मनोविकारोंके वेगका न रह जाना, शांति, शम।

शीतेतर (सं० त्रि०) शीतादितरः। उष्ण, गरम।

शीतेषु (सं० पु०) मन्त्रपूत शीतल वाण, वरुण वाण।

शीतोत्तम (सं० क्ली०) शीतेषु वस्तुषु मध्ये उत्तमं। जल।

शीतोद (सं० क्ली०) शीतं उदकं यस्य शब्दस्य उदा-देशः। मेरुके पश्चिममें अवस्थित सरोवरविशेष।

शीतोदक (सं० पु०) एक नरकका नाम।

शीतोपचार (सं० पु०) शीतल उपचार।

शीतोष्ण (सं० त्रि०) शीत और उष्ण।

शीतोष्मन (सं० क्ली०) साममेद।

शीत्कार (सं० पु०) शीदिति शब्दस्य कारः करणं। १ वर स्त्रियोंकी रतिकालध्वनि। २ शीत्कृति मात्र।

शीत्कारिन् (सं० त्रि०) शीत कृ णिनि, शीत्कारकारी, शीत्कार शब्द करनेवाला।

शीत्कृत (सं० क्ली०) शीदिति शब्दस्य कृतं करणं। शीत्कार।

शीत्कृतिन् (सं० त्रि०) शीत्कृत-अस्त्यर्थे इनि। शीत्कार-युक्त, शीत्कारकारी।

शीधु (सं० पु० क्ली०) शेतेऽनेनेति शी (शीङो धुक् लक् वलच वालनः। उण् ४।३८) इति धुक्। मद्यभेद, पकी हुई ईखके रससे बनी हुई मदिरा। शीधु दो प्रकारका होता है—ईखका रस सिद्ध कर जो शीधु प्रस्तुत किया जाता है उसे पक्वरस शीधु और कच्चे ईखके रसने

जो शीधु बनाया जाता है उसे शीतरस शीधु कहते हैं। गुण—पक्करस शीधु श्रेष्ठ गुणदायक, स्वर और वर्ण प्रसादक, अग्निवर्द्धक, बलकारक वायु और पित्तवर्द्धक, सद्य स्निग्धकारक, रुचिजनक तथा विबन्ध मेद शोथ अर्श, उदर और कफरोगनाशक। शीतरसशीधु पक्करस शीधुसे अल्प गुणदायक, विशेषत लेखन गुणयुक्त होता है। (भावप्र०)

शीधुगन्ध (स० पु०) शीधो मद्यविशेषस्य गन्धो यत्र। १ बकुल वृक्ष, मौलसिरी। २ मद्यगन्ध।

शीधुप (स० त्रि०) शीधु पातीति पा क। शीधुपान कर्त्ता, शराब पीनेवाला।

शीन (स० त्रि०) श्यै गतौ क्त (द्रवमूर्त्तिस्पर्शयोः श्यः। पा ६।१।२४) इति सम्प्रसारण (श्योऽस्पर्शे। पा ८।२।४७) इति न। १ घनीभूत, जमा हुआ। (पु०) २ मूर्ख। ३ अजगर। (मेदिनी)

शीपत्य (स० त्रि०) शीपाल सम्बन्धी।

शीपाल (स० पु०) शैवाल। (ऋक् १०।६८।५)

शीपुद्र (स० पु०) वृक्षविशेष।

शीफर (स० त्रि०) १ स्फीत। २ रम्य।

शीफालिका (स० स्त्री०) शेफालिका, निर्गुण्डी।

शीभ (स० पु०) शीघ्र। "प्रपति शीभ माशुमि" (ऋक् १।३७।१४) "शीभ शीघ्र" (सायण)

शीभय (स० पु०) १ शीकर। २ आत्मश्लाघी। (शुक्ल यजु० १६।३१) ३ जलप्रवाह।

शीभ्य (स० पु०) शाम्यते प्रशस्यते इति शीभ-ण्यत्। १ शिव महादेव। २ वृष, बैल। (त्रि०) ३ आत्म श्लाघिमय। ४ जलप्रवाहमय। ५ क्षिप्रमय।

शीमुल (स० पु०) शाल्मलिवृक्ष, सेमलका पेड़।

शीर (स० पु०) शेते इति (स्फायितञ्चीति। उण् २।१३) इति रक्। १ अजगर। २ नागरङ्गवृक्ष। (त्रि०) ३ नेत्र चुकाला।

शीर (फा० पु०) क्षीर, दूध।

शीरखिश्त (फा० पु०) हकीमोंमें एक रेचक औषध। कहते हैं, कि खुरासानमें पेड़ों और पत्थरों पर ओसकी बूंदोंकी तरह जमी हुई मिलती है।

शीरखोरा (फा० पु०) १ दूध पीता बच्चा। २ अनजान बालक।

शीरमाल (फा० स्त्री०) एक प्रकारकी खमीरी रोटी। इस पर पकाते समय दूधका छींटा दिया जाता है।

शीरा (फा० पु०) १ चीनी मिला हुआ पानी, शर्बत। २ चीनी या गुड़को पका कर शहदके समान गाढ़ा किया हुआ रस, चाशनी।

शीराज़ा (फा० पु०) १ वह बुना हुआ रङ्गीन या सफेद फीता जो किताबोंकी सिलाईकी छोर पर शोभा और मजबूतीके लिये लगाया जाता है। २ प्रबन्ध, इन्तजाम। ३ सिलसिला।

शीरि (स० स्त्री०) रक्तनाड़ी, शिरा।

शीरिका (स० स्त्री०) धाराग्नी नामक तृण।

शीरिन् (स० पु०) १ मुञ्जतृण। २ हरितदर्भ, कुश, कुशा। ३ लाङ्गली, कलिहारी।

शीरी (स० त्रि०) १ मीठा, मधुर। २ प्रिय, प्यारा।

शीरीनी (फा० स्त्री०) १ मिठास, मीठापन। २ खानेकी वस्तु जिसमें खूब चीनी या मीठा पड़ा हो, मिठाई। ३ बताशा, सिरनी।

शीर्ण (स० त्रि०) शॄ-क्त। १ कृश, दुबला, पतला। २ छितराया हुआ, टूटा फूटा हुआ, खाड खाड। ३ च्युत, गिरा हुआ। ४ मुरझाया हुआ, सूख कर सिकुड़ा हुआ। ५ जीर्ण, फटा पुराना। ६ चुपका हुआ। (क्ली०) ७ स्थौणेयक, थुनेर।

शीर्णत्व (स० क्ली०) शीर्णस्य भावः त्व। शीर्णका भाव या धर्म, कृशता।

शीर्णदल (स० पु०) १ निम्बवृक्ष, नीमका पेड़। (त्रि०) २ शीर्णदलविशिष्ट, जिसका दल सूख गया हो।

शीर्णपत्र (स० पु०) शीर्णपत्रमस्य। १ कर्णिकार वृक्ष, कनियारी। २ पट्टिकालोध्र, पठानी लोध। ३ निम्ब वृक्ष नीमका पेड़। (क्ली०) शीर्ण पत्र। ४ विशीर्ण पत्र, सूखा हुआ।

शीर्णपर्ण (स० पु०) शीर्णं पर्णमस्य। १ निम्बवृक्ष, नीमका पेड़। (क्ली०) २ विशीर्ण पत्र, सूखा पत्ता।

शीर्णपाद (स० पु०) शीर्णौ पादौ यस्य विमातृशापात् देवास्य तथात्वं। १ यमराज। पुराणोंमें कथा है, कि माताके शापसे यमराजके पैर क्षीण हो गये थे। (त्रि०) २ कृशपाद, जिसका पैर क्षीण हो।

शीर्णपुष्पिका (सं० स्त्री०) शीर्णं पुष्पं यस्याः शीर्णपुष्पी, ततः स्वार्थे कन्। १ मधुरिका, सौंफ। २ सोआ।

शीर्णपुष्पी (सं० स्त्री०) शीर्णपुष्पिका देखो।

शीर्णमाला (सं० स्त्री०) १ पृश्निपर्णी, पिठवन। २ विशीर्णमाला।

शीर्णरोमक (सं० पु०) ग्रन्थिपर्णभेद, एक प्रकारका गठिवन।

शीर्णवृन्त (सं० क्ली०) शीर्णं वृन्तं यस्य। वृहद्गोल तरबूज। पर्याय—सुप्रवास, सुगाश। (रत्नमाला) गुण—कफ, मेद, अग्नि, रुचि और शुक्रकारक, क्षार, मधुर, आनाह और प्लीहानाशक तथा लघुपाक।

शीर्णाङ्घ्रि (सं० पु०) शीर्णौ अङ्घ्री यस्य, पितामहशापाद्वेवास्य तथात्व। १ यमराज। (त्रि०) २ कृशपद, जिसका पैर शीर्ण हो।

शीर्त्ति (सं० स्त्री०) १ भङ्ग, चूर्ण। २ खण्डन, तोड़ने फोड़नेकी क्रिया।

शीर्य (सं० त्रि०) १ भंगुर, नाशवान, टूटने फूटने योग्य। (क्ली०) २ एक प्रकारका दूब या घास जिसका प्रयोजन यज्ञोंमें पड़ता था।

शीर्वि (सं० त्रि०) शृणातीति शॄ-क्विन्। (शॄ वृ स्तृ जागृभ्यः क्विन्। उण् ४।५४) १ अपकारक। २ हिंसक। ३ वर्बर, जंगली।

शीर्ष (सं० क्ली०) १ मस्तक, माथा। २ शिर, कपाल, मुण्ड। ३ अग्रभाग, सामना। ४ शिरा, चोटी। ५ कृष्णागुरु, काला अगर। ६ एक पर्वतका नाम। ७ एक प्रकारकी घास।

शीर्षक (सं० क्ली०) शीर्षे कं सुखमस्मात्। १ मुण्ड, शिर। २ मस्तक, माथा। ३ शिरा, चोटी। ४ शिरमें लपेटनेकी माला। ५ शिरोरक्षण सन्नाह, टोपी। पर्याय—शीर्षण्य शिरस्त्र। ६ नारिकेल वृक्ष, नारियल। ७ अगर ८ व्यवहार या अभियोगका निर्णय, फैसला। ९ वह शब्द या वाक्य जो विषयके परिचयके लिये किसी लेख या प्रबन्धके ऊपर लिखा जाय। १० शीष धातु, सीसा। (पु०) शीर्षमिव इवार्थे कन्। ११ राहुग्रह।

शीर्षकपाल (सं० क्ली०) करोटिका, खोपड़ी।

शीर्षक्ति (सं० स्त्री०) शिरोरोग, शिरका पीड़ा।

शीर्षक्तिमत् (सं० त्रि०) शीर्षक्ति अस्त्यर्थे मतुप्। शिरोरोगविशिष्ट, जिसका माथा दुखाता हो।

शीर्षघातिन् (सं० त्रि०) शीर्षं हन्तीति हन (कुमारशीर्षयो णिनि। पा ३।२।५१) इति णिनि। मस्तकच्छेदकारी, शिर काटनेवाला।

शीर्षच्छेद (सं० पु०) शीर्षस्य छेदः मस्तकच्छेद, शिर काटना।

शीर्षच्छेदिक (सं० त्रि०) शीर्षच्छेदमर्हतीति शीर्षच्छेद-ठक्। वधार्ह, मारने लायक।

शीर्षच्छेद्य (सं० त्रि०) शीर्षच्छेदं नित्यमर्हतीति (शीर्षच्छेदात् यच। पा ५।१।६५) इति यत्। मस्तकच्छेदनोपयुक्त, शिर काटनेके लायक।

शिर्षणी (सं० पु०) शीर्षदेश, शीर्षण्य।

शीर्षण्य (सं० क्ली०) शिरसे हितं शिरस् (शरीरावयवात् यत्। पा ५।१।६) इति यत् (ये च तद्धिते च। पा ६।१।६१) इति शिरसः शीर्षन्नादेशः। १ शीर्षक, शिरस्त्र, टोप। २ सुलझे हुए साफ बाल। ३ विशद कच, चारपाईका सिरहाना। पर्याय—शिरस्य। (त्रि०) ३ शिरोदेशमें निबद्ध। (ऋक् २।१६।२८ सायण) ४ श्रेष्ठ।

शीर्षण्वत् (सं० त्रि०) मस्तकयुक्त, मस्तकविशिष्ट।

शीर्षतस् (सं० अव्य०) शीर्ष-तसिल्। मस्तकसे या मस्तक पर।

शीर्षन् (सं० क्ली०) शिरः, मस्तक।

शीर्षपट्टक (सं० पु०) मस्तकबन्धनार्थ पट्टि, माथा बाँधनेकी पट्टी।

शीर्षपट्टक (सं० पु०) १ शिरमें लपटनेका कपड़ा। २ पगड़ी, मुरेठा, साफा।

शीर्षपर्णी (सं० स्त्री०) शीर्षपर्णा देखो।

शीर्षबन्धना (सं० स्त्री०) शीर्षपट्टक, माथा बाँधनेकी पट्टी।

शीर्षबिन्दु (सं० पु०) १ शिरके ऊपर और ऊंचाईमें सबसे ऊपरका स्थान। २ मोतिया बिंद।

शीर्षभार (सं० पु०) शिरका बोझ, माथेका मोट।

शीर्षभारिक (सं० त्रि०) शिर पर भार ढोएवाला।

शीर्षभिद्य (सं० क्ली०) शीर्षभेदनीय, मस्तक काटनेके योग्य।

शार्षमालय (सं० पु०) गोत्रप्रवर्त्तक एक ऋषिका नाम।

शीर्षरक्ष (सं० क्ली०) शीर्षं मस्तकं रक्षतीति रक्ष अण्। शिरस्त्राण, टोप।

शीर्षरक्षण (सं० क्ली०) शिरस्त्राण, पगड़ी, साफा।

शीर्षरोगिन् (सं० त्रि०) शिरोरोगी, जिसका माथा दुखता हो।

शीर्षवत् (सं० त्रि०) शीर्षन् अस्त्यर्थे मतुप्, मस्य व, नकारस्य लोपः। मस्तकविशिष्ट, शिरवाला।

शीर्षव्रत (सं० पु०) अभियोग चलानेवालेका उस दशामें दण्ड सहनेके लिये तैयार होना जब कि अभियुक्त दिव्य परीक्षा दे कर अपनेको निर्दोष प्रमाणित कर दिया हो, शिरोपस्थायी।

शीर्षविरेचन (सं० क्ली०) शिरोविरेचन, नस्यद्रव्य।

शीर्षव्यथा (सं० स्त्री०) शिरोव्यथा माथा दुखना।

शीर्षशोक (सं० पु०) शिर पीड़ा, शिरमें दर्द होना।

शीर्षान्त (सं० त्रि०) मस्तकके समीप।

शीर्षामय (सं० पु०) शीर्षस्य आमयः। शिर पोड़ा, शिरमें दर्द होना।

शीर्षायन (सं० पु०) एक ऋषिका नाम।

शीर्षभार (सं० पु०) शीर्षभार, मस्तकका बोझ।

शीर्षभारिक (सं० त्रि०) शीर्षभारिक, मस्तक पर भार उठानेवाला।

शीर्षोदय (सं० पु०) शीर्षे शीर्षद्वारा उदयो यस्य। राशि और लग्नविशेष। मिथुन, कन्या, सिंह, तुला, वृश्चिक, कुम्भ और मीन इन सब राशि और लग्नको शिर्षोदय कहते हैं।

शील (सं० क्ली०) शीलयतीति शील अतिशायने अच्, यद्वा शीङ् स्वप्ने (शीङो धुक्लक्वलञ्वालनः। उण ४।३८) लक्, मद्दर्चादित्वात् पुलिङ्गमपि। १ आचरण चाल, व्यवहार, चरित्र। २ प्रवृत्ति, स्वभाव, आदत मिजाज। ३ सद्वृत्त, उत्तम आचरण।

ब्राह्मण्यादि तेरह प्रकारका धर्ममूल। मनुटीकामें कुल्लूकने लिखा है कि ब्रह्मण्यता आदि तेरह प्रकारके शील हैं। जैसे—ब्रह्मण्यता, देवपितृभक्तता, सौम्यता, अपरोपतापिता, अनसूयता, मृदुता, अपारुष्य, मित्रता, प्रियवादित्व, कृतज्ञता, शरण्यता, कारुण्य और प्रशान्ति। रागद्वेष परित्यागका नाम शील है। (मनु २।६)

४ उत्तम स्वभाव, अच्छी प्रकृति, अच्छा मिजाज। ५ संकोचका स्वभाव, मुरौवत। ६ दूसरेका जी न दुखे यह भाव, कोमल हृदय। (पु०) शील—अतिशायने अच्। ७ अजगर। (त्रि०) ८ प्रवृत्त, तत्पर, प्रवृत्तिवाला। जैसे—दानशील, पुण्यशील।

शीलक (सं० क्ली०) शाल स्वार्थे कन्। शाल देखो।

शीलकीर्त्ति (सं० पु०) एक बौद्धयतिका नाम।

शीलखण्डन (सं० क्ली०) दुर्विनीतशीलनाशखण्डनकारी।

शीलता (सं० स्त्री०) शीलस्य भावः तल् टाप्। शील का भाव या धर्म, शीलत्व, साधुता।

शीलत्याग (सं० पु०) शीलस्य त्यागः। शीलतापरित्याग, शीलतावर्जन।

शीलधर (सं० त्रि०) धरतीति धृ अच्, शीलस्य धर। सुस्वभाव, सच्चरित्र। (भागवत ३।१४।३६)

शीलन (सं० क्ली०) शील ल्युट्। १ अभ्यसन, अभ्यास। २ अतिशायन। ३ उपधारण। ४ सेवानुभावन। ५ प्रवर्त्तन। ६ पाठनिश्चय। 'भविनो गुणना शालन स्मृत।' (त्रिका०)

शीलपालित (सं० पु०) बौद्धाचार्यभेद।

शीलभङ्ग (सं० पु०) शीलतावर्जन।

शीलभद्र (सं० पु०) बौद्धयतिभेद।

शीलभाज् (सं० त्रि०) शील भजते शील भज ण्वि। सुशील, सच्चरित्र, सुस्वभाव।

शीलभ्रंश (सं० पु०) शीलत्याग, शीलताका परित्याग।

शीलवत् (सं० त्रि०) शीलमस्यास्तीति शील-मतुप् मस्य व। १ शीलविशिष्ट, अच्छे आचरणका, सात्त्विक वृत्तिका। २ अच्छे या कोमल स्वभावका, मुरौवत वाला।

शीलवान् (हिं० वि०) शीलवत् देखो।

शीलविप्लव (सं० पु०) शीलताका विपर्यय शीलता का परित्याग।

शीलविलय (सं० पु०) शीलताविलोप, शीलत्याग।

शीलविशुद्धनेत्र (सं० पु०) देवपुत्रभेद।

शीलवृत्त (सं० त्रि०) सुशील।

शीलशालिन् (सं० त्रि०) शीलेन शालते शोभते शील शाल-णिनि। सुस्वभाव, अच्छे मिजाजका।

शीला (सं० स्त्री०) शीलमस्यास्तीति शील-अच् टाप्। १ शीलयुक्ता, सद्वृत्ता, सुशीला। २ कौण्डिन्य मुनिकी पत्नीका नाम।

शीलिक (सं० स्त्री०) शीलयुक्ता।

शीलित (सं० क्ली०) शील-क्त। १ चीन। (त्रि० २ अभ्यस्त।

शीलिन् (सं० त्रि०) शील-णिनि। शीलयुक्त, शील-विशिष्ट। यह शब्द प्रायः ही उपपदपूर्वक व्यवहार होता है।

शीलेन्द्रबोधि (सं० पु०) एक बौद्धयतिका नाम।

शीलोष्णा (सं० स्त्री०) भूतयोनिविशेष।

शीवन् (सं० पु०) शेते इति शी (शीङ्क्रुशि वहोति। उण् ४।११३) इति कनिप्। अजगर।

शीवल (सं० क्ली०) शी बाहुलकात् वलः गुणाभावश्च। १ शैलेय, छरीला, पथरफूल। २ शैवाल, सेवार।

शीशम (फा० पु०) एक प्रकारका पेड़। इसका तना भारी, सुन्दर और मजबूत होता है। यह पेड़ बहुत ऊंचा और सीधा जाता है। इसकी पत्तियां छोटी और गोल होती हैं। लकड़ी लाल रङ्गकी होती है और मजबूती तथा सुन्दरताके लिये प्रसिद्ध है। इससे पलङ्ग, कुरसी, मेज आदि सजावटके सामान बहुत बढ़िया बनते हैं।

शीशमहल (अ० पु०) १ वह कमरा या कोठरी जिसकी दीवारोंमें सर्वत्र शीशे जड़े हों। २ कांचका मकान।

शीशा (फा० पु०) १ एक मिश्र धातु। यह बालू या रेह या खारी मिट्टीको आगमें जलानेसे बनती है। यह पारदर्शक होती है तथा खरी होनेके कारण थोड़े आघात से टूट जाती है। इसे कांच भी कहते हैं। २ झाड़, फानूस आदि कांचके बने सजावटके सामान। ३ कांचका वह खण्ड जिसमें सामनेकी वस्तुओंका ठीक प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है और जिसका व्यवहार चेहरा देखनेके किया जाता है, दर्पण, आइना।

शीशी (फा० स्त्री०) शीशेका छोटा पात्र जो तेल, इत्र, दवा आदि रखनेके काममें आता है, कांचकी लम्बी कुप्पी।

शुक (सं० क्ली०) शोभते इति शुभ दीप्तौ (शुकवल्कोल्काः। उण् ३।४२) इति कप्रत्ययेन निपातनात् साधुः। १ ग्रन्थिपर्ण, गठिवन। २ वस्त्र, कपड़ा। ३ वस्त्राञ्चल, कपड़ेका आंचल। ४ शिरस्त्राण, पगड़ी, साफा। ५ शोणक वृक्ष, सोनापाठा। ६ स्वर्णक्षीरी, सत्यानाशी। ७ लोध्र, लोध। ८ तालीशपत्र। ९ सिरिसका पेड़। (पु०) १० पक्षिविशेष, तोता, सुग्गा। पर्याय—कीर, वक्रतुण्ड, मेधावी, श्रीद्रुमप्रिय, रक्ततुण्ड, वक्रचञ्चु, चिमि, चिमिक, शुक, प्रियदर्शन, मञ्जुपाठक। इसका मांस—परम पथ्य, विपाकमें गुरु, शीतल, काम, श्वास और क्षयनाशक, संग्राही, लघु और दीपन होता है। (राजनि०) इस पक्षीको पढ़ानेसे यह अविकल मानवकी तरह बोल सकता है। ११ व्यासके पुत्र, शुकदेव। परिक्षितको ब्रह्मशाप होने पर इन्होंने उन्हें श्रीमद्भाग वत सुनाया था। शुकदेव देखो। १२ रावणके एक दूतका नाम।

शुककर्णी (सं० स्त्री०) शुकस्य कर्णमिव कर्णो यस्याः। १ वह जिसका कान सुग्गेके समान हो। २ एक प्रकार का पौधा।

शुककीट (सं० पु०) हरे रङ्गका एक फतिङ्गा जो खेतोंमें दिखाई पड़ता है।

शुककूट (सं० पु०) दो खम्भोंके बीचमें शोभाके लिये लटकाई हुई माला।

शुकच्छद (सं० क्ली०) शुकवत् छन्दोऽस्य। १ ग्रन्थि-पर्ण, गठिवन। २ तेजपत्ता। ३ तोतेका पर।

शुकजिह्वा (सं० स्त्री०) शुकस्य जिह्वेव फलं यस्याः। वृक्षविशेष, सुआठोंठी नामक पौधा।

शुकतरु (सं० पु०) शुकवत् तरुः, शुकवर्णपर्णविशिष्ट-त्वादस्य तथात्वं, शुकप्रियस्तरुर्वा। शिरीषवृक्ष, सिरिस-का पेड़।

शुकता (सं० स्त्री०) शुकस्य भाव तल् टाप्। शुकका भाव।

शुकतुण्ड (सं० पु०) १ हिंगुल, सिंगरफ। २ तोतेकी चोंच। ३ हाथकी एक मुद्रा जो तान्त्रिक पूजनमें बनाई जाती है।

शुकतुण्डी (सं० स्त्री०) शुकजिह्वा या सूआठोंठी नामक पौधा।

शुकत्व (सं० क्ली०) शुक भावे त्व। शुकता।

शुकदेव—ऋषिभेद। ये वेदव्यासके पुत्र थे। इनकी जन्मकथा देवीभागवतमें इस प्रकार लिखी है—एक समय घृताची नामकी अप्सरा वेदव्यासके पास आई। वेदव्यास उसे देख कर सोचने लगे, कि यह देवकन्या मेरे योग्य नहीं है, मैं इसे ले कर क्या करूंगा? उस समय घृताची वेदव्यासको चिन्तित देख शापके डरसे डर गई और सोचने लगी कि किस तरह वेदव्यासके पाससे भाग कर प्राण बचाऊं। अन्तमें वह शुकपक्षीका रूप धारण कर वहांसे भाग चली। इधर महर्षि कृष्ण द्वैपायनने जिसे सर्वाङ्गसुलक्षणा दिव्य कामिनीमूर्त्तिमें देखा था, अभी उसे पक्षीरूपमें देख कर आश्चर्यसागरमें डूब गये। इस संसारमें ब्रह्मर्षि या देवता कोई भी हो किन्तु पञ्चबाणके लक्ष्यसे कोई बच नहीं सकता। वेदव्यासकी भी यही दशा हुई। उस समय वेदव्यास कामबाणसे अत्यन्त पीड़ित हो उठे। उस समय उन्होंने सोचा, कि कामबाणसे विह्वल होना तपस्वियोंके पक्षमें बहुत ही घृणाजनक है, अतएव वे कामवेगका दमन करनेके लिये अत्यन्त चेष्टा करने लगे, किन्तु सारे विश्वमें ऐसी किसकी सामर्थ्य है, जो होनहारको रोक सके? सुतरां वेदव्यास तपस्वियोंमें सर्वश्रेष्ठ होने पर भी कामवेगकी ज्वाला नहीं सह सके। तब वे कामवेग दमन करनेके लिये अग्नि उत्पन्न करनेकी इच्छासे दोनों अरणियोंको मथने लगे। हठात् उसका वीर्य स्खलित हो कर उस अरणिकाष्ठके बीचमें जा गिरा। उस समय वे वीर्यपातकी ओर ध्यान न दे कर लगातार अरणिकाष्ठका संघर्षण करते रहे। कुछ ही क्षणके अभ्यन्तर उस अरणिकाष्ठसे द्वितीय वेदव्यासकी मूर्त्ति धारण कर एक सर्वाङ्ग सुन्दर बालक प्रकट हुआ।

व्यासदेव उस सर्वाङ्ग सुन्दर बालकको देख कर बहुत ही आश्चर्यान्वित हुए और सोचने लगे, कि यह क्या हो गया? अन्तमें उन्होंने निश्चय किया, कि यह भगवान् महाशिवके वरप्रभावके सिवा और कुछ भी नहीं है। इसके बाद वेदव्यासने उस अग्निसदृश तेजस्वी कुमारको जातक्रियादि सम्पन्न की। तदा गङ्गादेवीने वहां पहुंच कर उस बालकके शरीरके भीतरकी सभी नाड़ियोंको अपने पवित्र जलसे धो दिया। उस बालकके जन्मोत्सवके उपलक्षमें आकाशसे पुष्पवृष्टि होने लगी, आकाशमें देवता लोग दुन्दुभि बजाने लगे, अप्सराएं नृत्य करने लगीं और नारद, तुम्बुरु प्रभृति वहां आ कर गान करने लगे।

घृताचीने शुकपक्षीका रूप धारण कर वहांसे प्रस्थान किया था इसीलिये वेदव्यासने उस बालकका नाम शुकदेव रखा था। सभी देवता और विद्याधर वहां उपस्थित हुए और उस अरणिगर्भसे उत्पन्न बालकको देख कर आनन्दसे पुलकित हो उठे एवं सब मिल कर उनकी स्तुति गाने लगे। उसी समय आकाशसे वहां दण्ड, कमण्डलु और काला मृगचर्म पतित हुए। इधर वह बालक जन्म लेते ही प्रदीप्त अग्निशिखाकी तरह नवयुवक जैसा बड़ा हो गया। यह देख कर व्यासदेवने विधिपूर्वक उनका उपनयन संस्कार सम्पन्न किया। इस संस्कारके बाद शुकदेवजी सुरगुरु बृहस्पतिको अपना आचार्यगुरु मान कर ब्रह्मचर्यव्रतके अनुष्ठानमें प्रवृत्त हुए। बाद महात्मा शुकने ब्रह्मचर्य-व्रतानुष्ठायी हो कर रहस्यके साथ चारों सांगवेद, आयुर्वेद प्रभृति उपवेद तथा समस्त धर्मशास्त्र अध्ययन करनेके बाद गुरुदक्षिणा दे कर समावर्त्तन किया।

शुकदेवजी समावर्त्तनके बाद पिताके पास उपस्थित हुए। व्यासदेव उनको समावर्त्तन करते देख बड़े प्रसन्न हुए और गार्हस्थ्याश्रमके लिए विवाह करनेका अनुरोध करते हुए बोले—"वत्स! तुमने समस्त वेदोंका अध्ययन किया है, ब्रह्मचर्यके अनुष्ठानसे तुम्हारे मनका सारा विकार दूर हो चुका है। अब किसी सुन्दरी कामिनीका पाणिग्रहण कर गार्हस्थ्य जीवन व्यतीत करो। गार्हस्थ्याश्रम सभी आश्रमोंमें श्रेष्ठ है, अतएव इस आश्रममें प्रवेश कर अपने तीनों ऋणसे उऋण होओ।

महर्षि व्यासने जब अपने पुत्रको गार्हस्थ्याश्रममें प्रवेश करनेका अनुरोध किया तब विषयभोगविरागी आत्मज्ञ महात्मा शुकदेवने पिताको संसारासक्त देख कर कहा—पिता! आप पूरे तपस्वी हैं आप अपनी तपस्याके प्रभावसे वेदको विभक्त करनेमें समर्थ

हुए हैं, सुतरां आप धर्मतत्त्व विषय अच्छी तरह जानते हैं और जब मैं आपका पुत्र हूं, तब आपका आज्ञानुवर्त्ती हूं, किन्तु परमार्थ के लिये मुझे जो कुछ आज्ञा देंगे, मैं उसका पालन करूंगा।"

व्यासजीने शुकदेवको संसारसे विरक्त देख कर उन्हें संसाराश्रममें प्रवेश करनेके लिये नाना प्रकारके वचनोंमें समझाते हुए कहा—"वत्स! मैंने अत्यन्त कठोर तपस्या करके तुम्हें प्राप्त किया है। तुम भी वेदशास्त्र अध्ययन करके सभी प्रकारका ज्ञान प्राप्त कर चुके हो। अतएव तुम्हें और कुछ कहना न होगा। देखो, युवावस्था ही विषयभोगका समय है। इसलिये तुम अपनी युवावस्थाको व्यर्थ न करो। यदि दरिद्रताके भयसे वैराग्य करने चले हो, तो उस भयको शीघ्र अपने हृदयसे दूर कर दो। क्योंकि मैं किसी राजाके यहांसे यथेष्ट धन ला दूंगा, तुम स्वच्छन्दतापूर्वक संसारका सुख उपभोग करो।"

शुकदेवजी पिताकी ऐसी बातें सुन कर और चुप नहीं रह सके। उन्होंने कहा "पिता! बड़े बड़े ऋषियों-का कहना है, कि सांसारिक सुख वास्तवमें सुख नहीं है, वह दुःखके जालसे आच्छन्न है। अच्छा आप ही बतावें, इस मनुष्यलोकमें ऐसा कौन सा निर्मल सुख है, जिसे किसी प्रकारका भी दुःख स्पर्श नहीं कर सकता हो? पिता! आपमें कठोर तपश्चर्याका प्रभाव विद्य-मान है, सुतरां आपको कुछ समझना मेरी मूर्खता है। तथापि मैं जो कुछ कह रहा हूं, उस पर जरा विचार करें। मैं आपके आदेशानुसार विवाह करते ही स्त्रीके वशीभूत हो जाऊंगा। पराधीन व्यक्तिको खास कर इन्द्रियपरायण पुरुषको किस प्रकार सच्चा सुख मिल सकता है? मनुष्य काष्ठ वा लौहादि निर्मित कारागार-में बन्द रहने पर भी किसी प्रकार मुक्त हो सकता है; परन्तु स्त्री-पुत्रादिके बन्धनमें पड़ा हुआ व्यक्ति आजन्म मुक्त नहीं हो सकता। जब मैं अयोनिसम्भूत हूं, तब योनिमें मेरी प्रवृत्ति क्यों कर हो सकती है? विशे-षतः मैं अनिर्वचनीय परमात्मजनित सुख छोड़ कर क्या विष्ठाभोगसुखकी इच्छा करूंगा? मैंने जब पहले ही वेदाध्ययन करके उस विषय पर अच्छी तरह विचार किया, तब मुझे मालूम हुआ, कि वह केवल कर्ममार्गप्रवर्त्तक हिंसामय शास्त्र है। उसके बाद बृहस्पतिको अपना आचार्य्य गुरु मान कर देखा, तो पता चला, कि उनका हृदय भी अत्यन्त अविद्याग्रस्त है। सुतरां वैसे मनुष्य दूसरेको किस प्रकार मुक्त कर सकते हैं? पिता! इसीलिये मैं वैसे गुरुका परित्याग कर आपके पास आया हूं। आप मुझे तत्त्वज्ञान सिखा कर इस भीषण संसारसर्पके ग्राससे मेरी रक्षा करें।"

व्यासदेवने जब देखा, कि शुकदेवका हृदय विशुद्ध सत्त्वगुणसे परिपूर्ण है, किसी तरह वह संसारमें आसक्त नहीं हो सकता; तब उन्होंने कहा, "मैंने जो सर्वप्रधान भागवत ग्रन्थ तैयार किया है, तुम उसका पाठ करो। उससे शीघ्र ही तुम्हारा संशय दूर हो जायगा और तुम्हें ब्रह्मज्ञान प्राप्त होगा।"

पिताके आज्ञानुसार भागवत पाठ करनेसे भी जब उनका सन्देह दूर नहीं हुआ, तब व्यासजीने उन्हें राजर्षि जनकके यहां जा तत्त्वज्ञान सीखनेके लिये कहा। शुकदेवजीने राजर्षि जनकजीके पास जा कर तत्त्वोपदेश करनेकी प्रार्थना की और कहा, "आप जीवन्मुक्त कहलाते हैं, परन्तु आचरण व्यवहारसे मालूम पड़ता है, कि आप घोर विषयी हैं, अतएव सारी बातें समझा कर मेरा सन्देह दूर कीजिये।"

राजर्षि जनक शुकदेवजीकी बातें सुन कर उन्हें नाना प्रकारके युक्तिपूर्ण वचनोंमें तत्त्वोपदेश करते हुए नम्रतापूर्वक बोले "आपने वेदव्यासकी बातोंकी अवहेला कर भारी भूल की है। बिना आश्रमधर्मका प्रतिपालन किये हठात् योगावलम्बन करना अत्यन्त कठिन है। क्योंकि योगकी अपक्वावस्थामें मालूम पड़ता है, कि इन्द्रियां वशीभूत हो गईं, किन्तु ऐसा सोचना भूल है। कारण, मायाबद्ध जीव दुर्दमनीय इन्द्रियोंका निग्रह नहीं कर सकता। अधिक कहना व्यर्थ है, ये दुर्जय इन्द्रियां समय समय पर उत्तेजित हो कर पूज्यपाद महात्माओं-को भी प्रकृत पथसे भ्रष्ट कर देती हैं। तब ये इन्द्रियां नवीन विरक्त योगियोंके मनमें नाना प्रकारके विकार पैदा करेंगी, इसमें सन्देह ही क्या है? अतएव गार्ह-स्थ्याश्रमका सहारा ले कर इन्द्रियनिग्रह करना कर्त्तव्य

है।" इस तरह शुकदेवके साथ राजर्षि जनक तर्क वितर्क करते रहे। अन्तमें जनकजीने कहा "आप इस समय मैं वैसा ही कर निःसङ्गावस्थामें कहीं वास नहीं कर सकते। आप पिताको साथ छोड़ वनमें जाना चाहते हैं किन्तु वनमें जा कर भी आप वनमृगों के साथ रहेंगे, इसमें जरा भी सन्देह नहीं। विशेषतः सर्वत्र ही आकाशादि पञ्च महाभूत विद्यमान हैं। अतएव आप किसी भी स्थानमें जा कर सङ्गविरहित न होंगे। और भी देखिये जङ्गलमें जा कर भोजनके लिये चिन्ता करनी होगी। यदि कहें, कि निराहारी बन कर रहूंगा, तो भी दण्ड और अजिनादिकी चिन्ता रहेगी। संसारमें रह कर मेरी राजचिन्ता भी उसी प्रकारकी है। आप केवल सन्देहमें पड़ कर ही इतनी दूर आये हैं, किन्तु मेरे हृदयमें किसी प्रकारका संशय नहीं है। इसलिये सदा निःसन्दिग्ध चित्तसे एक ही जगह रहता हूं। मैं विषय भोग करता हूं किन्तु किसी विषयके बन्धनमें नहीं हूं। इसी ज्ञानसे मैं सुखी हूं और आप सब विषयोंमें ही बद्ध हैं। इस ज्ञानमें सर्वदा सुखी रहते हैं अतएव आप सारा सन्देह दूर कर नित्यसुखका साधन करें। देखिये जीव यह मेरा है इस ज्ञानसे बद्ध और यह शरीर मेरा नहीं है इस ज्ञानसे मुक्त होता है।"

जनकके उपदेशसे शुकदेवजीका सारा सन्देह दूर हो गया। तब वे प्रसन्न चित्तसे व्यासजीके पास लौट आये। इसके बाद उन्होंने पीवरी नाम्नी एक सुयोग्य कन्याका पाणिग्रहण किया। समय पर उस कन्याके गर्भसे इनके कृष्ण, गौरप्रभ भूरि और देवश्रुत नामक चार पुत्र एवं कीर्तिमती नामकी एक कन्या हुई।

इस तरह कुछ दिनों तक गार्हस्थ्य जीवन व्यतीत करनेके बाद शुकदेवजी कैलास पर्वत पर जा कर गम्भीर ध्यानमें निमग्न हो गये। (देवीभागवत १।१०-१९ अ०)

शुकदेवजीने राजा परीक्षित्के ब्रह्मशापकालमें उनकी सभामें जा कर उन्हें भागवत सुनाया जिससे राजा परीक्षित् ब्रह्मशापसे छूट कर मुक्तिको प्राप्त हुए।

शुकद्रुम (सं० पु०) शुकवत् द्रुम तद्वर्णपर्णविशिष्टत्वात् तथात्वं। शिरीषवृक्ष।

शुकनालिकान्याय (सं० पु०) न्यायभेद, तोता जिस प्रकार फंसानेकी नली या नलनीमें लोभके कारण फंस जाता है वैसे ही फंसनेकी रीति। न्याय देखो।

शुकनसा (सं० स्त्री०) १ श्योनाकवृक्ष छोंकर। २ सुआठोंठी। (सुश्रुत चि० १९ अ०)

शुकनामा (सं० स्त्री०) शुक इति नाम यस्या। १ शुकजिह्वा, सुआठोंठी नामक पौधा। (त्रि०) २ शुकसदृश।

शुकनाश (सं० पु०) शुकनास, कवाँच।

शुकनाशन (सं० पु०) शुकं नाशयतीति नश णिच् ल्यु। १ वकमर्द, चकवंड। (त्रि०) २ शुकनाशक सुग्गेको मारनेवाला।

शुकनास (सं० पु०) शुकस्य नासेव फलं यस्य। १ श्योनाकवृक्ष छोंकर। २ अगस्तका पेड़। ३ कपिकच्छु केवांच, कौंछ। ४ शुकजिह्वा, सुआठोंठी। ५ सोनापाठा। ६ नलिका। ७ गम्भारी।

शुकनासा (सं० स्त्री०) शुकनास देखो।

शुकनासिका (सं० स्त्री०) शुकनासा देखो।

शुकपत्र (सं० पु०) गन्धक।

शुकपिच्छ (सं० पु०) १ गन्धक। (रसेन्द्रसारस०) २ ग्रन्थिपर्ण गठिवन। (वैद्यकनि०)

शुकपिण्ड (सं० पु०) शुकशिम्बी केवांच।

शुकपुच्छ (सं० पु०) शुकस्य पुच्छ इव। १ गन्धक। २ शुकका लाङ्गूल, सुग्गेकी पूंछ।

शुकपुच्छक (सं० क्ली०) शुकस्य पुच्छमिव कन्। १ एक प्रकारकी गठिवन, थुनेर। (त्रि०) २ शुकवत् पुच्छयुक्त, सुग्गेके समान पूंछवाला।

शुकपुष्प (सं० क्ली०) शुकप्रिय पुष्पमस्य। १ स्थौणेयक थुनेर। (पु०) २ शिरीषवृक्ष। ३ अगस्तका पेड़। ४ गन्धक।

शुकप्रिय (सं० पु०) शुकस्य प्रिय। १ शिरीषवृक्ष सिरिसका पेड़। २ शुकवल्लभ अनार। ३ कमरख।

शुकप्रिया (सं० स्त्री०) १ शुकप्रिया जम्बू जामुन। २ निम्ब, नीम।

शुकफल (सं० पु०) शुक इव फलमस्य, तद्वर्णाकारत्वात् तथात्वं। १ अर्कवृक्ष, आकका पौधा। २ समर।

भौंरी। ७ वदरी वृक्ष, वेरका पेड़। ८ अस्थि हड्डी। ९ मर्षा, ववासार। १० नखी नामक ग धद्रव्य। ११ कपाल जो काली या कापालिकोंके हाथमें रहता है। १२ दो कर्ष या चार तोलेकी एक तौल। पर्याय—अष्टमिका। (वैद्यक परिभाषा) १३ शुक्लगत नेत्ररोगविशेष आंखका एक रोग। इसमें सफेद ढेलेके ऊपर मासकी एक सि दो सी निकल आती है। (भावप्र० चक्षुरोगाधिकार)

शुक्तिक (स० पु०) शुक्ति कन्। १ गन्धक। २ एक प्रकारका नेत्ररोग। ३ शुक्ति सीपी। ४ चुक्रिका, चूक।

शुक्तिकर्ण (स० पु०) नागभेद। (हरिव श)

शुक्तिका (स० स्त्री०) शुक्तिरेव स्वार्थे कन्।

शुक्तिज (स० क्ली०) शुक्तेर्जायते यदिति शुक्ति जन ड। मुक्ता, मोती।

शुक्तिपत्र (स० पु०) शुक्तिरिव पत्र यस्य। सप्तपर्ण, छतिवन।

शुक्तिपर्ण (स० पु०) सप्तपर्ण, छतिवन।

शुक्तिपुटोपम (स० क्ली०) शुक्तिपुटस्य उपमा यस्य। बातादू, बादाम।

शुक्तिबीज (स० क्ली०) शुक्तेर्वीजमिव। मुक्ता, मोती।

शुक्तिमणि (स० पु०) शुक्तौ जातः मणि। मुक्ता, मोती।

शुक्तिमत् (स० पु०) एक पर्वत जो सात कुल पर्वतोंमेंसे है।

शुक्तिवधू (स० स्त्री०) शुक्ति, सीप सीपी।

शुक्तिसाह्वया (स० स्त्री०) नगरभेद, चेदिराज्यका प्रधान नगर।

शुक्तिस्पर्श (स० पु०) शुक्तिको स्पर्श करना या छूना।

शुक्त्यङ्गी (स० पु०) सम्भालु, सि दुवार, मेउड़ी।

शुक्र (स० क्ली०) शुच-क्लेदे (ऋजेन्द्राग्रवज्र ति। उण् २।२८) इति रन् प्रत्ययेन साधु। १ मज्जागत धातु। पर्याय—पु स्त्व, रेतः, बीज, वीर्य, पौरुष, तेज, इन्द्रिय, मज्जवर, मज्जारस रोहण वल। (राजनि०)

खाये हुए द्रव्यका साराश रस रूपमें परिणत होता है, इस रसके सारसे रक्त और रक्तसे मांस, माससे मेद, मेदसे अस्थि और अस्थिमें मज्जा तथा मज्जासे शुक्रकी उत्पत्ति होती है। अतएव शुक्र धातु सभी धातुओंका सार है।

भावप्रकाशके मतसे कैसा भुक्त द्रव्य परिपाक हो कर शुक्ररूपमें परिणत होता है, वह इस प्रकार लिखा है—

जो सब द्रव्य वस्तु खाई जाती हैं वह पाचक अग्निके द्वारा इक्षु रस परिपाककी तरह पाचक अग्नि द्वारा परिपाक होती है, पीछे परिपक्व आहारका सार अ श रस रूपमें परिणत होता है। असार भाग मलमूत्ररूपमें परिणत हो कर निकलता है। वह आहारजातरस स्थूल और सूक्ष्म इन दो भागोंमें विभक्त होता है। उनमें स्थूलभाग शरीरारम्भक स्थायिरसके साथ सयुक्त हो कर वैसा ही हो जाता है। पीछे सर्वशरीरव्यापी व्यान वायु कर्तृक धमनी पथसे प्रेरित हो कर स्नेहन और जठराग्निके उत्तापजनित सन्ताप निवारण आदि गुण द्वारा सारे शरीरको पोषण करता है। सूक्ष्म भाग प्राणवायु द्वारा प्रेरित हो कर धमनीपथ द्वारा शरीरारम्भक रक्तके स्थान यकृत् प्लीहामें जा स्थायिरक्तसे मिल जाता है। इसके बाद वह स्थायि रक्तस्थ तेजो द्वारा फिरसे परिपाक हो कर पाच दिन पाच रात और डेढ़ दण्डके पीछे रक्त धातुमें परिणत होता है।

वह रक्त फिर स्थूल और सूक्ष्म भेदसे दो भागोंमें विभक्त होता है। उनमेंसे स्थूल भाग रञ्जक नामके पित्त द्वारा रक्ताकृति हो कर शरीरारम्भक रक्तको पोषण करता है तथा व्यान वायु कर्तृक प्रेरित हो कर धमनियोंमें विचरण कर सर्वशरीरगत रक्तको पोषण करता है। सूक्ष्मभाग व्यानवायु कर्तृक चालित हो कर धमनी और शिराओं द्वारा शरीरारम्भक मांसमें जाता है। इसके बाद मांसधातुस्थ अग्नि द्वारा परिपाक होनेसे पाच दिन, पांच रात और डेढ़ दण्डके बाद वह मासधातुमें परिणत होता है।

अनन्तर यह मास मेदोधातुस्थ अग्नि द्वारा फिरसे परिपाक होने लगता है और पाच दिन, पाच रात और डेढ दण्डमें मेदारूपमें परिणत होता है। अपना अग्नि द्वारा परिपक्व मेदका स्वेदरूपी मल निकलता है। वह स्वेद शीतल अवस्थामें इन्द्रियपथमें रहता है। किन्तु शारीरिक तेजो द्वारा अत्यन्त तप्त होने पर व्यानवायु

कर्तृक चालित शिरा मार्गाभिमुखी हो स्वेदरूपमें लोमकूप द्वारा बाहर निकलता है।

परिपक्क मेदका सारांश स्थूल और सूक्ष्मभेदसे दो भागोंमें विभक्त है। उनमेंसे स्थूल भाग मेदोधातुको पुष्ट कर उदरमें अवस्थान करता तथा व्यानवायुकर्तृक प्रेरित हो स्रोतपथसे जा कर सूक्ष्मास्थिस्थित मेदको भी पुष्ट बनाता है। सूक्ष्मभाग व्यानवायु कर्तृक चालित हो धमनी और शिराओं द्वारा शरीरारम्भक अस्थिमें गमन करता है। इसके बाद अस्थिधातुस्थ अग्नि द्वारा फिरसे परिपाक हो कर पांच दिन, पांच रात और डेढ़ दण्डके बाद अस्थिधातुमें परिणत होता है। इस पच्यमान अस्थिसे भी मल निकलता है। वह मल व्यानवायु द्वारा चालित हो शिरापथ द्वारा यथास्थानमें जा कर उंगलीके नख और देहके लोम हो जाता है।

वह अस्थि भी अपनी अग्नि द्वारा परिपाक हो कर स्थूल और सूक्ष्म दो भागोंमे विभक्त होती है। उनमेंसे स्थूल अंश शरीरारम्भक अस्थिको पोषण करता है, सूक्ष्म अंश व्यानवायु कर्तृक चालित हो कर स्रोतोपथ द्वारा मज्जाके स्थान स्थूल अस्थिमें जाता है। इसके बाद मज्जाधातुस्थ अग्नि द्वारा फिरसे परिपाक हो कर पांच दिन, पांच रात और डेढ़ दण्डके पीछे मज्जाधातुमें परिणत होता है। उस मज्जासे भी मल निकलता है। वह मल व्यानवायु कर्तृक चालित हो कर शिरामार्ग द्वारा दोनों आंखोंमें लाया जाता और दूषिका तथा चक्षुःस्नेह हो जाता है।

परिपक्क मज्जाका सार अंश स्थूल और सूक्ष्म भेदसे दो भागोंमें विभक्त है। उनमेंसे स्थूल भाग शरीरारम्भक मज्जाको पोषण करता है। सूक्ष्मभाग व्यानवायु कर्तृक चालित हो कर शुक्रके स्थान समस्त शरीरमें जाता और शरीरारम्भक शुक्रके साथ मिल जाता है। इसके बाद शुक्रधातुस्थ अग्नि द्वारा फिरसे परिपाक होता है। किन्तु पच्यमान इस शुक्रका कोई मल नहीं है। जिस प्रकार सोना हजार बार तपाने पर भी मैला नहीं होता, उसी प्रकार शुक्रधातु पुनः पुनः पाक होने पर भी उसमें मल नहीं रहता। यह परिपक्क शुक्र भी स्थूल और सूक्ष्मभेदसे दो भागोंमेंसे विभक्त और उनमेंसे स्थूल अंश शुक्रधातुमें और सूक्ष्म अंश ओजोरूपमें परिणत होता है।

शुक्रधातुका जो परम तेजोभाग है, वही ओजः है। यह सर्वशरीरव्यापी है। मध्यमाग्निविशिष्ट व्यक्तिके रससे समस्त धातु परिपाक हो कर शुक्र पैदा होनेमें एक महीना लगता है, तीक्ष्णाग्निविशिष्ट व्यक्तिके एक महीनेसे कुछ कम और मन्दाग्निविशिष्ट व्यक्तिके महीनेसे कुछ अधिक समयमें आहारजात रस परिपाक हो कर शुक्रधातुमें परिणत होता है। शुक्रस्वरूप शुक्र धातु सोमात्मक, श्वेतवर्ण, स्निग्ध, बलकारक, पुष्टिकर, गर्भका बीज और शरीरका सार तथा जीवका उत्तम आश्रयस्थान है। जीव सारे शरीरमें ही अवस्थान करता है, किन्तु उनमेंसे शुक्रमें, रक्तमें और मलमें विशेषरूपसे अधिष्ठित है क्योंकि इसके क्षीण होने पर थोड़े ही समयमें जीवका क्षय होता है।

शुक्रका अवस्थिति स्थान—जिस प्रकार दूधमें घी और ईखमें गुड़ रहता है, शुक्र भी उसी प्रकार देहियोंके सारे शरीरमें फैला हुआ है। घी और ईखके रसका दृष्टान्त यथाक्रम बहुशुक्र और अल्पशुक्रविशिष्ट व्यक्तिके सम्बन्धमें जानना होगा अर्थात् दूधको थोड़ा मथनेसे ही उसमेंसे घी निकलता है, उसी प्रकार बहुशुक्रविशिष्ट व्यक्तिको थोड़ा मथनेसे ही शुक्र निकल पड़ता है। फिर जिस प्रकार खूब दबानेसे ईखका रस निकलता है, उसी प्रकार अल्पशुक्रविशिष्ट व्यक्तिका शुक्र अत्यन्त मथन द्वारा निकलता है।

शुक्रका क्षरणमार्ग—वस्तिद्वारके अधोदेशमें दाहिनी ओर दो उंगलीके फासले पर जो मूत्रनाली है, उसीसे पुरुषका शुक्र निकलता है।

शुक्रक्षरणका कारण—शुक्र सारे शरीरमें आश्रय किये हुए है, मन प्रसन्न रहनेसे स्त्रीके साथ रतिक्रिया द्वारा शरीर हृष्ट हो शुक्र निकलता है। कामभावापन्न हो कर स्त्रीका दर्शन, स्पर्शन अथवा उसका शब्द श्रवण या चिन्तन करनेसे भी शुक्रक्षरण होता है।

शुक्रसे गर्भ रहता है। किन्तु शुक्रका विशुद्ध होना आवश्यक है। जिस शुक्रका वर्ण स्फटिककी तरह तथा तरल, स्निग्ध, मधुररस और मधुगन्धविशिष्ट है, वही शुक्र

निर्दोष है। किसी किसीका कहना है, कि तप्त मधुर। मधुकी तरह आमाविशिष्ट शुक्र विशुद्ध होता है और वही गर्भजनक है।

यौवनकालसे ही शुक्रक्षरण होता है। बालकोंके शुक्रक्षरण नहीं होता। उसका कारण यह है कि जिस प्रकार मुकुल अवस्थामें पुष्पमें गंध रहते हुए भी सूक्ष्मताके कारण वह इन्द्रियगोचर नहीं आता, फिर जिस प्रकार पुष्पके कलादि दिखाई देनेसे गंध निकलती है उसी प्रकार यौवन प्राप्त होनेसे बालकोंका यह शुक्र वर्द्धित हो कर प्रकाशित होता है। पुरुषोंकी तरह स्त्रियोंके भी शुक्रधातु है।

पुरुषका जिस प्रकार एक महीनेमें आहारजातरस शुक्रधातुमें परिणत होता है उसी प्रकार स्त्रियोंके भी एक महीनेमें आहारजातरस परिपाक हो कर आर्त्तव और शुक्ररूपमें परिणत होता है। पुरुषोंका जिस प्रकार स्त्रीसे संसर्गसे शुक्र निकलता है उसी प्रकार स्त्रियोंका शुक्र भी पुरुष संसर्गसे स्खलित होता है। किन्तु यह शुक्र गर्भोत्पत्तिमें कोई सहायता नहीं पहुंचाता तथा विशुद्ध गर्भका भी कोई कारण नहीं होता, वरं विकृत गर्भका कारण हुआ करता है।

इसके प्रमाणस्वरूप सुश्रुतमें लिखा है कि अनिश्चय कालभावापन्न दो स्त्री आपसमें उपगत हो किसी प्रकार शुक्रत्याग करे, तो अस्थिरहित सन्तान उत्पन्न होती है। स्त्रियोंका शुक्रधातु गर्भोत्पत्तिके उपयोगी नहीं है आर्त्तव धातु ही गर्भोपयोगी है। किन्तु यह शुक्रधातु ही स्त्रियोंका बल है, वर्णका प्रसन्नता है और शरीरका पुष्ट करनेवाला है।

आहारजात रसके परिपाक होनेसे ही यदि शुक्रकी उत्पत्ति हो, तो वाजीकरण औषधका प्रयोजन ही क्या? उत्तरमें यही कहा जाता है कि वाजीकरण औषध अपने प्रभावसे तथा गुणकी उत्कटताके कारण विरेचक द्रव्यकी तरह सद्य सद्य कार्यकारी है। (भावप्रकाश)

शुक्र ही एक प्रकार जीवन है। जिससे शुक्रधातु अधिक परिमाणमें क्षय न हो उस ओर विशेष लक्ष्य रखना आवश्यक है। शुक्रधातुके क्षय होनेसे रतिशक्ति अधिक मेढ़ और मुष्कद्वयमें वेदना तथा बहुत देरसे रमणके साथ अल्प शुक्र स्खलन होता है। बलह्रास, शरीर निस्तेज और सर्वशक्ति विनष्ट होती है।

शुक्रक्षयकारक द्रव्य—सार्षपतैल, राजमास, तिल, पटोल, वास्तूक शाक अथवा, पुनर्नवा शाकको छोड़ सभी प्रकारका शाक, सभी प्रकारका अम्ल द्रव्य और बेलफल, कण्टकफल, बादाम, लिकुच, गोलमिर्च, गुड़ त्वक्, पीपर और सोंठको छोड़ कटुरस ये सब द्रव्य क्षयकारक हैं।

शुक्रवर्द्धक द्रव्य—पानीय, विशेषतः हैमन्तिक जल, तालाम्बु, चन्दनादि द्रव्यानुलेपन, रक्तशालिधान्य, हैमन्तिक षष्टिकधान्य, गोधूम माष, सामान्य नारीच पत्र शाक, सामान्य शुक्र नारीचपत्रशाकजल, कलबी शाक, काकमाचीशाक (लफाच), गोक्षुरशाक, मुञ्जातक, वार्त्ताकु विदारी, हस्त्यालुका, मध्वालुक, पक्वाम्र दुग्धाम्र, नागरङ्ग, बदुयारफल, पक्कपटोलफल, कण्टाफलास्थि, पक्वताल, पक्वकदली, चम्पकदल, द्राक्षा, खर्जुर धात्री, कुष्माण्डमज्जा, सभी प्रकारके मत्स्य विशेषतः वृहत्मत्स्य, समुद्रमत्स्य, रोहितमत्स्य, मांगुरमत्स्य, पाठीनमत्स्य, मर्करिमत्स्य चित्रफलमत्स्य, बाउड़मत्स्य, मद्गुरमत्स्य, वर्मिमत्स्य, फलीमत्स्य, चन्द्रकमत्स्य पर्वतमत्स्य, पल्लुमत्स्य, शकुलमत्स्य, चम्पकुन्दमत्स्य, गोष्ठामत्स्य दग्धमत्स्य, मांसमात्र विशेषतः प्रसहामांस, भूशयमांस, अनूपमांस, जलजमांस, जलचरमांस, छागमांस वाराहमांस, कुक्कुटमांस, तित्तिर, कुलिङ्ग, चटकमांस हंसमांस, हंसडिम्ब, शुकर्णाक्षिमांस, मयूर, शरारि, मद्गु, कादम्ब, बलाका और वकमांस, जाणमधु, समस्त क्षार, विशेषतः गोदुग्ध, हस्तिनी, दुग्ध, दुग्धसन्तानिका, महिषदधि, दधिसर, दधिमस्तु नवनीत, घृतमात्र सभी प्रकारका इक्षु, विशेषतः पौण्ड्रकेक्षु, दन्तानिष्पीड़ित इक्षुरस, इक्षुफाणित, इक्षुगुड़, इक्षुखण्ड, मधुरी, शुष्कपिप्पली, शुण्डा, आर्द्रक, लशुन, पलाण्डु सैन्धव, अम्ल, सतैल लवणार्द्रित दग्ध मत्स्य, मांसरस, परिशुष्कादय मांस, घृतपूर मधुमस्तक, दुग्धफेनक, भूशय्या, एरण्डमूल, गोक्षुर, सामान्यबला, विशेषतः पीतबला, अश्वगन्धा, प्रसारणी, माषपर्णी, रक्तातूल, राजयुक्तफल और त्रिफलादि। (राजवल्लभ)

वायुदोष—शुक्र वायु कर्त्तृक दूषित होने पर वह अरुण कृष्णादि वर्णविशिष्ट होता है तथा वह सूच्यविधवत् वेदनासे निपीड़ित हो जाता है। पित्तदोष—पित्तकर्त्तृक शुक्र दूषित होने पर उसका पित्तजन्य वर्ण होना और उसमें वेदना होती है। श्लेष्मदोष—कफ द्वारा शुक्र दूषित होने पर उसका श्लेष्मजन्य वर्ण अर्थात् शुक्लवर्ण होता है तथा उसमें वेदना और कण्डू आदि होते हैं। रक्तदोष—रक्त द्वारा शुक्र दूषित होने पर वह शोणितजन्य वर्ण और वेदनाविशिष्ट होता है तथा उसमेंसे मुर्देकी-सी गन्ध निकलती है। वातश्लेष्मदोष—वातश्लेष्म द्वारा शुक्र दूषित होने पर वह ग्रन्थि अर्थात् गांठकी तरह सख्त हो जाता है। पित्तश्लेष्मदोष—पित्तश्लेष्म द्वारा शुक्र दूषित होने पर वह दुर्गन्धित पीबकी तरह होता है। वातपित्तदोष—वातपित्त कर्त्तृक शुक्र दूषित होने पर अत्यन्त क्षीण हो जाता है। सन्निपातदोष—वातादि-त्रिदोष कर्त्तृक शुक्र दूषित होनेसे मूत्र और विष्ठाकी तरह दुर्गन्ध निकलती है।

पूर्वोक्त सभी प्रकारके दुष्टशुक्रोंमें कुणप गंध, ग्रन्थी भूत, पूतिपूयसदृश और क्षीणशुक्र कृच्छ्रसाध्य है तथा जो शुक्र मूत्र और विष्ठाकी तरह दुर्गन्धयुक्त होता है, वह असाध्य है। इसके सिवा अन्य सभी प्रकारके शुक्रदोष साध्य हैं।

शुक्रदोषकी चिकित्सा—शुक्र प्रथमोक्त तीन दोषोंमें अर्थात् वात, पित्त और कफ द्वारा दूषित होने पर सुचिकित्सकको चाहिये, कि वे स्नेहस्वेदादि प्रयोग या उत्तर वस्ति द्वारा चिकित्सा करें। शुक्रमें कुणप गंध रहनेसे धवका फूल, खैरकी लकड़ी, अनार फलकी छाल और अर्जुनवृक्षकी छाल इन सब द्रव्योंके कल्क और कषायके साथ घृतपाक करके उस घृतको अथवा शाल-सारादिगणीय द्रव्योंके कल्क और कषायके साथ गव्य-घृतको पाक करके उपयुक्तमात्रामें पान करनेसे वह दोष दूर होता है।

शुक्र ग्रन्थीभूत होने पर रोगीको कचूरका कल्क और कषायके साथ घृत पाक करके पान करानेसे प्रशमित होता है, अथवा गव्यघृत ४ सेर, पलाशभस्म ८ सेर, जल १२८ सेर, पाकशेष ६४ सेर। इसे ७ बार परिस्रुत करके एकत्र पाक करना होता है। यह घृत उपयुक्त मात्रामें सेवन करनेसे विशेष लाभ पहुंचता है।

शुक्र पूयसदृश दुर्गन्धविशिष्ट होनेसे परूषकादि और न्यग्रोधादिगणके कल्क और कषायके साथ घृत पाक करके उपयुक्त मात्रामें सेवन करे। शुक्र क्षीण होने पर शुक्र-वर्द्धक द्रव्य और शुक्रवर्द्धक औषधादि सेवन करना होता है। शुक्र विष्ठा और मूत्रकी तरह दुर्गन्धियुक्त होने पर चीतेके मूल, खसकी जड़ और हींग इन सब द्रव्योंके साथ घृत पाक करके उपयुक्त मात्रामें सेवन करनेसे वह जल्द प्रशमित होता है। (सुश्रुत)

(पु०) २ ग्रहविशेष शुक्रग्रह। नवग्रहमें शुक्र पञ्चम ग्रह है। पर्याय—दैत्यगुरु, काव्य उशनाः, भार्गव, कवि, आस्फुजित्, शतपर्वेश, भृगुसुत, भृगु, षोड़शार्चिः, मघाभूः, श्वेत, श्वेतरथ, षोड़शांशु। (जटाधर)

ग्रहोंमें शुक्र शुभग्रह है। यह ग्रह यदि दुःस्थ न हो, तो मानवका इस ग्रहकी दशामें शुभ होता है। शुक्रकी कारकता आदिका विचार ज्योतिःशास्त्रमें इस प्रकार लिखा है।

शुक्रकी कारकता - शुक्र सुख, श्री, विलास, भूषण, विज्ञानशास्त्र, भगिनी, स्त्री, सङ्गीत और कविता शक्ति कारक है। इस ग्रहके आनुकूल्यमें मानवगण भूतत्त्व और विज्ञानशास्त्रमें व्युत्पत्ति लाभ करते हैं। इसके द्वारा सुन्दरी स्त्री, नटी, नट, गायक, चित्रकर, यन्त्रादि-रञ्जनकारी, शौण्डिक और विज्ञानशास्त्रवेत्ता आदिका विवरण जाना जाता है। शुक्रग्रह भारतवर्षके मध्यवर्त्ती भोजदेशका अधिपति है। यह ग्रह अग्निकोणमें बलवान् है।

अवयव—मानवके शरीरमें शुक्रका भाग अधिक होनेसे सौम्यमूर्त्ति, मध्याकार, उज्ज्वल नयन, उन्नत नासिका, गण्ड और चिबुक मध्यस्थित कूप प्रचुर और चिक्कण केशयुक्त होता है।

स्वभाव—जन्मकालमें शुक्रके अनुकूल रहने पर जातक आमोद, सुगन्धि और सङ्गीतप्रिय, धीर परिष्कार परिच्छन्न, सामाजिकतासम्पन्न, प्रफुल्लचित्त, कलहद्वेषी, लोक-रञ्जनकारी, रमणीवल्लभ तथा यात्रा महोत्सवमें उत्साही होता है। शुक्र विगुण होनेसे मानव विद्याहीन, लम्पट,

कापुरुष रमणदूत, नीच सङ्गरत, मादकप्रिय और समानशीलकशून्य होता है।

व्याधि—शुक्रग्रहके वैगुण्यवशत शुक्रके विगुण होनेसे धातुकी पीड़ा, उपदंश, वीर्यहीनता, बहुमूत्र, मूत्रकृच्छ्र गर्भाशयका रोग और समस्त निन्दनीय पीड़ा होती है।

काय—शुक्रके अनुकूल होने पर मीनवशास्त्र, सङ्गीत, पट्टवस्त्र या रत्नव्यवसायी, सुकवि, चित्रकर अथवा रङ्ग भूमिका अध्यक्ष होता है। शुक्र प्रतिकूल होने पर माला कार, गन्धवणिक, स्त्रीका दमन, भूषण अथवा चित्र विक्रेता, नट शौण्डिक, घटक या रमणदूत होता है।

श्वेत अश्व, मेष वृष छाग चटक, पारावत, पाण्डुर और मनोहर स्वरविशिष्ट पक्षिगण शुक्रके प्रिय हैं। राम नामक, तमाल, आमलकी, चम्पक, पुन्नाक मेद, उडुम्बर, कबाबचीनी पान इलायची, दारचीनी गन्धपुष्प और लता आदि भी शुक्रके प्रिय हैं। शुक्रकी प्रीति और शान्तिके लिये हीरा उत्तम है धातुमें चाँदी और रांगा इसका प्रिय है। इसका वर्ण शुक्र होता है। मीनराशि शुक्रका उच्च स्थान है। मीनके २७ अंशमें शुक्रके अवस्थान करने से उसे पूज्य कहते हैं। इसी प्रकार कन्याराशि शुक्रका नीचस्थान है और २७ अंश इसका सुनीच है। वृष और तुलाराशि शुक्रका स्वगृह है।

शुक्र सूर्यांशमें रहनेसे विशेष बलवान् तथा विशेष शुभफलप्रद होता है। नीच अथवा सुनीचांशमें रहनेसे अशुभ फल देता है विशेषतः जातव्यक्तिका उच्चस्थानसे प्रायः अधःपतन हुआ करता है।

शुक्रकी सरल, शीघ्र, मन्द वक्र, अतिवक्र अतिचार और महातिचार ये ७ प्रकार गति हैं। यह ग्रह २२४ दिन ४२ दण्ड और ३ पलमें राशिचक्रका एक बार भ्रमण करता है। किन्तु पृथ्वीके सामनेमें सूर्यका ४७ अंश ४८ कलाके मध्य अपना कक्षा पर उसे परिभ्रमण करते देखा जाता है। प्रायः २६० दिन सूर्योदयके पहले पूर्व की ओर और उतना ही दिन सूर्यास्तके बाद पश्चिम की ओर दृष्टिगोचर होता है। इस कारण प्रातःकालमें उदित होनेसे इसको शुक्रतारा और सायंकालमें उदित होनेसे उसे सन्ध्यातारा कहते हैं। इसकी दैनिक गति १ अंश, १६ कला ७ विकला और ४३ अनुकला है। ४२ दिन वक्रगति और ३४ दिन स्थिरस्थिति है।

शुक्रके जन्मराशि आदिमें रहनेसे विभिन्न प्रकारका फल होता है। शुक्रके जन्मराशिमें जानेसे सुखवृद्धि, आमोद प्रमोदमें कालयापन सांसारिक कुशल और आत्मीयगणके साथ सौहार्दकी वृद्धि होती है। द्वितीय स्थानमें जानेसे अर्थ और वसन भूषणादि लाभ होते हैं, तृतीयमें आत्मीय स्वजनके साथ सुखसे कालयापन और भ्रमणजनित आनन्द लाभ होता है। चतुर्थमें स्वच्छन्दता और अर्थलाभ; पञ्चममें विलास, पुत्रवृद्धि, सांसारिक कुशल और सम्मानादि लाभ षष्ठमें रोग और शत्रुवृद्धि; सप्तममें स्त्रियोंके साथ कलह, प्रणय भङ्ग मनका चाञ्चल्य कलङ्क, धनक्षय, शारीरिक अत्याचार और शुक्रदोषजनित पीड़ा होता है। अष्टममें अर्थ लाभ, विशेषतः स्त्रीधनप्राप्ति; नवममें सुखवृद्धि और नाना प्रकारका लाभ, दशममें स्त्रियोंके साथ विच्छेद, कलह और अव्यवस्थितचित्त एकादशमें स्त्रीकी सहायतासे अर्थलाभ बन्धुबान्धवके साथ सौहृद वृद्धि और स्वच्छन्दता लाभ तथा द्वादशमें अर्थागम और सुखलाभ होता है।

शुक्रका शुभाशुभ फल स्थिर करनेमें पहले शुक्र दक्षिण वेधमें शुद्ध है या नहीं यह देखना होता है शुक्रके दक्षिण वेधमें शुद्ध होनेसे शुभ फल होता है।

इस ग्रहका स्वरूप—शुभग्रह जलदसदृश नीलवर्ण, श्वेत मालिन्ययुक्त, वायुप्रधान, पद्मपलाश लोचन, अलस बाहुशाली, रजोगुणावलम्बी, अतिकामी, गर्वित, गज कामी और अधिक शुक्रविशिष्ट होता है।

लग्नादि द्वादशस्थानमें शुक्रके अवस्थान करनेसे निम्नोक्त फल प्राप्त होता है। यथा—लग्नमें शुक्रके रहनेसे जातक विलासी गुणवान्, सुन्दरी स्त्री अथवा बहुललनायुक्त नीतिशास्त्र विशारद, सङ्गीत और काव्य शास्त्रप्रिय सदालापी और प्रफुल्लचित्त होता है। यदि तुला लग्नमें शुक्र और कुम्भराशिमें बृहस्पति रहे, तो जातक अत्यन्त सुरूप सम्पन्न होता है। किन्तु लग्न गत शुक्र पापयुक्त या पापदृष्ट होनेसे जातक और सङ्ग-

प्रिय, नाचामोदरत, अपव्ययी, कामासक्त और परस्त्रीरत होता है।

द्वितीय अर्थात् धन स्थानमें शुक्रके रहनेसे जातक अपनी विद्या या स्त्रीकी सहायतासे अथवा मद्य या गन्धद्रव्य और पट्टवस्त्र आदि व्यवसाय द्वारा प्रचुर अर्थ लाभ करता है।

तृतीय स्थानमें शुक्रके रहनेसे जातक सुन्दरी भगिनीयुक्त, विद्यानुशीलनसे विरत, ललनासक्त, भीरु और असहिष्णु होता है।

चतुर्थ स्थानमें रहनेसे जातक बहुमित्रयुक्त, सुशील, विनीत, निर्विरोध और प्रफुल्लचित्तवाला होता है। यह व्यक्ति अपूर्व आलय, उत्तम वाहन और नाना प्रकारका सुख लाभ करता है।

पञ्चम स्थानमें शुक्रके रहनेसे जातक कन्यासन्तति विशिष्ट, ललनासक्त, विलासी, रहस्यकारक, विद्वान्, काव्यप्रिय, शास्त्रवेत्ता, गुणवान्, धनवान् और बुद्धिमान होता है। यह शुक्र यदि पापग्रहसे न देखा गया हो, तो जातबालक उत्तम स्त्री पाता है। शुक्र अस्तगत या नीचस्थ हो कर छठे स्थानमें रहनेसे जातक विद्याहीन, भीरु, स्त्री शत्रुयुक्त और निन्दनीय पीडाक्रान्त होता है। यह शुक्र तुङ्गी या स्वक्षेत्रगत होनेसे जात व्यक्ति बहु भृत्य, भगिनी और कन्यासन्ततियुक्त, निर्विरोध और स्त्रीवशतापन्न होता है।

सप्तम स्थानमें शुक्रके रहनेसे जात मनोरमा स्त्री पाता है तथा वह गुणवान्, विलासी, आमोदप्रिय और रहस्यकारी होता है। किन्तु यह शुक्र शनि और मङ्गल द्वारा दृष्ट होने पर वह व्यक्ति इन्द्रियासक्त, परस्त्रीरत और दुःशीला रमणीका पति होता है।

अष्टम स्थानमें शुक्रके रहनेसे जातक स्त्रीसे धनलाभ करता है, परन्तु कलत्र, भगिनी या कन्याका नाश होता है तथा उसके विद्यानुशीलनमें व्याघात पहुंचता और बहुमूत्र अथवा शुक्रजनित पीड़ा या किसी निन्दनीय रोगसे उसकी मृत्यु होनेकी सम्भावना रहती है।

नवम स्थानमें शुक्रके रहनेसे मनुष्य विद्वान्, शिल्पविद्यानुरागी, वाणिज्यकुशल, विनीत, भाग्यवान् और धर्मरत होता है। किंतु यह शुक्र पापयुक्त या पापदृष्ट होनेसे इसका विपरीत फल मिलता है।

दशम स्थानमें शुक्रके रहनेसे जातक स्वाधीनसम्पन्न, ज्योतिष अथवा विज्ञानशास्त्रानुरागी, सदालापी, लोकरञ्जक और सङ्गीतप्रिय होता है। किंतु उक्त शुक्रके पापदृष्ट होने पर जातक शान्तिरक्षक या ग्रामभृत्यादि विक्रेता होता है।

एकादश स्थानमें शुक्रके रहनेसे जातक सङ्गीतप्रिय, उपार्जनक्षम, गुणसम्पन्न, जनरञ्जक, कीर्तियुक्त, सुखी, विलासी और भोगी होता है।

द्वादश स्थानमें शुक्रके रहनेसे मनुष्य ललनानुरत, प्रमोदी और विलासी होता है।

यह ग्रह यदि जन्मकालमें वक्री रहे, तो शुभफल प्राप्त होता है और यदि अशुभ ग्रहविशिष्ट हो कर शुक्र शुभग्रहके रहे, तो शुभाशुभ दोनों ही ग्रहके फलोत्पादन करता है।

बुध और शनिग्रह शुक्रग्रहका मित्र, रवि और चंद्र शत्रु तथा मंगल और बृहस्पति सम हैं। अतएव शुक्रग्रहके मित्रक्षेत्रमें अथवा मित्रके साथ एकत्र अवस्थान करनेसे इस प्रकार शत्रुके घर या शत्रुके साथ रहनेसे अशुभ फलप्राप्त होता है। समग्रहके गृहमें अथवा उनके साथ रहनेसे समरूप फलदान होता है।

मेषादि द्वादश राशिमें शुक्रके अवस्थान करनेसे जो फल होता है, वह नीचे लिखा है—

मेषराशिमें शुक्रके रहनेसे रोगार्त्त, बहुशोकयुक्त, विरोधशील, पराङ्गनाचोर, ईर्षायुक्त, वन और पर्वत पर विचरणकारी, स्त्रीके लिये बन्धनग्रस्त, नीच, कठोर, सेनानायक, विश्वासी और दाम्भिक होता है।

वृषराशिमें शुक्रके रहनेसे अनेक युवतीसेवित, धनी, कृषीबल, गन्धद्रव्यदाता, बन्धुपोषक, सुन्दर आकृति, विद्वान्, बहुसन्ततिविशिष्ट, सर्वप्राणीका हितकारी और गुण द्वारा सबोंका प्रधान तथा परोपकारी होता है।

मिथुन राशिमें शुक्रके रहनेसे विज्ञान और कलाशास्त्रमें ज्ञानसम्पन्न, विख्यात, वाग्मी, आलस्य, बन्धुबान्धवोंके प्रति साधु व्यवहारकारी, गीतशास्त्रमें निपुण, सुहृज्जनयुक्त, देवद्विजानुरत और दयाशील होता है।

कर्कटराशिमें शुक्रके रहनेसे रतिधर्मरत, पण्डित, मृदुस्वभाव, गुणियोंमें अग्रणी, सुखी, प्रियदर्शन, सुनाति-

परायण स्त्री या पानदोष प्रभावसे व्याधिपीड़ित और अपने कुलोत्पन्न व्यक्ति द्वारा सन्तप्त होता है।

मिथुनराशिमें शुक्रके रहनेसे युवतियोंकी उपासना द्वारा धन सुख और आमोदलाभकारी, लघुमस्त्व, बन्धुप्रिय, विचित्र सुखविशिष्ट, परोपकारी, गुरु, द्विज और आचार्य पोषणमें रत तथा अपने कार्यमें अमनोयोगी होता है।

कन्याराशिमें रहनेसे क्षुद्रचेता, मृदु निपुण परोप सेवी, कलाविज्ञाता, स्त्रीभूषणादि कातर, पापयुक्त, विफलचेष्ट, स्त्रीदोषदूषित, प्रणयी, दीन सुखभोग विहीन नीच और सभा आदिका हितकारी होता है।

तुलाराशिमें शुक्रके रहनेसे श्रमलब्ध वित्त द्वारा धनी, शूर, विचित्रमाल्याम्बरधारी, विदेशरत, सुदुष्कर कर्मनिपुण, रक्षणशील, मनोहर सत्कर्मकारी, द्विज और देवार्चना द्वारा लब्धकीर्ति, पण्डित और सौभाग्ययुक्त होता है।

वृश्चिकराशिमें शुक्रके रहनेसे विद्वेषरुचि, निष्ठुर, गर्वित, अति शठ, शत्रुदमनकारी श्रेष्ठ, कुलद्वेषी बन्धनग्रस्त दरिद्र, गर्हितकार्यकारी और समस्त गुप्त रोगग्रस्त होता है।

धनुराशिमें शुक्रके रहनेसे उत्तम कर्म द्वारा धनी और उन्नत, सबोंका प्रिय, सुन्दर आकृतियुक्त विद्वान्, सच्चरित्र स्वामीभाग्ययुक्त, राजमन्त्री सबोंका प्रधान, साधुओंका पूज्य और सुकवि होता है।

मकर राशिमें शुक्रके रहनेसे व्यायामकातर, दुर्बल देह, वेश्यासक्त कासरोगाक्रान्त, धनलुब्ध, मिथ्यावादी वञ्चक क्रोधभावापन्न, दुःखी, मूर्ख और क्लेशसहिष्णु होता है।

कुम्भराशिमें शुक्रके रहनेसे सर्वदा विफल कार्यमें नियुक्त वेश्यासक्त, स्वधर्मत्यागी, गुरु और पुत्रके साथ सदा कलहकारी, स्नान, भूषण और भोगरहित और बलवान् होता है।

मीनराशिमें शुक्रके रहनेसे दाक्षिण्ययुक्त, दानशील गुणवान धनी शत्रुविजेता, लोकविख्यात, श्रेष्ठ, राजप्रिय, स्वजनप्रतिपालक पण्डित, कुलश्रेष्ठ और ज्ञानवान् होता है। मीनराशि शुक्रका तुङ्गस्थान है अतएव उस स्थानमें शुक्रके रहनेसे सभी प्रकारका शुभफल मिलता है। शुक्र स्वाभाविक जो सब भावफल हैं, उन सब भावोंकी वृद्धि होती है।

शुक्र द्वादश राशिमें रह कर उक्त प्रकारका फल देता है सही पर उन सब राशिमें रहते समय रव्यादि ग्रह द्वारा दृष्ट होने पर फलकी भिन्नता होती है। यथा—

शुक्र मङ्गलके गृहमें रह कर यदि रवि कर्त्तृक दृष्ट हो तो स्त्रीसे दुःखी तथा स्त्री द्वारा सुख नष्ट और धनी होता है। वह शुक्र यदि चन्द्र कर्त्तृक दृष्ट हो तो उद्धत, चपल, कामातुर और अधम युवतीका भक्त होता है। वह शुक्र मङ्गल द्वारा दृष्ट होने पर धन, सुख और मानहीन, दीन, परदाराशी और मलिनवसनधारी। बुधके देखनेसे मूढ़, प्रचण्ड, अनार्यभावसम्पन्न, बन्धुओंका अनिष्टकारी विनयहीन, चोर, क्षुद्रप्रकृतिवाला और क्रूर, बृहस्पतिके देखनेसे विनयी, उत्तम पत्नीयुक्त, सुन्दर और आयतदेह तथा बहु पुत्रयुक्त; शनिके देखनेसे अतिशय मलिनदेहयुक्त, निर्धन, लोकसेवक और चोर होता है।

स्वगृहस्थित शुक्र रवि कर्त्तृक दृष्ट होने पर उत्तम स्त्रीसम्पन्न तथा स्त्रीहेतुक निर्जित होता है। वह शुक्र चन्द्र द्वारा दृष्ट होने पर सुखी, धनी और उत्तम पत्नीयुक्त, गुणवान् पुत्रविशिष्ट, धार्मिक और सुन्दरकान्ति, मङ्गलके देखनेसे दुःशीला स्त्रीके स्वामी, स्त्रीके लिये सम्पत्तिविहीन और अतिशय कामुक, बुधके देखनेसे सुन्दर आकृति, मधुरभाषी, भाग्यवान्, धैर्यशील सुखी, बलवान सर्वगुणान्वित और विख्यात बृहस्पतिके देखनेसे स्त्री, पुत्र गृह, धन और वाहनविशिष्ट तथा अतिशय चेष्टायुक्त, शनिके देखनेसे अल्प सुखी और अल्प धनसम्पन्न, दुःशील असती स्त्रीका पति और सर्वदा पीड़ित होता है।

बुधके घर शुक्र रह कर यदि रवि द्वारा दृष्ट हो, तो राजा, जनता और स्त्रीका प्रिय तथा धनी और सुखी होता है। वह शुक्र चन्द्रकर्त्तृक दृष्ट होने पर कृष्णकेश सुकेशयुक्त, कमनीय मूर्त्ति, मृदुस्वभाव, सुन्दरभाग्ययुक्त, मङ्गलके देखने पर अति कामुक और युवती स्त्रीके प्रिय सदाचारी होता है। बुधके देखनेसे पण्डित मधुरभाषी धनवान्, उत्तम भाग्ययुक्त, गणाध्यक्ष और प्रभु; बृहस्पति

के देखनेसे अति दुःखी, प्राज्ञ, आचार्य तथा शनिके देखनेसे अति दुःखी, मल्ल द्वारा पराभूत, चपल, द्वेष्य और मूर्ख होता है।

चन्द्रके घर शुक्र रह कर रवि द्वारा दृष्ट होने पर धर्म कुशल, क्रोधी और धनयुक्त तथा पत्नी उसके धनसे धनी होती है। वह शुक्र चन्द्र द्वारा दृष्ट होने पर पहले कन्या जन्म लेती है तथा जातक अधिक सन्ततिविशिष्ट, उत्तम भाग्यवान् और मलिन देहवाला होता है; मङ्गलके देखनेसे सुन्दर कलावेत्ता, अति धनी, स्त्रीहेतुक दुःखी, सुखी और बंधुओंका वृद्धिकर; बुधके देखनेसे विदुषी भार्यायुक्त, बन्धुके लिये दुःखभागी, असुखी, धनहीन और प्राज्ञ; बृहस्पतिके देखनेसे सर्वदा धन, पुत्र, भृत्य, वाहन, बन्धुविशिष्ट और राजप्रिय, शनिके देखनेसे स्त्री निर्जित, दरिद्र, पण्डित, रूपहीन, चपलस्वभाव और सुखविहीन होता है।

रविके घर शुक्र रह कर यदि रवि द्वारा दृष्ट हो, तो ईर्षायुक्त, कन्याप्रिय, कामार्त्त, युवतीके लिये धनी होता है। वह शुक्र यदि चन्द्र द्वारा दिखाई दे, तो माता सपत्नीके लिये और पिता युवतीस्त्रीके लिये सर्वदा दुःखित होते हैं तथा स्वयं धनी और बुद्धिमान् होता है। उस शुक्रको मङ्गल देखनेसे राजपुरुष, विख्यात, युवती स्त्रीका कार्यप्रिय, धनी, भाग्यवान् और परदाररत, बुधके देखनेसे लोभी, परदारपरायण, शूर, शठ, मिथ्यावादी और धनी; बृहस्पतिके देखनेसे वाहन, धन और भृत्ययुक्त तथा बहुदारपरिग्रहणशील; शनिके देखनेसे राजा या राजाके समान, विख्यात, कोषवाहन, समृद्धिसम्पन्न, रण्डापति, सुन्दररूपविशिष्ट और दुष्टपुत्रविशिष्ट होता है।

बृहस्पतिके घर शुक्र रह कर रवि द्वारा दृष्ट हो, तो अतिशय क्रूर, अत्यन्त शूर, पण्डित, धनी और विदेशगामी होता है। यदि उस शुक्रको चन्द्र देखता हो, तो विख्यात राजपुरुष, भोगी, लुब्ध और बलहीन होता है। मङ्गलके देखने पर स्त्रीद्वेष्टा और सुख, बुधके देखने पर आभरण, भूषण, अन्न, पान, वस्त्र वाहनयुक्त और धनी, बृहस्पतिके देखनेसे हस्ती और गोधनयुक्त, अनेक पुत्रकलत्र विशिष्ट, सुखी और धनशाली; शनिके देखनेसे सुखी, सर्वदा रोगी तथा धनवान् और शूर होता है।

शनिके घर शुक्र रह कर रवि द्वारा दृष्ट होने पर महा वीर्यवान और सुखी होता है। वह शुक्र यदि चन्द्र द्वारा दृष्ट हो, तो तेजस्वी, रूपवान्, उत्तम भाग्यविशिष्ट और कमनीय मूर्त्तिवाला होता है। उस शुक्रको मङ्गल देखनेसे मनस्तापविनष्टकारी, बहुल अनर्थयुक्त, रोगी, श्रमरत और वृद्धावस्थामें सुखी। बुधके देखनेसे वस्त्र, माल्य और गन्धप्रिय, सुन्दर आकृतिसम्पन्न, गीतवाद्यकुशल और सुन्दरी पत्नीविशिष्ट; बृहस्पतिके देखनेसे बुद्धिमान, रत्नप्रिय और सुखी; शनिके देखनेसे श्रेष्ठवाहन, अर्थ और भोगविशिष्ट तथा शोभाहीन होता है।

ऊपरमें जो दृष्टिका विषय लिखा गया, उसे पूर्ण दृष्टि समझना होगा। अर्द्धदृष्टि या त्रिपाद दृष्टिविषयमें उक्त प्रकारका सम्पूर्ण फल नहीं होगा।

शुक्रारिष्ट—कर्कट और सिंहराशि यदि जातबालकके जन्मलग्नकी द्वादश, षष्ठ अथवा अष्टमराशिकी कोई राशि हो तथा उसमें शुक्रग्रह रहे और पापग्रह उस शुक्रको देखता हो, तो जातबालकको ६ वर्षके भीतर मृत्यु होती है।

इसके सिवा शुक्रके शयनादि द्वादश भावका भी विचार कर फल निरूपण करना होता है। क्योंकि, भावफलका भी अच्छी तरह विचार कर देखना आवश्यक है। इस फलका विषय फलितज्योतिषमें इस प्रकार लिखा है—

लग्नसे सप्तम अथवा एकादश स्थानमें शुक्रके शयनभावमें रहने पर जिसका जन्म हो, वह नाना प्रकारका सुखभोग करता है, जीवनमें कभी दरिद्र नहीं होता। उसे अधिक सन्तान होती है। शुक्र यदि दुर्बल हो, तो अल्पसंख्यक पुत्र जन्म लेता है। फिर यदि सप्तम या एकादश स्थानमें न रह कर अन्य स्थानमें निद्राभावमें रहे, तो वह जातक विद्वान्, धनी, धार्मिक और नाना प्रकारका सुखसम्पन्न होता है, किन्तु उसके पुत्रका नाश अवश्यम्भावी है।

शुक्रके उपवेशनभावकालमें जन्म होनेसे जातक धनी और धार्मिक होता है तथा उसके दक्षिणाङ्गमें क्षतचिह्न और सन्धिस्थानमें वेदना रहती है। वह शुक्र यदि तुङ्गगत या स्वक्षेत्रगत हो, तो जातक अति दाता और सुखी होता है।

जन्मकालमें शुक्र नेत्रपाणिभावमें रहनेसे जातकके चक्षु विनष्ट होते हैं और यदि सप्तम स्थानमें उसी भावमें रहे, तो चक्षुनाश निश्चय ही होता है। इसी भावमें कर्मस्थानमें रहनेसे इतनी दरिद्रता आ जाती है, कि वह समुद्र भी शोषण कर सकता है। इन सब स्थानोंको छोड़ अन्यस्थानमें उसी भावमें रहनेसे जातक दो पत्नीका पति और नानाविध सुखैश्वर्य पाता है।

शुक्रके लग्नस्थानमें, द्वितीयमें, सप्तम या नवमगृहमें प्रकाशभावमें रहनेसे जातक धार्मिक और विशुद्ध होता है। यह शुक्र तुङ्गगत या मित्रक्षेत्रगत हो, तो प्रसूत बालक राज्यप्रतिष्ठा लाभ करता है। इन सब स्थानोंको छोड़ अन्य स्थानमें रहनेसे जातक सर्वदा रोगग्रस्त, नियत विदेशवासी, दुःखभोगी और नृत्यकर्ममें रत होता है।

जन्मकालमें शुक्रके गमनेच्छाभावमें रहनेसे जातकका भ्रातृनाश और मातृवियोग होता है तथा बाल्यकालसे ही वह रोग भुगता है।

जन्मकालमें शुक्रके गमनभावमें रहनेसे जातबालक सभी कार्योंमें उत्साही, शिल्पकर्ममें निपुण और सर्वदा गमनमें रत होता है तथा उसके गुल्फदेशमें क्षतचिह्न रहता है।

जन्मकालमें शुक्रके सभावस्थितिभावमें रहनेसे मानव राजमन्त्री धनी और सभी कार्योंमें दक्ष होते हैं किन्तु उन्हें शूलरोग हुआ करता है। यह शुक्र यदि अरिगृहवासी हो या अरिके साथ रहता हो अथवा शत्रु कर्तृक पूर्णेक्षित हो, तो उसका सर्वस्व नाश होता और उसे नाना प्रकारकी व्याधि होती है।

शुक्रजन्मके समय यदि आगमनभावमें रहे तो मानव दुःखी, बहुभाषी, दद्रु रोगी, पुत्रशोकातुर और नराधम होते हैं। यह शुक्र रिपुगृहगत या रिपुके साथ एकत्र अवस्थित या रिपुकर्तृक वीक्षित होने पर उसकी सर्व सम्पत्तिका नाश, विशेषतः स्त्री और पुत्रका नाश होता है। आगमनभावस्थ शुक्रके लग्नसे द्वितीय, दशम चतुर्थ अथवा अष्टमगृहमें रहनेसे जातबालक सभी प्रकारके दुःखोंका भाजन होता है। इसमें फिर कोई विचार करनेकी आवश्यकता नहीं।

जन्मकालमें शुक्रके भोजनभावमें रहनेसे जातक बलवान्, धार्मिक वाणिज्य या नौकरीसे अत्यन्त धनवान्, मन्दाग्नियुक्त, पित्तशूलरोगी, शिरोरोगी, सर्वदा पीड़ित और विदेशवासी होता है।

शुक्र नृत्यलिप्सा भावमें रहनेसे जातक वाग्मी होता है तथा दिनों दिन उसकी कवित्वशक्ति और पाण्डित्य की वृद्धि होती है। किन्तु यह शुक्र नीचगृहस्थित हो, तो जातक मूर्ख होता है। यदि उक्त शुक्र अपने तुङ्ग स्थान अथवा स्वक्षेत्रमें रहे, तो वह व्यक्ति राजमन्त्री, महा बलशाली, कामुक, अनेक स्त्रीविशिष्ट, सर्वदा परस्त्रीरत श्यामवर्ण मानी और धनी होता है।

जन्मकालमें शुक्रके कौतुकभावमें रहनेसे मानव धनवान्, सात्त्विक, अतिशय आह्लादयुक्त उत्तमवक्ता, सर्वदा कौतुककारी, बहुपुत्र और बहुकलत्रयुक्त तथा नाना प्रकारके सुखविशिष्ट होता है। किन्तु यह शुक्र यदि नीचस्थान स्थित हो, तो उक्त फलोंका विपरीत फल होता है।

शुक्रके निद्राभावमें जन्म होनेसे मानव नियत कुश युक्त रोगी, दरिद्र विकलाङ्ग और स्थूलदेहवाला होता है, किन्तु यह शुक्र यदि उसके मित्रक्षेत्रमें रहे, तो उसका सर्वसम्पत्ति विनष्ट होती है।

इसी प्रकार शयनादि बारह भावोंका फल स्थिर कर के ग्रहका शुभाशुभ निरूपण करना होता है।

शुक्रका क्षेत्रफल—शुक्रके क्षेत्रमें जन्म होनेसे जातक वाणिज्यकुशल, धीर, विपयी, प्रियदर्शन और नृत्यगीतानुरक्त होता है।

शुक्रका द्रेक्काणफल—शुक्रके द्रेक्काणमें जन्म होनेसे सुरूप राजमन्त्री, स्वजनानुरागी, कर्मकुशल, दाता और साधुजनोंका प्रतिपालक उत्तमा पत्नी और गुणवान् पुत्रयुक्त दयालु, शुचि और शांत प्रकृतिवाला तथा धर्मानुरागी होता है।

शुक्रका नवांश फल—शुक्रके नवांशमें जन्म होनेसे मनोहर चक्षु, सुन्दरकेश, शोभनमूर्ति शूर, विद्वान् और कवित्वशक्तिसम्पन्न, धनी, दाता और गुणग्राही होता है।

शुक्रका द्वादशांश फल—शुक्रके द्वादशांशमें जन्म लेनेसे

जातक कीर्त्ति और बलशाली, लोकपूजित, कवि, विचक्षण और दाता होता है।

शुक्रका त्रिंशांश फल—शुक्रके त्रिंशांशमें जन्म होनेसे सुरूप, दाता, धर्मपरायण और नृत्यगीतानुरागी होता है।

शुक्रग्रहका भोग दिन शुक्रवार और शुक्रग्रह है। अतएव यह ग्रहभोग्य दिन भी शुभदिन है। इस दिन सभी शुभकार्य किये जा सकते हैं। इस वारमें जन्म होनेसे जातक कुटिल, दीर्घजीवी, नीतिशास्त्रविशारद और नारियोंका चित्तहारक होता है।

इन सब फलोंका अपने दशाकालमें विशेषरूपसे भोग होता है। अष्टोत्तरी मतसे शुक्रका दशाभोगकाल २१ वर्ष है। सभी ग्रहोंसे इस ग्रहका दशाभोगकाल बहुत लंबा है।

उत्तरभाद्रपद, रेवती, अश्विनी और भरणी नक्षत्रमें जन्म होनेसे पहले शुक्रकी दशा होती है। यह दशा २१ वर्ष है। इसके प्रति नक्षत्रमें ५ वर्ष, ३ मास, २२ दिन, ३० दण्ड भोग, प्रतिदण्डमें १ मास, १ दिन, ३० दण्ड और प्रति पलमें ३१ दण्ड ३० पल भोग होता है।

शुक्रके दशाभोगकालमें मानवकी मंत्रसिद्धि, प्रमदासंगलाभ, सम्मान, वदान्यता, राजपूजा, हाथी, घोड़े आदि सवारियोंमें जाना, मनोरथसिद्धि, अर्थसञ्चय और राजलक्ष्मी लाभ होता है। यह शुक्रका स्थूल फल है। शुक्र शुभग्रह है, इस कारण इसकी दशामें उक्त प्रकारका शुभफल होता है। किंतु फलविचार कालमें शुक्र किस भावमें है, उसका लक्ष्य रखना कर्त्तव्य है। यदि वह ग्रह शुभ भावमें अवस्थित हो, तो शुभफल, नहीं तो अशुभफल होता है।

शुक्रकी स्थूलदशा २१ वर्ष है, इस २१ वर्षमें फिर अन्तर्दशा आदि हैं। उनका भोगकाल इस प्रकार लिखा है।

शुक्रकी दशाका प्रथम ४ वर्ष १ मास शुक्रकी ही अन्तर्दशा है, पीछे शु, र, १ वर्ष २ मास। शु, च, २ वर्ष ११ मास। शु, म, १ वर्ष ६ मास २० दिन। शु, बु, ३ वर्ष ३ मास २० दिन। शु, श, १ वर्ष ११ मास १० दिन। शु, वृ, ३ वर्ष ८ मास १० दिन। शु, र, २ वर्ष ४ मास।

इस अन्तर्दशामें फिर प्रत्यन्तविभाग है, विस्तार हो जानेके भयसे वह नहीं लिखा गया।

विंशोत्तरीमतसे इस दशाका भोगकाल २० वर्ष है। पूर्वफल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा या भरणी नक्षत्रमें जन्म होनेसे शुक्रकी दशा होती है।

इस दशाकी अन्तर्दशा—शुक्र, शुक्र, ३ वर्ष ४ मास, शु, र, १ वर्ष। शु, च, १ वर्ष ८ मास। शु, म, १ वर्ष २ मास। शु, र, ३ वर्ष। श, वृ, २ वर्ष ८ मास। श, श, ३ वर्ष २ मास। श, बु, १ वर्ष १० मास। श, के, १ वर्ष १ मास।

विंशोत्तरी मतसे किस प्रकार दशान्तर्दशादिका स्थिर और उसका विचार करना होता है, पराशर उसे अच्छी तरह निर्णय कर गये हैं। विस्तार हो जानेके भयसे उसका उल्लेख नहीं किया गया।

३ ज्येष्ठ मास, जेठ। यह कुबेरका भंडारी कहा गया है। ४ स्वच्छ और शुद्ध सोम। ५ चित्रक वृक्ष, चीता। ५ सार, सत। ६ बल, सामर्थ्य, पौरुष। ७ सप्ताहका छठा दिन जो वृहस्पतिवारके बाद और शनिवारसे पहले पड़ता है। ८ आंखकी पुतलीका एक रोग, फूला, फूली। ९ एरण्डवृक्ष, रेंड। १० स्वर्ण, सोना। ११ धन, दौलत।

शुक्र (अ० पु०) धन्यवाद, कृतज्ञता प्रकाश।

शुक्रकर (सं० पु०) करोतीति कृ पचाद्यच्, शुक्रस्य करः। १ मज्जा। (त्रि०) २ वीर्यकारक, शुक्रवर्द्धक।

शुक्रकृच्छ्र (सं० क्ली०) शुक्रस्य कृच्छ्रं। मूत्रकृच्छ्र रोग, सूजाक।

शुक्रगतज्वर (सं० पु०) शुक्राश्रित ज्वर, वह ज्वर या बुखार जो शुक्र धातुको आश्रय करके होता है। जिस ज्वरमें लिङ्गकी स्तब्धता तथा विशेषरूपसे शुक्र क्षरण होता है, उसे शुक्रगत ज्वर कहते हैं।

शुक्रगुजर (फा० पु०) एहसान माननेवाला, धन्यवाद देनेवाला, कृतज्ञ।

शुक्रगुजारी (फा० स्त्री०) एहसानमंदी, किये हुए उपकारका मानना।

शुक्रज (सं० पु०) शुक्राज्जायते जन-ड। १ शुक्रजातमात्र, पुत्र, बेटा। २ देवताओंका एक भेद। ३ मेह रोग विशेष।

शुक्रज्योतिस् (सं० क्ली०) अत्यन्त उज्ज्वल।

शुक्लतार्क्ष (सं० पली०) सौदामेद शुक्लतार्क्ष।

शुक्रद (सं० त्रि०) शुक्र ददातीति दा क। १ शुक्रदायक, शुक्रकारक। (पु०) २ गोधूम, गेहूं।

शुक्रदन्त (सं० पु०) काश्मीरका एक मन्त्री।

शुक्रदुघ (सं० पु०) दुग्धदोग्ध्री धेनु वह गाय जिसका दूध दुहा जाय। (ऋक् ६।२५।८)

शुक्रदोष (सं० पु०) क्लीवत्व नपुंसकता।

शुक्रधारा (सं० स्त्री०) सप्तमी कला। यह प्राणियोंकी मजाधारकदायिनी है।

शुक्रप (सं० त्रि०) निर्मल सोमपायी।

शुक्रपिश् (सं० त्रि०) शोभमानरूपा श्री।

शुक्रपुष्प (सं० पु०) कुन्दवक शाक, करसरैया।

शुक्रपुष्पा (सं० स्त्री०) श्वेतापराजिता सफेद अपराजिता।

शुक्रपूतप (सं० त्रि०) निर्मल सोमपायी।

शुक्रप्रमेह (सं० पु०) धातुक्षोपना, धातका गिरना। यह एक रोग है।

शुक्रभुज् (सं० पु०) शुक्र भुङ्क्ते इति भुज क्विप्। १ मयूर, मोर। (त्रि०) २ रेतोभोजक।

शुक्रभू (सं० पु०) शुक्र द्रु भूरुत्पत्तिस्थानं यस्य। मज्जा।

शुक्रमातृ (सं० स्त्री०) भार्गी, वमनेटी।

शुक्रमातृकावटिका (सं० स्त्री०) प्रमेहरोगाधिकारकी एक औषध। इसके बनानेकी तरकीब—गोखरूका बीज, त्रिफला, तेजपत्र, इलायची रसाञ्जन, धनिया जीरा तालीशपत्र सोहागा, अनारका बीज प्रत्येक ४ तोला, पारा, अभ्र, गन्धक और लौह प्रत्येक ८ तोला १ इन अनारके रसमें मर्दन कर ५ रत्तीकी गोली बनावे। अनुपान अनारका रस बकरीका दूध या जल है। इस औषधका सेवन करनेसे प्रमेह, मूत्रकृच्छ और अश्मरी रोग दूर होता है।

शुक्रमूत्रल (सं० त्रि०) शुक्र और मूत्रयुक्त।

शुक्रमेह (सं० पु०) मेहरोग भेद, प्रमेहरोग। जिस प्रमेह रोगमें शुक्रके समान सफेद और पेशाबके साथ शुक्र (धातु) निकलता है, उसे शुक्रमेह कहते हैं। विशेष विवरण प्रमेह शब्दमें देखो।

शुक्रमेहिन् (सं० त्रि०) शुक्र मेहति मिह णिनि। शुक्र मेहरोगी, जिसे शुक्रमेह रोग हुआ हो।

शुक्ररूप (सं० पु०) शुक्र रूप यस्य। अग्नि।

शुक्रल (सं० त्रि०) १ धातुदाता, धातुवर्द्धक। २ अधिक शुक्रविशिष्ट।

शुक्रला (सं० स्त्री०) शुक्र लाति ददाति ला क टाप्। १ उच्चटा, उटंगनका बीज। २ आमलकवृक्ष, आवलाका पेड़।

शुक्रवत् (सं० त्रि०) शुक्र अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। शुक्रविशिष्ट, प्रशस्त शुक्रयुक्त।

शुक्रवचस् (सं० त्रि०) निर्मल तेजस्क।

शुक्रवर्ण (सं० त्रि०) दीप्तवर्ण, उज्ज्वलवर्ण।

शुक्रवह (सं० त्रि०) शुक्रवहनकारी स्रोत।

शुक्रवहस्रोतस् (सं० क्ली०) शुक्रवहनाडी, वह नाडी जिससे शुक्र प्रचालित होता है। इसका मूल लिङ्ग और दो वृषण (फोता) है। (चरक)

शुक्रवार (सं० पु०) शुक्रस्य वार। शुक्रग्रहभोग्य दिन, सप्ताहका छठा दिन जो वृहस्पतिवारके बाद और शनि वारके पहले पड़ता है। शुक्र ग्रह शुभ ग्रह है, सुतरां यह ग्रह भोग्य दिन भी सभी कार्मोंमें शुभ है ज्योति शास्त्रके मतसे इस दिन पश्चिमकी ओर यात्रा नहीं करनी चाहिए। विद्यारम्भमें यह दिन मध्यम माना गया है। शुक्रवारको तिल तर्पण करना उचित नहीं, किन्तु यदि अयन विषुवसंक्रान्ति ग्रहण उपाकर्म, उत्सर्ग युगाद्य और मृतदिनमें शुक्रवार पड़े, तो तिल तर्पणमें दोष नहीं होता। (प्रायश्चित्ततत्त्व)

शुक्र शब्द देखो।

शुक्रवासस् (सं० पु०) शुक्र वासो यस्य। १ श्वेत वसन सफेद कपड़ा। २ निर्मल दीप्ति।

शुक्रशिष्य (सं० पु०) शुक्रस्य शिष्यः। शुक्राचार्यका शिष्य असुर, दैत्य।

शुक्रशोचिस् (सं० त्रि०) दीप्तवर्ण अग्नि।

शुक्रसद्मन् (सं० त्रि०) निर्मल अन्तरीक्षवासी।

शुक्रसुत (सं० पु०) शुक्रस्य सुतः। १ शुक्रका पुत्र। २ केतुभेद। चतुरशीति संख्यक केतुका नाम शुक्रसुत है। यह केतु उत्तर दिशा या ईशान कोणमें दिखाई देता है। (वृहत्संहिता ११।१७)

शुक्रस्तम्भ (सं० पु०) ध्वजभङ्ग या नपुंसकताका एक

भेद। यह बहुत दिनों तक ब्रह्मचर्य पालन करनेसे होता है।

शुक्रस्तोम (सं० पु०) साध्ययज्ञभेद।

शुक्रक्षरण (सं० क्लो०) शुक्रका नाश, शुक्रका क्षय।

शुक्रा (सं० स्त्री०) वंशलोचना, वशलोचन।

शुक्राङ्ग (सं० पु०) मयूर, मोर।

शुक्राचार्य (सं० पु०) एक ऋषि। ये दैत्योंके गुरु और महर्षि भृगुके पुत्र थे। इनकी कन्याका नाम देवयानी और पुत्रोंका षण्ड तथा अमर्क था। देवगुरु वृहस्पतिके पुत्र कचने इनसे संजीवनी विद्या सीखी थी। पौराणिक उपाख्यानके शर्मिष्ठा-देवयानीसंवादमें तथा वलिराजके यज्ञमें इनकी क्रूरता और चक्षुहीनताका परिचय मिलता है। ययाति और वलि देखो।

शुक्राधिक्य (सं० क्लो०) शुक्रस्य आधिक्य। श्लेष्म जन्य रोगविशेष।

शुक्रालयता (सं० स्त्री०) पित्तजन्य रोगविशेष।

शुक्राश्मरी (सं० स्त्री०) शुक्रजन्य अश्मरीरोग, वह पथरी जो स्खलित होते समय वीर्यको रोकनेसे उत्पन्न होती है।

शुक्रवेगधारणके हेतु महत् अर्थात् वयःप्राप्त व्यक्तियों-के यह रोग होता है। छोटे छोटे लडकोंके यह नहीं होता, क्योंकि उसके सूक्ष्म शुक्र रोकनेसे अनिष्टकी सम्भा-वना नहीं है। जब कामवेगवशतः स्वस्थानच्युत शुक्र स्खलित न हो कर वायुकर्त्तृक शिश्न और दोनों शुष्कके मध्यगत वस्तिमुखमें धृत और शोषित होता है, तब यह रोग उत्पन्न होता है। इस रोगमें रोगीके मूत्रा शयमें वेदना होती और बड़े कष्टसे पेशाब उतरता है तथा दोनों अण्डकोष सूज आते हैं। इस रोगके उत्पन्न होते ही शुक्रस्खलन होने लगता है तथा शिश्न और मुष्कका मध्यदेश दर्द करनेसे अश्मरी भीतरमें लीन हो जाती है। यह रोग होनेसे दुवल, शरीरकी अवसन्नता, कृशता, कुक्षिशूल, अरुचि, पाण्डु, मूत्राघात, पिपासा, हृद्रोग और वमि ये सब उपद्रव होते हैं।

शुक्रिमन् (सं० पु०) शुक्रस्य भावः शुक्र (वर्णादृढा दिभ्यः ष्यञ् च। पा ५।१।१२३) इति इमनिच्। शुक्रका भाव।

शुक्रिय (सं० त्रि०) १ शुक्र-सम्बन्धी, शुक्रका। २ शुक्र देवताक हविः आदि। (याज्ञवल्क्य ३।३०८) ३ शुक्रवत्, शुक्रविशिष्ट।

शुक्रिया (फा० पु०) धन्यवाद, कृतज्ञता प्रकाश।

शुक्रेश्वर (सं० क्लो०) शिवलिङ्गभेद।

शुक्ल (सं० पु०) शुच रन्, रस्य ल। १ वर्णविशेष, सफेदी। पर्याय—शुभ्र, शुचि, श्वेत, विशद, श्येत, पाण्डर, अवदात, सित, गौर, वलक्ष, धवल, अर्जुन, श्वेता, श्येता, स्येनी, विपद, सिता, अवलक्ष, शिति, पाण्डु, राम, खरु। (जटाधर)

२ शुक्लपक्ष, प्रतिमासमें दो पक्ष होते हैं, शुक्ल और कृष्ण। जब चन्द्रवृद्धि होती है, तब शुक्लपक्ष और जब चन्द्रका क्षय होता है, तब उसे कृष्णपक्ष कहते हैं।

(त्रि०) ३ शुक्लगुणयुक्त। शुक्लवस्तु ये सब हैं—सुधांशु, उच्चैश्रवाः, शम्भु, कीर्त्ति, ज्योत्स्ना, शरद्घन, प्रासाद, सौध, तगर, मन्दारद्रुम, हिमाद्रि, सूर्येन्दुकान्त, कर्पूर, करभ, रजत, हली (वलराम), निर्मोक, भस्म, हिण्डीर, चन्दन, शङ्ख, हिम, हार, ऊर्णनाभ, तन्तु, अस्थि, स्वर्गङ्गा, हस्तिदन्त, अभ्रक, शेषाहि, शर्करा, दुग्ध, दधि, गङ्गा, सुधा, जल, मृणाल, सिकता वक, कैरव, चामर, रम्भागर्भ, पुण्डरीक, केतकी, शङ्ख, निर्झर, लोध्र, सिंह-ध्वज, छत्र, चूर्ण, शुक्ति, कपर्दक, मुक्ता, कुसुम, नक्षत्र, दन्त, पुण्य, गुण, कैलास, काश, कार्पास, हास, वास। कुञ्जर (ऐरावत), नारद, पारद, कुन्द, स्फटिक और स्फटिक आदि द्रव्य शुक्लवाचक हैं। शुक्लकृष्णवाचक—

विधु—इस शब्दसे चन्द्र और विष्णुका बोध होता है, चन्द्र शुक्ल और विष्णु कृष्ण हैं, अतएव यह शब्द शुक्लकृष्णवाचक है। इसी प्रकार हरिकृष्ण, सिंह। शिति—धवल और मोचक। तारा—नक्षत्र और चक्षु-की कनीनिका। अभ्रक—गिरिज और मेघ। नागराज—शेष और गज। घनसार—कर्पूर और मेघश्रेष्ठ। राम—वलराम और दाशरथि। पयोराशि—दुग्धसमूह और समुद्र। अर्जुन—शुभ्र और पार्थ। सिंहीज—सिंह और राहु। अनन्त—वलभद्र और कृष्ण। चंद्र-हास—चन्द्रहास्य और खड्ग। शङ्कर—कम्बुकान्ति

और कृष्ण। तारकेश—चन्द्र और उज्ज्वलवर्ण। मरा-
कान—सर्वदा पाप और सद्गुणगत। व्योमक—
शिव और नमोगत। नालाट्ठ—चन्द्र और तार
कन्द्र। मालाशुक्ल चन्द्र और कृष्णकान्ति। अधि-
पन—अधिक शिव और अधिकवर्ण। अरिष्ट—शुक्र
और काक। महासितच—सितच शब्दसे चन्द्र और
असितच शब्दसे मेघ होता है। कलकण्ठ—हंस
और पिक। इत्यादि। (कविकल्पलता)

(क्ली०) ४ रजत, चांदी। ५ नवनीत, मक्खन।
६ नासारोग, सफेद लोध। ७ घृत, घी। ८ श्वेत
एरण्ड, सफेद रेंड़। ९ नेत्ररोगविशेष, आंखोंका एक
रोग। यह रोग आंखके [illegible] पर होता है।
वैद्यकमें लिखा है, कि दोनों नेत्रके शुक्ल भागमें प्रस्ता
र्मा, शुक्लार्म, रक्तार्म, अधिमांसार्म और स्नाय्वर्म,
शुक्ति, अर्जुन, पिड़क, शिराजाल, सिराजोड़का और
बलासग्रथित ये ग्यारह प्रकारके रोग होते हैं।

इनका विवरण नेत्ररोग शब्दमें देखो।

जिस रोगमें शुक्लमण्डलमें कुछ सफेद मांस कामल
मांसाच्छादित हो कर दूरीसे देखता है, उसे शुक्लार्म
कहते हैं।

१० ब्राह्मणोंकी एक पदवी। ११ योगविशेष, शत्रु
योग। १२ विष्णुका एक नाम।

(त्रि०) १३ सफेद उज्ज्वल।

शुक्लक (सं० पु०) शुक्ल स्वार्थे कन्। १ शुक्ल पक्ष।
२ श्वेतवर्ण। ३ शाल्मली वृक्ष, सिमलीका पेड़।

शुक्लकन्द (सं० पु०) शुक्लकन्द देखो।

शुक्लकण्ठ (सं० पु०) शुक्लः कण्ठो यस्य सः। १
दात्यूहपक्षी, मुर्गाबी। (त्रि०) २ श्वेतवर्ण गलयुक्त
जिसका गला सफेद हो।

शुक्लकन्द (सं० पु०) शुक्लः कन्दो यस्य। अति-
विष में सावद। २ मसीन। ३ श्वेतालुक रतालु।

शुक्लकन्दा (सं० स्त्री०) १ अतिविषा मसीन। २ विदारी
कन्द। ३ भूमिकुष्माण्ड भूंइंकुम्हड़ा।

शुक्लकर्मन् (सं० त्रि०) शुक्लं पुण्यं कर्म यस्य। १ अकृष्ण
कर्मा पुण्यवान, जो शुक्ल अर्थात् पुण्यजनक कर्म
करे। (क्ली०) २ पुण्यजनककर्म। कर्म तीन
प्रकारका है,—शुक्ल कृष्ण और शुक्लकृष्ण। पवित्र
और निर्दोषकर्मका नाम शुक्ल, पापकर्मका नाम कृष्ण
तथा शुभाशुभ मिश्रकर्मका नाम शुक्लकृष्ण कर्म है—
इनमेंसे जो शुक्लकर्म करते हैं, उन्हें शुभगति होती है।

शुक्लकुष्ठ (सं० क्ली०) शुक्ल कुष्ठ। श्वेतवर्ण कुष्ठरोग, वह
कुष्ठ जिसमें शरीर पर सफेद सफेद चकत्ते पड़ जाते हैं।
सोमराजका बीज मक्खनमें मिला कर मधुके साथ खाने
से शुक्लकुष्ठ आराम होता है। (गरुड़पु० १९५ अ०)

श्वित्र देखो।

शुक्लक्षीरा (सं० स्त्री०) शुक्ल क्षीर यस्याः।
१ काकोली। (त्रि०) २ श्वेतदुग्धयुक्त जिसमें सफेद
दूध हो।

शुक्लक्षेत्र (सं० क्ली०) पवित्र क्षेत्र तीर्थस्थान।

शुक्लजनार्दन (सं० पु०) एक प्राचीन पण्डित। ये
ज्योतिःशतक प्रणेता नीलकण्ठके पिता थे।

शुक्लता (सं० स्त्री०) शुक्लस्य भाव तल्-टाप्।
१ शुक्लका भाव या धर्म। २ श्वेतता सफेदी।

शुक्लतीर्थ (सं० क्ली०) एक प्राचीन तीर्थका नाम।
इसे विष्णुतीर्थ भी कहते हैं। (भाग० ३।२२।२३)

शुक्लत्व (सं० क्ली०) १ शुक्लका भाव या धर्म।
२ श्वेतता सफेदी।

शुक्लदन्त (सं० त्रि०) शुक्ला दन्ता यस्य इत्यनेकस्य दन्
आदेश। शुक्लदन्त साफ दांतवाला।

शुक्लदन्ती (सं० स्त्री०) श्वेतदन्ता साफ दांतवाली।

श्वेतदुग्ध (सं० पु०) शुक्ल दुग्ध निर्यासो यस्य।
१ श्रृंगाटक, सिंघाड़ा। (त्रि०) २ श्वेतदुग्धयुक्त, जिस
में सफेद दूध हो।

शुक्लधातु (सं० पु०) शुक्ल शुक्लवर्ण धातुः। १ कांगो
खड़ी मिट्टी। २ श्वेतवर्ण धातु द्रव्य।

शुक्लधान्य (सं० क्ली०) शुक्लवर्ण धान्य सफेद धान।

शुक्लपक्ष (सं० पु०) शुक्लः पक्षः। जिस पक्ष जिस
पक्षमें चन्द्रमाकी वृद्धि होती है, वही शुक्लपक्ष है। प्रति
पदसे ले कर पूर्णिमा तक पन्द्रह तिथियोंमें एक एक
कला करके चन्द्रमाकी वृद्धि हुआ करती है। यह पन्द्रह
तिथियां शुक्लपक्ष कहलाती हैं।

शुक्लपक्षकी तिथि सब कामोंमें प्रशस्त हैं। तिथि

यदि उभय दिनगामिनी हो, तो शुक्लपक्षकी जिस तिथि-में सूर्य उदित होते हैं, वही तिथि ग्रहणीय है अर्थात् उसी तिथिमें कार्यादि करना होगा तथा कृष्णपक्षकी जिस तिथिमें सूर्य अस्तगत होते हैं, वही दिन क्रिया-काण्डमें सुप्रशस्त है।

संस्कार कार्यमात्रही शुक्लपक्षमें उत्तम है। विद्यारम्भ, देवप्रतिष्ठा, गृहारम्भ, गृहप्रवेश आदि शुभकर्म मात्र ही शुक्लपक्षमें करना होता है।

शुक्लपुष्प (सं० पु०) शुक्लं पुष्पमस्य। १ छत्रकवृक्ष। २ कुन्द नामक फूलका पौधा। ३ श्वेत कोकिलाक्ष, सफेद तालमखाना। ४ मरुवक, मरुआ। ५ तिरडार। ६ मैनफल। (त्रि०) ७ श्वेत कुसुमयुक्त।

शुक्लपुष्पा (सं० स्त्री०) शुक्लपुष्प-टाप्। १ नागदन्ती। २ शीतकुम्भी, शीतली लता। ३ हस्तिशुण्ड वृक्ष, हाथी-सुंडी नामक क्षुप। (पर्यायसु०)

शुक्लपुष्पी (सं० स्त्री०) शुक्लपुष्पा देखो।

शुक्लपृष्ठक (सं० पु०) शुक्लं पृष्ठं यस्य कन्। १ सिन्धुक वृक्ष, सिंधुआर। (त्रि०) श्वेतवर्ण पृष्ठ-युक्त, जिसकी पीठ सफेद रंगकी हो।

शुक्लफल (सं० पु०) आक, मदार।

शुक्लफला (सं० स्त्री०) १ शमी वृक्ष, छींकुर। २ आक, मदार।

शुक्लफेन (सं० पु०) समुद्रफेन।

शुक्लबल (सं० पु०) जैनियोंके अनुसार एक जिनदेवका नाम।

शुक्लभण्डी (सं० स्त्री०) शुक्ला त्रिवृत्। सफेद मरसों।

शुक्लभूदेव (सं० पु०) एक कवि। भूदेव देखो।

शुक्लमञ्जरी (सं० स्त्री०) श्वेत निर्गुण्डी, सफेद तिनिन्दा।

शुक्लमण्डल (सं० क्ली०) शुक्लं मण्डलं। १ आँखों-का सफेद भाग जो पुतलीसे भिन्न होता है। २ श्वेत वर्ण गोल वस्तु।

शुक्लमथुरानाथ (सं० पु०) एक कवि।

मथुरानाथ शुक्ल देखो।

शुक्लमेद (सं० पु०) चरकके अनुसार एक प्रकारका प्रमेह रोग।

शुक्लमेहिन् (सं० पु०) शुक्लं शुक्लवर्णं मूत्रं मेहतीति मिह णिनि। प्रमेहरोगाक्रान्त, वह जिसे प्रमेह रोग हुआ हो।

शुक्लरोहित (सं० पु०) शुक्लः श्वेतवर्णो रोहितः। १ श्वेतरोहित वृक्ष, सफेद रोहेड़ा। २ शुभ्ररोहित।

शुक्लल (सं० त्रि०) शुक्लं लातीति ला क। श्वेत दाना।

शुक्लला (सं० स्त्री०) १ उच्चटा, कुचका पेड़। २ आमलक, आँवला।

शुक्लवंश (सं० पु०) श्वेतवंश, सफेद बांस।

शुक्लवचा (सं० पु०) श्वेत वच।

शुक्लवत् (सं० त्रि०) शुक्ल-अस्त्यर्थे मतुप मस्य व। शुक्लवर्ण, सफेद।

शुक्लवर्ग (सं० पु०) शुक्लानां वर्गः समूहः। श्वेतवर्ण सजातीय द्रव्य शङ्ख, सीप, कौड़ी आदि।

शुक्लवायस (सं० पु०) शुक्लो वायस इव। १ बक, बगुला। २ शुक्लवर्ण काक, सफेद कौआ।

शुक्लविश्राम (सं० पु०) एक कवि।

विश्राम शुक्ल देखो।

शुक्लवृक्ष (सं० पु०) धव या धौका वृक्ष।

शुक्लवृहती (सं० स्त्री०) श्वेत वृहती, सफेद कटाई।

शुक्लशाल (सं० पु०) शुक्लः शाल इव। १ गिरिनिम्ब। २ सफेद शालका वृक्ष।

शुक्लसारंग (सं० पु०) शुक्ल स्नातक।

शुक्ला (सं० स्त्री०) शुक्लो वर्णोऽस्त्यस्या इति अच्-टाप। १ सरस्वती। २ शर्करा, शक्कर, चीनी। ३ काकोली। ४ विदारी। ५ स्नुही। ६ क्षीर काकोली। ७ भूकुष्माण्ड, भुइं कुम्हड़ा। ८ शेफालिका, निर्गुण्डी। ९ तिशिन्दा। (त्रि०) १० शुक्लवर्णा, सफेद रंग की।

शुक्लाक्ष (सं० पु०) एक प्रकारका पक्षी।

शुक्लागुरु (सं० क्ली०) अगुरुभेद, सफेद अगर।

शुक्लाङ्ग (सं० त्रि०) शुक्लं अङ्गं यस्य। १ श्वेत अव-यवयुक्त। (पु०) २ शुक्लापाङ्ग, मयूर पक्षी, मोर। ३ द्वीपान्तरवचा, चोबचीनी।

शुक्लाङ्गा (सं० स्त्री०) शुक्लाङ्गी देखो।

शुक्लाङ्गी (सं० स्त्री०) १ शेफालिका, सिंदुवारी। २ निशिन्दा।

शुक्लादिश्रावण कृष्णाष्टमी (सं० स्त्री०) व्रतविशेष। श्रावणमासके आदि या शुरूमें शुक्लपक्ष होनेसे उसके परवर्ती कृष्णपक्षीय अष्टमीमें यह व्रत करना होता है।

शुक्लादिश्रावण कृष्णासप्तमी (सं० स्त्री०) व्रतविशेष। श्रावण मासके प्रथममें शुक्लपक्ष होनेसे परवर्ती कृष्ण पक्षकी सप्तमीमें यह व्रत करना होता है।

शुक्लापाङ्ग (सं० पु०) शुक्लौ अपाङ्गौ यस्य। १ मयूर, मोर। (त्रि०) २ श्वेतवर्ण नेत्रप्रान्त।

शुक्लाम्ल (सं० क्ली०) अम्लशाक, चुक्रिका या चूका नामक साग।

शुक्लायन (सं० पु०) एक प्राचीन ऋषिका नाम।

शुक्लार्क (सं० पु०) श्वेतार्क, सफेद मदार। गुण—सारक, वात, कुष्ठ, कण्डू विष, व्रण, प्लीहा, गुल्म, अर्श, कफ, उदर और कृमिनाशक। इसका फूल—शुक्रजनक, लघु, दीपन, पाचक तथा अरोचक, अर्श, कास और श्वासनाशक। (भावप्र०) कटु, तिक्तोष्ण और मलशोधक। (राजनि०)

शुक्लार्म्मन् (सं० पु०) नेत्ररोगभेद, आँखोंका एक रोग। इसमें आँखोंके सफेद भागमें एक प्रकारका सफेद मस्सा हो जाता है जो धीरे धीरे बढ़ता रहता है।

शुक्लाहिफेन (सं० पु०) शुक्लपुष्प अहिफेन वृक्ष, पोस्ते का पेड़।

शुक्लिमन् (सं० पु०) शुक्लस्य भाव शुक्ल (वर्णदृढ़ादिभ्यः ष्यञ् च। पा ५।१।१२३) इति इमनिच्। शुक्लता, सफेदी।

शुक्लेतर (सं० त्रि०) शुक्लादितर। शुक्लसे भिन्न, जिस प्रकार नील कृष्ण इत्यादि।

शुक्लेश्वर—प्रमाणा वृन्दावनचम्पू प्रणेता।

शुक्लेश्वरनाथ—स्मृतिकल्पद्रुम ग्रन्थके रचयिता।

शुक्लोदन (सं० पु०) ललितविस्तरके अनुसार महाराज शुद्धोदनके भाई।

शुक्लोपल (सं० पु०) शुक्लः उपलः। श्वेत प्रस्तर सफेद पत्थर।

शुक्लोपला (सं० स्त्री०) शुक्ला उपल इव आकृतिर्यस्या। शर्करा चीनी।

शुक्लौदन (सं० क्ली०) शुक्लः ओदनः। आतपान्न, अरवा चावल।

शुक्षि (सं० पु०) शुष्यत्यनेनेति शुष (प्लुषि कुषि शुषिभ्य कृसिः। उण् ३।१५५) इति कृसि। १ वायु हवा। २ तेज। ३ चित्र, तसवीर।

शुग—एक प्राचीन कवि।

शुङ्ग (सं० पु०) १ वटवृक्ष बरगद। २ आम्रातक वृक्ष आँवलाका पेड़। ३ शूक, सींका। ४ पर्करीवृक्ष, पाकड़का पेड़। ५ नवपल्लव। ६ फूलके नीचेका आधार या कटोरी।

शुङ्गवंश—एक प्राचीन क्षत्रिय वंश जो मौर्यके पीछे मगधके सिंहासन पर बैठा था। इस वंशका स्थापक मौर्योंका सेनापति पुष्यमित्र था। इसने मौर्यवंशके अन्तिम राजा बृहद्रथको मार कर उसके साम्राज्य पर अपना अधिकार जमा लिया और शुङ्गवंशकी प्रतिष्ठा की। चन्द्रगुप्तके राज्याभिषेकसे १३७० वर्ष पीछे यह घटना घटी थी। अनन्तर पुष्यमित्रकी मृत्यु होने पर उसका लड़का विदिशराज अग्निमित्र मगधके सिंहासन पर बैठा। लगभग ११२ वर्ष तक शुङ्गवंशियोंने बड़े एड प्रतापसे मगधराज्यका शासन किया। इस वंशके शेष राजा देवभूतिको छिपके मार कर उसके मन्त्री कण्व वासुदेवने मगधका सिंहासन हथिया लिया तभीसे मगधमें कण्ववंशकी प्रतिष्ठा हुई।

विष्णुपुराणमें इस राजवंशकी तालिका इस प्रकार दी हुई है—

१ पुष्पमित्र (पुष्यमित्र), २ अग्निमित्र, ३ सुज्येष्ठ ४ वसुमित्र ५ आर्द्रक (अन्तक अन्तक या भद्रक) ६ पुलिन्दक, मदनन्दन या मधुनन्दन, ७ घोषवसु, ८ वज्र वसु ९ भागवत, १० देवभूति (क्षेमभूति या देवभूमि)।

उक्त तालिकाके साथ वायु, मत्स्य ब्रह्माण्ड और भागवतोक्त शुङ्गवंशका बहुत कुछ सामञ्जस्य है। वायु पुराणमें राजा अग्निमित्रका नामोल्लेख नहीं रहने पर भी पुष्यमित्रके पुत्र ८ वर्ष राज्यकालकी बात लिखी है। राजा अग्निमित्रको ले कर महाकवि कालिदास माल विकाग्निमित्र नाटककी रचना कर गये हैं। मत्स्य

पुराणकी किसी किसी पोथीमें वसुमित्रके बाद सुज्येष्ठ-का राज्यकाल वर्णित है।

शुङ्गा (सं० स्त्री०) शुङ्गोऽस्त्यस्याः अच् टाप्। १ पर्कटि-भेद, पाकड़का पेड़। २ नवपल्लवकोशी। ३ धान्यादि शूक, धान आदिकी बाल या मांड़। (सुश्रुत ४।२८)

शुङ्गाकर्मन् (सं० पु०) पुंसवन संस्कारविशेष। इस संस्कारमें होम कार्यमें शोभननामक अग्नि स्थापन करके होम करना होता है। ([illegible])

शुङ्गिन् (सं० पु०) शुङ्गा अस्त्यस्येति शुङ्गा इनि। १ प्लक्षवृक्ष, पाकड़का पेड़। २ वटवृक्ष, बरगद। (त्रि०) ३ शुङ्गाविशिष्ट, मांड़वाला।

शुङ्गोर—एक कवि।

शुचद्रथ (सं० त्रि०) उज्ज्वल रथविशिष्ट।

शुचा (सं० स्त्री०) शुच शोके क्विप् पक्षे टाप्। १ शोक। (शब्दरत्ना०) २ शुचि। (ऋक् १०।१६।६)

शुचि (सं० पु०) शुच्यति अनेनेति शुच (इगुपधात् कित्। उण् ४।११९) इति इन, स च कित्। १ अग्नि। (भागवत ४।२४।४) २ चित्रकवृक्ष, चीताका पेड़। ३ ज्येष्ठ मास। ४ आषाढ़ मास। ५ ग्रीष्म, गरमी। ६ शृङ्गार रस। ७ सौराग्नि। (कूर्मपु० ११ अ०) ८ सूर्य। ९ चन्द्रमा। १० शुक्र। ११ ब्राह्मण। १२ शुद्धमन्त्र। १३ अन्धकके एक पुत्रका नाम। (भागवत ९।२४।१९) १४ कार्त्ति-केय। (भागवत ३।८३।४) (स्त्री०) १५ पुराणानुसार कश्यपकी पत्नी ताम्राके गर्भसे उत्पन्न एक कन्याका नाम। (गरुड़पु० ६ अ०) १६ पवित्रता, शुद्धता, सफाई। (त्रि०) १७ शुद्ध, पवित्र। १८ स्वच्छ, साफ। १९ निरपराध, निर्दोष। (भागवत १।१४९।१४) २० शुद्धान्तःकरण, जिसका अन्तः शुद्ध हो, स्वच्छ हृदयवाला। (मनु ८।३८) २१ अनुपहत। (मेदिनी)

ब्रह्मवैवर्त्त पुराणमें लिखा है, कि दैवात् यदि दूसरेका स्वर्ण स्पर्श हो, तो हस्तप्रक्षालनसे शुचि होता है।

शुचिकर्मन् (सं० त्रि०) धर्मनिष्ठ, सदाचारी, पवित्र कार्य करनेवाला।

शुचिका (सं० स्त्री०) महाभारतके अनुसार एक अप्सरा-का नाम।

शुचिकापुष्प (सं० क्ली०) केतकी, केवड़ा।

शुचिकाम (सं० त्रि०) शुचिः कामो यस्य। शुद्धकाम, शुद्धकामनायुक्त।

शुचिक्रन्द (सं० पु०) शुद्ध स्तोत्र। (ऋक् ३।६०।१)

शुचिज्ञान (सं० त्रि०) शौच या आत्मामें ज्ञान।

शुचित्विष् (सं० त्रि०) श्वेत त्विषायुक्त।

शुचिता (सं० स्त्री०) शुचेर्भावः तल् टाप्। शुचिका भाव या धर्म, शुचित्व।

शुचिद्रुम (सं० पु०) शुचिः पवित्रो द्रुमः। १ अश्वत्थ वृक्ष, पीपल। २ शुद्ध वृक्ष।

शुचिन् (सं० त्रि०) १ शुचि, पवित्र। २ स्वच्छ, साफ।

शुचिनेत्रनिमस्कार (सं० पु०) गन्धर्वराजभेद।

शुचिपदी (सं० स्त्री०) विशुद्ध पादयुक्ता।

शुचिपा (सं० त्रि०) शुचिं पाति पा-क्विप्। विशुद्ध सोमपाता।

शुचिपेशस् (सं० त्रि०) शोभन रूपयुक्त, सुन्दर रूपवाला, खूबसूरत।

शुचिप्रणी (सं० पु०) प्रणयति प्र-नी क्विप्। आचमन।

शुचिप्रतीक (सं० त्रि०) १ शोभनावयव, शोभन शरीर। २ शोभन ज्वालायुक्त अग्नि। (ऋक् १।१४३।६)

शुचिबन्धु (सं० त्रि०) दीप्ततेजस्क पावक, अति तेजो-युक्त अग्नि।

शुचिभ्राजस् (सं० त्रि०) शोभन दीप्तियुक्त।

शुचिमल्लिका (सं० स्त्री०) नवमल्लिका, नेवारी।

शुचिरथ (सं० पु०) राजभेद। (विष्णुपु० ४।२१।४)

शुचिरोचिस् (सं० पु०) शुचिः शुक्ल रोचिः किरणो यस्य। १ चन्द्रमा। २ शुक्ल किरण।

शुचिवन (सं० क्ली०) शुक, सुग्गा।

शुचिवर्चस् (सं० त्रि०) उज्ज्वल तेजोयुक्त।

शुचिवर्ण (सं० त्रि०) प्रदीप्त वर्ण। (ऋक् ५।२।३)

शुचिवर्मन्—राजपूतानेके मेवाड़राज्यके गुहिलवंशीय राजा शक्तिकुमारके पुत्र।

शुचिवाच् (सं० पु०) १ पर्वतभेद। (हरिवंश) (त्रि०) २ विशुद्ध वाक्ययुक्त।

शुचिवासस् (सं० त्रि०) विशुद्ध वस्त्रविशिष्ट, साफ कपड़ा पहननेवाला।

शुचिवृक्ष (सं० पु०) एक प्राचीन प्रवरकार ऋषिका नाम।

शुचिव्रत (स० त्रि०) शुचि व्रत यस्य। शुद्धकर्मा विशुद्ध कर्मकारी। (ऋक् १।११६।१)

शुचिश्रवस् (सं० त्रि०) १ विशुद्ध यशोयुक्त। (भागवत १।५।१३) २ विष्णु। (भारत विष्णु का सहस्रनाम)

शुचिषद् (स० पु०) १ द्युगोकवासी आदित्य। (ऋक् ४।४०।५) २ परमात्मा, परब्रह्म, हंस।

शुचिषद् (स० पु०) अग्नि जो मेध्यको छोड़ अमेध्य द्रव्य ग्रहण नहीं करती। (नीलकण्ठ गीतास्य)

शुचिष्मत् (स० पु०) अग्निका एक नाम।

शुचिसङ्क्षय (स० पु०) शुचेः संक्षयः। ग्रीष्मावसान ग्रीष्मका क्षय, वर्षाका प्रारम्भ।

शुचिस्मित (स० त्रि०) १ उज्ज्वलज्योतिर्मय। २ विशुद्ध हास्ययुक्त।

शुचिव्रती (स० स्त्री०) शुद्धिविशिष्ट शुचियुक्ता।

शुची (स० त्रि०) शुचि देखो।

शुचौरता (स० स्त्री०) चौर्य्य। (शिक्षा०)

शुजा (अ० त्रि०) बहादुर, शूरवीर, दिलेर।

शुजाअत (अ० स्त्री०) बहादुरी, वीरता।

शुटीर्य (स० क्ली०) शुक, वीर्य।

शुण्डाकर्ण (स० त्रि०) ह्रस्वकर्ण, ह्रस्वकर्णविशिष्ट, छोटा कानवाला। (शुक्लयजु० २४।४)

शुण्ठ (स० स्त्री०) शुठि शोषणे इन्। शुण्ठी, सोंठ।

शुण्ठी (स० स्त्री०) शुण्ठि वा ङीप्। स्वनामख्यात ओषधि शुष्कार्द्रक, सोंठ (Gingiber officinale)। पर्याय—महौषध, विश्व, नागर, विश्वभेषज शुण्ठि, विश्वा, महौषधी, इन्द्रभेषज भेषज विश्वौषध, कटुग्रन्थि कटुभद्र, कटूषण सौषण, शृङ्गवेर, कफारि, चाण्द्रक, शोषण, नागराह्व। गुण—कटु उष्ण स्निग्ध, कफ शोफ, अनिल शूल, उदराध्मान, श्वास और श्लीपदनाशक। (राजनि०) गुण—रुचिकर, आमवात नाशक पाचन कटु लघु स्निग्धोष्ण, पाकमें मधुर, कफ, वात और विबन्धनाशक वृष्य निश्वास, शूल, काम और हृदामयनाशक, स्वरप्रद, शोथ अर्श, आनाह उदरवायुनाशक आम व गुणभूयिष्ठ जलाशयशोषणकारी मलभ ग्राहक। (भावप्र०)

सोंठका चूर्ण बड़ा फायदेमन्द होता है। विसूचिका आदि रोगोंमें हाथ और पैर हिमाङ्ग होने पर इसको थोड़ा थोड़ा मालिश करनेसे हाथ और पैर गरम हो जाते हैं। गरम दूधके साथ सोंठका चूर्ण सेवन करनेसे खांसी और सर्दीमें बड़ा फायदा पहुंचता है। भातमें घी मिला कर सोंठका चूर्ण खानेसे वात और श्लेष्मा दूर होती है।

शुण्ठीखण्ड (स० पु०) अम्लपित्त रोगाधिकारोक्त औषध विशेष। इसके बनानेका तरीका—सोंठका चूर्ण आध सेर, चीनी २ सेर घी १ सेर, दूध ८ सेर इन्हें एकत्र विधिपूर्वक पाक करे। पाक हो जाने पर प्रक्षेपार्थ आंवला, धनिया, मोथा, जीरा पीपल, वंशलोचन, दारचीनी, तेजपत्ता, इलायची, नागकेसर और हर्रे प्रत्येक डेढ़ तोला, मिर्च और नागेश्वर प्रत्येक ६ माशा ठण्ढा होने पर मधु ३ पल मिलावे। उपयुक्त मात्रामें इस औषधका सेवन करनेसे अम्लपित्त, शूल, हृद्रोग, वमि और आमवात रोग प्रशमित होते हैं। (भैषज्यरत्ना०)

शुण्ठीघृत (स० क्ली०) घृतौषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—घृत ४ सेर, कल्कार्थ सोंठका चूर्ण १ सेर, काञ्जि १६ सेर घृतपाकके विधानानुसार पाक करे। इसको सेवन करनेसे अग्नि वृद्धि होती है। खास कर आमवात रोगमें यह घी रामबाण है।

दूसरा तरीका—घृत ४ सेर, कल्कार्थ सोंठका चूर्ण १ सेर, सोंठका क्वाथ या जल १६ सेर। पीछे घृतपाक विधानानुसार पाक करे। इस घृतका सेवन करनेसे वात, श्लेष्मा, कटिशूल और आमवात दूर होता तथा अग्नि वृद्धि होती है। (भावप्र०)

शुण्ठीधान्याकघृत (स० क्ली०) आमवात रोगोक्त घृतौषधविशेष। सोंठ तीन पाव तथा धनिया एक पाव, इसका कल्क और १६ सेर जलसे ४ सेर घी यथाविधानसे पाक करे। यह घृत उपयुक्त मात्रामें सेवन करनेसे वात श्लेष्मिक रोग अर्श, श्वास और कास विनष्ट होता तथा बल वर्ण और अग्नि वृद्धि होती है।

शुण्ठ्य (स० क्ली०) शुण्ठी, सोंठ।

शुण्ड (स० पु०) शुन गतौ डमस्तात् ड। १ करिकर हाथीका सूंड़। २ हाथीका मद जो उसकी कनपटीमें बहता है।

शुण्डक (सं० पु०) १ शुद्रवेणु, एक प्रकारका रणवाद्य, भेरी । २ शौण्डिक, मद्य उतारने या बेचनेवाला ।

शुण्डरोह (सं० पु०) शुण्डवत् रोहतीति रुह-अच् । भूतृण, अगिया घास ।

शुण्डा (सं० स्त्री०) शुन-ड टाप् । १ मद्यपानगृह, हौली । २ जलहस्तिनी । ३ वेश्या, रण्डी । ४ सुरा, शराब । ५ हस्तिहस्त, हाथीकी सूंड़ । ६ नलिनी । ७ कुट्टनी, कुटनी ।

शुण्डादण्ड (सं० पु०) हाथीकी सूंड ।

शुण्डापान (सं० क्ली०) शुण्डाया पानं । मद्यपान-गृह, हौली । पर्याय—मदस्थान, मदस्थल ।

शुण्डार (सं० पु०) शुण्डां रातीति रा-क । १ शौण्डिक, मद्य उतारने या बेचनेवाला । ह्रस्वा शुण्डा (कुटीशमीशुण्डाभ्यो रः । पा ५।३।८८) इति र । २ स्वल्पशुण्डा अपकृष्ट शुण्डा । ३ करिशुण्डाकार वकयन्त्रभेद, वकयन्त्र, मद्य आदि चुआनेका यन्त्र । ४ साठ वर्षका हाथी । ५ हाथीकी सूंड़ ।

शुण्डारोचनिका (सं० स्त्री०) १ रञ्जिनी, नागवल्ली नामकी लता । २ नीली । ३ जम्भकालता । ४ मञ्जिष्ठ, मजीठ । ५ शेफालिका, निर्गुण्डी । ६ हरिद्रा, हलदी । ७ पर्पटी ।

शुण्डाल (सं० पु०) शुण्डेन अलतीति अल पर्याप्तौ अच् । हस्ती, हाथी ।

शुण्डिक (सं० पु०) १ मद्य बिकनेका स्थान, कलवरिया । २ एक प्राचीन जातिका नाम जिसका व्यवसाय मद्य उतारना और बेचना था ।

शुण्डिका (सं० पु०) १ अलिजिह्वा, उपजिह्विका । २ स्फोटक, फोड़ा । ३ शुण्डा देखो ।

शुण्डिन् (सं० पु०) शुण्डाऽस्त्यस्येति शुण्डा-इनि । १ शौण्डिक, कलवार । २ हस्ती, हाथी ।

शुण्डिनी (सं० स्त्री०) छुछुन्दरी ।

शुण्डिभूषिका (सं० स्त्री०) शुण्डिना शुण्डविशिष्टा भूषिका । छुछुन्दरी ।

शुण्डिरोचनिका (सं० स्त्री०) रोचनी ।

शुण्डी (सं० स्त्री०) १ हस्तीशुण्डी वृक्ष, हाथीसूंडीका पौधा । २ धांटी । ३ कौसुम्भी । ४ शालि ।

शुतुद्रि (सं० स्त्री०) शतद्रु नदी ।

शुतुद्रु (सं० स्त्री०) शतद्रु नदी । शतद्रु देखो ।

शुतुरगाव (फा० पु०) जिराफा नामक जन्तु ।

विशेष विवरण जिराफा देखो ।

शुतुरमुर्ग (फा० पु०) एक प्रकारका बहुत बड़ा पक्षी । यह अमेरिका, अफ्रिका और अरबके रेगिस्तानमें पाया जाता है । यह प्रायः तीन गज तक ऊंचा होता है । इसकी गरदन ऊंटकी तरह बहुत लम्बी होती है । यह उड़ तो नहीं सकता, पर रेगिस्तानमें घोड़ेसे भी अधिक तेज दौड़ सकता है । यह घास और अनाज खाता है । कभी कभी कंकड़ पत्थर भी खा जाता है । इसके पर बहुत दाम पर बिकते हैं । यह एक बारमें तीससे कम अंडे नहीं देता ।

शुदनी (फा० स्त्री०) वह बात जिसका होना पहलेसे ही किसी दैवी शक्तिसे निश्चित हो, होनी; भारी होनहार ।

शुद (हिं स्त्री०) सुदी देखो ।

शुद्ध (सं० क्ली०) शुध-क्त । १ सैन्धव, सेंधा नमक । २ मरिच, काली मिर्च । ३ रजत, चांदी । ४ शुण्डा नामकी घास । ५ शिवका एक नाम । ६ चौदहवें मन्वन्तरके सप्तर्षियोंमेंसे एक ।

(त्रि०) ७ निर्दोष, दोषरहित, बेऐब । ८ पवित्र साफ, स्वच्छ । ९ शुक्ल, सफेद, उज्ज्वल । १० जिसमें किसी प्रकारकी अशुद्धि न हो, जो गलत न हो, ठीक, सही । ११ जिसमें किसी तरहकी मिलावट न हो, खालिस ।

(क्ली०) १२ रागांतर मिश्रित राग । (सङ्गीतशास्त्र) शरीर और द्रव्यादि किस प्रकार विशुद्ध होता है, शास्त्रमें उसका विशेष विधान है । बहुत संक्षेपमें उसका विषय लिखा जाता है—पाप कर्म करनेसे देह और मन अशुद्ध होता है तथा उस पापके फलसे अनेक प्रकारकी कष्ट-दायक व्याधि होती है । अतएव जिससे उस पापकी शुद्धि हो वैसाही करना कर्त्तव्य है । जिस प्रकार वस्त्र मैला होने पर उसमें क्षार और अग्न्युत्ताप संयोग कर पीछे पानीमें धो डालनेसे वह परिष्कार हो जाता है, उसी प्रकार तपस्या, दान, यज्ञ और अनुतापादि द्वारा पापाचारीका पापक्षय होता है । इसी प्रकार क्षीणपाप होनेसे

उसको शुद्ध कहते हैं, अतएव पापी व्यक्ति प्रायश्चित्त द्वारा हो किस तरह शुद्ध हो सकता है?

ज्ञान, तपस्या, अग्नि, आहार, मृत्तिका, मन वारि उपाञ्जन अर्थात् गोमयादि द्वारा अनुलेपन, वायुकर्म सूर्य और काल ये सब देहधारियोंके शुद्धिके कारण हैं। यही सब द्रव्य शुद्धिके साधन हैं। इन्हीं सब साधन द्वारा ही मानव शुद्ध होते हैं। जिस प्रकार ज्ञान द्वारा बुद्धि शुद्धि होती है अर्थात् अविद्याके नाश होनेसे जब ब्रह्मज्ञान लाभ करता है, तब बुद्धि शुद्ध होती है। उस समय बुद्धिमें फिर कोई दोष रहने नहीं पाता। ज्ञान लाभ होनेसे जानना चाहिये, कि बुद्धि शुद्ध हुई है। इसी प्रकार तपस्या द्वारा ब्राह्मणादि और अग्निपाक द्वारा मृण्मय पात्रादि शुद्ध होते हैं। अतएव पूर्वोक्त ज्ञानादि ही शुद्धिका कारण है।

देह, मन आदि शुद्धकर सभी पदार्थों में अर्थशुद्धि अर्थात् अधामन विषयमें अस्पृश्य या स्वधर्म परित्याग नहीं करनेको ऋषियोंने परम शुद्धि कहा है। जो व्यक्ति अर्थोपार्जनमें शुचि हैं वे ही प्रकृत शुचि हैं। मिट्टी या जल द्वारा देह शुद्ध करनेको प्रकृत शौच नहीं कहते।

विद्वद्गण क्षमा द्वारा, अकार्यकारी दान द्वारा, प्रच्छन्न पापागण जप द्वारा और वेदविद् ब्राह्मण तपस्या द्वारा शुद्ध होते हैं। शोधनीय वाह्य द्रव्य तथा यह देह मिट्टी और जल द्वारा शुद्ध होती है। मलवहा नदी स्रोतोवेग से, मनोदुष्टि अर्थात् परपुरुषाभिगमन सङ्कल्प दोषमय भी दूषितमना स्त्री रजस्वला होने पर शुद्ध होती है। त्याग या प्रव्रज्या द्वारा द्विजोत्तमगण शुद्ध होते हैं। जल द्वारा देह शुद्ध होती है, सत्य कहनेसे मन शुद्ध होता है विद्या और तप द्वारा जीवात्माकी तथा ज्ञान द्वारा बुद्धिकी शुद्धि होती है। इसी प्रकार शारीरिक शुद्धिका विषय कहा गया है।

अनेक प्रकारके द्रव्योंकी शुद्धिका उपाय इस प्रकार निर्दिष्ट हुआ है। रजत और सुवर्णादि धातु मर कतादि मणि और प्रस्तर निर्मित द्रव्य हैं भस्म और जल अथवा मिट्टी और जल द्वारा शुद्ध होते हैं। उच्छिष्टादि प्रलेपरहित सुवर्णपात्र जलसे धो देनेसे ही शुद्ध होता है। शङ्ख मुक्तादि जलज, प्रस्तरनिर्मित पात्र और रौप्यपात्र यदि रेखायुक्त न हो, तो जलसे प्रक्षालन करने से ही शुद्ध होता है। जल और अग्निके संयोगसे सुवर्ण और रजतकी उत्पत्ति हुई है, इस कारण अपने उत्पत्तिस्थान जल और अग्नि द्वारा सुवर्ण और रजत की शुद्धि अति प्रशस्त है।

तांबा लोहा, कांसा, पीतल, रांगा और सीसा, इन सब धातुओंके पात्र भस्म अम्ल और जल द्वारा शुद्ध होते हैं अर्थात् लोहा जलसे, कांसा भस्मसे तथा तांबा और पीतल खट्टेसे विशुद्ध होता है।

घृत तैलादि तरल पदार्थ काककीटादि द्वारा यदि दूषित हो जाय, तो प्रादेश प्रमाणके दो कुशपत्र द्वारा विलोडन करनेसे वह शुद्ध होता है। शय्यादिकी तरह सूक्ष्म युक्त संहत द्रव्य जल डालनेसे ही शुद्ध हो जाता है तथा काष्ठमय द्रव्य अत्यन्त उपहत होनेसे उसे छिल कर देनेसे ही शुद्ध होता है। यज्ञीय चमसे (जलपात्र भेद) और उससे सम्बन्ध रखनेवाले दूसरे दूसरे बरतन पहले हाथसे रगड़ कर पीछे जलमें प्रक्षालन करनेसे शुद्ध होते हैं। चरुस्थाली, स्रुक्, स्रुव, शकट, मूसल और उदूखल आदि यज्ञीय द्रव्य घृत तैलादि स्नेहाक्त होनेसे उष्णजल द्वारा प्रक्षालन करनेसे ही शुद्ध होते हैं।

बहुधान्य या अनेक वस्त्र यदि किसी तरह अशुद्ध हो जाय, तो जल प्रोक्षण द्वारा उसकी शुद्धि होती है। पादुकादि स्पृश्य पशुचर्म और बेंत बांस आदिका बना हुआ आसनकी शुद्धि वस्त्रकी तरह है। शाक, मूल और फल इनकी शुद्धि धानकी तरह होती है। कौषेय अर्थात् रेशमी वस्त्र आविक अर्थात् मेषलोमजात कम्बलादि क्षार और मिट्टीसे शुद्ध होते हैं। तृण और पाककाष्ठ जलप्रक्षालन द्वारा तथा मार्जन और गोमयादि लेपन द्वारा गृह शुद्ध होता है। मिट्टीका बरतन पुनः पाक द्वारा विशुद्ध होता है, किन्तु वह पात्र यदि मद्य, मूत्र विष्ठा, श्लेष्मा और पूय या शोणित द्वारा उपलिप्त हो, तो उसकी फिर शुद्धि नहीं होती।

सम्मार्जन, गोमयादि द्वारा विलेपन, गोमूत्रादिकादि सिञ्चन उल्लेख अर्थात् छिल देना तथा एक अहोरात्र गौके वास इन पांच उपायोंसे भूमि शुद्ध होती है।

पक्षी कर्त्तृक उच्छिष्ट, गामी कर्त्तृक आघ्रात, वस्त्राञ्चल वा पद स्पृष्ट, अवक्षुत अर्थात् जिस पर थूक गिरा हो तथा जो केशकीटादि द्वारा दूषित हो गया है, वे सब द्रव्य मिट्टी डालनेसे शुद्ध होते हैं।

पहले अदृष्ट अर्थात् जिस द्रव्यका उपघात या स्पर्श दोष मालूम नहीं, दूसरे जो जल द्वारा प्रक्षालन किया गया है और तीसरे शिष्ट जनोंने जिसके सम्बन्धमें पवित्र वाक्यका उच्चारण किया है, उन सब द्रव्योंको देवताओंने ब्राह्मणोंके लिये शुद्ध माना है। जितने जलसे गायकी प्यास दूर हो, उतना जल यदि विशुद्ध भूमिगत तथा स्वाभाविक गन्ध, वर्ण और रसयुक्त हो अथच अपवित्र द्रव्य लिप्त न रहे, उस जलको शुद्ध जानना होगा। कारीगरका हाथ जब कारीगरीमें नियुक्त रहता है, तब वह हमेशा शुद्ध रहता है। बाजारमें जो सब चीजें बिक्रीके लिये चारों ओर फैली रहती हैं, वह भिन्न भिन्न जाति द्वारा स्पृष्ट होने पर भी शुद्ध है। ब्रह्मचारिगण जो भिक्षा लाभ करते हैं वह नित्य शुद्ध है। काकादिकी चोंच डंठलमें लग कर जो फल गिरता है, वह भी शुद्ध है। जो सब पशु या पक्षी कुत्तेसे मारे गये हैं, मांसजीवी या अन्यान्य पशुपक्षी जो मांस लाते हैं और चण्डालादिव्याध जो सब पशु आदि हनन करते हैं, इनका मास शुद्ध कहा गया है। (मनु ५ अ०)

शुद्धगणपति (सं० पु०) गणपतिभेद, उच्छिष्ट गणपति।

शुद्धजङ्घ (सं० पु०) शुद्धा जङ्घा यस्य। १ गर्दभ, गदहा। (त्रि०) २ पवित्र जङ्घायुक्त, जिसकी जाङ्घ पवित्र या सुन्दर हो।

शुद्धता (सं० स्त्री०) शुद्धस्य भावः तल्-टाप्। १ शुद्ध होनेका भाव या धर्म, पवित्रता। २ निर्दोषता।

शुद्धत्व (सं० क्ली०) शुद्ध होनेका भाव या धर्म, शुद्धता, पवित्रता।

शुद्धदत् (सं० त्रि०) शुद्धा दन्ता यस्य सः (आमान्तशुद्ध शुभ्रवृषवराहेभ्यश्च। पा ५।४।१४६) इति दंतस्य दता देशः। शुक्ल दन्तयुक्त, सफेद दाँतवाला।

शुद्धधी (सं० त्रि०) शुद्धा धीर्यस्य। शुद्धमति, विशुद्ध बुद्धियुक्त, विलक्षण बुद्धिवाला।

शुद्धपक्ष (सं० पु०) शुद्धः शुक्लः पक्षः। अमावस्याके उपरांतकी प्रतिपदासे पूर्णिमा तकका पक्ष, शुक्लपक्ष। कृष्ण और शुक्ल इन दो पक्षोंमें शुक्लपक्ष शुद्ध तथा कृष्णपक्ष अशुद्ध होता है। शुक्लपक्षमें ही सभी शुभ कार्य करनेका विधान है, इसलिये यह शुद्ध है।

शुद्धपाद (सं० पु०) एक विख्यात हठयोगी इनका दूसरा नाम था सिद्धपाद।

शुद्धपुरी (सं० स्त्री०) दाक्षिणात्यका एक प्राचीन देवक्षेत्र। यह त्रिचनापल्ली जिलेके तिरुपिरु विभागमें अवस्थित है। स्कन्दपुराणोक्त शिवरहस्य और शुद्धपुरी-माहात्म्यमें इसका माहात्म्य वर्णित है।

शुद्धबुद्धि (सं० त्रि०) शुद्धा बुद्धिर्यस्य। विशुद्ध बुद्धियुक्त, विलक्षण बुद्धिवाला।

शुद्धबोध (सं० त्रि०) विशुद्ध बोधविशिष्ट, ज्ञानयुक्त।

शुद्धभाव (सं० पु०) विशुद्ध भावयुक्त, शुद्धचेताः।

शुद्धभिक्षु (सं० पु०) हठयोगाचार्यभेद। इन्होंने हठयोगविषयक ग्रंथ प्रणयन किया है।

शुद्धमति (सं० त्रि०) शुद्धा मतिर्यस्य। १ शुद्धबुद्धि विशिष्ट, विलक्षण बुद्धिवाला। (पु०) २ चौबीस भूत अर्हतोंमेंसे जिनविशेष। (स्त्री०) शुद्धा मतिः। ३ पवित्र बुद्धि।

शुद्धमास (सं० क्ली०) शुद्धं मासं यस्य। वैद्यकके अनुसार वह पकाया हुआ मांस जिसके साथमें हड्डी आदि न लगी हो। ऐसा मांस अत्यन्त शुक्रवर्द्धक, बलकारक, त्रिदोष शांतिके लिये श्रेष्ठ, अग्निप्रदीपक और धातुपोषक माना गया है। (भावप्र०)

शुद्धरूपिन (सं० त्रि०) शुद्धरूपयुक्त, उज्ज्वल रूपविशिष्ट। (अष्टावक्रस०)

शुद्धवंश्य (सं० त्रि०) शुद्धवंशे भवः यत्। विशुद्ध कुलजात, जिसका जन्म कुलीन वंशमें हुआ हो।

शुद्धवत् (सं० त्रि०) शुद्ध अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। विशुद्ध, शुद्धविशिष्ट।

शुद्धवल्लिका (सं० स्त्री०) शुद्धा वल्लिका लता। १ गुडूची, गुरुच। २ पवित्र लता।

शुद्धवाल (सं० त्रि०) शुभ्रवर्ण केशयुक्त, जिसके बाल सफेद हों। (शुक्लयजु० २४।३)

शुद्धविराज (सं० स्त्री०) छन्दोभेद।

शुद्धविराडयम (स० क्लो०) छन्दोभेद।

शुद्धशुक्र (स० क्लो०) शुद्ध शुक्र। विशुद्ध शुक्र, जिस शुक्रमें कोई दोष न हो। तरल, स्निग्ध, मधुदुग्धयुक्त तथा स्फटिकवर्णाभ शुक्र विशुद्ध होता है। (सुश्रुत)

शुद्धसाध्यवसाना (स० स्त्री०) शब्दकी एक लक्षणाशक्ति। साध्यवसाना लक्षणा शुद्ध और गौण भेदसे दो प्रकार की होती है। (काव्यप्रकाश २।१२)

शुद्धसारोपलक्षणा (स० स्त्री०) लक्षणभेद।

शुद्धहस्त (स० त्रि०) विशुद्ध हस्तविशिष्ट जिसके हाथ शुद्ध हों। (मत्स्य० १२।३।४४)

शुद्धा (स० स्त्री०) १ कुदरू बीज इन्द्रजौ। (त्रि०) २ विशुद्ध।

शुद्धाक्ष (स० पु०) व्यक्तिविशेष।

शुद्धात्मन् (स० त्रि०) शुद्धः पवित्र आत्मा स्वभावो यस्य। १ शुद्ध स्वभाव पवित्र स्वभावका साफ दिल वाला। (रामायण ७।२६।१६) (पु०) २ शिव।

शुद्धानन्द (स० पु०) एक आचार्य तथा गौड़पादीयभाष्य टीकाके प्रणेता। ये आनन्दतीर्थके गुरु थे।

शुद्धानन्द सरस्वती—वेदान्तचिन्तामणि और वेदान्त चिन्तामणिप्रकाशके रचयिता। इनका दूसरा नाम था शुद्ध मिश्र।

शुद्धानुमान (स० क्ली०) शुद्ध अनुमान। विशुद्ध अनुमान वह अनुमान जिसमें कोई दोष नहीं हो।

शुद्धान्त (स० पु०) शुद्धः अन्तो यस्य, शुद्धा स्त्रजः अन्ते यस्य इति वा। १ अन्तःपुर रनिवास, जनानखाना। २ राजयोषित, रानी। (अमर) ३ अशौचान्त।

शुद्धान्तपालक (स० पु०) शुद्धान्त पालयतीति पालि ण्वुल्। अन्तःपुररक्षक, वह जो अन्तःपुरके द्वार पर पहरा देता हो। पर्याय—गृहदौवारिक, कञ्चुकी, रक्षि, हिण्डक। यह कुलीन तथा पिता या पितामहसे काम करनेवाला, अच्छी चाल चलनका तथा नम्र व्यक्ति हो राजाओंका अन्तःपुररक्षक हुआ करता है।

शुद्धान्तर्युज् (स० स्त्री०) सप्ताता ताल लय या स्वर परिवर्तन कर गीत वाद्यादिका जो रूपान्तर साधन करता हो।

शुद्धान्ता (स० स्त्री०) शुद्धान्त आश्रयत्वेनास्त्यस्या इति अच् टाप्। रानी, रामा।

शुद्धापह्नुति (स० स्त्री०) शुद्धा अपह्नुतिः। एक प्रकारका अलंकार जिसमें प्रकृति अर्थात् उपमेयको झूठ ठहरा कर या उसका निषेध करके उपमानकी सत्यता स्थापित की जाती है। इसे अपह्नुति अलंकार भी कहते हैं।

शुद्धाभ (स० त्रि०) शुद्धमिवाभाति शुद्ध आ भा क। शुद्धकी तरह आभायुक्त, विशुद्ध, निर्मल।

शुद्धावत (स० पु०) प्रदक्षिणावर्त्त पेंचवाला।

शुद्धावास (स० पु०) १ विशुद्ध आवास। २ स्वर्ग।

शुद्धाशय (स० त्रि०) शुद्धः आशयो यस्य। १ शुद्ध आशययुक्त, शुद्ध चित्तायुक्त। (पु०) २ विशुद्ध आशय विशुद्धचित्त।

शुद्धाशुद्धीय (स० क्ली०) १ साममेद। (लाट्या० ३।४।१३) (त्रि०) २ शुद्ध और अशुद्ध सम्बन्धी।

शुद्धि (स० स्त्री०) शुध क्तिन्। १ स्वच्छता सफाई। २ दुर्गा। नामनिरुक्ति इस प्रकार है—

भगवती दुर्गाको स्मरण या चिन्ता करनेसे मानव पातकसे शुद्धिलाभ करता है। इसलिये वे शुद्धि कहलाती हैं।

३ मार्जना। (जटाधर) ४ वैदिक कर्मादि स्वप्रयोजक संस्कारविशेष। अशौच होने पर वैदिककर्ममें अधिकार नहीं रहता। अशौच जाने पर शुद्धि होती है। अर्थात् तब पुनः वैदिक कर्म करनेका अधिकार रहता है। अशौच शब्द देखो।

५ विशुद्धता सम्पादन। पूजाके समय भूतशुद्धि और जल, आसन, पुष्प आदि शुद्धि करके पूजा करना होता है। भूतशुद्धि देखो। जलशुद्धि यथा—

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वती।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु॥

पूजा करनेके पहले यह मन्त्र पढ़नेसे जलशुद्धि होती है।

आसनशुद्धि—आसन पर बैठ कर 'एते गन्धपुष्पे आधारशक्तिकमलासनाय नमः। आसनमन्त्रस्य मेरु पृष्ठऋषिः सुतलं छन्दः कूर्मो देवता आसनोपवेशने विनियोगः।

'पृथ्वि त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता।
त्वञ्च धारय मां नित्यं पवित्रं कुरु चासनम्॥"

पंचगव्य द्वारा मण्डप शुद्धि होती है। ये सब द्रव्य भगवदुद्देशसे निवेदित होते हैं तथा जिससे भगवत्पूजा की जाती है, उसका शोधन कर करनी होती है। शास्त्रमें प्रत्येक द्रव्यका ही शुद्धिमन्त्र निर्दिष्ट है।

शुद्धिकन्द (सं० क्ली०) लहसुन।

शुद्धिकृत (सं० त्रि०) शुद्धिं करोतीति कृ क्विप तुक् च। शुद्धिकारक।

शुद्धितम (सं० त्रि०) शुद्धि-तमप्। अति विशुद्ध।

शुद्धितत्त्व—रघुनन्दन कृत स्मृतितत्त्वका चौथा ग्रन्थ। इसमें मृत और जननाशौचविधि, स्वर्णरौप्यादि धातव पात्रशुद्धि आदि विषय लिखे हैं।

शुद्धिपत्र (सं० पु०) वह पत्र जिसमें छपनेके समय पुस्तकमें रही हुई अशुद्धियां बतलाई गई हों, वह पत्र जिससे सूचित हो, कि कहां क्या अशुद्धि है।

शुद्धिभूमि (सं० स्त्री०) एक जनपदका नाम।

शुद्धिमत् (सं० त्रि०) शुद्धि अस्त्यर्थे मतुप्। शुद्धिविशिष्ट, विशुद्ध। (रघुवंश १।१२)

शुद्धोद (सं० त्रि०) शुद्धानि केवलानि उदकानि यत्र, उदकशब्दस्य उदादेशः। १ केवल जलयुक्त। (पु०) २ समुद्र, सागर। (भागवत ५।१।३३) ३ सूर्यवंशीय शाक्य राजाके पुत्र। (भागवत ९।१२।१४)

शुद्धोदन (सं० पु०) एक सुप्रसिद्ध शाक्य राजा। ये भगवान् बुद्धदेवके पिता थे। प्राचीन कोशलराज्यके पूर्वांशमें स्थित कपिलवास्तु नगरी इनकी राजधानी थी। इन्होंने कोलियान राजकी दो कन्याओंका पाणिग्रहण किया। बुद्धदेव देखो।

शुद्धोदनसुत (सं० पु०) शुद्धोदनस्य सुतः। शुद्धोदनके पुत्र, बुद्धदेव। बुद्ध देखो।

शुद्धोदनि (सं० पु०) विष्णु। (पञ्चरात्र)

शुनःशेफ (पु०) मुनिविशेष। ये ऋचीक मुनिके पुत्र थे। रामायणमें इनकी कथा इस प्रकार लिखी है—एक समय अयोध्याधिपति राजा अम्बरीषने एक बड़े यज्ञका अनुष्ठान किया। इन्द्रने राजाका यज्ञपशु चुरा लिया, इस पर ऋत्विकोंने कहा, 'महाराज! आपकी असावधानता ही यज्ञके विघ्नका मूल कारण है। यज्ञविध्वंसके पापका प्रायश्चित्त करना आपका कर्त्तव्य है। प्रायश्चित्त न करनेसे आपका सर्वनाश हो जायगा। इस पापके प्रायश्चित्तके लिये एक मनुष्यका बलिदान करनेका नियम है। अतएव इस यज्ञमें एक नरबलि प्रदान कीजिये।

राजा अम्बरीष एक नरबलि प्रदान करनेके अभिलाषी हो कर उसकी खोजमें अनेकों जनपद, देश, नगर, वन और पुण्य आश्रमोंमें भ्रमण करने लगे। इस प्रकार घूमते घूमते अन्तमें वे भृगुतुङ्ग नामक स्थानमें पहुंचे। वहां ऋचीक नामक एक मुनि रहते थे। उनके तीन पुत्र थे। राजाने अत्यन्त नम्रतापूर्वक निवेदन किया, "यदि आप एक लाख गौका दाम ले कर अपने एक पुत्रको मेरे हाथ बेचें, तो मेरा बड़ा उपकार हो। आपके तीन लड़के हैं, कृपा कर मूल्य ले कर अपना एक पुत्र मुझे प्रदान करें। बलिप्रदान करनेके लिये एक मनुष्य खरीदनेकी इच्छासे मैंने अनेक स्थानोंमें भ्रमण किया है, पर कहीं नहीं मिला।"

इस पर ऋचीकने कहा, "बड़ा लड़का मेरा बड़ा प्यारा है, इसलिये उसे नहीं बेच सकता।' ऋचीककी बात सुन कर ऋचीकपत्नी बोली, "छोटा लड़का मेरे प्राणोंसे बढ़ कर प्रिय है, इसलिये वह नहीं बेचा जा सकता।" मध्यम पुत्रका नाम शुनःशेफ था। शुनःशेफने मातापिताकी ऐसी उक्ति सुन कर कहा—"राजन्! बड़ा और छोटा लड़का मातापिताका बड़ा प्यारा होता है, अतएव नहीं बेचा जा सकता। मैं मध्यम पुत्र हूं, सुतरां बेचा जाने योग्य हूं। आप मुझे ले चलिये।" राजा शुनःशेफकी बात सुन कर कई करोड़ सुवर्ण मुद्राएं, अनेक रत्न तथा एक लाख गो शुनःशेफके पिताको दे कर शुनःशेफके साथ वहांसे चल दिये।

राजाने शुनःशेफको साथ ले कर चलते चलते दो प्रहरको विश्राम करनेके अभिप्रायसे पुष्करतीर्थमें डेरा डाला। इस पुष्करतीर्थमें विश्वामित्र ऋषि तपस्या करते थे। विश्वामित्र शुनःशेफके बड़े मामा थे। शुनःशेफने विश्वामित्रको देख उनके पास जा कर कहा, "मेरे मातापिताने धनके लालचमें पड़ कर मुझे बलिके लिये राजाके हाथ बेच दिया है। मैं प्राणके भयसे भयभीत हो कर आपकी शरणमें आया हूं। आप कुछ ऐसा उपाय कर देवें, जिससे मैं भी आपकी दयासे दीर्घायु हो कर तपस्या द्वारा स्वर्ग प्राप्त कर सकूं और राजा भी यज्ञ समाप्त कर कृतकार्य होवें।"

विश्वामित्रने शुनःशेफकी बातें सुन कर उसे सान्त्वना दी और उसी समय अपने लड़कोंको बुला कर कहा— 'पुत्रो! यह बालक मेरा शरणागत है तुम लोग इसकी प्राणरक्षा कर मेरा प्रिय कार्य सम्पादन करो। तुम लोग इस राजाके यज्ञमें बलि बन कर अग्निकी तृप्ति करो, इससे राजाका यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हो जायगा और देवताओंके सन्तुष्ट होनेसे राजाका अभीष्ट सिद्ध होगा।'

विश्वामित्रकी ऐसी वाणी सुन कर पुत्र मधुच्छन्द प्रभृति हंस कर बोले—"आप दूसरेके पुत्रकी रक्षा करनेके लिये अपने पुत्रका परित्याग करने पर तुले पड़े हैं, किन्तु इसमें हम लोगोंकी सम्मति नहीं होती। यह आत्ममांस भक्षण करनेकी तरह अत्यन्त अप्रसन्न जान पड़ता है।' विश्वामित्र पुत्रकी बात पर क्रोधसे अधीर हो उठे, अतएव उन्होंने पुत्रोंको शाप दे कर शुनःशेफसे कहा— पुत्र! तुम जिस समय अम्बरीषके यज्ञमें रक्त माल्यधारी तथा रक्तानुलेपित हो कर वैष्णव यूपमें पाश द्वारा आबद्ध होगे, उस समय आग्नेय मन्त्रसे अग्निका स्तव और दिव्य गाथा गान करना, उससे तुम्हें सिद्धि प्राप्त होगी।" शुनःशेफने समाहित हो कर उन दोनों गाथाओंको ग्रहण किया।"

तब शुनःशेफ प्रसन्नतापूर्वक राजा अम्बरीषके पास आये और बोले—"राजा! आप शीघ्र चल कर यज्ञ समापन करें।" इस पर राजा तुरत शुनःशेफके साथ यज्ञभूमिकी ओर रवाना हुए। अनन्तर यज्ञभूमिमें उपस्थित हो कर राजाने विधिपूर्वक शुनःशेफको रक्ताम्बर पहनाया और पशुरूपसे उसे पवित्र कुशकी डोरीसे यूपमें बांध दिया। शुनःशेफने इस प्रकार यूपमें बंध जाने पर आग्नेयमन्त्रसे अग्निका स्तव कर इन्द्र और इन्द्रानुज विष्णु, इन दोनों देवताओंका स्तव दो गाथाओं द्वारा किया। इन्द्र और उपेन्द्रने उनके स्तवसे परितुष्ट हो कर उन्हें दीर्घायु प्रदान किया। राजाने भी उन देवताओंके प्रसादसे उस यज्ञका पूरा फल प्राप्त किया।

देवीभागवतमें लिखा है कि राजा हरिश्चन्द्र वरुणके अभिसम्पातसे जलोदररोगसे पीड़ित हो कर अति कष्ट भोग करते थे। उस समय वे वरुणके शापसे छूटकारा पानेके लिए वसिष्ठ मुनिकी शरणमें गये। वसिष्ठजीने उन्हें एक पुत्र खरीद कर यज्ञानुष्ठान करनेका परामर्श दिया। हरिश्चन्द्रने वसिष्ठके उपदेशसे यज्ञानुष्ठान किया एवं एक पुत्र खरीदनेके लिये मन्त्रीसे कहा।

हरिश्चन्द्रके राज्यमें अजीगर्त्त नामक एक अत्यन्त दरिद्र ब्राह्मण रहता था। उसके तीन पुत्र थे। बड़े पुत्रका नाम शुनःपुच्छ, मझलेका शुनःशेफ और छोटे लड़केका नाम शुनोलाङ्गुल था। मन्त्रीने रुपये दे कर उस दरिद्र ब्राह्मणका पुत्र खरीदनेकी इच्छा प्रकट की। अजीगर्त्त अन्नाभावसे अत्यन्त कातर हो रहा था, सुतरां मन्त्रीकी बात सुन कर उसने अपने एक पुत्रको बेचना चाहा। किन्तु बड़े लड़केको और्द्ध्वदैहिक क्रियाका अधिकारी समझ कर उसे नहीं बेचा। माताने कहा, "छोटा लड़का मेरा बड़ा प्यारा है।' अतएव अजीगर्त्तने अपने मझले पुत्र शुनःशेफको नरमेध यज्ञका पशु बनाया। बालक यूपकाष्ठमें आबद्ध हो कर रोने लगा। मुनिगण उसका रोदन सुन कर चिल्ला उठे। यह दृश्य देख कर शमिता (बलि चढ़ाने वाला शिरश्छेदक) अस्त्र फेंक कर बोला 'यह ब्राह्मणका लड़का अत्यन्त कातर हो कर करुणस्वरसे रोदन करता है, अतएव मैं लोभके वशीभूत हो कर इसका वध नहीं कर सकता।" उस समय यज्ञभूमिमें कोलाहल मच गया।

अनन्तर शुनःशेफके पिता अजीगर्त्तने सभास्थलमें पहुंच कर कहा, 'राजन्! आप धैर्य धारण करें। आप मुझे दूना धन दें मैं ही आपका कार्य सम्पादन करूंगा।" जब राजाने अजीगर्त्तके कथनानुसार धन दूना स्वीकार किया, तब वह अपने पुत्रका संहार करनेको तैयार हो गया। उसे पुत्रहत्या करने पर तैयार देख सभासद् लोग 'हाय! हाय!' करने लगे। उस समय शुनःशेफका करुण क्रन्दन सुन कर विश्वामित्रका हृदय दयासे भर गया। वे राजाके पास आ कर बोले— 'तुम इस बालकको छोड़ दो, इससे अवश्य तुम्हारा यज्ञ सम्पूर्ण होगा और तुम रोगसे भी मुक्त हो जाओगे। यह बालक अत्यन्त कातर हो कर बड़ा दीनतासे रो रहा है अतएव इसे मुक्त करो।'

जब राजा उस बालकको छोड़ देनेके लिए तैयार नहीं हुए, तब विश्वामित्रने उसके निकट आ कर

उसे वरुणमन्त्रका उपदेश दे कर कहा, "तुम यह मन्त्र जपो, इससे तुम्हारा कल्याण होगा।" शुनःशेफके वरुण-मन्त्रके जप करते ही वरुण देवता वहां आ उपस्थित हुए। तब वरुणकी स्तुति करने लगे। वरुण बोले, "शुनःशेफने अत्यन्त कातर हो कर मेरी स्तुति की है, इसे छोड दो। तुम्हारा यज्ञ सम्पूर्ण हो गया। तुम्हें रोगसे मुक्त करता हूं।" वरुण-देवकी दयासे द्विजपुत्र पाशबन्धनसे मुक्त हुआ, उस समय सभामें चारों ओरसे 'जय जय' की ध्वनि आने लगी। राजाका वह निदारुण रोग उसी क्षण दूर हो गया।

इसके बाद शुनःशेफने सभासदोंसे पूछा—"सज्जन वृन्द! इस समय मैं किसका पुत्र हूं? मेरे पिता कौन हैं, आप लोग इसका निर्देश कर देवें।" इस विषय पर उस समय नाना प्रकारका मतभेद होने लगा। अन्तमें वसिष्ठने सभी कलह करनेवालोंसे कहा, "जब पिताने पुत्रस्नेह त्याग कर इसे बेच दिया, तब वह इसके पिता होनेका अधिकारी नहीं है। इसके बाद यह हरिश्चन्द्रका क्रीतपुत्र हुआ। किन्तु जब राजाने इसे यूपमें बांध दिया, तब यह राजाका भी पुत्र नहीं हो सकता। इस बालकने वरुणकी स्तुति की थी, जिससे उन्होंने सन्तुष्ट हो कर इसका उद्धार किया। सुतरां यह वरुणका भी पुत्र नहीं हो सकता। क्योंकि जब कोई किसीका स्तव करता है, तब वह प्रसन्न हो कर स्तव करनेवालोंको सब कुछ प्रदान कर देता है। संकटके समय महर्षि विश्वामित्रने द्रवीभूत हो कर उसे वरुणका महावीर्य मन्त्र प्रदान किया था, जिस मन्त्रसे ही इस बालककी रक्षा हुई है, इसलिये यह बालक विश्वामित्रका पुत्र हुआ।" शुनःशेफ यह सुन कर विश्वामित्रका अनुगामी हुआ। (देवीभागवत ७।१५।१८ अ०)

वैदिक मन्त्रोक्त ऋषिभेद। अनेक वैदिक मन्त्रोंमें इस ऋषिका उल्लेख है। ऋग्वेदमें लिखा है, कि शुनःशेफने यूपमें आबद्ध हो कर वरुणदेवका गान किया था। वरुणने सन्तुष्ट हो कर इसे मुक्त किया।

"शुनःशेपो ह्यह्वद् गृभीतः सो अस्मान् राजा वरुणो मुमोक्तु" (ऋक् १।२४।१२) 'गृभीतो गृहीतो यूपे बद्धः शुनःशेप एतन्नामको जनः य वरुणमह्वत् आहुतवान् स वरुणो राजा अस्मान् शुनःशेपान् मुमोक्तु, बन्धनात् मुक्तं करोतु' (सायण)

"शुनःशेपो ह्यह्वद् गृभीतस्त्रिष्वादित्यं द्रुपदेषु बद्धः।
अवैनं राजा वरुणः ससृज्याद् विद्वान् अदब्धो विमुमोक्तु पाशान्॥"
(ऋक् १।२४।१३)

ऐतरेय ब्राह्मणमें ७।१५, शाङ्खायन श्रौतसूत्र १५।२०।१, १६।११।२, महाभारत अनुशासनपर्व, भागवत ९।२।४६ प्रभृति स्थानोंमें शुनःशेपका विवरण लिखा है। ये एक वैदिक मन्त्रद्रष्टा ऋषि थे। पुरुषमेध देखो।

शुनःसख (सं० पु०) महाभारतके अनुसार एक ऋषिका नाम।

शुनःहकर्ण (सं० पु०) एक प्राचीन ऋषिका नाम।

शुन (सं० पु०) शुनति सदा इतस्ततो गच्छतीति शुन-क। १ कुक्कुर, कुत्ता। शुनति क्षिप्रं गच्छति शुन क। २ वायु। (निघण्टु टीका देवराज यज्वा ५।३।३४) (क्ली०) ३ सुख (ऋक् ४।५७।६)

शुनक (सं० पु०) शुनति इतस्ततो गच्छतीति शुन गतौ (कुन शिल्पिसंज्ञयोरपूर्वस्यापि। उण् २।३२) इति क्वुन। १ कुक्कुर, कुत्ता। २ एक गोत्रप्रवर्त्तक ऋषिका नाम।

शुनकचञ्चुका (सं० स्त्री०) शुनकस्य चञ्चुरिव स्वार्थे कन्। क्षुद्र चञ्चुक्षुप, चेंच नामका साग।

शुनकचिल्ली (सं० स्त्री०) शुनकप्रिया चिल्ली। शाकविशेष, बथुआ। पर्याय—श्वचिल्ली, श्वानचिल्लिका। गुण—कटु, तीक्ष्ण, कण्डु और व्रणनाशक। (राजनि०)

शुनहोत्र (सं० पु०) १ एक प्राचीन ऋषिका नाम। २ भरद्वाज ऋषिके पुत्रका नाम। ये ऋग्वेदके ६।३३ सूक्तके मन्त्रद्रष्टा ऋषि हैं। ३ क्षत्रवृद्धके पुत्रका नाम।

शुनामुख—हिमालयके उत्तरका एक जनपद। यह बिन्दु-सरोद्भवा सिन्धुनद द्वारा प्लावित है। (मत्स्यपु० १२१।४८) भौगोलिक Ktesias इसे Kynokaphallai शब्दमें नेपालके उत्तरमें अवस्थित बताया है। इसका वर्त्तमान नाम खुनमुख है।

शुनाशीर (सं० पु०) शुनाशीरौ वायुसूर्यौ अस्य स्त इति, अर्श आदित्वादच्। इन्द्र और वायु।

शुनासीर (सं० पु०) शुनाशीर-अच्। शुनाशीर देखो।

शुनासीरिन् (स ० त्रि०) १ शुन और सीरयुक्त । (पु०) २ इन्द्र ।

शुनासीरीय (स ० त्रि०) इन्द्र सम्बन्धी, इन्द्रका । २ सूर्य देवताका सम्बन्धका । ३ वायुदेवताके सम्बन्धका ।

शुनि (स ० पु०) शुनति क्षिप्रं गच्छतीति (शुन गतौ इगु पधात् कित । उण् ४।११६) इति इन स च कित् । कुक्कुर, कुत्ता । (हेम)

शुनिन्धम (स ० पु०) शुनी+ध्मा खश् । वह जो कुत्ते को अग्नि उत्ताप देता हो । (वोपदेव)

शुनिन्धय (स ० पु०) शुनी धे-खश् । वह जो कुत्ते को खिलाता हो । (वोपदेव)

शुनी (स ० स्त्री०) श्वन् गौरादित्वात् ङीष् । १ कुक्कुरी, कुत्ती । (अमर) २ कुष्माण्डा, कुम्हड़ो । (राजनि०)

शुनीर (स० पु०) कुत्तियोंका समूह । (त्रिका०)

शुनेषित (स० त्रि०) शुना इषित । कुक्कुर द्वारा प्रापित ।

शुनोलाङ्गूल (स ० पु०) शुन शेफके छोटे भाइका नाम ।

शुन्धन (स ० त्रि०) शुद्ध परिष्कृत ।

शुन्ध्यु (स ० पु०) शुन्ध शुद्धौ यजिमनिशुन्धिदसि जनिभ्यो युच् । (उण् ३।२०) इति युच् । १ अग्नि । (उज्ज्वल) २ आदित्य । ३ श्वेतवर्ण पक्षिविशेष, सफेद रंगका एक प्रकारका पक्षी ।

शुन्य (स ० क्ली०) १ शुनासमूह, कुत्तियोंका समूह । (त्रिका०) (त्रि०) २ रिक्त, खाली । शुने हित श्वन् । (उगवादिभ्यायत । पा ५।१।२) इति यत्, शुन सम्प्रसारण । ३ कुत्तेके लिये हितकर ।

शुप्त (स ० स्त्री०) शोभमान स्वकीयमुख । "इत्था धियं अधिशुप्ता वज्रहत" (ऋक् १।५२।५) "शुप्ते शोभमाने स्वकीये मुखे, मुख वीर्तो कर्माणि क्तिन्' (सायण)

शुबहा (अ० पु०) १ सन्देह, शक । २ धोखा, वहम, भ्रम ।

शुभ या (स ० स्त्री०) शुभ यातीति विजप् । शुभप्राप्त ।

शुभ यावन् (स ० त्रि०) शोभनरूपमें गमनकारी ।

शुभ विद्या (स ० स्त्री०) अज्ञात शुभ या वह जो शुभ बातोंको नहीं जानती हो ।

शुभ यु (स ० त्रि०) शुभमस्यास्तीति शुभम् (अहं शुभमो यस । पा ५।२।१४०) इति युस् । मङ्गलान्वित, शुभान्वित ।

शुभ (स ० क्ली०) शोभते इति शुभ धातो क । १ मङ्गल, क्षेम, भलाई । २ पद्मकाष्ठ, पदुमाख । ३ उदक । (निघण्टु १।१२) शुभ शब्दके पर्यायमें 'शुभम्' एक अव्यय पद है । (पा ५।२।११० काशिका) (पु०) शोभते इति शुभ क । ४ विष्कम्भादि सत्ताइस योगोंके अन्तर्गत एक योग । फलितज्योतिषके अनुसार जो बालक इस योगमें जन्म लेता है, वह सब लोगोंका कल्याण करनेवाला, अच्छे कर्म करनेवाला, पण्डितोंका सत्सङ्ग करनेवाला और बुद्धिमान होता है । (त्रि०) शुभमस्त्यास्तीति अर्श आदित्वादच् । ५ क्षेमशाली, कल्याणकारी । ६ सुखी । ७ कुशली । ८ सुन्दर, मनोहर, उत्तम ।

शुभकर (स ० त्रि०) करोतीति कृ ट, शुभस्य करः । शुभजनक, मङ्गलकर ।

शुभकरी (स ० स्त्री०) पार्वती ।

शुभकर्मन् (स ० क्ली०) १ मङ्गलजनक कर्म । २ विवाह अन्नप्राशनादि संस्कारकार्य ।

शुभकूट (स० पु०) सिंहल द्वीप या सिलोनका एक प्रसिद्ध पर्वत जिस पर चरणचिह्न बने हुए हैं । ईसाई इन्हें हजरत आदमके चरणचिह्न और बौद्ध महात्मा बुद्धके चरण चिह्न मानते हैं । अङ्गरेजोंमें इसे Adam s peak कहते हैं ।

शुभकृत् (स ० त्रि०) शुभं करोतीति कृ क्विप्, तुक् च । शुभकर शुभजनक ।

शुभकृत्स्न (स ० पु०) बौद्ध देवताओंका एक वर्ग ।

शुभकेशी—कादम्बवंशीय एक नरपति । ये कर्णाटक देश में राज्य करते थे । शिलालिपिमें इनका शुभकेशी और पद्मदेव नाम मिलता है । इनके पुत्र जयकेशी चालुक्य राज कर्णके (१०६४ १०९४ ई०) ससुर थे ।

शुभक्षण (स ० क्ली०) शुभ समय, मङ्गलजनक मुहूर्त्त ।

शुभगन्धक (स ० क्ली०) शुभो गन्धो यस्य १ बोल नामक गन्धद्रव्य, गन्धबोला । (राजनि०) (त्रि०) २ मङ्गलगन्धयुक्त ।

शुभग्रह (स ० पु०) शुभः ग्रहः । सौम्यग्रह, बृहस्पति और शुक्र ये दोनों ग्रह ही प्रकृत शुभग्रह हैं । इनके सिवा बुध ग्रह यदि पापयुक्त न हो, तो वह भी शुभ है । बुध पापयुक्त होनेसे पापग्रह गिने जाते हैं । अर्द्धाधिक चन्द्र अर्थात् शुक्लाष्टमीके बादसे कृष्णाष्टमी पर्यन्त चन्द्र शुभ है । (ज्योतिषतत्त्व०)

शुभग्रहके वारमें अर्थात् शुभवारमें शुभलग्नमें और शुभ तिथि आदिमें शान्तिपौष्टिक आदि शुभ कार्य करने होते हैं।

शुभङ्कर (सं० त्रि०) शुभं करोतीति शुभ कृ खच्। मङ्गल कारक, शुभ या मङ्गल करनेवाला।

शुभङ्कर—१ एक प्रसिद्ध नैयायिक इनका असल नाम प्रगल्भ आचार्य था। प्रगल्भ आचार्य देखो। २ एक कवि। ३ तिथिनिर्णयके प्रणेता। ४ सङ्गीतदामोदरके रचयिता। ये श्रीधरके पुत्र थे।

शुभङ्कर—एक प्रसिद्ध मानसाङ्कवेत्ता। ये अङ्कशास्त्रके दुर्बोध नियम बहुत संक्षेपसे सुललित बंगलाकवितामें रचना कर सुकुमारमति बालकवृन्दके चित्तमें उनको निर्मल छवि अङ्कित कर गये हैं। शुभङ्कर दास जातिके कायस्थ थे। नवाबी अमलमें प्रायः दो सौ वर्ष आगे राजकीय विभिन्न विभागमें कैसा बन्दोबस्त था तथा किस नियमसे नवाब सरकारके कार्य परिचालित होते थे, उन्होंने स्वरचित 'छत्तीस कारखाना' नामक ग्रंथमें उन सबोंका सम्यग् विवृत कर दिया है।

शुभङ्करी (सं० स्त्री०) शुभङ्कर-ङीप्। १ पार्वती। दुर्गादेवी शुभ विधान करती हैं। इसलिये वे शुभङ्करी कहलाती हैं। (शब्दरत्ना०) २ शुभङ्कर-प्रणीत अङ्कशास्त्र।

शुभचन्द्र—शब्दचिन्तामणिवृत्तिके प्रणेता।

शुभचिन्तक (सं० त्रि०) हितैषी, शुभ या भला चाहने वाला, खैरख्वाह।

शुभताति (सं० स्त्री०) सौभाग्य, समृद्धि।

शुभतुङ्ग—गुजरातके राष्ट्रकूटवंशीय एक राजा। ये ८६७ ई०में पिता ध्रुवदेवके मरने पर राजगद्दी पर बैठे। इनका दूसरा नाम अकालवर्ष था।

शुभद (सं० पु०) शुभं ददातीति दा क। १ अश्वत्थ वृक्ष, पीपलका पेड़। (त्रि०) २ शुभदाता, शुभदायक।

शुभदन्त (सं० त्रि०) उत्तमदंतविशिष्ट, जिसके दांत सुन्दर हों।

शुभदन्ती (सं० स्त्री०) शुभदंतो यस्याः ङीप्। १ सुदती, शोभन दंतविशिष्ट, वह स्त्री जिसके दाँत सुन्दर हो। २ पुराणानुसार पुष्पदंत नामक हाथीकी हथनीका नाम।

शुभदर्शन (सं० त्रि०) १ सुन्दर, सुश्री, खूबसूरत। २ जिसका मुंह देखनेसे कोई शुभ या मङ्गल बात हो।

शुभदायिन् (सं० त्रि०) शुभं ददातीति दा-णिन्, युकागमः। शुभद, शुभ या मङ्गल करनेवाला।

शुभधर (सं० पु०) व्यक्तिभेद। (राजत० ७।२४०)

शुभनय (सं० पु०) मुनिभेद। (कथासरित्सा० ७२।३६६)

शुभनामा (सं० स्त्री०) शुक्ला पंचमी, दशमी और पूर्णिमा तिथि।

शुभपत्रिका (सं० स्त्री०) शुभानि पत्रानि यस्याः स्वार्थे कन् टापि अत इत्वं। १ शालपर्णी, सरिवन। (राजनि०) २ मङ्गलपत्रिका।

शुभपुष्पितशुद्धि (सं० पु०) समाधि।

शुभप्रद (सं० त्रि०) शुभं प्रददातीति दा-क। शुभदा, शुभ या मङ्गल करनेवाला।

शुभभावना (सं० स्त्री०) मङ्गलजनक भावना, मङ्गलविषयक चिन्ता।

शुभमङ्गल (सं० क्ली०) शुभ और मङ्गल।

शुभमणिनगर—एक प्राचीन नगर। यह वाराणसी विभागके बस्ति जिलेके रामपुर देवरिया ग्रामसे १२ मील दक्षिणमें अवस्थित है। आज कल यहां प्राचीन कीर्त्तिका कुछ भी निदर्शन नहीं है, सिर्फ पिपुरावा-महादेव और बघेरा-महादेव नामक भग्न मन्दिरके दो स्तूप और दूसरे दो बड़े स्तूप तथा भग्न सूर्य मूर्त्ति आदि उसकी अतीत स्मृति घोषणा करती है।

शुभमय (सं० त्रि०) शुभ स्वरूपे मयट्। शुभस्वरूप, मङ्गलमय।

शुभम्भावुक (सं० त्रि०) १ शुभदर्शन। २ शुभचिंतक।

शुभवक्त्रा (सं० स्त्री०) कार्त्तिकेयकी एक मातृकाका नाम।

शुभवत् (सं० त्रि०) शुभ-अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। शुभविशिष्ट, मङ्गलयुक्त।

शुभवस्तु (सं० स्त्री०) १ नदीभेद, वैदिक सुवास्तु नदी। इसका वर्त्तमान नाम सोयात् है। (क्ली०) २ माङ्गलिक द्रव्य।

शुभवासन (सं० पु०) शुभं शोभनं यथा तथा वासयति मुखमिति शुभ-वस-णिच् ल्यु। मुखवासकर गंध, मुखका सुगंधजनक वास।

शुभविमलगर्भ (स० पु०) एक बोधिसत्त्वका नाम।

शुभव्यूह (स० पु०) राजभेद।

शुभव्रत (स० त्रि०) एक प्रकारका व्रत। कार्त्तिक शुक्ला पञ्चमीको यह व्रत किया जाता है।

शुभशंसिन् (स० त्रि०) शुभं शंसति शंस णिनि। शुभ सूचक, जिसके द्वारा शुभकी सूचना हो।

शुभशील्गणि—भोजप्रबन्धके रचयिता तथा मुनिसुन्दरके शिष्य। ये श्वेताम्बर जैन थे।

शुभशैल (स० पु०) एक कल्पित पर्वतका नाम।

शुभश्रवा (स० स्त्री०) एक प्राचीन नदीका नाम।

शुभसंयुत (स० त्रि०) शुभेन संयुत। शुभसंयुत शुभविशिष्ट।

शुभसप्तमीव्रत (स० क्ली०) सप्तमीव्रतभेद।

शुभसार (स० पु०) एक राजाका नाम।

शुभसूचनी (स० स्त्री०) शुभं सूचयतीति सुच णिच् ल्यु, स्त्रियां ङीप्। एक देवीका नाम। इनकी पूजाका सङ्कल्प किसी शुभ कामके होनेकी आशासे की जाती है और यह शुभ काम हो जाने पर इनकी पूजा की जाती है। इस देवताकी पूजा प्रायः स्त्रियां ही करती हैं। व्यवहार है, कि यदि स्त्रियां पूजा न कर सकती हों, तो पुरुष ही पूजा करे। पूजा हो जाने पर देवीके उद्देश्यसे पाल्नी तथा देवीकी पाञ्चाली कथा सुनती होती है।

शुभस्थली (स० स्त्री०) शुभा स्थली। १ यज्ञभूमि। २ मङ्गल भूमि, पवित्र स्थान।

शुभस्पति (स० पु०) शोभन कर्मोंका पालक, शुभकर्मोंका रक्षक। (ऋक् १।३।१)

शुभा (स० स्त्री०) शुभ-टाप्। १ शोभा कांति। २ इच्छा, चाह। ३ वंशलोचना। ४ गोरोचना। ५ शमी, सफेद कीकर। ६ प्रियङ्गु वनिता। ७ श्वेत दूर्वा, सफेद दूब। ८ देवताओंकी सभा। ९ पार्वती की एक सखीका नाम। १० मङ्गलजनिका। ११ स्पृका, पिड़ि साग। १२ शुक्लवचा, सफेद वच। १३ तमक्षीर, बकरीका दूध। १४ असवरग। १५ पुरइन की पत्ती। १६ शताह्वा सोवा। १७ अखरोट। १८ एक नदीका नाम। (सह्याद्रि १२।७)

शुभाकरगुप्त (स० पु०) एक बौद्धाचार्य और बौद्धग्रन्थकार।

शुभाक्षिका (स० स्त्री०) भूम्यामलकी, भूई आंवला।

शुभागम (स० पु०) १ हितकर विषयका समागम मङ्गलक्रियाका समागम।

शुभाङ्ग (स० त्रि०) शुभानि अङ्गानि यस्य। मङ्गल अवयवयुक्त।

शुभाङ्गद (स० पु०) महाभारतके अनुसार एक राजाका नाम।

शुभाङ्गिन् (स० त्रि०) शुभाङ्ग अस्त्यर्थे इनि। शुभाङ्ग विशिष्ट, शोभन अवयवयुक्त।

शुभाङ्गी (स० स्त्री०) १ कुबेरकी पत्नी। २ कामदेवकी पत्नी, रति। ३ कुरुराजकी पत्नी। इनके गर्भसे विदूरथका जन्म हुआ। (भारत १।९५।३६)

शुभानन (स० पु०) पुराणानुसार एक कल्पित पातालका नाम। (कालिकापु० ७८ अ०)

शुभाचार (स० त्रि०) शुभ आचारो यस्य। शोभन आचारविशिष्ट जिसका आचार बहुत अच्छा हो, शुभ आचारयुक्त।

शुभाचारा (स० स्त्री०) पुराणानुसार पार्वतीकी एक सखीका नाम।

शुभाञ्जन (स० पु०) शोभाञ्जनक वृक्ष लाल सहिजन का पेड़।

शुभात्मक (स० त्रि०) शुभ आत्मा स्वरूपो यस्य। शुभस्वरूप।

शुभात्मिका (स० स्त्री०) शुभस्वरूपा।

शुभानन्दा (स० स्त्री०) दाक्षायणी।

शुभान्वित (स० त्रि०) शुभेन अन्वितः। मङ्गलयुक्त, शुभविशिष्ट। पर्याय—शुभंयु। (अमर)

शुभार्थिन् (स० त्रि०) शुभं मङ्गलमर्थयते अर्थ णिनि। शुभप्रार्थी, शुभकामी।

शुभावह (स० त्रि०) शुभसूचक, मङ्गलजनक।

शुभाशय (स० त्रि०) विज्ञ, धार्मिक, विशुद्धचित्त।

शुभाशिस् (स० त्रि०) शुभा आशीर्यस्य। १ शुभ आशीर्वादयुक्त शुभ आशीर्वादविशिष्ट। (स्त्री०) २ शुभ आशीर्वाद।

शुभाशुभ (स० त्रि०) १ शुभ और अशुभयुक्त शुभ और

अशुभकर्मविशिष्ट। २ शुभ और अशुभ, अच्छा और खराब।

शुभासन (सं० पु०) एक तान्त्रिक आचार्यका नाम।

शुभैकदृश् (सं० त्रि०) मङ्गलकामी।

शुभोदय (सं० पु०) १ एक तान्त्रिक आचार्यका नाम। २ शुभ नक्षत्र आदिका उदय।

शुभ्र (सं० क्ली०) शोभते इति शुभ दीप्तौ (स्फायि तञ्चि वञ्चीति। उण् २।१३) इति रक्। १ अभ्रक, अबरक। २ गड़लवण, साभर नमक। ३ रौप्य, रूपा, चाँदी। ४ कसीस। ५ पद्मकाष्ठ, पद्माख। ६ रौप्य माक्षिक, रूपामक्खी। ७ मेदो धातु। ८ सैन्धवलवण, सेंधा-नमक। ९ उशीर, खस। (पु०) १० शुक्लवर्ण, सफेद रंग। ११ चन्दन। (त्रि०) १२ उद्दीप्त। १३ शुक्ल-गुणयुक्त।

शुभ्रखादि (सं० त्रि०) १ शोभनायुध, आयुधविशिष्ट। २ शोभन हविष्क, शोभन हवियुक्त।

शुभ्रतरु (सं० पु०) शिरीष वृक्ष, सिरिसका पेड़।

शुभ्रता (सं० स्त्री०) शुभ्रस्य भावः तल् टाप्। शुभ्रका भाव या धर्म, शुक्लता, सफेदी।

शुभ्रदन्त (सं० त्रि०) शुभ्रवर्ण दन्तविशिष्ट, जिसके दांत सफेद हों।

शुभ्रदन्ती (सं० स्त्री०) शुभ्रौ दन्तौ यस्याः। शु दन्तौ; पुष्पदन्त नामक दिग्गजकी हथनीका नाम।

शुभ्रपर्ण (सं० पु०) सफेद पान।

शुभ्रपुङ्खा (सं० स्त्री०) श्वेत शरपुङ्खा।

शुभ्रपुर—एक प्राचीन नगरका नाम। शालके पुत्र सूर्यने यह नगर बसाया। (जैनहरि० १७।३२)

शुभ्रपुष्प (सं० क्ली०) वीरणतृण, खस।

शुभ्रभानु (सं० पु०) शुभ्राः भानवो यस्य। शुभ्रकिरण-विशिष्ट, चन्द्रमा, शुभ्रांशु।

शुभ्रमती (सं० स्त्री०) एक नदीका नाम।

शुभ्रयामन् (सं० पु०) दिन। (ऋक् ३।५८।१)

शुभ्रयावन् (सं० त्रि०) शोभनशील गमनयुक्त।

शुभ्ररश्मि (सं० स्त्री०) शुभ्रा रश्मयो यस्य। १ चन्द्रमा। २ श्वेत किरण।

शुभ्रवती (सं० स्त्री०) एक नदीका नाम।

शुभ्रवेष्ट (सं० पु०) श्वेतशाल्मलि, सफेद सेमल।

शुभ्रव्रत (सं० पु०) व्रतविशेष। (वराहपुराण)

शुभ्रशस्तम (सं० त्रि०) अतिशय दीप्यमान, निर्मल होने पर भी निर्मल यशोयुक्त। (ऋक् ६।६६।१६)

शुभ्रांशु (सं० पु०) शुभ्रा अंशवो यस्य। १ चन्द्रमा। (अमर) २ कर्पूर, कपूर।

शुभ्रा (सं० स्त्री०) १ वंशरोचना। २ फिटकरी। ३ शर्करा, चीनी। ४ श्वेत वृद्धदारक, सफेद विधारा।

शुभ्रालु (सं० पु०) शुभ्रः शुक्ल आलुः। १ महिषकन्द, भैंसाकन्द। २ शङ्खालु।

शुभ्रावत् (सं० त्रि०) शोभाविशिष्ट। (ऋक् ६।१५।३)

शुभ्रि (सं० पु०) शोभते इति शुभ (अदि शदि भू शुभिभ्यः क्रिन्। उण् ४।६५) इति क्रिन्। ब्रह्मा।

शुभ्रिका (सं० स्त्री०) मधुशर्करा, शहदसे तैयार की हुई चीनी।

शुम्भन् (सं० त्रि०) शोभमान। (ऋक् ४।३८।६)

शुम्ब (सं० क्ली०) शुल्व।

शुम्बल (सं० क्ली०) ज्वलन्त अग्नियुक्त दण्ड, मशाल।

शुम्भ (सं० पु०) दानवविशेष। यह प्रह्लादका पोता और गवेष्ठीका पुत्र था। वामनपुराणके मतानुसार कश्यप की दनु नामक एक स्त्री थी। उसके गर्भसे दो पुत्र पैदा हुए। जिनमें बड़े लड़केका नाम शुम्भ और छोटे-का निशुम्भ था। (वामनपुराण ५२ अ०)

मार्कण्डेयपुराणके अन्तर्गत चण्डीमें लिखा है, कि शुम्भ देवताओंको परास्त कर स्वर्गका इन्द्र बन बैठा था और जबर्दस्ती यज्ञका भाग ग्रहण करता था। देवगण अपने स्वर्गका राज्य खो कर असुरोंके अत्याचारसे नाना प्रकारका कष्ट भोग रहे थे। उस समय देवता लोग अपने निस्तारके लिये हिमालयमें जा कर महामायाकी प्रार्थना करने लगे। महामायाने उनकी प्रार्थनासे सन्तुष्ट हो कर देवताओंसे कहा—"तुम लोग जाओ, मैं तुम्हारा उद्धार करूंगी।" इसके बाद देवी भगवती एक सुन्दर तरुणी स्त्रीका रूप धारण कर अपनी रूपच्छटासे दशों दिशाओंको उद्भासित करती हुई उसी स्थानमें वास करने लगीं। चण्ड और मुण्ड नामक दो प्रधान सेना-पतियोंने उस परम कमनीय नारीमूर्त्तिको देख कर शुंभसे

जा कहा। शुम्भने उस वस्तु लानेके लिये सुग्रीव नामक एक दूतको वहां भेजा। सुग्रीव देवीके पास जा कर बोला—'हे देवि! शुम्भ त्रिलोकके अधीश्वर हैं। उनका छोटा भाई निशुम्भ भी उन्हीं के समान तेजस्वी है और आप भी नारियोंमें रत्नस्वरूप हैं। त्रिलोकमें जितनी सर्वश्रेष्ठ वस्तुएं हैं, वे सब शुम्भके पास विद्यमान हैं। अतएव आप इसी समय मेरे साथ चल कर उन्हें वरमाल्य पहनावें। आपको बुला लानेके लिये ही उन्होंने मुझे आपके पास भेजा है।"

महामायाने राक्षसकी बातें सुन मुसकुरा कर कहा—"तुम्हारा कहना सत्य है, किन्तु मैं बिना समझे बूझे ही एक प्रतिज्ञा कर चुकी हूं, कि जो व्यक्ति मुझे संग्राममें परास्त करेगा या मेरा अभिमान चूर करनेमें समर्थ होगा अथवा मेरे जोरके बराबर होगा उसे ही मैं वरमाल्य पहनाऊंगी अपना प्यारा पति बनाऊंगी। तुमने कहा है कि शुम्भ त्रिलोकके अधिपति हैं अतएव वे अनायास ही मुझे रणमें जीत कर ले जा सकते हैं।"

सुग्रीवने शुम्भके पास आ कर देवीका सम्वाद दिया। शुम्भने भगवतीको जीत कर लानेके लिये ५० हजार सेनाके साथ धूम्रलोचन नामक एक सेनापतिको वहां भेजा। धूम्रलोचनके सामने आते ही देवीने एक हुंकार भरा। उस हुंकारसे धूम्रलोचन अपनी सेनाके साथ जल कर खाक हो गया। शुम्भने यह संवाद पा कर चण्ड मुण्डको भेजा। युद्धमें देवी द्वारा चण्डमुण्डके मारे जाने पर रक्तबीज नामक राक्षस देवीसे लड़ने गया। इस रक्तबीजका एक बूंद रक्त शरीरसे जिस स्थान पर गिरता, वहांसे उसी आकारका एक दूसरा रक्तबीज उत्पन्न हो जाता था। जब देवीने रक्तबीजको युद्धमें मार डाला तब निशुम्भ समरक्षेत्रमें पहुंचे। पर वे भी देवी द्वारा युद्धमें मारे गये। इस तरह शुम्भके सभी सैनिक देवी द्वारा मार डाले गये। अन्तमें शुम्भ स्वयं रणक्षेत्रमें आ डटा। इसके साथ बहुत दिनों तक देवी लड़ती रहीं। आखिर यह भी देवीके द्वारा मारा गया। इस तरह शुम्भके मारे जाने पर जगत्का आकाश निर्मल हो गया और देवगण अपने अपने अधिकारको प्राप्त हुए।

शुम्भघातिनी (सं॰ स्त्री॰) शुम्भं हन्तीति हन णिनि ङीप्। दुर्गा।

शुम्भदेश (सं॰ पु॰) सुह्म अङ्ग और बङ्गका दक्षिणांश, राढ़।

शुम्भपुर (सं॰ क्ली॰) शुम्भस्य पुरं। शुम्भदैत्यकी पुरी। पर्याय—पद्मचक्र, हरिगृह। (भूरिप्र॰) कोई कोई शम्भलपुरको शुम्भपुरी कहते हैं।

शुम्भपुरी (सं॰ स्त्री॰) शुम्भस्य पुरी। शुम्भपुर।

शुम्भमर्दिनी (सं॰ स्त्री॰) शुम्भं मृद्नातीति मृद् णिनि। दुर्गा, शुम्भघातिनी। (हेम)

शुम्भमान (सं॰ पु॰) मुहूर्त्तभेद।

शुम्भु (सं॰ पु॰) शुम्भमान।

शुरवा (फा॰ पु॰) शोरवा देखो।

शुरुध् (सं॰ स्त्री॰) क्षुद्रूप शोकका रोधक क्षुधारूप शोकनाशक।

शुरू (अ॰ पु॰) १ किसी कार्यकी प्रथमावस्थाका सम्पादन आरम्भ, प्रारम्भ। २ वह स्थान जहांसे किसी वस्तुका आरंभ हो, उत्थान।

शुल्क (सं॰ पु॰) शुल्क घञ्। १ वह महसूल जो घाटों और रास्तों आदि पर राज्यकी ओरसे वसूल किया जाता है। अमरटीकामें भरतने लिखा है, "घट्टा पथाद्या आदिना द्रव्यक्रयविक्रयस्थानादौ च यद्देयं राजग्राह्यं स शुल्कः।"

मनुमें लिखा है कि राजा प्रजाका यथारीति पालन न करके यदि उनसे कर और शुल्कादि ग्रहण करे, तो उन्हें नरक होता है।

"योऽरक्षन् बलिमादत्ते करं शुल्कञ्च पार्थिव।
प्रतिभागञ्च दण्डञ्च स सद्यो नरकं व्रजेत्॥"

(मनु॰ ८।३०७)

जलपथ और स्थल आदिसे राजा जो राजग्राह्य कर वसूल करते हैं, उसे शुल्क कहते हैं। पण्यद्रव्यके ऊपर राजदरबारसे जो कर (Duty) लगाया जाता है वह भी शुल्क है। प्राचीन राजाओंका शुल्कगृह अभी (Custom house) आदिमें रूपान्तरित हुआ है। इन सब स्थानोंमें भिन्न भिन्न भिन्न प्रकारका निर्दिष्ट महसूल वसूल किया जाता है।

२ विवाहका पण वह धन जो कन्याका विवाह करनेके बदलेमें उसका पिता वरसे लिया करता है।

शास्त्रमें इस प्रकार धन या शुल्क लेनेका बहुत अधिक निषेध किया गया है। मनुमें लिखा है, कि कन्याका पिता कन्यादानके लिये कुछ भी शुल्क न ले, क्योंकि कन्याविनिमयरूप अर्थग्रहण करनेसे उसे कन्याविक्रयी होना पड़ता है। कन्याविक्रय और गोवध दोनों ही समान पातक है।

"न कन्यायाः पिता विद्वान् गृह्णीयाच्छुल्कमण्वपि।
गृह्णन् शुल्कं हि लोभेन स्यान्नरोऽपत्यविक्रयी॥"

(मनु ३।५१)

३ विवाहका यौतुक, विवाहके समय दिया जानेवाला दहेज। ४ मूल्य, दाम। ५ बाजी, शर्त। ६ वह धन जो किसी कार्यके बदलेमें लिया या दिया जाय। जैसे—प्रवेशशुल्क।

शुल्कता (सं० स्त्री०) शुल्कका भाव या धर्म।

शुल्कत्व (सं० क्ली०) शुल्क भावे त्व। शुल्कका भाव या धर्म।

शुल्कशाला (सं० स्त्री०) १ वह स्थान जहां पर घाट या मार्ग आदिका महसूल चुकाया जाता हो। २ वह स्थान जहां किसी प्रकारका शुल्क चुकाया जाता हो, महसूल अदा करनेकी जगह।

शुल्कस्थान (सं० क्ली०) वह स्थान जहां आने जानेवालोंको शुल्क देना पड़ता हो।

शुल्किका (सं० स्त्री०) एक देशका नाम।

शौल्किकेय देखो।

शुल्ब (सं० क्ली०) १ रज्जु, रस्सी। २ ताम्र, तांबा।

शुल्व (सं० क्ली०) शुल्वयन्त्यनेनेति शुल्व माने घञ्, यद्वा शुच शोके (उल्वादयश्च। उण् ४।९५) इति वन्‌प्रत्ययेन निपातनात् साधु। १ ताम्र, तांबा। २ रज्जु, रस्सी। ३ यज्ञकर्म। ४ आचार। ५ जलसन्निधि। (मेदिनी)

शुल्वसूत्र—कात्यायनकृत श्रौतसूत्रका एक परिशिष्ट।

शुल्वारि (सं० पु०) शुल्वस्य अरिः। गंधक। (हेम)

शुशिर—एक प्रकारका दन्तरोग। इसमें कीड़ा दांतमें छेद कर देता है।

शुशुक (सं० पु०) शिशुमार, सूंस नामका जलजन्तु। इसका तेल वातरोगमें बड़ा फायदा पहुंचाता है।

शुशुनिया—बांकुड़ाके अन्तर्गत एक गण्डशैल। यह बांकुड़ा शहरसे आठ कोस उत्तर पश्चिममें अवस्थित है। छातनासे रानीगंज तकका रास्ता इसके पार्श्व हो कर चला गया है। यहां राजा चन्द्रवर्माकी शिलालिपि निकली है। पहाड़के जिस अंशमें यह शिलालिपि है, लोगोंका विश्वास है, कि वहां विरूपाक्ष ऋषिका आश्रम था। उसके पास ही यमधारा नामक प्रस्रवण है। पहाड़के नीचे वा जड़में बहुत-सी पत्थरकी देव-मूर्तियां देखी जाती हैं।

शुशुक्वन (सं० त्रि०) आत्मादि संयोगसे अतिशय दीप्त।

शुशुक्वनि (सं० त्रि०) दीपनशील। (ऋक् ८।२३।५)

शुशुमा (सं० स्त्री०) शिशुमती।

शिशुलुकयातु (सं० पु०) एक राक्षसका नाम।

शुश्रुक (सं० पु०) एक राजाका नाम। (महाभा० ३।२।४)

शुश्रुवस् (सं० त्रि०) श्रु-क्वसु। जिसने श्रवण किया हो। अतीत कालमें धातुके उत्तर क्वसु प्रत्यय होता है तथा क्वसुप्रत्यय होनेसे द्वित्व होता है।

शुश्रू (सं० स्त्री०) बालककी सेवा शुश्रूषा करनेवाली, माता, माँ, जननी।

शुश्रूषक (सं० त्रि०) श्रु-सन् शुश्रूष-ण्वुल्। शुश्रूषाकारी, सेवा करनेवाला। शुश्रूषक पांच प्रकारका होता है,—शिष्य, अन्तेवासी, भृतक, अधीनस्थ कार्यकारक और दास।

शुश्रूषण (सं० क्ली०) श्रु-सन्-ल्युट्। १ सेवा, परिचर्या, खिदमत गुजारी। २ श्रवणेच्छा, किसीसे कुछ सुननेकी इच्छा।

शुश्रूषा (सं० स्त्री०) श्रु-सन् शुश्रूष (अप्रत्ययात्। पा ३।३।१०२) इति-अ। १ उपासना, सेवा, परिचर्या, टहल। मनुमें लिखा है, कि जहां किसी प्रकारकी शुश्रूषा, धर्म या अर्थलाभ नहीं है, वहां विद्याबीज वपन नहीं करना चाहिये। (मनु २।११२) २ कथन। ३ किसीसे कुछ सुननेकी इच्छा। ४ खुशामद।

शुश्रूषितृ (सं० त्रि०) श्रु-सन्-तृच्। शुश्रूषक, सेवा टहल करनेवाला।

शुश्रूषितव्य (सं० त्रि०) शुश्रूष तव्य। सेवितव्य, सेवाके योग्य।

शुश्रूषिन् (सं० त्रि०) शुश्रूष इन्। शुश्रूषक, सेवा करनेवाला।

शुश्रूषु (सं० त्रि०) शुश्रूष सन् तादुः। १ शुश्रूषा करनेमें इच्छुक, सेवा करनेमें अभिलाषी। २ किसीकी बात सुननेमें इच्छुक।

शुश्रूषेण्य (सं० त्रि०) शुश्रूष पाहं, सेवा करनेके योग्य।

शुश्रूष्य (सं० त्रि०) शुश्रूष यत्। शुश्रूषितव्य, सेवितव्य।

शुष (सं० पु०) शुष क। १ शोषण। २ गर्त्त, विवर।

शुषणी (सं० स्त्री०) स्वनामख्यात शाक सुसना साग। यह साग कफ और वातनाशक होता है।

शुषि (सं० स्त्री०) शुष इन स च कित्। १ शोष। २ विल। (मेदिनी)

शुषिर (सं० क्ली०) शुष शोषणे (इषिमदि मुदीति। उण् १।५२) इति किरच यद्वा शुषिश्छिद्रमस्यास्तीति शुषि (ऊषशुषिमुष्कमेघा रः। पा ५।२।१०७) १ विवर, गर्त्त बिल। २ वह बाजा जो मुहसे फूंक कर बजाया जाता हो। जैसे,—वंशी, अलगोजा, शहनाई आदि। (पु०) ३ आकाश। ४ मूषिक, मूसा। (मेदिनी) ५ अग्नि। (त्रि०) ६ सरन्ध्र, छिद्रविशिष्ट, छेदवाला।

शुषिरा (सं० स्त्री०) शुषिर टाप। १ नदी, दरिया। (धरणि) २ धरणी। ३ नली या नलिका नामक गन्ध द्रव्य। (अमर)

शुषिल (सं० पु०) शुष (शुषादिभ्य कित। उण् १।५७) इति इलच्, स च कित्। वायु। (उज्ज्वल)

शुषेण (सं० पु०) सुषेण देखो।

शुष्क (सं० त्रि०) शुष शोषे क्त, यद्वा (सृ वृ भू शुषि मुषिभ्यः कक्। उण् ३।४१) इति कक्। १ निःस्नेह, आर्द्रता रहित, जिसमें किसी प्रकारकी नमी या गीलापन न रह गया हो, सूखा। २ जिसमें जल या और किसी तरल पदार्थका व्यवहार न किया गया हो। ३ नीरस रसहीन, जिसमें रसका अभाव हो। ४ जीर्ण शीर्ण, जो बिलकुल पुराना और बेकाम हो गया हो। ५ जिसमें सौहार्द आदि कोमल मनोवृत्तियां न हों स्नेह आदिसे रहित, निर्मोही। ६ जिससे मनोरञ्जन न होता हो, जिसमें मन न लगता हो। ७ जिसका कुछ परिणाम न निकलता हो, निरर्थक व्यर्थ। (क्ली०) ८ कृष्णागुरु काला अगर।

शुष्कक (सं० त्रि०) जो शुष्क हो अथवा नहीं हो। (पा ४।३।७३) सूत्रानुसार शुष्किका पद होता है।

शुष्ककण्ठ (सं० त्रि०) शुष्कः कण्ठो यस्य। शुष्क कण्ठयुक्त पिपासातुर, जिसका कण्ठ प्याससे सूख गया हो।

शुष्ककलह (सं० पु०) सामान्य विषय ले कर विवाद।

शुष्कक्षेत्र (सं० पु०) वितस्ता नदीके किनारे एक पर्वत का नाम।

शुष्कगर्भ (सं० पु०) वैद्यकके अनुसार स्त्रियोंका एक रोग। इसमें वायुके प्रकोपसे स्त्रियोंका गर्भ सूख जाता है।

शुष्कगोमय (सं० पु०) वन कराय, वनगोइठी।

शुष्कता (सं० स्त्री०) शुष्कस्य भावः तल टाप्। शुष्क होनेका भाव या धर्म, सूखापन।

शुष्कपत्र (सं० क्ली०) शुष्क पत्र। १ स्नेहरहित पत्र, नीरस या सूखा पत्ता। २ आतप आदि शोषित पट्टशाक, पाटसाग। पाटशाक धूपमें सुखानेसे वह शुष्कपत्र कहलाता है। यह साग जलके साथ पीनेसे जलदोष तथा पित्त और कफज्वर नाश होता है। इसे जलमें भिगो कर वह जल नित्य सेवन करनेसे पित्त दमन होता है तथा यह पत्र तरकारीके साथ मिला कर रांध कर खानेसे बड़ा स्वादिष्ट होता है।

शुष्कपाक (सं० पु०) १ जलशून्य व्यञ्जनादि। २ शुष्क अक्षिपाक रोग।

शुष्कमत्स्य (सं० पु०) शुष्कः मत्स्यः। धूपमें सुखाई हुई मछली, सुखटी।

शुष्कमांस (सं० क्ली०) शुष्क मांस। सुखाया हुआ मांस। पर्याय—उत्तप्त वल्लूर, वल्लूरा, शुष्कणी। यह मांस शूलरोगनाशक और गुरु होता है। वैद्यकमें शुष्क मांस खाना निषिद्ध कहा है। यह सद्य प्राणनाशक है।

शुष्कमुख (सं० त्रि०) १ मुखशोषयुक्त। (वाभट चि ६ अ०) २ शुष्कमुखयुक्त, जिसका मुंह उपवास आदि करनेसे सूख गया हो। ३ व्ययकुण्ठ, कृपण व जूस।

शुष्कमूल (सं० क्ली०) शुष्क मूल। रौद्र शोषित मूलक।

शुष्कमूलकाद्यतैल (सं० क्ली०) शोथरोगका तैलौषध विशेष। प्रस्तुत प्रणाली—शुष्कमूल, दशमूल, पिप्पला मूल, पुनर्नवामूल प्रत्येक १६ पल जल ५१२ पल,

शेष ६४ पल, तिल तैल ६४ पल, गोमूत्र ६४ पल और कल्कार्थ शुष्कमूली, गुलञ्च, सोंठ, परवलका पत्ता, पीपरका मूल, विजबंद, आकनादि, पुनर्नवा, सुगंधवाला, खसकी जड़, सहिजनका बीज, सम्हालू, अनन्तमूल, करञ्जबीज, अडूसकी छाल, पीपर, हरीतकी, वच, कुट, रास्ना, विड़ङ्ग, चव्य, हरिद्रा, धनियां, यवक्षार, सर्जिक्षार सैन्धव, देवदारु, पद्मबीज, कचूर, गजपीपर, वेलसोंठ और मञ्जिष्ठा प्रत्येक ४ तोला तैल पाकके विधानानुसार पाक करे। व्रणशोथमें भी इस तैलका प्रयोग करनेसे शोथ अति शीघ्र प्रशमित होता है।

शुष्कमूलाद्यघृत (सं० क्लो०) उदावर्त्त रोगाधिकारोक्त घृतौषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—शुष्कमूल और अदरक, पुनर्नवा, पञ्चमूल और कतक फल, इन सब द्रव्योंके कल्कके साथ घृत पाक करे। उपयुक्त मात्रामें सेवन करनेसे उदावर्त्तरोग प्रशमित होता है। (रसरत्नाकर)

शुष्करेवती (सं० स्त्री०) १ पुराणानुसार एक मातृकाका नाम। (मत्स्यपु० १५४ अ०) २ एक प्रकारका बालग्रह। इसके प्रकोपसे बालकोंके अंग सूखने या क्षीण होने लगते हैं। बालग्रह शब्दमें देखो।

शुष्कल (सं० पु०) १ आमिष, मांस, गोश्त। (त्रि०) २ आमिषाशी, मांस खानेवाला।

शुष्कली (सं० स्त्री०) मांस, गोश्त।

शुष्कलेव (सं० पु०) वितस्ता नदीके किनारे पर स्थित एक पर्वत।

शुष्कवत् (सं० त्रि०) शुष्क अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। शुष्कयुक्त, सूखा हुआ।

शुष्कवृक्ष (सं० पु०) शुष्को वृक्षः। १ धव या धौका पेड़। २ सूखा हुआ पेड़।

शुष्कव्रण (सं० पु०) शुष्को व्रणः। १ किण। २ स्त्रियोंका योनिकन्द नामक रोग।

शुष्कसम्भव (सं० क्लो०) वृक्षविशेष। (Costus arabicus)

शुष्का (सं० स्त्री०) स्त्रियोंका योनिकन्द नामक रोग। स्त्रियोंके ऋतुकालमें वेगरोधके कारण वायु दुष्ट हो कर विष्ठा और मूत्रका संग्रह तथा योनिमें शोष उत्पादन करती है इससे योनिमें बहुत दर्द होता है। ऐसा लक्षण होने से उसे शुष्का रोग कहते हैं। योनिरोग देखो।

शुष्काक्षिपाक (सं० पु०) आंखोंका एक प्रकारका रोग। इसमें आंखोंकी पलकें कठोर और रूखी हो जाती हैं और उनके खोलने बन्द करनेमें पीड़ा होती है, आंखोंमें जलन होती है और साफ देख नहीं पड़ता।

शुष्काग्र (सं० पु०) शुष्क अग्र या शिरोदेशयुक्त।

शुष्काङ्ग (सं० पु०) शुष्कं अङ्गं यस्य। १ धववृक्ष, धौका पेड़। २ स्नेहशून्यावयव, नीरस देह।

शुष्काङ्गी (सं० स्त्री०) शुष्कानीव अंगानि यस्याः। १ गोधिका, गोह। २ प्लव जातिका एक प्रकारका पक्षी।

शुष्काप (सं० पु०) १ शुष्क पुष्करिणी, सूखा हुआ तालाब। २ कर्दम, कीचड़। ३ जलहीन स्थानविशेष।

शुष्कार्द्र (सं० क्लो०) शुष्कं आर्द्रं। शुण्ठी, सोंठ।

शुष्कार्शस् (सं० क्लो०) आंखोंका एक प्रकारका रोग। इसमें आंखकी पलकोंके भीतर खरखरी और कठिन फुंसियां उत्पन्न हो जाती हैं।

शुष्काशुष्क (सं० पु०) १ समुद्रफेन। २ शुष्क और अशुष्क।

शुष्कास्य (सं० त्रि०) विशुष्क वदन, सूखा हुआ मुंह।

शुष्ण (सं० पु०) शुष्यत्यनेति शुष—(तृषि-शुषि रसिभ्यः कित्। उण् ३।१२) इति सच कित्। १ सूर्य। २ अग्नि। (क्लो०) ३ बल, शक्ति, ताकत। (निघण्ट् २।६)

शुष्म (सं० क्लो०) शुष्मत्यनेनेति शुष शोषे (इषियुधीन्धिदसिश्याधूसूभ्यो मक्)... [best reading: अविसिविसिशुषिभ्यः कित्। उण् १।१४३) इति सन्, स च कित्। १ तेज, पराक्रम। (पु०) २ सूर्य। (मेदिनी) ३ अग्नि। (त्रिका०) ४ वायु। ५ पक्षी, चिड़िया। (संक्षिप्तसार उणादि) ६ अर्च्चिः।

शुष्मद (सं० त्रि०) तेजोदानकारी, पराक्रमशील।

शुष्मन् (सं० क्लो०) शुष-मनिन्, संज्ञापूर्वकत्वात् नगुणः। १ तेज, पराक्रम। २ सौर्य। (हेम) (पु०) ३ अग्नि। ४ चित्रक, चीता।

शुष्मय (सं० त्रि०) बलप्रापक।

शुष्मवत् (सं० त्रि०) वीर्यवत्, वीर्यवान्, तेजशाली।

शुष्मिण (सं० पु०) राजपुत्रभेद।

शुष्मिन् (सं० त्रि०) शोषकबलयुक्त। (अथर्व ६।२०।१)

शूंडल (हिं० पु०) मझोले आकारका एक प्रकारका वृक्ष। इसके हीरकी लकड़ी मजबूत, कड़ी और लाली

लिए होती है और अच्छे दामों पर बिकती है। यह इमारतों और पुलोंके बनानेके काममें आती है। इसकी छाल बहुत पतली होती है और उतारनेसे बारीक कागज के परतोंकी तरह उतरती है। थ गाउके सुन्दरबनमें यह पेड़ बहुत होता है।

शूक (सं० पु० क्ली०) शो तनूकरणे उलूकादयश्च इति ऊक प्रत्ययेन साधु। १ धान्यशीर्षाग्र, अनाज धान या जौ का जिसमें दाने लगते हैं। पर्याय—किंशारु शुङ्ग, धोंगो। २ यव, जौ। ३ कीटभेद, एक प्रकारका कीड़ा। ४ एक प्रकारका तृण जिसे शूकड़ो कहते हैं। यह दुबले पशुओंके लिये बहुत बलकारक माना जाता है। ५ शूकप्रधान लिङ्गवृद्धिकर रोग।

शूकरोग शब्द देखो।

शूकक (सं० पु०) शूकेन कायतीति कै क। १ मावट। २ रस।

शूककीट (सं० पु०) शूकविशिष्ट कीट। शूकयुक्त कीटविशेष एक प्रकारका रोएँदार कीड़ा। पर्याय—वृश्चिक।

शूकज (सं० पु०) यवक्षार जवाखार।

शूकतृण (सं० क्ली०) शूकप्रधान तृण। तृणविशेष एक प्रकारकी घास। पर्याय—शूक, शूकाढ्य, कनिष्ठ। इसे शूकड़ो या भोरहुली भी कहते हैं। यह दुर्बल पशुओंके लिये बहुत बलकारक मानी जाती है।

शूकदोष (सं० पु०) शूकरोग, एक प्रकारकी व्याधि जो लिङ्ग बढ़ानेके औषधोंके लेपके कारण होती है।

विशेष विवरण शूकरोग शब्दमें देखो।

शूकधान्य (सं० क्ली०) शूकविशिष्ट धान्य। शूङ्गयुक्त शस्यमात्र, वह अन्न जिसके दानेवालों या सींकोंमें लगते हैं।

भावप्रकाशमें लिखा है कि शूकधान्यमें यव प्रसिद्ध है। यव सितशूक निःशूक, अतियव और तोक्म ये सब शूकधान्यके अन्तर्गत हैं। गुण—कषाय, मधुर रस शीतवीर्य, श्लेष्मगुणयुक्त, मृदु व्रणरोगमें तिलके समान हितकारक, रूक्ष मेधाजनक, अग्निवर्द्धक, कटुविपाक, अनभिष्यन्दी, स्वरप्रसादक बलकारक, गुरु, अत्यन्त वायु और मलवर्द्धक, वर्णप्रसादक, शरीरकी स्थिरता सम्पादक पिच्छिल तथा कण्ठगतरोग, त्वग्गतरोग, कफ, पित्त, मेद पीनस श्वास, कास, उरुस्तम्भ, रक्तदोष और पिपासानाशक। (भावप्रकाश)

यहां शालि आदि जो कुछ शूकयुक्त होता है, उसे शूकधान्य कहते हैं। यह त्रिदोषनाशक, लघु तेज बल और वीर्यवृद्धिकारक माना गया है। यह शूकधान्य बहुप्रकार होता है। इसका नाम करना बड़ा मुश्किल है।

शूकपत्र (सं० पु०) निर्विष सर्प वह साँप जिसमें विष न होता हो। जैसे,—पानीका साँप या डेड़हा।

शूकपाक्य (सं० पु०) यवक्षार जवाखार।

शूकपिण्डि (सं० वि०) शूकैः पिण्डते इति पिण्ड बाहुली इन्। शूकशिम्बी केवाँच।

शूकपिण्डी (सं० स्त्री०) शूकपिण्डि वा ङीष्। शूकशिम्बी, केवाँच।

शूकर (सं० पु०) शूक तद्वल्लोम रातीति रा-क। १ पशुविशेष, सूअर। पर्याय—वराह, स्तब्धरोमा, रोमश, किरि चक्रदंष्ट्र, किटि, दंष्ट्री क्रोड़ वक्तायुध बली, पृथुस्कन्ध, पोत्री, घोणी, भेदन, कोल, पोत्रायुध, शूर, बहुरव और रदायुध। यह दो तरहका होता है—घरेलू सूअर और वनसूअर। वनसूअरके मांसका गुण गुरु, वातहारक, वृष्य बल और स्वेदजनक। घरेलू सूअरके मांसका गुण—वनसूअरसे लघु मेद, बल और वीर्यवृद्धिकारक। (राजनि०) २ विष्णुका तीसरा अवतार, वराह अवतार। वराह शब्द देखो।

शूकरकन्द (सं० पु०) शूकरप्रियः कन्दः। वाराही कन्द।

शूकरक्षेत्र (सं० पु०) एक तीर्थ जो नैमिषारण्यके पास है। कहते हैं, कि भगवान् विष्णुने वराह अवतार धारण करके यह हिरण्याक्षको यहीं मारा था। आजकल यह स्थान सोरोन नामसे प्रसिद्ध है। सोरोन देखो।

शूकरदंष्ट्र (सं० पु०) एक प्रकारका क्षुद्र रोग। इसे सूअरदाढ़ कहते हैं। यह रोग प्रायः बालकोंको होता है। इसमें दाहसहित सूजन हो जाता है जो पकती, पीड़ा करती और खुजलाती है और इसके विकारसे ज्वर उत्पन्न होता है।

चिकित्सा—भृङ्गराजका मूल और हरिद्राचूर्ण एकत्र कर प्रलेप देनेसे यह रोग शीघ्र दूर होता है। पद्ममूलका कल्क गायके घीके साथ रोज सवेरे पीनेसे यह रोग और तज्जनित ज्वर विनष्ट होता है। हरिद्रा और भृङ्गराजका मूल ठंढे जलके साथ पीस कर प्रलेप देनेसे भी इस रोगमें फायदा पहुंचता है। (भावप्र० क्षुद्ररोगाधिकार)

शूकरपादिका (सं० स्त्री०) शूकरस्य पादाइव मूला यस्याः कन् टाप्, अत इत्वं। कोलशिम्बी, सेमकी फली।

शूकरशिम्बी (सं० स्त्री०) कोलशिम्बी, सेमकी फली।

शूकराक्रान्ता (सं० स्त्री०) शूकरेणाक्रम्यते स्मेति आ-क्रम-क्त, टाप्। वराहक्रान्ता, गैरी साग।

शूकरी (सं० स्त्री०) शूकर-ङीष्। १ वराहक्रान्ता, गैरी साग। २ वाराहीकन्द, गेंठी। ३ सुइँस या सूस नामक जलजन्तु। ४ वृद्धदारक, विधारा। ५ शूकरपत्नी, सूअरकी मादा, सूअरी।

शूकरेष्ट (सं० पु०) शूकराणामिष्टः। १ कसेरू। (त्रि०) २ शूकर प्रिय।

शूकरोग (सं० पु०) रोगविशेष, लिङ्गवर्द्धक औषधलेपन को अपव्यवहारजनित व्याधिविशेष।

जो मूढ़ व्यक्ति अनियमित रूपसे शिश्नवृद्धिकी इच्छा कर जलशूकादिका शिश्नमें प्रयोग करते हैं, उन्हें अठारह प्रकारके शूकदोष नामक रोग उत्पन्न होते हैं।

शूक शब्दसे शूकप्रधान लिङ्गवृद्धिकारक वात्स्यायनोक्त योग समझना होगा। यथा,—भल्लातकबीज, जलशूक और पद्मपत्र इन्हें अन्तरग्निमें जला कर सैन्धवके साथ एक वृहती फलके रस द्वारा पीसे। पीछे भैंसके गोवरके साथ इसे पुरुषाङ्गमें लेपन करनेसे लिङ्ग अवश्य बढ़ता है। तिल तैल ४ सेर, कल्कार्थ असगंध, शतावर, कुट, जटामांसी और वृहती फल कुल मिला कर १ सेर, दूध १६ सेर। यथाविधान तैलपाक करना होगा। इस तेलकी लिङ्गमें मालिश करनेसे लिङ्ग बढ़ता है।

इन सब औषधोंका अयथा प्रयोग करनेसे निम्नोक्त अठारह प्रकारके शूकरोग होते हैं; १ सर्पपिका, २ अष्ठीलिका, ३ ग्रथित, ४ कुम्भिका, ५ अलजी, ६ मृदित, ७ संमूढ़-पीड़का, ८ अधिमन्थ, ९ पुष्करिका, १० स्पर्शहानि, ११ उत्तमा, १२ शतपोनका, १३ त्वक्‌पाक, १४ शोणितार्बुद, १५ मांसार्बुद, १६ मांसपाक, १७ विद्रधि और १८ तिलकालक। इन सब शूकरोगोंमें मांसार्बुद, मांसपाक, विद्रधि और तिलकालक असाध्य हैं। वैद्यकमें इनका लक्षण इस प्रकार कहा है। यथा—

सर्पपिका—शूकप्रयोग या दुष्टयोनिमें रमण करनेसे लिङ्गमें जो गौर सर्षपकी तरह पीड़का उत्पन्न होती है, उसे सर्षपिका कहते हैं। यह रोग वायु और श्लेष्मासे कुपित होता है।

अष्ठीलिका—शिश्नदेशमें अष्ठीलाकी तरह कठिन, ह्रस्व या दीर्घाकृति अथवा वक्रपीड़का उत्पन्न होनेसे उसे अष्ठीलिका शूकदोष कहते हैं। यह रोग वातात्मक है।

ग्रथित—सभी समय शिश्नमें शूकपूरित रहनेसे शिश्नमें ग्रन्थिवत् उत्पन्न होनेसे उसको ग्रथित शूकदोष कहते हैं। यह रोग कफदोषसे उत्पन्न होता है।

कुम्भिका—शिश्नमें जामुनकी गुठलीकी तरह पीड़का उत्पन्न होनेसे उसको कुम्भिका कहते हैं। यह रोग रक्त और पित्तजनित है।

अलजी—अलजी नामक प्रमेह जन्य पीड़काके लक्षणकी तरह शिश्नमें पीड़का होनेसे उसको अलजी शूकदोष कहते हैं। इस पीड़काके चारों ओर लाल या काली फुंसियां निकलती हैं।

मृदित—शूक प्रयोगमें शिश्न पीडन द्वारा शोथ उत्पन्न होनेसे उसको मृदित शूकदोष कहते हैं। यह रोग वायुके प्रकोपसे उत्पन्न होता है

संमूढ़-पीड़का—शूकसंयुक्त लिङ्ग हस्त द्वारा अति घर्षण करनेसे यदि पिच्छित हो कर अवनत हो जाय, तो उसीका नाम समूढ़-पीड़का है। यह रोग भी वायु प्रकोपसे उत्पन्न होता है।

अधिमन्थ शिश्नदेशमें दीर्घाङ्ग विशिष्ट बहुसंख्यक पीड़का उत्पन्न हो कर वेदना और रोमहर्षके साथ मध्यभाग जब फट जाता है, तब उसे अधिमन्थ शूकदोष कहते हैं। यह रोग कफ रक्तजनित है।

पुष्करिका—शिश्नदेशमें पीड़का उत्पन्न हो कर धीरे धीरे वह पद्मकर्णिकाकी तरह छोटी छोटी फुंसियों द्वारा घिर जानेसे उसको पुष्करिका कहते हैं। यह रोग पित्त और रक्तसम्भूत है।

स्पर्शहानि—बार बार शूकप्रयोग प्रयुक्त रक्त दूषित हो कर शिश्नको स्पर्शासहिष्णुता उत्पादन करनसे यह स्पर्शहानि कहलाती है।

उत्तमा—पुनः पुनः शूक प्रयोग द्वारा शिश्नमें मूंग या उड़दकी तरह पीड़का उत्पन्न होनेसे उसको उत्तमा कहते हैं यह रोग रक्त और पित्तजनित है।

शतपोनक—चलनीकी तरह सूक्ष्म मुखविशिष्ट छिद्र द्वारा शिश्न व्याप्त होनेसे उसको शतपोनक शूकदोष कहते हैं। यह रोग वातरक्तसम्भूत है।

त्वक्पाक—वायु और पित्त विकृत हो कर त्वक्पाक नामक शूकदोष उत्पादन करता है। इसमें ज्वर और दाह होता है।

शोणितार्बुद—शिश्नदेशमें काला या लाल बहुत दर्द करनेवाली फुंसियोंके होनेसे उसको शोणितार्बुद कहते हैं।

मांसार्बुद—शूकप्रयोग निबन्धन मांस दूषित हो कर लिङ्गमें अर्बुदाकार उत्पन्न होनेसे यह मांसार्बुद कह लाता है।

मांसपाक—यदि शिश्नका मांस विशीर्ण हो जाए तथा वातज पित्तज और कफज समस्त वेदना उत्पन्न हो, तो उसे मांसपाक कहते हैं। यह रोग त्रिदोषसे कुपित होता है।

विद्रधि—सान्निपातिक विद्रधिका जैसा लक्षण कहा गया है, शूक प्रयोगके कारण वे सब लक्षण दिखाई देनेसे उसको विद्रधि नामक शूकदोष कहते हैं।

तिलकालक—कृष्ण शूक अथवा विमिश्र वर्ण सविष शूकके प्रयोगके कारण समूचा शिश्न अकड़ कर जाता है और इसका मांस काला हो कर सड़ने लगता है ऐसे लक्षणविशिष्ट सान्निपातिक शूकरोगको तिलकालक कहते हैं।

शूकदोषकी चिकित्सा—शूकदोषके कारण जो सब रोग उत्पन्न होते हैं उनमें जोंक द्वारा खून चुस वाना और विरेचन विशेष उपकारी है। इन सब क्रियाओंके बाद लघु आहार देना होता है। इसके सिवा त्रिफलाके काढ़ेमें गुग्गुलके साथ दूधका प्रलेप देने और दूध सेवन करनेसे शूकदोष अति शीघ्र प्रशमित होता है। किन्तु शूकदोषमें शीतक्रिया सर्वदा वर्जनीय है।

तेल ४ सेर, कल्कार्थ दारुहरिद्रा, तुलसी, मुलेठी, गेहूं और हरिद्रा कुल मिला कर १ सेर, जल १६ सेर। तैलपाकके विधानानुसार इस तेलका पाक कर लिङ्गमें लगानेसे शूकदोष नष्ट होता है। शूकदोषमें रसमात्र रसाञ्जनका प्रलेप देनेसे भी उपकार होता है।

शूकल (सं० पुं०) शूकवत् क्लेशं लाति ददातीति ला क। दुःशीलोताश्व, वह घोड़ा जो जल्दी चौंक या भड़क जाता हो।

शूकवत् (सं० त्रि०) शूकाः सन्त्यस्य शूक मतुप् मस्य व। शूकयुक्त।

शूकवती (सं० स्त्री०) कपिकच्छु पर्याय।

शूककीट (सं० पुं०) कीटविशेष एक प्रकारका कीड़ा। इसके काटनेसे गात्रकण्डू वर्द्धित होता है।

शूकशिम्बा (सं० स्त्री०) शूकविशिष्टा शिम्बा यस्य। कपिकच्छु केंवाच, कौंछ। तामिल—पूनाइक, कांचि; तैलङ्ग—पिलि अडुगु; महाराष्ट्र—कवच, बम्बई—कुहिला।

शूकशिम्बि (सं० स्त्री०) शूकविशिष्टा शिम्बिर्यस्याः। कपिकच्छु पर्याय। पर्याय—शूकशिम्बिका, शूकशिम्बी।

शूकशिम्बिका (सं० स्त्री०) शूकशिम्बि देखो।

शूका (सं० स्त्री०) शूकाः सन्त्यस्या इति अर्श आदित्वादच्। कपिकच्छु, केंवाच।

शूकाख्य (सं० पुं०) शिरीष, सिरिस।

शूकाण्ड (सं० क्ली०) शूकतृण, शूकड़ी नामकी घास।

शूकाण्ड (सं० पुं०) तृणमणि, कहरवा नामक गोंद जो बरमाकी खानोंसे निकलता और औषधके काममें आता है। कहरवा देखो।

शूकामय (सं० पुं०) शूकदोष, शूकरोग। (शब्दरत्ना०)

शूकुल (सं० पुं०) १ मत्स्यविशेष, एक प्रकारकी मछली। २ गन्धतृणविशेष, एक प्रकारकी सुगन्धित घास।

शूक्त (सं० त्रि०) दस्यानुकरणकारी। (ऋक् १।१६२।१७)

शूक्ष (सं० पुं०) सिरका।

शूद्ध (सं० त्रि) १ महान् अत्युच्च, महान् गम्भीर। (पुं०) २ हवन। ३ अध्वरम। (उज्ज्वल)

शूद्ध (सं० त्रि०) क्षिप्र। (निघण्टु २।१५)

शूची (सं० स्त्री०) शूद्र।

शूटिंग स्टिक (अं० shooting stick) छापेखानेमें काम आनेवाली एक लकड़ी। यह प्रायः एक बालिश्त लंबी होती है। इसके मुँह पर एक नकुवेदार पीतलकी खामा होता है। इसे मुद्रणकी [illegible] पर ठोकते हैं जिससे वह छूने पर [illegible] टाइपको कस देती है। किसी किसीमें स्टिक खामा नहीं भी होता।

शूनेरण (सं० पु०) [illegible], [illegible]।

शूद्र (सं० पु०) शोचतीति शुच-शोके (शुचेर्दश्च। उण् २।१९) इति रक्, दश्चान्तादेशो धातोर्दीर्घश्च। चारों वर्णोंके अन्तर्गत चतुर्थ वर्ण। पर्याय—अवरवर्ण, वृषल, जघन्यज। (अमर) दास, पादज, अन्त्यजन्मा, उपाद, द्विजसेवक। (शब्दरत्ना०) पद्य, अन्त्यवर्ण, पज्जचतुर्थ, द्विजदास, उपासक। (राजनि०) कुशद्वीपमें शूद्रकी संज्ञा मन्दहांग, शाल्मलद्वीपमें इषुन्धर, [illegible] कुलक, क्रौञ्चद्वीपमें सेवक एवं शाकद्वीपमें [illegible] एक वर्ण है।

वेदमें लिखा है, कि ब्रह्माके पैरसे इस वर्णकी उत्पत्ति हुई। "पद्भ्यां शूद्रोऽजायत" (श्रुति)

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य वर्णोंकी सेवा करना ही शूद्रका एकमात्र धर्म और जीविका है। इनके लिए गार्हस्थ्याश्रम ही एकमात्र आश्रम है। दूसरे आश्रमधर्ममें इनका अधिकार नहीं है।

"वाणिज्यं कारयेद्वैश्यं कुसीदं कृषिमेव च।
पशूनां रक्षणञ्चैव दास्यं शूद्रं द्विजन्मनाम्॥"
(मनु ८।४१०)

राजा शूद्रको द्विजातिकी सेवामें नियुक्त करे। द्विजातियोंकी सेवा ही शूद्रका धर्म है। द्विजातिगण शूद्रसे दास्य कर्म करावें, वह चाहे खरीदा हुआ दास हो अथवा नहीं। विधाताने दासता करनेके लिये ही शूद्रकी सृष्टि की है। शूद्र अपने मालिकसे मुक्त होने पर भी दासत्वसे मुक्त नहीं हो सकता, कारण दासत्व उसका स्वाभाविक धर्म है।

"शूद्रं तु कारयेद्दास्यं क्रीतमक्रीतमेव वा।
दास्यायैव हि सृष्टोऽसौ ब्राह्मणस्य स्वयम्भुवा॥
न स्वामिना निसृष्टोऽपि शूद्रो दास्याद्विमुच्यते।
निसर्गजं हि तत्तस्य कस्तस्मात्तदपोहति॥"
(मनु ८।४१३-१४)

शूद्र धन संचय न करे। यदि किसी तरह धन संग्रह भी करे, तो वह उस धनका अधिकारी नहीं हो सकता, कारण शूद्र जिसके यहां दासत्व करता है, वही उस धनका अधिकारी होगा। द्विजातीय लोग विशुद्ध चित्तसे दास शूद्रके संग्रह किये हुए धनको उपभोग कर सकते हैं। कारण दासका अपना कुछ नहीं होता। उसका सर्वस्व उसके मालिकका है।

राजा यत्नपूर्वक वैश्य और शूद्रको अपने अपने धर्म पर नियुक्त रखें। कारण उक्त दोनों वर्णोंके कार्यच्युत होनेसे संसारमें नाना प्रकारकी विशृंखला उपस्थित होती है। इसलिये उन लोगोंको स्ववृत्तिमें नियुक्त रखना अत्यावश्यक है।

विष्णुसंहितामें लिखा है, कि शूद्रगण सब प्रकारके शिल्पकार्य द्वारा अपनी जीविका चलावें। शूद्रोंका धर्म द्विजातिकी सेवा करना है। अतएव अपने धर्मकी रक्षा करनेके लिये वह द्विजातियोंकी सेवा करे।

"शूद्रस्य सर्व्व शिल्पानि।
धर्म्मः शूद्रस्य द्विजाति-शुश्रूषा॥" (विष्णुसंहिता २ अ०)

इसके अतिरिक्त सभी वर्णोंका एक साधारण धर्म है। वे ये हैं—क्षमा, सत्य, दम, शौच, दान, इन्द्रियदमन, अहिंसा, गुरु-शुश्रूषा, तीर्थगमन, दया, ऋजुता, लोभशून्यत्व, देवता और ब्राह्मणोंकी पूजा एवं अनसूया। ब्राह्मणसे ले कर शूद्र पर्य्यन्त सभी वर्णोंको ये सब माननीय हैं। (विष्णु सं० २ अ०)

ब्राह्मणोंकी अर्चना ही शूद्रोंका नित्य धर्म है। यदि कोई शूद्र ब्राह्मणोंसे द्वेष करे या ब्राह्मणोंका धन चोरी करे, तो वह चाण्डाल बन जाता है और सैकड़ों जन्म तक गृध्र शूकर प्रभृति योनिमें भ्रमण करता है। जो शूद्र ब्राह्मणकी स्त्रीको हर ले जाता है, वह मातृगमन करनेके पापका भागी होता है एवं वह शूद्र ब्रह्माके सौ वर्ष परिमाण काल तक कुम्भीपाक नरक भोग करता है।

शास्त्रके मतसे शूद्रके राज्यमें वास करना उचित नहीं। जहां धार्मिक लोगोंका वास न हो, जहां रोग और पाखण्डी पुरुषोंका समूह हो एवं जहां शूद्र राजा राज्य करता हो, वहां वास करना सर्वथा अनुचित है।

शूद्रको बुद्धिदान देना निषेध है, इसलिये उसे भूल कर भी धर्मका उपदेश नहीं देना चाहिये।

'न शूद्राय मतिं दद्यात् कृशरं पायसं दधि।
नोच्छिष्टं वा मधुघृतं न च कृष्णाजिनं हविः॥
न चैवास्मै व्रतं ब्रूयात् न च धर्मान् वदेद् बुधः॥"
(कूर्म्म उपवि० १५ अ०)

शूद्रोंको वेद पढ़नेका अधिकार नहीं है। शूद्रके अतिरिक्त दूसरे तीनों वर्ण वेदका पठन पाठन कर सकते हैं।

शास्त्रमें शूद्रको भी मद्यपान करना निषेध किया गया है। यदि कोई मद्यपान या ब्राह्मणीके साथ भोग करे, तो वह चाण्डालत्वको प्राप्त होता है।

"तथा मद्यस्य पानेन ब्राह्मणीगमनेन च।
वेदाक्षरविचारेण शूद्रश्चाण्डालतां व्रजेत्॥"
(शूद्रकमलाकरधृत पराशरवचन)

ब्राह्मणको शूद्रका अन्न नहीं खाना चाहिये। ब्राह्मण यदि एक मास वा अर्द्ध मास शूद्रका अन्न भोजन करे, तो वह मरनेके उपरान्त शूद्रयोनिमें जन्म ग्रहण करता है। शूद्रका अन्न पेटमें रहते हुए ब्राह्मणको मृत्यु होने पर उसका जन्म कुक्कुर, गृध्र और शूकर प्रभृति दुष्ट योनियोंमें होता है। ब्राह्मणके शूद्रान्न भोजन करने पर यथाविधि पाठ, होमादि करने पर भी उसकी गति नहीं होती। ब्राह्मणका अन्न अमृत, क्षत्रियका अन्न दूध, वैश्यका अन्न अन्न एवं शूद्रका अन्न रुधिरके समान है। इसलिये द्विजातीय लोग यज्ञके लिये शूद्रसे भिक्षा नहीं मांगेंगे। इसमें एक विशेषता यह है, कि यदि ब्राह्मण अति विपन्न हो कर शूद्रके गृहमें कणाभिक्षा ग्रहण करे तो उससे उसे पातक नहीं लगता।

शूद्रान्न शब्दसे शूद्रस्वामिक अन्न या शूद्रदत्त अन्न समझना चाहिये। भोजनके समय गृहमें शूद्रके उपस्थित रहनेसे उसे शूद्रान्न कहते हैं। शूद्र साक्षात् सम्बन्धमें घृत तण्डुलादि जो कुछ भी दान करता है, उसे शूद्रान्न कहते हैं। किन्तु शूद्रके धन द्वारा पत्र्यव परोक्ष जान पर शूद्रान्न पदवाच्य नहीं होता। जिस प्रकार नाला नदीमें पहुंच कर निर्मल हो जाता है, उसी प्रकार घृत तण्डुलादि शूद्रके गृहसे ब्राह्मणके गृहमें जा कर विशुद्ध हो जाता है। ब्राह्मणका हाथ स्पर्श होते ही उस अन्नका दोष दूर हो जाता है। ब्राह्मण शूद्रका दिया हुआ घृत, तण्डुलादि जलसिक्त कर ग्रहण करेंगे, इससे कोई पाप नहीं लगेगा। इस विषय पर अङ्गिरा कहते हैं, कि शूद्रका दिया हुआ अन्न ब्राह्मणके पात्रमें आते ही विशुद्ध हो जाता है।

कन्दुपक्व अर्थात् जलोपसेक विना केवल अग्नि द्वारा पकाये गये अन्न, दधि, सत्तू और पायस प्रभृति द्रव्य शूद्रके गृहमें शूद्रके द्वारा तैयार किये जाने पर भी ब्राह्मण खा सकते हैं। यहां पायस शब्दसे कठिन भावापन्न दुग्ध समझना चाहिये।

शूद्र श्राद्धादि कार्यमें वैदिक मन्त्रको छोड़ दूसरा ही मन्त्र पाठ कर कार्य सम्पन्न करे, केवल वेद मन्त्रसे कार्य सम्पन्न करनेका उसे अधिकार नहीं है। ब्राह्मण वेदमन्त्र पाठ करेंगे और शूद्र उसे सुनेगा। किन्तु पञ्च महायज्ञमें शूद्रको सब कार्य विना मन्त्रके ही करना चाहिये। पौराणिक मन्त्रादि भी पाठ नहीं करे एवं स्नान भी विना मन्त्रके ही करना कर्त्तव्य है।

शूद्रक—१ मृच्छकटिका नामक नाटकके प्रणेता। २ शूद्र। ३ एक ऋषि। रामायण उत्तरकाण्डमें लिखा है, कि यह शूद्र जातिका था और इसका नाम शम्बुक था। कलिकालको छोड़ शूद्रको तपस्याका अधिकार नहीं। अकस्मात् रामराज्यमें एक ब्राह्मणका लड़का मर गया। उसने जा कर रामचन्द्रजीसे यहां प्रार्थना की। नारद आदि ऋषियोंने कहा, कि इस राज्यमें कोई शूद्र तपस्या कर रहा है। उसीके फलस्वरूप इस ब्राह्मणका पुत्र इसके सामने मरा है, इस पर रामचन्द्रजीने इसका पता लगाया और तब इसका सिर कटवा डाला। ४ एक हिन्दू नरपति। ३३०० कल्यब्दमें ये विद्यमान थे।

शूद्रकर्मन् (सं० क्ली०) शूद्रस्य कर्म। शूद्रका कर्त्तव्य शास्त्रविहित कर्म। ब्राह्मणोंकी सेवा ही शूद्रका शास्त्र निर्दिष्ट कार्य है।

शूद्रकृत्य (सं० क्ली०) शूद्रस्य कृत्यं। शूद्रका कर्त्तव्य कर्म। रघुनन्दनने शूद्राह्निकाचारतत्त्वमें शूद्रकृत्यका विषय निर्णय किया है कि शूद्र अमन्त्रक श्राद्धादि कार्यका अनुष्ठान तथा अष्टादश पुराण, रामायण और

महाभारत धर्मकामार्थसिद्धिके लिये पाठ करे। पुराणादिमें सभी वेदोंका अर्थ दिया हुआ है, अतएव उसीका पाठ और श्रवण करनेसे शूद्रका स्वाध्याय सम्पन्न होगा।

शूद्रकेश्वर (सं० पु०) एक शिवलिङ्गका नाम।

शूद्रक्षेत्र (सं० पु०) वह भूमि जिसका रंग काला हो और जिसमें अनेक प्रकारकी घास, तृण, बबूलके पुष्प तथा नाना प्रकारके धान उत्पन्न हों।

शूद्रजन्मन (सं० त्रि०) १ शूद्रवर्णमें जिसका जन्म हुआ हो, जो दूसरे जन्ममें शूद्र हो कर जन्मा हो। २ निकृष्ट जन्म।

शूद्रता (सं० स्त्री०) शूद्रस्य भावः तल्-टाप्। शूद्रका भाव या धर्म, शूद्रत्व, शूद्रपन।

शूद्रत्व (सं० क्ली०) शूद्र होनेका भाव या धर्म, शूद्रता, शूद्रपन।

शूद्रदास -एक विष्णु-भक्त। (भविष्यभक्ति २२०११)

शूद्रद्युति (सं० पु०) नीला रंग जो रंगोंमें शूद्र वर्णका माना जाता है।

शूद्रधर्म (सं० पु०) शूद्रस्य धर्मः। शूद्रका शास्त्रविहिताचार। शूद्र शब्द देखो।

शूद्रपति (सं० पु०) शूद्रोंका सरदार।

शूद्रप्रिय (सं० पु०) शूद्राणां प्रियः। १ पलाण्डु, प्याज। २ शूद्रका प्रिय द्रव्यमात्र।

शूद्रप्रेष्य (सं० पु०) शूद्रस्य प्रेष्यः। वह ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य जो किसी शूद्रकी नौकरी या सेवा करता हो।

शूद्रशासन (सं० क्ली०) शूद्रस्य शासनः। शूद्रका अधिकार या लेख्य पत्रादि।

शूद्रा (सं० स्त्री०) शूद्रस्य जातिः शूद्रः 'शूद्रा चामहत् पूर्वा जातिः' इति टाप्। शूद्रकी स्त्री, शूद्राणी।

शूद्राधिकरण (सं० क्ली०) अधिकरणभेद। शारीरिकसूत्रमें शूद्रोंका विद्यामें अधिकार है या नहीं? यह शक पैदा होने पर उन्हें विद्यामें अधिकार नहीं—ऐसा निर्णायक अधिकरण है।

शूद्रान्न (सं० क्ली०) शूद्रस्य अन्नः। शूद्रस्वामिक अन्न। शूद्र शब्द देखो।

शूद्राभार्य (सं० पु०) शूद्रा भार्या यस्य सः। शूद्रास्वामी, शूद्रापति।

शूद्रार्या (सं० स्त्री०) शूद्रेण आर्या। प्रियङ्गु वृक्ष, वनिता।

शूद्रावेदिन (सं० पु०) शूद्रां विन्दतीति-विद्-णिनि। उच्च वर्णका वह व्यक्ति जिसने शूद्र जातिकी किसी स्त्रीके साथ विवाह कर लिया हो। शूद्रा स्त्रीसे ब्याहनेसे ही ब्राह्मण आदि पतित होते हैं, यह अत्रि और उतथ्यपुत्र गौतम मुनिका मत है। शौनक मुनिके मतसे शूद्रासे पुत्रोत्पादन करनेसे तथा भृगुके मतसे शूद्रोत्पन्न सन्तानकी सन्तान होनेसे पतित होना पड़ता है। ब्राह्मण चारों वर्णोंकी कन्यासे विवाह कर सकते हैं; किन्तु ऐसा होने पर भी शूद्राके साथ विवाह उनके लिये विशेष निन्दित है।

शूद्रासुत (सं० पु०) शूद्रायाः द्विजातिभिरूढायाः सुतः। वह व्यक्ति जो किसी उच्च वर्णके व्यक्तिके वीर्यसे शूद्रा माताके गर्भसे उत्पन्न हुआ हो।

शूद्री (सं० स्त्री०) शूद्रस्य स्त्री (पुंयोगादाख्यायां। पा ४।१।४८) इति ङीष्। शूद्रकी भार्या, शूद्रा।

शून (सं० त्रि०) टु ओ श्वि गतिवृद्ध्योः क्त ओदितश्च (पा ८।२।४५) इति निष्ठा तस्य नः, वचिस्वपियजादीनां किति (पा ६।१।१५) इति सम्प्रसारणं, हलः (पा ६।४।२) इति दीर्घः, श्व्यादितो निष्ठायाम् (पा ७।२।१४) इडागमश्च न। १ वर्द्धित। (व्याकरण) २ शून्य, खाली।

शूनक (सं० त्रि०) शोथयुक्त।

शूनकचञ्चुक (सं० पु०) क्षुद्रचञ्चु या छोटा चेंच नामका साग।

शूनत्व (सं० क्ली०) स्फीतिभाव।

शूनवत् (सं० त्रि०) श्वि क्तवतु। वर्द्धित। (व्याकरण)

शूना (सं० स्त्री०) श्वयन्ति मृत्युं गच्छन्ति कीटादयो यत्र श्वि-क्त-टाप्। १ प्राणियोंके वधस्थान, चुल्ली, पेषणी आदि। चुल्ली (चूल्हा), पेषणी (चक्की), उदूखल मूषल, उदकपात्र (पानीका बरतन) तथा गृहस्थोंके नित्य व्यवहार्य अन्यान्य उपकरणोंसे ज्ञान या अनजानमें अनेक जीवोंकी रोज रोज हत्या हुआ करती है, इसलिये ये पांच वस्तुएं शूना कहलाईं। (इतावृध) इन पांच वस्तुओंके सर्वदा व्यवहारसे गृहस्थोंके हमेशा पाप सञ्चित होते हैं,

उन्हीं सब पापोंको दूर करनेके लिये प्रत्यह मानवके अध्यापनरूप ब्रह्मयज्ञ तर्पणरूप पितृयज्ञ, होमरूप दैवयज्ञ बलिरूप भूतयज्ञ अर्थात् पूजादि उपकरण सामग्री किस किसी प्राणीको दान तथा अतिथिसत्कार रूप नृयज्ञका अनुष्ठान करना हरहालतसे कर्त्तव्य है, नहीं तो कदापि वे इन सब पापोंसे छुटकारा पा नहीं सकते। २ अधो जिह्विका, तालूके ऊपरकी छोटी जीभ। ३ स्नूही थूहर।

शूनावत् (सं० पु०) शूना विद्यते यस्य स शूना मतुप मस्य व। कसाई।

शून्य (सं० क्ली०) १ वह स्थान जिसमें कुछ भी न हो खाली स्थान। २ आकाश। ३ बिन्दु, बिंदी, सिफर। ४ एकान्त स्थान निर्जन। ५ अभाव, राहित्य कुछ न होना। ६ स्वर्ग। (पु०) ७ विष्णु। (भाग० १३। १४६।९२) ८ ईश्वर। (त्रि०) ९ अति कम, बहुत थोड़ा। १० अभावविशिष्ट। ११ असम्पूर्ण जिसके अन्दर कुछ न हो, खाली। पर्याय—वशिक, तुच्छ, रिक्त।

नीचे लिखे कई विषय शून्यमें गिने जाते हैं। जैसे— विद्याहीन जीवन, बान्धवहीन दिक् पुत्रहीन गृह तथा दरिद्रोंका यावतीय विषय।

शून्यक (सं० त्रि०) शून्य कन् स्वार्थे। शून्य।

शून्यगर्भ (सं० त्रि०) १ जिसके अन्दर कुछ न हो। २ जिसमें कुछ भी सार या तत्त्व न हो। ३ मूर्ख, बेवकूफ। (पु०) ४ पपीता नामक फल।

शून्यगृह (सं० त्रि०) १ गृहहीन। (क्ली०) २ खाली घर।

शून्यता (सं० स्त्री०) १ शून्य अभाव। २ जगत्‌कर्त्ताका अस्तित्व होनता (Nihilism)। ३ पञ्चभूतवर्जितका भाव (Vacuity)।

शून्यत्व (सं० क्ली०) शून्यका भाव या धर्म, शून्यता।

शून्यपदवी (सं० स्त्री०) ब्रह्मरन्ध्र।

शून्यपाल (सं० पु०) १ सहयोगी, सहायक। २ वह जो किसीके रिक्त स्थान पर अस्थायीरूपसे काम करता हो, एवजी।

शून्यपुष्प (सं० क्ली०) १ पुष्पहीन। (पु०) २ बौद्धभद्र।

शून्यबन्धु (सं० पु०) विशाल राजवंशोद्भव तृणविन्दुके पुत्र। (भागवत ९।२।३३)

शून्यवल्ली (सं० स्त्री०) पावका सुन्न हो जाना या उसमें झुनझुनी चढ़ना।

शून्यभाव (सं० पु०) १ खाली भाव। २ भावहीन। ३ शून्यत्व।

शून्यमध्य (सं० पु०) शून्यं मध्यं यस्य। १ नल। २ शून्यगर्भ वस्तुमात्र।

शून्यमूल (सं० त्रि०) १ भित्तिहीन। (पु०) २ सेनाकी एक प्रकारकी सजावट।

शून्यवाद (सं० पु०) बौद्धोंका एक सिद्धान्त जिसमें ईश्वर या जीव किसीको कुछ भी नहीं माना जाता।

शून्यवादिन् (सं० पु०) १ शून्यवादका माननेवाला अर्थात् वह व्यक्ति जो ईश्वर और जीवके अस्तित्वमें विश्वास न करता हो। २ बौद्ध। ३ नास्तिक।

शून्यहर (सं० त्रि०) १ शून्यनाशक। (पु०) २ आलोक, प्रकाश, उजाला। ३ स्वर्ण, सोना।

शून्या (सं० स्त्री०) १ नलिका या नली नामक गन्ध द्रव्य। २ स्नूही या थूहरका वृक्ष। ३ बन्ध्या स्त्री बाँझ औरत।

शून्यागार (सं० पु०) १ शून्यगृह, वह व्यक्ति जिसे घर न हो। (त्रि०) २ एकाकी, अकेला।

शून्यालय (सं० पु०) शून्य आलय। एकान्त स्थान, एकान्त स्थान जहाँ कोई न हो। आह्निकतत्त्वमें लिखा है, कि शून्यालय, श्मशान, चतुष्पद आदि स्थानोंमें शयन नहीं करना चाहिये। शयन देखो।

शून्याशय (सं० क्ली०) जीवन्मुक्ति।

शूनैव (सं० त्रि०) शून्यताकाङ्क्षी। (अथर्व १४।२।१९)

शूप (हिं० पु०) बेंत, सींक या बांस आदिका बना हुआ एक प्रकारका लम्बा चौड़ा पात्र जिसमें रख कर अन्न आदि पछोड़ा जाता है। इसकी लम्बाईके बलमें एक सिरे पर कुछ ऊंची लम्बी बाढ़ होती है और दूसरा सिर बिलकुल खाली रहता है। चौड़ाईके बलमें दोनों ओर कुछ ऊंची ढालुआँ बाढ़ होती है जो बिलकुल आगेके सिरे पर पहुंच कर खतम हो जाती है। इसे सूप या फटकना भी कहते हैं।

शूपकार (सं० पु०) सूप करोतीति कृ अण्। शूद्र का पाचक यह जो शूद्रोंकी रसोई बना कर अपनी जीविका चलाता हो। सूपकार शब्द देखो।

शूम (सं० पु०) सूम देखो।

शूर (सं० पु०) शूरयति विक्रामतीति शूर-अच् यद्वा शरति वीर्यं प्राप्नोतीति शृ-शुसिचिमिञ्भां दीर्घश्च इति क्रन् (उण् २।२५) १ वीर, बहादुर, सूरमा। (महाभारत १।१२०।१४) २ यादव। ये श्रीकृष्णके पितामह थे। ३ सूर्य। ४ सिंह। ५ शूकर, सूअर। ६ चित्रव्याघ्र, चीता बाघ। ७ शाल, साखू। ८ लकुच, बड़हर। ९ मसूर, माङ्गल्य। १० अर्कवृक्ष, मदार। ११ चित्रकवृक्ष, चीताका पेड़। १२ योद्धा, भट, सिपाही। १३ विष्णु। (भा० १३।१४९।५०) १४ जैनहरिवंशके अनुसार उत्तर दिशाके एक देशका नाम।

शूर—एक कवि। गानरत्नमहोदधि ग्रन्थमें इनकी रची श्लोकावली उद्धृत है। ग्रन्थान्तरमें भदन्तशूर और भागवत श्रीशूर नाम कविका भी उल्लेख है। एक श्लोककी भणितामें शूरकवि सिंहराजके आश्रित थे, ऐसा उल्लेख पाया जाता है।

शूरई—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके उत्तर-आर्कट जिलेके वाला-जापेट तालुकके अन्तर्गत एक बड़ा ग्राम। यहां चोल-राजाओंका प्रतिष्ठित एक प्राचीन शिवमन्दिर है। तीन सौ वर्ष पहले सिर्फ एक बार उसकी मरम्मत हुई थी।

शूरग्राम (सं० त्रि०) १ शूरसङ्घविशिष्ट। (ऋक् ९।९०।३) २ शूरोंका समूह, शूरसङ्घ।

शूरज (सं० पु०) १ एक राजसेवकका नाम। (राजत० ८।३३५) २ शूरवर्माके पुत्रका नाम।

शूरण (सं० पु०) शूर्यते इति शूर हिंसे ल्युः। १ कन्द-विशेष, जमीकंद, ओल। यह भिन्न भिन्न देशमें भिन्न भिन्न नाममें प्रसिद्ध है, यथा—तेलगू—मुञ्चकुन्द, बम्बई—जलिसूरण, तामिल—सूरण, महाराष्ट्र और कर्णाट—सूरणु, सूरणा। यह श्वेत, रक्त और अरुणभेदसे तीन प्रकारका है। पर्याय—अर्शोघ्न, कन्द, सूरण, ओल, ओल्ल, कण्डुल, कन्दी, सुकन्दी, स्थूल-कन्दक, दुर्नामारि, सुवृत्त, वातारि, कंदशूरण, तीव्रकण्ठ, कन्दार्ह, कन्दवर्द्धन, बहुकन्द, रुच्यकन्द, शरणकन्द। गुण—कटु, रुचिकर, दीपन, पाचन, कृमि, कफ, वायु, श्वास, काश, वमि, अर्श, शूल और गुल्मनाशक तथा रक्तका हानिकारक। (राजनि०) इसके सिवा भावप्रकाशमें और भी कितने गुण लिखे हैं, यथा—कषाय, विष्टम्भी, विशद, लघु, प्लीहनाशक, कण्डुकर, रुच्य, रक्तपित्त और कुष्ठरोगका अहितकारक। सभी प्रकारके कंदशाकमें शूरण कंद ही श्रेष्ठ है। फिर इसमें ग्राम्यकन्दकी अपेक्षा वन्यकन्द ही अर्शोरोगमें विशेष उपकारी है।

२ श्योनाकवृक्ष।

शूरणपिण्डिका (सं० स्त्री०) अर्शोरोगका औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—ओलका चूर्ण १६ तोला, चित्रकमूल ८ तोला, सोंठका चूर्ण २ तोला, मिर्चका चूर्ण २ तोला, गुड़ २७ तोला। पहले धीमी आंचमें गुड़का पाक कर पीछे पाक हो जाने पर उसमें ओलका चूर्ण आदि डाल देना होगा।

शूरणमोदक (स्वल्प)—यह भी एक अर्शोघ्न औषध है। प्रस्तुत प्रणाली—मिर्च १ भाग, चिताका मूल ४ तोला, ओलका चूर्ण ८ तोला, कुल मिला कर जितना हो उतना ही गुड़। ऊपर कहे गये शूरण पिण्डिकावत् पाक करना होगा।

अन्यविध (वृहत)—ओल ३२ तोला, चितामूल १६ तोला, सोंठ ८ तोला, त्रिफला प्रत्येक ८ तोला, पीपर, पीपरमूल, तालिशपत्र, भिलावेका रस, विडङ्ग, प्रत्येक ८ तोला, तालमूली १६ तोला, वृद्धदारक-बीजचूर्ण ३२ तोला, दालचीनी ४ तोला, इलायची ४ तोला, कुल मिला कर जितना हो उससे दूना गुड़। पूर्ववत् पाक करना होगा।

शूरणाङ्कुज (सं० पु०) हरिद्राङ्ग पक्षी, हरियल या हारिल नामकी चिड़िया।

शूरता (सं० स्त्री०) शूर होनेका भाव, शौर्य, बहादुरी, वीरता।

शूरदास—आगरेके रहनेवाले एक हिंदी कवि। ये वल्लभाचार्यके शिष्य थे।

शूरदेव (सं० पु०) १ जैनियोंके अनुसार भविष्यमें होनेवाले चौबीस अर्हतोंमेंसे एक अर्हत्‌का नाम। २ वीरदेव राजाका पुत्र।

शूरन (हिं० पु०) सूरन देखो।

शूरनूर—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके मदुरा जिलेके रामनाद

तालुकका एक ग्राम। यहां सोमशेखर और पराक्रम पाण्ड्य द्वारा प्रतिष्ठित शिवमन्दिर विद्यमान है।

शूरपत्नी (स० स्त्री०) १ यजमान या रक्षोगण द्वारा पालिता। (ऋक् १।१७४।३) २ वीरमाता।

शूरपुत्रा (स० स्त्री०) अदिति।

शूरपुत्रा शूराः विक्रान्ताः शौर्यपिताः पुत्रा मित्रावरुणा दयो यस्याः सा तथोक्ता ता देवी दानादिगुणयुक्ता अदिति' (सायण)

शूरपुर (स० क्ली०) एक नगरका नाम।

शूरबल (स० पु०) १ वीरबल, असुरबल। २ देवपुत्रभेद। ये बोधिमण्डपरिपालक कहलाते थे। (ललितविस्तर)

शूरभू (स० स्त्री०) उग्रसेनकी कन्या।

शूरभूमि (स० स्त्री०) भागवतके अनुसार उग्रसेनकी एक कन्याका नाम। लिखा है वसुदेवके छोटे भाई श्यामकने इससे विवाह किया था। इनसे हरिकेश और हिरण्याक्ष नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए थे।

शूरमानिन् (स० त्रि०) आत्मानं शूरं मन्यते शूर मन् णिनि (पा ३।२।८३) जिसे अपनी शूरताका बहुत अभिमान हो, अपनी बहादुरी पर भरोसा रखने वाला। (महाभारत ४था और ११वां पर्व)

शूरमूर्द्धमय (स० त्रि०) वीरमुण्डसमाकीर्ण।

शूरराजवंश—बङ्गालका एक प्राचीन राजवंश। इस वंशके महाराज जयन्त आदिशूरने बङ्गालमें हिन्दू धर्मकी प्रतिष्ठा की।

शूरवंश—दिल्लीका एक पठान राजवंश। इस वंशके प्रतिष्ठाता शेरशाह शूरने १५३९ ई०में मुगल सम्राट् हुमायूंको चौसा रणक्षेत्र और कन्नौज युद्धमें परास्त कर दिल्लीसिंहासन पर अधिकार जमाया। १५४५ ई०में उसका राज्यकाल शेष हुआ। पीछे १५४५ से १५५४ ई० तक सलीम शाह शूर राजा हुआ। शेषोक्त वर्ष उसकी मृत्यु हो जाने पर उसका लड़का फिरोज शाह कुछ समयके लिये राजतख्त पर बैठा। किन्तु उसके मामा मुबारिज खांने उसका काम तमाम कर महम्मद शाह आदिल नामसे सिंहासन पर दखल जमाया। इसके शासनकालमें गृहविच्छेदका सूत्रपात हुआ। ११ मास तक हिन्दू योद्धा हामूने आदिल शाहका स्वार्थरक्षामें यत्नपरिकर हो राजाके आत्मीय इब्राहिम शूर और सिकन्दर शूरके साथ घोर युद्ध किया। इब्राहिम दिल्ली और आगरेको जीत राज्येश्वर हुआ और अहमदने (सिकन्दर) पञ्जाबमें राजछत्र स्थापन किया। इस समय १५५५ ई०में हुमायूं शाहने धीरे धीरे आ कर पञ्जाबमें सिकन्दर सनादलको हराया। इब्राहिम शाह शूर भी इस समय युद्धमें हार खा कर बङ्गालमें भाग आया। वह शत्रुके हाथसे यमपुर सिधारा। भारतवर्ष देखो।

शूरवज्र (स० पु०) बौद्धराजभेद। (तारनाथ)

शूरवरम्—मन्द्राज प्रदेशके कृष्णा जिलान्तर्गत नुजिविड तालुकका एक बड़ा गांव। इस गांवसे एक मीलकी दूरी पर पत्थरका बना हुआ है और उसके पास ही एक प्राचीन शिवमन्दिर दिखाई देता है। उसके चार स्तम्भमें और नन्दीस्तम्भमें ५ शिलालिपि हैं।

शूरवर्मा—१ एक कवि। २ काश्मीरके एक राजा। यह पङ्गुके औरस और मृगावतीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। नवें वर्षमें मन्त्रियोंने चक्रवर्माको पदच्युत करके शूरवर्माको राजा बनाया। परन्तु ये बहुत दिनों तक राजा नहीं रह सके। एक वर्षके बाद ये राजसिंहासनसे उतार दिये गये।

शूरवाक्य (स० क्ली०) वीरोचित वाक्य वीरत्व प्रकाशक उक्ति।

शूरवाणेश्वर (स० पु०) विष्णु। (भा० १३।१४९।८२)

शूरविद्या (स० स्त्री०) युद्ध आदि करनेकी विद्या।

शूरवीर (स० पु०) १ अतिशय योद्धा, सूरमा। २ माण्डुकेय गोत्रीय एक वैदिक आचार्यका नाम। ३ जातिविशेष।

शूरवीरता (स० स्त्री०) शौर्य, बहादुरी।

शूरण—१ विन्ध्यपार्श्वस्थ एक ग्राम। २ वीरभूमके अन्तर्गत एक ग्राम।

शूरश्लोक (स० पु०) वीरगाथा, वीरोंके वीरतापूर्ण कृत्योंकी कहानी।

शूरसाति (स० स्त्री०) सन क्तिन् सातिः ऊतियूतिजूति सातिहेति कात्यायश्च। (पा ३।३।९७) शूरणा सातिः सम्भजन यत्र। शूरसेवित, वीरसेवित।

शूरसिंह (स० पु०) सारस्वतव्याख्यादीपिका नामक व्याकरणके प्रणेता।

शूरसिंह—पञ्जाब प्रदेशके लाहौर जिलेके कसूर तालुकके अन्तर्गत एक नगर। यह फिरोजपुरसे अमृतसर जानेके रास्ते पर पड़ता है। यहां छींट कपड़ेका कारबार होता है।

शूरसिंह—जोधपुरके एक राजा। ये महाराज उदयसिंह के पुत्र थे। उदयसिंहके मरने पर सन् १५९५ ई०में उनका पुत्र शूरसिंह मारवाड़के सिंहासन पर बैठा। शूरसिंह बादशाह अकबरकी सेनाको लिये लाहौरमें भारतकी सीमाका रक्षक रहा था। सिन्धुके जीतनेके समयमें शूरसिंह वहीं थे। शूरसिंह एक पराक्रमी और रणकुशल राजा थे। पिताके जीते ही इन्होंने रणकौशल तथा वीरताका परिचय दिया था जिससे प्रसन्न हो कर बादशाहने इन्हें एक ऊंचा पद और सवाई राजाकी उपाधि दी।

बादशाह अकबर शूरसिंहके गुणोंसे परिचित हो गया था। अतएव उसने उन्हें एक कठोर काम पूरा करनेके लिये कहा। उस समय सिरोहीका अधिपति राव सुरतान बड़ा गर्वित हो उठा था। वह अपने दुर्भेद्य किलेमें रह कर अपनेको अजेय समझे हुआ था। बादशाहने राव सुरतानके शासनका भार शूरसिंहको सौंपा। शूरसिंहकी वीरताके सामने राव सुरतानको सिर नीचा ही करना पड़ा था। शूरसिंहकी वीरताने राव सुरतानसे बादशाहकी अधीनता स्वीकार करा ली। दिल्लीसे आये हुए फरमानको राव सुरतानने मंजूर किया और अपनी सेनाके साथ बादशाहकी सेवाके लिये प्रस्थित हुआ। इसी समय बादशाहकी आज्ञासे गुजरातके शाह मुजफ्फरके विरुद्ध शूरसिंहने यात्रा की। राव सुरतानकी भी सेना उनकी सेनामें सम्मिलित हुई। दोनों ओरकी सेना लड़ने लगी। परन्तु विजयी शूरसिंह ही हुए। शूरसिंहको वहां बहुत धन हाथ लगा। इन्होंने प्रायः सभी धन दिल्ली भेज दिया उसमेंसे कुछ जोधपुर भेज दिया। इस विजयसे शूरसिंहका यश चारों ओर फैल गया। उसी समय नर्मदाके किनारेका अमर बलेचा नामक एक तेजस्वी राजपूत वास करता था। उसने अभी तक असली स्वाधीनता की रक्षा की थी बादशाहकी आज्ञासे शूरसिंहने उसके विरुद्ध यात्रा की। उस युद्धमें अमरबलेचा मारा गया। वह राज्य शूरसिंहके हाथमें आया। इस संवादको सुन कर बादशाह बड़े खुश हुए और इन्होंने कई और प्रदेश मिला कर उस राज्यका अधिपति उनको बनाया। इसी समय अकबरकी मृत्यु हुई। राजा शूरसिंह अपने पुत्र गजसिंहको साथ ले कर जहांगीरके दरबारमें उपस्थित हुए। जहांगीरने गजसिंहके हाथमें तलवार रख दी। सन् १६२० ई०में राठोर राजा शूरसिंहने दक्षिण देशमें प्राण त्याग किया।

शूरसेन (सं० पु०) शूरा. सेना यस्य। १ मथुराके एक प्रसिद्ध राजा जो कृष्णके पितामह और वसुदेवके पिता थे। २ मथुरा और उसके आस पासके प्रदेशका प्राचीन नाम जहां राजा शूरसेनका राज्य था।

शूरसेनक (सं० पु०) शूरसेन, मथुरा। (मनु २।१९ कुल्लूक)

शूरसेनकोट—मन्द्राजप्रदेशके कृष्णाजिलान्तर्गत नुजिविड़ तालुकका एक प्राचीन दुर्ग। इसका ध्वंसावशेष आज भी उस अतीत समृद्धिका परिचय देता है। यह स्थान आज जंगलसे परिपूर्ण है।

शूरसेनज (सं० पु०) माथुर, मथुराका रहनेवाला।

शूरसेनप (सं० पु०) शूर वीरोंकी सेनाका पालन करनेवाला, कार्त्तिकेय।

शूरहर—युक्तप्रदेशके ललितपुर जिलान्तर्गत एक प्राचीन नगर।

शूरहारपुर—युक्तप्रदेशके फैजाबाद जिलान्तर्गत एक छोटा नगर। यह बीकापुर तहसीलके पश्चिमरांठ परगनेमें अवस्थित है। यहां जो प्राचीन पक्केका दुर्ग का दिखाई देता है, वह भरजातीय सरदारोंकी कीर्त्ति समझा जाता है। मुगल-सम्राट् अकबर शाहके समय यहांकी मझोई नदीके ऊपर एक पक्का पुल बनाया गया है।

शूरा (सं० स्त्री०) १ क्षीरकाकोली, अष्ट वर्गीय औषधि।

शूरा (हिं० पु०) सूर्य।

शूरादित्य—एक पण्डित। ये गुणादित्यके पुत्र तथा स्तवचिन्तामणिवृत्तिके प्रणेता क्षेमराजके पिता थे।

शूरिमृग (सं० पु०) वराह आदि जंगली पशु।

शूरवान्—बम्बई प्रदेशके धारवाड़ जिलान्तर्गत एक बड़ा गांव। यह रामदुर्ग राज्यके अधीन है तथा नरगुण्डसे

६ कोस उत्तर पड़ता है। १८५४ ई०में अन्दुरैशदान पालिटिकल एजेण्ट मैसन साहबने यहां दलबलके साथ छावनी डाली थी। किसी कारणवश मैसन साहब यहांके अधिवासियोंके अप्रियभाजन हो गये। विद्रोह प्रजावर्गने उन्हें तथा उनके १० साथियोंको मार डाला और ११ को घायल किया। आखिर ३०वीं मईको सेनापति लेफ्टेनाण्ट लाटुकने कालादगीसे दलबलके साथ आ कर मुण्डहीन मैसनकी देहको ले जा कर समाधिस्थ किया।

शूरेश्वर (सं० पु०) राजतरङ्गिणी वर्णित एक देवमूर्त्ति। यह मूर्त्ति शूरमठमें अवस्थित है। (राजतर० ५।४८)

शूर्त (सं० पु०) १ शिव। (त्रि०) २ क्षिप्त, निक्षिप्त, प्रशिशत, त्यक्त। (ऋक् १।१७४।६)

शूर्प (सं० पु० क्ली०) शूर्पयति धान्यादीनिति शूर्प अच्, यद्वा शृ हिंसायां पुगुस्या निश्च (उण् ३।२६) इति प प्रत्ययात् स च कित्। १ गेहूं चावल आदि अन्न पछोड़नेके लिये बना हुआ बांस या सींकका पात्र, सूप। पर्याय—प्रस्फोटन। २ एक प्राचीन तौल जो २०४८ तोले या ३२ सेरका होता था।

शूर—राजगृहके अन्तर्गत एक ग्राम।

शूर्पक (सं० पु०) शूर्प इव प्रतिकृतिरस्य इव प्रतिकृतौ' इति कन्। एक असुर। यह किसी विशेष मतसे कामदेवका शत्रु और किसी विशेष मतसे उसका पुत्र था। (हेम)

शूर्पकर्ण (सं० पु०) शूर्पाविव कर्णौ यस्य। १ हस्ती, हाथी। (त्रिका०) २ गणेश। ३ एक प्राचीन देशका नाम। ४ इस देशका निवासी। ५ पुराणानुसार एक पर्वतका नाम। (मार्क० पु० ५८।११) (त्रि०) ६ कुल्यतुल्य श्रुतियुक्त जिसका कान सूपके समान हो।

शूर्पकाराति (सं० पु०) शूर्पकस्तन्नामासुरः अरातिः यस्य। शूर्पक नामक राक्षसका शत्रु, कामदेव।

शूर्पकारि (सं० पु०) शूर्पक नामक राक्षसका शत्रु, कामदेव।

शूर्पबाह (सं० त्रि०) जिसका हाथ सूपके समान हो।

शूर्पणखा (सं० स्त्री०) शूर्पाणीव नखा यस्याः (पूर्वपदात् संज्ञायामगः। पा ८।४।३) इति णत्वं (नखमुखात् संज्ञायां। पा ४।१।५८) इति न ङीष्। रावणकी बहन। रामायणमें लिखा है कि मुनिश्रेष्ठ विश्रवाके औरस और कैकसीके गर्भसे शूर्पणखाका जन्म हुआ। भगवान् रामचन्द्र जब दण्डकारण्यमें रहते थे उस समय कामसे पीड़ित हो कर यह रामके पास उनके साथ ब्याह करनेकी इच्छासे गई थी। यहां रामके इशारेसे लक्ष्मण नाक और कान काट लिये थे। इसीका बदला लेनेके कारण छद्मवेशमें सीताको हर ले गया था। उसके फलसे रामचन्द्र द्वारा रावणके साथ राक्षसवंशका ध्वंस हुआ। कहते हैं, कि शूर्पणखाके नख सूपके समान थे।

शूर्पनखी (सं० स्त्री०) सूर्पाकाराणि नखानि यस्याः नञ् यौगिकत्वेन ङीष्। शूर्पणखा देखो।

शूर्पणाय (सं० पु०) वैदिककालके एक ऋषिका नाम।

शूर्पणायाय (सं० पु०) शूर्पणायका अपत्य या शिष्य सम्प्रदाय। (पा ४।२।८०)

शूर्पनखा (सं० स्त्री०) शूर्पणखा देखो।

शूर्पपर्णी (सं० स्त्री०) शूर्पाणि इव पर्णानि यस्याः ङीप्। १ शिम्बीविशेष। २ मुद्गपर्णी मुगानी। ३ माषपर्णी, माषाणी। (भावप्र)

शूर्पवात (सं० पु०) शूर्पस्य वातः। शूर्पकी वायु, सूपकी हवा। पर्याय—कुल्लकवाल। (त्रिका०) शास्त्रानुसार यह हवा अमङ्गलजनक होती है, यह शरीरमें लगनेसे अलक्ष्मीकी दृष्टि होती है।

शूर्पश्रुति (सं० पु०) शूर्पौ इव श्रुती यस्य। हस्ती, हाथी। (हारावली)

शूर्पा (हिं० पु०) बच्चोंके खेलनेका एक प्रकारका खिलौना।

शूर्पाद्रि (सं० पु०) दक्षिणी भारतके एक पर्वतका नाम। इसे कुछ लोग सूर्पाद्रि भी कहते हैं।

शूर्पारक (सं० पु०) बम्बई प्रेसिडेन्सीके थाना जिलान्तर्गत एक दुर्ग या नगर। (मार्कण्डेयपु० ५७।४६) इसे कुछ लोग सूर्पारक कहते हैं। इसका वर्त्तमान नाम सोपार है। सोपर देखो।

शूर्म (सं० पु०) लौहप्रतिमा, लोहेकी बनी हुई मूर्त्ति।

शूर्मि (सं० स्त्री०) १ लौहप्रतिमा। २ कर्णि कार्यविशेष।

शूर्मिका (सं० स्त्री०) शूर्मि देखो।

शूल (सं० पु० क्ली०) शूलति लोकानिति शूल-रोगे अच्। १ अस्त्रविशेष, बर्छा। २ मृत्यु मौत। ३ वेतन। ४ विष्कम्भ आदि सत्ताईस योगोंमेंसे नवाँ योग। इस योगमें यदि जातक जन्मग्रहण करे, तो वह मौन, दुष्ट, दयिताप्रिय, विद्याहीन, शूलरोगी, लादक अनिष्टकारी तथा स्वबन्धुओंके लिये शूल सदृश होता है।

ज्योतिषशास्त्रमें इस शूलयोगमें शुभकर्मादि निषिद्ध बताया है। यदि कार्य करना नितान्त प्रयोजन हो, तो इस योगका प्रथम ७ दण्ड बाद दे कर कार्य करे।

'त्यजादौ पञ्चविष्कम्भे सप्त शूले च नाडिका।'

(ज्योतिषसारस०)

(त्रि०) ५ सुतीक्ष्ण, बहुत तेज। (पु०) ६ अयःकील, लोहेकी कील। प्राचीनकालमें प्राणदण्डके अपराधीको शूल पर चढ़ानेकी व्यवस्था थी। पुराणादिमें इसका उल्लेख है। इस शूलकी आकृति सम्भवतः शोणाकार और उसका अगला हिस्सा नुकीला होता है। ७ त्रिशूल। ८ व्यथा। ९ विक्रेतव्य। १० रोगविशेष, शूलरोग। इसके वैद्यकोक्त निदान और चिकित्सादिका विषय नीचे लिखा जाता है।

निदान—व्यायाम, अश्वादियानारोहण, अति मैथुन, रात्रि-जागरण, अतिरिक्त शीतल जलपान, कलाय, मूंग, अरहर, कोदो और अत्यन्त रूक्ष द्रव्यका सेवन, अध्यशन, अभिघात, कषाय और तिक्त रसयुक्त द्रव्य, अङ्कुरित धान्यका अन्न, विरुद्धभोजन, शुष्कमांस और शुष्कशाकका सेवन, विष्ठा, शुक्र, मूत्र और वायुवेगधारण तथा शोक, उपवास और अत्यन्त हास्य इन सब कारणोंसे वायु वर्द्धित हो कर वस्तिदेशमें शूलरोग उत्पादन करता है। खाये हुए पदार्थके पच जाने या प्रदोषकालमें बदलीके समय या शीतकालमें यह रोग बहुत बढ़ जाता है तथा रोगी मलरुद्धता, शूचीवेधवत् और भेदनवत् वेदनासे पीड़ित रहता है। इस रोगमें वायुकी चञ्चलताके कारण बार बार प्रकोप और प्रशमन हुआ करता है। शूलविद्धकी तरह यन्त्रणा होनेके कारण इसका नाम शूलरोग हुआ है। स्वेद, अभ्यङ्ग, मर्दनादि तथा स्निग्ध और उष्ण द्रव्यके भक्षण द्वारा इसकी शान्ति होती है। यह रोग वातज, पित्तज, कफज, सान्निपातज, आमज तथा वातश्लैष्मिक, पित्तश्लैष्मिक और वातपैत्तिक भेदसे आठ प्रकारका है। उक्त सभी प्रकारके शूलरोगोंमें वायुकी प्रधानता रहती है।

हृच्छूलका लक्षण—रससंयुक्त हृदयाश्रित वायु, कफ और पित्तको अवरुद्ध कर उच्छ्वासका अवरोधक शूल उत्पादन करता है। इसको हृच्छूल कहते हैं।

पार्श्वशूलका लक्षण—पार्श्वदेश संश्रित वायु कफके साथ दोनों पार्श्वोंमें शूल उत्पादन करके उदराध्मान, अनिद्रा और अन्न भोजनमें अरुचि पैदा करती है तथा रोगीके मुखसे श्वास निकलता है।

वस्तिशूलका लक्षण—जिस रोगमें मलमूत्रादिका वेग रोकनेसे वायु कुपित हो कर वस्तिदेशमें आश्रय लेती और वहां शूलरोग उत्पादन करती तथा उससे रोगीकी विष्ठा, मूत्र और वायु रुक जाता है, उसे वस्तिशूल कहते हैं।

पैत्तिकशूल—क्षार, अत्यन्त तीक्ष्ण, उष्ण, विदाही तथा कटु और अम्लरसयुक्त द्रव्यसेवन, तैल, राजमाष, सर्षपादिका कल्क, कुलथी कलायका जूस, विदग्ध द्रव्य भक्षण तथा क्रोध, अग्निसेवन, परिश्रम, रौद्रसेवन और अतिरिक्त मैथुन, इन सब कारणोंसे पित्त कुपित हो कर नाभिदेशमें शूल उत्पादन करता है। इसमें रोगीके पिपासा, दाह, स्वेदोद्गम, मनोमोह, इन्द्रियमोह, भ्रम, और शोष उत्पन्न होता है। मध्याह्नमें, रात्रिके मध्य भागमें, ग्रीष्म, और शरत्कालमें यह रोग बढ़ता है तथा शीतकालमें तथा शीतल उपचार और सुमधुर अथच शीतल द्रव्य खानेसे यह प्रशमित होता है।

श्लैष्मिक लक्षण—जलबहुल देशज मत्स्य, जलज शालुकादि, पायसादि क्षीरविकार, मांस, इक्षु, माषादि निर्मित पिष्टक, तिलतण्डुल, माषकृत यवागू, तिलपुली तथा अन्यान्य गुरु और कफजनक द्रव्य सेवन करनेसे कफ कुपित हो कर आमाशयमें शूल उत्पादन करता है। इस रोगमें रोगीके हृल्लास, कास, शरीरकी अवसन्नता, अरुचि, मुखप्रसेक, कोष्ठकी स्तैमित्य और मस्तकका गुरुत्व होता है। भोजनके ठीक बाद हो, दिनके प्रथम भागमें, शिशिर और वसन्तकालमें वेदना बहुत बढ़ जाती है।

द्वन्द्वज लक्षण—ऊपर कहे गये द्विदोषज मिलित लक्षण द्वारा द्वन्द्वज शूल स्थिर करना होगा।

त्रिदोषजात शूलरोगमें हृदय, पृष्ठ, पार्श्व, त्रिक वस्ति, नाभि और आमाशय स्थानमें वेदना तथा त्रिदोषके सभी लक्षण दिखाई देते हैं। यह सान्निपातिक शूल अति भयानक और कष्टदायक है। सुचिकित्सक उक्त रोगी का परित्याग कर दे।

आमज लक्षण—आमज शूलरोगमें पेटमें गुड़ गुड़ शब्द, हृल्लास, वमि, देहकी गुरुता और स्तिमितता तथा कफज शूलके लक्षण दिखाई देते हैं। यह शूल वातात्मक होने पर वस्तिदेशमें, पित्तात्मक होने पर नाभि में और पार्श्वके साथ कुक्षिदेशमें उत्पन्न होता है।

तन्त्रान्तरमें लिखा है, कि उपयुक्त परिमाणसे अधिक खा लेने पर उसमें अग्निकी मृदुताके कारण खाया हुआ अन्न पेटमें स्थिरभावसे रहता है। जिससे वायु अवरुद्ध होती है। अतः भुक्त द्रव्य नहीं पचता और अत्यन्त शूल पैदा होता है। इससे अन्तमें मूर्च्छा, आध्मान विदाह हृत्क्लेश विलम्बिका कम्प, वमन अतीसार और भ्रमादि रोगकी उत्पत्ति होती है।

वातश्लेष्मज शूल वस्ति, हृदय कटि और पार्श्व देशमें तथा पित्तश्लेष्मज शूल कुक्षि, हृदय और नाभि देशमें उत्पन्न होता है। इस रोगमें अति दाह और ज्वर होता है।

साध्यासाध्यादि—एकदोषोद्भव शूलरोग साध्य, द्विदोषज शूल कष्टसाध्य तथा सान्निपातिक शूल असाध्य है। अत्यधिक उपद्रव विशिष्ट सभी प्रकारके शूल असाध्य होते हैं।

अरिष्ट लक्षण—जिस शूलरोगीके अत्यधिक वेदना, अत्यन्त पिपासा मूर्च्छा आनाह, देहकी गुरुत्व, ज्वर, भ्रम अरुचि, कृशता और बलहानि ये सब उपद्रव होते हैं, उसके जीवनकी आशा नहीं करनी चाहिये।

भुक्तद्रव्यके परिपाक कालमें शूल उपस्थित होनेसे उसको परिणामशूल कहते हैं।

परिणाम शूल लक्षण—पूर्वोक्त कारणसे कुपित हो कर वायु कफ और पित्तको दूषित कर परिणाम शूल उत्पादन करती है। यह शूल भुक्त द्रव्यकी जीर्णावस्था में होती है।

वातजादि लक्षण—वातज परिणाम शूलमें आध्मान आटोप, मलमूत्रकी रुद्धता, ग्लानि और कम्प होता है, किन्तु स्निग्ध और उष्ण क्रिया द्वारा यह प्रशमित होता है। पैत्तिक परिणाम शूलमें पिपासा, दाह, ग्लानि और घर्मोद्गम होता है। कटु, अम्ल और लवण रस युक्त द्रव्यका सेवन करनेसे यह रोग बढ़ता और शीत क्रियासे घटता है। श्लैष्मिक परिणामशूलमें वमि, हृल्लास सम्मोह और अल्पवेदना होती है तथा यह वेदना देर तक रहती है। कटु और तिक्तरसका सेवन करनेसे इसका उपशम होता है। उक्त दो दोषोंके मिलित लक्षण द्वारा द्विदोषज तथा तीन दोषोंके लक्षण द्वारा त्रिदोषज शूलरोग स्थिर करना होगा। त्रिदोषज परिणाम शूलमें रोगीका मांस बल और जठराग्नि क्षीण होने से रोगको असाध्य समझना चाहिये।

अन्नद्रवशूल लक्षण—भुक्तद्रव्य जीर्ण होने पर भी पच्यमान अवस्थामें जो शूल हमेशा हुआ करता है और जो पथ्य वा अपथ्य, आहार वा अनाहार, नियमानियम किसीसे भी निवृत्त नहीं होता उसे अन्नद्रवशूल कहते हैं। यह शूलरोग साध्य है यत्नपूर्वक चिकित्सा करने से बहुत जल्द चंगा हो जाता है। उक्त प्रकारके लक्षण द्वारा शूलरोग निर्णय करके अति शीघ्र यथाविधान चिकित्सा शुरू कर देना चाहिये। यह रोग अति यन्त्रणादायक है इस कारण बड़ी सावधानीसे इसकी चिकित्सा करनी होगी।

चिकित्सा—शूलरोग निवारणके लिये वमन लङ्घन स्वेद, पाचन, फलवर्त्ति क्षारप्रयोग, चूर्ण और मोदक प्रयोग लाभदायक है। वातज शूलरोगीको स्नेह और स्वेद प्रयोग द्वारा चिकित्सा करना होगा। स्वल्प शूलमें एकमात्र स्वेदका प्रयोग करनेसे ही यह प्रशमित होता है।

मिट्टी और जलको एकत्र कर्दमाकृति करनेके बाद उसे अग्निमें पाक कर घना करे। पीछे उस गरम मिट्टी को कपड़ेमें पोटली बांध कर उससे सेंक दे। यह सेंक देनेसे शूलवेदना मन्द आ जाती है। इसको मृत्तिका

शूर्मिका (सं० स्त्री०) शूर्मि देखो।

शूल (सं० पु०,क्ली०) शूलति लोकाननिति शूल-रोगे अच्। १ अस्त्रविशेष, वर्छा। २ मृत्यु, मौत। ३ केतन। ४ विष्कम्भ आदि सत्ताईस योगोंमेंसे नवाँ योग। इस योगमें यदि जातक जन्मग्रहण करे, तो वह भीत, दरिद्र, दयिताप्रिय, विद्याहीन, शूलरोगी, लोकका अनिष्टकारी तथा स्वबन्धुओं के लिये शूल सदृश होता है।

ज्योतिषशास्त्रमें इस शूलयोगमें शुभकर्मादि निषिद्ध बताया है। यदि कार्य करना नितान्त प्रयोजन हो, तो इस योगका प्रथम ७ दण्ड बाद दे कर कार्य करे।

"त्यजादौ पञ्चविष्कम्भे सप्त शूले च नाडिका।"

(ज्योतिषसारस०)

(त्रि०) ५ सुतीक्ष्ण, बहुत तेज। (क्ली०) ६ अयःकील, लोहेकी कील। प्राचीनकालमें प्राणदण्डके अपराधीको शूल पर चढ़ानेकी व्यवस्था थी। पुराणादिमें उसका उल्लेख है। इस शूलकी आकृति सम्भवतः रोणाकार और उसका अगला हिस्सा नुकीला होता है। ७ त्रिशूल। ८ व्यथा। ९ विक्रेतव्य। १० रोगविशेष, शूलरोग। इसके वैद्यकोक्त निदान और चिकित्सादिका विषय नीचे लिखा जाता है।

निदान—व्यायाम, अश्वादियानारोहण, अति मैथुन, रात्रि-जागरण, अतिरिक्त शीतल जलपान, कलाय, मूंग, अरहर, कोदो और अत्यन्त रुक्ष द्रव्यका सेवन, अध्यशन, अभिघात, कषाय और तिक्त रसयुक्त द्रव्य, अङ्कुरित धान्यका अन्न, विरुद्धभोजन, शुष्कमांस और शुष्कशाकका सेवन, विष्ठा, शुक्र, मूत्र और वायुवेगधारण तथा शोक, उपवास और अत्यन्त हास्य इन सब कारणोंसे वायु वर्द्धित हो कर वस्तिदेशमें शूलरोग उत्पादन करता है। खाये हुए पदार्थके पच जाने या प्रदोषकालमें बदलीके समय या शीतकालमें यह रोग बहुत बढ़ जाता है तथा रोगी मलरुद्धता, सूचीवेधवत् और भेदनवत् वेदनासे पीड़ित रहता है। इस रोगमें वायुकी चञ्चलताके कारण बार बार प्रकोप और प्रशमन हुआ करता है। शूलविद्धको तरह यन्त्रणा होनेके कारण इसका नाम शूलरोग हुआ है। स्वेद, अभ्यङ्ग, मर्दनादि तथा स्निग्ध और उष्ण द्रव्यके भक्षण द्वारा इसकी शान्ति होता है। यह रोग वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, आमज तथा वातश्लैष्मिक, पित्तश्लैष्मिक और वातपैत्तिक भेदसे आठ प्रकारका है। उक्त सभी प्रकारके शूलरोगोंमें वायुकी प्रधानता रहती है।

हृच्छूलका लक्षण—रससंसृष्ट हृदयाश्रित वायु, कफ और पित्तको अवरुद्ध कर उच्छ्वासका अवरोधक शूल उत्पादन करता है। इसको हृच्छूल कहते हैं।

पार्श्वशूलका लक्षण—पार्श्वदेश संश्रित वायु कफके साथ दोनों पार्श्वोंमें शूल उत्पादन करके उद्गाध्मान, अनिद्रा और अन्न भोजनमें अरुचि पैदा करती है तथा रोगीके मुखसे श्वास निकलता है।

वस्तिशूलका लक्षण—जिस रोगमें मलमूत्रादिका वेग रोकनेसे वायु कुपित हो कर वस्तिदेशमें आश्रय लेती और वहां शूलरोग उत्पादन करती तथा उससे रोगीकी विष्ठा, मूत्र और वायु रुक जाती है, उसे वस्तिशूल कहते हैं।

पैत्तिकशूल—क्षार, अत्यन्त तीक्ष्ण, उष्ण, विदाही तथा कटु और अम्लरसयुक्त द्रव्यसेवन, तैल, राजमाष, सर्षपादिका कल्क, कुलथी कलायका जूस, विदग्ध द्रव्य भक्षण तथा क्रोध, अग्निसेवन, परिश्रम, रौद्रसेवन और अतिरिक्त मैथुन, इन सब कारणोंसे पित्त कुपित हो कर नाभिदेशमें शूल उत्पादन करता है। इसमें रोगीको पिपासा, दाह, स्वेदोद्गम, मनोमोह, इन्द्रियमोह, भ्रम, और शोष उत्पन्न होता है। मध्याह्नमें, रात्रिके मध्य भागमें, ग्रीष्म, और शरत्कालमें यह रोग बढ़ता है तथा शीतकालमें तथा शीतल उपचार और सुमधुर अथच शीतल द्रव्य खानेसे यह प्रशमित होता है।

श्लैष्मिक लक्षण—जलबहुल देशज मत्स्य, जलज शालुकादि, पायसादि क्षीरविकार, मांस, इक्षु, माषादि निर्मित पिष्टक, तिलतण्डुल, माषकृत यवागू, तिलपुली तथा अन्यान्य गुरु और कफजनक द्रव्य सेवन करनेसे कफ कुपित हो कर आमाशयमें शूल उत्पादन करता है। इस रोगमें रोगीके हृल्लास, कास, शरीरकी अवसन्नता, अरुचि, मुखप्रसेक, कोष्ठका स्तैमित्य और मस्तकका गुरुत्व होता है। भोजनके ठीक बाद हो, दिनके प्रथम भागमें, शिशिर और वसन्तकालमें वेदना बहुत बढ़ जाती है।

द्वन्द्वज लक्षण—ऊपर कहे गये त्रिदोषके मिलित लक्षण द्वारा द्वन्द्वज शूल स्थिर करना होगा।

त्रिदोषजात शूलरोगमें हृदय, पृष्ठ, पार्श्व, त्रिक वस्ति, नाभि और आमाशय स्थानमें वेदना तथा त्रिदोषके सभी लक्षण दिखाई देते हैं। यह सान्निपातिक शूल अति भयानक और कष्टदायक है। सुचिकित्सक उक्त रोगी का परित्याग कर दे।

आमज लक्षण—आमजन्य शूलरोगमें पेटमें गुड़ गुड़ शब्द, हृल्लास, वमि, देहकी गुरुता और स्तिमितता तथा कफज शूलके लक्षण दिखाई देते हैं। यह शूल वातात्मक होने पर वस्तिदेशमें, पित्तात्मक होने पर नाभि में और पार्श्वके साथ कुक्षिदेशमें उत्पन्न होता है।

तन्त्रान्तरमें लिखा है कि उपयुक्त परिमाणसे अधिक खा लेने पर उससे अग्निकी मृदुताके कारण खाया हुआ अन्न पेटमें स्थिरभावसे रहता है। जिसमें वायु अव रुद्ध होती है। अतः भुक्त द्रव्य नहीं पचता और अन्यान्त शूल पैदा होता है। इससे अन्तमें मूर्च्छा, आध्मान विदाह हृल्लास विलम्बिका वमन, अतीसार और भ्रमरोगकी उत्पत्ति होती है।

वातश्लैष्मिक शूल वस्ति, हृदय कटि और पार्श्व देशमें तथा पित्तश्लैष्मिक शूल कुक्षि हृदय और नाभि देशमें उत्पन्न होता है। इस रोगमें अति दाह और ज्वर होता है।

साध्यासाध्यादि—एकदोषोद्भव शूलरोग साध्य द्विदोषज शूल कष्टसाध्य तथा सान्निपातिक शूल असाध्य है। उपद्रवविशिष्ट सभी प्रकारके शूल असाध्य होते हैं।

अरिष्ट लक्षण—जिन शूलरोगोंके अत्यधिक वेदना, अत्यन्त पिपासा मूर्च्छा आनाह, देहका गुरुत्व, ज्वर भ्रम अरुचि कृशता और बलहानि ये सब उपद्रव होते हैं उनके जीवनकी आशा नहीं करनी चाहिये।

भुक्तद्रव्यके परिपाक कालमें शूल उपस्थित होनेसे उसको परिणामशूल कहते हैं।

परिणाम शूल लक्षण—पूर्वोक्त कारणसे कुपित हो कर वायु कफ और पित्तको दूषित कर परिणाम शूल उत्पादन करती है। यह शूल भुक्त द्रव्यकी जीर्णावस्था में होती है।

वातजादि लक्षण—वातज परिणाम शूलमें आध्मान, आटोप, मलमूत्रकी बद्धता, ग्लानि और कम्प होता है, किन्तु स्निग्ध और उष्ण क्रिया द्वारा यह प्रशमित होता है। पैत्तिक परिणाम शूलमें पिपासा, दाह, ग्लानि और घर्मोद्गम होता है। कटु, अम्ल और लवण रस युक्त द्रव्यका सेवन करनेसे यह रोग बढ़ता और शीत क्रियासे घटता है। श्लैष्मिक परिणामशूलमें वमि, हृल्लास, सम्मोह और अल्पवेदना होता है तथा यह बहुत देर तक रहता है। कटु और तिक्तरसका सेवन करनेसे इसका उपशम होता है। उक्त दो दोषोंके मिलित लक्षण द्वारा द्विदोषज तथा तीन दोषोंके लक्षण द्वारा त्रिदोषज शूलरोग स्थिर करना होगा। त्रिदोषज परि णाम शूलमें रोगीका मांस बल और जठराग्नि क्षीण होने से रोगको असाध्य समझना चाहिये।

अन्नद्रवशूल लक्षण—भुक्तद्रव्य जीर्ण होने पर भी पच्यमान अवस्थामें जो शूल हमेशा हुआ करता है और जो पथ्य या अपथ्य, आहार या अनाहार, नियमानियम किसीसे भी निवृत्त नहीं होता उसे अन्नद्रवशूल कहते हैं। यह शूलरोग साध्य है, यत्नपूर्वक चिकित्सा करनेसे बहुत जल्द चंगा हो जाता है। उक्त प्रकारके लक्षण द्वारा शूलरोग निर्णय करके अति शीघ्र यथाविधान चिकित्सा शुरू कर देनी चाहिये। यह रोग अति यन्त्र णादायक है इस कारण बड़ी सावधानीसे इसकी चिकित्सा करना होगा।

चिकित्सा—शूलरोग निवारणके लिये वमन लङ्घन स्वेद, पाचन, फलवर्त्ति क्षारप्रयोग, चूर्ण और मोदक प्रयोग लाभदायक है। वातजन्य शूलरोगोंका स्नेह और स्वेद प्रयोग द्वारा चिकित्सा करना होगा। वातज शूलमें पहले स्वेदका प्रयोग करनेसे ही यह प्रशमित होता है।

मिट्टी और जलको एकत्र करके मर्दन करनेके बाद उसे अग्निमें पाक कर गाढ़ा करे। पीछे उस गरम मिट्टी को कपड़ेकी पोटलीमें बाँध कर उसका सेंक दे। यह सेंक देनेसे शूलवेदना जल्द जाती रहती है। इसका सुविधा

स्वेद कहते हैं। इसके सिवा कार्पासास्थ्यादिका स्वेद भी विशेष उपकारी है। यह स्वेद देनेका विधान इस प्रकार है—कपासका बीज, कुलथी कलाय, तिल, जौ, भरेण्डका मूल, तीसी, पुनर्नवा, शणबीज और कांजी इन्हें एकत्र करके हो या अलग अलग हो, स्वेद देनेसे सभी प्रकारकी शूलवेदना उसी समय प्रशमित होती है।

शिला पर पीसे हुए तिलको कुछ गरम कर पेट पर प्रलेप देनेसे दुःसाध्य शूल भी शीघ्र निवृत्त होता है। मैनफलको कांजीसे पीस कर नाभिदेशमें प्रलेप देनेसे नाभिशूल निवारण होता है। आध तोला सोंठ और डेढ तोला भरेण्डका मूल, इसका काढ़ा बनावे पीछे उसमें हींग और सोंचर्चल डाल कर पान करनेसे तत्क्षणात् शूल जाता रहता है। पुराना गुड़, शालितण्डुल, जौ, दूध और घृतपान, विरेचन और जंगली पशुका जूस, ये सब पित्तशूल रोगीके लिये रामबाण हैं। मणि, रौप्य या ताम्र निर्मित वृहत् पात्रको जलसे पूर्ण कर शूलस्थान पर रखनेसे भी पित्तशूलवेदना दूर होती है। पित्तघ्न विरेचन तथा शशक और लावपक्षीके मांसका जूस पित्तज शूलमें लाभदायक है। गुड़ और घृत संयुक्त हरीतकीको खाने अथवा आंवलेका चूर्ण मधुके साथ चाटनेसे पित्तशूल दूर होता है।

कफज शूलरोगीको शालि तण्डुलका अन्न, जंगली पशुका मांस, कटु रसाक्त द्रव्य तथा मधुके साथ पुराना गेहूं खानेको दे। सैन्धव, सचल, लवण, विट्लवण पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, चिता, सोंठ और हींग, इन्हें कुछ गरम जलके साथ पिलानेसे कफजशूल नष्ट होता है।

आमज शूलमें उक्त कफज शूलकी तरह चिकित्सा करे तथा आमनाशक अथच अग्न्युद्दीपक द्रव्य सेवन करावे। राजकादि तीक्ष्ण द्रव्यचूर्णके साथ त्रिफला-चूर्ण, मधु और घृत द्वारा प्रयोग करनेसे सभी प्रकारके शूल निवृत्त होते हैं। देवदारु, स्वर्णक्षीरी, कुट, सोयां, हींग और सैन्धव इन्हें कांजीसे पीस कर कुछ गरम रहते पेट पर प्रलेप देनेसे शूलव्यथा दूर होती है।

बिल्वमूल, भरेण्डका मूल, चितामूल, सोंठ, हींग और सैंधव, इन्हें पीस कर पेट पर प्रलेप देनेसे भी शूल-निवृत्ति होती है। कुम्हड़ेको छोटा छोटा काट कर धूपमें सुखावे। पीछे उसे हंडीमें भर कर एक ढक्कनसे मुंह बंद कर दे। अनन्तर उस सन्धिस्थानको अच्छी तरह बंद कर अग्निमें पाक करे। जब वह कुम्हड़ा जल कर काठिन अङ्गार हो जाय, तब उसे नीचे उतार ले। किन्तु इस ओर विशेष लक्ष्य रखना चाहिये, कि वह एकदम जल कर राख न हो जाय। बादमें जब वह ठंढा हो जाय, तब उसे चूर्ण कर २ माशा तथा सोंठका चूर्ण २ माशा एकत्र मिला कर जलके साथ प्रतिदिन भक्षण करे। इससे सभी प्रकारका असाध्य शूल भी प्रशमित होता है।

परिणाम शूलकी चिकित्सा—परिणामशूल रोग दूर करनेके लिये पहले उपवास, वमन और विरेचनका प्रयोग करे। वमनका विधान—दूधके साथ मैनफलका काढ़ा अथवा कान्तार, पौण्ड्रक और काशकार ईखका रस या नीमका काढ़ा या तितलौकीका रस भर पेट पिला कर वमन करावे। निसोथ या दन्तीमूलका चूर्ण भरेण्डके तेलके साथ पिलानेसे विरेचन हो परिणाम शूल उसी समय प्रशमित होता है।

वायविडङ्गका तण्डुल, त्रिकटु, निसोथ, दन्ती और चिता इनका बराबर बराबर भाग चूर्ण ले कर जितना होगा उससे दूने गुड़के साथ मोदक तैयार करे। यह मोदक २ तोला प्रति दिन गरम जलके साथ सेवन करनेसे त्रिदोषज परिणामशूल अति शीघ्र नष्ट होता है।

सोंठ तिल और गुड़ समान भाग ले कर दूधमें पीस चाटनेसे तीन रातमें परिणामशूल दूर होता है। शम्बूक भस्मके चूर्णको उष्ण जलके साथ आध तोला करके पान करनेसे उसी समय परिणाम शूल नष्ट होता है। लोहा, हरीतकी, पिप्पली और सोंठका चूर्ण समान भाग ले कर आध तोला परिमाणमें घी और मधुके साथ चाटनेसे यह शूल दूर होता है।

जलसंयुक्त सुपक्व त्वगविहीन नारियलमें सैन्धव-लवण भर कर ऊपरसे एक उंगली भर मिट्टीका लेप लगा दे। पीछे उसको अग्निमें जला कर उसके भीतरका सैन्धवलवण संयुक्त गूदा निकाल ले। उस गूदेको पीपरके साथ उपयुक्त मात्रामें सेवन करनेसे सभी प्रकारका परिणाम शूल जाता रहता है।

अन्नद्रवशूल चिकित्सा —इस शूलरोगमें जब तक कटु और अम्लाक्त पित्तमय युक्त भुक्तद्रव्य वमन न कराया जाय तब तक यह शूल प्रशमित नहीं होता। इस शूलमें जिससे शीघ्र वमन हो वैसी ही औषधका प्रयोग करना उचित है। अम्लपित्त रोगकी तरह इसकी चिकित्सा करे। अम्लपित्तोक्त प्रणालीसे अनुसार चिकित्सा करनेसे आमाशय और पक्वाशय शोधित होता है इस कारण इससे उत्पन्न शूलरोग भी विनष्ट होता है।

आँवलेके चूर्णको लोहे अथवा मुलेठी चूर्णके साथ समान भागमें मिला कर मधु द्वारा चाटनेसे अम्लपित्त और अन्नद्रवशूल विनष्ट होता है। श्यामाधान्य कोद्रव धान्य या कङ्गनी धान्य इनके चावलका पायस बना कर भोजन करनेसे उपकार होता है। गुडात्वपक्वान्न, शूरणकन्द कुष्माण्ड, उड़द कुल्थी कलायका सत्तू, कोदों धानका सत्तू और अन्न दधिके साथ या दधि मस्तुत अन्न अन्नद्रव शूलमें विशेष उपकारी है। घृत और गुड़ संयुक्त गोधूमका मण्ड घीनी और शीतल दुग्धके साथ आलोड़न कर भक्षण करनेसे भी अन्नद्रव शूलका उपशम होता है।

यह शूलरोग अति कष्टसाध्य है। अतएव इनके प्रशमनके लिये विशेष यत्न करना आवश्यक है। इस रोगमें अग्निमान्द्य होता है, अतः इसमें खानेका नियम रखना बहुत जरूरी है। जितना आसानीसे पच सके, उतना ही लघु भोजन करना कर्त्तव्य है।

गुड़ आमलकी और हरीतकीका चूर्ण प्रत्येक आध पाव तथा मण्डूर डेढ़ पाव एक साथ मिला कर तथा समपरिमाण मधु और घृतके साथ आलोड़न कर प्रति दिन दो तोला भोजनके आदि मध्य और अन्तमें सेवन करे। यह शूलरोगमें विशेष उपकारी है। कलाय जौ गेहूं, श्यामाधान्य, कोद्रव रक्तमाष, माष कलाय, कुलथीकलाय कङ्गना और शालि तण्डुल, गाय और भैंसका घी, वास्तूक शाक, करेला और ककड़ी हरिन मयूर और कपिञ्जल पक्षीका रस तथा रोहित मछली ये सब अन्नद्रव शूलमें हितकारक माने गये हैं।

अम्लपित्तशूलमें अम्लपित्त रोगोक्त चिकित्सा करना उचित है। इसके सिवा इस रोगमें समुद्राद्य चूर्ण, तारामण्डूर गुड़ शतावरी मण्डूर, वृहत् शतावरी मण्डूर, दो प्रकारका धात्री लौह, आमलकी खण्ड, नारिकेल खण्ड वृहत् नारिकेल खण्ड, श्रीविद्याधराभ्र, शूलगज केशरी शूलवज्रिणीवटी, पिप्पलीघृत और शूल गजेन्द्रतैल तथा अम्लपित्त रोगोक्त औषधोंका शूलरोगमें यथाविधान प्रयोग करनेसे तुरत लाभ पहुंचता है।

भैषज्यरत्नावलीमें इस रोगाधिकारमें निम्नोक्त औषध कही गई हैं—चतुःसमचूर्ण, शम्बुकादि गुटिका, शङ्खरस-गुटिका, सामुद्राद्य चूर्ण नारिकेल-लवण, सप्तामृत लौह, पिप्पलीघृत बीजपूरादिघृत कोलादिमण्डूर, शतावरी मण्डूर, वृहच्छतावरीमण्डूर, चतुःसममण्डूर, रसमण्डूर, धात्रीलौह, शर्कारालौह, खण्डामलकी नारिकेलखण्ड, वृहन्नारिकेलामृत हरीतकीखण्ड, पूगखण्ड, वैश्वानरलौह, शूलगजकेशरी शूलवज्रिणीवटी, शूलान्तकरस श्रीविद्याधराभ्र, चतुःसमलौह और शूलगजेन्द्र तैल आदि।

पथ्यापथ्य—पीड़ा प्रबल रहनेसे अनाहार भोजन करना कर्त्तव्य है। दोनों शाम लघु भोजन करना आवश्यक है। पित्तज शूलके साथ वमि, ज्वर, अत्यन्त दाह और अत्यन्त तृष्णा आदिका उपद्रव रहनेसे मधु मिश्रित यवागू पीना हितकर है। पीड़ाका उपशम होनेसे दिनमें पुराने चावलका भात, मागुर, रोहित या छोटी मछलीका शोरवा; मानकच्चू, आलू, परोल बैंगन डूमर पुराना कुम्हड़ा, करेला आदिकी तरकारी उपकारी है। उस समय जितना कम हो उतना ही खाना उचित है। इस रोगमें केवल दूध भात खा सकनेसे विशेष लाभ पहुंचता है। इस रोगमें खाते समय जल पान न कर कमसे कम खानेके दो घंटे बाद जलपान करना उचित है। निषिद्ध द्रव्य भोजन, अधिक परिमाणमें भोजन, सभी प्रकारका दाल, शाक बड़ी मछली, दही, रूक्षद्रव्य कषाय और शीतल द्रव्य अम्ल द्रव्य, लालमिर्च मद्य रौद्रादि सेवन परिश्रम मैथुन शोक क्रोध, मलमूत्रादिका वेगधारण और रात्रिजागरण ये सब शूलरोगके विशेष अनिष्टकारक हैं। शूलरोगी उक्त निषिद्ध द्रव्यका परित्याग कर विहित द्रव्य तथा यथाविधान औषधका सेवन करें, तो इस रोगसे अतिशीघ्र आरोग्यलाभ कर सकते हैं।

पाश्चात्य चिकित्साग्रन्थमें शूलरोगको Colic कहा है। विविध कारणोंसे यह शूलव्यथा उपस्थित हो सकती है। यकृत्‌में अश्मरी या पथरी (Gall stone) होनेसे शूलरोग उत्पन्न होता है। अन्त्रमें अम्लके सञ्चित रहने पर यह रोग होता है।

बाइकार्बनेट आव सोडा, बाइकार्बनेट आव पटाश आदि द्वारा यह शूल जल्द दूर होता है। अजीर्णरोग ही इस प्रकारके अम्लशूलका प्रकृत निदान है। इस कारण टिंचकस भमिका, टिंकचरा जेनसियेन और टीकाडायेसटिस आदि औषधोंका व्यवहार करना चाहिये। मूत्रकोषमें अक्जेलेट आव लाइम आदिके संचित होनेसे भी एक प्रकारकी पथरी (Calculas) उत्पन्न होती है। ये सब पथरियां जब मूत्रप्रणालीके (Ureter) मध्यसे मूत्राशय (Bladder) की ओर उतरती हैं, तब भयङ्कर शूलवेदना होती है। इसको Renal Colic कहते हैं। लिथिया, इयोरोट्रपिन, बकु, कुलथी कलायका क्वाथ आदिका सेवन इस रोगके प्रशमनका प्रधान उपाय है। किन्तु इस प्रकारके शूलकी भयङ्कर यातनाके समय मर्फिया अधस्त्वाच् निक्षेप करनेसे (Hypodermic injection) रोगी कुछ घण्टेके लिये शान्ति पाता है। फलतः इस जातिकी शूलवेदनामें मर्फियर हाइपोडारमिक इनजेकसनके सिवा रोगीकी यातना निवारण करनेका और कोई उपाय नहीं है।

इसके सिवा पाश्चात्य चिकित्साविज्ञानमें स्नायु शूल (Neuralgia) नामक एक और प्रकारके शूलका उल्लेख है। इस शूलरोगमें फेनासिटिन और तदुघटित औषध द्वारा यथेष्ट उपकार होता है।

शूलक (सं० पु०) शूल इव दुर्विनीतत्वात् कन्। १ दुर्वृत्त घोटक, दुष्ट या पाजी घोड़ा। २ एक ऋषिका नाम। (सह्याद्रि० ३०।३०)

शूलकार (सं० पु०) पुराणानुसार एक शैल जातिका नाम। (मार्क पु० ५७।४०)

शूलगजकेशरिन (सं० पु०) शूलरोगाधिकारोक्त औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—विशुद्ध पारा २ तोला, विशुद्ध गंधक ४ तोला, दोनोंकी कजली बना कर नीबूके रसमें घिसे और उससे ६ तोला परिमित ताम्रपुटके अभ्यन्तर भागको लिप्त करे। पीछे एक हंडीमें नमक रख कर थालीका मुंह बंद कर गजपुटमें पाक करे। दूसरे दिन ताम्रपुटको उद्धृत और चूर्ण कर उपयुक्त पात्र में रखे। २ रत्ती प्रति दिन पानके रसके साथ सेवन करे। औषध सेवनके बाद सोंठ, जीरा, वच, मरिच, इनके चूर्णको कुछ गरम जलके साथ सेवन करनेसे असाध्य शूल भी शीघ्र प्रशमित होता है।

शूलगजेन्द्रतैल (सं० क्लो०) शूलरोगाधिकारोक्त तैलोषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—तिलतैल ८ सेर, क्वाथार्थ रेंडीका मूल और दशमूल प्रत्येक ५ पल, जल ५५ सेर, शेष १३॥० सेर; घी ८ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर, दुग्ध १६ सेर, कल्कार्थ सोंठ, जीरा, यमानी, धनिया, पीपल, वच, सैन्धव और बेरका पत्ता, प्रत्येक २ पल। तैलपाकके विधानानुसार इस तेलका पाक करे। इसकी मालिश करनेसे आठ प्रकारके शूल और तज्जनित नमि आदि उपद्रव शीघ्र प्रशमित होते हैं। इसके सिवा ज्वर, रक्तपित्त, प्लीहा और गुल्म आदि रोगोंमें भी यह विशेष लाभ पहुंचाता है।

शूलगव (सं० पु०) १ शूल और गोविशिष्ट। २ शिव।

शूलगिरि—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके सालेमजिलेके होसुर तालुकान्तर्गत एक गण्डग्राम। यहां ८०० वर्षके प्राचीन एक पोलेगार सरदार वंशका वास था।

शूलग्रन्थि (सं० स्त्री०) मालादूर्वा, माला दूब।

शूलग्रह (सं० पु०) हाथमें त्रिशूल धारण करनेवाले, शिव।

शूलग्राहिन् (सं० पु०) महादेव।

शूलघातन (सं० क्ली०) शूलं तद्रोगं घातयतीति हनणिच् ल्यु। मण्डूर, लौहकिट्ट।

शूलघ्न (सं० क्ली०) शूल-हन टक्। १ तुम्बुरुवृक्ष। (रत्नमाला) (त्रि०) २ शूलनाशक।

शूलघ्नी (सं० स्त्री०) सर्जिक्षार, सज्जीमिट्टी।

शूलदावानलरस (सं० क्ली०) वैद्यकमें एक प्रकारका रस। यह दो तरहसे बनता है। पहला तरीका—शुद्ध पारा, शुद्धसिंगी मुहरा, काली मिर्च, पिप्पली, सोंठ, भूनी हींग, पांचों नमक, इमलीका खार, जंभीरीका खार, शंख भस्म और नीबूके रसके योगसे बनता है और शूल

रोगको तत्काल दूर करता है। दूसरा तरीका—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, सिङ्गी मुहरा, पिप्पला, भूना होंग पांचों नमक, इमलीके खार और नीबूके रसमें घुला हुआ शङ्खका राख तथा नीबूके रससे बनता है और शूल, अजीर्ण, उदर रोग और मन्दाग्निको दूर करता है।

शूलदोषहरा (सं० स्त्री०) शूलपर्णी।

शूलद्विष् (सं० पु०) शूलस्य द्विट् शत्रुः। हिङ्गु, हींग।

शूलधन्वन् (सं० पु०) शूलो धनुर्यस्य। शिव, महादेव।

शूलधर (सं० पु०) शूलस्य धर। शिव, शङ्कर।

शूलधरा (सं० स्त्री०) दुर्गा।

शूलधारिणी (सं० स्त्री०) शूलधरा दुर्गा।

शूलधारिन् (सं० पु०) शूलं धरतीति धृ णिनि। त्रिशूल धारण करनेवाले, शिव महादेव।

शूलभृत् (सं० स्त्री०) शूलं धारयतीति भृत क्विप्। १ दुर्गा। (त्रिका०) (पु०) २ महादेवका 'शूलभृत्' नाम भी कहीं कहीं देखा जाता है।

शूलधृक् (सं० पु०) शूलेन धर्षति दैत्यान् धृष क्विप्। १ शिव, महादेव। (स्त्री०) २ दुर्गा।

शूलनाशन (सं० क्ली०) शूलं तद्रोगं नाशयतीति नश णिच् ल्यु। १ सौवर्चल लवण। २ हिङ्गु, हींग। ३ पुष्करमूल। ४ वैद्यकमें लवङ्ग, भस्म, कर्पूर, भूनी हींग, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल और संधा नमक योग से बनाया हुआ एक प्रकारका चूर्ण। इसका व्यवहार प्रायः शूल रोगमें किया जाता है।

शूलनाशिन् (सं० त्रि०) १ शूलरोगनाशक। (पु०) २ हिङ्गु, हींग।

शूलनाशिनीवटी (सं० स्त्री०) वैद्यकमें एक प्रकारकी वटी या गोली। इसके लिये हड़का छिलका, सोंठ काला मिर्च, पीपल, शुद्ध कुचला, शुद्ध गन्धक, भूनी गधक, भूनी हींग और संधा नमक जलमें खरल करके सनके बराबर गोलियाँ बनावे। कहते हैं, कि प्रातःकाल इसे गरम जलके साथ सेवन करनेसे संग्रहणी, अतिसार, अजीर्ण, मन्दाग्नि आदि दूर होता है।

शूलनिर्मूलन (सं० पु०) दुःखका नाश करनेवाले, शिव, महादेव।

शूलपत्रा (सं० स्त्री०) शूलवत् पत्रमस्या ङीष्। शूल तृण, एक प्रकारकी घास।

शूलपदी (सं० स्त्री०) शूलवत् पादौ यस्याः। शूलके समान पादविशिष्ट, वह स्त्री जिसके पैर शूलके समान हों।

शूलपर्णी (सं० स्त्री०) शूलाकी, एक प्रकारकी घास।

शूलपाणि (सं० त्रि०) शूलं पाणौ यस्य। १ शूलधारी, जिसके हाथमें शूल हो। (पु०) २ महादेव, शिव।

शूलपाणि—१ एक कवि। कविकण्ठाभरणमें इनकी मह वाचस्पति उपाधिका कथा लिखा है। २ तिथिद्वैत प्रकरण तिथिविवेक दत्तकपुत्रविधि दत्तकविवेक, दीप कालिकाख्या याज्ञवल्क्यटीका, दुर्गोत्सवविवेक, दोल यात्राविवेक, प्रायश्चित्तविवेक, रासयात्राविवेक, व्रतकाल विवेक, श्राद्धविवेक, सङ्क्रान्तिविवेक, सम्वत्सरप्रदीप, स्नानविधान और स्मृति परिशिष्ट आदि ग्रन्थोंके रचयिता। इनके ग्रन्थमें भोजदेव, धारेश्वर आदि कवियोंका उल्लेख दिखाई देता है। मित्रमिश्र गोपाल आदि प्राचीन कवि रचित ग्रन्थमें इनका उल्लेख रहनेसे इन्हें उन लोगों से भी बहुत पहलेका आदमी मान सकते हैं। ३ वैद्यक ग्रन्थके प्रणेता।

शूलपानि (सं० पु०) शिव, महादेव।

शूलप्रोत (सं० पु०) नरकके एक भागका नाम।

शूलफा (सं० क्ली०) शूलके समान वेधनास्त्र, बर्छा, बल्लम आदि।

शूलवज्रिणी (सं० स्त्री०) शूलरोगाधिकारोक्त औषध विशेष। प्रस्तुत प्रणाली—पारा, गन्धक, लोहा प्रत्येक ४ तोला, सुहागेका लावा, हींग, बेलसोंठ, सोंठ, पीपल मिर्च, आंवला हरीतकी बहेड़ा कचुर, दारचीनी, इलायची, तेजपत्र, तालिशपत्र, जायफल, लवङ्ग यमानी, जीरा, धनिया, प्रत्येक १ तोला ले कर बकरीके दूधमें अच्छी तरह पीसे। पीछे १ माशाकी गोली बनावे। इसका अनुपान ठंढा पानी या बकरीका दूध है।

शूलभेद (सं० पु०) स्थानभेद।

शूलमर्दन (सं० क्ली०) कोकिलाक्ष, तालमखाना।

शूलयोग (सं० पु०) फलितज्योतिषके अनुसार एक योगका नाम। शूल देखो।

शूलरस (सं० पु०) शूलरोगोक्त औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—त्रिकटु, त्रिफला, मोथा, निसोथ, चितामूल, प्रत्येक १ तोला, कज्जली २ तोला, लोहा, अबरक, विड़ङ्ग, प्रत्येक २ तोला, कुल चूर्णको त्रिफलाके काढ़े में मर्दन कर गोली बनावे। इसका अनुपान काँजी है। इस औषध का सेवन करनेसे अन्नद्रव आदि सभी प्रकारके शूल प्रशमित होते हैं।

शूलरोग (सं० पु०) अम्लजनित वेदनारूप रोगविशेष। शूल देखो।

शूलवत् (सं० त्रि०) शूलरोगविशिष्ट, शूलरोगग्रस्त।

शूलवेदना (सं० स्त्री०) १ तीव्रवेदना, अत्यन्त कष्टदायक व्यथा (Acute pain)। २ शूलव्यथा, अम्लजन्य देहका पीड़ा (Colic pain)।

शूलव्यथा (सं० स्त्री०) शूलवेदना।

शूलशत्रु (सं० पु०) शूलस्य शत्रुः। एरण्डवृक्ष, रेंडका पेड़। (शब्दचन्द्रिका)

शूलशब्द (सं० पु०) पेटका गड़गड़ाहटके कारण होनेवाला शब्द। (माधवनि०)

शूलहन्त्री (सं० स्त्री०) यमानी क्षुप, अजवाइनका पौधा।

शूलहर (सं० क्ली०) पुष्करमूल।

शूलहरयोग (सं० पु०) शूलरोगोक्त औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—हरीतकी, सोंठ, पीपर, मिर्च, कुचिला, हींग, सैन्धव लवण और गन्धक ये सब द्रव्य समान भागमें ले कर बेरकी आंठीके बराबर गोली बनावे। प्रातःकाल इस औषधका जलके साथ सेवन करनेसे शूल, ग्रहणी, अतिसार आदि रोग आरोग्य होते हैं।

शूलहस्त (सं० पु०) १ शूलपाणि, महादेव। २ रक्षः। (त्रि०) ३ जिसके हाथमें शूल हो।

शूलहृत् (सं० पु०) शूलं हरतीति हृ-क्विप्। हिङ्गु, हींग।

शूला (सं० स्त्री०) १ दुष्टवधार्थ कीलक, वह कीलक जिस पर बैठा कर प्राचीनकालमें दुष्टोंको प्राणदण्ड दिया जाता था। २ वेश्या, रंडी। ३ लौहशलाकाविशेष, सीख, छड़।

शूलाकृत (सं० पु०) शूलेन कृतं शूलात् पाके (पा ५।४।६५) इति डाच्। लोहेकी सीखमें खोंस कर भूना हुआ मांस, कबाब आदि। पर्याय—भटित्र, शूल्य, आसितार, शूलिक।

शूलाग्र (सं० क्ली०) शूलस्य अग्रं। शूलका अग्र भाग।

शूलाङ्क (सं० पु०) शूलो अङ्कः चिह्नं यस्य। शिव, महादेव।

शूलान्तकरस (सं० पु०) शूलरोगकी एक प्रकारकी औषध। इसके बनानेका तरीका—त्रिकटु, त्रिफला, चितामूल प्रत्येक १ तोला, कज्जली १ तोला, लौह, अभ्र, विड़ङ्ग प्रत्येक २ तोला, इन सबोंका चूर्ण त्रिफलाके क्वाथमें मर्द्दन कर गोली बनावे। इसका अनुपान कांजी है। शूल आदि रोग विनष्ट होते हैं।

शूलापाल (सं० पु०) वेश्यापाल, वह जो वेश्याका पालन करता हो।

शूलारिवटी (सं० स्त्री०) शूलरोगमें फायदा पहुंचानेवाली एक प्रकारकी दवा। (चिकित्सा०)

शूलि (सं० पु०) १ शूली, महादेव, शिव। (स्त्री०) २ सूली देखो।

शूलिक (सं० क्ली०) शूलः निमित्तत्वेनास्त्यस्येति शूल ठन्। १ शूलाकृत, शूल्य, कबाब। (पु०) २ शशक, खरगोस, खरहा। (हेम०) शूलः अस्यास्तीति ठन्। (त्रि०) ३ फांसी देनेवाला, सूली देनेवाला।

शूलिका (सं० स्त्री०) सीखमें गोद कर भूना हुआ मांस, कबाब।

शूलिकाप्रोत (सं० पु०) शूलिका देखो।

शूलिन् (सं० पु०) शूलमस्यास्तीति शूल-इनि। १ शिव, महादेव। २ शशक, खरगोस। ३ एक नरकका नाम। (त्रि०) ४ शूलास्त्रधारी, शूल धारण करनेवाला। शूलरोगग्रस्त, जिसे शूलरोग हुआ हो।

"वर्ज्जयेद्विदलं शूली कुष्ठी मांसं क्षयी स्त्रियं।"

(वैद्यक)

शातातपीय कर्मविपाकमें लिखा है, कि दूसरेको दुःख देनेसे शूल रोग होता है तथा हमेशा अन्नदान और रुद्र मन्त्रका जप करनेसे उसका नाश होता है।

"शूली परोपतापेन जायते तत्प्रमार्ज्जकः।
सोऽन्नदानं प्रकुर्व्वीत तथा रुद्रं जपेन्नरं॥

(शातातपीय-कर्मविपाक)

शूलिन (सं० पु०) १ माण्डीरवृक्ष। २ उडुम्बर वृक्ष, गूलरका पेड़।

शूलिनी (सं० स्त्री०) शूलं अस्या अस्तीति शूल इनि ङीप्। १ दुर्गाका एक नाम जो त्रिशूल धारण करने वाली मानी जाती हैं। २ नागवल्ली, पान। ३ पुत्रदात्री नामकी लता।

शूलिमुख (सं० पु०) एक नरकका नाम। माताका हत्या करनेवाला एक मौ वर्ष तक इस नरकमें वास करता है।

शूली (सं० स्त्री०) १ स्वनामख्यात तृणभेद, एक प्रकारकी घास। बम्बई—शूली, कर्णाट—सीगले। संस्कृत पर्याय—शूलपत्री, अशाखा, धूम्रमूलिका, जनाश्रया मधुलता महिषप्रिया। इसे पशु बड़े चावसे खाते हैं और इसका व्यवहार औषधरूपमें होता है। वैद्यकके अनुसार यह किंचित् उष्ण, गुरु, बलकारक पित्त तथा दाहनाशक और गौओं तथा भैंसोंका दूध बढ़ानेवाली मानी जाती है। २ शूल देखो।

शूला (हिं० स्त्री०) शूल, पीड़ा।

शूलुर—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके कोयम्बतुर जिलेके पल्लडम तालुकके अन्तर्गत एक नगर। यहां कोयम्बतुरके माद्यराज द्वारा प्रतिष्ठित एक बड़ा छत्र है। यह छत्र महिसुरके कृष्णराज उदैयारके राज्यकाल १७६१ ई०में बना था।

शूलेश्वरतीर्थ (सं० क्ली०) तीर्थविशेष।

शूलोखा (सं० स्त्री०) सोमराजी लता बकुची।

शूल्य (सं० क्ली०) शूलेन संस्कृतं शूल यत् शूलोखाद् यत् (पा ४।२।१७) १ शूलाकृत, सीखमें बेध कर पकाया हुआ मांस कबाब। पाकप्रणाली—यकृत् आदिके मांसको टुकड़े टुकड़े कर उसमें घी और लवण मिलावे। पीछे सीखमें बेध कर निर्धूम प्रतप्त अग्निमें अच्छी तरह सिद्ध करे। इसीका नाम शूल्य या कबाब है। यह अति मधुर तथा बलकारक, रोचक, अग्न्युद्दीपक, लघु वातपित्तकफहारक और पुष्टिवर्द्धक है।

(त्रि०) २ शूल अर्थात् शलाकादि द्वारा दग्ध।

शूल्यपाक (सं० पु०) शूल्येन पाको यस्य। कबाब।

शूल्यमांस (सं० क्ली०) कबाब।

शूलराण (सं० पु०) भूतयोनिविशेष।

शूष्य (सं० त्रि०) सुखकर। 'अर्चा दिवे बृहते शूष्यं वचः।' (ऋक् १।५४।३)

शृकाल (सं० पु०) शृगाल, गीदड़।

शृगाल (सं० पु०) सृजति मायामिति सृज कालन्, पृषोदरादित्वात् साधु। स्वनामप्रसिद्ध पशुविशेष, गीदड़। पर्याय—शिवा भूरिमाय गोमायु, मृगधूर्त्तक, वञ्चक, क्रोष्टु, फेरु, फेरव, जम्बुक सृगाल, जम्बूक, मृत भक्त, कुरव, घोरवासन, वनश्वा, फेर, स्वधूर्त्त, शालावृक, गोमी, कण्वादक, शिवालु, फेरण्ड, व्याघ्रनायक।

प्राणितत्त्वविदोंने इस जातिके जीवको चतुष्पद स्तन्यपायी पशु श्रेणीके अन्तर्भुक्त किया है। जीव तत्त्वमें यह Canis aureus वा C aureus Indicus के नामसे परिचित है। इसके अतिरिक्त विभिन्न देशोंमें यह विभिन्न नामसे पुकारा जाता है। अरब देशमें—शियाल पारस्य—शिगाल मोट—अमु, कनाड़ी और तामिल—नारि, अंग्रेजी—Jackal, ओलन्दाज—gacshals, जर्मन—Alopex, तेलगू—नाका, मराठी—कोल्हा हिब्रु—Shual।

ब्रह्मपुत्रके पश्चिमस्थ सारे भारतमें, दक्षिणपूर्व यूरोप खण्डमें तथा सीरिया, अरब और पारस्य राज्यमें स्थान स्थान पर यह दलबद्ध हो कर विचरण करता है। अफ्रिका और गिनिराज्यमें कास्पीय सागरके किनारे भी एक प्रकारका शृगाल देखा जाता है। निर्जन वनमय प्रान्तरके अलावा यह उत्तर पार्वत्य प्रदेशमें भी रहता है। यह निशाचर, साहसी और चोरप्रकृतिका जानवर है। रात्रिके समय जब ये दलबद्ध हो कर निर्जन प्रान्तर में आहारकी खोजमें घूमते फिरते हैं, उस समय स्वभावतः बड़े जोरसे हुआ हुआ कर चिल्लाते हैं, जो सुनने में बहुत ही विरक्तिकर मालूम पड़ता है। श्वापद जातीय पशु दलबद्ध रहने पर भी रात्रिमें शिकार ढूंढने के समय शिकारके पीछे पीछे दौड़ता है, किन्तु शृगाल का वैसा स्वभाव नहीं है। वे दलबद्ध हो कर ही रात्रिमें बाहर निकलते हैं और सामनेमें मृत या जीवित छोटे छोटे जानवर अथवा सड़े गले मांसादि जो कुछ पाते हैं, उसे बड़े चावके साथ भोजन करते हैं। गलित शव या गोमहिषादिके मांसमें भी उनकी अतृप्ति नहीं देखी जाती।

गङ्गा-प्रवाहित देशभागमें, विशेषतः निम्नबंगमें जो सब शृगाल दलबद्ध रहते हैं, वे जो कुछ पाते हैं, उससे ही पेट भर लेते हैं। बङ्गालका अपेक्षा दाक्षिणात्यका शृगाल कुछ बड़ा होता है। यह प्रायः अकेला वा जोड़ा करके निर्जन स्थानमें विचरण करता है। शङ्का फलमूल तथा कटहलके खेतमें पड़े हुए उसके बीज इनका प्रधान आहार है।

शृगालकी चतुराईके सम्बन्धमें कई गल्प सुननेमें आती हैं। हितोपदेशमें इस विषयकी अनेक गल्प लिखी हैं, किंतु कटहल तोड़ने करनेका कौशल तथा केंकड़े-के बिलमें पूँछ घुसा कर केंकड़े को बाहर करना इनकी कूटबुद्धिका परिचायक है। ये चुपकेसे गृहस्थोंके आंगनमें घुस कर हंस तथा पालतू मेंढ़े बकरेके बच्चे आदि पकड़ लाते हैं और उन्हें ग्रामके बाहर ले जा कर आनन्दसे खाते हैं।

दक्षिण भारतमें तथा सिंहलद्वीपके समतल प्रांतरमें कभी कभी ये दलबद्ध हो कर शिकारकी खोजमें बाहर निकलते हैं। उस समय एक शृगाल उस दलका नेता बन कर आगे आगे चलता है और सब उसका अनुसरण करते हैं। यदि उस समय एक बड़ा हरिण भी उनके सामने आ पड़ता है, तो वे निडर हो कर उस पर टूट पड़ते हैं तथा सब मिल कर दांतोंके आघात-से उसे क्षत विक्षत कर मार डालते हैं। जिन स्थानों-में अधिक खरगोश पाये जाते हैं, वहां ही शृगालका दौरात्म्य अधिक होता है। ये खरगोश को पकड़ कर निभृत स्थानमें ले जाते हैं और उसे मार कर पार्श्ववर्ती किसी निर्जन जंगलमें छिपा रखते हैं; फिर दूसरे ही क्षण वे उस स्थानसे बाहर चले आते हैं। मनुष्य वा कोई बलवान् पशु उनके शिकार करते देख तो नहीं रहा है, वे कुछ समय तक इसकी परीक्षा करते हैं। जब वे वहां किसी प्रकारका आततायी नहीं देखते, तब उस बनसे उसे दूर ले जा कर अपने दलके साथ भक्षण करते हैं। किन्तु यदि शिकार छिपा रखनेके बाद वे किसी मनुष्य अथवा मांसाहारी पशुको वहां देख पाते हैं, तो अपने शत्रुको भुलानेके बहाने नारियल फल। छिलका वा काठका टुकड़ा मुखमें ले कर वहांसे तेजीसे भागते हैं। चतुर शृगाल इस उपायसे शत्रुओंको दिखाते हैं मानो वे अपने शिकारको मुखमें ले कर भाग रहे हों। पीछे वे समय पा कर अपना गुप्त शिकार कर ले जाते हैं।

इनका स्वभाव कुत्तोंके स्वभावसे बहुत कुछ मिलता जुलता है। बुल नामक कुत्ते जिस प्रकार हरिणादि वन्यपशुके शिकारके समय एकबारगी शिकारका गला धर दबाते हैं और किसी तरह छोड़ना नहीं चाहते, शृगाल भी उसी तरह शिकार पकड़ कर छोड़ना नहीं जानते। ये ऐसे धूर्त होते हैं, कि शिकारी जिस समय वनमें शिकार करनेके अभिप्रायसे प्रवेश करता है, उस समय ये दूर ही दूर छिप कर उनके साथ जाते हैं और ज्यों ही शिकार किसी हरिण वा दूसरे जंगली पशुको मारता है, त्यों ही ये वनके गुल्म लताओंसे बाहर निकल कर उस आहत शिकार पर आक्रमण करते हैं और शिकारीकी नजर बचा शिकार ले भागते हैं।

कुत्तोंकी तरह इनके दांतोंमें भी विष होता है। शृगाल-के काट लेनेसे गोमहिषादि पशुओंको जलातङ्क (Hydrophobia) रोग हो जाता है। किसी किसी शृगालके मस्तक पर शृंगकी तरह कोणाकार एक अर्द्ध इंच लम्बा अस्थिखण्ड बाहर होते देखा जाता है। सिंहलद्वीपवासी उसे नारी-कोम्बू कहते हैं। इनका विश्वास है, कि यह शृंग जिसके पास रहेगा, उसकी सभी वासनाएँ पूरी होंगी। उसका खोई सम्पत्ति लौट आयगी तथा उसका संचित धन चोर वा डकैत नहीं ले सकते।

कुत्तेकी तरह ही इनकी भी दंतपंक्ति होती है। इसके नेत्र कुत्ते वा लकड़बग्घेकी तरह गोलाकार होते हैं। देहका ऊपरी भाग हरिद्राभ धूसर वर्ण एवं निम्न भाग अपेक्षाकृत सफेद होता है। जाँघ और पाँव हरिद्रावर्ण रोएँसे ढके रहते हैं। कान कुछ लाल वर्ण और मुख कुछ चौड़ाई लिये लम्बा होता है। पूँछ रोओंसे भरी रहती है। स्थानभेदसे शरीरके रंगमें भी अन्तर दिखाई पड़ता है। किसी किसी स्थानके शृगालके पृष्ठ और पार्श्वदेश धूसर तथा कृष्णवर्णके रोओंसे समाच्छन्न रहता है। मस्तकके रोएं प्रायः शरीरकी तरह होते हैं।

इनकी स्त्री जाति कुत्तीकी तरह एक ही ऋतुमें गर्भ-

धारण करता है एवं उसी तरह पूर्णकाल गर्भधारणके बाद यथासमय पर बच्चा प्रसव करता है। बच्चोंकी आँख अल्पक समय बन्द रहती है पीछे कुछ दिनोंके बाद क्रमशः खुल जाती है। उस समय शृगालके बच्चे चलने फिरने लगते हैं। अनेक समय ये मिट्टी खोद कर बिलमें वास करते हैं। वन्य शृगालके शरीरसे एक प्रकारकी दुर्गन्ध निकलती है इसलिये कोई इस पशुको नहीं पालता। किन्तु कर्णल साइक्सने एक शृगालीको पाल रखा था। ऐसे तो इसका दुर्गन्ध मालूम नहीं पड़ती, पर इसके शरीरके पास नाक ले जानेसे एक प्रकारकी बुरी गन्ध पाई जाती है।

उपरोक्त जातियोंके अतिरिक्त वयूमियरने Canis authus नामक और भी एक जातिके शृगालका उल्लेख किया है। इसका मुख अपेक्षाकृत नुकीला पूंछ लम्बा और चारों पाँव सीधे होते हैं। इस कारण ये पाँवके बल सीधी तरह खड़े हो सकते हैं। Canis Vulpes नामक एक अन्य जातीय छोटा शृगाल देखा जाता है। गाजाके निकटवर्त्ती जाफा नगरमें और गालिलीमें इस जातिके शृगाल बहुत पाये जाते हैं। बाइबिल ग्रन्थमें लिखा है कि फिलिष्टाइन लोगोंका शस्यक्षेत्र जला देनेके लिये स्यमसनने ३०० शृगालोंका पूंछमें मसाल बाँध दिया था (Judges XV 45)। कोई पाश्चात्य पण्डित अनुमान करते हैं कि इसाइयोंके धर्मशास्त्रमें लिखे हुए थे फॉक्स या सम्भवतः शृगाल होंगे। तब ये शृगाल तुर्कवासी चिकल (Chacal) या पारसके शिगाल, शिआकाल या शाकाल अथवा हिब्रु जातिके कहे हुए शुआल जातीय शृगाल थे इसका ठीक ठीक निर्णय नहीं किया जाता। बाइबिल ग्रन्थ Psalm LXIII 10 स्थानमें शृगालके शवभक्षणकी कथा है। हिन्दुओंके पुराण और नाटकोंके अन्दर फेरुपालक निहत सैनिकोंका मांस खानेका यथेष्ट परिचय है।

कब्र खोद कर शृगाल शव देह खा जाते हैं इसके अनेकों प्रमाण पाये गये हैं।

एक पाश्चात्य पण्डितने शृगालके अर्द्ध चीत्कार और अर्द्ध क्रन्दन मिश्रित विभिन्न स्वरोंका लक्ष्य करके लिखा है कि इस जन्तुके स्वरको मनुष्यकी भाषामें तथा संगीतके सुरमें रूपान्तरित करनेसे ज्ञात पड़ता है, कि शृगालके स्वर अंग्रेजी भाषामें निम्नोक्त भाव प्रकाश करते हैं:—

"A dead Hindu ! a dead Hindu
Where where ? where where ?
Here-here Here here"

शृगालकी आवाजसे शुभाशुभका पता लगाया जाता है। शिवारुत शब्दमें विशेष विवरण देखो।

२ दैत्यभेद। (मेदिनी) ३ वासुदेव। ४ निष्ठुर ५ खल। (भारतवताभिधान) ६ भीरु।

शृगालकण्टक (सं० पु०) शृगालरोधकः कण्टको यस्य। क्षुपविशेष, भरभाड़ या सत्यानासी नामका कँटीला क्षुप। प्रतिदिन सबेरे और शामको इसका डण्ठल तोड़नेसे जो हरिद्राभ रस पाया जाता है, उसे फोड़ेमें लगानेसे वह अच्छा हो जाता है। उसके फलके बीजमें तेल है। यह तेल सरसोंके साथ मिला कर निकाला जाता है। उद्भिद्शास्त्रमें इसे Zyzyphus कहा है।

शृगालकोलि (सं० पु०) शृगालप्रिय कोलिरस्य। क्षुद्र कोलिवृक्ष, उन्नाव, कर्कन्धु। (रत्नमाला)

शृगालघण्टा (सं० स्त्री०) कोकिलाक्ष तालमखाना।

शृगालजम्बु (सं० पु०) शृगालस्य जम्बुरिव। १ गोडुम्ब खीमारककड़ी। २ कर्कन्धु उन्नाव। ३ तरबूज।

शृगालविन्ना (सं० स्त्री०) पृश्निपर्णी पिठवन।

शृगालिका (सं० स्त्री०) १ शृगालपत्नी सियारिन गीदड़ी। २ त्रासहेतु पलायन भयके कारण भागना। ३ भूमिकुष्माण्ड भूईकुम्हड़ा। ४ क्षुद्र शृगाल, लोमड़ी, खेंकसियार। पर्याय—लोमालिका कोलान्हा किंकि, उत्कामुखा। ५ पृश्निपर्णी पिठवन। ६ विदारी कन्द।

शृगाली (सं० स्त्री०) १ शृगालपत्नी गीदड़ी। २ विद्रव पलायन भागना। ३ कोकिलाक्ष, तालमखाना। ४ विदारीकन्द।

शृङ्खल (सं० पु०) १ एक प्रकारका आभरण जो प्राचीन कालमें पुरुष लोग कमरमें पहनते थे मेखला। २ हाथी बाँधनेकी लोहेकी जंजीर, साँकल सिकड़। पर्याय—अन्दुक निगड़ शृङ्खल। ३ लोहरज्जु, हथ

कड़ी, बेड़ी। ४ बन्धन। ५ नियम, रीति। ६ वन्धनी। Bracket नामक चिह्न।

शृङ्खलक (सं० पु०) शृङ्खले बन्धनमस्य, शृङ्खलास्य बन्धनं करभे। (पा ५।२।७९) इति कन्। १ उष्ट्र, ऊंट। २ शृङ्खल देखो।

शृङ्खलता (सं० स्त्री०) क्रमबद्ध या सिलसिलेवार होनेका भाव।

शृङ्खला (सं० स्त्री०) १ क्रम, सिलसिला। २ पुरुषकी वस्त्रबन्ध, मेखला। ३ चांदीका एक आभूषण जिसे स्त्रियां कमरमें पहनती हैं, करधनी, तागड़ी। ४ एक प्रकारका अलंकार जिसमें कथित पदार्थोंका वर्णन शृङ्खलाके रूपमें सिलसिलेवार किया जाता है। ५ श्रेणी, कतार। ६ नियम, रीति।

शृङ्खलाबद्ध (सं० त्रि०) १ जो क्रमसे हो, सिलसिलेवार। २ जो शृङ्खलासे बांधा हुआ हो।

शृङ्खलित (सं० त्रि०) शृङ्खलो जातोऽस्येति इतच्। १ क्रमबद्ध, श्रेणीबद्ध, सिलसिलेवार। २ शृङ्खलबद्ध, निगड़ित।

शृङ्खली (सं० स्त्री०) कोकिलाक्ष, तालमखाना।

शृङ्घाणिका (सं० स्त्री०) नाकसे निर्गत सिकनि या सर्दी। (आपस्तम्ब १।१६।१४) इसे शृंघाणिका और सिङ्घाणिका भी कहते हैं।

शृङ्ग (सं० क्ली०) शृ-हिंसे (शृणाते र्ह्रस्वश्च। उण् १।१२५) इति गन्, धातो र्ह्रस्वत्वं नुट् च् प्रत्ययस्य। १ पर्वतोपरिभाग। पर्वतका ऊपरी हिस्सा, शिखर, चोटी। पर्याय—कूट, शिखरदण्ड, प्राग्भार, शैलाग्र। २ सानु, कंगूरा। ३ प्रभुत्व, प्रधानता। ४ चिह्न, निशान। ५ क्रीडाजलयन्त्र, पानीका फौवारा। ६ विषाण, गो, भैंस, बकरी आदिके सिरके सींग। देशी और विदेशी शिल्पी इससे कंगही, बटन, तरह तरहके खिलौने तैयार कर बेचते हैं।

गायका सींग तोड़ देनेसे प्रायश्चित्त करना होता है। भवदेवभट्टधृत यमवचनमें लिखा है, कि गोशृंग तोड़ देनेसे आध मास तक यवमण्डादि खा कर रहना होता है।

गायका सींग तोड़ देनेसे यदि वह गाय ६ मासके भीतर मर जाय, तो सींग तोड़नेवाला गोवध प्रायश्चित्तके योग्य होगा। ६ मासके बाद मरनेसे पृथक् कोई प्रायश्चित्त नहीं करना होगा, केवल पूर्वोक्त पायक पान अथवा प्राजापत्यव्रत करनेसे ही काम चलेगा।

७ महिषादिके सींगका बना हुआ वाद्ययन्त्रविशेष, सिंगीबाजा। ८ पद्म, कमल। ९ कूर्चशीर्षक वृक्ष, जीवक नामक अष्टवर्गीय ओषधि। १० शुण्ठी, सोंठ। ११ आर्द्रक, अदरक। १२ अगरु, अगर। १३ कामोद्रेक, कामकी उत्तेजना। १४ स्तन, छाती। १५ एक प्राचीन ऋषिका नाम। मृगशृङ्ग देखो। १६ कोटि, धनुषका सिरा। १७ ऊर्ध्व, ऊपर। (त्रि०) १८ उत्कर्ष, बढ़िया। १९ तीक्ष्ण, तेज।

शृङ्गक (सं० पु०) शृंग इव कन्। १ जीवक वृक्ष। (जटाध०) शृंग स्वार्थे कन्। २ शृङ्ग देखो।

शृङ्गकन्द (सं० पु०) शृंगवत् कन्दो यस्य। शृंगाटक, सिंघाड़ा।

शृङ्गकूट (सं० पु०) एक पर्वतका नाम।

शृङ्गगिरि (सं० पु०) शृंगकूट नामक पर्वत।

शृङ्गग्राहिका (सं० स्त्री०) १ शृंगग्रहणकारी। २ सूक्ष्मसूत्रसे ग्रहणकारी, शीघ्र अधिगमनशील।

शृङ्गग्राहिका न्याय (सं० पु०) एक न्याय। इसका उपयोग उस समय होता है, जब किसी कठिन कामका एक अंश हो जाने पर शेष अंशका सम्पादन उसी प्रकार सहज हो जाता है। जिस प्रकार सांग मारनेवाला बैलका एक सींग पकड़ लेने पर दूसरा सींग भी पकड़ लेना सहज हो जाता है।

शृङ्गज (सं० क्ली०) शृंगाज्जायते इति जन ड। १ अगुरु, अगर। (पु०) २ शर, तीर। शृंगवत् शरो जायते (संक्षिप्तसा० कारक) (त्रि०) ३ शृंगजातमात्र।

शृङ्गजाह (सं० क्ली०) शृंगस्य मूल शृंग (तस्य पाकमूले पीलवादिकर्णादिभ्यः कुणब्जाहचौ। पा ५।२।२४) इति जाहच। शृंगका मूल भाग।

शृङ्गधर (सं० पु०) एक बौद्धयतिका नाम।

शृङ्गनाभ (सं० पु०) एक प्रकारका विष।

शृङ्गनामनी (सं० स्त्री०) कर्कटशृंगी, काकड़ासिंगी।

शृङ्गपुर (सं० क्ली०) पुरभेद, शृंगवेरपुर।

शृङ्गभेदिन (स० पु०) मुञ्जा नामक तृण।

शृङ्गमय (स० त्रि०) शृंग विकारे मयट्। १ शृङ्गविकार, शृंग द्वारा बना हुआ। २ शृंगस्वरूप।

शृङ्गमूल (स० क्ली०) शृंगवत् मूलं यस्य। शृंगाटक, सिंघाड़ा।

शृङ्गमोहिन (स० पु०) शृंगाय मन्मथोद्भेदाय मोहय तीति मुह णिच् णिनि। चम्पक चम्पा।

शृङ्गरुह (स० पु०) शृंगाटक, सिंघाड़ा।

शृङ्गरोहस (स० क्ली०) सुगन्धक तृण, रामकपूर।

शृङ्गला (स० क्ली०) शृंगवत् लातीति ला क टाप्। अजशृंगी, मेढ़ासिंगी।

शृङ्गवत् (स० त्रि०) शृंगाणि सन्ति अस्येति शृंग मतुप् मस्य व। कुरुवर्षीय सीमान्त पर्वत। यह पर्वत लम्बाइमें अस्सी सहस्र योजन और चौड़ाइमें दो सहस्र योजन है। (विष्णुपु० २।२ अ०)

श्रीमद्भागवतके मतसे यह पर्वत लम्बाइमें दश हजार योजन और चौड़ाइमें दो सहस्र योजन है।

शृङ्गरूप (स० पु०) एक प्राचीन ऋषिका नाम।

शृङ्गवेर (स० क्ली०) शृंगस्येव वेरं शरीरं यस्य। १ आर्द्रक अदरक आदी। २ शुण्ठी, सोंठ। ३ एक नागका नाम। (भारत आदिपर्व) ४ शृङ्गवेरपुर देखो।

शृङ्गवेरक (स० क्ली०) शृंगवेरमेव स्वार्थे कन्। १ आर्द्रक, अदरक आदी। २ शुण्ठा, सोंठ।

शृङ्गवेरपुर (स० क्ली०) गुहक चण्डालकी पुरी। रामायणके अनुसार यह नगर अति प्राचीन है। इसका वर्त्तमान नाम सिङ्गरोर है। यह गंगानदीके उत्तर किनारे प्रयागसे २२ मील उत्तर पश्चिममें अवस्थित है। यहां एक समय सौर सम्प्रदायका मन्दिर था।

शृङ्गवेराभमूलक (स० पु०) शृंगवेराभं मूलं यस्य कन्। परवा मुदा नामक तृण।

शृङ्गवेरिका (स० स्त्री०) गोजिह्वा शाक, गोभी।

शृङ्गसुख (स० क्ली०) शृंगवाद्य, सिंगा या सिंघा नामक बाजा।

शृङ्गाट (स० क्ली०) शृङ्गमुत्कर्षमटतीति अट अच्। १ चतुष्पथ, चौराहा चौमुहानी। (पु०) शृंगवत् कण्टकं अटतीति अट अच्। २ जलकण्टक, सिंघाड़ा। ३ स्वादुकण्टक कटाइ। ४ गोक्षुर, गोखरू। ५ कामाख्या-देशस्थ पर्वतविशेष। कालिकापुराणमें इस पर्वत का विषय इस प्रकार लिखा है—हिमालयसे दीप नामकी एक नदी निकली है। यह नदी दीपकी तरह अन्धकार को दूर करती है, इसीसे इसको सभी दीपवती कहते हैं। इस दीपवती नदीके पूर्व और शृंगाट पर्वत अवस्थित है। इस पर्वत पर महादेवका एक लिंग प्रतिष्ठित है। सिद्धस्रोता नामकी दक्षिण सागर गामिनी एक नदी इस पर्वतसे निकल कर इसके पादमूलमें ही बहती है। यदि कोई इस नदीमें स्नान कर शृंगाटक पर्वत पर चढ़ शिव लिंगकी पूजा करे, तो उसके सभी पाप दूर होते हैं तथा वह इस लोकमें विविध ऐश्वर्य भोग कर अन्तमें शिवलोक जाता है। (कालिकापु० ८२ अ०)

शृङ्गाटक (स० क्ली०) शृंगाटमेव स्वार्थे कन्। १ चतुष्पथ चौराहा, चौमुहानी। २ जलज लताका फलविशेष, सिंघाड़ा। (*Trapabis pinosa*) पर्याय—जलसूचि, सघाटिका, वारिकण्टक, शृंगाट, वारिकुब्जक, क्षीरशुक्ल जलकण्टक, शृंगरुह, शृंगकन्द, शृंगमूल त्रिपाणी। गुण—शोणितपित्तनाशक लघु वृष्यतम विशेषरूपमें त्रिदोष वात श्रम और शोषनाशक, रुचिप्रद, गुरु, विष्टम्भी, शीतल। (राजव०)

३ खाद्यद्रव्यविशेष। यह खाद्य मांससे बनाया जाता है। भावप्रकाशमें इसकी प्रस्तुत प्रणाली इस प्रकार लिखी है—शुद्ध मांसको खूब बारीक खण्ड करके जलमें सिद्ध करे। पीछे उस मांसमें लवण, लवङ्ग, हींग, मिर्च, अदरक, इलायची जीरा धनिया और नींबूका रस मिला कर गायके घीमें भुन ले। बादमें मैदेका शृंगाटक अर्थात् सिंघाड़ा बना कर उसमें मांस भर फिरसे भुन ले, अच्छी तरह भुन जाने पर उसे नीचे उतार ले। इसीको शृंगाटक या मांस शृंगाटक कहते हैं। गुण—रुचिकारक, शरीरका उपचयकारक गुरु वायु पित्तनाशक, शुक्रजनक, कफापहारक तथा वीर्यवर्द्धक।

४ मर्मस्थान। यह मस्तकमें उस स्थान पर माना जाता है, जहां नाक आंख और जीभसे सम्बन्ध रखने वाली चारों शिराएं मिलती हैं। कहते हैं कि यह मर्म स्थान चार अंगुलका होता है और इसके चारों ओरसे

चारो शिराएं निकलती हैं, इसीसे इसको श्रृंगाटक कहते हैं। यह मर्मविद्ध होनेसे उसी समय मृत्यु होती है।

५ श्वदंष्ट्रा। ६ गोक्षुर, गोखरू। (पु०) श्रृंगाट स्वार्थे कन्। ७ जलकण्टक।

श्रृङ्गाटी (सं० पु०) जीवन्ती।

शृङ्गादिचूर्ण (सं० क्ली०) हिक्काश्वासाधिकारोक्त चूर्णौपधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—कर्कटशृंगा, सोंठ, पीपर, मिर्च, आंवला, हर्रे, बहेडा, कटैया, वरंगी, कुट, जटामासी और पञ्चलवण प्रत्येकका चूर्ण समान भागमें ले कर एक साथ मिलावे। पीछे दो माशा भर शीतल जल के साथ सेवन करनेसे हिक्का, ऊर्द्ध्वश्वास और कास अति शीघ्र प्रशमित होता है। (भैषज्यरत्ना०)

शृङ्गान्तर (सं० क्ली०) श्रृङ्गस्य अन्तरं। दो शृङ्गका मध्य भाग। (रघु २।२१)

शृङ्गार (सं० क्ली०) शृङ्गं प्राधान्यं ऋच्छतीति ऋ अण्। १ लवंग, लौंग। २ सिन्दूर, सेंदुर। ३ चूर्ण, चूरन। (मेदिनी) ४ आर्द्रक, अदरक। (शब्दच०) ५ कृष्णागुरु, काला अगर। ६ सुवर्ण, सोना। (राजनि०) (पु०) शृंगं कामोद्रेकमृच्छतीति ऋगतौ (कर्मण्यण्। पा ३।२।१) यद्वा शृ हिंसायां भृंगारशृंगारौ (उण् ३।१३६) इति आरन् प्रत्ययेन साधुः। ७ रति, मैथुन। ८ गजभूषण। ९ नाटकोक्त आद्यरस। नाटकादिमें इसका निम्नोक्त लक्षण दिया गया है। रति क्रीडादिके लिये यदि पुरुष स्त्रीके साथ अथवा स्त्री पुरुषके साथ सम्भोग करनेकी कामना करती है, तो उससे आदि वा श्रृंगाररसका आविर्भाव होता है।

"पुंसः स्त्रिया स्त्रियाः पुंसि संयोगं प्रति या स्पृहा।
स शृंगार इति ख्यातो रतिक्रीड़ादिकारणम्॥"

(अमरटीकामें भरत)

विप्रलम्भ और सम्भोग भेदसे श्रृंगाररस दो प्रकारका है। इसका पूरा पूरा विवरण उन दोनों शब्दोंमें वर्णित किया गया है। यहां उनका संक्षिप्त वर्णन किया जाता है। विप्रलम्भ—जहां नायक वा नायिकाका अनुरागमें परिपूर्ण रहने पर अपने अपने अभिलषित लोगोंके साथ संयोग नहीं होता, वहां विप्रलम्भ श्रृंगार होता है। पूर्णराग, मान, प्रवास और करुणभेदसे यह चार भागोंमें विभक्त है। उनके मध्य नायक-नायिका दोनोंके अन्दर परस्परके रूपादि दर्शन वा गुणादि श्रवणके कारण दृढ़ अनुराग प्राप्त होने पर भी अन्यान्य किसी कारणसे व्याघात उपस्थित होता है, उस समय उनकी जो अवस्था उपस्थित होती है, उसे पूर्वराग कहते हैं। पूर्वराग भी नीली, कुसुम्भ और मञ्जिष्ठा भेदसे तीन भागोंमें विभक्त है। जिस स्थान पर दम्पतीके मध्य राम और सीताकी तरह परस्परके अनुरागमें किसी प्रकारका ह्रास वा वृद्धि नहीं देखी जाती, वहां नीली एवं जहां इसके विपरीत भाव देखा जाता है अर्थात् जहां दम्पतीके प्रणयमें ह्रास, वृद्धि वा उदयापगम परिदृष्ट होता है, वहां कुसुम्भ और जहां अनुरागमें कुछ भी न्यूनता न हो कर केवल उसकी उत्तरोत्तर वृद्धि ही देखी जाती है, वहां मञ्जिष्ठा राग समझना चाहिये। मान अर्थात् कोप, यह प्रणय और ईर्षा दोनोंसे पैदा होता है। नायक वा नायिकाके मध्य यदि कोई कुटिल स्वभावका हो और यदि उससे दोनोंमें अत्यन्त प्रेम रहने पर भी अपनी कुटिलताके कारण कोई कोप करे, तो उसे प्रणयगर्भ मान कहते हैं। यदि किसी दूसरी स्त्रीमें पतिकी आसक्तिका विषय देख कर वा सुन कर अथवा अनुमान कर (अर्थात् पतिके शरीरमें किसी प्रकारका सम्भोग) चिह्न अथवा स्वप्नमें परकीय विलास सुखके यथायथ वृत्तान्तका अनुकीर्त्तन वा पतिके द्वारा दूसरी रमणीके नामका गुणानुवर्णन सुन कर स्त्रीके मनमें जो अतिशय ईर्षा पैदा होती है, उसे ईर्षाभिमान कहते हैं। अपने अभीष्ट फलकी प्राप्तिके लिये, शापभ्रष्टावस्थामें अथवा किसी तरहकी उत्पीड़नाके भयसे नायक वा नायिकाकी विदेशयात्रा करने पर यदि उस समय उनके मध्य किसीके हृदयमें अनुरागका संचार हो कर उत्तरोत्तर बढ़ता ही रहे और उसके लिये शरीरकी मलिनता, दीर्घोच्छ्वास एवं मानसिक भावमें (अर्थात् मनही मनमें) स्पष्टतः क्रन्दन तथा भूशय्याशायिता इत्यादि लक्षण दिखाई पड़े और उस शायितावस्थामें स्त्रीकी यदि मुक्तिवेणी दृष्टिगोचर हो, तो समझना चाहिये, कि वहां प्रवासरूप विप्रलम्भ हुआ है।

नायक नायिकाके मध्य किसीकी मृत्यु हो जाने पर यदि देवताओंके वरदानसे उसी जन्ममें या दूसरे जन्ममें पुनः मिलनकी आकांक्षा सञ्चार हो, एवं उसके लिये वे अत्यन्त खिन्न हो कर यद्वृपरोनास्ति विलाप करते रहें तो यहां करुण विप्रलम्भ उपस्थित होता है। सम्भोग—जिस समय दो दर्शनीक दर्शन, स्पर्शन चुम्बन एवं परिरम्भणादिका सङ्घटन होता है, उस समय सम्भोग शृङ्गारकी उत्पत्ति होती है। यह शृङ्गार प्रायः पूर्वोक्त चारों रागोंके अनन्तरमें ही उपस्थित होता है। क्योंकि बिना विप्रलम्भके सम्भोग कभी सम्यक् परिपुष्ट नहीं हो सकता, वरं कषाय जलसे वस्त्रादि रंग लेने पर अनुरागकी और भी वृद्धि होती है।

"न विना विप्रलम्भेन सम्भोगः पुष्टिमश्नुते।
कषायिते हि वस्त्रादौ भूयान् रागो विवर्द्धते॥"

जलकेलि, वनविहार और मधुपान प्रभृति भी इस रसके अन्तर्गत हैं। मैथुन शब्द देखो।

सदा अनुरक्त, परिहासादि क्रीडानिपुण, कुपित प्रेमीके मानभञ्जनमें पटु एवं शुद्धान्त करण विशिष्ट विट, चेट, विदूषकादि प्रभृति शृङ्गाररसके सहायक हैं अर्थात् ये ही शृङ्गाररसकी समधिक पुष्टिसाधन करते हैं।

पूर्वरागकी परम अवस्था उत्तरोत्तर आकांक्षाकी वृद्धि, अपने प्रेमीको पानेके लिये नियत उपायका चिन्तन, सर्वत्र प्रणयी या प्रणयिनीका स्मरण, सदा परस्परका गुणकीर्त्तन, भयानक उद्वेग, प्रलाप अर्थात् सहसा चित्तकी अस्थिरताप्रयुक्त असम्बन्ध वाक्यप्रयोग उन्मत्तता एवं निरन्तर दीर्घश्वास पाण्डुता, दुबलता प्रभृति रोग तथा जड़ता अर्थात् शारीरिक एवं मानसिक चेष्टा हीनता, यहां तक कि अतिरिक्त मन्मथपीडासे मृत्यु तक हो जाती है किन्तु रसविच्छेद होता है ऐसा तो कोई कोई वर्णन नहीं करते। तब हां किसी किसी स्थानमें आसन्न मृत्यु दृष्टान्त वर्णन किया गया है। जैसे—कोई कामविह्वल कामिनी कह रही है, कि भ्रमरसमुदाय अपने भङ्कारसे दिग्दिगन्त परिपूर्ण करे, चन्दन वनजात अनिल मन्द मन्द प्रवाहित होवे, चूतनिकरस्थ कोकिल समूह आम्रमुकुलास्वादनसे उल्लासित हो कर पञ्चमस्वरमें गान करे एवं इससे मेरा यह पत्थर समान कठोर प्राण शीघ्र निकल जाय, वायुमें विलीन हो जाय।

मान—इससे कोई विशेष अनिष्टकारिणी अवस्था नहीं घटती। क्योंकि मान होनेसे पहले प्रिय वचनोंसे अपनी प्रणयिनीको सन्तुष्ट करना होता है, उसमें सफलता न मिलने पर उसकी सखीकी उपासना की जाती है। इसमें भी असफल होने पर भूषणादि दे कर मानिनीको तुष्ट करनेकी चेष्टा और इससे विफल होने पर अन्तमें पावों पर गिर कर प्रणयिनीके मानभञ्जनका उपाय किया जाता है। इन सब उपायोंसे भी सफलता न देख किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाने पर भी नाना प्रकारकी चेष्टाओंसे मानिनीके हृदयमें सहसा भय या हर्ष प्रभृति भाव पैदा कर मानभञ्जन किया जाता है।

प्रवास—चरम अवस्थामें शारीरिक मलिनता, विरह ज्वर अतिशय मन कष्ट द्वारा शारीरिक तेजनाश अर्थात् शरीरका पाण्डुवर्ण हो जाना, वस्तु साधारणके प्रति विगतस्पृहता और असन्तुष्टि हृदय शून्यताका अनुभव, अनालम्बन साहित्य अर्थात् संसारमें खड़े होनेका मानो कोई स्थान नहीं है, ऐसा अनुभव और तन्मयत्व अर्थात् बाह्य और आभ्यन्तरिक कार्य द्वारा अनिच्छा रहने पर भी अभीष्ट विषयका प्रकाश प्रभृति नव प्रकारके लक्षण दिखाई पड़ते हैं तथा अन्तमें मृत्यु भी हो सकती है। यथा—कोई रमणी अपने पतिको विदेश जानेके लिये तैयार देख पतिके विरहकी कल्पना कर अपने जीवनसे कह रही है—'हे जीवन! प्रियतमकी यात्राके साथ साथ जब तुम्हारे सभी साथी प्रस्थान कर रहे हैं, तब तुम उनका त्याग क्यों करते हो? यह तुम्हारा भारी अन्याय है। क्योंकि तुम्हारा एक साथी मेरा मन है, वह निश्चय प्रियवरके अनुवर्त्ती रहेगा, ऐसा कह कर वह मुझसे विदा हो चुका है और दूसरा साथी धैर्य है, वह किसी तरह धैर्य धारण कर मेरे पास नहीं रहा अर्थात् प्राणनाथको गमनोद्यत देख मैं किसी तरह धैर्य धारण नहीं कर सकती। तुम्हारा एक साथी अश्रु है, वह भी बहता आ रहा है और किसी तरह रुकना नहीं चाहता। तुम्हारी एक और सङ्गिनी मेरे हाथकी चूड़ी है, वह भी हृदयेश्वरके विछोहकी चिन्तामें मेरे शरीरके

कृशतापन्न हो जानेके कारण अपना स्थान छोड़ रही है, अतएव मैं अनुरोध करता हूं—तुम्हारा भी अपने साथियोंका त्याग न करके मेरा त्याग करना ही कर्त्तव्य है।

करुण—इस विप्रलम्भमें नायक-नायिकाकी अवस्थाकी विशेष कोई परिणति नहीं, कारण इसमें परस्परका मिलन प्रायः ही असम्भव होनेके अतिरिक्त वृद्धि नहीं होती; तब यदि सहसा दैववाणी प्रभृति द्वारा दूसरे जन्ममें मिलनकी क्षीण आशा पाई जाती है; तो वह बहुत दूरवर्त्ती होनेके कारण एक प्रकारसे उसमें भी निरम्न हो जाना पड़ता है।

शृंगारादि रसके वर्णनके सम्बन्धमें शास्त्रमें अनेक दोष और गुणकी आख्या की गई है। यहां उन दोषों और गुणोंके सम्बन्धमें कुछ उदाहरण दिये जाते हैं; यथा—

दोष शृंगार रसकी वर्णनामें 'शृंगार', 'रस', 'रति', 'केलि' प्रभृति शब्दोंके उल्लेख करनेसे दोषमें गिना जाता है। जैसे—"चन्द्रमंडलमालोक्य शृंगारे मग्नमन्तरम्" चन्द्रमंडलका निरीक्षण करके अन्तःकरण सुरतक्रियामें निमग्न हो जाता है; इस स्थानमें 'शृंगार' शब्दका व्यवहार करना शास्त्रीय दोषावह है। वर्णनामें विरोधी रस सूचित होनेसे दोष गिना जाता है। जैसे—"मानं मा कुरु तन्वंगि! ज्ञात्वा यौवनमस्थिरं" "अयि! कृशांगि! निश्चय जानो—यह यौवन कभी स्थिर नहीं रहता, अतएव मान सम्वरण करो और मान मत करो।" यहां शृंगार रसका उद्दीपनाख्यविभाव वर्णन करनेमें 'यौवन कभी स्थिर नहीं रह सकता', इस बातसे उसके विरुद्ध शान्त रसका विषय सूचित होनेके कारण विरोधिता दोष घटता है। असमयमें नायकनायिकाका मिलन वा विच्छेद वर्णन करनेसे दोष माना जाता है। जैसे—वेणीसंहारके द्वितीय अंकमें बहुतसे सैनिकोंके मरनेके समय भानुमतीके साथ दुर्योधनका जो शृंगार प्रसंग वर्णित है, उसमें समयोचित (अर्थात् उस समयके अनुसार करुण रसका) वर्णन न करके शृंगार रसका वर्णन करना अनुचित हुआ है। क्योंकि उस प्रकार स्वजन वियोगके समय हृदयमें करुणादिरसका प्रवेश न हो कर शृंगाररसका आविर्भाव होना नितान्त असंगत है। आलंकारिकगण कुमारसम्भवोक्त उमामहेशके सम्भोग शृंगार वर्णनको कवि द्वारा अपने मातापिताके सम्भोग वर्णनकी तरह अत्यन्त दोषावह समझते हैं।

गुण—किसी किसी स्थानमें भावसुलभ प्रयुक्त श्रुतिकटुदोषादि गुणमें परिणत होता है।

सुरत-प्रारम्भ-कालीय चेष्टादि वर्णनके स्थानमें अश्लीलता रहने पर भी यदि उन सभी वर्णनाओंको अकारान्तसे सचाईमें परिणत किया जाय, तो उस वर्णनमें किसी प्रकारका दोष न हो कर गुणका ही वर्णन होता है।

कालिदासकृत शृंगारतिलक, अमरु और भर्त्तृहरिकृत शृंगार शतक इस विषयके पाठोपयोगी ग्रन्थ हैं। इस अभिज्ञताका भी यथेष्ट परिचय है।

१० स्त्रियोंका वस्त्राभूषण आदिसे शरीरको सुशोभित और चित्ताकर्षक बनाना, सजावट। शृंगार १६ कहे गये हैं—अंगमें उबटन लगाना, नहाना, बाल संवारना, काजल लगाना, सेंदुरसे मांग भरना, महावर देना, भाल पर तिलक लगाना, चिबुक पर तिल बनाना, मेंहदी लगाना, अर्गजा आदि सुगंधित वस्तुओंका प्रयोग करना, आभूषण पहनना, फूलोंकी माला धारण करना, पान खाना, मिस्सी लगाना। ११ किसी चीजको दूसरे सुन्दर उपकरणोंसे सुसज्जित करना, सजावट। १२ भक्तिका एक भाव या प्रकार जिसमें भक्त अपने आपको पत्नीके रूपमें और अपने इष्टदेवको पतिके रूपमें मानते हैं।

शृङ्गार—१ एक कवि। २ श्रीकण्ठचरित (३।४५) धृत एक पण्डित। ये विश्वावर्त्तके पुत्र और मङ्खके भाई थे। ३ सह्याद्रि वर्णित एक राजा।

शृङ्गारक (सं० क्ली०) शृंगारमेव स्वार्थे कन्। १ सिन्दुर, सेंदुर। (शृङ्गवृन्दाभ्यामारकन् वक्तव्यः। पा ५।२।१२२) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या आरकन्। (त्रि०) २ शृंगविशिष्ट। (पु०) ३ शृंगार। ४ अगुरु, अगर। ५ लवंग, लौंग। ६ आर्द्रक, अदरक, आदी।

शृङ्गारगुप्त—वासवदत्ता-विवृतिके रचयिता।

शृङ्गारजन्मन् (सं० पु०) शृंगारे जन्म उत्पत्तिर्यस्य। कामदेव, मदन। (हेम)

शृङ्गारण (सं० क्ली०) किसी रूपवती स्त्रीको देख कर उस पर अपनी कामना प्रकट करनेकी क्रिया, प्रेम-प्रदर्शन, मुहब्बत जतलाना।

शृङ्गारना (हि० क्रि०) आभूषण आदिसे या और किसी प्रकार से सँवारना, शृंगार करना, सजाना।

शृङ्गारभूषण (स० क्ली०) शृंगारस्य भूषण। १ सिन्दुर, सेन्दूर। २ हरिताल, हरताल।

शृङ्गारमञ्जरी (स० स्त्री०) वासवदत्तावर्णित एक नायिका। (वासवदत्ता)

शृङ्गारमण्डप (स० क्ली०) १ रतिगृह, वह स्थान जहां प्रेमी और प्रेमिका मिल कर काम क्रीड़ा करते हैं। २ मथुराका वह स्थान जहां पर श्रीकृष्णने राधिकाका शृंगार किया था।

शृङ्गारयोनि (स० पु०) शृंगारे योनिमुत्पत्तिर्यस्य। कामदेव, मदन।

शृङ्गारवत् (स० त्रि०) शृंगार अस्त्यर्थे मतुप मस्य व। शृंगारविशिष्ट शृंगारयुक्त।

शृङ्गारवती (स० स्त्री०) शृंगारविशिष्टा।

शृङ्गारवेश (स० पु०) १ उज्ज्वलवेश, शृंगारके लिये सजावट, वह सुन्दर साज सज्जा जिससे नायक अपनेको मनोहर कर रतिकी इच्छासे नायिकाके पास जाता है। २ देवप्रतिमादिका सुन्दर वेशधारण, देवमूर्त्तियोंका सजाना। वृन्दावनतीर्थमें भगवान् श्रीकृष्णको खूब अच्छी तरह सजाया जाता है। भक्तगण भगवान्को अच्छी तरह सजा कर उस मनोहररूपके दर्शन करते हैं। कोई कोई इसे शृंगारोद्दीपक वेशसज्जा कह कर कल्पना करते हैं। प्रत्येक विष्णु या शिवमन्दिरमें मन्दिराधिष्ठातृ देवमूर्त्तिको दिनमें या सोनेके पहले रातको चन्दनकस्तूर्यादि गन्धानुलेपन और पुष्पमाल्यादि धारण द्वारा अपूर्व भूषासे भूषित किया जाता है। पीछे देवमूर्त्तिके अभिषेकके साथ यथारीति देव पूजा और आरतिक समाप्तिके बाद मन्दिरका द्वार बन्द कर दिया जाता है। भक्तोंका विश्वास है कि भगवान शृंगारवेशमें भगवतीके साथ रतिक्रियामें समय बिताते हैं। वृन्दावनके गोविन्दजी आदि विष्णुमन्दिरमें, काशीके विश्वनाथदेव वैद्यनाथ और तारकेश्वर, तथा पुरीधाममें मूर्त्तियोंको शृंगार सज्जा होती है।

शृङ्गारशेखर (सं० पु०) एक राजाका नाम।

शृङ्गारसिंह (स० पु०) काश्मीरका एक सामन्त।

शृङ्गारहार (हि० स्त्री०) वह बाजार जहां वेश्याएं रहती हों, चकला।

शृङ्गाराभ्र (स० क्ली०) कासरोगाधिकारोक्त औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—अभ्रक १६ तोला, कपूर, सुगन्धवाला, गजपिप्पली, तेजपत्र, लवङ्ग, जटामासी, तालिशपत्र, दारचीनी, नागेश्वर, कुट, धवफूल प्रत्येक आध तोला, हरें, आंवला, बहेड़ा और त्रिकटु प्रत्येक चार आना, इलायची और जायफल प्रत्येक १ तोला, गन्धक १ तोला, पारद आध तोला इन्हें अच्छी तरह चूर्ण कर जलमें मर्दन करे। पीछे सिद्ध चनेके बराबर गोली बनावे। अदरख और पान रसके साथ इसका सेवन करना होता है। औषध सेवनके बाद कुछ जलपान करना आवश्यक है। इसका सेवन करनेसे सभी प्रकारके कासरोग, राजयक्ष्मा, क्षय आदिका उपशम होता है तथा वाजीकरण और रसायन अधिकारोक्त औषधकी तरह फल पाया जाता है।

शृङ्गारिक (स० त्रि०) शृंगार-सम्बन्धी।

शृङ्गारिणी (स० स्त्री०) १ शृंगार करनेवाली स्त्री, शृंगारप्रिय। २ एक वृत्तिका नाम। इसके प्रत्येक पादमें चार रगण होते हैं। इसको स्रग्विणी कामिनीमोहन, लक्ष्मीधरा, और लक्ष्मीधर भी कहते हैं।

शृङ्गारित (स० त्रि०) जिसका शृंगार किया गया हो, सजा हुआ सँवारा हुआ।

शृङ्गारिन् (स० पु०) शृंगारोऽस्यास्तीति इनि। १ पूग, सुपारी। २ गज, हाथी। ३ माणिक्य, मुन्नी। (त्रि०) ४ शृंगारविशिष्ट।

शृङ्गारिया (हि० पु०) १ वह जो देवताओं आदिका शृङ्गार करता हो। २ वह जो तरह तरहके वेश बनाता हो बहुरूपिया।

शृङ्गाटक (स० स्त्री०) शृङ्गाटक, सिंघाड़ा।

शृङ्गालिका (स० स्त्री०) विदारी कन्द।

शृङ्गाह्वा (स० स्त्री०) शृङ्गाह्विका दली।

शृङ्गाह्व (स० पु०) १ जीवक नामक अष्टवर्गीय औषधि। २ शृंगाटक, सिंघाड़ा।

शृङ्गाह्वा (सं० स्त्री०) शृङ्गाह्व दली।

शृङ्गि (स० पु०) मत्स्यविशेष, सिंगी मछली।

शृङ्गिक (सं० पु०) स्थावरविषभेद, सिंगिया विष।
"यस्मिन् गोशृङ्गके बद्धे दुग्धं भवति लोहितम्।
स शृङ्गिक इति प्रोक्तं द्रव्यतत्त्वविशारदैः।"
यह विष गायके सींगमें बांध रखनेसे गायका दूध लाल होता है।

शृङ्गिका (सं० स्त्री०) १ कर्कटशृंगी, काकड़ासिंगी। २ मेषशिंगी मेढ़ासिंगी। ३ पिप्पली, पीपल। ४ अतिविषा, अतीस। ५ बहुत प्राचीन कालका एक प्रकारका बाजा जो मुंहसे फूंक कर बजाया जाता था, सिंगी।

शृङ्गिणी (सं० स्त्री०) शृङ्गिनी देखो।

शृङ्गिन् (सं० पु०) शृंग इनि। १ हस्ती, हाथी। २ वृक्ष, पेड़। ३ पर्वत, पहाड़। ४ एक ऋषि। ये शमीकके पुत्र थे। इन्हींके शापसे अभिमन्युके पुत्र परीक्षित्को तक्षकने डसा था। ५ प्लक्षवृक्ष, पाकड़। ६ वटवृक्ष, बरगद। ७ आम्रातकवृक्ष, अमड़ाका पेड़। ८ ऋषभक नामक अष्टवर्गीय औषधि। ९ महिष, भैंस। १० वृष, बैल। ११ जीवक। १२ विषभेद सिंगिया नामक विष। १३ कन्दविशेष। (सुश्रुत कल्प० ८ अ०) १४ सींगका बना हुआ एक प्रकारका बाजा जिसे फूंककर बजाते हैं। १५ महादेव, शिव। १६ एक प्राचीन देशका नाम। (त्रि०) १७ शृङ्गयुक्त।

शृङ्गिन (सं० पु०) शृंगेऽन्तः अस्येति शृंग (व्याल्लाव-मिधे ति। पा ५।२।११४) इति इनच्। मेष।

शृङ्गिनी (सं० स्त्री०) शृंगे ऽन्तः अस्या इति शृंग-इनि-ङीष्। १ गो, गाय। २ श्लेष्माधीलता। ३ मल्लिका, मोतिया। ४ ज्योतिष्मतीलता, मालकङ्गनी। ५ अतिविषा, अतीस। ६ नदीवट।

शृङ्गिपुत्र (सं० पु०) एक वैदिक आचार्य, ऋषिका नाम।

शृङ्गिरा (सं० पु०) सह्याद्रिवर्णित एक राजाका नाम।

शृङ्गी (सं० स्त्री०) शृंगि वा ङीष्। १ मत्स्यविशेष, सिंगी मछली। पर्याय—मद्गुरप्रिया, मद्गुरी, मद्गुरसी, अप्रिया, शृंगि। गुण—स्वादुरस, स्निग्ध, बृंहण, कफवर्द्धक, शोथ, पाण्डु, वायु और पित्तनाशक। २ अतिविषा, अतीस। ३ ऋषभक नामक औषधि। ४ कर्कटशृंगी, काकड़ाशिंगी। ५ प्लक्ष, पाकर। ६ वट, बड़। ७ विष, जहर। ८ अलङ्कार सुवर्ण, वह सोना जिससे गहने बनाये जाते हैं। ९ मञ्जिष्ठा, मजीठ। १० आमलकी, आंवला। ११ पूतिका, पोईका साग। १२ श्वेतातिविषा।

शृङ्गीक (सं० पु०) नकशृंगी मण्डन स्वर्ण नरेंद्र कनकं। अलङ्कार सुवर्ण, वह सोना जिससे गहने बनाये जाते हैं।

शृङ्गीगुडघृत—हिक्का और श्वासादि रोगमें व्यवहृत औषधविशेष।

शृङ्गीगिरी (सं० पु०) एक प्राचीन पर्वतका नाम। इस पर शृङ्गी ऋषि तप किया करते थे।

शृङ्गीश्वरतीर्थ (सं० क्ली०) एक तीर्थका नाम।

शृङ्गेरिपुर (सं० क्ली०) नगरभेद, शृङ्गगिरिपुर।

शृङ्गेरिमठ (सं० पु०) शङ्कराचार्य्य प्रतिष्ठित शृंगेरिका प्रसिद्ध मठ। शृङ्गेरी देखो।

शृङ्गेरी—दाक्षिणात्यके महिसुर राज्यके कादूर जिलान्तर्गत एक ग्राम। यहां शङ्करका मठ प्रतिष्ठित रहनेसे यह शङ्करमतावलम्बियोंके निकट एक पवित्र क्षेत्र समझा जाता है। यह अक्षा० १३° २४´ १०″ उ० तथा देशा० ७५° १७´ ५०″ पू०के मध्य तुंगा नदीके किनारे अवस्थित है।

स्थानीय प्रवाद है, कि यहां विभाण्डक ऋषि तपस्या करते थे तथा रामायणप्रसिद्ध ऋष्यशृंग ऋषिका इसी स्थानमें जन्म हुआ था। ७वीं सदीमें वेदान्तमतप्रवर्त्तक सुप्रसिद्ध भाष्यकार शङ्कराचार्यने यहां आ कर मठ खोला था। इसीसे इस स्थानकी इतनी प्रसिद्धि है। कहते हैं, कि शङ्कराचार्यने उसी समय काश्मीरसे सारदअम्मा या सरस्वतीमूर्त्ति ला कर यहां प्रतिष्ठा की थी।

शङ्करके बादसे शृंगेरि मठकी गुरुप्रणाली एक तौर पर चली आती है। वे सभी 'जगद्गुरु' कहलाते हैं। भारतीय स्मार्त्त ब्राह्मण और शैव धर्मावलम्बी जगद्गुरुका विशेष सम्मान और भक्ति करते हैं। शृंगेरिमठाचार्य जगद्गुरु नृसिंह आचार्य अद्वितीय पण्डित थे। वे कभी कभी भारतके नाना स्थानोंमें जा कर वहांके अधिवासियोंको धर्मोपदेश देते थे। वे भ्रमणकालमें कई जगह देशहितकर कार्योंमें प्रचुर अर्थ दान कर गये हैं।

तुङ्गा नदीके किनारे इस मठको पर्याप्त भूसम्पत्ति है। जो मागनी भूमि कहलाती है, यह भूसम्पत्ति बहुत पहले देवोत्तर रूपमें दी गई है। इसके सिवा महिसुर राज मी शृङ्गेरी मठके खर्च चलानेके लिये मासिक वृत्ति देते हैं। सालमें कई बार शृङ्गेरि पर उत्सव होता है। उस उत्सवमें हजारों लोग जुटते हैं। उत्सवके समय मठकी ओरसे ही लोगोंको भोजन मिलता है। इस समय कंगाल स्त्रियोंको कपड़े और पुरुषों का रुपये पैसे बांटे जाते हैं।

शृङ्गेश्वर (स० पु०) शिवलिङ्गभेद सम्भवतः शृङ्गीश्वर तीर्थका प्रसिद्ध लिङ्ग।

शृङ्गोत्पादन (सं० त्रि०) शृङ्गस्य उत्पादन यस्मात्। १ शृङ्गोत्पादनकारी जिससे शृङ्ग उत्पन्न हो। (क्ली) २ शृङ्गका उद्गम।

शृङ्गोत्पादिनी (सं० स्त्री०) यक्षिणीभेद।

शृङ्गोच्छ्राय (स० पु०) उच्चशृङ्ग।

शृङ्गोन्नति (सं० स्त्री०) ग्रहों और नक्षत्रों आदिकी एक प्रकार गति (Right ascension)।

शृङ्गोष्णीष (सं० पु०) सिंह, शेर।

शृङ्ग्य (सं० त्रि०) शृङ्ग इव (शाखादिभ्यो यः। पा ५।३।१०३) इति य। शृङ्ग सदृश।

शृणि (सं० स्त्री०) अङ्कुश आँकुस।

शृत (सं० पु०) श्रा पाके क्त (शृत पाके। पा ६।१।२७) इति शृभाव। १ पक्व क्षीरादिद्रव्य, औटा हुआ दूध या पानी। २ क्वाथ, काढ़ा। पर्याय—क्वाथ, कषाय और निर्यूह।

वैद्यक मतसे इसकी प्रस्तुत प्रणाली इस प्रकार है— एक पल परिमित द्रव्यको अच्छी तरह कूट कर उसे १६ गुणे जलमें मिट्टीके बरतनमें उबाले। पीछे आठवां भाग रहते उसे उतार ले। इसीको शृत या क्वाथ कहते हैं। एक पलसे एक पल पर्यन्त द्रव्यमें १६ गुणा जल डालना होगा। यदि उसका परिमाण आध सेर हो, तो उसमें ८ गुने जलसे शृतपाक करे। उससे ऊपर प्रस्थ आदि कर द्रव्यका मान जितना हो बढ़ता जायगा, जल चौगुना देना उचित है। धीमी आंचमें पाक करना होता है।

पानविधि—यह प्रबल अग्निविशिष्ट व्यक्तिके लिये १ पल अर्थात् ८ तोला, मध्यमाग्निविशिष्ट व्यक्तिके लिये ६ तोला और हीनाग्नि व्यक्तिके लिये ४ तोला कहा गया है।

दूसरे तन्त्रमें लिखा है, कि शृत द्रव्य एक पल ले कर उसे १६ गुने जलमें पाक करे। पीछे चतुर्थांश रहते उतार ले। यह पादशेष प्रबल अग्निविशिष्ट व्यक्ति को कुल मध्याग्निविशिष्टको आधा और हीनाग्निविशिष्टको आठवाँ भाग पिलावे। पादशेष क्वाथकी अपेक्षा अष्टांश शेष कषाय अधिक गुरु और गुणविशिष्ट होता है इस कारण प्रबलाग्नि व्यक्ति २ पल और हीनाग्नि विशिष्ट १ पल पान करे।

शृतमें यदि कोई द्रव्य डालना हो, तो उक्त नियमसे डालना होता है। चीनी डालनेसे वातजनित रोगमें चार भागका एक भाग, पित्तजनित रोगमें ८ भागका एक भाग और कफजनित रोगमें १६ भागका एक भाग देना होता है। मधु प्रक्षेपके सम्बन्धमें इसका विपरीत अर्थात् वातजनितरोगमें १६ भागका एक भाग, पित्तजनित रोगमें ८ भागका एक भाग कफजनित रोगमें ४ भागका एक भाग है।

जीरा गुग्गुल, यवक्षार, सैन्धव शिलाजीत, हीङ्ग और त्रिकटु इनके प्रक्षेपमें आध तोला दूध, घृत, गुड़, तेल अथवा अन्य किसी प्रकारके द्रव पदार्थ, कल्क चूर्ण आदिका प्रक्षेपमें २ तोला परिमाण डालना होता है।

अच्छी तरह कूटे हुए द्रव्यको भलीभांति धो कर पाक करनेसे जो विशुद्ध रस निकलता है, उसे शृत कहते हैं।

शृतकाम (सं० त्रि०) १ दूध औटनेमें इच्छुक। २ पाक करनेमें इच्छुक।

शृतङ्कर (सं० त्रि०) पाककारी रीन्धनेवाला।

शृतङ्करण (सं० त्रि०) सिद्धकारी रीन्धने या पाक करने वाला।

शृतत्त्व (सं० क्ली०) पाकका, रीन्धना।

शृतत्व (सं० क्ली०) पाकका भाव या धर्म शृतकार्य।

शृतपा (सं० स्त्री०) एक सोमादि हविः अपहरण करके पानकारी।

शृतपाक (सं० त्रि०) देवताओंका उपयुक्त पाकविशिष्ट।

शृतशीत (सं० क्ली०) पक्वशीतल जलादि, औंटाया हुआ पानी जो प्रायः ज्वरके रोगियोंको दिया जाता है। यह जीर्णज्वर और सन्निपातनाशक, धातुक्षय, रक्तविकार, वमि, रक्तमेह और विषविभ्रममें पथ्य माना जाता है। (भावप्र०) राजनिर्घण्टके मतसे यह जल पार्श्वशूल, प्रतिश्याय, वात, नवज्वर, हिक्का और आध्मानमें विशेष उपकारी होता है।

शृतातङ्क (सं० त्रि०) १ पाकभय। २ पाकरोग। ३ औंट कर दूध गाढ़ा करना।

(तैत्तिरीयस० ५।२।६।३)

शृतावदान (सं० क्ली०) वह काष्ठ या लकड़ी जो पुरोडाश या पिष्टक आदि प्रस्तुत करनेके लिये काटी गई हो।

शृतोष्ण (सं० त्रि०) १ पाकतप्त। २ पाक द्वारा उत्तम खाद्यादि।

शृधु (सं० पु०) शृध बाहुलकात् कु। १ बुद्धि। २ मलद्वार, गुदा।

शृधू (सं० पु०) शृध (भृनि शृध्वोः कूः। उण् १।६३) इति कू। १ मलद्वार, गुदा। (संक्षिप्तसा० उणादि) (त्रि०) २ कुत्सित बुरा, खराब।

शृध्या (सं० स्त्री०) उत्साहनीय कर्म। "यः शर्वते नानुददाति शृध्यां" (ऋक् २।१२।१०) 'शृधां उत्साहनीयं कर्म।' (सायण)

शृष्टि (सं० पु०) कंसके आठ भाइयोंमेंसे एक।

शेउडा—मध्यभारत एजेन्सीके अन्तर्गत एक नगर। यह मेवाड़से ३६ मील पूर्वमें अवस्थित है। हिन्दू-अधिवासियोंकी संख्या ही अधिक है।

शेउता—युक्तप्रदेशके अयोध्याविभागान्तर्गत सीतापुर जिलेकी विश्वान् तहसीलका एक नगर। यह सीतापुर नगरसे ३२ मील पूरब चौका और घघरा नदीके संगमस्थान पर अवस्थित है। कन्नौजराज जयचाद ने अनुगृहीत आल्हा नामक एक चन्देल राजपूतसरदार राजासे गनजार प्रदेश जागीरमें पाया। उन्हींके वंशधर ठाकुर उपाधिसे यहांके अधिकारी हैं। यहां आज भी आल्हा द्वारा प्रतिष्ठित किला और पुरानी मसजिद विद्यमान है। आल्हा ठाकुर एक विशिष्ट योद्धा थे। दूसरे कहना है, कि वे महोवाराज परमालदेवके एक प्रधान सेनानायक थे। आप बनाफरवंशीय कह कर प्रसिद्ध हैं।

शेउदिवदार—बम्बईप्रदेशके काठियावाड विभागके अन्तर्गत गोहेलवाड प्रान्तका एक सामन्तराज्य। यहांके अधिकारी बड़ौदाके महाराज और जुनागढके नवावको वार्षिक कर देते हैं।

शेउनी (शिवनी या शिवानी)—मध्यप्रदेशके जब्बलपुर विभागका एक जिला। यह अक्षा० २१°३६´ से २२°५७´ तथा देशा० ७९°१९´ से ८०°१७´ पू०के मध्य विस्तृत है। इसके उत्तरमें जब्बलपुर, पूर्वमें मण्डला और बालाघाट जिला, दक्षिणमें बालाघाट, नागपुर और भंडरा जिला तथा पश्चिममें नरसिंहपुर और छिन्दवाड़ा जिला है। भूपरिमाण ३२०६ वर्गमील। शिवनीनगरमें इसका विचार-सदर है।

सतपुरा पर्वतकी अधित्यकाभूमि ले कर यह जिला संगठित हुआ है। इसके उत्तरमें नर्मदा उपत्यका भूमि और दक्षिणमें नागपुरका विस्तीर्ण प्रान्तर है। जिलेके उत्तर और पश्चिम लक्षणादोन और शिउनी नामका विस्तृत अधित्यका भूमि तथा उनके मध्यभागकी उपत्यकाभूमि, पूर्वांशमें एकमात्र वेणगंगा नदीका पार्वत्य अववाहिका प्रदेश और उसके मध्यभागकी उच्च भूमि देखी जाती है। शेउनी और लक्षणादोन अधित्यका समुद्रकी तहसे १८००—२००० फुट ऊंची है।

वेणगंगा ही यहाकी प्रधान नदी है। यह नदी कुराइघाटके समीप नागपुरसे कुछ पूरब दक्षिणपूर्वाभिमुखी हो बालाघाट और शिउनीकी सीमारूपमें चली गई है। हीरी और सागर नामकी दो शाखा-नदी दक्षिणी किनारेसे तथा थेलो, विजना और थानवार बाया किनारेसे इसके कलेवरको पुष्ट करता रहती हैं। इनके सिवा तोमार और शेर नामकी नदियां उत्तराभिमुख हो नर्मदामें मिल गई हैं। जिलेके पश्चिम शिउनीके प्रथम पेंच नामक नदी बहती है। सोनाई डोंगरी नगरके पास नागपुर और जब्बलपुरके रास्तेको फोर नदीने अतिक्रम किया है। नदीके ऊपर एक सुन्दर पत्थरका

पुल है। इस जिलेके नाना स्थानोंमें लोहा पाया जाता है। किन्तु एकमात्र पिपाशाणीय ग्राम जुनामा नामक स्थानमें लोहेका कारखाना खोला गया है। छोटी छोटी नदियोंसे स्वर्णरेणु बह कर आते हैं। स्थानीय सोधिरिया और मुण्डिया नामकी जातियां बालू धो कर सोना इकट्ठा करती हैं। इस पर्वत प्रधान देशके दक्षिण crystalline rock पश्चिम metamorphic rock gneiss और micaceous schist और पूरबमें स्फटिक और trap नामक प्रस्तरस्तर पाया जाता है। उत्तरमें भी Laterite प्रस्तरका विस्तीर्ण स्तर है।

इस विस्तीर्ण अधित्यका देशके बाच बीचमें जो सब उपत्यकाभूमि दृष्टिगोचर होता है वे सभी उर्वरा नहीं हैं। जहां काली मिट्टी पाई जाती है वहां खेती बारीको सुविधा तो है, पर जहां मिट्टीमें चूना मिला हुआ है वहां किसी प्रकारकी उत्पन्न नहीं होती। जिले के दक्षिण उन्नत पार्वत्य देशमें जो खण्ड खण्ड बालुका मय उपत्यका है वहां अनाज बहुतायतसे उत्पन्न होता है। यहां पहले शाल और देवदारुका विस्तृत वन था। जलावन और कोयलेके लिये पुराने शालके पेड़ काट डाले गये हैं। जबसे अंगरेजोंने वनविभागके लिये आइन निकाला तबसे शालवृक्षका रक्षा होती है। वेणगंगा नदीके किनारे भी देवदारुका वन देखा जाता है। सोनापाणाके समीप विस्तृत वासका जंगल है।

इस स्थानका कोई प्राचीन इतिहास नहीं मिलता। पुराण वर्णित राजा विन्ध्यशक्ति विन्ध्याद्रि प्रदेशमें राज्य करते थे। अधिक सम्भव है, कि उनके वंशधरोंने मत पुराके अधित्यका देशमें भी शासन विस्तार किया था। ५वीं सदीमें राष्ट्रकूट, चालुक्य आदि कुछ विजेता राजवंशने यहां राज्य फैलाया। बरामदा गुहामन्दिरकी रानिचक गुहाका शिलालिपि और शिवनीमें प्राप्त कुछ ताम्रफलक से इसका प्रमाण मिलता है। किन्तु यहांका प्रकृत इतिहास गढ़मण्डलाधिपति राजा संग्राम शाहके राज्यकालसे माना जाता है।

राजा संग्राम शाहने १५२० ई०में अपने भुजबलसे ५२ सामन्त सरदारोंके अधिकृत प्रदेश दखल किए। उनमेंसे घनशोर, चौरी और डोङ्गरतालनामक प्रदेश वर्त्तमान जिलेका अधिकांश स्थान ले कर गठित था। प्रायः दो सदी पीछे उस वंशके राजा नरेन्द्र शाहने उक्त तीनों स्थान देवगढ़पति राजा बख्त बलन्दको पुरस्कारमें दे दिये, क्योंकि उन्होंने शाहजीको राजद्रोह दबानेमें मदद पहुंचाई थी। राजा बख्त बलन्दने नवप्राप्त शिवनी राज्यका सुशासन करनेके लिये अपने आत्मीय राना रामसिंहको उस प्रदेशका शासनकर्त्ता बनाया। राजा रामसिंहने ही यहांके छपरा नगरमें एक दुर्ग बनवा कर यहां राजधानी बसाई थी।

इसके कुछ समय बाद राजा बख्त बलन्द राज्य वृद्धि की वासनासे उद्यत हो सैन्यसंख्या बढ़ाने लगे। इस समय ताज खाँ नामक एक मुसलमान वीरके साथ उनकी मित्रता हुई। राजाकी सहायता पा कर ताज खाँने मण्डरा जिलेके अन्तर्गत सानगढ़को अधिकार कर लिया।

१७४३ ई०में नागपुरराज रघुजी भोंसलेने देवगढ़के राजाको परास्त कर उनकी राजशक्ति चूर कर दी, किन्तु ताज खाके पुत्र महम्मद खाँने नागपुरपतिको राजा स्वीकार नहीं किया; उन्होंने सानगढ़में रह कर लगातार तीन वर्ष तक महाराष्ट्र सेनाके विरुद्ध युद्ध किया था। नागपुरराजने उनके असाधारण वीरत्व पर मुग्ध हो उन्हें कहला भेजा कि यदि वे सानगढ़ी छोड़ दें, तो उसके बदले उन्हें शिवनी जिला अर्पण किया जाय। महम्मदने इसे कबूल कर लिया इस पर रघुजीने उन्हें दीवानकी उपाधि दे कर छपरा भेजा। तदनुसार वे छपरामें आ कर शिवनीका शासन करने लगे।

इस समय किसी विशेष कार्योपलक्षमें दीवान महम्मद खाँको नागपुर राजधानीमें जाना पड़ा। इस सुअवसरमें मण्डलाके रानाने छपराको आक्रमण कर अधिकार कर लिया। युद्धमें खाँ सब सेना मारी गई उन्हें दुर्गमें एक लम्बा चौड़ा गड्ढा खोद कर गाड़ दिया गया। पीछे उसके ऊपर एक चौकोन मीनार खड़ा किया गया आज भी भग्न दुर्गमें उस मीनारका निदर्शन दिखाई देता है।

जो हो, छपरेमें मुसलमानोंका पराजयका संवाद

यथा समय महम्मद खाँको मिला। उन्होंने फौरन नागपुरसे बहुसंख्यक सेना लेकर छपरेको दखल किया। इस युद्धमें सन्धिके अनुसार थानवार और गंगा नदी शिवनी और मण्डला राज्यकी सीमारूपमें निर्द्धारित हुई। १६६१ ई०में महम्मदकी मृत्युके बाद उसका लड़का माजिद खाँ तथा १७७३ ई०में माजिदका लड़का महम्मद अमीन खाँ पितृराज्यका अधिकारी हुआ। अमीन खाँ शिवनीमें प्रासाद बना कर वहां राजधानी उठा ले गया। प्रायः २० वर्ष राज्य करनेके बाद अमील खाँ इस लोकसे चल बसा। पीछे उसका बड़ा लड़का महम्मद जमान शाह मसनद पर बैठा। इस नवीन दीवानके राज्य-कार्यमें अक्षम होनेसे चारों ओर अशान्त फैल गई। उस समय छपरा नगरकी राजधानीरूपमें गिनती नहीं रहने पर भी वहांकी आबादी कम न थी। इसी समय पिण्डारी दस्युदल समृद्ध नगर लूटनेकी आशासे दलबलके साथ वहा आ धमका। उन लोगोंने नगरवासीका धन रत्न लूटते समय प्रायः चालीस हजार नगरवासियोंके प्राण लिये थे। उनके अत्याचारसे नगर श्रीभ्रष्ट और समृद्धिहीन हो गया। दीवानकी इस अकर्मण्यतासे १८०४ ई०में अंगरेजराजने नूतन सम्पत्ति हस्तगत करनेके अभिप्रायसे नागपुरपति महम्मद जमान शाहको पदच्युत किया। पीछे उन्होंने वह सम्पत्ति ३ लाख रुपयेके मुनाफे पर खड्ग भारती नामक एक गोसाईंके हाथ बंदोबस्त कर दी।

नागपुर-राजशक्तिके अवसानके बाद शिवनी अंगरेजोंके दखलमें आया। तभीसे यहां कोई युद्धविग्रह नहीं हुआ। यहांके उमरगढ़, भैंसागढ़, प्रतापगढ़ और कनाईगढ नामक स्थानमें कुछ ध्वस्त गिरिदुर्ग दिखाई देते हैं। इसके सिवा सोनवारा वनमें अष्टग्राम और उगलीके समीप हीरी नदीगर्भस्थ उच्च शैल खण्ड पर दो गोंड़ दुर्ग हैं। वनसोर नामक स्थानमें ४० भग्नमन्दिरका निदर्शन मौजूद है। उससे नगरकी प्राचीन समृद्धिका परिचय मिलता है। उन मन्दिरोंमेंसे कुछ दाक्षिणात्यके हेमाडपन्थी सम्प्रदायके खर्च और उद्योगसे बनाये थे।

इस जिलेमें १ शहर और १,८६ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या तीन लाखसे ऊपर है। सैकड़े पीछे ५५ हिन्दू, ४० एनिमिष्ट और ५ मुसलमान हैं। यहांकी प्रधान उपज गेहूं, कोदो और धान है।

शिक्षा विभागमें यह जिला ग्यारहवां पड़ता है। अभी यहां एक हाई स्कूल, दो मिडिल इंगलिश स्कूल और सात प्राइमरी स्कूल हैं। स्कूलके अलावा पांच अस्पताल हैं। शिउनी शहरमें म्युनिसपलिटी स्थापित है।

२ उक्त जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २१° ३६' से २२° २४' उ० तथा देशा० ७९° १६' से ८०° ६' पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण १६४८ वर्गमील और जनसंख्या दो लाखके करीब है। इसमें शिउनी नामक एक शहर और ६७७ ग्राम लगते हैं।

३ उक्त तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० २२° ५' उ० तथा देशा० ७९° ३३' पू० नागपुरसे जब्बलपुर जानेके रास्ते पर अवस्थित है। जनसंख्या ११ हजारसे ऊपर है। छपराके पठान गवर्नर महम्मद अमीन खाँने १७७४ ई०में इसे बसाया। वह अपना सदर यहाँ उठा लाया और एक दुर्ग बनवा गया। उस दुर्गमें आज उसीका वंशधर रहता है। १८६७ ई०में यहां म्युनिसपलिटी स्थापित हुई। शहरमें एक हाई स्कूल, बालिका स्कूल और एक म्युनिसिपल मिडिल इंगलिश स्कूल है।

सेउनी मालवा—१ मध्यप्रदेशके होसङ्गाबाद जिलान्तर्गत एक तहसील। यह अक्षा० २२° १३' से २२° ३६' उ० तथा देशा० ७७° १३' से ७७° ४४' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४६० वर्गमील और जनसंख्या ७० हजारके करीब है। इसमें १ शहर और करीब दो सौ ग्राम लगते हैं।

२ उक्त तहसीलका एक नगर। यह अक्षा० २२° २७' उ० तथा देशा० ७७° २६' पू० बम्बईसे ४४३ मील ग्रेट इण्डियन पेनुनसला रेलवे लाईन पर अवस्थित है, जनसंख्या ७ हजारसे ऊपर है। १८६७ ई०में यहां म्युनिस्पलिटी स्थापित हुई है जिससे नगर खूब साफ सुथरा है।

१७५० ई०में रघुजी भोंसले जब इस प्रदेश पर आक्रमण किया उसके बादसे नगरका प्रतिष्ठा हुई। उस समय

था। एक दुर्ग बनाया गया था। १८१८ ई०में अंगरेजी सेनाने होमहाबादसे आ कर दुर्ग पर कब्जा कर लिया। यह नगर नर्मदा उपत्यकाका एक वाणिज्यकेन्द्र है। भूपाल नरसिंहपुर और होसंगाबाद आदि स्थानोंसे रुईकी आमदनी होती है। यहांसे बम्बई शहरमें माल भेजनेके लिये एक पक्की सड़क चली गई है। ग्रेट इण्डियन पेनिनसुला रेलवेका यहां एक स्टेशन है। शहरमें एक मिडिल इंगलिश स्कूल और एक अस्पताल है।

शेउपुर—शिवपुर देखो।

शेग्राज—पञ्जाबके कांगड़ा जिलान्तर्गत एक पहाड़ी प्रदेश, यह गौंड और शतद्रु नामकी दो नदियोंके मध्यस्थलमें अवस्थित है। मध्य हिमालय पर्वतकी जलोरी नामक एक गिरिश्रेणी इस प्रदेशको दो भागोंमें विभक्त करता है। यहांका पहाड़ी प्रदेश बड़ा ही मनोरम है। पर्वतगात्रस्थ ग्राम स्वीजरलैण्डके 'Chalets जैसा है। स्थानीय रमणियां बहुस्वामि-व्यवहार परायण हैं।

शेउरानी (शिवरानी)—सरन्द सुलेमान नामक पर्वतका एक अंश। यह देराइस्माइल खाँसे दराफते खाँ तक विस्तृत है। उस पर्वत पर जिस मिश्र पठान जातिका वास है वह भी शेउरानी कहलाती है।

शेउरी नारायण—मध्यप्रदेशके बिलासपुर जिलान्तर्गत एक प्राचीन नगर। यहां एक सुप्राचीन नारायण मन्दिर विद्यमान है। उस मन्दिरगात्रमें ८४१ ई०में उत्कीर्ण एक शिलालिपि देखी जाती है। एक समय इस नगरमें रत्नपुर राजाओंकी राजधानी और प्रासाद थे। प्रति वर्षके माघ महीनेमें यहां देवताके उद्देशसे एक मेला लगता है।

शेख (अ० पु०) १ पैगम्बर मुहम्मदके वंशजोंकी उपाधि। २ मुसलमानोंके चार वर्गोंमें सबसे पहला वर्ग। ३ मुसलमान उपदेशक, इसलामधर्मका आचार्य। ४ पीर, बड़ा बूढ़ा।

शेखचिल्ली (हिं० पु०) १ एक कल्पित मूर्ख व्यक्ति जिसके सम्बन्धमें बहुत सी विलक्षण और हंसानेवाली कहानियां कही जाती हैं। २ बैठे बैठे बड़े बड़े मंसूबे बांधनेवाला, झूठ मूठ बड़ी बड़ी बातें हांकनेवाला, मूर्ख मनुष्य।

शेखपुरा—मुङ्गेर जिलेका एक शहर। यह अक्षा० २५° ८´ उ० तथा देशा० ८५° ५१´ पू०के मध्य विस्तृत है। जनसंख्या १० हजारसे ऊपर है। यह साउथ विहार रेलवे लाइन पर तथा वाणिज्य प्रधान शहर है। यहां हुक्केका नारा तैयार होता है।

शेखबुद्दीन—पश्चिम भारतके देरा इस्माइल खां और बन्नू जिलेकी सीमा पर स्थित एक शैलवास। यहां मुसलमानसाधु शेख बहाउद्दीनका मकबरा है। यह अक्षा० ३२° १८´ उ० तथा देशा० ७०° ४९´ पू०के मध्य विस्तृत है। शेख बहाउद्दीनसे इस स्थानका शेखबुद्दीन नाम पड़ा है।

शेखर (सं० पु०) शिखि गतौ बाहुलकात् अर प्रत्ययेन साधु। १ शिखरस्थित माल्य शिर पर धारण की जाने वाली माला। २ शिरोभूषण, मुकुट, किरीट। ३ संगीतमें ध्रुव या स्थायी पदका एक भेद। ४ शृङ्ग, सिरा, चोटी। ५ शोण, शिर, माथा। ६ श्रेष्ठतावाचक शब्द, सबसे श्रेष्ठ या उत्तम व्यक्ति या वस्तु। ६ रगणके पांचवें भेदकी संज्ञा। यथा,—व्रजनाथ। (क्ली०) ८ लवङ्ग, लौंग। ९ शिग्रुमूल सहिजनकी जड़।

शेखरज्योतिस् (सं० पु०) राजभेद।

शेखरभट्ट—स्तोभभाष्यके प्रणेता।

शेखराचार्य ज्योतिरीश्वर (सं० पु०) धूर्तसमागमके प्रणेता। इनको कविशेखर और आचार्य उपाधि थी।

शेखरापीडयोजन (सं० पु०) चौंसठ कलाओंमेंसे एक कलाका नाम, शिर पर या केशोंमें फूलोंसे अनेक प्रकार की रचना करना।

शेखरित (सं० त्रि०) मुकुटयुक्त।

शेखरी (सं० स्त्री०) १ वन्दा, बांदा। २ लवङ्ग, लौंग। ३ शिग्रुमूल, सहिजनकी जड़।

शेख सद्दो (हिं० पु०) मुसलमान स्त्रियोंके उपास्य एक पीर जो कभी कभी भूतकी तरह उनके शिर पर आते हैं।

शेखावत (अ० स्त्री०) क्षत्रियोंकी एक जाति, कछवाह राजपूतोंकी एक शाखा। कहते हैं, कि किसी मुसलमान शेख या फकीरकी दुआसे इस वंशके प्रवर्त्तक उत्पन्न हुए थे जिनका नाम इसी कारण शेखाजी पड़ा।

जयपुर राज्यके अन्तर्गत शेखावाटी नामक स्थानमें इस शाखाके राजपूत बसते हैं।

शेखावती—राजपूतानेके जयपुर राज्यका एक जिला या सबसे बड़ी निजामत। यह अक्षा० २७° २०´ से २८° ३४´ उ० तथा देशा० ७४° ४१´ से ७६° ६´ पू०के मध्य विस्तृत है। इसके उत्तर-पश्चिममें बीकानेर, दक्षिण-पश्चिममें जोधपुर, दक्षिण-पूर्वमें जयपुर और उत्तर-पूरबमें पतियाला और लोहारु है। भूपरिमाण ४२०० वर्ग मील है। इसमें १२ शहर और ६५३ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या ५ लाखके करीब होगी। सीकर, फतहपुर, नवलगढ़, झुनझुन, रामगढ़, लक्ष्मणगढ़ और उदयपुर ये सब प्रसिद्ध शहर हैं।

यहांका प्राकृतिक सौन्दर्य उतना अच्छा नहीं है। पश्चिमका अधिकांश स्थान बीकानेर राज्यकी तरह बालुकामय मरुसदृश है। उर्वर शस्यक्षेत्र मण्डित पूर्वांशका कुछ स्थान जयपुर राज्यके समान श्यामल भूषासे भूषित है। यहाँ एक छोटी नदी बहती है जो जयपुर राज्यके उत्तरांशसे निकल कर शेखावतीके मध्यस्थ बालुकामय प्रान्तरमें विलीन हो गया है। यहांके कच्छोर-रस नामक स्थानीय लवणहृदसे प्रति वर्ष १ लाख ७५ हजार मन नमक तैयार होता है। विशेष यत्नपूर्वक यदि कार्य किया जाय, तो यहाँसे और भी काफी परिमाणमें नमक तैयार हो सकता है। इसके सिवा यहाँ क्षेत्रि नामक स्थानके पास एक बड़ी तांबेकी खान है। भारतमें और कहीं ऐसी खान देखनेमें नहीं आती। इसके सिवा ताम्रमिश्रित अग्निप्रस्तर (Copper pyrites and tetrahedrite), कबंनेटस, हीराकसीस, मैनसिल आदि भी पाये जाते हैं।

जयपुरराजके कुछ वंशधर राजपूत सरदारोंने शेखावतीका शासनभार ग्रहण किया। वे लोग आपसमें सौहार्द सूत्रसे आबद्ध तथा विपद्के समय जयपुरपतिको मदद देनेमें प्रतिज्ञाबद्ध हैं। शेखावत्गण कच्छवाहवंशीय हैं तथा सभी अम्बरेश्वरको ही अपना अधिपति मानते हैं। १३३६ ई०में जयपुर महाराजके छोटे लड़के बालाजीके एकलौते शेखाजीसे उनके वंशधरोंका शेखावत् नाम पड़ा है। शेखाजीने महाराजसे यह प्रदेश जीविकानिर्वाहकी वृत्तिस्वरूप पाया। शेखाजीके पिताने पुत्रकी कामनासे शायरोलके मुसलमान साधु शख बुर्हानको पूजा की। पीछे उस साधुके नामानुसार जात सन्तानका नाम शेखाजी रखा गया। उस घटनाका स्मरण कर आज भी सद्योजात शेखावत् बालकोंके हाथ शेखके सम्मानार्थ 'बधिया' (सूत) बांध दिया जाता है। दो वर्ष तक वह धागा बंधा रहता है तथा उस समय नील रंगका कुर्त्ता और टोपी पहनाई जाती है। उक्त पीरके प्रति भक्ति दिखलानेके लिये शेखावत लोग आज भी शूकरका शिकार नहीं करते।

शेखाजीने अपने भुजबलसे विपुल अर्थ और राज्य अर्जन किया। कई पीढ़ी तक उनके वंशधरोंकी शक्ति ऐसी बढ़ी कि उन्होंने जयपुर राजकी अधीनता पाश तोड़ कर एक स्वतन्त्र स्वाधीन राजपूत राज्यकी प्रतिष्ठा कर ली थी। शेखाजीके प्रपौत्र रायशीलसे दक्षिण शेखावत् या "रायशीलोत" राजपूत शाखाका तथा रायशील-के कनिष्ठ पुत्र उत्तर शेखावत् या साधनी नामक राजपूत सरदारवंशका उद्भव हुआ। साधनी राजवंश उक्त देशके उदयपुर नगरमें तथा रायशीलोतके वंश खान्देला राजधानीमें राज्य करने लगे। इसके सिवा उक्त वंशसे और भी कई छोटे छोटे सरदारवंशकी प्रतिष्ठा हुई। वे सब सरदार आपसमें लड़ कर मर कट रहे थे। किन्तु सभी समय शेखावत्गण रायशीलोतोंको अपने दलका अधिनायक बनाते थे। दिल्लीश्वरने रायशीलको खान्देल और उदयपुरवासी दुर्द्धर्ष शेखावतोंका अधिनायक नियुक्त कर दिया। आइन अकबरीमें लिखा है, कि सम्राट् अकबरने उन्हें १२५० सेनाका मनसबदार बनाया था।

१७५४ ई०में डि बोइनकी परिचालित मराठासेनाने मेर्त्तायुद्धमें शेखावतोंको परास्त किया तथा उनके उपद्रवसे खान्देला राजधानी और अन्यान्य नगर तहस नहस हो गये। क्षतिपूरणस्वरूप शेखावत्गण काफी रकम देकर खान्देल राजधानीकी रक्षा करनेमें समर्थ हुए। इसके बाद अदृष्टान्वेषी यूरोपीय वीरपुङ्गव जार्ज टामस एक बार जयपुर राज्य पर आक्रमण करनेके लिये अग्रसर हुए। इस समय खान्देलपतिने जयपुरराजके विरुद्ध जार्ज टामसको सहायता पहुंचाई थी। जो हो, आखिर

स्वाईलपति जयपुरराजको ही अपना नायक माननेके लिये बाध्य हुए।

शेखी (फा० स्त्री०) १ गर्व अहङ्कार, घमण्ड। २ शान ऐंठ, अकड़। ३ अभिमान भरी बात डींग।

शेखीबाज (फा० वि०) १ अभिमानी, घमण्डी। २ डींग मारनेवाला व्यक्ति।

शेखूपुरा—पञ्जाबके गुजरानवाला जिलेका एक सामन्त राज्य। इसमें १८० ग्राम लगते हैं, राजस्व १२०००) रु० है। १८४५ ई०में सिखसैन्यके अधिनायक और पेशावरके गवर्नर राजा तेजसिंहने इस राज्यकी प्रतिष्ठा की। तेजसिंहके पौत्र राजा नारिसिंहका १८०६ ई०में आकस्मिक मृत्यु हो गई। राज्य पर अभी इतना ऋण है, कि कोर्ट आव वार्ड्स इसकी देख रेख करता है।

शेखूपुरा—पञ्जाबके गुजरानवाला जिलान्तर्गत खागा दोगरान तहसीलका एक प्राचीन शहर। यह अक्षा० ३१ ४३ उ० तथा देशा० ७४ १ पू० हफीजाबाद और लाहौरके बीचमें अवस्थित है। जनसंख्या दो हजारसे ऊपर है। सम्राट् जहांगीरका बनाया एक प्राचीन ध्वस्त दुर्ग आज भी यहां विद्यमान है। जहांगीरके पौत्र कुमार दारा शिकोहके नामानुसार इस नगरका शेखापुरा या शेखूपुरा नाम पड़ा है। दारा शिकोहकी काटी हुई नहर, रणजित्‌सिंहका रानीभवन और अदूरवर्त्ती बारदुआरी देखने लायक है।

अङ्गरेजोंके अधिकारमें आनेके बाद कुछ समय यहां जिलेका विचार सदर प्रतिष्ठित रहा। पीछे वह गुजरानवाला उठ कर चला गया।

शेणवण्टा (स० स्त्री०) उदुम्बरपर्णी दन्ती।

शेणवी (स० स्त्री०) ज्ञान, बुद्धि। सफरी दन्ती।

शेप (स० पु०) शी बाहुलकात् प। १ शेफ, लिङ्ग, पुरुष की इन्द्रिय। २ मुष्क, अण्डकोष। ३ पुच्छ, पूंछ।

शेपस् (स० क्ली०) शेफस् देखो।

शेपहर्षिण (स० त्रि०) लिङ्गोच्छ्वास, शिश्नोत्थान।

शेपाल (स० पु०) शी शालन् बाहुलकात् पकारस्य पकार। (उण् ४।३८) शैवाल, सेवार।

शेफ (स० पु० क्ली०) शिश्न लिंग।

शेफस् (स० क्ली०) शेते रेते पातानन्तरमिति शी (वृह शीङ्भ्यां स्वरूपाङ्गयो पुक् च। उण् ४।२००) इति असुन, अत्र चकारात् फ चेति पठन्ति इत्यतः फः। शिश्न लिंग। (अमर) भरतने इस शब्दकी व्युत्पत्तिमें लिखा है—'शुक्र पाते सति शेते पतति इति शेफ शाङ् धातो नाम्नोति फस् प्रत्ययः। शेफसशेपसौ शेफशेपौ शेपश्चेति पञ्च रूपाणि भवन्ति इति आचार्या (भरत)

शेफस, शेपस् शेफ शेप और शेप ये पांच रूप होते हैं।

शेफालि (स० स्त्री०) शेरते इति शेफाः शयनशालिनस्ता इव अलयो भृंगा यत्र। शेफालिका, निर्गुण्डी।

शेफालिका (स० स्त्री०) शेफालि स्वार्थे कन। १ स्वनाम ख्यात पुष्पवृक्षविशेष, निर्गुण्डी। इसे महाराष्ट्रमें पाढरी निगुण्डी, तामिलमें नलजव कर्णाटमें लिङ्गिलोंके वभर्ईमें हरसिंगार और पञ्जाबमें लहरी कहते हैं। संस्कृत पर्याय—सुवहा निर्गुण्डी, नालिका, शेफाली, मलिका, रजनीहासा, निर्गुण्डिका। शुक्ल होने पर इसका पर्याय—शुक्लाङ्गी, श्वेतमञ्जरी विजया, वातारि और भूतकेशी। गुण—कटु तिक्त रुक्ष, वात, कफ और अङ्गसन्धिशोथ तथा गुदवातादि दोषनाशक। (राजनि०)

चक्रदत्तमें लिखा है, कि मधुके साथ इसका पत्ररस सेवन करनेसे मल निकलता है और सभी प्रकारके ज्वर नष्ट होते हैं।

तन्त्रशास्त्रमें इसमें फूल निकलता है। शरद् भिन्न अन्य कालमें इसके फूलसे देवपूजा निषिद्ध है।

इसकी गन्ध कड़ी और मीठी होता है। इसकी प्रत्येक सींकमें अरहरकी पत्तियोंके समान पांच पांच पत्तियां होती हैं जिनका ऊपरी भाग काला और नीचेका भाग सफेद होता है। इसकी अनेक जातियां हैं। किसीमें काले और किसीमें सफेद फूल उगते हैं। फूल आमके मौरके समान मंजरीके रूपमें लगते हैं और केसरिया रंगके होते हैं। शेफालिकी माला प्रणयिजनप्रिय है।

२ कृष्णनिर्गुण्डी काला निसोथ।

शेफाली (स० स्त्री०) शेफालि कृदिकारादिति वा ङीष्। १ शेफालिका निर्गुण्डी। (शब्दरत्ना०) २ नील सिन्धुवार। (भावप्र०)

शेमुषी (स० स्त्री०) शेते इति शेः मोहः तं मुष्णाति

मुष्णातीति मुष् स्तेये मूलविभुजादित्वात् कः गौरादित्वात् ङीष्। बुद्धि, अक्ल।

शेय (सं० त्रि०) शेतव्य, शयनार्ह, सोनेके योग्य।

शेयर (अं० पु०) १ हिस्सा, भाग, साँझा। २ किसी कारबारमें लगी हुई पूंजीका अलग हिस्सा जो उसमें शामिल होनेवाला हर एक आदमी लगावे।

शेर (फा० पु०) १ बिल्लीकी जातिका सबसे भयंकर प्रसिद्ध हिंसक पशु, बाघ, नाहर। बाघ देखो। २ अत्यन्त वीर और साहसी पुरुष, बड़ा बहादुर आदमी।

शेर (अ० पु०) फारसी, उर्दू आदिकी कविताके दो चरण।

शेर—मध्य प्रदेशके शिवनी जिलेमें प्रवाहित एक नदी। यह समारिया ग्रामके पाससे निकल कर उत्तर पूर्व गतिसे बहती हुई प्रायः ८० मील रास्ता तै करके बादमें नरसिंह-पुर जिलेकी नर्मदा नदीमें (अक्षा० २३° ३० और देशा० ७९° १०´ पू०) मिली है।

सिवनी जिलेमें इस नदीके ऊपर सोणाई डोङ्गरी नगरमें एक पत्थरका बना सुन्दर पुल है। इसके सिवा नरसिंहपुर नगरसे ८ मील पूरब इस नदी पर इण्डियन-पेनिनसुला रेलवेका एक लोहेका पुल भी है। माचा रेवा और बमरेवा इसके कलेवरको पुष्ट करती हैं। नदी गर्भमें जहां तहां कोयलेका खाद देखा जाता है, पर वाणिज्यपण्यके हिसाबसे उसका आदर नहीं है।

शेर अफगान खाँ—बङ्गालका एक मुसलमान शासनकर्त्ता। यह नूरजहां बेगमका पहला स्वामी था। तुर्क जातीय किसी भद्र वंशमें इसका जन्म हुआ था। इसने मुगल सम्राट् अकबर शाहका ओरसे लड़ कर उन्हें बड़ा प्रसन्न किया और उन्हींकी कृपासे इसको वर्द्धमान प्रदेशकी जागीर मिली। १६०७ ई०में जहांगीरके उभाड़नेसे बंगालके मुगल शासनकर्त्ता कुतुबुद्दीनने उसका काम तमाम किया। इसका पहला नाम अष्ट फिल्ली वा अली कुलीबेग था। अपने हाथसे एक सिंह (किसीके मतसे व्याघ्र) मार कर इसने सम्राट्से शेर अफगानकी उपाधि पाई थी।

शेर अली—बम्बई प्रदेशके उत्तर आर्काट जिलेका एक बन्दर। यह वेङ्कटपुर नदीके मुहाने पर अवस्थित है। पहले यहां नमक तैयार हो कर जलपथसे भिन्न भिन्न स्थानमें भेजा जाता था। अभी यह वाणिज्य बंद हो गया है।

शेरकोट—युक्तप्रदेशके बिजनौर जिलान्तर्गत धामपुर तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० २९° २०´ उ० तथा देशा० ७८° ३६´ पू० बिजापुर शहरसे २८ मील पूरबमें अवस्थित है। जनसंख्या १४ हजारसे ऊपर है। शेरशाहके समय यह नगर बसाया गया। १८०५ ई०में अमीर खाँ पिण्डारीने इस नगरको तहस नहस कर डाला। १८५७ के गदरमें यहां राजभक्त हिन्दू और बागी मुसलमानोंके बीच घमसान लड़ाई छिड़ी थी। पहले यह शहर धर्मपुर तहसीलका सदर समझा जाता था। शेरकोट सम्पत्तिके अधिकारी एक राजपूत सरदारवंशका प्रासाद आज भी यहां मौजूद है। चीनी और फूलदार कार्पेट-के कारबारके लिये यह स्थान प्रसिद्ध है।

शेरखाँ—एक मुसलमान कवि, आमजाद खाँ लोदीका लड़का। इसने मिरात उल-खयाल नामक एक तजकिराकी रचना की। यह ग्रन्थ आलमगीर बादशाहके अमलमें रचा गया था। ग्रन्थमें उस समयके मुसलमान-कवि, विज्ञानविद्, सङ्गीताचार्य, ज्योतिर्विद्, आयुर्वेदविद् और भूतत्त्वविदोंकी जीवनी और कार्यावली लिपिबद्ध है।

शेरखाँ—एक अफगान वीर। इसने बङ्गालमें सैन्यसंग्रह करके मुगल सम्राट् हुमायूंको भारतसे निकाल दिया था और आप शेरशाह नाम धारण कर दिल्लीके सिंहासन पर बैठा। शेरशाह देखो।

शेरगढ़—बिहार और उड़ीसाके ससराम उपविभागके अन्तर्गत शाहाबाद जिलेका एक बड़ा गाँव। यह अभी श्रीभ्रष्ट और ध्वस्तावस्थामें पड़ा है और ससरामसे २० मील दक्षिण-पश्चिम अक्षा० २४° ४६´ ४२´´ उ० तथा देशा० ८३° ४६´ १५´´ पू०के मध्य विस्तृत है। रोहितस दुर्गसे सुरक्षित करते समय दिल्लीश्वर शेरशाहने रोहितसका परित्याग कर यहीं पर दुर्ग बनवाया था। पीछे उसीके नामानुसार इसका शेरगढ़ नाम पड़ा।

शेरगढ़—युक्तप्रदेशके मथुरा जिलान्तर्गत छाता तहसील-का एक नगर। यह अक्षा० २७° ४६´ ४०´´ उ० तथा देशा० ७७° ३६´ ५०´´ पू०, यमुना नदीके दाहिने किनारे छाता नगरसे ८ मील उत्तर पूर्वमें अवस्थित है। दिल्लीके

सम्राट शेरशाहने यहां एक बहुत बड़ा किला बनवाया था। उसी किलेके नामानुसार यह स्थान शेरगढ़ नाम से प्रसिद्ध हुआ। किन्तु अभी टूटी फूटी अवस्थामें पड़ा है।

पहले शेरगढ़ एक पठान जमीदारकी सम्पत्ति था। अभी इस व शका कोई वशधर इसके केवल सामान्य अशका उपभोग करता है। अवशिष्ट सम्पत्ति मथुराके विख्यात महाजन धनी सेठ गोविन्द दासने खरीद कर द्वारकादास मन्दिरके खर्च वर्चके लिये अर्पण कर दी है।

शेरगुलाबी (फा० पु०) गहरा गुलाबी रंग।

शेरघाटी—गया जिलेका एक नगर। यह अक्षा० २४ ३३ उ० तथा देशा० ८४ ४८ पू० गया शहरसे २१ मील दक्षिणमें अवस्थित है। जनसंख्या तीन हजारके करीब है। नगर म्युनिसपलिटीके अधीन रहनेसे खूब साफ सुथरा है। पहले यह नगर वाणिज्य व्यवसायके कारण बहुत समृद्धिशाली था। ईष्ट इण्डिया रेलवेके खुल जानेसे उसका बहुत कुछ ह्रास हो गया है। आज भी यहां पीतल, तांबे और लोहेकी वस्तु बनानेके लिये कारीगर और कारबार है।

शेरदहा (फा० पु०) १ जिसका मुंह शेरका सा हो। २ जिसके छोरों पर शेरका मुंह बना हो। (पु०) ३ वह जिसका मुंहड़ी शेरके मुंहके आकारकी बनी हो। ४ पुराने ढंगकी एक प्रकारकी बन्दूक। ५ वह मकान जो आगे की ओर चौड़ा और पीछेकी ओर पतला या संकरा हो।

शेरपंजा (हिं० पु०) शेरके पंजेके आकारका एक अस्त्र बघनहा।

शेरपुर—युक्तप्रदेशके गाजीपुर जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २५ ३४ उ० तथा देशा० ८३ ५० पू०के मध्य विस्तृत है। यह नगर गंगाके किनारे और नदीगर्भमें चरके ऊपर बसा है। गाजीपुरसे १० मील पूरब होनेसे उक्त नगरके साथ इसका यथेष्ट वाणिज्य सम्बन्ध है।

शेरपुर—बंगालके बगुड़ा जिलेका एक नगर। यह अक्षा० २४ ४० उ० तथा देशा० ८९ २ पू०के मध्य विस्तृत है। जनसंख्या ४ हजारसे ऊपर है। यह नगर मुसलमानी अमलमें बहुत प्रसिद्ध था। यहां हिन्दूकी संख्या ज्यादा होने पर भी इसके चारों ओर जो मुसलमानोंकी कीर्त्तियां हैं उनसे जाना जाता है, कि एक समय यहां बहुतसे मुसलमान रहते थे। आईन इ अकबरी पढ़नेसे मालूम होता है, कि यह स्थान १५९५ ई०में सलीमनगर नामसे प्रसिद्ध था। सम्राट् अकबर शाह्ने यहां एक दुर्ग बनवाया। उनके पुत्र सलीम शाहके नामानुसार दुर्ग और नगरका नाम रखा गया। मुसलमान ऐतिहासिकोंने इस स्थानका 'शेरपुर मुरचा' नामसे उल्लेख किया है। यह स्थान उस समय मुगलराज्यका सामान्त दुर्ग समझा जाता था। मुगल सेनापति राजा मानसिंह यहां एक प्रासाद बना गये हैं। कहते हैं, कि वे उस प्रासादमें रह कर यशोहरके राजा प्रतापादित्यके विरुद्ध सैन्यसंचालना करते थे। ढाकामें मुसलमान शासनाधिकार प्रतिष्ठित होनेसे शेरपुरको प्रधानता लोप हो गई।

शेरपुर—बङ्गालके मैमनसिंह जिलान्तर्गत जमालपुर उपविभागका एक नगर। यह अक्षा० २५ १ उ० तथा देशा० ९० १ पू०के मध्य भ्रानदीसे एक पाव और मिरघा नदसे आध कोसकी दूरी पर अवस्थित है। यहां नावसे पाट, सरसों और चावल आदिका व्यवसाय चलता है। जनसंख्या १२ हजारसे ऊपर है।

शेरपुर—बम्बई प्रदेशके खानदेश जिलान्तर्गत एक उपविभाग और नगर। यह अक्षा० २१ २१ उ० तथा देशा० ७४ ५२ पू०के मध्य अवस्थित है। १३७० ई०में दिल्लीके सम्राट फिरोज तुगलकने खानदेश राज्यके प्रतिष्ठाता मालिक राजाको यह उपविभाग जागीरमें दिया था। १७८५ ई०में यह होलकर राज्यका सामान मिला दिया गया और १८१८ ई०में होलकरने इसे अङ्गरेजराजको प्रदान किया।

शेरबच्चा (हिं० पु०) १ शेरका बच्चा। २ वीर पुरुष, परा क्रमी पुरुष बहादुर आदमी। ३ एक प्रकारकी छोटी बन्दूक।

शेरबबर (फा० पु०) सिंह, बबरी।

शेरम (स० पु०) १ अग्निके सुखदाता। २ उरगके समान हसाकारी राक्षसाधिपति। 'हे शेरभक स्वाति ताना सुखस्य प्रापक। उरगवत् सर्वथा हिंसका वा शेरभ यातुधानाधिपति। एषां प्रामणी प्रधानभूतो

यस्य तत् सन्निवादिः शेरभकः। 'स एवा ग्रामणीः' इति कन् प्रत्ययः।' (अथर्व २।२४।१ सायण)

शेरमर्द (फा० वि०) बहादुर, वीर।

शेरमर्दी (फा० स्त्री०) बहादुरी, वीरता।

शेरवानी (हि० स्त्री०) अङ्गरेजी ढंगकी काटका एक प्रकारका अंगा। यह घुटनों तक लम्बा होता है। इसमें बालावर, कली और चौबगले आदि कुछ नहीं लगाये जाते। आगे जिस ओर बटन लगाया जाता है उसकी नीचेका आधा भाग अधिक चौड़ा होता है जिसमें बंद या हुक लगा कर दूसरे भागके नीचे करके बांधते या बंद करते हैं। मुसलमानों में इसका रवाज अधिक है।

शेरशाह—शूरवंशीय एक मुसलमान योद्धा। इनका प्रकृत नाम फरीद था। इनके पिता हसन पेशावरके अन्तर्गत रोहनिवासी थे। वे जौनपुरके शासनकर्त्ता जमाल खाँके अधीन ५०० अश्वारोही सेनाकी रक्षा करते थे। इस कार्यके लिये जमाल खाँने उन्हें ससराम और ताण्डा प्रदेश जागीरस्वरूप प्रदान किया था। पञ्जाबके अन्तर्गत हिसार नगरमें शेरशाहका जन्म हुआ था, इसलिये वे हिसारनिवासी कहलाये। फरीदने बाल्यकालसे कुछ दिनों तक विहारके शासनकर्त्ता महम्मद लोहानीके सेनाविभागमें काम किया था। उस समय एक दिन उन्होंने अपने भुजबलसे एक बाघको (मतान्तरसे सिंहको) तलवार द्वारा दो खण्ड कर दिया था, इसलिये उनके प्रतिपालकने उन्हें शेर खाँकी उपाधि दी।

मुगल-बादशाह हुमायूँने जिस समय विहार पर आक्रमण किया था, शेर खाँने उस समय उन्हें युद्धमें पराजित किया (१५३९ ई०की २६वीं जून)। इसके बाद शेर खाँने सम्राट्का पीछा किया और १५४० ई०की १७वीं मईको कन्नौजके रणक्षेत्रमें उन्हें सेनाके साथ हरा दिया। मुगल-सम्राट् निरुपाय हो कर क्रमसे उत्तर-पश्चिम भारतकी ओर अग्रसर हुए। उस समय शेर खाँने भी अपनी सेनाके साथ उनका पीछा करते हुए आगरासे लाहोर और खुसाबकी यात्रा की। हुमायूँ शाह उस समय किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो कर खुसाबसे भाग चले और सिन्धनद पार कर भारतराज्यका त्याग करनेके लिये बाध्य हुए।

शेर खाँ इस विजयसे उल्लसित हो कर मुगलके परित्यक्त दिल्लीके सिंहासन पर जा बैठे। १५४२ ई०की २५वीं जनवरीको शेर खाँ अपना नाम शेरशाह रख भारत-साम्राज्यका अधीश्वर बन बैठे। उनके राज्याधिकारसे ही शूरराजवंशकी प्रतिष्ठा हुई।

भारतवर्ष शब्दमें शूरराजवंश देखो।

उनके शासनकालके पाँचवें वर्षमें वे कालिञ्जर-दुर्ग पर अधिकार करनेके अभिप्रायसे अपनी सेना ले कर आगे बढ़े। उस समय भारतके यावतीय दुर्गोंके मध्य यह दुर्ग अजेय गिना जाता था। दुर्ग पर आक्रमण करनेके समय उनकी सेना दुर्गकी दीवार तोड़नेके लिये भीषण अस्त्र ले कर दुर्गके पास जा डटी। शेर शाँकी आज्ञासे कमानवाही सैनिकोंने कमानसे अग्नि लगा दी। अचानक कमानसे बाहर होते ही एक गोला फट गया, जिससे निकले हुए उत्तप्त लोहकणोंसे बहुतसे निकटस्थ सैनिकोंके प्राण नष्ट हो गये। एक अग्निकी चिनगारी उड़ कर निकटवर्त्ती बारूदखानामें जा गिरी और बारूदमें आग लग गई। बारूदमें आग लग जानेके कारण अनेकों सैनिकके प्राण विनष्ट हो गये। शेरशाह भी उस समय वहां ही थे एवं बारूदकी आगसे उनका सारा शरीर दग्ध हो गया। सम्राट् यातनासे विह्वल हो उठे। उस समय सैनिकगण उन्हें युद्धके बाहर ले आये। उन्होंने उसी मृतप्राय अवस्थामें दुर्ग पर आक्रमण करनेके लिये जोशीले वचनोंसे अपने सैनिकोंको उत्तेजित करने लगे।

सन्ध्याके समय कालिञ्जरके दुर्ग पर शेरशाहका अधिकार हो गया। यह सम्वाद पा कर वे हृदयसे ईश्वरका नाम ले कर चिल्ला उठे। उसके कुछ ही क्षणके बाद उनका प्राणपखेरू उड़ गया (१५४५ ई० २४ मई)।

उनकी मृत्युके बाद उनकी लाश ससराममें लाई गई। उन्होंने अपने जीवनकालमें ही पैतृक सम्पत्तिके मध्य अपनी कब्र तैयार कर रखी थी। वह समाधि मन्दिर एक सुदीर्घ दीर्घिकाके ऊपर तैयार किया गया था।

प्रवाद है, कि शेरशाहने ऐसे दोर्दण्डप्रतापसे राज्य शासन किया था, कि उसके राज्य भरमें चोर लुटेरेका बिलकुल ही भय न था। पथिक वा तीर्थयात्री लोग शिरके तले अपनी गठरी रख निश्चिन्त हो कर सो

साकत थे। उनका मृत्युके बाद उनका पुत्र सलीम शाह दिल्लीके सिंहासन पर बैठे।

शेरसिंह—पञ्जाबकेशरी महाराज रणजित् सिंहके पात्र और महाराज खड़गसिंहके द्वितीय पुत्र। बड़े भाई नवनेहाल सिंहकी मृत्युके बाद ये पञ्जाबके अधीश्वर हुए। १८४० ई०में व लाहोरमें पैतृक सिंहासन पर बैठे सही, पर यथार्थमें सिखराज्यका शासनभार उनकी माता चाँदकुमारीके ऊपर रहा। माताकी स्वेच्छाचारिता और बुरे आचरण पर क्रुद्ध हो शेरसिंहने दो वर्षके बाद माताके हाथसे अपनी पैतृक सम्पत्तिका शासनभार छीन लिया। पीछे १८४३ ई० को १३वीं सितम्बरको भाल्ला सनान राजप्रासादको घेर लिया। सरदार अजितसिंह हो इसी समय दलबलके साथ राजपुरमें घुस कर प्रतापसिंह और शेरसिंहको मार डाला। इनके बाल बच्चों को भी राजप्रासादसे निकाल कर मार डाला। शेरसिंहकी मृत्युके बाद राजा दलीपसिंह सिंहासन मसनद पर बैठे।

शिस देना।

शेल (हिं० पु०) सम देना।

शेलक (स० पु०) बहुवारवृक्ष लिसोड़ा।

शेलमुख (स० पु०) १ श्रीफल, बिल्ववृक्ष। २ एक प्रकार का फूल।

शेलु (स० पु०) शेलनाति शील गतौ उ। १ बहुवारवृक्ष लिसोड़ाका पेड़। २ उसका फल। मनुके मतसे लिसोड़ा खाना मना है। (मनु ५।६)

३ वनमेथी नामक शाक।

शेलुक (स० पु०) १ बहुवार लिसोड़ा। २ मथिका, मेथी। ३ लोध्रवृक्ष, लोधका पेड़।

शेलुका (स० स्त्री०) वनमेथी।

शेलुप (स० पु०) एक प्रकारका लिसोड़ा।

शेव (स० पु०) शेते रेत पातान तरमिति शी (इष् शीङ्भ्या वन। उण् १।१५१) इति वन्। १ मेढ़, लिङ्ग। २ अहि सर्प। ३ अग्निका एक नाम। ४ उन्नति। ५ ऊंचाई। ६ धनसम्पत्ति। ७ मत्स्य मछली। (क्ली०) ८ सुख। (निघण्टु ३।६) (त्रि०) ९ सुखकर। (ऋक् १।५४।८)

शेव (अ० पु०) क्षौरकर्म, हजामत बनानेका काम।

शेवधि (स० पु०) शेव सुखं धीयतेऽस्मिन्निति धा कि। निधि, खजाना। (मनु २।११४)

शेवधिप (स० त्रि०) निधिपति, धनाधिपति।

शेवरक (स० पु०) असुरविशेष।

शेवल (स० त्रि०) १ शैवालयुत्, सब्रवविशिष्ट।

(क्ली०) २ शैवाल सेवार। (पु०) ३ आचार्य भेद।

शेवलदत्त (स० पु०) पाणिनिके अनुसार एक व्यक्ति।

शेवलिक (स० पु०) अनुकम्पित शेवलदत्त शेवलदत्त ठक्, (शेवलसुपरिविशालेति। पा ५।३।८४) इति अन्त लोप। अनुकम्पान्वित शेवलदत्त नामक मनुष्य। इस अर्थमें शेवलिक और शेवलिल ये दो पद भी होते हैं।

शेवलिनी (स० स्त्री०) शेवल शैवालमस्या अस्तीति इनि। नदी दरिया।

शेवान (सवान)—१ बिहारके सारण जिलान्तर्गत एक उपविभाग। यह अक्षा० २५ ५३´ से २६ २२´ उ० तथा देशा० ८४ ७ से ८४ ४७´ पू० के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ८३८ वर्गमील और जनसंख्या ८ लाखसे ऊपर है। निम्न भूमें यहांकी आबादी घनी है। इसमें शेवान नामक एक शहर और १५२८ ग्राम लगते हैं।

२ उक्त उपविभागका प्रधान नगर। यह अक्षा० २६ १३ उ० तथा देशा० ८४ २१ पू० के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या १५ हजारसे ऊपर है। १८६९ ई०में यहां म्युनिसपलिटी स्थापित हुई। यहांकी सरस्वती नदीके किनारे प्राचीन नगरका ध्वस्त स्तूप पड़ा है। उस स्तूपको स्थानीय लोग तहपोलर कहते हैं। यहां प्राचीन इट और शकराजाओंकी मुद्रा पाई गई है। मुगल बादशाहोंके अमलमें बनाया हुआ पुल आज भी यहां मौजूद है। वर्त्तमान नगरकी अवस्था उतनी उन्नत नहीं है। यहां धानकी फसल अच्छी लगती है।

शेवार (स० पु०) सुखगमक यक्ष, सुखज्ञापक यक्ष।

शेवाल (स० क्ली०) शेते जले इति शी (शो भा धुव्रुक वलवं वालनः। उण् ४।३८) इति वालन्। शैवाल, सेवार।

शेवाली (स० स्त्री०) आकाशमांसी, जटामांसीका एक भेद।

शेवृध (सं० त्रि०) वह बुद्धि जो रोगको दूर करनेमें प्राप्त होती है। (ऋक् १।५४।११)

शेव्य (सं० त्रि०) शेवं सुखं तत्र साधुः यत्। सुख-कर्त्ता। (ऋक् १।१५६।१)

शेष (सं० पु०) शेषति सङ्कर्षति शिष हिंसायां अच्। १ सङ्कर्षण, बलदेव। २ अनन्त, सर्पराज। भविष्यपुराणमें इनका ध्यान इस प्रकार लिखा है।

"फणासहस्रसंयुक्तं चतुर्बाहु किरीटिनं।
नवाम्रपल्लवाकारं पिङ्गलश्मश्रुलोचनम्॥
पीताम्बरधरं देवं शङ्खचक्रगदाधरं।
करात्रे दक्षिणे पद्मं गदा तस्याप्यधःकरे॥
दधानं सर्वलोकेशं सर्वाभरणभूषितम्।
क्षीराब्धिमध्ये श्रीमन्तमनन्तं पूजयेत्ततः।"

शिष वधे भावे घञ्। ३ वध, नाश। ४ गज, हाथी। ५ नाग, सांप। ६ वह वस्तु जो स्वीकार नहीं की गई हो। ७ अवशिष्ट, बाकी। ८ वह शब्द जो किसी वाक्यका अर्थ करनेके लिये ऊपरसे लगाया जाय, अध्याहार। ९ बड़ी संख्यामेंसे छोटी संख्या घटानेसे बची हुई संख्या, बाकी। १० समाप्ति, अन्त। ११ परिणाम, फल। १२ स्मारक वस्तु, यादगारकी चीज। १३ लक्ष्मण। १४ एक प्रजापतिका नाम। १५ दिग्गजोंमेंसे एक। १६ पिङ्गलमें टगणके पाँचवें भेदका नाम। १७ छप्पय छन्दके पचीसवें भेदका नाम। इसमें ४६ गुरु, ६० लघु, कुल १०६ वर्ण या १५२ मात्राएं होती हैं। १८ जमालगोटा। १९ अवशिष्टता। अग्निपुराण और नीतिशास्त्रमें लिखा है, कि ऋणका शेष, अग्निका शेष और शत्रुका शेष नहीं रखना चाहिये, रखनेसे वह फिर बढ़ जाता है।

२० भगवान्की द्वितीय मूर्त्ति। यह जगत् जब प्रलयकालमें लय होता है, तब भगवान् विष्णु लक्ष्मीके साथ शेष शयन पर सोते हैं। कालिकापुराणमें लिखा है, कि जगत्के नष्ट हो जाने पर भगवान् विष्णु लक्ष्मीके साथ क्षीर-सागरमें शेषनागके फणके नीचे शयन करते हैं। शेषनाग अपना पूर्वफण फैला कर कमलपुष्पको आच्छादित किये रहते हैं और अपने उत्तर फणसे भगवान्के सिर एवं दक्षिण फणसे पाद ढके रहते हैं। वे अपने पश्चिम फणको फैला कर भगवानको पंखा झलते हैं और ईशान फणके द्वारा शङ्ख, चक्र, नन्द, खड्ग, दोनों तूणीर तथा गरुड़को ईशान फणके द्वारा एवं आग्नेय फणके द्वारा गदा, पद्म प्रभृति धारण किये रहते हैं। इस प्रकार भगवान् विष्णु प्रलयके समय शयन किया करते हैं।

शेष—कुछ प्राचीन ग्रन्थकारोंके नाम। १ अग्निष्टोम-यजमानके रचयिता। २ आर्यापञ्चाशीति या परमार्थसार-के प्रणेता। ३ गुरुशतक और उसकी टीकाके रच-यिता। ४ ज्योतिषभाष्य और पाणिनीय शिक्षाभाष्य नामक ग्रन्थके प्रणेता। ५ ध्यानशतकके रचयिता। ६ बौधायनचयन और साग्रयणाग्न्याध्यानप्रयोग नामक ग्रन्थोंके प्रणेता। ७ मध्वोपकारिणी नाम्नी मध्वविजय-टीकाकार। ८ एक प्राचीन कवि। ये चालुक्यराज कर्णके सभापण्डित थे। इसके रचित कर्णसुधानिधिग्रन्थके परिशिष्टमें सङ्गमेश्वरमाहात्म्य वर्णित है।

शेष आचार्य—१ अनुछलागीय नामक दीधितिके प्रणेता। २ आनन्दतीर्थकृत तत्त्वसारटीकाके रचयिता। ३ वायु-स्तुति टीकाके प्रणेता। ४ सत्यनाथमाहात्म्यरत्नाकरके प्रणेता सङ्कर्षणके पिता एक प्रसिद्ध पण्डित।

शेषक (सं० पु०) शेष स्वार्थे कन्। शेष देखो।

शेषकरण (सं० क्ली०) जो असम्पन्न हो उसका सम्पा-दन।

शेषकमलाकर—मेङ्गनाथके पुत्र सुप्रसिद्ध कमलाकर नामक कवि।

शेषकारित (सं० त्रि०) शेषमें सम्पादित।

शेषकाल (सं० पु०) शेष समय, मृत्युका पूर्व समय।

शेषकृष्ण—१ कंसवध नामक नाटकके रचयिता। २ एक पण्डित। ये नृसिंहके पुत्र थे। उषापरिणयचम्पू, कंसवधनाटक, क्रियागोपनकाव्य, पारिजातहरणचम्पू, मुरारिविजय नाटक, सत्यभामा-परिणय नाटक और सत्यभामाविलास नाटक नामक कई ग्रन्थ इनके रचे हैं। ये १६वीं सदीमें राजा नरसिंहकी सभामें विद्य-मान थे। ३ शूद्राचारशिरोमणिके प्रणेता।

शेषकृष्ण पण्डित—उपपदमतिङ्सूत्रव्याख्यान और षट्-लुगान्तशिरोमणि नामक व्याकरणके प्रणेता।

शेषगोविन्द पण्डित—एक ज्योतिषके रचयिता।

शेषचक्रपाणि—कारकविचारके रचयिता।

शेषजाति (स० स्त्री०) गणितमें बचे हुए अङ्कको लेनेकी क्रिया। (assimilation of residues reduction of fraction of residues or successive fractional remainders)

शेषण (स० क्ली०) १ शेष करण, समापन। २ अक्ष क्रीड़ाका एक भाग "अक्षाणां ग्रहणं शेषणञ्च।

शेषता (स० स्त्री०) शेषस्य भाव तल टाप्। १ शेषत्व उपकारित्व। २ पारार्थ्य, परोद्देशक प्रवृत्तित्व।

शेषत्व (स० क्ली०) शेषता देखो।

शेषदीक्षित—कुचेलोपाख्यान कृष्णविलास नवकोटि और श्लोकगाथामृतके रचयिता।

शेषधर (स० पु०) शेष अर्थात् सर्पको धारण करनेवाले, शिवजी।

शेषनाग (स० पु०) १ अनन्त। २ परमार्थसारके प्रणेता।

शेषनारायण—शक्तिरत्नाकर नामक महाभाष्यव्याख्याके प्रणेता।

शेषनारायण पण्डित (स० पु०) महाभाष्यके एक टीकाकार।

शेषपति (स० पु०) १ अनन्त। २ राज्यशासक। ३ अध्यक्ष। ४ सर्वोपरिदर्शक।

शेषभाग (स० पु०) अन्तिमभाग।

शेषभाव (स० पु०) १ शेषकी अवस्था। २ शेषत्व।

शेषभुज (स० त्रि०) देव भुक्तको भुक्त किए। शेष भोजनकारी, सबके पीछे खानेवाला। श्राद्ध करके शेष भोजन करना होता है।

देवलोक, ऋषिलोक, मनुष्यलोक, पितृलोक और गृहदेवता इन सबोंको अन्न आदिसे पूजा कर गृहस्थको उसके बाद भोजन करना होता है।

शेषभूत (स० त्रि०) १ शेषस्वरूप। २ अवशिष्ट।

शेषभूषण (स० पु०) विष्णु।

शेषभोजन (स० क्ली०) १ घरमें निमन्त्रितको खिला कर अन्तमें खाना। २ पात्रावशेष भोजन, जूठा खाना।

शेषरक्षण (स० क्ली०) कोई कार्य आरम्भ कर शेष पर्यन्त उसका प्रतिपालन या परिरक्षण।

शेषरत्नाकर—साहित्यरत्नाकर नामक गीतगोविन्द-टीकाके प्रणेता।

शेषराज (स० पु०) एक वर्णवृत्तका नाम। इसके प्रत्येक चरणमें दो भगण होते हैं। इसे विद्युल्लेखा भी कहते हैं।

शेषरात्रि (स० स्त्री०) शेषा अवशिष्टा रात्रि। रात्रि शेष रात्रिका अन्तिम याम, रातका पिछला पहर। पर्याय—उषःकाल, अपरात्र।

शेषरामचन्द्र (स० पु०) एक प्रसिद्ध आलङ्कारिक।

शेषरूपिन् (स० त्रि०) शेषरूपधारी।

शेषवत् (स० त्रि०) शेष अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। १ शेषविशिष्ट, शेषयुक्त। (क्ली०) २ अनुमानविशेष। पूर्ववत्, शेषवत् और सामान्यतोदृष्ट, यही तीन प्रकारका अनुमान है। जहां कार्य देख कर कारणका अनुमान होता है, वहां उसे शेषवत् अनुमान कहते हैं। कारण देख कर कार्यका अनुमान। जैसे, मेघ देख कर वृष्टिका अनुमान पूर्ववत् है फिर वृष्टि देख कर मेघका अनुमान का शेषवत् कहते हैं।

पूर्व शब्दका अर्थ कारण है अर्थात् कारण देख कर जहां कार्यका अनुमान होता है, वही पूर्ववत् है, वृष्टिका कारण मेघोन्नति है। यह मेघोन्नति देख कर जो वृष्टिका अनुमान होता है वही पूर्ववत् है। शेष शब्दका अर्थ कार्य है अर्थात् कार्य देख कर जहां कारणका अनुमान किया जाता है वहां उसे शेषवत् कहते हैं। नदीकी पूर्णता और स्रोतोवेगरूप देख कर उसके कारणस्वरूप वृष्टिका अनुमान करनेको शेषवत् अनुमान कहते हैं।

पहले कहा जा चुका है, कि न्यायदर्शनमें पूर्ववत्, शेषवत और सामान्यतोदृष्ट ये तीन प्रकारके अनुमान स्वीकृत हुए हैं। सांख्यकारने भी यही स्वीकार किया है। पर तु उन्होंने पहले अनुमानको वीत और अवीत इन दो भागोंमें विभक्त किया है। जो अनुमान अन्वय व्याप्ति द्वारा होता है उस बात उसके सत्त्वमें उसका सत्ता, व्याप्य धूमादिकी सत्तामें व्याप्य वह्न्यादिकी सत्ता अर्थात् जहां धूम है वहां निश्चय ही वह्नि है ऐसा जो अनुमान है वही वीत है। व्यतिरेकव्याप्ति अर्थात् उसके सत्त्वमें उसकी सत्ता, व्यापक साध्यके असत्त्वमें

(अभावमें) व्याप्य हेतुकी असत्ता या अभाव अर्थात् व्यापकके अभावमें ही व्याप्यका अभाव, ऐसे अनुमानको अवीत कहते हैं। वह निषेधक है अर्थात् कोई वस्तु नहीं है या नहीं कह कर अन्वयका प्रतिपादक है। इन दो प्रकारके अनुमानमें अवीत अनुमानको शेषवत् अनुमान कहते हैं। शिष्यते इति शिष्यकर्माणि घञ् शेषः, इस योगार्थ द्वारा शेष शब्दसे अवशिष्ट समझा जाता है। यह शेष विषयतारूप सम्बन्धमें जिस वस्तुमें रहता है, उसको शेषवत् कहते हैं।

इसका तात्पर्य यह है, कि व्याप्यके ज्ञानसे व्यापकके ज्ञानको अनुमान करते हैं। व्याप्ति जिसमें रहती है, उसको व्याप्य कहते हैं, जिसकी व्याप्ति है उसका नाम व्यापक है। नियत सम्बन्धको व्याप्ति कहते हैं। जिसके विना जो नहीं रहता या नहीं रह सकता वह उसका व्याप्य है। वह्निके विना धूम नहीं रहता या नहीं रह सकता, अतएव धूम वह्निका व्याप्य है। अनुमानके स्थल व्याप्यको हेतु और व्यापकको साध्य कहते हैं। व्याप्य जहां रहता है वहां व्यापकका रहना अवश्य कर्त्तव्य है। जैसे वह्नि धूमकी व्यापक है, क्योंकि जहां धूम है वहां अवश्य वह्नि है।

प्रथमतः धूम और वह्निकी व्याप्ति निश्चय होती है। अर्थात् वह्निके विना धूम कभी भी नहीं रह सकता यह अच्छी तरह देखा गया है। व्याप्ति ज्ञानके प्रति व्यतिरेक निश्चय ही प्रधान कारण है। 'धूम वह्निके विना कभी भी नहीं रह सकता' ऐसा ज्ञान जब तक नहीं होता, तब तक हजारों जगह वह्नि और धूमके एकत्र अवस्थान रूप अन्वयनिश्चयमें व्याप्ति स्थिर नहीं होती। उक्त प्रकारसे व्याप्ति स्थिर होनेके बाद पर्वतादि पर अविच्छिन्नमूल धूम दिखाई देने पर धूम वह्निका व्याप्य है ऐसा स्मरण होता है। उस समय वह्निव्याप्य धूम पर्वत पर है, ऐसा अनुमान होता है।

व्याप्ति दो प्रकारकी है—अन्वयव्याप्ति और व्यतिरेकव्याप्ति। "तत्सत्त्वे तत्सत्ता अन्वयः" जहां व्यापक वह्नि आदि अवश्य रहेगी, वहां व्याप्तिको अन्वयव्याप्ति कहते हैं। अन्वयव्याप्तिकी जगह हेतु और साध्यका समानाधिकरण्य अर्थात् एकत्रावस्थान पहले दिखाई देता है। पाकशालामें धूम और वह्निका सामानाधिकरण्य प्रत्यक्ष होता है। ऐसे अनुमानको वीत अनुमान कहते हैं, इसीका भेद पूर्ववत् और सामान्यतोदृष्ट है।

इससे भिन्न अनुमानको शेषवत् कहते हैं, अतएव वह अवीत है। "तदसत्त्वे तदसत्ता व्यापकाभावात् व्याप्याभावः" उसकी असत्तामें अर्थात् उसके अभावमें उसका अभाव, व्यापकके अभावमें व्याप्यका अभाव, जहां व्यापक वह्नि आदि नहीं हैं, वहां व्याप्य धूमादि भी नहीं या नहीं रह सकता, ऐसी व्याप्तिको व्यतिरेकव्याप्ति कहते हैं। शेषवत् अनुमान यह व्यतिरेकव्याप्तिमूलक है। यहां हेतुके पहले भी साध्यका सामानाधिकरण्यज्ञान पहले नहीं कहनेसे भी काम चलेगा। स्थलविशेषमें साध्यज्ञान हो ही नहीं सकता, स्थलविशेषमें योग्यता नहीं रहनेसे भी क्षति नहीं होगी। यह अनुमान इस प्रकार है—

"इयं पृथ्वी पृथ्वीतरभिन्ना गन्धवत्त्वात्" यह पृथ्वी या क्षिति गन्धगुणविशिष्ट होनेके कारण पृथ्वीतरसे भिन्न है। क्योंकि क्षितिको छोड़ जलादि पदार्थमें गन्धगुण नहीं है। जिसमें गन्ध है वही पृथ्वी है, यह अनुमानके पहले नहीं जाना जाता। किन्तु पृथिवीतर भेदका अभाव अर्थात् व्यापकाभाव जलादिमें है तथा वहां गन्धका भी अभाव है, यही जाना जाता है। अतएव "तदभावव्यापकीभूताभावप्रतियोगित्वात्" अर्थात् साध्याभावका व्यापक जो अभाव है, उस अभावकी प्रतियोगी ही हेतु है; इसी प्रकार व्यतिरेकव्याप्तिग्रह होता है। हेतुका व्यापक साध्य और साध्याभावका व्यापक हेत्वभाव है। जहां धूम है, वहां वह्नि है, जहां वह्निका अभाव है, वहां धूमका अभाव है, यही स्थिर करना होगा।

गन्ध गुणपदार्थ है, अतएव वह द्रव्यमें रहती है। जलादि भी द्रव्य है, अतएव उसमें गन्धका रहना सम्भव था, किन्तु प्रमाण द्वारा यह स्थिर हुआ है, कि गन्ध पृथिवीके सिवा और किसी भी पदार्थमें नहीं है। फिर 'गुणादिर्निर्गुणक्रियः' इस वचनानुसार गुणादिमें गुण रह नहीं सकता। अतएव जलादि पदार्थ और रूपादि गुणोंका गन्धमें रहना असम्भव है, वह सिर्फ पृथिवीमें ही है, ऐसा स्थिर करना होगा। अतएव इस

इस गन्ध ज्ञान द्वारा ही पृथिवीतरत्वका ज्ञान होता है, यही शेषवत् अनुमान है।

इसे थोड़ा और परिष्कार कर कहा जाता है, कि शेषवत् अनुमानमें हेतु साध्यका व्याप्यव्यापकभावज्ञान नहीं है, किन्तु साध्याभाव और हेत्वभावका व्याप्य व्यापकभावज्ञान है जिसके फलसे साध्याभावका निषेध होता है, अतएव साध्यज्ञान हो जाता है। यथा "पृथिवी पृथ्वीतरेभ्यो भिद्यते गन्धवत्वात्" पृथिवीमें पृथिवीभेद नहीं है, हेतु गन्ध पृथिवीभेद गन्धाभावका व्याप्य है तथा गन्धाभाव पृथिवीमें नहीं है, यह ज्ञान होने पर पृथिवीमें पृथिवीभेद नहीं है, ऐसा ज्ञान होता है। परिणाममें पृथिवीतरत्व उसमें है, इस प्रकार बोध होता है। साधकके मनसे यह जो शेषोक्त बोध है वही अनुमिति है। किन्तु पृथिवीतरत्व इस अनुमितिका विधेय नहीं है, विधेयमात्र है। पूर्ववत् अनुमान द्वारा पर्वत पर जो वह्निकी अनुमिति होती है उसमें वह्नि विधेय है। विधेयता मनोवृत्ति विशेष है। जिस अनुमितिमें विधेयताका मनोवृत्तिका सम्बन्ध नहीं है, वह अनुमितिसाधन प्रमाण ही शेषवत् अनुमान है।

नैयायिकोंके मतसे व्यतिरेक व्याप्तिज्ञानको शेषवत् अनुमान कहते हैं। 'साध्याभावव्यापकीभावप्रतियोगी हेतु' यही ज्ञान व्यतिरेक व्याप्तिज्ञान है। व्यापकका प्रचलित अर्थ है जो फैला कर रहे और व्याप्यका अर्थ है जिसमें फैला हुआ हो, यही अर्थ सर्वत्रादिसम्मत है। जिसका अभाव है उसको प्रतियोगी कहते हैं। यथा घटका अभाव, इस अभावका प्रतियोगी घट है। अब गौरसे देखना होगा, कि 'अयं पृथिवीतरेभ्यो भिद्यते गन्धवत्वात्' गन्धके कारण यह वस्तु पृथिवीकी अन्य वस्तुसे भिन्न है। यहां साध्य पृथिवीतरभेद साध्याभाव पृथिवीतरत्व है, उसका व्यापक जो अभाव है वह प्रतियोगी गन्ध है, अर्थात् गन्धाभाव उसका व्यापक है। जो वस्तु पृथिवी नहीं है, उसमें गन्ध नहीं है, ऐसे ज्ञानको व्यतिरेक व्याप्तिज्ञान कहते हैं। साध्य जो पृथिवीका अन्यभेद है उसका ज्ञान नहीं होनेसे भी साध्याभाव जो पृथिवीतरत्व है उस विषयमें ज्ञान होता है। इस प्रकार ज्ञान होनेसे ही अनुमिति होती है।

यही शेषवत् अनुमान है। (सांख्यतत्त्वकौ०)

प्रमाण और न्यायदर्शन देखो।

शेषशायिन् (सं० पु०) शेषनाग पर शयन करनेवाले विष्णु। पुराणोंके अनुसार प्रलयकालमें विष्णु भगवान् तीनों लोकोंको अपने पेटमें धारण कर क्षीरसागरमें शेषनागकी शय्या बना कर उस पर शयन करते हैं। कुछ कालके उपरान्त उनकी नाभिसे एक कमल निकलता है जिस पर ब्रह्माकी उत्पत्ति होती है और सृष्टिका क्रम फिरसे चलता है।

शेषशार्ङ्गधर—न्यायमुक्तावली और पदार्थचन्द्रिकाके रचयिता।

शेषस् (सं० पु०) अपत्य। 'मा शेषसा मा तनसा'

शेषांश (सं० पु०) १ अवशिष्टभाग, बचा हुआ अंश। २ अन्तिम अंश, आखिरी भाग।

शेषा (सं० स्त्री०) शिष्यतेऽसौ शिष घञ् टाप्। स्वनिमाल्यार्पण, देवताको चढ़ी हुई वस्तु जो दर्शकों या उपासकोंमें बाँटी जाय, प्रसाद।

शेषाचलम्—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके कड़ापा जिलेके अन्तर्गत एक पर्वतश्रेणी। यह अक्षा० १४ १२ से ले कर १४ ३५ उ० और देशा० ७८ १' ३०" से ले कर ७८ ५६ पू० पालकोण्डा पर्वतसे पूरब और उत्तर पूरबमें फैली हुई है। यह पर्वत प्रायः १२०० से ले कर १८०० फीट तक ऊंचा एक अधित्यकामात्र है। नाना प्रकारकी गुल्मलताओंसे परिवेष्टित होनेके कारण इस पर्वतकी प्राकृतिक शोभा अवर्णनीय हो रही है। इसके पश्चिमांश स्थानमें पालकोण्डा गिरिश्रेणीसे निकल कर पेन्नार नदी प्रवाहित होती है।

शेषाद्रि—परिभाषाभास्कर, परिभाषेन्दुभास्कर और महामञ्जूषा नामक व्याकरणके प्रणेता।

शेषाद्रि आयर—महिसुर राज्यके प्रसिद्ध दीवान। १८४५ ई०में वृटिशके मलबार जिलेके कुमारपुरम् नामक गांवमें इन्होंने जन्मग्रहण किया था। इनका पूरा नाम था सर शेषाद्रि आयर के० सी० एस० आई०। पहले पहल कालीकटमें इन्होंने पढ़ना आरम्भ किया। तदनन्तर ये मद्रासके प्रेसिडेन्सी कालेजमें पढ़नेके लिये भर्ती हुए। यहां हीसे इन्होंने सन् १८६६ ई०में बी० ए०

परीक्षा पास की। मद्रासके विश्वविद्यालयके ये सबसे पहले बी० ए० हुए। इसके कुछ दिनोंके पीछे ये कानूनकी परीक्षा पास हो कर कलक्टरके आफिसमें अनुवादकके काम पर नियत हुए। इस स्थान पर इन्हें बहुत दिनों तक रहना नहीं पड़ा। मद्रासमें रहनेके कारण रंगचार्लूसे इनका परिचय हो गया था। सन् १८६८ ई०में रंगचार्लू महिसुरके दीवान हुए। उन्होंने ही शेषाद्रिको सरिश्तेदार बनाया। १८७६ ई०में शेषाद्रि डिपुटी कमिश्नर और मजिस्ट्रेट हुए। उसके बाद दीवान रंगचार्लूने महिसुर राज्यके कानून बनानेका भार इन्हें सौंपा। इसके दो वर्षके बाद रंगचार्लूका शरीरान्त हुआ। इस समय महिसुर राज्यमें शेषाद्रिके अतिरिक्त इस पदके योग्य दूसरा नहीं था। परन्तु उस समय इनकी अवस्था केवल ३८ वर्षकी थी, इस कारण बहुतोंने यह संदेह किया कि इस बड़े कामका प्रबंध ये नहीं कर सकते। जो हो, सन् १८८३ में शेषाद्रि महिसुरके दीवान हुए। सन् १८७७ ई०में महिसुर राज्यमें दुर्भिक्ष पड़ा था, इस कारण तीस लाख रुपये कर्ज लेने पड़े थे। फिर इस प्रकारका विपद न हो इस कारण रंगचार्लूने रेलवे बनाना प्रारम्भ किया था। रंगचार्लूकी मृत्युके बाद शेषाद्रिने उनके पथका अवलम्बन किया। दो वर्षमें इन्होंने १४० मील रेलपथ बनवाया था। इस कामके लिये बीस लाख रुपये और भी कर्ज लेने पड़े थे। सन् १८६५में महिसुर राज्यमें ३२५ मील तकका रेलपथ बन गया। सन् १७०१ ई०में शेषाद्रिके कार्य त्याग करनेके समय महिसुर राज्यमें ४०० मील तक रेलवेका विस्तार हो गया था। अपने शासनके १२ वर्षोंमें कृषिकी सुविधाके लिये इन्होंने ३५५ वर्गमीलमें तालाब खुदवाया था। इस कार्यमें इन्हें एक करोड़ रुपये खर्च करने पड़े थे, परन्तु इससे राज्यकी आयमें ८२५००० की वृद्धि हुई। जिस समय इन्होंने इस पदको ग्रहण किया था, उस समय राज्यमें तीस लाख रुपये ऋण थे। उसे इन्होंने बिलकुल चुका दिया। इन्होंने एक करोड़ छिहत्तर लाख रुपये राजकोषमें जमा किये थे। राज्यकी आमदनीको भी इन्होंने बढ़ाया। प्रजाकी सुखशान्तिके लिये इन्होंने राज्यमें अनेक विभाग स्थापित किये थे। पहले इन्हें सरकारने सी० एस० आई० की और पीछे के० सी० एस० आई० की उपाधि मिली। ये मद्रास विश्वविद्यालयके फेलो भी नियत हुए थे। इन्होंने १२ वर्ष राजकार्य करके सन् १९०१ ई०में कार्य त्याग किया। इसमें १७ वर्ष तक इन्होंने दीवानी की। इसी वर्ष इनका शरीरान्त भी हुआ।

शेषानन्त (सं० पु०) १ न्यायसिद्धान्तदीपप्रभा नामक न्यायशास्त्रके प्रसिद्ध टीकाकार। इन्होंने राजा पद्मनाभके गुरु शार्ङ्गधरके आदेशसे उक्त ग्रन्थ लिखा था। २ सप्तपदार्थीदीपिकाकी पदार्थचन्द्रिका नामक टीकाके रचयिता।

शेषार्द—अद्वैतचन्द्रिकाके प्रणेता नरसिंहके गुरु। ये नागेश्वर नामसे भी प्रसिद्ध थे।

शेषिन् (सं० त्रि०) प्रधान वस्तु।

शेषोक्त (सं० त्रि०) अन्तमें कहा हुआ।

शेष्य (सं० त्रि०) शेष दर या मूल्य, जिससे अधिक और हो ही नहीं सकता। (कथासरित्सा०)

शैकयतायनि (सं० पु०) शैकयतस्य गोत्रापत्यं शैकयत (तिकादिभ्यः फिञ्। पा ४।१।१५४) इति फिञ्। शैकयतका गोत्रापत्य।

शैकि (सं० पु०) एक ऋषिका नाम। (प्रवराध्याय)

शैक्य (सं० त्रि०) १ दृढ़, मजबूत। (क्ली०) २ सिकहर, छीका।

शैक्ष (सं० पु०) शिक्षामधीते इति शिक्षा-अण्। प्राथमकल्पिक, शिक्षाध्ययनकारी छात्र, आचार्यके निकट रह कर शिक्षा प्राप्त करनेवाला शिष्य।

शैक्षिक (सं० त्रि०) शिक्षा अधीते वा शिक्षा ठक्। १ शिक्षाशास्त्रवेत्ता। २ शिक्षाशास्त्राध्येता।

शैक्षित (सं० पु०) शिक्षितायाः अपत्यं शिक्षिता (ऋष्ट्यान्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च... द्वाभ्यो नदी मानुषीभ्यस्तन्नामिकाभ्यः। पा ४।१।११३) इति अण्। शिक्षिताका अपत्य।

शैख (सं० पु०) १ व्रात्य ब्राह्मणकी सवर्णा स्त्रीसे उत्पन्न पुत्रका नाम।

'व्रात्यात्तु जायते विप्रात् पापात्मा भूर्जकण्टकः।
आवन्त्यवाटधानौ च पुष्पधः शैख एव च॥"

(मनु० १०।२१)

सारथि थे। (भागवत १।८।७) २ शिनिका गोत्रापत्य, यादववंशकी एक शाखा।

शैन्य (सं० पु०) शिविका गोत्रापत्य। ये लोग क्षत्रिय थे, पीछे तपके प्रभावसे ब्राह्मण हो गये।

शैपथ (सं० पु०) गोत्रप्रवर्त्तक एक ऋषिका नाम।

शैव (सं० त्रि०) शिविराज-सम्बन्धीय।

शैव्य (सं० पु०) १ शिविराज। २ विष्णुका घोड़ा।

शैव्या (सं० स्त्री०) महाभारतके अनुसार एक नदी।

शैरसि (सं० पु०) शिरस् गोत्रापत्ये इञ् (पा ४।१।९६) शिरसका गोत्रापत्य।

शैरिक (सं० पु०) नीले फूलकी कटसरैया।

शैरिन (सं० पु०) ऋषिभेद। (प्रवराध्याय)

शैरीयक (सं० पु०) नीलझिण्टी, नीले फूलकी कटसरैया। कोई कोई इसे शैरेयक भी कहते हैं।

शैरीष (सं० पु०) शिरीषस्य विकारः अवयवो वा (शिरीषपलाशादिभ्यो वा। (पा ४।३।१४१) इति अण्। १ शिरीषका विकार वा अवयव। (क्ली०) २ सामभेद।

शैरीषक (सं० क्ली०) स्थानभेद। (भारत २।३२।५)

शैरीषि (सं० पु०) वैदिक सुवेदाः ऋषिका गोत्रापत्य।

शैरीषिक (सं० त्रि०) शिरीष सम्बन्धी।

शैर्षघात्य (सं० क्ली०) शीर्षघातिनो भावः कर्म वा (गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च। पा ५।१।१२४) इति ष्यञ्। शीर्षघातीका भाव या धर्म, शीर्षच्छेदन, सिर काटना।

शैर्षच्छेदिक (सं० त्रि०) शिरच्छेदं नित्यमर्हति शीर्षच्छेदाच्च (पा ५।१।६५) इति ठञ् शिरसः शीर्षभावो निपात्यते, ततो वृद्धिः। नित्य शिरच्छेदकारी, रोज सिर काटनेवाला, जल्लाद।

शैर्षायण (सं० पु०) गोत्रप्रवर्त्तक एक ऋषिका नाम।

शैर्ष्य (सं० त्रि०) शीर्ष-सम्बन्धी।

शैल (सं० क्ली०) शिलायां भवं, शिला अण्। १ शैलेय, छरीला। २ चट्टान। ३ रसौत, रसवत। ४ शिलाजतु, शिलाजीत। ५ बहुवार, लिसोड़ा। (पु०) शिलाः सन्त्यत्रेति, ज्योत्स्नादित्वादण्। ६ पर्वत, पहाड़। (त्रि०) ७ शिला सम्बन्धी, पत्थरका। ८ पथरीला, चट्टानी। ९ कठोर, कड़ा।

शैलक (सं० क्ली०) शैलमेव स्वार्थे कन्। १ शैलज, छरीला। २ शैल देखो।

शैलकटक (सं० पु०) पहाड़की ढाल।

शैलकन्या (सं० स्त्री०) शैलस्य हिमवतः कन्या। हिमालयकी पुत्री, पार्वती।

शैलकम्पिन् (सं० पु०) १ स्कन्दका एक अनुचर। २ एक दानव। (हरिवंश)

शैलकुमारी (सं० स्त्री०) पार्वती।

शैलगङ्गा (सं० स्त्री०) गोवर्द्धन पर्वतकी एक नदी जिसमें श्रीकृष्णने सब तीर्थोंका आवाहन किया था।

शैलगन्ध (सं० क्ली०) शैलस्य गन्धो यत्र। शवरचन्दन, वर्वरचन्दन।

शैलगर्भजा (सं० स्त्री०) करञ्योढि पाषाणभेद, हड़जोड़ा। (वैद्यकनि०)

शैलगर्भाह्वा (सं० स्त्री०) १ शिलावल्का, शैलजा। २ सिंहपिप्पली, सिंहली पीपल। ३ शुक्लपाषाणभेद, सफेद पत्थरचूर।

शैलगुरु (सं० पु०) शैलस्य गुरुः। हिमालय पर्वत।

शैलज (सं० क्ली०) शैले पर्वते जायते इति जन ड। सुगन्धि तृणविशेष, स्वनामख्यात गन्धद्रव्य, छरीला। पर्याय—शीतशिव, शैलेय, शिलाशन, शिलेय, शीतल, शैल, कालानुसार्य, शैलक, वृद्ध, कालानुसारि, अश्मपुष्प, शिलापुष्प, गृह। (रत्नमाला) गुण—सुगन्धि, शीतल, तिक्त, कफपित्तघ्न, दाह, तृष्णा, वमि, श्वास और व्रणनाशक। (राजनि०)

शैलजा (सं० स्त्री०) शैलज-टाप्। १ गजपिप्पली। २ सिंहपिप्पली। ३ श्वेत पाषाणभेद, सफेद पत्थरचूर। ४ दुर्गा। हिमालय पर्वतकी कन्या होनेसे दुर्गाको शैलजा कहते हैं।

शैलजात (सं० पु०) शैलेय, छरीला।

शैलजाता (सं० स्त्री०) १ गोलमिर्च, काली मिर्च। २ गजपिप्पली।

शैलजामल्लिन्—पुरश्चर्यारसासुधिके प्रणेता।

शैलतटी (सं० स्त्री०) पहाड़की तराई।

शैलतनया (सं० स्त्री०) शैलस्य तनया। शैलकन्या, पार्वती।

शैलता (स० स्त्री०) शैलस्य भाव तल टाप्। शैलत्व, शैलका भाव या धर्म।
शैलतीर्थ (स० क्ली०) तीर्थभेद। (दिग्विजयप्रकाश)
शैलदुहितृ (स० स्त्री०) शैलस्य दुहिता। पार्वती।
शैलधन्वन् (स० पुं०) शैलवत् दृढ धनुर्यस्य धनुर्धन्वन् वा च नाम्नि' इति धनुषो वा अनादेश। महादेव, शिव।
शैलधर (स० पुं०) धरतीति धृ अच् धर। शैलस्य गोवर्द्धनपर्वतस्य धर। श्रीकृष्ण। (हलायुध)
शैलधातु (स० पु०) गिरिधातु।
शैलधातुज (स० क्ली०) शिलाजतु शिलाजीत।
शैलनन्दिनी (स० स्त्री०) पार्वती।
शैलनिर्यास (स० पु०) शैलस्य निर्यास इव रसो यत्र। १ शैलेय शैलज, छरीला। २ शिलाजतु, शिलाजीत।
शैलपति (स० पु०) शैलस्य पर्वतस्य पतिः। हिमालय।
शैलपत्र (स० पु०) शैलवत् सुदृढ पत्रमस्य। बिल्व वृक्ष बेल।
शैलपथ (स० पु०) शैलस्य पथ, वा पथ समासान्त। पर्वतपथ पहाड़का रास्ता।
शैलपुत्री (स० स्त्री०) शैलस्य पुत्री। १ हिमालयकी कन्या पार्वती। २ गङ्गा। (रामायण १।८।१३) ३ नौ दुर्गाओंमेंसे एक दुर्गाका नाम।
शैलपुर (स० क्ली०) नगरभेद।
शैलपुष्प स० क्ली०) असफाल्ट (Ashphalt) नामक अलकतरेके समान एक प्रकारका पदार्थ। (सुश्रुत)
शैलप्रतिमा (स० स्त्री०) प्रस्तर प्रतिमूर्त्ति।
शैलप्रस्थ (स० पु०) अधित्यका। (रामा० २।६४।११)
शैलबाहु (स० पु०) असुरभेद।
शैलबीज (स० पु०) भल्लातक, भिलावा।
शैलभित्ति (स० स्त्री०) शैलाना भित्तिर्भेदो यस्या। टङ्क, सोहागा।
शैलभेद (स० पु०) अश्मभेद, पाषाणभेद।
शैलमय (स० त्रि०) शैल स्वरूप या विकारे मयट्। शैलस्वरूप या शैलविकार।
शैलमल्ली (स० स्त्री०) कुटज, करैया।
शैलमृग (स० पु०) मृगविशेष पहाड़ी हिरन।
शैलरन्ध्र (स० क्ली०) पहाड़ी गुफा।
शैलराज (स० पु०) शैलाना राजा टच समासान्त। हिमालय पर्वत।
शैलराजसुता (स० स्त्री०) शैलराजस्य सुता। १ दुर्गा, पार्वती। २ गङ्गा। (भारत ३।१०।६४)
शैलरोही (स० पु०) मोगरा चावल।
शैलवर (स० पु०) शैलश्रेष्ठ, हिमालय पर्वत।
शैलवल्कला (स० पु०) शैले शिलावल्कलं यस्या। १ शिलावल्कला। २ शैलज, छरीला। ३ श्वेतपाषाण भेद।
शैलशिखा (स० स्त्री०) एक प्रकारका छन्द। इसके प्रत्येक चरणमें १६ अक्षर होते हैं जिनमेंसे पहला, चौथा, छठा दसवां, तेरहवां और सोलहवां वर्ण गुरु और बाकी सभी वर्ण लघु होते हैं।
शैलशिबिर (स० क्ली०) शैलाना शिबिरमिव समुद्र गर्भे बहुपर्वतावस्थानत्वात् तथात्व। समुद्र सागर। कहते हैं, कि जब इन्द्रने पर्वतों पर चढ़ाई की थी, तब कुछ पर्वत समुद्रमें जा छिपे थे। इसीसे समुद्रका यह नाम पड़ा है।
शैलशृङ्ग (स० क्ली०) पर्वतका शिखर।
शैलसन्धि (स० पु०) उपत्यका।
शैलसम्भव (स० क्ली०) शिलाजतु, शिलाजीत।
शिलासम्भूत (स० क्ली०) गैरिक, गेरू।
शैलसर्वज्ञ—एक प्राचीन कवि।
शैलसार (स० पु०) शैल सदृश दृढ।
शैलसुता (स० स्त्री०) शैलस्य सुता। १ पार्वती, दुर्गा। २ ज्योतिष्मती लता।
शैलसेतु (स० पु०) १ पत्थरकी बना हुआ सेतु या पुल। २ पत्थरका पुल।
शैलाख्य (स० क्ली०) शैलमिति आख्या यस्य। शैलज, छरीला।
शैलाग्र (स० क्ली०) शैलस्य अग्र। पर्वतका अग्रभाग शिखर, चोटी।
शैलाज (स० क्ली०) शैलादाजायते इति आ जन ड। शैलेय, छरीला।
शैलाट (स० पु०) शैले अटतीति अट अच्। १ पहाड़ी

आदमी, परवतिया। २ सिंह। ३ स्फटिक, बिल्लौर। ४ किरात।

शैलाद (सं० पु०) शिलाद ऋषिका गोत्रापत्य।

शैलादि (सं० पु०) शिवके गण, नन्दी।

शैलाधिराज (सं० पु०) शैलस्य अधिराजः। नगाधिराज, हिमालय।

शैलाभ (सं० पु०) विश्वदेवभेद।

शैलाल (सं० क्ली०) शिलालकृत नटसूत्रग्रन्थ अथवा उसका अध्ययन करनेवाला।

शैलालय (सं० पु०) भगदत्तराज, प्राग्ज्योतिषके राजा। (भारत १५ प०)

शैलालि (सं० पु०) एक वैदिक आचार्यका नाम। (शतपथब्रा० १३।५।३३) ये गोत्रप्रवर्त्तक ऋषि थे।

शैलालिन् (सं० पु०) शिलालिना प्रोक्तं नटसूत्रमधीते इति शिलालि (पाराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षु नटसूत्रयोः। पा ४।३।११०) इति णिनि। शिलाली, नट। (अमर)

शैलोसा (सं० स्त्री०) पार्वती।

शैलाह्व (सं० क्ली०) शैल इति आह्वा यस्य। शिलाजतु, शिलाजीत।

शैलिक (सं० पु०) एक जाति और एक देशका नाम।

शैलिक्य (सं० पु०) सर्वलिङ्गी। (जटाधर)

शैलिन (सं० पु०) एक आचार्यका नाम।

शैलिनि (सं० पु०) शैलिन ऋषि।

शैली (सं० स्त्री०) शीलस्येयमिति शील-अण्, ङीप्। १ चाल, ढब, ढङ्ग। २ रीति, प्रथा, रस्म, रवाज। ३ प्रणाली, परिपाटी, तर्ज, तरीका। ४ वाक्यरचनाका प्रकार। ५ कठोरता, कड़ाई, सख्ती। ६ शिलाप्रतिमा, पत्थरकी मूर्त्ति।

शैलू (हि० पु०) १ लिसोड़ा, लभेरा। (स्त्री०) २ एक प्रकारकी चटाई जिसका व्यवहार दक्षिण और गुजरातमें होता है।

शैलूक (सं० पु०) १ वहुवार वृक्ष, लिसोड़ा। २ कमलकन्द, मसींड़।

शैलूकी (सं० स्त्री०) कमलकन्द, मसींड़।

शैलूत (सं० क्ली०) स्थानभेद।

शैलूष (सं० पु०) शिलूषस्यापत्यमिति शिलूष अण्। १ अभिनय करनेवाला, नट। २ बिल्ववृक्ष, बेलका पेड़। ३ धूर्त्त, चालाक। ४ गन्धर्वोंका स्वामी, रोहिनण। ५ तालधारक।

शैलूषक (सं० पु०) शैलूषाणां विषयो देशः (राजन्यादिभ्यो वुञ्। पा ४।२।५३) शैलूषोंका देश। शैलूष स्वार्थे कन्। २ शैलूष देखो।

शैलूषभूषण (सं० पु०) हरिताल, हरताल।

शैलूषिक (सं० पु०) नटवृत्त्यन्वेषी, नटवृत्तिसे जीवन निर्वाह करनेवाली एक जाति।

शैलूषिकी (सं० स्त्री०) शैलूषिक जातिकी स्त्री, नट जातिकी स्त्री। प्रायश्चित्ततत्त्वमें लिखा है, कि ज्ञानतः इस जातिकी स्त्रीके साथ गमन करनेसे दो चान्द्रायण, अज्ञानतः होनेसे एक चान्द्रायण करे। इस चान्द्रायणका अनुरूप आठ धेनुदान है।

शैलेन्द्र (सं० पु०) शैलानामिन्द्रः। हिमालय, शैलराज।

शैलेन्द्रस्थ (सं० पु०) शैलेन्द्रे तिष्ठतीति स्था क। भूर्ज्जवृक्ष, भोजपत्र।

शैलेय (सं० क्ली०) शिलायां भवं शिला ढक्। १ शैलजाख्य, गन्धद्रव्य। शैलज देखो। २ तालपर्णी, मूसली। ३ सैन्धव लवण, सेंधा नमक। (पु०) ४ सिंह। ५ भ्रमर, भौंरा। (त्रि०) शैले भवं शिला-ढक्। ६ शैलसम्भव, शिलासे उत्पन्न। ७ पत्थरका, पथरीला। ८ पहाड़ी। शिलेव (शिलायाः ढः। पा ५।३।१०२) इति ढ। ९ शिला सदृश, पत्थरके समान।

शैलेयक (सं० पु०) शैलेय देखो।

शैलेयी (सं० स्त्री०) शैले भवा शैल-ढक्-ङीष्। पार्वती। (त्रिका०)

शैलेश (सं० पु०) शैलस्य ईशः। शैलेश्वर, पर्वतपति, हिमालय।

शैलेशलिङ्ग (सं० क्ली०) हिमालय कर्त्तृक प्रतिष्ठित शिवलिङ्गभेद।

शैलेश्वर (सं० पु०) शिव, महादेव।

शैलोदा (सं० स्त्री०) उत्तर दिशाकी एक नदी।

शैलोत्थगरल (सं० क्ली०) पाषाणघातजन्य विष।

शैलोद्भवा (सं० स्त्री०) शैलादुद्भवो यस्याः। क्षुद्र पाषाणभेदी, पत्थरचूर।

शैलेय (सं० त्रि०) शिलाया इदं शिला-ढञ्। १ शिला सम्बन्धी, पत्थरका। २ पथरीला। ३ कठोर कड़ा।

शैव (सं० क्ली०) शिवमधिकृत्य कृतो ग्रन्थ शिव अण्। १ शिवपुराण। पुराण शब्दमें विशेष विवरण देखो।

२ शैवाल। (पुंस्त्री०) (त्रि०) शिवस्येदमिति शिव अण्। ३ शिवसम्बन्धी। (पु) ४ धत्तुर, धत्तुरपुष्प। ५ धुस्तुर, धतूरा। (राजनि०) ६ आचारविशेष। आचारभेदतन्त्रमें लिखा है कि अष्टाङ्ग योग से युक्त हो कर विधि अनुसार देवार्च्चा उद्देशसे उपासना की जाती है और जब तक ध्यान तथा समाधि न हो जाती है तब तक उसे शैव आचार कहते हैं।

७ शिवो देवता अस्य शैव। शिवके उपासक शैव कहलाते हैं। वैष्णव सम्प्रदायकी तरह शैव सम्प्रदाय भी अत्यन्त प्राचीन है। वेदमें जिनका नाम रुद्र लिखा गया है पुराणमें वही शिवके नामसे प्रसिद्ध हैं। शैव सम्प्रदायके प्राचीनत्व सब धर्मशास्त्रोंके अन्दर बहुत प्रमाण पाये जाते हैं। इसके सम्बन्धमें शिव और लिङ्ग शब्द देखो। वेद, पुराण प्रभृति ग्रन्थोंके अतिरिक्त नाटकोंके मध्य मृच्छकटिक नाटक बहुत प्राचीन है। इस मृच्छकटिक नाटकमें लिखा है—

"पातु वो नीलकण्ठस्य कण्ठः श्यामाम्बुदोपमः।
गौरी भुजलता यत्र विद्युल्लेखेव राजते॥"

मृच्छकटिक नाटकके दूसरे दूसरे स्थानोंमें भी शैव धर्मकी प्रधानता प्रकाश करनेवाले श्लोकप्रमाण देखे जाते हैं। यथा—

"वनानि यास्तु शिलिन्ध्रि महीध्र केदारेषु वालेषु शिलोच्चयेषु।
अक्रोश विक्रोश नराहि चण्ड शम्भ शिव शङ्करमाशाल या।"

ईसाके जन्मसे बहुत समय पहले से इस देशमें शिवकी पूजा होती आ रही है यह सब लोग स्वीकार करते हैं। बहुत प्राचीन शिलालिपियोंमें शिवका नाम और उनके रूपका सन्निवेश देखे जाते हैं। मृच्छकटिक नाटकके पढ़नेसे पता चलता है कि शूद्रक राजाके समय शिव नामाङ्कित मुद्रा प्रचलित थी।

सुविख्यात चीनदेशीय परिव्राजक यूएन चुआङ्गने अपने तीर्थभ्रमणग्रन्थमें शैवोंके कीर्त्तिकलापका अनेक परिचय दिया है। वे ६४५ ई०में यहां आये थे। उन्होंने काशी, कन्नौज, कराची, मलवार, कन्धार प्रभृति बहुत से स्थानोंमें शिव और शिवमन्दिर देखे थे। उनमें कई स्थानों पर उन्हें पाशुपत नामक एक उन्नत शैव सम्प्रदाय देखनेमें आया। उन सब सम्प्रदायोंका विवरण इसके बाद वर्णन किया जायगा।

यूएनचुयंग कहते हैं — मैंने काशीधाम जा कर सुन्दर शिवमन्दिरोंका सन्दर्शन किया है। किसी एक मन्दिरमें सर्वावयवसम्पन्न पित्तलसे गढ़ा हुआ न्यूनाधिक छियासठ हाथ लम्बी एक शिवमूर्त्ति देख कर मैं विस्मित हो गया। इस मूर्त्तिका भाव प्रसन्न और गम्भीर था, देखते ही हृदयमें भय और भक्तिका सञ्चार होता था। यह अत्यन्त प्राचीन होने पर भी मुझे बिलकुल नवीन सी प्रतीत हुई।"

पराक्रान्त गुप्तवंशीय राजे चौथी सदीमें राज्य करते थे। वे शिवभक्त थे। उनकी प्रचलित मुद्राओंमें वृष, त्रिशूल और सिंहवाहिनी प्रभृति चित्र अङ्कित थे। ४०० ई०में भी सौराष्ट्रीय राजाओंकी मुद्राओंमें वृष त्रिशूलादि का चित्र देखा जाता है।

विक्रमादित्य सम्बन्धीय अनेक कहानियोंमें शिव और शिवशक्ति सम्बन्धीय कई प्रसङ्ग परिलक्षित होते हैं। शक, जाट, हूण प्रभृति जातिके लोग ईसवी सन्के पहलेसे ही शिवोपासक थे। उनके राजाओंकी मुद्राओंमें भी शिव वृष और त्रिशूलादि चित्र अङ्कित थे।

दाक्षिणात्यके पाण्ड्य और चोल वंशीय राजाओंने ईसाके जन्मसे बहुत काल पहले शिवमन्दिर और शिवमूर्त्तिकी प्रतिष्ठा कर शैवप्रभाव विस्तार किया था। शाक्यमुनिके जन्मसे बहुत पहले इस देशमें शिवकी उपासना प्रचलित था। बुद्धदेवके प्रायः समसामयिक बौद्धग्रन्थोंमें भी शिव, ब्रह्मा आदिके नामका उल्लेख है।

गौड़के पालवंशीय अनेक राजे बौद्धधर्मावलम्बी थे, पर उनके हृदयमें भी शैव धर्मका असर था। भागलपुरमें प्राप्त नारायणपालके ताम्रशासनमें लिखा है, कि वे पाशुपतोंके लिये एक बृहत् शिवमन्दिरका

प्रतिष्ठा की थी। उन्होंने शिवभट्टारकके 'पूजावलिचरुसत्रनवकर्मार्थं' तथा पाशुपताचार्यों के 'शयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्कारार्थं' उक्त दानपत्रोंमें यथेष्ट भूमिदान किया था। १०वीं शताब्दीके प्रारम्भकालमें नारायणपालका अभ्युदय हुआ था। उस समयमें ही इस देशमें शैवपाशुपतोंका प्रभाव जम चला था।

केवल भारतवर्षमें ही नहीं, दूसरे दूसरे देशोंमें भी शैवप्रभाव फैल चुका था। बलुचिस्तानके अन्तर्गत हिंगलाज हिन्दुओंका एक प्रसिद्ध तीर्थस्थान है। अब भी शैव और शाक्त लोग उस तीर्थमें जाते हैं। बाली और यवद्वीपमें बहुत प्राचीन समयसे ही हिन्दूलोग आते जाते हैं। यवद्वीपके अन्तर्गत प्रम्बनन नामक स्थानमें दो सौ से भी अधिक देवमन्दिर वर्त्तमान हैं। यहां शिव, गणेश, दुर्गा और सूर्य प्रभृति देवताओंकी पीतल और पत्थर की बनी मूर्त्तियां देखी जाती हैं। बालिद्वीपमें शिवकी उपासना सर्वोंसे अधिक प्रचलित है।

भारतवर्षके दाक्षिणात्यमें भी शैवोंका समधिक प्रादुर्भाव है। इसके अतिरिक्त उत्तर और उत्तर पश्चिमांचलमें भी बहुतसे शिवोपासक हैं। शैवोंके अनेक शिव मन्त्र हैं, यथा—एकाक्षर मंत्र "ह्रौं" त्रिअक्षर मन्त्र "ओं जुं सः" इसका नाम मृत्युञ्जय मन्त्र है। चतुरक्षर मन्त्र 'ओं हुं फट्' यह चण्डमन्त्र कहलाता है। पञ्चाक्षर मन्त्र "नमः शिवाय" षडक्षर "ओं नमः शिवाय" इस प्रकार बीस अक्षर तकके मन्त्र देखे जाते हैं। शैव लोग विभूतिलेपन, त्रिपुण्ड्र, तिलक और रुद्राक्षधारण बहुत प्रयोजनीय समझते हैं।

योगसारग्रन्थमें लिखा है—

"शिखायां हस्तयो कण्ठे कर्णयो श्चापि यो नरः।
रुद्राक्षं धारयेद्भक्त्या शिवलोकमवाप्नुयात् ॥"

अर्थात् शिखामें, दोनों हाथोंमें, कण्ठमें और दोनों कानोंमें जो मनुष्य भक्तिपूर्वक रुद्राक्ष धारण करते हैं, वे शिवलोकको प्राप्त होते हैं।

शैव लोग सम्बिद् सेवन इष्टसाधनाका एक अंग मानते हैं। साधक ध्यान और शुद्धिपूर्वक सम्बिद् पान करते हैं। शैवगण जल मिश्रित विजया और विजया धूम पान करनेके भी पक्षपाती हैं। प्राणतोषिणीमें इस शास्त्रीय प्रमाण उद्धृत देखा जाता है।

बंगालमें यद्यपि ब्राह्मणोंके मध्य अनेकों शिवपूजक हैं, तथापि दाक्षिणात्यकी तरह इस देशमें शैव प्रभाव परिलक्षित नहीं होता। दाक्षिणात्यमें कई प्रकारके शैव-सम्प्रदाय देखे जाते हैं। इनमें अभेद, भेद, अनादि, अणु, अन्तर आदि भेद, गण, क्रिया, महानन्दपद, निर्गुण, न्यून, ऊर्द्ध्व, शुद्ध और योग प्रभृति सम्प्रदायोंके नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

दाक्षिणात्यमें शिवमन्दिरोंमें साधारणतः शिवलिंगकी प्रतिमाकी ही पूजा होती है। वहां सैकड़ों शिवमन्दिर हैं। बम्बईकी अपेक्षा मन्द्राजमें ही शैवोंकी संख्या अधिक है। मन्द्राजमें प्रतिवर्ष अनेक शिवोत्सव अत्यन्त समारोहके साथ सम्पन्न किये जाते हैं। पहले ही कहा गया है, कि त्रिपुण्ड्र, तिलक, और रुद्राक्ष शैवोंके प्रधान चिह्न हैं। शैवोंके विविध सम्प्रदायोंमें अन्यान्य विषयोंके अन्दर थोड़ा थोड़ा मतभेद रहने पर भी इन दोनों प्रधान चिह्नोंके धारण करनेमें कोई मतभेद नहीं है। काश्मीर और राजपूतानेमें शैवोंका पूरा प्रभाव है। इसके बाद राजपूतानेके एकलिंग शिवके विषयकी आलोचना अच्छी तरह की जायगी।

काश्मीर, पंजाब, उत्तर पश्चिम प्रदेश और राजपूतानेके शैव ब्राह्मण मत्स्य मांस आहार एवं सम्बिद् पान करते हैं। काश्मीरके प्रामाण्य ग्रन्थ नीलमतपुराणमें सम्बिद्पानकी व्यवस्था देखी जाती है। शैव आगममें भी इस प्रकारके व्यवहारका अभाव नहीं है। प्राचीन समयसे ही काश्मीरमें शैव धर्मका प्रभाव परिदृष्ट होता है। महाराष्ट्र और गुजरात अञ्चलमें स्मार्त्त ब्राह्मण लोग बंगाल स्मार्त्त ब्राह्मणोंकी तरह शिवपूजा करते तो हैं, किन्तु उनमेंसे कितने ही लोग शिवमन्त्रकी दीक्षा ग्रहण नहीं करते। काश्मीरके ब्राह्मण विधिपूर्वक शिवमन्त्र ग्रहण करते हैं एवं उपयुक्त प्रणालीसे दीक्षित होते हैं। कलादीक्षा ग्रन्थमें इस दीक्षाप्रणालीका विस्तृत विवरण विवृत है।

ऐसा लिखा है, कि प्राचीनकालमें शिव उपासकोंके मध्य केवल पाशुपत सम्प्रदाय ही था। महाभारतमें पाशुपत शैवके सिवाय दूसरे किसी शैव सम्प्रदायका नाम नहीं पाया जाता। किन्तु हमें श्रीभाष्यमें

(२।२।३८) शिवोपासकोंके चार सम्प्रदायोंका परिचय मिलता है। यथा—कापाल, कालामुख, पाशुपत और शैव। शंकरभाष्यके टीकाकार गोविन्दानन्द एवं वाचस्पति मिश्र (ब्रह्मसूत्र २।२।३७) इन दोनोंने ही चारों सम्प्रदायोंका नामोल्लेख किया है। वाचस्पति मिश्र कहते हैं—

"माहेश्वरश्चत्वार:—शैवा: पाशुपता: कारुणिकसिद्धान्तिन: कापालिकाश्चेति चत्वारोऽप्यमी महेश्वरप्रणीतसिद्धान्तानुयायितया माहेश्वरा:।"

गोविन्दानन्दने लिखा है—

"चत्वारो माहेश्वरा:—शैवा: पाशुपता: कारुणिकसिद्धान्तिन: कापालिकाश्चेति। सर्व्वेऽप्यमी महेश्वरप्रोक्तागमानुगामित्वान्माहेश्वरा उच्यन्ते।"

आनन्दगिरिने भी इन चारों सम्प्रदायोंका नामोल्लेख किया है।

मायणाचार्यके सर्वदर्शनसंग्रहग्रन्थमें भी शिवोपासक लोगोंके दर्शनके नाम देखे जाते हैं, यथा—

१ लकुलीशपाशुपतदर्शन।
२ शैवदर्शन।
३ प्रत्यभिज्ञा।
४ रसेश्वरदर्शन।

लकुलीश पाशुपत सम्प्रदायकी उत्पत्ति एवं उस सम्प्रदायके दर्शनशास्त्रके सम्बन्धमें सबसे पहले आलोचना करती हैं। 'लकुलीश-पाशुपत' नाम ही सर्व प्रथम आलोचनाके योग्य है। "लकुलीश" शब्द किस प्रकार प्रचलित हुआ उसके इतिहासका पता नहीं चलता। किन्तु प्राचीन अनुशासन और शिलालिपिमें 'नकुलीश पाशुपत'का नाम पाया जाता है। पुराणादिमें भी इस नामकी उत्पत्तिका इतिहास वर्णित है। यद्यपि सर्वदर्शनसंग्रहमें इस सम्प्रदायके दार्शनिकतत्त्वके सम्बन्धमें कितनी ही कहानियां उल्लिखित हैं तथापि इस सम्प्रदायकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें कोई निश्चितरूपसे सदुत्तरादि प्रदान नहीं करते।

इस समय इस सम्बन्धमें एक अभिनव ऐतिहासिक प्रमाण प्रत्नतत्त्वविदोंको मालूम हो सका है और उपस्थित हुआ है। मेवाड़के अन्तर्गत उदयपुरसे १४ मील दूर एक लिंगजीका मंदिर है। एकलिंग नामसे अति सुप्रसिद्ध लिंग है। इसके पास ही नाथजीका एक मंदिर है। इस मंदिरकी पूर्वी दीवारमें एक शिलालिपि है। उसके प्रथम छत्रमें स्पष्टरूपसे लिखा है—

"ओम् ओम् नमो लकुलीशाय।"

यहां सबसे पहले 'लकुलीश' शब्द देख कर मनमें एक प्रकारका सन्देह पैदा होता है, कि 'नकुलीश' नाम तो सबका विदित है। तब "लकुलीश" शब्द क्या लिपिकर प्रमाद है? किन्तु इस शिलाका आद्योपान्त पढ़नेसे यह भ्रम दूर हो जाता है। उसमें लिखा है—मेकलकन्दिनी नर्मदातीरवर्त्ती भृगुकच्छ (भरोच) देशमें किसी समय सुरसिद्ध विष्णु द्वारा भृगुमुनि अभिशप्त हुए। भृगु गतिका उपाय न देख महादेवकी आराधनामें प्रवृत्त हुए। महादेव उनकी आराधनासे सन्तुष्ट हो कर लकुल वा लगुड़ धारण कर उनके सामने अवतीर्ण हुए। उस समयसे ही महादेव 'लकुलीश' नामसे विख्यात हुए। जिस स्थान पर उनका यह लकुलीशरूपका आविर्भाव हुआ, उसी स्थानका नाम—"कायावरोहण" है। पाशुपतयोगाचारज्ञ कौशिक प्रभृति कितने ही शिवभक्त योगियोंने अवमग्राममें इस लकुलीश शिवका मन्दिर निर्माण किया। विक्रम सम्वत् १०२८में अर्थात् ९७१ ई०में यह शिलालिपि उत्कीर्ण हुई थी।

लकुलीश महादेवके आविर्भावके सम्बन्धमें और भी एक प्रमाण शिला-प्रशस्तिमें देखा जाता है, यथा—उलूकके पुत्रने पिताके शापसे निष्पुत्र हो कर महादेवकी तपस्या की। करुणहृदय महादेव उनकी आराधनासे सन्तुष्ट हो कर भट्टारक श्रीलकुलीश रूपमें गदा धारण किये लाटा प्रदेशके कायारोहण नामक स्थानमें अवतीर्ण हुए। उस समय कौशिक गार्ग्य, कौरुष एवं मैत्रेय नामक चार शिष्य भी आविर्भूत हुए थे। ये चारों शिवोपासक सम्प्रदायके प्रवर्त्तक थे।

उक्त दोनों शिलालिपियोंसे स्थिर हुआ है, कि "लकुलीश" शिवका आविर्भाव स्थिर किया जाता है। वे कायावरोहणमें आविर्भूत हुए थे। बरोदाके डाभय तालुकके अन्तर्गत कारवण नामक स्थान कायावरोहणका ही अपभ्रंश नाम है। लकुलीशके चार शिष्योंके द्वारा चार शैव सम्प्रदायोंकी प्रवर्त्तना हुई।

कोई कोई कहते हैं—९४३ ई०में मुनिनाथ चिल्लुकने ही महिसुरमें लकुलीशका अवतार धारण किया था और उन्हींके द्वारा लकुलीश पाशुपत सम्प्रदायकी उत्पत्ति हुई।

जो कुछ भी हो, लकुलीश अवतारके संबंधमें ब्रह्माण्ड पुराण और लिङ्गपुराणमें थोड़ा थोड़ा आभास पाया जाता है। इस विषयका कुछ अंश लिङ्गपुराणसे लेकर यहां उद्धृत किया जाता है। यथा -

"अष्टाविंशे पुनः प्राप्ते परिवर्त्ते क्रमागते ॥
पराशरसुतः श्रीमान् विष्णु र्लोकपितामहः।
यदा भविष्यति व्यासो नाम्ना द्वैपायनः प्रभुः॥
तदा षष्ठेन चांशेन कृष्णः पुरुषसत्तमः।
वसुदेवाद् यदुश्रेष्ठो वासुदेवो भविष्यति ॥
तदाप्यहं भविष्यामि योगात्मा योगमायया।
लोकविस्मयनार्थाय ब्रह्मचारिशरीरकः ॥
श्मशाने मृतमुत्सृष्टं दृष्ट्वा कायमनाथकम्।
ब्राह्मणानां हितार्थाय प्रविष्टो योगमायया ॥
दिव्यां मेरुगुहां पुण्यां त्वया सार्द्धं च विष्णुना।
भविष्यामि तदा ब्रह्मन् लकुली नाम नामतः ॥१२६॥
कायावतार इत्येवं सिद्धक्षेत्रं च वै तदा।
भविष्यति सुविख्यातं यावद्भूमि र्धरिष्यति ॥
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति तपस्विनः।
कुशिकश्चैव गर्गश्च मित्रः कौरुष्य एव च ॥
योगात्मानो महात्मानो ब्राह्मणा वेदपारगाः।
प्राप्य माहेश्वरं योग विमलाह्यूर्ध्वरेतसः।
रुद्रलोकं गमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम्।
एते पाशुपताः सिद्धा भस्मोद्धूलितविग्रहाः ॥"

(लिङ्गपुराण २४ अ० १२४—१३३ श्लोक)

सुतरां लिङ्गपुराणके अनुसार मालूम होता है, कि 'लकुलीश' महादेवका अट्ठाइसवां वा शेषावतार है। लिङ्गपुराणके इस वृत्तान्तके साथ पूर्वोल्लिखित शिलालिपियोंमें थोड़ा अन्तर रहने पर भी असल बात विलकुल मिलती है। कूर्मपुराणमें भी महादेवके लकुलीश्वर अवतारका उल्लेख है एवं इस पुराणमें भी चारों शिष्यों के नाम दिये गये हैं।

राजपूतानेमें कहीं कहीं 'लकुलीश' की मूर्त्तियां देखी जाती हैं। राजपूतानेके अतिरिक्त नर्मदातीरवर्ती मान्धाता नामक स्थानमें भी एक लकुलीशकी मूर्त्ति है। दाक्षिण-भारतमें किसी समय लकुलीश मूर्त्तिकी पूजा होती थी। वलगामी नामक स्थान लकुलीशकी आराधनाका केन्द्रस्थान था।

महिसुरके कालामुख शैवगण सम्भवतः लकुलीशके उपासक थे। ये "लकुलागमसमय" नामक ग्रन्थके सिद्धान्तको मान कर चलते हैं। महिसुरके दक्षिण केदारेश्वरका शिवमन्दिर अत्यन्त प्रसिद्ध है। इस शिवमन्दिरके गुरुवंशकी गुरुप्रणालिकासे जाना जाता है, कि कोडिय मठमें कई विद्वान् गुरु थे। प्रथम गुरुका नाम केदारशक्ति था और इनके शिष्यका नाम श्रीकंठ। सम्भवतः इस श्रीकंठने ही वेदान्तसूत्रके एक भाष्यग्रन्थकी रचना की थी। यह भाष्यग्रन्थ श्रीकंठ भाष्यके नामसे विख्यात है। यह श्रीरामानुज सिद्धान्तकी तरह विशिष्टाद्वैतवाद सिद्धान्तमय है। श्रीकंठके शिष्यका नाम सोमेश्वर, उनके शिष्यका नाम गौतम, उनके शिष्यका नाम वामाशक्ति एवं वामाशक्तिके शिष्यका नाम ज्ञानशक्ति था। वलगामीमें कई शिलालिपियां पाई गई हैं। इन सब शिलालिपियोंमें कोडिया मठके गुरुओंकी विद्याबुद्धिका यथेष्ट परिचय पाया जाता है। इसकी एक शिलालिपिमें लिखा है, कि सोमेश्वरने लकुलसिद्धान्तका विकाश साधन किया है। दूसरी शिलालिपिमें सर्वप्रथम लकुलीश महादेवकी वन्दना है। गुरुपाद् वामशक्तिके सम्बन्धमें भी एक शिलालिपि देखी जाती है। उसमें लिखा है, कि ये व्याकरणमें पाणिनिकी तरह राजनीतिमें श्रीभूषणाचार्यके समान, नाटकालंकारमें भरतमुनि जैसे, काव्यमें सुबन्धुकी तरह, एवं सिद्धान्तमें लकुलीश्वरके समान विद्वान् थे। लकुलागमसिद्धांतमें ये अति सुदक्ष थे, यह बात एक दूसरी शिलालिपिमें लिखी है। इन शिलालिपियोंके द्वारा स्पष्ट मालूम पड़ता है, कि दक्षिण केदारेश्वरके मन्दिरके आचार्यगण लकुलीशके उपासक थे। यद्यपि पुराणोंमें लकुलीश महादेवका अवतार बतलाया गया है, तथापि वे मनुष्यका शरीर धारण कर मनुष्यकी तरह विचरण करते थे, इसका भी प्रमाण पाया जाता है। दाक्षिणात्यके मुनिनाथ

चिल्लुक लकुलीशके अवतार माने जाते हैं। सर्वदर्शन संग्रहकारने लकुलीश दर्शनका सूचनामें लिखा है—"तदुक्तं भगवता ल(न)कुलीशेन।"

हेमाचली शिलालिपिके पाठ करनेसे मालूम पड़ता है, कि मुनिनाथ चिल्लुक ही लकुलसिद्धान्त और लकुलागम के शिक्षक थे। कोडिय मठके गुरुगण पातंजलोक योग शिक्षा प्रदान करते थे। सुतरां लकुलसिद्धान्तयोग से मिश्रित है। इसलिये ही लकुलीश पाशुपतदर्शनमें पाशुपतयोगका यथेष्ट परिचय मिलता है।

महाभारतके शान्तिपर्वमें सांख्य, योग, पाञ्चरात्र, वेद (आरण्यक) और पाशुपत इन पांच प्रकारके मतवादों का उल्लेख है। श्रीरामानुज कहते हैं, कि दक्षिण भारतके कालामुखगण लगुड़ो धारण करते हैं। सम्भवतः ये लोग लकुलीशका अनुकरण करके ही सम्प्रदाय का चिह्नस्वरूप लगुड व्यवहार करते हैं। दक्षिण भारतमें 'गगन शिव' नामक एक शैव सम्प्रदाय है। यह सम्प्रदाय लकुलीश सम्प्रदायके अन्तर्भुक्त नहीं है। इन लोगोंके सिद्धान्तका नाम लकुलिनिगमसिद्धान्त अथवा शिव सिद्धान्त है।

दक्षिण भारतका लकुलीशसम्प्रदाय दो भागोंमें विभक्त है। यथा—प्राचीन और नवीन। लकुलीश सिद्धान्तके नष्ट हो जानेकी आशंकासे लकुलीशने मुनि नाथ चिल्लुकका अवतार धारण कर जिस सिद्धान्तका प्रचार किया था, दक्षिण भारतमें वही नवीन लकुलीश सिद्धान्तके नामसे विख्यात है।

हम इसके पहले कह चुके हैं कि सर्वदर्शनसंग्रहमें नकुलीशपाशुपतदर्शन रसेश्वरदर्शन, प्रत्यभिज्ञदर्शन और शैवदर्शन भेदसे शैवसम्प्रदायके चार दर्शन प्रचलित हैं। प्रयुक्त तीन दर्शनका सार मर्म उन शब्दोंमें देखो। यहां शैवदर्शनका संक्षिप्त सिद्धान्त प्रकाश किया जाता है।

इस दर्शनके मतानुसार शिव ही परमतत्त्व परमेश्वर हैं और जीव समुदाय 'पशु' है। शैवगण कहते हैं कि परमेश्वर कर्मादिके सापेक्षकर्त्ता हैं। परमेश्वर जीवके कर्मोंका अनुरूप फल प्रदान करते हैं। परमेश्वरने एक ओर जिस प्रकार ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय प्रदान की है, दूसरी ओर उसी तरह विषयकी भी सृष्टि की है। वे केवल अपनी इच्छाके ऊपर संसारकी परिचालनाका भार डाला नहीं रखते। इस जगत्‌में भी जीवोंकी अवस्थाकी नाना प्रकारकी विचित्रताएं परिलक्षित होती हैं। सुतरां भगवान् जो कर्मसापेक्षकर्त्ता हैं, यही सिद्धान्त युक्तिसंगत है।

इस प्रकार कर्मसापेक्षकर्त्ता माननेसे भी परमेश्वरको स्वतन्त्रकर्तृत्वमें किसी प्रकारकी बाधा नहीं पहुंचती। जो किसी दूसरेके बन्धनमें न रह कर अपनी स्वतन्त्र इच्छासे कार्य सम्पादन करते हैं, वे ही स्वतन्त्र कर्त्ता हैं, ईश्वरने अपने कर्तृत्वसे ही जगत्‌की सृष्टि की है।

इन लोगोंका कहना है, कि सभी कार्य किसी न किसी के द्वारा किये जाते हैं यह भी कार्य है अतएव इसके एक सचेतन कर्त्ता अवश्य हैं वे ही परमेश्वर हैं और जो निर्माता हैं, वे शरीरी हैं। सुतरां जगत् निर्माता ईश्वर शरीरवान् हैं। किन्तु प्राकृत शरीर जिस प्रकार अनेक दोषोंसे परिपूर्ण है, ईश्वरका शरीर वैसा नहीं है यह पञ्चमन्त्रात्मक है। ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव और सद्योजात ये पांच मन्त्र क्रमानुसार ईश्वरके मस्तक वदन, हृदय गुह्य और पादस्वरूप हैं। ईश्वर सर्वज्ञ और सर्व शक्तिमान् हैं।

पति, पशु और पाश भेदसे पदार्थ तीन प्रकारका है। भगवान् शिव ही पति हैं और दीक्षादि उपाय ही शिवत्वको प्राप्तिको साधनाएं हैं। पशु पदार्थ जीवात्मा है। जीवात्मा महत् क्षेत्रज्ञादि पदवाच्य देहादिभिन्न सर्वव्यापक, नित्य अपरिच्छिन्न, दुर्ज्ञेय एवं कर्त्ता स्वरूप है। किन्तु जीव नाना प्रकारके हैं। पाश पदार्थ—मल, कर्म, माया और रोधशक्ति भेदसे चार प्रकारका है। स्वाभाविक अपवित्रताका नाम ही मल है। मल ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्तिको आच्छादित रखता है। धर्माधर्मका नाम कर्म है। प्रलयावस्थामें जिसके अन्दर सारे कार्य लीन हो जाते हैं एवं फिर सृष्टिकालके समय जिससे उत्पन्न होते हैं, उसीका नाम माया है। पुरुष गतिरोधक जो पाश है, वही रोधशक्तिके नामसे विख्यात है।

जीवका नाम पशु पदार्थ—यह तीन प्रकारका है—विज्ञानाकल, प्रलयाकल और सकल। केवल मलस्वरूप पाशयुक्त जीवको विज्ञानाकल कहते हैं। मल और कर्म पाशयुक्त जीव प्रलयाकलके नामसे अभिहित है। मलकर्म और मायाबद्ध जीवको सकल कहते हैं।

समाप्त कलुष और असमाप्त कलुष भेदसे विज्ञानाकल जीव दो प्रकारके हैं। इनमें समाप्तकलुष विज्ञानाकल जीवको परमेश्वर दया करके अनन्त सूक्ष्म, एकनेत्र, शिवोत्तम त्रिमूर्त्तिक श्रीकण्ठ तथा शिखण्डी इन आठ विद्येश्वर पदों पर नियुक्त करते हैं। असमाप्तकलुष जीवोंको वे मन्त्रेश्वर बना देते। ये मन्त्र सात करोड़ हैं।

प्रलयाकल जीव भी दो प्रकारके हैं, पक्वपाशद्वय और अपक्वपाशद्वय। पक्वपाशद्वय मुक्तिपद पर पहुंचते हैं और अपक्व पाशद्वयको पुर्य्यष्टक देहधारण कर स्वकर्मानुसार तिर्य्यक् मनुष्यादि विभिन्न योनियोंमें जन्म ग्रहण करना पड़ता है।

मन बुद्धि अहंकार और चित्तस्वरूप अन्तःकरण, भोगसाधन कला काल, नियति, विद्या, राग, प्रकृति और गुण, ये ही सप्त तत्त्व हैं। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश ये पञ्चभूत हैं। इस पञ्चभूतका कारणस्वरूप पंचभूतात्मा है, चक्षुरादि पांच ज्ञानेन्द्रिय और वागादि पाँच कर्मेन्द्रिय है सब पच्चीस तत्त्वात्मक सूक्ष्म देहको पुर्य्यष्टक देह कहते हैं।

इन अपक्व पाशद्वय जीवोंके मध्य जो अधिक पुण्यवान हैं, उन्हें अनन्त महेश्वर दया करके पृथ्वी-पतिका पद प्रदान करते हैं।

सकल स्वरूप जीव भी दो प्रकारके हैं—पक्वकलुष और अपक्वकलुष। उनमें पक्वकलुष जीवोंको महेश्वर द्रवित हो कर मण्डलेश्वरका पद देते हैं। मण्डलेश्वर मण्डल्यादि भेदसे एक सौ अठारह हैं। अपक्व कलुषगण संसारकूपमें पतित होते हैं। यही शैवदर्शनका संक्षिप्त इतिहास है। लिंग, शिव, शाक्तादि शब्दमें अन्यान्य विवरण देखो।

शैवगव (सं० पु०) शिवगुका गोत्रापत्य।

शैवता (सं० स्त्री०) शैवस्य भावः शैव तल्-टाप्। शैवका भाव या धर्म, शिवोपासना, शैवोंका कार्य।

शैवपत्र (सं० क्ली०) बिल्व वृक्ष जिसकी पत्तियां शिव पर चढ़ाई जाती हैं, बेल।

शैवपाशुपत (सं० त्रि०) शिवपशुपतिसम्बंधीय।

शैवपुर (सं० क्ली०) शिवपुरीसम्बन्धी।

शैवपुराण (सं० पु०) शिवपुराण।

शैवमल्लिका (सं० स्त्री०) लिङ्गिनी लता, पचगुरिया।

शैवरूप्य (सं० त्रि०) शिवस्य भूतपूर्वं यत् तत् शिवरूप्यं शिवस्य च (पा ५।३।१०६) शिवस्य सम्बंधी, शिवका भूतपूर्व वस्तु सम्बन्धी।

शैवल (सं० क्ली०) शेते इति शी (शीङो धुक्लक् वलच् वालनः। उण् ४।३८) इति वलच्। १ पद्मकाष्ठ, पद्माख। (पु०) २ शैवाल, सेवार। ३ विंध्यपर्वतका दक्षिणभागवर्त्ती एक पहाड़ या गिरि। (रामायण ४।८८।१२) ४ एक देश। ५ इस देशका निवासी।

शैवलवत् (सं० त्रि०) शैवल अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। शैवलविशिष्ट, शैवालयुक्त।

शैवलित (सं० त्रि०) शैवल तारकादित्वादितच्। शैवाल विशिष्ट, जहां सेवार उत्पन्न हुआ हो।

शैवलिनी (सं० स्त्री०) शैवलमस्या अस्तीति इनि। नदी।

शैवल्य (सं० त्रि०) शैवालयुक्त, सेवारसे भरा हुआ।

शैववायवीय (सं० पु०) शिव और वायु सम्बंधी एक पुराण।

शैवाकवि (सं० पु०) शिवाकु अपत्यार्थे इञ् (पा ४।१।९६) शिवाकुका गोत्रापत्य।

शैवागम (सं० पु०) शैवतन्त्रविशेष।

शैवायन (सं० पु०) शिव-अपत्यार्थे फञ्। (पा ४।१।११०) शिवका गोत्रापत्य।

शैवाल (सं० क्ली०) शी-बाहुलकात् वालञ्। जलद्रव्यविशेष, सेवार। पर्याय—जलनीली, शैवल, शेपाल, शेवल, शावल, जलनीलिका, जलनील, सैवाल, शैवाल, वारिचामर, सलिलकुन्तल, हटपर्णी, अम्बुताल, सरक, जलकेश, कावार, जलज। गुण—शीतल, स्निग्ध, संताप और व्रणनाशक।

शैवाल्य (स० क्ली०) शैवाल स्वार्थे ष्यञ्। शैवाल देखो।

शैवि (स० पु०) शिव ऋषिका गोत्रापत्य।

शैवी (स० स्त्री०) १ पार्वती। २ मनसा नाम्नी देवी। ३ कल्याण, मङ्गल।

शैव्य (स० पु०) १ श्रीकृष्णका एक घोड़ा। २ पाण्डवोंका एक सेनापति। (गीता १।५) (त्रि०) ३ शिव सम्बन्धी शिवका।

शैव्या (स० स्त्री०) १ प्रतीप राजाकी पत्नी। २ अयोध्याके सत्यव्रत राजा हरिश्चन्द्रकी रानी। (भारत ३।१०७।३६)

शैशव (स० क्ली०) शिशोर्भावः शिशु (इगन्तयुग्वान्। पा ५।१।१३१) इति अण्। १ बाल्य अज्ञान बालककी अवस्था बचपन। २ बच्चोंका सा व्यवहार, लड़कपन। (त्रि०) शिशु-सम्बन्धी बच्चोंका। ४ बाल्यावस्था सम्बन्धी बचपनका।

शैशव्य (स० क्ली०) शिशोर्भावः शिशु ष्यञ्। शैशव, बाल्य।

शैशिर (स० पु०) शिशिरे भवो भव शिशिर अण्। १ श्यामचटक श्यामापक्षी। २ ऋग्वेदके एक शाखाप्रवर्त्तक एक ऋषिका नाम। (त्रि०) ३ शिशिर सम्बन्धी। ४ शिशिरमें उत्पन्न।

शैशिरायण (स० पु०) शिशिर ऋषिका गोत्रापत्य।

शैशिरि (स० पु०) शिशिर ऋषिका गोत्रापत्य।

शैशिरिक (स० त्रि०) शिशिरमधीत वेद वा शिशिर (वसन्तादिभ्यष्ठक्। पा ४।२।६३) इति ठक्। शिशिर ऋतुमें अध्ययनकारी।

शैशिरिय (स० त्रि०) शिशिर नामक महर्षिप्रोक्त।

शैशिरियक (स० त्रि०) शिशिर ऋषिका कथित।

शैशिरीय शाखा (स० स्त्री०) ऋग्वेदकी शाकल शाखाओंमेंसे एक।

शैशिरेय (स० पु०) शिशिरका अपत्य एक ऋषिका नाम। ये एक वैदिक आचार्य थे।

शैशुनाग (स० पु०) मगधके प्राचीन राजा शिशुनागका वंशज।

शैशुमारि (स० पु०) शिशुमारका वंशज।

शैशुमार (स० क्ली०) शैशुमार अण्। शिशुमाराकार ज्योतिश्चक्र। (भागवत २।२।२४)

शैश्य (स० पु०) शिश्नमीनारायण।

शैष (स० पु०) शिवमकी शैष्याश्र।

शैषिर (स० त्रि०) शष सम्बन्धी।

शैष्योपाध्यायिका (स० स्त्री०) शिष्योपाध्यायानां भावः कर्म वा, शिष्योपाध्याय (द्वन्द्वमनोज्ञादिभ्यश्च। पा ५।१।१३३) इति वुञ्। शिष्याध्यापना, छात्रको पढ़ाना।

शैसीर (स० पु०) एक प्राचीन जातिका नाम।

शोक (स० पु०) शुच घञ्। चित्तविकलता, इष्टके नाश और अनिष्टकी प्राप्तिसे उत्पन्न मनोविकार। बन्धु बान्धवोंके वियोगजनित मन पीड़ा आत्मीय नाशके लिये मनो दुःख। (भावप्र०) पर्याय—मन्यु शुच् शुचा विलाप, शोचन खेद। (हेम)।

शास्त्रमें लिखा है कि पण्डित व्यक्ति शोच्यविषयमें शोक प्रकट न करे।

स्मृतितत्त्वमें लिखा है, कि मृत व्यक्तिके उद्देशसे शोक नहीं करना चाहिये, करनेसे मृतव्यक्तिकी अधोगति होती है। इस कारण मृत व्यक्तिकी अन्त्येष्टिक्रिया करके शोक दूर करे।

मृत व्यक्तिके अग्निकार्यादि समाप्त कर स्नान तथा उसके उद्देशसे उदकदान करके आत्मीयवर्ग और बन्धुमण्डली कोमल तृणमय भूभाग पर बैठें। पीछे वृद्धगण प्राचीन आख्यानोंसे उसका शोक दूर करें। जो व्यक्ति प्राणियोंके कदलीस्तम्भ स्वरूप निःसार जलबुद्बुद जैसे क्षणभंगुर अस्तित्वके ऊपर स्थिरता आरोप करता है वह अत्यन्त मूढ़ है। पूर्वजन्ममें पञ्चभूतसे शरीरके साहाय्यसे उपार्जित कर्मफलसे भूमि जल, तेज वायु और आकाश यह पञ्चभूत निर्मित देह फिर यदि पञ्चभूतमें मिल जाय मिट्टीका ढेला मिट्टीमें गिर जाय, गण्डूष जल समुद्रजलमें निमित हो, यदि क्षीणदीपालोक चन्द्रालोकमें मिल जाय प्राण सु मरुत्शक्तिमें विलुप्त हो जाय घटादिके भीतर का क्षुद्र आकाश अनन्त विस्तृतमय महाकाशमें विलीन हो जावे, तो फिर उसके लिये शोक हो क्यों? जब एक दिन इस अचला वसुमतीको भी विनष्ट होना पड़ेगा

उत्तुङ्ग तरङ्गमालासङ्कुल अगाध जलराशिको भी काल-सागरमें निमग्न होना होगा, अजर अमर देवगण भी कालके हाथसे परित्राण न पायेंगे, तब तुच्छ पार्थिव प्राणि-वृन्दकी बात ही क्या। ये सब क्या विना नष्ट हुए रह सकते? विशेषतः बंधुबांधव रोदनके समय जो कफ और नयन जल छोड़ते हैं, इच्छा नहीं रहते हुए भी प्रेतको वह भोजन करना पड़ता है। अतः इस समयमें भी रोदन करना उचित नहीं। केवल उसको जिसमें सद्गति हो, अपनी शक्तिके अनुसार उसका पारलौकिक कार्य करना ही कर्त्तव्य है।

वृद्ध व्यक्तियोंको चाहिये, कि इत्यादि प्रकारसे शास्त्र वाक्यका उपदेश दे कर सबोंका शोक दूर करें।

गीतामें भी भगवानने अर्जुनसे कहा है—

"अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः॥
अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्य्योऽयमुच्यते।
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि॥
अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतं।
तथापित्वं महाबाहो नैनं शोचितुमर्हसि॥
जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्य्येऽर्थे नत्वं शोचितुमर्हसि॥"

इत्यादि (गीता २ अ०)

हे अर्जुन! जिनके लिये शोक करना कर्त्तव्य नहीं; तुम उनके लिये शोक करते हो और पण्डितकी तरह बात बोलते हो, किन्तु जो पण्डित हैं, वे मृत या जीवितके लिये कभी शोक प्रकट नहीं करते। यह आत्मा इन्द्रियकी अतीत है तथा अचिन्त्य और अविकार्य्य अर्थात् निष्क्रिय है, यह जानते हुए भी तुम्हें शोक करना उचित नहीं। फिर यदि तुम इस आत्माको सर्वदा जात और सर्वदा मृत समझते हो, तो भी तुम्हें शोक करना कर्त्तव्य नहीं। क्योंकि, जीवका जन्म होनेसे ही मृत्यु होगी और मृत्यु होनेसे ही फिर जन्म होगा, अतएव ऐसे अवश्यम्भावी विषय पर शोक प्रकट करना बुद्धिमानोंको उचित नहीं है।

भगवान् श्रीकृष्णने इत्यादि प्रकारसे अर्जुनको शोक-निवृत्तिके लिये उपदेश दिया था।

शोकवेग सह्य नहीं कर सकनेसे सुस्थ शरीरमें नाना प्रकारके रोग होते हैं तथा रुग्न शरीरमें वह रोग और भी बढ़ जाता है। अतएव बुद्धिमान् व्यक्तिमात्रको ही शोक करना कर्त्तव्य नहीं है।

शोककर (सं० पु०) करोतीति करः कृ-ट, शोकस्य करः। शोककारक, शोकजनक।

शोककारक (सं० त्रि०) शोक उत्पन्न करनेवाला।

शोकघ्न (सं० पु०) अशोक वृक्ष।

शोकजातिसार (सं० पु०) शोकजः अतिसार। पुत्रादिकी मृत्युके शोकसे उत्पन्न अतिसाररोग। इसके लक्षण—बन्धु बान्धव तथा धनके नाशसे जो शोक उत्पन्न होता है, उससे मनुष्यकी आँख, नाक और कण्ठका जल सूख जाता है और समूचे शरीरकी गर्मी पेटमें जमा हो कर जठराग्निका नाश कर डालती है; इससे लेहू अपना स्थान छोड़ कर अन्य स्थानोंमें प्रवाहित होने लगता है। वह क्षुब्ध रक्त मलके साथ मिल कर दुर्गन्धित अवस्थामें या विना मलके साथ मिले ही ढेरके आकारसे शक्त हो कर गुह्य द्वारसे बाहर निकल आता है; उसे शोकज अतिसार कहते हैं। (भावप्र० अतिसाररोगाधि०)

अतिसार रोग देखो।

शोकज्वर (सं० पु०) शोकजन्य ज्वर। ज्वररोग देखो।

शोकतर (सं० पु०) शोकमुक्त, शोकसे छुटकारा।

शोकनाश (सं० पु०) शोकस्य नाशो यस्मात्। १ अशोक वृक्ष। २ शोकका नाश, शोकापगम।

शोकमय (सं० त्रि०) शोक स्वरूपे मयट्। शोकस्वरूप।

शोकवत् (सं० त्रि०) शोक अस्त्यर्थे मतुप, मस्य व। शोकविशिष्ट, शोकयुक्त।

शोकशोष (सं० पु०) शोकजन्य शोषरोग। इस रोगमें प्रधान शील अर्थात् स्थिर भावसे रहने, स्रस्ताङ्ग अर्थात् शिथिलावयव विशिष्ट तथा शुक्रक्षय न होने पर भी तन विकारविशिष्ट होनेसे यह रोग होता है।

शोष शब्द देखो।

शोकहर (सं० पु०) एक छन्दका नाम। इसके प्रत्येक पदमें ८, ८,८, ६ के विश्रामसे (अन्त गुरु सहित) तीस मात्राएं होती हैं। प्रत्येक पदके दूसरे, चौथे और छठे चौकलमें जगण न पड़े। इसको शुभङ्गी भी कहते हैं।

शोकहारिन् (सं० त्रि०) शोकं हरति हृ णिनि। शोक हरणकारी, शोकका दूर करनेवाला।

शोकहारा (सं० स्त्री०) शोकं हरतीति हृ अण् ङीप्। वनबर्बरिका, बनतुलसी।

शोकाकुल (सं० त्रि०) शोकसे व्याकुल।

शोकागार (सं० पु०) शोक गृह। राजप्रासादमें शोकागार, रोषागार, स्नानागार आदि स्वतन्त्र गृह निर्दिष्ट हैं।

शोकातुर (सं० त्रि०) शोकसे व्याकुल।

शोकारि (सं० पु०) शोकस्य अरिः। कदम्बवृक्ष, कदम।

शोकार्त्त (सं० त्रि०) शोकसे विकल।

शोकी (सं० स्त्री०) रात्रि, रात।

शोकोपहत (सं० त्रि०) शोकसे विकल।

शोख (फा० वि०) १ ढीठ धृष्ट, प्रगल्भ। २ शरीर नटखट। ३ चञ्चल चपल। ४ जो मन्द या धूमिल न हो, गहरा और चमकदार, भड़कीला।

शोखी (फा० स्त्री०) १ धृष्टता, ढिठाई। २ चञ्चलता चपलता। ३ तेजी भड़कीलापन।

शोच (हि० पु०) शोचन देखो।

शोचन (सं० क्ली०) शुच ल्युट्। १ शोक दुःख, अफसोस। २ चिन्ता, फिक्र, खटका। (हेम) शोचतीति शुच शोक (जुचङ्क्रम्यदन्द्रम्यसृगृधीति। पा ३।२।१५०) इति युच्। (त्रि०) २ शोकशील शोक करनेवाला।

शोचना (सं० स्त्री०) शोकोत्पादकता, शोक प्रकट करना।

शोचनीय (सं० त्रि०) शुच अनीयर्। १ शोक करने योग्य, जिसकी दशा देख कर दुःख हो। २ जिससे दुःख उत्पन्न हो बहुत हीन या बुरा।

शोचि (सं० स्त्री०) १ लौ, लपट। २ दीप्ति, चमक। ३ वर्ण, रङ्ग।

शोचितव्य (सं० त्रि०) शुच णिच् तव्य। १ शोक करनेयोग्य जिसकी दशा देख कर दुःख हो। २ जिससे दुःख उत्पन्न हो, बहुत हीन या बुरा।

शोचिष्केश (सं० पु०) शोचींषि केशाइव यस्य नियत समासेऽनुत्तरपदस्थस्येति षत्व। १ अग्नि। २ सूर्य। ३ चित्रक वृक्ष, चीता। (त्रि०) ४ दीप्तिरूप केशयुक्त जिसके बाल सुन्दर और चमकीले हों।

शोचिष्ठ (सं० त्रि०) अतिशय दीप्तियुक्त, बड़ा चमकीला।

शोचिष्मत् (सं० त्रि०) शोचिस् मतुप्। मतुप्दीप्ति। उज्ज्वल दीप्तिविशिष्ट।

शोचिस् (सं० क्ली०) शुच्यन्त्यननेति शुच (अर्चि शुचि हु सृपादि। उण् २।१०८) इति इसि। प्रभा उजाला, शिखा। (भागवत ३।१५।२६)

शोच्य (सं० त्रि०) शुच् यत्। शोचनीय। शोकका विषय चिन्ता करने योग्य।

शोण्ठक (सं० त्रि०) १ मूर्ख। २ क्षुद्र।

शोणवमान—कश्मीरके एक महाराजक। ये दुर्लभक पुत्र थे।

शौटीर्य (सं० क्ली०) १ वीर्य, पराक्रम। २ गर्व दम्भ।

शोठ (सं० त्रि०) १ मूर्ख बेवकूफ। २ धूर्त, चालाक, ३ नीच, ओछा। ४ आलसी। ५ पापरत।

शोण (सं० पुं०) शोणतीति शोण वर्णे पचाद्यच्। १ सिन्दूर। २ रुधिर। (राजनि०) (पु०) ३ रक्तोत्पल तुल्य वर्ण। पर्याय—कोकनदच्छवि, रक्तोत्पलनिभ रक्तोत्पलाभ। (जटाधर) ४ नदविशेष, शोणनद। पर्याय—हिरण्यवाह।

यह नदी अमरकण्टक दक्षिण होती हुई पाटलिपुत्र (पटना) में गङ्गा नदीमें मिल गई है। इसके जलका गुण वह्निकर, सन्ताप और शोषापह पथ्य, अग्निवर्द्धक, बल तथा क्षीणाङ्ग वृद्धिकारक। (राजनि०) ५ अग्नि। ६ श्योणाक। ७ लोहिताश्व। ८ समुद्रविशेष (चरधि) ९ रक्तेक्षु। १० श्योणाकभेद। (राजनि०) (त्रि०) ११ रक्तवर्ण। १२ कोकनदच्छाय। १३ मङ्गलग्रह। १४ रक्तधातु। १५ रक्तपुनर्नवा। १६ पृथुशिम्ब, श्योणाक वृक्ष। (राजनि०)

शोण—मध्यभारतमें प्रवाहित एक सुवृहत नदी। यह गङ्गाकी एक प्रधान शाखा है। अमरकण्टककी भूमि ३५०० सौ फीट ऊंची अधित्यका भूमिसे निकल कर गङ्गाके दक्षिणकूलमें आ कर मिल गई है। उत्पत्ति स्थान—अक्षा० २२.४१´ उ० एवं देशा० ८२.७ पू० है। इस स्थान से शोण नदी क्रमसे उत्तरमुखी हो कर मध्यप्रदेश और बुन्देलखण्ड एजन्सीके अन्तर्गत एक राज्यके सीमारूपमें

वक्रगतिसे बहती हुई कैमूरपर्वतमें (अक्षा० २४° ५' उ० देशा० ८१° ६' पू०) प्रतिहत हो गई है। यहांसे यह पूर्वकी ओर बहती हुई दानापुरसे १० मील उत्तर गङ्गामें मिलती है। नदीकी समूची धाराकी लम्बाई प्रायः ४६० मील है। उनमें लगभग ३०० मील पार्वत्य वनप्रदेशमें प्रवाहित है और अवशिष्टांश युक्तप्रदेशके अन्तर्गत मुजफ्फरपुर जिलेसे होती हुई विहारमें आ गई है। यहां यह शाहाबाद, गया तथा पटना जिलेके मध्य हो कर प्रवाहित होती है।

शोणनदीका जलप्रवाह तथा उसकी बाढ़की बातें जनसाधारणसे मालूम होती है। वर्षाके समय इसकी धारा बहुत चौड़ी हो जाती है; किन्तु अन्यान्य ऋतुओंमें नदीके गर्भमें अधिक जल नहीं रहता। इस कारण इस नदी द्वारा व्यापारको अधिक सुविधा नहीं होती। जोहिला और महानदी नामक दो नदियां इसकी बाईं ओरसे एवं गोपथ, रेहन्द, कन्हार और कोयल नामक चार नदियां इसकी दाहिनी ओरसे आ कर इस नदीमें मिल गई है। उपरोक्त सहायक नदियोंके मध्य कोयल नदी ही सर्वप्रधान है। यह सुप्रसिद्ध रोहतासगढ़की विपरीत दिशामें शोण नदीके गर्भमें निपतित होती है।

शोणनदीका निम्न प्रवाह अर्थात् मुजफ्फरपुरसे गंगासंगम पर्यन्त नदीके गर्भका दृश्य अत्यन्त विस्मयकर है। वर्षाऋतुमें बाढ़के समय जब नदीके दोनों कछार जब जलसे लपलपा जाते हैं, तब उसका दृश्य जलकल्लोल पूरित गभीर समुद्रकी तरह मालूम पड़ता है। भीषण आंधीके समय इस नदीकी तरंग उन्मत्तभावसे नाचती रहती है। उस समय प्रायः २१३०० वर्गमील पार्वत्य भूभागकी जलराशि एक ही समय शोणनदीकी धारामें आ गिरती है, इस कारण उसका जलस्रोत प्रति सेकेण्ड ८ लाख ३० हजार क्युबिक फीट गिना जाता है। किन्तु दूसरे समय नदीगर्भमें बहुत थोड़ा जल रह जाता है एवं उसका जलमान प्रति सेकेण्डमें ६२० क्युबिक फीट होता है। उस समय नदीके दोनों कछारोंकी सुविस्तृत बालुकाराशि देखनेसे जान पड़ता है, मानो यह सचमुच समुद्र तट ही है।

देहराके निकटवर्त्ती विस्तृत बांधके पास हो कर 'ग्राण्डट्रङ्करोड' नामक सड़क उत्तर-पश्चिमकी ओर गई है। इस स्थानमें नदी पार करनेके लिये एक प्रस्तरनिर्मित पुल विद्यमान है। नदीकूलके शोभाविन, कलनाद, वृक्षावली एवं हरित्यता भूमिने सौन्दर्य और स्वास्थ्य इस स्थानको मनोरम कर रहे हैं। इसके दक्षिण कैलवाड़ा नामक स्थानमें इष्टइण्डिया-रेलके कम्पनीका सुविख्यात लौहनिर्मित पुल है। यह साधारणतः शोणब्रिज कहलाता है। १८५५ ई०में सिर्फ एक लौहवर्त्म चलानेके लिये यह पुल बनाया गया था, किन्तु १८७० ई०में यह दो रेलपटरीका उपयोगी तैयार कर दिया गया। यह पुल ४११६ फीट लम्बा और २८ स्पैन (Span) द्वारा विभक्त है। सब स्पैन स्तम्भोंके ऊपर आपसमें संयोजित है। नदीगर्भमें ३० फीट गहरा कुआं खोद कर स्तम्भ गाड़े गये हैं।

मेगास्थनीजने मगधकी राजधानी पाटलीपुत्रको (पटनाको) गङ्गा और हिरण्यबाहका सङ्गमस्थल कह कर उल्लेख किया है। एरियन, स्त्रावो प्रभृति ग्रीक भौगोलिकने उनके कथनानुसार ही इसे Erannoboas के नामसे वर्णन किया है। १८वीं सदीमें भी पटनाके निकट जो शोण नदीकी धारा विद्यमान थी, वह १७७२ ई०के बनाये मानचित्रमें दृष्टिगोचर होती है। प्रत्नतत्त्वानुसन्धित्सु केवल २ एरान्नोबोआको हिरण्यवती (गण्डक) नदी अनुमान करते हैं। किसी किसी ग्रीक भौगोलिकके ग्रन्थमें शोण नदीका Sonus नाम भी पाया जाता है। मार्कण्डेयपुराणमें (५७।२१) इस नदीका उल्लेख है। (बृहन्नीलतन्त्र)

शोणक (सं० पु०) शोण एव स्वार्थे कन्। १ शोणाक वृक्ष, सोनापाठा। २ रक्त पुनर्नवा, लाल गदहपूरना। ३ लाल गन्ना।

शोणखाल—विहार प्रदेशमें जल इधर उधर ले जानेके लिये शोणनदीसे जो कई खाइयां खोदी गई हैं, वे Sone-canal कहलाती है। ये खाइयाँ साधारणतः शाहाबाद, पटना और गया जिलेके मध्य प्रवाहित है। देहरी ग्रामके निम्नवर्त्ती बाँध या आनिकट द्वारा जलस्रोत रोक कर ये खाइयां कई दिशाओंमें प्रवाहित की गई है। नदीके दाहिने किनारेमें उक्त आनिकटसे थोड़ी दूर पश्चिमी खाई

(The Western main canal) काटी गई है। इसकी चौड़ाई १८० फीट पर गहराई ६ फीट है। इसमें बन्याके समय प्रति सेकण्ड ४५११ क्युबिक फीट जल बहता है। यह खाई ५२ मील लम्बी है। इसके शुरूमें १२ मीलके अन्दर आरा, बक्सर और चौसा खाई काटी गई है। १८७४ ७५ ई०में दुर्भिक्षके समय मिर्जापुर की ओर यह ५० मील विस्तृत की गई है। काऊ नामक एक पार्वत्य प्रबल जलस्रोत खाईके निम्नभागमें लानेके अभिप्रायसे यहां स्थापत्य निदर्शन स्वरूप एक २५ खिलानयुक्त साइफोन एक्वेडक्ट (Siphon aqueduct) तैयार किया गया है।

पाँच मील रास्ता तय करनेके बाद मूल पश्चिम खाईसे आरा खाई आरम्भ होती है। यहां ३० मील तक यह शोणनदीके समानान्तर जा कर आरा नगरके निकट उत्तरमुखी हो गई है और ६० मील आगे जा कर गङ्गामें मिल गई है। इसमें प्राय प्रति सेकण्डमें १६१६ क्युबिक फीट जल प्रवाहित होता है एवं इस जलसे लगभग साढ़े चार लाख एकड़ भूमि सींची जाती है। चार प्रधान पार्वत्य सोताओंको छोड़ इस खाईसे साढ़े तीस मील लम्बी बिहिया-खाई और साढ़े चालीस मील लम्बी डुमराव खाई काटी गई है।

बक्सर खाल ठीक तीन मीलकी दूरीसे आरम्भ होती है। इसमें प्रति सेकेण्ड १२६० क्युबिक फीट जल प्रवाहित होता है। ५० मील चल कर यह बक्सर नगरमें गङ्गासे मिल गई है। चौसा खाल इससे भी विस्तृत है पर लम्बी ४० मील है।

पूर्वमूल खाई (The Eastern main canal) नदीके दक्षिणकूलमें पश्चिम खालकी ठीक विपरीत दिशामें काटी गई है। पहले इसे मुंगेर तक ले जानेका प्रस्ताव हुआ था, किन्तु पीछे यह सङ्कल्प परित्याग कर सिर्फ ८ मील लम्बी पुनपुना नदी तक काटी गई है।

पटना-खाल पूर्व खालके ठीक चार मील दक्षिणसे आरम्भ होती है। बाँकीपुर और दानापुरके मध्यवर्ती दीघा ग्रामके निकट यह गङ्गामें मिलती है और इसके द्वारा प्रायः ३ लाख एकड़ भूमि सींची जाती है।

शोणगढ़—बड़ौदा राज्यके अन्तर्गत एक ग्राम। यह अक्षा० २१ १०´ उ० तथा देशा० ७३ ३६ पू०के मध्य विस्तृत है। जनसंख्या तीन हजारके करीब है। पहले यहां धनजनपूर्ण एक नगर था। नगरके पश्चिम प्रान्तमें एक दुर्ग स्थापित है। शोणगढ़ दुर्गके नामानुसार नगरका नाम शोणगढ़ हुआ है। पहले यह भीलोंके अधिकारमें था। अभी शहरमें मजिष्ट्रेटकी अदालत, अस्पताल और स्कूल हैं।

शोणगढ़—बम्बई प्रदेशके गोहेलवाड़ प्रान्तस्थ एक छोटा सामन्त राज्य। यह शोणपुरी नामसे भी प्रसिद्ध है। यहांके सरदाधिकारी बड़ौदाके गायकवाड़ और जूनागढ़के नवाबको कर देते हैं। शोणगढ़ ग्राम भावनगरसे १६ मील पश्चिम दक्षिण और पालितानासे १५ मील उत्तर पूर्वमें अवस्थित है। इसीकी बगलमें अंगरेज धर्मचारियोंका वासभवन है।

शोणगिरि—बम्बई प्रदेशके खान्देश जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २१ ५ उ० तथा देशा० ७४ ४७ पू० धूलियासे १४ मील उत्तरमें अवस्थित है। जनसंख्या चार हजारसे ऊपर है। पहले यह अरब राजाओंके अधीन था। पीछे यथाक्रम मुगल और निजामने यहां शासन फैलाया। निजामसे पेशवाने छीन लिया। महाराष्ट्र सरकारने इसे विन्चुरकरवंशको जागीरस्वरूप प्रदान किया। १८१८ ई०में यह अंगरेजोंके अधिकारमें आया। यहां पगड़ी कम्बल और सूता कपड़ेका जोरों कारबार चलता है। स्थानीय पहाड़ी दुर्ग देखने लायक है।

शोणझिण्टिका (सं० स्त्री०) शोणा रक्तवर्णा झिण्टिका। रक्तसैरेय, लाल कटसरैया।

शोणझिण्टी (सं० स्त्री०) शोणा रक्तवर्णा झिण्टी। १ कुरुवक। २ कटसरैया।

शोणता (सं० स्त्री०) रक्तता, ललाई।

शोणपत्र (सं० पु०) शोणवत् रक्तानि पत्राणि यस्य। रक्त पुनर्नवा लाल गदहपूरना।

शोणपद्म (सं० क्ली०) शोणं रक्तवर्णं पद्मं। लाल कमल।

शोणपुर—बिहारके सारण जिलान्तर्गत एक बड़ा ग्राम। यह अक्षा० २५ ४२ उ० तथा देशा० ८५ १२ पू० गण्डकके बाएं किनारे अवस्थित है। यह ग्राम बहुत

प्राचीन है तथा जिले भरमें इसकी चिरप्रसिद्धि है। प्रति वर्ष कार्त्तिकी पूर्णिमामें दश दिन तक एक बड़ा मेला लगता है। वह मेला 'हरिहर छत्रका मेला' कहलाता है। यूरोपीय वणिक् इसे Sonepur fair कहते हैं। मेलेके समय यहां भिन्न भिन्न देशसे हाथी, घोड़े, गाय, भैंस, भेढ़े आदि जीवजन्तु और कपड़े, पीतल, कांसेके बरतन आदि वस्तुओंकी आमदनी होती है। इस समय यहां एक सप्ताह तक घुड़दौड़ होता है, इस कारण आस पासके स्थानोंके यूरोपीयगण यहां आते हैं। उन लोगोंके लिये एक लम्बा चौड़ा तंबू खड़ा किया जाता है। घुड़दौड़का मैदान बड़ा ही मनोहर है।

कुम्भादि मेलेकी तरह इस छत्रका मेला भी अति प्राचीन है। प्रवाद है, कि भगवान विष्णुने यहां कुंभीर-के मुखसे हाथीको बचाया था। दशरथतनय रामचन्द्र जब सीताके स्वयम्बरमें जनकपुर आये, तब उन्होंने इस स्थानकी माहात्म्यकथा सुन कर विष्णुके उद्देशसे एक मन्दिर बनवा दिया। मेलेके प्रथम चार दिन योग उपलक्षमें यात्रिगण गङ्गागण्डक संगममें स्नान दान करने आते हैं।

शोणपुर—मध्यप्रदेशके शम्बलपुर जिलान्तर्गत एक सामन्त राज्य। यह अक्षा० २०° ३८ से २१° ११' उ० तथा देशा० ८३° २८' से ८४° १६' पू०के मध्य विस्तृत है। इसके उत्तरमें शम्बलपुर जिला, पूर्वमें रायराखोल, दक्षिण-में बऊद और पश्चिममें पटना सामन्त राज्य है। भू-परिमाण ९०६ वर्गमील है। इसमें शोणपुर नामक शहर और ८६६ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या दो लाख-के करीब है।

इस राज्यका सारा स्थान समतल है। यहां भिन्न भिन्न अनाजकी खेती होती है। महानदी तेल और सुत तेल नामकी दो शाखा नदीके साथ इस सामन्तराज्यमें बहती है। जीरा नामकी नदी शम्बलपुर और शोणपुर-के बीचसे बह गई है। यहां लोहा मिलता है और एक प्रकारका मोटा सूती कपड़ा भी तैयार होता है।

पहले यह राज्य पटना राज्यके अधीन था। करीब १५६० ई०में मधुकर शाहने अपने बाहुबलसे इसको एक स्वतन्त्र स्वाधीन राज्य बना लिया। तभीसे यह अठारह गढ़जातके अन्तर्भुक्त है। इस वंशके प्रथम राजा पर्यन्त वंशानुक्रमसे राज्य करते आ रहे हैं। राजा नीलाद्रिसिंह देवने अङ्गरेज गवर्मेण्टको मदद पहुंचानेके कारण १८७७ ई०में राजा बहादुरकी उपाधि पाई थी। १८९१ ई०में उनका देहान्त हुआ। पीछे उनके लड़के प्रतापरुद्रसिंहदेव राजसिंहासन पर बैठे। १९०२ ई०-में वे इस लोकसे चल बसे। २८ वर्षकी उमरमें उनके लड़के वर्त्तमान राजा वीर मित्रोदयसिंहदेवने राज-सिंहासन सुशोभित किया। वे बुद्धिमान् और दृढ़-प्रतिज्ञ हैं। राजकार्यकी ओर इनका विशेष ध्यान रहता है। राज्यकी आय तीन लाख रुपयेकी है। अभी राज्यमें कुल मिला कर ३० स्कूल हैं जिनमेंसे दो मिडिल इङ्गलिश स्कूल, एक वर्नाक्युलर स्कूल, दो बालिका स्कूल और एक संस्कृत स्कूल है। स्कूलके अलावा अस्पताल भी है।

२ उक्त राज्यका शहर। यह अक्षा० २०° ५१' उ० तथा देशा० ८३° ५५' पू०के मध्य महानदी और तेलके सङ्गम स्थल पर अवस्थित है। भूपरिमाण ८८८७ वर्गमील है। शहरमें दो जलाशय और महादेवका मन्दिर तथा दो मिडिल इङ्गलिश स्कूल और एक संस्कृत पाठशाला है।

शोणपुर—मध्यप्रदेशके छिन्दवाड़ा जिलान्तर्गत एक जमीं-दारी। भूपरिमाण ११० वर्गमील है। यहांके सरदार गोड़ वंशके हैं। शोणपुर ग्राम अक्षा० २२° २१' उ० तथा देशा० ७९° ३' पू०के बीच पड़ता है।

शोणपुरविङ्का—मध्यप्रदेशके शोणपुर सामन्त राज्यके अन्तर्गत एक नगर तथा शोणपुर राज्यका प्रधान वाणिज्य केन्द्र।

शोणपुष्पक (सं० पु०) शोणं पुष्पं यस्य, कन्। कोवि-दार, कचनार।

शोणपुष्पी (सं० पु०) शोणवत् पुष्पं यस्याः टीप्। सिन्दूरपुष्पी, सदुरिया।

शोणप्रस्थ (शोनपत)—१ पंजाबके दिल्ली जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २८° ४६' से २९° १४' उ० तथा देशा० ७६° ४८' से ७७° १३' पू०के मध्य विस्तृत है।

भूपरिमाण ४६० वर्गमील है। यह यमुना नदीके वाए किनारे बसा हुआ है। जनसंख्या दो लाखसे ऊपर है। इसमें इसी नामका एक शहर और २२४ ग्राम लगते हैं।

२ उक्त तहसीलका एक नगर। यह अक्षा० २९´ ३० तथा देशा० ७७ १ पू० दिल्ली अम्बाला-कालका रेलवे लाइन पर अवस्थित है। जनसंख्या १२ हजार से ऊपर है।

यह नगर बहुत पुराना है। आर्य औपनिवेशिकगण यहां आ कर रहते थे। स्थानीय प्रवाद है, कि राजा युधिष्ठिरने दुर्योधनसे जो पांच ग्राम मांग कर सन्धिका प्रस्ताव किया था, शोणप्रस्थ उसमेंसे एक है। प्रत्नतत्त्ववित् डा० कनिंहम स्थानीय स्तूपादि देख कर शोनपतको ही प्राचीन शोणप्रस्थ अनुमान कर गये हैं। एक दूसरे उपाख्यानसे जाना जाता है, कि तृतीय पाण्डव अर्जुनसे तेरह पीढ़ी नीचे राजा शोणाने इस नगरकी प्रतिष्ठा की। दोनों प्रवादके उल्लिखित आख्यानुसार शोनपतकी प्राचीनता ही सूचित होती है। डा० कनिंहमने १८६६ ई०में जहांकी जमीनके नीचे एक मट्टी मिट्टीकी सूर्यमूर्त्ति पाई है, उनका सिद्धान्त है कि यह मूर्त्ति करीब १२०० वर्षकी पुरानी होगी। इसके सिवा यहां १८७१ ई०में जमीनके अन्दर से प्रायः १२०० यवन बाह्लिक मुद्रा पाई गई है। नगर पार्श्वस्थ पठानोंका एक मसजिद और दो जैनमन्दिर उल्लेख योग्य है। शहरमें एक एङ्गलो वर्नाक्युलर मिडिल स्कूल, एक सरकारी अस्पताल और रूईका कारखाना है।

शोणप्रस्थ—हैदराबाद राज्यके परभानी जिलान्तर्गत महाराज सर कृष्णप्रसाद बहादुरकी जागीर तालुकका सदर। यह अक्षा० १९ २ उ० तथा देशा० ७° ८६ पू० वान नदीके किनारे अवस्थित है। जनसंख्या छः हजारके करीब है। शहरमें स्टेटका डाकघर, पुलिश स्टेशन और प्राइवेट स्कूल है। रेशमकी साड़ी और सूती धोती यहां तैयार हो कर भिन्न भिन्न देशोंमें भेजी जाती है। शहरके चारों ओर दीवार बना है तथा यह वाणिज्य व्यवसायका केन्द्र है।

शोणफलिनी (सं० स्त्री०) पीतपुष्प, काञ्चन वृक्ष।

शोणभद्र (सं० पु०) शोण नदी।

शोणमणि (सं० स्त्री०) पद्मरागमणि मानिक, लाल।

शोणरत्न (सं० क्ली०) शोण रक्तवर्ण रत्न। पद्मराग मणि, मानिक लाल।

शोणवज्र (सं० क्ली०) लौहविशेष इस्पात।

शोणशालि (सं० पु०) रक्तशालि।

शोणसम्भव (सं० पु०) पिप्पलीमूल, पिपला मूल।

शोणहय (सं० त्रि०) लालवर्ण अश्वयुक्त, लाल घोड़ा वाला।

शोणा (सं० स्त्री०) शोणो रक्तवर्णोऽस्त्यस्या इति अच् टाप्। १ शोण वर्णयुक्ता, रक्तवर्णविशिष्टा। (जटाधर) २ शोण नदी। ३ रक्तझिण्टी लाल कटसरैया।

शोणाक (सं० पु०) वृक्षविशेष शोणालु। पर्याय—श्योणाक, शुकनास ऋक्ष, दीर्घवृन्त, कुटन्नट, अरलु, खण्डतल्कल पत्रोर्ण नट कटम्भर, शोणक, अरल, अटलु।

शोणाम्बु (सं० पु०) प्रलय कालके मेघों मेंसे एक मेघ।

शोणाश्व (सं० पु०) १ लोणहय, द्रोण। २ राजाधिदेव के एक पुत्रका नाम। (हरिवंश)

शोणित (सं० क्ली०) शोण वर्णे क्त, शोण जातार्थ इतच् वा। १ रक्त लोहू। गर्भस्थ बालकको पांचवें मासमें रक्त होता है। (सुश्रुत) जो सब वस्तु खाई जाती है, उसका असाराश मलमूत्र रूपमें निकलता है तथा साराश रक्तरूपमें परिणत होता है। रक्त शब्द देखो। २ कुंकुम, केसर। ३ तृणकुङ्कुम, तृणकेसर। ४ निर्यास गोंद। ५ ताम्र तांबा। ६ शिङ्गरफ, इंगुर। ७ पौधों का रस। (त्रि०) ८ रक्त वर्णका, लाल।

शोणितचन्दन (सं० क्ली०) शोणितवत् चन्दन। लाल चन्दन।

शोणितत्व (सं० क्ली०) शोणितस्य भाव त्व। शोणित का भाव या धर्म।

शोणितपित्त (सं० क्ली०) रक्तपित्त, रक्तपित्तरोग।

शोणितपुर (सं० क्ली०) शोणिताख्य पुर। वाणासुरकी राजधानी।

शोणितमेह (सं० पु०) पित्तजन्य प्रमेहभेद, रक्त प्रमेह। इसका लक्षण—जिस मेहरोगमें रोगीको आम

गन्धि, उष्ण और लवणाक्त लाल पेशाब होता है, उसे रक्तमेह कहते हैं। पित्त बिगड़ जानेसे यह मेहरोग उत्पन्न होता है। (भावप्र०) प्रमेह शब्द देखो।

शोणितमेहिन् (सं० त्रि०) शोणितं मेहति मिह-णिनि। रक्तमेहरोगी।

शोणितवहस्रोतस् (सं० क्ली०) रक्तवहनाड़ी। जिस नाड़ी द्वारा रक्त चलाचल करता है, उसे शोणितवहस्रोतः कहते हैं। इसका मूल यकृत् और प्लीहा है।

शोणितशर्करा (सं० स्त्री०) मधुशर्करा, शहदकी चीनी।

शोणितसम्भव (सं० क्ली०) मांसधातु।

शोणिताक्ष (सं० पु०) एक राक्षसका नाम।

शोणिताभिध (सं० स्त्री०) कुङ्कुम, केसर।

शोणितार्बुद (सं० क्ली०) १ शूकदोषभेद। इसका लक्षण—लिंगमें जब काली या लाल रंगकी फुंसियां वेदनाके साथ निकलती हैं, तब उसे शोणितार्बुद कहते हैं। (भावप्र०) शूकदोष देखो।

२ रक्तजन्य अर्बुदरोग। लक्षण—यदि दूषित दोष अर्थात् वातादि रक्त और शिराओंको सङ्कुचित तथा संहत कर अल्प पाक और स्रावयुक्त मांसपिण्ड उद्गत करे और वह मांसपिण्ड मांसांकुर द्वारा परिवृत तथा जल्दीसे बढ़ता हो तथा अन्तमें उससे दूषित रक्तस्राव हमेशा निकलता रहे, तो उसे शोणितार्बुद कहते हैं। यह अर्बुद रोग असाध्य है। इस रोगमें अतिरिक्त रक्तक्षय होता है। इस कारण रोगीका शरीर पीला पड़ जाता है। (भाव० अर्बुदरोगाधि०) अर्बुदरोग देखो।

शोणितार्शस् (सं० क्ली०) नेत्रवर्त्मगत रोगविशेष, आंखकी पलकका एक रोग। रक्त कुपित हो कर पलकोंकी कोर पर कोमल और लाल रंगका मांसका अंकुर उत्पन्न होता है। इसके छिन्न करनेसे फिर बढ़ जाता है। इस अंकुरमें दाह, कण्डु और वेदना होती है। यह सब लक्षण होनेसे मांसांकुरको शोणितार्शः कहते हैं।

नेत्ररोग देखो।

शोणितार्शिन (सं० त्रि०) शोणितार्शरोगयुक्त, जिसे शोणितार्शरोग हुआ हो।

शोणिताह्वय (सं० क्ली०) शोणितं आह्वयो यस्य। कुङ्कुम, केसर।

शोणितोत्पल (सं० क्ली०) शोणितवर्ण रक्तमुत्पल। रक्तोत्पल, रक्तपद्म, लाल कमल।

शोणितोद (सं० पु०) एक यक्षका नाम।

शोणितोपल (सं० क्ली०) रक्तोपल, मानिक, लाल।

शोणिमन् (सं० पु०) रक्तिमा, रक्तवर्णता।

शोणी (सं० स्त्री०) शोण (शोणात् प्राचां। पा ४।१।४३) इति ङीष्। १ रक्तोत्पलवर्णा स्त्री। (अमर) २ वडवा। (शब्दर०)

शोणीपुर—एक प्राचीन तीर्थक्षेत्र, शोणप्रस्थ। पद्मपुराणान्तर्गत शोणीपुरमाहात्म्यमें इसका विस्तृत विवरण है।

शोणोपल (सं० पु०) शोणो रक्तवर्ण उपलः। माणिक, लाल।

शोथ (सं० पु०) शवतीति शु गतौ बाहुलकात् थन् इत्युणादिसूत्रे उज्ज्वलः (उणा. २।४) १ रोगविशेष। पर्याय—शोफ, श्वयथु, शोथक। नीचे इस रोगके निदान, लक्षण और चिकित्साका विषय लिखा जाता है:—

शोथका प्रकार भेद—निज और आगन्तु भेदसे शोथ प्रथमतः दो प्रकारमें विभक्त होता है। इनमेंसे निज अर्थात् वातादि दोषज शोथ, वातज, पित्तज, कफज, वातपित्तज, वातकफज, पित्तश्लेष्मज और सान्निपातिक सात प्रकारका तथा आगंतु शोथ अभिघातज और विषज दो प्रकारका है। अतएव शोथरोग कुल मिला कर नौ भागोंमें विभक्त है।

निदान—वमन विरेचनादि शोधनक्रिया द्वारा या ज्वर, पाण्डु आदि रोग अथवा उपवासादिके कारण कृश और दुर्बल व्यक्ति क्षीर, अम्ल, तीक्ष्णवीर्य और उष्णगुणान्वित अथवा गुरुपाक द्रव्य भोजन करनेसे अथवा दधि, अपक्करसमञ्जायक द्रव्य, मृत्तिका, शाक, क्षीरमत्स्यादि संयोग विरुद्ध द्रव्य और गर अर्थात् दूषितविष संमिश्रित अन्नभोजन, अर्शरोग, श्रमराहित्य, वमनविरेचनादि द्वारा शोधन करने योग्य देह अथवा रूपसे शोधन करना अथवा बिलकुल उसे शोधन न करना, आभ्यन्तरिक कारणोंसे प्रकुपित वातपित्तादि द्वारा किसी तरह मर्मस्थानका अभिघात और गर्भस्रावादि प्रसववैषम्य आदि कारणोंसे निज या वातादि

होकर शोथकी उत्पत्ति होती है। काष्ठ, अग्नि, नख, प्रस्तर, लौह आदिका अभिघात अथवा विष वा पाप जन्तुका दंशनादि ही आगन्तु शोथका कारण है।

सम्प्राप्ति—उपर्युक्त विषयोंको सेवा करनेवाले व्यक्तिकी कुपितवायु बाहरी शिराओंमें घुस जाती और कफ, पित्त तथा रक्तको दूषित कर डालती है तथा वह कफ पित्त और रक्त द्वारा रुद्ध हो रुक जाती है। इस कारण अर्थात् अपने निर्दिष्ट गन्तव्य पथमें न जानेके कारण नाड़ीमें इधर उधर भ्रमण कर त्वक् और मांसमें घुस जाती तथा सारे शरीरमें, आधेमें या अवयवविशेषमें स्फीति लक्षणयुक्त शोथरोग उत्पन्न करती है। शोथारम्भक ये सब दोष जब शरीरके ऊर्ध्व भागमें अवस्थित रहते हैं, तब ऊर्ध्वशोथ, जब पक्वाशयमें रहते हैं तब अधःशोथ, मध्यदेशमें रहनेसे मध्यशोथ, सर्वाङ्गमें रहनेसे सर्वाङ्गशोथ और अङ्गविशेषमें रहनेसे तदङ्गगत शोथ उत्पन्न होता है। (चरक)

भावप्रकाशमें लिखा है, कि वातादि दोष आमाशयमें रह कर शरीरके ऊर्ध्वभागमें, पित्ताशयमें रह कर देहके मध्यभागमें, मलाशय अर्थात् पक्वाशयमें रह कर अधोभागमें और सर्वदेहव्यापी हो सर्वावयवमें शोथ उत्पादन करता है।

पूर्वरूप—शरीरका बाह्य ताप, उत्ताप अर्थात् गर्म दाहादि और शिराओंकी विस्तृति ये सब साधारण शोथके पूर्वरूप हैं।

लक्षण—शोथकी स्थिति गुरुत्व अर्थात् भारीपन, अस्थिरभाव और स्थूलता, वा अथवा अनवस्थितत्व अर्थात् कभी घटना और कभी बढ़ना, शोथ स्थानमें ऊष्मा, शरीरकी विवर्णता और रोमाञ्च ये सब शोथमात्रके ही साधारण लक्षण हैं। प्रत्येकका लक्षण नीचे दिया जाता है।

वातज—वायुजनित शोथ सञ्चरणशील, पतले चमड़ेसे युक्त, रूखा अरुण वा कृष्णवर्ण स्पर्शज्ञानहीन और रोमाञ्चविशिष्ट होता है। वायुके प्रकोपसे कभी कभी बिना कारण भी यह शोथ प्रशमित होता है। दबानेसे यह बैठ जाता है, पर हाथ हटा देनेसे फिर ऊपर उठ आता है। यह शोथ दिनको प्रबल तथा रातको शुष्कप्राय हो जाता है।

पित्तज—इसमें शोथस्थान कोमल, दुर्गन्ध, कृष्ण, पीत वा रक्तवर्ण, उष्णान्वित और स्पर्शासह होता है। रोगीकी आँखें लाल हो जातीं तथा उनमें जलन होती है। इस शोथमें रोगीको भ्रम, ज्वर, घर्म, पिपासा और मत्तता उत्पन्न होता है।

कफज—शोथस्थान गुरु अर्थात् भारी, अचल और पाण्डुवर्णका होता है। इसमें अरुचि, मुखसे जलस्राव, निद्रा, वमि और अग्निमान्द्य आदि उपद्रव होते हैं। यह शोथ धीरे धीरे उत्पन्न और धीरे धीरे शान्त भी होता है। कफज शोथ भी अंगुलीसे बैठ जाता है सही पर छोड़ देनेसे वातज शोथकी तरह फिर ऊपर न उठ कर नीचे ही दबा रहता है। यह शोथ रातको प्रबल और दिनको शुष्कप्राय हो जाता है।

द्वन्द्वज—ऊपर कहे गये वातजादि शोथके किसी दो प्रकारका लक्षणाक्रान्त शोथ द्वन्द्वज अर्थात् वातपैत्तिक, वातश्लैष्मिक और पित्तश्लैष्मिक शोथ कहलाता है।

सान्निपातिक—वातजादि तीन प्रकारके व्यामिश्र लक्षणाक्रान्त शोथको सान्निपातिक कहते हैं। सम्प्राप्ति लक्षणमें जैसा कहा गया है उससे शोथ त्रिदोषज मालूम होता है और यदि यथार्थ देखा जाय, तो सच भी है। पर हां, वातजादि का कर पृथक् पृथक् उल्लिखित होनेसे समझा होगा, कि उन सब शोथोंमें सभी दोषोंका प्रादुर्भाव रहने पर भी उनमें जिस दोष वा जिन दो दोषोंकी अधिकता रहती है, वह उन्हींसे उत्पन्न समझे जाते हैं।

अभिघातज—शस्त्रादि द्वारा छेदन, पाषाणादि भेद और शरादि द्वारा क्षत होनेसे वा शीतल वायुका सेवन करनेसे अथवा भल्लातकका रस वा शूकशिम्बीका रज शरीरमें स्पृष्ट होनेसे जो शोथ उत्पन्न होता है, उसे अभिघातज शोथ कहते हैं। यह शोथ प्रसरणशील तथा अत्यन्त उष्ण और रक्तवर्णका होता है परन्तु इसमें अक्सर पित्तज शोथके ही लक्षण दिखाई देते हैं।

विषज—सविष प्राणीके शरीर पर सञ्चरण करने वा उसके शरीरके छीटोंका मूत्रादि संस्पृष्ट होने अथवा विष लेप प्राणियोंके दाँत और नखका आघात लगने तथा उनका मल मूत्र वा शुक्र संस्पृष्ट होने पर

नेसे, मलमूत्रादि संस्पृष्ट भूत पड़ने, विषवृक्षकी हवा लगने तथा संयोगज विषके किसी वस्तुके साथ शरीर में मर्दित होनेसे भी विषज शोथ उत्पन्न होता है। यह शोथ मृदु सञ्चरणशील, लम्बमान और अत्यन्त वेदनान्वित तथा अचिरोत्पन्न होता है।

जो सब शोथ शरीरके विशेष विशेष स्थानमें उत्पन्न होते हैं, वे स्थानभेद, रसरक्तादि दूष्यभेद, आकृतिभेद और नामभेदसे अनेक प्रकारके हैं। यहां उनमेंसे कुछ शोथोंके नाम और उनका संक्षिप्त विवरण दिया जाता है—

शालूक—मस्तकस्थ प्रकुपित वातादि द्वारा उत्पन्न होना, गलेके भीतर घर घर शब्द करना और श्वासप्रश्वासको रोकता है।

बिडालिका—यह भी मस्तकके उक्त दोषोंसे उत्पन्न हो कर गलसन्धि, चिबुक या गलेमें आश्रय लेती है। इसका लक्षण—दाहयुक्त, रक्तवर्ण, उच्छ्वासप्रश्वासान्वित और अतिशय यन्त्रणादायक। यह शोथ यदि गलेके भीतर वलयाकारमें उत्पन्न हो, तो प्राणनाशक हो उठता है।

अधि और उपजिह्विका—श्लेष्मप्रकोपके कारण जिह्वाके ऊपरी भागका शोथ उपजिह्विका और निचले भागका शोथ अधिजिह्विका कहलाता है।

उपकुश और दन्तविद्रधि—दन्तमांसके रक्त और पित्तके प्रकोपसे उपकुश तथा श्लेष्माके प्रकोपसे दन्तविद्रधि नामक शोथ उत्पन्न होता है।

गलगण्ड और गण्डमाला—गलेके पार्श्वमें एक गण्ड या शोथ उत्पन्न होनेसे गलगण्ड तथा अनेक गण्ड होनेसे गण्डमाला रोग होता है। यह गण्डमाला साध्यरोग है सही, पर यदि उसमें पीनस, पार्श्वशूल, कास, ज्वर और वमि आदि उपद्रव रहें, तो उसे असाध्य जानना होगा।

ग्रन्थि—वायु, पित्त और कफ ये पृथक् पृथक् या एक साथ मिल कर शरीरके मांस, मेद और शिरा आदिका आश्रय लेते और पीछे ग्रन्थिवत् शोथ उत्पादन करते हैं। शिराकी ग्रन्थिमें स्फुरण रहता है, मांसोद्भव ग्रन्थि बहुत बड़ी होती है। किन्तु उसमें जरा भी वेदना नहीं रहती। मेदोजनित ग्रन्थि बहुत चिकनी और चलनशील होती है। कुक्षि और उदराश्रित तथा गलदेश और मर्मस्थानजात ग्रन्थि असाध्य है। जो ग्रन्थि बहुत मोटी और कठिन हो, वह त्याज्य है तथा बालक वृद्ध और दुर्बल व्यक्तियोंकी ग्रन्थि भी वर्जनीय है।

अर्बुद—इसका निदान, लक्षण और चिकित्सादि सभी ग्रन्थिरोगके समान है।

चिप्प और अलजी—शरीरमें ताम्रवर्ण अवगाढ़मूल जो पीड़का उत्पन्न होती है, उसे अलजी तथा चर्म नखके भीतर मांसरक्तको दूषित करने तथा शीघ्र पकनेवाला जो क्षत उत्पन्न होता है, उसे चिप्प कहते हैं।

विदारिका—वङ्क्षण और कक्षस्थानमें कठिन, आयत और वल्मीकतुल्य अर्थात् वल्मीकी तरह जो शोथ उत्पन्न होता है उसका नाम विदारिका है। यह वायु और श्लेष्माके प्रकोपसे उत्पन्न होता है तथा इसमें दर्द और ज्वर रहता है।

विस्फोटक—यह सर्व शरीरजात तथा ज्वर, दाह और तृष्णाविशिष्ट है।

कक्षा—वायु और पित्तके प्रकोपसे शरीरमें यज्ञोपवीतके आकारमें अवस्थित जो फुंसियाँ उत्पन्न होती हैं उन्हें कक्षा कहते हैं।

पिड़का—यह सर्वाङ्गशरीरव्यापी है तथा स्थूल, सूक्ष्म और मध्यमाकृतिविशिष्ट है।

रोमान्तिका—यह सर्वाङ्गशरीरोत्पन्न एक प्रकारकी छोटी पिड़का है। इसमें ज्वर, दाह, तृष्णा, कण्डु, अरुचि और प्रसेकादि उपद्रव होते हैं।

मसूरिका—यह भी सारे शरीरमें होनेवाली मसूरके बराबर एक प्रकारकी फुंसी है। यह पित्त और श्लेष्माके बिगड़नेसे पैदा होती है।

कोषवृद्धि—मेद या मूत्र द्वारा अण्डकोष भर जानेसे कोषमें जब शोथ होता अथवा छोटे छोटे दुष्ट वातादिसे आक्रान्त हो जब कोषमें प्रवेश करता अर्थात् पहले कोषमें और पीछे पेटमें इस प्रकार बार बार दोनों स्थानमें आता जाता है, तब उसे कोषवृद्धि कहते हैं।

भगन्दर—कीटदंशन, तृणकण्टकादि द्वारा क्षणन, मैथुन, कुन्थन, तेज घोड़ेकी सवारी इन सब कारणोंसे गुह्यद्वारके पार्श्वमें अति वेदनायुक्त पिड़का हो जब पक जाती है, तब उसे भगन्दर कहते हैं।

श्लीपद (फीलपाव)—जङ्घा और जङ्घाके पश्चाद्भागमें तथा पादके ऊपरी भाग पर मांस, कफ और रक्तका दुष्टभावप्रयुक्त यह रोग उत्पन्न होता है।

जालगर्द भ—पित्तके विगड़नेसे लाल और पाक विशिष्ट तथा ज्वर और तृष्णायुक्त एक प्रकारका अति तीव्र और विसर्पणशील शोथ उत्पन्न होता है, इसीको जालगर्दभ कहते हैं। (चरक चिकित्सास्थान)

नीचे शोथरोगके उपद्रव और साध्यासाध्यत्वादिका उल्लेख किया जाता है,—

उपद्रव—वमि, श्वास, अरुचि, पिपासा, ज्वर, अतीसार, और दुर्बलता, ये सब शोथरोगके उपद्रव हैं अर्थात् शोथरोगके बाद इन सब रोगोंका प्रादुर्भाव होनेसे यह अत्यन्त कष्टदायक हो उठता है, यहां तक, कि मृत्यु भी हो सकती है।

सुखसाध्यत्व—युवा और सबल व्यक्तिका शोथ, एकदेशज शोथ तथा अचिरोत्पन्न शोथ सुखसाध्य है।

असाध्यत्व—शोथरोगीके श्वास, पिपासा, वमि, दुर्बलता, ज्वर और आहारमें अनभिलाष, इन सबका प्रबलता होनेसे रोगीकी चिकित्सा न करना चाहिये। यह शोथ अर्द्धनारीश्वराकारमें अर्थात् देहके वामार्द्ध या दक्षिणार्द्ध अथवा पादसे कटि या कटिसे मस्तक, इन सब अर्द्धांशमेंसे किसी एकमें होनेसे रोगीकी आशा छोड़ देनी चाहिये। फिर जो शोथ पुरुषोंके पादसे निकल कर क्रमशः मुखकी ओर और स्त्रियोंके मुखसे निकल कर पादकी ओर जाता है तथा जो स्त्रीपुरुष दोनोंके ही वस्तिस्थानमें उत्पन्न होता है, वह असाध्य है। सर्वाङ्ग तथा वक्ष और पक्वाशयका मध्यगत शोथ अतिशय कृच्छ्र साध्य है। (भावप्र०)

चरकमें लिखा है, कि कृश और दुर्बल व्यक्तिके शोथ वमि आदि उपद्रवयुक्त शोथ मर्म स्थानोत्पन्न और शिरासमन्वित तथा परिस्रावी और सर्वाङ्गगत शोथ रोगीकी जान ले लेता है। (चरक चि०)

चिकित्सा।

लङ्घन और पाचन औषधादि द्वारा आमज शोथकी वमन विरेचनादि शोधनक्रिया द्वारा उत्वणदोष शोथकी, शिरोविरेचन अर्थात् नस्य आदि द्वारा शिरोगत शोथकी, अधोविरेचन द्वारा ऊर्द्ध्व शोथकी, ऊर्द्ध्वविरेचन द्वारा अध शोथकी, रूक्षकार्य द्वारा स्नेहोद्भव शोथकी तथा स्नेहन द्वारा रूक्षोद्भव शोथका चिकित्सा करे। वातज शोथमें मलका विबद्धता रहनेसे निरूहण और वातपित्तज शोथमें सतिक्त घृतको व्यवस्था करे तथा शेषोक्त शोथमें यदि तृष्णा, मूर्च्छा, दाह और अरति अर्थात् कार्यमें अनासक्ति रहे, तो दूधका सेवन करे, रोगी शोधनयोग्य होने पर वह दूध गोमूत्रके साथ देना होगा। क्षार, कटु और उष्णवीर्य कफहर द्रव्य द्वारा अथवा गोमूत्रके साथ तक्र या आसव प्रयोग द्वारा कफोत्थित शोथका प्रशम करे। (चरक)

सोंठ, पुनर्नवा, भरेण्डका मूल त्रिवृत्मूल, श्योनाक गाम्भारी, पाढ़ली और गनियारी इनका काढ़ा पीनेसे तथा उसे पाक करनेके समय जब काढ़ा आधा बच जाय, तब उसे उतार ले और पीछे उस काढ़ेसे पेयादि आहार योग्य द्रव्य प्रस्तुत कर सेवन करनेसे वातज शोथ नष्ट होता है।

पुनर्नवा, सोंठ और मोथा प्रत्येक २ तोला पीस कर उसके साथ ४ सेर दूध अर्द्धावशिष्ट करे। इसका पान करनेसे वातशोथ विनष्ट होता है। अपामार्गमूल पीपर, सूखी मूली और सोंठ इन्हें पीस कर पूर्ववत् ४ सेर दूधके साथ अर्द्धवर्त्तनपूर्वक सेवन करनेसे भी वात शोथ निवृत्त होता है।

त्रिकटु, निसोथ, कुट और लौहचूर्ण इन्हें त्रिफलाके काढ़ेके साथ अथवा हरीतकीचूर्णको गोमूत्रके साथ पान करनेसे कफज शोथ प्रशमित होता है। हरीतकी, सोंठ और देवदारुका चूर्ण अथवा हरीतकी, सोंठ, देवदारु और पुनर्नवाके चूर्णको कुछ गरम जलके साथ सेवन करनेसे भी कफज शोथ दूर होता है। उक्त चूर्ण गोमूत्रके साथ पान करनेसे वातजादि त्रिविध शोथका ही प्रशम होता है। औषध जीर्ण होने पर स्नान करके दूधके साथ अन्नभोजन करे।

द्विदोषज शोथमें द्विदोषकी मिलित और त्रिदोषज शोथमें त्रिदोषकी मिलित चिकित्सा करना ही साधारण युक्ति है। परन्तु परवलका पत्ता, त्रिफला, नीम और दारुहरिद्राके काढ़ेमें गुग्गुल डाल पान करनेसे पैत्तिक और श्लैष्मिक शोथ नष्ट होता है।

त्रिफला मिला कर २ तोला, गोमूत्र आध सेर, शेष आध पाव, यह काढ़ा पीनेसे वातश्लेष्मजन्य और वृषण संश्रित शोथ विनष्ट होता है।

बिल्वपत्रका रस छान कर त्रिकटुके चूर्णका प्रक्षेप दे पान करनेसे त्रिदोषज शोथ नष्ट होता है।

आगन्तुक शोथमें शीतल परिषेक और शीतल प्रलेप देनेकी व्यवस्था है। भल्लातकजनित शोथमें तिल और काली मिट्टीको भैंसके दूधमें पीस कर मक्खनके साथ मिला प्रलेप देनेसे लाभ पहुंचता है। केवल तिलको पीस कर प्रलेप देनेसे भी भल्लातक-शोथ निवृत्त होता है। मुलेठी और तिलको भैंसके दूधमें पीस उसमें मक्खन मिला कर प्रलेप देनेसे भल्लातक जन्य शोथ विनष्ट होता है। शालके पत्तोंको चूर्ण कर नवनीतके साथ मिला भल्लातकजनित शोथमें प्रलेप देना कर्त्तव्य है।

पुनर्नवा, देवदारु, सोंठ, सहिजन और राई सरसों, इन्हें काञ्जीमें पीस कुछ गरम रहते प्रलेप देनेसे सभी प्रकारके शोथ विनष्ट होते हैं।

पुनर्नवा और नीमकी छालके काढ़ेसे अथवा कुछ उष्ण गोमूत्र द्वारा परिषेक करनेसे सभी प्रकारके शोथ दूर होते हैं।

विषचिकित्साकी तरह विषज शोथकी चिकित्सा करनी होगी अर्थात् जिस प्रकार विषसे विपाक्त हो शोथ उत्पन्न हुआ है, उस विषकी शान्ति होनेसे ही उससे होनेवाले शोथकी भी निवृत्ति होगी। विष देखो।

दन्ती, निसोथ, सोंठ, पीपर, मिर्च और चिता इनका चूर्ण आध पाव, दूध १ सेर, जल ४ सेर एकत्र पाक कर दुग्धावशेष रहते उतार ले और शोथ रोगाक्रान्त व्यक्तिको पिलावे। उक्त छः द्रव्योंमेंसे प्रत्येक ४ तोला ले कर ८ सेर दूधके साथ पाक करे और ४ सेर रहते उतार ले। वातपित्त जन्य शोथमें इस दूधका व्यवहार करे। क्वाथविधानसे प्रस्तुत सोंठ और दारुहरिद्राके काढ़ेके साथ उतना ही दुग्ध पान अथवा श्यामवर्ण मूलविशिष्ट निसोथका मूल, पीपरका मूल और रेंड़ी मूलके साथ अथवा दारचीनी, दारुहरिद्रा, पुनर्नवा या गुरुच, सोंठ और दन्तीके साथ दुग्धपाकके विधानानुसार पक्व दुग्धमें लोहका चूर्ण डाल कर पान करनेसे सभी प्रकारके शोथ-रोग विनष्ट होते हैं।

शोथ रोगमें पतला मलभेद तथा वह मल गुरु होनेसे अर्थात् जलमें डालनेसे यदि वह डूब जाय, तो रोगीको त्रिकटु, सौवर्चल लवण और मधुके साथ तक्र पान करने दे। यदि सदोष आम और विबद्ध मलभेद हो, तो समपरिमित गुड़ और हरीतकी अथवा समपरिमित गुड़ और सोंठ खिलाना होगा।

शोथरोगमें मल और अधोवायुकी विबद्धता रहनेसे भोजनके पहले दूध या जंगली मांसके जूसके साथ रेंड़ीका तेल पिलावे। मलवह स्रोतकी विबद्धता, अग्निमान्द्य और अरुचि रहनेसे सुजात मद्य और अरिष्ट पान करने दे।

निम्नलिखित औषध शोथरोगमें सर्वदा प्रयोज्य है—

कटुकाद्यलौह, त्र्यूषणादिलौह, कंशहरीतकी, फलत्रिकाद्यरिष्ट, क्षारगुड़िका, चित्रकघृत, पुनर्नवाद्यरिष्ट, शुष्कमूलादि तैल, शोथशार्दूल तैल, सौवर्चलाद्यलौह, क्षारगुड़िका, पुनर्नवाष्टकपाचन, माणमण्ड, पुनर्नवाद्य गुग्गुल, शोथारिमण्डूर, रसाभ्रमण्डूर, शोथशार्दूलरस, त्रिनेत्राख्यरस, शोथकालानलरस, शोथारिरस, पञ्चामृतरस, दुग्धवटी, दधिवटी या वैद्यनाथवटी, क्षीरवटिका, तक्रमण्डूर और कल्पलतावटी, इनके सिवा और भी कितनी औषधोंका शोथरोगमें प्रयोग होता है। विस्तार हो जानेके भयसे उनका उल्लेख नहीं किया गया।

शालूकादि सभी शोथोंमें शिरावेध, वमन, विरेचन, नस्यग्रहण, धूमपान और पुराना घृतपान हितकर है। वक्त्रोद्भव शोथमें लङ्घन तथा उस दोषको हरण करनेवाले द्रव्योंका चूर्ण घर्षण और उसके स्वरसका कवल धारण लाभदायक है।

ग्रन्थि, अर्बुद, स्फोटक, पीड़का, रोमान्तिका, मसूरिका, कोषवृद्धि, भगन्दर, श्लीपद, जालगर्दभ आदि अवान्तर शोथोंकी चिकित्सा इत्यादिका विषय उन्हीं सब शब्दोंमें लिखा जा चुका है।

स्नानविधि—सूर्यसन्तप्त जलमें रोगीको स्नान कराने तथा उसके शरीरमें खसखस आदि सुगन्धित द्रव्योंका अनुलेप दे। रेंड़ी, अड़ूस, अकवन, सहिजन,

गम्भारी और तुलसी इनके पत्तोंका नल्गम सिद्ध कर उस काथ जलसे प्राणा (टब) भर दें। कुछ गरम रहते वालक शोथग्रस्त रोगीको उसमें स्नान करावे।

पथ्य—लघुपाक और अग्निवृद्धिकारक द्रव्य भोजन करना आवश्यक है। पीडाके प्रबल अवस्थामें केवल माणमण्ड, अभावमें दूध या दुधसागू आदि भोजन हितकर है। पीडा अधिक प्रबल नहीं रहने पर दिनको पुराने चावलका भात मूंगकी दालका जूस, परवल, बैगन, डूमर आल, मानकच्चू, सहिजनका डंठल, छोटामूली, सफेद गदहपुरना और अदरक आदिकी तरकारियोंमें सैंधा नमक बहुत लाभदायक है। रातको दूध और सागू अथवा अधिक भूख रहने पर पतली रोटी खातेका दे सकते हैं।

पानीय—साधारणतः गरम जल पीना कर्त्तव्य है। किन्तु रोग प्रबल रहने पर जलपानका बिलकुल परित्याग कर दूध द्वारा प्यास बुझाना आवश्यक है। विशेष वातपित्तबहुल शोथरोगीके लिये अन्न जलका परित्याग कर एक सप्ताह या एक मास ऊंटका दूध अथवा गोमूत्रके साथ गाय या भैंसका दूध या केवल दुग्धान्नभोजी हो कर गोमूत्र पान करना उचित है।

अपथ्य—ग्राम्य जन्तुका मांस, लवण शुष्क शाक, नये चावलका भात, गुडजात द्रव्य, मद्य, अम्ल भुना हुआ जौ, सूखा मांस, समशन (पथ्यापथ्य एकत्र भोजन) तथा गुरु, असात्म्य और विदाहिद्रव्य भोजन, दिवा निद्रा और मैथुन ये सब विषय शोथरोगीके लिये नितान्त वर्जनीय हैं। (चरक चि०)

शोथक (सं० पु०) शोथ एव स्वार्थे कन्। १ शोथरोग। (क्ली०) २ कगुग्गु, मुरदा सग।

शोथकालानलरस (सं० पु०) रसौषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—चितामूल, इन्द्रयव, गजपिप्पली सैन्धव पीपर, लवङ्ग, जायफल, सोहागा, लोहा, अबरक, गन्धक और पारा प्रत्येक २ तोला, इन सब द्रव्योंको एकत्र अच्छी तरह घोंट कर एक रत्तीकी गोली बनावे। इसका सेवन करनेसे सभी प्रकारके शोथ, ज्वर, कास श्वास आदि शीघ्र नष्ट होते हैं।

शोथघ्ना (सं० स्त्री०) शोथं हन्तीति हन (अमनुष्यकर्तृके च। पा ३।२।५३) इति टक्। १ पुनर्नवा, गदहपूरना। (अमर) २ शालपर्णी, सरिवन। (त्रि०) ३ शोथनाशक।

शोथज नेत्रपाक (सं० पु०) सकलाक्षिगत रोग। जिस नेत्ररोगमें चक्षु पके डुम्बरके समान लाल कण्डू, शोथ और अश्रुयुक्त तथा प्रलिप्तप्राय बोध होता है और नेत्र पक जाता है, उसे शोथज नेत्रपाक कहते हैं।

शोथजित् (सं० पु०) शोथ जयति जि क्विप् तुक् च। १ भल्लातक वृक्ष, भिलावाका पेड। २ पुनर्नवा, गदहपूरना।

शोथजिह्व (सं० पु०) शोथे जिह्व कुटिल इव तनोऽरूप्रात्। पुनर्नवा, गदहपूरना।

शोथभस्मलौह (सं० क्ली०) शोथरोगाधिकारोक्त औषध विशेष। प्रस्तुत प्रणाली—त्रिकटु त्रिफला, द्राक्षा, कुट, मुग धराला, कचूर, लोहा, वच, लवङ्ग, कर्कटशृङ्गी, दारचीनी, सोंठ, बहेडा, विडङ्ग, धवईका फूल, प्रत्येकका समभाग चूर्ण, कुल मिला कर जितना हो उतना शोधित मण्डूर, इन्हें कुडचीकी छालके रसमें घोंटे। पीछे उसे जामुनके पत्तेमें लपेट मिट्टीका लेप दे पुटपाकमें पाक करे। शीतल होने पर औषधका सेवन किया जाता है। इसकी मात्रा २ तोला है। इसका सेवन करनेसे सभी प्रकारके शोथ, ग्रहणी और उदररोग प्रशमित होते हैं।

शोथशार्दूल तैल (सं० क्ली०) शोथरोगोक्त तैलौषध विशेष। प्रस्तुत प्रणाली—कटुतैल ४ सेर, धत्तूरा, दशमूल, जम्बाल, जयन्ती, पुनर्नवा और करञ्ज प्रत्येक ६ पल, पाकका जल ६४ सेर, शेष १६ सेर कल्कार्थ रास्ना पुनर्नवा देवदारु, शुकमूलक सोंठ और पायर कुल मिला कर एक सेर। पीछे तैलपाकके विधानानुसार यह तैलपाक करना होगा। इसकी मालिश करनेसे असाध्य शोथ ज्वर और श्लीपद आदि रोग अति शीघ्र प्रशमित होते हैं।

शोथहीनाक्षिपाक (सं० पु०) सर्वगत नेत्रविशेष। लक्षण—

"शोथहीनानि लिङ्गानि नेत्रपाके त्वशोथन।" (भावप्र०)

शोथज नेत्रपाक रोगके और सभी लक्षण हो कर

अगर सिर्फ शोथ न हो, तो उसे शोथहीनाक्षिपाक कहते हैं।

शोथहृत (सं० पु०) शोथं हरति नाशयतीति हृ-क्विप् तुक् च। १ भल्लातक, भिलावाँ। (त्रि०) २ शोथहारक।

शोथाङ्कुशरस (सं० पु०) शोथरोगाधिकारोक्त रसौषध विशेष। प्रस्तुत प्रणाली—पारा, गन्धक, लोहा, ताँबा, सीसा और अबरक प्रत्येक समान भाग ले कर सम्हालू, हापरमाली, कतबेलकी छाल, इमलीकी छाल, पुनर्नवा, वेलकी छाल और केशरिया इन सब द्रव्योंके रसमें यथाक्रम भावना दे बेरकी गुठलीके बराबर गोली बनावे। इस औषधका सेवन करनेसे सर्वाङ्ग शोथ, ज्वर, पाण्डु आदि रोग शीघ्र प्रशमित होते हैं।

शोथारि (सं० पु०) पुनर्नवा, गदहपूरना।

शोथारि रस—शोथाधिकारोक्त औषधविशेष। प्रस्तुत-प्रणाली—हिंगुलोत्थ पारेको ३ दिन दूबके रसमें भावना दे कर एक मुषामें रखे, पीछे उसके ऊपरी भाग पर दूब और अजवायनका चूर्ण डाल कर मुंह बन्द कर दे। इसके बाद उसको ८ पहर गजपुटमें पाक कर उसी रसके साथ उतना ही गन्धक मिला कर काजल बनावे। पीछे उस काजलके साथ समान अंशमें विष, तांबा और रांगा मिलावे। वह चूर्ण खड़िकाके अग्र भागसे ग्रहण कर रोगीकी जीभ पर रखे तथा कुछ चीनीका शरबत पिला दे। इस प्रकार तीन दिन करनेसे बार बार पेशाब हो कर शोथ दूर होता है।

शोथारिलौह (सं० क्ली०) शोथरोगकी एक प्रकारकी औषध। इसके बनानेका तरीका—त्रिकटु, यवक्षार प्रत्येक १ तोला, लौह ४ तोला इन्हें एकत्र अच्छी तरह मर्दन कर लेना होता है। अनुपान त्रिफलाका रस है। इसका सेवन करनेसे शोथरोग शीघ्र विनष्ट होता है।

शोद्धव्य (सं० त्रि०) जिसे शुद्ध करना हो, शोधनेयोग्य।

शोध (सं० पु०) शुध-घञ्। १ शुद्धिसंस्कार, सफाई। २ ठीक किया जाना, दुरुस्ती। ३ परीक्षा, जाँच। ४ अनुसन्धान, खोज, ढूंढ़। ५ चुकता होना, अदा होना, बेबाक होना।

शोधक (सं० त्रि०) शुध णिच् ण्वुल्। १ शोधनकारक, शोधनेवाला। २ खोजनेवाला, ढूंढ़नेवाला। ३ सुधारक, सुधार करनेवाला। (पु०) ४ वह संख्या जिसे घटानेसे ठीक वर्गमूल निकले।

शोधन (सं० क्ली०) शोधयतीति शुध-णिच्-ल्युट्। १ कङ्कुष्ठ, मुर्दा संग। शुध भावे ल्युट्। १ शौच, शुद्धता, पवित्रता। ३ प्रायश्चित्त, प्रायश्चित्तसे पापादिकी शुद्धि होती है, इसीसे इसको शोधन कहते हैं।

आत्माके शुद्धिकामी व्यक्तिके लिये प्रतिषिद्ध अन्न भोजन करना कदापि उचित नहीं है। यदि प्रमादवशतः किया जाय, तो उसी समय वमि कर ले अथवा प्रायश्चित्त करे। ४ विष्ठा, मल। ५ कसीस। ६ विहिताविहित मासादि विचारण; मास, तिथि और नक्षत्र आदिका विहित या निषिद्ध इत्यादि स्थिर करना।

७ धातुनिर्दोषीकरण, धातुओंका औषधरूपमें व्यवहार करनेके लिये संस्कार। धातु और उपधातु आदिकी शोधन-प्रणाली जिस प्रकार वैद्यकमें कही गई है, उसके अनुसार उसका शोधन कर औषधमें व्यवहार करना होता है। ८ व्रणादि परिष्करण, घावका परिष्कार करना। ९ लिखित पत्रादिका प्रमाणीकरण, लिखे हुए कागजोंको प्रमाणित करना। १० अङ्कका हरण, घटाना, निकालना। ११ अपहृत द्रव्यका संख्यानिर्णय, खोई हुई चीजोंको तादात निकालना। १२ निर्दोषीकरण, भूल सुधारना। जिन सब द्रव्योंमें दोष रहता है, उन सब द्रव्योंकी शोधनप्रणालीके अनुसार शुद्धि करनी होती है। १३ देहकी धातुओंको शुद्ध करना। वमन, विरेचन, आस्थापन और शिरोविरेचनके भेदसे चार प्रकारके कर्मों द्वारा धातुकी शुद्धि होती है, इसीसे इसको शोधन कहते हैं। (वाभट सू० १८ अ०) १४ शुद्ध करना, साफ करना। १५ छानबीन, जाँच। १६ खोजना, ढूंढ़ना। १७ ऋण चुकाना, अदा करना। १८ चाल सुधारनेके लिये दण्ड, सजा। १९ हटा कर साफ करना, सफाईके लिये दूर करना। २० शोधनद्रव्य, निम्बूक, नीबू।

शोधनक (सं० पु०) १ भृत्य, प्राचीनकालके न्यायालय या

घासमाकास्थान साफ और ठीक करनेवाला वर्मचारी। (त्रि०) २ शोधनकारी शोधनेवाला।

शोधना (हि० क्रि०) १ शुद्ध करना, साफ करना। २ औषधके लिये धातुका संस्कार करना। ३ ढूंढना, खोजना, तलाश करना। ४ सुधारना, ठीक करना, दुरुस्त करना।

शोधनी (सं० स्त्री० शोध्यत ऽनयेति शुध शौचे णिच् करणे ल्युट् ङीप्। १ सम्मार्जनी झाड़ू बुहारी। २ ताम्रवल्ली। ३ नीली। ४ ऋद्धि नामक अष्टवर्गीय औषधि।

शोधनीबीज (सं० क्ली०) शोध या बीजमिव बीज यस्य। जयपाल, जमालगोटाका बीज।

शोधनीय (सं० त्रि०) शुध अनीयर्। १ शोधितव्य शुद्ध करने योग्य। २ सुधारने योग्य। ३ ढूंढने योग्य।

शोधयितव्य (सं० त्रि०) शुध णिच तव्य। शोधनेके योग्य।

शोधयितृ (सं० त्रि०) शुध णिच तृच्। शोधक, शोधनकारी, शोधनेवाला।

शोधवाना (हि० क्रि०) १ शोधनेका काम कराना दुरुस्त कराना। २ तलाश कराना, ढुंढवाना।

शोधिका (सं० स्त्री०) क्षुद्रविशेष।

शोधित (सं० त्रि०) शोध्यते स्मेति शुध णिच् क्त। १ परिष्कृत, शुद्ध या साफ किया हुआ। २ अपनीतमल। पर्याय—निर्णिक्त, मृष्ट नि शोध्य, अनवस्कर। (अमर और भरत) जो शोधा गया हो। ३ मक्षिकादिका अपनयन द्वारा शोधा हुआ व्यञ्जनादि, वह कीटादिरहित व्यञ्जनादि।

शोधिन् (सं० त्रि०) परिष्करणशील, शुद्ध करनेवाला शोधनेवाला।

शोधैया (हि० वि०) १ शोधनवाला। २ सुधारक।

शोध्य (सं० त्रि०) शुध यत्। शोधनीय, शोधन लायक।

शोनक्य (सं० पु०) गोत्रप्रवर्तक एक ऋषिका नाम।

शोपार—बम्बई प्रदेशके थाना जिला तगत बसई तालुक का एक प्राचीन नगर। यह बम्बई बड़ोदा सेण्ट्रल इण्डिया रेलवेके बसई स्टेशनसे ३।० मील उत्तर पश्चिममें अवस्थित है। आज भी इस नगरकी समृद्धि नष्ट नहीं हुई है। प्रति सप्ताहमें एक हाट लगती है जिसमें आस पासके देशोंकी चीज बिकने आती हैं। यह नगर प्राचीन कालमें शूर्पारक नामसे प्रसिद्ध था। (मार्कण्डेय पुराण ५७।४९) महाभारतमें लिखा है कि पाण्डव गण जब प्रभासक्षेत्र जा रहे थे, तब ने इसी स्थानमें ठहरे थे। उस समय यह स्थान एक पवित्र तीर्थरूपमें गिना जाता था। बौद्ध शास्त्रकारोंका कहना है कि गौतम बुद्धने किसी पुराने जन्ममें यहां जन्मग्रहण किया था और बोधिसत्त्व सूर्पारक नामसे प्रसिद्ध हुए थे। प्राचीन शोपारक्षेत्रकी कीर्त्ति कहानी स्मरण कर बेनफे, रैनाल्ड और रेनौं (Renaud) आदि पाश्चात्य ग्रन्थकार अनुमान करते हैं कि यह शोपार नगरी ही एपिग्राशास्त्रोक्त सलोमन राजाकी Ophir राजधानी थी। जैनशास्त्रमें भी शोपार नगरीका पवित्रता और प्रसिद्धिका परिचय है। १ली और २री सदीकी प्राचीन शिलालिपिमें शोपारक, शोपारय और शोपारग नामसे इस नगरका उल्लेख है। किसी किसी पुराणमें शूर्पारककी जगह सूर्पारक भी देखा जाता है। १री सदीमें पेरिप्लसके रचयिताने Ouppara शब्दमें भरोच और कल्याण राजधानीके मध्यवर्त्ती समुद्रतीरवर्त्ती शोपार नगरीका उल्लेख किया है।

शोपारोपाक (सं० पु०) क्वाथविशेष।

शोफ (सं० पु०) शु-गतौ-बाहुलकात् फ। १ शोथरोग, सूजन। (राजनि०) २ सत्त्वाख्यिरोग। (त्रिका०)

शोफघ्नी (सं० स्त्री०) शोफ हन्तीति हन टक्, ङीप्। १ शालपर्णी। २ रक्त पुनर्नवा, लाल गदहपूरना।

शोफनाशन (सं० पु०) शोफ नाशयतीति नश णिच् ल्यु। १ नील वृक्ष। (त्रि०) २ शोथनाशक।

शोफहारिन् (सं० पु०) १ वनउच्चारिका वनतुलसी। (त्रि०) शोफ हरति हृ णिनि। २ शोथनाशक।

शोफहृत् (सं० पु०) शोफ हरति हृ क्विप् तुक् च। १ मल्लातक भिलावाँ। (त्रि०) २ शोथहारक।

शोफारि (सं० पु०) शोफस्य अरिः। हस्तिकन्द, हाथी कन्द।

शोफिन् (सं० त्रि०) शोफ या शोथरोगविशिष्ट।

शोवदा (अ० पु०) इन्द्रजाल, जादू, नजरबंदी।

शोभ (सं० पु०) शुभ-घञ्। १ शोभन, शोभा। २ एक प्रकारके देवता। ३ एक प्रकारके नास्तिक। (त्रि०) ४ शोभायुक्त, सुन्दर, सजीला।

शोभक (सं० त्रि०) सुन्दर, सजीला।

शोभकृत (सं० पु०) शोभं शोभनं करोतीति कृ क्विप् तुकच्। शोभनकारक, शोभा करनेवाला।

शोभजात (सं० पु०) राजभेद। (तारनाथ)

शोभन (सं० क्ली०) शोभते इति शुभ ल्युट्। १ पद्म, कमल। शुभ भावे ल्युट्। २ शुभ, मंगल, कल्याण।

(पु०) शुभ ल्यु। ३ ग्रह। ४ विष्कम्भ आदि सत्ताइस योगोंमेंसे पांचवां योग। ज्योतिषके मतसे यह योग शुभ है। इसमें सभी शुभ कर्म किये जा सकते हैं। इस योगमें जन्म होनेसे दक्ष, शत्रुदमनकारी, धनी, सुन्दर शरीर, सुधीर और प्रवीण होता है। (कोष्ठी-प्रदीप) ५ रांगा। ६ धर्म, पुण्य। ७ दीप्ति, सौन्दर्य। ८ कंकुष्ठ। ९ सिन्दूर, सेंदुर। १० अग्निका एक नाम। ११ शिवका एक नाम। १२ इष्टि योग। १३ बृहस्पति-का ग्यारहवां संवत्सर। १४ २४ मात्राओंका एक छन्द। इसमें १४ और १० मात्रा पर यति होती है और अन्तमें जगण होता है। इसका दूसरा नाम सिंहिका है। १५ मालकोश रागका पुत्र एक राग। १६ आभूषण, गहना।

(त्रि०) शोभते इति सुभ ल्यु। १७ सुन्दर, मनोज्ञ, सजीला। १८ रमणीय, सुहावना। १९ उत्तम, अच्छा, भला। २० शुभ, मङ्गलदायक। २१ उचित, उपयुक्त, सुहाता हुआ।

शोभनक (सं० पु०) शोभते इति शुभ-ल्यु ततः कन्। १ शोभाञ्जन वृक्ष, सहिंजनका पेड़। (त्रि०) २ शोभन शब्दकारक।

शोभन देव (सं० पु०) राजभेद। उत्कल देखो।

शोभनरस—पश्चिमचालुक्यराज सत्याश्रयके अधीनस्थ वेलगोलके एक सामन्तराज।

शोभनवती (सं० स्त्री०) नगरभेद।

शोभना (सं० स्त्री०) शोभन टाप्। १ हरिद्रा, हल्दी। २ गोरोचना। ३ नदीभेद। (भविष्यब्र० ख० २६।४) ४ सुन्दर स्त्री। ५ स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका।

शोभनानन (सं० पु०) १ सुगन्धार्जक। (त्रि०) २ शोभन मुखविशिष्ट, सुन्दर मुखवाला।

शोभनाली—बङ्गालके खुलना जिलान्तर्गत एक छोटी नदी। यह नदी स्थलविशेषमें कुन्दरिया, बेङ्गदह और घुंटियाखाली कहलाती है। बालतिया ग्रामके समीप बायरा नामक विस्तृत दलदलकी छोटी छोटी धाराओंके मिलनेसे यह नदी उत्पन्न हुई है। पीछे दक्षिण-पूर्वकी ओर बह कर खोलपेटुआ नदीमें मिली है। यह मिली हुई नदी शोभनाली ग्रामके पाससे चली गई है, इसीसे इसका शोभनीली नाम पड़ा है।

शोभनिक (सं० पु०) एक प्रकारका अभिनयकर्त्ता या नट।

शोभनी (सं० स्त्री०) एक रागिनी जो मालकोश रागकी स्त्री कही जाती है।

शोभनीय (सं० त्रि०) शुभ अनीयर्। शोभनयोग्य, शोभाके लायक।

शोभनीया (सं० स्त्री०) १ गोरक्षमुण्डी, गोरखमुंडी। २ महामुण्डीरी। ३ शोभनयोग्या।

शोभयितृ (सं० त्रि०) शोभासम्पादनकारी।

शोभव्यूह (सं० पु०) एक बौद्ध-पण्डितका नाम।

शोभा (सं० स्त्री०) शोभ्यतेऽनया शुभ-करणे घञ्, टाप्। १ दीप्ति, कान्ति, चमक। पर्याय—कान्ति, द्युति, छवि, द्युती, छवी, अभिख्या, शुभा, भास्, श्री, भासा, भा, सुषमा, छाया, विभा, दृक्प्रिया, भान, भाति, कमा, रमा। (राजनि०)

रूपभोगादि द्वारा जो अङ्ग भूषण है, उसका नाम शोभा है। वह शोभा मन्मथाप्यायनोज्ज्वला अर्थात् कामकी प्रीति द्वारा उज्ज्वल होने पर उसे कान्ति कहते हैं।

साहित्यदर्पणमें लिखा है, कि शोभा नायकोंका सात्त्विक गुण है। शोभा, विलास, माधुर्य, गाम्भीर्य, धैर्य इत्यादि ८ गुण हैं जिनमेंसे शोभाका गुण सात्त्विक है।

शौर्य, दक्षता, सत्यभाषण, कार्यमें अत्यन्त उत्साह, अनुरागिता, नीचोंके प्रति घृणा, स्पर्द्धा अर्थात् अपनी

अपेक्षा बलवान्‌के प्रति विजिगीषा, ये सब गुण जिसमें हैं उसे शोभा कहते हैं।

रूप, यौवन, लालित्यभोगादि द्वारा अङ्ग भूषणको शोभा कहते हैं अर्थात् रूपयौवनके अनुगामी सौन्दर्य बढ़ कर जो अङ्गका वेश भूषा है, उसीका नाम शोभा है। यही शोभा जब कामदेवसे वर्द्धित होती है, तब उसे कान्ति कहते हैं। स्त्रियोंकी चढ़ती जवानीमें जो सौन्दर्य देखा जाता है, वही शोभा है। यह वेशभूषादि द्वारा और भी बढ़ जाती है।

२ गोपीविशेष। ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें लिखा है, कि यह शोभा गोपीदेहका परित्याग कर चन्द्रमण्डल गई। वहां जब उसका शरीर स्निग्धतेजोरूपमें परिणत हुआ, तब उसने दुःखित चित्तसे इस तेजको रत्न, स्वर्ण, स्त्रियों के मुखमण्डल, पद्म, किशलय, पुष्प आदिमें थोड़ा थोड़ा कर बांट दिया। तभीसे उन सब द्रव्योंमें स्वाभाविक शोभा आ गई है।

३ छवि, सुन्दरता, छटा। ४ सजावट। ५ उत्तम गुण। ६ वर्ण, रंग। ७ बीस अक्षरोंका एक वर्णवृत्त। इसमें क्रमसे यगण, मगण, दो नगण, दो तगण और दो गुरु होते हैं तथा ६, ७ और ७ पर यति होता है। ८ हरिद्रा, हल्दी। ९ गोरोचना, गोरोचन। १० शुक्ल जातिपुष्प, चमेली। ११ फारसी सङ्गीतमें मुकामकी स्त्रियां जो चौबीस होती हैं।

शोभाकर (सं० त्रि०) शोभनकारी शोभा करनेवाला।

शोभाकर भट्ट—नारदशिक्षाविवरण और सामवेदारण्यक स्तोमविवरण नामक ग्रन्थके प्रणेता।

शोभाकर मिश्र—अलङ्काररत्नाकर और उदाहरण नामक ग्रन्थके रचयिता। ये तपीश्वर मिश्रके पुत्र थे।

शोभाञ्जन (सं० पु०) शोभं रुचिरं अञ्जनं यस्मात्। वृक्षविशेष, सहिजनका पेड़। (Moringa pterygosperma Horse radish tree) महाराष्ट्र—शाल्लासेगुगा; कलिङ्ग—सरिर मुनिग, तैलङ्ग—मुनगा, तामिल—मोरुङ्ग, बम्बे—शगव सेगत। संस्कृत पर्याय—शिग्रु, तीक्ष्णगन्धक, अक्षीव, मोचक, तीक्ष्णगन्ध, सुतीक्ष्ण, घनपल्लव, श्वेतमरिच, तीक्ष्ण, गन्ध, गन्धक, क्षारीरक, आक्षीव, मुखभञ्जन, स्रोचित्तद्रावी, हरिणनाशन, कृष्णगन्धा, सूचक, पर्णी, नीलशिग्रु, जनप्रिय, मुखमोद, कृष्णशिग्रु, चक्षुष्य, रुचिराञ्जन। गुण—तीक्ष्ण, कटु, स्वादु, उष्ण, पिच्छिल, पटु, वात और शूलनाशक। (राजनि०)

भावप्रकाशमें लिखा है कि यह तीन प्रकारका होता है,—श्याम, श्वेत और रक्त। गुण—कृष्ण शोभाञ्जन पाकमें कटु, तीक्ष्णोष्ण, मधुर, लघु, दीपक, रुचिकर, रूक्ष, तिक्त, विदाहकर, सग्राही, शुक्रवर्द्धक, हृद्य, पित्त और रक्तप्रकोप, चक्षुका हितकर, कफ और वातनाशक, विद्रधि, श्वयथु, कृमि, मेद, विषदोष, प्लीहा, गुल्म और गण्डव्रणनाशक। श्वेत शोभाञ्जन उक्त गुणविशिष्ट, विशेषतः दाहकारक, प्लीहा और विद्रधिनाशक, व्रणघ्न और रक्तपित्तवर्द्धक।

रक्त शोभाञ्जन उक्त गुणविशिष्ट, विशेषतः दीपन होता है। शोभाञ्जनका फल मधुर, कषाय रस, अग्निप्रदायक, कफ, पित्त, शूल, क्षय, श्वास और गुल्मनाशक। शोभाञ्जनका पुष्प—कटुरस, तीक्ष्ण, उष्ण वीर्य, स्नायु शोथजनक तथा कृमि, कफ, वायु, विद्रधि, प्लीहा और गुल्मरोगनाशक। रक्त या लाल सहिजनका फूल चक्षुका हितकर तथा रक्तपित्तप्रदायक होता है।

शोभानक (सं० पु०) शोभाञ्जन वृक्ष, सहिजनका पेड़।

शोभानुभावकता (सं० स्त्री०) वह वृत्ति जिससे शोभाका अनुभव किया जा सके।

शोभान्वित (सं० त्रि०) शोभाया अन्वित। शोभासे युक्त, सुन्दर, सजा हुआ।

शोभापुर—मध्यप्रदेशके हुसङ्गाबाद जिलेकी सुहागपुर तहसीलका एक नगर।

शोभायमान (सं० त्रि०) सुन्दर, सोहता हुआ।

शोभावती (सं० स्त्री०) १ एक प्रकारका छन्द। इसके प्रत्येक चरणमें १४ अक्षर होते हैं जिनमेंसे १, ४, ५, ८, ११, १३, १४वां वर्ण गुरु और बाकी लघु होते हैं। २ एक नगरका नाम। यहां कनकमुनिका जन्म हुआ था। इसका वर्त्तमान नाम शुभवस्तु है।

शोभासिंह (राजा)—बङ्गालके बरदा और चितुयाके प्रसिद्ध जमींदार। इन्होंने वर्द्धमानराज कृष्णराम रायके जीवितकालमें विद्रोही हो वर्द्धमान पर आक्रमण कर दिया और कृष्णरामको मार डाला। इसके बाद ये

कृष्णरामके अन्तःपुरमें घुसे और उनकी कन्या पर बलात्कार करना चाहा। वीरबालाने कपड़ेमें लपेटा हुआ तेज छुरा निकाल कर पापिष्ठ शोभासिंहकी छातीमें इस प्रकार घुसेड़ दिया, कि उसके प्राणपखेरु उड़ गये। वर्द्धमान देखो।

शोभिक (स० त्रि०) शोभाशाली, सुन्दर।

शोभित (सं० त्रि० शुभ षत, वा शोभा जातार्थ इतच्)। शोभायुक्त, भूषित, शोभाविशिष्ट।

शोभिन् (सं० त्रि०) शोभते इति शुभ-इन्। शोभाशाली, शोभाविशिष्ट। यह शब्द प्रायः उपपद पूर्वक व्यवहार होता है।

शोभिष्ठ (सं० त्रि०) शुभ इष्ट। अतिशय शोभायुक्त।

शोर (फा० पु०) १ जोरकी आवाज, हल्ला, गुल गपाड़ा। २ धूम, प्रसिद्धि।

शोरबा (फा० पु०) १ किसी उबाली हुई वस्तुका पानी, झोल, जूस। २ पके हुए मांसका पानी।

शोरा (फा० पु०) एक प्रकारका क्षार जो मिट्टीमेंसे निकलता है। यह बहुत ठंढा होता है और इसीलिये पानी ठंढा करनेके काममें आता है। बारूदमें भी इसका योग रहता है और सुनार इससे गहने भी साफ करते हैं। खारी मिट्टीमें क्यारियाँ बना कर इसे जमाते हैं। साफ किये हुए बढ़िया शोरेको कलमी शोरा कहते हैं।

शोरा आलू (हिं० पु०) बन आलू।

शोरापुर—दाक्षिणात्यका एक सामन्त राज्य। पहले यह निजाम राज्यके अधीन था। १८६० ई०से यह उक्त राज्यके अधिकारसे निकल गया। इसके उत्तरमें हैदराबाद राज्य और दक्षिणमें कृष्णानदी है। इसका प्रधान नगर शोरापुर है। यह अक्षा० १६°२१´ ३० तथा देशा० ७६°४८´ पू०के मध्य विस्तृत है।

दक्षिण-महाराष्ट्र देशकी दुर्द्धर्ष बेदार जातिके किसी सरदार द्वारा १७वीं सदीमें इस राज्यकी सृष्टि हुई थी। यह सरदारवंश नायक उपाधिसे भूषित था। १८०० ई०में अङ्गरेज गवर्मेण्टने शोरापुर राज्यमें निजामका स्वत्वाधिकार बहाल रखनेमें नियुक्त हुए एवं १८२३ ई०में उन्होंने शोरापुर राज्यसे प्राप्त खजाना पेशवाको छोड़ दिया। इसके बदलेमें शोरापुरके राजाने भी अङ्गरेजोंके अधिकारस्थ अपनी सम्पत्तिका राजस्व छोड़ दिया।

१८२८ ई०में शोरापुरमें उत्तराधिकारीके लिये एक भीषण विवाद उपस्थित हुआ। इस गृहविवादके उत्तरोत्तर बढ़नेके कारण शोरापुर-सरकार राजकरके भारसे दब गई। १८४१-४२ ई०में शोरापुरके राजाने ऋणसे छुटकारा पानेकी आशासे कृष्णानदीके दक्षिणस्थ अधिकृत प्रदेशोंको निजामके हाथ सौंप दिया। शोरापुर राज्यको कर्जमें डूबे हुए देख कर १८४२ ई०में अङ्गरेजी सरकारने कप्तान ग्रेस्ली नामक एक सेनापतिके हाथमें उसके तत्त्वावधानका भार अर्पण किया। उक्त वर्षमें ही कप्तान मिडस् टेलर शोरापुर राज्यका परिदर्शन भार ग्रहण कर वहां गये एवं उनके यत्न और अध्यवसायसे शोरापुर ऋणसे मुक्त हो गया तथा उन्होंने उसके शासनकी सुन्दर व्यवस्था की। १८५३ ई०में टेलर साहब इस राजकी सुव्यवस्था कर चले आनेके बाद फिर शोरापुर राज्यमें विशृङ्खला उपस्थित हुई। उस समय उद्धत प्रकृति राजवंशीयगण निजाम सरकारकी अधीनता अस्वीकार कर स्वाधीन बन बैठे एवं १८५७-५८ ई०के विख्यात गोंडराज सिपाहीयुद्धमें हाथ बटानेके कारण राज्यच्युत हो गये। फिर १८६० ई०की सन्धिके अनुसार शोरापुर राज्य निजामराज्यमें मिल गया।

शोरापुश्त (फा० वि०) लड़ाका, झगड़ालू, फसादी।

शोरिश (फा० स्त्री०) १ खलबली, हलचल। २ बलवा, बगावत, दंगा।

शोरी (फा० पु०) १ फारसी संगीतमें एक मुकामका पुत्र। २ एक पञ्जाबी प्रसिद्ध गवैया जिसने टप्पा नामका गीत निकाला था।

शोलङ्की—अनहिलवाड़के सुप्रसिद्ध राजपूतवंश। ये लोग चालुक्यवंशीय थे, पीछे शोलङ्की कहलाये। प्रतिष्ठा और मर्यादामें ये लोग राजस्थानके परमार या चौहान राजपूतसे बहुत निकृष्ट हैं। शोलङ्कीकुलका इतिहास पढ़नेसे जाना जाता है, कि कल्याणनगरवासी जयसिंह शोलङ्कीके पुत्र राजकुमार मूलराज अपनी मातामह भोजराजकी मृत्युके बाद अनहिलवाड़-पत्तनके सिंहासन पर बैठे। उनके लड़के चामुण्डराजके शासन

कालमें गजनापति महमूदने अनहिलवाड़को लूटा और उसे ध्वंस कर तहस नहस कर डाला। जब महमूद सौराष्ट्रप्रदेशका रक्त चूस रहा था, उस समय इस वंशमें प्रतापी जयसिंह सिद्धराज और कुमारपाल आविर्भूत हुए। वे दोनों जैसे वीर पराक्रमी और युद्धविद्याविशारद थे, धर्मरक्षामें भी उनकी वैसी ही बलवती आकाङ्क्षा थी। दोनों ही बौद्धधर्मके प्रतिपोषक हो कर बौद्ध कीर्तिकी प्रतिष्ठाके साथ साथ स्थापत्यविद्याकी यथेष्ट उन्नति कर गये हैं। उस समय कुछ विशाल विजयस्तम्भ भी बनाये गये थे।

शाहबुद्दीन घोरी और उसके प्रतिनिधियोंके दारुण अत्याचारसे कुमारपालका अन्तिम जीवन शान्तिहीन हो गया। इसके बाद अनहिलवाड़के सिंहासन पर जब अधस्तन राजगण क्रमशः निस्तेज होते गये, तब इस वंशके अन्तिम उत्तराधिकारी त्रिभुवनदेवके राज्यकालमें शोलङ्की वंशकी बघेला शाखाके प्रबल प्रतापी राजा विशालदेवने अनहिलवाड़के सिंहासनको अधिकार किया। पीछे कई पीढ़ी तक इस वंशके अधीन रह कर अनहिलवाड़ मुसलमान सैनिक अलाउद्दीनके हाथ आया तथा शोलङ्कीकुलके गौरव सदाके लिये डूब गये। राजस्थान पढ़नेसे जाना जाता है, कि यह शोलङ्की वंश कुछ मिला कर सोलह शाखाओंमें विभक्त हैं। उनमेंसे व्याघ्रपल्ली या बघेला शाखा ही सर्वप्रधान है। नीचे दो प्रधान शोलङ्की राजवंशकी तालिका दी गई है—

(क) अनहिलवाड़के शोलङ्कीराजवंश।

नाम		राज्यारम्भ
१ मूलराज	६४१ ई०	कल्याणराज रानिके पुत्र
२ चामुण्डराज	६६६	१के पुत्र
३ वल्लभराज	१००६	२ „
४ दुर्लभराज	१००६	२ „
५ भीमदेव १म	१०२२	नागराजके पुत्र और २के पौत्र
६ कर्णदेव १म	१०६३	५के पुत्र
७ जयसिंह सिद्धराज	१०६३	६ „
८ कुमारपाल	११४३	५के प्रपौत्र
६ अजयपाल	११७२	८वे भतीजे
१० मूलराज २य	११७५	६ „ पुत्र
११ भीमदेव २य	११७८	„ „
१२ त्रिभुवन पाल	१२४२	११के पुत्र

(ख) बघेला शाखा राजवंश।

१ धवल		राजा कुमारपालका फूफा
२ अर्णोराज		१के पुत्र
३ लवणप्रसाद		२ „ ढोल्कर सामन्तराज
४ वीरधवल	१२११ ई०	ढोल्करके स्वाधीन राणा
५ विशालदेव	१२३५	४के पुत्र, अनहिलवाड़ सिंहासनके अधिराज
६ अर्जुनदेव	१२६१	५के भतीजे
७ शारङ्गदेव	१२७४	६के पुत्र
८ कर्णदेव २य	११६६	७के पुत्र

चालुक्य या शोलङ्की वंश एक समय तमाम भारतवर्षमें फैल गये थे। उड़ीसामें यह वंश शुल्की कहलाते हैं। तालचर राज्यसे इस शुल्कीवंश (१२वीं से १३वीं सदीमें उत्कीर्ण) का ताम्रशासन पाया गया है। मादलीपुरमें कई जगह ये शुल्कीय शासगण 'शुल्की' नामसे परिचित हो बड़ी दीनतासे समय बिताते हैं।

शोलङ्गीपुरम्—मन्द्राज प्रदेशके उत्तर आर्कट जिलेका एक नगर। यह अक्षा० १३ ७ उ० तथा देशा० ७६ २६ पू०के मध्य विस्तृत है। इसका दूसरा नाम शोलिनगढ़ है। यह मन्द्राज रेलवे लाइनकी दक्षिण पश्चिम शाखाके बनावरम स्टेशनसे १० मील दूर पड़ता है। नगरमें चोलराजकीर्ति ज्ञापक एक प्राचीन मन्दिर दिखाई देता है। प्रवाद है कि कुलोत्तुङ्ग चोलके पुत्र अडोण्डरको स्वप्न हुआ था तदनुसार उन्होंने उत्साहित हो पुनरुद्यमसे युद्ध ठान दिया और कुदम्बर पर अधिकार जमाया। उसी घटनाके स्मरणार्थ उक्त मन्दिर बनाया गया है। नगरमें दूसरी जगह एक और भी बड़ा मन्दिर देखा जाता है। यह उतना प्राचीन नहीं होने पर भी जनसाधारणकी दृष्टिको

/1 निकटवर्त्ती शैलशिखर

प्राचीन और ध्वस्त विष्णुमन्दिर विद्यमान है। उसका शिल्पनैपुण्य हृदयग्राही है। मन्दिर पर चढ़नेके लिये रायोजी नामक एक धर्मशील महाराष्ट्रने पर्वत पर सीढ़ी खोदवा दी है। पर्वतके नीचे एक शिल्पचित्रपूर्ण भग्न मंदिर और उक्त रायोजी निर्मित 'शालग्राम-छत्र' है। वह देखने लायक है। अनेक तीर्थयात्री वह विष्णुमंदिर देखने आते हैं। वह दाक्षिणात्यका एक तीर्थ समझा जाता है।

इस पर्वतपादमूलके पास एक विख्यात रणक्षेत्र दिखाई देता है। यहां १७८१ ई०में अङ्गरेज-सेनापति सर आयर कूटने छोटी-सी सेना ले कर महिशुरपति हैदरअलीकी विपुल वाहिनीको परास्त किया था। उस रणक्षेत्रमें मारे गये मुसलमान सेनादलका मकबरा विद्यमान है।

शोलवन्दान—मन्द्राज प्रदेशके मधुरा जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० १०° २' ३०" उ० तथा देशा० ७८° २' पू०के मध्य मधुरा नगरसे १२ मील दूर वैगै नदीके किनारे अवस्थित है। १६६६ ई०में विजयनगर-राजके वल्लाल वंशीय कुछ आत्मीयने इस नगरकी प्रतिष्ठा की। मधुरासे डिन्डिगल जानेके पहाडी रास्ते पर उन लोगोंके उद्योगसे एक दुर्ग स्थापित हुआ। १७५७ ई०में महम्मद यूसुफने उस दुर्गको अधिकार कर कालियद (Calliaud) के मधुरा आक्रमण पर बाधा डाली थी। उसी साल हैदरअलीने दुर्ग पर अधिकार जमाया। पीछे वह अङ्गरेजोंके हाथ आया। यहां प्राचीन मन्दिर, एक मसजिद और कुछ शिलालिपि विद्यमान है।

शोला (हिं० पु) एक छोटा पेड़। इसकी लकड़ी बहुत हलकी होती है। पानी पर तैरनेवाले जालमें इसकी लकड़ी लगाई जाती है। लकड़ीका सफेद हीर फूल, खिलौने तथा विवाहके मुकुट बनानेके काममें आता है।

शोला (अ० पु०) आगकी लपट, ज्वाला।

शोलागढ़—बङ्गालके ढाका जिलान्तर्गत मुन्शीगञ्ज तहसीलका एक नगर। यह अक्षा० २३° ३३' ४५" उ० तथा देशा० ९० २०' पू०के मध्य अवस्थित है। यह एक स्थानीय वाणिज्यकेन्द्र है।

शोलापुर—बम्बई प्रदेशके दाक्षिणात्य विभागका एक जिला। यह अक्षा० १७ ८' से १८° ३३' उ० तथा देशा० ७४° ३७' से ७६ २६' पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण ४५४१ वर्गमील है। इसके उत्तरमें अहमदनगर जिला, पूर्वमें निजामराज्य और अक्कालकोट राज्य, दक्षिणमें विजापुर जिला तथा जाट और पटवर्द्धन-परिवारोंके अधिकृत सामन्तराज्य तथा पश्चिममें सतारा, पूना और अहमदनगर जिलेका फलतन और आनूपाड़ी सामन्तराज्य है। शोलापुर नगर ही यहांका प्रधान विचार सदर है। भीमा और उसकी शाखा मान, नीरा और सिना ही यहांकी प्रधान नदियां हैं। इनके सिवा और भी कितने छोटे छोटे पहाड़ी सोते बहते हैं।

शोलापुर महाराष्ट्र जातिका आदि निकेतन और विख्यात महाराष्ट्र राजवंशकी आदिभूमि है। किस प्रकार पूना और शोलापुरवासी मराठोंने मिल कर महाराष्ट्रशक्तिका अभ्युत्थान किया था, भारतवर्षके इतिहासमें वह लिपिबद्ध हुआ है।

भारतवर्ष और महाराष्ट्र शब्द देखो।

ईसा जन्मके प्रारम्भ कालमें अर्थात् करीब ईसा जन्मके पहले ९०से ३०० ई० तक शोलापुर शातकर्णी या अन्ध्रभृत्यराजवंशके अधीन था। शोलापुर नगरसे १५० मील उत्तर-पश्चिम गोदावरीके किनारे पैठान (प्रतिष्ठान) नगरमें उनकी राजधानी थी। इसके बाद १४वीं सदीमें मुसलमानों द्वारा देवगिरिके यादव राजाओंके अधःपतन तक शोलापुर प्रदेश विजापुर, अहमदनगर, पूना आदि पार्श्ववर्त्ती जिलेकी तरह यथाक्रम ५५०से ७६० ई० तक प्राचीन चालुक्य राजाओंके पीछे ९७३ ई० तक राष्ट्रकूट राजाओंके, उसके बाद ११८४ ई० तक पश्चिम चालुक्य राजाओं और पीछे १३०० ई०में मुसलमानों द्वारा दाक्षिणात्य विजय पर्यन्त देवगिरिके यादव राजवंशके अधिकारमें रहा।

१२९४ ई०में मुसलमानोंने पहले पहल दाक्षिणात्य पर आक्रमण किया, किन्तु वे हिन्दू राजाओंका बाल बांका भी न कर सके। १३१८ ई०में बार बार आक्रमणके बाद देवगिरिके हिन्दूराजे हताश हो गये। उसी साल महाराष्ट्रप्रदेशका शासन करनेके लिये दल्लीसे मुसलमान शासनकर्त्ता नियुक्त हुआ। वह देवगिरिमें रह कर दाक्षिणात्य

प्रदेशका शासन करने लगा। १३३८ ई०में दिल्लीके पठान सम्राट महम्मद तुगलकके हुक्मसे देवगिरिका नाम बदल कर 'दौलताबाद' रखा गया। १३४६ ई०में पठान साम्राज्यमें विशृङ्खलता उपस्थित हुई। इस समय राजकर्मचारियोंके अत्याचार उपद्रव और लूटसे दौलताबाद उजाड़सा हो गया। दाक्षिणात्यमें भी इस अत्याचारकी बाढ उमड़ आई थी। दाक्षिणात्य वासीने इन सब घोर अत्याचारोंको सहन न करते हुए दिल्लीश्वरके विरुद्ध अस्त्र उठाया। हसन गांगू नामक एक अफगान योद्धा उस विद्रोहिदलका नेता बना। युद्धमें विद्रोही दलकी जीत हुई और दाक्षिणात्य प्रदेश उत्तर भारतकी अधीनतासे उन्मुक्त हुआ। हसन अपने प्रतिपालक ब्राह्मण प्रभुके प्रति कृतज्ञता और भक्ति दिखला कर स्वयं अल्लाउद्दीन हसन गांगू बाहनी नामसे राजसिंहासन पर बैठा। उसके द्वारा प्रतिष्ठित होनेसे उस पठान राजवंशको बाह्मनी राजवंश नामसे इतिहासमें प्रसिद्धि हुई। इस वंशने प्राय १५० वर्ष तक दाक्षिणात्यमें प्रबल प्रतापसे राज्यशासन किया था। बाह्मनी राजवंश देखो।

इसके बाद १४४१ ई०में विजापुरके मुसलमान शासनकर्त्ता यूसुफ आदिलशाहने स्वाधीनता अवलम्बन की। विजापुरके उत्तरसे भीमा नदीतट पर्यन्त सारा भूभाग उसके अधीन आ गया। इस समयसे ले कर प्राय दो सदी तक शोलापुर कभी विजापुर और कभी अहमदनगरराजके दखलमें रहा अर्थात् उक्त दोनों राज्योंमें जब जो प्रबल हो उठता था, तभी वह शोलापुर को जीत कर अपना प्रभुत्व फैलाता था। इस प्रकार दोनों ही राजोंने कुछ दिन उक्त प्रदेशका उपभोग किया। पीछे १६६८ ई०में विजापुर राज अली आदिल शाहके साथ मुगल सम्राट् औरङ्गजेबकी आगरेमें जो सन्धि हुई, उसके अनुसार विजापुरराजने दिल्लीश्वरको शोलापुर दुर्ग और उसके अधीन ६३००००) रुपये आयकी सम्पत्ति छोड़ दी। १७००से १७५० ई०के मध्य मुगल शक्तिका अधःपतन होने पर महाराष्ट्रशक्तिकी तूती बोलने लगी। विजापुर और आदिलशाह शब्द देखो।

१८१८ ई०में पेशवाओंके अधःपतन तक शोलापुर महाराष्ट्रके अधिकारमें रहा। पीछे यह अंगरेज गवर्मेण्टको बम्बई प्रसिडेन्सीमें मिला दिया गया। पहले यह पूनाके शासनाधीन था। १८३८ ई०में इसे स्वतन्त्र कलक्टरीमें शामिल किया गया। ग्रेट इण्डियन पेनिनसुला रेलवे खुल जानेसे यहांके वाणिज्यमें बड़ी उन्नति हुई है।

इस जिलेमें ७ शहर और ७१२ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या ७ लाखसे ऊपर है। यहांकी भाषा मराठी है। अधिवासियोंमें सैकड़े पीछे ९१ हिन्दू, और ८ मुसलमान और १में ईसाई आदि जातियां हैं। यहांकी प्रधान उपज जुआर, बाजरा, गेहूं, चना, लालमिर्च और रूई है। जिलेमें अच्छे अच्छे कम्बल, सूती और रेशमी कपड़े बुने जाते हैं।

विद्याशिक्षामें यह जिला बम्बई प्रसिडेन्सीके चौबीस जिलेमें पन्द्रहवां पड़ता है। अभी जिले भरमें कुल मिला कर २ हाई स्कूल, ७ मिडिल ३०० प्राइमरी, १ ट्रेनिङ्ग २ इण्डष्ट्रीयल और एक कमरसियल स्कूल है। स्कूलके अलावा २ अस्पताल, ८ चिकित्सालय, १ कुष्ठाश्रम और ३ अन्यान्य मेडिकल स्कूल हैं।

२ उक्त जिलेका एक उपविभाग। यह अक्षा० १७ २२ से १७ ५०´ उ० तथा देशा० ७५ ३३´ से ७६ २६ पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण ८४८ वर्गमील और जनसंख्या २ लाखसे ऊपर है। इसमें शोलापुर नामक १ शहर और १५१ ग्राम लगते हैं। जिले भरमें यहांकी आबादी घनी है। यहांकी आबहवा सूखी है। भीमा और सीना प्रधान नदी है।

३ उक्त तालुकाका एक शहर। यह अक्षा० १७ ४०´ उ० तथा देशा० ७५ ५४´ पू०के मध्य ग्रेट इण्डियन पेनिनसुला रेलवे लाइन पर अवस्थित है। जनसंख्या ६० हजारसे ऊपर है।

नगरके दक्षिण पश्चिम कोणमें चहारदिवारीसे घिरा हुआ एक छोटा पर मजबूत किला है। कहते हैं, कि १३४५ ई०में बाह्मनी राजवंशके प्रतिष्ठाता हसन गांगूने यह किला बनवाया। १४८९ ई०में बाह्मनी राजवंशका अधःपतन होने पर जैन खाँने शोलापुरको अधिकार किया। उसके लड़केकी नाबालगी अवस्थामें १५११

ई०को कमाल खाँने शोलापुर और पार्श्ववर्त्ती जिलाओं-को विजापुर राज्यमें मिला लिया।

१५२३ ई० में इस्माइल आदिल शाहने अहमदनगर राजके साथ अपनी बहनका विवाह कर दिया। शोलापुर प्रदेश दहेजमें मिला। पीछे १५६२ ई०में अहमदनगर-की राजकन्या चांदबीबीके विवाहमें शोलापुर फिर विजापुर राजको यौतुक-स्वरूप लौटा दिया गया। १६८६ ई० में विजापुर राजशक्तिका जब अवसान हुआ तब यह नगर मुगलोंके हाथ आया। पीछे मराठोंने यह मुगलोंके हाथसे छीन लिया। १८१८ ई०में जेनरल मनरोने पेशवाको परास्त कर यह स्थान दखल किया।

अङ्गरेजी अधिकारमें आनेके बादसे डकैतोंका उपद्रव बिलकुल जाता रहा। १८५६ ई०में रेलवेके खुल जाने-से पूना और हैदराबादके साथ इसका वाणिज्य व्यवसाय चलने लगा है, जिससे इसकी बहुत कुछ उन्नति हुई है। यहां रेशमी और सूती कपड़ेका विस्तृत कारबार और कारखाना है।

शीला नदीकी कलेवरवर्द्धिनी अदिला शाखाके बांधके ऊपर यह नगर बसा हुआ है। समुद्रकी तहसे इसकी ऊंचाई १८०० फुट है। नगरप्राचीरके दक्षिण-पश्चिम प्रान्तमें शोलापुर दुर्ग है। यह दुर्ग लम्बाईमें २३० गज और चौड़ाईमें १७६ गज है। चारों ओर दो प्रकिमें दीवार खड़ी है। पूरबमें सिद्धेश्वर हदके अलावा इसके चारों ओर १००से १५० फुट विस्तृत एक खाई दौड़ गई है। शहरमें कुल मिला कर ४० स्कूल हैं जिनमेंसे एक सरकारी हाई स्कूल, ४ मिडिल स्कूल १ नारमल स्कूल, १ इनडसट्रियल और १ कमरसियल स्कूल तथा बाकी अपरप्राइमरी स्कूल हैं। इसके सिवा अमेरिकन मिशन द्वारा परिचालित एक किण्डरगार्टन क्लास भी है। स्कूलके अतिरिक्त सब-जजकी अदालत, दो अस्पताल और ४ चिकित्सालय हैं।

शोष (सं० पु०) शुष घञ् भावे। १ शोषण, सूखनेका भाव। शुष्यत्यनेनेति शुष घञ् करणे। २ यक्ष्मरोग। पहले शरीरको शोषण कर पीछे इस रोगकी उत्पत्ति होती है, इसीसे इसको शोष या यक्ष्मा कहते हैं। रसरक्तादि धातु और मलादिका क्षय ही इस रोगका कारण है।

पहले सामान्य सर्दीसे खांसी होती है, पीछे उस खांसीसे धातुक्षय होने लगता है। आखिर यही क्षय शोष या यक्ष्माका कारण हो जाता है।

चरकमें साहस, वेगधारण, क्षय और विषमाशन इन चार कारणोंसे शोषकी उत्पत्तिकी कथा लिखी है।

साहस—जो व्यक्ति स्वयं दुर्बल हो कर बलवानके साथ मल्लयुद्धादि करता है, बहुत बड़ा धनुष आकर्षणमें चढ़ाना चाहता है, खूब जोरसे बोलता और गाता है, भारी बोझ ढोता है, बड़ी बड़ी नदियोंमें बहुत दूर तक तैरता है, हलकी आदिसे शरीर मलता है, बड़े जोरसे अर्थात् अभिमानपूर्वक किसी स्थानमें पदाघात करता है, बहुत दूर तक भ्रमण करता है, इन सब क्रियाओं द्वारा उसका वक्षस्थल क्षत या आहत होता और शरीरस्थ वायु प्रकुपित होती है। अनन्तर वह कुपित वायु क्षत-वक्षमें अच्छी तरह घुस कर श्लेष्मा और पित्तको दूषित कर डालती है तथा धीरे धीरे ऊर्द्ध्व, अधः और तिर्यग्-भावमें सारे शरीरमें विचरण करती है।

यह वायु कफ और पित्तके साथ मिल कर जब शरीरके सभी स्थलोंमें आश्रय लेती है, तब जृम्भा, अङ्गमर्द और ज्वर उत्पन्न होता है। आमाशयमें आश्रय लेनेसे मलभेद होता है, हृदयमें आश्रय लेनेसे छातीमें वेदना होती है, जिह्वामें आश्रय लेनेसे कण्ठ खुजलाना या उत्कास या स्वरभङ्ग होता है, प्राणवह स्रोतोंमें आश्रय लेनेसे श्वास और सर्दी तथा मस्तकमें आश्रय लेनेसे शिरःशूल उपस्थित होता है। वक्षःक्षतके कारण, वायुकी विषमगतिके कारण और कण्ठकी खुजलाहटके कारण उसे हमेशा खांसी होती है, तथा पूर्वोक्त क्षतयुक्त वक्षके बार बार क्षत होनेसे रक्तमिश्रित श्लेष्मा निक-लती है। इस प्रकार रक्त निकलनेसे रोगी दुर्बल हो जाता है। अतएव साहससे ही शरीरशोषकर इन सब उपद्रवों द्वारा उपद्रुत हो कर वह व्यक्ति धीरे धीरे सूख जाता है।

वेगधारण—जिस समय राजाके समीप, मालिकके समीप, गुरुके समीप, किसी साधु समाज या स्त्रीसमाजमें अथवा किसी सवारीसे जाते समय यदि

किसी व्यक्तिके अधोवायु मूत्र या मलका वेग उपस्थित हो और लज्जा या भयके कारण वह उन सब वेगोंको रोक ले, तो उसकी वायु प्रकुपित हो कर पित्त और श्लेष्माको दूषित कर डालती तथा पूर्ववत् ऊपर नीचे विचरण करने लगती है और नाना प्रकारके उपद्रव खड़ा कर देता है। पीछे उस व्यक्तिका शरीर धीरे धीरे सूखने लगता है।

क्षय—जब मनुष्य शोक और चिन्तासे अभिभूत रहते हैं अथवा ईर्षा उत्कण्ठा भय या क्रोधादि द्वारा अभिभूत होते हैं अथवा दुर्बलावस्थामें रूखा भोजन करते थोड़ा खाते या अल्पाहारी रहते हैं, तब उनके हृदयका रस क्षय होने लगता है। रसके क्षय होनेसे उनका शरीर दुबला पतला हो जाता है। फिर यदि कोई व्यक्ति हर्ष या बड़ा आसक्तिके साथ स्त्रीमें रत होता है तथा और धीरे धीरे केवल उसकी विवृद्धि होने लगती है तब शुक्र बहुत अधिक परिमाणमें गिरता है, इस प्रकार शुक्र गिरनेसे उसकी वायु प्रकुपित हो शोणितवह धमनियोंमें प्रवेश करती और उसके शोणितको अलग कर देता है। इस अवस्थामें उसके शुक्रका परिमाण इतना कम हो जाता है, कि पुनमैथुनकालमें शुक्र न निकल कर वायु द्वारा विपथगामी शोणित शुक्रमार्गमें लाया जाता और वहां निकलता है। इस प्रकार शुक्रक्षय और शोणित निर्गमके कारण उस व्यक्तिकी सभी सन्धियां ढीली पड़ जातीं तथा शरीर बहुत रूखा और कमजोर हो जाता है। इस समय प्रकुपित वायु रसहीन शरीरमें तमाम जा कर श्लेष्मा और पित्तको प्रकुपित कर डालती है तथा मांस और शोणितको सुखा कर उस श्लेष्मा और पित्तको निकालती है तथा दोनों पार्श्व और स्कन्धदेशमें वेदना कण्ठमें सुरसुराहट, श्लेष्माको ऊपर ला कर उस श्लेष्मासे मस्तकका परिपूर्ण तथा सन्धिस्थानोंका प्रपीड़ित और अङ्गमर्द, अरुचि, अपाक आदि उपद्रव खड़ा कर देती है। पित्त और श्लेष्माका उत्क्लेश अर्थात् वृद्धि गमनोन्मुखता तथा प्रतिलोमगामित्वके कारण ज्वर कास, श्वास स्वरभेद और प्रतिश्यायादि रोग उत्पन्न होते हैं। कास उत्पन्न होनेके कारण क्रमशः वक्षःस्थल आहत होनेसे रोगीके थूकमें रक्त निकलता है। इससे उसका शरीर दुर्बल और सूखा पड़ जाता है।

विषमाशन—साधारणतः अल्प, अधिक और असमयमें भोजन करनेको विषमाशन कहते हैं। चबाने, चूसने, चाटने और पीने ये चार प्रकारके भोजन हैं। भोजन विधिका अर्थात् प्रकृति, करण, राशि, संयोग, देश, काल, उपयोगसंस्था और उपभोक्ता, इनके वैषम्य भावमें अर्थात् अयथावत् नियमसे सेवन करनेका नाम ही विषमाशन है। विषमाशन देखो।

उक्त विषमाशन द्वारा त्रिदोष बिगड़ जाता है। यह प्रदुष्ट त्रिदोष सारे शरीरमें जा कर रसरक्तादिवह सभी स्रोतोंको ढक लेता है। इस अवस्थामें खाया हुआ पदार्थ प्रचुर परिमाणमें मलमूत्रादि रूपमें परिणत हो जाता है। अतएव उक्त खाये हुए पदार्थोंसे शरीरमें रस रक्तादि किसी भी धातुकी सम्यग् उत्पत्ति नहीं हो सकती, बल्कि उनका धीरे धीरे ह्रास ही हुआ करता है। इस अवस्थामें सिर्फ पुरीषके उपष्टम्भके कारण ही मनुष्य बच जाता है। इस समय यदि किसी कारणवशतः रोगीका मल निकलता रहे, तो थोड़े ही समयमें वह मृत्युमुखमें फंस जाता है। इसीलिये कहा गया है, कि शोषाक्रान्त व्यक्तिका मल अवश्य रक्षणीय है।

उक्त कारणवश रसादिके क्षय होनेसे रोगी बहुत कमजोर हो जाता है अथवा उस विषमाशनसे ही प्रकुपित वातादि दोषत्रय पृथक् पृथक् उपद्रव द्वारा रोगीके शरीरको अच्छी तरह चूस लेता है। वायु शिरःशूल, अङ्गवेदना कण्ठकण्डूयन, पार्श्ववेदना स्कन्धवेदना, स्वरभेद और प्रतिश्याय तथा पित्तज्वर, अतिसार और अन्तर्दाह तथा श्लेष्मा, शिरका गुरुत्व, अरुचि और कास आदि उपद्रव लाता है। खांसीकी अधिकतासे वक्षःस्थलमें जखम पहुंचता और रोगीके थूकमें खून निकलता है। इस कारण वह बहुत कमजोर और दुबला पतला हो जाता है।

उक्त चारों निदानके अतिसेवित होनेसे ही अनेक प्रकारके रोगोंका साथ ले कर और सामने रख शोष या यक्ष्मा रोगका अविर्भाव होता है इसीसे इसको राजयक्ष्मा या रोगराज कहते हैं।

३ क्षय, छीजनेका काम। ४ बच्चोंका सुखण्डी रोग। ५ खुश्की, सूखापन।

शोषक (सं० त्रि०) शोषयतीति शुष णिच्-ण्वुल्। १ शोषणकर्त्ता, सुखानेवाला। २ जल, रस या तरी खींचनेवाला, सोखनेवाला। ३ क्षीण करनेवाला, घुलानेवाला। ४ दूर करनेवाला। ५ नाश करनेवाला।

शोषकर्म (सं० पु०) बावली या तालाब आदिसे पानी निकलवाना और उससे खेत सिंचवाना।

शोषघ्न (सं० पु०) वन प्याज।

शोषण (सं० क्ली०) शुष ल्युट्। १ जल या रस खींचना, सोखना। २ सुखाना, खुश्क करना। ३ हरापन या ताजापन दूर करना। ४ क्षीण करना, घुलाना। ५ नाश करना, दूर करना। ६ सुण्ठी, सोंठ। ७ पिप्पली, पीपल। (पु०) शोषयतीति शुष-णिच्-ल्यु। ८ कामदेवके एक बाणका नाम। ९ श्योनाक वृक्ष, सोनापाठा। १० षोड़शांश कषाय, जो कषाय १६ भागका एक भाग रहने पर उतारा जाता है, उसे शोषण कहते हैं।

शोषणीय (सं० त्रि०) शुष-अनीयर्। शोषणयोग्य, सोखनेलायक।

शोषयितव्य (सं० त्रि०) १ जो सोखा जानेवाला हो। २ जिसे सुखाना हो।

शोषयितृ (सं० त्रि०) शुष-णिच्-तृच्। १ शोषणकारक, सोखनेवाला। २ सुखानेवाला।

शोषसम्भव (सं० क्ली०) शोषाय रसाकर्षणाय सम्भवो यस्य। पिप्पलीमूल, पिपला मूल।

शोषहन् (सं० पु०) १ अपामार्ग, चिचड़ा। २ शोषनाशक।

शोषापहा (सं० स्त्री०) शोषं अपहन्तीति हन-ड, टाप्। १ यष्टिमधु, मुलेठी। (त्रि०) २ शोषनाशक।

शोषित (सं० त्रि०) शुष णिच् क्त। १ सोखा हुआ। २ सुखाया हुआ।

शोषिन् (सं० त्रि०) शुष-णिनि। १ सोखनेवाला। २ सुखानेवाला।

शोष्य (सं० त्रि०) शुष-यत्। १ सोखनेलायक। २ सुखानेलायक।

शोहदा (अ० पु०) १ व्यभिचारी, लंपट। २ गुण्डा, बदमाश, लुच्चा। ३ छैल चिकनिया, बहुत बनाव सिंगार करनेवाला।

शोहदापन (अ० पु०) १ गुण्डापन, लुच्चापन। ३ छैलापन।

शोहरत (अ० स्त्री०) १ नामवरी, ख्याति। २ खूब फैली हुई खबर, धूम।

शोहरा (अ० पु०) १ ख्याति, प्रसिद्धि। २ धूमसे फैली हुई खबर, जनरव।

शौक (सं० क्ली०) शुकानां समूहः शुक (भिक्षादिभ्योऽण्। पा ४।२।४५) इत्यण्। १ शुकोंका समूह, तोतोंका झुंड। २ स्त्रियोंका करणविशेष।

शौक (अ० पु०) १ किसी वस्तुकी प्राप्ति या निरन्तर भोगके लिये अथवा के ई कार्य करते रहनेके लिये होनेवाली तीव्र अभिलाषा या कामना, प्रबल लालसा। २ आकांक्षा, लालसा, हौसिला। ३ प्रवृत्ति, झुकाव। ४ व्यसन, चसका, चाट।

शौकत (अ० स्त्री०) ठाट बाट, शान। शान शौकत।

शौकर (सं० क्ली०) शूकरस्येदमिति शूकर अण्। तीर्थविशेष, शूकर सम्बन्धीय तीर्थ। भगवान् विष्णुने शूकररूपमें पृथ्वीको रसातलसे जहां उद्धार किया था, वहीं यह तीर्थ विद्यमान है। इस तीर्थमें जानेसे सभी पातक विनष्ट होता है। वराहपुराणमें इसका विवरण विशद रूपसे लिखा है।

शौकरव (सं० क्ली०) तीर्थविशेष, शौकर तीर्थ।

शौकरी (सं० स्त्री०) वाराहीकन्द, गेंठी।

शौकि (सं० पु०) प्राचीन कालके एक गोत्रप्रवर्त्तक ऋषिका नाम।

शौकिया (अ० क्रि० वि०) १ शौकके कारण, शौक पूरा करनेके लिये, प्रवृत्तिके वश हो कर। (वि०) २ शौकसे भरा हुआ।

शौकीन (अ० पु०) १ वह जिसे किसी बातका बहुत शौक हो, शौक करनेवाला, चाव रखनेवाला। २ वह जो सदा छैला बना रहता हो, सदा बना ठना रहनेवाला। ३ रंडीबाज, ऐयाश, तमाशबीन।

शौकीनी (अ० स्त्री०) १ शौकीन होनेका भाव या काम। २ तमाशबीनी, रङ्गबाजी, ऐयाशी।

शौक्रेय (स० पु०) शुक्रस्य गोत्रापत्य शुक (शुभ्रादिभ्यश्च। पा ४।१।१२३) इति ढक्। शुकका गोत्रापत्य, एक ऋषि।

शौक्त (स० क्ली०) साममेद।

शौक्तिक (स० क्ली०) मौक्तिक, मुक्ता।

शौक्तिका (स० स्त्री०) मुक्ता शुक्ति, सीप।

शौक्तिकेय (स० क्ली०) शुक्तिकाया भवमिति शुक्तिका ढक्। मुक्ता।

शौक्तेय (स० क्ली०) शुक्ती भवमिति शुक्ति ढक्। १ मुक्ता। (त्रि०) २ शुक्ति सम्बन्धी।

शौक्र (स० त्रि०) शुक्रमय शुक्र सम्बन्धी।

शौक्रायन (स० पु०) शुक्रका गोत्रापत्य। (शब्दरत्नौ०)

शौक्रेय (स० पु०) शुक्रस्य अपत्य शुक्र (शुभ्रादिभ्यश्च। पा ४।१।१२३) इति ढक्। शुक्रका गोत्रापत्य।

शौक्ल्य (स० क्ली०) शुक्लस्य भावः शुक्ल (वर्णदृढादिभ्य ष्यञ् च। पा ५।१।१२३) इति ष्यञ्। शुक्लका भाव।

शौक्ल (स० त्रि०) १ शुक्ल सम्बन्धी। (पु०) २ साममेद। सम्भवत शौक्लसाम।

शौक्ल्य (स० क्ली०) शुक्लस्य भाव शुक्ल (वर्ण दृढादिभ्य ष्यञ् च। पा ५।१।१२३) इति ष्यञ्। शुक्लका भाव, शुक्लता सफेदी।

शौग्र (स० पु०) शिघ्र बाज, साहि जनके बान।

शौङ्ग (स० पु०) शुङ्ग ' विकर्णशुङ्गछगलाद्वत्समरद्वाजात्रिषु। पा ४।१।११७) इति अण्। शुङ्गका अपत्य, भरद्वाज ऋषि।

शौङ्गायनि (स० पु०) शौङ्गका गोत्रापत्य।

शौङ्गि (स० पु०) शुङ्गका गोत्रापत्य। (पा ४।१।११७)

शौङ्गिपुत्र (स० पु०) एक वैदिक आचार्यका नाम।

शौङ्गेय (स० त्रि०) शौङ्गि सम्बन्धी। (पा ४।२।१३८)

शौङ्गेय (स० पु०) १ गरुड। (दशकुमार ६३।६) २ श्येन पक्षी, बाज।

शौङ्ग्य (स० पु०) शुङ्गका गोत्रापत्य एक ऋषि।

शौच (स० क्ली०) शुचे भाव शुचि (इग न्ताच्च लघुपूर्वात्। पा ५।१।१३१) इत्यण्। १ शुचिता पवित्रता।

अभक्ष्य वस्तुका परिहार अर्थात शास्त्रमें जिन सब वस्तुओंका भोजन निषिद्ध बताया है, उनका परित्याग तथा अनिन्दितका ससर्ग और स्वधर्मपालन करनेको शौच कहते हैं। कहनेका तात्पर्य यह कि, चाहे जिस तरह हो विशुद्ध भावमें रहनेका नाम शौच है। विशुद्ध भावमें पहले आहारशुद्धिकी आवश्यकता है, क्योंकि बिना आहारशुद्धिके सत्वशिक्षा नहीं होती। इसके बाद साधुसंसर्ग और स्वधर्मका पालन करना होता है।

जितने प्रकारके शौच हैं उनमें अर्थशौच ही प्रधान है। जो अर्थविषयमें अशुचि है उसका मृत्तिका या जल द्वारा शौच नहीं होता। शौच पाच प्रकारका है, सत्य शौच, मन शौच, इन्द्रियनिग्रहरूप शौच और सभी भूतोंके प्रति दयारूप शौच। यथा—जिन्हें सत्यशौच प्राप्त हुआ है उनके लिये स्वर्ग दुर्लभ नहीं है। मनुमें भी लिखा है—

सभी प्रकारके शौचोंमें अर्थात् देह मन आदि शुद्धि कर पदार्थोंमें अर्थशौच ही प्रधान है। अर्थार्जन विषय में जो अशास्त्रीय उपायका अवलम्बन न करके शास्त्र सङ्गत उपायसे अर्थार्जन और उसकी रक्षा करते हैं, उन्हें प्रधान शौचावलम्बी कहा जाता है। जो अर्थोपार्जनमें शुचि हैं वे ही यथार्थमें शुचि हैं। मिट्टी या जल द्वारा देह शुद्ध करनेको यथार्थमें शौच नहीं कह सकते। विद्वानों की क्षमा ही शौच है अर्थात् वे क्षमा द्वारा शुद्ध होते हैं, अकार्यकारी दान द्वारा, प्रच्छन्न पापी जप द्वारा, वेदविद् ब्राह्मण तपस्या द्वारा, परपुरुषाभिलाषके कारण दूषित मना नारी रजस्वला द्वारा मलवहा नदी स्रोतवेग द्वारा, द्विजोत्तम प्रव्रज्या द्वारा, मन सत्य द्वारा, जीवात्मा विद्या और तपस्या द्वारा तथा बुद्धि ज्ञान द्वारा शुद्ध होता है। इन्हीको शारीरिक शौच कहते हैं।

आह्निकतत्त्वमें लिखा है कि बाह्य भेदसे भी आभ्य न्तर शौच दो प्रकारका है। मृत्तिका और जलादि द्वारा शरीरका जो शुद्धि विधान किया जाता है उसे बाह्य शौच तथा इन्द्रियादिक संयम और चित्तकी जो विशुद्धि है उसे आभ्यन्तर शौच कहते हैं। भावशुद्धि ही आभ्य न्तर शौच है। चित्तके शुद्ध नहीं होनेसे प्रकृत शौच

"सत्त्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्र्येन्द्रियजयात्मदर्शनयोग्यत्वानि च।"
(पातञ्जलद० २।४०)

बहि शुद्धिसे रज और तमोमल दूर हो कर सत्त्व शुद्धि अर्थात् चित्तकी निर्मलता होती है। इसके बाद सौमनस्य अर्थात् मनकी प्रसन्नता होती है। मनके प्रसन्न होनेसे चित्तकी एकाग्रता अर्थात् विक्षेपकी अभाव रूप स्थिरता उत्पन्न होती है। चित्त स्थिर होनेसे इन्द्रियोंकी भी जय होती है पीछे चित्तमें आत्मज्ञानलाभ की शक्ति पैदा होती है।

'आचारहीन न पुनन्ति वेदा' सदाचार, सदनुष्ठान, जप और तप आदि न करके केवल मौखिक आन्दोलनसे चित्तशुद्धि नहीं होती। तीर्थस्नान, पवित्र गङ्गामृत्तिकाप्रलेप आदि बाह्यशौच सर्वदा आचरण करे। यह सब बाह्यशौच करते करते मैत्री करुणा, मुदिता आदि भावना द्वारा निरसन ईर्षा, द्वेष आदि चित्तमल दूर हो, उसके प्रति विशेष लक्ष्य रखना होगा। इन सब आभ्यन्तर शौचका अभ्यास करनेसे चित्त प्रसन्न रहता है।

बहिःशौच ही अन्तःशौचका कारण है। चित्तशुद्धि के लिये ही नित्य नैमित्तिक सभी क्रियाओंका विधान है। अन्तःशौचकी अभिलाषा रहनेसे बहिःशौचकी ओर विशेष लक्ष्य रखना आवश्यक है। मैं शुचि हूंगा, अन्तःकरण निर्मल होगा, केवल ऐसी इच्छासे कुछ भी होना जाता नहीं, चित्तशुद्धि हुई है या नहीं, द्वेषद्वेष आदि चित्तमल दूर हुए हैं या नहीं, इन सब विषयोंका ओर दृष्टि न रख कर केवल बाह्य आडम्बरसे कोई फल नहीं होता। चित्तशुद्धि अति दुर्लभ पदार्थ है। सर्वदा सदाचार, सत्प्रसर्ग और सत्कर्मानुष्ठान इत्यादिमें रत रहना तथा व्रतनियमादिकी कठोरताका प्रतिपालन करना होता है।

अन्तःशौचसाधनकालमें मैत्री करुणा आदि विषयों का अच्छी तरह अभ्यास करना होता है अर्थात् उस समय जगत्के सभी सुखी लोगोंके प्रति सौहार्द अर्थात् प्रेम करे, इससे चित्तका ईर्षामल दूर होगा। दुःखियोंके प्रति दया करे अर्थात् जिस प्रकार अपने दुःख दूर करनेकी चिन्ता बनी रहती है उसी प्रकार दूसरेका दुःख दूर करने का प्रयत्न करे। इससे दूसरेका अपकाररूप चित्तमल विनष्ट होता है। धार्मिक मनुष्य देख कर सन्तुष्ट होवे, इससे असूयावृत्ति (अर्थात् दूसरेके गुण पर दोषारोप करना) निवृत्ति होता है। अधार्मिक लोगोंके प्रति उदासीन रहे अर्थात् उनका साथ एकदम छोड़ दे। इससे क्रोधरूप चित्तमल विनष्ट होता है।

इस प्रकार सभी कार्य पुनः पुनः करते करते चित्तमें शुक्लधर्म अर्थात् राजसतामसवृत्ति तिरोहित हो कर सात्त्विकवृत्तिका उदय होता है। इसी समय प्रकृत आभ्यन्तर शौचसिद्धि होती है। इस प्रकार आभ्यन्तर शौचकी सिद्धि होनेसे चित्त प्रसन्न और स्थिर होता है। उस समय चित्त फिर पहलेकी तरह तड़ित् वेगसे विषय की ओर नहीं दौड़ता।

यम नियम आदि योगके आठ अङ्ग हैं। शौच नियमके अन्तर्गत कारण, शौच, सन्तोष, तपस्या, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान ये पांच नियम हैं। चित्तको शुद्ध करनेमें पहले ही इस शौचका आचरण करना होता है।

२ वे कृत्य जो प्रातःकाल उठ कर सबसे पहले किये जाते हैं। जैसे,—पाखाने जाना, मुंह हाथ धोना, नहाना सन्ध्या वन्दन करना आदि। ३ पाखाने जाना, टट्टी जाना।

शौचक (सं० क्ली०) शौच स्वार्थे कन्। शौच देखो।

शौचत्व (सं० क्ली०) शौचस्य भाव शौच त्व। शौचका भाव या धर्म शौचकार्य।

शौचद्रथ (सं० पु०) सुचद्रथका अपत्य। (ऋक् ५।७९।२)

शौचवत् (सं० त्रि०) शौच अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। शौच विशिष्ट, शौचयुक्त। (याज्ञवल्क्यस० ३।१३७)

शौचविधि (सं० स्त्री०) मल मूत्र आदिका त्याग करना शौच आदिसे निवृत्त होना, निपटना।

शौचाचार (सं० पु०) शौच आचार। शुद्धिकर्म, शौचाचारविहीन व्यक्तिकी सभी क्रिया निष्फल होती है।

शौचादित्य (सं० पु०) एक ऋषिका नाम।

शौचाधान (सं० क्ली०) पवित्रतानुष्ठान।

शौचिक (सं० पु०) शौच शृङ्गारे शुचिना कार्पासेना

शौनासीर्य (सं० त्रि०) शुनासीर-सम्बन्धी।

शौनिक (सं० पु०) शूना प्राणिवधस्थानं प्रयोजनमस्य शूना-ठक्। १ मांसविक्रयकर्त्ता, मांस बेचनेवाला, कसाई। २ मृगया, शिकार, आखेट।

शौनिकशास्त्र (सं० क्ली०) वह शास्त्र जिसमें शिकार खेलने, घोड़ों आदि पर चढ़ने और पशुओं आदिको लड़ानेकी क्रियाका वर्णन हो।

शौन्दत्ति—बम्बईप्रदेशके बेलगाम जिलान्तर्गत परशगढ उपविभागका प्रधान नगर। यह अक्षा० १५° ४६' उ० तथा देशा० ७५° ७' पू०के मध्य विस्तृत है। इस नगरसे दो मील दक्षिण परशगढ़के पहाड़ी दुर्गका खंडहर दिखाई देता है। यहांसे साढ़े पांच मील उत्तरपश्चिम एक स्थानमें येल्लमादेवीके उद्देशसे प्रति वर्ष दो बार वैशाखी पूर्णिमा और कार्त्तिकी पूर्णिमाको मेला लगता है। म्युनिस्पलिटीका प्रबंध रहनेसे नगर खूब साफ सुथरा है। शहरमें सब-जजकी अदालत, अस्पताल, म्युनिसपल मिडिल स्कूल और पांच प्राइमरी स्कूल हैं।

शौभ (सं० क्ली०) शोभायै हितं शोभा-अण्। १ हरिश्चन्द्रपुर, राजा हरिश्चन्द्रकी नगरी। पर्याय—व्योमचारिपुर। (मुग्धबो०) यह पुर शाल्व राजाके अधिकृत था, भगवान् श्रीकृष्णने शौभाधिपति शाल्वको वध कर यह पुर अधिकार किया। भागवतके दशम स्कन्धमें ११ अध्यायमें इसका विस्तृत विवरण लिखा हुआ है। (पु०) शुभाय हितः शुभ-अण्। २ देवता। (त्रिका०) ३ गुवाक, सुपारी। (शब्दरत्ना०)

शौभनेय (सं० त्रि०) १ शोभन-सम्बन्धी। २ शोभनाका अपत्य, सुन्दरी स्त्रीका गर्भजात। (पाणिनि ४।१।१२३)

शौभाञ्जन (सं० पु०) शोभाञ्जन एव स्वार्थे अण्। शोभाञ्जन, सहिंजनका पेड़। (भरत द्विरूपको०)

शौभायन (सं० पु०) प्राचीन कालकी एक योद्धा जातिका नाम।

शौभायनि (सं० पु०) शुभस्य गोत्रापत्यं शुभ-(तिकादिभ्यः फिञ्। पा ४।१।१५४) इति फिञ्। शुभका गोत्रापत्य।

शौभायन्य (सं० पु०) शौभायनोंका राजा।

शौभिक (सं० पु०) ऐन्द्रजालिक, जादूगर।

शौभ्रलिङ्ग (सं० पु०) श्वेतवर्ण शिवलिङ्ग।

शौभ्रायण (सं० पु०) १ प्राचीनकालके एक देशका नाम। २ इस देशका निवासी।

शौभ्रायणभक्त (सं० पु०) शौभ्रायणानां विषयो देशः। शौभ्रायणका विषय या देश।

शौभ्रेय (सं० त्रि०) शुभ्राया अपत्यं शुभ्रा-(शुभ्रादिभ्यश्च। पा ४।१।१२३) इति ढक्। १ शुभ्र सम्बन्धी। (पु०) २ शुभ्रका अपत्य। ३ इस देशकी योद्धा जाति। ग्रीक-भौगोलिकोंने Sabraeae शब्दमें इस देशका उल्लेख किया है। अलेकसन्दरके समय यह Sambracae कहा जाता था।

शौभ्रेय (सं० पु०) शुभ्र-अपत्यार्थे (कुर्व्वादिभ्यो ण्यः। पा ४।१।१५१) इति ण्य। शुभ्रका गोत्रापत्य।

शौरदेव्य (सं० पु०) शूरदेवका अपत्य।

शौरसेन (सं० त्रि०) १ शूरसेन-सम्बन्धी। २ शूरसेन-जात। (पु०) ३ आधुनिक व्रजमण्डलका प्राचीन नाम जहाँ पहले राजा शूरसेनका राज्य था।

शौरसेनिका (सं० स्त्री०) शौरसेनी देखो।

शौरसेनी (सं० स्त्री०) १ प्राचीनकालकी एक प्रसिद्ध प्राकृत भाषा जो शौरसेन (वर्त्तमान व्रजमण्डल) प्रदेशमें बोली जाती थी। यह मध्यदेशकी प्राकृत थी और शूरसेन देशमें इसका प्रचार होनेके कारण यह शौरसेनी कहलाई। मध्यदेशमें ही साहित्यिक संस्कृतका अभ्युदय हुआ था और यहींकी बोलचालकी भाषासे साहित्यकी शौरसेनी प्राकृतका जन्म हुआ। इस पर संस्कृतका बहुत अधिक प्रभाव पड़ा था और इसीलिये इसमें तथा संस्कृतमें बहुत समानता है। यह अपेक्षाकृत अधिक पुरानी, विकसित और शिष्ट समाजकी भाषा थी। वर्त्तमान हिन्दीका जन्म शौरसेनी और अर्धमागधी प्राकृतों तथा शौरसेनी और अर्धमागधी अपभ्रंशोंसे हुआ है। २ प्राचीन कालकी एक प्रसिद्ध अपभ्रंश भाषा। इसका प्रचार मध्यदेशके लोगों और साहित्यमें था। यह नागर भी कहलाती थी।

शौरसेन्य (सं० त्रि०) शूरसेन-सम्बन्धी।

शौरि (सं० पु०) शूरस्यापत्यमिति शूर इञ्। १ विष्णु। २ शनिग्रह। (अमर) ३ शूरवंशीय मात्र। ४ वसुदेव। ५ बलदेव। ६ कृष्ण। (भागवत ३।१०।३३)

शौरिदत्त—यागचाणीटीकाप्रकाशके रचयिता।

शौरिप्रिय (स० पु०) हारक हीरा।

शौरिरत्न (स० पु०) नीलम।

शौरिसूनु—सप्ततपरलक्षणनामक ग्रन्थके प्रणेता।

शौर्प (स० त्रि०) शूर्प (पूर्णात्परिमाणात्। पा ५।१।२६) इति अण्। शूर्पपरिमित।

शौर्पणाय्य (सं० पु०) शूर्पणाय कुत्साग्निवास अपत्यार्थे ण्य। (पा ४।१।१५१) शूर्पणायका अपत्य।

शौर्पारक (स० क्ली०) काले रंगका एक तरहका हीरा जो प्राचीन कालमें शूर्पारक प्रदेशमें पाया जाता था।

शौर्पिक (स० त्रि०) शूर्प ठञ्। (पा ५।१।२६) शूर्प परिमाण।

शौर्य (स० क्ली०) शूरस्य भावः कर्म वा शूर ष्यञ्। १ शूरका भाव शूरता, वीरता, बहादुरी। २ शूरका धर्म। ३ नाट्यमें आरभटी नामकी वृत्ति। आरभटी देखो।

शौर्यमण्डन—महाद्रियवणित एक राजाका नाम।

शौर्यवत् (स० त्रि०) शौर्य अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। शौर्यविशिष्ट शूर, वीर।

शौर्यादिमत् (स० त्रि०) शौर्यादि अस्त्यर्थे मतुप्। शौर्यादिविशिष्ट।

शौल (स० पु०) लाङ्गल या हलका फाल।

शौल्वायन (स० पु०) गोत्रप्रवर्तक एक ऋषिका नाम। कौल्वायन देखो।

शौल्विक (स० पु०) १ प्राचीन कालके एक देशका नाम जो शुल्विक भी कहलाता था। शुल्विक देखो। २ इस देशका निवासी। (वृहत्स० १४।१६)

शौल्विरि (स० पु०) अत्र शौचार्थ योगशास्त्रोक्त धौति नेति आदि छः प्रकारके कर्मोंमेंसे एक कर्म। इस क्रियामें बायें नथनेसे धीरे धीरे सांस खींचते हुए दाहिने नथनेसे बाये छोड़ते हैं और फिर दाहिने नथनेसे खींचते हुए बाये नथनेसे छोड़ते हैं। किन्तु यह पूरक और रेचक बाये धीरे धीरे करना होता। यदि इसमें किसी तरह अधिक बल न लगे और वायु दूर तक रुका न रहे तो शरीरके अनिष्ट होनेकी सम्भावना है। इस योगाभ्यास द्वारा कफदोषकी शान्ति होती है।

शौल्क (स० त्रि०) शुल्क अण्। १ शुल्क सम्बन्धी, शुल्क का। (क्ली०) २ सामभेद।

शौल्कशालिक (स० त्रि०) शुल्कशालायां आगत शुल्कशाला (ठगायस्थानेभ्यः। पा ४।३।७५) इति ठक्। १ शुल्कशालासे आगत, शुल्कगृहसे प्राप्त। शुल्कशालाया अवक्रय (अवक्रय। पा ४।४।५०) इति ठक्। २ शुल्कशालाका अवक्रय अर्थात् शुल्कशालामें दिया जाने वाला कर।

शौनकायनि (स० पु०) एक मुनिका नाम। ये वेददर्श शिष्य थे। भागवतमें लिखा है, कि वेददर्श संहिता अध्ययन कर चार भागोंमें इन्होंने विभक्त किया था तथा यह संहिता शौनकायनि आदि चार शिष्योंको अध्यापना कराई थी। (भागवत १२।७।२)

शौल्किक (स० पु०) शुल्क अधिकृत शुल्क ठञ्। शुल्कका अध्यक्ष वह अधिकारी जो लोगोंसे शुल्क लेता हो, शुल्क या महसूल आदि वसूल करनेवाला अफसर।

शौल्किकेय (स० पु०) शुल्किके देशभेदस्तत्र भव ढक्। विषभेद एक प्रकारका विष। (अमर)

शौवर (स० क्री०) १ शतपुष्पा सौंफ। २ सुल्फा नामका साग।

शौल्वायन (स० पु०) शुल्व गोत्रापत्ये फक्। शुल्वका गोत्रापत्य। (शतपथब्रा० १३।४।२।७-३)

शौविक (स० पु०) १ प्राचीन कालकी एक वर्णसंकर जातिका नाम। २ ठठेरा कसेरा।

शौव (सं० क्ली०) श्वन् (शुनः सम्प्रसारणं। पा ६।४।१४४) इत्यस्य वा दिलोपाभावस्य अपि साधु। १ शुन सम्बन्ध। २ शुनोवृन्द। ३ श्वोमत (सं शिरानार उणादि) (पु०) ४ उष्णभेद।

शौवपुच्छ (स० त्रि०) श्वपुच्छ सम्बन्धी।

शौवन (स० क्ली०) श्वन् अण्। १ कुत्तेका भाव। २ कुत्तेका अपत्य। शुन समूह श्वन् (खण्डिकादिभ्यश्च। पा ४।२।४५) इत्यञ्। ३ कुत्तोंका समूह। ४ कुत्तेका मांस। (काशिका ६।४।१३३)

शौवनि (स० त्रि०) श्वान सम्बन्धी कुत्तेका।

शौवनेय (स० पु०) शुन अपत्य श्वन् (शुभ्रादिभ्यश्च। पा ४।१।१२३) इति ढक्। कुत्तेका अपत्य।

शौवस्तिक (सं० त्रि०) श्वो भवं श्वस् (श्वसस्तुट् च। पा ४।३।१५) इति ठञ् तुडागमश्च। भाविदिन स्थायिवस्तु, वह पदार्थ जो भविष्यमें व्यवहार करनेके विचारसे संग्रह करके रखा गया हो।

शौवाहन (सं० क्ली०) एक नगरका नाम। (पा ७।३।१८)

शौवापद (सं० त्रि०) श्वापदस्येदमिति श्वापद अण् (पादान्तस्यान्यतरस्याम्। पा ७।३।१९) इति पक्षे ऐच्। श्वापद सम्बन्धी।

शौष्कल (सं० पु०) शुष्कलं पण्यमस्येति अण्। १ शुष्क मांसका पणक, सूखे हुए मांसका मूल्य। (त्रि०) शुष्कलोऽस्त्यस्येति शुष्कली अण्। २ आमिषाशी, मांस मछली खानेवाला।

शौष्कास्य (सं० क्ली०) मुखका शुष्क भाव, शुष्क मुख।

शौहर (फा० पु०) स्त्रीका पति स्वामी, खाविंद।
पति देखो।

श्च्योत (सं० पु०) श्च्योतनमिति श्च्युत घञ्। प्रवाह।

श्नथन (सं० त्रि०) श्नथयतीति श्नथ ल्यु। १ श्नथनकारी, वध करनेवाला। (ऋक् २।२१४) (क्ली०) श्नथ-ल्युट्। २ वध, हिंसा।

श्नथितृ (सं० त्रि०) श्नथ तृच्। श्नथनकारी, हिंसा करनेवाला।

श्नस् (सं० क्ली०) ओष्ठनन्त्रि। (शुक्लयजुः ५।२१)

श्नाभ (सं० क्ली०) साममेद।

श्नुष्टि (सं० स्त्री०) १ आङ्गिरसभेद। (पञ्चविंशब्रा०) २ वैदिककालका 'समय' का एक परिमाण।

श्नोष्ट (सं० क्ली०) साममेद।

श्मन् (सं० क्ली०) १ मुख। २ शरीर। (निरुक्त ३।५) ३ शव, मुरदा।

श्मशा (सं० स्त्री०) कुल्या, कुलीन स्त्री।

श्मशान (सं० क्ली०) श्मना शवानां शानं शयनं यत्र, यद्वा शवानां शयनमिति (पृषोदरादीनि यथोपदिष्टानि। पा ६।३।१०९) इति शवशब्दस्य श्मादेशः शयनशब्दस्यापि शानशब्द आदेशः। शवदाहस्थान, वह स्थान जहां मुर्दे जलाये जाते हों, मरघट। पर्याय- पितृवन, शतानक, रुद्राक्रीड, दाहसर, अन्तशय्या, पितृकानन।

पण्डितोंने श्मशान शब्दकी निरुक्ति इस प्रकार की है—श्म शब्दका अर्थ शव और शानका अर्थ शयन है, प्रलयकालमें महाभूत भी जहां शव स्वरूपमें शयन करता है, उसे श्मशान कहते हैं।

स्कन्दपुराणके काशीखण्डमें वाराणसीक्षेत्रको महाश्मशान और मुक्तिका क्षेत्र कहा है, यथा—

"वाराणसीति विख्याता महावास इति द्विजाः।
महाश्मशानमित्येवं प्रोक्तमानन्दकाननं॥"

(काशीख० ०० अ०)

वराहपुराणमें लिखा है, कि श्मशानमें प्रवेश करनेसे प्रायश्चित्त करना होता है। श्मशानसे लौट कर या विना स्नान किये किसी भी विष्णुमूर्त्तिका स्पर्श करनेसे गृध्र और शृगालयोनिमें जन्म होता है। पीछे वह पन्द्रह मास और चौदह वर्ष तक नरमांसभोजी हो कर पृथिवी पर अवस्थान करता और पीछे पिशाचरूप धारण कर तीस वर्ष तक उच्छिष्ट दुर्गन्धित मृतदेहको खाना पड़ता है। यहां पर प्रश्न हो सकता है, कि जब श्मशान इतना पापस्थान है, तब शिवजी वहां सर्वदा वास क्यों करते हैं? यह सत्य है; किन्तु उक्त वराहपुराणमें यह भी जाना जाता है, कि बालवृद्धवनिताके साथ जब शिवजीने त्रिपुरासुरका वध किया, तब पापग्रस्त हो उन्हें भी विष्णुके उपदेशसे पापप्रक्षालनार्थ श्मशानवासी होना पड़ा है।

देवादिदेव महादेवने जब बालवृद्धगर्भिणी आदिके साथ त्रिपुरपुरीका विध्वंस किया, तब वे पापके डरसे किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो श्रीविष्णुके पास गये और पापप्रक्षालनार्थ उनसे प्रार्थना की। विष्णुने कहा—हे रुद्र! तुम दिव्य सहस्र वर्ष तक समल अर्थात् मनुष्यके अस्थिसह नाना प्रकारके पूतिगन्धयुक्त श्मशानमें नृकपाल धारण कर रुद्रगणके साथ वास करो, पीछे महर्षि गौतमके आश्रम जाओ। वहां उनके प्रसादसे तुम इस घोर पापसे मुक्त हो सकोगे।

श्मशानमें जानेवाले व्यक्तिका प्रायश्चित्त इस प्रकार है,—श्मशानमें प्रवेश करनेसे कृतसंस्कार और विष्णुपरायण हो पन्द्रह दिन तक प्रतिदिन सिर्फ एक बार जल पी कर रहे और कुशके आसन पर सोवे। उस समय प्रात

दिन सवेरे पञ्चगव्य पानकी भी व्यवस्था निर्दिष्ट है।

तन्त्रादिमें लिखा है, कि श्मशान शक्तिमन्त्रसिद्धिका एक प्रधान स्थान है। श्मशानके ऊपर बैठ कर शक्तिमन्त्रकी साधना करनेसे अति शीघ्र सिद्धि लाभ होती है। इन सब तन्त्रोक्त मारण वशीकरण आदि कार्योंमें श्मशानकी मिट्टी और सिन्दुरादिका प्रयोजन होता है।

आयुर्वेदशास्त्रमें लिखा है कि औषध प्रस्तुत करनेके लिये श्मशानभूमिमें उत्पन्न कोई द्रव्यग्रहण न करे।

श्मशानकालिका (सं० स्त्री०) तान्त्रिकोंके अनुसार एक प्रकारकी काली जिनका पूजन मांस, मछली खा कर मद्य पी कर और नंगे हो कर श्मशानमें किया जाता है।

श्मशाननिलय (सं० पु०) श्मशाने निलयो यस्य। श्मशानवासी शिव।

श्मशानपति (सं० पु०) १ शिव महादेव। २ एक प्रकारका ऐन्द्रजालिक।

श्मशानपाल (सं० पु०) श्मशानरक्षक चण्डाल।

श्मशानभैरवी (सं० स्त्री०) १ तान्त्रिकोंके अनुसार वे देवियां जो श्मशानमें रहती हैं। २ दुर्गा।

श्मशानवासिन् (सं० पु०) श्मशाने वसतीति वस-णिनि। १ शिव, महादेव। २ चण्डाल। शुद्धितत्त्वमें लिखा है, कि शवदाहके बाद अशौच पूरा हो जाने तक जो रहता है वह श्मशानवासी चण्डाल कहा जाता है।

श्मशानवासिनी (सं० स्त्री०) श्मशाने वसति वस-णिनि ङीप्। काली।

श्मशानवेताल (सं० पु०) १ भूतयोनिविशेष। २ कथासरित्सागरवर्णित श्मशानकाराभेद।

श्मशानवेश्मन् (सं० पु०) श्मशानं वेश्म यस्य। महादेव।

श्मशानालयवासिन् (सं० पु०) श्मशानालये श्मशानगृहे वसतीति वस-णिनि। शिव।

श्मशानालयवासिनी (सं० स्त्री०) काली।

श्मश्रु (सं० क्लो०) श्म मुखं श्रयते आश्रयतीति श्म-श्रि (श्मनि श्रयते डुन्। उण् ५।२८) इति डुन्। होठों गालों और ठोढ़ी आदि पर होनेवाले बाल, मुंहके बाल, दाढ़ी मूंछ। स्निग्ध और मृदु अथवा सघन और अकुटिलाग्र श्मश्रु होनेसे शुभ होता है। श्मश्रु लाल होनेसे चोर, थोड़ा लाल और पुरुषके दाढ़ी तक होनेसे अशुभ होता है।

मार्कण्डेयपुराणमें लिखा है कि केश और श्मश्रु स्वच्छ रहनेसे मनोऽभिराम होता है।

शुद्धितत्त्वमें लिखा है, कि क्षौरकार्यमें पहले केश, पीछे श्मश्रु और तब नख कटाना चाहिए।

श्मश्रुकर (सं० पु०) नापित हज्जाम।

श्मश्रुकर्त्तन (सं० क्ली०) क्षौरकर्म दाढ़ी बनवाना, हजामत बनवाना।

श्मश्रुजात (सं० त्रि०) जातं श्मश्रु यस्य आहिताग्न्यादित्वात् पूर्वनिपात (पा २।२।३७) जातश्मश्रु दाढ़ी मूंछवाला।

श्मश्रुण (सं० त्रि०) श्मश्रुविशिष्ट, दाढ़ी मूंछवाला।

श्मश्रुधारिन् (सं० त्रि०) श्मश्रु धरतीति धृ-णिनि। श्मश्रुधारणकारी, दाढ़ी मूंछ रखनेवाला।

श्मश्रुमुखी (सं० स्त्री०) श्मश्रु मुखे यस्याः टाप्। श्मश्रुयुक्ता नारी, वह स्त्री जिसके गालों और ऊपरी होंठ पर दाढ़ी और मूंछके बाल हों। पर्याय—वालि पाली, घण्टा। (शब्दार्थ) ऐसी स्त्री क्रूर, कुलक्षणी और पुंश्चली समझी जाती है।

श्मश्रुल (सं० त्रि०) श्मश्रु सिध्मादित्वात् लच्। श्मश्रुविशिष्ट दाढ़ी मूंछवाला।

श्मश्रुवर्द्धक (सं० त्रि०) श्मश्रुच्छेदक हज्जाम।

श्मश्रुशेखर (सं० पु०) नारिकेल वृक्ष नारियलका पेड़।

श्माशानिक (सं० त्रि०) श्मशानऽधीते (अध्यायिन्य देशकालात्। पा ४।४।७१) इति ठक्। श्मशानमें जो अध्ययन करता हो।

श्मील (सं० क्लो०) श्मील-ल्युट्। चक्षुर्मुद्रीकरण, आंख मूंदना।

श्यान (सं० त्रि०) श्यै क्त तस्य न, ऐकारस्य आकार। गया हुआ

श्यापर्ण (सं० पु०) श्यपर्ण अपत्यार्थे अण्। (पा ४।१।१०४) श्यपर्णका गोत्रापत्य।

श्यापर्णीय (सं० त्रि०) श्यापर्णसम्बन्धी।

श्यापर्णेय (सं० पु०) श्यापर्णका गोत्रापत्य।

श्यापीय (सं० पु०) एक वैदिक शाखाका नाम।

श्याम (सं० त्रि०) श्यायते मनो यस्मात् श्यै मक् १ काला और नीला मिला हुआ। २ काला, साँवला। (पु०) ३ प्रयागके अक्षयवटका नाम। ४ मेघ, बादल। ५ वृद्धदारक, विधारा। ६ कोकिल, कोयल। ७ धुस्तूर, धतूरा। ८ पीलू वृक्ष। ९ श्यामाक, साँवाँ नामक अन्न। १० दमनकवृक्ष, दौनाका क्षुप। ११ गन्धतृण, एक प्रकारका तृण। १२ श्रीकृष्णका एक नाम जो उनके शरीरके श्यामवर्ण होनेके कारण पड़ा था। १३ एक राग जो श्रीरागका पुत्र माना जाता है। यह राग उत्सवों आदिके समय गाया जाता है और हास्य रसके लिये भी उपयुक्त होता है। इसके गानेका समय सन्ध्या समय १ दंडसे ५ दंड तक है। इसे श्याम कल्याण भी कहते हैं। (क्ली०) १४ गोल मिर्च, छोटी या काली मिर्च। १५ सिन्धुज लवण, सेंधा नमक।

श्याम आचार्य—निम्बार्क सम्प्रदायके एक गुरु। ये पद्माचार्यके गुरु थे।

श्यामक (सं० क्ली०) श्याम संज्ञायां कन्। १ रोहिष, गन्धतृण या रामकपूर। (त्रि०) २ कृष्णवर्ण, काला। (पु०) श्यामं नक्षत्रं अकनीति शकन्ध्वादित्वात् अकारलोपे साधुः। ३ श्यामक, साँवाँका चावल। भागवतके अनुसार शूरके एक पुत्र और वसुदेवके भाईका नाम। (भागवत ९।२४।२९)

श्यामकण्ठ (सं० पु०) श्यामः कण्ठो यस्य। १ मयूर, मोर। २ शिव, महादेव। ३ नीलकण्ठ। ३ पक्षी विशेष, नीलकण्ठ नामक पक्षी।

श्यामकन्दा (सं० स्त्री०) श्यामः कन्दो यस्याः। अतिविषा, अतीस।

श्यामकर्ण (सं० पु०) वह घोड़ा जिसका सारा शरीर सफेद और एक कान काला होता है।

श्यामकाण्डा (सं० स्त्री०) श्यामकान्ता देखो।

श्यामकान्ता (सं० स्त्री०) श्यामः कान्तो यस्याः। गण्ड-दूर्वा, गाडर दूब।

श्यामकुण्ड—श्रीवृन्दावनधामके निकटका एक पुण्यतीर्थ। राधाकुण्ड नामक जलाशय इसके संलग्न है। दोनों पुष्करिणीका जल परस्पर मिले रहने पर भी एक रंगका नहीं है। गोवर्द्धन शैल पार कर यात्री लोग यह कुण्ड देखने आते हैं।

श्यामचटक (सं० पु०) शैशिर या श्यामा नामक पक्षी।

श्यामचूड़ा (सं० स्त्री०) कृष्णचटक या श्यामा नामक पक्षी।

श्यामजीरा (हिं० पु०) १ एक प्रकारका धान जो अगहनमें तैयार होता है और जिसका चावल बहुत दिनों तक रखा जा सकता है। २ कृष्णजीरक, काला जीरा।

श्यामटीका (हिं० पु०) वह काला टीका जो बच्चोंको नजरसे बचानेके लिये लगाया जाता है, डिठौना।

श्यामता (सं० स्त्री०) श्यामस्य भावः तल्-टाप्। १ श्याम-का भाव या धर्म। २ कृष्णता, कालापन, साँवलापन। ३ मलिनता, उदासी। ४ एक प्रकारका रोग। इसमें शरीरका रंग काला होने लगता है।

श्याम तीतर (हिं० पु०) प्रायः डेढ़ बालिश्त लम्बा एक प्रकारका पक्षी जो अकेला रहता है और पाला भी जा सकता है। यह काश्मीर, भूटान और दक्षिण हिमालय-में पाया जाता है। ऋतु भेदानुसार यह स्थान परिवर्त्तन करता रहता है। इसकी चोंच लंबी होती है और यह बहुत तेज उड़ता है। इसका शब्द धीमा पर विचित्र होता है। इसका मांस स्वादिष्ट होता है, इसलिये इसका शिकार भी किया जाता है।

श्यामदास—परिभाषाप्रदीप नामक वैद्यक ग्रन्थके प्रणेता।

श्यामदास—अद्वैतमङ्गलके रचयिता एक वैष्णव कवि। बाल्यकालमें इन्होंने काशीधाममें जा कर लिखना पढ़ना आरम्भ किया। विश्वेश्वरकी कृपासे इन्होंने दिग्विजयी पण्डित हो कर कविचूडामणिकी उपाधि पाई थी।

शिवके वरसे ये सभी देशोंके पण्डितोंको विद्यायुद्ध-में परास्त कर अन्तमें श्रीपाट शान्तिपुर आये। यहां वेदपञ्चाननोपाधिक श्रीमदद्वैताचार्य प्रभुके साथ गङ्गा और तुलसीमहिमा तथा ब्रह्मवाद ले कर इनका घोर विवाद चला। अद्वैत प्रभुने इन्हें भागवताचार्यकी उपाधि दी थी।

श्यामदेश—एशियाके दक्षिण पूर्व उपद्वीपके अन्तर्गत एक स्वाधीन राज्य। यह ब्रह्मराज्यके पूरबमें अवस्थित है। यहां एक समय हिन्दू और बौद्धकी प्रधानता थी।

श्यामराज्य देखो।

श्यामनगर—बङ्गालके २४ परगना जिलेके अन्तर्गत गङ्गातीरस्थ एक प्राचीन ग्राम। यह मूलाजोड नामसे प्रसिद्ध है और कलकत्तेसे १८॥० मील उत्तर पड़ता है। यहां इष्टर्न बङ्गाल रेलवेका एक स्टेशन है। उक्त स्टेशनके पूरब एक प्राचीन दुर्गका खंडहर और उसकी लंबी चौड़ी खाईकी परिधि ४ मील होगी। प्रवाद है कि १८वीं सदीमें वर्द्धमान राजवंशके किसी राजाने मराठा डकैतों या वर्गियोंके अत्याचार और आक्रमणसे देशवासीको आश्रय देनेके लिये यह दुर्ग बनवाया था। कोई कोई कहते हैं, कि बङ्गेश्वर महाराज प्रतापादित्यने अपने राज्याधिकारको सुदृढ रखनेके लिये यह दुर्ग निर्माण कराया था। यह स्थान अभी कलकत्तेके ठाकुरपरिवारके अधीन है। मूलाजोडका कालीभवन एक विख्यात स्थान है।

श्यामपण्डित—धर्ममङ्गलके रचयिता एक कवि।

श्यामपत्र (सं० पु०) श्यामानि पत्राणि यस्य। तमालवृक्ष।

श्यामपत्रा (सं० स्त्री०) जम्बुवृक्ष, जामुनका पेड़।

श्यामपर्ण (सं० पु०) शिरीषवृक्ष, सिरिसका पेड़।

श्यामपर्णी (सं० स्त्री०) चाय देखो।

श्याम पूर्वी (हि० पु०) एक प्रकारका सङ्कर राग। इसमें और सब तो शुद्ध स्वर लगते हैं केवल मध्यम तीव्र लगता है।

श्यामफेन (सं० त्रि०) १ कृष्णवर्ण फेनविशिष्ट जिसमें काला फेन हो। (पु०) २ कृष्णवर्ण फेन, काला फेन।

श्यामभट्ट—निंबार्क सम्प्रदायके एक आचार्य। ये माधवभट्टके शिष्य और गोपालभट्टके गुरु थे।

श्यामभूषण (सं० क्ली०) १ मिर्च। २ कृष्णवर्ण भूषण।

श्याममञ्जरी (सं० स्त्री०) काले रंगकी एक प्रकारकी मिट्टी जिससे वैष्णव लोग माथे पर तिलक लगाते हैं। यह मिट्टी प्रायः जगन्नाथजीके आस पासकी भूमिमें पाई जाती है।

श्याममृग (सं० पु०) काला हिरन।

श्यामराज्य—भारतवर्षके पूर्व अवस्थित पूर्व उपद्वीपके अन्तर्भुक्त एक विस्तीर्ण जनपद। प्राचीन श्यामवासियोंकी भाषामें यह देश तथा इस देशके वासी 'शायाम्' कहलाते हैं। मलयदेशवासियोंकी भाषामें यह राज्य और राज्यवासी शियाम् नामसे अभिहित हैं। यूरोपीय लोगोंने इस शियाम् (Siam)के नामसे आधुनिक भूगोल ग्रन्थमें सन्निवेशित किया है। वर्त्तमान समय श्यामवासी अपनेको थैजाति बतलाते हैं। श्यामदेशकी भाषामें थै शब्दका अर्थ स्वाधीन है।

श्यामराज्य अक्षा० ४ से ले कर २२ उ० एवं देशा० ९८ से ले कर १०६ ३१ पू०के मध्य विस्तृत है। इसके उत्तरांशमें स्वाधीन शानराज्य, पूर्वमें दक्षिण चीन और आनाम प्रदेश दक्षिणमें कम्बोडिया (कम्बोज), श्याम उपसागर और मलय प्रायोद्वीप एवं पश्चिममें बंगोपसागर और अङ्गरेजाधिकृत ब्रह्मराज्य है। उत्तर पश्चिममें शालविन नदी और पश्चिममें तुनगीन नदी इसे अङ्गरेजोंके अधिकारसे पृथक् करती है। यह लम्बाईमें १०८० और चौड़ाईमें १५०से ले कर ३५० भौगोलिक मील तक विस्तृत है।

श्यामराज्य उपरोक्त रीतिसे सीमाबद्ध होने पर भी वास्तवमें इस राज्यका मुख्यांश अक्षा० १४ से १७ उ०के मध्य स्थापित है और उसका भूपरिमाण ३६००० भौगोलिक वर्गमील है। अक्षा० १८ के उत्तरका अंश श्यामाधिकृत और स्वाधीन शानराज्य है। इसका बंगोपसागरकूल २०० मील एवं श्यामोपसागरकूल प्रायः १ हजार मील विस्तृत होने पर भी यहां जलपथके व्यापारकी उतनी बढ़ती नहीं है। किनारा प्रायः ४५।५० गज गहरा है एवं बीचके जलकी गहराई उससे ५ गुणा अधिक है। इसके अतिरिक्त पूर्व और पश्चिमके उपकूलदेश समुद्रगर्भमें अधिक दूर तक फैल जानेके कारण यहां आंधी पानीका भी विशेष उपद्रव नहीं है। पूर्व और पश्चिमके उपकूल देशों में कई छोटे छोटे द्वीप हैं। इन सब द्वीपोंका अधिक भाग जङ्गलसे भरा है

एवं थोड़ी संख्यामें लोगोंका वास है सही, किन्तु वे लोग भी कृषिकार्य द्वारा जीविका निर्वाह करते हैं।

श्यामराज्यमें सिर्फ तीन पर्वत-श्रेणियां हैं। उनकी अधिक शाखाएं उत्तरसे दक्षिणकी ओर फैली हुई हैं। उनकी सबसे पश्चिमकी श्रेणी मलयपर्वत श्रेणीके मध्य शाखाके नामसे विख्यात है। उसका सबसे ऊंचा स्थान प्रायः ५०० फीट ऊंचा है। इस पर्वत श्रेणीके १४° अक्षांश पर्य्यन्त उत्तरमें लौह, टिन, स्वर्ण प्रभृति पाये जाते हैं। मध्यभागमें तथा सबसे पूर्वमें उत्तरदक्षिणाभिमुखी जो दो गिरिश्रेणियां फैली हुई हैं, उनका अभी तक कोई विवरण पाया नहीं जाता, कारण अब तक कोई अनुसन्धित्सापरायण भ्रमणकारी उस वन्य प्रदेशमें पर्य्यटन करनेके लिये अग्रसर नहीं हुए या पर्यटन करनेकी सुविधा हो नहीं पाये। १४° अक्षांशके उत्तर काओ डोनरेक नामक पूर्व पश्चिममें विस्तृत एक बहुत बड़ी पर्वतश्रेणी है। यह मेनाम नदीके पूर्व और मेकंग नदीके पश्चिममें अवस्थित है। इसका उत्तरांश मेकंग नदीकी सेमुन शाखाका अववाहिका प्रदेश है। इस स्थानसे तोक्-रोन, से-क्रसान, से सामलाम, से डम और सेण्ट क्रेनियम आदि छोटी छोटी धाराएं बह चली हैं। दक्षिण भागमें सं'ग-हे, सेण्टलेन और ष्टुङ्ग बरंग आदि नदियोंकी अववाहिकाएं हैं। ये सब एक साथ मिल कर कम्बोज राज्यके प्राम्पेन नामक स्थानमें मेकं नामक नदीमें मिल गई हैं।

यहांकी नदियोंके मध्य मेनाक, मेकं, मेकलोंग, पितृयु और शान्तिवन प्रधान हैं। इन सबोंमें मेनाम श्याम-राज्यका प्रधान जलप्रवाह है। प्रवाद है, चीनराज्यके युन्नन प्रदेशसे निकल कर यह नदी क्रमसे दक्षिणकी ओर बहती हुई श्याम उपसागरमें आ कर गिरती है। पाक्-नाम पो नामक स्थानमें मे-पिं नदी मेनामके साथ मिल गई है। उसके उत्तर मेनाम नदीके गर्भमें फित्सा लोक, क्रोङ्गकर्यंग प्रभृति नदियां गिर कर उसके कलेवरको पुष्ट करती हैं। मे पिं नदीकी प्रधान शाखा मे वंग है। श्यामराज्यकी प्राचीन राजधानी अयुथिया (अयोध्या) के निकट सै-हि नामक शाखा मिल गई है। इस संगमके निकट अर्थात् समुद्रतटसे २१ मील उत्तर तथा वर्त्तमान बाङ्कक राजधानीसे मध्य पथसे अन्यान्य शाखा प्रशाखाएं इस नदीमें गिर कर राजधानीके नदी-प्रवाह-को विस्तृत एवं अधिक जलपूर्ण करती हैं। इस कारण बड़े बड़े पण्यवाही अर्णवपोत भी मेनाम नामक स्थानसे नदीके मुहानेमें प्रवेश करके अनायास ही प्राचीन राजधानी अयोध्या पर्य्यन्त आ जा सकते हैं। बाङ्कक राजधानीमें एक सुविस्तृत बन्दरगाह है एवं इस स्थानमें इसकी शाखा मेनापाङ्, पितृयु, मकलङ्ग और नवीन नदियां द्वारा छोटा होने पर भी मेनाम नदीके पास श्यामोपसागरमें गिरती है। वाणिज्यकी सुविधाके लिये ये सब नदियां खाई द्वारा मिला दी गई हैं।

उपर्युक्त नदियोंके द्वारा उसकी प्रवाहिकाभूमिके चारों पार्श्वस्थ स्थान जलसिक्त होते हैं एवं उनके द्वारा कृषिकार्यों यथेष्ट सुविधा होती है। कौतुकका विषय है, कि आषाढ़मासमें बन्याके जलसे नदीका गर्भ फूल कर चारों ओर जलमय कर देता है। यह जल साधारणतः नदीकी जलरेखासे २० इंच ऊंचा उठ जाता है। कभी कभी वर्षाके समय ८० इंच पर्य्यन्त नदीकी जल-रेखा ऊपर उठते देखा जाता है। आश्चर्यका विषय है, कि बाढ़का जल इतना ऊंचा हो कर प्रवाहित होने पर भी समुद्रतटसे ११ लीग (प्रायः ३३ मील) पर्य्यन्त स्थानमें प्रवेश नहीं कर सकता। इसके उत्तर प्रायः ६० लीग लम्बा और २५ लीग चौड़ा स्थानमें उसका जल फैल जाता है। ज्येष्ठमाससे ले कर कार्त्तिक मासके मध्यकाल पर्य्यन्त जो बाढ़का जल प्लावित करता है, उससे भूमि-के ऊपर एक प्रकारका पांक जम जाता है। वह पांक भूमिको उपजाऊ बनाता है, किन्तु वह जल साधार-णतः श्यामोपसागरका तरह खारा रहता है। भूतत्त्वकी आलोचनाके द्वारा जाना गया है, कि मेनाम नदीकी उपत्यकाभूमि थोड़े दिन हुए, समुद्रगर्भसे उठ गई है। वर्त्तमान बाङ्कक राजधानीका भूगर्भ खोदनेसे सामुद्री शंख, शम्बुक प्रभृति पाये जाते हैं।

शान्तिवन वा चांटाबुन नामकी नदी क्षुद्र कलेवरकी होने पर भी १२ लीग विस्तृत भूमिको जलप्रदान कर शस्य-शालिनी बनाती है। श्यामोपसागरके पूर्वोपकूलसे १०२° पूर्व देशा०के निकट समुद्रमें मेकं नामक सुवृहत्

नदी है। यह एशियाकी प्रधान नदियोंमें एक प्रधान नदी गिनी जाती है। यह चीन साम्राज्यके दक्षिणांशमें निकल कर घोर गम्भीर चालसे दक्षिणकी ओर बहती हुई स्वाधीन शान राज्यके बीच हो कर श्यामाधिकृत शानराज्यमें आ गई है। पीछे वहांसे क्रमसे दक्षिणपूर्वाभिमुखी हो कर कई उपत्यका और अधित्यकाओंको पार करती हुई अक्षा० १३ ३० उ० एवं देशा० १०६ पू०के मध्य श्यामराज्यकी सीमा पार करती हैं तथा कम्बोज राज्यमें पहुंच जाती है। इस स्थानसे नदीका गर्भ विस्तृत और प्रवाह प्रखर दृष्टिगोचर होता है। इसलिये इसे कम्बोज राज्यकी महानदी कहते हैं। इस नदीकी सम्पूर्ण धारा प्रायः ५०० लीग लम्बी होगी। श्यामराज्यके जिस अंशमें मेकं नदी प्रवाहित होती है, उसी अंशमें लाव (Laos) तथा कम्बोज जाति (Kambojans)का वास है।

ऊपर कही गई नदी तथा उनकी शाखाप्रशाखाके अतिरिक्त दक्षिण पूर्व अंशमें तथा कम्बोजके उत्तर पश्चिम कोनमें तोनले साप नामक एक सुवृहत् हृद है, यह १२ से ले कर १३ उत्तर अक्षांशमें अवस्थित है। इसके दक्षिण पूर्वमें एक शाखा नदी प्नोमपेंग नगर पर्यन्त आ कर मेकं नदीमें मिल गई है। सग ह, काम्प प्राक, पुरसत्, सेटद्याग, सेएरसेन और ष्टुङ्ग वर नामक छोटी छोटी नदियाँ पार्वत्यभूमिकी जलराशि ले कर इस हृदगर्भमें समा गई हैं। इस हृदकी परिधि प्रायः ४० लीग है। इसमें बहुत सी मछलियां पाई जाती हैं।

श्यामराज्यके समान अक्षांशवर्ती एशियाके अन्यान्य देशोंमें जिस प्रकार ऋतुकी प्रबलता देखी जाती है, यहां भी ठीक उसी प्रकार ऋतुका प्रभाव छा जाता है। साधारणतः दक्षिण श्यामराज्यमें वर्षा और ग्रीष्म ऋतुका प्रादुर्भाव ही अधिक होता है। ज्यैष्ठ माससे आश्विन मासके मध्यकाल तक यहां अल्प त वर्षा होती है पर दूसरे समय बहुत ही कड़ी गर्मी पड़ती है। यहां दक्षिण पश्चिम तथा ग्रीष्मके समय उत्तर पूर्व मौसिमी वायु बहती है। थाङ्क राजधानीमें दिसम्बर और जनवरी मासमें जलवायुका ताप ५० से ५३ फारेन् हाइट तक रहता है पर माच और अप्रील महीनेमें प्रचण्ड सूर्यकी गर्मीसे यहांकी आबहवा इस तरह उष्णमात्र धारण करती है कि वायुमान यन्त्रकी ताप रेखा ८६ से ६१ पर्य्यन्त ऊपर उठ जाती है। उत्तरमें पश्चिम विस्तृत प्रान्तकी जलवायु समुद्रतटकी तरह शीतल रहती है, मानो वासन्ती वायु यहां मृदु मन्द हिल्लोलसे प्रवाहित होती है। घने जङ्गलोंसे भरी हुई उपत्यकाओंकी आबहवा बहुत ही विषैली है। यहां मलेरिया ज्वर अधिक होता है। यह ज्वर प्राणनाशक है।

यहां खनिज पदार्थोंके मध्य लौह, टिन्, स्वर्ण, दस्ता और रसाञ्जन पाये जाते हैं। स्थानवासी इन सब द्रव्योंका संग्रह करके अपनी आवश्यकीय गृहसामग्री बनाने तैयार करते हैं। इसके अतिरिक्त पद्मराग और नीला नामक मणि इस राज्यकी प्रधान आदरकी वस्तु हैं। शान्तिवन (चाएन्ताबुन या चाएटाबुड़ी) पर्वतकी उपत्यकाभूमिमें ये सब मूल्यवान् पत्थर पाये जाते हैं। पश्चिम देशभागमें चूना पत्थरकी विस्तृत गिरिश्रेणी है। समुद्रके किनारे तथा मेकंल ग नदीके तट पर सूर्यके उत्तापसे सुख कर स्वयं ही नमक तैयार हो जाता है।

सब तरहकी खेतीके मध्य यहां ईखकी खेती ही अधिक होती है। एशियाके और किसी राज्यमें यहांसे अधिक ईखकी खेती नहीं होती। यहांसे ईखके रससे तैयार की हुई चीनी यूरोपके कई स्थानोंमें भेजी जाती है। ऊंची भूमिमें रूईकी खेती अधिक परिमाणमें होती है। किन्तु जो सब स्थान बाढ़के जलमें डूब जाता है, वहां रूई नहीं होती। उस रूईसे देशी कपासवस्त्र तैयार किये जाते हैं। चन्दाबाड़ा प्रदेशमें काली मिर्चकी खेती होती है, यह दूसरी भाषामें प्रिक थैक नामसे विख्यात है। यहां तमाकूकी खेती भी होती है। सब लोग इस तमाकूका व्यवहार करते हैं। वनभागमें मनुष्यके उपयोगी नाना प्रकारके काष्ठ तथा वनज द्रव्य पाये जाते हैं। इनमें शाल, श्वेत और रक्त चन्दन वक्रम काष्ठ, दारचीनी, गोंद, गम्बोज प्रभृति प्रधान है।

चौपाये जानवरोंके मध्य हाथी, वृष, महिष, बाघ तथा दूसरे दूसरे छोटे छोटे जंगली जानवर निविड़ जङ्गल प्रदेशमें विचरण करते देखे जाते हैं। चोटाबुड़ीके लोग बुद्धिमानीसे हाथी पकड़ कर बेचते हैं। लाव और काम्बोज

प्रदेशभागमें भी अनेक हाथी पाये जाते हैं। यहांके घोड़े छोटे होते हैं और टट्टू के (Pony) नामसे प्रसिद्ध हैं। इनकी ऊँचाई अश्वमानके १३ हाथसे अधिक नहीं होती। यहां मोर, गृद्ध प्रभृति बड़े बड़े एवं और भी छोटे छोटे सुन्दर पक्षी देखे जाते हैं। फिलिपाइन और मलय प्रायोद्वीप तथा यवद्वीपमें भी इस प्रकारके पक्षी विद्यमान हैं।

श्यामवासी आकृति प्रकृतिमें ब्रह्म वा कम्बोज-वासियोंसे बहुत कुछ मिलते जुलते हैं। वास्तवमें इस प्रकारकी मिश्रित गठनवाली जातियां बंगालके पूर्वांशसे ले कर चीन साम्राज्य पर्य्यन्त विस्तृत हैं। चीन-वासियोंकी अपेक्षा ये लोग आकृतिमें छोटे एवं मलयवासियोंकी अपेक्षा कुछ बड़े होते हैं। श्यामराज्यमें प्रधानतः चार मूल जातियां तथा तीन वन्य जातियां निम्नोक्त नामसे विभक्त हैं, यथा—आदि श्याम वा छोटी थै, लाव वा बड़ी थै, कम्बोजीय तथा मालय ये चार प्रधान और सभ्य जातियाँ हैं एवं करेंग, चोंग तथा लावागण वन्य वर्वर जातियाँ कहलाते हैं। इनकी भाषाओंमें बहुत अन्तर दिखाई देता है। आचार व्यवहार और सामाजिक नियमोंमें भी यथेष्ट पृथक्ता है।

यहांके राजा मूल श्याम जातिके हैं। यह जाति प्रायः अक्षा० ७° से ले कर २०° उ० एवं बगोपसागरकूलसे ले कर १०२° पू० देशा० पर्य्यन्त विस्तृत स्थानमें फैली हुई है। मेनाम् नदी प्रवाहित उर्वर भूखण्डमें इन लोगोंका ही आधिपत्य है। इस श्याम जातिके उत्तर और पूर्वकी ओर मेकं नदीके कछार तक फैले हुए स्थानमें लाव जातिका वास है। यह विस्तृत भूभाग टुकड़े टुकड़े हो कर कई सामन्त राज्यमें विभक्त है। उन प्रदेशोंके सामन्तराजे श्यामराजको कर देते हैं। श्यामोपसागरके पूर्वकूलवर्त्ती श्यामराज्यमें कम्बोज लोगोंका वास है।

शान्तिवन वा चांटावनके पूर्वदिग्वर्त्ती पार्वत्यप्रदेशमें तथा श्यामोपसागरके पूर्वकूलमें चोंग नामक वन्य जाति रहती है। इनके उत्तर दिशामें कोरट्ट लोग एवं मेनाम और मर्त्तावान नदीके मध्यवर्त्ती पार्वत्य प्रदेशके लावा लोग वास करते हैं। इन लोगोंकी प्रकृति जंगली और भयङ्कर है। भारतके समतलक्षेत्रवासी सुसभ्य और सुशिक्षित हिन्दू सम्प्रदायके साथ कोल, भील, सवर प्रभृति असभ्य जातियोंका जैसा सम्बन्ध है, श्याम, लाव वा कम्बोज जातिके साथ उपरोक्त तीनों जातियोंका ठीक वैसा ही सम्बन्ध है। इन सब वन्य जातियोंकी एक स्वतन्त्र भाषा है। कई प्रकारकी शिल्पविद्यामें ये लोग दक्ष हैं, किन्तु श्यामराजको कर देते हुए भी उतना राजभक्त नहीं हैं। इनका धार्मिक सम्प्रदाय बहुत कुछ अनार्य्य संस्कारके अनुरूप है।

श्यामराज्यके आदिनिवासियोंके अतिरिक्त यहां दूसरे दूसरे देशवासी अन्यान्य जातियां भी रहती हैं। उनमें उपकूलदेशवासी वाणिज्यकुशल चीन जाति ही प्रधान है। इस स्थानमें बहुतसे कोचीन वा अनाम राज्यवासी तथा पेगूवासी ब्रह्मजातिका भी वास है। मलयवासियोंकी सङ्ख्या भी यथेष्ट है। कम्बोज लोगोंकी संख्या ५ लाखसे कम नहीं होगी।

मूल श्याम जातिकी वासभूमि ४१ जिलेमें विभक्त है। प्रत्येक जिलेके सदरके नामसे जिलेका नामकरण हुआ है। इसके अन्तर्भुक्त मलय सामन्त राज्यखण्ड त्रङ्गनु, कालातिन, पत्नी और केयेडाके नामसे प्रसिद्ध है। लाव जातिके अधिकृत राज्योंकी संख्या सात एवं कंबोजके राज्योंकी संख्या पांच है। इन जिलों वा सामन्तराज्योंके मध्य जिन स्थानोंमें श्याम भाषा प्रचलित है, उन स्थानोंका शासनभार श्यामराजेश्वरके ऊपर है। अन्यत्र स्थानोंके शासनकर्त्ता वा सामन्तराज ही राजकार्य्य संभालते हैं।

श्यामराज्यके राजेश्वर यहांके किनारेवाले स्थान पर अधिकार जमाये हुए हैं। युद्धविग्रह, परराष्ट्र, उत्तरप्रदेश राज्य परिचालन, कृषिकार्य तथा न्यायविचार स्थापनके लिये उन्हें सत्परामर्श देनेके लिये पांच प्रधान-मन्त्री नियुक्त हैं। इनके अलावे और भी ३० सुविज्ञ तथा राजनीतिज्ञ व्यक्ति उस मंत्रिसभाके सभ्य हैं। वे लोग एकमत हो कर राजाको हर एक कामकी उन्नतिके लिये परामर्श देते हैं। राजाके नीचे राज्यशासन सम्बन्धमें वंग न (द्वितीय राजा) नामसे एक और दर्जा है। वह बहुत कुछ युवराजकी तरह है। वे सबसे

न्यायके सिवाय दूसरे किसी कार्यमें हस्तक्षेप नहीं कर सकते।

उक्त ४१ जिलोंमें प्रत्येक जिलेका शासनभार एक एक व्यक्ति पर नियुक्त है। वे लोग केवल दीवानी विचार कर सकते हैं। उन लोगोंके विचारके विरुद्ध राजधानीमें राजदरबारके अन्दर पुनः विचार किया जा सकता है। अपराध अर्थात् नरहत्या तथा डकैती प्रभृति जिनमें प्राणदण्ड होनेकी आशङ्का रहती है, इस प्रकारके व्यापारका विचार राजधानीस्थ 'विशेष विभाग'के विचारालयमें किया जाता है। ग्रामके ग्रामणी या मण्डलगण कामनान्, आमफोन वा नाखोन् उपाधिसे परिचित हैं। वे ग्रामवासियोंके द्वारा ही निर्वाचित किये जाते हैं। यदि कोई ग्रामणी ग्रामवासियोंको सताता है तो वह पदच्युत कर दिया जाता है। अनेक ग्रामणी राजासे वेतन पाते हैं। लाव प्रदेशके श्याम जातीय मान्दारिन् नामक कर्मचारी लोग एवं देशी सामन्त राजे प्रजा पर विशेष अत्याचार नहीं कर सकते। उनके प्रजापीड़क होने पर राजाकी आज्ञासे उनकी शक्ति नष्ट कर दी जाती है। उपरोक्त निम्न राज कर्मचारियोंके अलावे श्यामराज्यमें चाव, उपरत, रचवन और रचवुन् नामक और भी चार प्रधान पद हैं ये पद पुश्तैनी हैं। चाव शब्द चीन भाषासे लिया गया है। उसका अर्थ है राज्यका प्रधान कर्मचारी राजा या अधीश्वर। शेषोक्त तीन पद बौद्धोंके प्रभावकालमें संस्कृत शब्दसे विकृत रूपमें लिये गये थे। राज्याधिकार सूत्रमें अथवा उत्तराधिकारके विषयमें जब राजचाकरोंके मध्य किसी प्रकारका विग्रह पैदा होता है, उस समय सिर्फ राजधानीमें ही उन लोगोंके झगड़ेकी मीमांसा की जाती है।

श्यामदेशके राजनियम बहुत प्राचीनकालमें बनाये गये थे। उसके बादसे फिर उन नियमोंका सुधार नहीं किया गया। १७६६ ई०में अयुधिया राजधानी पर घेरा डालनेके समय प्राचीन स्मृतिका भी अधिकांश नष्ट हो गया। इसमें कुछ सन्देह नहीं, कि ये राजनियम बौद्ध और हिन्दू स्मृतियोंसे तैयार किये गये हैं। वहाके धर्म, नीति तथा शास्त्रविहित कृत्यनिचय सब कुछ भारतीय हिन्दू शास्त्रके अनुकूल हैं। इनके अतिरिक्त श्यामवासियोंके विवाह, शिक्षा, पैतृक सम्पत्तिके अधिकार, दासत्व, ऋणदान वा ग्रहण, पापकी परीक्षा तथा अपराधियोंके दण्डविधान आदि विषयोंके कानून अलग अलग हैं। विभिन्न प्रकारके पाप या चोरीके अपराधकी परीक्षाके लिये वहां भुने हुए चावल चबाने या जलमें डूब देनेकी विधि है। श्यामदेशीय धर्माधिकरणमें शराबी, व्यसनासक्त, जुआरी, नरघातक, भिक्षुक, मूर्ख और अनृतकर्मा व्यक्तिकी गवाही नहीं ली जाती। मृत्युके समय उत्तराधिकारीको इच्छापत्र द्वारा सम्पत्ति दान न करनेसे वह सम्पत्ति राजाकी हो जाती है पर मठाध्यक्ष या धर्मयाजकोंकी सम्पत्ति मठसम्पत्तिके अन्तर्भुक्त हो जाती है। यदि कोई पुत्र, पौत्र अथवा श्राद्धाधिकारी व्यक्ति मृत व्यक्तिकी अन्त्येष्टिक्रिया नहीं करे तो वह किसी प्रकार मृत व्यक्तिकी सम्पत्तिका अधिकारी नहीं हो सकता। इसके अलावे पैतृक सम्पत्तिके अधिकारके विषयमें हिन्दू शास्त्रके मतानुसार और भी कई नियम देखे जाते हैं। यदि कोई ऋणी क्रीतदास ऋणदाताके सेवाकालमें कोई अपराध करने पर वर्तमान स्वामीके द्वारा दण्डित होता है तो उससे उसके सम्पूर्ण अथवा आंशिक ऋणका परिशोध हो जाता है।

यहां क्रीतदासकी प्रथा प्रबल है, किन्तु साधारणतः अपना ऋण शोध करनेके लिये ही ऋणी अपना स्त्री, पुत्र भतीजा, भांजा तथा भांजीको बन्धक रूपमें बेच सकता है। इस समय विक्रीत व्यक्तिकी स्वाधीनता नष्ट हो जाती है। जितने दिनों तक दिये हुए रुपये शोध नहीं हो जाते हैं उतने दिनों तक खरीदार उससे इच्छानुसार कार्य लेते हैं। खरीदार जब जाते हैं, तब विक्रीत व्यक्तियोंको पुनः स्वतन्त्रता मिल जाती है। श्यामराज्यके वर्तमान सुशिक्षित राजाके इस घृणित व्यवहारके उठानेके लिये निषेधाज्ञा प्रचार करने पर भी लाव प्रदेश और पूर्वदिक्‌स्थित सामन्त राजाओंके राज्यमें इस समय भी यह निन्दित प्रथा बिलकुल बन्द नहीं हुई। वहां अब भी प्राणदण्डवाले अपराधियोंको बेचनेके लिये हाट ले जाते हैं। कम्बोज या श्यामराज्यके वासिन्दे उन्हें खरीद लेते हैं।

ऊपर कहा गया है, कि श्यामराज्य ४१ जिले या प्रादेशिक विभागमें विभक्त है। प्रत्येक विभागमें एक एक नगर चुन लिया गया है। उन नगरोंमें २४ वाणिज्यप्रधान हैं एवं उनके मध्य किसी किसीमें ४ हजारसे ले कर ८० हजार तक लोगोंका वास है। श्यामराज्यकी राजधानी बाकक नगरी मेनाम् नदीके दोनों किनारे पर अक्षां० १३°३८´ उ० एवं देशा० १००° ३४´ पू० अवस्थित है। यहां प्रायः चार लाखसे अधिक लोगोंका वास है। उनमें अधिक लोग वाणिज्य व्यापार द्वारा ही अपनी जीविका चलाते हैं। चीनके औपनिवेशिक लोगोंकी संख्या प्रायः दो लाखकी होगी। इन लोगोंके उद्योगसे स्थानीय वाणिज्यकी दिनों दिन उन्नति हो रही है। १७६६ ई०में ब्रह्मसेना द्वारा अयुथिया नगरके विध्वस्त किये जाने पर श्यामराजने यह राजधानी स्थापना की। इस नगरमें राजप्रासाद, दुर्ग तथा अनेक मन्दिर स्थापित हैं।

युथिया या अयुथिया श्यामराज्यकी प्राचीन राजधानी है। श्रीदशरथजीके पुत्र श्रीरामचन्द्रजीकी सुसमृद्ध अयोध्यापुरीके नामानुसार ही इस नगरका नाम अयोध्या पड़ा था। पीछे अपभ्रंश अयुध्या वा अयुदिया शब्दसे अयुथिया हो गया है। यह नगर बांकक राजधानीसे ५४ मील उत्तर मेनाम नदीके किनारे अवस्थित है। समुद्रोपकूलसे इसका व्यवधान ७८ मील है। इस नगरका चतुष्पार्श्वस्थित स्थान मेनाम नदीकी बाढ़के जलसे प्लावित होता है। उसके रोकनेके लिये नगरके चारों ओर खाई खोदी गई है। इस समय इस नगरका विस्तृत ध्वंसावशेष वर्त्तमान है। असंख्य मन्दिर अब भी अपने ऊंचे मस्तकसे नगरकी अतीत कीर्त्तिका गौरव बढ़ा रहे हैं, किन्तु मरम्मत आदिके अभावके कारण अब वे अधिक दिनों तक नहीं ठहर सकते। वे क्रमसे नष्ट भ्रष्ट होते जा रहे हैं। चागमै नगर लाव प्रदेशके सामन्तराज्यकी राजधानी है। पुर्त्तगीज ग्रन्थमें इस स्थानका नाम 'जियेङ्गमाई' लिखा है। यह मेनाम नदीके तीरसे थोड़ी दूर पर एक पर्वतके पादमूलमें २०° ४६´ उत्तर अक्षांशमें अवस्थित है। नगरके सामने विशाल समतल क्षेत्र है, उसमें अधिक उपज होनेके कारण नगरवासीकी आर्थिक अवस्था बहुत अच्छी है।

लौङ्ग फवंग श्यामराज्यके लाव अधिकृत प्रदेशका एक दूसरा नगर है। यह १७° ५०´ उत्तर अक्षांशमें मेकं नदीके किनारे अवस्थित है। यह नगर धनजनपूर्ण है एवं यहां व्यापारकी बड़ी उन्नति है।

श्यामराज्यके प्रकृत अधिवासी थैगण यहांकी अन्यान्य जातियोंकी अपेक्षा अधिक सभ्य हैं। उन लोगोंने बहुत कुछ हिन्दू और चीन सभ्यता तथा उनके आचार-व्यवहारका अनुकरण कर लिया है। वे स्वभावतः नम्र और दयालु तथा निरीह और निर्विरोधी हैं। इस कारण ऐसे बहुजनपूर्ण राजधानीमें भी किसी प्रकारका वाद विसंवाद वा मार-पीट तथा खून खराबीका चिह्न तक दृष्टिगोचर नहीं होता। ये गरीबोंको हृदय खोल कर दान देते हैं; किन्तु इनका स्वभाव ऐसा है, कि किसी अपरिचित व्यक्तिके पास किसी प्रकारकी नई चीज देख कर ये बिना उसकी ओर नजर डाले नहीं रह सकते, अर्थात् ये लोग उस अपरिचित व्यक्तिसे नई चीज मांगनेमें भी संकुचित न होते। पाश्चात्य सभ्यतामें दूसरेसे चीज मांगना असभ्यता समझे जाने पर भी निरामोदी, भीतचित्त तथा सरल प्रकृति श्यामवासियोंके पक्षमें यह सरलताकी पराकाष्ठा ही समझी जाती है। ये लोग किसीके साथ झगड़ा लड़ाई नहीं करते। जब कोई किसी प्रकारका क्रोध करता है वा किसी व्यक्तिका हाथ पकड़ कर खींचातानी करता है, तब उससे सब लोग विरक्त हो जाते हैं। इस तरहका अस्थिर स्वभाव लोग पसन्द नहीं करते। ये लोग नितान्त आलसीकी तरह क्रीड़ा और नाच-गानमें समय बिताना बहुत पसन्द करते हैं। जब कोई व्यक्ति किसीकी स्त्री वा कन्याके साथ अनुचित प्रेम करता है, तब उसके नामसे राजदरबारमें अभियोग लाया जाता है। इस प्रकारके अपराधीको क्रीतदासरूपमें बेच कर देशनिकालका दंड दिया जाता है।

ये लोग बड़े आदमियोंका पिताकी तरह सम्मान करते हैं एवं राजाको देवता तुल्य समझते हैं। यदि कोई व्यक्ति भूल कर किसी बड़े आदमीका सम्मान

नहीं करता है, तो वह इज्जतदार आदमी उसी क्षण अपने हाथके छ डेसे उस निम्न पदस्थ व्यक्तिके ऊपर आघात कर उसे अचैतन्य कर देता है। इस प्रकारके इ डाघातमें कोई किसी पर विरक्त नहीं होता। विदेशी लोग बिना किसी प्रकारकी चिन्ता किये अपना धन प्राण ले कर इन लोगोंके साथ वास करते हैं। श्यामवासी किसी समय विदेशियोंका अनादर नहीं करता और न कभी उनका विरोध ही करता है। ये लोग परिश्रमी और शिल्पकार्यनिपुण हैं। अन्य देशवासियोंके साथ रहने पर भी ये कभी उन लोगोंसे ईर्षा नहीं करते।

इनके मध्य जातिभेदकी प्रथा नहीं है। स्वाधीन तथा क्रीतदास व्यक्तियोंके अन्दर थोड़ा प्रभेद दृष्टिगोचर होता है। बड़े बड़े राजकर्मचारी भी कुछ विशेष सम्मान के पात्र हैं, सुतरां सामाजिक हिसाबसे उन लोगोंका भी स्थायीगत विभिन्न आसन है। धर्माचरणके सम्बन्धमें उन लोगोंकी किसी प्रकारकी विभिन्नता नहीं देखी जाती। १५ से ले कर १७ वर्षकी अवस्थामें लड़कियोंकी शादी होती है। अनेक समय इस तरहकी युवती लड़कियां युवकोंके प्रलोभनमें तथा प्रणयका मधुर आनन्द प्राप्त करनेको आगामी पितृगृहसे निकल भागते हैं। पीछे कानूनके अनुसार वे दोनों (युवक युवती) आपसमें विवाह कर लेते हैं। ये लोग आलस्य प्रिय हैं, इस कारण इन लोगोंमें परिश्रमका मूल्य अधिक है। जो लोग परिश्रमके अभावमें रोजगारी कर अपने बालबच्चोंको परवरिश नहीं कर सकते, वे अपने लड़के लड़कियोंको बेच निश्चिन्त और धनी हो जाते हैं। इस कारण आज भी श्यामराज्यमें दासत्वप्रथा अधिक प्रचलित है।

मन्दिर और अट्टालिकाओंके लिये शिल्पपूर्ण इंट, ढाला और कलसा एवं रेशमी तथा कपास वस्त्रके अतिरिक्त अन्यान्य कामोंमें ये लोग अधिक शिल्पनिपुण नहीं हैं। चीनवासी ही यहांके प्रधान शिल्पकार्यी हैं।

इतिहास।

श्यामवासियोंने अपने इतिहासको दो भागोंमें विभक्त कर रखा है प्रथम पौराणिक आख्यायिकावली और द्वितीय वर्त्तमान युगका इतिवृत्तमूलक घटनावली। पौराणिक उपाख्यानके अनुसार मालूम होता है, कि ईसाके जन्मसे प्राय ५४३ वर्ष पहले दो ब्राह्मणकुमार भ्रमण करनेके अभिप्रायसे भारतसे श्यामराज्यमें आ कर बस गये। उस समय भगवान् शाक्यबुद्ध भारतवर्षमें बौद्धधर्मका प्रचार कर संसारको ज्ञानके प्रकाशसे प्रकाशित कर रहे थे। इसके बादका कई वर्षोंका इतिहास इतना सन्देहजनक है कि उससे किसी प्रकार की सत्य बातका पता लगाना बिल्कुल असम्भव है।

उसके बाद श्यामराज्यमें पौराणिक आख्यानमें हम ९५० परित्राब्द (अर्थात् ४०७ ई०) में राजा अदणारथका उल्लेख पाते हैं। उस समय श्यामराज्य कम्बोजके अधीन था। तब भी यह थैक नामसे विख्यात नहीं हुआ था, श्याम शब्द श्याम भाषाके अपभ्रंशमें शयम्* नामसे विख्यात था। राजा अदणारथने अपनी चालाकी से श्यामराज्यको कम्बोजवासीके हाथसे मुक्त किया। कि वदन्ती है, कि राजा अदणारथ श्यामीय वर्णमालाके जन्मदाता थे। उन्होंने ही धार्मिक अनुष्ठानमें कम्बोजवासियोंके धर्म से श्यामवासियोंका धर्म पृथक किया था। कई ग्रन्थोंसे पता चलता है, कि ५७१ ई० में लाओंग नगर स्थापित हुआ था। उसके बादकी शताब्दीमें फरा रोंग नामक एक राजाने कम्बोजोंकी अधीनतासे श्यामवासियोंको मुक्त कर अपना विजय कीर्त्तिस्वरूप सवाम महाक विनारे संगकलोक (? या लोक ?) नामक नगर बसाया। इनके शासनकालमें ही श्यामराज्यमें बौद्धधर्मका प्रचार हुआ किन्तु इसके बहुत पहलेसे श्यामराज्यके उत्तर और दक्षिण भागमें भारतवासियोंका संस्रव था। उसके बहुतसे निदर्शन इस समय भी श्यामराज्यमें पाये जाते हैं। भारतीय वणिक् सम्प्रदाय ही श्यामोपसागरमें होते हुए इस देशमें

* किसी किसीका कहना है कि महाभारतके सभापर्वमें दिग्विजय पर्वाध्यायमें जो 'शर्मक' और 'वर्मक' नामके दो जाति का उल्लेख है, वे ही इस समय श्याम और ब्रह्मके नामसे पुकारे जाते हैं।

व्यापार करने जाते थे, इसका प्रमाण तो यही है। श्याम राज्यके उत्तरीय भागमें सिर्फ ब्राह्मणधर्मका प्रभाव था।

६३८ ई०में श्यामराज्यमें एक अब्द प्रचलित हुआ। राजा फयकेकने इस अब्दकी स्थापना की। अनुमान किया जाता है, कि श्यामराज्यमें बौद्ध धर्मके अच्छी तरह फैल जाने पर उक्त राजाने उस घटनाके स्मरणार्थ मानयुगका नवसंवत स्थापन किया था।

वास्तवमें श्यामराज्यके मध्य बौद्धधर्मका प्रवेश जिस समय हुआ हो, किन्तु श्यामवासी उसके पहले ही स्वधर्ममार्गमें योग्य आसन पा चुके थे, इसमें कुछ सन्देह नहीं। कारण यदि वे अपने ज्ञानबलसे पहिलेसे ही मन पवित्र नहीं किये होते अथवा देवोपासना-पद्धति द्वारा आध्यात्मिक मुक्तिके मार्गानुयायी नहीं हुए होते, तो कदापि उनके हृदयमें बुद्धदेवका विशुद्ध धर्म स्थान नहीं पाता। उन लोगोंने बौद्धधर्म ग्रहण करनेके बाद मन्दिर और मठादिकी प्रतिष्ठा कर श्रमण लोगोंकी तरह संसारधर्मसे विरक्त हो भिक्षा करके प्राणरक्षा करनेकी शिक्षा प्राप्त की थी। श्यामवासी उसी समयसे बौद्धगण-प्रवर्त्तित प्रतीत्यसमुत्पाद तथा देहान्तर प्राप्ति स्वीकार कर भिक्षु-धर्मको ही संसारका सार और अभीष्ट मानते हैं।

७वीं शताब्दीमें लाव प्रदेशके अन्यान्य स्थानोंमें और भी कई नगर स्थापित हुए। इसमें सन्देह नहीं, कि वे नगर श्यामराज्यकी उस समयकी समृद्धि तथा उस समयके राजवंशके सौभाग्यका पूरा परिचय देते हैं। उस समय उस राजवंशने अपने बाहुबलसे कई स्थानों पर अधिकार कर अपने राज्यकी सीमा बढ़ाई थी। इसके बाद कई शताब्दीके मध्य वे लावा और अन्यान्य पहाड़ी जातियोंको हटा कर धीरे धीरे दक्षिणकी ओर अग्रसर हुए एवं उन्होंने क्रमसे कम्बोजराजकी बहुत दिनोंकी अधिकृत राज्यसीमा पर अधिकार कर लिया। मेनाम नदीके दोनों तटस्थित परस्परके निकटवर्त्ती फिटस्लोक (पित्सुनलोक), सुकोथै (सुक-कोटई), संगस्लोक, नाखोन स्वन, काम्फोंग-पेट प्रभृतिके प्रतिष्ठित होनेसे उक्त राजवंशका दक्षिणाभियान प्रतीयमान हुआ। वे उस समय जिस जिस स्थान पर विजय प्राप्त करते हुए आगे बढ़े थे, उन स्थानोंमें एक एक नगरकी स्थापना कर अपनी विजयकीर्त्तिकी घोषणा कर गये हैं।

सुक-कोटई नगरसे प्राप्त १२८४ ई०की उत्कीर्ण एक शिलालिपिसे जाना जाता है, कि राजा राम कामहेंगने मेकं नदी तीरवर्त्ती प्रदेशसे ले कर पश्चिममें पेचावुडी नदी तटके भूभाग पर एवं वहांसे ले कर श्यामोपसागर-तटस्थित लिगोर प्रदेश पर्यन्त अपने राज्यकी सीमा परिवर्द्धित की थी। मलयदेशके राज-इतिहाससे मालूम होता है, कि मेनांकाबु नदीके तटमें ११६० ई०के मध्य किसी समय मलयप्रायोद्वीपमें मलयवासियोंका उपनिवेश स्थापित होनेसे पहले श्यामवासियोंने मलयप्रायोद्वीपके मध्यदेशमें अपनी विजयपताका फहराई थी। उस समय श्यामवासियोंके पूर्वपुरुष मेनाम नदीके पश्चिमांशमें वास करते थे। १३५२ ई०में राजा फय-उथंगने (प्रकृत नाम फ-राम थिवोड़ी, सम्भवतः ये शान जातीय थे) कम्फोंगपेटसे हटा कर चालियङ्ग नगरमें अपनी राजधानी स्थापित की थी। पूर्वोक्त राजधानीमें उनके ऊपरके पांच पुरुषोंने राज्य किया था। राजा फ-रामने शेषोक्त राजधानीमें उलटी रोगसे निपीड़ित हो कर अयुथिया नगरमें अपनी राजधानी बनाई। इस राजाका राज्याधिकार मोलमेन, तावय, तानासेरिम, यावा और मलका द्वीप तक फैला हुआ था। इन सब स्थानोंके अधिवासी उनके अतुल प्रतापसे कांप रहे थे। मलका द्वीपमें पश्चिम श्यामके सोरनो नामक स्थानवासी व्यापारियोंका उल्लेख पाया जाता है। कोई कोई अनुमान करते हैं, कि सोर-नो शब्द सहर-इ-नो शब्दका अपभ्रंश है एवं मुसलमानोंने इस नव प्रतिष्ठित अयोध्या नगरीका ही सहर-ई-नो शब्दसे उल्लेख किया होगा। किन्तु हम लोग उसे 'सुवर्णनगर' शब्दका अपभ्रंश अनुमान करते हैं। राजा फ-रामके शासनकालमें अयोध्या नगरी खूब ही उन्नति पर थी, इसकी गवाही वहांकी ध्वस्त स्तूपराशि तथा टूटे फूटे मन्दिर आज भी दे रहे हैं।

यावाद्वीपके इतिहासमें भी श्यामवासियोंकी उस समयकी उन्नतिका परिचय है। उक्त राज इतिहासमें लिखा है, कि १३४० ई०में कम्बोजके राजाने श्यामराज्य

पर आक्रमण किया। उस समय श्यामराज भी समर साजसे सुसज्जित हो कर कम्बोजराजको दमन करनेके लिये अपनी विजयो सेनाके साथ कम्बोजके सीमान्त पर जा पहुंचे। युद्धमें कम्बोजराजकी सेना पराजित हुई और श्यामराजने अङ्गकोर नगर पर अधिकार जमा लिया। उस समय कम्बोजराजकी प्राय ९० हजार सेना श्यामराजके हाथसे बन्दी हुई थी।

पुर्त्तगाल नौसेनापति आबूकर (आल्बुकार्क) जिस समय मलक्का द्वीपमें गये थे, उसके प्राय १६१ वर्ष पहले राजा फय उथङ्गके द्वारा अयोध्या नगर प्रतिष्ठित हो कर सौधमालामें सुशोभित हुआ। आबूकेरने यूरोपवासियों को श्यामराज्यकी समृद्धिका परिचय दिया।

राजा फय उथङ्गके बाद प्राय ४५५ वर्षके मध्य श्यामराज्यके सिंहासन पर आरूढ़ हो कर २६ राजाओं ने राज्य किया। उनमें किसी किसीने तो सिर्फ कई महीने या कई दिन तक ही राजशासन चलाया था। कारण कई राजे अपने भाई, भाजे तथा मन्त्रियोंके द्वारा मारे गये थे। इस तरह श्यामराज्यमें क्रमसे चार विभिन्न राजवंश स्थापित हो गये।

उपरोक्त साढ़े चार शताब्दीके मध्य १५वीं या १६वीं शताब्दीमें श्यामराज्य पेगु ब्रह्म तथा कम्बोज सेना द्वारा आक्रान्त हुआ। उस समय किसी किसी युद्धमें श्यामकी राजधानी ग्युथिया नगर लूटा गया था पर श्यामवासी सर्वस्वान्त और बन्दी हुए थे। किन्तु १५१५ ई०में श्यामराज शत्रुओंके हाथसे चला गया। इसके १६वीं शताब्दीके शेषभागमें श्यामके राजा फरा नरेत् (प्रभुनरेश)ने कम्बोजसैन्य द्वारा पद दलित हो कर उस अपमानका बदला लेनेके लिये खूब सावधानीसे युद्धकी तैयारी की। १५८३ ई०में वे प्रतिहिंसापूर्ण हृदयसे एक बड़ा सेना ले कर कम्बोज पर आक्रमण करनेके लिए आगे बढ़े। इस अभियान के प्रारम्भमें उन्होंने प्रतिज्ञा की थी, कि या तो वे कम्बोज राजके रक्तसे अपना पांव धो कर हृदयका ताप मिटायेंगे या नहीं तो आप ही रणक्षेत्रमें अपना नश्वर शरीर त्याग कर गिरी हुई जातिका कलङ्क मिटायेंगे। चार सौ वर्ष तक लगातार लड़ते झगड़ते रहनेके कारण कम्बोज पहलेसे ही दुर्बल हो रहा था। युद्धमें श्यामराजकी विजय हुई। उन्होंने कम्बोजकी राजधानी पर अधिकार कर लिया पर कम्बोजेश्वरको कैद कर अपने राज्य लौट आये। इस तरह अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनेके लिये कम्बोजेश्वरको अपने सामने मरवा डाला और वानेगाजेके साथ उसके खूनके ऊपर चहलकदमी करने लगे।

उस समय दुर्बल कम्बोजराज्य खण्डखण्डमें विभक्त हो गया। कम्बोजके राजा केवल नामके लिये ही शासन कर्त्ता रहे। वे पूरी तरह श्यामराजके अधीन थे। प्रादेशिक शासनकर्त्तागण अब उनका वैसा सम्मान नहीं करते थे। वे सब धीरे धीरे स्वाधीन होने लगे। प्राचीन स्थानमें रहनेवाली फरासी जातिको राजाकी यह दीनतावस्था बहुत अप्रीतिकर मालूम पड़ने लगा। उन लोगोंने कम्बोजराजको आश्रय दिया। श्यामराज फरासी शक्तिके विरुद्ध खड़े होनेका साहस नहीं कर सके। अतएव कम्बोजराजसे उनका अधिकार उठ गया।

उस समय श्यामवासियोंने उत्तर पश्चिम तथा उत्तर पूर्वमें प्राय लाव प्रदेश तथा सभी सामन्त राजाओं पर अधिकार जमा लिया। लावनिवासी लोग पकड़े जा कर दूर दूर भेज जाने लगे। लाव प्रदेश और कम्बोज पर आक्रमण करनेके बाद श्यामराजने पेगु राज्य पर चढ़ाई की। वे आप तो पेगुराजको दण्ड देनेमें समर्थ नहीं हुए, किन्तु उनके किसी वंशधरने १७वीं शताब्दी में यह प्रतिहिंसा पूरी की। उस समय चियेंग मै प्रदेश श्यामराजके अधिकारमें चला आया था।

१५८० ई०में फरासियोंके साथ श्यामराजकी सन्धि होनेका सूत्रपात हुआ। परस्परकी दोस्ती निर्विरोध चलने लगी। परवर्त्ती श्यामराजाओंने भी फरासियोंके साथ शत्रुता नहीं की। १६५६ ई०में राजा फरा नारायण अपने पिताके राजसिंहासन पर बैठे एवं अपना नाम फराचाँव चमोक रखा। वे वर्त्तमान राजवंशके द्वितीय राजा थे। उनके पिता राजामात्य थे। उन्होंने कौशलसे अपने प्रभुको मार डाला और खुद राजगद्दी पर बैठ गये।

राजा फरा नारायणने फरासीराजके चौदहवें लुइके

साथ मित्रता कर ली। उन्होंने इस मित्रताकी परिवृद्धिके लिये फरासीराजके यहां दूत भेजा। इस कार्यके प्रधान परामर्शदाता उनके मन्त्री ग्रीकजातीय कनष्टन्टाइन फालकन थे। ये ग्रीकराजके अधीनस्थ सिफालोनिया द्वीपके रहनेवाले थे। भगवानको आत्मसमर्पण कर अदृष्टकी खोजमें वे पूर्वीय द्वीपाचलमें आये और श्यामराजके यहां नौकरी करने लगे। इस व्यक्तिने प्रथम जीवनमें पूर्वभारतवासी किसी अङ्गरेजके अधीन कोषाध्यक्षके पद पर नियुक्त हो कर इस देशमें आगमन किया था। पीछे अपनी बुद्धिमानी, ज्ञान, शिक्षा तथा सद्युक्तिके बलसे क्रमसे श्यामराजके प्रधान मन्त्री बन गये। फरासी ऐतिहासिक भालटेयरने इनके अदृष्ट प्रभावका उल्लेख न कर यूरोपवासीके मतकार्य एवं पुरुषत्वका वर्णन किया है।

फरासीराजने श्यामराजके दूतका यथेष्ट आदर किया एवं उचित पुरस्कार दिया। पीछे उन्होंने भी श्यामराजके पास प्रत्यभिनन्दनके लिये अपना दूत भेजा। फरासी दूतने श्यामराजके साथ बन्धुत्वकी पराकाष्ठा दिखा कर उन्हें ईसाई धर्म स्वीकार करनेके लिये अपने राजाका अनुरोध जताया। उसी समय मंत्री फालकन् भी जेस्वीट मिसनरियोंके साथ राजाको ईसाई बनानेका षड्यन्त्र रच रहे थे। उन लोगोंकी गूढ़ अभिसन्धि थी, कि राजाके ईसाईधर्म स्वीकार करनेसे श्यामराज्यमें निश्चय फरासियोंका प्रभाव जम चलेगा। किन्तु उनका यह असदभिप्राय कार्यमें परिणत नहीं हुआ। ईसाई धर्म ग्रहण करनेकी बात बौद्ध मतावलम्बी श्यामवासियोंके हृदयमें विषवत् मालूम पड़ा। उन लोगोंने इनको दण्ड देनेके लिये फालकन पर आक्रमण किया और मार डाला। श्यामवासी ईसाईगण वहांके बौद्धमतावलम्बियोंका असह्य अत्याचार चुपचाप सहन कर रहे थे। किसीका मत है, कि १६८८ ई०में फालकनके आश्रयदाता तथा प्रतिपालक श्यामराज फरा-नारायण इहलोकसे चल बसे और उनके बादके राजाके राजत्वकालमें राजमन्त्री फालकन् पदच्युत एवं निहत हुए। उनकी मृत्युके साथ फरासियोंकी श्यामराज्यमें राज्य स्थापन करनेकी आशा निराशाके गम्भीर जलमें समा गई। उपरोक्त जिस किसी कारणसे भी हो, फालकनकी मृत्युके बाद श्यामराजके साथ फरासियोंकी मित्रता नहीं रही।

१५९२ से ले कर १६३२ ई०के मध्य श्यामराज्यको वाणिज्योन्नतिको एक प्रबल धक्का समुपस्थित हुआ। उस समय उन्नतिप्रयासी श्यामवासी शिल्पवाणिज्यकुशल जापानियोंके संभ्रम पड़ कर एक अभावनीय घटनास्रोतमें बह गये। पहले कई एक जापानी युवक कार्यकी खोजमें घूमते हुए श्यामराजधानीमें उपस्थित हुए। उन लोगोंकी कार्यकुशलता देख कर श्यामराजने उन्हें राजकार्यमें नियुक्त किया। सेनाविभागमें वे लोग धीरे धीरे दुर्द्धर्ष हो उठे। वे लोग सर्वत्र ही अपना प्रभुत्व जमानेकी चेष्टा करने लगे। पहले भारतीय राजधानियोंमें अङ्गरेज लोग जिस प्रकार प्रभुताके साथ विचरण करते थे, वे लोग भी उसी तरह श्यामराजधानीमें घूमते फिरते थे। उनकी यह शक्तिवृद्धि जनसाधारणकी ईर्ष्याका कारण बन गई। अन्तमें श्यामवासी जापानियोंके हत्याकाण्डमें रह गये। बहुतसे जापानी मारे गये और जो थोड़ेसे जीवित बच गये थे, राजधानीसे निकाल दिये गये एवं कई जापानी वंशधर श्यामवासियोंके साथ मिल गये। इस घटनाके बाद १६३६ ई०में जापानके राजाने जाप जातिकी विदेश यात्रा निषेध की थी। किन्तु १७४५ ई० तक जापानी लोग वलन्दाज, चीन और अङ्गरेज व्यापारियोंके साथ मिल कर श्यामराज्यमें व्यापार करते थे।

१६८८ ई०में राजा फ्रा नारायणकी मृत्यु हो गई। इसके बादसे ले कर १७६७ ई० तक श्यामराज्यके राजसिंहासन पर पाँच विभिन्न राजे राज्य करते थे। वे सब सिंहासनापहारी एक दूसरे राजाको छलसे मार कर राजेश्वर बन बैठे थे। इन दुर्बल राजाओंके राज्यकालमें १७५२ ई०में सिंहलराजेने श्यामराजके साथ फिरसे मित्रता स्थापन करनेके अभिप्रायसे एवं बौद्धधर्म संक्रान्त किसी किसी विषयकी मीमांसा करनेके लिये श्यामराजके पास अपना दूत भेजा। उस समय सिंहलस्थ बौद्धपुरोहितोंके साथ ईसाई पादरियोंका हजहवी झगड़ा खड़ा

हुआ। श्यामराजने उस समय बौद्धपुरोहितोंका पक्षपाती हो कर झगड़ा शान्त कर दिया।

१७८२ ई०में पेगूके राजा आलोम्प्रा (अलोमप)ने श्यामराज्य पर आक्रमण कर अयोध्या नगर पर घेरा डाला। घेरा डालनेके समय उनकी बहुतसी सेना विनष्ट हो गई। अन्तमें वे लौट गये। उसके बाद उनके लड़केने १७६६ ई०में भीषण युद्धके बाद श्यामराज्यको जीत लिया और राजधानीको पूरी तरह लूटा।

अयोध्यानगरके ध्वंस होनेके बाद प्राय एक वर्षके भीतर ही श्यामराज्यके सुप्रसिद्ध सेनापति फय तकसिनने पुन बिखरी हुई सेनाको एकत्र किया था। अयोध्याके नये राजाकी मृत्युमें मौका पा कर उन्होंने श्यामराज्यके राजसिंहासन पर अधिकार कर लिया और ब्रह्मवासियोंको श्याम राज्यसीमासे निकाल बाहर किया। सेनापति फय तकसिन चीन देशीय माताके गर्भसे पैदा हुए थे। उन्होंने बड़ी दक्षता और न्यायपरताके साथ १५ वर्ष राज्य किया एवं विशेष अध्यवसायसे बैंकाकमें राजधानी स्थापित कर तथा श्यामराज्यकी पुन सौभाग्यवृद्धि कर सिंहासनमें गौरवान्वित हुए। शेष जीवनमें राजा फय तक्सिन् वायुरोगग्रस्त हुए एवं उनके स्वेच्छाचारसे राजदरबारी लोग (प्रधान) उनके विरुद्ध उठ खड़े हुए। १७८२ ई०में उन्होंने प्राणरक्षाके लिये राजधानीके प्रसिद्ध सङ्घाराममें जा कर शरण ली। दरबारी लोग उससे भी उन्हें अपराधमुक्त न समझ कर मठसे बाहर खींच लाये और मार डाला। जो प्रधान अमात्य उनके हत्याकाण्डके प्रधान सहायक थे, वे ही श्यामराज्यके दूसरे सेनापति थे, उनका नाम फयचक्री था। उन्होंने राजसिंहासन पर बैठ कर श्यामराज्यके वर्त्तमान राजवंशकी प्रतिष्ठा की।

इसके बाद राजा फयचक्रीने तेनासेरिम और तवय पर विजय प्राप्त करनेके लिये सेना भेजी। १८१२ ई०में ताइय श्यामराज्यके शासनाधीन हुआ। १८११ ई०में उनकी मृत्युके बाद उनका पुत्र राजा हुआ। १८२६ ई०में इस नये राजाकी मृत्यु होने पर राज्यके वास्तविक उत्तराधिकारीको राज्य न दे कर पूर्वोक्त राजाका एक दूसरी स्त्रीके गर्भजात पुत्रने राजसिंहासन पर अधिकार जमा लिया। उक्त वर्ष ब्रह्मराज्यको अंग्रेजोंके साथ युद्धविग्रहमें लिप्त देख कर श्यामराज उस स्थान सुअवसर पर ब्रह्मराज्यके सामान्तस्थित नगरों पर अधिकार जमानेकी इच्छासे वहां गये। वहां पहुंच कर उन्होंने गोलावृष्टि द्वारा शत्रुओंकी बड़ी क्षति की।

उस समय चीनराज भी अपना प्रभुत्व जमानेके लिये बीच बीचमें अपना धारावाहिक भेजते रहे। इस नूतन राजवंशके शासनकालमें चीनसम्राट्ने अनेक श्यामराज्यका प्रकृत अधीश्वर बतलानेके लिये दूत भेज कर श्यामराजसे राजमुकुट और पत्रिका लेनेकी चेष्टा की; किन्तु इस नरराजने चीनसम्राट्की अधीनता स्वीकार नहीं की और न कभी अपना दूत भेज कर उन्हें राजस्व दे कर सन्तुष्ट ही किया। आश्चर्यका विषय है, कि इस समयसे चीनके बन्दर पर अन्यान्य राजाओं तथा श्यामराज्यके वाणिज्यपोत चीन उपकूलमें उपस्थित हो कर पण्यद्रव्य आदि बिक्री करते हैं।

१८२६ ई०में राजा फयचक्रीके पौत्र सोमदेत् फ्र नाम धर कर राजा हुए। वे वैमातृक भाईके जीवनकालमें बौद्धभिक्षुका वेश धारण कर मठमें शान्तिपूर्वक वास कर रहे थे। यहां उन्होंने २० वर्ष तक अध्ययन कर बहुत ज्ञान प्राप्त किया। इसी कारण बड़ेसे उनके बुद्धिवृत्ति परिमार्जित हुई एवं वे विशेष दक्षताके साथ श्यामराज्यका शासन चलाने लगे। उनका कनिष्ठ भाई युवराज पदसे भूषित हो कर राजकार्यमें अधिक सहायता कर रहे थे।

राजा सोमदेतका दूसरा नाम फर परमेन्द्र महा मोङ्कुट था। अधिक शिक्षा प्राप्त करनेके कारण उनका भ्रम विनाश हो गया था। वे राजा हो कर भी एक सामान्य साधारण तथा धार्मिक बन कर रहते थे। विज्ञानशास्त्रमें उनकी अधिक अनुरक्ति थी। राज्यकी उन्नतिके लिये वे कार्योंमें अटूट परिश्रम करने पर भी स्वास्थ्यकी ओर विशेष ध्यान न देनेके कारण असमर्थ हो अपना नश्वर शरीर त्याग करनेको बाध्य हुए। इनकी मृत्युके बाद थोड़े ही दिनके अन्दर श्यामराज्य राहुग्रस्त हुआ।

इनके ही शासनकालमें १८५५ ई०में सन्धि द्वारा अंग्रेजोंके साथ श्यामवासियोंका वाणिज्य सम्बन्ध सुदृढ़ किया गया था। इसके बाद श्यामराजके साथ अंग्रेजोंकी सन्धि हो गई थी।

१५११ ई०में डी० आलुकेरके मलक्का विजय करनेसे श्यामका प्रथम यूरोपीय संस्रव घटा। आलुकेरकी कही हुई श्यामराज्यकी समृद्धिकी बात अभी तक यूरोपवासी व्यापारी भूले न थे। १७वीं सदीमें वलन्दाजोंने श्यामराज्यमें व्यापार करनेके अभिप्रायसे प्रवेश किया। उनके पीछे अंग्रेज व्यापारी लोग भी श्यामराज्यमें उपस्थित हुए। इंगलैण्डके राजा १म जेम्सके साथ श्यामराजकी मित्रता हो गई थी, उस समय कई अंग्रेजोंने श्यामराजके दरबारमें अच्छी अच्छी नौकरी भी प्राप्त कर ली थी। इसके बाद इष्ट-इण्डिया कम्पनीके आदमियोंने श्यामवासियों पर आक्रमण किया। उसके ही फलसे १६८७ ई०में मार्गुई बन्दर पर अंग्रेजोंका हत्याकांड हुआ। १६८८ ई०में अंग्रेज लोग अयुथिया राजधानीकी कोठी छोड़ भाग गये। इसके बाद अंग्रेज व्यापारियोंका पूर्वदेशीय वाणिज्य ह्रास होने लगा। १७८६ ई०में अंग्रेजोंने केदावारके अन्तर्गत पिनांग प्रदेश पर अधिकार कर लिया। उस समय इस देशोंमें अङ्गरेजोंका व्यापार प्रायः लोप हो गया था। १९वीं शताब्दीके प्रारम्भमें उस लुप्तप्राय व्यापारका पुनरुद्धार करनेकी चेष्टा की गई। उस उद्देशको पूरा करनेके अभिप्रायसे क्रफोर्डने (१८२२ ई०में) बारनिने (१८२६ ई०में) श्यामराज्यमें आ कर घनिष्ठता बढ़ानेकी चेष्टा की, किन्तु उससे किसी प्रकारकी सफलता न मिली। अन्तमें १८५६ ई०में सर जान बाउरिंगने श्यामराजके साथ एक पक्का बन्दोबस्त कर लिया, जिससे अंग्रेजोंको श्यामराज्यमें वास स्थापन करने, जमीन खरीदने एवं खजानेका बन्दोबस्त करनेका अधिकार मिल गया। इस समय अंग्रेज व्यापारियोंके आमदनी और रफ्तनी द्रव्यों पर कर लगाया गया। बांकक नगरमें एक कानसेलर अदालत स्थापित हुई एवं चियंग-मै नगरमें एक वाइस कानसेलर अदालत प्रतिष्ठित हुई। शिंगापुरसे समय समय पर एक 'जज' (न्यायाधीश) बांकक अदालतमें आ कर चियंग मै अदालतकी अपीलका विचार किया करते थे।

व्यापारके विषयमें परदेशियोंके साथ सुदृढ़ सन्धि-सूत्रसे श्यामके राजा आन्तरिक शान्ति उपभोग करनेमें समर्थ हुए। पहले श्यामराज्यके सीमान्तस्थित निवासी बहुत उत्पात मचाते थे एवं कम्बोज, ब्रह्म और पेगूके राजे बीच बीचमें श्यामराजको बहुत तंग किया करते थे। किन्तु जब निम्न कोचीन चीन, आनाम और टौङ्किं प्रदेश फरासियोंके अधिकारमें चले आये एवं अङ्गरेजोंने निम्न और उत्तर-ब्रह्म पर अधिकार जमा लिया, उस समय श्यामराज्य पर और किसी प्रकारकी विपद् आनेकी आशङ्का नहीं रही। ब्रह्म सीमान्त पर अङ्गरेजोंके साथ श्यामका कोई बखेड़ा नहीं रहा, किन्तु फरासियोंने अनाम-सीमान्त ले कर श्यामराजके साथ गोलमाल उपस्थित किया। फरासी लोग मेकं नदीके पूर्वी कछारको ही श्याम और अनामकी सीमा बनाने लगे। श्यामराजने यह बात स्वीकार नहीं की। उसी सूत्रसे दोनों पक्षमें १८९३ ई०के प्रारम्भकालमें एक लड़ाई बंध गई। फरासी सेनापति ससैन्य हार गये और पकड़े जा कर मार डाले गये। फिर युद्धकी तैयारी होने लगी, श्यामराजने फरासियोंकी गति रोकनेके लिये आयोजन करने लगे। अङ्गरेज सरकारने इस समय श्यामराजको माध्यभाव धारण करनेकी सलाह दी। परिणाममें युद्ध ही अपरिहार्य्य हो उठा।

उक्त वर्षकी १३वीं जुलाईको दो फरासी रणपोत बड़े घमण्डके साथ बाङ्कक राजधानीके सामने आ गये। वे लुयंग प्रबंग प्रदेशसे श्यामकी दक्षिण सीमा पर्य्यन्त मेकं नदीके पूर्व तीरस्थ यावतीय प्रदेश अनामकी सीमा बतलाते थे। इसके अतिरिक्त क्षति पूरी करनेके लिये श्यामराजसे मेकं नदीके पश्चिमी किनारे उत्तर-दक्षिणकी ओरमें २५ किलोमिटार (एक नाप) जमीन मांगने लगे। फरासी लोग अपना दावा प्राप्त करनेके लिये बार बार तंग करने लगे। अन्तमें फरासी दलने २५वीं जुलाईसे ले कर ३री अगस्त तक मेनाम नदीका तट जबर्दस्ती आबद्ध कर रखा। लाख चेष्टा करने पर भी जब फरासियोंको नहीं हटा सके, तब लाचार हो कर १८९३ ई०की ३री अक्तूबरको उन्होंने फरासियोंके साथ सन्धि कर ली। इस सन्धिपत्रके लिखे जाने तथा अनुमोदित होनेके पहले श्यामराजकी सम्मतिसे फरासियोंने शान्तिवन प्रदेशमें अपना आधिपत्य फैला लिया। १९०२

१०में सन्धि होने तक इस स्थान पर फरासिसोंका अधिकार रहा। इसके बाद फरासिसोंने उसके बदले मेलूप और बसाक नामक दो प्रदेश पा कर उक्त प्रदेश छोड़ दिया। इस सन्धिके शर्तानुसार फरासिसोंको मेकङ्ग श्यामाधिकृत अवशिष्ट प्रदेशमें स्टीमर बन्दर, रेल प्रभृति तैयार करनेका अधिकार मिला। इस समय उत्तर पूर्व श्याम प्रदेशमें लु' और 'हो' नामक चीन जातियां उपद्रव मचाने लगीं एवं इन जातियोंने अपने दलबलके साथ श्यामराज्यमें प्रवेश कर धीरे धीरे मेकङ्ग नदीके किनारेसे ले कर नोंग कै नामक स्थान तक उजाड़ बना दिया।

श्यामनिवासी बौद्धधर्मावलम्बी हैं। इनका धर्ममत ब्रह्म और सिंहलवासी बौद्धसम्प्रदायके अनुरूप है। किन्तु परस्परकी आनुष्ठानिक क्रियाओंमें थोड़ा अन्तर है। राजा फरा मेङ्कुट (प्रभु मुकुट ?) पहले यतिधर्म पालन करते थे। इसके बाद शिक्षा और दीक्षाके बलसे विशाल ज्ञान प्राप्त कर उन्होंने स्थानीय बौद्ध धर्मका बहुत कुछ सुधार किया। जिन सब नगरवासीने सुधार किये हुए मतको स्वीकार किया, उनका नाम उन्होंने 'धर्मयुत' रखा एवं असंस्कृत धर्मावलम्बी नगरवासी उस समय 'फरा महानिकाय' कहलाने लगे। प्रथमोक्त बौद्धगण बौद्धधर्मशास्त्रके नियमोंका पालन करनेमें रत हैं एवं वे ध्यानादि आध्यात्मिक चिन्ताके विशेष पक्षपाती नहीं हैं। उन लोगोंका प्रथम दल केवल देवचिन्ता या ध्यानको ही मोक्षका एकमात्र रास्ता समझते हैं एवं दूसरा दल बौद्धशास्त्रकी आलोचनाको ही मोक्षमार्ग समझते हैं।

बाङ्कक राजधानीमें बौद्धधर्मके साथ ब्राह्मणधर्मका अपूर्व समावेश दृष्टिगोचर होता है। उस स्थानमें इस समय भी प्राचीन ब्राह्मण धर्मका प्रभाव परिचायक एक देवमन्दिर विद्यमान है। वहांके पुरोहितगण भारतीय ब्राह्मण कुलोद्भूत हैं। जनसाधारण बौद्ध मतावलम्बी होने पर भी इन ब्राह्मण पुरोहितोंके द्वारा दैवकार्यके अनुष्ठानादि कराते हैं। युद्धाभियान, व्यवसायवाणिज्य विवाह या नामकरणादिके अवसर पर वे लोग ब्राह्मण पुरोहितोंसे शुभ दिन गुणा कर कार्यारम्भ करते हैं।

श्यामवासी कुसंस्कारमें पड़ कर नाट (प्रेत योनि) तथा फोर (भूतयोनि)की पूजा करते हैं। उन लोगोंका विश्वास है कि ये भूत प्रेत मानवदेहके अङ्ग प्रत्यङ्गमें प्रवेश कर अपना प्रभाव विस्तार करते हैं। मनुष्यकी जीवितावस्थामें वे (भूतप्रेत) जब चाहे तब मनुष्यके शरीरका नाश कर सकते हैं। उन लोगोंकी धारणा है, कि इन भूतप्रेतोंमें कितनोंकी आकृति मनुष्यकी सी होती और कितनोंकी पशु आदिकी तरह। उनमें कितने तो पृथ्वी पर विचरण करते हैं और कितने जङ्गलोंमें डूबे रहते हैं। कितने तो बालग्रह स्वरूप हैं जो सन्तानादिके रोग और मृत्युके कारण हैं। कोई कोई भूत रास्ते रास्ते घूमता फिरता है और पथिकोंको रक्षककी तरह धोखा दे कर कुपथगामी बना देता है। इन सब काल्पनिक योनियोंका प्रतिमूर्त्ति बना कर वे लोग स्थान स्थान पर प्रतिष्ठा करते हैं। मध्यम या उत्तम श्यामवासियोंके हृदयमें इस भूतपूजाका प्रभाव इस तरह पड़ा है, कि वे लोग एक तरहसे बौद्धधर्मसे विमुख हो गये हैं। शहरवासी सभ्य जनसाधारणके मध्य भी इस प्रकारके कुसंस्कारका अभाव नहीं है। वे लोग भूतप्रेतोंको सन्तुष्ट रखनेके लिये पशुकी बलि चढ़ाते हैं एवं मदिरा पान करते हैं। इन्द्रजालविद्या पर इन लोगोंका पूरा विश्वास है। इन लोगोंकी धारणा है, कि मन्त्रके बलसे मनुष्य बाघ आदि पशुका रूप धारण कर लेता है।

यहां लिङ्गपूजाकी प्रधानता है। यह लिङ्गपूजा सिर्फ शिवलिङ्ग पूजामें निबद्ध नहीं है। पत्थरके छोटे छोटे टुकड़े (शालग्राम) यहां विभिन्न देवताके नामसे पूजे जाते हैं। बौद्धधर्मकी मर्यादा रक्षा करनेवाले स्वाधीन राजा होते हुए भी आत्माभिमानी श्यामराज लाख चेष्टा करके बौद्धधर्मविरोधी इस पौत्तलिकाचारका निषेध नहीं कर सके। भारतीय हिन्दू सम्प्रदायकी तरह ये लोग तीर्थयात्रा करते हैं। श्यामराज्यमें भारतीय नामके अनुसार प्रायः सभी प्रधान नगरों तथा प्राचीन तीर्थोंके नाम हैं। इन सब तीर्थों और नगरोंमें मन्दिर, मठ या सङ्घाराम प्रतिष्ठित हैं। जनसाधारण इन सब स्थानोंमें देवमूर्त्ति दर्शन करने जाते हैं। पुरोहितों के

वर्ष फिर पर्य्यायक्रमसे वे ही सब दिन और तिथियां गिना जाती हैं। यहां दो अब्द प्रचलित हैं। उनमेंसे एकके हिसाबसे धार्मिक कार्य सम्पन्न किये जाते हैं, उसका नाम है पुत्त शकरत् अर्थात् बुद्धाब्द—यह ई०सन् से ५४३ वर्ष पहले चलाया गया था और दूसरा है चूल शकरत् या पवित्राब्द (Civil era)—यह ई०सन् ६३८ वर्ष पहलेसे गिना जाता है और श्यामराज्यमें बौद्ध धर्मका प्रवेशप्रसङ्ग गवाह है। यहां जो प्राचीन शिलालिपियां पाई गई हैं, उनका हिसाब शकाब्दके अनुसार है।

यहां प्राचीन प्रत्नतत्त्वके बहुतसे निदर्शन पाये जाते हैं। श्यामराज्यके पूरा चलन्तित कोरात निरेक कोरात नगरमें चीन व्यापारियों को कार्तिसूचक बहुतसी अट्टालिकाएं विद्यमान हैं। इन रैक गिरिश्रेणी और मीन नदीके मध्यवर्त्ती विस्तृत स्थानमें जो सब प्राचीन ध्वंसावशेष दृष्टिगोचर होते हैं, उनसे मालूम पड़ता है, कि एक समय यहां कम्बोज जातिका प्रभाव खूब जम चुका था। कोरात, बसाक, फिमें और सू खेन नगरकी विस्तीर्ण स्तूपराशि इस समय भी उस अतुलवैभवका परिचय दे रही हैं। ये सब कीर्तियां श्यामराज्यमें हिन्दूप्रभावके प्रधान निदर्शन हैं। अ गकार नगरमें इस श्रेणीका सुमहती कीर्ति अब भी विद्यमान है। तोन्ले साप नामक सुवृहत् हृदसे १५ मील उत्तर निविड़ जङ्गलके मध्य श्यामकी प्राचीन राजधानी अङ्गकोर नगर स्थापित है। इसका दूसरा नाम नगोन है नगोन शब्द संस्कृत नगर शब्दका अपभ्रंश है। थोम नगर (महानगर)का प्राचीन नाम इन्द्रप्रस्थपुरी है। यह महाभारतोक्त भारत राजधानी इन्द्रप्रस्थपुरीके नामानुसार कल्पित है। पाश्चात्य भ्रमणकारी मोहोत और टमसन उल्लेख कर गये हैं कि यह नगर ३० फीट ऊंचा एवं ८४० मात्र परिधिवाली चहारदिवारीसे घिरा था। नगरकी रक्षाके लिये नगर प्राचीरके बाहर चारों ओर गहरी खाई खोदी हुई थी। फर्निल यूर टमसन वर्णित नगरसीमा को अतिशयोक्ति समझते हैं। उन्होंने नगरका घेरा उससे अपेक्षा कम बतात हुए भी उल्लेख किया है, कि नगर प्राचीरमें पांच बड़े बड़े दरवाजे थे। उनमें दो दरवाजे पूर्वकी ओर थे। इस नगरके दक्षिणमें ५ मीलकी दूरी पर 'नगोन वट' (नगरमठ) नामक एक सुवृहत् मठ है। इस मठका शिल्पकार्य्य संसारमें अद्वितीय है।

५८६ शकमें (६६७ ई०) उत्कीर्ण यहांके किसी मन्दिर में जड़ी हुई शिलालिपिसे जाना जाता है कि इस देशके मध्य उक्त अब्दमें शिवलिङ्गकी स्थापना हुई थी। एक दूसरी शिलालिपिसे पता चलता है कि उक्त शकसे सौ वर्ष पहले भी यहां शैवोंका प्रभाव फैला हुआ था। उक्त शिलालिपिकी वर्णमालाका प्राचीनत्व ही उसका यथेष्ट प्रमाण है। इसके अलावे यहां बौद्धकीर्तिके जो प्राचीन निदर्शन पाये जाते हैं वे निःसन्देह उक्त शैवकीर्तिकी अपेक्षा तीन शताब्दीके परवर्त्ती स्वीकार किये जा सकते हैं।

भाषा और साहित्य।

सारे श्यामराज्यमें अर्थात् मलयसामान्तस्थ पश्चिम समुद्रतटसे मेक नदीके पूर्वीय अववाहिकादेश पर्य्यन्त के भूभागमें एक ही भाषा प्रचलित है। यह श्यामकी भाषामें 'फासा थै' (स्वाधीन जातिकी भाषा) कहलाती है। उक्त राज्यके उत्तर पश्चिमस्थ ब्रह्मसीमान्तदेशमें तथा शानराज्य, लाउप्रदेश अनाम और कम्बोजमें जो भाषा प्रचलित है, उसमें और श्यामीय भाषामें बहुत अन्तर है। उत्तर पूर्वदिक्स्थ अन्य जातिकी भाषा इससे अलग है। शानजातिकी भाषाके साथ आहोम, खामती और लाव जातिकी भाषाकी जितनी समानता है श्यामीय भाषाके साथ शानभाषाका उतना ही मेल देखा जाता है। १८वीं सदीमें श्यामराज्य कम्बोज की अधीनतासे मुक्त हो गया उस समयसे श्यामकी भाषा 'थै' कहलाने लगी। शानजातिकी भाषा भी उसीके अनुकरणसे थै कहलाती है।

शान या श्यामीय भाषाके स्वरके उच्चारणमें सामान्य विलक्षणता देखी जाती है। शानभाषामें स्वरका ह्रस्व-दीर्घज्ञापक कोई चिह्न न रहने पर भी *श्यामभाषामें* इस प्रकारका पांच मात्राएं हैं। इसके अतिरिक्त उस भाषाके व्यञ्जनवर्ण भी तीन भागोंमें विभक्त हैं। फिर प्रत्येक व्यञ्जनवर्णके पीछे भी उदात्तानुदात्तादि दुर्भेदसे प्रकार निर्दिष्ट किए गये हैं। अर्थात् एक वर्ण

की स्वाभाविक शब्दशक्तिके द्वारा जो अनुदात्तस्वर उच्चारित होता है, वह मात्रायुक्त होनेसे द्वित्व हो जाता है एवं वह स्वरित् स्वरमें उच्चारित न हो कर गम्भीर भावसे उदात्त स्वरमें परिणत हो जाता है। इस प्रकार ह्रस्व और दीर्घके अतिरिक्त और भी लघुतर स्वर इस भाषामें व्यवहृत होता है। इस कारण उनके स्वर वर्णकी संख्या भी अधिक है।

श्यामराज्यमें भारतीय संस्कृत भाषाके प्रवेश करनेके बादसे भारतीय वर्णमालाकी समासगत पदावलीके उच्चारण करनेकी चेष्टासे श्यामवासियोंके मुखसे एक विचित्र वर्णसमष्टि उच्चारित होती है। इसलिये उनके मध्य प्रायः ४३ व्यञ्जनवर्णकी सृष्टि हुई है; किन्तु स्वाभाविक तौरसे वे लोग २० व्यंजनवर्णसे अधिक वर्णोंका उच्चारण नहीं करते। केवल संस्कृत और पाली भाषाके शब्दोच्चारणके समय इन सब व्यञ्जनवर्णों-की आवश्यकता होती है। यथा ख, ग, घ, वर्ण केवल 'ख' स्वरमें एवं 'फ ब, भ' केवल 'फ' स्वरमें उच्चारित होते हैं। इनकी भाषामें दीर्घस्वर तथा तालव्य वर्णके उच्चारणमें कुछ जोर देना होता है. शब्दके शुरूमें साधारणतः ल, व, र, य वर्ण संयुक्तरूपमें व्यवहृत होता है एवं शब्दके अन्तमें क, त, प, ं (ङ) न वा म रहता है। इस कारण श्यामीय भाषामें विदेशी भाषासे अपहृत शब्दके उच्चारणमें अधिक गोलमाल उपस्थित होता है। यथा—सम्पूर्ण—सोम्बुन, भाषा—फासा, नगर—नखोन, सद्धर्म—सथम, कुशल—कुशोन, शेष—शेन, वार—वन, मगध—मखोत इत्यादि।

श्यामवासी १४वीं सदीमें अयुथिया नगरमें राजधानी स्थापित कर प्रतिष्ठित होनेके पहले किस प्रकार अपनी शिक्षा तथा शास्त्रग्रन्थोंकी रक्षा करते आ रहे थे, उसे मालूम करनेका कोई उपाय नजर नहीं आता। ६७१ श्यामाब्दमें सुकोथै नगरकी शिलालिपि उत्कीर्ण हुई एवं उसीके तौ वर्ण पहले श्यामीय वर्ण-मालाकी उत्पत्ति हुई थी, इस प्रमाण पर निर्भर करके किसी सिद्धान्त पर पहुंचना कठिन है। यदि उक्त शिलालिपि ही उनके लिपिमालाविन्यासका प्रथम निदर्शन हो, तो यह किस प्रकार सम्भव हो सकता है, कि उनकी प्राचीन ग्रन्थोंकी प्रतिलिपि तथा उनका संस्कृत पाठ उसी समय गृहीत हुआ था? विशप पालगोंा (Bishop Pallegoix) कई प्राचीन पुस्तकों-का उल्लेख कर गये हैं। उसकी अच्छी तरह समालोचना करनेसे किसी एक समीचीन सिद्धान्त पर पहुंचा जा सकता है। इन ग्रन्थोंमें छन्द और प्रकृति वर्णन ही अधिक दृष्टिगोचर होती है। उनमें ऐतिहासिक घटनाका कोई असल वृत्तान्त लिपिबद्ध नहीं है। उनकी अधिकांश गल्प पौराणिक एवं किम्वदन्तीके आधार पर हैं। श्यामवासी इन ग्रन्थोंको अधिक आग्रहके साथ पढ़ते हैं।

कई एक उपन्यास अद्भुत रसात्मक हैं। उनकी गल्पें प्रायः भारतीय महाकाव्य रामायण और महाभारत-से ली गई हैं। रामक्यून (रामायण) ग्रन्थकी गल्प मलय और यवद्वीप-वासियोंके इनाव नाटकके रामचरित्र-के आधार पर रची गई है। इनके अतिरिक्त खंग-सिन-चै, समुद्रियाइ-सो मुयंग, ह्व-संग, नंग-प्रथोम, क्षेप-लिन थोन-सुवन्न होंङ्, थाव सवद्दिञ्च, फरा उनारुन, दर सुरिवोंग, खुन-फन, नोंग सिप-संग प्रभृति काव्य एवं इनाव और फरा सिमुयंग नामक नाटक वीरत्वपूर्ण कहानी तथा कविरसनामें रचित हैं।

धर्मशास्त्र प्रायः तन्नामक पाली ग्रन्थका अनुवाद वा उसकी परिवर्त्तितवृत्तिमात्र है। इस श्रेणीके मध्य सोमन खोदोम (श्रमण-गौतम) ग्रन्थमें वेस्सन्तर जातिका भाव लिया गया है। सुफासित (सुभाषित) ग्रन्थमें २२२ सज्जनोंकी उक्ति है। यह ग्रन्थ श्यामीय कोंग नामक दीर्घ-मात्रा छन्दमें लिखित है। वुत चिन्दामणि (वृत्तचिन्तामणि) ग्रन्थ पालीभाषामें रचित वुत्तोदय नामक अलङ्कार शास्त्रका रूपान्तरमात्र है। अधिकतर इसमें व्याकरणके कई प्रश्नोंके उत्तरकी मीमांसा की गई है।

बालकोंकी शिक्षाके लिये कई हितोपदेशसूचक ग्रन्थ हैं। इस श्रेणीके कई पुस्तकोंकी गल्पें बड़ी बड़ी गल्प ग्रन्थोंका कुछ अंश ले कर लिखी गई हैं। स्मृति वा कानून ग्रन्थोंका पता नहीं है। यहां पालीभाषामें रचित व्यवहारशास्त्रका विशेष प्रचलन न रहने पर भी जो सब श्यामीय व्यवहारशास्त्र प्रचलित हैं, उनके

मध्य पालीके वचन उद्धृत देखे जाते हैं। इन सब ग्रन्थोंमें लक्षणकारा धम्मसत्‌ लक्षण कुछ मिला उल्लेख नीय है। इस ग्रन्थके शुरूमें धम्मसत (प्रभुधर्म ज्ञान) अर्थात् भगवान् मनुके कहे हुए शास्त्रका वर्णन है। इन्द्रयन्त (इन्द्रपथ) ग्रन्थ अन्योन्य इन्द्रप्रोक्त (इन्द्रलिखित) कहा जाता है। इस ग्रन्थमें विचारक के कर्तव्याकर्तव्यकी विवेचना की गई है। फराधमनुन ग्रन्थमें न्यायविचारकी धारा लिखी है। लक्षण तन पोग ग्रन्थमें नालिशकी अर्जी तथा मुकदमा खारिजकी विधि वर्णित है। 'रूप ग येगत मे मुगङ्ग' ये नामक राजविधि श्यामराज्यका प्रचलित दिवानी तथा फौजदारी विधियोंका संक्षिप्तसार है।

१८०७ ई०में श्यामराज्यने कम्बोडिया फरासी कर्तृ पक्षको बटम्बङ्ग प्रदेश लौटा दिया तथा उसके बदले ग्रात और दानसाद प्रदेश पाया। १८०९ ई०के सन्धि सूत्रमें श्यामराजने अंगरेजोंके हाथ कडा, केलेण्टन, ट्रेङ्गनु पेरलिस तथा श्यामराज्यके दक्षिणस्थ मालय प्रदेश (अंगरेजोंका अधिकृत मलयका उत्तरांश) की सारी क्षमता दे दी तथा इसके बदलेमें श्यामराज्यमें अंगरेज-समाज तिरोहित हो गया। इस सन्धिपत्रसे श्यामको खासी मदद पहुंची थी, कारण इसके साथ साथ कथा व वैदेशिक प्रभावसे श्याम विमुक्त हुआ। शासनपद्धतिके संस्कार और रेलपथ विस्तारके साथ साथ श्याम क्रमशः एक प्रधान वाणिज्यकेन्द्ररूपमें यूरोपीय शक्तियोंके निकट परिगणित हुआ है।

१९१० ई०में राजा चुलालङ्कर्णकी मृत्यु होने पर युवराज वाजिरावुध राजा हुए। १९१७ ई०में ६ होंने राजा ४ था राम उपाधि पाई। इनके शासनकालमें श्यामराज्यकी बड़ी उन्नति हुई। इनके समयमें युक्तराज्य, जापान, डेनमार्क फ्रान्स, ग्रेटब्रिटेन हालैण्ड, पुर्त्तगाल और स्पेनके साथ सन्धि हुई। १९२५ ई०को २६वीं नवम्बरको ये परलोक सिधारे। इनके कोई पुत्र न था इस कारण इनके भाई युवराज सुखोदय राजा हुए हैं। इनके समयमें इटली, बेलजियम आदि अन्यान्य यूरोपीय शक्तियोंके साथ सन्धि हुई है। विगत महासमरके बाद यह राज्य जातिसङ्घ (League of nations) सभ्यरूपमें परिगणित हुआ है।

श्यामल (सं० पु०) श्यामो वर्णो अस्त्यस्येति श्याम (सिध्मादिभ्यश्च। पा ५।२।९७) इति लच्। १ पिप्पल। २ अश्वत्थवृक्ष। ३ सुश्रुतके अनुसार एक प्रकारका बहुत जहरीला बिच्छू। ४ नीलभृङ्गराज। (त्रि०) ५ कृष्णवर्ण, काला सांवला। ६ कृष्णगुणविशिष्ट।

श्यामल—काश्मीरके एक कवि। ये दूसरे दूसरे ग्रन्थोंमें श्यामलक नामसे भी पुकारे गये हैं। क्षेमेन्द्रकृत औचित्य विचारचर्चामें इनका उल्लेख पाया जाता है।

श्यामलक (सं० पु०) श्यामल कविका एक नाम।

श्यामलचूडा (सं० स्त्री०) श्यामला चूडा यस्याः। गुञ्जा, घुंघची।

श्यामलता (सं० स्त्री०) स्वनामख्यात लता श्यामालता। पर्याय—

> 'गोपीगोपा गोपकन्या सारिवोत्पलसारिवा।
> अनन्ता शारिवा श्यामा ह्यष्टौ श्यामलताह्वये ॥'
> (इन्द्ररत्ना०)

श्यामलत्व भाव त्व टाप्। ? श्यामलका भाव या धर्म, सांवलापन कालापन।

श्यामलदेवी (सं० स्त्री०) एक राजमहिषी।

श्यामलवर्मा—एक यज्ञाधिप। वैदिक देखो।

श्यामला (सं० स्त्री०) श्यामल टाप्। १ पार्वती। २ अश्वगन्ध, असगन्ध। ३ कटभी। ४ जम्बू, जामुन। ५ कस्तूरी, मृगमद।

श्यामलाल (सं० पु०) संक्षेपरत्नाकरके प्रणेता।

श्यामलालु (सं० पु०) नीलालुक काला आलू।

श्यामलिका (सं० स्त्री०) नीला।

श्यामलित (सं० त्रि०) श्यामलतारकादित्वादि तच्। कृत श्यामल, जो श्यामवर्ण किया गया हो।

श्यामलिमन् (सं० पु०) श्यामल इमनिच्। अतिशय श्यामल, घोर श्याम वर्ण।

श्यामली—१ युक्तप्रदेशके मुजफ्फरनगर जिलेकी एक तहसील। इसका भूपरिमाण ४११ वर्गमील है। श्यामली, थानाभावन कक्राना कैराना और विदौली परगना ले कर यह उपविभाग बना है। पूर्वयमुना नहर आर उसकी जल्नालीस नलका इन्तजाम चलता है।

२ मुजफ्फर जिलेका एक नगर और श्यामाली जिलेका विचार सदर। यह अक्षा० २९° २६´ ४५´´ उ० तथा देशा० ७७° २१´ १० पू० पूर्वयमुना नहरके वाएं किनारे अवस्थित है। यह नगर पहले महम्मदपुर जनार्दन नामसे प्रसिद्ध था। मुगल बादशाह जहांगीरके अमलमें श्याम नामक एक व्यक्तिने यहांका सुप्रसिद्ध बाजार बनवा दिया तभीसे इसका श्यामली नाम हुआ है।

१७९१ ई०में यह नगर एक महाराष्ट्र सेनापतिके अधिकारमें था। वह सिक्खोंके साथ षड़यन्त्र करके महाराष्ट्रशासनकर्त्ताके विरुद्ध युद्ध करनेको तैयारी कर रहा है, ऐसा सन्देह कर महाराष्ट्रशासनकर्त्ताने उसके विरुद्ध जार्ज टामस नामक एक प्रसिद्ध यूरोपीय सेनापतिको भेजा। टामसने उस नगरको तहस नहस कर विद्रोहिदलका निर्मूल कर दिया था।

१८०४ ई०में महाराष्ट्रदलने कर्नल बार्नको दलबलके साथ कैद कर लिया था। इस समय यदि लार्ड लेक नहीं पहुंचते तो न मालूम उन पर और क्या क्या मुसीबत गुजरता। अंगरेज सेनापतिके पहुंच जाने पर लार्ड लेकको बहुत उत्साह हुआ और बड़ी वीरतासे युद्ध कर उन्होंने अपनी प्राणरक्षा की। १८५७ ई०के गदरमें यहांके तहसीलदारने अंगरेजोंकी ओरसे नगररक्षा की थी। किन्तु थाना भवनके विद्रोहिदलने उसे परास्त कर नगर पर कब्जा कर लिया।

श्यामलेक्षु (सं० पु०) श्यामलः कृष्णवर्ण इक्षुः। कृष्णेक्षु, काले रंगकी ईख।

श्यामवर्ण (सं० पु०) श्यामः वर्णः। १ कृष्णवर्ण। (त्रि०) श्यामः वर्णो यस्य। २ कृष्णवर्णविशिष्ट, काले रंगका।

श्यामवर्त्म (सं० पु०) एक प्रकारका नेत्र रोग। इसमें आंखकी पलकें बाहर तथा भीतरसे हो कर फूल जाती हैं और उनमें पीड़ा होती है।

श्यामबाजार—बंगालके हुगली जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २३° ३५´ १०´´ उ० तथा देशा० ८७° ३२´ ५´´ पू० जहानाबादके दक्षिण कुछ दूर पर अवस्थित है। यहां ११२५ हिजरीकी प्रतिष्ठित एक प्राचीन सराय विद्यमान है।

श्यामशबल (सं० पु०) पुराणानुसार यमके अनुचर दो कुत्ते जो उनके द्वार पर पहरा देनेका काम करते हैं। इन्हें सन्तुष्ट करनेके लिये एक प्रकारका व्रत करनेका भी विधान है।

श्यामशबलव्रत (सं० क्ली०) यमके अनुचर दो कुत्तेका तृप्तिसाधक एक व्रत।

श्यामशर (सं० पु०) एक प्रकारकी ईख जो बहुत अच्छा और गुणवाली मानी जाती है।

श्यामशालि (सं० पु०) श्यामः श्यामवर्णः शालिः। कृष्ण शालि धान्य, काला शालि धान।

श्यामशाह शङ्कर—वास्तुशिरोमणि नामक वास्तुशास्त्रके प्रणेता।

श्यामसर्प (सं० पु०) कृष्णसर्प, काला सांप।

श्यामसार (सं० पु०) कृष्ण खदिरका वृक्ष।

श्यामसुन्दर (सं० पु०) श्यामः सुन्दरश्च। १ श्रीकृष्ण। २ एक प्रकारका वृक्ष जो कदमें बहुत ऊंचा होता है। इसकी छाल प्रारम्भमें उज्ज्वल होती है, परन्तु ज्यों ज्यों यह पुराना होता जाता है, त्यों त्यों छाल काली होती जाती है। इसके हीरकी लकड़ी चमकदार होती है। पहाड़ों पर यह चार हजार फुटकी ऊंचाई तक पाया जाता है। इसकी लकड़ी प्रायः बढ़िया चीजोंके बनानेमें काम आती है। इससे खेतीके औजार बनाये जाते हैं।

श्यामसुन्दर—१ विवादार्णभङ्ग ग्रन्थके एक संग्रहकर्त्ता। २ देवप्रतिष्ठा प्रयोगके प्रणेता। ये गङ्गाधर दीक्षितके पुत्र थे।

श्यामसुन्दर चक्रवर्त्ती—एक विख्यात पण्डित। ये शब्दरहस्यके प्रणेता रामकान्त विद्यावागीशके पिता थे।

श्यामा (सं० स्त्री०) श्यामो वर्णोऽस्त्यस्या इति अच्; टाप्। १ शारिवौषधि। २ अप्रसूताङ्गना, जिन स्त्रियोंको सन्तानादि पैदा नहीं होती; बंध्या। ३ राधाका एक नाम, जो श्याम या श्रीकृष्णके साथ उनका प्रेम होनेके कारण पड़ा था। ४ एक गोपीका नाम। ५ लगभग सवा या डेढ़ बालिस्त लम्बा एक प्रकारका पक्षी जिसका रंग काला और पैर पीले होते हैं। ६ सोलह वर्षकी तरुणी। ७ काले रंगकी गाय। ८ कबूतरी, मादा कबूतर। ९ काला अनन्तमूल; श्यामा लता। १० काली निसोथ। ११ प्रियंगु, वनिता। १२ बकुची; सोमराजी। १३ नील। १४ गुग्गुल। १५ सोमलता,

सामयल्ली। १६ भद्रमोथा। १७ गुड़ूच, गिलोय। १८ कस्तूरी, मुश्क। १६ वटपत्री, पाषाणभेदी। २० पिप्पली पीपल। २१ हल्दी हरिद्रा। २२ हरी दूब। २३ तुलसी। २४ कमलगट्टा। २५ विधारा। २६ शिंशपावृक्ष, शीशम। २७ साँचा नामक अन्न। २८ काली गदहपूरना। २६ गोलोचन, गोरोचन। ३० परका या गुन्द्रा नामक घास। ३१ मद्दासिंगी। ३२ हरीतकी, हर्रे। ३३ कोयल नामक पक्षी। ३४ यमुना। ३५ रात यामिनी। ३६ स्त्री। ३७ छाया। ३८ शीतकालमें जिस स्त्रीका सर्वाङ्ग सुखोष्ण और ग्रीष्ममें सर्वाङ्ग सुशीतल हो जाता है तथा जिसका वर्ण तप्तकाञ्चनके सदृश रहता है, उसको श्यामा कहते हैं। ३९ कालिका देवी भगवती। कालिका देखो। (त्रि०) ४० तपाए हुए सोनेके समान वर्णवाली। ४१ श्याम रंगवाली, काली।

श्यामाक (सं० पु०) श्याम श्यामवर्णमकतीति अक गतौ अण्। तृणधान्यविशेष, सावा नामक अन्न। पर्याय—श्यामक श्याम, त्रिबीज, अविप्रिय, सुकुमार, राजधान्य, तृणबीजोत्तम। गुण—मधुर कषाय तिक्त, लघु शीतल, वातकारी कफ, पित्त और व्रणदोषनाशक ग्राही।

श्यामाङ्ग (सं० पु०) श्यामानि अङ्गानि यस्य। १ बुध ग्रह। इसका वर्ण दूर्वा श्याम माना गया है। (त्रि०) २ कृष्णवर्ण कलेवरविशिष्ट, जिसका शरीर कृष्णवर्णका हो, काले या साँवले रंगवाला।

श्यामाङ्गी (सं० स्त्री०) काले फूलकी अरहर। यह वैद्यकके अनुसार दीपन और पित्त तथा दाहनाशक मानी जाती है।

श्यामादिगण (सं० पु०) सुश्रुतोक्त गणविशेष। श्यामालता महाश्यामालता, निसोथ, दन्ती लोध, कमलगट्टा महानिम्ब, पुगाफल, मूसाकानी, ग्वालककड़ी, अमलतास, नाटाकरञ्ज, उडकरञ्ज, गुडाच छतिवन, मनमासीज, स्वर्णक्षीरीलता प्रभृति श्यामादिगण है। ये विषनाशक पौधे हैं और उदररोग तथा उदावर्त रोगमें विशेष लाभ करते हैं। (सुश्रुत सू० ३८ अ०)

श्यामानन्द—उत्कलमें वैष्णव धर्मप्रचारक एक महापुरुष।

श्रीगौराङ्ग महाप्रभुके बाद गङ्गा यमुना सरस्वती इस त्रिवेणी प्रवाहकी तरह तीन भक्तिमय विग्रहने श्रीकृष्ण चैतन्यके प्रवर्त्तित भक्तिस्रोतको प्रवाहित रखा। उन तीन महापुरुषों में एकका नाम श्रीनिवास आचार्य, दूसरेका ठाकुर नरोत्तम और तीसरेका श्यामानन्द था।

शककी १५वीं सदीके शेष भागमें उड़ीसाके अन्तर्गत दण्डेश्वर ग्राममें श्यामानन्दका आविर्भाव हुआ। इनके पिताका नाम श्रीकृष्णमण्डल था। ये जातिके सद्गोप थे। श्रीकृष्णमण्डलका पूर्वावास गौड़में था। वे गौड़का त्याग कर उत्कलके दण्डेश्वर ग्राममें आ कर बस गये। श्रीकृष्णमण्डलकी पत्नीका नाम दुरिका था। दुरिका भगवद्भक्तिपरायणा और पतिव्रता थी। श्रीकृष्णमण्डल भी धर्मानुरागके लिये लोकसमाजमें प्रसिद्ध थे।

बचपनमें सब कोई श्यामानन्दको दुःखी कृष्णदास नामसे पुकारा करते थे। श्यामानन्द नाम इनके गुरु हृदयानन्दका रखा हुआ है। प्रेमविलास और भक्तिरत्नाकरमें कई जगह इन्होंने कृष्णदास नामसे अपना परिचय दिया है।

कृष्णदासके बाल्यजीवनमें ही भावोन्मत्तताके अनेक चिह्न स्पष्ट दिखाई देते थे। वे बचपनमें ही कृष्णप्रेममें विभोर रहते थे। कृष्णविरहकी दुःसह व्यथासे इनका चित्त व्यथित रहता था। विपुल भोगविलास-वैभव रहने पर भी ये कृष्णविरहमें दुःखी थे। इस तरह कुछ दिन बीत गये। इसके बाद ये किसी तरह घरमें ठहर न सके, घर उन्हें बोझ सा मालूम पड़ने लगा। बन्धु बान्धवोंने श्यामानन्दको घरमें रखनेकी बड़ी कोशिश की पर वे बालूकी दीवाल खड़ी कर उस वैराग्यसिन्धुकी तरङ्गको रोक न सके। कृष्णदास अपने छोटे भाई बलराम पर संसारका कुल भार सौंप तीर्थपर्यटनको निकल पड़े।

घरसे निकल कर पहले ये अम्बुया नगर (अम्बिका) पहुंचे। यहां वैष्णवाचार्य हृदयचैतन्य उन्हें देख कर बड़े प्रसन्न हुए। फाल्गुनी पूर्णिमाको कृष्णदास हृदयानन्दसे दीक्षित हुए। इस समयसे ये गुरुदत्त श्यामानन्द नामसे पुकारे जाने लगे।

गौरीदासशिष्य हृदयचैतन्यसे दीक्षाग्रहणके बाद निम्नलिखित तीर्थस्थानोंके दर्शनार्थ निकले—एक

श्वर, वैद्यनाथ, गया, काशी, महाप्रयाग, मथुरा, यमुना, विश्रान्तस्थान, गोवर्द्धन, वृन्दावन, हस्तिना, द्वारका, कपिलतीर्थ, मत्स्यतीर्थ, शिवकाञ्ची, विष्णुकाञ्ची, कुरुक्षेत्र, पृथूदक, बिन्दुसरोवर, प्रभास, त्रितकूप, विशाला, ब्रह्मतीर्थ, चक्रतीर्थ, सरस्वती, नैमिष, अयोध्या, सरयू, कौशिकी, पौलस्त्यआश्रम, गोमती, गण्डकी, षोड़शतीर्थ, महेन्द्रपर्वत, हरिद्वार, वदरिकाश्रम, पम्पा, सप्तगोदावरी, श्रीपर्वत, द्राविड, वेङ्कटाद्रि, कामकोष्ठीपुर, मधुपुरी, कृतमाला ताम्रपर्णी, मलयपर्वत, अगस्त्य, यज्ञशाला, अनन्तपुर, पञ्चाप्सरा, सरोवर, गोकर्ण, कुलालक, त्रिगर्त्तक, दुर्वेशन, निर्विन्ध्या, पयोष्णी, रेवा, माहिष्मतीपुरी, मल्लतीथ, शूर्पारक, प्रतिचिरि, सेतुबंध, अवन्ती, जियड़नृसिंह, देवपुरी, त्रिमल्ल, कूर्मनाथ, गङ्गासागर, पुरुषोत्तम और नवद्वीप। इन सब स्थानोंके दर्शन कर वे अपने घर लौटे। कुछ दिन गृहाश्रममें रह कर इन्होंने फिरसे श्रीवृन्दावनकी यात्रा कर दी। राधाकुण्ड और श्यामकुण्ड देख कर इनके नेत्रोंसे अश्रुधारा छूटने लगी। श्यामानन्दकी यह असाधारण प्रेमविह्वलता देख कर व्रजवासिमात्र हो विस्मित हो गये। श्रीमत् रघुनाथदास गोस्वामीके शिष्य दास व्रजवासी श्यामानन्दको रघुनाथ दास गोस्वामीके आश्रममें ले गये। दास गोस्वामीको देख कर श्यामानन्दने उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया। श्यामानन्दकी नयनाश्रुधारा पूर्ववत् चल रही थी। श्रीमत् दासगोस्वामीने श्यामानन्दको एक दिन अपने यहां रख कर दूसरे दिन भक्तिशास्त्र अध्ययनके लिये वृन्दावनमें श्रीजीवगोस्वामीके पास भेज दिया। इसी स्थानमें श्रीनिवास और नरोत्तमके साथ श्यामानन्दका प्रथम परिचय हुआ।

श्यामानन्दने वाल्यकालमें ही संस्कृत भाषामें व्याकरण आदि ग्रन्थोंमें अधिकार कर लिया था। इस समय इन्होंने दार्शनिक पण्डित श्रीजीवगोस्वामीके चरणोंका आश्रय ले कर भक्तिग्रन्थ पढ़ना आरंभ कर दिया। थोड़े ही समयमें भक्तिशास्त्र पर इनका पूरा अधिकार हो गया। इस प्रकार श्यामानन्द वर्षों व्रजमें रह कर फिरसे उत्कल लौटे।

भक्तिरत्नाकरमें लिखा है, कि श्रीनिवासाचार्य, नरोत्तम और श्यामानन्दने भक्तिग्रंथ ले कर वृन्दावनसे यात्रा की। श्रीजीव गोस्वामी काष्ठसम्पुटमें ग्रंथोंको बड़ी सावधानीसे रख कर इन लोगोंके साथ मथुरा तक आये थे।

आखिर वे तीनों भक्त सर्वत्र पर्यटन करते हुए वनविष्णुपुर तक आये। राजा हम्बीर डकैतोंका सरदार था। उसने सम्पुटकी बात सुन कर उसे धनरत्नपूर्ण समझा और साथियोंके साथ रातको जा कर वह सम्पुट चुरा लाया। किन्तु सम्पुट खोल कर देखा, कि वह धनरत्न नहीं है, ग्रंथोंसे परिपूर्ण है। ग्रंथ देखते ही उसका कलुषित मन पवित्र हो गया। उसने स्वामीको खोज लानेका हुकुम दिया। इधर श्रीनिवास आचार्य, नरोत्तम और श्यामानन्द आदिने उठ कर देखा, कि ग्रंथ सम्पुट नहीं है, चुरा ले गया। इस पर वे शोकसे अधीर हो गये। चारों ओर इसकी तलाश करने लगे इसी समय किसीने श्रीनिवाससे आ कर कह दिया, कि राजा हम्बीर ग्रंथ चुरा ले गया है। श्रीनिवासने नरोत्तमसे कहा, "तुम श्यामानंदके साथ खेतरी चले जाओ, लोकनाथ प्रभुकी आज्ञाका पालन करो, वहांसे श्यामानंदको अच्छे साथियोंके साथ अम्बिकाके पथसे उत्कल भेज दो। ग्रंथका पता लगने पर मैं शीघ्र तुम लोगोंको खबर दूंगा, मैं खास कर उसी लिये यहां ठहर गया।" नरोत्तम और श्यामानंद यथासमय खेतरी पहुंचे। कुछ दिन बाद नरोत्तम बड़े कष्टसे श्यामानंदको उत्कल भेज देनेके लिये तैयार हुए।

रयनी ग्राममें अच्युत नामक शिष्ट करणवंशीय एक सुप्रसिद्ध जमींदार थे। श्यामानन्दके प्रसिद्ध और प्रधान शिष्य रसिक मुरारि इन्हींके पुत्र थे।

रसिकानंद वाल्यकालमें ही अनेक शास्त्रोंका अध्ययन कर भगवद्भक्त हो गये थे। वे कुछ दिन घण्टाशिला (घाटशिला) ग्रामके निर्जन स्थानमें बैठ कर भगवत्की आराधना किया करते थे। यहां वे एक दिन मन ही मन सोच रहे थे, 'मैं गुरु कहां पाऊंगा?' इस समय दैववाणी हुई, कि श्यामानन्द तुम्हारे गुरु होंगे। इसी स्थानमें तुम उनके दर्शन पाओगे। फलतः यथासमय

श्यामानन्दने वहां आ कर उन्हें दीक्षा प्रदान की।

रसिकानन्दके आदेशसे उनकी स्त्री इच्छादेवी श्यामानन्दसे मन्त्र ले कर श्यामादासी नामसे प्रसिद्ध हुई।

कुछ दिन रसिकानन्दके यहां रह कर श्यामानन्दने पुरुषोत्तम जानेकी इच्छा प्रकट की। रसिकानन्द भी उनके साथ साथ चले। राहमें वे दोनों चान्लिया ग्राममें ठहरे। वहां महायोगी दामोदर गोसाइं रहते थे। दामोदर सर्वशास्त्रमें सुपण्डित थे। श्यामानन्द और रसिकानन्दके साथ दामोदर द्वार और योगविषयमें तर्क करके अपना विद्यागर्व दिखलाने लगे। किन्तु श्यामानन्दके मुखसे भक्तितत्त्वका विचार सुन कर दामोदर परास्त हुए। इसके बाद दामोदरने श्यामानन्दसे मन्त्रग्रहण किया। यहां और भी कुछ दिन रह कर श्यामानन्द पुरुषोत्तमको चल दिये। रसिकमङ्गलमें लिखा है कि वे एक बार फिर वृन्दावन गये थे। इस समय रसिकेन्द्र भी वहीं थे। व्रजधाममें दोनोंकी भेंट हुई। इसके बाद दोनों ही उत्कलमें भक्ति प्रचार करनेके लिये चल दिये। इस बार नागपुरके रास्ते पर वे सेगला ग्राममें ठहरे। वहां विष्णुदास नामक एक धनी उनका शिष्य हुआ। अब विष्णुदास रसमयदास कहलाने लगा। वहांसे रोहिणी आ कर वे दोनों हरिनाम कीर्त्तन करने लगे। धीरे धीरे चारों ओर भक्तिकी बाढ़ उमड़ गई।

इसके बाद श्यामानन्द द्वारा श्रीगोपीवल्लभ विग्रह प्रतिष्ठित हुआ। जिस ग्राममें उस विग्रहकी प्रतिष्ठा हुई श्यामानन्दने उस ग्रामका नाम गोपीवल्लभपुर रखा।

इस समयसे रसिकानन्द और श्यामानन्द उत्कलके उत्तरांचलमें प्रेमभक्तिका प्रचार करनेके लिये गाँव गांव घूमने लगे। उत्कल धनी, दरिद्र राजा प्रजा बालक वृद्ध सभीके हृदयमें प्रेमभक्ति उमड़ आई। थोड़े ही दिनोंमें श्यामानन्दका जीवनयज्ञ सम्पूर्ण हो गया। चारों ओर हरिनामका कल्लोल उठने लगा। प्रेमभक्तिके तरङ्गप्रवाहमें समस्त उत्कल बहने लगा। श्यामानन्दने उत्कल और मेदिनीपुरमें हजारों महोत्सव किये। इन सब महोत्सवों मेंसे किसी किसी महोत्सवमें मुसलमान भी शामिल होते थे। मेदिनीपुरके आलमगञ्जमें श्यामानन्दके पदार्पण करने पर एक भारी महोत्सव हुआ। इसमें मेदिनीपुरके सूबेदारने भी साथ दिया था। मुसलमान सूबेदारने इस महोत्सवका कुल खर्च दिया था।

श्यामानन्द ठाकुरकी तीन पत्नी थीं, श्यामप्रिया, यमुना और गौराङ्गदासी। श्यामानन्दके प्रधान प्रधान शिष्योंमें से प्रधान बारह शिष्योंके नाम पर बारह पाट हुए हैं।

उत्कलके उत्तरांश और मेदिनीपुरके पश्चिम दक्षिण अंशमें श्यामानन्द सम्प्रदायने एक समय प्रेमभक्ति द्वारा वैष्णवधर्मका विपुल कीर्त्तिध्वजा फहराई थी।

श्यामानन्दने अपने जीवनके शेषभागमें उत्कलके नाना स्थानोंमें पर्यटन किया। एक समय उन्होंने दैववाणी सुनी, कि श्रीवृन्दावनमें महाप्रस्थानके लिये उनकी बुलाहट है। यह सुनते ही उन्होंने घरका परित्याग कर मैदानमें एक वृक्षके नीचे आश्रय लिया। तीन दिन तीन रात वे उसी जगह पड़े रहे। चिकित्सकोंने उन्हें वायुरोगसे पीड़ित बताया, हेमसागर तैलकी व्यवस्था हुई। इससे उनका वायुरोग कुछ भी न हटा। वहांसे वे काशीयाड़ीको चल दिये। श्यामानन्द जब जहां जाते थे, उसी जगह सङ्कीर्त्तनकी तरङ्ग उमड़ती थी उसी जगह प्रेमभक्तिका प्रवाह बहने लगता था।

धीरे धीरे श्यामानन्दका स्वास्थ्य खराब होता गया। उन्होंने रसिकानन्दको बुला कर कहा "मैं अब अधिक दिन नहीं बचूंगा, भक्तोंको ले कर तुम भक्तिका प्रचार करो। वृन्दावनसे कई बार बुलाहट आ चुकी है मैं अब अधिक दिन ठहर नहीं सकता।" इतना कह कर श्यामानन्द नृसिंहपुरमें उद्दण्डरायके घर आये। वहां वर्षाके चार मास वहीं ठहरे। जहां तक हो सका अच्छे अच्छे चिकित्सकोंसे चिकित्सा कराई गई। श्यामानन्दने कहा 'तुम लोगोंका भ्रम है यह न वायुरोग है श्रीकृष्णकी आज्ञा ही बलवती होगी।' भक्तोंने मिल कर महाकीर्त्तन आरम्भ कर दिया। इस समय रात दिनके हरिसंकीर्त्तनसे नृसिंहपुर गूंज उठा।

विविध उपदेश दे कर श्यामानन्दने अपने हाथसे तिलक लगाया। १५५२ शकको आषाढ़ मासकी कृष्ण

प्रतिपद् तिथिको वे इस लोकका परित्याग कर सुरलोकको सिधारे।

श्यामाम्ली (सं० स्त्री०) श्यामा चासौ अम्ली चेति कर्मधारयः। नीलाम्ली।

श्यामायन (सं० पु०) विश्वामित्रके पुत्र। ये एक गोत्रप्रवर्त्तक ऋषि थे।

श्यामायनि (सं० पु०) एक वैदिक आचार्यका नाम।

श्यामायनी (सं० पु०) १ वैशम्पायनके शिष्योंका सम्प्रदाय। २ वह जो इस सम्प्रदायमें हो।

श्यामालता (सं० स्त्री०) कृष्णशारिवा, काला अनन्तमूल।

श्यामाह्वा (सं० स्त्री०) पिप्पली, पीपल।

श्यामिका (सं० स्त्री०) १ श्यामवर्ण, काला रंग। २ श्यामता, कालापन। ३ मलिनता, उदासी। ४ लोहान्तरसंसर्ग, खाद।

"हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धिः श्यामिकापि वा।"
(रघु० १ स०)

श्यामित (सं० स्त्री०) श्यामवर्णविशिष्ट, सांवला।

श्यामेक्षु (सं० पु०) कृष्णेक्षु, काली ईख।

श्यामेय (सं० पु०) श्यामका गोत्रापत्य।

श्याल (सं० पु०) श्यायते नर्मार्थं प्राप्यतेऽसौ इति श्यै बाहुलकात् कालन्। १ पत्नीका भाई, साला। (गीता १।३४) बाक्षोर, श्यालिक, श्वशुर्य्य, आत्मवीर। (जटाधर) सालेकी मृत्यु होने पर एक रात अशौच मानना होता है। २ भगिनीपति, बहनोई।

श्याल (हिं० पु०) गीदड़, सियार।

श्यालक (सं० पु०) श्याल एव स्वार्थे कन्। श्याल, साला। (शब्दरत्ना०)

श्यालकाँटा (हिं० पु०) स्वर्णक्षीरी, भरभाँड।

श्यालकी (सं० स्त्री०) पत्नीकी बहन, साली। पर्याय—श्याली, केलिकुञ्चिका। (शब्दरत्ना०)

श्यालिका (सं० स्त्री०) पत्नीकी बहन, साली।

श्याव (सं० पु०) श्यै-बाहुलकात् वः। १ कपिशवर्ण, काला और पीला मिला हुआ रंग। २ शाक आदिका रंग। (भावप्रकाश) ३ मन्दविष वृश्चिकभेद, एक प्रकारका विच्छू जिसका विष बहुत तेज नहीं होता। (सुश्रुत कल्प०) (त्रि०) ४ कपिश, काला और पीला मिला हुआ।

श्यावक (सं० पु०) राजर्षिभेद। (ऋक् ८।३।१२)

श्यावता (सं० स्त्री०) श्याववर्णका भाव या धर्म, कपिशता।

श्यावतैल (सं० पु०) आम्रवृक्ष, आमका पेड़।

श्यावदत् (सं० त्रि०) श्यावा दन्ता यस्य (विभाषा श्यावतरोकाभ्यां। पा ५।४।१४४) इति दत्रादेशः। कृष्णपीत मिश्रित दन्तयुक्त, जिसके दाँत काले पीले हों। (सिद्धान्तकौ०) महाभारतके किसी ग्रन्थमें 'श्यावद' ऐसा देखा जाता है। (महाभारत १३।३४।३)

श्यावदन्त (सं० त्रि०) श्यावा दन्त यस्य (विभाषा श्यावारोकाभ्यां। पा ५।४।१४४) इति विभाषया पक्षे न दत्रादेशः। स्वार्थे कन् च। १ स्वाभाविक कृष्णवर्ण दशनयुक्त। २ प्रधान दन्तद्वय मध्यस्थ क्षुद्र दन्तविशिष्ट। ३ प्रधान दन्तोपरि दन्तान्तरयुक्त।

विष्णुस्मृतिमें लिखा है, कि शराब पीनेवाला शराबी जब कल्पों तक नरक भोगनेके उपरान्त, चौरासी लाख योनियोंमें भ्रमण करता हुआ, मनुष्य योनिमें जन्म ग्रहण करता है, तब वह श्यावदन्तक हो कर ही अवतार लेता है।

"अथ नरकानुभूतदुःखानां तिर्य्यक्त्वमुत्तीर्णानां मानुष्ये लक्षणानि भवन्ति यथा—कुष्ठातिपातकी यहाहा यक्ष्मी। सुरापः श्यावदन्तकः। सुवर्णहारी कुनखी। गुरुतल्पगो दुश्चर्म्मा।" (विष्णु)

कुनखी और श्यावदन्तक व्यक्ति यदि बारह रात तक पराकरूप कृच्छ्र चान्द्रायणव्रत करें, तो वे अपने अपने रोगोंसे छुटकारा पा सकते हैं। जब वे चान्द्रायण व्रत नहीं कर सकें, तो पाँच गाय ब्राह्मणको दान देवें। इससे भी उनका संकट दूर हो सकता है।

"कुनखी श्यावदन्तश्च द्वादशरात्रं कृच्छ्रं चरित्वोद्धरेयातां तद्दन्तनखौ इति। अत्र द्वादशरात्रं पराकरूपं। तत्र पञ्चधेनवः।" (विष्णु)

(पु०) ४ दन्तगतरोगविशेष। लहूकी खराबीसे जो दाँत काला हो जाता है, उसे श्यावदन्तक रोग कहते हैं।

मुखरोग देखो।

श्यावदन्तता (स० स्त्री०) श्यावदन्तका भाव या धर्म ।

श्यावनाय (स० पु०) एक प्राचीन ऋषिका नाम ।

श्यावनायीय (स० त्रि०) श्यावनाय मुनि सम्बन्धी ।

श्यावनाय्य (स० पु०) श्यावनाय ऋषिका गोत्रापत्य ।

श्यावपुत्र (स० पु०) श्यावके गोत्रमें उत्पन्न एक ऋषिका नाम ।

श्यावपुत्र (स० पु०) श्यावपुत्रका गोत्रापत्य ।

श्यावरथ (स० पु०) एक ऋषिका नाम ।

श्यावरथ्य (स० पु०) श्यावरथका गोत्रापत्य ।

श्यावल (स० पु०) श्यावलिका गोत्रापत्य ।

श्यावलि (स० पु०) एक प्राचीन ऋषिका नाम ।

श्याववर्त्मन् (स० क्ली०) वर्त्मगत नेत्ररोग । नेत्ररोग देखो ।

श्यावाश्व (स० पु०) एक ऋषिका नाम ।

श्यावाश्वि (स० पु०) श्यावाश्व ऋषिका गोत्रापत्य ।

श्यावास्य (स० त्रि०) श्याववर्ण मुखविशिष्ट, जिसका मुंह कपिश रंगका हो ।

श्यावास्यता (स० स्त्री०) श्यावास्यका भाव या धर्म ।

श्याव्या (स० स्त्री०) रात्रिमें उत्पन्न तमोराशि ।

श्येत (स० पु०) श्यै गतौ (हृश्याभ्यामितन् । उण् ३।९३) इति इतन् । १ शुक्लवर्ण, सफेद रंग । (त्रि०) २ शुक्लवर्णयुक्त, सफेद, उजला । (अमर)

श्येतकोल (स० पु०) श्येतः कोल: क्रोडदेशो यस्य कन् । मत्स्यविशेष, एक प्रकारकी मछली ।

श्येताक्ष (स० त्रि०) श्वेतनेत्रयुक्त, सफेद आंखवाला ।

श्येन (स० पु०) श्यै गतौ (श्यास्त्याहृञ्विभ्य इनच् । उण् २।४६) इति इनच् । १ पाण्डुवर्ण । २ पक्षीविशेष, बाज ।

यात्राकालमें यदि श्येनपक्षी मनुष्यके चारों ओर प्रदक्षिण करे और घरमें शुभ समय उसके बाद ओरमें उड़ जाय और उस समय शान्तभावसे मधुरादि स्वर उच्चारण करे, तो शुभ होता है। दक्षिण वाम या पृष्ठ इनमेंसे जिस किसी ओर श्येनपक्षी अवस्थान करे, तो जानना चाहिये, कि उसकी मनोवाञ्छा सुप्रसन्न है। फिर मानुषभागमें रहनेसे यह मृत्युका ज्ञापक होता है, किन्तु युद्धयात्रा कालमें यदि इस प्रकार से मुखरूप देखा जाय, तो छिन्नपताकाविशिष्ट क्षीण रथारूढ़ व्यक्ति भी जयलाभ कर सकता है।

श्येनकपोतीय (स० त्रि०) श्येनपक्षी और कपोतसम्बन्धी उपाख्यान ।

श्येनकरण (स० क्ली०) १ किसी कामको उतनी ही तेजी और दृढ़तासे करना जितनी तेजी और दृढ़तासे बाज झपट कर अपने शिकारको पकड़ता है। २ भिन्न चिता में दाहन ।

श्येनगामिन् (स० त्रि०) १ द्रुतगामी, तेजीसे जानेवाला । (पु०) २ एक राक्षसका नाम ।

श्येनघण्टा (स० स्त्री०) दन्ती वृक्ष, उडुम्बरपर्णी ।

श्येनचित् (स० पु०) श्येनेन चयति अग्न्यधिक्षिण इति चि क्विप् । १ श्येनपक्षीरक्षक । श्येन इव चीयते इति (कर्मण्यग्न्याख्यायां । पा ३।२।९२) इति चि क्विप् । २ यज्ञ आदिमें अग्नि स्थापित करनेकी वह वेदी जिसका आकार श्येन या बाज पक्षीके समान होता है।

श्येनजित (स० पु०) व्यक्तिभेद ।

श्येनजित् (स० पु०) महाभारतोक्त व्यक्तिभेद ।

श्येनजीविन् (स० पु०) वह जो श्येन या बाज पकड़ और बेच कर जीविका निर्वाह करता हो। मनुने ऐसे आदमी के साथ एक पंक्तिमें बैठ कर खाने पीनेका निषेध किया है। (मनु ३।१६४)

श्येनभूत (स० त्रि०) श्येनकर्तृक अपहृत ।

श्येनपत्र (स० क्ली०) श्येनपक्ष बाणका रक्षक ।

श्येनपतन् (स० त्रि०) तेज घोड़ा अथवा बाजके समान शीघ्र गिरनेवाला ।

श्येनपात (स० पु०) १ श्येनपक्षी बाज । २ बाजका तेज से जाना । इस अर्थमें 'श्येन पात' पद भी होता है। ३ बाजकी तरह गमन या शिकार द्वारा दिपात ।

श्येनवृन्त् (स० क्ली०) सामभेद ।

श्येनयोग (स० पु०) यागभेद

श्येनहृत (स० त्रि०) श्येनाहृत । श्येनाहृत देखो ।

श्येनाख्य (स० पु०) पक्षिभेद । (Ardea Sibirica)

श्येनाहृत (स० त्रि०) बाज पक्षीके समान आहरित्वाग, गायत्री द्वारा अपहृत या संगृहीत । (ऋक् १।८०।२)

श्येनापात (स० पु०) बाज पक्षीका पकड़नेके लिए वेगसे गिरना ।

श्रद्धावत् (सं० त्रि०) श्रद्धा विद्यतेऽस्य श्रद्धा मतुप् मस्य व। १ श्रद्धायुक्त, जिसके मनमें श्रद्धा हो। (गीता ४।३९) २ धर्मनिष्ठ, जिसके मनमें धर्मके प्रति निष्ठा हो। श्रद्धावान् व्यक्ति आत्मज्ञान लाभ कर सकते हैं।

"गुरुवेदान्तवाक्येषु विश्वासः श्रद्धा।" (वेदान्तसार)

गुरु और वेदान्त वाक्यमें जो एकान्त विश्वास है, उसे श्रद्धा कहते हैं। जो गुरु और वेदान्त वाक्यमें विश्वास रख भगवानकी उपासना तथा सभी कार्यों का अनुष्ठान करते हैं, वही ज्ञानलाभ कर उसी ज्ञानसे शान्तिसुख अनुभव करते हैं।

श्रद्धास्पद (सं० त्रि०) जिसके प्रति श्रद्धा की जा सके, श्रद्धापात्र, पूजनीय।

श्रद्धिन् (सं० त्रि०) श्रत् धा णिनि। श्रद्धायुक्त, जिसके मनमें श्रद्धा हो।

श्रद्धिव (सं० त्रि०) श्रद्धायुक्त, श्रद्धायत्न द्वारा लभ्य। (ऋक् १०।१२५।४) एकमात्र ब्रह्म ही श्रद्धिव अर्थात् श्रद्धा और यत्न द्वारा लभ्य है।

श्रद्धेय (सं० त्रि०) श्रत् धा-यत्। श्रद्धार्ह, श्रद्धाके योग्य, श्रद्धास्पद।

श्रद्धेयत्व (सं० क्ली०) श्रद्धेयस्य भावः त्व। श्रद्धेयका भाव या धर्म, श्रद्धा।

श्रन्थ (सं० पु०) श्रथ्नाति मोचयति भक्तान् संसारादिति श्रन्थ-अच्। १ विष्णु। जो भक्तोंको संसारसे अर्थात् जन्म मृत्युके हाथसे मुक्ति देते हैं, उसे श्रन्थ अर्थात् विष्णु कहते हैं। (त्रिका०) श्रन्थ भावे घञ्। २ मोचन। ३ प्रति हर्षण।

श्रन्थन (सं० क्ली०) श्रन्थ भावे ल्युट्। १ सन्दर्भ। २ मोचन। ३ प्रतिहर्षण।

श्रन्थित (सं० त्रि०) श्रन्थ-क्त। १ ग्रन्थित। २ बद्ध, बंधा हुआ। ३ मुक्त। ४ हर्षित, खुश।

श्रपण (सं० पु०) गार्हपत्य अग्निके द्वारा चरु पकानेकी क्रिया।

श्रपणीय (सं० त्रि०) रन्धनयोग्य, पकाने लायक।

श्रपयितृ (सं० त्रि०) रन्धनकीर, पाचक।

श्रपित (सं० त्रि०) श्रप क्त। १ पक्व, पका हुआ। (पु०) २ घृत, दुग्ध।

श्रपिता (सं० स्त्री०) श्रप क्त टाप्। काञ्जिक, कांजी।

श्रम (सं० पु०) श्रम-घञ्, नोदात्तोपदेशस्येति वृद्ध्यभावः। १ तपस्या। २ खेद। ३ श्रान्ति। ४ शस्त्रोंका अभ्यास। ५ चिकित्सा, इलाज। ६ प्रयास। ७ अभ्यास। ८ किसी कार्यके सम्पादनमें होनेवाला शारीरिक अभ्यास, शरीरके द्वारा होनेवाला उद्यम, परिश्रम, मेहनत, मशक्कत। ९ क्लान्ति, थकावट। १० दौड़धूप, परेशानी। ११ स्वेद, पसीना। १२ व्यायाम, कसरत। १३ साहित्यमें संचारी भावोंके अन्तर्गत एक भाव, कोई कार्य करते करते संतुष्ट और शिथिल हो जाना।

श्रमकण (सं० पु०) स्वेद बिन्दु, पसीनेकी बूंदें जो परिश्रम करने पर शरीरसे निकलती हैं।

श्रमकर (सं० पु०) करोतीति करः, श्रमस्य करः। श्रम जनक, जिसमें परिश्रम हो।

श्रमघ्न (सं० त्रि०) श्रमं हन्ति हन-टक्। श्रमनाशक, जिससे श्रम दूर हो।

श्रमच्छिद् (सं० त्रि०) श्रमं छिनत्ति छिद-क्विप्। श्रमनाशक, श्रम दूर करनेवाला।

श्रमजल (सं० क्ली०) श्रमस्य जलं। स्वेद, पसीना।

श्रमजित (सं० त्रि०) जो मनमाना परिश्रम करने पर भी न थके, श्रमको जीत लेनेवाला।

श्रमजीविन् (सं० त्रि०) १ शारीरिक परिश्रम करके जीविका निर्वाह करनेवाला, मेहनत करके पेट पालनेवाला। (पु०) २ मजदूर, कुली।

श्रमण (सं० पु०) श्राम्यति तपस्यतीति श्रम-ल्यु। १ बौद्ध यतिविशेष। बौद्ध संन्यासी तपस्या करते हैं, इसलिये इन्हें श्रमण कहते हैं। श्रम धातुका अर्थ तपस्या है। २ साधारण यति। ३ नीच कर्मजीवी, वह जो नीच कर्म करके जीविका निर्वाह करता हो। ४ श्रमजीवी, मजदूर। ५ नीच, घृणित, अपकृष्ट।

श्रमणक (सं० पु०) श्रमण स्वार्थे कन्। श्रमण देखो।

श्रमणा (सं० स्त्री०) श्रमण-टाप्। १ सुदर्शना नामक ओषधि। २ मुण्डिरी, घुंडी। ३ मांसी, जटामांसी। ४ शबर जातिकी एक स्त्रीका नाम। ५ संन्यासिनी।

श्रमणाचार्य—एक भारतीय राजदूत। रोमसम्राट् अग स्टसकी सभामें ये ईसाजन्मके पू.ले २६ २१ १०के मध्य पहुंचे। स्त्राबो ने लिखा है, कि निकोलस दामासेनस को अन्तिओक-एपिडाफने नगरमें एक भारतीय दूतसे भेंट हुई। यह व्यक्ति Pandion या Poros नामक राजासे ग्रीकभाषामें लिखित एक पत्र ले कर सम्राट अगस्टसके पास जा रहा था। ग्रीकग्रन्थमें उसका नाम Zarmanochegas (श्रमणाचार्य) और धाम Barygaza (भरोच) लिखा है। होरेस, पलोरस और स्युटो नियस तथा हिरोनिमासने Conon chronicor नामक ग्रन्थमें इसका उल्लेख किया गया है। तारागोणवासी Orosius का कहना है, कि २७ खृष्टपूर्वाब्द अगस्टस सीजरके साथ एक भारतीय राजदूतकी स्पेनराज्यमें भेंट हुई थी। रोम और ग्रीसके साथ भारतीय वाणिज्य वृद्धि ही इसका उद्देश्य था।

श्रमनुद (स० त्रि०) श्रम नुदति नुद क्विप्। श्रमापहारक, श्रमनाशक।

श्रमबिन्दु (स० पु०) श्रमकण, पसीनेकी बूंद जो परिश्रम करने पर शरीरसे निकलती है।

श्रमभञ्जिनी (स० स्त्री०) नागदवनी लता जो थकावट दूर करनेवाली मानी जाती है।

श्रमयु (स० पु०) श्रम कर्त्तृक वशीभूत, युक्त, श्रान्त; परिश्रमयुक्त।

श्रमवत् (स० त्रि०) श्रमो विद्यतेऽस्य श्रम मतुप् मस्य व। श्रमयुक्त, श्रमविशिष्ट।

श्रमवारि (स० क्ली०) श्रमज व वारि जलं। स्वेदजल, परिश्रमके कारण शरीरसे निकलनेवाला पसीना।

श्रमविनयन (स० क्ली०) श्रमस्य विनयन। १ श्रमा पनोदन। (त्रि०) २ श्रमापनोदनकारक।

श्रमविनोद (स० पु०) श्रमेण विनोदः। वह सुख जो परिश्रमसे हो।

श्रमविभाग (स० पु०) श्रमस्य विभाग। किसी कार्य के भिन्न भिन्न अङ्गोंके सम्पादनके लिये अलग अलग व्यक्तियोंकी नियुक्ति, परिश्रम या कामका विभाग।

श्रमशीकर (स० पु०) श्रमकण, श्रमसे होनेवाला पसीना। (गीतगोविन्द १।२२)

श्रमसहिष्णु (स० त्रि०) परिश्रमी, जो यथेष्ट श्रम कर सकता हो मेहनती।

श्रमसाध्य (स० त्रि०) जिसके सम्पादनमें श्रम करना पड़े जो सहजमें या बिना परिश्रम न हो सके।

श्रमसिद्ध (स० त्रि०) परिश्रम द्वारा निष्पादित।

श्रमसीकर (स० पु०) श्रमविन्दु, पसीना।

श्रमस्थान (स० क्ली०) १ कर्मस्थान, कारखाना। २ वह स्थान जहां सेना कवायद करती है। अंगरेजीमें इसे Drilling place कहते हैं।

श्रमापनयिन् (स० त्रि०) १ क्लेशदायक, क्लान्तिजनक। २ जो क्लम हो।

श्रमाम्बु (स० क्ली०) श्रमजल, श्रमवारि, पसीना।

श्रमार्त्त (स० त्रि०) श्रमकातर, क्लान्त।

श्रमित (स० त्रि०) श्रान्त, जो श्रमसे शिथिल हो गया हो, थका हुआ।

श्रमिन् (स० त्रि०) श्रम इन् वा श्राम्यति इति श्रम (शमित्यष्टाभ्यो घिनुण्। पा ३।२।१४१) इति घिनुण्। १ श्रमविशिष्ट, परिश्रमी। २ श्रमजीवी।

श्रय (स० पु०) श्रि (एरच्। पा ३।३।५६) इति अच्। आश्रय।

श्रयण (स० क्ली०) श्रि-ल्युट्। आश्रय। पर्याय—श्राय।

श्रव (स० पु०) श्रूयतेऽनेनेति श्रु (ऋदोरप्। पा ३।३।५७) इति अप्। १ श्रवणेन्द्रिय, कान। श्रु भावे अप्। २ श्रवण, सुनना। श्रूयते इति कर्मणि अप। ३ शब्द।

श्रवण (स० क्ली०) श्रूयतेऽनेनेति श्रु करणे ल्युट्। कर्ण कान। सुखबोधमें लिखा है, कि गर्भ स्थित बालकके छ महीनेमें दोनों कानके छेद निकलते हैं। 'षण्मासाभ्यन्तर श्रवणपार्श्वच्छिद्र भवति" (सुखबोध) २ श्रुति, श्रवणेन्द्रिय ज्ञान। श्रवणेन्द्रिय द्वारा जो ज्ञान होता है, उसे श्रवण कहते हैं।

नीतिशास्त्रोक्त धीगुणमेंसे एक। शुश्रूषा, श्रवण और ग्रहण आदि धीगुणवर्ग वाच्य हैं।

३ यथोक्त विधानानुसार शास्त्रोक्त वाक्य श्रवण मनन और निदिध्यासनादि मुक्ति प्राप्तिका कारण। श्रुति में लिखा है, कि "आत्मा वा अरे द्रष्टव्य श्रोतव्य मन्तव्यः निदिध्यासितव्यश्च।"

हे आत्रेयि! आत्मा श्रवण, मनन और निदिध्यासन करो। शास्त्रवाक्य केवल सुननेसे ही जो श्रवण किया जाता है सो नहीं, शास्त्र वाक्य सुन कर तदनुसार कार्य करनेका नाम ही श्रवण है। पहले श्रवण करना होता है अर्थात् शास्त्रमें जो कुछ कहा गया है, उसे सुनो। उस वाक्यका श्रवण कर उसके तात्पर्यका अवधारण तथा उसके अनुसार कार्य करने को श्रवण कहते हैं। केवल शास्त्र सुननेसे ही वह श्रवणपदवाच्य नहीं होगा। इस प्रकार श्रवणसिद्ध होनेके बाद मनन और निदिध्यासन करना।

वेदान्तसारमें लिखा है, कि षड्विध लिङ्ग द्वारा अशेष वेदान्तकी अद्वितीय वस्तुमें तात्पर्यावधारणका नाम श्रवण है।

(पु० क्लो०) श्रवणा नक्षत्र।

श्रवणक (सं० पु०) श्रवण स्वार्थे कन्। श्रवण देखो।

श्रवणगोचर (सं० पु०) श्रवणयोर्गोचरः। कर्णगोचर, श्रवण।

श्रवणदत्त (सं० पु०) कौहलगोत्रीय एक वैदिक आचार्यका नाम।

श्रवणद्वादशी (सं० स्त्री०) श्रवणायुक्ता द्वादशी, श्रवणानक्षत्रयुक्त भाद्रशुक्लाद्वादशी। यह तिथि अत्यन्त पुण्यदायिनी है। इस तिथिमें उपवास करके विष्णुपूजा करनेसे अक्षय फल प्राप्त होता है। इस तिथिका उपवास अत्यन्त फलजनक है। इस दिन बुधवार पड़नेसे महाफलजनक होता है। इस दिन स्नानदान भी शुभ है।

एकादशी या द्वादशी तिथिमें श्रवणानक्षत्र होनेसे उसको श्रवणद्वादशी कहते हैं। इस तिथिका दूसरा नाम विजया है। इस दिन विष्णुपूजा करनेसे अक्षयफल प्राप्त होता है। पूर्व दिन एक बार भोजन करके द्वादशीके दिन उपवास करे। इस द्वादशी तिथिमें काँसेके बरतनमें भोजन, माष, मधु, लोभ, मिथ्याभाषण, व्यायाम, व्यवाय, दिवास्वप्न, अञ्जन, शिलापिष्ट द्रव्य और मसूर ये सब द्रव्य वर्जनीय हैं।

तिथितत्त्वधृत भविष्योत्तर वचनमें लिखा है, कि श्रवणोपेता द्वादशी तिथि सर्वपाप-विनाशिनी है। इस तिथिमें यदि बुधवार पड़े, तो शतगुण फललाभ होता है। द्वादश द्वादशीमें उपवास करनेसे जो फल होता है, इस द्वादशीमें उपवास करनेसे वही फल प्राप्त होता है।

जहां तिथि और नक्षत्रयोगमें उपवास करने कहा है, वहां जब तक एकका क्षय न हो, तब तक उपवास करना होगा। एकादशीके दिन यदि श्रवणानक्षत्र हो, तो उस दिन उपवास करके द्वादशीके दिन पारण करे। किन्तु जहां एकादशीके उपवास दिनमें श्रवणानक्षत्र न हो और द्वादशीके दिन हो, वहां दोनों ही दिन उपवास करना होगा। शास्त्रमें लिखा है, कि एक व्रत आरम्भ करके जब तक वह समाप्त न हो, तब तक अन्य व्रत नहीं कर सकते। अतएव एकादशीके उपवासरूप व्रत करके उस व्रतके अन्तमें पारण शेष नहीं होनेसे श्रवणद्वादशीका उपवास किस प्रकार हो सकता? उत्तरमें यही कहना है, कि दोनों उपवास ही हरिके उद्देशसे किये जाते हैं, इस कारण एकको समाप्त किये बिना दूसरा व्रत करनेमें कोई दोष न होगा।

यदि कोई दोनों दिन उपवास करनेमें असमर्थ हो, तो एकादशीके दिन भोजन करके श्रवणद्वादशीका उपवास करे। उस उपवास द्वारा ही पूर्व एकादशीका उपवासजनित पुण्य होगा। किन्तु द्वादशीका कदापि परित्याग न करे।

श्रवणपथ (सं० पु०) श्रवणस्य पन्था, यत्र् समासान्तः। श्रवणका पथ, श्रवणेन्द्रिय, कान।

श्रवणपालि (सं० स्त्री०) कर्णपालि।

श्रवणभट्ट—निम्बार्क सम्प्रदायके एक गुरु। ये पद्माकर भट्टके शिष्य और भूरिभट्टके गुरु थे।

श्रवणभृत (सं० त्रि०) श्रवण द्वारा धृत। अनुक्षण सुन सुन कर चित्तमें जो धारण किया जाता है, उसे श्रवणभृत कहते हैं।

श्रवणमूल (सं० क्लो०) कर्णमूल।

श्रवणरुज् (सं० क्लो०) श्रवणपीड़ा, कर्णरोग।

श्रवणविद्या (सं० स्त्री०) वह विद्या जो श्रवणेन्द्रियके सम्पर्कसे मानसिक तृप्ति प्रदान करती है। जैसे,—संगीतशास्त्र।

श्रवणविभ्रम (स० पु०) श्रवणस्य विभ्रम । अन्यथा श्रवण, सुननेमें भूल ।

श्रवणविषय (स० पु०) श्रवणयोर्विषयः । श्रवणगोचर ।

श्रवण बेलगोल (श्रमण बलगोला अर्थात् श्रमणोंकी दीर्घिका)—महिसुरराज्यके हस्सन जिलान्तर्गत एक प्राचीन बड़ा ग्राम । यह अक्षा० १२ ५० १०´ उ० तथा देशा० ७६ ३१´३१´´ पू०के मध्य चन्द्रबेट्टा और इन्द्रबेट्टा नामक दो बड़े शैलके बीचमें अवस्थित है। जैन उपाख्यानसे जाना जाता है, कि जिनधर्म प्रवर्त्तकके छ प्रधान शिष्य थे उनमेंसे भद्रबाहु एक था। भद्रबाहु जिनधर्मका प्रचार करनेके लिये स्वशिष्य सम्प्रदायके साथ उज्जयिनीसे दक्षिण भारत गया ; यहां उनकी मृत्यु हुई। प्रवाद है, कि मौर्यसम्राट चन्द्रगुप्तने संसारसे वीतराग हो राज्य सम्पद् पर लात मारी और पीछे संन्यासधर्मका अवलम्बन किया। इस समय वे भद्रबाहूकी भलाईके लिये जिनगुरुको दाक्षिणात्य ले गये। यह प्राचीन घटना खृष्टपूर्व ४थी सदीमें यहांके पर्वतगात्रमें उत्कीर्ण है। चन्द्रगुप्तके पुत्र बौद्ध सम्राट् अशोक भी यहां आये थे।

चन्द्रबेट्टा पर्वत समुद्रपृष्ठसे ३३२५ फुट ऊंचा है। इसके सर्वोच्च शिखर पर गोमटेश्वरकी ६० फुट ऊंची एक प्रतिमूर्त्ति स्थापित है। मूर्त्तिके पादपृष्ठ पर जो लिपि है, उससे जाना जाता है, कि चामुण्डराय नामक एक राजाने ९० ई०सन्के पहले उस मूर्त्तिकी प्रतिष्ठा की मूर्त्तिके चारों ओर बड़ी बड़ी अट्टालिकाएं हैं जो चहारदिवारीसे घिरी हैं। चहारदिवारी गङ्गाराय नामक एक व्यक्तिकी कीर्त्ति है। गङ्गाराय होयसाल बल्लाल वंशके राज्यकालमें उसे बनवा गये हैं।

उक्त मूर्त्ति उलङ्ग है और उत्तरकी ओर मुंह किये ध्यानमग्न अवस्थामें अवस्थित है। शिरके बाल घुंघुराले हैं और दोनों कान बड़े बड़े हैं। दोनों हाथ घुटने तक लटक रहे हैं, और पैर पद्मके ऊपर स्थापित हैं। यह मूर्त्ति ध्यानमग्न बुद्धकी प्रतिमूर्त्ति सी जान पड़ती है। प्रत्नतत्त्वविद् मूर्त्तिकी गठनप्रणाली देख कर अनुमान करते हैं कि पर्वतका शिखरदेश काट छांट कर यह मूर्त्ति बाहर निकाली गई है। उसका शिल्पकार्य इतना मनमुग्धकर है, कि हठात् देखने ही मालूम होता है कि थोड़े ही दिन हुए किसी निपुणशिल्पीने यह मूर्त्ति काट रखी है। उस मूर्त्तिके चारों ओर छोटी बड़ी अट्टालिका और मन्दिरके घेरे पर इसी तरहकी ७२ मूर्त्तियां हैं।

दूसरी ओर इन्द्रबेट्टा शैलके नीचे प्राचीन अक्षरमें लिखित कुछ शिलालिपि देखी जाती हैं। वे सब अक्षर प्रायः १ फुट लम्बे हैं। लिपि देखनेसे मालूम होता है, कि एक समय जैनोंके धर्म और शास्त्रचर्चा करनेका प्रधान केन्द्र था। यहां आज भी जैनोंके गुरु रहते हैं। टीपू सुलतानने जैन गुरुको अपने अधिकार और देवमन्दिरके सम्पत्तिसे वञ्चित किया था।

इस स्थानका प्राचीन इतिहास कुछ भी मालूम नहीं। ८६० शकमें उत्कीर्ण एक शिलालिपिसे जाना जाता है, कि राष्ट्रकूटराज कोट्टिग और २य कक्कके अधीन मारसिंह नामक सामन्त द्वारा यह स्थान शासित होता था। यहां जो शिलालिपि मिली है उसमें लिखा है, कि राजा ३य कृष्णने उक्त मारसिंहको गुजरात जीतनेके लिये भेजा था। मारसिंहने नलम्बवाड़ीके पल्लवोंको परास्त कर मान्यखेट, गोनूर और उच्छङ्गीर पर कब्जा कर लिया था।

१०५० शकमें (११२८ ई०की १०वीं मार्च रविवार) उत्कीर्ण एक समाधिलिपिमें लिखा है कि जैनाचार्य मल्लिषेन मलधारिदेवने यहां अनशनव्रतका अवलम्बन कर देहरक्षा की थी। ११५९ ई०में उत्कीर्ण यहांकी एक दूसरी शिलालिपिसे जाना जाता है, कि राजा १म नरसिंह त्रिभुवनमल्ल या भुजबल वीर होयसालवंशीय राजा विष्णुवर्द्धनके पुत्र थे। एउलदेवीसे इनका विवाह हुआ था। इनके अधीन पश्चिम गङ्गावंशीय राचमल्ल या हुलमय यहांके शासनकर्त्ता हो कर जैनधर्मके प्रचारमें नियुक्त हुए। १२२४ ई०में उत्कीर्ण इस स्थानकी एक दूसरी शिलालिपिसे ज्ञात होता है, कि होयसाल वंशीय यादवकुलालङ्कार २य नरसिंहने देवगिरिके यादवराजसे हृतराज्य हो द्वारसमुद्रमें राजधानी बसाई थी। उनके राज्यकालमें महाप्रधान पोलाल्वने हरिहर मन्दिरकी स्थापना की। देवमूर्त्तिके नामानुसार यह स्थान हरिहर कहलाया।

अभी यहां पूर्वसमृद्धिका कोई भी चिह्न नहीं है।

स्थानीय अधिवासियोंके यत्नसे यहां पीतलके बरतन बनानेका कारबार आज भी चलता है। वे सब बरतन भारतके नाना स्थानोंमें विक्रयार्थ भेजे जाते हैं। ऊपर कहे गये मन्दिरादि आज भी भग्नावस्थामें पड़े हैं। जैनधर्मका क्षीण स्मृतिनिदर्शन यहां विद्यमान है।

श्रवणव्याधि (सं० पु०) कर्णपीड़ा, कानकी एक बीमारी।

श्रवणशीर्षिका (सं० स्त्री०) श्रावणी वृक्ष, गोरखमुंडी।

श्रवणहारिन् (सं० त्रि०) श्रवणं हरति हृ-णिनि। कर्णमधुर, जो कानोंको भला लगे, सुननेमें अच्छा ज्ञान पड़नेवाला।

श्रवणा (सं० पु० स्त्री०) १ नक्षत्रविशेष, अश्विनी आदि २७ नक्षत्रोंमेंसे बाईसवां नक्षत्र। इस नक्षत्रकी आकृति शरकी तरह है। इसमें तीन तारे हैं, अधिष्ठात्री देवता हरि हैं।

इस नक्षत्रमें यदि किसी बालकका जन्म हो, तो वह शास्त्रानुरागी, बहुमित्र और सुपुत्रयुक्त, शत्रुविजेता और पुराणादि सुननेमें अतिशय अनुरागी होता है।

ज्योतिषमें लिखा है, कि श्रवणादि ७ नक्षत्रोंमें गृहारम्भ या गृहोपकरण तृणकाष्ठादिका संग्रह नहीं करना चाहिये अर्थात् गृहनिर्माण सम्बन्धीय कोई भी कार्य करना मना है। करनेसे अग्निपीड़ा, भय, शोक आदि होते हैं। इस नक्षत्रमें दक्षिण दिशाकी यात्रा भी निषिद्ध है।

श्रवणा नक्षत्रमें जन्म होनेसे मकर राशि होती है। अष्टोत्तरीके मतसे श्रवणा नक्षत्रमें वृहस्पतिकी दशा पड़ती है, किन्तु विंशोत्तरीके मतसे इस नक्षत्रमें जन्म होने पर चन्द्रकी दशा पड़ती है। (स्त्री०) २ मुण्डरिका वृक्ष। ३ प्रपौण्डरीक नामक गन्धद्रव्य, पुंडरिया।

श्रवणहुया (सं० स्त्री०) १ निर्विषी नामक तृण। २ जल चौलाई।

श्रवणिका (सं० स्त्री०) श्रवणा देखो।

श्रवणी (सं० स्त्री०) १ पुंडेरी। २ महामुण्डी, गोरखमुंडी।

श्रवणीय (सं० त्रि०) श्रु-अनीयर्। श्रवणयोग्य, सुनने लायक।

श्रवन् (हि० पु०) श्रवण, कान।

श्रवना (हिं० क्रि०) गिराना, बहाना।

श्रवस् (सं० क्ली०) श्रवतेऽनेनेति श्रु 'सर्वधातुभ्योऽसुन्' इति असुन्। १ कर्ण, कान। (अमर) २ अन्न। (निघण्टु २।७) ३ धन। (निघण्टु २।१०) ४ यशः। ५ शब्द। ६ आकर्णन, श्रवण। ७ क्षरण, च्युति।

श्रवस्काम (सं० त्रि०) १ अन्नाभिलाषी। (ऋक् ८।२।३८) २ धनकामी, सुयशकामी।

श्रवस्य (सं० क्ली०) श्रवस्-यत्। श्रवणीय।

श्रवस्या (सं० स्त्री०) यशः या अन्नकी इच्छा।

श्रवस्यु (सं० त्रि०) अन्नेच्छाकारी, अन्नेच्छुक।

श्रवाय्य (सं० पु०) श्रु श्रवणे (श्रुदक्षिस्पृहिगृहिभ्य आय्यः। उण् ३।९६) इति आय्य। १ बलियोग्य पशु, यज्ञीय पशु। (त्रि०) २ श्रवणीय।

श्रविष्ठ (सं० त्रि०) १ श्रविष्ठा नक्षत्रयुक्त। (पु०) २ एक ऋषिका नाम।

श्रविष्ठक (सं० पु०) एक ऋषिका नाम। श्रौविष्ठायन देखो।

श्रविष्ठा (सं० स्त्री०) श्रवणमिति श्रवः सोऽस्या अस्तीति मतुप्, अतिशयेन श्रववती इति इष्ठन्, विन्मतुपो लुगिति मतुपो लुक्। १ धनिष्ठा नक्षत्र। २ चित्रककी कन्या। (हरिवंश) ३ राजाधिदेवकी कन्या। (हरिवंश) ४ पैप्पलाद और कौशिककी माता। इनका दूसरा नाम प्रविष्ठा भी था।

श्रविष्ठाज (सं० पु०) श्रविष्ठायां जायते इति जन ड। १ बुधग्रह। (त्रिका०) (त्रि०) २ श्रविष्ठा अर्थात् धनिष्ठा नक्षत्रमें जात।

श्रविष्ठाभू (सं० पु०) बुधग्रह।

श्रविष्ठारमण (सं० पु०) श्रविष्ठा नक्षत्रके अधिपति, चन्द्रमा।

श्रविष्ठीय (सं० त्रि०) श्रविष्ठा सम्बन्धी।

श्रवोजित् (सं० त्रि०) श्रवस् जि-क्विप्। श्रवका जेता।

श्रव्य (सं० त्रि०) श्रु-यत्। श्रोतव्य, जो सुना जा सके, सुनने लायक।

"यत श्रुत्वा परमेशानि श्रव्यमन्यन्न रोचते।" (राधातन्त्र ६।३)

श्राण (सं० त्रि०) श्रा-क्त। पक्व; घी, दूध या जलमें पका हुआ; सिद्ध।

श्राणा (स० स्त्री०) श्रायते स्मेति श्रा क्त। यवागू।

श्राणिक (स० त्रि०) श्राणा नियुक्त दीयतेऽस्मै इति श्राणा (श्राणा मांसौदनाट्टिठन्। पा ४।४।६७) इति टिठन्। श्राणा अर्थात् यवागू जिसे दिया जाय।

श्राद्ध (सं० क्ली०) श्रद्धा प्रयोजनमस्य श्रद्धा अण् (चूडादिभ्य उपसंख्यानं। ५।१।११०) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या अण्। शास्त्रविधानोक्त पितृकर्म, शास्त्रके विधानानुसार पितरोंके उद्देशसे जो कर्म किया जाता है, उसको श्राद्ध कहते हैं। श्रद्धापूर्वक पितरोंके उद्देशसे अन्नादि दानका नाम ही श्राद्ध है।

"संस्कृतव्यञ्जनाद्यञ्च पयोदधिघृतान्वितम्।
श्रद्धया दीयते यस्मात् श्राद्ध तेन निगद्यते॥"

इति पुलस्त्यवचनात् श्रद्धया अन्नादेर्दानं श्राद्धं इति वैदिकप्रयोगाधीनयौगिक (श्राद्धतत्त्व) संस्कृत अन्न व्यञ्जनादिको दुग्ध, दधि और घृत युक्त करके पितरोंके उद्देशसे श्रद्धापूर्वक दिया जाता है, इस कारण यह दान रूप कर्म श्राद्ध कहलाता है।

नित्य, नैमित्तिक, काम्य, वृद्धि श्राद्ध, सपिण्डन श्राद्ध, पार्वण गोष्ठीश्राद्ध शुद्ध्यर्थ, कर्माङ्ग दैविक श्राद्ध, यात्रार्थ और पुष्ट्यर्थ भेदसे श्राद्ध बारह प्रकारका है।

भविष्यपुराणमें लिखा है,—प्रति दिन जो श्राद्ध किया जाता है, उसको नित्य श्राद्ध कहते हैं। यह श्राद्ध वैश्वदेवविहीन होता है। यह श्राद्ध करनेमें अशक्त होने पर केवल उदक द्वारा करना आवश्यक है। एकोद्दिष्ट श्राद्ध अर्थात् केवल एक व्यक्तिके उद्देशसे जो श्राद्ध किया जाता है उसका नाम नैमित्तिक श्राद्ध है। अभिप्रेतार्थ सिद्धिकी कामना करके जो श्राद्ध किया जाता है, उसका नाम काम्य; वृद्धि उपस्थित होने पर पार्वण विधानानुसार जो श्राद्ध किया जाता है, उसका नाम वृद्धिश्राद्ध; सपिण्डीकरण श्राद्ध, अर्घ्य और पिण्डका 'ये समाना' इत्यादि मन्त्रपाठ कर प्रेतके साथ पिण्ड और अर्घ्यामिश्रणरूप श्राद्धका नाम सपिण्डीकरण श्राद्ध; अमावस्या या किसी पर्वके दिन अनुष्ठित श्राद्धका नाम पार्वणश्राद्ध पितरोंकी तृप्तिके लिये गोष्ठीमें जो श्राद्ध होता है, उसका नाम गोष्ठीश्राद्ध है। यह श्राद्ध शुद्धिके लिये किया जाता है। गर्भाधान, सीमन्तोन्नयन आदि संस्कार कार्यो में जो श्राद्ध किया जाता है, उसे कर्माङ्ग श्राद्ध; देवताओंके उद्देशसे जो श्राद्ध होता है, उसे दैविक श्राद्ध, तीर्थादि देशान्तर जाते समय जो श्राद्ध करना होता है उसे यात्रार्थ श्राद्ध तथा शरीर और अर्थोपचयके लिये जो श्राद्ध होता है, उसे पुष्ट्यर्थ श्राद्ध कहते हैं।

श्राद्धविवेकधृत वृहस्पतिवचनके अनुसार श्राद्ध पांच प्रकारका है, नित्य, नैमित्तिक, काम्य, वृद्धिश्राद्ध और पार्वण श्राद्ध। प्रति दिनके श्राद्धका नाम नित्य श्राद्ध, एकोद्दिष्ट काम्य, वृद्धिश्राद्ध नैमित्तिक तथा पर्व निमित्त पार्वण श्राद्ध यही ५ प्रकारका श्राद्ध है। फिर दूसरे शास्त्रके मतसे नित्य, नैमित्तिक तथा काम्य भेदसे तीन प्रकारका है। सभी प्रकारके श्राद्धको नित्य और काम्यके भेदसे दो भागोंमें विभक्त किया जाता है। पार्वण एकोद्दिष्ट आदि अवश्य कर्त्तव्य है अर्थात् जिन सब श्राद्धोंका अनुष्ठान नहीं करनेसे प्रत्यवायभागी होना पड़ता है, उन्हें नित्य और अनावश्यक अर्थात् जिसके नहीं करनेसे कोई दोष नहीं, उन्हें काम्य श्राद्ध कहते हैं।

वराहपुराणमें श्राद्धोत्पत्तिका विषय इस प्रकार लिखा है—धरणीने वराहदेवसे पूछा था, कि पितृयज्ञमें क्या गुण है वे क्यों पूजित होते हैं तथा पहले किस व्यक्तिने इसका अनुष्ठान किया? उत्तरमें वराहदेवने कहा था, कि मनुवंशसम्भूत आत्रेय नामक एक मुनि थे, निमि उनके पुत्रका नाम था। इस निमिके धर्मपरायण एक पुत्र था। वह पुत्र हजार वर्ष तपस्या करके पञ्चत्वको प्राप्त हुआ। निमि पुत्रशोकसे बड़े कातर हो गये। पीछे उन्होंने उस पुत्रके उद्देशमें अनेक प्रकारके फल मूल आदि उत्तम द्रव्य द्वारा श्राद्धका अनुष्ठान किया। इसी समय नारदने वहां आ कर निमिसे कहा, 'तुमने जिस कार्यका अनुष्ठान किया है उसका नाम पितृयज्ञ है। पहले स्वयम्भुने यह निर्देश किया है। उसके पहले और कोई भी इसे नहीं जानता था और न किसीने इसका अनुष्ठान ही किया। वराहपुराणके श्राद्धोत्पत्तिनामाध्यायमें इसका विस्तृत विवरण लिखा है, विस्तार हो जानेके भयसे यहां उसका उल्लेख नहीं किया गया।

मृत्युके बाद पितृगणके प्रेतभावापन्न होने पर

श्राद्ध कर्म द्वारा उनका प्रेतत्व दूर होता है। इस कारण श्राद्ध करना अवश्य कर्त्तव्य है। मृत्युके बाद प्रेतके उद्देशसे अधिकारीके अनुसार श्राद्ध करना होता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चारों वर्ण अशौचान्तके दिन प्रेतत्व दूर करनेके लिये आद्य श्राद्धका अनुष्ठान करते हैं। यह श्राद्ध एकके उद्देशसे होता है, इस कारण इसको आद्यैकोद्दिष्ट श्राद्ध कहते हैं। ब्राह्मण ११ दिनमें, क्षत्रिय १३ दिनमें, वैश्य १६ दिनमें और शूद्र ३१ दिनमें यह आद्यैकोद्दिष्ट श्राद्ध करें। शास्त्रमें लिखा है, कि षोडश श्राद्ध ही प्रेतविमुक्तिका कारण है अर्थात् प्रेतके उद्देशसे १६ श्राद्ध करना होता है। १६ श्राद्ध ये हैं,—आद्यैकोद्दिष्ट, द्वादश मासिक श्राद्ध, दो षाण्मासिक श्राद्ध तथा सपिण्डीकरण श्राद्ध, इन सोलह श्राद्ध द्वारा ही पितृगण प्रेतलोकसे विमुक्ति लाभ करते हैं। अतएव यह श्राद्ध अवश्य कर्त्तव्य है। पुत्र इन सब श्राद्धादि द्वारा पितृऋणसे मुक्त होते हैं। अधिकारी क्रमसे यह श्राद्ध करना होता है। शास्त्रमें अधिकारी क्रम इस प्रकार लिखा है। यथा—

प्रेतश्राद्धाधिकारिक्रम—यदि किसी व्यक्तिके एकसे अधिक पुत्र रहें, तो ज्येष्ठ पुत्र ही श्राद्धाधिकारी होगा। ज्येष्ठपुत्रके श्राद्ध करने पर भी बाकी पुत्रोंको दानादिकार्य करना अवश्य कर्त्तव्य है। पहले ज्येष्ठ पुत्र पीछे कनिष्ठ पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र, अपुत्रपत्नी, कर्मासमर्थपुत्रयुक्त पत्नी, कन्या, वाग्दत्ता कन्या, दत्तकन्या, दौहित्र, कनिष्ठ सहोदर, ज्येष्ठ सहोदर, कनिष्ठ वैमात्रेय भ्राता, ज्येष्ठ वैमात्रेय भ्राता, कनिष्ठ सहोदर-पुत्र, ज्येष्ठ सहोदर-पुत्र, कनिष्ठ वैमात्रेयपुत्र, ज्येष्ठ वैमात्रेयपुत्र, पितामाता, पुत्रवधू, पौत्री, दत्तापौत्री, पौत्रवधू, प्रपौत्री, पितामह, पितामही, पितृव्यादि सपिण्डज्ञाति, समानोदक ज्ञाति, सगोत्र, मातामह, मातुल, भागिनेय, मातृपक्ष, तत्सपिण्ड, तत्समानोदक, असवर्णा भार्या, अपरिणीता स्त्री, श्वशुर, जामाता, पितामहीभ्राता, शिष्य, ऋत्विक्, आचार्य, मित्र, पितृमित्र, एकग्रामवासी, गृहीतवेतन और सजातीयगण, ये ४८ आद्यश्राद्धाधिकारी हैं। इन सब अधिकारियोंमेंसे एकके अभावमें दूसरेको स्थिर करना होगा अर्थात् अनेक पुत्र रहने पर ज्येष्ठ पुत्र ही आद्यश्राद्ध करेगा, ज्येष्ठ पुत्रके अभावमें कनिष्ठ पुत्र, इसी प्रकार पुत्र नहीं रहने पर पौत्र, पौत्र नहीं रहने पर प्रपौत्र श्राद्ध करेगा। इस प्रकार एकके अभावमें दूसरेको स्थिर करना होता है, यह अधिकार पुरुष विषयमें जानना होगा।

प्रेतस्त्रियोंका श्राद्धाधिकारिक्रम—ज्येष्ठ पुत्र, उसके अभावमें कनिष्ठ पुत्र, उसके बाद पौत्र, प्रपौत्र, कन्या, वाग्दत्ता कन्या, दौहित्र, सपत्नीपुत्र, पति, स्नुषा, सपिण्डज्ञाति, सगोत्र, पिता, भ्राता, भगिनीपुत्र, भर्त्तृभागिनेय, भ्रातृपुत्र, जामाता, भर्त्तृमातुल, भर्त्तृशिष्य। पितृसमानोदक, पितृवंशीय, मातृसमानोदक और मातृवंशीय तथा श्रेष्ठ ब्राह्मण, ये सभी स्त्रियोंके प्रेतश्राद्धाधिकारी हैं। पूर्व पूर्ववर्त्तीके अभावमें परपरवर्त्ती अधिकारी हो कर श्राद्ध करे।

जो आद्यैकोद्दिष्ट श्राद्ध करते हैं, षोडश श्राद्ध अर्थात् मासिक सपिण्डीकरण आदि १६ श्राद्ध भी उन्हें करने होंगे। किन्तु जिन सब स्त्रियोंके पति और पुत्र नहीं है, उसका सपिण्डीकरण श्राद्ध नहीं होता, सिर्फ मासिकश्राद्ध होता है। आद्य और मासिक श्राद्ध द्वारा उनका प्रेतत्व दूर होता है। (शुद्धितत्त्व)

यदि कोई आद्यैकोद्दिष्ट श्राद्ध करके मृत्युमुखमें फँस जाय, तो वहां परवर्त्ती अधिकारी मासिक और सपिण्डीकरण श्राद्ध करेगा। आद्यश्राद्ध और मासिक श्राद्धमेंसे बहुत कुछ करके भी यदि मृत्यु हो जाय, तो परवर्त्ती अधिकारी उसका अनुष्ठान करेगा। किन्तु जीवित रहने पर प्रेतश्राद्धाधिकारीको ही षोडश श्राद्ध करना होगा। दूसरे किसीको भी यह श्राद्ध करनेका अधिकार नहीं है।

अशौचान्तके दूसरे दिन आद्यैकोद्दिष्ट श्राद्ध करना होता है। जिसके जितने दिन अशौच रहता है, इस अशौचके अन्तिम दिनमें पूरक पिण्ड दे कर अशौचान्त दूसरे दिन श्राद्ध करे। यदि किसीका ३ दिन अशौच रहे, तो ४ दिनका श्राद्ध होगा। अशौचसङ्कर द्वारा यदि अशौचकी ह्रासवृद्धि हो, तो अशौचापगम-द्वितीय दिन श्राद्ध करना होगा। इस आद्य श्राद्धका काल अपने अपने वर्णानुयायी दिनकी गणना करके

निर्णय करना होता है, किन्तु श्राद्ध करनेके समय चान्द्रमासका उल्लेख होगा। सभी श्राद्धोंमें चान्द्र मासका उल्लेख करना होता है। किन्तु विवाहादि संस्कारकार्य और नान्दीमुखश्राद्धमें सौरमासका उल्लेख ही शास्त्रमें विहित हुआ है।

आद्यश्राद्धके बाद एक वर्ष तक प्रत्येक मासमें मृत्युतिथिको एक एक करके मासिक श्राद्ध करना होता है। षष्ठ और द्वादश मासिककी पूर्वतिथिमें प्रथम और द्वितीय षाण्मासिक श्राद्ध विधेय है। इस प्रकार १४ मासिक श्राद्ध करके सपिण्डीकरण श्राद्ध करे। क्योंकि १६ श्राद्ध नहीं करनेसे मृतव्यक्ति प्रेतत्वसे मुक्तिलाभ नहीं कर सकता। मृतव्यक्तिकी मृत्युके दिनसे एक वर्षके मध्य यदि कोई मास मलमास रहे, तो उसके लिए एक मासिक श्राद्ध करना होगा। अतएव जहां कुल १७ श्राद्ध तथा द्वितीय षाण्मासिक श्राद्ध द्वादश मासिककी पूर्वतिथिमें न हो कर त्रयोदशमासिक की पूर्वतिथिमें होगा। यदि मृतव्यक्तिकी मृत्युके भीतर अन्तिम मास मलमास हो तो फिर मासिक श्राद्धकी वृद्धि न होगी।

मासिक श्राद्ध प्रति मास नहीं कर सकनेसे एक मासमें दो दो श्राद्ध करे।

विघ्नपतित श्राद्धकालनिर्णय—षोडश श्राद्ध अथवा विघ्न हेतु सांवत्सरिक श्राद्धका किसी प्रकार समय बीत जाय, तो कृष्ण एकादशी या अमावस्या तिथिमें वह करना होगा। यदि पतित श्राद्ध कृष्ण एकादशी या अमावस्यामें भी न किया जाय, तो वह परवर्त्ती मासिक श्राद्धकालमें करना होता है। यदि यह श्राद्ध जनन या मरणाशौच आदि विघ्न द्वारा पतित हो जाय, तो उस अशौचान्तके दूसरे दिन करे। किन्तु रोगादि विघ्नजनित यदि वह किया जाय, तो परवर्त्ती श्राद्धकालमें अथवा कृष्ण एकादशी या अमावास्यामें यह श्राद्ध करना होगा।

अशौचान्तके दिन यदि मलमास पड़े तो मलमासके बीतने शुद्धमासीय कृष्ण एकादशी या अमावस्याको यह पतित श्राद्ध करना होता है। इस प्रकार मासिक श्राद्धादिका समय बीत जाने पर परवर्त्ती शुद्धमासीय कृष्ण एकादशी या अमावस्याको ही यह करना उचित है। किन्तु अन्तिम मास मलमास होने पर तन्मासीय मासिक सपिण्डीकरण मलमासमें किया जाता है। *मलमासीय मासिक और सपिण्डीकरण तथा सांवत्सरिक* श्राद्ध पतित होने पर भी मलमासीय कृष्ण एकादशी या अमावस्याको यह अवश्य करना होगा।

आद्यैकोद्दिष्ट श्राद्धस्थलमें अशौचान्तके दूसरे दिन यदि मलमास हो, तो मलमासमें भी यह आद्यश्राद्ध किया जायेगा। मलमास होनेके कारण उस श्राद्धका निषेध नहीं होगा।

अविज्ञात मृताह श्राद्धका कालनिर्णय—किसी व्यक्तिकी मृत्युतिथि यदि मालूम न हो केवल मास मालूम हो, तो उस मासकी कृष्ण एकादशी या अमावस्या तिथिमें उसका श्राद्ध किया जा सकता है।

यदि मास न मालूम हो कर केवल तिथि मालूम रहे, तो आषाढ़, भाद्र, अग्रहायण और माघ इन चार महीनोंमेंसे किसी एक महीनेकी उसी तिथिमें श्राद्ध करना होगा।

यदि विदेशगत मृत व्यक्तिका मास दिन आदि मालूम न रहे, तो उसके प्रस्थान मासकी अमावस्यामें श्राद्ध करना होगा।

यदि कोई व्यक्ति निरुद्देश हो और बहुत दिनोंसे उसकी कोई खबर न मिली हो तो प्रस्थान दिनसे बारह वर्षके बाद उसे मृत समझ लेना होगा और प्रस्थान मास मृत्युमास तथा प्रस्थानतिथि मृत्युतिथि स्थिर कर श्राद्धादिका अनुष्ठान करना होगा।

कृष्णा एकादशी या अमावस्या तिथि ही पतित श्राद्ध का समय है। अतएव इन दोनों तिथियोंमें ही सभी प्रकारके पतित श्राद्ध किये जा सकते हैं।

आद्यैकोद्दिष्ट श्राद्ध, मासिक और सपिण्डीकरण श्राद्ध नहीं करने पर उसके उद्देशसे पितृपदका उल्लेख होगा। इन सब श्राद्धोंमें प्रेतपदका उल्लेख होता है। ये सब प्रेत श्राद्ध करनेके बाद उसके उद्देशसे एकोद्दिष्ट या पार्वण श्राद्ध किया जा सकता है।

याज्ञवल्क्य संहितामें श्राद्धकालका विषय इस प्रकार लिखा है अमावस्या, अष्टका, वृद्धि अर्थात् गर्भा

दौहित्र, जामाता, मातृष्वसा और पितृष्वसापुत्र, बन्धु, पुरोहित और शिष्य इन्हें भोजन करावे। निन्दित ब्राह्मणको कदापि श्राद्धमें आमन्त्रण न करे। जो सब ब्राह्मण पतित, क्लीव, नास्तिक वेदाध्ययनशून्य, ब्रह्मघाती, व्याधिग्रस्त, द्यूतक्रीडापरायण, बहु याजनशील, चिकित्सक, प्रतिमापरिचारक, देवल, सोमविक्रयी, वाणिज्यकारी कुनखी, श्यावदन्तक, गुरुका प्रतिकूलाचरणकारी, श्रौत और स्मार्त्त अग्निपरित्यागकारी, कुण्डगोलकी, पशुपालक, परिवेत्ता, भृतकाध्यापक अर्थात् जो वेतन ले कर पढ़ाते हैं इत्यादि निन्दित ब्राह्मणोंका पैत्रकार्यमें परित्याग करे। उक्त ब्राह्मणोंको हव्यकव्य प्रदान करनेसे वह राक्षसादि भोजन करता है, पितरोंका उसमें कुछ भी तृप्ति नहीं होता। जिन सब ब्राह्मणोंको शास्त्रमें प्रतिपादन करते हैं केवल उन्हींको आमन्त्रण करे। पंक्तिदूषक ब्राह्मणको भूल कर भी आमन्त्रण न करे।

श्राद्धकर्म उपस्थित होने पर उसके पूर्व दिन अथवा श्राद्धके दिन कमसे कम तीन पूर्वोक्त गुणसम्पन्न ब्राह्मणोंका यथोचित सम्मानपूर्वक निमन्त्रण करे। जो ब्राह्मण श्राद्धमें निमन्त्रित हुए हैं उन्हें निमन्त्रणके दिनसे श्राद्धशेष पर्यन्त इन्द्रियनिवृत्ति और निष्ठावान् रहना होगा तथा जपादि स्वाध्यायोपासनादि छोड़ वेदाध्ययन न करना होगा। जो श्राद्धकर्त्ता हैं उन्हें भी इसी नियमसे चलना होगा। ब्राह्मणोंके निमन्त्रित होने पर पितृगण उन ब्राह्मणोंके शरीरमें अनुप्रवेश करते हैं। वे जहां जाते हैं, पितृगण भी वहां जाते हैं। उनके परितृप्त होने पर पितृगण भी परितृप्त होते हैं।

दैव और पितृकार्यमें यथाशास्त्र निमन्त्रित हो यदि ब्राह्मण किसी तरह उसका अतिक्रम करे अर्थात् श्राद्ध भोजन न करे अथवा नियमवान् ब्रह्मचर्यादि हो कर न रहे, तो उस पापसे उसको शूकरयोनि प्राप्त होती है। जो ब्राह्मण श्राद्धमें आमन्त्रित हो कर स्त्रीसम्भोगादि करते हैं, श्राद्धकर्त्ताका जो कुछ पाप रहता है, वह उन्हींमें संक्रमित होता है। श्राद्धकर्त्ता और श्राद्धभोक्ता इन दोनोंको ही संयत हो कर विशुद्धभावमें रहना होता है।

श्राद्धकालमें पूर्वोक्त गुणयुक्त ब्राह्मण यदि न मिलते हों, तो उसके प्रतिनिधि स्वरूप कुशमय ब्राह्मण बना कर श्राद्धकार्यका अनुष्ठान करना होता है। वर्त्तमान कालमें वैसे गुणसम्पन्न ब्राह्मण नहीं मिलते, इस कारण श्राद्धकालमें कुशमय ब्राह्मण बना कर उसके आगे श्राद्धकर्मका अनुष्ठान किया जाता है। प्रादेश प्रमाणके ७ या ९ कुश ले कर प्रणवमन्त्रसे अग्रभागको दो बार लपेट कर अग्रभागको ऊपरकी ओर रखनेसे कुशमय ब्राह्मण होता है। इस कुशमय ब्राह्मणके आगे श्राद्ध करनेके बाद वे सब द्रव्य ब्राह्मणको देने होंगे।

श्राद्धदेश—शास्त्रमें लिखा है कि पवित्र स्थानमें रह कर श्राद्धकार्य करना होता है। चण्डीमण्डप आदि देवगृहको गोबरसे अच्छी तरह लीप पोत कर वहां श्राद्ध करना होता है। धूलियुक्त, कृमियुक्त, क्लिन्न सङ्कीर्ण अथवा दुर्गन्धयुक्त स्थानमें श्राद्ध नहीं करना चाहिये। म्लेच्छदेशमें अर्थात् जिस देशमें चतुर्वर्ण विभाग नहीं है वहां भी श्राद्ध करना निषिद्ध है।

अपनी भूमिमें पितरोंके उद्देशसे श्राद्ध करना होता है। यदि अपनी भूमिमें न करके दूसरेकी भूमिमें श्राद्ध किया जाय तो भूस्वामीको अर्थात् जिसकी भूमि है उसके पितरोंको भोज्यादि द्वारा परितृप्त कर श्राद्धानुष्ठान करना उचित है। दूसरेकी भूमिमें श्राद्धके समय भूस्वामीको भूमिका मूल्य नहीं देने अथवा पितरोंकी पूजा नहीं करनेसे वे बलपूर्वक श्राद्धीय द्रव्य हरण करते हैं। इस कारण पहले उनकी पूजा कर पीछे पितरोंकी पूजा करे।

गया गङ्गा, सरस्वती, कुरुक्षेत्र, प्रयाग, नैमिषक्षेत्र और पुष्करतीर्थ, नदीतट, तीर्थमात्र, पर्वत, पुलिन और निर्जन स्थानमें पितरोंके उद्देशसे यदि श्राद्ध किया जाय, तो वे बड़े संतुष्ट होते हैं।

अस्वामिक स्थान अर्थात् नैमिषारण्य आदि अटवी, हिमालय आदि पर्वत, गङ्गादि तीर्थ वाराणसी आदि इन सब स्थानोंके स्वामी नारायण छोड़ और कोई नहीं हैं। उन सब स्थानोंमें श्राद्ध करनेसे भूस्वामीके पितरोंकी पूजा नहीं करनी होती।

इन सब स्थानोंमें श्राद्धके समय पहले वास्तुदेवकी पूजा करनी होती है, क्योंकि, वास्तुदेवकी पूजा नहीं करनेसे श्राद्धभाग राक्षस चुरा ले जाता है। इस कारण

पहले वह पूजा करना नितान्त आवश्यक है। शालग्राम शिलाको सामने रख कर श्राद्धानुष्ठान करनेसे पितृगण प्रसन्न होते हैं। अतएव श्राद्धस्थलमें शालग्राम शिला पर विष्णुपूजा करके उन्हें श्राद्धका अग्रभाग निवेदन करना होता है।

श्राद्धवेला निर्णय—शास्त्रमें पूर्वाह्णमें मातृकाश्राद्ध, अपराह्णमें पैतृक श्राद्ध और मध्याह्नमें एकोद्दिष्ट श्राद्ध तथा प्रातःकालमें वृद्धि श्राद्ध करनेका विधान देखा जाता है। मातृका श्राद्ध शब्दसे अन्वष्टका श्राद्ध समझा जाता है। दिवामानको १५ भाग करनेसे उनके एक एक भागका नाम मुहूर्त्त है। साधारणतः मुहूर्त्तका परिमाण दो दण्ड है। दिवामानको तीन भाग करनेसे क्रमशः पूर्वाह्ण, मध्याह्न और अपराह्ण ये तीन भाग होते हैं। इसी प्रकार दिनमानको पाँच भाग करनेसे प्रातःकाल, सङ्गव, मध्याह्न, अपराह्ण और सायाह्न ये पाँच नाम होते हैं। विवाह और पुत्रजन्मके लिये वृद्धि श्राद्ध तथा ग्रहण और संक्रान्त्यादिश्राद्धको छोड़ प्रातःकालके प्रथम डेढ़ मुहूर्त्तमें और सायाह्नके अन्तिम दो मुहूर्त्तमें तथा रात्रि कालमें अन्य कोई भी श्राद्ध न करे।

शुक्लपक्षकी उन सब तिथियोंमें कहे गये पार्वण श्राद्ध पूर्वाह्णमें करे। यहां पूर्वाह्ण शब्दसे सङ्गव कालका बोध होता है। किसी तिथिमें यदि दो दिन तक सङ्गव काल रहे अथवा दो दिनके भीतर यदि किसी भी दिन सङ्गव काल न पाता हो, तो दूसरे दिन श्राद्ध होगा। किन्तु पूर्वदिन रौहिणान्त गौणपूर्वाह्ण पा कर दूसरे दिन सङ्गवकाल नहीं पानेसे पूर्वदिन ही श्राद्ध होगा।

प्रातःकाल ही वृद्धि श्राद्धका मुख्यकाल है। किन्तु यह श्राद्ध डेढ़ मुहूर्त्तमें नहीं कर सकते।

सपिण्डीकरण और कृष्णपक्ष जन्य सभी पार्वण श्राद्ध और मृताह जन्य त्रैपुरुषिक पार्वणका समय अपराह्ण है। रात्र्यादि भिन्न कालमें कुतपादिमुहूर्त्त पञ्चक, रौहिणादि मुहूर्त्तचतुष्टय, दशमादि मुहूर्त्तत्रय अपराह्ण श्राद्धमें इन चार कालोंको प्रशस्त जानना चाहिये। आपराह्णिक श्राद्धीय तिथि दोनों दिन पानेसे पूर्वदिनमें मुख्यकालमें श्राद्ध होगा। दोनों दिन मुख्यकाल न पाया जाए, तो दूसरे दिन श्राद्ध होगा।

वृद्धि श्राद्ध मात्र ही पूर्वाह्णमें करना चाहिये। एकोद्दिष्ट श्राद्ध मध्याह्न कालमें और सपिण्डीकरण श्राद्ध अपराह्णमें करना कर्त्तव्य है। पार्वण श्राद्ध पूर्वाह्ण और मध्याह्न दोनों समय किया जा सकता है। इसमें विशेषता यह है, कि कोई कोई पार्वण श्राद्ध पूर्वाह्णमें और कोई कोई मध्याह्न कालमें विधेय है। किन्तु सायंकालमें कोई भी श्राद्ध नहीं करना चाहिये। सूर्यास्तके पहले तीन मुहूर्त्त सायाह्न कहलाता है। इस कालको राक्षसी वेला कहते हैं। इस कालमें सभी कर्म निषिद्ध हैं।

अमावस्याश्राद्धकाल—एकादश और द्वादश मुहूर्त्त ही अमावस्या श्राद्धका प्रधान समय है। पूर्वदिन चतुर्दशी जब तक रहेगी, दूसरे दिन अमावस्या उससे कम रहने पर उसको क्षीणा अमावस्या कहते हैं। चतुर्दशीकी समानकालव्यापिनी अमावस्या दूसरे दिन रहनेसे उस अमावस्याको स्तम्भिता कहते हैं। पूर्वदिवसीय चतुर्दशीसे दूसरे दिन अमावस्या अधिक कालव्यापी होने पर उसका नाम वर्द्धमाना अमावस्या है। अमावस्या पूर्वदिन द्वादश मुहूर्त्तसे कुछ कम पा कर दूसरे दिन सम्पूर्ण एकादश मुहूर्त्त काल पाने पर भी श्राद्ध पूर्वदिन होगा। इसमें विशेषता यह है, कि अग्रहायण और ज्येष्ठ मासके अमावस्याश्राद्धमें उक्त प्रकारकी तिथि पड़नेसे दूसरे दिन श्राद्ध होगा। किन्तु उस वर्षमें यदि मलमास पड़े, तो उन दोनों मासके अमावस्याश्राद्धमें पूर्ववत् क्षीणा अमावस्याको करना होगा। यह अमावस्या यदि पूर्वदिन द्वादश मुहूर्त्त पा कर दूसरे दिन एकादश मुहूर्त्तकालव्यापिनी हो, तो ऋग्वेदियोंका पूर्वदिन तथा यजुर्वेदियोंका दूसरे दिन और सामवेदियोंके इच्छानुसार जिस किसी दिन कार्य सम्पन्न हो सकता है। अमावस्या यदि दोनों दिन मुख्यकाल पावे, तो वर्द्धमाना अमावस्याको श्राद्ध होगा।

महागुरु निपातमें वृद्धि श्राद्ध नहीं करना चाहिये, पुत्रका पिता और माता तथा स्त्रीका स्वामी महागुरु पदवाच्य है। जब तक सपिण्डीकरण नहीं होता, तब तक देहाशौच रहता है, अतएव उस अशौचकालमें दैव या पैत्र कोई भी कार्य नहीं करना चाहिये। उस कालमें यदि पुत्रादिका संस्कार कार्य उपस्थित हो, तो अपकर्ष

सपिण्डीकरण करनेके बाद वृद्धि श्राद्ध करे। मृताह से एक वर्षके अन्दर वृद्धि उपलक्षमें अपकर्ष सपिण्डीकरण श्राद्ध हो सकता है। एक वर्ष बीतने पर फिर अपकर्ष करके श्राद्ध नहीं होगा। उस समय पतित श्राद्धके विधानानुसार कृष्णा एकादशी या अमावस्यामें सपिण्डीकरण श्राद्ध होगा। कन्यादिके विवाह और नामकरणादि संस्कार कार्यके लिये अपकर्ष श्राद्धमें कार्यके पूर्व दिन श्राद्ध होगा।

देहाशुद्धि रहने पर पार्वणश्राद्धमें भी अधिकार नहीं है। सपिण्डीकरण होनेके बाद पार्वण श्राद्ध करना होता है, किन्तु एकोद्दिष्ट श्राद्ध किया जा सकता है। काला शौच होनेसे एकोद्दिष्ट श्राद्ध निषिद्ध नहीं है।

सभी दैवकार्य पूर्व या उत्तरमुखी हो कर करना होता है। किन्तु श्राद्धमें विशेषता यह है, कि दक्षिणमुख हो कर करना ही श्रेय है परन्तु वृद्धि श्राद्ध करनेके समय सामवेदियोंको पूर्वमुख और यजुर्वेदियोंका उत्तरमुख बैठ कर करना चाहिये। पार्वण और एकोद्दिष्ट श्राद्ध वेदीय गण ही दक्षिणमुखी हो कर कर सकते हैं।

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ये तीन वर्ण एकोद्दिष्ट श्राद्ध सिद्धान्न द्वारा और शूद्र आमान्न द्वारा करे। एकोद्दिष्ट भिन्न अन्य श्राद्ध अर्थात् पार्वण और वृद्धि श्राद्ध सभी वर्णोंको आमान्न द्वारा करना होगा। ब्राह्मणादि तीन वर्ण यदि एकोद्दिष्ट तिथिमें पाकपात्रके अभावमें श्राद्धानुष्ठान न कर सके, तो उस दिन उन्हें उपवास रहना होगा। किसी भी वर्णको मृताह तिथिको बाद देना उचित नहीं। यदि कोई जानबूझ कर वह तिथि बाद दे दे, तो उसे प्रत्यवायभागी होना पड़ता है। शास्त्रमें लिखा है कि मृताह तिथिमें एकोद्दिष्ट श्राद्ध नहीं करनेसे देवगण उसकी पूजा ग्रहण नहीं करते तथा मृत्युके बाद वह चण्डालयोनिमें जन्म लेता है।

अपुत्रा पत्नी स्वामीका मृत्युतिथिमें एकोद्दिष्ट श्राद्ध करे। उस तिथिके दिन यदि उसे रजस्वलाशौच रहे तो पांचवें दिनमें श्राद्ध होगा। स्त्री रजस्वला होने पर चौथे दिनमें स्वामीके निकट और पांचवें दिनमें दैव या पैत्र कर्ममें शुद्ध होती है।

विधवाको श्राद्धमें अधिकार नहीं है अर्थात् वे पार्वण और नान्दीमुख श्राद्ध नहीं कर सकतीं, परन्तु एकोद्दिष्ट श्राद्ध कर सकती हैं। पिता और माताकी मृताह तिथिमें स्त्रियां पिता और माताका एकोद्दिष्ट श्राद्ध कर सकती हैं। यदि उसके भाई न रहे और किसी कारणवशतः मृताह तिथिमें श्राद्ध पतित हो जाय, तो कृष्णा एकादशी या अमावस्यामें भी वह श्राद्धकार्य किया जा सकता है। किन्तु भाईके रहने पर यदि किसी कारणवशतः मृताह तिथिमें श्राद्ध न हो सके, तो एकादशी या अमावस्यामें श्राद्ध नहीं कर सकती। साधारणतः पतित श्राद्धमें उन्हें कोई अधिकार नहीं है।

अपुत्रा पत्नीको स्वामीका एकोद्दिष्ट अवश्य कर्तव्य है। भाई नहीं रहने पर वे पिता और माताका एकोद्दिष्ट श्राद्ध भी कर सकती हैं।

श्राद्धमें विहित और निषिद्ध पुष्प—श्वेत पुष्प द्वारा श्राद्धानुष्ठान करना होता है। उनमेंसे श्वेत पद्म, जाति प्रभृति सुगन्धित शुक्ल पुष्प द्वारा श्राद्ध करना ही श्रेय है। उग्रगन्धवाला पुष्प सफेद होने पर भी उससे श्राद्ध नहीं करना चाहिये। जवापुष्प तथा जवा सदृश रक्त वर्ण पुष्प भाण्डीपुष्प, अर्कपुष्प, पीतझिण्टी, उग्र गन्धयुक्तपुष्प, गन्धहीन पुष्प, केतकी, करवीर, बकुल और चम्पक तथा रक्तवर्ण जाति, ये सब पुष्प श्राद्धमें निन्दनीय हैं। इन पुष्पों द्वारा पितरोंकी पूजा करनेसे वे उन्हें ग्रहण नहीं करते, निराश हो कर उस स्थानसे चले जाते हैं।

जाति, मल्लिका, कुन्द और यूथिका पुष्प ही श्राद्धमें विशेष प्रशस्त हैं।

श्राद्धमें विहित निषिद्ध द्रव्य—छाग, माष तिल, जौ, हैमन्तिक धान्यका तण्डुल, शरत् कालीन तण्डुल, बिल्व, आमलक द्राक्षा, पनस आम्रातक, दाड़िम, काम रङ्ग, करमर्द्दक अक्षोट पाणिफल, खर्जुर, आम्र कशेरु, काविदार, ताल्मूली, मृणाल, दुग्ध, घृत दधि, कदली वैकङ्कत नारिकेल, शृङ्गाटक, परूषक पिप्पली, मरिच, पटोल, बृहतीफल मधु कर्पूर, मरिच, सैन्धवलवण आदि द्रव्य श्राद्धमें प्रशस्त हैं। ये सब द्रव्य उपादेय हैं तथा साधारणतः ये सब द्रव्य भोजन किए जा सकते हैं। इन सब द्रव्यों द्वारा श्राद्ध करना कर्तव्य है।

किन्तु शास्त्रमें जिन सब द्रव्योंको निषिद्ध कहा है, उन सब द्रव्यों द्वारा श्राद्ध नहीं करना चाहिये। कुष्माण्ड, अलाबू, वार्त्ताकी, ग्राम्य महिषदुग्ध, पालङ्की शाक, राजिका और द्विखिन्न अर्थात् सिद्ध चावल इन सब द्रव्यों द्वारा श्राद्ध न करे। श्राद्धमें गव्य घृतका ही व्यव हार करना चाहिये, बकरी भैंस आदिका घृत निषिद्ध है। इन सब निषिद्ध द्रव्योंको छोड़ जो सब फलमूल शाक आदि स्वादिष्ट और उपादेय हैं उन्हें पितरोंके उद्देशसे दिया जा सकता है।

श्राद्धदिनमें वर्जनीय—श्राद्ध दिनमें श्राद्धकर्त्ता पितरोंके उद्देशसे श्राद्ध करके विदेशयात्रा, युद्ध, नदीके किनारे जाना, पुनर्वार स्नान और भोजन, पाशादि क्रीड़ा, स्त्री सहवास, परश्राद्धभोजन, द्विभोजन, पुनर्वार दान, दानग्रहण, सायं सन्ध्या, अध्वगमन अर्थात् एक क्रोसके अधिक दूर जाना, इन सबका वर्जन करे, नहीं करनेसे श्राद्धकारी और पितरोंको नरक तथा श्राद्ध निष्फल होता है। अतएव इन सबका परिहार करना अवश्य कर्त्तव्य है।

पञ्चपात्र श्राद्ध—जिनकी अमावस्याके दिन अथवा प्रेतपक्षमें मृत्यु हुई हो, उनका सपिण्डीकरणके बाद मृताह तिथिमें पार्वण विधि द्वारा पञ्चपात्र श्राद्ध करना होता है। उनका एकोद्दिष्ट श्राद्ध नहीं होता। इसके बदलेमें पार्वण विधि द्वारा श्राद्ध होता है। यह श्राद्ध दैवपक्ष पिता या माता होने पर पितृपक्ष, उससे ऊपर तीन पुरुष अर्थात् पिताका श्राद्ध होने पर पिता, पितामह, और प्रपितामह या माताका श्राद्ध होने पर माता, पितामही और प्रपितामही ये तीन पक्ष, इन पाँच पक्षोंका श्राद्ध पांच पात्रोंमें करना होता है, इस कारण इसको पञ्चपात्र श्राद्ध कहते हैं। अमावस्याके दिन तथा इस प्रेतपक्षमें प्रतिदिन पार्वण श्राद्धका विधान है। इस कारण इस तिथिमें मृत्यु होनेसे उनका सांवत्सरिक श्राद्ध एकोद्दिष्ट विधिके अनुसार न हो कर पार्वणविधिके अनुसार होगा। इस श्राद्धमें केवल औरस पुत्रका ही अधिकार है। किसी किसीके मतसे औरसकी तरह दत्तकपुत्र भी इसका अधिकारी हो सकता है। किन्तु यह मत सर्ववादिसम्मत नहीं है।

केवल पुत्र पिता माताका ऐसा श्राद्ध कर सकेगा। दूसरेको एकोद्दिष्ट विधानानुसार श्राद्ध करना चाहिये।

मघा-त्रयोदशी श्राद्ध—गौण आश्विनकी कृष्णा त्रयोदशी तिथिमें पार्वण विधिके अनुसार जो श्राद्ध होता है उसको मघात्रयोदशी श्राद्ध कहते हैं। यह श्राद्ध अवश्यकर्त्तव्य है, क्योंकि शास्त्रमें इसे नित्य कहा है, नित्य शब्दका तात्पर्य यह है, कि यह श्राद्ध नहीं करनेसे प्रत्यवायभोगी होना पड़ता है।

यह श्राद्ध पञ्चान्नवर्त्ती परिवारमें जो बड़ा है, वही करेगा, सबोंको करनेका अधिकार नहीं है।

अष्टका श्राद्ध—पौष, माघ और फाल्गुन इन तीन मासकी कृष्णाष्टमी तिथिमें यथाक्रम पूपाष्टका, मांसाष्टका और शाकाष्टका श्राद्ध करे। यह अष्टका श्राद्ध भी अवश्यकर्त्तव्य है। यह श्राद्ध पार्वण श्राद्धके विधानानुसार करना होता है।

नवान्न श्राद्ध—नूतन अन्न द्वारा श्राद्ध किया जाता है, इसीसे उसका नाम नवान्न श्राद्ध हुआ है। यह श्राद्ध दो प्रकारका है, यवपाक और व्रीहिपाक। धान पकने पर अगहनके महीनेमें जो श्राद्ध किया जाता है अर्थात् नये चावल द्वारा पितरोंके उद्देशसे पार्वणविधिके अनुसार जो श्राद्ध किया जाता है उसको व्रीहिपाक नवान्न श्राद्ध कहते हैं। जौ पकने पर उस नये जौसे जो श्राद्ध किया जाता है उसको यवपाक कहते हैं। जौ और धान इन दोनों अन्नसे श्राद्ध करना उचित है। जौ या धानसे नवान्न विधानानुसार यदि श्राद्ध न किया जाय, तो उससे फिर कभी श्राद्ध नहीं कर सकते। क्योंकि इन दोनों ही अन्नसे श्राद्ध करके खाना होता है। यह श्राद्ध भी नित्य और अवश्य कर्त्तव्य है। यह श्राद्ध नहीं करनेसे अर्थात् नया धान और जौ पितरोंको नहीं देनेसे पीछे उसके द्वारा श्राद्ध नहीं किया जाता। यह श्राद्ध विशुद्ध दिन देख कर करना होता है।

नवान्न देखो।

नवोदकश्राद्ध—वर्षाऋतु आने पर पितरोंके उद्देशसे पार्वणविधिके अनुसार जो श्राद्ध किया जाता है उसको नवोदक श्राद्ध कहते हैं। रविके आर्द्रानक्षत्रमें जानेसे यह श्राद्ध करना होता है। आषाढ़ मासके प्रथममें रवि

आर्द्रा नक्षत्रमें रहते हैं, अतः आषाढ़ मासके आरम्भमें यह श्राद्ध करना होता है।

ग्रहणश्राद्ध—चन्द्र या सूर्यग्रहणके समय पितरोंके उद्देशसे पार्वण विधिके अनुसार जो श्राद्ध करना होता है उसको ग्रहणश्राद्ध कहते हैं।

पौर्णमासीश्राद्ध—माघ और श्रावण मासकी पूर्णिमातिथिमें पार्वण विधिक्रमसे जो श्राद्ध किया जाता है उसका नाम पौर्णमासी श्राद्ध है। ये दोनों पूर्णिमातिथियुक्त श्राद्ध नित्य कहलाते हैं। अतएव यह अवश्य कर्त्तव्य है।

तीर्थयात्राश्राद्ध—यदि तीर्थ पर्यटन करना हो तो श्राद्धानुष्ठान करके जाना चाहिये। तीर्थगमनके निर्द्धारित दिनके दो दिन पहले हविष्यादि कर संयत हो कर रहे। तीर्थगमनके ठीक एक दिन पहले मस्तक मुण्डन और उपवास करे, पीछे प्रातःकृत्यादि और इष्टदेवताका पूजन कर आभ्युदयिक श्राद्ध समाप्त कर तथा ब्राह्मण भोजन करा कर तीर्थपर्यटनमें निकले। किसी किसीका कहना है कि तीर्थयात्रा निमित्त पार्वणविधानसे श्राद्धानुष्ठान करना कर्त्तव्य है। किन्तु यह सर्ववादिसम्मत नहीं है। तीर्थगमनके लिये जिस प्रकार आभ्युदयिक श्राद्ध करना होता है उसी प्रकार तीर्थसे लौट कर भी आभ्युदयिक श्राद्ध करना होगा। तीर्थसे जिस दिन लौटेंगे, उसी दिन श्राद्धानुष्ठान करना उचित है। उस दिन यदि श्राद्धका समय बीत गया हो तो उस दिन उपवासी रह कर दूसरे दिन श्राद्ध करना होता है। वृद्धिके उपलक्षमें अर्थात् संस्कारादिकार्यमें भी आभ्युदयिक श्राद्ध करना होता है, किन्तु संस्कारादिकार्यमें तथा तीर्थ जाने और वहांसे लौटनेमें जो श्राद्ध किया जाता है उसमें प्रभेद यही है, कि संस्कारकार्यमें षष्ठी मार्कण्डेय आदिकी पूजा करनी होती है किन्तु तीर्थश्राद्धमें उसकी पूजा नहीं करनी होती। इसका सङ्कल्पवाक्य इस प्रकार होगा। यथा—

"अद्यामुके मासि अमुके पक्षे अमुकतिथौ अमुकगोत्रः श्रीअमुकदेवशर्मा तीर्थयात्राकर्माभ्युदयार्थं सगणाधिपषोडशमातृकापूजा वसोर्धारा सम्पातनायुष्यसूक्तजपाभ्युदयिकश्राद्धान्यहं करिष्ये" तीर्थसे लौटने पर जो श्राद्ध करना होता है उसमें 'तीर्थयात्राकर्माभ्युदयार्थं' इस पदको जगह 'तीर्थप्रत्यागमनोत्तरस्वगृहप्रवेशकर्माभ्युदयार्थं' ऐसा वाक्य होगा।

तीर्थमें जाने और वहांसे लौटनेमें जिस प्रकार श्राद्ध कहा गया है उसी प्रकार तीर्थप्राप्ति निमित्त अर्थात् तीर्थस्थलमें जा कर श्राद्ध करना होता है। यह श्राद्ध पार्वण विधिके अनुसार होगा। आभ्युदयिक श्राद्ध नहीं होगा।

स्त्रियां तीर्थमें गमनागमन अथवा तीर्थप्राप्ति निमित्त, इनमेंसे कोई भी श्राद्ध नहीं कर सकती, क्योंकि उन्हें श्राद्धमें अधिकार नहीं है। परन्तु वे श्राद्धका अनुकल्प अर्थात् भोज्योत्सर्ग और दानादि कर सकती हैं।

तीर्थप्राप्ति मात्र ही श्राद्ध करना होता है अर्थात् तीर्थमें जा कर जिस दिन इच्छा हो उस दिन श्राद्ध करूंगा, ऐसा कहनेसे काम नहीं चलेगा तीर्थमें उपस्थित होते ही श्राद्ध करना कर्त्तव्य है। असमय अर्थात् श्राद्ध विषयमें शास्त्रनिषिद्ध कालमें जैसे सायं या रात्रिकालमें यदि तीर्थप्राप्ति हो तो उसी समय श्राद्ध नहीं होगा, दूसरे दिन सवेरे होगा।

तीर्थप्राप्तिकालमें पार्वण विधानसे श्राद्धानुष्ठान कर्त्तव्य है। किन्तु पार्वण विधिसे श्राद्ध होने पर भी थोड़ी विशेषता है, वह यह कि इसमें अर्घ्य और आवाहन नहीं करना होता। अतएव अर्घ्य और आवाहनको वर्जन कर पार्वणविधानसे श्राद्ध कर्त्तव्य है। तीर्थश्राद्धमें पिण्डदान करके वह पिण्ड तीर्थजलमें फेंक देना होता है। तीर्थभिन्न स्थलमें श्राद्ध करनेसे पिण्ड गो, अज, विप्रप्रभृतिको दान करने अथवा जलमें फेंक देनेका विधान है।

तीर्थमें जा कर यदि कोई श्राद्ध करनेमें असमर्थ हो, तो उसे श्राद्धानुकल्प भोज्यदान कर्त्तव्य है। तीर्थ जानेके पूर्वदिन मुण्डन और उपवासकी व्यवस्था है, किन्तु यद्यपि एक बार तीर्थमें जा कर फिर दश मासके भीतर तीर्थगमन किया जाय तो मुण्डन और उपवास करना नहीं होगा।

प्रेतपक्षीय या गणश्राद्ध प्रेतपक्षमें अर्थात् मुख्यचान्द्र मासके कृष्णपक्षकी प्रतिपदसे अमावस्या पर्यन्त पन्द्रह तिथि तक सबोंको करना कर्त्तव्य है। यदि यह श्राद्ध

कोई १५ दिन करनेमें असमर्थ हो, तो षष्ठीसे अमावस्या पर्यन्त दश दिन, इसमें असमर्थ होने पर एकादशीसे अमावस्या पर्यन्त ५ दिन, इसमें भी अशक्त होने पर त्रयोदशीसे तीन दिन तक करना नितान्त आवश्यक है। इस प्रेतपक्षमें शक्ताशक्त भेदसे ही उक्त प्रकारका श्राद्ध करना होता है। इस पक्षमें शक्तिके अनुसार उक्त प्रकारमेंसे चाहे जिस तरह हो श्राद्ध करना ही होगा, नहीं करनेसे प्रत्यवाय होगा। यह श्राद्ध पार्वण विधानसे करना होता है।

प्रायश्चित्ताङ्गिक पार्वणश्राद्ध—प्रायश्चित्त या चान्द्रायणानुष्ठानके बाद पार्वण श्राद्धके विधानानुसार श्राद्ध करना होता है। प्रायश्चित्ताङ्ग दान करके उसके बाद श्राद्ध और पीछे गोग्रास देना होता है।

आभ्युदयिक श्राद्ध—पुत्रादिके संस्कार कार्यमें जो श्राद्ध कहा गया है उसको आभ्युदयिक श्राद्ध कहते हैं। इस श्राद्धका नामान्तर वृद्धि या नान्दीमुख श्राद्ध है। संस्कार कार्यको छोड़ वास्तुयाग, गृहप्रवेश, पुष्करिणी प्रतिष्ठा, तीर्थगमन और तीर्थप्रत्यागमन निमित्त भी आभ्युदयिक श्राद्ध करना होता है। नान्दीमुख श्राद्धमें सामवेदियोंके लिये पिता, पितामह और प्रपितामह तथा मातामह, प्रमातामह और वृद्धप्रमातामह इन छः पुरुषोंका श्राद्ध कहा गया है। यजुर्वेदियोंके इस श्राद्धमें माता, पितामही, प्रपितामही, पिता, पितामह और प्रपितामह तथा मातामह, प्रमातामह और वृद्धप्रमातामह इन ६ पुरुषोंका श्राद्ध करना होता है।

पिण्डहीन आभ्युदयिक-श्राद्ध—यदि कोई अशक्तताके कारण सारा आभ्युदयिक श्राद्ध न कर सके, तो पिण्डविहीन आभ्युदयिक करे। यह श्राद्ध आभ्युदयिक श्राद्धके विधानानुसार अधिवासके बाद वास्तुपुरुषादिकी पूजासे ले कर आसन दान पर्यन्त सभी कार्य करे। इसके बाद गन्धादि दान करके अन्नपरिवेशनसे 'अन्नहीनं क्रिया हीनं' यहां तक मन्त्रपाठ कर पिण्डदानादि न करके पितृपक्षीय दक्षिणान्तसे अवशिष्ट सभी कार्य करने होंगे। इस प्रकार श्राद्ध करनेसे उसको पिण्डहीन आभ्युदयिक श्राद्ध कहते हैं। यह पिण्डरहित आभ्युदयिक श्राद्ध पुत्रमुखदर्शन निमित्तक कहा गया है अर्थात् पुत्रके जन्म लेने पर यदि सारा आभ्युदयिक श्राद्ध न किया जा सके, तो बिना पिण्डके यह श्राद्ध करे। सभी स्थलोंमें असमर्थ होने पर इसी तरह श्राद्ध करना होगा, शास्त्रका ऐसा अभिप्राय नहीं है।

श्राद्धानुकल्प भोज्योत्सर्ग—पूर्वोक्त संस्कारादि कार्यमें आभ्युदयिक श्राद्ध विधेय है। जो समस्त श्राद्ध करनेमें असमर्थ हैं वे पिण्डहीन आभ्युदयिक श्राद्ध करें इसमें असमर्थ होने पर उसे भोज्योत्सर्ग करना कर्त्तव्य है। भोज्योत्सर्ग करनेमें निम्नोक्त प्रकारके वाक्यसे करना होता है—

पहले भोज्य अर्च्चनादि करके 'अद्येत्यादि अमुकतिथौ अमुकगोत्रस्य श्रीअमुकदेवशर्म्मणो अमुककर्माभ्युदयार्थं अमुकगोत्रस्य नान्दीमुखस्य पितुरमुकदेवशर्मणः (पीछे इसी प्रकार षट्पुरुष या ६ पुरुषका नाम उल्लेख कर) आभ्युदयिक श्राद्धानुकल्प भोज्योत्सर्गवाक्यमें, फिरसे उन सबका नामोल्लेख कर "स्वर्गकामः इदं आभ्युदयिक श्राद्धानुकल्पमन्नभोजनोपकरणमोऽभ्यर्चितं श्रीविष्णुदैवतं यथासम्भवगोत्रनाम्ने ब्राह्मणायाहं ददानि।"

पुत्रकन्याके जन्मसे ले कर विवाह पर्यन्त संस्कारमें पिताको ही आभ्युदयिक श्राद्ध पर अधिकार है। पुत्रादिके जन्मसे विवाह पर्यन्त जो कोई संस्कार उपस्थित होता है उन सब संस्कारकार्योंमें पिता ही आभ्युदयिक श्राद्धके अधिकारी हैं। जो श्राद्धाधिकारी होंगे वे अपने ही मातामह पक्षका उल्लेख कर श्राद्धानुष्ठान करें। संस्कार्य बालकके मातामह पक्षका उल्लेख नहीं होगा। इसमें विशेषता यह है, कि पुत्रके प्रथम विवाहमें पिता ही आभ्युदयिक श्राद्ध करेंगे। किन्तु पुत्र यदि दूसरी बार विवाह करे, तो उस श्राद्धमें पिता अधिकारी नहीं होंगे, स्वयं पुत्र ही आभ्युदयिक श्राद्धका अधिकारी होगा। यहां पर उस पुत्रके पिताके मातामह पक्षका उल्लेख न हो कर उसीकी मातामह पक्षका उल्लेख होगा। पत्नीके मरने या जीनेसे कुछ होता जाता नहीं। दूसरी बार विवाह करने पर ही यह व्यवस्था जाननी होगी। क्योंकि शास्त्रमें लिखा है, कि पुत्रके संस्कारकार्यके लिये ही पिता वृद्धिश्राद्ध करेंगे। पुत्रके प्रथम विवाह-

कार्य्यमें उसका सपिण्डीकरण शेष हो चुका है, अतएव द्वितीय विवाहपक्षमें पिताका अधिकार नहीं रहेगा। पिता यदि जीवित रहे, तो उन्हें छोड़ कर तीन पीढ़ी ऊपरका श्राद्ध करना होगा। (श्राद्धतत्त्व)

ऊपर जिन सब श्राद्धोंकी बात कही गई वे सभी श्राद्ध पार्वण, वृद्धि और एकोद्दिष्ट श्राद्धके अन्तर्गत हैं। परन्तु उनमेंसे किसी किसी श्राद्धमें थोड़ा बहुत फर्क है। आद्यश्राद्ध मासिकश्राद्ध और साम्वत्सरिकश्राद्ध ये एकोद्दिष्ट श्राद्धके अन्तर्गत हैं। श्राद्धकालमें आद्ये चादिष्ट, मासिकैकोद्दिष्ट और साम्वत्सरिकैकोद्दिष्ट इत्यादि रूप वाक्य होंगे। सपिण्डीकरण नहीं होने तक इन सब श्राद्धोंमें पितृ आदि पदका उल्लेख न हो कर प्रेतपद उल्लिखित होगा। इन सब एकोद्दिष्ट श्राद्धमें कुशमय एक ब्राह्मण बना कर उसके सामने श्राद्ध करना होगा।

नवान्न, नवोदक, अष्टका, प्रायश्चित्त, अमावस्या प्रेतपक्ष पूर्णिमा आदि तिथियोंमें जो श्राद्ध कहा गया है उसका नाम पार्वणश्राद्ध है। शास्त्रमें जहां श्राद्ध शब्द कहा गया है, वहां पार्वणश्राद्ध ही समझना होगा। इस पार्वणश्राद्धमें भी कुशके चार ब्राह्मण बना कर उनके सामने श्राद्धानुष्ठान करना होता है। इन चार ब्राह्मणों में दैव पक्षमें दो और पितृपक्षमें एक और मातामह पक्षमें एक है।

आभ्युदयिक श्राद्धमें भी दो दो कर ब्राह्मण निर्माण करना होता है। सामवेदियोंके इस श्राद्धमें भी ६ पुरुष का श्राद्ध कहा है। अतएव उन्हें छः ब्राह्मण बनाने होते हैं। यथा— दो दैव पक्षमें दो पितृपक्षमें और दो मातामह पक्षमें। यजुर्वेदियोंके इस श्राद्धमें ९ पुरुषका श्राद्ध करना होता है। इसमें एक मातृपक्षमें अधिक है, अतः उनके इस श्राद्धमें ८ ब्राह्मण बना कर उनके सामने श्राद्ध करना होता है। इन आठ ब्राह्मणोंमेंसे दो दैव पक्षमें दो मातृपक्षमें, दो पितृपक्षमें और दो मातामह पक्ष में होंगे।

इन सभी श्राद्धोंका एक एक सूत्र है। साम, ऋक और यजुर्वेद भेदसे श्राद्धपद्धति भी भिन्न भिन्न प्रकारकी है। श्राद्ध परस्पर भिन्न होने पर भी प्रभेद सामान्य मात्र है, क्रियाप्रणाली एक ही तरह की है, परन्तु वेद भेदमें मन्त्रकी भिन्नता मात्र देखी जाती है।

नीचे सामवेदीय पार्वणश्राद्धकी पद्धति लिखी जाती है—

जिस दिन पार्वण श्राद्ध करना होगा उसके पूर्व दिन निरामिष भोजन कर संयत हो कर रहें। यदि किसी कारणवश संयत हो कर न रहा जाय तो उस दिन दो बार स्नान करके श्राद्ध किया जा सकता है। स्नान तर्पण और प्रातःकृत्यादि समाप्त करके दक्षिण मुखमें बैठें। श्राद्ध स्थानमें दक्षिणमुखमें तिलतैल या घृत द्वारा दीप बालना होता है। जहां बैठ कर श्राद्ध करना होगा, उस स्थानको गोबरसे अच्छी तरह लीपना आवश्यक है। आसन पर बैठ कर गङ्गामृत्तिका द्वारा तिलक लगावें। पीछे पूर्व और उत्तरमुखमें बैठ दो बार आचमन कर पहले पूर्वमुखमें भोज्योत्सर्ग करना होता है।

भोज्योत्सर्ग यथा,—

"ओं कुरुक्षेत्र गयागङ्गाप्रभासपुष्कराणि च।
तीर्थान्येतानि पुण्यानि दानकाले भवन्त्विह॥"

यह मन्त्र पढ़ कर वामपार्श्वस्थित आमान्नको बायें हाथसे पकड़ कर एते गन्धपुष्पे ओं सोपकरणामान्नभोज्याय नमः' ऐसा पढ़ें और तीन बार इस भोज्य पर गन्धपुष्प चढ़ावें। इसके बाद 'एतदधिपतये श्रीविष्णवे नमः एतत् सम्प्रदानाय ब्राह्मणाय नमः' कह कर तिपत्र द्वारा जलका छींटा दें। अनन्तर ताम्रादि पात्रमें कुशत्रिपत्रके साथ जलग्रहण कर निम्नोक्त वाक्य द्वारा दान करें, वाक्य यथा—

विष्णुरोमतत् अमुके मासि अमुक पक्षे अमुकतिथौ अमुक गोत्रस्य पितुः अमुक देवशर्म्मणः, (इसी प्रकार पिता मह, प्रपितामह मातामह प्रमातामह और वृद्धप्रमातामह इन छः पुरुषोंका नाम उल्लेख कर) अमुकनिमित्तक पार्वणविधिकश्राद्धधासरे और पीछे फिरसे इन छः पुरुषोंके गोत्र और नामका उल्लेख कर 'स्वाकामाः एतत् सघृतसोपकरणामान्नभोज्यमर्चित श्रीविष्णुदैवतं यथा सम्भवगोत्रनाम्ने ब्राह्मणायाहं ददानि' यह पढ़ कर कुशत्रिपत्र द्वारा आमान्नके ऊपर जलका अभ्युक्षण दें।

इस तरह भोज्यदान कर उसकी दक्षिणा देनी होगी। फल या पैसा ले कर उसको अर्चना कर 'अमुकपक्षे अमुक तिथौ (६ पुरुषके नामादिका उल्लेख कर) कृतैतत् सघृतसोपकरणामान्नभोज्यदानकर्मणः साङ्गतार्थं दक्षिणामिदं फलं श्रीविष्णुदैवतं यथासम्भवगोत्रनाम्ने ब्राह्मणायाहं ददानि।' इस प्रकार दक्षिणान्त करके अच्छिद्राव धारण करे। हाथमें थोड़ा जल ले कर 'कृतैतत् सोपकरणामान्नभोज्यदानकर्माच्छिद्रमस्तु।'

इस दानके बाद वास्तुपूजा करनी होती है। वास्तुपूजा इस प्रकार है—

'एतत् पाद्यं ओं वास्तुपुरुषाय नमः', इस मन्त्र द्वारा दशोपचारसे पूजा करे, पूजामें श्राद्धाद्यग्रभाग भोज्य वास्तुपुरुषको चढ़ाना होगा।' एतच्छ्राद्धीयाग्रभाग सघृतसोपकरणामान्नभोज्यं ओं वास्तुपुरुषाय नमः।' पीछे निम्नोक्त मन्त्रसे प्रणाम करना होता है।

"ओं सर्वे वास्तुमया देवाः सर्वं वास्तुमयं जगत्।
पृथ्वीधर त्वं देवेश वास्तुदेव नमोऽस्तु ते॥"

विष्णुपूजा—वास्तुपूजाके बाद फिर विष्णुपूजा करनी होती है। 'ओं यज्ञेश्वराय श्रीविष्णवे नमः' इस मन्त्र द्वारा दशोपचार द्वारा पूजा करे, पीछे एतद् श्राद्धीयाग्रभागसघृतसोपकरणामान्नभोज्यं ओं यज्ञेश्वराय श्रीविष्णवे नमः' यह पढ़ कर भोज्य निवेदन करना होगा।

इस प्रकार विष्णुको श्राद्धका अग्रभाग दे कर जहां श्राद्ध होगा, उस स्थानके अधिष्ठात्री देवता और गङ्गाकी पूजा तथा स्तव करना होता है। दूसरेको जमीनमें यदि श्राद्ध किया जाय, तो भूस्वामीको थोड़ा भूमिमूल्य देना कर्त्तव्य है। अथवा 'इदमन्नं ओं भूस्वामिपितृभ्यः स्वधा' कह कर भूस्वामीके पितरोंके उद्देशसे भोज्य दे।

अपनी भूमि या अस्वामिक भूमिमें पार्वण श्राद्ध करनेमें भूमिका मूल्य देना नहीं पड़ता। शास्त्रमें अस्वामिक भूमिका विषय इस प्रकार लिखा है,—वन, पर्वत, नदीप्रवाहके दोनों किनारे चार हाथ जमीन, पुण्यमय पुरुषोत्तमादिका गृह, गयादि क्षेत्र, दण्डकादि अरण्य, गङ्गा प्रभृति पुण्य नदीका गर्भ और उसके दोनों पार्श्वदेढ़ सौ हाथ तक, तीरके दोनों किनारे दो कोस तक क्षेत्र, ये सब स्थान राजा प्रभृतिके अधिकारमें रहने पर भी अस्वामिक हैं। अतएव इन सब स्थानोंमें श्राद्धानुष्ठान करनेसे भूस्वामिके पितरोंको अन्न देनेकी आवश्यकता नहीं।

ब्राह्मणस्थापन यथा—भूस्वामिपितृपूजा करके ब्राह्मण स्थापन करना होता है। पार्वणमें तीन पक्ष होते, दैवपक्ष, पितृपक्ष, और मातामहपक्ष। पहले दैवपक्षमें एक पात्रमें कुछ यव मिश्रित जल द्वारा तथा पितृपक्ष और मातामहपक्षमें दो आसन पर दक्षिणाग्र एक एक कुश तिलोदक द्वारा प्रोक्षण कर दक्षिणदिशामें स्थापन करे। दैवपक्षीय ब्राह्मणका आसन पश्चिमकी ओर स्थापन करना होता है। पीछे ७ या ५ प्रादेशप्रमाणके साग्रकुशद्वारा तीन कुशमय ब्राह्मण बनाने होंगे। ब्राह्मण निर्माण कालमें प्रणव मन्त्रका पाठ करना होता है। पीछे इन तीनोंको एक आसन पर रख—

"ओं सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं सर्वतस्पृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्॥"

(शुक्लयजुः ३१।१)

इस मन्त्रसे स्नान करावे, पीछे 'ओं दर्भमय ब्राह्मणेभ्यो नमः' इस मन्त्रसे पाद्यादि दशोपचारसे पूजा कर दैवपक्षके आसन पर पश्चिमाग्र एक ब्राह्मण, पितृ और मातामह पक्षमें दक्षिणाग्ररूपमें उत्तरमुखी करके दो ब्राह्मण स्थापनका अनुज्ञा वाक्य करना होगा।

इस श्राद्धमें दैवपक्षमें जब जो कार्य करना होगा, वह उत्तरकी ओर मुंह कर उपवीती और पातित दक्षिणीजानु हो करना होता है। पितृकृत्यमें अर्थात् पितृपक्ष और मातामह पक्षमें जब जो कार्य करना होगा, तब दक्षिणकी ओर मुंह कर पातित वाम जानु और प्राचीनावीति हो कर करे।

अनुज्ञा—पहले दैवपक्षमें उत्तर ओर मुंह करके उपवीती और पातित दक्षिण जानु अर्थात् दाहिनी जंघा गिरा कर 'ओमद्य अमुके मासि अमुके पक्षे अमुकतिथौ अमुकगोत्रस्य पितुः अमुकस्य' इस प्रकार पितामह और प्रपितामह इन पुरुषोंका नाम ले कर 'अमुकनिमित्तकपार्वणविधिकश्राद्धे कर्त्तव्ये ओं पुरुरवामाद्रवसी विश्वेषां देवानां अमुकनिमित्तकपार्वणविधिकश्राद्धं दर्भमय ब्राह्मणेऽहं करिष्ये' इस वाक्य द्वारा कृताञ्जलि-

पुरसे प्रश्न करने पर पुरोहित 'ओं कुरुष्व' यह प्रतिवाक्य बोले।

दूसरेके मतसे दैवपक्षमें दो ब्राह्मण स्थापन करने होते हैं। दो ब्राह्मण स्थापनकी जगह 'दर्भमय ब्राह्मण बोरद ऐसा वाक्य होगा।

पितृपक्षमें अनुज्ञा—दक्षिणमुखसे प्राचीनावीती हो कर बाद जाघ गिरा कर पितृपक्षके दर्भमय ब्राह्मणके ऊपर जल दे पीछे कृताञ्जलि हो 'ओमद्य अमुके मासि अमुके पक्षे अमुकतिथौ अमुकगोत्रस्य पितुः अमुकस्य' बादमें पितामह और प्रपितामहका नामोल्लेख कर 'अमुकनिमित्तकपार्वणविधिकश्राद्धं दर्भमयब्राह्मणेऽहं करिष्ये' ऐसा कहे। पुरोहित भी 'ओं कुरुष्व' यह प्रतिवाक्य बोले। इसी प्रकार मातामह पक्षमें भी अनुज्ञ वाक्य करना होगा, अर्थात् उस वाक्यमें 'अमुकगोत्रस्य मातामहस्य अमुकस्य इत्यादि' रूपभेद वाक्य कहने होंगे।

यह पार्वण श्राद्ध महालयामें होनेसे अमुकनिमित्तककी जगह 'महालयामावास्यानिमित्तक', दीपान्वितामें होनेसे 'दीपान्वितामावास्यानिमित्तक', नवान्नमें होनेसे नवान्नामावनिमित्तक' इत्यादिरूप निमित्त विशेषका उल्लेख करना होगा।

पीछे प्रणव व्याहृतिके साथ प्रणवान्ता गायत्रीका जप कर—

"ओं देवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च।
नमः स्वधायै स्वाहायै नित्यमेव भवन्त्विति।"

इस मन्त्रका तीन बार पाठ करे। पीछे 'ओं तद्विष्णोः' इत्यादि मन्त्रोंसे विष्णुका स्मरण कर थोड़ी मृत्तिका जलमें घोल उसमें तुलसी पत्र दे उस जलसे श्राद्धीय सभी द्रव्य प्रोक्षण करने होते हैं। अनन्तर एक पात्रमें दैव ब्राह्मणके दक्षिण पार्श्वकी ओर एक पात्रमें पितृ ब्राह्मणके वामपार्श्वकी तथा एक और पात्रमें मातामह पक्ष ब्राह्मणके वामपार्श्वकी रक्षाके लिये थोड़ा थोड़ा जल रखना होगा। इस प्रकार जल रखनेके बाद दर्भासन दान करना होता है।

दर्भासन दान यथा—उत्तरमुखसे उपवीती हो दाहिनी जाघ गिरा कर दैव ब्राह्मणके हाथमें जल दे कर 'ओं पुरूरवोमाद्रवसौविश्वेदेवा एतद्वो दर्भासनं नमः' यह मन्त्र पढ़ कर दैवब्राह्मणके दक्षिणपार्श्वमें एक सरल कुशपत्र रखे। पीछे दक्षिणमुखसे प्राचीनावीती हो और बाद जाघ गिरा कर पितृब्राह्मणके हाथमें जल दे तथा 'ओं अमुकगोत्रपित अमुक' इस प्रकार पितामह और प्रपितामहका नामोल्लेख कर 'एतत्ते दर्भासनं ओं ये चात्र त्वामनु याश्च त्वमनु तस्मै ते स्वधा' मन्त्र पाठ कर कुशनिर्मित मोटक पितृब्राह्मणके वामपार्श्वमें रखे। अनन्तर इसी प्रणालीसे मातामह पक्षके ब्राह्मणको जल दे कर मातामह पक्षके ब्राह्मणके वामपार्श्वमें कुशनिर्मित मोटक देना होता है।

आवाहन—इस प्रकार दर्भासन दान करनेके बाद पितरोंका आवाहन करना होता है। पहले दैवपक्षमें उत्तरमुख उपवीती और पातित वामजानु हो जौ ले कर 'ओं विश्वान् देवान् आवाहयिष्ये' मन्त्र पाठ करनेसे पुरोहित 'ओं आवाहय' यह अनुमति दे। इसके बाद निम्नोक्त मन्त्रका पाठ करना होता है—

'ओं विश्वे देवास आगत शृणुता म इमं हवं एदं बर्हिर्निषीदत' (शुक्लयजुः ७।३४) इस मन्त्रसे आवाहन कर जौ दैव ब्राह्मणके ऊपर छिड़क देना होगा। इसके बाद कृताञ्जलि हो यह मन्त्र पढ़ना होता है यथा—

'ओं विश्वेदेवाः शृणुतेमं हवं मे ये अन्तरिक्षे य उपद्यवि ष्ठ। ये अग्निजिह्वा उतवा यजत्रा आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वम्।' (शुक्लयजु ३३।५३) 'ओं ओषधयः समवदन्त सोमेन सह राज्ञा। यस्मै कृणोति ब्राह्मण स्तं राजन् पारयामसि।

इसके बाद दक्षिणमुखसे प्राचीनावीती और पातित वामजानु हो तिलग्रहण कर 'ओं पितॄन् आवाहयिष्ये' कहने पर पुरोहित 'ओं आवाहय' यह अनुज्ञा दे। पीछे निम्नोक्त मन्त्रसे आवाहन करना होगा। मन्त्र इस प्रकार है—

ओं एत पितरः सोम्यासो गम्भीरेभिः पथिभिः पूर्व्येभिः दत्तास्मभ्यं द्रविणेह भद्रं रयिञ्च नः सर्ववीरं नियच्छत। ओं उशन्तस्त्वा निधीमह्युशन्तः समिधीमहि उशन्नुशत आवह पितॄन् हविषे अत्तवे।' इस मन्त्रसे पितरोंका आवाहन कर कृताञ्जलि हो यह मन्त्र पढ़े।

'ओं आयान्तु नः पितरः सोम्यासोऽग्निष्वात्ता पथिभि र्देवयानैः।' (शुक्लयजु० १९।५८)

'अस्मिन् यज्ञे स्वधया मदन्तोऽधिब्रुवन्तु ते अवन्त्वस्मान्।' यह मंत्र पढ़ कर तिल ले "ओं अपहता सुरा रक्षांसि वेदिषदः" इस मन्त्रसे पितृ और मातामह ब्राह्मण पर तिल फेंकना होगा।

अर्घ्यदान यथा – आवाहन करनेके बाद अर्घ्यदान करना होता है। जलस्पर्श कर पहले दैवब्राह्मणके सामने दक्षिणाग्र कुशके ऊपर एक पात्र, पीछे पितृपक्षीय ब्राह्मणके सामने दक्षिणाग्र कुशके ऊपर तीन पात्र, बादमें मातामहपक्षीय ब्राह्मणके सामने दक्षिणाग्र कुशके ऊपर तीन पात्र स्थापन करे। अनन्तर दो दो कुश दे 'ओं पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ' मंत्र पढ़ कर प्रादेशप्रमाण अवशिष्ट रख कर नख भिन्न किसी दूसरी वस्तुसे छेदन तथा 'ओं विष्णु मनसा पूते स्थः' मंत्रसे अभ्युक्षण करे। इसके बाद इन पवित्रोंको देवादि क्रमसे ७ पात्रोंमें रखना होगा।

"ओं शन्नो देवीरभीष्टये आपो भवन्तु पीतये शंयोरभिस्रवन्तु नः।' (शुक्लयजुः ३६।१२) यह मंत्र पढ़ कर उन सात पवित्रोंमें जल देना होगा। अनन्तर जौ ले कर—

'यवोऽसि यवयास्मद्द्वेषो यवयारातीः दिवे त्वा अन्तरीक्षाय त्वा पृथिव्यै त्वा शुन्धन्तां लोकाः पितृसदनाः पितृसदनमसि' इस मन्त्रसे दैवपक्षके अर्घ्यपात्रमें जौ दे पीछे तिल ले कर 'ओं तिलोऽसि सोमदेवत्यो गोसवो देवनिर्मितः। प्रत्नमद्भिः पृक्तः स्वधया पितॄन् लोकान् प्रीणाहि नः स्वाहा।' मन्त्र पढ़ कर पितृपक्ष और मातामह पक्षमें तिल देना होगा। इसके बाद दैवादिक्रमसे ७ अर्घ्यपात्रमें अमन्त्रक गंध पुष्प दे कर एक दूसरे कुश द्वारा आच्छादन कर 'ओं अच्छिद्रमिदमर्घ्यपात्रमस्तु' यह मन्त्र पढ़नेसे पुरोहित 'ओं अस्तु' यह प्रतिवाक्य कहें। इन ७ अर्घ्यपात्रोंको जिन ७ कुशोंसे आच्छादन किया गया था, उस आच्छादनको उद्घाटन करना होगा।

इसके बाद उत्तरमुखसे उपवीती और पातित दक्षिण जानु हो दैवब्राह्मणके हाथमें अर्घ्यपात्रके प्रागग्र पवित्रसे अन्य जल और पुष्प दे 'ओं शिरः प्रभृति सर्वगात्रेभ्यो नमः' इस मन्त्रसे पूजा करे। पीछे वह अर्घ्यपात्र बाम हस्तमें ले कर उत्तानभावापन्न दक्षिणहस्त द्वारा आच्छादन कर 'ओं या दिव्या आपः पयसा संबभूवुर्या अन्तरीक्षा उत पार्थिवीर्या हिरण्यवर्णा यज्ञीयास्तान आपः शिवाः संश्योनाः सुहवा भवन्तु।' इस मन्त्रसे वह पात्र जमीन पर रखे। पीछे वाम हस्त द्वारा दक्षिणवाहुमूल स्पर्श कर 'ओं पुरुरवोमाद्रवसी विश्वे एतद्वोऽर्घ्यं नमः' इस मन्त्रसे दक्षिण हस्त द्वारा दैव ब्राह्मणमें अर्घ्यदान कर पितृपक्षमें अर्घ्य देना होता है।

दक्षिणमुखसे प्राचीनावीती और पतित वामजानु हो कर पहलेकी तरह अर्घ्यपात्र कुश द्वारा आच्छादन और उद्घाटन कर पितृब्राह्मणमें दक्षिणाग्र पवित्र दान करे। इसके बाद अन्न, जल और पुष्प द्वारा 'ओं शिरः प्रभृति सर्वगात्रेभ्यो नमः' मन्त्रसे पूजा करे। अनन्तर वामहस्तमें अर्घ्यपात्र ले कर दक्षिण हस्तको उत्तानभावमें रख उससे आच्छादन करे और 'ओं या दिव्या आपः पयसा' इत्यादि मन्त्र पढ़ कर पात्रको भूमि पर रख वामहस्त द्वारा दक्षिणवाहुमूल स्पर्श कर 'ओं अमुकगोत्र पितरमुकदेवशर्म्मन्नेतत्तेऽर्घ्यं ओं ये चात्र त्वामनुयांश्च त्वमनु तस्मै ते स्वधा। यह मन्त्र पढ़े। पीछे दक्षिण हस्त द्वारा पितृब्राह्मणमें अर्घ्य दे कर उस पात्रमें शेष जो जल रहेगा उस जलके साथ वह पात्र पूर्वस्थानमें रख दे। इसी प्रणालीसे पितृब्राह्मणमें पितामह और प्रपितामहका तथा मातामहपक्षीय ब्राह्मणमें मातामह, प्रमातामह और वृद्धप्रमातामहका अर्घ्यदान कर पूर्वस्थानमें पात्रोंको रखना होगा। केवल नामका पृथक् पृथक् उल्लेख करना होगा। एक अर्घ्य दे कर एक एक बार जल स्पर्श करना होता है।

पीछे पितृपात्रमें पितामह प्रपितामह, मातामह प्रमातामह और वृद्धप्रमातामह पात्रका जल क्रमशः ग्रहण कर प्रपितामह पात्र द्वारा आच्छादन करे। बादमें अपनी बाँई ओर समूल कुशके ऊपर 'ओं पितृभ्यः स्थानमसि' यह मन्त्र पढ़ कर न्युब्ज करे अर्थात् नीचेके पात्रको ऊपर और ऊपरके पात्रको नीचे रखना होगा।

गंधादि दान यथा—उक्त प्रकारके अर्घ्य दान कर

गन्धादि दान करना होता है। दैव, पितृ और मातामह इन तीन पक्षमें तीन पात्रोंमें गन्धादि (गन्ध पुष्प, धूप, दीप और वस्त्र) रखने होंगे। इसके बाद उत्तरमुखमें उपवीती और पातित दक्षिणजानु हो 'ओं पुरूरवोमाद्रवसो विश्वे देवा एतानि वो गन्ध पुष्प धूपदीपाच्छादनानि नमः' इस मन्त्रसे गन्धादि उत्सर्ग कर 'एष वो गन्धः' कह कर गन्ध, 'एतद् पुष्प' इस मन्त्रसे पुष्प, 'एष वो धूपः' इस मन्त्रसे धूप, 'एष वो दीप' मन्त्रसे दीप एतद् आच्छादन मन्त्रसे वस्त्र, ये सब द्रव्य दैवपक्षीय द्वयमय ब्राह्मणके ऊपर दे। इस प्रकार दैवपक्षमें गन्धादि दान कर पित्रादिपक्षमें गन्धादि दान करना होता है।

दक्षिणमुखसे प्राचीनावीती और पातित वाम जानु हो 'अमुकगोत्र पितः अमुकदेवशर्मन्' इस प्रकार पिता मह और प्रपितामहका नामोल्लेख कर 'एतानि ते गन्ध पुष्पधूपदीपाच्छादनानि ओं ये चात्र त्वा इत्यादि' मन्त्रसे उत्सर्ग कर 'एष ते गन्ध मन्त्रसे गन्ध 'एतत्ते पुष्प' मन्त्रसे पुष्प, 'एष ते धूप' मन्त्रसे धूप, एष ते दीप' मन्त्रसे दीप, एतत्ते आच्छादन' मन्त्रसे वस्त्र, पितृपक्षीय ब्राह्मणके ऊपर दे। पुरोहित प्रत्येक द्रव्यदानके बाद सुगन्धः, सुपुष्प सुधूपः, सुदीपः स्वाच्छादन, इस प्रकार प्रतिवाक्य कहें। इस प्रणालीसे मातामह, प्रमातामह और वृद्ध प्रमातामहका नामोल्लेख कर यह द्रव्य मातामह पक्षके द्वयमय ब्राह्मणके ऊपर देना होगा। इस तरह गन्धादि दान कर ओं गन्धादिदानमिदमच्छिद्र मस्तु' इस मन्त्रसे अच्छिद्रावधारण करे। पुरोहित 'ओं अस्तु' यह प्रतिवाक्य कहें।

गन्धदानके बाद अन्नदान करना होता है। अन्नदान यथा—

पहले दैवब्राह्मण, पीछे पितृब्राह्मण, उसके बाद माता मह पक्षके ब्राह्मणके सामने गोल आदि फेंक कर उस स्थानको परिष्कार करे, पीछे वहां अन्नपात्र रखे। दैव पक्षमें ईशानकोणसे ले कर दक्षिणावर्तक्रमसे पूर्वाग्र एक रेखा खींचे। इस रेखाके ऊपर दैवपक्षीय पात्र रखना होता है। इसके बाद पितृब्राह्मणके सामने नैऋत कोण से ले कर वामावर्त क्रमसे दक्षिणाग्र रेखा खींचे और एक चतुष्कोण मण्डल बना कर पितृपक्षीय पात्र रखे। इसी प्रकार मातामहपक्षीय ब्राह्मणके सामने भी अन्नपात्र रखना होगा।

उक्त प्रणालीसे तीन अन्नपात्र स्थापित होने पर एक पात्रमें जल रखे और दूसरे पात्रमें थोड़ा चावल घृतके साथ ग्रहण कर 'ओं अग्नौ करणमहं करिष्ये' यह मन्त्र पढ़े पुरोहित 'ओं कुरुष्व' यह प्रतिवाक्य कहें। इसके बाद 'ओं स्वाहा सोमाय पितृमते' इस मन्त्रसे उक्त जलमें चार अन्न डाल देना होगा। 'ओं स्वाहा अग्नये कव्य वाहनाय इस मन्त्रसे उस जलमें एक बार तथा अग्र तक दो बार अन्न निक्षेप करना होता है। पीछे यह अन्न दैवपक्षमें दो बार, पितृपक्षमें तीन बार और मातामह पात्र में तीन बार परिवेशन करे।

इसके बाद पहले दैवपात्रको अनुत्तान हस्त अर्थात् अधोमुखभावमें वामहस्त नीचे और दक्षिणहस्त उसके ऊपर रख 'ओं पृथिवी ते पात्र द्यौ पिधानं ब्राह्मणस्य मुखे अमृतेऽमृतं जुहोमि स्वाहा' यह मन्त्र पढ़े। पीछे पितृपक्षके पात्रको उत्तान हस्त अर्थात् चित भावमें वाम हस्त नीचे और दक्षिण हस्त उसके ऊपर रख 'ओं पृथिवी ते पात्र इत्यादि मन्त्र पाठ करे। इसी प्रणालीसे मातामहपक्षका पात्र भी स्थापन करना होगा।

अनन्तर इन तीनों पात्रमें अन्नादि अर्थात् अन्न और उसका उपकरण और घृत, मधु जल, फल आदि नाना प्रकारके उपादेय द्रव्य परिवेशन करे। इनमेंसे दैवपात्रमें दो भाग, पितृपात्रमें तीन भाग और मातामहपात्रमें तीन भाग कर देना होगा। सभी उपकरण पृथक् पृथक् पात्रमें रखने होते हैं। यदि पृथक् पात्र नहीं रहे तो अन्नके ऊपर रखना होगा, किन्तु पृथक् पात्रमें रख कर कभी भी अन्नके ऊपर न रखे। अन्य पात्रमें सीसा, लोहा और अन्तर्निर्मित पात्र यदि ८ अंगुलसे कम अथवा टूटा फूटा हो या मृण्मय पात्र हो तो उसमें कदापि न रखे। किन्तु ताम्रपात्र भग्न होने पर भी उसमें परिवेशन किया जा सकता है तथा रौप्यपात्र आठ अंगुलसे कम होने पर भी यह प्रशस्त है।

इस प्रकार अन्नादि परिवेशन कर दैवपक्षका पात्र वाम हस्तसे पकड़ 'ओं विष्णो हव्यमिदं रक्षस्व यह

बाद पितामहका पिण्ड कुशके आगे रखे। मातामहपक्षीय ब्राह्मणके सामने आस्तीर्ण कुश पर उक्त नियमसे मूल, मध्य और अग्रभागमें मातामह, प्रमातामह और वृद्ध प्रमातामहका पिण्ड दे। प्रत्येक पिण्डदानके बाद वाम-हस्तमें जो जलपात्र था उस जलपात्रसे 'गया गङ्गा गदाधरो हरिः' कह कर पिण्ड पर थोड़ा जल देना होता है।

पात्रमें पिण्डका अवशिष्ट जो अंश रहेगा, उसे पिण्डके चारों ओर छिड़क देना होता है। हाथमें पिण्डका जो कुछ अंश रह जाता है, एक कुशसे 'ओं लेपभुजः पितरः प्रीयन्तां' इस मन्त्रसे उसे गिरा कर पिण्डके ऊपर देना होगा। इसके बाद दोनों हाथ प्रक्षालन, आचमन और हरिस्मरण कर पिण्डपात्र प्रक्षालन करे। अनन्तर वह पात्र वामहस्तसे दक्षिण हस्तमें ग्रहण कर—

'ओं अमुकगोत्र पितः अमुकदेवशर्मन् ओं ये चात्र त्वा' इत्यादि मन्त्र पाठ कर वह जल पिण्डके ऊपर दे। इसी तरह पितामह, प्रपितामह, मातामह, प्रमातामह, और वृद्धप्रमातामह, इनके पिण्ड पर भी वह प्रक्षालित जल देना होगा।

पीछे कृताञ्जलि हो 'ओं नमो वः पितरः पितरो नमोवः' (शुक्लयजुः २३२) यह मन्त्र पढ़े, अनन्तर 'ओं गृहान्नः पितरो दत्तः' (शुक्लयजुः २।३२) यह मंत्र पढ़ कर पत्नीको आवलोकन करना होता है। 'ओं सतो वः पितरो देष्म' (शुक्लयजुः २।३२) इस मंत्रसे पिण्डाव लोकन करनेकी विधि है।

पिण्ड पर वस्त्रदान—नये वस्त्रसे सूत्र ग्रहण कर छः पिण्डके ऊपर 'ओं एतद्वः पितरो वास आधत्त' (शुक्लयजुः २।३२) अमुकगोत्र पितः अमुकदेवशर्मन् एतत्ते वासः ओं ये चात्रत्वा इत्यादि मंत्रसे पितृपिण्ड-के ऊपर वस्त्रसूत्र देना होगा। इसी नियमसे पितामह, प्रपितामह, मातामह, प्रमातामह और वृद्धप्रमातामहके पिण्ड पर भी देना होता है। इसके बाद गंध पुष्प द्वारा पिण्डकी पूजा करनी होती है। इस पूजामें परकृताञ्जलि हो कर—

'ओं वसन्ताय नमस्तुभ्यं ग्रीष्माय च नमो नमः।
वर्षाभ्यश्च शरत्संज्ञ ऋतवे च नमः सदा।
हेमन्ताय नमस्तुभ्यं नमस्ते शिशिराय च।
माससंवत्सरेभ्यश्च दिवसेभ्यो नमो नमः॥'

'ओं षड़्भ्यो ऋतुभ्यो नमः' कह कर प्रणाम करे। इसके बाद 'ओं सुसु प्रेक्षित मस्तु' इस मन्त्रसे देवपक्ष ब्राह्मणकी अग्रभूमि सेचन करे, पुरोहित 'ओं अस्तु' प्रतिवाक्य कहें। 'ओं शिवा आपः सन्तु' इस मन्त्रसे जल, 'ओं सौमनस्य मस्तु' इस मन्त्रसे पुष्प, 'ओं अक्षतञ्चारिष्टञ्चास्तु' इस मन्त्रसे दूर्वा और तण्डुल देना होगा। पुरोहित प्रत्येक बार 'ओं अस्तु' यह वाक्य कहेंगे। इस प्रणालीसे पितृ और मातामह पक्षके ब्राह्मणमें भी जल, पुष्प, दूर्वा और तण्डुल देना होगा। इसके बाद अक्षय्य दान करना होता है।

अक्षय्य दान - जलमें तिल, घृत और मधु मिला कर वह जल 'ओं अमुकगोत्रस्य पितुः अमुकस्य कृतेऽस्मिन् पार्वणविधिकश्राद्धे दत्तमिदमन्नपानादिकमक्षय्यमस्तु' इस मन्त्रसे पिण्डके ऊपर दे। पुरोहित ओं अस्तु ऐसा प्रतिवाक्य कहें। पीछे इसी तरह पितामह, प्रपितामह और वृद्धप्रपितामह, मातामह, प्रमातामह, और वृद्धप्रमातामहका नाम उल्लेख कर फिर पांच पिण्डके ऊपर देना होगा।

इसके बाद 'अघोराः पितरः सन्तु' यह मंत्र कहनेसे पुरोहित 'ओं सन्तु' कहें। 'ओं गोत्रं नो वर्द्धतां' पुरोहित कहें 'ओं वर्द्धतां' इसके बाद ब्राह्मणके हाथमें जो पवित्र दिया गया था उस पवित्रके साथ कुश पिण्ड-के ऊपर आस्तरण कर 'ओं स्वधां वाचयिष्ये' कहने पर पुरोहित कहेंगे 'वाच्यतां ओं पितृभ्यः स्वधोच्यतां' पुरोहित कहें 'ओं अस्तु स्वधा।' इसी तरह पितामह, प्रपितामह मातामह, प्रमातामह और वृद्धप्रमातामहको स्वधा वाचन करना होता है। पुरोहित प्रतिबार 'ओं अस्तु स्वधा' यह मंत्र कहें। इसके बाद—

'ओं ऊर्ज्जं वहन्तीरमृतं पयः कीलालं परिस्रुतं।
स्वधास्थ तर्पयत मे पितॄन्।' (शुक्लयजुः २।३४)

यह मन्त्र पढ़ कर सपवित्र कुशके साथ पिण्डके ऊपर जलधारा द्वारा सेक करे।

दक्षिणान्त—अपना बाईं ओर जो युग्म पात्र था, उसे उठा कर दक्षिणा करनी होती है, रजतखण्ड ग्रहण कर 'ओं विष्णुरोम् तत्सदद्य अमुके मासि अमुके पक्षे अमुके तिथौ अमुक गोत्रस्य पितुः अमुकस्य' इस प्रकार पितामह और प्रपितामहका उल्लेख कर कृतैतत् पार्वण विधिके श्राद्धकर्मणः प्रतिष्ठार्थं दक्षिणामिदं रजतखण्ड (वा तन्मूल्य) विष्णुदैवतं यथासम्भवगोत्रनाम्ने ब्राह्मणाय दद्दे।' इस प्रकार मातामह पक्षमें भी उनके नामोंका उल्लेख कर दक्षिणान्त करे।

पीछे देवपक्षमें दक्षिणान्त करना होगा—'ओं विष्णुरोमद्य अमुके मासि अमुके पक्षे अमुकतिथौ पुरूरवोमाद्रवसी विश्वेषां देवानां कृतैतत् पार्वणविधिकश्राद्धकर्मणः प्रतिष्ठार्थं दक्षिणामिदं काञ्चनखण्ड (वा तन्मूल्य) यथासम्भवगोत्रनाम्ने ब्राह्मणायाहं ददे।' यह कह कर दक्षिणान्त करे। पीछे कृताञ्जलि हो कर कहना होगा—

अनया दक्षिणया श्राद्धमिदं सदक्षिणमस्तु।' पुरोहित 'ओं अस्तु' यह वाक्य कहें। इसके बाद 'ओं विश्वेदेवाः प्रीयन्ताम्' कहने पर पुरोहित 'ओं प्रीयन्ताम्' कहें। इसके बाद *'ओं देवताभ्य पितृभ्य'* यह मन्त्र तीन बार पढ़ना होता है।

इस प्रकार पितरोंका श्राद्ध करके दक्षिणमुखसे उन के निकट कृताञ्जलि हो आशीर्वादके लिये प्रार्थना करे। 'ओं आशिषो दीयन्ताम्' इस पर पुरोहित 'ओं आशिषः प्रतिगृह्णन्तु' यह वाक्य कहें। इसके बाद निम्नोक्त मन्त्रसे आशीर्वाद ग्रहण करे। मन्त्र इस प्रकार है—

"ओं दातारो नोऽभिवर्द्धन्तां वेदाः सन्ततिरेव च।
श्रद्धा च नो मा व्यगमद् बहुदेयञ्च नोऽस्त्विति॥
अन्नञ्च नो बहु भवेदतिथींश्च लभेमहि।
याचितारश्च नः सन्तु मा च याचिष्म कञ्चन।
अन्नं प्रवर्द्धतां नित्यं दाता शतं जीवतु॥
पिण्डैः सद्भुक्तिरेभिर्ब्राह्मणैरेषामक्षया तृप्तिरस्तु।
एताः सत्या आशिषः सन्तु। पितृवर प्रसादोऽस्तु।

यह आशीर्वाद प्रार्थना करने पर पुरोहित भी 'अस्तु' कहें।

इसके बाद 'देवताभ्यः पितृभ्यश्च' इत्यादि मन्त्रका तीन बार पाठ करना होता है। यह मन्त्र पढ़नेके बाद—

'ओं वाजे वाजेऽवत वाजिनो नो धनेषु विप्रा अमृता ऋतज्ञाः। अस्य मध्वः पिबत मादयध्वं तृप्ता यात पथिभिर्देवयानैः।' (शुक्लयजु॰ ६।१८)

यह मन्त्र पढ़ कर तीन कुश द्वारा ब्राह्मणस्थ पितृ पुरुषोंका विसर्जन करना होता है। पिण्डविसर्जनके बाद उस मन्त्रसे ब्राह्मणस्थ देवताओंका विसर्जन करे—

'ओं आमावाजस्य प्रसवो जगम्यादिमे द्यावापृथिवी विश्वरूपे। आमागन्तां पितरा मातरा च मा सोमोऽमृतत्वेन गम्यात्।' (शुक्लयजु॰ ६।१९)

इस मन्त्रसे दक्षिणावर्त्त क्रमसे जलधारा द्वारा ब्राह्मण वेष्टन कर प्रणाम करे।

"ओं पिता स्वर्गः पिता धर्मः पिता हि परमन्तपः।
पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्वदेवताः॥"

इसके बाद 'ओं नमो ब्रह्मण्यदेवाय' इत्यादि मन्त्र पाठ और सूत्रप्रणाम करे।

इसके बाद एक पात्रमें जल ले कर 'ओं जलनाराय णाय नमः' मन्त्रसे एक गन्धपुष्प दे कर 'ओं येषां श्राद्ध कृतमिदं तेषामक्षयाये तृप्तये त्वयि जले पात्रीयान्नादिक समर्पितं' यह मन्त्र पढ़ कर पितृपात्र और *मातामह* पात्रका कुछ अन्न उस जलमें समर्पण करे। इसके बाद 'ओं येषां श्राद्ध कृतं तेषां रक्षयायै तृप्तये त्वयि जले पात्रीयान्नादिक समर्पितं' इस मन्त्रसे देवपक्षका पात्री यान्न समर्पण करे। गङ्गाजलमें यह अन्न समर्पण करनेमें 'गङ्गाम्भसि' *यह वाक्य पढ़ कर देना होगा।*

अनन्तर सभी पिण्ड उठा कर उनमेंसे सूत्र परिष्कार कर लें और उन पिण्डोंको गो, अज और विप्रको खिला दें अथवा *जलमें* फेंक दें। इसके बाद शांति और आशीर्वाद ग्रहण करना होता है। इस समय उपवीती हो कर पुत्रके साथ जल ले ब्राह्मणोंकी ग्रन्थि खोल देनी होती है। 'ओं महावामदेव्य ऋषि' इत्यादि शांति मन्त्र द्वारा मस्तक पर जलका छींटा दे शांतिजल ग्रहण करना होता है। इस प्रकार शांति ले कर अच्छिद्राव धारण करे।

अच्छिद्रावधारण—दाहिने हाथसे प्रदीप आच्छादन

कर दोनों हाथ धो डाले और आचमनके बाद हाथमें थोड़ा जल ले कर—

'कृतैतत् पार्वणविधिकश्राद्धकर्माच्छिद्रमस्तु' यह कह कर जल परित्याग करना होता है। इसके बाद विष्णुरोम् तत्सदद्य अमुके मासि अमुके पक्षे अमुके तिथौ अमुकगोत्रः श्रीअमुकदेवशर्मा कृतैतत् पार्वणविधिकश्राद्धकर्मणि यद्वैगुण्यं जातं तद्दोषप्रशमनाय श्रीविष्णुस्मरणमहं करिष्ये, यह कह कर—

'ओं तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः।

दिवीव चक्षुराततं।' मंत्र पढ़ कर दश बार ओं विष्णुका जप करे। जपके बाद—

'ओं अज्ञानाद् यदि वा मोहाद् प्रच्यवेताध्वरेषु यत्।

स्मरणादेव तद्विष्णोः सम्पूर्णं स्यादिति श्रुतिः॥'

इत्यादि मंत्र पाठ करे।

इसी प्रणालीसे पार्वणश्राद्ध करना होता है। सामवेदीयगण ही उक्त पद्धतिके अनुसार श्राद्ध करेंगे। यजुर्वेदीय और ऋग्वेदीयगणके श्राद्धमें सामान्य प्रभेद है।

एकोद्दिष्ट श्राद्धमें भी एक ब्राह्मण, एक पवित्र, एक अर्घ्य और एक पिण्ड, उक्त प्रणालीके अनुसार देना होगा। परंतु प्रभेद इतना ही है, कि इसमें दैवपक्ष नहीं है। एक ब्राह्मणकी स्थापना करके उसके सामने एक व्यक्तिके उद्देशसे श्राद्धानुष्ठान करे। इस श्राद्धमें पहले भोज्यादि दान करके ब्राह्मण स्थापन करे। पार्वणश्राद्धमें 'पार्वणविधिकश्राद्धवासरे' वहां पर एकोद्दिष्ट विधिकश्राद्धवासरे' या एकोद्दिष्टविधिकश्राद्ध' इत्यादि प्रकारका वाक्य होगा। इस प्रकार ब्राह्मण स्थापन करके उसे एक आसन, एक अर्घ्य, गंधादिदान तथा अन्नदान और एक पिण्डदान इत्यादि सभी कार्य एक एक कर करने होते हैं। इसमें वे सभी मंत्र पढ़ने होते हैं, परंतु सामवेदीय एकोद्दिष्ट, यजुर्वेदीय एकोद्दिष्ट और ऋग्वेदीय एकोद्दिष्ट इनमें थोड़ी थोड़ी विभिन्नता है। इस एकोद्दिष्ट श्राद्धमें द्विजातियोंका अन्नपाक कर उससे अन्नदान और पिण्डदान करे। शूद्र केवल आमान्न द्वारा पिण्डदान करेगा। आद्य एकोद्दिष्ट और मासिकैकोद्दिष्ट श्राद्धमें, प्रेतके उद्देशसे आमिष देना होता है। श्राद्धकी प्रणाली साम्वत्सरिक एकोद्दिष्ट श्राद्धकी तरह है। इस श्राद्धके दिन अद्गप्रायश्चित्त, तिलदान और मृत्युके पहले वैतरणी नहीं होनेसे वैतरणी, षोडशादि दान और वृषोत्सर्ग कर श्राद्ध करे। इस श्राद्धमें प्रेतके उद्देशसे षड्ङ्ग अर्थात् आसनार्थ पीढ़ा, छत्र, पादुका, प्रदीप, भोजनार्थ अन्नपात्र और जलपात्र तथा सोपकरण शय्यादान करना होता है। इस षड्ङ्ग द्रव्यमेंसे प्रत्येक विशेष विशेष मंत्र पढ़ कर देना होता है। यथा—

'ओं अमुकगोत्र प्रेत अमुकदेवशर्मन् एतत्ते आसनं स्वधा।' इस मंत्रसे आसन उत्सर्ग कर उक्त मंत्रका पाठ करे।

ओं अत्रासने देवराजाभ्यनुज्ञातो विश्राम्यतां द्विजवर्ज्जानुग्रहाय प्रसादये त्वासनं गृहाण पूतं ज्ञानाग्निपूतेन करेण विप्र।'

इत्यादि रूपमें आसनादि देने होते हैं। प्रेतको आसन पर बैठने देना होता है, इसी प्रकार छत्र, पादुका और शय्यादि भी देना आवश्यक है।

प्रेतश्राद्धमें आशीर्वादके लिये प्रार्थना नहीं करनी होती, अन्य सभी श्राद्धोंमें पितरोंसे आशीर्वाद ग्रहण करना होता है। किंतु इस श्राद्धमें 'ओं दातारोऽसि- वर्द्धन्ताम्' इत्यादि मंत्रका पाठ नहीं करना चाहिये। इस श्राद्धमें पितृपदका उल्लेख न हो कर प्रेतपदका उल्लेख होता है। सपिण्डीकरण द्वारा प्रेतत्व दूर होने पर पितृपदका उल्लेख होगा।

सपिण्डीकरण श्राद्ध पार्वणविधिके अनुसार होगा। किंतु पार्वणविधिके अनुसार होने पर भी विकृत पार्वण होगा, अर्थात् पार्वण श्राद्धमें ६ पीढ़ीका श्राद्ध करना होता है, किंतु सपिण्डीकरणमें ६ पीढ़ीके श्राद्ध स्थलमें ४ पीढ़ीका श्राद्ध होगा। यदि पिताका सपिण्डीकरण हो, तो पितामह, प्रपितामह और वृद्धप्रपितामह इन तीन पुरुष तथा प्रेतरूपी पिता, कुल चार पीढ़ीका श्राद्ध करना होता है। पिताका पिण्ड पितामह, प्रपितामह और वृद्धपितामहके पिण्डमें मिला कर समन्वय करना होता है।

माताके सपिण्डीकरणस्थलमें पितामही, प्रपितामही और वृद्धप्रपितामही इन चारोंका श्राद्ध करना होगा।

अतएव पार्वणविधानसे श्राद्ध होने पर भी यह ठीक पावण श्राद्ध नहीं है, विकृतपावण श्राद्ध है। पिता होने पर पितामह आदि, माता होने पर पितामही आदि तीन पीढ़ीका श्राद्ध पार्वणविधानसे और मृतीभूत पिता या माताका श्राद्ध एकोद्दिष्ट विधानानुसार कर के अर्घ्य और पिण्डादिका समन्वय करना होता है। इसी कारण उसको सपिण्डीकरण श्राद्ध कहते हैं। सपिण्डीकरण शब्दमें विशेष विवरण देखो।

आभ्युदयिक श्राद्धमें सामवेदीयगण ६ पुरुष और यजुर्वेदीयगण ९ पुरुषका श्राद्ध करें। ९ पुरुषके श्राद्ध स्थलमें पार्वणकी तरह पितृपक्ष और मातामह इन दोनों पक्षमें तीन पुरुष करके ६ पुरुष तथा ९ पुरुष स्थलमें पहले मातृपक्ष अर्थात् माता, पितामही और प्रपितामही ये तीन पुरुष तथा पितृपक्ष और मातामह पक्षमें ६ पुरुष इन ९ पुरुषका श्राद्ध करना होता है।

अन्यान्य श्राद्धमें स्वस्तिवाचन और सङ्कल्प आदि नहीं है। किन्तु इस श्राद्धमें स्वस्तिवाचन और सङ्कल्प करना होता है। सङ्कल्प करनेका विधान इस प्रकार है—"ओमद्य अमुके मासि अमुके पक्षे अमुकतिथौ अमुकगोत्र श्रीअमुकदेवशर्मा अमुकगोत्रस्य श्रीअमुकदेव शर्मणोऽमुककर्माभ्युदयार्थं गणपत्यादिगौर्यादिषोडश मातृकापूजा वसोर्धारासम्प्रदानायुष्यसूक्तजपाभ्युदयिक श्राद्धान्यहं करिष्ये।"

इसी प्रकार सङ्कल्प करना होता है। संस्कारकार्य में आभ्युदयिक श्राद्ध होनेसे पहले मार्कण्डेय, गौर्यादि षोडशमातृकापूजा वसुधारा और अधिवास करके उस समय यह श्राद्ध करना होता है। इस श्राद्धमें पित्रादि पदके पहले प्रत्येक बार नान्दीमुख, इस श्राद्धका उल्लेख करना होता है। जिस कर्मके अभ्युदयके कारण आभ्युदयिक होता है उस कर्मका भी उल्लेख करना होता है। यथा—'अमुकगोत्रनान्दीमुखपितः अमुकदेव शर्मन्, अमुककर्माभ्युदयार्थं' इत्यादि प्रकारसे उल्लेख होगा।

पार्वण श्राद्धमें जो श्राद्ध प्रणाली कही गई है यह भी उसी प्रणालीके अनुसार होगा अर्थात् पहले भोज्यो त्सर्ग, वास्तुपूजा, यज्ञेश्वर विष्णु आदिकी पूजा, ब्राह्मण स्थापन, आसनदान आदि सभी उसी प्रणालीसे होंगे। पार्वणश्राद्धमें प्रत्येक बार मोटक और तिलसे सभी द्रव्य उत्सर्ग करने होते हैं। किन्तु नान्दीमुखश्राद्धमें त्रिपत्र और यव द्वारा उत्सर्ग करनेका विधान है। आभ्यु दयिक श्राद्धमें तिल द्वारा कोई कार्य नहीं होता, सभी कार्य यव द्वारा करने होंगे। मन्त्रादिमें भी कुछ कुछ प्रभेद है जो श्राद्धपद्धतिमें निर्दिष्ट हुआ है। विस्तार हो जानेके भयसे यहां उनका उल्लेख नहीं किया गया।

पहले कहा जा चुका है, कि, स्त्रियोंको श्राद्धमें अधि कार नहीं है। इस श्राद्ध शब्दसे पार्वण और नान्दी मुख श्राद्ध समझा जायगा। ये दो ही श्राद्ध स्त्रियां नहीं कर सकतीं, किन्तु एकोद्दिष्ट श्राद्ध स्त्रियां कर सकती। कुश द्वारा ब्राह्मण तैयार कर उसके सामने श्राद्ध करना होता है। किन्तु सधवा स्त्रियोंको कुश और तिल द्वारा श्राद्ध करना निषिद्ध बताया है, अतएव वे कुशके बदले दूर्वा द्वारा ब्राह्मण प्रस्तुत तथा तिलके बदले यव द्वारा श्राद्ध करें। किन्तु विधवा स्त्री कुश और तिल द्वारा श्राद्ध कर सकेगी।

स्त्री और शूद्रगण श्राद्धके समय श्राद्धोक्त मन्त्रका पाठ नहीं कर सकेंगे, क्योंकि वेदमन्त्रमें उन्हें अधिकार नहीं है। अतएव वे केवल वाक्य करके ये सब द्रव्यादि दान करें। पुरोहित ठाकुरका वेदमन्त्रका पाठ करनेसे ही सभी कार्य सिद्ध होंगे।

श्राद्धमें पितृगणके परितृप्त होनेसे सभी अभीष्टकी सिद्धि होती है। उनसे यही वर मांगना होगा, कि हे पितृगण! हमारे कुलमें जिससे लोगोंका वृद्धि हो, अध्ययन, अध्यापन और यागादि द्वारा वेदशास्त्रकी जिसमें सम्यक् आलोचना हो, हमारे पुत्रपौत्रादि वंश परम्परा जिससे चिरकाल विस्तृत रहे, वेद परसे अटल श्रद्धा जिससे हम लोगोंके कुलसे दूर न हो तथा दान करनेके लिये देय द्रव्योंका जिससे कभी असद्भाव न हो, हम लोगोंके अन्न बहुत हो, हम अतिथि लाभ करें, हमसे लोग प्रार्थना करें, पर हम किसीसे भी प्रार्थना न करें।

पितरोंकी प्रार्थना करने पर वे सन्तुष्ट हो कर य

सब प्रदान करते हैं, उनका यह आशीर्वाद निश्चय ही सत्य होता है।

श्राद्धकर्तृ (सं० त्रि०) श्राद्धाधिकारी, जिसे श्राद्ध करनेका अधिकार हो। श्राद्धाधिकारी बहुत हैं, श्राद्ध शब्दमें उसका उल्लेख हो गया है। श्राद्ध देखो।

श्राद्धकर्म्मन् (सं० क्ली०) श्राद्ध एव कर्म। श्राद्ध कृत्य-कार्य, श्राद्धकार्य।

मनुमें लिखा है, कि श्राद्ध उपस्थित होने पर उसके पूर्व दिन अथवा अगत्या उस कर्मके दिन बहुत कम होने पर शास्त्रप्रणोदित अर्थात् शास्त्रोक्त लक्षणाक्रान्त तीन ब्राह्मणोंको यथाविधान सत्कारपूर्वक निमन्त्रण कर भोजन कराना होता। (मनु ३।१८७)

श्राद्धकाल (सं० पु०) अशौचान्तका दूसरा दिन। यह ब्राह्मणके लिये ११वां, क्षत्रियके लिये १३वां, वैश्यके लिये १६वां और शूद्रके लिये ३१वाँ दिन गिना जाता है। त्रिपक्ष, अमावस्या, श्रावणी और माघी पूर्णिमा, कृष्ण एकादशी, महालया, षाण्मासिक और सम्वत्सरान्तमें एक दिन श्राद्धकाल निर्द्धारित है।

श्राद्धत्व (सं० क्ली०) श्राद्धका भाव या धर्म।

श्राद्धदेव (सं० पु०) श्राद्धस्य देवः। १ यमराज। (अमर) ये सूर्यके औरस और संज्ञाके गर्भसे उत्पन्न हुए हैं। २ मनुभेद। मार्कण्डेयपुराणमें लिखा है, कि मनु ज्येष्ठ, श्राद्धदेव और प्रजापति नामसे वैवस्वत तथा यम और यमी ये दोनों कनिष्ठ और यमज हो कर उत्पन्न हुए। (मार्क०पु० १०६।४) ३ धर्मराज। ४ श्राद्धमें निमंत्रित ब्राह्मण। ५ पितृलोग।

श्राद्धदेवता (सं० पु०) श्राद्धदेव। (भागवत ४।१८।१८)

श्राद्धदेवत्व (सं० क्ली०) श्राद्धदेवका कार्य।

श्राद्धपक्ष (सं० पु०) तर्पण, पिण्डदान आदिके लिये निश्चित आश्विन मासका कृष्णपक्ष; पितृ-पक्ष।

श्राद्धभुज् (सं० पु०) १ श्राद्धमें भोजन करनेवाले ब्राह्मण। २ पितृपुरुष। ये लोग श्राद्धका अन्न लेते हैं।

श्राद्धभोक्तृ (सं० पु०) श्राद्धभुज् देखो।

श्राद्धशाक (सं० क्ली०) श्राद्धे देयं शाकं। काल शाक, नाड़ी शाक।

श्राद्धशिष्ट (सं० क्ली०) श्राद्धका अवशिष्ट, पितरोंको दिया हुआ अन्न।

श्राद्धसूतक (सं० पु०) श्राद्धके उद्देश्यसे बनाया हुआ भोजन, पितरोंके उद्देशसे ब्राह्मणोंको खिलानेके लिये बनाया हुआ भोजन।

श्राद्धाह्निक (सं० त्रि०) श्राद्धाह्नसम्बन्धी क्रियावान।

श्राद्धिक (सं० त्रि०) श्राद्धमनेन भुक्तमिति श्राद्ध ठन (श्राद्धमनेन भुक्तमिनिठनौ। पा ५।२।८५) १ श्राद्धभोक्ता।

(पु०) २ श्राद्ध सम्बन्धी द्रव्यादि। याज्ञवल्क्यने कहा है, कि दिवारात्रिको दोनों संधिमें मेघ गर्जन करनेमें, भूकम्प और उल्कापातमें; अष्टमी, चतुर्द्दशी, अमावस्या और पूर्णिमा तिथिमें, चन्द्र सूर्य ग्रहणकालमें, ऋतु सन्धिमें तथा श्राद्धिक द्रव्यादि भोजन और प्रतिग्रह कालमें वेदोपनिषद्का पाठ बंद करना होता है अर्थात् उस समय पाठ बंद करनेके बाद उसी दिन या तिथिमें फिर पाठादिका कार्य नहीं होगा।

श्राद्धिन् (सं० त्रि०) श्राद्ध इनि (श्राद्धमनेन भुक्तमिनिठनौ। पा ५।२।८५) श्राद्धभोक्ता, श्राद्धमें भोजन करनेवाला।

श्राद्धीय (सं० त्रि०) श्राद्ध-सम्बन्धी द्रव्यादि, श्राद्ध सम्बन्धी शुष्क और सिद्ध अन्नादि। मनुमें लिखा है, कि श्मशान और ग्रामके समीप, गोचर स्थानमें, श्राद्ध सम्बंधी द्रव्य परिग्रहानन्तर तथा मैथुनवसन पहन कर वेदादि धर्मशास्त्र अध्ययन नहीं करना चाहिए। (मनु ४।११६)

श्राद्धेय (सं० त्रि०) श्राद्धान्न सम्बन्धी। अनुशासन पर्व्वमें 'अश्राद्धेयानि धान्यानि' पद है।

श्रान्त (सं० पु०) श्रम-क्त। १ शान्त। २ जितेन्द्रिय। (त्रि०) ३ श्रमयुक्त, क्लान्त, थका मांदा। ४ खिन्न, दुःखित। ५ निवृत्त। ६ भोगतृप्त, जो सुख भोग कर तृप्त हो चुका हो।

श्रान्तसंवाहन (सं० क्ली०) श्रान्तस्य संवाहनं। श्रान्त व्यक्तिकी शुश्रूषा, परिश्रान्त व्यक्तिको आसन आदि दे कर उसकी थकावट दूर करना।

श्रान्तसद् (सं० त्रि०) जो सुखोपभोगके निमित्त कृच्छ्र, चान्द्रायण आदि द्वारा परिश्रान्त हो कर अवस्थान करे, यक्ष गन्धर्व आदि।

श्रान्ति (सं० क्ली०) श्रम क्तिन्। १ श्रम, परिश्रम,

मेहनत। २ क्लेश, दुःख। ३ खेद। ४ विश्राम, आराम।

श्रान्तोपचार (सं० पु०) परिश्रान्त अश्वकी शुश्रूषा अर्थात् परिश्रमके बाद उसे मालिश करना।

श्राप (सं० पु०) शाप देखो।

श्रायिन् (सं० त्रि०) श्रा णिच् णिनि। जो भोजन बनाता हो, रसोइया। (कात्यायनश्रौ० २५।१।८)

श्राम (सं० पु०) श्राम्यतीति श्राम अच्। १ मास, महीना। २ मण्डप, घर। ३ काल, समय।

श्रामण (सं० क्ली०) श्रमणस्य भावः कर्म वा श्रमण अण् (हायनान्तयुवादिभ्योऽण्। पा ५।१।१३०) इति युवादित्वा दण्। श्रमणका भाव या कर्म।

श्रामणेर (सं० पु०) जिनभिक्षु शिष्य। पर्याय—चेटुक, प्रव्रजित, महोपासक, गोमी। (त्रिकाण्डशेष)

श्राय (सं० पु०) श्रि श्रये (श्रिणीभुवोऽनुपसर्गे। पा ३।३।२४) इति श्रि घञ्। १ श्रयण, आश्रय। (भट्टि ७।३६) (त्रि०) श्राद्देवता अस्य श्री अण्। २ श्री सम्बन्धी, लक्ष्मी सम्बन्धी।

श्रायन्तीय (सं० क्ली०) साममेद।

श्रायस (सं० त्रि०) श्रेयस् अण् (दविकाशि शपेति। पा ७।३।१) इति आद्ऐचः आत्, श्रेयसि भावः इति सिद्धान्तकौमुदी। मङ्गलजात उत्पन्न, मङ्गलजनक।

श्राव (सं० पु०) श्रु घञ्। १ श्रवण, कान। २ इक्ष्वाकु वंशीय एक राजा। (महाभारत ३।२०१।३) ३ श्रोताम, गन्धर्वराजा। (भावप्रकाश)

श्रावक (सं० पु०) शृणोतीति श्रु ण्वुल्। १ बौद्ध धर्मका माननेवाला संन्यासी। २ जैन धर्मको माननेवाला संन्यासी। ३ वह जो जैनधर्मका अनुयायी हो। ४ नास्तिक। ५ काक, कौआ। श्रावयतीति श्रु णिच् ण्वुल्। ६ दूरका शब्द, दूरका आवाज। ७ शिष्य, छात्र। (त्रि०) ८ श्रवण करनेवाला, सुननेवाला।

श्रावक—भारत महासागरके पूर्वीय द्वीपोंके अन्तर्गत बोर्नियो द्वीपका दक्षिण-पश्चिमांशस्थ एक विभाग। वर्त्तमान समयमें यह शरावक कहलाता है। यह जनपद समुद्रोपकूलमें अवस्थित है। इसकी लम्बाई ६० मील और चौड़ाई ५० मील है, सुतरां इसका भूपरिमाण ३००० वर्गमील है। यह स्थान प्रायः जङ्गलोंसे भरा है। किन्तु बीच बीचमें बहुत कम स्थान जङ्गलसे रहित है और वहां लोगोंकी बस्ती दिखाई देती है। वनप्रदेशमें विना पूंछके बन्दर हिरण और जङ्गली सुअर बहुत पाये जाते हैं। इनके सिवाय विभिन्न श्रेणीकी वनवासी असभ्य जातियोंका भी वास है।

यहां तीन प्रधान नदियां हैं, उनमें शरावक नदी ही प्रधान है। यह मध्यदेशस्थ पहाड़से निकली हुई दो शाखा नदियोंके संमिश्रणसे गठित हुई है। इस संगमके बाद प्रायः बीस मील रास्ता तै कर शरावक नदी समुद्रतटसे १२ मील दूर फिर दो धाराओंमें विभक्त हो कर तीव्र गतिसे समुद्रकी ओर प्रवाहित होती है। समुद्रतटसे वह पुनः नाना शाखा प्रशाखाओंमें विभक्त हो कर नदी मुहानाको विस्तृत एवं नदी जालमें विक्षिप्त करती है। इस नदीमालाकी सकल पुष्टशाली धारा मरतावास कह लाती है। उसका विस्तार प्रायः एक मीलका तीसरा भाग है और पूर्ण धाराके समय जलकी गहराइ प्रायः ८ फादम रहती है। इस कारण पण्यद्रव्यवाही सुवृहत् अर्णव पोतसमूह इस नदीकी धारामें अनायास ही प्रवेश कर सकते हैं। इस नदीके तीर पर समुद्रतटसे १५ मील दूर कुचिं नामक स्थानमें मल्यजातिका एक उपनिवेश है। इस स्थानकी जनसंख्या दो सहस्रसे कुछ अधिक है, किन्तु उन अधिवासियोंकी अवस्था अच्छी नहीं है।

पहले यह वनप्रदेश दूरोपवासी वणिकोंसे अपरिचित था। कोइ भी मनुष्य यहां भ्रमण करनेके लिये इस वनप्रदेशमें परिदर्शन करने नहीं आये। यहां थोड़े परिमाणमें बालू और दानेदार पत्थर पाये जाते हैं। १८२४ ई०में यहां रसाञ्जनकी खान (Sulphuret of antimony) आविष्कृत हुई, जिससे यूरोपवासियोंकी दृष्टि इस प्रदेश पर आकृष्ट हुई। इस समय यह रसाञ्जन यूरोप तथा अमेरिकाके सभी स्थानोंमें चालान किया जाता है।

१८४१ ई०में सर जेम्स ब्रुक नामक एक अङ्गरेजने इस देशमें आ कर बोर्नियो द्वीपके सुलतानसे इस प्रदेशका शासनाधिकार प्राप्त किया। अनन्तर उन्होंने अपने मानसिक दृढ़िबल अपरिमित साहस और अध्यवसाय से इस प्रदेशका यथेष्ट शासन सुधार किया। ये राजाकी

उपाधि धारण कर स्वाधीनतापूर्वक राज्यशासन चलाते थे। इनके शासनके समय श्रावक नगरमें मलय, दायक तथा चीन आदि जातियां आ कर बस गईं जिससे इस नगरकी जनसंख्या उस समय १५ हजारसे भी अधिक हो गई। १८५४ ई०में इस नगरके व्यापारकी खूब उन्नति हुई एवं इसका भाग्य-सितारा चमक उठा।

मलयभाषामें दायक शब्दसे यहांके आदिम वन्य अधिवासियोंका बोध होता है। वास्तवमें दायक लोग एक जातिके अन्तर्भुक्त नहीं थे। उक्त सर जेम्स ब्रुकने विशेष पर्यालोचना करके देखा, कि यहां प्रायः ५० वर्गमील स्थानमें बीस भिन्न भिन्न जातियां वास करती हैं। इन लोगोंकी भाषा अफ्रिका वा दक्षिण-अमेरिकाकी वन्य जातियोंकी भाषासे बहुत कुछ मिलती है। एशियाके किसी भी देशीय सभ्य वा वन्यभाषासे इस भाषाका मेल नहीं है। मलय उपनिवेश प्रतिष्ठित होनेके बादसे मलयवासी स्थानीय दायक जातिके ऊपर शासन करते आ रहे हैं। सरावक देखो।

श्रावग (हिं० पु०) श्रावक देखो।

श्रावगी (हिं० पु०) जैनधर्मका माननेवाला, जैनी।

श्रावण (सं० पु०) श्रवणेनाचरति नतु कार्येण इति श्रवण-अण्। १ पापण्ड। (मेदिनी) श्रवणेन गृह्यते श्रवण-अण् (शेषे। पा ४।२।९२) २ श्रवणेन्द्रियग्राह्य, शब्द। (काशिका) श्रवणानक्षत्रयुक्ता पौर्णमासी श्रावणी सा यत्र विद्यते श्रवणा-अण्। ३ वैशाखादि द्वादश मासके अन्तर्गत चतुर्थ मास। इस मासकी पूर्णिमा तिथिमें श्रवणा नक्षत्र संयुक्त रहनेके कारण इसका नाम श्रवणा पड़ा है। (पु०) नभस्, श्रावणिक। (अमर) (स्त्री०) नभस्। (शब्दरत्नावली)

श्रावण मास सौर और चान्द्र भेदसे दो प्रकारका है। जितने दिन सूर्य कर्कट राशिमें अवस्थान करते हैं, उन्हें सौर एवं कर्कटराशिस्थ रहनेके बाद जिस दिनसे शुक्ल प्रतिपद् आरम्भ होता है, उस दिनसे ले कर अमावस्या पर्यन्त जो मास पूरा होता है, उसे चान्द्र श्रावण कहते हैं। यह चान्द्रश्रावण फिर गौण और मुख्यभेदसे दो प्रकारका है। उनके मध्य जिस प्रकार पहले कहा गया है, उसे मुख्य और उक्त रूपसे कृष्णप्रतिपद्से ले कर पूर्णिमा तक जो महीना समाप्त होता है, वह गौणचान्द्र कहलाता है। (मलमासतत्त्व)

देवीपुराणमें श्रावण मासके कार्य निम्नोक्त प्रकारसे निर्धारित हैं। यथा—हरिशयन आरम्भ होनेके बादके कृष्णपक्षकी पञ्चमी तिथिमें स्नुहीवृक्ष पर (सीजके पेड़ पर) वास करनेवाली मनसादेवीकी पूजा करनी होगी अर्थात् इस दिन घरके प्राङ्गणमें रोपे हुए सीजवृक्षकी जड़में घटादि स्थापन करके क्षीर, सर्पिः, नैवेद्यादि उपकरण सामग्रियां प्रदान करते हुए पहले मनसादेवीकी विधिपूर्वक पूजा करनी होती है। उसके पीछे अनन्तादि नागगणकी पूजा की जाती है; इस पूजासे लोगोंको सर्पका भय जाता रहता है।

गरुड़पुराणमें लिखा है, कि अनन्त, वासुकि, शङ्ख, पद्म, कम्बल, कर्कोटक, धृतराष्ट्र, शङ्खक, कालीय, पिङ्गल, मणिभद्रक, इन सब नागोंकी पूजा करनेसे इस संसारमें सर्पभय दूर हो जाता है और परलोकमें स्वर्ग मिलता है।

पूजाविधि—उक्त गौणचान्द्र श्रावण पञ्चमीके दिन स्नानादि नित्यक्रिया समाप्त कर उत्तरकी ओर मुंह करके बैठ, 'अद्य श्रावणे मासि कृष्णपक्षे पञ्चम्यां तिथौ अमुकगोत्रः श्रीअमुकदेवशर्मा सर्पभयाभावकामो मनसादेवीपूजामहं करिष्ये' इस प्रकार सङ्कल्प करनेके बाद सीजवृक्षकी जड़में उक्त प्रकारसे घट अथवा जलमें पूजा करनी चाहिये। न्यासादि करनेके बाद देवीका 'अम्ब' इत्यादि कह कर ध्यान करना कर्त्तव्य है। इसके पीछे 'मनसादेवि इहागच्छ' कह कर देवीका आवाहन किया जाता है और 'एतत् पाद्यं ओम् मनसादेव्यै नमः' इस मंत्रसे यथाशक्ति गंध, पुष्प, धूप, दीप तथा नैवेद्यादि प्रदान करनेकी विधि है। इसके उपरांत अनन्तादि नागोंकी पूजा की जाती है। उस पूजामें क्षीर, सर्पि और नैवेद्य ही प्रधान प्रयोजनीय उपकरण हैं। पहले उक्त अनन्तादिकी पाद्यादि द्वारा पूजा करना प्रयोजनीय है। इसके बाद 'ओम् योऽसावनन्तरूपेण ब्रह्माण्डं सचराचरं। पुष्पवद्धारयेन्मूर्ध्नि तस्मै नित्यं नमोनमः' इस मंत्रसे तीन बार पूजा करनी चाहिये। तदन-

-तर 'ओम् वासुकये नमः, ओम् कम्बलाय नमः, ओम् कर्कोटाय नमः, ओम् शङ्खकाय नमः, ओम् कालीयाय नमः, ओम् तक्षकाय नमः, ओम् पिङ्गलाय नमः, ओम् महापद्माय नमः, ओम् कुलिकाय नमः, ओम् मणिभद्राय नमः, ओम् धनञ्जयाय नमः, ओम् शेषाय नमः, ओम् ऐरावताय नमः' कह कर पृथक् पृथक् भावसे प्रत्येककी पूजा करनी चाहिये, किन्तु यदि प्रत्येकके लिये पूर्वोक्त कुल उपकरण सामग्रियां दीनतावश इकट्ठा न हो सके, तो केवल गन्धपुष्पसे भी पूजा की जा सकती है।

उक्त दिवस घरमें नीबूके पत्ते इकट्ठे कर लिये जाते हैं और उन्हें ब्राह्मणको दान एवं स्वयं भक्षण करने होते हैं।

पिचुमन्दस्य पत्राणि स्थापयेद्भवनोदरे।
स्वयं चापि तदश्नीयात् ब्राह्मणानपि भोजयेत्॥'
(रत्नाकर)

यदि तिथि दोनों दिन पड़े और पहले दिन पूर्वाह्न तक समय मुहूर्त्ताधिककाल पर्य्यन्त पञ्चमी रहे, तो उसी दिन पूजा करनेकी विधि है।

४ श्रावणमासकी पौर्णमासी तिथि। इस तिथिमें श्राद्धादि करनेका विधान दृष्टिगोचर होता है अर्थात् उस दिन श्राद्धादि करना बहुत ही आवश्यक है।

(त्रि०) ५ श्रवणा नक्षत्र सम्बन्धीय।

श्रावणत्व (सं० क्ली०) श्रवणेन्द्रियग्राह्यत्व।

श्रावणद्वादशीव्रत (सं० क्ली०) व्रतभेद। नारदपुराण, भविष्योत्तरपुराण और सौरपुराणमें इस व्रतका माहात्म्य वर्णित है। श्रावणद्वादशी देखो।

श्रावणप्रत्यक्ष (सं० त्रि०) १ श्रवणेन्द्रिय द्वारा प्रमाणित, श्रवणेन्द्रिय द्वारा जिस पदार्थका ज्ञान हुआ हो। (पु०) २ श्रवणेन्द्रिय द्वारा प्रमाण या ज्ञान।

श्रावणवर्ष (सं० क्ली०) श्रवणाख्य नक्षत्रसम्बन्धी वर्षभेद। श्रवणा या धनिष्ठा नक्षत्रमें गुरु उदित होनेसे तद्दिवसावधि एक वर्ष तक जो समय होता उस श्रावणवर्ष कहते हैं। इस वर्षमें शस्यादि बिना किसी उपद्रवके परिपक्व होता तथा उससे सभी लोग सुखी हो सकते हैं, किन्तु कुछ पापी व्यक्ति और उसके भक्त लोग बड़े पीड़ित होते हैं। (बृहत्संहिता ८।१२)

श्रावणा (सं० स्त्री०) १ मुण्डरीना नामक वृक्ष। २ भूकदम्ब, भुंइ कदंब।

श्रावणिक (सं० पु०) श्रवणायौर्णमास्यमिन्नस्तीति श्रवणा-ठक (विभाषा फल्गुनीश्रवणाकार्त्तिकीचैत्रीभ्यः। पा ४।२।२३) १ श्रावण मास सावन। २ एक प्रकार की अग्नि। (त्रि०) ३ श्रावण सम्बन्धी, श्रावणका।

श्रावणिका (सं० स्त्री०) मुण्डी।

श्रावणी (सं० स्त्री०) श्रवणेन नक्षत्रेण युक्ता पौर्णमासी श्रवण अण् (नक्षत्रेण युक्तः कालः। पा ४।२।३) ततो ङीप्। १ श्रावणमासकी पूर्णिमा। यह तिथि नित्य श्राद्धकालमें निर्दिष्ट हुई है। इस दिन ब्राह्मणों का प्रसिद्ध त्योहार 'रक्षाबन्धन' या 'सलोना' तथा कुछ और कृत्य या पूजन आदि होते हैं। इस दिन लोग यज्ञोपवीतका पूजन करते और नवीन यज्ञोपवीत भी धारण करते हैं।

२ वृक्ष विशेष। ३ मुण्डीरी, मुंडी। यह छोटी और बड़ीके भेदसे दो प्रकारकी है। छोटीको मगोलियामें छोटी मुंडी कहते हैं। संस्कृत पर्याय—मुण्डितिका, भिक्षु, श्रवणशीर्षिका, श्रवणा प्रव्रजिता परिव्राजी, तपोधना। गुण—कषाय, कटु, उष्ण तथा कफ, वायु अमातिसार, कास, विष और वमिनिवारक।

भावप्रकाशमें छोटी मुण्डीका पर्याय पूर्वोक्त रूप और बड़ी मुण्डीका पर्याय भूकदम्बिका, कदम्बपुष्पिका अलम्बुषा और तपस्विनी आदि कहे गये हैं, किन्तु दोनोंके ही गुण समान हैं अर्थात् दोनों ही उष्णवीर्य, मधुर, लघु मेध्य तथा गण्ड, अपची, मूत्रकृच्छ्र, क्रिमि, योनिपीड़ा पाण्डु, श्लीपद, अरुचि अपस्मार, प्लीहा मेद और गुह्यरोग विनाशक हैं। चरकमें इसका एक और भेद है, रक्तमुण्डीरी। (चरक वि० ३ अ०)

४ महौषधि। ५ वृद्धि नामक औषधि। ६ ऋद्धि नामक औषधि। ७ भूकदम्ब, भुंइ कदंब।

श्रावणीद्वय (सं० क्ली०) श्रावणी और महाश्रावणी।

श्रावणीय (सं० त्रि०) श्रवणके योग्य, सुनने लायक।

श्रावस्ती (सं० स्त्री०) एक देश या नगरी, धर्मपत्तन।

श्राव्यत्पति (सं० त्रि०) पितृलोकका विख्यापक, जिसके अपने कर्म द्वारा पितृलोक अतिशय विख्यात हो।

श्रावयत्सखि (सं० त्रि०) प्रधानतम ऋत्विग्विशिष्ट, जिसके ऋत्विग्गण निरतिशय विख्यात हों।

श्रावयितव्य (सं० त्रि०) सुनाने योग्य, सुनाने लायक।

श्रावस्त (सं० पु०) हरिवंशके अनुसार राजा श्रावके पुत्र का नाम। इन्होंने गौड़देशमें श्रावस्ती नगरी वसाई थी।

श्रावस्तक (सं० पु०) श्रावस्त नामक राजगण।

श्रावस्ती—एक प्राचीन जनपद और उसकी राजधानी। इसका दूसरा नाम श्रावस्तीपुरी है। वर्त्तमान कालमें इस समृद्धिशाली नगरका ध्वंसावशेष मात्र दृष्टिगोचर होता है। इस समय यह एक सामान्य ग्राममें परिणत हो गया है और लोग इसे शेट-महेठ कहते हैं। यह स्थान बौद्धधर्मावलम्बियोंका एक पवित्र तीर्थस्थान है। एक समय भगवान् बुद्धने यहां वास किया था। अध्यापक लासेनने बहुत गवेषणाके वाद वर्त्तमान सेट-महेठसे थोड़ी ही दूरी पर नदीके उस पार प्राचीन श्रावस्ती पुरीका अवस्थान निर्णय किया है। प्रत्नतत्त्व-विद् डाक्टर कनिंहम उसकी मीमांसा एवं चीन परिव्राजकोंका पन्थानुसरण करके सेट-महेठ ग्रामको ही प्राचीन श्रावस्तीपुरी बताते हैं। यहां जो विस्तृत ध्वस्त स्तूपराशि गिरी पड़ी नजर आती है, वही श्रावस्तीपुरीकी प्राचीन कीर्त्ति और वैभवका एकमात्र निदर्शन है।

यह ग्राम तथा उसकी पार्श्ववर्त्ती श्रावस्ती नगरीकी स्तूपराशि अयोध्या प्रदेशान्तर्गत गोण्डा जिलेका राप्ती नदीके दक्षिण कछार पर अक्षा० २७° ३१´ ३०″ और देशा० ८२° ५´ पू०में अवस्थित है। उक्त जिलेके वलरामपुर नगरसे यह दश मील दूर है। यहां इस समय गौरव ज्ञापक किसी प्रकारकी समृद्धि विद्यमान नहीं है। केवल कुछ लोगोंकी छोटी वस्ती प्राचीन राजधानीकी क्षीणस्मृति जगा रही है।

हरिवंश ग्रन्थ पढनेसे मालूम होता है, कि सूर्यवंशीय राजा युवनाश्वके पौत्र, श्रावतनय श्रावस्तने गौड़देशमें पहले श्रावस्तीकी स्थापना की थी। पीछे रामपुत्र लवने अयोध्याके वाद यहां श्रावस्तीपुरी नामसे दूसरी राजधानी वसाई। विष्णुपुराणमें तृतीय अंशमें, महाभारत वनपर्व्वमें, पाणिनि ४।२।९७ एवं भागवतपुराणके ९।६।२१ श्लोकमें श्रावस्ती राजधानीका उल्लेख है। त्रिकाण्डशेष अन्तमें (२।१।१३) श्रावस्तीका दूसरा नाम धर्मपत्तन लिखा है। वामन-दत्तादि प्राचीन संस्कृत ग्रन्थोंमें श्रावस्तीका वर्णन है और उसके बीच हो कर वहनेवाली राप्ती नदी ऐरावती-के नामसे उल्लिखित है। बौद्धपालि ग्रन्थविनयमें श्रावस्तीका 'सवट्ठी' और ऐरावतीका 'अचिरवती' नाम पाया जाता है। इस समय भी राप्तीका पार्वत्य स्रोत पालि नामके वदले अचिरवतीके नामसे परिचित है।

शाक्यबुद्धके जन्मसे पहले श्रावस्ती नगरीकी श्रीसमृद्धि कैसी थी, उपरोक्त ग्रन्थोंमें उसका कोई विशेष परिचय नहीं है। किन्तु रामायणसे इतना पता चलता है, कि उस समय यह उत्तर कोशलकी राजधानी थी। भगवान् श्रीरामचन्द्र अपनी मृत्युके समय यह जनपद अपने पुत्र लवको दे गये थे। शाक्य बुद्धके जन्मकालमें अर्थात् ई०सन्‌से ६०० वर्ष पहले श्रावस्तीपुरी मध्यदेशके छः प्रसिद्ध जनपदोंके मध्य एक गिना जाता था। उस समय इसके दक्षिणमें साकेत (अयोध्या) और पूर्वमें वैशाली (वाराणसी और विहार) राज्य विद्यमान थे। इससे अनुमान किया जाता है, कि वर्त्तमान वराइच, गोंडा, वस्ती तथा गोरखपुर जिला ले कर प्राचीन श्रावस्ती जनपद गठित हुआ था।

बुद्धदेवके आविर्भावके समय श्रावस्ती नगरमें व्यापारकी पूरी उन्नति थी। उस समय यह नगर सुधा धवलित सौधमालासे सुशोभित हो कर समृद्धिकी शीर्ष सीमा तक पहुंच चुका था। उस वक्त अरणेमि ब्रह्मदत्तके पुत्र प्रसेनादित्य यहांके राजा थे। उनकी वर्षिका नाम्नी क्षत्रियापत्नीके गर्भसे जेत नामक एक धर्मशील पुत्र पैदा हुआ था। इसके वाद राजाने कपिलवास्तुनिवासिनी मल्लिका नाम्नी एक ब्राह्मण-कुमारीका पाणिग्रहण किया था। मल्लिकाके गर्भसे राजाके पहले विरूढक और उसके वाद सागरसान्दोलित नामक दो पुत्र पैदा हुए। इन दोनों पुत्रोंमें ज्येष्ठ पुत्र विरूढकने बौद्ध धर्मका विरोधी वन कर शाक्यकुलका संहार करनेका संकल्प किया। सागरसान्दोलितने तिब्बत राज्यका राजा हो कर उस देशमें बौद्धधर्मका प्रचार किया था।

चीनपरिव्राजक फाहियान ५वीं सदीके प्रारम्भकालमें जब भारत भ्रमण करने आये, तब उन्होंने यहांकी शिल्प

कोशिकी समृद्धिके परिचायक मठ सङ्घाराम और भग्न अट्टालिकाओं का देखा था। उस समय भी वहांके सभी सुरम्य हर्म्य भूमिसात् नहीं हुए थे। सिर्फ बौद्ध मठादि श्रमणविरहित और परित्यक्त हो गये थे। नगर बिल्कुल जनहीन था। सुतरां राजधानीकी गौरवदीप्ति विनष्ट हो चुकी थी। नगरवासी अज्ञानताके घोर अन्धकारमें पड़ गये थे। धर्म और शास्त्रकी चर्चा वहां उस समय नहीं होती थी। केवल २०० घर दरिद्र व्यक्ति असमर्थताके कारण हा शायद उस अभिशप्त स्थानका परित्याग नहीं कर सके थे। इसके प्राय आधा शताब्दीके बाद जिस समय यूयनसियंगने श्रावस्तीमें पदार्पण किया था, उस समय नगरकी सभी अट्टालिकाएं विध्वस्त हो गई थीं। वहां लोगोंका पता नहीं था। दो एक बौद्ध यति धर्मकी खोजमें वहांके लीलाक्षेत्र विहारादिमें परिभ्रमण कर रहे थे। उक्त चीन परिव्राजककी वर्णनासे श्रावस्तीका जो कुछ परिचय मिलता है वह नीचे उद्धृत किया जाता है।

'श्रावस्ती राज्यकी चारों सीमा प्राय ६००० लीग थी। राजधानीका घेराव कितनी दूरमें था वह इस समय निरूपण करना कठिन है। तब हाँ, राजप्रासादके चारों ओरका घेराव २० लीग होगा। प्राचीन राजप्रासादादिकी सभी अट्टालिकाएं विनष्ट हो जाने पर भी इस समय तक यहां कुछ लोगोंका वास है। उनकी अवस्था उतनी अच्छी नहीं है। यहांके सब लोग कृषिजीवी हैं। वे धर्मनिष्ठ, उदार, जनमनोरञ्जक, विनयी और परोपकारी हैं। यहां जितने सङ्घाराम या मठ विद्यमान हैं, वे सब प्रायः नष्ट हो गये हैं। उनमें एक दो इस समय भी भग्नप्राय अवस्थामें पड़े हैं। इस समय उन मठोंमें कोई वास नहीं करते। जो एक दो धर्मोपासनिष्ठ बौद्धयति देखे जाते हैं, वे सब सम्मतीयशाखाके ग्रन्थोंकी आलोचनामें लगे रहते हैं। बौद्धकीर्त्तियोंके सिवाय यहां हिन्दुओंके प्रायः सौसे अधिक देवमन्दिर हैं।"

'यह नगर जिस समय उन्नति पर था, उस समय प्रसेनजित राजा इस राज्यके अधीश्वर थे। उनके बनाये हुए प्रासादकी चहारदिवारी इस समय भी दृष्टिगोचर होती है। इसके पूर्व 'सद्धर्ममहाशाला' नामक धर्म-मन्दिर था, इस समय उसके ध्वंसावशेषके सिवाय और कुछ भी नजर नहीं आता। राजा प्रसेनजित्ने इस महाशालाका निर्माण किया था। बुद्धदेवने इस महाशालामें बैठ कर बौद्धधर्म प्रचार किया था। इसके पास ही बुद्धकी मातुलानी प्रजापती भिक्षुणीके स्मृति स्मरणार्थ प्रसेनजित् द्वारा बनाया हुआ विहार नजर आता है। इस विहारके ध्वंसावशेषके ऊपर एक स्तूप अब भी विद्यमान है। इसके पूर्व भागमें जो स्तूप है वहां राजाका कोषागार और मन्त्री सुदत्तका महल है।"

"सुदत्तके वासभवनकी बगलमें एक सुबृहत् स्तूप है। इस स्थान पर अङ्गुलिमाल्य नामक एक जातिका निवास था। इस जातिके लोग बौद्धधर्मके घोर विरोधी, प्राणी हिंसक, कदाचारी और वज्रहृदय थे; यहां तक कि इस समय भी कोई नरहत्या करनेमें नहीं हिचकते। साधारणतः ये लोग निहत मनुष्यकी उँगलियाँ काट कर और उनकी माला बना कर गलेमें पहनते हैं, इसी कारण इनका नाम अङ्गुलिमाल्य पड़ा है। इन लोगोंका विश्वास है, कि यदि कोई अङ्गुलिमाल्य अपनी माता या किसी बुद्धको मार सके, तो उसे ब्रह्मलोक प्राप्त होगा।

'इस अन्ध विश्वासके वशवर्त्ती हो कर एक अङ्गुलिमाल्य अपनी माताको मारनेके लिये तैयार हुआ। जिस समय उस माताकी हत्या करनेके अभिप्रायसे माताको पीड़ा किया; उसी समय उसने बुद्धदेवको अपने सामने उपस्थित देखा। वह माताको छोड़ अस्त्र ले कर बुद्धके सामने आया। बुद्धदेव उसके मनका अभिप्राय समझ कर धीरे धीरे उसके सामने आ खड़े हुए और बोले— 'वत्स! सत्प्रवृत्तिको छोड़, कुप्रवृत्ति हृदयमें धारण कर क्यों संसारको पापपङ्कमें फंसाते हो?' बुद्धदेवकी शान्तसौम्य मूर्त्ति देख कर तथा उनका सदुपदेश श्रवण कर उसे चैतन्यता प्राप्त हुई। वह उसी क्षण शाक्यसिंहके चरणों पर गिर पड़ा और मुक्तिकी कामनासे उनसे सान्त्वनाकी भिक्षा मांगने लगा। बुद्धदेवकी दयासे उसे अर्हत्‌पद प्राप्त हुआ।'

'नगरसे ५।६ लीग दक्षिण जेतवन (प्रसेनजित्के

पुत्र युवराज जेतकी प्रसिद्ध उद्यानवाटिका) है। राजमन्त्री सुदत्तने उसे खरीद कर भगवान् बुद्धके वासके लिये यहां एक विहारका निर्माण किया था। पहले यहां एक संघाराम भी था, इस समय उसका ध्वंसावशेष विद्यमान है। उक्त विहारसे पूर्व, प्रवेशद्वारकी बाईं और दाहिनी ओरसे ७० फीट ऊंचे दो खम्भे हैं। उस की बाईं ओरकी स्तम्भकी जड़में एक धर्मचक्र और दाहिनी ओरके स्तम्भके मस्तक पर एक वृषमूर्त्ति अंकित देखी जाती है। ये दोनों स्तम्भ बौद्ध सम्राट् महाराज अशोककी कीर्त्ति है। विहारमध्यस्थित अट्टालिकादि भूमिसात् हो गई हैं, सिर्फ एक मकान इस समय भी विद्यमान है जिसमें उस समयकी स्थापित एक बुद्धमूर्त्ति है।"

"सुदत्त स्वभावतः धर्मशील और नम्र थे। वे दरिद्र-अनाथोंको अन्नदान दिया करते थे, इसीलिये उनका नाम 'अनाथपिंडद' वा 'अनाथपिण्डिक' पड़ा था, उन्होंने बहुत धन खर्च कर जेतवन खरीदा था और उसमें संघारामादि निर्म्माण किया था। इस कारण उनके नामानुसार वह अनाथ पिंडद विहारके नामसे विख्यात हुआ। इस उद्यानके चारों ओर बुद्धदेवकी लीला और महिमाव्यञ्जक स्तूपावली निर्मित है।"

"सुदत्तने राजगृहमें शाक्यबुद्धका दर्शन पाया और उसी स्थानमें उनसे बौद्धधर्मकी दीक्षा ली। उन्होंने अपने धर्मगुरुको श्रावस्तीमें ठहरानेके लिये बहुत धन लगा कर युवराज जेतकी सुरम्य वाटिका खरीदी थी। युवराज जेत भी उसी समय बौद्ध धर्ममें दीक्षित हुए। अनन्तर उन दोनोंने ही अपने अपने अर्थव्ययसे उस उद्यान को अच्छी तरह सजा दिया। शाक्यबुद्धने जिस समय इस उद्यानमें शुभागमन किया, उस समय उन्होंने उसे अपने दोनों भक्तोंकी कीर्त्ति समझ कर उसका नाम 'जेतवन-अनाथपिण्डकाराम' रखा। पालिग्रन्थमें यह सुदत्त 'महाशेट्ठी'के नामसे उल्लिखित हैं। इसलिये कितने ही अनुमान करते हैं, कि जेतवनका दूसरा नाम महाशेट्ठीविहार है श्रावस्तीके महाशेट्ठीविहारके संक्षिप्त परिचयमें यह स्थान 'शेट-महेट' नामसे विख्यात हुआ है।"

"बुद्धदेव जिस समय श्रावस्तीपुर आये, उस समय यहां बौद्धमतविरोधी अनेक धर्ममतावलम्बियों तथा दार्शनिकोंका वास था। उनमें जैनाचार्यगण ही प्रधान थे। सुप्रसिद्ध जैनगुरु पूर्णकाश्यपने यहां बुद्धसे तर्कयुद्धमें परास्त हो कर आत्महत्या कर ली थी। जैनग्रन्थसे जाना जाता है, कि तीर्थङ्कर सम्भवनाथ यहां आविर्भूत हुए थे। उसी कारण जैन लोग इस समय भी यहां तीर्थ करने आते हैं और यहांके एक ध्वस्त स्तूपको श्रद्धाकी दृष्टिसे देखते हैं। डाक्टर कनिंहमने उस स्तूपको खोद कर उसमेंसे एक प्राचीन अट्टालिकाकी चहारदिवारीका निदर्शन और कई जैनमूर्त्तियां पाई थीं। इससे कुछ ही दूर पर नगरप्राचीरके मध्य और भी कई जैनमन्दिर दृष्टिगोचर होते हैं। इस समय भी यहां सम्भवनाथका मन्दिर है।"

"उक्त जेतवन विहारके ३ वा ४ लीग पूर्व एक स्तूप है, श्रावस्तीकी प्रसिद्ध बौद्धरमणी विशाखाने बुद्धकी आज्ञासे पूर्वारामविहार निर्म्माण किया था, यह स्तूप उसीके सामने स्थापित है। इस स्तूपके दक्षिणभागमें विरूढ़कने शाक्य लोगोंकी हत्या की थी। इस स्थानमें विशाखाके प्रार्थनानुसार एक स्मृतिस्तम्भ बनाया गया था। उसके आस पासमें विरूढ़कके कुकीर्त्ति-गाथा-स्मारक कई स्तूप नजर आते हैं।'

"पूर्वोक्त संघारामसे ३।४ ली उत्तरपूर्व आप्तनेत्रवन नामक बुद्धका विहारस्थान है। यहां बुद्धदेवने कई दस्युओंको चक्षुदान किया था। प्रवाद है, राजा प्रसेनजितके विचारसे इन दस्युओंकी आंखें निकाल ली गई थीं। यहां ही बौद्धरमणी विशाखाने भक्तिपरवश हो कर भगवान् बुद्धके लिये आवासभवन (विहार) तैयार कर दिया था। इसी स्थानमें द्रोणोदनके पुत्र देवदत्त प्रतिहिंसाके वशीभूत हो कर भगवान् बुद्धके जीवन संहारकी चेष्टा करके अपनी जानको खो बैठे थे। स्वयं शाक्यसिंहने जेतवनविहारके समीपवर्त्ती स्थानमें यहांके निवासियोंको अपने धर्मकी शिक्षा दी थी। यहां ही शाक्यकुल-ध्वंसकारी विरूढ़क तथा उसके मन्त्री अम्बरीष अग्निमें जल कर अपने प्राण परित्याग किये थे। प्रवाद है, शाक्यसे शत्रुता रखनेवाले

गजनीके समसामयिक थे। महमूदके सेनापति सालेर मसाउदके साथ सुहलदेवका युद्ध हुआ था।

स्थानीय किंवदन्तीसे जाना जाता है, कि इस जैन-वंशके आदि पुरुष मयूरध्वज थे। उनके बाद हंसध्वज, मकरध्वज, सुधन्वध्वज प्रभृति राजा हुए। उस समय यह स्थान चन्द्रिकापुरके नामसे विख्यात था। महाभारतके अश्वमेधपर्वके अर्जुनदिग्विजय प्रकरणमें लिखा है, कि हंसध्वजके वंशधर सुधन्वा अर्जुन द्वारा पराजित हुए। तदनन्तर यह राजधानी दूसरे नामसे विख्यात हुई। किंवदन्ती और पौराणिक उक्तिसे जो कुछ भी हो, किन्तु इतिहाससे पता चलता है, कि इस वंशके अन्तिम राजा वीर सुहलदेव थे और श्रावस्ती उनकी राजधानी थी। गोंडासे फैजाबाद जानेके रास्तेमें अलोकपुर वा हतीला नामक स्थानमें इनका बनाया हुआ एक दुर्ग है। इन्होंने उक्त दुर्गके सामने श्रावस्ती नगरके समीप मुसलमानी सेनाको दो बार हराया था। अन्तमें बरोचके रणक्षेत्रमें मुसलमान सेनापति इनके द्वारा पराजित हुए और मार डाले गये।

महम्मद गोरीके भारत-विजयके बाद इतिहासमें श्रावस्तीका कोई उल्लेख नहीं पाया जाता। इसके पश्चात् १९वीं शताब्दीके शेष भागमें डा० कनिंहमने यहांके प्राचीन और लुप्त इतिहासके उद्धारकी कामनासे स्थानीय स्तूपराशिको खोदना शुरू किया। डा० कनिंहमने असाधारण परिश्रम और अनेक जांच पड़तालके बाद स्थिर किया, कि उड़ाझाड़ीके सुवृहत् दोनों स्तूप प्राचीन जेतवन सङ्घारामके निदर्शन हैं। उन्होंने निर्णय किया, कि इसके अन्दर कोशम्बकुटी और गन्धकुटी मन्दिर भी हैं। उक्त उडाझाड़ ग्रामसे एक मील दक्षिण पूर्वमें विशाखाका बनाया हुआ पूर्वाराम विहार है। उक्त संघारामसे २५० फोट पूर्व देवदत्तकी खाई है। वह लम्बाईमें ६०० फोट और चौड़ाईमें २५० फोट है। इस समय यह भूलाननके नामसे प्रसिद्ध है। इसके दक्षिण एक सुदीर्घ जलधारा है जो लम्बाद-ताल कहलाती है, बुद्धदेवकी निन्दा करनेसे दूषित हो कर कुकाली भिक्षुणी इसके जलगर्भमें डूब गई थी। इसके बाद ही इन्द्रा नामक ब्राह्मणकुमारीकी खाई है। भगवान् बुद्धको अजितेन्द्रिय कहनेके अनुतापमें उन्होंने इसी पुष्करिणीके जलमें डूब कर प्राणत्याग किया था।

२ पौराणिक नगरभेद। कई पुराणोंके मतसे इक्ष्वाकु-वंशीय श्रावस्तने अपने नाम पर गौड़देशमें यह नगर बसाया था। स्थानीय शिलालिपिके मतसे यह स्थान वरेन्द्रके मध्य है। (वर्तमान बगुड़ा जिलेमें)

श्रावस्तेय (सं० त्रि०) श्रावस्तीदेशभव।

श्रावा (सं० स्त्री०) अन्नमण्ड, मांड़।

श्रावितृ (सं० त्रि०) श्रु-णिच् स्वार्थे ततः तृच्। श्रोता, सुननेवाला।

श्राविन (सं० पु०) सर्जिकाक्षार, सज्जी।

श्राविष्ठ (सं० त्रि०) श्राविष्ठानक्षत्र-सम्बन्धी।

श्राविष्ठायन (सं० पु०) श्रविष्ठ ऋषिका गोत्रापत्य।

श्राविष्ठीय (सं० त्रि०) श्रविष्ठासु जातः श्रविष्ठा-छण् (श्रविष्ठाफल्गुन्यनुराधेति। पा ४।३।३४) श्रवणानक्षत्र-जात। (सिद्धान्तकौ०)

श्राव्य (सं० त्रि०) १ श्रोतव्य, सुननेयोग्य, सुनने लायक। २ सुनानेके योग्य, सुनाने लायक।

श्रित (सं० त्रि०) श्रि क्त (श्र्युकः किति। पा ७।२।११) इति इडागम निषेधः। १ सेवित। २ आश्रित। (सिद्धान्तकौ०) ३ पक्व।

श्रितवत् (सं० त्रि०) श्रि क्तवतु (श्र्युकः किति। पा ७।२।११) इति इडागमो न। सेवाकारक।

श्रिति (सं० स्त्री०) श्रि-क्तिन्। आश्रयजन्य।

श्रिमन्य (सं० क्ली०) श्रियं मन्या शब्दार्थ।

श्रियंमन्या (सं० स्त्री०) आत्मानं श्रियं मन्यते, श्री-मन-खततष्टाप्। जो आत्माको श्री कह कर मान्य करे अर्थात् जो स्वयं अपनेको लक्ष्मी समझे।

श्रिय (हिं० स्त्री०) १ मङ्गल, कल्याण। २ शोभा, प्रभा।

श्रियसे (सं० त्रि०) श्रि-कसेन्। श्रीके लिये, शोभाके निमित्त। (ऋक् ५।५९।३ सायण)

श्रिया (सं० स्त्री०) विष्णुकी पत्नी, लक्ष्मी।

श्रियादित्य (सं० पु०) एक पण्डित। इनके पुत्र रणिग और पौत्र केशवार्क थे।

श्रियानकुल (सं० पु०) एक गांवका नाम।

श्रियावास (सं० पु०) श्रीसम्पन्न, लक्ष्मीयुक्त, धनवान्।

श्रियावासिन् (स० पु०) महादेव। (भारत अनु० पर्व)

श्री (सं० स्त्री०) श्रयतीति श्रि क्विप् दीर्घश्च (क्विप् वचिप्रच्छीति। उण् २।५७) १ लक्ष्मी, कमला। (विष्णुपु० १।८।१३) २ लवङ्ग, लौंग। ३ वेशरचना। ४ प्रभा, शोभा। ५ सरस्वती। ६ सरलवृक्ष, धूप सरलका पेड़। ७ त्रिवर्ग, धर्म, अर्थ और काम। ८ सम्पत्ति, धन, दौलत। ९ विधा, प्रकार। १० उपकरण। ११ विभूति, ऐश्वर्य। १२ मति। १३ अधिकार। १४ कीर्ति यश। १५ वृद्धि। १६ सिद्धि। १७ धृतराष्ट्रकी माता। (हम) १८ कमल पद्म। १९ बिल्ववृक्ष, बेलका पेड़। २० ऋद्धि और वृद्धि नामक औषध। २१ सफेद चन्दन, सन्दल। २२ कान्ति चमक। २३ एक प्रकारका पदचिह्न। २४ त्रिवर्णका वड़ा नामक आभूषण। २५ ऊर्द्ध्वपुण्ड्रके बीचकी लम्बी नोकदार लाल रंगकी रेखा। २६ आदर सूचक शब्द जो नामके आदिमें रखा जाता है। सन्यासी, महात्माओंके नामके आगे श्री १०८ लिखा जाता है। माता पिता और गुरुके लिये श्रीके साथ ६ स्वामीके लिये ५, शत्रुके लिये ४ मित्रके लिये ३ नौकरके लिये २ और शिष्य, सुत तथा स्त्रीके लिये श्रीके साथ १ लिखने की प्राचीन प्रणाली है। मृत व्यक्तिके नामके पहले श्री शब्दका व्यवहार शिष्टाचारविरुद्ध है, अतएव वैसा करना अकर्त्तव्य है।

(पु०) २७ कुवेर। २८ ब्रह्मा। २९ विष्णु। ३० वैष्णवोंका एक सम्प्रदाय। ३१ एकाक्षर छन्दोविशेष। इस छन्दके प्रत्येक चरणमें सिर्फ एक गुरुवर्ण रखा जाता है अर्थात् सिर्फ चार गुरुवर्णोंसे यह छन्दः शेष होता है। छन्दः देखो।

३२ रागविशेष। हनुमत्के मतमें यह छः रागोंके अन्तर्गत पांचवां राग है और पृथिवीका नाभिसे निकला है। इसका जातिका नाम सम्पूर्ण है। इसको स्वरावलि ष ऋ ग म प ध नि तथा गृहमें षड्जस्वर है। हेमन्त कालके अपराह्न कालमें ही यह गाया जाता है। राग मालामें इसकी आकृति निम्नोक्त रूपसे वर्णित हुई है; यथा सुन्दर पुरुष, गलेमें स्फटिक और पद्मरागमणिनिर्मित मालायुक्त, हाथमें पद्मपुष्पसमन्वित विचित्र सिंहासन पर, सम्मुखभागमें सङ्गीतकारी गायकगणसे परिवृत। दूसरेके मतसे रक्तवस्त्रपरिधानकारी है।

हनुमत्के मतसे इसकी मालश्री, मारवा या मालवा धानश्री वसन्तरागिणी और आसावरी नामकी पांच भार्या हैं। नीचे यथाक्रम उनका संक्षिप्त विवरण दिया जाता है। विस्तृत विवरण उन्हीं सब शब्दोंमें देखो।

मालश्री—जाति सम्पूर्ण, स्वरावली ष ऋ ग म प ध नि। गृह षड्जस्वर। गानेका समय हिम ऋतुका दो पहर दिन है। रागमालावर्णित आकृति इस प्रकार है—रक्तवर्णा कोमलाङ्गी, पीतवस्त्र पहनी हुई, कौतुकसे भ्रमणकारिणी होनेसे नायकसे मिलिता सखियोंके साथ हास्यपरिहासयुक्ता, आम्रतरुके नीचे बैठी हुई।

मारवा या मालवा—जाति षाड़व। स्वरावली ष प ग म ध नि। गृह षड्ज। गानेका समय हिम ऋतुका अन्तिम काल। रागमालावर्णित आकृति—स्वर्णवस्त्र परिहिता पुष्पमालाधारिणी, नायकके साथ मिलनेकी कामनासे सङ्केत स्थानमें अकेली बैठी हुई।

धानश्री—जाति षाड़व। स्वरावलि ष प ध नि ऋ ग। गृह षड्ज। गानेका समय हिम ऋतुका दो प्रहर अथवा अपराह्न काल। रागमालाकथित आकृति—वियोगिनी नारी, रक्तवस्त्र पहनी हुई, वियोगज शोक सन्तापसे अत्यन्त दुःखिता और कृशाङ्गी रोती हुई अरण्यमें बकुल वृक्षके नीचे बैठी हुई।

वसन्तरागिणी—जाति सम्पूर्ण। स्वरावलि ष ऋ ग म प ध नि। गृह षड्ज। हिमऋतुके मध्याह्नकाल तथा वसन्तऋतुका सारा दिन गानेका समय है। राग मालामें वर्णित स्वरूप प्रकृति—सुन्दर पुरुषकी तरह आकृति, रक्तवसना शिखा पर मयूरपुच्छ, हाथमें आम्र मुकुल यौवन और मदनमदोन्मत्ता, गलेमें पुष्पमाला, पुष्पोद्यानमें सुन्दरी और कोकिलकण्ठी गायिकाओंके साथ आनन्दपूर्वक आती हुई वामहस्तमें ताम्बूलवीटिका धारिणी स्त्रियोंके साथ हास्य कौतुक, क्रीड़ा, नृत्य, गीत, वाद्य आदिमें नितान्त आसक्ता। किसी किसी राग मालाग्रन्थमें इस श्रीकृष्ण सदृश मूर्त्तिविशिष्टा और किसीके मतसे श्यामवर्णविशिष्टा बताया है।

आसावरी—जाति औड़व। स्वरावलि ध नि ष म प। गृह धैवत। हिमऋतुका द्वितीय प्रहर गानेका समय। रागमालावर्णित स्वरूपप्रकृति—श्यामवर्णा

कोमलाङ्गी स्त्री, श्वेतवस्त्र पहनी हुई, कपूर लेपी हुई, हाथ और पैरमें बड़े बड़े सर्प लिपटे हुए, जूड़ा बंधा हुआ, जलमध्यस्थ पर्वतगुहामें बैठी हुई। किसी किसी राग माला ग्रन्थमें इस उक्त गुणयुक्त तथा कमरमें वृक्षपत्र लपेटो नंगी बताया है।

इसके सिन्धु, मालव, गौड़, गुणसागर कुम्भ, गम्भीर, शङ्कर या आगड़ और विहागर नामक आठ पुत्र हैं। इनमेंसे गौड़ नामकी जगह कोई कोई कल्याण और कोई हामीर पढ़ते हैं।

कल्लिनाथने श्रीरागको प्रथम राग तथा गौरी, गौनाहली, धवली, रुद्राणी, मालकौश या कौशिकी और देवगान्धारी नामकी उसको छः भार्याका विषय निर्देश किया है। किन्तु इनके भी मतमें हनुमन्की तरह आठ ही पुत्रोंका उल्लेख देखा जाता है। परन्तु गौड़, शङ्कर और विहागके स्थानमें यथाक्रम कल्याण, आगड़ा और विगड़ा लिखा है।

सोमेश्वरके मतमें भी यह राग प्रथम राग तथा मालवो या मरवा, त्रिवेणी या तिरवनी, गौरो, केदारा, मधुमाधवी और पहाड़िका या पहाड़ी नामकी छः रागिणी इसकी भार्या तथा पूर्वोक्त दोनों मतकी तरह आठ पुत्र निर्दिष्ट हुए हैं। इस मतसे शिशिर ऋतुमें यह राग और रागिणियां गाई जाती हैं।

भरतके मतसे उक्त राग पञ्चम तथा उसकी सिन्धुवा, काफी, ठुमरी, विचित्रा, शिरहटि या सोरठी ये पांच रागिणी तथा श्रीरमण, कोलाहल, स्तामन्त, शङ्करण, रावेश्वर, नटराग, वडहंस और देशकार नामक आठ पुत्र, इन पुत्रोंकी फिर यथासंख्य विद्या, भार्या, कुम्भा, मृदनी, शरदा, क्षेमा, शशरेखा और सुरस्वती नामकी आठ भार्या निर्दिष्ट हुई है।

श्रीद (सं० पु०) पक्षिभेद, श्रीकर्ण या श्रीवासक नामक पक्षी।

श्रीकण्ठ (सं० पु०) श्रीः शोभा कण्ठे यस्य। १ शिव, महादेव। २ कुरुजाङ्गलदेश। यह हस्तिनापुरसे उत्तरमें अवस्थित है। ३ पक्षिविशेष। वृहत्संहिता- में यह पक्षी तथा भास आदि बहुतसे पक्षी श्रीसंज्ञक कह कर उल्लिखित हुए हैं। यात्राकालमें यदि ये दक्षिण भागमें रहें, तो शुभ फलप्रद होता है।

श्रीकण्ठ—वैद्यहितोपदेश ग्रन्थ और कुसुमावलीकी टीका- के प्रणेता।

श्रीकण्ठ—बहुतेरे प्राचीन कवि और पण्डित। १ मुहूर्त- मुक्तावलीके प्रणेता। २ वृत्तरत्नाकरटीकाके रचयिता। ३ वृन्दावनकाव्यटीका नामक ग्रन्थके प्रणेता। ४ एक कवि। इनके काव्यमें राजा श्रीमल्लदेवका नाम पाया जाता है। ५ श्रीगर्भके पुत्र और मण्डनके छोटे भाई। ये मङ्खके समसामयिक थे। मङ्खरचित श्रीकण्ठचरित- काव्यमें इनका उल्लेख है।

श्रीकण्ठक—रसकौमुदी नामक नाट्यशास्त्रके रचयिता।

श्रीकण्ठकण्ठ (सं० पु०) १ शिवका कण्ठ। २ मयूरका गला।

श्रीकण्ठतीर्थ—मिश्रतत्त्वके रचयिता। ये महादेवतीर्थके शिष्य थे।

श्रीकण्ठदत्त—व्याख्याकुसुमावली नामक वैद्यक ग्रन्थके रचयिता।

श्रीकण्ठदीक्षित—तर्कप्रकाश नामक न्यायसिद्धान्तमञ्जरी टीकाके प्रणेता। ये काशीवासी और विश्वनाथ पण्डित- के पुत्र कह कर प्रसिद्ध थे।

श्रीकण्ठनिलय (सं० पु०) श्रीकण्ठ, महादेव, शिव।

श्रीकण्ठ पण्डित—१ योगरत्नावली नामक तन्त्रग्रन्थके रचयिता। २ प्रपञ्चसारटीकाके प्रणेता मिस्त्रराजके पिता। ये भी एक सुपण्डित थे।

श्रीकण्ठपदलाञ्छन (सं० पु०) श्रीकण्ठ इति पदं लाञ्छनं यस्य। भवभूतिका उपनाम। इन्होंने मालतीमाध- वादि बहुत-से नाटक लिखे हैं। भवभूति देखो।

श्रीकण्ठ भट्ट स्पन्दसूत्रवार्त्तिकके रचयिता भास्करके गुरु। ये महादेव भट्टके पुत्र थे।

श्रीकण्ठ मिश्र—कारकखण्डन और कारक खण्डन मण्डन नामक दो व्याकरणके प्रणेता।

श्रीकण्ठ शम्भु—वैद्यहितोपदेशके रचयिता। प्रयोगामृत नामक ग्रन्थमें इनका उल्लेख है।

श्रीकण्ठ शिव (सं० पु०) शम्भुनाथ शिवका नामान्तर।

श्रीकण्ठशिव आचार्य—ब्रह्मसूत्रभाष्य और शावर महा- तन्त्रके प्रणेता।

श्रीकण्ठसख (सं० पु०) श्रीकण्ठस्य महादेवस्य सख

समासे टच् प्रत्यय। कुवेर। (हलायुध)

श्रीकण्ठीय (सं० त्रि०) श्रीकण्ठ सम्बन्धी।

श्रीकन्दा (सं० स्त्री०) श्रीः शोभा तद्युक्त कन्दो यस्या। वन्ध्याकर्कोटकी, वनपरवल।

श्रीकर (सं० क्ली०) १ रक्तोत्पल, लाल कमल। (त्रिकाण्डशेष) (पु०) २ विष्णु। ३ नौ उपेन्द्रोंमेंसे एक। (त्रि०) ४ श्रीकारक शोभा बढ़ानेवाला।

श्रीकर—१ पद्यावलीधृत एक कवि। २ एक धर्मशास्त्रकार। विज्ञानेश्वर और शूलपाणिने इनका मत उद्धृत किया है। ३ एक प्रसिद्ध वैयाकरण। माधवीय धातुवृत्ति नामक ग्रन्थमें इनका उल्लेख है। ४ त्रिपुरासुन्दरी पूजनके प्रणेता।

श्रीकर आचार्य—१ दायनिर्णयके रचयिता। २ व्याख्यामृत नामक अमरकोषटीकाके प्रणेता।

श्रीकरण—स्मृतिग्रन्थकारभेद, श्रीदत्तकालङ्कारकृत दायभागाद्य श्रीकरकी टीका।

श्रीकरण (सं० क्ली०) श्री क्रियतेऽनेनेति कृ ल्युट् करणे। १ लेखनी कलम। (पु०) २ कायस्थोंकी एक शाखा या उपजातिका नाम।

श्रीकर मिश्र—अलङ्कारतिलकके रचयिता।

श्रीकर्ण (सं० पु०) पक्षिविशेष। (बृहत्सं० ८८।३८)

श्रीकर्णदेव (सं० पु०) चण्डेलराजभेद। चान्द्रात्रेय देखो।

श्रीकलश (सं० पु०) सिद्धपुरुषभेद। (राजतर० ५।७१)

श्रीकाकोलम्—मन्द्राज प्रदेशके गञ्जाम जिलान्तर्गत चिकाकोलका एक प्राचीन नगर। अभी यह चिकाकोल कहलाता है। यहां प्राचीनकालमें कलिङ्ग राजाओंकी राजधानी थी। जिस समय कलिङ्गपतिगण इस राजधानीको परित्याग कर कलिङ्गपत्तनमें राजपाट उठा लाये उसका कोई विशेष प्रमाण नहीं मिलता।

यहांका कोटया दुर्गस्थित श्रीजनार्दनस्वामीका मन्दिर अपेक्षाकृत अप्राचीन होने पर भी मन्दिरके भीतर जो हनुमान् मूर्त्ति है उसकी प्राचीनताके सम्बन्धमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं होता। स्थानीय श्रीकूर्मम् मन्दिर भी विशेष उल्लेखयोग्य है। यहां एक गृहस्थके घरमें कुआं खोदते समय छः ताम्रफलक निकले थे। वह उन्हें पुराना ताँबा समझ कर बाजारमें बेचने ले गया। मद्रासके विचारपति ग्राहम साहबको जब इसकी खबर लगी, तब उन्होंने आ कर उसे खरीद लिया और से ब्रिटिश म्युजियममें भेज दिया। दुःखका विषय है कि अभी एक ताम्रशासन नष्ट हो गया है। जो पांच बचे हुए हैं उनमें कलिङ्गराज गङ्गवंशीय इन्द्रवर्मा, अनन्तवर्माके पुत्र देवेन्द्रवर्मा, देवेन्द्रवर्माके पुत्र सत्यवर्मा और एक दूसरे नन्दप्रभञ्जनवर्मा नामक राजाओंके नाम मिलते हैं। इन्द्रवर्माके वंशधर ये राजगण शायद ७वीं सदीके पहलेके वेङ्गी राजाके एक शाखाके होंगे। करीब ६७३ १००४ ई०में पूर्वचालुक्यराज्यमें अराजकता उपस्थित होने पर इस राजवंशने मस्तक उठाया था।

पार महम्मद खाँ नाम निजामके अधीनस्थ एक मुसलमान सरदारने हिन्दू विद्वेषके वशवर्ती हो कर एक देवमन्दिरको तहस नहस कर डाला और उसीके माल मसालेसे यहां १६४१ ई०में बहुत रुपये खर्च कर एक जुम्मा मसजिद बनवाई। इसके सिवा १६२० ई०में बनाई हुई आधा खाँकी एक मसजिद तथा और भी कितनी टूटी फूटी मसजिदें स्थानीय मुसलमान प्रभावका साक्ष्य प्रदान करती हैं।

हैदराबाद राजसरकारके जमानेमें यहां जो सब मुसलमान कर्मचारी शासनकर्त्ताके पद पर नियुक्त थे, नीचे उनके नाम दिये गये हैं —

मुस्तफा कुली खाँ	१६४०	ई०
शेर महम्मद खाँ	१६४१	,,
महब्बत खाँ		
महम्मद हसन खाँ	१६४६	,,
रुस्तम दिल खाँ	१६६७	,,
सनावल्ल खाँ	१७२२	,,
अमानुल्ला खाँ	१७२३	,,
राजा विजयरामराज	१७२४	,,
हाफिज उद्दान खाँ	१७२५	,,
महाफिज खाँ	१७४०	,,
जाफर अली खाँ	१७४२	,,
मोवाल खाँ	१७४५	,,
सैयद महम्मद तथा गुल हुसेन	१७४८	,,

वसायके बल इन्होंने न्याय और स्मृतिशास्त्रमें असाधारण पाण्डित्यलाभ किया था। नवद्वीपवासी रामनारायणसे न्यायशास्त्र सीख कर ये सुविख्यात पण्डित कह कर परिचित हुए। इनके बाद इन्होंने जगदीशकृत शब्दशक्तिप्रकाशिकाकी टीका, रघुनाथ शिरोमणिकृत पदार्थतत्त्वकी टीका, न्यायप्रकाशिका और न्यायरत्नावली नामक चार न्यायशास्त्रीय ग्रंथ लिखे। शेषोक्त ग्रंथ न्यायशास्त्रका सारसंग्रह है।

इनकी लिखी हुई जीमूतवाहनकृत दायभागकी टीका इनके स्मृतिशास्त्रज्ञानका परिचय देती है। इसके सिवा इन्होंने गोपाललीलामृत, चैतन्यचिन्तामृत और कामिनीकामकौतुक नामक तीन छोटे छोटे काव्य लिखे। प्रवाद है, कि नवद्वीपाधिपति महाराज श्रीगिरिशचन्द्रके समय नवद्वीपके उत्तरी मैदानकी जमीनमेंसे एक गोपालमूर्त्ति निकली। उसी घटनाका अवलम्बन कर कृष्णकान्तने गोपाललीलामृतकी रचना की थी। उस विग्रहकी आज भी कृष्णनगर-राजभवनमें पूजा होती है। उनके वंशधर आज भी नवद्वीप और पूर्वस्थलीमें वास करते हैं।

श्रीकृष्णचैतन्य—१ श्रीचैतन्यमहाप्रभुका एक नाम। २ संक्षेपभागवतामृत और हरिनामविवेकके रचयिता। १४८६ ई०में इनका जन्म हुआ। चैतन्यदेव देखो।

श्रीकृष्णचैतन्यपुरी—एक प्रसिद्ध वेदान्तिक। इनका रचित एक वेदांतविषयक ग्रंथ मिलता है।

श्रीकृष्णजन्माष्टमी—द्वापरयुगके शेषमें भगवान् श्रीकृष्णने कंस-कारागारमें जन्म लिया था। उस दिन भाद्राष्टमी थी, वही तिथि जन्माष्टमी नामसे प्रसिद्ध है।

जन्माष्टमी देखो।

श्रीकृष्णजयन्ती—युगदेवप्रतिमाविशेष। पञ्चरात्र और ब्रह्मसंहितामें इसका विषय वर्णित है। श्रीकृष्णजयंतीपूजा, श्रीकृष्णजयंतीव्रत, श्रीकृष्णजयंतीमाहात्म्य और श्रीकृष्णजयन्त्युत्सवक्रम नामक ग्रंथमें इनका विवरण सविस्तार लिखा है।

श्रीकृष्णजीवन—विवादार्णवभङ्ग ग्रंथके एक संग्रहकार।

श्रीकृष्ण तर्कालंकार—१ नवद्वीपवासी एक सुविख्यात स्मार्त्त। मालदह जिलेमें इनका आदि निवास था। पीछे ये स्मृतिशास्त्र अध्ययन करनेके लिये अपनी जन्मभूमि छोड़ कर नवद्वीप आये और यहां अच्छी तरह शिक्षित हो जाने पर इन्होंने पूर्वस्थलीके ग्राममें एक ब्राह्मणकी कन्याका पाणिग्रहण किया। इसके बाद ये नवद्वीपमें चतुष्पाठी स्थापित करके अध्यापकका काम करने लगे। संस्कृतशास्त्रवित् पाश्चात्य पंडित कोलब्रूकने लिखा है, कि १८०६ ई०में श्रीकृष्ण तर्कालंकार प्रवीण विद्यमान थे। सुतरां १७वां सदीके शेषभागमें और १८वां सदीके प्रारम्भमें ये जीवित थे, ऐसा ही अनुमान किया जाता है।

इन्होंने जीमूतवाहनकृत दायभागकी टीका तथा दायक्रमसंग्रह नामक दायभाग सम्बन्धीय दो ग्रन्थोंकी रचना की थी। दायाधिकारके प्रमाणके सम्बन्धमें इस ग्रन्थने दायभागका निम्न स्थान प्राप्त किया है। दायभागकी ऐसी विशद टीका दूसरी नहीं है। इस टीकाको सर्वश्रेष्ठ देखकर इनके बादके अध्यापक सुप्रसिद्ध गोपालन्यायालंकारने नवद्वीपमें श्रीकृष्णकी पुस्तक पढ़ना शुरू किया। उस दिनसे यह ग्रन्थ नवद्वीपमें अधीत होता आ रहा है। कोलब्रूक साहबने दायक्रमसंग्रहका अङ्गरेजी अनुवाद किया। धर्माधिकरणसे दायभागके सम्बन्धमें श्रीकृष्णका मत बड़े आदरसे स्वीकार किया जाता है।

न्यायशास्त्रमें भी ये पूरे दक्ष थे। साहित्यके लक्षण और अर्थ आदि विचार कर इन्होंने साहित्यविचार नामक एक न्यायग्रन्थकी रचना की।

२ तर्कालंकार और भट्टाचार्योपाधिधारी एक दूसरे सुप्रसिद्ध नैयायिक। इन्होंने तर्कसंग्रह नामक एक दूसरा ग्रंथ लिखा था।

श्रीकृष्णदीक्षित—१ मीमांसापरिभाषाके प्रणेता। ये श्रीकृष्णयज्वन नामसे भी परिचित थे। २ रूपावतार नामक व्याकरणके प्रणेता। ३ और्द्ध्वदैहिकप्रयोगके प्रणेता। ये यज्ञेश्वरके पुत्र थे।

श्रीकृष्णन्यायवागीश भट्टाचार्य—नवद्वीपवासी एक सुपण्डित। इन्होंने जानकीनाथ तर्कचूडामणिकृत न्यायसिद्धान्तमञ्जरीकी भावदीपिका नाम्नी टीका लिखी। इनके पिताका नाम गोविन्दन्यायालङ्कार था। पिताकी उपाधिसे परिचित थे।

श्रीकृष्णभट्ट—१ एक प्रसिद्ध संन्यासी। ये विद्याधिराज

केवल तंत्रकी दुहाई दे कर निष्ठुरता और पश्वाचारकी पराकाष्ठा दिखा रहे हैं और मद्यपानसे उन्मत्त हो कर पाप के भयंकर दलदलमे फंसते जा रहे हैं। उनका चित्त इस-के पहले ही विशुद्ध हो चुका था एवं पूर्वका स्वभाव भी बदल चुका था। जनसाधारणके हृदयमें तंत्रशास्त्रका वास्तविक रूप प्रतिफलित करनेके अभिप्रायसे तंत्रशास्त्र का सारसंग्रह करनेमें प्रवृत्त हुए। उनके रचे हुए सार-संग्रहका नाम तंत्रसार है। इस ग्रंथमें उन्होंने शाक्त और वैष्णवों के देवदेवियोंकी उपासना और पूजापद्धति प्रकृतिका वर्णन बड़ी दक्षतासे किया है। तंत्रके मतमें सात्विक पूजा किस प्रकार सम्पन्न की जाती है, उसे भी उन्होंने अपने ग्रंथमें बढ़ा चढ़ा कर लिखा है। वर्त्त-मान कालमें कार्त्तिकी अमावस्याकी रातको जो श्यामा पूजा होती है, वह श्यामाकी मूर्त्ति और उनकी पूजापद्धति आगमवागीश भट्टाचार्यकी ही कीर्त्ति है। पहले इस प्रकार पूजा नहीं की जाती थी, उस समय मूर्त्तिका प्रतिष्ठा न कर पूजादि सभी कार्य घटमें सम्पन्न किये जाते थे। आगमवागीश द्वारा मूर्त्तिप्रतिष्ठाकी प्रथा प्रचलित होने पर भी घटस्थापना बिलकुल बंद नहीं हुई। अब भी वह प्रथा प्रचलित है। कृष्णानन्द पहले जो घट स्थापित करके पूजा करते थे, वह इस समय भी उनके घरमें विद्यमान है। उनके वंशधर अब भी उस घटकी पूजा करते हैं।

कृष्णानंदके द्वारा श्यामाकी मूर्त्ति निर्माण होनेके सबंधमें बंगालके सभी स्थानोंमें इस प्रकार जनश्रुति चली आती है—आगमवागीश भट्टाचार्यने शक्तिमूर्त्ति निर्माण कर पूजा करनेका इच्छा की। तंत्रोक्त ध्यानानु-सार भयंकर मूर्त्ति किस प्रकार गठित करेंगे एवं दोनों पाँव किस रंगमें रगेंगे, यह स्थिर न कर सकनेके कारण वे बहुत चिंतित हुए। उन्हें चिंतित देख कर देवीने अत्यन्त प्रसन्न हो कर उन्हें आदेश किया—"वत्स! कल सुबहको शय्यात्याग करनेके बाद तुम पहले पहल जिस मूर्त्तिको देखो, उसे ही मेरा वास्तविक स्वरूप समझो। दूसरे दिन प्रत्यूषमें कृष्णानन्द जिस समय शय्यात्याग कर घरके बाहर निकले, उस समय उन्होंने सामने एक साँवली गोप रमणीको देखा। वह रमणी पूर्णगर्भा ना थी, लोकलज्जाके भयसे अत्यन्त सबेरे उठ कर गोबरको चिपड़ी पाथ रही थी। उसका दाहिना पैर उस दीवारके पादमूलसे कुछ अंश ऊपर संलग्न था और बायां पैर पास ही पृथ्वी पर स्थिर था। बांये हाथमेंसे थोड़ा थोड़ा गोबर ले कर दाहिने हाथसे उसे दीवार पर छोप रही थी। अत्यन्त परिश्रम करनेके कारण उसके मुखमंडलसे पसीना निकल रहा था। वह रमणी बार बार अपने हाथके पृष्ठदेशसे ललाटका पसीना पोछ लिया करती थी, जिससे उसके ललाटके सिंदूरसे उसकी दोनों भौंहें लोहित रागरंजित हो रही थीं। उस समय उसके मस्तकसे वस्त्रके खिसक जानेके कारण उसकी केशराशि हवामें इधर उधर उड़ रही थी, जिससे एक अभूतपूर्व भाव पैदा होता था। कृष्णानन्द ठीक उसी समय उसके सामने उप-स्थित हुए। गोपरमणीने स्वभावसुलभ लज्जावश अपनी दन्तपंक्तियोंके बीच जीभ दबा ली। आगमवागीशने उसी मूर्त्तिमें देवीकी मूर्त्तिकी कल्पना की एवं वे नित्य उसी मूर्त्तिकी स्थापना कर पूजा करनेके उपरांत रातमें विसर्जन कर देते थे। आगमवागीशकी पूजामें किसी प्रकारके बलिदान तथा मादकताका संस्रव नहीं था। आगमवागीश द्वारा प्रकाशित श्यामा मूर्त्ति आगमेश्वरी के नामसे विख्यात हुई। उनके वंशधर अब भी उस मूर्त्तिको पूजा करते हैं। तंत्रसारके अतिरिक्त कृष्णा नन्दने श्रीतत्त्वबोधनी नामक एक और तंत्रग्रंथ लिखा था। उनके पौत्र और हरिनाथके पुत्र गोपाल भी तंत्रशास्त्रमें पूरे पंण्डित थे। तंत्रदीपिका नामक उनका लिखा हुआ एक सुवृहद्ग्रंथ पाया जाता है।

श्रीकेशव (सं॰ पु॰) श्रीकृष्णकेशवाचार्य नामक एक प्रसिद्ध पण्डित।

श्रीक्रमतंत्र—तंत्रसारोद्धृत एक तंत्रशास्त्र। वृहत् श्रीक्रम-तंत्र नामक और एक तंत्र मिलता है, शाक्तानन्द तरङ्गिणी-में उसका उल्लेख है।

श्रीक्रियारूपिणी (सं॰ स्त्री॰) राधा।

श्रीक्षेत्र (सं॰ पु॰) जगन्नाथपुरी तथा उसके आस पासके प्रदेश। विशेष विवरण जगन्नाथ शब्दमें देखो।

श्रीखण्ड (सं॰ पु॰ क्ली॰) श्रियः शोभायाः खण्ड इव

यत्र। चन्दनभेद, हरिचन्द्र। राजनिघण्टमें लिखा है, कि पीट्ट और सुक्कडिके भेदसे श्रीखण्डचन्दन दो प्रकारका होता है। उनमेंसे जो आर्द्र अर्थात् अपेक्षाकृत अधिक स्नेहयुक्त तथा जिसका गुरा स्वतःभावसे स्तर स्तरमें विन्यस्त हो, उसका नाम पीट्ट और जिसमें कुछ स्नेहभाग है, ऐसा बोध नहीं हो अर्थात् जो एकदम नीरस हो, उसे सुक्कडि कहते हैं। गुण—कटु, तिक्त, शीतल, कषाय वृष्य, मुखरोगघ्न, कान्तिप्रद तथा पित्त, भ्रान्ति, वमि ज्वर, क्रिमि, तृष्णा और सन्तापविनाशक, गात्रादिमें इसका प्रलेप देनेसे खूब नींद आती है। चन्दन देखो।

श्रीखण्डशैल (सं० पु०) मलयपर्वत जहां श्रीखण्डचन्दन होता है।

श्रीखण्डा (सं० पु०) श्रीखण्ड देखो।

श्रीगणेशा (सं० स्त्री०) श्रीराधाका एक नाम।

श्रीगदित (सं० क्ली०) उपरूपकके अठारह भेदोंमेंसे एक भेद। इसकी रचना प्रायः किसी पौराणिक घटनाके आधार पर होती है। इसका दूसरा नाम श्रीरासिका भी है।

श्रीगन्ध (सं० क्ली०) श्वेतचन्दन, सफेद चन्दन।

श्रीगर्भ (सं० पु०) श्रीर्गर्भेऽस्य। १ विष्णु। २ खड्ग, तलवार।

श्रीगर्भ—काश्मीरके एक राजकवि। ये श्रीकण्ठके पिता और मङ्खके समसामयिक थे।

श्रीगर्भकवीन्द्र—पद्यावलीधृत एक कवि।

श्रीगर्भरत्न (सं० क्ली०) मूल्यवान् प्रस्तर।

श्रीगिरि (सं० पु०) चारुगिरि। इसका दूसरा नाम श्रीशैल भी है।

श्रीगुणलेखा (सं० स्त्री०) काश्मीरकी एक रानी।

श्रीगुप्त—मङ्खके समसामयिक एक मीमांसक। श्रीकण्ठचरितमें इनका उल्लेख पाया जाता है।

श्रीगुप्त—मगधके गुप्तराजवंशके प्रतिष्ठाता। ये घटोत्कचगुप्तके पिता थे।

श्रीगुरु (सं० पु०) वैश्योंकी एक जाति।

श्रीगेह (सं० पु०) पद्म, कमल।

श्रीगोड (हिं० पु०) वैश्योंकी एक जाति।

श्रीगोन्द (श्रीगोवेन्द)—१ बम्बई प्रदेशके अहमदनगर जिलेके दक्षिणका एक उपविभाग। भूपरिमाण ७२५ वर्गमील है। भीमानदीकी उपत्यका ले कर यह उपविभाग संगठित हुआ है और साधारणतः समुद्रतटसे १६०० फुट ऊंचा होनेके कारण यह अधित्यकाक्रममें गिना जाता है। यह भूभाग उत्तर पूर्वमें क्रमशः ढालू हो कर दक्षिण भीमातट और दक्षिण पश्चिम उसकी घोड़ नामकी शाखातट पर आ कर समतल क्षेत्रमें मिल गया है। उत्तरपूर्वमें २०० फुट अधित्यकाविस्तृत एक बड़ा पहाड़ है। धोन्द मनमाड रेलपथ इस उपविभागके उत्तर-दक्षिण चला गया है। यहां तरह तरहकी फसल लगती है।

२ उक्त जिलेके उक्त उपविभागका प्रधान नगर। यह अक्षा० १८ ४१ उ० तथा देशा० ७४ ४४´ पू०के मध्य विस्तृत है। यहांके चार बड़े मन्दिर और सिन्दे राजके दो वासभवन देखने लायक हैं। गोविन्द नामक एक चमारजातिके वैष्णवसाधुके नामानुसार इस नगरका नाम श्रीगोविन्द हुआ है। इसके बाद यह अपभ्रंश से श्रीगोन्द नामसे परिचित हुआ है। कोई कोई इसे चामरगोन्द भी कहते हैं।

श्रीगोविन्दपुर—पञ्जाबप्रदेशके गुरुदासपुरजिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० ३१ ४१ उ० तथा देशा० ७४ ४४ पू०के मध्य बटालासे १८ मील दक्षिणपूर्व इरावती नदी पर अवस्थित है। सिखगुरु अर्जुनने यह स्थान खरीद कर अपने पुत्र हरगोविन्दके नामानुसार श्रीगोविन्दपुर नगर बसाया। सिख लोगोंके निकट यह स्थान अति पवित्र समझा जाता है। गोविन्दके वंशधर जालन्धर दोआबके अन्तर्गत कर्तारपुरवासी सिख गुरुगण यहांके अधिकारी हैं।

श्रीगोष्ठी—कावेरी नदीके दक्षिण मणिमुक्त नदीके तट पर अवस्थित एक देवक्षेत्र। ब्रह्माण्डपुराणके अन्तर्गत श्रीगोष्ठी माहात्म्यमें इसका विवरण मिलता है।

श्रीग्रह (सं० पु०) श्रियः ग्रहो यत्र। पक्षियोंके पानी पीनेका घर। पर्याय—शकुनिप्रपा। (हारावली)

श्रीग्राम (सं० पु०) एक प्राचीन ग्राम। यहां ज्योतिर्विद् श्रेष्ठ नारायणने जन्मग्रहण किया। इसलिये ये श्रीग्रामर कहलाते थे।

श्रीग्रामर (सं० पु०) ज्योतिर्विद् नारायणका एक नाम।

श्रीघन (सं० पु०) श्रिया बुद्ध्या घनः। १ बुद्धदेव। २ बौद्धयति या संन्यासी। (क्ली०) श्रिया घनम्। ३ दधि, दही।

श्रीचक्र (सं० क्ली०) श्रियाश्चक्रम्। १ त्रिपुरासुन्दरीका पूजायंत्रविशेष। यह यंत्र या चक्र साधारणतः सृष्टि, स्थिति और प्रलयात्मक है। उनमेंसे अष्टपत्र, षोड़शदल, वृत्तत्रय, भूगृहत्रय और चतुर्द्वारविशिष्ट चक्र सृष्ट्यात्मक; द्वि, दश या चतुर्दश अरकविशिष्ट, ये तीन प्रकारके चक्र स्थित्यात्मक तथा बिन्दुयुक्त, त्रिभुज अथवा अष्टकोणाकृति ये तीन प्रकारके चक्र संहारात्मक हैं।

उक्त चक्र सिंदूर कुंकुम आदिसे लिप्त कर सुवर्ण, रजत, पञ्चरत्न, स्फटिक और ताम्रादि द्वारा उत्कीर्ण करना होता है।

भूतभैरवतंत्रमें लिखा है, कि प्रत्येक देवीके अपने अपने निर्दिष्ट यंत्राङ्कनकालमें यदि किसी तरह व्यतिक्रम हो अर्थात् एक देवीके पूजाकालमें भ्रमवशतः अन्य देवीका निर्दिष्ट चक्र अङ्कित हो जाय अथवा प्रकृत चक्र अङ्कित हो कर भी यदि उसकी रेखा, मुख आदिका अङ्कन समभावमें न हो, तो स्वयं भूतभैरव पूजा करनेवालेका यथासर्वस्व अपहरण करते हैं।

उक्त तंत्रमें यह भी लिखा है, कि रातको किसी प्रकारका चक्र अङ्कित न करे; प्रमादवशतः यदि किया जाय, तो उसे उसी समय अभिशप्त होना पड़ेगा।

स्वच्छन्दभैरवतंत्रमें लिखा है, कि स्थण्डिलाभ्यन्तर हाथ भरका अति सुंदर चक्र या यंत्र प्रस्तुत करे। रत्नादिसे निर्माण करनेमें उन सब रत्नोंका परिमाण इच्छानुसार एक, दो, तीन या चार तोला तक दिया जा सकता है। अधिक देनेसे प्रायश्चित्तार्ह होना पड़ता है।

उक्त तंत्रमें लिखा है, कि वह चक्र रक्त या रत्नों द्वारा परिपूर्ण कर उसमें देवीकी पूजा करनेसे सब प्रकारके विघ्न नष्ट होते हैं तथा पृथिवी पर अभीष्टानुरूप द्रव्य आसानीसे मिलता है।

१० भाग स्वर्ण, १२ भाग ताम्र और १६ भाग रौप्यके मेलसे चक्र प्रस्तुत कर उसमें पूजा करनेसे अणिमादि अष्टसिद्धिका अधिपतित्व और परमसौभाग्य लाभ होता है। प्रवाल, पद्मराग, इन्द्रनील, वैदूर्य, स्फटिक, मरकत आदि मणिरत्नादिसे चक्र बना कर पूजा करनेसे निश्चय ही स्त्रीपुत्र-यश-धन आदिकी प्राप्ति होती है। ताम्रसे कांति, सुवर्णसे शत्रुनाश, रजतसे शुभफल और स्फटिकसे सर्वसिद्धिलाभ होता है। ये सब फल केवल श्रीचक्र होनेके कारण नहीं हैं, चक्रमात्रको ही लक्ष्य कर कहा गया है। अर्थात् चाहे जो कोई यंत्र क्यों न हो वह उक्त प्रकारसे निर्माण कर उसमें पूजा करनेसे ये सब फल मिलते हैं।

तंत्रसारादिमें लिखा है, कि किसी प्रकारका चक्र या यंत्र स्फुटित, अग्निदग्ध अथवा चोरापहृत होनेसे नितान्त संयत हो कर एक दिन उपवास और भक्तिपूर्वक लाख बार जप, होम, तर्पण, गुरुपूजा तथा ब्राह्मणभोजन आदि कार्य करने होंगे। लाख बार जप करनेके बाद उसके दशांश परिमित होम तथा उसका दशांश परिमित तर्पण करना उचित है। किसी किसीके मतसे दश हजार बार जप करनेसे भी काम चल सकता है।

तंत्रमें लिखा है, कि इच्छापूर्वक यदि कोई चक्र भग्नस्फुटित या उसका कोई चिह्न लोप कर दे, तो वह व्यक्ति शीघ्र ही मृत्युमुखमें पतित होता है। इस कारण उसे किसी प्रधान तीर्थमें, गङ्गादि नदीमें अथवा समुद्रजलमें फेंक देना होगा, नहीं तो भीषण कष्ट भोगना पड़ता है।

गङ्गा, पुष्कर, नर्मदा, यमुना, गोदावरी, गोमती, गोमुखी, गया, प्रयाग, बदरिकाश्रम, वाराणसी, सिंधु, रेवा, सेतुबंध, सरस्वती आदि तीर्थोंमें स्नान करनेसे जो फल होता है, श्रीचक्र उससे अपेक्षा सहस्रकोटि फल देनेवाला है। मनुष्य सौ यज्ञ, सोलह महादान, साढ़े तीन करोड़ तीर्थस्थान इत्यादि करके जो फल पाते हैं अतिशय भक्तिपूर्वक एकमात्र श्रीचक्रके दर्शन करनेसे ही वे सब फल आसानीसे मिलते हैं।

२ इन्द्रका रथचक्र। ३ भूचक्र, पृथिवी।

श्रीचण्ड (सं० पु०) कथासरित्सागर-वर्णित व्यक्तिभेद।

श्रीचन्दन (सं० क्ली०) श्वेत चंदन, सफेद चंदन, संदल।

श्रीचमरी (स० स्त्री०) चमरीमृगभेद, एक प्रकारका हिरन।

श्रीज (स० पु०) श्रिय जायते जन ड। १ कामदेव, मदन। २ शाम्ब। एक नाम।

श्रीजयसिंह—मेवारके एक राणा तथा रत्नसिंहके पुत्र। ये १४वीं सदीके प्रारम्भमें विद्यमान थे।

श्रीटङ्क (स० पु०) सङ्गीतमें एक प्रकारका राग। इसमें सब कोमल स्वर लगते हैं।

श्रीटक (स० पु०) काश्मीरान्तर्गत स्थानभेद।

श्रीणा (स० स्त्री०) निरिशा, रात्रि, रात। (निघण्टु १।७)

श्रीतरु (स० पु०) शालवृक्ष, मालका पेड़।

श्रीतल (स० क्ली०) विष्णुपुराणके अनुसार एक नरकका नाम।

श्रीताल (स० पु०) मलय देशमें उत्पन्न होनेवाला ताल या ताड़के वृक्षसे मिलता जुलता एक प्रकारका वृक्ष। इसे हिंताल भी कहते हैं। पर्याय—मृदुताल, लक्ष्मताल, मृदुच्छद, विशालपत्र लेखार्ह मसालेखद्रु शिरालपत्रक, याम्योद्भूत। गुण—मधुर शीतल, कुछ कषाय पित्तघ्न, कफकर, थोड़ा वातप्रकोपण। (राजनि०)

श्रीतीर्थ (स० क्ली०) महाभारत वनपर्वके अनुसार एक प्राचीन तीर्थका नाम।

श्रीतेजस् (स० पु०) बुद्धभेद। (ललितविस्तर ५।११)

श्रीद (स० पु०) श्रियं ददातीति दा क। १ कुबेर। (त्रि०) २ श्री बढ़ानेवाला, शोभा बढ़ानेवाला।

श्रीदत्त—१ नैषधीय पूर्वभागटीकाके प्रणेता। २ जैनेन्द्र व्याकरणोद्धृत एक प्राचीन पण्डित। ३ महोपाधिक एक कवि।

श्रीदत्तमैथिल—आचारादर्श आवसथ्याधानपद्धति छन्दोगाह्निक, पितृभक्ति या श्राद्धकल्प व्रतसार, समयप्रदीप आदि ग्रन्थोंके प्रणेता। कमलाकर तथा आचारार्क ग्रन्थमें दिवाकरने इनका मत उद्धृत किया है।

श्रीदयित (स० पु०) विष्णु। (शब्द र)

श्रीदर्शन (स० पु०) कथासरित्सागरवर्णित व्यक्तिभेद।

श्रीदशाक्षर (स० पु०) दश पदयुक्त मन्त्र।

श्रीदाक्षिनगर (स० क्ली०) एक नगरका नाम।

श्रीदामन (स० पु०) श्रीकृष्णके एक ग्वाल सखाका नाम। इन्हें सुदामा भी कहते हैं। (हरिवंश)

श्रीदुर्गाव्रत (स० क्ली०) दुर्गादेवीपूजार्थ तन्त्रोक्त व्रतविशेष।

श्रीदेव—१ योगदीपिका नामक ज्योतिर्ग्रन्थके रचयिता। २ स्मृतितत्त्वप्रकाशके प्रणेता। ३ सुप्रसिद्ध ग्रन्थकार याज्ञिक देवका एक नाम। याज्ञिकदेव देखो।

श्रीदेव आचार्य—सिद्धान्तजाह्नवी नामक वेदान्तग्रन्थके प्रणेता।

श्रीदेवपण्डित—परिभाषावृत्ति नामक व्याकरणके प्रणेता।

श्रीदेव शर्मन्—स्मार्त्तसमुच्चयके प्रणेता सुप्रसिद्ध नन्द पण्डितके पिता। ग्रन्थकारकी उक्तिसे जाना जाता है, कि उनके पिता सर्वशास्त्रविद् थे। वे भिन्न भिन्न विषयोंके अनेक ग्रन्थ लिख गये हैं।

श्रीदेवा (स० स्त्री०) वसुदेवकी पत्नी। सुदेवा या सहदेवा इनका दूसरा नाम है।

श्रीदेवी—देवगिरि यादव राजाओंके प्रधान सामन्त इन्द्रराज (निकुम्भ) की महिषी। यह सगर जातिकी थीं। स्वामीके परलोक सिधारने पर इन्होंने पुत्रकी अभिभाविकारूपमें खानदेशका शासन किया। (११५६ ११६५ ई०)

श्रीदेवीसिंहदेव—योगप्रदीप नामक योगशास्त्रीय एक ग्रन्थके रचयिता।

श्रीधन (स० क्ली०) एक गायका नाम। (तारनाथ)

श्रीधनकटक—एक प्रसिद्ध बौद्धचैत्य। (तारनाथ)

श्रीध गोपुरा—एक प्राचीन दक्षतीर्थ। श्रीधन्वीपुरी माहात्म्यमें इस पुण्यक्षेत्रका सविशेष परिचय है।

श्रीधर—अश्विगेडीके आस पासके एक सामन्तराज। (११५७ ई०) ये कलचुडोराज विज्जलके अधीन सामन्त पद पर अभिषिक्त थे।

श्रीधर (स० पु०) धरतीति धृ अच् श्रिया धरः। १ विष्णु। २ भूताहंदुभेद। ३ शालग्रामचक्र। ब्रह्मवैवर्त्त पुराणमें श्रीधरचक्रका विषय उल्लिखित है। ये अति क्षुद्र दो चक्रविशिष्ट, वनमालाविभूषित तथा गृहीयोंके सम्पद्दाता है। ४ जैनियोंके चौबीस तीर्थङ्करोंमेंसे सातवें तीर्थङ्करका नाम। (त्रि०) ५ श्रीमान्, लक्ष्मीवान्।

श्रीधर—१ एक आभिधानिक। सुन्दरगणिकृत धातुरत्नाकरमें इनका उल्लेख है। २ अमरकोषटीकाके प्रणेता। ३ अशौचके रचयिता। ४ कात्यायनश्रौतसूत्रभाष्यकार। ५ कालविधानपद्धतिके प्रणेता। ६ जयमल्लविलास नामक दीधितिकार। ७ नित्यकर्मपद्धतिके प्रणेता। यह ग्रंथ श्रीधरपद्धति नामसे भी परिचित है। ८ पाशुपप्रतापके प्रणेता। ९ विश्वामित्रसंहिता नामक दीधितिकार।

श्रीधर आचार्य—एक प्राचीन ज्योतिर्विद्। गणकतरङ्गिणीके मतसे ६९१ ई०में इनका जन्म हुआ था। भास्कराचार्यने बीजगणितमें तथा केशवने जातकपद्धतिमें इनका मत उल्लेख किया है। अरिष्टनवनीतटीका, गणितसार, त्रिंशतीगणितसार, पद्धतिरत्न, पारीसार, लीलावती, श्रीधरपद्धति, श्रीपतिपद्धति और श्रीधरीय नामक ज्योतिःशास्त्र इनके लिखे हैं। उक्त ग्रंथोंसे ज्ञात पड़ता है, कि इस नामके कितने ज्योतिर्विद् थे।

श्रीधर आचार्य यज्वन्—स्मृत्यर्थसारके रचयिता। इस ग्रंथमें इन्होंने स्वयं गोविंदराज और तीर्थसंग्रहकारका मत तथा हेमाद्रिने अपने ग्रंथमें इनका मत उद्धृत किया है। इनके अलावा इनका रचा श्रीधरीय नामक एक धर्मशास्त्र भी मिलता है। प्रयोगपारिजातमें और संस्कारकौस्तुभमें उक्त ग्रंथका परिचय है। इनके पिताका नाम था विष्णुभट्ट उपाध्याय।

श्रीधरकवि—१ रामरसामृत नामक काव्यके रचयिता। २ एक ग्रंथकार। इनका नाम था राजा सुब्बासिंह चौहान। ये ओयेल जिला खीरीके रहनेवाले थे। सन १८७४ ई०में इनका जन्म हुआ था। इन्होंने भाषामें विद्वन्मोदतरङ्गिणी नामकी एक पुस्तक लिखी है। इस ग्रंथमें इन्होंने अन्य सत्कवियोंके बताये कितने ही अच्छे अच्छे उदाहरण दिये हैं।

श्रीधरदास—सदुक्तिकर्णामृतके प्रणेता। १२०४ ई०में यह ग्रंथ सङ्कलित हुआ। इनके पिता वटुदास वङ्गेश्वर लक्ष्मणसेनके सेनापति और परम सुहृद् थे।

श्रीधर दीक्षित—१ प्रयोगवृत्तिके प्रणेता २ सामप्रयोगपद्धतिके प्रणेता।

श्रीधरनन्दिन्—एक प्राचीन कवि।

श्रीधरपति—दानचंद्रिकावलीके रचयिता।

श्रीधर पाठक—एक हिंदी कवि। आप सारस्वत ब्राह्मण थे। आपके पूर्वपुरुष हजार वर्षसे ऊपर हुए पञ्जाब छोड़ कर जिला आगरे परगना फिरोजाबादके जोंधरी नामक गाँवमें आ बसे थे। पाठकजीके पिताका नाम था लीलाधर पाठक। वे एक सामान्य पण्डित थे। परंतु सच्चरित्रता, पवित्रता और भगवद्भक्तिमें वे अद्वितीय थे।

आपका जन्म सं० १९१६ को माघ कृष्णाचतुर्दशीको हुआ था। प्रारम्भमें आपने संस्कृत पढ़ना शुरू किया था और उसमें आपने अच्छी योग्यता भी प्राप्त कर ली थी। परंतु कई कारणोंसे आपको १२ वर्षकी उम्रमें संस्कृत पढ़ना छोड़ देना पड़ा।

अब पाठकजीकी रुचि चित्र तथा मिट्टीकी सुंदर मूर्त्तियां बनानेकी ओर गई। १४ वर्षकी अवस्थासे आपको फिर पढ़ना आरम्भ हुआ। पहले फारसी पढ़ कर आप तहसीली स्कूलसे हिंदीकी प्रवेशिका परीक्षामें उत्तीर्ण हुए। इस परीक्षामें आप प्रांत भरमें प्रथम रहे। सन् १८८० ई०में आपने प्रथम श्रेणीमें एंट्रेंस परीक्षा पास की।

परीक्षा पास करनेके छः महीने पीछे आप कलकत्ते आये और ६०) मासिक पर सेंसस कमिश्नरके स्थायी दफ्तरमें नौकर हुए। इसी पद परसे आप शिमला गये और हिमालयकी उदग्र मूर्त्तिका आपने दर्शन किया। वहाँसे लौटने पर कुछ दिनोंके बाद प्रयागमें लाट साहबके दफ्तरमें ३०) मासिक पर नियुक्त हुए। इस दफ्तरके साथ पाठकजीको कई बार नैनीताल जानेका अवसर मिला। सन् १८ ८ ई०में जब आपका वेतन २००) था, तब आगरे इनकी बदली हुई और वहांसे सन् १९०१ ई०में २००) मासिक पर आप इरीगेशन कमीशनके सुपरिंटेंडेंट नियुक्त हुए। कमीशनके अंत तक आप उसी पद पर रहे। इसके बाद आप भारत गवर्मेण्टके दफ्तरमें सुपरिण्टेण्डेण्टके पद पर रहे। एक वर्षके बाद आपने तीन महीनेकी छुट्टी ली और काश्मीर गये। वहांसे लौटने पर "काश्मीरसुषमा" नामका एक उत्तम काव्य आपने रचा। पाठकजीने सरकारी काम

बड़ा योग्यतासे किया। आप अंगरेजी लिखनेके लिये भी प्रसिद्ध थे। सन् १८९८ ९९ की प्रान्तीय इरीगेशन रिपोर्टमें आपकी प्रशंसा छपा है। तदनन्तर आप युक्तप्रदेशके लाट साहबके दफ्तरमें ३००) मासिकको सुपरिण्टेण्डेण्टो पदसे पेन्सन लेकर लूकरगञ्जमें रहने लगे।

पण्डित श्रीधर पाठकजीका हिंदी संसारमें बड़ा नाम है। आप हिन्दीके सुकवि थे। खड़ी बोली और व्रजभाषाके आप समान कवि थे। परन्तु खड़ी बोलीकी कविताके आप आचार्य माने जाते थे।

आपने स्कूलमें पढ़ने समय सबसे पहले अपने ग्राम जौधरीकी प्रशंसामें कविता रची थी। परन्तु वह कविता प्रकाशित नहीं हुई। आपकी फुटकल कविताओंका संग्रह "मनोविनोद" नामक पुस्तकमें प्रकाशित किया गया है। गोल्डस्मिथके तीन ग्रन्थोंका आपने पद्यानुवाद किया था। वे 'एकान्तवासी योगी', 'ऊजड़ग्राम' और "श्रान्तपथिक" के नामसे प्रकाशित हुए हैं। आप प्राकृतिक दृश्योंका चित्र बड़ा उत्तमतासे खींचते थे।

प्रयागमें 'पद्मकुटीर' नामक एक निवासस्थान बनाकर आप वहीं अन्तकाल तक रहते थे।

श्रीधरभट्ट—१ व्यवहार दशश्लोकीके प्रणेता। २ सपिण्डदीपिका नामक ग्रन्थके रचयिता। ३ पदार्थधर्मसंग्रहकी न्यायकन्दली नामक टीकाके प्रणेता। इनके पिताका नाम बलदेव माताका अब्बोका तथा पितामहका नाम बृहस्पति था। दक्षिणराढ़के अन्तर्गत भूरिसृष्टि ग्राममें इनका जन्म हुआ था। पाण्डुदास नामक एक हिन्दू राजाके उत्साहसे ९९१ ई०में किसी किसीके मतसे ९८६ ई०में इन्होंने उक्त ग्रन्थ लिखा।

श्रीधर मिश्र—१ दानपरीक्षा प्रद्युम्नखण्डन और शुक-ज्ञाननिरादर नामक तीन ग्रन्थके रचयिता। २ वैद्यकनीरसव और वैद्यामृत नामक ग्रन्थके प्रणेता।

श्रीधर सरस्वती—रामज्ञपादशिष्य हरिहरानन्दके शिष्य एवं सिद्धान्ततत्त्वबिन्दुसन्दीपनके रचयिता पुरुषोत्तम सरस्वतीके गुरु।

श्रीधरसान्धिविग्रहिक—काव्यप्रकाशविवेकके प्रणेता।

श्रीधरसूरि—आचारपद्धतिके प्रणेता।

श्रीधर सेन (सं० पु०) राजभेद। वलभी नगरमें इनकी राजधानी थी। भट्टिकाव्यके प्रणेता कवि भर्तृहरि इनकी सभामें विद्यमान थे। (भट्टि २२।३५)

श्रीधरस्वामी—सुप्रसिद्ध टीकाकार। ये परमानन्दके शिष्य थे। सुबोधिनी नामकी भगवद्गीता टीका, भगवद्गीतासारटीका, आत्मप्रकाश नामक विष्णुपुराणटीका, वेदस्तुतिटीका, व्रजविहार आदि ग्रन्थोंकी इन्होंने रचना की। पद्यावलीमें इनके रचित कुछ उत्कृष्ट श्लोक मिलते हैं। कहते हैं कि पदार्थप्रकाशिकानाम्नी एक पुराणटीका इन्हीं की लिखी हुई है। ग्रन्थकारने स्वकृत आत्मप्रकाशमें चित्सुखकी टीकाका उल्लेख किया है। यह स्तुति टीका भी इनकी भागवतपुराण टीकामें सङ्कलित हुई है।

श्रीधरानन्द—विष्णुपादादिकेशान्तस्तुतिके प्रणेता।

श्रीधरानन्द यति—पातञ्जलरहस्य नामक योगशास्त्रके रचयिता।

श्रीधरेन्द्र—भट्टदीपिका आदि ग्रन्थके प्रणेता, खण्डदेव इस नामसे परिचित थे। खण्डदेव देखो।

श्रीधरोलनगर (सं० क्ली०) नगरभेद।

श्रीधाती (सं० स्त्री०) शिवामलकी निरा आमला।

श्रीधामन (सं० क्ली०) १ लक्ष्मीका वासस्थान। २ पद्मकमल।

श्रीनगर—१ कानपुरके अन्तःपाती एक नगर। बुन्देलखण्डके अन्तर्गत एक नगर।

श्रीनगर—पश्चिम हिमालय प्रदेशके काश्मीर राज्यकी राजधानी। यह अक्षा० ३४ ५ ३० तथा देशा० ७४ ५० पू०के मध्य झेलम नदीके बाएं किनारे अवस्थित है। काश्मीरकी 'हैपि भेली' (Happy Valley) नामकी उपत्यकाके मध्यस्थलमें अनेक प्राकृतिक सौन्दर्यके बीच यह राजधानी बसी हुई है।

झेलम नदीके दोनों किनारे करीब दो माल तक श्रीनगर राजधानी फैली हुई है। शहरमें जानेके लिये इस नदीके ऊपर सात पुल हैं। यहां नदीगर्भकी चौड़ाई प्रायः १७६ हाथ और ग्रीष्मकालमें जलकी गहराई प्रायः १८ फुट हो जाती है। नदीके दोनों किनारे चूनेके पत्थरसे भरे पड़े हैं। ये सब सफेद और भिन्न भिन्न चित्रोंसे चित्रित पत्थर जलस्रोतसे घुल गये हैं जिससे

उनकी पूर्णश्री जाती रही। कहीं तो नदीका किनारा धंस जानेसे वे सब पत्थर स्थानभ्रष्ट हो गये हैं, इस कारण किनारेका पहलेसी शोभा बिलकुल नहीं है। कई जगह अब भी पत्थरके बने स्नानघाट स्थानीय सौन्दर्य और समृद्धिका परिचय देते हैं। शान्तिकूट, कुटीकूट और नालो-मार नामकी नहर इसी नगरके बीचसे हो कर बह गई हैं।

समुद्रको तहसे ५२७६ फुट ऊंचे पर्वतके ऊपर यह राजधानी बसी है। दुःखका विषय है, कि चारों ओर दलदल भूमि रहनेके कारण यहांकी आबहवा बिलकुल खराब हो गई है। यहांकी जनसंख्या डेढ़ लाखसे भी ऊपर है। जिसमेंसे हिन्दूकी अपेक्षा मुसलमानकी संख्या ८ गुनीसे कम नहीं होगी। यहांकी सौन्दर्य शाली अट्टालिकाएं प्रायः काठकी बनी तीन या चार खन वाली हैं। प्रायः सभी घर काष्ठनिर्मित होनेके कारण अकसर आग लगा करती है। कभी कभी तो गांवका गांव स्वाहा हो गया है। राजप्रासाद, दुर्ग, बारद्वारी, कमानका कारखाना, टकसालघर, चिकित्सागार, विद्यालय आदि यहांका देखने लायक वस्तु हैं। इनके सिवा कोई राजकीय भवन तो नहीं है, पर प्राचीन मन्दिर, मसजिद और समाधिस्थानादि प्रत्नतत्त्वके यथेष्ट उपकरण हैं। यहां बहुतसे बाजार हैं जिनमेंसे महाराजगञ्जका बाजार ही प्रधान है और यहां आ कर वैदेशिक लोग काश्मीर जात सभी द्रव्यादि पा सकते हैं। श्रीनगर सीमाके बाहर बहुतसी बड़ी बड़ी इमारतें देखी जाती हैं। वे सब इमारतें स्थानीय महाजन और धन-शाली व्यवसायी वणिकोंके खर्चासे बनी है। यहांका Rotten Row नामक वृक्षसारि सज्जित रास्ता देखने लायक है।

श्रीनगर राजधानीके पास ही तख्त्-इ सुलेमान पर्वत है। पर्वतके ऊपर खड़े हो कर देखनेसे सारे नगरका प्राकृतिक सौन्दर्य नजर आता है। इसके शिखर पर एक प्राचीन पत्थरका मंदिर विद्यमान है। स्थानीय हिंदू उसे श्रीशङ्कराचार्यका मंदिर बतलाते हैं, किंतु यथार्थमें वह सच नहीं है। बौद्धसम्राट् अशोकके पुत्र जलोकने ईसा जन्मकी तीन सदी पहले उसे बनवाया था, पीछे वह मुसलमानोंकी मसजिदमें परिणत हो गया, समुद्रपृष्ठसे उस स्थानकी ऊंचाई ६६५० फुट है।

शहरके उत्तरी प्रान्तमें हरिपर्वत है। वह एक स्वतंत्र गण्डशैलमात्र है और भूपृष्ठसे २५० फुट ऊंचा है। इसके ऊपर श्रीनगरदुर्ग स्थापित है। दुर्गप्राचीर समूचे पहाड़को घेरे हुए है। उसके 'काठि दरवाजा' नामक प्रवेशद्वारके ऊपर पारसी भाषामें जो शिलालिपि उत्कीर्ण है, उससे जाना जाता है, कि मुगल-सम्राट् अकबर शाहके जमानेमें १५६० ई०को करोड़ रुपये खर्च करके यह दुर्ग और प्राचीर बनाया गया था। प्राचीर प्रायः ३ मील लम्बा और २८ फुट ऊंचा है।

नगरके बीच शेरगढ़ी नामक स्थानमें राजप्रासाद और दुर्ग स्थापित हैं। इसकी लम्बाई ८०० हाथ और चौड़ाई ४०० हाथ है। इसका भी प्राचीर २२ फुट ऊंचा है। यहां सेनावासके लिये बारक, राजकार्यालय और राजपुरसंक्रान्त अट्टालिकादि विद्यमान हैं। स्थानीय जुमा-मसजिद एक चौकोन इमारत है। उसके मध्य-स्थलमें एक विस्तृत प्राङ्गण है।

नगरके उत्तरपूर्व काश्मीरका सुप्रसिद्ध डाल नामक ह्रद है। उसकी लम्बाई ५ मील और चौड़ाई २॥० मील तथा जलकी गहराई प्रायः १० फुट होगी। इस विस्तृत ह्रदके ऊपर कुछ उद्यान सजे हुए नजर आते हैं। उनमें जहांगीरका स्थापित 'शालिमार उद्यान' और सम्राट् अकबरके अङ्कित चित्रानुसार बना हुआ 'नाजिब बाग' नामक उद्यान विशेष द्रष्टव्य हैं। इसके सिवा श्री-नगरकी सीमाके मध्य ऐसे कितने उद्यान हैं। कवि मूरने 'Lalla Rookh' नामसे काश्मीरके डाल ह्रदका वर्णन किया है तथा इस शालिमार उद्यानका चित्र उनके रचित "Light of the Harem" नामकी कवितामें अच्छी तरह अङ्कित है।

एक राजप्रतिनिधि और राजस्व-विभागीय कमिश्नर चीफकोर्टके जज, हिसाबनवीश, एक शाल परिदर्शक और एक दीवानी जज द्वारा यहांके राज्यशासन संक्रान्त सभी कार्य चलते हैं। काश्मीर और जम्मू शब्द देखो।

शहरमें एक हाई स्कूल, अस्पताल और एक जनाना

अस्पताल है। १९०२ ई०में एक दुग्धाश्रम भी खोला गया है।

श्रीनगर—युक्त प्रदेशके गढ़वाल जिलेका एक शहर। यह अक्षा० ३० १३´ उ० तथा देशा० ७८ ४८´ पू० अलकनन्दाके बायें किनारे अवस्थित है। समुद्रपृष्ठसे इसकी ऊंचाई १७०६ फुट है। जनसंख्या २०६१ है। पुराना शहर १७वीं सदीमें स्थापित हुआ और गढ़वालकी राजधानी बनाया गया था; किन्तु १८९४ ई०में गोहना झीलकी बाढ़से यह बिलकुल बह गया। नया शहर एक ऊंचे स्थान पर बसा हुआ है। यहां एक सुन्दर अस्पताल एक पुलिसस्टेशन और एक स्कूल है। विशेष विवरण गढ़वाल शब्दमें देखो।

श्रीनगर—नेमिगिरिके यादव वंशके आदि पुरुष राजा दृढ़प्रहार द्वारा प्रतिष्ठित एक नगर। उक्त राजा निमत देशके अन्तर्गत द्वारावती या द्वारकापुरीसे पहले दल बलके साथ मथुरा आये। यहां उन्होंने श्रीनगर राजधानी स्थापन कर कुछ दिन राज्य किया। पीछे चन्द्रादित्यपुरमें राजधानी उठा कर लाई गई।

श्रीनगर—मध्यप्रदेशके नरसिंहपुर जिलान्तर्गत एक नगर। यह उमार नदीके किनारे नरसिंहपुरसे ११ कोस दक्षिण पूर्वमें अवस्थित है। गोंड राजाओंके अधिकारकालमें यह स्थान समृद्धिकी चरम सीमा तक पहुंच गया था। महाराष्ट्रीय शासनकालमें यहां सेनारक्षाका एक विस्तृत अड्डा था, अभी उसका नाम निशान नहीं है।

श्रीनगर—अयोध्या प्रदेशके खेरी जिलेका एक परगना और ग्राम।

श्रीनगर—युक्तप्रदेशके हमीरपुर जिलेका एक प्राचीन नगर। अभी इसके मकान आदि तहस नहस हो जानेके कारण यह श्रीभ्रष्ट हो गया है। यह महोबा पथनमालाके नवगांव जानेके रास्ते पर हमीरपुरसे ६० मील दक्षिणमें अवस्थित है।

विख्यात बुन्देला सरदार छत्रसालकी रखेली स्त्रीके गर्भसे उत्पन्न मोहनसिंहने १७१० ई०में यह नगर बसाया। उन्होंने बड़े यत्न और परिश्रमसे निकटवर्ती शैलशृङ्ग पर एक दुर्ग और टकसाल घर बनवाया था। उस टकसाल घरसे दक्षिण बुन्देलखण्डमें प्रचलित प्रसिद्ध श्रीनगरी मुद्राका प्रचार हुआ था। उन्होंने यहां मोहनसागर नामका एक बहुत बड़ी दिग्गी भी खुदवाई थी। उसके मध्यस्थलमें एक पर्वतवेष्टित भूखण्ड पर उन्होंने जो विश्राम भवन बनवाया था, वह अभी संस्कार अभावमें जीर्णावस्थामें पड़ा है। १८५७ ई०में सिपाही विद्रोहके समय देशपत नामक डाकू सरदारने यह लूट कर देशवासियोंके बीच धन बांट दिया। पीछे नगरका फिर सुधार न हो सका, पूर्वसमृद्धि बिलकुल जाती रही। इधर उधर पड़ी हुई टूटी फूटी इमारतें उसका साक्ष्य प्रदान करती हैं। यहां पीतलकी अच्छी देवमूर्तियां बनती हैं।

श्रीनगर—युक्तप्रदेशके बलिया जिलान्तर्गत बलिया तहसीलका एक ग्राम। यह अक्षा० २५ ४६ उ० देशा० ८३ २८ पू० बलिया नगरसे २४ मील दूर बैरिया रेलवे रास्तेके ऊपर अवस्थित है।

श्रीनगर—१ कानपुरके अन्तर्गत एक नगर। २ बुन्देलखण्डके अन्तर्गत एक नगर।

श्रीनन्द—श्रीनशाय नामक ग्रन्थके रचयिता।

श्रीनन्दन (सं० पु०) श्रियो नन्दन। १ कामदेव। २ लक्ष्मीका पुत्र।

श्रीनन्दनन्दन (सं० पु०) श्रीकृष्ण। भगवान् कृष्णरूपमें नन्दघोषके घर गोकुल नगरमें पालित हुए थे। नन्द और यशोदाको पितामाता समझते थे इसलिये उनका ऐसा नाम पड़ा।

श्रीनरेन्द्रेश्वर (सं० पु०) काश्मीरका एक शिवलिङ्ग। काश्मीरकी रहनेवाली श्रीनरेन्द्रप्रभा नामकी एक रमणीने इस लिङ्गमूर्तिकी प्रतिष्ठा की थी।

श्रीनाथ (सं० पु०) विष्णु।

श्रीनाथ—१ ग्रहचिन्तामणि नामक ज्योतिर्ग्रन्थके प्रणेता। २ दूषणोद्धारके रचयिता। ३ भागवतपुराणस्वरूपविषयक शङ्कानिरासके प्रणेता। ४ रमल नामक ग्रन्थकर्त्ता। ५ रसरत्न नामक वैद्यकग्रन्थके रचयिता। ६ विद्वान विलास नामक ज्योतिर्ग्रन्थके प्रणेता। ७ दीपिकाटीकाके रचयिता। ८ छन्दोलक्षण नामक वृत्तरत्नाकर टीकाकार। ये गोविन्दभट्टके पुत्र थे।

श्रीनाथ आचार्य—१ श्राद्धदीपिकाके प्रणेता। २ नैषधीयप्रकाशके प्रणेता।

श्रीनाथ कवि—धीशोधिनी नामकी वृत्तरत्नाकर-टीकाके प्रणेता।

श्रीनाथ पण्डित—परहितसंहिता नामक वैद्यकग्रन्थके रचयिता।

श्रीनाथ भट्ट—१ कोष्ठीप्रदीप नामक ज्योतिर्ग्रन्थके रचयिता। २ कामरत्न नामक तन्त्र और यक्षिणीसाधन नामक दो पुस्तकके प्रणेता।

श्रीनाथ शर्म्मन्—१ कर्मप्रकाशक नामक ज्योतिर्ग्रन्थके रचयिता। २ श्रीकर आचार्यके पुत्र। इन्होंने आचारचंद्रिका, कृत्यकालविवरण या कृत्यतत्त्वार्णव, छन्दोगपरिशिष्टप्रकाशसारमञ्जरी, शूलपाणिकृत तिथिद्वैधप्रकरणग्रंथकी टीका, दायभागटीका, प्रायश्चित्तविवेक, विवेकार्णव, शुद्धिविवेक और श्राद्धचंद्रिका नामक बहुतसे ग्रंथ लिखे।

श्रीनिकेत (सं० पु०) १ नवनीत धूप, सरलनिर्यास, गन्धाविरोजा। (सुश्रुत चि०) २ रक्तपद्म, लाल कमल। ३ सुवर्ण, सोना। ४ लक्ष्मीका निवासस्थान, वैकुण्ठ।

श्रीनिकेतन (सं० पु०) श्रियं निकेतयति वासयतीति नि-कित्-णिच् ल्यु। १ विष्णु। (भागवत ६।१८।१३) २ लक्ष्मीका निवासस्थान, वैकुण्ठ। (भागवत ३।३।२०) ३ सरलनिर्यास, गंधाविरोजा।

श्रीनितम्बा (सं० स्त्री०) १ राधा। (पद्मरत्न ५।४।६०) २ सुश्रोणी।

श्रीनिधि (सं० पु०) विष्णु। (पद्मरत्न १।३।८३)

श्रीनिवास (सं० पु०) श्रियो निवासः आश्रयस्थानं। १ विष्णु। (त्रिकाण्डशेष) २ श्री या लक्ष्मीका निवासस्थान, वैकुण्ठ।

श्रीनिवास—१ अधिकरणमीमांसा नामक मीमांसाशास्त्रके रचयिता। २ अभिनववृत्तरत्नाकरटिप्पनी, अलङ्कारकौस्तुभ, काव्यदर्पण और छंदोवृत्ति नामक चारों ग्रंथके प्रणेता। ३ उपाधिखण्डनटिप्पनी नामक वेदान्त ग्रंथके प्रणेता। ४ कल्पदीपिका और सहमकल्पलता नामक दो ज्योतिर्ग्रंथके रचयिता। ५ काव्यसारसंग्रहके प्रणेता। ६ कृष्णराजगद्य और कृष्णराजप्रभावोदयके प्रणेता। ७ गायत्रीमाहात्म्यके रचयिता। ८ गोस्वाम्यष्टकके रचयिता। ९ तत्त्वसंग्रह नामक वेदांत और सत्यनिधिविलास नामक काव्यके रचयिता। ये सत्यनाथके शिष्य थे। १० निगद और वेदभाष्य नामक दोनों ग्रंथके प्रणेता। निघण्टुभाष्यमें देवराजने इनका उल्लेख किया है। ये नियमानंदके शिष्य तथा श्रुत्यंतसुरद्रुमके रचयिता पुरुषोत्तम प्रसादके गुरु थे। ११ जयतीर्थकृत न्यायसुधाकी टीका, जयतीर्थकृत तत्त्वप्रकाशिकाकी प्रमेयमुक्तावली नाम्नी टीका और आनंदतीर्थकृत भागवततात्पर्यनिर्णयकी भागवततात्पर्यप्रकाशचंद्रिका नाम्नी टीका, जयतीर्थकृत मायावादखण्डनविवरणकी टीका और जयतीर्थकृत विष्णुतत्त्वनिर्णयदीपिकाकी वादार्थदीपिका नाम्नी टीकाके प्रणेता। इन्होंने अपने ग्रंथमें रघूत्तम और वेदेश नामक कविका उल्लेख किया है। १२ न्यासतिलक और उसकी टीकाके रचयिता। यह ग्रंथ भक्तिरससे भरा हुआ है। ग्रंथकार कौशिकगोत्रीय थे। १३ परिभाषाभास्कर-टीका नामक व्याकरणके प्रणेता। १४ प्रमेयतत्त्वबोध नामक न्यायशास्त्रविषयक ग्रंथकार। १५ रागतत्त्वविबोध नामक संगीतशास्त्रके रचयिता। १६ लक्ष्मीस्वयम्वर नाटकके रचयिता। १७ शतदूषणी नामक वेदांतशास्त्रकार। १८ श्रीनिवासचम्पूके प्रणेता। १९ श्लेषचूड़ामणि और साहित्यसूक्ष्मसरणिके रचयिता। २० सदाचारसंग्रह नामक ग्रन्थकार। २१ सारदीपिका नामक वेदान्तग्रंथके रचयिता। २२ सिद्धान्तचिंतामणिके प्रणेता। २३ सिद्धांतशिक्षा और उसकी टीकाके रचयिता। २४ सौगन्धिकविवरणव्याख्याके प्रणेता। २५ हठरत्नावली नामक योगशास्त्रके रचयिता। २६ न्यायसिद्धांतमञ्जरी नामक वैशेषिकग्रंथके प्रणेता, अनंत पण्डितके पुत्र।

श्रीनिवास अतिरात्र याजिन्—भावनापुरुषोत्तम नामक नाटकके रचयिता, भावस्वामीके पुत्र और कृष्ण भट्टारकके पौत्र। ये सुरसमुद्रवासी थे।

श्रीनिवास आचार्य—१ निम्बार्क सम्प्रदायके एक आचार्य ये विश्वाचार्यके गुरु और निम्बार्कके शिष्य थे। गीतातत्त्वप्रकाशिकाके प्रणेता काश्मीरवासी केशवभट्ट इनके मन्त्रशिष्य थे। २ माध्व सम्प्रदायके एक आचार्य। इनका दूसरा नाम सत्यसङ्कल्प-तीर्थ था। १८४२ ई०में

इनका देहान्त हुआ। ३ एक परम साधु पुरुष। पीछे ये सत्यकामतीर्थ कहलाने लगे। १८३२ ई०में इनका देहान्त हुआ। ४ उक्त सम्प्रदायके एक दूसरे आचार्य। पीछे आप सत्यपराक्रमतीर्थ नामसे प्रसिद्ध हुए। ५ नयद्युमणि नामक न्यायशास्त्रके प्रणेता। ६ भागवत पुराण व्याख्या, महाभारत व्याख्या और आनन्दतीर्थकृत ईशावास्योपनिषद्भाष्यकी टीका तैत्तिरीयोपनिषद्भाष्यकी टीका प्रश्नोपनिषद्भाष्यकी टीका और माण्डुक्योपनिषद्भाष्यकी टीकाके प्रणेता। आप श्रीनिवासतीर्थ नामसे परिचित थे। ७ उषापरिणय नाटकके प्रणेता। ८ सुरपुर श्रीनिवासाचार्य नामसे भी आपकी प्रसिद्धि थी। उपादानतत्त्वसमर्थनजिज्ञासादर्पण, दुस्तरत्नप्रदीपिका, षष्ठीदर्पण या षष्ठ्यर्थदर्पण सिद्धान्तचिन्तामणि और गिरिगुणमणिदर्पण नामक ग्रन्थ इन्हींके विरचित हैं। ९ तत्त्वरत्नचूलक नामक भक्तिग्रन्थके प्रणेता। १० तत्त्वमार्त्तण्ड नामक वेदान्तशास्त्रके रचयिता। ११ दर्पण नामक दीधितिकार। १२ द्वैतभूषण नामक भक्तिग्रन्थके प्रणेता। १३ न्यायसिद्धान्ततत्त्वामृत नामक ग्रन्थके रचयिता। १४ प्रणवदर्पण नामक वेदान्तशास्त्रके रचयिता। १५ माध्वमत विध्वंसनके प्रणेता। १६ यादवराघवीय काव्यके प्रणेता। १७ युगलसहस्रनाम, रामबाहुशतक रामवर्णनस्तोत्र और हनुमच्छतक नामक चारों ग्रन्थके रचयिता। १८ वज्रसूचिकाच्छेदशिनीके प्रणेता। १९ वेदान्ताचार्यदिनचर्या, वेदान्ताचार्यप्रपदन, वेदान्ताचार्य मङ्गलद्वादशी, वेदान्ताचार्यविग्रहध्यानपद्धति और वेदान्ताचार्यसप्ततिके रचयिता। २० सुदर्शनविजय नामक नाटकके प्रणेता। २१ साम्प्रयोग नामक ग्रन्थके रचयिता। आप श्रीरङ्ग श्रीनिवास आचार्य नामसे परिचित थे। २२ द्राविड़ देशीय एक ब्राह्मण, कौण्डिन्याचार्यके पुत्र और रामचन्द्रके कनिष्ठ। जानकीचरणचामर नामक ग्रन्थ आपने लिखा है। २३ एक सुप्रसिद्ध गौडीय वैष्णवाचार्य। श्रीनिवासाचार्य देखो।

श्रीनिवासक (सं० पु०) कुहकवृक्ष, कटसरैया।

श्रीनिवास कवि-दिव्यसूरिचरितके रचयिता। आप वैद्यपुरन्दर उपाधिसे भूषित थे।

श्रीनिवासतीर्थ—१ आपस्तम्बटीकाके प्रणेता। २ सत्सारटीका नामको वेदान्तविषयक ग्रन्थके रचयिता। ३ तर्कताण्डवव्याख्याके प्रणेता। ४ सन्ध्यावन्दनकार। ५ श्रीनिवासतीर्थीय नामक वेदान्तग्रन्थके प्रणेता।

श्रीनिवासदास—१ अधिकारसंग्रहभावप्रकाशिनी नामक ग्रन्थके प्रणेता। २ दयाशतकदीपिका और पूर्वाचार्यवस्तानन्ददीपिकाके रचयिता। ३ नारायणसूत्रार्थके प्रणेता। ४ प्रक्रियाभूषण नामक व्याकरणके प्रणेता वेङ्कटाचार्यके शिष्य। ५ वादाद्रिकुलिश नामक न्यायशास्त्रीय ग्रन्थके रचयिता। ६ विशिष्टाद्वैतसिद्धान्तके प्रणेता। ७ वेदस्तुतिव्याख्याके रचयिता। ८ वेदान्तरत्नमालाके प्रणेता। ९ ज्ञानदूषणीयमतके प्रणेता। १० यतीन्द्रमतदीपिका नामक ग्रन्थकर्त्ता। आप वाधूल गोत्रीय गोविन्दाचार्यके पुत्र थे। ११ भरद्वाज गोत्रीय देवराजाचार्यके पुत्र। इन्होंने पादुकासहस्रपरीक्षा और उसकी टीका तथा मरकतवल्लीपरिणय नाटककी रचना की।

श्रीनिवासदास—एक हिन्दी ग्रन्थकार। ये जातिके वैश्य थे। इनके पिताका नाम मङ्गीलालजी था और ये मथुराके सेठ लक्ष्मीचन्द्रजीके प्रधान मुनीम थे। वे दिल्लीकी कोठीमें रहते थे।

लाला श्रीनिवासदास बाल्यावस्थासे ही सदाचारी और चतुर थे। इन्होंने हिन्दी उर्दू अंगरेजी फारसी आदि भाषाओंका अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। लालाजीने छोटी अवस्थामें ही अच्छा नाम कमा लिया था। महाजनी कारोबारमें ये इतने दक्ष हो गये थे कि १८ वर्षकी ही उम्रमें इन्होंने दिल्लीकी कोठीका काम सम्हाल लिया। ये अपनी योग्यताके कारण म्युनिसिपल कमिश्नर और आनरेरी मजिस्ट्रेट हुए थे। राजा और प्रजा दोनोंमें इनका बड़ा आदर था।

लाला श्रीनिवासदासको दिल्लीकी कोठीका भी काम सम्हालना पड़ता था और साथ ही अन्य नगरोंकी कोठियोंकी भी देखभाल करनी पड़ती थी, सुतरां इनको अपनी बुद्धिको परिमार्जित करनेका अच्छा अवसर हाथ लगा था। मातृभाषा हिन्दीमें इनका स्वाभाविक प्रेम था। आप जहां कहीं बाहर जाते, वहांके हिन्दी रसिक अथवा लेखकोंसे अवश्य मिलते थे। अपने यहां आए हुए हिन्दी प्रेमीका ये सब काम छोड़ आदर सत्कार करते थे।

इन्होंने हिन्दीके चार ग्रन्थ लिखे हैं। वे इस प्रकार हैं—तमसंवरण, संयोगितास्वयम्वर, रणधीर प्रेम मोहिनी और परीक्षागुरु, अन्तिम पुस्तकमें इन्होंने एक साहूकारके पुत्रके जीवनका दृश्य चित्रित किया है। उसे देखनेसे इनके सांसारिक ज्ञानका अच्छा परिचय मिलता है।

इन्हें अधिक दिनों तक इस संसारमें और नाम कमानेका मौका नहीं मिला, केवल ३६ वर्षकी अवस्थामें इन्हें अपनी जीवनलीला संवरण करनी पड़ी।

श्रीनिवासदीक्षित—१ स्वरसिद्धान्तचन्द्रिका और स्वरसिद्धान्तकौमुदी नामक ग्रंथके रचयिता। आप रामभट्ट यज्वाके पुत्र थे। २ एकाम्रनाथस्तव और शिवभक्ति विलासके प्रणेता। ३ अनुद्धारणप्रायश्चित्तके रचयिता।

श्रीनिवासपुर—१ महिसुर राज्यके कोलर जिलान्तर्गत एक तालुक। यह अक्षा० १३° १२' से १३° ३६' उ० तथा देशा० ७८° ६' से ७८° २४' पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण ३२५ वर्गमील और जनसंख्या ६० हजारके लगभग है। इसमें एक शहर और ३४१ ग्राम लगते हैं। इस तालुकका अधिकांश स्थान जङ्गलावृत शैलमालासे समाच्छन्न है। अभी यह तालुक चिन्तामणि कहलाता है।

२ उक्त तालुकके अन्तर्गत एक बड़ा ग्राम। यह कोलार नगरसे १४ मील उत्तरपूर्वमें अवस्थित है। पहले यह ग्राम पापनहल्ली नामसे प्रसिद्ध था। राजदीवान पूर्णाइयाने अपने पुत्र श्रीनिवासमूर्त्तिके नामानुसार इस स्थानका श्रीनिवासपुर नाम रखा।

श्रीनिवासभट्ट—१ एक विख्यात पण्डित। आप वाराणसीमें रहते थे। बीकानेरराज सूरतसिंहकी सभामें रह कर आपने १८वीं सदीके अंतमें सुरतकल्पतरु नामक तर्कदीपिका की एक टीका लिखी। २ स्मृतिसिन्धु नामक ग्रंथके रचयिता। ३ विरोधवरूथिनीनिरोध नामक ग्रंथके प्रणेता। ४ एक प्राचीन कवि। ५ अभिज्ञानशकुन्तलाटीकाके प्रणेता। ६ सुन्दरराजके शिष्य। ये एक विख्यात पण्डित थे। इनके रचित कालीसपर्य्याक्रमकल्पवल्ली या काढीसपर्य्याक्रमकल्पवल्ली, कमरलावली, द्वितीयार्च्चनकल्पलता, पद्ममालाकमकल्पलता, पद्ममावरिवस्यारहस्य, बटुकार्च्चनचन्द्रिका, भैरवार्च्चापारिजात, लक्ष्मीसपर्य्यासार और शिवार्च्चनचन्द्रिका नामक ग्रंथ मिलते हैं।

श्रीनिवास महीन्तापणीय—गणितचूडामणि और शुद्धिदीपिका नामक ज्योतिर्ग्रन्थके रचयिता। इनका पहला ग्रन्थ १९५८ ई०में लिखा गया था।

श्रीनिवासराजयोगेश्वर—शुभगोदयदर्पण नामक तन्त्रके रचयिता।

श्रीनिवास-राघवाचार्य—अपरप्रयोगदर्पण और वेदान्तसंग्रहके प्रणेता।

श्रीनिवासवाधूल—ब्रह्मसूत्रके श्रीभाष्यकी श्रुतिप्रकाशिका नामकी टीकाकी तुलिका नामक टिप्पण और शारीरकन्यायसंग्रह नामक दो ग्रन्थके प्रणेता। ये अध्यात्मचिन्तामणिके प्रणेता सौम्यजामातृमुनिके गुरु थे।

श्रीनिवास वेदान्ताचार्य—रसोल्लास नामक एक भाणके रचयिता।

श्रीनिवासशिष्य—जालन्धरपीठ माहात्म्यके प्रणेता।

श्रीनिवासाचार्य—एक प्रसिद्ध गौड़ीय आचार्य। श्रीगौराङ्गदेवके तिरोधानके बाद गौड़ीय वैष्णवधर्मके प्रवाह संरक्षणमें श्रीनिवास आचार्य एक प्रधान नेता हुए। ये गङ्गातटवर्त्ती चाखन्दि निवासी गङ्गादास भट्टाचार्यके पुत्र थे। माताका नाम लक्ष्मीप्रिया देवी था। वैशाखी पूर्णिमाके रोहिणी नक्षत्रमें दिवाभागमें इन्होंने जन्मग्रहण किया।

श्रीनिवास अति रूपवान् थे। इनका चम्पकगौरवर्ण, बड़े बड़े नेत्र और सुन्दर नाक देख कर तथा मृदुमधुर वाक्य सुन कर सभी प्रसन्न होते थे। पण्डित धनञ्जय विद्यावाचस्पतिके निकट इन्होंने विद्याध्ययन आरम्भ कर दिया।

परन्तु बचपनसे ही श्रीगौराङ्गचरणमें श्रीनिवासके अकृत्रिम अनुराग हो गया था। उनकी प्रेमभक्ति देख कर तत्सामयिक गौरभक्तगण विस्मित हो गये थे। गोविन्द घोष महाशय श्रीनिवासके मुखसे सर्वदा गौर गुण सुना करते थे।

पितृवियोगके बाद भी श्रीनिवासके गौरानुरागका जरा भी ह्रास न हुआ। आप मानो श्रीगौराङ्गकी प्रेममूर्त्ति थे। आपका यह प्रेम दिनों दिन बढ़ने

लगा। एक दिन श्रीगौराङ्गके दर्शनके लिये इनकी उत्कट इच्छा हुई और फौरन पुरीधामको चल दिये। किन्तु राहमें इन्होंने सुना कि श्रीगौराङ्गका तिरोधान हो गया। यह सुनते ही इनके सिर पर मानो वज्राघात हुआ। वज्राघातकी तरह ये मूर्च्छित हो रहे। कुछ समय बाद जब होश हुआ, तब 'हा गौराङ्ग! तुम कहां चले गये' कह कर रोने लगे।

कहते हैं, कि मूर्च्छाकालमें श्रीगौराङ्गने स्वप्नमें श्रीनिवासको दर्शन दिये थे। नीलाचल पहुंचा कर भी इन्होंने कई बार स्वप्नमें महाप्रभुके दर्शन पाये थे।

श्रीनिवास कुछ दिन पुरीधाममें रह कर फिर गौड़ को लौटे। वहांसे फिर ये वृन्दावनकी चल दिये। यहां श्रीजीवादि गोस्वामियोंके इन्हें दर्शन हुए। श्रीनिवास द्वारा जिस भक्ति ग्रन्थ और भक्तिका प्रचार होगा, श्रीपाद सनातनने स्वप्नमें ही श्रीजीव गोस्वामीको इस सम्बन्धमें उपदेश दिया था। स्वप्नका मर्म इस प्रकार है—२० वैशाखको श्रीनिवास आचार्य नामक एक भक्त यहां आयेंगे। सन्ध्या कालमें श्रीगोविन्ददेवकी आरति के समय जब लोगोंकी भीड़ कम होगा, तब उनकी खोज करना। उनका वर्ण हल्दीकी तरह गौर वर्ण है, कलेवर अति क्षीण है उमर थोड़ी है दोनों नेत्र प्रेमाश्रुपूर्ण हैं। उन्हें देखते ही पहचान लोगे। श्रीगोपाल भट्ट द्वारा उन्हें दीक्षा दिलाना और शास्त्रका अध्ययन कराना। अध्ययन समाप्त होने पर उन्हें ग्रन्थ समर्पण कर गौड़ भेज देना।

स्वप्नमें जैसा देखा था, वैसा ही मूर्ति देख कर श्रीजीव उन्हें अपने श्रीमन्दिरमें ले आये।

श्रीनिवास बहुत दिनों तक श्रीवृन्दावनधाममें रहे। श्रीजीव गोस्वामीसे इन्होंने भक्तिशास्त्र अध्ययन कर आचार्यकी पदवी पाई। श्रीनिवास इस समय दूसरेको भी शास्त्राध्ययन कराते थे। नरोत्तम और श्यामानन्द श्रीवृन्दावनमें श्रीनिवासके शिष्यस्वरूपमें हमेशा इनके साथ घूमा करते थे। श्रीवृन्दावनधाममें भक्ति इन तीन अवतारोंका सम्मिलन श्रीभगवानका एक सुन्दर विधान है। श्रीवृन्दावनके तीर्थदर्शन, प्राचीन प्रवीण और भजननिष्ठ वैष्णवोंके सङ्गलाभ, गोस्वामिशास्त्र

अध्ययन और सदाचारानुष्ठान द्वारा ये लोग सचमुच भक्तिशास्त्रके उपयुक्त प्रचारक थे तथा इन्होंने मानव समाजके पहले गुरुका उपयुक्त सामर्थ्यलाभ किया था।

सबोंने मिल कर स्थिर किया कि अगहन मासके शुभ पक्षमें श्रीनिवासको गौड़ भेज देना चाहिये। श्रीजीव गोस्वामीने सभी भक्ति ग्रन्थ प्रस्तुत कर रखे। देखते देखते अगहनका महीना आ पहुंचा। श्रीनिवास, नरोत्तम और श्यामानन्द व्रजधामसे गौड़ लौटे। श्रीपादजीव गोस्वामीने मथुराके एक धनी मनुष्यसे रास्तेका खर्चा और कुछ मनुष्य और ग्रन्थ ढोनेका गाड़ी मंगा ली। काष्ठ सम्पुटको ग्रन्थोंसे भर कर भक्ति प्रचारकने श्रीनिवास नरोत्तम और श्यामानन्दको गौड़ भेज दिया। कुछ दिन बाद ये लोग वनविष्णुपुरकी सीमा पर आये उस समय वीर हम्बीर वनविष्णुपुरके अधिपति थे। उनका प्रधान व्यवसाय था डकैती। ग्रन्थपूर्ण काष्ठ सम्पुट देख कर वीर हम्बीरके दूतोंने समझा, कि इसमें अनेक मूल्यवान् पदार्थ हैं।

रातको काष्ठसम्पुटकी चोरी हो गई। नींद टूटने पर श्रीनिवास जग उठे और काष्ठसम्पुट न देख बड़े चिन्तित हुए। पीछे ये तीनों अधीर भावसे उसकी तलाश करने लगे, परन्तु निष्फल हुआ। कुछ समय बाद किसान था निवाससे कहा विष्णुपुरके राजाके सामन्तने ग्रन्थसम्पुट लाया गया है, वहीं पर आपको कोन बरामद होगी। यह सुन कर श्रीनिवासको कुछ आशाका सञ्चार हुआ। उन्होंने श्रीनरोत्तमको बुला कर कहा, 'नरोत्तम! तुम श्यामानन्दको ले कर खेतरी जाओ और इस किसी तरह उत्कल भेज दो। ग्रन्थका पता लगते ही मैं तुम्हें खबर दूंगा। आचार्यके आज्ञानुसार वे लोग खेतरी चले गये।

इधर श्रीनिवास अकेले वनविष्णुपुर गये। उन्हें देखते ही वनविष्णुपुरके लोग भगवद्दर्शनार्थ समझने लगे। श्रीकृष्णवल्लभ नामक एक ब्राह्मण पुत्र आचार्य पर नजर पड़ते ही प्रेममें मतवाला हो गया। वह डकैती रहनेवाला था श्रीनिवासको वहां ले गया उसने आचार्यसे कहा 'राजा वीर हम्बीर यद्यपि डकैता

करते हैं फिर भी भागवत सुननेमें उनकी सविशेष अनुरक्ति है। अतएव आप राजभवन चलिये।' इतना कह कर कृष्णवल्लभ श्रीनिवासको राजभवन ले गया। राजा आचार्यके तेजःप्रभावको देख कर बड़े विस्मित हुए और उनके चरणोंमें लेट रहे। उन्होंने अच्छी तरह समझ लिया, कि उनके आदमी रत्नलोभसे जो काष्ठसम्पुट चुरा लाये हैं, वे ही उस रत्नसमूहके अधिकारी हैं। राजा डकैत थे सही, पर उनका चित्त भगवद्रससे बिलकुल हीन न था। श्रीनिवासके दर्शन होनेसे उनका चित्त शुद्ध हो गया। उन्होंने श्रीनिवाससे भ्रमरगीता पढ़नेका अनुरोध किया। श्रीनिवासने ऐसे अद्भुत ढंगसे गीताकी व्याख्या की, कि उसे सुनते ही राजाका वक्षःस्थल अश्रुसिक्त हो गया। संध्याके समय राजाने श्रीनिवाससे कहा, 'प्रभो! यहां आपके पधारनेका क्या कारण है, कृपया कहिये।' श्रीनिवासने इस उपलक्षमें भूमिका बांध कर हम्बीरको श्रीगौराङ्ग अवतारकी कथा सुनाई। पीछे श्रीगौरभक्तोंकी बातें कहीं, इसके बाद ग्रंथोंके चोरी जानेका हाल भी कहा। राजाने बड़े दुःखित हो अपनी दुष्कृतिकी रामकहानी श्रीनिवासको बड़े कोमल स्वर सुना कर कहा, 'सम्पुट खोलते ही मेरे चित्तमें दूसरा भाव हो आया था। जो हो, ग्रन्थ सुरक्षित है, इसके लिये जरा भी चिन्ता न करें। किन्तु प्रभो! इस नराधमको चरणतलमें स्थान देना होगा, मैं महापापी हूं, मेरी घृणा न करें।'

ग्रन्थ पा कर श्रीनिवासने सबोंको खबर दे दी। वीर हम्बीरने ग्रन्थ ढोनेवाली गाड़ी पर नाना प्रकारके द्रव्यादि लाद कर उसे वृन्दावन भेज दिया। श्रीनिवास कुछ दिन वहां रह कर वीर हम्बीरके दिये हुए प्रचुर द्रव्यादिके साथ याजीग्राममें चले गये। उस समय भी स्नेहमयी लक्ष्मीप्रिया ठाकुराणी जीवित थीं। पुत्रको देख माताके चित्तमें आनन्दकी तरंग उमड़ आई। याजीग्रामके आबालवृद्धवनिता सबके सब फूले न समाये।

इसके बाद श्रीनिवास श्रीखण्ड जा कर श्रीरघुनन्दन और श्रीनरहरि सरकार ठाकुरसे मिले। नरहरिने भी उन्हें विवाह करनेका अनुरोध किया। पीछे श्रीनिवासने कटक नगरमें जा कर प्राचीन भक्त दास गदाधरसे भेंट की। इसके पहले ही वे श्रीविष्णुप्रिया देवीके अन्तर्धानका संवाद पा चुके थे। नवद्वीप उस समय शोक अंधकारसे समाच्छन्न हो गया, इसीलिये शोकके मारे कहीं वे व्याकुल न हो जांय, इस डरसे दास गदाधरने उन्हें कटक नगरसे ही याजीग्राममें भेज दिया। नरोत्तम नवद्वीप और पुरीधामसे भ्रमण कर अन्तमें याजीग्राम आये और आचार्यसे मिले। इस समय श्रीनिवासके पास बहुतसे व्यक्ति भक्तिशास्त्रका अध्ययन करते थे। स्वगण-वासी श्रीनिवासके विवाहका उद्योग कर रहे थे। उनमें रघुनन्दन ही अगुआ थे। याजिग्रामके गोपाल चक्रवर्तीकी कन्याके साथ श्रीनिवासका वैशाख मासकी कृष्णा तृतीयाको विवाह हो गया। विवाहके पहले कन्याका नाम द्रौपदी था, परन्तु विवाहके समयसे वे ईश्वरी कहलाने लगीं। कहते हैं, कि गोपाल चक्रवर्ती, उनके लड़के श्यामदास और रामचन्द्र तथा गौरभक्त द्विज हरिदासके पुत्र गोकुलानंद दासने आचार्य प्रभुसे दीक्षा ली थी। कुमारनगरवासी सुविख्यात रामचन्द्र कविराजको भी श्रीनिवासने दीक्षा दे कर कृतार्थ किया था।

कुछ दिन बाद श्रीनिवास फिरसे वृंदावन गये थे। उनके आनेके दश दिन पहले हरिदासाचार्यका तिरोधान हो चुका था। किंतु सौभाग्यवशतः श्रीगोपालभट्ट, श्रीजीवगोस्वामी, भूगर्भ और लोकनाथ उस समय भी जीवित थे। श्रीनिवासको पा कर सभी आनन्दित हुए। इस समय श्यामानंदने भी दूसरी बार श्रीवृंदावनकी यात्रा की थी। श्रीनिवासके अभावमें गौड़ अंधकारवत् प्रतीत होता था। उन्हें लानेके लिये भक्तोंने रामचन्द्रको वृंदावन भेजा। इस समय श्यामानंद, रामचंद्र और आचार्यप्रभु फिर गौड़ लौटे। वनविष्णुपुर आ कर उन्होंने पुनः राजा वीर हम्बीरको कृतार्थ किया। इस बार आचार्यप्रभुने वीर हम्बीर और रानीको मंत्रदीक्षा दी तथा हरिनाम जपनेका क्रम कह दिया।

इसके बाद खेतरीके महामहोत्सवमें भी श्रीनिवास अपने भक्तोंके साथ पधारे थे। श्रीनिवासने ही खेतरीमें नरोत्तमदास ठाकुरके प्रतिष्ठित श्रीगौराङ्ग, वल्लवीकान्त, व्रजमोहन, राधाकृष्ण, राधाकांत और राधारमण मूर्त्तिका अभिषेक किया।

श्रीनिवासने राढ़देशमें गे याजपुरनिवासी राघव चक्रवर्त्ती तथा उनकी गृहिणी माधवी देवीकी प्रार्थनासे उनकी कन्या श्रीमती गौराङ्गप्रिया देवीका पाणिग्रहण किया। आचार्य प्रभुकी दोनों सहधर्मिणियोंमें यथेष्ट सद्भाव था।

कर्णानन्दमें लिखा है, कि श्रीनिवास आचार्य प्रभुके तीन पुत्र और तीन कन्या थीं। पुत्रके नाम श्रीवृन्दावन आचार्य, राधाकृष्ण आचार्य और गतगोविन्द आचार्य तथा कन्याके नाम हेमलता, कृष्णप्रिया और काञ्चन लतिका थे। सबोंने श्रीनिवास आचार्य प्रभुसे दीक्षा मन्त्र लिया था। श्रीनिवासके शिष्य रामकृष्ण चट्टराज के पुत्र गोपीजनवल्लभ चट्टराजके साथ हेमलता देवीका तथा दूसरे शिष्य कुमुद चट्टराजके साथ कृष्णप्रिया देवीका विवाह हुआ। कितने पण्डित और कविराज श्रीनिवासके मन्त्रशिष्य हुए थे।

श्रीप (स० त्रि०) श्रियं पातीति श्री-पा-क। श्रीको पालन करनेवाला। (वोपदेव)

श्रीपञ्चमी (सं० स्त्री०) श्रिये सरस्वत्यै पञ्चमी। माघ शुक्लपञ्चमी, वसन्तपञ्चमी। इस पञ्चमीमें भगवान् कालिकेय लक्ष्मीके साथ सम्मिलित हुए थे, इसी कारण यह तिथि श्रीपञ्चमी कहलाती है। इस तिथिमें लक्ष्मीपूजा करनेसे अतुल भाग्योदय होता है। इस तिथि में विद्याकी अधिष्ठात्री सरस्वती देवीकी भक्तिपूर्वक एकान्त मनसे पूजा की जाती है।

श्रीपञ्चमीव्रत (सं० क्ली०) माघ शुक्लपञ्चम्यारभ्य व्रत विशेष। यह व्रत स्त्रियां करती हैं। शुद्धकालमें माघ मासकी शुक्ला पञ्चमी तिथिसे ले कर छः वर्ष तक यथा क्रम इस व्रतको प्रतिष्ठा करनी होती है।

इस व्रतका प्रतिपाल्नीय विषय इस प्रकार है—पूर्व दिन संयम कर दूसरे दिन व्रताचरण करना है, अर्थात् पूर्वोक्त पञ्चमी तिथिके पूर्वदिन यथारीति संयम कर दूसरे दिन व्रताचरण करे। इसी प्रकार तत्परवर्त्ती प्रतिमासीय शुक्लपञ्चमीमें व्रताचरण कर छः वर्ष विताने होंगे। किन्तु प्रथम दो वर्ष प्रत्येक शुक्ला पञ्चमीको लवणवर्जित अन्न और शेष वर्ष सिर्फ हविष्यान्न भोजन पावेंगे। पश्चात् केवल फल आहार तथा अन्त वर्षमें प्रति पञ्चमीको उपवास कर व्रतप्रतिष्ठा करनी होती है।

श्रीपत (हिं० पु०) विष्णु।

श्रीपति (सं० पु०) श्रियः पतिः। १ विष्णु नारायण, हरि। २ रामचन्द्र। ३ कृष्ण। ४ कुबेर। ५ पृथ्वी पति, नृप, राजा।

श्रीपति—१ एक प्राचीन कवि। २ एक वैयाकरण। प्रक्रियाकौमुदीटीकामें इनका उल्लेख है। ३ एक विख्यात ज्योतिर्विद्। चन्द्रग्रहणसाधन, तत्त्वप्रदीप तिथिपत्र नीराजनावली, दैवज्ञवल्लभ (इस ग्रन्थमें ये नारकण्ठ नामसे परिचित हैं) धीकोटी, ध्रुवमानस, पत्राङ्गशिक्षा पर्वप्रकाश, मुहूर्त्तरत्नमाला और उसकी टीका तथा सारा' वली नामक बहुत से ग्रन्थ इन्होंने प्रणयन किये थे। ३ प्रस्तावतरङ्गिणीके प्रणेता। ४ श्रुतिकल्पलता नामक वेदान्तग्रन्थके रचयिता। ५ सिद्धान्तशेखर नामक ज्योतिःशास्त्रके प्रणेता। ६ रत्नमालाके रचयिता। ये लक्ष्मी नृसिंह भट्टके पुत्र थे।

श्रीपति कवि—पयागपुर जिला बहरायचके रहनेवाले एक हिन्दी-कवि। सं० १५०० में इनका जन्म हुआ था। ये भाषा साहित्यके आचार्यों में गिने जाते हैं। काव्यकल्प द्रुम काव्यसरोज और अनतिसरोज नामक तीन ग्रन्थ इन्होंने भाषा साहित्यके बनाये थे। इनके जन्मस्थानका ठीक पता बताया जा नहीं सकता।

श्रीपतिदत्त—कातन्त्रपरिशिष्टके प्रणेता।

श्रीपतिभट्ट—जातकपद्धति या श्रीपतिपद्धति, ज्योतिषरत्न माला, ज्योतिषरत्नसार और श्रीपत्युदाहरण नामक ज्योतिषग्रन्थके रचयिता। ये केशवके पौत्र और नागदेवके पुत्र थे।

श्रीपतिमिश्र—चतुर्विंशतिमति और बालविवेकिनी नामकी टीकाके प्रणेता।

श्रीपथ (सं० पु०) श्रियः पन्थाः (ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे। पा ५।४।७४) इति अ। राजपथ, राजमार्ग बड़ी और चौड़ी सड़क।

श्रीपदा (सं० स्त्री०) वार्त्ताकी मल्लिकापुष्प बेला।

श्रीपद्म (सं० पु०) श्रीकृष्ण।

श्रीपरम—मुकुन्दविजय नामक ज्योतिषग्रन्थके प्रणेता। इन्होंने १५६१ सम्वत्में राजा मुकुन्ददेवके आज्ञानुसार उक्त ग्रन्थ लिखा।

श्रीपर्ण (सं० क्ली०) श्रीविशिष्टानि पर्णानि यस्य। १ पद्म, कमल। २ अग्निमन्थ, वृक्ष गनियारी।

श्रीपर्णिका (सं० स्त्री०) १ कटफल वृक्ष, कायफल। २ गंभारी। ३ गणिकारिका, गनियारी। ४ शाल्मली वृक्ष, सेमलका पेड़। ५ पृश्निपर्णी, पिठवन। ६ हठ-वृक्ष।

श्रीपर्णी (सं० स्त्री०) श्रीपर्णिका देखो।

श्रीपर्णीतैल (सं० क्ली०) स्तनरोगाधिकारोक्त तैलौषध विशेष। प्रस्तुत प्रणाली—गंभारी छालके क्वाथ और कल्कके साथ तिलका तेल पाक कर उसमें रुई भिगो कर स्तनके ऊपरी भाग पर रखनेसे प्रलम्बमान स्तन पुनः उठ जाता है। (भैषज्यरत्ना०)

रसरत्नाकर ग्रन्थमें उल्लिखित है, कि गंभारी छाल स्वरस द्वारा तैल पाक करना होगा, उस तरह उसका अष्टांशावशिष्ट क्वाथ ग्राह्य है।

श्रीपर्वत (सं० पु०) १ श्रीगिरि। श्रीशैल देखो। २ लिङ्ग-भेद।

श्रीपा (सं० त्रि०) श्री-पा-क्विप्। सौभाग्यशाली, ऐश्वर्य या आरक्षाकारी।

श्रीपाद (सं० पु०) १ पूज्यपाद, वह जो चरण पूजने योग्य हो। २ सिद्धिपाद, श्रेष्ठपाद, लक्ष्मीवन्त या भाग्य वान् व्यक्ति।

श्रीपाल (सं० पु०) प्रसिद्ध जैनराजभेद।

श्रीपाल—अमराष्टकादिप्रशस्ति नामक ग्रंथके रचयिता।

श्रीपाल कविराज—एक प्राचीन कवि।

श्रीपालित—हाल नामक राजाके आश्रयमें पालित एक कवि। काव्यमालाकी 'गाथासप्तशती' नामक कविताके मुखबन्धमें एक पालित नामक कविविरचित आठ श्लोक मिलते हैं।

श्रीपिष्ट (सं० पु०) श्रियः सरलद्रुमस्य पिष्टः। १ सरल वृक्षका रस, गंधाविरोजा। २ लवण खोटी।

श्रीपुट (सं० पु०) छन्दोभेद।

श्रीपुत्र (सं० पु०) १ अश्व, घोड़ा। श्रियः पुत्रः। २ कामदेव।

श्रीपुरनगर (सं० क्ली०) नगरभेद।

श्रीपुरुषमङ्गलम्—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके उत्तर आर्कट जिलेके वन्दीवास तालुकान्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। यहां प्रत्नतत्त्वके निदर्शनस्वरूप बहुतेरी प्रोञ्ज धातुकी और पत्थरकी बनी मूर्त्तियां पाई गई हैं।

श्रीपुष्प (सं० क्ली०) श्रीयुक्तं पुष्पमस्य। १ देवपुष्प, लवंग, लौंग। २ पद्मकाष्ठ, पद्मकाष्ठ। ३ प्रपौण्डरीक, पुंडेरी। ४ श्वेत पद्म, सफेद कमल।

श्रीपुष्पमञ्जरी (सं० स्त्री०) प्रपौण्डरीक, पुंडेरी।

श्रीपेरुमातुर—मन्द्राजप्रदेशके चिङ्गलपट जिलान्तर्गत काञ्ची पुरम्का एक प्राचीन नगर। यह मन्द्राजसे २५ मील दूर पश्चिम ट्राङ्करोड नामक रास्ते पर काञ्चीपुरसे १८ मील उत्तर पूर्वमें अवस्थित है।

यह स्थान पहले भूतपुरी कहलाता था। सुप्रसिद्ध वैष्णवमतप्रवर्त्तक श्रीरामानुजाचार्यने १०१६ ई०में यहां जन्मग्रहण किया। जहां वे भूमिष्ठ हुए, वहां आज भी एक पत्थरका घर बना है। रामानुजाचार्यने अपना विशिष्टाद्वैत मतप्रचार करनेके लिये दाक्षिणात्यमें प्रायः ७०० मठ स्थापन किये तथा जिससे सभी मनुष्य उनके प्रवर्त्तित वैष्णवमत ग्रहण कर पवित्र जीवन वहन कर सकें, इसके लिये उन्होंने उन सब मठोंके परिदर्शक रूपमें ८९ आचार्योंको गुरुपद पर वरण किया था। उनमेंसे आज भी कम्बत्तीपुर, श्रीरङ्गम्, रामेश्वर, तोटाद्रि और अहोविल नामक स्थानमें गुरुवंश वर्त्तमान हैं। श्रीरङ्गममें रामानुजस्वामीका तिरोधान हुआ।

रामानुज देखो।

यहां एक सुप्राचीन विष्णुमन्दिरगात्रमें ग्रन्थाक्षरमें लिखित कुछ शिलालिपियां उत्कीर्ण हैं। उसके पास ही एक दूसरा शिव मन्दिर नजर आता है। स्थानीय लोगोंका विश्वास है, कि वह उक्त विष्णुमन्दिरसे बहुत पुराना है। इस नगरसे १॥ मील पश्चिम अतरपाकम् नहरमेंसे कुछ पत्थरके बने प्राचीन कालके युद्धास्त्र पाये गये हैं।

श्रीप्रद (सं० त्रि०) भाग्य या ऐश्वर्यदानकारी।

श्रीप्रदा (सं० स्त्री०) राधा।

श्रीप्रभाव (सं० पु०) कम्बलभेद। (तारनाथ)

श्रीप्रसूनक (सं० क्ली०) लवङ्ग, लौंग।

श्रीप्रिय (स० क्ली०) १ लक्ष्मीका प्रिय द्रव्य। २ हरि ताल, हरताल।

श्रीफल (स० पु०) श्रीयुक्त फलमस्य। १ विल्ववृक्ष बेलका पेड़। (क्ली०) ३ विल्वफल, बेल। ४ आम लक, आवला। ५ आर्द्र चिक्कण पूग, कच्चा चिकनो सुपारी।

श्रीफलशलाटु (स० पु०) अपक्व विल्वफल, कच्चा बेल।

श्रीफला (स० स्त्री०) १ नीली वृक्ष, नीलका पौधा। २ क्षुद्र कारवेल्ल, करेली। ३ आमलकी आवला।

श्रीफलिका (स० स्त्री०) श्रीफला स्वार्थे कन् टापि अत इत्व। १ क्षुद्र कारवेल्ली करेली। २ महानीलीका पौधा।

श्रीफली (स० स्त्री०) श्री युक्त फलमस्या। १ आम लकी आवला। २ नीली, नीलका पौधा। ३ महाज्योति ष्मती बड़ी मालकंगनी।

श्रीवर (पण्डित)—एक कवि। काश्मीरपति जैनोल्ला बादिन (जैनउल्ला आबेदिन) नामक किसी मुसल मान राजाकी सभामें विद्यमान थे।

श्रीवप्नु (स० पु०) अमृत।

श्रीवल्लि (स० स्त्री०) एक प्राचीन गाव।

श्रीवाहुशाली गुड़ (स० पु०) अर्शोरोगमें व्यवहारार्थ एक गुड़। प्रस्तुत प्रणाली—निसोथ, चई दन्ती, गोक्षुर चित्रक, श्वेतपुर्, ग्वालककड़ी, सोंठ, मोथा, विड़ङ्ग, हरी तकी, प्रत्येक ८ तोला, भल्लातक ६४ तोला, वृद्धदारक बीज ४८ तोला, ओल १२८ तोला, जल २२८ सेर, शेष ३२ सेर, गुड़ १२३ पल। आसन्नपाकमें निसोथ चई, ओल, चीतामूल प्रत्येकका चूर्ण १६ तोला तथा इला यची, दारचीनी, मरीच और नागेश्वरचूर्ण प्रत्येक ४८ तोला इसका प्रक्षेप देना होगा।

श्रीवीज (स० पु०) ताल वृक्ष, ताड़।

श्रीमक्ष (स० पु०) मधुपर्क जो देवताओंके सामने रखा जाता या दान किया जाता है।

विशेष विवरण मधुपर्क शब्दमें देखो।

श्रीमट्ट—निम्बार्कसम्प्रदायके एक आचार्य। ये कहाव काश्मीरीके शिष्य तथा हरिव्यासदेवके गुरु थे।

श्रीमद्र (स० पु०) मुस्तक, मोथा।

श्रीमद्रा (स० स्त्री०) भद्रमुस्तक, भद्रमोथा।

श्रीमागवत (स० क्ली०) श्रीमत्भागवतमिति मध्यपद लोपिसमास। अठारह महापुराणोंमेंसे अठारह सहस्र श्लोक संयुक्त एक महापुराण। श्रीकृष्ण द्वैपायन इस ग्रन्थके रचयिता हैं।

कोई कोई विष्णुभागवत और देवीभागवतके भेदसे श्रीभागवतको दो भागोंमें विभक्त करते हैं। शिवपुराण में लिखा है, कि देवी पुराणादिको छोड़ कर जिसमें सिर्फ भगवती दुर्गादेवीका चरितानुकीर्तन हुआ है, वही श्रीभागवत या देवीभागवत नामसे ख्यात है।

पुराण और भागवत शब्दमें विशेष विवरण देखो।

श्रीभानु (स० पु०) श्रीकृष्णके एक पुत्रका नाम। इनका जन्म सत्यभामाके गर्भसे हुआ था। (भाग० १० ६१।११)

श्रीभाष्य—रामानुजाचार्यकृत ब्रह्मसूत्रका एक सुप्रसिद्ध भाष्यग्रन्थ। इस ग्रन्थमें आचार्यप्रवर अपना धर्ममत अखण्ड युक्ति द्वारा संस्थापन कर गये हैं।

श्रीभुज् (स० त्रि०) लक्ष्मीवान्, धनवान्।

(दशकुमार १४०।२)

श्रीभ्रातृ (स० पु०) श्रियः भ्राता समुद्रजातत्वात्। अश्व, चन्द्र, अमृत आदि चौदह रत्न जो समुद्रसे उत्पन्न होने के कारण लक्ष्मी या श्रीके भाई कहे जाते हैं।

श्रीमङ्गल (स० पु०) एक प्राचीन तीर्थका नाम।

श्रीमङ्गल—एक सुविख्यात पण्डित। ये गीतातत्त्व प्रकाशिकाके प्रणेता केशवभट्टके पिता थे।

श्रीमञ्जरी (स० क्ली०) तुलसी, सुरसा।

श्रीमञ्जु (स० पु०) पर्वतभेद।

श्रीमण्डप (स० पु०) पर्वतभेद।

श्रीमत् (स० त्रि०) श्रीर्विद्यतेऽस्य श्री मतुप्। १ ऐश्वर्य शाली जिसके पास बहुत अधिक धन हो धनवान्। पर्याय—लक्ष्मीवान, लक्ष्मण, श्लील। २ सुन्दर, सुश्री। ३ श्रीयुक्त, सौभाग्यान्वित। (क्ली०) ४ तिलपुष्प। (पु०) ५ तिलकवृक्ष तिलका पौधा। ६ अश्वत्थवृक्ष, पीपलका पेड़। ७ विष्णु। ८ शिव। ९ कुबेर। १० ऋषभक नामक ओषधि। ११ हरिद्रावृक्ष, हल्दीका पौधा।

श्रीमत्—पद्मावलीधृत एक कवि।

श्रीमति (सं० स्त्री०) राधा।

श्रीमती (सं० स्त्री०) श्रीर्विद्यतेऽस्या इति श्रीमतुप् ङीप्। १ 'श्रीमान्'का स्त्रीलिंगवाचक शब्द, स्त्रियोंके लिये आदरसूचक शब्द। जैसे,—श्रीमती सुभद्रा देवी। २ लक्ष्मी। ३ राधा। ४ मुण्डिरी, मुंडी।

श्रीमतीदेवी—स्थिरगुप्तके पुत्र नरेंद्रगुप्त बालादित्यकी महिषी। ये ४६० ई०में विद्यमान थीं।

श्रीमतोत्तर (सं० क्ली०) एक तन्त्रशास्त्र। पद्मने इस ग्रन्थका मत उद्धृत किया है।

श्रीमत्कुम्भ (सं० क्ली०) स्वर्ण, सोना।

श्रीमत्ता (सं० स्त्री०) श्रीमत् या श्रीमान् होनेका भाव या धर्म। २ सम्पन्नता, अमीरी।

श्रीमदनानन्दमोदक (सं० पु०) ध्वजभङ्गरोगाधिकारोक्त औषधविशेष। प्रस्तुतप्रणाली—पारा, गंधक और लोहा प्रत्येक १ तोला, अबरक ३ तोला, कपूर, सैन्धव, जटामांसी, आँवला, इलायची, सोंठ, पीपर, मरिच, जैली, जायफल, तेजपत्र, लवङ्ग, जीरा, मंगरैला, मुलेठी, वच, कुट, नागेश्वर, कर्कटश्रृंगी, तालिशपत्र, दाख, चितामूल, दन्तीवीज, विजबंद, हल्दी, देवदारु, हीजल बीज, सोहागा, वरंगी, गोपवल्ली, दारचीनी, धनिया, गजपीपल, कचूर, सुगंधवाला, मोथा, गंधमादुली भूमिकुष्माण्ड, शतमूली, आकन्दमूल, केवाँचका बीज, गोक्षरबीज, वृद्धदारकबीज और सिद्धिबीज प्रत्येकका चूर्ण १ तोला, सब चूर्णको शतमूलीके रसमें घोंट डाले। पीछे सुखा कर फिरसे चूर्ण करे। कुल चूर्ण जितना हो उसका एक चतुर्थांश शेमरमूलका चूर्ण तथा शेमरमूल सहित कुलका आधा सिद्धिचूर्ण। इन्हें एकत्र कर बकरी-के दूधमें पीसे। पीछे उससे दूनी चीनी बकरीके दूधमें घोल कर पाक करे तथा यथासमय उल्लिखित द्रव्योंका प्रक्षेप दे कर पाक समाप्त करे। इसके बाद दारचीनी, तेजपत्र, इलायची, नागेश्वर, कपूर, सैन्धव और त्रिकटु, इनका थोड़ा थोड़ा चूर्ण तथा उपयुक्त परिमाणमें घृत और मधुमिश्रित कर मोदक बनावे। अनुपान गायका दूध और चीनी है। इसका सेवन करनेसे अपस्मार, कास और श्वास आदि अनेक प्रकारके रोगोंकी शान्ति तथा इन्द्रियशक्तिकी वृद्धि होती है। यह रमणीरञ्जनका महौषध है, अतएव केवल इंद्रियचरितार्थताके लिये इस मोदकका सायंकालमें सेवन करना चाहिये

श्रीमहत्तोपनिषत् (सं० स्त्री०) उपनिषद्भेद।

श्रीमनस् (सं० त्रि०) १ यजमानके ऊपर जिसका अनुग्रह हो या यजमान जिसके मनके भीतर हो। २ भक्तको ऐश्वर्य आदि दान करनेमें जिसका मनन हो।

श्रीमन्त (सं० पु०) १ एक प्रकारका शिरोभूषण। २ स्त्रियोंके सिरके बीचकी मांग। (त्रि०) श्रीमान्, धनवान्, धनाढ्य।

श्रीमन्तसौदागर—बंगालके एक प्रसिद्ध वणिक। कविकङ्कण आदिके चण्डी काव्यमें चण्डीके माहात्म्य प्रचारमें ये ही प्रधान नायक थे। बंगला साहित्य शब्दमें चण्डी देखो।

श्रीमन्मन्य (सं० त्रि०) आत्मानं श्रीमन्तं मन्यते यः श्रीमत् मन-खश्। जो अपनेको लक्ष्मीयुक्त समझता हो।

श्रीमय (सं० पु०) श्रीयुक्त, विष्णु।

श्रीमलापहा (सं० स्त्री०) धूम्रपत्रा, तमाकू।

श्रीमस्तक (सं० पु०) १ रक्तालुक, लाल आलू। २ लहसुन।

श्रीमहादेवी (सं० स्त्री०) शङ्कराचार्यकी म[illegible]

श्रीमहिमन् (सं० पु०) महादेव, शिव।

श्रीमाधोपुर—राजपूतानेके योधपुर राज्यका एक नगर। यह नगर बड़ा समृद्धिशाली है। लोकसंख्या प्रायः आठ हजार है।

श्रीमान् (सं० त्रि०) श्रीमत् देखो।

श्रीमाल (सं० पु०) १ एक देशका नाम। २ इस देशका अधिवासी। ३ पश्चिम भारतके वैश्योंकी एक जाति। वैश्य देखो।

श्रीमालखण्ड—दक्षिण मारवाड़के अन्तर्गत एक जनपद। श्रीमालनगर इस राज्यकी राजधानी है। आज कल इसे भिनाल या भिनमाल कहते हैं। यह झलोर राजधानीके पास कच्छ और गुजरात जानेके रास्ते पर अवस्थित है। यहांके अधिवासी ब्राह्मण श्रीमालीब्राह्मण कहलाते हैं। स्कन्दपुराण और उस पुराणके अन्तर्गत श्रीमालमाहात्म्यमें इन तीर्थवासी ब्राह्मणोंका उत्पत्ति-विवरण लिपिबद्ध है। ब्राह्मणोंके अनुकरण पर स्थानीय

वणिक्सम्प्रदाय अपनेको श्रीमालावनिया कहता है।

महात्मा कर्नल टाडकृत राजस्थानका इतिहास पढ़नेसे जाना जाता है, कि अतिप्राचीन कालसे यह भिनमाल नगरी वाणिज्यसमृद्धिसे परिपूर्ण थी तथा प्रायः १५ सौ धनी महाजन यहां रहते थे। नगर सुन्दर, और यहि नरके उपद्रवसे हतसर्व हो गया है। यहांके वाणिज्य भाण्डारको लोग लक्ष्मीका भण्डार समझते थे, इसी कारण यह श्रीमाल कहलाया।

यहांके अधिवासी साधारणतः वैष्णव और जैन धर्ममें दीक्षित हैं। इस कारण यहां उक्त दोनों सम्प्रदायके कितने धर्ममन्दिर मौजूद हैं।

चीनपरिव्राजक यूएनचुअङ्गने इस राज्यको पहु-चि-लो (गुर्जर) राज्यके अन्तर्भुक्त कहा है तथा उसकी राजधानी पि-लो-मि-लो (भिल्लमाल या भिनमाल) लिख गये हैं। उनके आगमन कालमें यह नगर धनजनसे पूर्ण था; राजमहल लाल मन्दिर थे और सभी अपनी अपनी इष्टमूर्तिपूजामें लगे रहते थे। किन्तु किसीको भी बुद्ध धर्मपर श्रद्धा न था। सिर्फ एक सङ्घाराम में सौसे अधिक बौद्धयति हीनयानमतकी सर्वास्तिवाद शाखामतमें व्यापृत थे। उस समय यहांके राजा क्षत्रिय यतीन्द्र बीस वर्षके युवक मात्र थे। ये विद्योत्साही तथा ज्ञानी और ज्ञानीकी मर्यादारक्षामें यत्नशील थे। बुद्धके प्रवर्तित मतमें उनकी विशेष श्रद्धा थी।

श्रीमाला (सं० स्त्री०) गलेमें पहननेका एक आभूषण, श्रीकण्ठ।

श्रीमालादेवीसिंहनादसूत्र (सं० क्ली०) बौद्धोंका एक सूत्रग्रन्थ।

श्रीमित्र—एक कवि। ये महाश्रीमित्र या महामित्र नामसे परिचित थे।

श्रीमुख (सं० पु०) १ बृहज्ज्योतिषके साठ संवत्सरोंमेंसे सातवाँ संवत्सर। २ शारीरक भाष्यकारभेद। (क्ली०) ३ शोभित या सुन्दर मुख। ४ विष्णुका मुख, पद। ५ पत्रादि लिख कर उसके पीछे देव शब्द पत्रमें "श्री—" लिख कर दी जानेवाली पत्रिकाको श्रीमुख कहते हैं। महिसुरवासी हाल कर्णाटक भाषा लिख कर स्मार्त ब्राह्मणसम्प्रदाय मान कर श्रीशङ्कराचार्यका प्रचार करनेके लिये शृङ्गेरीमठसे जो शास्त्रीय लिपि लेते हैं, उसे भी श्रीमुख कहते हैं। क्योंकि इसमें जगद्गुरु शङ्कराचार्यका श्रीमुख अङ्कित था।

श्रीमुष्टि—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके तिन्नेवल्ली जिलान्तर्गत एक प्राचीन तीर्थ। श्रीमुष्टिमाहात्म्यमें इस स्थानका विवरण लिपिबद्ध है।

श्रीमुष्ण—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके भावापरम् नामक स्थान का एक नाम। ब्रह्माण्ड और वराहपुराणान्तर्गत श्रीमुष्णमाहात्म्यमें इस स्थानका नित्यमाहात्म्य कीर्त्तित है। यहांके मधुरनाथ स्वामीका मन्दिर बहुत पुराना है।

श्रीमूर्त्ति (सं० स्त्री०) श्रीयुक्ता मूर्त्ति। १ देवविग्रह। २ विष्णुप्रतिमा। श्रीभागवतमें लिखा है, कि शिलामयी, दारुमयी, धातुमयी, सिकतामयी, मनोमयी मणिमयी, लेख्या अर्थात् चन्दनादि लेपन द्वारा लिखित तथा आलेख्यभेदसे आठ प्रकारकी श्रीमूर्त्तिकी कल्पना करनी होती है। ये सब मूर्त्तियां स्थिरास्थिर भेदसे दो प्रकारसे प्रतिष्ठित होती हैं उनमेंसे स्थिरमूर्त्तिकी अर्चनामें आवाहन और विसर्जन नहीं है किन्तु अस्थिर मूर्त्तिके सम्बन्धमें आवाहन और विसर्जन इच्छानुसार करनेसे भी काम चलता है नहीं करनेसे भी चलता है। फलतः शालग्राममें आवाहनादि निषिद्ध है और सावक प्रतिमामें यह कर्त्तव्य है तथा अन्यान्य मूर्त्तियोंके विषयमें यथेच्छ व्यवहार किया जा सकता है। मानसपूजा स्थलमें मनोमयी मूर्त्तिकी कल्पना करनी होती है। उक्त सब द्रव्य मूर्त्तियोंके अर्चनाकालमें उनका आलेपन और लेप्य मूर्त्तिका परिमार्जन और अन्यान्य मूर्त्तियोंका स्नानविधि कही गई है।

नीचे हयशीर्षपञ्चरात्रोक्त कुछ श्रीमूर्त्तिके लक्षण दिये जाते हैं, यथा—

वासुदेवमूर्त्ति—इस मूर्त्तिके दक्षिण और निम्न भुजमें पद्म तथा उच्चभुजमें पाञ्चजन्य और वाम ओरके ऊर्ध्वभुजमें गदा तथा अधोभुजमें चक्र व्यवस्थित रहता है। इस आदि पांच मूर्त्तियोंका प्रकार भेद है।

सङ्कर्षणमूर्त्ति—इस मूर्त्तिके पूर्वोक्त चक्र, गदा और पद्म अपराजित भावमें अर्थात् दक्षिण ओरके

निम्नभुजमें शङ्ख और ऊर्द्धभुजमें पद्म, इसी प्रकार बाईं ओर भी विपर्यस्त भावमें नीचे गदा और ऊपर चक्र विन्यस्त करना होगा। यह भी वासुदेव मूर्त्तिका प्रकारभेद है।

माधवमूर्त्ति—बाईं ओरके अधोभुजमें पद्म, ऊर्द्धमें शङ्ख तथा दक्षिणोर्द्धमें गदा और उसके अधोभुजमें चक्र व्यवस्थापित होगा। यह मूर्त्ति भी आदि मूर्त्ति भेद है।

गोविन्दमूर्त्ति—दक्षिणभुजमें चक्र तथा ऊपरके बाहुमें गदा, वामहस्तमें पद्म और उसके अधोभुजमें शङ्ख विन्यास कर इस मूर्त्तिका संगठन करना होता है। यह सङ्कर्षणमूर्त्तिका प्रकार भेद है।

विष्णुमूर्त्ति—दक्षिण भुजमें पद्म, उसके नीचे गदा तथा वामार्द्धमें चक्र और उसके अधोभुजमें शङ्ख विन्यस्त होगा। यह मूर्त्ति भी सङ्कर्षण भेद है।

मधुसूदन—दक्षिण भुजमें शङ्ख, उसके नीचे चक्र तथा वामार्द्धमें पद्म और अधोबाहुमें गदा दे कर स्थापना करनी होगी। यह भी सङ्कर्षणमूर्त्तिभेद है।

त्रिविक्रम—दक्षिणोर्द्धमें गदा, उसके नीचे पद्म और वामोर्द्धमें चक्र तथा अधोभुजमें शङ्ख स्थापन कर वामपद ब्रह्माण्डके ऊपर और दक्षिणपद शेषनागकी पीठके ऊपर विन्यास करना होगा।

श्रीवामनमूर्त्ति—यह मूर्त्ति बलि समीपगत है तथा वामोर्द्धमें गदा, उसके नीचे पद्म, दक्षिणोर्द्धमें चक्र और उसके अधोभुजमें शंख रहता है। इन्हें सप्ततात अर्थात् प्रायः साढ़े तीन हाथका बनाना होगा।

श्रीधरमूर्त्ति—दक्षिण बाहुमें चक्र, अधोबाहुमें पद्म तथा वामोर्द्धमें गदा और उसके नीचे शंख रहता है। इस मूर्त्तिके वाम भागमें पद्महस्ता लक्ष्मीदेवीकी स्थापना करनी होगी। इस मूर्त्तिको उपविष्ट या दण्डायमान जिस किसी अवस्थामें रख सकते हैं, किंतु उसमें विलासभाव रहना आवश्यक है, क्योंकि इसे प्रद्युम्नका प्रकारभेद कहा है।

हृषीकेश—दक्षिणोर्द्धमें चक्र, उसके नीचे गदा तथा वाममें पद्म और अधोभुजमें शंख विराजमान है।

पद्मनाभ—दक्षिणोर्द्ध बाहुमें पद्म, उसके अधोभुजमें शंख तथा उपरिस्थ वामभुजमें चक्र और अधस्थ हस्तमें गदा व्यवस्थित होगी।

दामोदर—दक्षिण ओरके उपरिस्थ बाहुमें शंख और अधोस्थ बाहुमें चक्रका विन्यास करना होगा। यह अनिरुद्धका मूर्त्तिभेद है।

ये केशवादि बारह श्रीमूर्त्तियां माघादि बारह मासको अधिपति मानी गई हैं। (हयशीर्षपञ्चरात्र)

सिद्धार्थसंहितामें शंख, चक्र, गदा और पद्मधारी वासुदेव, केशव, नारायण, माधव, पुरुषोत्तम, अधोक्षज, सङ्कर्षण, गोविन्द, विष्णु, मधुसूदन, अच्युत, उपेन्द्र, प्रद्युम्न, त्रिविक्रम, वामन, श्रीधर, नरसिंह, जनार्दन, अनिरुद्ध, हृषीकेश, पद्मनाभ, दामोदर, हरि और कृष्ण, इन चौबीस श्रीमूर्त्तियोंका विषय लिखा है।

हरिभक्तिविलासमें लिखा है, कि श्रीमूर्त्तिके अनेक प्रकारके भेद होने पर भी हरिसेवापरायण भक्तवृन्द यदि अपने अपने इष्टमंत्रसे शालग्रामशिलाकी पूजा करें, तो अभीष्टदेवका आराधनाकार्य सुसम्पन्न होगा। इसी प्रकार श्रीकृष्णदैवत द्विभुज नवजलधर श्याम त्रिभङ्गमूर्त्तिकी सेवा करनेसे भी अपने अपने इष्टदेव-पूजनका फललाभ होता है।

श्रीयशस् (सं० पु०) राजभेद।

श्रीयामल (सं० क्ली०) तंत्रभेद।

श्रीयुक्त (सं० त्रि०) श्रिया युक्तः। १ लक्ष्मीविशिष्ट, श्रीमान्। २ शोभासम्पन्न। ३ एक आदरसूचक विशेषण जो बड़े आदमियोंके नामके साथ लगाया जाता है। जैसे,—श्रीयुक्त केशवचन्द्र सेन।

श्रीयुत (सं० त्रि०) श्रिया युतः। श्रीयुक्त देखो।

श्रीर (सं० त्रि०) श्रील देखो।

श्रीरङ्ग (सं० क्ली०) १ देशविशेष, श्रीरङ्गपत्तन। (भागवत १०।७९।१४) (पु०) २ विष्णु, लक्ष्मीपति। ३ तालके साठ मुख्य भेदोंमेसे एक भेद।

श्रीरङ्गदेव—शिशुपालवध और सूर्यशतकटीकाके रचयिता।

श्रीरङ्गनाथ—वाचस्पत्यव्याख्या नामक भामतीकी एक टीकाके प्रणेता।

श्रीरङ्गपत्तन (सं० क्ली०) मन्द्राजमें प्रसिद्ध एक देश, श्रीरङ्गपत्तनम्।

श्रीरङ्गपत्तनम्—महिसुर राज्यके महिसुर जिलेका प्रधान नगर और महिसुर राज्यकी प्राचीन राजधानी। यह अक्षा० १२ २५´ उ० तथा देशा० ७६ ४२´ पू० महिसुर शहरसे १० मील पूरबमें अवस्थित है। जनसंख्या ४५८४ है।

श्रीरङ्गस्वामी नामक विष्णुमूर्त्ति और मन्दिरसे ही इस नगरका श्रीरङ्गपत्तनम् नाम हुआ है। यहांसे दक्षिण कावेरी-नदीगर्भमें शिवसमुद्रम् और श्रीरङ्गम् नामक द्वीपके ऊपर भी श्रीरङ्गनाथस्वामीके ऐसे और भी दो मन्दिर विद्यमान हैं, किन्तु इन तीन मन्दिरोंमें यहांका मन्दिर ही सर्वश्रेष्ठ तथा आदिरङ्ग कह कर पूजित है।

इस रङ्गस्वामीकी मूर्त्ति और मन्दिर अति प्राचीन है। कहते हैं कि गौतम बुद्धने यहां आ कर श्रीभगवान्‌की पूजा की थी। मेकेञ्जी साहबके संगृहीत एक तामिल ग्रन्थसे जाना जाता है, कि यह मन्दिर बहुत दिनों तक जङ्गलावृत रहा। गङ्गवंशीय अन्तिम हिन्दू राजाने इस वनको कटवा कर ८९४ ई०में रङ्गनाथमन्दिरका जीर्णसंस्कार कराया था। श्रीरङ्गनाथमाहात्म्यसे हमें मालूम होता है कि स्वयं भगवान् विष्णुने अपनी रङ्गनाथ मूर्त्ति ब्रह्माको प्रदान की; ब्रह्माने फिरसे इक्ष्वाकुराजको उसे दे दिया था। तभीसे ले कर दशरथात्मज रामचन्द्रके अधिकार पर्यन्त यह मूर्त्ति इक्ष्वाकुवंशके कुलदेवतारूपमें पूजी जाने लगी। रामचन्द्रने दशाननवधकालमें विभीषणके आचरण पर परितुष्ट हो यह मूर्त्ति उन्हींको दे दी थी। विभीषण अयोध्यासे लङ्का लौटते समय यह दिव्यमूर्त्ति साथ ले गये। किसी एक घटनाचक्रसे वे यहां अपने विमान रखनेके लिये बाध्य हुए। तभीसे रङ्गनाथस्वामी श्रीरङ्गपत्तनम विराज कर रहे हैं। वर्त्तमान रङ्गजीका मन्दिर पीछे किसी चोलराजसे बनाया गया था।

उक्त दोनों ग्रन्थोंसे श्रीरङ्गजीका मन्दिर निर्माणकाल और उसकी प्रतिष्ठाका कोई विवरण ज्ञात नहीं होने पर भी हम लोग सिर्फ इतना अनुमान कर सकते हैं, कि ८वीं सदीमें इस मन्दिरने दक्षिणभारतमें सार्वभौमरूपमें प्रतिष्ठालाभ किया था। ११३३ ई०में सुप्रसिद्ध वैष्णव परिव्राजक रामानुज स्वामीने उक्त देवमन्दिरके खर्चके लिये यह द्वीप और आसपासका प्रदेश बल्लालवंशीय किसी राजासे पाया था। रामानुज स्वामीके नियुक्त 'हेब्बरी' या स्थानीय कर्मचारीके एक वंशधरने १४५४ ई०में यहां एक दुर्ग बनवाया। इसके बादसे ही श्रीरङ्गपत्तनका प्रकृत इतिहास आरम्भ हुआ। विजयनगरराजके एक प्रतिनिधि श्रीरङ्गरायलु उपाधि धारण कर इस नगरमें राज्य करने लगे। उस वंशके अन्तिम राजप्रतिनिधि तिरुमलने १६१० ई०में महिसुरके वडीयमान राजा उदैयारके हाथ आत्मसमर्पण किया। इस समयसे ले कर १७९९ ई०में श्रीरङ्गपत्तन पतन तक यहां टीपू सुलतानका राजपाट स्थापित था।

उस दुर्गको पीछे टीपू सुलतानने फिरसे नये ढङ्गसे बनाया। उसका प्राचीर और परिखादि इस तरह बनाये गये थे कि सभी उसे दुर्भेद्य समझते थे। अंगरेजी सेना लगातार तीन बार दुर्ग पर आक्रमण करके भी दुर्गवासीको परास्त न कर सकी। १७९१ ई०में भारत राजप्रतिनिधि लार्ड कार्नवालिसने दलबलके साथ स्वयं इस दुर्ग पर आक्रमण किया। वे दुर्गप्राचीर प्रान्त पर्यन्त अग्रसर हो कर भी दुर्गको जीत न सके, पर खाद्याभावसे प्रपीडित हो कर लौट जानेके लिये बाध्य हुए। दूसरे वर्ष अंगरेजी सेनाने फिरसे भारतप्रतिनिधि परिचालित हो निकटवर्ती रणक्षेत्रमें मुसलमानोंको परास्त कर अपने नायकके आदेशानुसार चारों ओरसे श्रीरङ्गपत्तन नगरको घेर लिया। इस बार हार खा कर टीपू सुलतानने आधा राज्य दे कर सन्धि कर ली।

टीपू सुलतानकी क्रूरता और दुरभिसन्धि समझ कर अंगरेज सेनापति जेनरल हारिसने १७९९ ई०के अप्रिल मासमें फिरसे श्रीरङ्गपत्तन दुर्गमें घेरा डाला। अंगरेजी सेनाने एक मास तक लगातार गोला बरसानेके बाद दुर्गप्राचीरको तोड डाला। टीपू सुलतान [illegible]।

दुर्गजयकालसे श्रीरङ्गपत्तन दुर्ग अंगरेज गवर्मेण्टके राज्यभुक्त हुआ। अंगरेज गवर्मेण्टने वार्षिक ५००० हजार रु०में उसे महिसुरराजके साथ बन्दोबस्त कर दिया। मार्च १८८१ ई०में महिसुरराजके प्रार्थनानुसार अंगरेजराजने उन्हें यह सम्पत्ति निष्कर भोग करनेकी अनुमति दी।

श्रीरङ्गपत्तन विजयके बाद अंगरेज गवर्मेण्टने यहांका शासनभार प्राचीन हिन्दूराजवंशके ऊपर सौंपा। १८०० ई०में यह राजा महिसुरमें अपना वास और राजपाट उठा ले गये। उसके बादसे ही श्रीरङ्गपत्तन राजधानीका अधःपतन होना शुरू हुआ। उस समय डा० बुकानन हामिल्टन इस नगरको देखने आये। उस समय यहां प्रायः ३२ हजार लोगों का वास था, किन्तु टीपू सुलतानके राज्यकालमें जब श्रीरङ्गपत्तन राजधानी वाणिज्य भाण्डारसे परिपूर्ण था, उस समय यहांकी लोकसंख्या प्रायः १ लाख १५ हजार थी। उसके बादही महामारीमें लोकसंख्या घट गई। १८११ ई०में अंगरेज गवर्मेण्ट यहांसे बङ्गलूर नगरमें सेनावास उठा ले गई। तभीसे श्रीरङ्गपत्तन बिलकुल जनहीन हो गया, अट्टालकादिके भग्नस्तूपके सिवा यहां और कुछ भी नजर नहीं आता। अभी यहां मलेरिया ज्वरका ऐसा प्रादुर्भाव है, कि कोई वैदेशिक भ्रमणकारी एक रातके लिये भी ठहरना नहीं चाहता। नगरके उपकण्ठस्थ-गञ्जाम नगरमें आज भी बहुतेरे लोगोंका वास है। वहां वर्ष भरमें तीन मेले लगते हैं और बहुतसे लोग मेलेमें आते हैं।

श्रीरङ्गपत्तन एक छोटा डेल्टा है। पूर्व-पश्चिममें इसकी लम्बाई प्रायः तीन मील और चौड़ाई १ मील है। उसके पश्चिम प्रान्तमें नदीके ठीक ऊपर ही दुर्ग स्थापित है। दुर्ग पञ्चकोण है और उसका व्यास प्रायः १॥ मील है। दुर्गमें टीपू सुलतानका प्रासादावशेष विद्यमान है। उसका कुछ अंश अभी चन्दनकाष्ठके गोदाममें परिणत हो गया है। इसके सिवा दुर्गमें रङ्गनाथ स्वामीका मन्दिर और टीपू सुलतानकी स्थापित जुमा मसजिद देखी जाती है।

श्रीरङ्गम्—मन्द्राज प्रदेशके त्रिचीनपल्ली जिलेका एक नगर। यह त्रिचीनपल्लीसदरसे दो मील उत्तर श्रीरङ्गम् नामक एक द्वीपके मध्यस्थलमें अवस्थित है। त्रिचिनापल्ली नगरसे ११ मील पश्चिम कावेरी नदी दो भागोंमें विभक्त हो गई है जिससे नदीगर्भमें डेल्टा बन गया है। आज भी इसकी दक्षिणी शाखा कावेरी तथा उत्तरी शाखा कोलिरुन कहलाती है। यहां आ कर ही श्रीरामानुज स्वामीने अपने अंतिम जीवनका प्रचार कार्य समाप्त किया था। ११वीं सदीके मध्यभागमें इसी नगरमें उनका देहान्त हुआ।

इस स्थानका विष्णु-मन्दिर ही दाक्षिणात्यका एक प्रसिद्ध पुण्यक्षेत्र है। नगरके अधिकांश भवन इस मन्दिर प्राचीरके अभ्यन्तर सन्निविष्ट रहनेसे मन्दिर बहुत बड़ा दिखाई देता है। उस मन्दिरको सचमुच एक नगर कहनेमें जरा भी अत्युक्ति न होगी। ७वीं या ८वीं सदीमें यह मन्दिर प्रतिष्ठित हुआ है, ऐसा अनुमान किया जाता है। इसके बहिःप्राचीरका परिमाण लम्बाईमें ३०७२ फुट और चौड़ाईमें २५२१ फुट है। उसका मध्यस्थल क्रमशः सात प्राचीरसे परिवेष्टित है। प्रत्येक घेरेमें प्रायः चार करके गोपुर है। बहिःप्राचीरके भीतर केवल बाजार और दुकान तथा यात्रीके ठहरनेका स्थान है। इसके गोपुरकी ऊंचाई प्रायः ३०० फुट होगी। उत्तरकी ओर जो गोपुर है उसकी विस्तृति १३० फुट और ऊंचाई १०० फुट है। प्रत्नतत्त्ववित् फार्गुसनने उस मन्दिरका पर्यवेक्षण कर कहा है, कि दाक्षिणात्यमें ऐसा सुन्दर शिल्पसमन्वित सुवृहत् मन्दिर और कहीं नहीं है।

प्रति वर्षके पौषमासमें यहां बहुत रुपये खर्च करके एक मेला लगता है। उस मेलेमें भिन्न भिन्न स्थानके लोग जमा होते हैं।

१८७१ ई०में यहां म्युनिसिपलिटी स्थापित हुई। तभीसे नगरकी अवस्था बहुत कुछ उन्नत हो गई है। दाक्षिणात्यके सुप्रसिद्ध कर्णाटकयुद्धके समय श्रीरंगम् दुर्गमें फरासी गवर्नर डुप्लेने सेनासन्निवेश किया था।

त्रिचीनपल्ली और कर्णाटक देखो।

श्रीरङ्गवरपुकोट—मन्द्राज प्रदेशके विशाखपत्तन जिलेका एक जमींदारी तालुक। भूपरिमाण १०२ वर्गमील है। इसमें कुल १ नगर और १७७ ग्राम लगते हैं। उनमेंसे बोनंगी, धर्मवरम्, गुडिवाड़, काशीपत्तनम्, काशीपुरम्, कोण्डगुडि, कोट्टम, लक्कवरपुकोट, रेग, सोमपुरम् या कपसोमपुरम्, श्रीरामपुरम् आदि स्थानोंमें प्रत्नतत्त्वके निदर्शनस्वरूप अनेक प्राचीन मन्दिर और शिलालिपि मिलती है। श्रृंगवरपुकोटसे ६ मील दक्षिण लक्कवर-

पुक्कोट ग्रामका वीरभद्र मन्दिर तथा उससे २ मील दक्षिण रेंग ग्रामके पश्चिम एक पहाड़ी गुहा और गुह लिङ्गेश्वर शिवमन्दिर दृष्टिगोचर होता है।

२ उक्त तालुकका प्रधान नगर और विचार सदर। यह अक्षा० १८ ६´३४´ उ० तथा देशा० ८३ ११ ११´ पू०के मध्य त्रिपलिपत्तनसे २८ मील पश्चिम उत्तरमें अवस्थित है। यहां एक दुर्ग है।

श्रीरत्नगिरि (स० पु०) १ वम्बई प्रदेशका एक जनपद। रत्नगिरि देखो। २ एक गावका नाम। (तरनाथ)

श्रीरमण (स० पु०) १ एक सङ्कर राग। यह शङ्करा भरण और मालश्रीको मिला कर बनाया गया है। २ विष्णु।

श्रीरस (स० पु०) श्रीवेष्ट, गन्धाविरोजा।

श्रीराग (स० पु०) सङ्गीतमें छः रागोंमेंसे तीसरा राग। यह सम्पूर्ण जातिका है और पृथ्वीको नाभिसे उत्पन्न माना गया है। हनुमत्के मतसे यह पांचवां राग है। यह हेमन्त ऋतुमें तीसरे पहर या सन्ध्या समय गाया जाता है। सोमेश्वरके मतानुसार मालवश्री, त्रिवेणी, गौरी, केदारा, मधुमाधवी और पहाड़ी ये छः इसकी भार्य्याएं या रागिनियां हैं और सङ्गीत दामोदरमें गान्धारी, देव गान्धारी, मालवश्री, सावी और रामकीरी ये पांच रागि नियां कही गई हैं। सिन्धु मालव गौड़ गुणसार, कुम्भ, गम्भीर, विहाग और कल्याण ये आठ इसके पुत्र कहे गये हैं।

श्रीराधावल्लभ (स० पु०) १ विष्णुकी एक मूर्त्ति। २ श्रीकृष्ण।

श्रीराम (स० पु०) श्रीयुक्त राम। श्रीरामचन्द्र।

श्रीरामनवमी (स० स्त्री०) श्रीरामस्य नवमी तज्जन्म दिनत्वात्। चैत्रमासकी शुक्ला नवमी। इस तिथिमें भगवानके अवतारमें श्रीरामचन्द्रजीने जन्म लिया था इसीसे यह श्रीरामनवमी नामसे प्रसिद्ध है। इसमें सबों को उपवासादि करना कर्त्तव्य है, इससे सर्वाभीष्टकी सिद्धि होती है। व्रतादिका विस्तृत विवरण रामनवमीव्रत शब्दमें देखो।

श्रीरामपुर—बङ्गालके हुगली जिलेका एक उपविभाग। यह अक्षा० २२ ४० से २२ ५५´उ० तथा देशा० ८७ ५६´ से ८८ २०´ पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण ३४३ वर्गमील और जनसंख्या ४ लाखसे ऊपर है। इसमें श्रीरामपुर उत्तरपाड़ा, वैद्यवाटी, भद्रेश्वर और कोतरङ्ग नामक ५ शहर और ७८३ ग्राम लगते हैं।

२ उक्त उपविभागका एक शहर। यह अक्षा० २२ ४० उ० तथा देशा० ८८ २१ पू० हुगली नदीके दाहिने किनारे अवस्थित है। जनसंख्या ४४ हजारसे ऊपर है, जिनमेंसे सैकड़े पीछे ८० हिन्दू, १६ मुसलमान और १ ईसाई हैं। यह शहर हवड़ासे १३ मील दूर पड़ता है। यहां इष्ट इण्डिया रेलवेका एक स्टेशन है। पहले यह दिनेमार्ग (Danes) के अधिकारमें था। १८४५ ई०की सन्धिके अनुसार इष्ट इण्डिया कम्पनीने १२॥ लाख रुपये देकर दिनेमारोंसे श्रीरामपुर खरीद कर लिया।

यह स्थान एक समय सारे बङ्गालकी साहित्यालोचनाका प्रधान केन्द्र हो गया था। बाप्तिस्त मिशनरी दलके अध्यक्ष केरी, मार्शमान और वार्ड साहब उसके नेता थे। उन लोगोंके यत्नसे यहां खृष्टधर्मके गिरजाघरकी प्रतिष्ठाके साथ साथ स्कूल कालेज और एक पुस्तकालय खोला गया था। इन मिशनरियोंके उत्साह और आग्रहसे यहां सबसे पहले अक्षरोंमें छुरे अक्षरोंसे कृत्तिवासका रामायण मुद्रित हुआ। पीछे धातव अक्षरमाला भी प्रस्तुत हुई थी। १९वीं सदीके प्रारम्भमें इस मिशनरी सम्प्रदायके उद्योग और बङ्गला शिक्षा विस्तारके उद्देशसे यहां समाचारचन्द्रिका और Friend of India नामके दो समाचारपत्र निकाले गये। बङ्गदेश देखो।

यहां पहले एक प्रकारका कागज तैयार होता था, जो श्रीरामपुरी कागज कहलाता था। अभी टीटागढ़, बाली और रानीगञ्जमें कागजकी कल खुल जानेसे श्रीरामपुरी कागजका आदर बहुत घट गया है। यहां प्रति वर्ष माहेश और वल्लभपुरमें स्नानयात्रा और रथयात्राके उपलक्षमें दो मेले लगते हैं। स्नानयात्रामें जगन्नाथजीकी मूर्त्ति अपने मन्दिरसे माहेश लाई जाती और वहां उन्हें स्नान कराया जाता है। रथयात्रामें प्रसिद्ध मूर्त्ति राधावल्लभके मन्दिरमें लाई जाती और आठ दिन

के बाद फिर अपने मन्दिरमें पहुंचाई जाती हैं। इस समय माहेशमें करीब ५० हजार मनुष्य एकत्र होते हैं। अभी शहरमें बहुतसी कलें, रेशमी और सूती कपड़े बुननेके करघे चलते हैं। इसके सिवा यहां सरकारी अदालत, १८०५ ई०में निर्मित डिनेमारोंका गिरजाघर, मिशन-गिरिजा घर, रोमन कैथलिक गिरिजाघर, छोटी जेल, अस्पताल, राधावल्लभ और जगन्नाथके मन्दिर, एक सुन्दर पुस्तकालय, ४ हाई स्कूल, ६ मिडिल वर्नाक्युलर स्कूल और १५ प्राइमरी स्कूल हैं।

श्रीरामपुरम्—मन्द्राज प्रदेशके विशाखपत्तन जिलान्तर्गत श्रीरङ्गवर-पुतोट तालुकका एक बड़ा ग्राम। यहांके रामस्वामीका मन्दिर हजार वर्षका पुराना है।

श्रीरूपा (सं० स्त्री०) राधा।

श्रील (सं० त्रि०) श्रीरस्त्यस्येति श्री-लच् (सिध्मादिभ्यश्च। पा ५।२।९७) १ लक्ष्मीवान्, धनाढ्य। २ शोभायुक्त।

श्रीलक्ष्मन् (सं० पु०) श्रीलक्ष्मण, लक्ष्मीयुक्त।

श्रीलता (सं० स्त्री०) श्रीविशिष्टा लता। महाज्योतिष्मतीलता, बड़ी मालकंगनी।

श्रीलाभ (सं० पु०) लक्ष्मीलाभ, सौभाग्य वृद्धि।

श्रीलेखा (सं० स्त्री०) काश्मीरराजकी पत्नी। इनके पिताका नाम था यशोमङ्गल।

श्रीवत्स (सं० पु०) श्रीयुक्तं वत्सं वक्षो यस्य। १ विष्णु। २ विष्णुके वक्षस्थल पर अंगुष्ठप्रमाण श्वेत बालोंका दक्षिणावर्त्त भौंरीकासा चिह्न जो भृगुके चरण प्रहारका चिह्न माना जाता है। ३ जैनोंके अनुसार अर्हतोंका एक चिह्न। ४ सुरुङ्गभेद। ५ गृहविशेष।

६ उपाख्यानवर्णित एक राजा। ये पृथ्वीश्वर चित्रवरके पुत्र थे। पिताके मरने पर ये अपने बाहुबलसे सारी पृथ्वीके अधीश्वर हुए थे। परम रूपवती पतिव्रता चित्रसेनकी कन्या चिन्तादेवी इनकी महिषी थी। शनिकी कुदृष्टिसे तरह तरहके कष्ट झेलनेके बाद इन्होंने आखिर लक्ष्मीकी कृपासे पुनः राज्यधन प्राप्त किया था।

श्रीवत्स—मङ्खके समसामयिक एक कवि।

श्रीवत्स आचार्य—लीलावती नामकी प्रशस्तपादभाष्य-टीकाके रचयिता।

श्रीवत्सकिन् (सं० पु०) श्रीवत्सवत् चिह्नमस्त्यस्येति श्रीवत्सक इनि। हृदुचक्रावर्त्ती, अश्व, वह घोड़ा जिसके वक्षःस्थल पर भौंरीका-सा चिह्न हो।

श्रीवत्सभृत् (सं० पु०) श्रीवत्सं बिभर्त्तीति भृ-क्विप्। विष्णु।

श्रीवत्सलाञ्छन (सं० पु०) विष्णु, नारायणके वक्षःस्थल पर श्रीवत्सचिह्न है, इस लिये उन्हें श्रीवत्स लाञ्छन कहते हैं।

श्रीवत्सलाच्छन—काव्यपरीक्षा और काव्यमृत नामक अलङ्कारशास्त्र तथा रामोदयनामक और सारबोधिनी नामकी काव्यप्रकाशटीकाके प्रणेता।

श्रीवत्स शर्म्मन्—सिद्धान्तरत्नमाला नामक वेदान्तशास्त्रके प्रणेता।

श्रीवत्साङ्क—१ अतिमानुषस्तव, कूरेशविजय, वरदराजस्तव और वैकुण्ठस्तवके प्रणेता। २ गुणरत्नकोषके प्रणेता पराशरभट्टके पिता।

श्रीवत्साङ्क (सं० पु०) श्रीवत्सः अङ्कश्चिह्नं यस्य। विष्णु।

श्रीवद (सं० त्रि०) भावी शुभफलवक्ता।

श्रीवन्त (सं० त्रि०) ऐश्वर्य्यवान्, सम्पत्तिशाली।

श्रीवर—कथाकौतुक और जैनतरङ्गिनी नामक दो ग्रन्थोंके रचयिता। ये जोनराजके शिष्य थे।

श्रीवरबोधिभगवत् (सं० पु०) एक बौद्धयतिका नाम।

श्रीवराह (सं० पु०) श्रिया युक्तो वराहः। विष्णुका वराह अवतार।

श्रीवर्द्धन (सं० पु०) १ एक रागका नाम। २ शिव।

श्रीवर्द्धन—एक प्राचीन कवि। ये वर्द्धनकवि नामसे प्रसिद्ध थे।

श्रीवर्द्धन—बम्बई प्रदेशके जञ्जिरा राज्यान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० १८° ४' उ० तथा देशा० ७३° ४' पू०के मध्य जञ्जिरा ग्रामसे १२ मील दक्षिणमें अवस्थित है जनसंख्या ६० हजारके करीब है। प्राचीन यूरोपीय भ्रमणकारियोंने इसे जिफार्दान शब्दसे उल्लेख किया है। १६वीं और १७वीं सदीमें यह यथाक्रम अहमदनगर और बीजापुर राज्यके अधीन एक प्रधान बंदर समझा जाता था।

यहां सुपारीका वाणिज्य ही प्रधान है। प्रति वर्ष एक मेला लगता है।

श्रीवल्लभ—दुर्गादप्रबोध नामक हैमलघुवृत्ति सिद्धान्त शासनवृत्तिकी टीकाके प्रणेता। ये ज्ञानविमल सूरिके शिष्य थे। १६०८ ई०में योधपुरके राजा सूरसिंहकी सभामें रह कर इन्होंने इस ग्रन्थ लिखा था।

श्रीवल्लभ—दाक्षिणात्यके एक राजा। ये कृष्णराजके पुत्र तथा इन्द्रायुध और अवन्तीश्वर वत्सराजके समसामयिक थे।

श्रीवल्लभ वत्समानीय—विनोदमञ्जरी नामक वेदान्तके रचयिता।

श्रीवल्लभ विद्यावागीश (भट्टाचार्य)—शब्दबोधिनी नामकी मुग्धबोधटीकाके प्रणेता। ये श्यामदासके पुत्र थे।

श्रीवल्लभ सेनानन्द—सेन्द्रकवंशीय एक राजा। चालुक्यराज प्रथम कीर्त्तिवर्मा (५६७ ई० सन्) इनके बहनोई थे।

श्रीवल्ली (सं० स्त्री०) श्रीयुक्ता वल्ली। एक प्रकारकी कटीली लता या चढ़नेवाली झाड़ी। इसका व्यवहार औषधमें होता है। यह लता कुछ दिनों तक यों ही खड़ी रहती है, पीछे बढ़ने पर किसी वृक्ष आदिका आश्रय लेती है। इसके डंठल और टहनियाँ भूरे रंगकी होती हैं तथा उन पर टेढ़े कांटे होते हैं। यह फागुनमें फूलने लगता है और आषाढ़ तक फलती है। इसमें छोटी छोटी फलियां लगती हैं। इसका पर्याय—शिखवल्ली, कण्टवल्ली, शीकरी अम्ला कटुफला, दुरारोहा। गुण—कटु अम्लपाक, श्लेष्म और कफनाशक। इसके फलका गुण—अत्यम्ल रुचिकर और शैत्यजनक।

श्रीवृक्ष—एक प्रसिद्ध वैयाकरण गणरत्नमहोदधिमें इनका उल्लेख मिलता है।

श्रीवेद (सं० पु०) नागभेद।

श्रीशाला (सं० स्त्री०) नागदन्तीभेद, एक प्रकारका पान।

श्रीवारक (सं० पु०) श्रियं वारयति वारय ण्वुल्। शितिवारो, शितावर शाक।

श्रीवास (सं० पु०) श्रियं वासयतीति वस णिच् अण्। १ सरलनिर्यास, सरलवृक्षका गोंद। पर्याय—पायस वृकधूप श्रीवेष्ट सरलद्रव तैलपर्णी भ्रमरप्रिय। गुण—मधुर, तिक्त, स्निग्ध, शिरःशूल वात मूर्छा, अक्षि और स्वरदोष तथा कफनाशक, रक्षोघ्न, स्वेद, दुर्गन्ध, यूका, कण्डू और व्रणनाशक। (भावप्र०) श्रियो लक्ष्म्या वासः आश्रयस्थान। २ पद्म, कमल। (राजेन्द्रकर्णपूर ४२) ३ विष्णु। ४ शिव। ५ गुग्गुलु गुग्गुल। ६ देवदारु। ७ धूप, राल। ८ चन्दन, संदल।

श्रीवासक (सं० पु०) श्रीवास देखो।

श्रीवासाम्बर (सं० पु०) १ सरल वृक्ष, धूपका पेड़। २ पद्मकाष्ठ, पद्माख। ३ चन्दन।

श्रीवाससार (सं० पु०) १ गन्धविरोजा। २ तारपीनका तेल।

श्रीवासस (सं० पु०) श्रिय सरलवृक्ष वासयतीति वस णिच् असुन्। सरल द्रव, गन्धविरोजा।

श्रीवासाचार्य—नवद्वीपवासी एक परम वैष्णव और साधु पुरुष। ये श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभुके समसामयिक थे। इनका आदिनिवास श्रीहट्टमें था। वहांसे श्रीवासादि चार भाई विद्या सीखनेके लिये नवद्वीप आये और वहीं एक घर बना कर रहने लगे।

बाल्यकालसे ही श्रीवास हरिभक्तिपरायण थे। वे अपने घरमें बैठ कर ऊंचे स्वरसे हरिनामकीर्त्तन किया करते थे। इससे बहुतेरे नवद्वीपवासी कभी कभी विरक्त हो इनके पास आते और वैष्णव धर्म-सम्बन्धमें इनसे वादानुवाद किया करते थे। इससे वे लोग इन पर इतने चिढ़ जाते, कि कभी कभी इनके प्रति अत्याचार भी कर डालते थे।

श्रीचैतन्यने जब अध्ययन समाप्त किया उस समय ईश्वरपुरी (ओरवा) नामक एक परम भागवत नवद्वीपमें आ कर श्रीवासके घर ठहरे। ईश्वरपुरीके ज्ञान और भक्तिका परिचय पा कर श्रीचैतन्य वहां जा कर उनसे मिले। इसी सुअवसरमें निमाईके साथ श्रीवासादि वैष्णवोंका विशेष सद्भाव हो गया। यहां पर बोल देना आवश्यक है, कि श्रीवासके घर हरिसंकीर्त्तन आरम्भ हुआ उसका हृदय हरिभक्तिसे प्रमत्त हो गया था। वे प्रति दिन गौरको श्रीवासके घर आते और हरिकीर्त्तनमें शामिल होते थे। श्रीवास पीछे श्रीचैतन्यदेवके भक्त हो गये और स्वयं चैतन्यको प्रभु कह कर संबोधन करते थे। चैतन्यदेव देखो।

श्रीविद्या (सं० स्त्री०) श्रिया विद्या। महाविद्याविशेष। त्रिपुरसुन्दरीका नाम श्रीविद्या है। इस महाविद्याकी उपासना करनेसे साधक सिद्धि लाभ करते हैं। तन्त्रसारमें इस विद्याका भेद, मन्त्र, पूजा और पुरश्चरण-प्रणाली विशेषरूपसे लिखी है। इस विद्याके मन्त्र ३६ प्रकारके हैं। गुरु इस देवताके मन्त्र देनेके समय मंत्र-विचार प्रणालीके अनुसार विचार कर दें। मंत्र इस प्रकार है—

'ल स ह ह्रीं प र कं' यह नवाक्षर मेरुमन्त्र है। अर्द्धचन्द्र और विन्दुको पृथक् वर्ण रूपमें ग्रहण करनेसे ये नवाक्षर मंत्र हुए हैं। यह नवाक्षर मंत्र त्रिपुर-सुन्दरीका मेरुमन्त्र कहलाता है। 'क ल ह्रीं' यह मंत्र कामेशी बीज है तथा 'क ए ई ल ह्रीं', यह पञ्च वर्णात्मक मंत्र वाग्भवकूट नामसे प्रसिद्ध है।

'ह स क ह ल ह्रीं' इस षडक्षर मंत्रको काम-राजकूट कहते हैं। 'स क ल ह्रीं' इस मंत्रका नाम शक्तिकूट है। कामदेव इस मंत्रको उपासना कर सर्वाङ्गसुन्दर और कामराज हुए थे। यह विद्या साक्षात् ब्रह्मस्वरूपिणी है। 'ह स क ल ह्रीं ह स क ल ह ह्रीं स क ल ह्रीं' इस त्रिकूट मंत्रका नाम लोपामुद्रा मंत्र है। महर्षि अगस्त्यने इस मंत्रकी उपासना-की थी।

तंत्रसारमें इस विद्याकी संक्षेप पूजा और विशेष पूजा लिखी है। असमर्थ व्यक्ति संक्षेपमें और समर्थ व्यक्ति विशेष पूजाके अनुसार पूजा करें। तंत्र-सारमें इस देवीका पूजापद्धति लिखी है। विस्तार हो जानेके भयसे यहां उसका उल्लेख नहीं किया गया।

श्रीविल्लिपत्तूर—१ मंद्राज प्रदेशके तिन्नेवली जिलेका एक तालुक या उपविभाग। यह अक्षा० ९° १७´ से ९° ४२´ उ० तथा देशा० ७७° २०´ से ७७° ५१´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ५८५ वर्गमील और जनसंख्या दो लाखसे ऊपर है। इसमें चार शहर और ६४ ग्राम लगते हैं। यहां ६ थाना, १ दीवानी और ३ फौजदारी अदालतें हैं।

२ उक्त उपविभागका प्रधान नगर और विचार-सदर। यह अक्षा० ९° ३०´ उ० तथा देशा० ७७° ३७´ पू० सतुर रेलवे स्टेशनसे २४ मीलकी दूरी पर अवस्थित है। यहां एक प्राचीन विष्णुमंदिर है। उसका शिल्प कार्य बड़ा ही चमत्कार है। उस विष्णुमूर्त्तिके रथ-यात्रा उपलक्षमें यहाँ प्रति वर्ष एक मेला लगता है। नगर-के दक्षिण जिस पथसे रथ जाता है, उसकी बगलमें शोकयै नामक एक बहुत बड़ा मण्डप निर्मित देखा जाता है। प्रवाद है, कि मदुराके राजा तिरुमल नायकने (१६२३-१६५९ ई०) उसे बनवा दिया है। मदुरा जानेके रास्ते पर चतुर्थ और द्वादश मील ज्ञापक प्रस्तरखण्डके समीप वैसे और भी दो मण्डप हैं। उस पथके किनारे जहां तहां राजा तिरुमल द्वारा स्थापित कुछ नौबतखाने देखे जाते हैं। यहां एक और प्राचीन शिवमन्दिर है। उक्त विष्णु और शिवमन्दिर अच्छे अच्छे गोपुरसे शोभित हैं तथा उनमें कितने शिलाफलक उत्कीर्ण हैं। स्थानीय कृष्णस्वामीका मन्दिर अपेक्षाकृत छोटा होने पर भी उसमें जो शिलालिपि खुदी है, उसके अनुसार मन्दिरको बहुत अप्राचीन नहीं कह सकते।

यहांके नायक राजाओंका प्रासाद अभी कचहरीमें परिणत हो गया है। स्थान वाणिज्यप्रधान है।

श्रीवीर उदयमार्त्तण्डवर्मा (२य)—दाक्षिणात्यके त्रिवां-कुर विभागके वेनाड़ प्रदेशके एक सामन्त राजा। ये वीर पाण्ड्य उपाधिसे भूषित थे।

श्रीवृक्ष (सं० पु०) श्रीपदः श्रीप्रियो वा वृक्षः शाकपार्थि-वादिवत् समासः। १ अश्वत्थ वृक्ष, पीपल। २ विल्व वृक्ष, बेलका पेड़। शारदीया दुर्गापूजाके समय श्रीवृक्ष पर भगवती दुर्गाका बोधन करके दुर्गाकी पूजा करनी होती है। ३ विष्णुके वक्षःस्थल पर स्थित शुभावर्त्त विशेष। ४ हृदावर्त्त, घोड़ेकी छाती परकी भंवरी।

श्रीवृक्षक (सं० पु०) श्रीवृक्ष एव स्वार्थे कन्। १ अश्व का हृदावर्त्त, घोड़ेकी छाती परकी एक भंवरी जो शुभ मानी जाती है। २ एक व्रतका नाम। ३ श्रीवृक्ष देखो।

श्रीवृक्षकिन् (सं० पु०) श्रीवत्स चिह्नयुक्त अश्व।

श्रीवृद्धि (सं० स्त्री०) १ बोधिद्रुम परकी एक देवी। (ललितविस्तर) २ भाग्य या सम्पद् वृद्धि।

श्रीवेष्ट (सं० पु०) श्रियः सरलवृक्षस्य वेष्टः निर्यासः।

सरलवृक्षका निर्यास, गन्धाविरोजा, तारपीन। पर्याय—वृक्षधूप, चित्रागन्ध, रसायक, श्रावास, श्रीरस वेष्ट, लक्ष्मावण, वेष्टक, वेष्टसार, रसानेष्ट, श्रीरशीर्ष, सुधूपक, धूपाङ्ग, तिलपर्णी और सरलाग। गुण—कटु, तिक्त, कषाय, श्लेष्म और पित्तनाशक, योनिदोष, अजीर्ण, व्रणघ्न और आध्मानताशक। (राजनि०)

श्रीवेष्टक (सं० पु०) श्रीवेष्ट देखो।

श्रीवैकुण्ठम्—१ मन्द्राज प्रदेशके तिन्नेवल्ली जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० ८ १७´ से ८ ४८´ उ० तथा देशा० ७७ ४८ से ७८ १० पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण ५४२ वर्गमील और जनसंख्या ३ लाखसे ऊपर है।

२ उक्त तालुकका एक नगर। यह अक्षा० ८ ३८´ उ० तथा देशा० ७७ ५५ पू० तिन्नेवल्लीसे १६ मील दक्षिण पूर्व ताम्रपर्णी नदीके उत्तरी किनारे अवस्थित है। जनसंख्या १० हजारसे ऊपर है। यहां प्रायः तीन सौ वर्षसे भी अधिक पुराने १० मन्दिर हैं जिनमेंसे स्थानीय विष्णुमन्दिर और कैलासनाथ मन्दिर सबसे बड़े और स्थापत्यशिल्पपूर्ण हैं। नगरपार्श्वस्थ आदिच्छ नल्लूर नामक बड़े पर्वत पर कुछ जैनमूर्त्ति और प्राचीन कब्रमें गड़े हुए पात्रादिके निदर्शन पाये जाते हैं। यहां कोटवेल्लाल नामक एक निम्नश्रेणीकी शूद्र जातिका वास है। उनका आचार व्यवहार बिलकुल नये ढंगका है। ये लोग जिस दुर्गमें रहते हैं उनमेंसे कभी भी किसी कारणवशतः निकलना नहीं चाहते। इन लोगोंके पास राजदत्त शासन है। उक्त ताम्रपर्णी नदीके ऊपर लोहे का जो पुल है वह भी श्रीवैकुण्ठम् कहलाता है।

श्रीवैष्णव (सं० पु०) रामानुजका अनुयायी वैष्णव, वैष्णवोंका एक सम्प्रदाय।

श्रीव्याघ्रमुख—चापवंशीय एक राजा। इनके राज्यकालमें ६२८ ई०में ब्रह्मगुप्तने ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त प्रणयन किया।

श्रीश (सं० पु०) श्रियाः ईश। १ विष्णु। २ श्रीराम।

श्रीशान्त—एक प्राचीन ग्रन्थकार।

श्रीशालमलीभाण्ड (सं० क्लो०) एक प्राचीन तीर्थका नाम।

श्रीशुक (सं० पु०) १ एक प्राचीन तीर्थका नाम। २ प्रातकालङ्कारकर्माके प्रणेता।

श्रीशैल—बम्बई प्रेसिडेन्सीके धारवाड़ जिलेका एक प्राचीन तीर्थ। (भागवत ५।१९।१६) तुङ्गभद्रा नदीके किनारे यह तीर्थ अवस्थित है। यहां मल्लिकार्जुन नामक अनादिलिङ्ग प्रतिष्ठित है। यहां देवालयादि तथा नदीतीरस्थ सोपानश्रेणीकी शोभा बड़ी मनोमोहिनी है। स्कन्दपुराणके श्रीशैलखण्डमें इस स्थानका माहात्म्य कीर्त्तित है।

श्रीशैलतानाचार्य—तात्पर्यसंग्रह नामक वेदान्त तथा वचनसारसंग्रह नामक दीपिकाके रचयिता।

श्रीश्वर विद्यालङ्कार—देवीशतक, शिवकुसुमाञ्जली, शुद्धि स्मृति, समशती काव्य और सूर्यशतक नामक ग्रन्थके रचयिता। ये १६वीं सदीके शेषार्द्धमें जीवित थे।

श्रीषेण—१ रोमकसिद्धान्तके प्रणेता। ब्रह्मगुप्तने इनका उल्लेख किया है। २ राजभेद।

श्रीसग्राम (सं० पु०) काश्मीरका एक सुप्रसिद्ध मठ।

श्रीसञ्ज्ञ (सं० पु०) श्रिय संज्ञा यस्य। लवङ्ग, लौंग।

श्रीसदा (सं० स्त्री०) रजनी, निशि, रात्रि।

श्रीसमाध (सं० पु०) एक राग जो श्री, शुद्ध, मालश्री, भीमपलाश्री और टङ्कको मिला कर बनाया गया है।

श्रीसम्पदा (सं० स्त्री०) ऋद्धि नामक अष्टवर्गीय ओषधि।

श्रीसम्प्रदाय—श्रीरामानुजमतावलम्बी वैष्णव श्रीसम्प्रदाय या श्रीवैष्णव कहलाते हैं। श्री अर्थात् लक्ष्मीसे यह वैष्णव प्रवर्त्तित हुआ है, इसीसे इनका नाम श्रीवैष्णव हुआ है। यथा—

रामानुजं श्रीः स्वीचक्रे निम्बादित्यं चतुःसनः।
श्रीविष्णुस्वामिनं रुद्र मध्वाचार्यं चतुर्मुखः॥"

पहले वैष्णव शब्दमें लिखा जा चुका है, कि रामानुजमतावलम्बी विशिष्टाद्वैतवादी हैं। विशिष्टाद्वैत मतमें परब्रह्म नित्य, सत्य, ज्ञान, अनन्त, विभु सर्वज्ञ और सत्यशक्ति हैं। उक्त मतसे परब्रह्म ही त्रिविध उपादान निमित्त और सहकारी कारण है। ये ही वेद और उपनिषदमें सत्, आत्मा, ब्रह्म, हरि विष्णु नारायण पुरुषोत्तम, वासुदेव आदि नामोंसे अभिहित हुए हैं। शास्त्रमें चित् और अचित्को परब्रह्मका शरीररूपमें कहा है, इसी कारण परब्रह्मको शरीरी कहते हैं। चित् कहनेसे ज्ञान और अचित् कहनेसे काल, मूलप्रकृति और शुद्ध सत्त्व समझा जाता है। मूलप्रकृतिका दूसरा नाम

प्रकृति, प्रधान, अव्यक्त और माया है। उनसे कभी कभी तम, अक्षर और परब्रह्म बोध होता है। अद्वैत अर्थमें एक भिन्न दूसरा नहीं है, विशिष्ट अर्थमें विशेषण अर्थात् चित् और अचित् शरीरीरूपमें व्याप्त है। विशिष्टाद्वैतका अर्थ एक सत्य द्वितीय नहीं है। जो चित् और अचित् के साथ शरीरीरूपमें वर्त्तमान रहते हैं, वे ही परब्रह्म हैं।

श्रीवैष्णव विष्णुकी भिन्न भिन्न मूर्त्तिकी पूजा करते हैं, ईश्वर-मन्दिरमें प्रायः नहीं जाते, यहां तक कि महादेवकी पूजा भी नहीं करते। इस सम्प्रदायके ब्राह्मण निरामिषभोजी हैं।

रामानुजकी जीवदशामें उनके अनेक शिष्य थे। उन्होंने अपने मतमें दीक्षित करनेके लिये ८० विद्वान् शिष्योंका आचार्य पुरुष या पीठाधिपति नाम रखा। वे सभी गार्हस्थधर्मावलम्बी हैं। उनके वंशधर आज भी आचार्य उपाधिधारी और श्रीवैष्णवोंके गुरु हैं।

उक्त आचार्यपुरुषोंका कुछ संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है,—

पुण्डरीकर—ये महापूर्ण आचार्यके पुत्र थे। रामानुजाचार्यने इनसे वेदाध्ययन कर संन्यास ग्रहण किया था। इनका तामिल नाम पेरिरुनम्बि है। इनके वंशधर अभी तिन्नेवल्ली जिलेमें रहते हैं।

सुन्दर तोलुडैयान्—इनके पिता तिरुमलयैयानसे रामानुजाचार्यने द्राविड वेदान्त सीखा। इनके वंशधर मदुरासे दश मील दूर आलवर तिरुमलै नामक स्थानके देवालयके आचार्य हैं। उन लोगोंकी शिखा पुरश्चूड़ है अर्थात् वे मस्तकके आगे शिखा रखते हैं।

पोमठत्तालवान—इनके पिता पेरिय तिरुमलैनम्बि रामानुजाचार्यके मामा थे। इनके वंशधर तिरुमालै कहलाते हैं। तिरुमालै दो सम्प्रदायमें विभक्त हैं, एकका नाम वड़गलै (अर्थात् संस्कृत वेदाध्यायी) और दूसरेका नाम तेङ्गलै (अर्थात् द्राविड़ दिव्य प्रबन्ध ग्रन्थाध्यायी) है। दक्षिण देशके प्रायः सभी जिलोंमें इनका वास देखा जाता है। वड़गल और तेङ्गल देखो।

मट्टर—इनके पिताका नाम कुरेश उर्फ कुरुत्तालान था। इनकी शाखा श्रीरङ्गममें रहती है।

कण्डाडैयाण्डान्—ये रामानुजाचार्यको भगिनी वरदाम्बे पुत्र दाशरथि उर्फ मुदलियाण्डानकी सन्तान थे। इनके वंशधर कण्डडै कहलाते हैं। इस वंशमें अन्नन और अप्पन नामक दो सहोदर अपनी अपनी विद्या और प्रतिभाके बलसे प्रसिद्ध हुए थे। ये लोग मनवालम्बा मुनिके प्रतिष्ठित अष्टदिग्गजोंमेंसे एक समझे जाते हैं। इनके वंशधर अभी श्रीरङ्गममें रहते हैं।

नडु विलालवान्—इनके वंशधर आत्तियुर कहलाते पर भी अण्णन नामक किसी एक पत्तङ्गि परवस्तु पट्टपिरान नामक गुरुका शिष्यत्व ग्रहण करनेके कारण वारिश अण्णन गार्गगोत्र परवस्तु कहलाते हैं। काञ्चीपुरमें इनका वास है। इस वंशकी और दूसरी शाखा पिल्लोकम् कहलाती है।

गोमठत्तालवान्—इनका वंश गोमठम् कहलाता है।

नडा दूरालवान्—इनके वंशधर नड्डुर नामसे प्रसिद्ध हैं। कुम्भकोनम्में वे लोग रहते हैं।

पेङ्गलाल्लान्—इनका दूसरा नाम विष्णुचित्त है। इन्होंने विशिष्टाद्वैत मतसे विष्णुपुराणकी टीका की है। इनके वंशधर पुरश्चुड़ा धारण करते हैं।

आनन्दाल्लान्—इनके वंशधर आनन्दाम्बिल्लै कहलाते हैं। काञ्चीपुर, महिसुर और तञ्जावुरमें इनका वास है।

शेट्टलुर शिरियाल्लान्—इनके वंशधर शेट्टालुर नामसे प्रसिद्ध हैं।

अरण पुरत्तालवान्—ये भरद्वाज गोत्रोद्भव सामवेदी ब्राह्मण हैं। इनके वंशधर पौमो परवस्तु कहलाते हैं। इस वंशमें सुप्रसिद्ध पट्टर्पिराम उर्फ गोविन्ददासर आप्पनने जन्मग्रहण किया था। ये भी पूर्वोक्त अष्टदिग्गजोंमेंसे एक हैं। विशाखपत्तनके महामहोपाध्याय श्रीपरवस्तु वेङ्कट रङ्गाचार्य आर्यवर गुरु इसी वंशके थे।

पेम्बार—इनका वंश पेम्बार कहलाता और तञ्जावुरमें रहता है।

किडाम्बिराचान—इनके वंशधर किडाम्बि उर्फ घदाम्बु कहलाते हैं।

ईच्चाङ्गाडियाचान—इस वंशके लोग ईच्चाम्बाड़ि नामसे प्रसिद्ध है। वह दो सम्प्रदायमें विभक्त है—वड़गलै और तेङ्गलै।

तिरुमालैनल्लान्—इनके वंशधर नल्लान चक्रवर्त्ती नामसे मशहूर हैं।

तिरुकुर—कैपिरान्पिल्ला—इन्होंने सबसे पहले रामानुजाचार्यका श्रीभाष्य अपने शिष्योंको सिखाया था।

अमुरि पेरुमाल—इनका वंश आमुरि कहलाता है।

मुड्वैनम्बि—इनका वंश मुडुम्बै नामसे प्रसिद्ध है। इस वंशमें अनन्तान् प्रतिवादिभयङ्कर नामसे मशहूर हुए और अष्टदिग्गजोंमें एक कहलाये। अनन्तके वंशधर प्रतिवादी भयङ्कर नामसे अभिहित हो कर काञ्चीपुर, तञ्जावुर, महिसुर इत्यादि स्थानोंमें वास करते हैं।

वह्नि सुरत्तुनम्बि—इनके वंशधर वह्निपुरम् कहलाते हैं।

कुमाण्डुरिल्लैयवल्लि उर्फ् कालधम्पि—इनके वंशधर कुमाण्डुर अथवा इराविल्लि नामसे प्रसिद्ध हैं।

किडाम्बि पेरुमाल—इनके वंशधर किडाम्बि कहलाते हैं।

श्रीरामानुजाचार्यकी मृत्युके बाद श्रीवैष्णव दो सम्प्रदायोंमें विभक्त हो गये थे। एकका नाम वडगले और दूसरेका तेङ्कले था। वडगले और तेङ्कले शब्द देखो।

प्रथमोक्त सम्प्रदाय वेदशास्त्र और श्रीभाष्य मान कर चलते हैं। ये लोग सफेद रंगका ऊर्द्ध्वपुण्ड्र तिलक जिसका आकार अंगरेजी अक्षर U के जैसा होता है, लगाते हैं। बीचमें कुङ्कुमकी ऊर्द्ध्वरेखा रहती है। द्वितीय सम्प्रदाय चार हजार श्लोकसमन्वित दिव्यप्रबन्ध नामक तामिल ग्रन्थके मतानुसार चलते हैं। उनको ऊर्द्ध्व तिलक Y के जैसा और भीतर कुङ्कुमकी ऊर्द्ध्व रेखा रहता है। ये दोनों सम्प्रदाय चार सौ वर्षके पहलेसे चले आते हैं।

वडगलेका कहना है, कि सत्कर्म करनेसे भगवान्‌का प्रसाद मिलता है। तेङ्कले कहते हैं, कि मनुष्य सत्कर्म द्वारा भगवानका प्रसाद नहीं पा सकते।

वडगलेके मतानुसार लक्ष्मी विष्णुकी शक्ति और विभु हैं, इसलिये वे मुक्ति देनेमें समर्थ हैं, किन्तु तेङ्कले इसे स्वीकार नहीं करते। उनका कहना है कि वे केवल मुक्ति देनेके लिये विष्णुको अनुरोध कर सकती हैं। वडगले कहते हैं कि महान पापको और भगवानका लक्ष्य नहीं रहता। किन्तु तेङ्कले इसे माननेको तैयार नहीं। उनका कहना है कि अज्ञात पाप भी वे पकड़ लेते हैं परन्तु मानवजातिके ऊपर उनका स्नेह है, इसी कारण वे लोग पापसे मुक्ति पा सकते हैं। वडगलेका विश्वास है, कि नीच वर्णका कोई भी व्यक्ति यदि ज्ञानी पाप करे तो भी उसका नीचत्व दूर नहीं होता। तेङ्कले कहते हैं, कि ज्ञानी और निष्ठावान् शूद्र स्वधर्मवर्जित ब्राह्मणसे भी श्रेष्ठ हैं।

वडगले लोग पितृपुरुषोंके या कि श्राद्धमें पुरोहितके चरण धो कर पादोदक ग्रहण करते हैं, किन्तु तेङ्कले वैसा नहीं करते। वडगले एकादशीको पितरोंका श्राद्ध कर ब्राह्मण भोजन कराते हैं। तेङ्कले एकादशीको श्राद्ध न कर केवल उपवास करते हैं। वडगलेकी विधवाएं मस्तक मुड़ाती हैं, परन्तु तेङ्कलेकी विधवाएं वैसा नहीं करतीं। वडगले प्रतिदिन स्नान करते हैं और समझते हैं, कि स्नान करनेसे शरीरका पाप दूर होता है। तेङ्कलेका कहना है, कि स्नान करनेसे शरीर केवल परिष्कार होता है शरीरका पाप दूर नहीं हो सकता। उक्त दोनों सम्प्रदायका इसी प्रकार नाना विषयमें बहुत दिनोंसे मत विरोध चला आता है। यहां तक, कि एक दूसरेके घर जल ग्रहण तक भी नहीं करता और न आपसमें आदानप्रदान ही चलता है।

रामानुज और वैष्णव शब्द देखो।

श्रीसम्भूता (सं० स्त्री०) ज्योतिषमें कार्त्तिकमासकी छठी रात्रि।

श्रीसहोदर (सं० पु०) श्रिया सहोदर समुद्रजातत्वात्। चन्द्रमा। चन्द्रमा और लक्ष्मी दोनों समुद्रसे उत्पन्न हुए हैं।

श्रीसिंह—चूड़ासमावंशीय एक नरपति।

श्रीमुख—आयुर्वेदमहोदधि और उसके अन्तर्गत शारीरक नामके दो वैद्यक ग्रन्थके रचयिता।

श्रीसुखदत्त—आयुर्वेद नामक ग्रन्थके प्रणेता।

श्रीसूक्त (सं० क्ली०) मन्त्रभेद। देवताओंके महास्नानके समय इस दशके ब्राह्मण श्रीसूक्त और पुरुषसूक्त पढ़ कर देवमूर्त्तिको स्नान कराते हैं।

यह श्रीसूक्त एक समय चारों वेदसे लिया गया था,

उसका प्रमाण हम लोग अग्निपुराणके निम्नोक्त श्लोकमें देखते हैं। यथा—

"श्रीसूक्तं प्रतिवेदञ्च ज्ञेयं लक्ष्मीविवर्द्धनम्।
हिरण्यवर्णां हरिणीमृचः पञ्चदश श्रियः॥
रथेष्वक्षेषु वाजेति चतस्रो यजुषि श्रियः।
श्रावयन्तीयं तथा साम श्रीसूक्तं सामवेदके।
श्रियं धातर्मयि धेहि प्रोक्तमाथर्वणे तथा।
श्रीसूक्तं यो जपेद्भक्त्या हुत्वा श्रीस्तस्य वै भवेत्॥"
(अग्निपु० २६३।१-३)

श्रीसूर्यपहाड—आसाम प्रदेशके ग्वालपाड़ा जिलान्तर्गत एक बड़ा पहाड़। यह ग्वालपाड़ा नगरसे ८ मील उत्तर-पूर्व ब्रह्मपुत्रनदके बायें किनारे अवस्थित है। एक समय प्राग्ज्योतिषपुरीके आर्य ज्योतिर्विद्गण इस पर्वत पर चढ़ कर ग्रहवेधकी गणना करते थे, इसी कारण ग्रहराज सूर्यके नामानुसार इस पर्वतका नामकरण हुआ है।

श्रीस्थल (स० क्ली०) दाक्षिणात्यकी मदुरा राजधानीके पासका एक प्रसिद्ध शैवतीर्थ और मन्दिर। स्कन्दपुराणान्तर्गत श्रीस्थलमाहात्म्यमें यहांका विशेष विवरण वर्णित है।

श्रीस्रज (सं० क्ली०) श्रीश्च स्रक्च तयो समाहारः (पा ५।४।१०६)। श्री और स्रक्का एकत्र समावेश।

श्रीस्वरूप (सं० पु०) श्रीचैतन्यके एक शिष्यका नाम।

श्रीस्वरूपिणी (सं० स्त्री०) राधा। (पद्मरत्न ५।५।५६)

श्रीस्वामी—१ काश्मीरके एक राजाका नाम। (राजतर० ५।१५६) २ भट्टिके पिता। (भट्टि २२।३५)

श्रीहट्ट—आसामके अन्तर्गत एक जिला। यह अक्षा० २३°५६´ से २५° १३´ उ० तथा देशा० ९०° ५६´ से ९२°९६ पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण ५३८८ वर्गमील है। इसके उत्तरमें खासिया और जयन्ती पहाड़, पूर्वमें कछाड़ दक्षिणमें पहाड़ी त्रिपुराका स्वाधीन राज्य तथा बङ्गके अन्तर्गत त्रिपुरा जिला और पश्चिममें मैमनसिंह है।

श्रीहट्टमें बहुतसे छोटे छोटे पहाड़ हैं। सबसे बड़े पहाड़की ऊंचाई १००० फुट है। इस जिलेके केन्द्रमें इटा पहाड़ श्रेणी विद्यमान है। श्रीहट्टकी नदनदियोंमें बराक नदी ही प्रधान है। यह नदी कछाड़से आ कर श्रीहट्टमें घुस गई है। श्रीहट्टमें इसकी दो शाखा है। प्रधान शाखाका नाम सुर्मा और दूसरी शाखाका नाम कुशियारा है। ये दोनों शाखायें मिल कर मेघना कहलातीं और घलेश्वरीमें गिरती हैं। इनके बहनेसे श्रीहट्टका अधिकांश स्थान उर्वरा हो गया है। यहां धानकी फसल अच्छी लगती है। कोयलेकी खान भी जहां तहां दिखाई देती है, परन्तु उसका आविष्कार नहीं हुआ है। जंगलमें बड़े बड़े वृक्ष दिखाई देते हैं। दूर दूर देशोंमें इनकी रफतनी होती है। इनके सिवा लाह, मोम और मधु आदि भी यथेष्ट उत्पन्न होता है। कमला नीबूके लिये भी श्रीहट्ट प्रसिद्ध है। यहां हाथी पकड़नेके बहुतसे गड्ढे बने हुए हैं।

१८७४ ई०में श्रीहट्ट आसामके चीफ कमिश्नरके शासनाधीन हुआ। प्राचीन कालमें श्रीहट्टगढ़, लाउड़ और जयन्तीया इन तीन राज्योंमें विभक्त था। कोई कोई कहते हैं, कि इन तीन प्रदेशोंमें बहुत पहले असभ्य जातिके लोगोंका वास था। किन्तु आदिशूरके पहलेसे ही जब बंगमें ब्राह्मणोंका समागम हुआ, उसी समयसे श्रीहट्टमें ब्राह्मणोंने जा कर उपनिवेश बसाया।

वैदिक देखो।

१४वीं सदीके अन्तमें मुसलमानोंने श्रीहट्ट पर आक्रमण किया। उस समय अफगानराज समसुद्दीन गौड़के शासनकर्त्ता थे। फकीर शाह जलाल मुसलमानी सेना ले कर सबसे पहले चट्टग्राम पहुंचे। इस समय गौरगोविन्द नामक एक हिन्दू श्रीहट्टके राजा थे। किन्तु शाह जलालके प्रतापसे गौरगोविन्दको हार खानी पड़ी। आज भी शाह जलालकी मसजिद श्रीहट्टमें अति प्रसिद्ध है। इस समय गड़ नामक राज्य ही मुसलमानोंके शासनाधीन हुआ था। अकबरके समय तक भी लाउड़में हिन्दूशासन अक्षुण्ण रहा। ऐसा सुना जाता है, कि लाउड़के हिन्दूराजा गोविन्दको अकबर बादशाहने दिल्ली ले जा कर मुसलमानी धर्ममें दीक्षित किया। १८वीं सदीके आरम्भमें उनके पौत्रने बनिया चंगमें राजधानी बसाई।

१७६५ ई०में अंगरेजोंको बंगालकी दीवानी मिली। इस समय भी जयन्ती स्वाधीन था। इसके बाद ढाकाके नवाबके अधीन आमोना द्वारा श्रीहट्ट जिलेके अनेक

स्थान शासित होने थे। वृटिश गवर्मेण्टने यहां पहले सीमान्तशासन नीतिका प्रवर्त्तन किया। पहले जमीन की बहुत कम मालगुजारी लगती थी। मुसलमानोंको जागीर दे कर सेनाम भर्त्ती किया जाता था। श्रीहट्टकी प्रान्त सीमाके असभ्य लोगोंके कारण हमेशा गोलमाल और अशान्ति हुआ करती थी। इसलिये इस प्रान्तमें सेना रखनेका विशेष प्रयोजन होता था। वृटिश गवमेण्टकी धारणा थी, कि जयन्तीराज्यमें नरबलि होती है। १८३५ ई०में कुछ वृटिश प्रजाकी जयन्तीके अधिवासियोंने कालीके सामने बलि दी। इसी हीलेसे वृटिश गवर्मेण्टने जयन्ती राज्य जब्त कर अपने अधीन कर लिया। राजा इन्द्रसिंहको वार्षिक ६०००) रु०की वृत्ति कायम कर दी गई। वे यही वृत्ति ले कर शान्तिभावसे श्रीहट्टमें रहने लगे। १८६१ ई०में राजा इन्द्रसिंहकी मृत्यु हुई। १८०८ ई०से इनाम भूमिका राजस्व ले कर जमींदारोंके साथ गवर्मेण्टका झगड़ा खड़ा हुआ। १८६६ ई०में बङ्गालके छोटे लाट बहादुर ने झगड़ा मिटा दिया। श्रीहट्टमें हिन्दूकी अपेक्षा मुसलमानोंकी संख्या ही अधिक है। वैष्णवोंमें विशुद्ध वैष्णवकी अपेक्षा किशोरीभजन सम्प्रदाय ज्यादा है।

श्रीहट्टमें जो सब हिन्दूदेवमन्दिर हैं, उनमेंसे जयन्तीपुरके पहाड़ पर रूपनाथ मन्दिर है। फालजुर परगनेके फालजुर मन्दिरके देवताके निकट किसी समय नरबलि दी जाती थी। इसी पापसे जयन्ती वृटिश शासनाधीन हुआ। नयन्तापुरका जयन्तेश्वरीका मन्दिर, ढाकाके दक्षिण भोगोराट्ट महाप्रभुका मन्दिर, छातकघाटमें सिद्धेश्वर, सप्तग्राममें निर्मायी शिव और वासुदेव मन्दिर प्रसिद्ध हैं।

अभी विमङ्कल परगनेके मखेड़की भी खूब प्रसिद्धि है। वैयर्याकुलके रामकृष्ण गोसाई नामक एक आदमी उस अखाड़ेकी प्रतिष्ठाके साथ साथ यहां एक प्रकारका फकीरी धर्म भी चला गये हैं। इसी अखेड़ेमें उनकी समाधि है। वृथा तुलसी और गोमय स्पर्श उनके मतसे निषिद्ध है। यह पवित्र द्रव्य स्पर्श कर शपथ नहीं खाना चाहिये। उनके शिष्य आज भी उस विधिका पालन करते हैं।

श्रीहट्टमें कुकी खासिया आदि पहाड़ी जाति के लोग देखनेमें आते हैं। इनमेंसे बहुतोंने अभी वैष्णव धर्म ग्रहण कर लिया है। श्रीहट्टकी हाजङ्ग जाति के लोग पहले पर्वतवासी थे। मणिपुर, पहाड़ीत्रिपुरा, खासिया और जयन्ती पहाड़से कितने लोग श्रीहट्टमें आ कर बस गये हैं। इस जिलेमें ५ शहर और ८३३० ग्राम लगते हैं। आय सवा २२ लाखसे ऊपर है।

आउस धान, आमन धान, तीसी सरसों, तिल, पाट मटर, खेसारी, ईख, कपास आदि फसल श्रीहट्टमें काफी उपजती है। यहां जो सब मणिपुरी रहते हैं, उनमें बहुतोंकी स्त्रियां मणिपुरखेस नामक एक प्रकारका कपड़ा बुनती है। इनके हाथके तैयार किये हुए रूमाल और मशहरीके कपड़े बड़े अच्छे होते हैं। मणिपुरके बरुद बहुत विख्यात हैं।

विद्याशिक्षामें यह जिला बहुत बढ़ा चढ़ा है। अभी कुल मिला कर ६०० प्राइमरी और ७० सिकेण्डरी और एक सरकारी साहाय्य-प्राप्त सिकेण्ड ग्रेड आर्ट कालेज है। इसके सिवा ५ अस्पताल और ४५ चिकित्सालय हैं।

श्रीहत (सं० त्रि०) १ शोभा रहित। २ निस्तेज निष्प्रभ, प्रभाहीन।

श्रीहर (सं० त्रि०) समग्र श्री हरणकारी, सातिशय श्री सम्पन्न।

श्रीहरा (सं० स्त्री०) राधा।

श्रीहर्ण (सं० पु०) विष्णु, नारायण।

श्रीहर्ष—१ बङ्गदेशीय राढ़ीय ब्राह्मणोंकी एक शाखाके आदिपुरुष और एक सत्कवि। आदिशूरने वैदिक यज्ञके अनुष्ठानके लिये कनौजसे इसके पिता मेधातिथिके साथ इनको अपने राज्यमें ला कर बसाया था। ये भरद्वाज गोत्रीय थे। इनके वंशधर घुरघर बङ्गीय मुखटी वंशके आदिपुरुष हैं। कुलीन शब्द देखो।

२ नैषधीय या नैषधचरित और खण्डनखण्डखाद्यके प्रणेता एक प्रसिद्ध कवि। ये कनौजराज जयचन्द्रके आश्रयमें पालित और परिवर्द्धित हुए थे। कविने उस इतकताका अपने नैषधचरितके शेषमें 'ताम्बूलद्वयमासनञ्च लभते यः कान्यकुब्जेश्वरात्।' इत्यादि श्लोकोंमें उल्लेख

किया है। उक्त ग्रन्थके प्रथम अध्यायके अन्तमें कविने आत्मपरिचय इस प्रकार दिया है—कविकुल श्रेष्ठ श्रीहीर उनके पिता और माता मामल्लदेवी थीं।

सुप्रसिद्ध जैनकवि राजशेखरने १३४८ ई०में स्वकृत प्रबन्धकोषमें लिखा है, कि श्रीहीरपुत्र श्रीहर्षदेवने वाराणसीधाममें जन्मग्रहण किया। उन्होंने यहांके अधीश्वर गोविन्दचन्द्रके पुत्र श्रीमन्महाराज जयचन्द्रके आदेशसे नैषधीय काव्य प्रणयन किया। राजशेखरके ग्रन्थमें जयन्तचन्द्र पङ्गुल नामसे विख्यात हैं तथा वे अनहिलवाड़-पत्तनके अधीश्वर कुमारपालके समसामयिक थे। डा० बुहलरका कहना है, कि उक्त जयन्तचन्द्र ही राष्ट्रकूट राजा थे और वे ही कन्नौजके राठोरराज जयचन्द्र या जयचाँद नामसे प्रसिद्ध थे।

श्रीहर्ष एक असाधारण कवि थे। उनका काव्यालङ्कार और स्वभाववर्णन अत्यन्त मनोहर होता था। दुःखका विषय है, कि उनकी रचनामें अत्युक्ति दोष पाया जाता है। काश्मीरवासी प्रसिद्ध आलङ्कारिक काव्य प्रकाशके रचयिता मम्मट भट्ट इनके मामा थे। प्रवाद है, कि बाल्यकालमें मामाके घर रह कर ही काव्य-रचना कर उन्हें स्वयं संशोधन और परिवर्त्तन करने देख उनके मामाने समझा, कि यह सन्दिग्धचित्तता श्रीहर्षकी मार्जित बुद्धिका फल है; अतएव इस तरह काव्यरचना-चेष्टा करनेसे वह बहुत समयमें भी सम्पूर्ण नहीं हो सकेगा। जिससे भाञ्जेका यह भाव दूर हो जाय अर्थात् स्थूल बुद्धि हो संशोधनसे सर्वदा विरत रहें उसके उपायस्वरूप उन्हें उरद खानेकी व्यवस्था दी। इससे उनकी बुद्धिकी प्रखरता घट जानेसे उन्होंने आक्षेप कर लिखा है—

"अदीपशेमुषीमोपमापमश्नामि केवलम्।"

ग्रन्थकारने एक ओर जिस तरह कवित्व प्रतिभासे संस्कृत जगत्‌को प्रभावित कर दिया है, दूसरी ओर वे उसी तरह दार्शनिक तत्त्वके उद्घाटनमें जगद्वासीको नूतन भावमें पारमार्थिक पथान्वेषी करने समर्थ हुए थे। उनका रचित खण्डनखण्डखाद्य ग्रंथ गौतमीय न्याय-शास्त्रकी तरह खण्डन मात्र है।

उक्त दोनों ग्रन्थोंसे उनके रचित अर्णववर्णन, गौडोर्वीशकुलप्रशस्ति, छन्दःप्रशस्ति, नवसाहसाङ्कचरित, विजयप्रशस्ति, शिवशक्तिसिद्धि और स्थैर्यविचारण नामक अन्यान्य ग्रन्थोंका उल्लेख मिलता है।

श्रीहर्ष—१ ज्ञानगीतके रचयिता। २ श्रीफलवर्द्धिनी नाम्नी नीलकण्ठी नामक ज्योतिर्ग्रन्थकी टीकाके प्रणेता। ३ मानमालोयखण्डन, द्विरूपकोष और श्लेषार्थपदटीकाके प्रणेता।

श्रीहर्ष—स्थाण्वीश्वरके प्रबल पराक्रान्त हिन्दू राजा। कादम्बरीके प्रणेता सुप्रसिद्ध बाणभट्टने श्रीहर्षचरितमें इनका चरित्र चित्रित किया है। चीनपरिव्राजक युएन चुयंगने इनकी सभा देख कर इन्हें बौद्धधर्मका प्रतिपालक कहा है, किन्तु इनकी मधुवन प्रशस्तिसे जाना जाता है, कि राजा हर्षवर्द्धन शैव थे। हर्षवर्द्धन शिलादित्य देखो।

श्रीहर्षदेव—काश्मीरके एक राजा। ये भी श्रीहर्ष कवि कह कर परिचित थे। पिता कलशदेवकी मृत्युके बाद उनके बड़े लड़के उत्कर्ष राजसिंहासन पर बैठे। कुछ दिन राज्य करनेके बाद उत्कर्षने आत्महत्या कर डाली। पीछे उनके छोटे भाई श्रीहर्षने १०८९ ई०में राजसिंहासन सुशोभित किया। यह एक सत्कवि और बहु भाषावित् थे, राजतरङ्गिणीसे उसका आभास पाते हैं। (राजतर० ८ तर०) राजेन्द्रकर्णपुर और अन्योक्तिमुक्तालताशतकके प्रणेता शम्भु कवि इनकी सभामें विद्यमान थे।

श्रीहर्षदेव—नागानन्दनाटक, प्रियदर्शिकानाटक और रत्नावली नाटिकाके प्रणेता। ये भी श्रीहर्षकवि कह कर परिचित थे। सिन्धुराजपुत्र धाराधिपति भोजदेव-कृत सरस्वतीकण्ठाभरणमें तथा मालवेश्वर मुञ्जके सभासद् धनञ्जयकृत दशरूपग्रंथमें नागानन्द और रत्नावलीका श्लोक उदाहरणस्वरूप उद्धृत हुआ है। वाक्पति मुञ्ज ९७४ ९९५ ई०में विद्यमान थे; क्षेमेन्द्रकृत कविकण्ठाभरणमें भी इसका उल्लेख है। क्षेमेन्द्र काश्मीरपति अनन्तराजकी सभामें (११२८-११६४ ई०) रहते थे। अतएव रत्नावलीके रचयिता श्रीहर्षकवि उनके भी बहुत पहलेके थे, इसमें सन्देह नहीं। कन्नौजराज महेन्द्रपाल और महीपाल (९०३ ९०७ ई०में)के सभाकवि राजशेखरने लिखा है, कि इनकी सभामें कवि मातङ्ग और दिवाकर रहते थे। रत्नावलीके नान्दीमुखमें श्रीहर्षराजने हर पार्वतीको प्रणाम किया है, किन्तु इन्होंने नागानन्दके

रचनाकालमें बुद्धदेवका नमस्कार करके ही मङ्गलाचरण किया । इससे अनुमान किया जाता है, कि राजा श्रीहर्ष पहले ब्राह्मणधर्मके पक्षपाती थे, अन्तमें वे बौद्धधर्माव लम्बी हुए। बहुतेरे इ ह और सम्राट् हर्षवर्द्धनका एक समझते हैं। हर्षवर्द्धन देखो।

श्रीहर्षदेव—एक कामरूपराजवंशोद्भव। ये गौड़ ओड़ कलिङ्ग, कोशल आदि देशोंके अधिपति थे। इनकी कन्या राज्यमतीका नेपालके लिच्छवि राज २य जयदेवके साथ ८वीं सदीमें विवाह हुआ। राजा श्रीहर्ष भगदत्तवंशीय थे।

श्रीहस्तिनी (स० स्त्री०) श्रीयुक्ता हस्तिनीव। १ वृक्ष विशेष, हस्तिशुण्डी। पर्याय—भूरुण्डी, नागदन्ती। २ सूर्यमुखीका पौधा।

श्रुवाद (सं० क्ली०) विकङ्कत, कटाई।

श्रुघ्निका (सं० स्त्री०) सज्जीखार।

श्रुत् (स० त्रि०) श्रोता।

श्रुत (स० क्ली०) श्रूयते स्मेति श्रु क। १ शास्त्र। २ श्रवणगोचर। (पु०) ३ कालिन्दीके गर्भसे उत्पन्न श्रीकृष्णके पुत्रका नाम। (त्रि०) ४ जो श्रवण गोचर हुआ हो, सुना हुआ। ५ जिसे परम्परासे सुनते आते हों। ६ ज्ञात, प्रसिद्ध, ख्यात।

श्रुतकक्ष (स० पु०) आङ्गीरसगोत्रीय एक वैदिक आचार्य का नाम। (ऋक् ८।८१।२५)

श्रुतकर्मन्—१ सहदेवके पुत्रका नाम। (भाग० ९।२२।२९) २ अर्जुनके पुत्रका नाम। (भारत आदिपर्व) ३ सोमापि के पुत्रका नाम। (विष्णुपुराण)

श्रुतकीर्त्ति (स० स्त्री०) श्रुता कीर्त्तिर्यस्या। १ राजा जनकके भाई कुशध्वजकी कन्या जो शत्रुघ्नको व्याही थी। (रामायण बालका० ७३ स०) २ राजा शूरकी कन्या जो वसुदेवकी बहन और धृष्टकेतुकी पत्नी थी। (भाग० ९।२४।२९) (पु०) ३ देवर्षि। ४ द्रौपदीके गर्भसे उत्पन्न अर्जुनके एक पुत्रका नाम। (भारत १।६३।१२० (त्रि०) ५ कीर्त्तियुक्त, जिसकी कीर्त्ति प्रसिद्ध हो।

श्रुतकीर्त्ति—एक ज्योतिषी। भट्टोत्पलने वृहज्जातकमें इनका उल्लेख किया है।

श्रुतकेवलिन् (स० पु०) एक प्रकारके अर्हत् जो छ कहे गये हैं। जैन देखो।

श्रुतञ्जय (स० पु०) १ सेनजित्के पुत्रका नाम। (विष्णुपुराण) सत्यायुके पुत्रका नाम। (भाग० ९।१५।१२)

श्रुततस् (स० अव्य०) श्रुत तसिल्। १ शास्त्रत, शास्त्रसे। २ श्रुतमात्र।

श्रुतत्व (स० क्ली०) श्रुतस्य भाव। श्रुतका भाव या धर्म, श्रवण।

श्रुतदेव (स० पु०) श्रीकृष्णके पुत्रका नाम। (भागवत १०।९०।३४)

श्रुतदेवी (स० स्त्री०) १ शूरकी कन्या और वसुदेवकी बहन। (भाग० ९।२४।२९) श्रुतस्य शास्त्रस्य देवी। २ सरस्वती।

श्रुतधर (स० त्रि०) धरतीति धर धृ अच् श्रुतस्य धरः। १ श्रुतमात्र अवधारणकारी। (पु०) २ शाल्मली द्वीपवासी ब्राह्मणोंकी संज्ञा। (भाग० ५।२०।११) ३ राजभेद। (कथासरित्सा० ७४।२४) ४ एक कवि। जयदेवने गीत गोविन्दकाव्यमें इनका उल्लेख किया है।

श्रुतधर्मन् (स० पु०) उग्रायुके एक पुत्रका नाम।

श्रुतधारण (स० त्रि०) १ श्रुतधर, श्रुतमात्रधारणकारी। २ भगवान्‌में मन संयमनकारी। (भागवत २।७।४६)

श्रुतध्वज (स० पु०) भारत वर्णित एक योद्धा।

श्रुतनिगादिन् (स० त्रि०) जो एक बार सुने हुए पद्य आदिको ज्योंका त्यों कह सके।

श्रुतपाल—एक वैयाकरण। हेमचन्द्र विरचित वृहद्वृत्ति नामक ग्रन्थके न्यासाध्यायमें इनका उल्लेख है।

श्रुतपूर्व (स० त्रि०) जो पहले सुना गया हो, जाना बूझा।

श्रुतबन्धु (स० पु०) गौपायन या लौपायन गोत्रसम्भूत एक वैदिक आचार्यका नाम। (ऋक् ५।२४।३)

श्रुतरथ (स० पु०) सर्वत्र प्रसिद्ध रथयुक्त।

श्रुतर्वा (स० पु०) ऋग्वेद वर्णित एक ऋषिका नाम।

श्रुतवान् (स० पु०) ऋषिभेद। (हरिवंश)

श्रुतर्षि (स० पु०) श्रुतप्रधान ऋषि। ऋषिविशेष। सुश्रुत आदि ऋषियोंको श्रुतर्षि कहते हैं।

श्रुतवत् (स० त्रि०) श्रुत विद्यतेऽस्य मतुप् मस्य व। श्रुतज्ञानसम्पन्न, शास्त्रज्ञ। (मनु ३।२७)

श्रुतवर्द्धन (सं० पु०) एक सुप्रसिद्ध चिकित्सक।

श्रुतवर्मन् (सं० पु०) राजभेद।

श्रुतविद् (सं० त्रि०) श्रुतं वेत्ति विद् क्विप्। श्रुतवेत्ता, शास्त्रवेत्ता।

श्रुतविन्दा (सं० स्त्री०) एक नदी जो कुशद्वीपके वर्ण पर्वतसे निकली है।

श्रुतविस्मृत (सं० त्रि०) श्रुत और पीछे विस्मृत।

श्रुतशर्मन् (सं० पु०) १ उशाबुके एक पुत्रका नाम। (हरिवंश) २ विद्याधर राजभेद।

श्रुतशील (सं० पु०) १ विद्या और सदाचार। (त्रि०) २ विद्वान् और सदाचारी।

श्रुतश्रवस् (सं० पु०) राजभेद।

श्रुतश्रवोऽनुज (सं० पु०) श्रुतश्रवसोऽनुजः। शनैश्चरग्रह। (हारावली)

श्रुतश्री (सं० पु०) दैत्यभेद। (भारत उद्योगपर्व)

श्रुतश्रेणी (सं० स्त्री०) द्रवन्ती वृक्ष। इसका दूसरा नाम श्रुतश्रेणी है।

श्रुतसद् (सं० त्रि०) वक्तृतागृह और तत्रत्य श्रोतृमण्डली।

श्रुतसेन (सं० त्रि०) प्रसिद्ध सेनायुक्त।

श्रुतसेन (सं० पु०) १ नागभेद। (भारत आदिपर्व) २ दैत्यभेद। ३ जनमेजयके भ्राता। (शतपथब्रा० १३।५।४।३) ४ जनमेजयके एक पुत्रका नाम। (हरिवंश) ५ परीक्षितके पुत्र। ६ सहदेवके एक पुत्रका नाम। ७ वृकोदरके एक पुत्रका नाम। (विष्णुपु०) ८ शत्रुघ्न के पुत्र। (भारत ६।११।२३) ९ गोकर्णराजभेद।

श्रुतसेना (सं० स्त्री०) श्रीकृष्णकी पत्नीका नाम।

श्रुतसोम (सं० पु०) भीमसेनके एक पुत्रका नाम।

श्रुतादान (सं० क्ली०) श्रुतस्य आदानं। ब्रह्मवाद।

श्रुतानीक (सं० पु०) नृपभेद। (भारत द्रोणपर्व)

श्रुतान्त (सं० पु०) भारत वर्णित व्यक्तिभेद।

श्रुतामय (सं० पु०) १ परिचित व्यक्ति। २ बन्धु।

श्रुताध्ययनसम्पन्न (सं० पु०) श्रुतस्य शास्त्रस्य अध्ययने सम्पन्नः युक्तः। धर्मशास्त्रज्ञ, जो धर्मशास्त्र जानता हो।

श्रुतान्वित (सं० त्रि०) श्रुतेन शास्त्रेन अन्वितः। शास्त्रज्ञ, शास्त्रका जाननेवाला। (भट्टि १।१)

श्रुतार्थ (सं० पु०) श्रुतोऽर्थः। १ शब्दबोधविषयीभूतार्थ, श्रवणमात्रबोध्य अर्थ, सुननेके साथ ही जो अर्थ समझमें आ जाय। (त्रि०) श्रुतोऽर्थो येन। २ जिसने अर्थ सुना गया हो, जिसने अर्थ सुनाया हो।

श्रुतायु (सं० पु०) १ सूर्यवंशीय एक राजा। ये कुशके चौदहवें पुरुष थे। (मत्स्यपु० १२२) २ विदेहराजभेद। (भागवत ९।१३।२५ अ०)

श्रुतायुध (सं० पु०) एक राजा। इसके पिता वरुणने इसे एक ऐसी गदा दी थी, कि जो युद्धकर्त्ता पर फेंकनेसे उसका अवश्य नाश कर देती थी, पर युद्ध न करनेवालेके ऊपर चलानेसे वह लौट कर चलानेवाले हीके प्राण ले लेती थी।

श्रुतावती (सं० स्त्री०) भरद्वाजकी एक कन्याका नाम। (भारत ९ पर्व)

श्रुति (सं० स्त्री०) श्रूयतेऽनयेति श्रु (श्रुयजिस्तुभ्यः करणे। पा ३।३।९४) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या करणे क्तिन्। १ वेद।

"श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रन्तु वै स्मृतिः।"
(मनु २।१०)

वेदको श्रुति और धर्मशास्त्रको स्मृति कहते हैं।

जहां वेद और धर्मशास्त्रका विरोध होता है, वहां श्रुतिका प्रमाण ही ग्रहणीय है।

वैदिक और तान्त्रिकभेदसे श्रुति दो प्रकारकी है।

"वैदिकी तान्त्रिकी चैव द्विविधा श्रुतिः कीर्त्तिता।"
(मनुटीकामें कुल्लूकभट्ट)

२ कर्ण, कान। ३ श्रोतेन्द्रियग्राह्य शब्द और तन्निष्ठ शब्दत्वादिगुण, सुनी हुई बात। ४ श्रु भावे क्तिन्। श्रोतकर्म, सुनना। ५ वार्त्ता, बात, कथन। ६ श्रवणा नक्षत्र। ७ किंवदन्ती, अफवाह, खबर। ८ वाचक शब्द। ९ षड्जाद्यारम्भिका, सूक्ष्म स्वरविशेष, स्वरका अवयव। जब कोई गायक या वादक एक स्वरसे दूसरा स्वर अविच्छेदमें प्रकाश करता है, तब उन दोनों स्वरोंके मध्य, स्थलमें जो अति सूक्ष्म सुरांश अनुभूत होता है, उसे श्रुति कहते हैं। यह श्रुति बाईस प्रकारकी है। यथा—नान्दी, चालनिका, रसा, सुमुखी, चित्रा, विचित्रा, घना, मातङ्गी सरसा, अमृता, मधुकरी, मैत्री, शिवा, माधवी, बाला,

शार्ङ्गरवी, वला, कलरवा, माला, विशाला, नया और माता।

१० शब्द, ध्वनि। ११ अनुप्रासका एक भेद। १२ श्रुत्य नुप्रास देखो। १३ त्रिभुजके समकोणके सामनेकी भुजा। १४ नाम, अभिधान। १५ विद्वत्ता। १६ विद्या। १७ अत्रि ऋषिकी कन्या जो कर्दमकी पत्नी थीं।

श्रुतिकट (स० पु०) श्रुति कटतीति कट अच्। १ प्रायश्चित्त। २ अहि, सर्प, साप। ३ पापशोधन, प्रायश्चित्त।

श्रुतिकटु (स० पु०) श्रुतौ कटुः। १ कठोर शब्द। २ काव्य रचनामें एक दोष, कठोर और कर्कश वर्णोंका व्यवहार दुःश्रवत्व द्वित्ववर्ण, टवर्ग, मूर्द्धन्य वर्ण कठोर माने गये हैं। श्रुतिकटु नित्य दोष नहीं है, अनित्य दोष है क्योंकि यह सर्वत्र दोष नहीं होता केवल शृङ्गार, करुण आदि कोमल रसोंमें कठोर वर्ण दोषोत्पादक होते हैं, वीर रौद्र आदिमें नहीं।

श्रुतिकण्ठ (स० पु०) १ नागभेद। २ ग्रथित लौह।

श्रुतिकथित (स० त्रि०) श्रुतौ कथित। श्रुत्युक्त, वेदोक्त।

श्रुतिकीर्त्ति (स० स्त्री०) श्रुतकीर्त्ति देखो।

श्रुतिजीविका (स० स्त्री०) श्रुतिरेव जीविका यस्याः। १ धर्मशास्त्र। २ वेदजीवनोपाय श्रुति ही जिसकी जीविका हो।

श्रुतितत्पर (स० त्रि०) श्रुतौ तत्पर। १ सकर्ण। २ वेदाभ्यासरत।

श्रुतितस् (स० अव्य०) श्रुति पञ्चम्यर्थे तसिल्। श्रुतिसे या श्रुतिसे।

श्रुतिता (स० स्त्री०) श्रुतेर्भाव तल् टाप। श्रुतिका भाव या धर्म, श्रुतित्व।

श्रुतिदुष्ट (स० पु०) श्रुतिकटु दोष, दुःश्रवत्व।

श्रुतिधर (स० त्रि०) श्रुत्वा श्रवणमात्र ण धरतीति धृ अच्। श्रुतिमात्रधारक जिसे सुनते ही स्मरण हो जाता हो। जो श्लोकादि सुनते ही स्मरण रखता हो, उसे श्रुतिधर कहते हैं। गरुड़पुराणमें श्रुतिधर होनेका एक औषध लिखा है यथा—हस्तिकर्णके मूलको अच्छी तरह चूर्ण कर सौ पल दूधके साथ ७ दिन भोजन करना होता है। इससे भी रोग दूर होते और श्रुतिधरत्व लाभ होता है। मधु और मर्चि खानेसे भी श्रुतिधरत्व लाभ होता है।

श्रुतिन् (स० त्रि०) श्रुतमनेन श्रुत (इष्टादिभ्यश्च। पा ५।२।८८) इति इनि। श्रवणकारी, जिससे सुना गया हो।

श्रुतिपथ (स० पु०) श्रुतिरेव पन्था। १ श्रुतिमार्ग, वेदरूप पथ। २ श्रवणपथ श्रवणेन्द्रिय।

श्रुतिमत् (स० त्रि०) श्रुति अस्त्यर्थे मतुप्। १ श्रुति विशिष्ट, श्रुतियुक्त। २ श्रुतवत् शास्त्रज्ञ।

श्रुतिमण्डल (स० क्ली०) कर्ण।

श्रुतिमय (स० त्रि०) श्रुति स्वरूपे मयट्। श्रुतिस्वरूप।

श्रुतिमार्ग (स० पु०) श्रुतेर्मार्गः। श्रुतिरूपमार्ग, वेद रूपमार्ग, वेदपथ।

श्रुतिमाला (स० पु०) ब्रह्मा।

श्रुतिमुख (स० त्रि०) श्रुतिर्मुखे यस्य। १ वेद ही जिसका मुख है। (पु०) २ ब्रह्मा।

श्रुतिमूल (स० क्ली०) कर्णमूल।

श्रुतिवर्ज्जित (स० त्रि०) श्रुत्या वर्ज्जितः। १ बधिर, बहिरा। २ वेदरहित।

श्रुतिविन्द (स० स्त्री०) कुशद्वीपकी एक नदी।

श्रुतिविवर (स० क्ली०) श्रुत्या विवर। कर्णविवर।

श्रुतिवेध (स० पु०) श्रुतेः कर्णस्य वेधो यत्र। कर्णवेध, कनछेदन। ज्योतिषके मतसे शुभ दिन देख कर कर्ण वेध करना होता है। ये शुभ दिन ये हैं—रिक्ता भिन्न तिथि, बृहस्पति बुध और शुक्रवार, अश्विनी, रेवती, हस्ता चित्रा, पुनर्वसु धनिष्ठा मृगशिरा, पुष्या श्रवणा, अनुराधा उत्तरफल्गुनी, उत्तराषाढ़ा उत्तरभाद्रपद और स्वातिनक्षत्र तथा वृष, तुला, धनु और मीनलग्न शुक्लपक्ष, जन्ममास चैत्र, पौष और अग्रहायण भिन्न मास हरि शयन भिन्नकाल, चन्द्र और तारा शुद्धि होनेसे और कालशुद्ध रहनेसे कर्णवेध प्रशस्त है।

श्रुतिशिरस (स० क्ली०) वेदशिरा।

श्रुतिशीलवत् (स० त्रि०) श्रुति शील अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। श्रुति और शीलयुक्त अर्थात् शास्त्रज्ञ और आचारविशिष्ट। (मनु ३।२७)

श्रुतिसागर (स० पु०) विष्णुका एक नाम।

श्रुतिस्फोटा (स० स्त्री०) श्रुतिं स्फोटयतीति स्फुट अच् टाप्। १ कर्णस्फोटालता। २ कनफोड़ा।

श्रुतिहारिन् (सं० त्रि०) कानोंको अच्छा लगनेवाला, सुननेमें मधुर।

श्रुती (सं० स्त्री०) श्रुति। (मनु ११।३३)

श्रुतकर्ण (सं० त्रि०) श्रवणसमर्थ कर्णयुक्त।

श्रुत्य (सं० त्रि०) १ श्रवणीय, सुना जाने योग्य। "वाजं श्रुत्यं युवभ्य" (ऋक् ७।४।६) 'श्रुत्य श्रवणीय' (सायण। २ प्रशस्त। ३ प्रसिद्ध।

श्रुत्यनुप्रास (सं० पु०) अनुप्रास अलङ्कारभेद।

शब्दसाम्य अर्थात् शब्दकी समता होनेसे अनुप्रास कई प्रकारका होता है। जहां अर्थात् तालव्य और दन्त्यादि वर्णोंके उच्चारणस्थानमें एकत्र उच्चारण हेतुक व्यञ्जनका सादृश्य होता है, वहां यह अलङ्कार होता है। एक स्थानसे जिन सब व्यञ्जनोंका उच्चारण होता है, उन सब व्यञ्जनोंका सादृश्य होनेसे उक्त अलङ्कार होगा।

कण्ठ तालु आदि जिस किसी उच्चारण द्वारा व्यञ्जन का सादृश्य होनेसे यह अलङ्कार होता है। यह अलङ्कार लोगोंका श्रुतिसुखावह है, इस कारण इसका नाम श्रुत्यनुप्रास हुआ है।

श्रुधीयत् (सं० त्रि०) अपने धन या अन्नकी इच्छा करनेवाला।

श्रुध्य (सं० क्लो०) साममेद। (लाट्या० ८।३।३।५)

श्रुमत् (सं० पु०) ऋषिभेद। (पा ५।३।११८)

श्रुयमाण (सं० त्रि०) श्रु-शानच्। जो सुना जाय।

श्रुव (सं० पु०) श्रु-क। १ याग। (उज्ज्वल) (क्लो०) २ स्रुव।

श्रुवा (सं० स्त्री०) मूर्वा।

श्रुवावृक्ष (सं० पु०) विकङ्कतवृक्ष।

श्रुष्—वैदिक धातु, औपमाणार्थ। (ऋक् ३।८।१०)

श्रुषा (सं० स्त्री०) कासमर्द, कसौंदा।

श्रुष्टि (सं० स्त्री०) १ यजमान, क्षिप्रकर्मानुष्ठाता। (ऋक् १।६७।१) २ सब जगह श्रूयमाणा समृद्धि। (ऋक् १।१३७।१) ३ क्षिप्र। (निघण्टु ४।३) ४ धन।

श्रुष्टिगु (सं० पु०) काण्वगोत्रीय ऋषिविशेष। इनके वंशधर श्रौष्टिगव कहलाते हैं।

श्रुष्टिमत् (सं० त्रि०) श्रुष्टि अस्त्यर्थे मतुप्। धनयुक्त, धनाढ्य।

श्रेष्ठ्यत् (सं० त्रि०) फलदानकारी।

श्रेढी (सं० स्त्री०) अङ्कविशेष, एक प्रकारका पहाड़ा। कितनी राशि यदि इस प्रकार विन्यस्त रहे जो प्रत्येक अपनी अपनी परवर्त्ती राशिकी अपेक्षा समान परिमाणमें गुरु या लघु हो, तो उसे श्रेढी कहते हैं। लीलावतीमें इस अङ्कके विशेष नियम और उदाहरण दिये हुये हैं।

श्रेणि (सं० पु० स्त्री०) श्रयति श्रीयते वा श्रि (वहि श्रि श्रुयुद्रुति। उण् ४।५१) इति णि। १ निच्छिद्र पंक्ति, बहुत सी वस्तुओंका ऐसा समूह जो उत्तरोत्तर रेखाके रूप में कुछ दूर तक चला गया हो, पांति, कतार। पर्याय—पंक्ति, श्रेणी, विच्छालो वीथी, आलि, पालि, आवलि, आली, पाली, आवली, वीथि, वीथिका, राजी, राजि, रेखा, लेखा। (जटाधरता०) २ एकके उपरान्त दूसरा लगातार क्रम, शृङ्खला, परम्परा, सिलसिला। ३ समान व्यवसायियोंका दल, एक ही कारबार करनेवालोंकी मंडली। ४ दल, समूह। ५ सेना, फौज। ६ किसी वस्तुका अगला या ऊपरी भाग। ७ सीढ़ी, जीना। ८ जंजीर, सिकड़ी। ९ पानी भरनेका डोल।

श्रेणिक (सं० पु०) १ मगध देशीय राजविशेष। ये गौतमबुद्धके समसामयिक थे और बिम्बिसार नामसे प्रसिद्ध थे। श्रेणि स्वार्थे-कन्। २ श्रेणि देखो। ३ छन्दोभेद। इसका १, ३, ५, ७, ९ और ११ वां वर्ण लघु तथा २, ४, ६, ८, १० वां वर्ण गुरु होता है। ४ राजदन्त, अगला दांत।

श्रेणिका (सं० स्त्री०) १ डेरा, खेमा, तंबू। २ एक तृण।

श्रेणिकृत (सं० त्रि०) श्रेणिबद्धभावमें विद्यमान, कतार बांधे हुए।

श्रेणिदत् (सं० त्रि०) स्तोत्रमें अर्थात् फलसमूहप्रदानकारी या शत्रुओंका त्वालाकारी। (ऋक् १०।२०।३)

श्रेणिबद्ध (सं० त्रि०) कतार बांधे हुए, पंक्तिके रूपमें स्थित।

श्रेणिमत् (सं० पु०) १ सेनापति। २ दलपति। ३ वणिग्दलका नेता।

श्रेणिशस् (सं० अव्य०) श्रेणि च शस्। श्रेणिरूपमें, श्रेणिबद्धभावमें।

श्रेणी (सं० स्त्री०) श्रेणि देखो।

श्रेणीकृत (सं० त्रि०) श्रेणिकृत कतारसे सजा हुआ।

श्रेणीधर्म (सं० पु०) व्यवसायियोंकी मण्डली या पञ्चायतकी रीति या नियम। (मनु ८।४१)

श्रेणीबन्ध (सं० त्रि०) पंक्तिके रूपमें स्थित, कतार बांधे हुए।

श्रेण्य (सं० पु०) श्रेणिक देखो।

श्रेतृ (सं० त्रि०) श्रि तृच। १ आश्रय ग्रहणकारी, शरण लेनेवाला। २ सेवा करनेवाला।

श्रेमन् (सं० पु०) प्रशस्य इमन्। श्रेष्ठत्व, जगद्वन्द्यत्व।

श्रेय (सं० क्लीं०) साममेद।

श्रेयस् (सं० क्लीं०) इदमनयोरतिशयेन प्रशस्य प्रशस्य इयसुन् (प्रशस्यस्य श्रः। पा ५।३।६०) इति इयसुन्। १ धर्म, पुण्य, सदाचार। २ मुक्ति। मनुमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चारों श्रेयः कहलाते हैं। ३ कल्याण, मंगल, बेहतरी। ४ अच्छादन। ५ ज्योतिषमें दूसरा मुहूर्त्त। ६ वर्त्तमान अवसर्पिणीके ग्यारहवें अर्हत्। (त्रि०) ७ अधिक, अच्छा, बेहतर। ८ कल्याणकारी, मंगलदायक। ९ कीर्त्तिकर, यश देनेवाला। १० श्रेष्ठ, उत्तम।

श्रेयसी (सं० स्त्री०) श्रेयस् उगित्वात् ङीप्। १ हरीतकी, हर्रे। २ पाठा, पाढ़ी। ३ करिपिप्पली, गजपीपल। ४ रास्ना। ५ प्रियंगु। ६ शुभयुक्ता।

श्रेयकेत (सं० त्रि०) श्रेष्ठ विचारक।

श्रेयःपरिश्रम (सं० त्रि०) मुक्तिके लिये श्रम या कामना करनेवाला।

श्रेयस (सं० क्लीं०) अतिशय मङ्गल।

श्रेयस्कल्प (सं० पु०) १ श्रेष्ठकल्प। २ शुभकल्प। ३ शुभ किंवा श्रेष्ठ सदृश।

श्रेयस्कर (सं० त्रि०) श्रेय करोतीति कृ ट। शुभकर, मङ्गलजनक।

श्रेयस्काम (सं० पु०) श्रेयः कामो यस्य। शुभकाम, मंगल चाहनेवाला।

श्रेयस्कृत (सं० त्रि०) श्रेयस्करोतीति कृ क्विप् तुक् च। श्रेयस्कर, शुभकर, मङ्गलजनक।

श्रेयस्त्व (सं० क्लीं०) श्रेयसो भाव श्रेयस् त्व। श्रेयका भाव या धर्म, श्रेष्ठत्व, शुभत्व।

श्रेयांस (सं० पु०) चतुर्विंशतिशेष।

जैन शब्दमें जीवनी देखो।

श्रेयांसनाथ (सं० पु०) वर्त्तमान अवसर्पिणीके ग्यारहवें अर्हत् या तीर्थंकर।

श्रेयोमय (सं० त्रि०) श्रेयस् स्वरूपे मयट्। श्रेयः स्वरूप मङ्गलमय, शुभमय।

श्रेष्ठ (सं० क्लीं०) अयमेषामतिशयेन प्रशस्य इष्ठन् (प्रशस्य श्र। पा ५।३।६०) इति श्र। १ गोदुग्ध, गायका दूध। (पु०) २ कुबेर। ३ नृप, राजा। ४ द्विज, ब्राह्मण। ५ विष्णु। (विष्णुसहस्रनाम) ६ महादेव। (भारत १३।१७।४०) (त्रि०) ७ प्रशस्त वर। पर्याय—श्रेयस पुष्कल सत्तम, अतिशोभन मुख्य वरेण्य, प्रमुख, अग्र अग्र्य, उत्तम, प्रवह, अनुत्तम, अग्रीय, प्रत्येक, अग्र्य, अग्रिय अनवर, अग्रिम, प्राग्र, प्राग्रहर, प्रबर्ह। ८ वृद्ध, बूढ़ा। ९ ज्येष्ठ, बड़ा। १० कल्याण भाजन।

श्रेष्ठकाष्ठ (सं० पु०) श्रेष्ठं काष्ठमस्य। १ शाकवृक्ष, सागवानका पेड़। २ घरमें लगा प्रधान स्तम्भ।

श्रेष्ठतम (सं० त्रि०) अयमेषामतिशयेन श्रेष्ठ श्रेष्ठ (अतिशयने तमबिष्ठनौ। पा ५।३।५५) इति तमप्। सबोंमें जो प्रधान हो उसे श्रेष्ठतम कहते हैं।

श्रेष्ठतर (सं० त्रि०) अयमनयोरतिशयेन श्रेष्ठः श्रेष्ठ तरप्। दोमें जो प्रधान हो।

श्रेष्ठतस् (सं० अव्य०) श्रेष्ठ तसिल्। श्रेष्ठ व्यक्तिसे।

श्रेष्ठता (सं० स्त्री०) श्रेष्ठस्य भाव तल टाप्। १ श्रेष्ठ होनेका भाव, प्रधानता, गुरुता बड़ाई। २ उत्तमता।

श्रेष्ठपाल (सं० पु०) बौद्धराजभेद।

श्रेष्ठभाज (सं० त्रि०) श्रेष्ठ भजते भज ण्वि। प्रधान भागी।

श्रेष्ठमल्लिका (सं० स्त्री०) शतदलमल्लिका। (पर्यायमुक्ता)

श्रेष्ठलवण (सं० क्लीं०) सैन्धवलवण, सेंधा नमक।

श्रेष्ठवर्चस् (सं० त्रि०) श्रेष्ठ वर्चो यस्य। प्रशस्ततेजस्क, प्रशस्त तेजोयुक्त। (ऋक् ५।६५।२)

श्रेष्ठवाच् (सं० त्रि०) श्रेष्ठा वाक् यस्य । श्रेष्ठवाक्य-युक्त, उत्तम वाक्यविशिष्ट । (रामायण २।७६।१)

श्रेष्ठवृक्ष (सं० पु०) १ वरुणवृक्ष । २ कृष्णागुरु वृक्ष, काला अगरका पेड़ ।

श्रेष्ठवेधिका (सं० स्त्री०) कस्तूरी, मृगनाभि ।

श्रेष्ठव्रीहि (सं० पु०) षष्टिक शालि, साठी धान ।

श्रेष्ठशाक (सं० क्ली०) वरपोत शाक ।

श्रेष्ठशोचिस् (सं० त्रि०) प्रशस्ततम तेजोयुक्त, अति तेजस्वी । (ऋक् ८।१९।४)

श्रेष्ठसेन (सं० पु०) काश्मीरका एक राजा । (राजतर० ३।९७)

श्रेष्ठा (सं० स्त्री०) श्रेष्ठ टाप् । १ स्थलपद्मिनी, स्थल पद्म । २ मेदा । ३ त्रिफला । (वाभट चि० १२ अ०) ४ बहुत उत्तमा स्त्री ।

श्रेष्ठाम्बु (सं० क्ली०) १ तण्डुलोदक । (वाभट उ० ३७ अ) २ श्रेष्ठ जल, उत्तम जल ।

श्रेष्ठाम्ल (सं० क्ली०) श्रेष्ठं अम्लं । वृक्षाम्ल ।

श्रेष्ठाश्रम (सं० पु०) श्रेष्ठः आश्रमः । गृहस्थाश्रम । इस आश्रमके लोग दूसरे आश्रमियोंका पालन करते हैं, इसीसे गृहस्थाश्रम श्रेष्ठाश्रम है ।

श्रेष्ठिन् (सं० पु०) श्रेष्ठं धनादिकमस्त्यस्येति इनि । व्यापारियों या वणिकोंका मुखिया, प्रतिष्ठित व्यवसायी, महाजन ।

श्रेष्ठ्य (सं० क्ली०) श्रेष्ठ । (अथर्व १।९।३)

श्रोण (सं० पु०) श्रोणतीति श्रोण संघाते अच् यद्वा शृणोतीति श्रो श्रवणे बाहुलकात् न । पंगु, खञ्ज ।

श्रोणकोटिकर्ण (सं० पु०) बौद्धयतिभेद ।

श्रोणकोटिविंश (सं० पु०) बौद्धयतिभेद ।

श्रोणा (सं० स्त्री०) श्रोण संघाते अच्-टाप् । १ श्रवणा नक्षत्र । (भाग० ८।१८।५) २ काञ्जि, भातका मांड । (त्रि०) ३ पक, पका हुआ या सिद्ध ।

श्रोणापरान्त (सं० क्ली०) जनपदभेद ।

श्रोणि (सं० स्त्री०) श्रोण संघाते इन्, यद्वा श्रु श्रवणे यद्वा (वहि श्रु श्रुणिति । उण् ४।५१) इति णि । १ कटि देश, कमर । २ नितम्ब, चूतड़ । ३ पथ, मार्ग । ४ यज्ञकी वेदिका किनारा ।

श्रोणिकपाल (सं० क्ली०) जङ्घास्थि । (शतपथब्रा० १२।२)

श्रोणिका (सं० स्त्री०) नितंब, चूतड़ । (पञ्चरत्न २।५।२८)

श्रोणितस् (सं० अव्य०) कटि या कमरसे । (शुक्लयजु० २१।४३)

श्रोणिप्रतोदिन् (सं० त्रि०) पीछेसे पीड़ा करनेवाला । (अथर्व ८।६।१२)

श्रोणिफल (सं० क्ली०) श्रोणिः फलं फलकमिव । कटिदेश, मध्यभाग ।

श्रोणिफलक (सं० क्ली०) श्रोणिफल स्वार्थे कन् । कटि-पार्श्व । पर्याय—ककुद्म ।

श्रोणिबिम्ब (सं० क्ली०) कटिसूत्र, करधनी ।

श्रोणिवेध (सं० पु०) गोत्रप्रवर्त्तक एक ऋषिका नाम ।

श्रोणिसूत्र (सं० क्ली०) श्रोणिस्थितं सूत्रं । १ खड्ग-बन्धनसूत्र, परतला । २ कटिबन्धनसूत्र, करधनी ।

श्रोणी (सं० स्त्री०) श्रोणि वा ङीप् । १ कटि, कमर । २ पथ, मार्ग । ३ नितम्ब, चूतड़ । ४ कटिप्रदेश, मध्य-भाग ।

श्रोणीका (सं० स्त्री०) नितंब, चूतड़ । (पञ्चरत्न १।१०।६०)

श्रोणीफल (सं० क्ली०) कटिदेश, मध्यभाग ।

श्रोण्य (सं० पु०) गोत्रप्रवर्त्तक एक ऋषिका नाम ।

श्रोतः आपत्ति (सं० स्त्री०) बौद्धशास्त्रके अनुसार मुक्ति या निर्वाणसाधनाकी प्रथम अवस्था जिसमें बंधन ढीले होने लगते हैं । बौद्धशास्त्रमें पांच प्रतिबन्ध माने गये हैं—आलस्य, हिंसा, काम, विचिकित्सा और मोह । श्रोतःआपन्नको ये पांचों बन्धन छोड़ते तो नहीं पर क्रमशः ढीले होते जाते हैं । इस अवस्थाको प्राप्त साधक को केवल सात बार और जन्म लेना पड़ता है । इस अवस्थाके उपरान्त 'सकृदागामी' की अवस्था है जिसमें प्रथम तीन बंधन सर्वथा छूट जाते हैं और एक ही जन्म और लेना रह जाता है ।

श्रोतः आपन्न (सं० त्रि०) बौद्धशास्त्रके अनुसार मुक्ति या निर्वाणकी साधनामें प्रथम अवस्थाको प्राप्त जिसमें क्रमशः बंधन ढीले होने लगते हैं ।

श्रोतक (सं० त्रि०) १ श्रवणीय, सुनने योग्य । २ जिसे सुनना हो ।

श्रोतव्य (सं० त्रि०) श्रु-तव्य । श्रवणीय, सुनने योग्य ।

श्रोतस् (सं० क्ली०) श्रो असुन् तुट् च। १ कर्ण, कान। २ नदीका वेग। ३ इन्द्रिय।

श्रोतुराति (सं० त्रि०) सब जगह श्रूयमाण धनशाली जिसके धनका विषय सब जगह सुना जाय, प्रसिद्ध धनी। (ऋक् १।१२२।८)

श्रोतृ (सं० त्रि०) शृणोतीति श्रु-तृच्। १ श्रवणकर्त्ता, सुननेवाला। २ कथा या उपदेश सुननेवाला।

श्रोत्र (सं० क्ली०) श्रूयतेऽनेनेति श्रु (हु या मा श्रु भसिभ्य स्त्रन्। उण् ४।१६७) इति त्रन्। १ कर्ण, कान। २ वेदज्ञान।

श्रोत्रकाम्ना (सं० स्त्री०) एक पौधा जो औषधके काममें आता है।

श्रोत्रज्ञ (सं० त्रि०) श्रोत्र ज्ञा क। १ श्रवणपटु। २ श्रोत्र विषयमें अभिज्ञ।

श्रोत्रज्ञता (सं० स्त्री०) श्रोत्रज्ञस्य भाव तल टाप्। श्रोत्रज्ञका भाव या धर्म, श्रवणेन्द्रिय, श्रवण।

श्रोत्रतस् (सं० अव्य०) श्रोत्र तसिल्। श्रोत्रसे, श्रोत्र-विषयमें।

श्रोत्रता (सं० स्त्री०) श्रोत्रस्य भाव तल टाप्। श्रोत्रका भाव या धर्म, श्रवण।

श्रोत्रनेत्रमय (सं० त्रि०) श्रोत्रनेत्रस्वरूपे मयट्। श्रोत्र और नेत्रस्वरूप।

श्रोत्रपति (सं० पु०) श्रोत्रेन्द्रियाधिपति।

श्रोत्रपदवी (सं० स्त्री०) श्रोत्रस्य पदवी पन्थाः। श्रोत्र पथ।

श्रोत्रपा (सं० त्रि०) श्रोत्रं पाति रक्षति पा विच्। श्रोत्ररक्षक, श्रोत्रेन्द्रियरक्षक।

श्रोत्रपालि (सं० पु०) कर्णपालि।

श्रोत्रपटु (सं० पु०) श्रोत्रे श्रवणविषये पटुः। श्रवणशक्ति पटु, श्रवणपटु, श्रवणकुशल।

श्रोत्रपेय (सं० त्रि०) सम्मानके साथ जो सुना गया हो।

श्रोत्रभिद् (सं० त्रि०) कर्णभेदकारी, कान छेदनेवाला।

श्रोत्रभुज् (सं० स्त्री०) हिक्का-व्याधिभेद।

श्रोत्रमय (सं० त्रि०) श्रोत्र स्वरूपे मयट्। श्रोत्रस्वरूप।

श्रोत्रमार्ग (सं० पु०) श्रोत्रस्य मार्गः। श्रवणमार्ग श्रवण पथ।

श्रोत्रमूल (सं० क्ली०) श्रोत्रस्य मूल। श्रवणमूल, कर्ण-मूल।

श्रोत्रवत् (सं० त्रि०) श्रोत्र अस्त्यर्थे मतुप् मस्य वः। श्रोत्रविशिष्ट, श्रवणशक्तिविशिष्ट।

श्रोत्रवादिन् (सं० त्रि०) १ इच्छुक। २ प्रशस्तमना।

श्रोत्रहीन् (सं० त्रि०) श्रोत्रसम्पन्न।

श्रोत्रहीन (सं० त्रि०) श्रोत्रेण हीन। श्रोत्ररहित, श्रवणशक्तिहीन, बहिरा।

श्रोत्रिय (सं० पु०) छन्दोऽधीते इति छन्दस् (श्रोत्रियश्छन्दोऽधीते। पा ४।२।८४) इति घन् प्रत्ययेन साधुः। १ वेदविद्ब्राह्मण।

जिससे धर्म और अधर्म जाना जाता है, उसे श्रोत्र कहते हैं। वेदसे धर्माधर्मका विषय ज्ञात होता है इस कारण वेदका नाम श्रोत्र है। यह वेद जो अध्ययन करते या जानते हैं, वे ही श्रोत्रिय हैं।

"जन्मना ब्राह्मणो ज्ञेयः संस्कारैर्द्विज उच्यते।
वेदाभ्यासी भवेद्विप्रः श्रोत्रियस्त्रिभिरेव हि॥"

(पद्मपु० उत्तरख० ११६ अ०)

जन्म द्वारा ब्राह्मण अर्थात् ब्राह्मण पिताके औरस और ब्राह्मणी माताके गर्भसे उत्पन्न सन्तान ब्राह्मण है। उनका यथाविधान उपनयनादि संस्कार होनेसे वे द्विज हुए। अनन्तर गुरुके घर नियमानुसार वेदाभ्यास करनेके बाद वे विप्र कहलाते। जन्म, संस्कार और वेदाभ्यास ये तीनों गुण जिनमें हैं, वे ही श्रोत्रिय हैं।

"एकां शाखां सकल्पां वा षड्भिरङ्गैरधीत्य च।
षट्कर्मनिरतो विप्रः श्रोत्रियो नाम धर्मवित्॥"

(दानकमलाकर)

जो ब्राह्मण ६ अङ्गोंके साथ समस्त एक शाखा और षट्कर्ममें निरत रहते हैं, उन्हें श्रोत्रिय कहते हैं।

२ गौडवासी जो सब ब्राह्मण कुलीन न समझे जाते हैं वे ही श्रोत्रिय हैं। शुद्ध, साध्य और कष्टश्रोत्रिय श्रोत्रिय तीन प्रकारका है। कुलीन शब्द देखो।

श्रोत्रियता (सं० स्त्री०) श्रोत्रियस्य भावः तल् टाप्। श्रोत्रिय धर्म। पर्याय—श्रोत। (त्रिका०)

श्रोत्रियत्व (सं० क्ली०) श्रोत्रिय भावे त्व। श्रोत्रियता।

श्रोतियसात् (सं० अव्य०) श्रोतियको देय, वेदविद् ब्राह्मणको जो दिया जाय।

श्रोती (हिं० पु०) श्रोत्रिय देखो।

श्रोतेन्द्रिय (सं० क्ली०) श्रावणेन्द्रिय।

श्रोमत (सं० क्ली०) कीर्त्तिमत्त्व, कीर्त्तिमानका भाव या धर्म। (ऋक् १।१८१।७)

श्रौत (सं० क्ली०) श्रुतौ भवं श्रुति-अण्। १ अग्नित्रय, तीन प्रकारकी अग्नि—गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिण। श्रुतौ भवः श्रुति-अण्। २ श्रुतिविहित धर्मादि। धर्म दो प्रकारका है,—श्रौत और स्मार्त्त। वेदविहित जो सब धर्म हैं, उसका नाम श्रौत; दान, अग्निहोत्र और यज्ञ ये सब श्रौत तथा वर्णाश्रम, आचार, यमनियम आदि स्मार्त्त अर्थात् स्मृतिविहित हैं। यही दो प्रकारका धर्म है। वैदिक यज्ञादि कर्म ही श्रौत कहलाता है।

श्रौतकर्म स्वयं करना चाहिए। यह कर्म करनेमें नितान्त असमर्थ होने पर दूसरेसे भी करा सकते हैं।

श्रौतऋषि (सं० पु०) ऋषिभेद, श्रौतर्षि।

श्रौतकक्ष (सं० क्ली०) साममेद। (पञ्च० ब्रा० ६।२७)

श्रौतवर्ण (सं० क्ली०) साममेद।

श्रौतर्ष (सं० पु०) श्रौतर्षिका गोत्रापत्य, देवभाग नामक ऋषि। (तैत्तिरीयब्रा० ३।१०।९।११)

श्रौतश्रव (सं० पु०) श्रौतश्रवाके अपत्य, शिशुपाल।

श्रौतसूत्र (सं० क्ली०) यज्ञादिके विधानवाले सूत्र। कल्प ग्रन्थका वह अंश जिसमें पौर्णमास्येष्टिसे ले कर अश्वमेध पर्यन्त यज्ञोंका विधान है। दो प्रकारके वैदिक सूत्रग्रन्थ मिलते हैं—श्रौतसूत्र और गृह्यसूत्र। श्रौतसूत्रोंमें यज्ञोंका विधान है। सूत्रकार कई हैं। जैसे,—आश्वलायन, आपस्तम्ब, कात्यायन, द्राह्यायण।

श्रौतहोम (सं० क्ली०) सामवेदका एक परिशिष्ट।

श्रौति (सं० पु०) श्रौत ऋषिका अपत्यादि। इनके वंशधर श्रौतीय कहलाते हैं।

श्रौत्र (सं० क्ली०) श्रोत्रमेव प्रज्ञादित्वादण्। १ कर्ण, कान। श्रोत्रियस्य भावः कर्म वा (हायनान्तयुवादिभ्योऽण्। पा ५।१।१३०) इत्यण्, 'श्रोत्रियस्य चलोपश्च वाच्यः' इति यलोपः। २ श्रोत्रियका भाव या कर्म पर्याय—श्रौत्रियता। (शब्दरत्ना०) श्रोत्रस्य भावः कर्म वा अण्। श्रौत्रकर्म। श्रोत्राणां समूहः (भिक्षादिभ्योऽण्। पा ४।२।३८) इति अण्। ४ श्रोत्रसमूह।

श्रौत्रकर्म (सं० पु०) वेदविहित यागादि कर्म, यज्ञ।

श्रौत्रजन्मन् (सं० पु०) द्विजोंका उपनयन संस्कार जिसमें वे वेदके अधिकारी हो कर द्वितीय जन्म प्राप्त करते हैं।

श्रौत्रियक (सं० क्ली०) श्रोत्रियस्य भावः कर्म वा (द्वन्द्वमनोज्ञादिभ्यश्च। पा ५।१।१३३) इति वुञ्। श्रोत्रियका भाव या कर्म।

श्रौमत (सं० पु०) श्रुमतका गोत्रापत्य।

श्रौमत्य (सं० पु०) श्रौमत स्वार्थे ष्यञ्। श्रुमतका अपत्य।

श्रौषट् (सं० अव्य०) १ देवहविर्दान। देवताओंके उद्देश्यसे हविर्दान किये जाने पर इस मन्त्रसे देना होता है। २ श्रवण या श्रोता। (ऋक् १।१३९।१)

श्रौष्ठ (सं० क्ली०) साममेद।

श्रौष्ठी (सं० त्रि०) क्षिप्रगामी, तेजीसे जानेवाला।

श्रौष्ठीगव (सं० क्ली०) साममेद।

श्रौष्ठीय (सं० क्ली०) साममेद।

श्र्याह्व (सं० क्ली०) श्रिय आह्वा यस्य। पद्म, कमल।

श्लक्ष्ण (सं० त्रि०) श्लिष-आलिङ्गने। (श्लिषेरच्चोपधायाः। उण ३।१९) इति क्स्नः, अकारश्चोपधायाः। १ अल्प, थोड़ा। २ सूक्ष्म, कृश। ३ स्निग्ध। ४ चिकण। ५ मनोहर।

श्लक्ष्णक (सं० त्रि०) श्लक्ष्णमेव स्वार्थे कन्। १ मनोहर। २ श्लक्ष्ण देखो। (क्ली०) पूगीफल, सुपारी।

श्लक्ष्णता (सं० स्त्री०) श्लक्ष्णस्य भावः तल् टाप्। श्लक्ष्णत्व, श्लक्ष्णका भाव या धर्म।

श्लक्ष्णत्वच् (सं० पु०) श्लक्ष्णा मनोहरा त्वक् यस्य। १ अश्मन्तकवृक्ष। २ सुन्दर वल्कल।

श्लक्ष्णन (सं० क्ली०) मसृण।

श्लथ (सं० त्रि०) श्लथयतीति श्लथ-अच्। १ शिथिल, ढीला। २ दुर्बल, अशक्त। ३ मन्द, धीमा। ४ न बंधा हुआ, छूटा हुआ।

श्लथत्व (सं० क्ली०) श्लथस्य भावः तल् टाप्। श्लथका भाव या धर्म, शैथिल्य, ढीलापन।

श्लथबन्धन (सं० त्रि०) जिसके बन्धन ढीले हो गये हों।
श्लथराम (सं० पु०) अर्हद्भेद। (तारनाथ)
श्लथण (सं० त्रि०) श्रवण। (पञ्चवि ब्रा० २१।१४।१६)
श्लाइलभारिक (सं० त्रि०) श्लक्ष्ण भारवहन या हरण कारी।
श्लाक्ष्णिक (सं० त्रि०) १ सुन्दररूपमें पाठकारी या छात्र। २ श्लक्ष्ण वहनकारी। (पा ४।१।४०)
श्लाघन (सं० त्रि०) श्लाघते इति श्लाघ-ल्यु। १ श्लाघा कारी, अपनी प्रशंसा करनेवाला। (क्ली०) श्लाघ ल्युट्। २ श्लाघा, अपनी प्रशंसा करना, डींग हांकना
श्लाघनीय (सं० त्रि०) श्लाघ अनीयर्। १ श्लाघाके योग्य, तारीफके लायक। २ श्रेष्ठ, उत्तम।
श्लाघनीयता (सं० स्त्री०) श्लाघनीयस्य भाव तल् टाप्। श्लाघनीयका भाव या धर्म, श्लाघा।
श्लाघा (सं० स्त्री०) श्लाघ करणे अ टाप्। १ प्रशंसा तारीफ। २ स्तुति, बड़ाई। ३ खुशामद, चापलूसी। ४ इच्छा, चाह। ५ आज्ञा पालन।
श्लाघित (सं० त्रि०) १ प्रशंसित, जिसकी तारीफ हुई हो। २ श्रेष्ठ उत्तम, अच्छा।
श्लाघ्य (सं० त्रि०) श्लाघ ण्यत्। १ श्लाघनीय, प्रशंस्य सराहने योग्य। २ श्रेष्ठ, अच्छा।
श्लाघ्यता (सं० स्त्री०) श्लाघ्यस्य भाव तल् टाप्। श्लाघ्यका भाव या धर्म, श्लाघा।
श्लिकु (सं० क्ली०) श्लिष्यति प्रहाद्यानिति श्लिष (श्लिषेः कश्च। उण् १।३३) इति कु ककारश्चान्तादेश १ ज्योतिःशास्त्र। २ भृत्य। ३ विट्ग, लपट।
श्लिषा (सं० स्त्री०) १ आलिङ्गन, परिरम्भण। २ संयुक्त होना, मिलना।
श्लिष्ट (सं० त्रि०) श्लिष क्त। १ श्लेषयुक्त अर्थ, जिसके दोहरे अर्थ हों। इसका लक्षण—

"श्लिष्टमिष्टमविस्पष्टमेकरूपान्वितं वचः।"

(सरस्वतीकण्ठाभरण)

अभिलषित अथच अविस्पष्ट एकरूपान्वित वाक्य को श्लिष्ट कहते हैं। एककी निन्दा करनी होगी, किन्तु श्लेष द्वारा कहना होगा, वहाँ पर एक ऐसे वाक्यका प्रयोग करना होगा जिससे विस्पष्टभावमें समझ न सकें फिर भी अन्तमें अभीष्ट विषयका प्रकाश हो, ऐसा ही पद श्लिष्ट है। श्लेष शब्द देखो।

२ संसृष्ट, मिला हुआ, सटा हुआ, एकमें जुड़ा हुआ। ३ संयुत, अच्छी तरह जमा हुआ, चिपका हुआ। ४ आलिङ्गित, भेंटा हुआ।
श्लिष्टरूपक (सं० क्ली०) रूपकालङ्कारभेद। जहां श्लिष्ट शब्द द्वारा रूपकालङ्कार होता है, वहां यह अलङ्कार होता है।
श्लिष्टवर्त्मन् (सं० पु०) अक्लिन्न वर्त्म, परिष्कार पथ।
श्लिष्टाक्षेप (सं० पु०) आक्षेपालङ्कारविशेष।

जहां श्लिष्टपद प्रयोग द्वारा आक्षेप होता है वहां यह अलङ्कार होगा।

अमृतस्वरूप पद्मसदृश स्निग्ध तारकायुक्त मुखरूप चन्द्रके विद्यमान रहते दूसरे चन्द्रका फिर प्रयोजन ही क्या? यहां मुख्यचन्द्रके गुणों का मुखचन्द्रमें उसी रूपमें वर्णन कर मुख्यचन्द्र आक्षिप्त निष्प्रयोजनरूपमें प्रतिषिद्ध हुआ है। ऐसे श्लिष्टपद द्वारा जहां आक्षेप अर्थात् निष्प्रयोजनरूपमें प्रतिषेध होता है वहां यह अलङ्कार होगा।
श्लिष्टि (सं० पु०) १ ध्रुवके एक पुत्रका नाम। (स्त्री०) २ जोड़, मिलान, लगाव। ३ आलिङ्गन परिरम्भण।
श्लिष्टोक्ति (सं० स्त्री०) श्लिष्ट उक्ति। श्लेषयुक्त वाक्य कथन।
श्लीपद (सं० क्ली०) श्रीयुक्तं वृद्धिमत् पदमत्र ति पृषो दरादित्वात् साधु। स्फीतपादादि रोग फीलपेका रोग, फीलपाव। पर्याय—पादवल्मीक।

भावप्रकाशमें लिखा है कि जिस देशकी भूमि बहुत नीची है और इस कारण जल वहां सूख सकता तथा यह जमीन सर्वदा उस मन्दद जलसे ढकी रहती है और जहां सूर्यकिरणकी अल्पताके कारण जल बिल्कुल नहीं सूखता उन सब स्थानोंमें श्लीपद रोग अधिक होता है।

इसकी चिकित्सा—उपवास, प्रलेप, स्वेद, विरेचन, रक्तमोक्षण और कफघ्न औषध द्वारा श्लीपद रोगकी चिकित्सा करनी होती है। सफेद सरसों, सहिजन, देवदारु और सोंठ, इनका समान भाग ले कर गोमूत्र

द्वारा पीस कर प्रलेप देनेसे श्लीपद प्रशमित होता है।

शाखोट वृक्षके वल्कलसे क्वाथ तैयार कर गोमूत्रके साथ पान करनेसे श्लीपद रोग विनष्ट होता है। कच्ची हल्दी और गुड़, दोनों मिला कर २ तोला, गोमूत्रके साथ पान करनेसे अथवा पुनर्णवा, त्रिफला और पिप्पली चूर्ण, इनका समान भाग मधुके साथ चाटनेसे बहुत दिनोंका श्लीपद रोग दूर होता है। सैरेण्डके तेलमें हर्रे को सिद्ध कर गोमूत्रके साथ पान करनेसे ७ दिनमें श्लीपद विनष्ट होता है। (भावप्रका॰ श्लीपदरोगाधि॰)

इस रोगमें मदनादिलेप, कणादिचूर्ण, पिप्पल्यादि चूर्ण, वृद्धदारकादि चूर्ण, कृष्णादि मोदक, नित्यानन्द रस, श्लीपदारि, श्लीपदगजकेशरी, सौमेश्वरघृत और विडङ्गादि तैल विशेष उपकारी हैं।

श्लीपदगजकेशरी (सं॰ पु॰) श्लीपदरोगाधिकारोक्त औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—त्रिकटु, विष, यमानी, पारद, गंधक, चितामूल, मैनसिल, सोहागा, जमालगोटा, इनके समान भागको भीमराज, गोक्षुर, जम्बीर और अदरकके रसमें मर्दन कर १ रत्तीकी गोली बनावे। अनुपान उष्ण जल है। इस औषधका सेवन करनेसे श्लीपद और प्लीहारोग दूर होते हैं। (भैषज्यरत्ना॰)

श्लीपदप्रभव (सं॰ पु॰) श्लीपदस्य प्रभवतीति प्र भू अच्। आम्रवृक्ष, आमका पेड़।

श्लीपदापह (सं॰ पु॰) श्लीपदं अपहन्तीति हन-ड। पुत्र जीव वृक्ष।

श्लीपदारि (सं॰ पु॰) औषधविशेष। नीमकी जड़की छाल और खैर समभाग मिला कर गोमूत्र और मधुके साथ १ तोला परिमाणमें खानेसे श्लीपदरोग शान्त होता है।

श्लीपदिन् (सं॰ पु॰) श्लीपद अस्त्यर्थे इनि। श्लीपदरोगी, जिसको श्लीपदरोग हो गया हो।

"आचारहीनः क्लीबश्च नित्यं याचनकस्तथा।

कृषिजीवी श्लीपदी च साद्भिर्निन्दित एव च ॥"

(मनु ३।१६५)

श्लील (सं॰ त्रि॰) श्रीविद्यतेऽस्येति श्री-लच्, रस्य ल। १ उत्तम, नफीस, जो भद्दा न हो। २ मङ्गलदायक, शुभ।

श्लेष (सं॰ पु॰) श्लिष-घञ्। १ संयोग, जोड़, मिलान। २ दाह। ३ आलिङ्गन, भेंटना। श्लिष्यतीति श्लिष-ण (श्याद्व्यधास्रु संस्रिवतीति। पा ३।१।१४१) ४ शब्दालङ्कार विशेष। जहां दो या अनेक अर्थवाहित पद हों या अनेक अर्थोंमें प्रयुक्त हो सकते हों, वहां श्लेष अलङ्कार होता है। यह अलङ्कार वर्णश्लेष, प्रत्ययश्लेष, लिङ्गश्लेष, प्रकृतिश्लेष, पदश्लेष, विभक्तिश्लेष वचनश्लेष और भाषाश्लेषके भेदसे आठ प्रकारका है। उनमें फिर धातु और प्रतिपादिक भेदसे प्रकृतिश्लेष दो भागोंमें तथा सुबन्त और तिङन्त भेदसे पदश्लेष दो भागोंमें विभक्त होनेके कारण यह कुल दस भागोंमें विभक्त हुआ है। इसके फिर सभङ्ग, अभङ्ग और सभङ्गाभङ्ग, ये तीन प्रकारके भेद देखे जाते हैं। विस्तार हो जानेके भयसे इनका विवरण यहां पर नहीं दिया गया।

श्लेषक (सं॰ त्रि॰) मिलानेवाला, जोड़नेवाला।

श्लेषण (सं॰ क्ली॰) १ संयुक्त करना, मिलाना, जोड़ना। २ आलिङ्गन, परिरम्भण।

श्लेषभिद्ग (सं॰ त्रि॰) संश्लिष्टता नाश, संश्लेषनाश।

श्लेषा (सं॰ स्त्री॰) आलिङ्गन, भेंटना।

श्लेषार्थ (सं॰ पु॰) स्तुतिनिन्दावाद।

श्लेषोपमा (सं॰ स्त्री॰) एक अलंकार जिसमें ऐसे श्लिष्ट शब्दोंका प्रयोग होता है जिनके उपमेय और उपमान दोनोंमें लग जाते हैं।

श्लेष्मक (सं॰ पु॰) श्लेष्म एव स्वार्थे कन्। कफ।

श्लेष्मघ्न (सं॰ त्रि॰) श्लेष्माणं हन्तीति हन टक्। श्लेष्मनाशक।

श्लेष्मघ्ना (सं॰ स्त्री॰) १ त्रिपुर मल्लिका। २ केतकी, केवड़ा। ३ महाज्योतिष्मतीलता। ४ त्रिकटु तीन कड़वे मसाले।

श्लेष्मघ्नी (सं॰ स्त्री॰) श्लेष्मघ्न-टित्वात् ङीप्। श्लेष्मघ्ना देखो।

श्लेष्मज्वर (सं॰ पु॰) कफ जन्य ज्वर। श्लेष्माके बढ़नेसे जो ज्वर होता है उसे श्लेष्मज्वर कहते हैं। इसका लक्षण—श्लेष्मवर्द्धक आहार और विहार द्वारा वर्द्धित कफ आमाशयमें जा कर कोष्ठस्थित अग्निको बाहर फेंक देता है तथा रसको दूषित कर ज्वर लाता है।

यह ज्वर होनेके पहले अन्नमें अरुचि होती है तथा इस ज्वरमें शरीर आर्द्र वस्त्र द्वारा आच्छादितकी तरह मालूम होता और ज्वर थोड़ा रहता है। इसमें आलस्य,

मुंह मीठा, मल, मूत्र और चक्षुकी शुक्लता, शरीर की स्तब्धता, परिपूर्ण भोजनकी तरह तृप्तिबोध, अङ्ग का गुरुत्व, शीतबोध, चिपचिपा, रोमाञ्च, निद्राधिक्य, प्रतिश्याय अरुचि और काम होता है तथा मुंह और नाकसे स्राव पीडिका, शोथ, वमि, तन्द्रा उष्णाभिलाप, कफ कर्तृक हृदयका अवरोध और अग्निमान्द्य भी होता है। (भावप्र० ज्वररोगाधि०)

विशेष विवरण ज्वर शब्दमें देखो।

श्लेष्मण (सं० त्रि०) श्लेष्मा अस्त्यस्येति श्लेष्मन् लोमादि पामादि पिच्छादिभ्यः शनेल च। पा ५।२।१००) इति न। १ कफप्रकृतिवाला, कफवाला। (पु०) २ कफ।

श्लेष्मणा (सं० स्त्री०) एक पौधा।

श्लेष्मधरा (सं० स्त्री०) चतुर्थ कला। "या सर्वसन्धिषु प्राणभृतां भवति सेत्युच्यते।" (सुश्रुत शरीर ४ अ०)

श्लेष्मन् (सं० पु०) श्लिष मनिन् (उण् ४।१४४) कफ। इसके द्वारा शरीरके समा उदककर्म सम्पादित होते हैं। नीचे इसका आमूल वृत्तान्त दिया जाता है।

श्लेष्माकी उत्पत्तिका विवरण—जिस प्रकार बाह्य अग्नि और जल बरतनके चावलको अन्नरूपमें पाक करता है उसी प्रकार आमाशयकी अधःस्थित अग्नि अर्थात् तन्निम्नवर्ती पच्यमान आमाशयके पाचक नामक पित्तकी उष्मा और आमाशयकी क्लेदक नामक श्लेष्मा उस आमाशय या पाकस्थलीस्थ भुक्त अन्नको परिपाक करती है। इस परिपाकके आरम्भमें मधुरादि छः रस विशिष्ट भुक्तान्नके मधुर भावसे जो फेन जैसा पदार्थ उत्पन्न होता है वही श्लेष्मा या कफ कहलाता है।

श्लेष्माके कार्यादि—उक्त प्रकारसे आमाशयमें उत्पन्न श्लेष्मा वहां रह कर ही नद नदी आदि सावयवमें समुद्र की तरह अपनी शक्ति द्वारा शरीरके अन्यान्य श्लेष्म स्थानको उदककर्मके साथ अर्थात् जलांश वितरण द्वारा पोषण करती है। यह वहांसे वक्षमें जा कर त्रिक अर्थात् स्कन्धास्थिद्वय और मेरुदण्ड, इन तीन सन्धि स्थानोंका धारण करती है तथा अन्नरसके साथ मिश्रित हो आत्म वीर्य द्वारा हृदयको अवलम्बन कर उसे तृप्त रखता है। यह जिह्वामूल और कण्ठमें रह कर रसनेन्द्रियका सौम्यत्व साधन करती और सम्यक् रसज्ञानका कारण बनती है। इसी प्रकार मस्तकगत श्लेष्मा स्नेहन और सन्तर्पण कर्म द्वारा अपने बलसे इन्द्रियोंका पोषण करती है। फिर जब यह सन्धियोंमें जाती है तब उनका संश्लेषण कार्य सम्पन्न करती है अर्थात् चक्रका नाभिप्रदेश स्नेहाक्त होनेसे जिस प्रकार वह निरुपद्रवसे स्वच्छन्दतापूर्वक चालित होता है उसी प्रकार सभी सन्धिस्थानगत श्लेष्मा उन्हें सर्वदा सन्तर्पित करती रहती है जिससे उन सन्धियोंके सर्वदा अपने कार्यमें नियुक्त रहने पर भी कभी किसी प्रकारका व्यतिक्रम नहीं होता। वे आसानी से अपना अपना कार्य कर सकती हैं।

वाग्भटमें लिखा है, कि श्लेष्म द्वारा निम्नोक्त कार्य सम्पन्न होते हैं, यथा—स्निग्धता कठिनता अर्थात् श्लेष्म जन्य शोथ या व्रणशोथादि वातादि जन्यकी अपेक्षा अत्यन्त कठिन हो जाता है। कण्डु, शैत्य गुरुत्व अर्थात शरीरमें श्लेष्माधिक्य होनेसे वह अत्यन्त भारी मालूम पड़ता है स्रोतोविबद्धता, अस्थ्यादिकी उपलिप्तता अर्थात् श्लेष्माके इस कार्य द्वारा अस्थि आदि का शुष्क भाव नहीं होता। स्तैमित्य अर्थात् वस्त्रावृतवत् मालूम होना, शरीरमें श्वेतवर्णकारिता मुखमें मधुर और लवणरसत्व, चिरकारिता अर्थात् श्लेष्मजन्य चाहे जो कोई रोग क्यों न हो, वह आरम्भसे वातादि जन्यापेक्षा अति दीर्घकालमें पूर्णता और ह्रासताको प्राप्त होता है।

चरकमें श्लेष्माके लक्षण और तत्प्रकृतिक व्यक्ति का विषय इस प्रकार लिखा है यथा—श्लेष्माकी स्निग्धताके कारण श्लेष्मल व्यक्तिगण स्निग्धाङ्ग, श्लक्ष्णताके कारण मसृण देहयुक्त, मृदुताके कारण कोमल और श्वेत वर्ण, मधुरताके कारण प्रभूत शुक्रशाली, बहु मैथुनक्षम और अनेक सन्तानवान्, सारत्वके कारण बहुसारात्मक संहतावयव और दृढ़काय, सान्द्रत्वके कारण उनके सभी अङ्ग परिपुष्ट और सम्पूर्णावयव होते हैं, मन्दता प्रयुक्त उनका कार्य और आहार विहार धीरे धीरे होता है, स्तैमित्य प्रयुक्त उनका आरम्भ अर्थात् कायमनोवाक्यका प्रवर्त्तन, मनकी क्षुब्धता और सभी रोग विलम्बसे उत्पन्न होते हैं। गुरुत्व रहनेसे इनकी प्रकृतिकी गति असङ्कलित और अधिष्ठित होती है।

(अर्थात् वे पदतलके सर्वांश द्वारा भूमिस्पर्श कर चलते हैं) शैत्यगुण रहनेसे उन्हें क्षुधा, तृष्णा, सन्ताप, स्वेद और दोषका भाग थोड़ा होता है, पिच्छिलताके कारण उनके सन्धिस्थान सुसंयुक्त और स्नायुबन्धन विशिष्ट तथा निर्मलताके कारण उनकी मुखकान्ति, कण्ठस्वर और गात्रवर्ण परिष्कार और स्निग्ध होते हैं। ये सब गुण होनेसे श्लेष्म प्रकृतिके मनुष्य बलवान्, धनवान्, विद्यावान्, ओजस्वी, शान्त और दीर्घायु होते हैं।

दूसरे ग्रन्थमें लिखा है, कि श्लेष्म-प्रकृतिवाले स्थूलाङ्ग, गम्भीर बुद्धिविशिष्ट, चिकने केशवाले, अत्यन्त बलवान् और स्वप्नमें जलाशयदर्शी होते हैं।

श्लेष्मप्रकोपहेतु—गुरुपाक, मधुररसयुक्त और अतिशय स्नेहाक्त पदार्थ, दुग्ध, इक्षुजात भक्ष्यद्रव्य, द्रवद्रव्य, दधि, दिवानिद्रा, पूपादि पिष्टकान्न, घृतपूर अर्थात् चन्द्रपुली, हिम, शिशिर और वसन्तकाल तथा दिनको तीन भाग करके उसका प्रथम भाग और भोजनका परवर्त्ति काल, ये सब श्लेष्मप्रकोपके कारण कहे गये हैं।

श्लेष्मवर्द्धक द्रव्य और हेतु—भोजनके बाद स्नान, प्यास नहीं रहने पर जलपान तिलतैल, शैत्यगुणकारक प्रसुनतैल, स्निग्धद्रव्य, आमलकी रस पर्युषितान्न, तक्र, पक्वरम्भाफल, दधि, मायाफलरस, शर्कराजल, आर्द्रस्थानमें अवस्थान, नारिकेलोदक, अतैलस्नान, पर्युषित जल, सुपक्व कर्कटी फल, वर्षाकालमें अवगाहनस्नान और वृहत्मूलक, इसका रस ब्रह्मरन्ध्रमें देनेसे अत्यन्त वीर्यनाशक होता है।

अन्य प्रकार—एरण्डतैल, अनूपदेशजल, वर्षाकालोत्पन्न पानीय, कर्दमाक्त जल, सामान्य शालिधान्य, माष, तीसी, तन धान्य, मधुर द्रव्य, नारीच शाक, दध्रुट शाक, कलम्बी शाक, पोईका शाक, मध्यमकुष्माण्डफल, लौकी, तरबूज, छोटा तरबूज, धुन्दुल, अलावूनाडिका, पिण्डालु, छत्रिका शाक (अर्थात् गोबर, गीली जगह और बांस आदिमें उत्पन्न छत्राकार द्रव्य, वह यदि कीचड़ युक्त स्थानमें उत्पन्न हो तो और भी श्लेष्मवर्द्धक होता है।) सौंफ, श्लेष्मातक अर्थात् चालिता फल, कच्ची इमली, पक्का कटहल और उसका बीज, पक्का केला, सभी प्रकारकी मछली, खास कर पाण्डु वर्णकी मछली, सड़ी मछली, लवणमें डुबोई मछली, बघारी मछली, शोलन मछली, विषैली मछली, हिलसा मछली, सिङ्गी मछली, छोटी भीगा मछली, बचवा मछली, गौरैया पक्षीका मांस, सभी प्रकारका दूध, विशेषतः कच्चा दूध, भेड़का दही, भैंसका दही, स्वादिष्ट दही, बहुत खट्टा दही, सभी प्रकारका घी, सभी प्रकारकी ईख, विशेषतः भीरु और कान्तार नामक ईख, अपक्व ईखका रस, ईखका गुड़, नये चावलका भात, क्युंड़ा, पकवान, पायस, पूरी, पक्वान्न, सुपारी, मधुररसविशिष्ट द्रव्यजात, अतिशय अल्प भोजन, लवणरस, शीतवीर्य द्रव्य, कुन्द, बन्धुक और यूथिका पुष्प, सभी जन्तुका मांस और मज्जा।

श्लेष्मनाशक द्रव्य—सर्षपतैल, अतिशय तैलमर्दन, उद्वर्त्तन, शैशिरजल, पोखरेका जल, झरनेका जल, नदीका जल, सामान्य गरम जल विशेषतः पादशेष उष्ण जल, पेषित वच और मुस्तक संयुक्त, जल द्वारा स्नान, अगुरु, कुंकुम, तेजपत्र, काकली, कस्तूर, दग्ध भूमिमें उत्पन्न धान, रोपा हुआ धान, जौ, श्यामाधान, कंगनीधान, कोदो धान, हस्तिश्यामाकधान्य, चीना धान्य, मूंग, वन मूंग, राजमाष, मसूर, चना, कुलथी, अरहर, नाना प्रकारकी शिवी, शुष्क नारीचपत्र शाक, हिलमोची शाक, शालञ्चीशाक, शुषणी शाक, पुनर्णवाशाक, कलाय शाक, ब्राह्मी शाक, आमरुली या नोनी शाक तथा पुष्प, पालङ्की, चनेका पत्ता, कौसुम्भ, पुरति और कासड़ा शाक, कदली मोचक, क्षुद्रवार्त्ताकु फल, दग्धवार्त्ताकु, पाटराङ्गाफल, करेला, कर्कोटफल, परोल और कुष्माण्डनाडिका, वेताग्र, ओल, घृत या तैल द्वारा सिद्धमूल, मूलक पुष्प, मकरन्द, मूलक बीज, आम्रपेशी, अम्लरस, अनार, मातुलुङ्गत्वक्, कागजी नीबू, जंबीर, छोटा बेर, सभी प्रकारका सूखा बेर, बड़ा अमरूद, सुनहरी, लवलीफल, जम्बूफल, पकी इमली, पक्रगाव, थैलक, महाशवदरक करुण अर्थात् कागजी नीबू, तालास्थिमज्जा, कच्चा बेल, सोंठ, आंवला और बहेड़ा तथा उनकी मज्जा, नत्यावर्त्त मत्स्य, कवजी मछली, पलं मछली, डनकोना मछली, त्रिकण्ठ मछली, बड़ी पोठिया मछली, कच्छप और पक्षीका अण्डा, हरिन, गैंडा, कपिञ्जल और वार्त्तिक पक्षी तथा कच्छपकी टांगका मांस, सुरामण्ड, अरिष्टमद्य, पुराना, नया और

प्रयास बक मधु, भेड़का दूध, ऊंटका दूध, गरम दूध, बकरीका दूध, दधनोका दही, दहीका पानी, दहीका छाली, मट्ठा, भेड़ और ऊंटका घी, पक्व ईखका रस, हिङ्गु, जीरक, वनमेथी, पुराना धनिया, हल्दी, यमानी, शुष्क पीपर, पक्व आर्द्र पिप्पली सोंठ, आर्द्रक, सरसों, सफेद सरसों, प्याज, दारचीनी तेजपत्र, यवक्षार, सज्जीक्षार, सोहागा, अनमण्ड भूना चावल, लावा, लाईका माड़ कच्चे जौका सत्तू, भुने जौका लाइ मूंगका जूस अनार और दाख संयुक्त मूंगका जूस, मसूरका रस, कुल्थीका जूस, खड़ और दालचीनीका जूस, शालि तण्डुलचूर्ण, ताम्बूलचूर्ण, खैर, इलायची जातीफल, कपूर, कटु तिक्त और कषाय रस, उष्णवीर्य द्रव्य, मालती और मल्लिकापुष्प, पद्मपुष्प, बकुल पुष्प, पुन्नाग पुष्प श्वेतपद्म, उत्पल पुष्प पाटल पुष्प, चम्पापुष्प, हालिशाक रस, बिल्वमूल, पाटला, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, परवल मूल, कण्टकारी, ग्वालककड़ी, लोध, भृङ्गराज, द्रोणपुष्पी, भिण्डी, वच, सिद्धिका पत्र और बीज, शाकहरिद्रा, सेमरा राजी, इलायची, रेणुका, भूर्जपत्र शाक, निशपथ, चिरायता, कूटजकी छाल, दुरालभा, कटुका, सुगन्धबला, कपार शृङ्गी, कायफल, कुट, अड़ूस, पद्मगुरुच पिपरामूल चई, गजपीपर, अकवन, धतूरा, सामान्य गुग्गुल, मधु और पुराना गुग्गुल, अरुण त्रिवृत्, सफेद नसोथ मैनसिल, सौराष्ट्र देशकी मिट्टी, तावा और कासा। (द्रव्यगुणप्रद)

श्लेष्मनाडी (सं० स्त्री०) स्तनमूलगत रोग, स्तननाली। इस रोगमें स्तनमूलमें वेदनाविशिष्ट शोथ उत्पन्न होता तथा कण्डू और दाल निकलती है। श्लेष्माके विगड़ जानेसे ही यह रोग उत्पन्न होता है। रातमें यह बढ़ जाता है।

श्लेष्मपाण्डु (सं० पु०) श्लेष्म जन्य पाण्डु रोग।

विशेष विवरण पाण्डुरोग शब्दमें देखो।

श्लेष्मप्रकृति (सं० त्रि०) श्लेष्मप्रधाना प्रकृतिर्यस्य। कफ प्रकृतिवाले मनुष्य। जिन सब मानवकी प्रकृति श्लेष्म प्रधान है, उन्हें श्लेष्मप्रकृति कहते हैं।

सुस्निग्ध वर्ण शुभनेत्र श्यामवर्ण, उत्तम पञ्चायुक्त दांत मल और रोमयुक्त, गम्भीर शब्दविशिष्ट, गाम्भीर्यदा, निद्रा और तन्द्राप्रिय नित्त, कटु और उष्ण भोगी, समासल अर्थात् मोटा ताजा, स्निग्ध रस प्रिय, शीत वायप्रिय, अति सहिष्णु, व्यायामशील और रतिलालसा विरत, ये सब लक्षण होनेसे उसे श्लेष्मप्रकृति कहते हैं।

श्लेष्मन् शब्द देखो।

श्लेष्मल (सं० त्रि०) श्लेष्मास्त्यस्येति श्लेष्मन् (सिध्मादिभ्यश्च। ५।२।९७) इति लच। १ श्लेष्मयुक्त, कफयुक्त, (पु०) २ बहुवार वृक्ष, लिसोड़ा।

श्लेष्मलफल (सं० पु०) बहुवार वृक्ष, लिसोड़ा।

श्लेष्मवत् (सं० त्रि०) श्लेष्मन् मतुप् मस्य व। श्लेष्म युक्त।

श्लेष्मविसर्प (सं० पु०) कफजन्य विसर्प।

श्लेष्मस्राव (सं० पु०) नेत्रसन्धिगत रोगविशेष। इस रोगमें नेत्रसन्धि गत नाड़ीसे श्वेतवर्ण, गाढ़ा और पिच्छिल स्राव निकलता है।

श्लेष्महन् (सं० पु०) श्लेष्माणं हन्तीति हन ड। १ कट्फल वृक्ष, कायफल। २ पनसवृक्ष, कटहलका पेड़। (त्रि०) ३ कफनाशक।

श्लेष्महन्त्री (सं० स्त्री०) देवदाली लता।

श्लेष्माट (सं० पु०) शेलु वृक्ष, लिसोड़ा।

श्लेष्मात (सं० पु०) श्लेष्माणमततीति अत अच्। श्लेष्मातक वृक्ष लिसोड़ा।

श्लेष्मातक (सं० पु०) श्लेष्मात एव स्वार्थे कन्। बहुवारक वृक्ष लिसोड़ा। मनुमें लिखा है, कि यह फल द्विजातिको नहीं खाना चाहिये।

श्लेष्मातकमय (सं० त्रि०) श्लेष्मातकसदृश।

श्लेष्मातकवन (सं० पु०) गोकर्णतीर्थके पासका जंगल। इसमें शिव एक बारहरिन वेशके रूपमें छिपे थे।

श्लेष्मान्तक (सं० पु०) श्लेष्मणा स्वरसपतनजनितफेन् अन्तयति नाशयतीति अन्त णिच् ण्वुल्। बहुवार, लिसोड़ा। पर्याय—पिच्छिल द्विजकुत्सित, शेलु शीतफल, शीत, उद्दालक, कर्बुदारक, भूतद्रुम, गन्धपुष्प। गुण—कटु, हिम, मधुर कषाय, स्वादु, पाचन, कृमि और शूल हर, आम अस्रदोष, मलदोष व्रणपीड़ा और विस्फोट शान्तिकारक।

माधवप्रकाशके मतसे विषघ्नी रक्ष, पित्त, कफ और अस्रनाशक। पक्वफलगुण—मधुर, स्निग्ध, श्लेष्मवर्द्धक, शीतल और गुरु।

श्लेष्माभिष्यन्द (सं० पु०) एक प्रकारका नेत्ररोग। इसका लक्षण—इस नेत्ररोगमें चक्षु गुरु, शोथ और कण्डुयुक्त, स्निग्ध और शीतल होता है तथा आंखमें हमेशा पिच्छिलस्राव निकलता रहता है। यह रोग होनेसे उष्ण क्रिया द्वारा सुखका अनुभव होता है।

श्लेष्मोल्वण (सं० त्रि०) १ श्लेष्माधिक्य। (वाभट चि० ७ अ०) (पु०) २ सन्निपात ज्वरभेद। इसका लक्षण—इस ज्वरमें सन्निपातके सब लक्षण तथा शरीरकी जड़ता, गद्गद वाक्य, रात्रिमें निद्रा, चक्षुकी स्तब्धता तथा मुखमें मधुरता आदि लक्षण होते हैं।

श्लैष्मिक (सं० त्रि०) श्लेष्मणः शमनं कोपनं वा श्लेष्मन् (वातपित्तश्लेष्मभ्यः शमनकोपनयोः। पा ५।१।३८) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या ठञ्। १ कफशमन, श्लेष्मनाशक। २ कफकोपन, कफवर्द्धक। ३ श्लेष्मोत्थ। ४ श्लेष्म-सम्बन्धी। रक्तपित्त शब्द देखो।

श्लैष्मिकरक्तपित्त (सं० क्ली०) कफजन्य रक्तपित्तरोग।

श्लैष्मिकी (सं० स्त्री०) श्लेष्मजन्य योनिव्यापद्, श्लेष्म-जन्य योनिरोग। योनिरोग देखो।

श्लोक (सं० पु०) श्लोक्यते इति श्लोक संघाते घञ्। १ पद्य, कविता, छन्दोविशिष्ट वाक्य पद्यका श्लोक। नाम पड़नेका कारण रामायणमें इस प्रकार लिखा है,—एक दिन एक व्याधने मिथुनधर्ममें नियुक्त नर क्रौञ्चको मार डाला। इस पर क्रौञ्ची बड़ी कातर हो विलाप करने लगी। वाल्मीकिको उसके करुण रोदन पर दया आई और उन्होंने इस कार्यको बड़ा ही निन्दित समझ कर व्याधको शाप दिया, 'रे निषाद! मिथुन करते समय तूने इस क्रौञ्चको मारा है, इसलिये तू कभी प्रतिष्ठा लाभ नहीं कर सकता।' इतना कहते ही वाल्मीकिको बड़ी चिन्ता हुई, वे सोचने लगे, कि पक्षके शोक पर कातर हो मैंने यह क्या कहा। पीछे उन्होंने शिष्यसे कहा, यह चतुष्पादबद्ध, प्रति पादमें समानाक्षर, वीणालय समन्वित वाक्य शोकके समय मेरे मुखसे निकला है, अतएव यह श्लोक ही हो।

शोकसे होनेके कारण पद्यका नाम श्लोक हुआ है। तभीसे छन्दोबद्ध वाक्य मात्र ही श्लोक कहलाता है। २ शब्द, ध्वनि। ३ सुख्याति। ३ प्रसिद्धि। ४ यश, कीर्त्ति। ५ शब्द, ध्वनि। श्रु-श्रवणे इन औणादिक-प्रत्ययमिच्छन्ति: कन्' इति कन् प्रत्ययो बाहुलकाद् भविते गुणः, कपिलकादित्वाल्लत्वं। संहन्यते कविभिः श्लोकः। (टीका) ६ स्तुति, प्रशंसा। (ऋक् १।७३।६)

श्लोककृत् (सं० त्रि०) श्लोकं करोति कृ-क्विप् तुक् च। श्लोककारक, श्लोक बनानेवाला।

श्लोकगौतम (सं० पु०) गौतमप्रोक्त श्लोक।

श्लोकत्व (सं० क्ली०) श्लोकस्य भावः त्व। श्लोकका भाव या धर्म।

श्लोकयन्त्र (सं० त्रि०) स्तुतिनियमन।

श्लोकवार्त्तिक (सं० क्ली०) कुमारिलरचित संक्षिप्त मीमांसा-वार्त्तिक।

श्लोकिन् (सं० त्रि०) शब्दयुक्त। (ऋक् ८।८२।८)

श्लोक्य (सं० त्रि०) श्लोकमय, वैदिक मन्त्रमय या यशोमय।

श्लोण्य (सं० क्ली०) १ अङ्गहीन। २ खञ्जदोष।

श्वःकाल (सं० पु०) परदिन, आगामी कल।

श्वःश्रेयस (सं० क्ली०) श्व आगामिकाले श्रेयो यत्र (श्वसो वसीयः श्रेयसः। पा ५।४।८०) इति अच्। १ कल्याण, शुभ। २ परमात्मा। ३ शर्म। (त्रि०) ४ कल्याणयुक्त।

श्वक (सं० पु०) वृक, भेड़िया।

श्वकण्टक (सं० पु०) व्रात्य और शूद्राके गर्भसे उत्पन्न पुरुष।

श्वकिष्किन् (सं० पु०) १ राक्षस। २ ऐन्द्रजालिक।

श्वक्रीडिन (सं० त्रि०) श्वभिः क्रीडति क्रीड-इनि। कुत्तेके साथ क्रीड़ा करनेवाला, जो खेलके लिये कुत्ते को पोसे।

श्वगण (सं० पु०) शुनां गणः। कुत्तोंका समूह।

श्वगणिक (सं० त्रि०) कुक्कुर-सम्बन्धी।

श्वगणिन् (सं० त्रि०) व्याध, कुत्तों द्वारा शिकार करने-वाला। (रघु १३)

श्वग्रह (सं० पु०) १ बच्चोंको कष्ट देनेवाला एक प्रेत। २ बालग्रहविशेष। इस ग्रह द्वारा आक्रान्त होने पर बालकके कम्प, रोमहर्ष, स्वेद, निमीलित चक्षु, बहिरायाम मुखस्तंभ, जिह्वादंशन, अन्त और कण्ठ कूजन, अतिशय

स्पर्द्धन, शरीरमें विष्ठाकी सी गन्ध और कुत्तेके समान मलद्वन आदि लक्षण दिखाई देते हैं।

श्वघ्निन् (सं० पु०) कितव, जुआचोर।

श्वचक्र (सं० क्ली०) शाकुनभेद। यदि यात्राकालमें कुत्तोंकी गतिविधि और कार्यकलाप देख कर यात्रा करनेवालेका शुभाशुभ निर्णय किया जाय, तो उसे शाकुन या श्वचक्र कहते हैं। (बृहत्संहिता ८६ अ०)

श्वचिल्ली (सं० स्त्री०) कुक्कुरचिल्ली क्षुप, कुकुरदन्ता।

श्वजाघनी (सं० स्त्री०) कुक्कुरजघन भक्षणकारी।

श्वजीवन (सं० त्रि०) जो कुत्तोंको पोष कर अपनी प्राण रक्षा करता हो।

श्वजीविका (सं० स्त्री०) श्ववृत्ति, कुत्तोंके समान दूसरेकी दासत्ववृत्ति।

श्वदंष्ट्रक (सं० पु०) शुनो दंष्ट्रेव कण्टकोऽस्य। गोक्षुर, गोखरू।

श्वदंष्ट्रा (सं० स्त्री०) शुनो दंष्ट्रेव कण्टकावृतत्वात्। गोक्षुरक।

श्वदन्त (सं० पु०) कुत्तेके दांतके समान तेज दांत, शोयन दन्त।

श्वदायित (सं० स्त्री०) १ कुक्कुरी, कुत्ती। २ अस्थि, हड्डी।

श्वद्युति (सं० पु०) कुत्तेका चमड़ा।

श्वधूर्त (सं० पु०) शुनि धूर्त्त तद्ग्रहणकरणात्। शृगाल, गीदड़।

श्वन् (सं० पु०) श्वयति गच्छति श्वि कनिन् (श्वन् उक्षन् पूषन्निति। उण् ११५८) कुक्कुर, कुत्ता।

श्वनक (सं० पु०) कुक्कुर, कुत्ता।

श्वनिन् (सं० त्रि०) श्वगणी, जो कुत्तोंको ले कर शिकार करे। (शुक्लयजु० १६।२७)

श्वनिश (सं० क्ली०) शुनां निशा 'सुरासेनाच्छाया शालानिशानाम्' इति लिङ्गानुशासनसूत्रेण अथवा विभाषा सेनासुराच्छाया शाला निशानाम् (पा २।४।२५) इति विभाषया क्लीवत्व। मत्तकुक्कुरनिशा, अर्थात् जिस रातको कुत्ते सब मत्त हो कर चिल्लाया करते हैं।

श्वनिशा (सं० स्त्री०) श्वनिश देखो।

श्वन्वत् (सं० त्रि०) अप्सराभेद।

श्वप (सं० त्रि०) कुत्तेका पोसनेवाला।

श्वपच् (सं० पु०) श्वानं पचतीति पच क्विप्। चण्डाल, डोम।

श्वपच (सं० पु०) श्वानं पचतीति पच अच्। चण्डाल भेद। यह सात प्रकारके अन्त्यावसायीमेंसे एक है।

यह जाति लज्जाविहीन है, ग्रामके बाहर इनका वास है कुत्ता गदहा आदि ही धन है, मुर्देका कपड़ा परिधेय है, टूटे फूटे बरतन खाने पीनेके बरतन हैं, काला लोहा ही अलङ्कार है, सदा देश देशान्तर जा कर अन्नभिक्षा ही एकमात्र उपजीविका है। राजाके हुक्मसे जरूरी कामके लिये यह ग्रामके भीतर घुस सकता है, किन्तु रातमें ग्राम या नगरमें इनका प्रवेश निषेध है।

भिन्न भिन्न स्मृतियोंमें इसकी उत्पत्ति भिन्न भिन्न कही गई है। जैसे,—कहीं चण्डाल और ब्राह्मणीसे, कहीं निषाद और किरातीसे, कहीं क्षत्रिय और उग्र जातिकी स्त्रीसे, कहीं अम्बष्ठ और ब्राह्मणीसे इत्यादि।

२ कुत्तेका मांस पका कर खानेवाला।

श्वपचता (सं० स्त्री०) श्वपचका भाव, चण्डालता।

श्वपति (सं० पु०) किरातवेशधारी रुद्रका अनुचर।

श्वपद (सं० पु०) शुनः पाद इव पादो यस्य। वृक, शृगाल आदि दुष्ट जंगली जानवर।

श्वपद (सं० क्ली०) शुनः पदम्। कुत्तेका पैर। मनुमें लिखा है, कि चोरके ललाट पर राजाकी आज्ञाके अनुसार तप्त लौहशलाका द्वारा कुत्तेके पैरका चिह्न अङ्कित कर देना चाहिये।

श्वपाक (सं० पु०) शुनां पाकः कार्य्यत्वेन यस्य। चण्डाल, व्याध।

मनुमें लिखा है, कि यह जाति क्षत्ताके औरस और उग्राके गर्भसे उत्पन्न हुई है। शूद्र कर्त्तृक क्षत्रियामें उत्पन्न पुत्र क्षत्ता और क्षत्रिय कर्त्तृक शूद्रासे उत्पन्न कन्या उग्रा कहलाती है।

रजस्वला स्त्री स्वेच्छासे यदि इन्हें स्पर्श कर ले, तो निर्दिष्ट स्नान दिनके बाद तीन दिन उपवास कर पञ्चगव्य भक्षण द्वारा वह शुद्धि होती है। और यदि अज्ञानित अवस्थामें स्पर्श करे, तो प्रथम दिन स्पर्श करनेसे तीन रात, दूसरे दिन दो रात, तीसरे दिन एक रात उप

वास तथा चौथे दिन शुद्धिस्नानके पूर्वक्षणमें मं स्पर्श होनेसे उस दिन दिनको उपवास कर रातको हविष्यान्न भोजन द्वारा शुद्धिलाभार्थ प्रायश्चित्त करें।

श्वपाद (सं० पु०) श्वपद देखो।

श्वपामन (सं० पु०) पपरी नामका पौधा। इसकी कड़वी जड़ रेचक होती है और औषधके काममें आती है। इसका दूसरा नाम काकच्छर्दि भी है।

श्वपुच्छ (सं० पु०) वृश्चिक, बिच्छू।

श्वपुच्छा (सं० स्त्री०) पृश्निपर्णी, पिठवन।

श्वफल (सं० पु०) श्वप्रियं फलमस्य। १ बीजपूर, बिजौरा नीबू। २ चूर्ण, चूना।

श्वफल्क (सं० पु०) वृष्णिपुत्र, अक्रूरके पिता। इनकी स्त्रीका नाम था गान्दिनी। श्वफल्कके औरस और गान्दिनीके गर्भसे ही अक्रूरका जन्म हुआ।

श्वभक्ष (सं० त्रि०) कुक्कुरमांसभक्षणकारी, कुत्तेका मांस खानेवाला।

श्वभीरु (सं० पु०) शुनः कुक्कुरात् भीरुर्भयशीलः। शृगाल, गीदड़।

श्वभोजन (सं० क्ली०) कुत्तेका मांस खाना।

श्वभ्र (सं० क्ली०) श्वभ्रयते बधिति श्वभ्र गत् कर्मणि। १ छिद्र, दरार, गड्ढा। २ एक नरक। ३ वासुदेवके एक पुत्रका नाम।

श्वभ्रपति (सं० पु०) रसातलपति।

श्वभ्रवत् (सं० त्रि०) गर्त्तयुक्त, दरारवाला।

श्वभ्रवती (सं० स्त्री०) नदीभेद। (हरिवं श)।

श्वभ्रित (सं० त्रि०) गर्त्तयुक्त दरारवाला।

श्वमांस (सं० क्ली०) कुत्तेका मांस। यह मांस खाना शास्त्र-विरुद्ध होनेपर भी मनुमें लिखा है, कि वामदेव ऋषिने क्षुधासे पीड़ित हो प्राण बचानेके लिये श्वमांस भक्षण किया था तथा इससे वे किसी प्रकारके पापमें लिप्त नहीं हुए। (मनु १०।१०६)

श्वमुख (सं० पु०) जनपदभेद।

श्वयथ (सं० पु०) शोथ, सूजन।

श्वयथु (सं० पु०) श्वि गतिवृद्धयोः (ट्वितोऽथुच्। पा ३।३।८९) इति अथुच्। शोथ, सूजन।

श्वयन (सं० क्ली०) शोथ, सूजन।

श्वयातु (सं० पु०) कुत्ते द्वारा हिंसा करनेवाला अथवा उसके साथ विचरण करनेवाला।

श्वयीची (सं० स्त्री०) श्वयतीति श्विगतिवृद्ध्योः। श्वेय-तेश्चित्। उण् ४।७१) इति ईचि, बाहुलकात् ङीप्। पीड़ा।

श्वयूथ (सं० क्ली०) कुत्तोंका दल।

श्वलिह् (सं० त्रि०) कुत्तोंने जिसको चाटा हो।

श्वलेह्य (सं० त्रि०) शुना लेह्यः। जिसको कुत्तोंने चाटा हो। (पा २।१।३३)

श्ववत् (सं० त्रि०) श्वन्-मतुप्, नस्य लोपः। क्रीड़ाके लिये जो कुत्तेको पोसता हो। मनुमें लिखा है, कि इसके घर भोजन करना नहीं चाहिए। (मनु ४।२१६)

श्वविष्टा (सं० स्त्री०) शुनो विष्टा। कुत्तेकी विष्टा।

यदि कोई भोजन, मर्द्दन तथा दानको छोड़ तिल विक्रय करे, तो वह पितरोंके साथ कृमि हो कर कुत्तेकी विष्टामें निमग्न होती है। यह विधि ब्राह्मणोंके पक्षमें समझनी होगी।

श्ववृत्ति (सं० स्त्री०) शुनः कुक्कुरस्येव पराधीना वृत्तिः। नीच सेवाकी वृत्ति, निकृष्ट नौकरी द्वारा जीवननिर्वाह।

वाणिज्यका नाम सत्यानृत है, वाणिज्य करनेमें सत्य और अनृत (मिथ्या) ये दो काम आते हैं, इसलिये उसका नाम सत्यानृत है। ब्राह्मण इस सत्यानृत द्वारा जीविका निर्वाह करें, सेवा या नौकरी नहीं करें, क्योंकि सेवा श्ववृत्ति कहलाती है।

श्ववृत्तिन् (सं० त्रि०) श्ववृत्ति द्वारा जीविका निर्वाह करनेवाला। (याज्ञवल्क्य १।१६३)

श्वव्याघ्र (सं० पु०) शुनो व्याघ्रः। हिंस्र पशु।

श्वशीर्ष (सं० त्रि०) कुत्तेका सिरवाला।

श्वशुर (सं० पु०) शु आशु अश्यते व्याप्यते इति अश (अश भोजने। उण् १।४५) इति उरन्। शु शब्दोऽत्राशु शब्दाभिधायी, आशु व्याप्तव्यः श्वशुरः। १ पति या पत्नीका पिता, ससुर। (अमर) २ पूज्य। (मेदिनी)

श्वशुरक (सं० त्रि०) श्वशुर स्वार्थे कन्। श्वशुर, ससुर।

श्वशुरीय (सं० त्रि०) श्वशुर सम्बन्धी।

श्वशुर्य (सं० पु०) श्वशुरस्यापत्यमिति। श्वशुर (राज श्वशुराद्यत्। पा ४।१।७१) इति यत्। पति या पत्नीका भाई, देवर या शाला।

श्वश्रू (स० स्त्री०) श्वशुरस्य पत्नी श्वशुर (श्वशुरस्योकारलोपश्च। पा ४।१।६८) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या उङ् उकारलोपश्च। पति और पत्नीकी प्रसू पति और पत्नी की माता, स्त्रियोंके पतिकी माता, पुरुषकी पत्नीकी माता, सास।

वराहपुराणमें लिखा है, कि धर्मरूपी व्याधने एक दिन जामाताके घर उसके पितासे कहा था, 'मैंने पुत्रके लिये कन्यादान किया है, किन्तु तुम्हारी स्त्री मेरी लड़की को जीवनघाती कहती है, इसीसे तुम्हारे घर यह देखने आया हू, कि सदाचार, देवपूजा और अतिथिसेवा आदि किस प्रकार होती है। किन्तु इन सबका बिल्कुल अभाव है, इसलिये तुम्हारे घर भोजन नहीं करूंगा, मैं जीवघाती व्याध हू जिस कन्याका विवाह किया है वह जीवघातीकी कन्या है। इसलिये मैं शाप देता हू, कि आजसे सास पर पतोहूका कभी विश्वास नहीं रहेगा और वह सदा सासको जिन्दगीको कोसा करेगी।

श्वसथ (स० पु०) १ श्वनि, शब्द। २ वन्यवृष, जंगली साढ।

श्वसन (स० क्ली०) श्वस-ल्युट्। १ सांस लेना, दम लेना। २ हांफना। ३ फुंकार करना, फुफकारना। ४ ठंढी सांस भी चना, आह भरना। ५ मुहसे हवा छोड़ना, फूंकना। (पु०) श्वसितानि श्वस ल्यु। ६ वायु पवन हवना। ७ मदनफल, मैनफल। ८ एक वसुका नाम। श्वस्यतेऽनेन करणे ल्युट्। ९ जिससे श्वास लिया जाता है, नासिका। (भागवत १०।१६।२४)

श्वसनरन्ध्र (स० क्ली०) श्वसनस्य रन्ध्र। नासिका विवर, नाकका छेद।

श्वसमान (स० त्रि०) श्वस शानच्। निश्वास छोड़ने वाला।

श्वसनाशन (स० पु०) श्वसनो वायुरशन भक्ष्य यस्य। सप, साप।

श्वसनेश्वर (सं० पु०) श्वसन इश्वरो यस्य। अर्जुनवृक्ष।

श्वसनोत्सुक (स० पु०) श्वसनाय उत्सुकः। सप, सांप।

श्वसित (स० क्ली०) श्वस क्त। श्वास।

श्वसीवत् (स० त्रि०) श्वसनवत्, श्वसनविशिष्ट, श्वास प्रश्वासयुक्त। (ऋक् १।१४०।१०)

श्वसुन (स० पु०) श्वस बाहुलकात् उनन्। क्षतघ्नवृक्ष, कचरोंघा नामक पौधा।

श्वस्तन (स० त्रि०) श्वो भव श्वस (एयमोद्य श्वसोऽन्यतरस्या। पा ४।२।१०५) इति त्यप्भावे ट्युट्युलौ। तुट्च। १ आनेवाले दिनका, कलका। (क्लो०) २ कलका दिन, आनेवाले दूसरा दिन।

श्वस्तनिक (स० त्रि०) श्वस्तन धनयुक्त। जिसका धनादि आगामी कल तक विद्यमान रहे, उसे श्वस्तनिक या शौवस्तिक कहते हैं। (मनु ४।७)

श्वस्तनी (स० स्त्री०) कलका दिन, आनेवाला दूसरा दिन।

श्वस्त्य (स० त्रि०) श्वो भवमिति श्वस (एयमोद्य श्वसोऽन्यतरस्यां। पा ४।२।१०५) इति त्यप्। श्वोभव वस्तु।

श्वःसुत्या (स० स्त्री०) दूसरे दिन सोमाभिषवकी प्रसक्ति या उसका निर्दिष्ट समय।

श्वःस्तोत्रिय (स० पु०) दूसरे दिन स्तवनीय, दूसरे दिन जो स्तुतिपाठ करना होता है। (ऐतरेय ६।४।१)

श्वःश्रिय (स० स्त्री०) एक प्रकारका रत्न या बहुमूल्य पत्थर जो कांसे, रूपे, शङ्ख, कुमुद आदिके रंगका कहा गया है।

श्वाकर्ण (स० पु०) शुनः कर्णः। अलुक् लोपः (अन्येषामपि दृश्यते। पा ६।३।१३७) इति दीर्घः। कुत्तेका कान।

श्वागणिक (स० त्रि०) श्वगणेन चरति यः (श्वगणात् ठञ् च। पा ४।४।११) इति ठञ्। श्वगण द्वारा विचरण करने, व्याध, जो कुत्तेको ले कर शिकार करता है।

श्वाग्र (स० क्ली०) कुत्तेका अगला हिस्सा।

श्वात्त (स० त्रि०) शीघ्र परिणत, जल्द जीर्ण होनेवाला।

श्वात्रभाज् (स० त्रि०) धनभाक्, धनी।

श्वात्र्य (स० त्रि०) १ क्षिप्रगमनार्ह, शीघ्र गमनयोग्य। २ सुखावह सोम। (ऋक् १०।४६।१०)

श्वाद (स० पु०) श्वपच, चाण्डाल। (भागवत ३।२३।६)

श्वादंष्ट्रा (स० स्त्री०) शुनो दंष्ट्रा अलुक् लोपः दृश्यते इति दीर्घः। श्वदंष्ट्रा, कुत्तेका दांत।

श्वादंष्ट्रि (स० पु०) श्वदंष्ट्रका अपत्य।

श्वादन्त (सं० पु०) शुनो दन्त इव दन्तो यस्य। (शुनोदन्तदंष्ट्रेति। पा ६।४।१३७) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या दीर्घः। कुक्कुरदशन, कुत्तेके समान दाँतवाला।

श्वान (सं० पु०) श्वा एव श्वन् स्वार्थे अण्। १ कुक्कुर, कुत्ता। शुनां समूहः खण्डिकादित्वादञ्। (षष्ठी०) २ कुत्तोंका समूह। ३ छप्पयका पन्द्रहवाँ भेद। इसमें ५६ गुरु, ४ लघु, कुल ६६ वर्ण १५२ मात्राएं होती हैं। ४ दोहेका इक्कीसवाँ भेद। इसमें २ गुरु और ४४ लघु होते हैं।

श्वानचिल्लिका (सं० स्त्री०) श्वानप्रिया चिल्लिका। शुनकचिल्ली, बथुआ नामक साग।

श्वाननिद्रा (स० स्त्री०) ऐसी नींद जो थोड़े खटकेसे भी चट खुल जाय, हलकी नींद, झपकी।

श्वानी (सं० स्त्री०) श्वान स्त्रियां ङीप्। कुक्कुरी, कुत्ती।

श्वान्त (सं० त्रि०) १ प्रवृद्ध। २ श्रान्त।

ष्वान्नति (सं० स्त्री०) ब्राह्मणयष्टिका. भारंगी।

श्वापद (सं० पु०) शुन इव पदं यस्य (शुनोदन्तदंष्ट्राकर्ण कुन्दवराहपुच्छपदेषु। पा ६।४।१३७) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या दीर्घः। १ हिंस्र पशु। २ व्याघ्र, बाघ।

श्वापाकक (सं० त्रि०) श्वपाकेन कृतः श्वपाक (कुलालादिभ्यो वुञ्। पा ४।३।११८) इति वुञ्। श्वपाक कर्त्तृक कृत, चण्डाल द्वारा किया हुआ।

श्वापुच्छ (सं० क्ली०) शुनः पुच्छं, शुनो दन्तदंष्ट्रेति दीर्घ। श्वपुच्छ, कुत्तेकी पूंछ।

श्वाफल्क (सं० पु०) श्वफल्कस्य गोत्रापत्यं, श्फल्क (ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च। पा ४।१।११) इति अप त्यार्थे अण्। श्वफल्कका गोत्रापत्य।

श्वाफल्कि (सं० पु०) श्वफल्क-इञ्। श्वफल्कका पुत्र, अक्रूर।

श्वायूथिक (सं० त्रि०) श्वयूथ-सम्बन्धी।

श्वावराह (सं० पु०) श्वा च वराहश्च तयो नस्य लोपः (अन्येषामपि दृश्यते। पा ६।३।१३७) इति दीर्घः। कुक्कुर और वराह, कुत्ता और सूअर।

श्वावराहिका (सं० स्त्री०) कुत्ते और सूअरकी लड़ाई।

श्वाविध् (सं० पु०) श्वानं विध्यतीति व्यध क्विप्। (नहिवृतीति। पा ६।३।११६) इति दीर्घः। शल्य, साही नामक जन्तु। यह पञ्चनखोंके मध्य है, इसलिये इसका मांस खानेमें कोई दोष नहीं। (मनु ५।१८)

श्वाशुर (सं० त्रि०) श्वशुर-अण्। श्वशुर सम्बन्धी।

श्वाशुरि (सं० पु०) श्वशुरस्यापत्यं श्वशुर (अत इञ्। पा ४।१।९५) इति इञ्। श्वशुरका अपत्य, पुरुषका साला और स्त्रियोंका देवर।

श्वाशुर्य (सं० पु०) श्वशुरका अपत्य, साला, देवर।

श्वाश्व (सं० पु०) श्वा कुकुरः अश्व इव वाहनं यस्य कुक्कुरवाहनत्वात्। भैरव, भैरवका वाहन कुत्ता

श्वास (सं० पु०) श्वसित्यनेनेति श्वस-घञ् करणे। यद्वा श्वसितीति श्वस ण (श्याद्व्यधेति। पा ३।१।१४१) १ श्वसित, निश्वास, सांस, दम। २ प्राण वायु। पर्याय— प्राण। (राजनि०) ३ रोगविशेष, दमा। यह रोग महा पातक और उपपातक पापकर्मसे उत्पन्न होता है उनमेंसे रोगकी अधिक प्रबलता होनेसे ही महापातकज तथा न्यूनता होनेसे उसे उपपातकज जानना होगा। क्योंकि, इस रोगको शुद्धितत्त्वमें नारदवचनानुसार महापातकके अन्तर्गत तथा मलमासतत्त्वमें उपपातकके अन्तर्गत उद्धृत किया गया है।

जो सब वस्तु खानेसे उपयुक्त समयमें वह परिपाक न हो कर स्तब्धभावमें पेटके अन्दर रहती हैं अथवा जो सब वस्तु खानेसे वक्षःस्थल और कण्ठकी नालीमें जलन देती है, वे सब वस्तु तथा गुरुपाक, रुक्ष, कफजनक और शीतल स्थानमें वास, नाककी राहसे धुओं और धूलका प्रवेश, आतप और प्रबल वायुका सेवन, वक्षःस्थलमें आघात लग सके, ऐसा व्यायाम, अधिक भारवहन, पथ पर्य्यटन, मलमूत्रादिका वेगधारण, अनसन और रुक्षता कारक कार्यादि द्वारा श्वास और हिक्कारोगकी उत्पत्ति होती है।

क्षुद्र, तमक, छिन्न, ऊद्र्ध्व और महाश्वासके भेदसे यह रोग पाँच प्रकारका है। नीचे यथाक्रम उनका यथायथ विवरण दिया जाता है,—

क्षुद्रश्वास—रूखी वस्तु खाने और अधिक परिश्रमसे अर्थात् दौड़ धूप या कठिन परिश्रमके बाद जो हांफनी आती है उसे क्षुद्रश्वास कहते हैं। यह दीर्घकाल-

स्थायी या विशेष कष्टदायक अथवा किसी प्रकारका प्राण नाशक नहीं है।

तमक श्वास—जब वायु ऊर्ध्वगत स्रोतोंमें अव स्थित हो श्लेष्माको तरल करती है तथा श्लेष्म द्वारा स्वयं भी रुक जाती है, उस समय तमक श्वास उत्पन्न होता है। इस श्वासके आरम्भमें ग्रीवा और मस्तकमें वेदना होती है, पीछे कण्ठमें घड़ घड़ शब्द निकलता है, चारों ओर अन्धकार दिखाई देता है तृष्णा होती है, आलस आता है, खांसते खांसते जब श्लेष्मा निकलती है तब कुछ आराम मालूम होता है और जब नहीं निकलती तब मूर्च्छा पार्श्ववेदना उष्ण द्रव्य या उष्ण स्पर्शकी इच्छा, दोनों आँखोंमें सूजन, ललाटसे पसीनेका निकलना, अत्यन्त यातना बोध, मुखशुष्कता बार बार बड़ी तेज गतिसे श्वासका निकलना तथा गात्र सञ्चालन अर्थात् गजारूढ़ व्यक्तिकी तरह शरीर हमेशा हिलता रहता है। इस श्वासके साथ ज्वर और मूर्च्छा आनेसे उसे प्रतमक या स तमक श्वास कहते हैं। उक्त तमकश्वास मेघाम्बु, शैत्यक्रिया, पूर्व दिशाकी हवा तथा श्लेष्मवर्द्धक द्रव्यका व्यवहार करनेसे बहुत बढ़ जाता है।

छिन्नश्वास लक्षण—बड़े कष्ट और जोरसे विच्छिन्न भावमें अर्थात् एक एक कर जो श्वास ग्रहण करना होता है उसे छिन्न श्वास कहते हैं। इस श्वासमें अत्यन्त यन्त्रणा, हृदय विच्छिन्न होनेकी तरह वेदना आनाह, घर्मनिर्गम, मूर्च्छा वस्तिदेशमें दाह, दोनों नेत्रकी चञ्च लता और अश्रुस्राव, अङ्गकी क्षीणता और विवर्णता, एक चक्षुकी रक्तवर्णता, चित्तका उद्वेग, मुखशोष और प्रलाप, ये सब उपद्रव होते हैं।

ऊर्ध्वश्वास—इस श्वासमें रोगी जिस प्रकार दीर्घभावमें श्वास ग्रहण करता है उसका त्याग करते समय उसी वेगमें निश्वास नहीं छोड़ सकता। इस कारण क्रमशः थोड़े ही समयके अन्दर उसका दम बन्द सा मालूम होता है। उसका मुख और स्रोत श्लेष्मा द्वारा आवृत होनेके कारण वायु कुपित हो कर विशेष यातना पैदा करती है। इससे ऊर्ध्वदृष्टि, विभ्रान्त, चक्षु, मूर्च्छा, अङ्गवेदना, मुखकी शुष्कवर्णता और चित्त की विकलता आदि उपद्रव होते हैं।

महाश्वास—मतवाले बैलको बड़ी मजबूतीसे बांध रखने पर वह जिस प्रकार उछल कूद कर गों गों शब्द करता है, महाश्वास रोगमें वायुके ऊर्ध्वगत होनेसे उसी प्रकार शब्दके साथ दीर्घश्वास निकलता है। इस श्वास का शब्द दूरसे भी सुननेमें आता है। इस रोगमें रोगी अत्यन्त क्लिष्ट हो उठता है तथा उसके ज्ञान और विज्ञानशक्तिका नाश दोनों नेत्र चञ्चल और विस्तृत, मुख विकृत, मलमूत्रका रोध, वाक्य निस्तेज, मनकी ग्लानि आदि लक्षण दिखाई देते हैं।

साध्यासाध्यनिर्णय—उक्त पाँच प्रकारके श्वासमें छिन्न, ऊर्ध्व और महाश्वास स्वभावतः ही मारात्मक है; अर्थात् इनमेंसे किसी एकके उत्पन्न होनेसे ही रोगी की मृत्यु होती है। तमक श्वासकी प्रथम अवस्थामें चिकित्सा होनेसे यह बड़ी मुश्किलसे आरोग्य होता है, किन्तु विलम्ब होनेसे यह चिकित्सा द्वारा भी आरोग्य नहीं होता, याप्यभावमें रहता है। परन्तु रोगीकी दुर्बल अवस्थामें इसकी प्रबलता रहनेसे सहसा प्राणनाशक हो उठता है। क्षुद्रश्वास रोग साध्यतम है। जो हो, प्राण नाशक जितने प्रकारके रोग हैं उनमें श्वास और हिक्का की तरह शीघ्र प्राण लेनेवाला और कोई नहीं है।

श्वास वा हिक्कार्दित रोगीको पहले स्नेहकर्म द्वारा स्निग्ध और लवणान्वित तैलमें अभ्यक्त कर नाड़ीस्वेद, प्रस्तरस्वेद अथवा सङ्करस्वेद द्वारा चिकित्सा करे। ऐसा करनेसे रोगीको स्रोतोगत ग्रथित श्लेष्मा तरलीकृत, लघु कोमल और वायु अनुलोमगामी होती है।

श्वासरोगमें स्वेदक्रिया अच्छी तरह होने पर भी जो श्वासग्रस्त, रोगी, दाहार्त्त, घर्मार्त्त, रक्तस्रावयुक्त, क्षीणधातु, क्षीणबल, रुक्ष गर्भिणी और पित्तबहुल हैं, उन्हें स्वेद देना निषिद्ध है।

स्वेद और वमनादि द्वारा कफके निकलने पर भी यदि वह स्रोतादिमें कुछ अवशिष्ट रहे तो धूम प्रयोग द्वारा उस दोषको निकाल दे। मोम, धूना और घृतको एक साथ मिला कर ढक्कन पर रखी हुई आग पर छोड़ दे। पीछे ऊपरसे एक दूसरा सच्छिद्र ढक्कन ढक कर सन्धिस्थलको अच्छी तरह जोड़ दे। ढक्कनके बीचमें एक नल घुसेड़ कर उससे धूम पान करे। श्योणाक और

रेंड़ीकी डंठल अथवा कुशके नलको सुखा और घृताक्त कर उसका धूमपान करे। कनकधतूरेका फल, शाखा और पत्तेको खंड खंड कर सुखा ले पीछे चिलम पर चढा कर धूम पान करे तो प्रबल श्वासवेगका भी शीघ्र ही उपशम होता है। यह दृष्टफलप्रयोग है। कुछ सोरेको जलमें घोल कर उससे एक टुकड़े कागजको सिक्त करे। पीछे उसे सुखा कर चुरुटकी तरह नल बना कर उसका धूम पान करना होगा।

श्वासरोगमें अदरकके रसके साथ पीपरका चूर्ण दो आना और सैन्धव लवण दो आना, इन्हें एक साथ मिला कर पान करे। शोधित गंधकचूर्ण घृत अथवा मरिच और घृतके साथ सेवनीय है। बिल्वपत्रका रस, अडूसपत्र का रस अथवा श्वेत अपराजिताके पत्रका रस, इन्हें सरसों तेलमें मिला कर पान करे। गुलञ्च, सोंठ, करंजो, भटकटैया और तुलसी इनके काढ़ेमें पिपरा चूर्ण डाल कर पान करे। दशमूलके काढ़ेमें कूटचूर्ण डाल कर पान करनेसे श्वास, कास, पार्श्वशूल और वक्षस्थलकी वेदना दूर होती है।

पथ्य और पानीयादि—भटकटैया, बेलसोंठ, कर्कटशृङ्गी जवासा, गोखरू, गुलञ्च और चितामूल, इनके रसके साथ कुलथी कलायका जूस पाक कर छान ले। पीछे उसमें पीपर और सोंठका चूर्ण तथा लवण मिला कर घीमें भुन, हिक्का और श्वासरोगीको अन्नके साथ खिलावे। इससे श्वास, कास, हिक्का, पार्श्वशूल और हृद्रोग आदि विनष्ट होते हैं।

श्वासग्रस्त रोगीको साधारणतः दिवाभागमें मूंग, मसूर, चनेकी दाल, बड़ी झींगा मछलीका जूस, परवल, डूमर, पका कुम्हड़ा, मानकच्चू, आदिकी तरकारी, ब्राह्मीशाक, छाग, हरिण, शश, कबूतर, बटेर और पगले आदिके मांसका रस, बकरीका दूध, खजूर, अनार, सिंघाड़ा, किशमिश, आंवला, कच्चे ताड़का गूदा, मिस्री, नारियल, तिलतैल और घृतपक्व व्यञ्जनादि खानेको दिये जा सकते हैं। रात्रिकालमें गेहूं, जौकी रोटी अथवा पूरी और पूर्वोक्त तरकारी आदि, सूजी, चनेका बेसन, घृत और थोड़े मोठेसे तैयार किया हुआ जो कोई खाद्य, रोगी जहां तक पचा सके, खानेको दे सकते हैं। गरम जलको ठंढा कर अथवा अवस्थाविशेषमें कुछ गरम जल अथवा वायुका उपद्रव अधिक रहने पर पुरानी इमलीको जलमें डुबो कर वही जल या नीबूके रसके साथ मिसरीका शरबत पान करे। श्लेष्माकी अधिकता नहीं रहने पर नदी या परिष्कार सरोवरके जलमें स्नान किया जा सकता है।

कहनेका तात्पर्य यह है, कि जो कोई औषध, अन्न या जल वायु और श्लेष्मानाशक, उष्णवीर्य और वातानुलोमक हो उसीको हिक्का और श्वास रोगका हितकर जानना चाहिये। जो द्रव्य वातजनक है, पर कफनाशक अथवा वातनाशक है, वह ऐकान्तिक भावमें या अल्प विचारित रूपमें इस रोगमें प्रयोग नहीं किया जा सकता। जो केवल वातनाशक है वह अनेक स्थलोंमें व्यवहृत हो सकता है। किन्तु जो केवल श्लेष्मानाशक है अर्थात् जो औषध, अन्न या जल व्यवहार करनेसे शरीर रसहीन हो कर अत्यन्त कर्षित होता है, उससे हिक्काश्वास रोगका कुछ भी उपशम नहीं होता। अतएव इस रोगमें औषध पथ्य आदि जिस किसीका व्यवहार क्यों न किया जाय, जिससे वायुका गमनपथ विशोधित रहे. सर्वदा उसी ओर लक्ष्य रख कर कार्य करना होगा। क्योंकि, नद, नदी आदि वृहज्जलाशयादिका गतिरोध होनेसे वह जिस प्रकार लबालब हो जाता है, उसी प्रकार श्वास रोगीकी वायु कफादि द्वारा रुद्धगति हो अधिक उदीर्ण हो जाती है तथा नाना प्रकारका उपद्रव पैदा करती है।

अपथ्य—गुरुपाक, रूक्ष, उष्णवीर्यद्रव्य, दधि, मत्स्य और लालमिर्च आदिका व्यवहार, रात्रिजागरण, अत्यन्त परिश्रम, अग्नि या रौद्रका उत्ताप, अति भोजन, अत्यन्त दुश्चिन्ता, शोक, क्षोभ, क्रोध आदि मनोविकार, इस रोगमें इन सबका सर्वथा परित्याग करना एकान्त कर्त्तव्य है।

श्वासकास (सं० पु०) श्वासयुक्तः कासः। १ दमा और खांसी, दमा।

श्वासकुठाररस (सं० पु०) श्वासस्य कुठार इव तन्नामको रसः। श्वासरोगमें उपकारी एक रसौषध। इसके तैयार करनेका तरीका—रस, गन्धक, विष, सोहागा, कालीमिर्च तथा त्रिकटु इनका समभाग ले कर जलमें

अच्छी तरह घोंटे, पीछे एक रत्ती भर गोली बनावे। इसका अनुपान अदरकका रस और मधु है। इसका सेवन करनेसे श्वासकास, स्वरभङ्ग और ज्वर आदि रोग विनष्ट होते हैं। (भैषज्यरत्ना०)

श्वासचिन्तामणि (सं० पु०) श्वासरोगाधिकारोक्त औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—लौहचूर्ण ४ तोला, गन्धक २ तोला, अबरक २ तोला, पारा १ तोला, स्वर्ण माक्षिक १ तोला, मुक्ता आध तोला और सोना आध तोला इन्हें एक साथ घोंट कर भटकटैयाके रसमें, अदरक के रसमें, बकरीके दूधमें और मुलेठीके काढ़ेमें भावना दे, पीछे चार रत्तीकी गोली बनावे। अनुपान मधु और बहेड़ेका चूर्ण है। इस औषधका सेवन करनेसे श्वास कास और यक्ष्मारोग आदि आरोग्य होते हैं। (भैषज्यरत्ना०)

श्वासता (सं० स्त्री०) श्वासस्य भावः तल टाप्। श्वास का भाव या धर्म।

श्वासप्रश्वासधारण (सं० क्ली०) श्वासप्रश्वासयो धारण यत्र। प्राणायाम। (इस) प्राणायाम करनेमें श्वास प्रश्वास धारण करना होता है।

श्वासभैरवरस (सं० पु०) श्वासरोगाधिकारोक्त औषध विशेष। प्रस्तुत प्रणाली—रस, गन्धक, विष, त्रिकटु मरिच, चई और चितामूल इनका चूर्ण समान भागमें ले कर अदरकके रसमें घोंटे। पीछे २ रत्तीकी गोली बनावे। यह औषध जलके साथ सेवन करनेसे श्वास, कास और स्वरभेद आदि रोग दूर होते हैं।

श्वासरोध (सं० पुली०) १ सांस रोकना सांसको बाहर निकलनेसे रोके रहना। २ दम घुटना, सांस भीतर न समाना।

श्वासहेति (सं० पु०) श्वासस्य हेतिरिव। निद्रा नींद।

श्वासा (हिं० स्त्री०) १ सांस, दम। २ प्राण, प्राण वायु।

श्वासारि (सं० पु०) श्वासस्य अरि। १ पुष्करमूल। २ कुष्ठ नामक पौधा कूट।

श्वासिन् (सं० पु०) श्वासयतीति श्वस णिच् णिनि। १ वायु। श्वासोऽस्यास्तीति इनि। (त्रि०) २ श्वास रोगी।

धर्मशास्त्रमें लिखा है, कि यह रोग महापातकज है, अतः यह रोग होनेसे पहले प्रायश्चित्त कर, पीछे इसकी चिकित्सा करनी चाहिए। (प्रायश्चित्तवि०)

श्वासोच्छ्वास (सं० पु०) वेगसे सांस खींचना और निकालना।

श्वाहि (सं० पु०) यदुवंशीय राजभेद। (भागवत ६।२३।३०)

श्वित्न (सं० पु०) १ एक देशका नाम। २ इस देशका निवासी। (शतपथ)

श्वितीची (सं० स्त्री०) श्वैत्यप्राप्ता, प्रकाश प्राप्ता, प्रकाशिता। (ऋक् १।१२३।६)

श्वित्र (सं० त्रि०) श्वेतवर्ण, सफेद। (ऋक् ८।४६।३१)

श्वित्न्य (सं० त्रि०) शुक्लवर्ण अलङ्कार द्वारा दीप्ताङ्ग, शुक्लवर्णाङ्ग। (ऋक् १।१००।१८)

श्वित्र (सं० पुली०) श्वेतते इति श्वित रक् (स्फायित ञ्चिवञ्चाति। उण् २।१३) किलासभेद, श्वेत कुष्ठ, सफेद कोढ़। पर्याय—कुष्ठ, श्वेत या श्वैत। विरुद्ध भोजनादि और पापकर्म आदि कुष्ठरोगोक्त कारण ही श्वित्ररोगका निदान है। कुष्ठ देखो।

चरकमें लिखा है कि मिथ्याकथन, विश्वासघातकता, गुरुलोककी निन्दा और उनका तिरस्कार अथवा जिस किसी तरह हो निर्यातन करना, इह और पूर्व जन्मकृत दुष्कर्म, देशकाल और संयोगविरुद्ध द्रव्य सेवन आदि कारणोंसे किलास रोगकी उत्पत्ति होती है।

भोजकृत ग्रन्थमें व्रणज और दोषज भेदसे श्वित्ररोग के दो प्रकार कहे गये हैं। पीछे दोषज फिर आत्मज और परज भेदसे यह दो प्रकारका है। क्षत अवस्थामें उस के ऊपर अयथोपचारके कारण व्रणज तथा दो प्रकारके दोषजमें परकीय संश्रवके कारण परज और देहस्थ वातादि कर्तृक आत्मज श्वित्ररोग उत्पन्न होता है।

सुश्रुतमें कुष्ठ तथा किलास इन दोनोंके भेद निर्णय स्थलमें यह दिखलाया गया है, कि किलास त्वग्गत और अपरिस्रावी तथा कुष्ठ मात्र ही धात्वन्तरानगामी और स्रावशील है।

साध्यासाध्य लक्षण—जिस श्वित्रके रोम काले होते,

चमड़ा मोटा नहीं होता, जो आपसमें असंश्लिष्ट होने तथा जो अग्निदग्धज क्षतसे उत्पन्न नहीं है, उसे साध्य जानना चाहिये। इसका विपरीत अर्थात् जो सब श्वित्र क्रमशः वर्द्धित हो कर आपसमें मिले रहते हैं, जिसका चमड़ा मोटा मालूम होता और जिसकी अभ्यन्तरस्थ रोमावली लाल होती और जो बहुत पुराना है, उसे असाध्य जानना चाहिये। गुह्य तथा हस्त पदादिके तलदेश और ओष्ठभागमें उत्पन्न श्वित्र सर्वथा वर्जनीय है।

श्वित्रपञ्चानन तैल और कुष्ठरोगके सभी तैल, घृत, औषध और पथ्यापथ्यादि इस रोगमें सर्वदा व्यवहार्य हैं। पापजन्य श्वित्ररोगमें प्रायश्चित्तादि द्वारा पापक्षय होने पर पीछे वमन, विरेचन, रक्तमोक्षण, रुक्षशक्तु भक्षण आदि द्वारा उसका नाश होता है। (चरक चि० ७ अ०)

श्वित्रक (सं० त्रि०) श्वित्ररोगयुक्त, सफेद कोढ़वाला।

श्वित्रघ्नी (सं० स्त्री०) श्वित्रं श्वित्ररोगं हन्तीति हन-टक् ङीप्। शीतपर्णी, विछालीका पौधा।

श्वित्रिन् (सं० त्रि०) श्वित्रमस्त्यस्येति श्वित्र-इनि। श्वित्ररोगयुक्त, श्वेत कुष्ठयुक्त, सफेद कोढ़वाला। मनुमें लिखा है, कि यह रोग संक्रामक है। कन्याके पिता-माताको यह रोग रहने पर उससे विवाह नहीं करना चाहिए। जिसे यह रोग हुआ हो; उसके साथ एक पंक्तिमें बैठ कर खाना मना है। याज्ञवल्क्यसंहितामें लिखा है, कि कपड़ा चुरानेके पापमें नरकभोगके बाद श्वित्ररोग होता है। (याज्ञवल्क्य ३।२१५)

श्वेत (सं० क्ली०) श्वेतते इति श्वित-अच्। १ रूप्य, चाँदी। (पु०) २ शुक्लवर्ण, सफेद रंग। ३ द्वीपविशेष। (भागवत १२।२३५।८) ४ पर्वतभेद। (मेदिनी) श्रीमद्भागवतमें लिखा है, कि यह पर्वत जम्बूद्वीपके पर्वतोंमेंसे एक है। भागवतके ५ स्कन्ध १६ अध्यायमें इस पर्वतका विवरण आया है। जम्बूद्वीप देखो। ५ कपर्द्दक, कौड़ी। ६ शुक्रग्रह। ७ श्वेताभ्र। ८ शङ्ख। ९ जीवक नामक अष्टवर्गीय औषध। १० शिवावतारविशेष। कूर्मपुराणमें लिखा है, कि कलियुगके पहले वैवस्वत मन्वन्तरमें भगवान् महादेव हिमालय पर्वतके रमणीय शिखर पर श्वेत रूपमें अवतीर्ण हुए। श्वेत, श्वेतशिख, श्वेतास्य और श्वेतलोहित ये चार ब्राह्मण इनके शिष्य थे। ११ राजविशेष। (अग्निपु० अन्नदाननामाध्याय) १२ नागविशेष। (भागवत ५।२४।३) १३ श्वेत वराह, वराहमूर्त्तिभेद। १४ श्वेत जीरक, सफेद जीरा। १५ श्वेत अश्व, घोड़ा। १६ सफेद बादल। १७ शोभाञ्जन वृक्ष, सहिंजन। १८ आयुर्वेदमें तीसरी त्वचाकी संज्ञा, शरीरके चमड़ीकी तीसरी तह। १९ स्कन्दानुचरभेद। २० केतुग्रह या पुच्छलतारा। (त्रि०) २१ जिसमें कोई रंग न मालूम हो। बिना रंगका, सफेद धौला। विज्ञानसे सिद्ध है, कि श्वेत रंगमें सातों रंगोंका अभाव नहीं है बल्कि उनका गूढ़ मेल है। सूर्यकी किरणें देखनेमें सफेद जान पड़ती हैं पर रश्मि-विश्लेषण क्रियासे सातों रंगोंकी किरणें अलग हो जाती हैं। २२ शुभ्र, उज्ज्वल, साफ। २३ निष्कलङ्क, निर्दोष। २४ जो सांवला न हो, गोरा।

कविकल्पलतामें श्वेत वस्तुका विषय यों लिखा है—सुधांशु, उच्चैःश्रवा, शम्भु, कीर्त्ति, ज्योत्स्ना, शरद्घन, प्रासाद, सौध, तगर, मन्दारद्रुम, हिमाद्रि, सूर्यकान्त, इन्दुकान्त, कर्पूर, करभ, रजत, हली, हिमोक, भस्म, हिण्डीर, चन्दन, करका, हिम, हार, ऊर्णनाभतन्तु, अस्थि, स्वर्गङ्गा, हस्तिदन्त, अभ्र, शेषाहि, शर्करा, दुग्ध, दधि, गङ्गा, सुधाजल, मृणाल, सिकता, हंस, चकोर, चामर, रम्भागर्भ, पुण्डरीक, केतकी, शङ्ख, निर्झर, लोध्र, सिंहध्वज, छत्र, चूर्ण, सूक्ति, कपर्द्दक, मुक्ता, कुसुम, नक्षत्र, दन्त, पुण्य, उशना, सत्त्वगुण, कैलास, काश, कर्पास, हास, वासवकुञ्जर, नारद, पारद, कुन्द, खटिका और स्फटिक आदि वस्तु श्वेतवर्ण हैं।

श्वेतक (सं० क्ली०) श्वेतमेव स्वार्थे कन्। १ रूप्य, चांदी। २ कांस्य, कांसा। (पु०) ३ वराटक, कौड़ी। ४ श्वेत, सफेद रंग। (त्रि०) ४ श्वेतगुणविशिष्ट, सफेद।

श्वेतकटभी (सं० स्त्री०) १ शुक्लकटभी वृक्ष। २ श्वेतगुञ्जा।

श्वेतकण्टक (सं० पु०) श्वेत लज्जालुलता।

श्वेतकण्टकारिका (सं० स्त्री०) शुभ्रपुष्प कण्टकारी, सफेद फूलकी भटकटैया। गुण—रोचक, कटु, उष्ण, कफनाशक, चक्षुका हितकर, दीपन, रसनियामक।

भावप्रकाशके मतसे गुण—तिक्त, सारक लघु रुक्ष, पाचन तथा कास, श्वास, ज्वर, कफ, वायु पीनस, पार्श्वपीड़ा, क्रिमि और हृद्रोगनाशक। श्वेत और पीत दोनों प्रकारकी कण्टकारिकाका फल कटु, रसयुक्त, तिक्त, पाकमें कटु, शुक्ररेचक मलभेदक, लघु पित्त और अग्निउद्दीपक तथा कफ वायु कण्डु कास, क्रमि और ज्वरनाशक होता है। कण्टकारीके फलमें इनके सिवाय गर्भकारित्व एक विशेष गुण है।

श्वेतकण्टकारी (सं० स्त्री०) श्वेतकण्टकारिका देखो।

श्वेतकण्टारिका (सं० स्त्री०) श्वेतकण्टकारी, सफेद भटकटैया। तेलगू—बिलिय नेलमुलु। गुण—कटु उष्ण, वात और श्लेष्मघ्न, चक्षुका हितकर, दीपन, रसपाचक।

श्वेतकन्द (सं० पु०) प्याज।

श्वेतकन्दा (सं० स्त्री०) शुक्लातिविषा सफेद अतीस नामक औषध।

श्वेतकपोत (सं० पु०) १ एक प्रकारका चूहा। २ एक प्रकारका सांप।

श्वेतकरवीर (सं० पु०) श्वेत करवी, सफेद कनेर।

श्वेतकर्ण (सं० पु०) राजा सत्यकर्णके एक पुत्रका नाम।

श्वेतकाक (सं० पु०) शुक्ल काक, सफेद कौआ अर्थात् असम्भव बात।

श्वेतकाकीय (सं० त्रि०) १ कुक्कुर, मृग और काक सम्बन्धी या तत्तद्विषयाभिज्ञ अर्थात् जो कुक्कुरका नियत जागरूकत्व, मृगका भयचकितत्व और काकके इङ्गितस्वरका विषय अच्छी तरह जानता हो। २ बक सम्बन्धी। वर्षाकालमें बक जैसे स्वयं नीड़स्थ हो कर बकी द्वारा लाये हुए अन्नसे प्रतिपालित होता है वैसे उपायादि।

श्वेतकाञ्चन (सं० पु०) शुक्ल पुष्प काञ्चन वृक्ष सफेद काञ्चन फूलका पेड़।

श्वेतकाण्डा (सं० स्त्री०) श्वेत दूर्वा, सफेद दूब।

श्वेतकापोती (सं० स्त्री०) स्वनामख्यात महौषधि।

श्वेतकाम्भोजी (सं० स्त्री०) श्वेतगुञ्जा, सफेद घुंघची।

श्वेतकाष्ठा (सं० स्त्री०) श्वेतपाटला, सफेद पाढ़र।

श्वेतकि (सं० पु०) एक धर्मपरायण राजा।

श्वेतकिणिही (सं० स्त्री०) श्वेता किणिही। वृक्षविशेष। गुण—कटु, उष्ण तथा गुल्म, विष, आध्मान, शूलदोष वायु, कफ और जीर्णरोगनाशक।

श्वेतकुक्षि (सं० पु०) एक प्रकारकी मछली।

श्वेतकुञ्जर (सं० पु०) श्वेत कुञ्जर। १ ऐरावत हाथी। २ शुक्ल गज, सफेद हाथी।

श्वेतकुम्भिका (सं० स्त्री०) श्वेत पाटल वृक्ष।

श्वेतकुम्भा (सं० स्त्री०) श्वेतकुम्भिका देखो।

श्वेतकुरण्टक (सं० पु०) शुक्लझिण्टी, सफेद कटसरैया। गुण—तिक्त, दन्त और केशका हितकर, स्निग्ध, मधुर, उष्ण, तीक्ष्णवीर्य तथा वली, पलित, कुष्ठ और वातरक्त दोष, कफ, कण्डु और विषनाशक।

श्वेतकुश (सं० पु०) तृणविशेष, सफेद घास। इस की जड़का गुण—शीतल, रुचिकर, मधुर तथा पित्त, रक्त, ज्वर, तृष्णा, श्वास और कामलानाशक।

श्वेतकुष्ठ (सं० क्ली०) श्वित्र या धवल रोग, सफेद दाग वाला कोढ़। (माधवनिदान) मनुमें लिखा है, कि वस्त्र चुरानेसे यह रोग होता है।

श्वेतकुसुमा (सं० स्त्री०) श्वेत निर्गुण्डी, सफेद निसोथ।

श्वेतकृष्णा (सं० पु०) १ सफेद और काला। २ यह और वह पक्ष, एक बात और दूसरी बात। ३ एक प्रकार का विषैला कीड़ा।

श्वेतकेतु (सं० पु०) श्वेतः केतुर्यस्य। १ मुनिविशेष, उद्दालक मुनिके पुत्र। छान्दोग्य उपनिषद् पढ़नेसे जाना जाता है, कि इन्होंने पिताके आदेशसे राजर्षि जनकके पास जा कर सबसे पहले ब्रह्मविद्याको सीखा। उपनिषद्में इनके ब्रह्मविद्यालाभके सम्बन्धमें विस्तृत विवरण दिया जाता है। प्राचीनकालमें स्त्रियां स्वामीके सामने भी परपुरुष ग्रहण करती थीं। स्त्रियोंके पुरुषग्रहणके विषयमें कोई विशेष नियम नहीं था। श्वेतकेतुने इस दोषको निवारण कर समाजकी मर्यादा स्थापन की। महाभारतमें लिखा है, कि उद्दालक नामक धर्मपरायण एक महर्षि थे। श्वेतकेतु उनका एकमात्र पुत्र था। एक दिन एक ब्राह्मणने श्वेतकेतुके पिताके सामने उनकी माताका हाथ पकड़ कर कहा 'आओ, मेरे साथ चलो' श्वेतकेतु माताको परपुरुष द्वारा बलपूर्वक ले जाते देख

बड़े क्रुद्ध हुए। पिता उद्दालकने पुत्रका क्रोध देख उनसे कहा, 'वत्स! तुम क्रोध न करो, यह सनातन धर्म है। इस भूमण्डल पर सभी वर्णोंकी स्त्री स्वाधीन हैं। पृथिवी पर गोगण जिस प्रकार व्यवहार करती हैं, प्रजा भी अपने अपने वर्णमें उसी प्रकार आचरण करती हैं।'

श्वेतकेतु पिताका यह वाक्य सुन कर भी अपना क्रोध रोक न सके। उन्होंने यह नियम चलाया, कि आजसे जो स्त्री स्वामीके रहते व्यभिचारिणी होगी, उसे घोर दुःखदायक भ्रूणहत्यासदृश पाप होगा। फिर जो पुरुष पतिव्रता प्रणयिनी भार्याका अतिक्रम कर परनारीसे संभोग करेगा, उसे भी वही पाप होगा और जो पत्नी स्वामी द्वारा पुत्रोत्पादनार्थ नियुक्त हो कर उसके वाक्यकी अवहेला करेगी, उसे भी उक्त पाप होगा। श्वेतकेतुने इसी प्रकार धर्मानुसारिणी समाजकी मर्यादा स्थापन की। तभीसे स्त्रीपुरुषका यदृच्छा व्यवहार निषिद्ध हुआ है। (भारत आदिप० १५२ अ०)

२ बुद्ध। ३ केतुग्रहविशेष।

पश्चिम दिशामें श्वेतकेतु, ऊर्मिकेतु और धूमकेतु ये तीन प्रकारके केतु उदय होते हैं। जिस समय श्वेतकेतुका उदय होता है, उस समय पृथिवी श्वेतास्थिसे परिपूर्ण होती है, मनुष्य मनुष्यका मांस खाता है, अर्थात् घोर दुर्भिक्ष उपस्थित हो कर समस्त जीवको कष्ट देता है तथा समस्त जगत् क्षुधा और भयसे प्रपीड़ित हो चक्रवत् भ्रमण करता है।

दूसरेके मतसे चार प्रकारके केतुका उल्लेख देखा जाता है। उनमेंसे श्वेतकेतुके उदयसे अग्निभय, पीत केतुके उदयसे दुर्भिक्ष और कृष्णकेतुके उदयसे प्रबल रोगका प्रादुर्भाव होता है।

यह केतु जटा सदृश श्यामवर्ण तथा आकाशका त्रिभागगामी होता है और जिस ओर उदय होता है उसके विपरीत ओर निवर्त्तित होता है। इस केतुके उदयसे प्रजात्रिभागीकृत अर्थात् सारी प्रजाके चार भागमेंसे एक भाग विनष्ट होता है। (समयामृत)

श्वेतकेश (सं० पु०) श्वेताः केशा यस्मात्। १ रक्त शिग्रु, लाल सहिंजन। (जटाधर) श्वेतः केशः। २ शुक्लवर्ण केश, सफेद बाल।

श्वेतकोल (सं० पु०) श्वेतः कोलः क्रोड़देशो यस्य। शफर मत्स्य, पोठी या पोठिया मछली।

श्वेतखदिर (सं० पु०) श्वेतः खदिरः। शुक्ल खदिरवृक्ष, सफेद खैर। महाराष्ट्र—पाढ़रा खेर। कलिङ्ग—विद्धियतर्च्चि, पापरी, खैर, तैलङ्ग—तेल्लचण्ड। गुण—तिक्त, कषाय, कटु, उष्ण, कण्डुति, कुष्ठ, कफ, वात और व्रणनाशक। (राजनि०)

श्वेतगङ्गा (सं० स्त्री०) तीर्थभेद। इस तीर्थमें स्नान कर जो श्वेतमाधवको देखते हैं, उनकी श्वेतद्वीपमें गति होती है।

श्वेतगज (सं० पु०) श्वेतः शुक्लो गजः। १ दन्तिहस्ती, ऐरावत हाथी। ऐरावत सफेद होता है इसीसे उसे श्वेतगज कहते हैं। २ शुभ्रवर्ण हस्ती, सफेद हाथी।

श्वेतगरुत् (सं० पु०) श्वेतः गरुत्पक्षो यस्य। हंस, राजहंस।

श्वेतगिरि (सं० पु०) श्वेत पर्वत, जम्बूद्वीपके वर्षपर्वतोंमेंसे एक पर्वत। (मार्कण्डेयपु० ५४।६)

श्वेतगुञ्जा (सं० स्त्री०) श्वेता गुञ्जा। शुक्लवर्ण गुञ्जा, सफेद घुंघची। गुण—तीक्ष्ण, उष्ण। इसका बीज वमनकारक, मूलशूल और विषनाशक होता है। इसका पत्ता वशीकार्यमें प्रशस्त माना गया है। (राजनि०)

श्वेतगुणवत् (सं० त्रि०) श्वेतगुण अस्त्यर्थे मतुप् मस्य वः। श्वेतगुणविशिष्ट, सफेद गुणवाला।

श्वेतगोकर्णी (सं० स्त्री०) एक प्रकारकी लता।

श्वेतघण्टा (सं० स्त्री०) १ नागदन्ती। २ दन्ती।

श्वेतघण्टी (सं० स्त्री०) श्वेतघण्टा।

श्वेतचन्दन (सं० पु०) श्वेतं चन्दनं। शुभ्रवर्ण चन्दन, सारचन्दन चन्दन। कहनेसे सारचन्दनका बोध होता है। चन्दन देखो।

श्वेतचम्पक (सं० पु०) श्वेतः शुभ्रवर्णश्चम्पकः। शुभ्रवर्ण चम्पक, सफेद चंपा।

श्वेतचरण (सं० पु०) श्वेतौ चरणौ यस्य। १ प्लवचर जलपक्षिविशेष। (सुश्रुत सूत्रस्था० ४६ अ०) (त्रि०) २ श्वेतचरणविशिष्ट, सफेद पैरवाला।

श्वेतचिल्लिका (सं० स्त्री०) श्वेता चिल्लिका। श्वेतचिल्ली, एक प्रकारका साग। गुण—मधुर, क्षार,

शीतल त्रिदोषशमनकारी और ज्वरनाशक। (राजनि०)
श्वेतछत्र (सं० क्ली०) श्वेत छत्र। शुभ्रवर्णछत्र, सफेद छाता। (भागवत ६।१०।४२)
श्वेतछद (सं० पु०) श्वेत छदो यस्य। १ हंस। (हला युध) २ गन्धपत्र, वनतुलसी। (शब्दच०)
श्वेतजयन्ती (सं० स्त्री०) श्वेता जयन्ती, शुक्लजयन्तीवृक्ष।
श्वेतजरण (सं० पु०) शुक्ल जीरक, सफेद जीरा।
श्वेतजलज (सं० क्ली०) कुमुद।
श्वेतजीरक (सं० पुं०) श्वेतजीरक। गौरजीरक, सफेद जीरा। गुण—रुचिकर, कटु, मधुर, दीपन, कृमि नाशक विष और ज्वरनाशक तथा उदराध्मानजनक।
श्वेतटङ्कण (सं० क्ली०) श्वेत टङ्कण। श्वेतटङ्कण, सफेद सोहागा। गुण—स्निग्ध, कटु, उष्ण, कफ वात आम, क्षय, श्वास, कास और मलनाशक।
श्वेतटङ्कण (सं० क्ली०) श्वेतटङ्कण देखो।
श्वेततण्डुलमण्ड (सं० पु० क्ली०) श्वेततण्डुलस्य मण्ड। आतपतण्डुलसिद्ध मण्ड, अरवा चावलका माड। गुण—मधुर शीतल, किञ्चित् श्लेष्मवर्द्धक, शोषनाशक, अश्मरी, मेह, छर्दि और वातवर्द्धक। (भविष्य० १२ अ०)
श्वेततपस् (सं० पु०) श्वेत नामक एक ऋषि।
श्वेततर (सं० पु०) वैदिक शाखाविशेष।
श्वेततरन्ता (सं० स्त्री०) श्वेतवर्ण पुष्पविशिष्ट एक जातिकी तरुलता (Ipomoca quamoclit)।
श्वेतता (सं० स्त्री०) उज्ज्वलता, शुभ्रता, सफेदी।
श्वेततुलसी (सं० स्त्री०) श्वेतपत्र तुलसी वृक्ष।
श्वेतत्रिवृत् (सं० स्त्री०) शुक्लमूल त्रिवृत् सफेद निसोथ। गुण—रेचक, वायुनाशक, रुक्ष, पित्तज्वर श्लेष्मा पित्तज, शोथ और उदररोगनाशक। (भावप्र०)
श्वेतदूर्वा (सं० स्त्री०) श्वेतदूर्वा, सफेद दूब।
श्वेतदन्ता (सं० स्त्री०) नागदन्ती।
श्वेतदूर्वा (सं० स्त्री०) श्वेता दूर्वा, सफेद दूब। इसका गुण—अति शिशिर, मधुर, वमन, पित्त, आम, अतिसार, कास, दाह और तृष्णानाशक, रुचिकर।
श्वेतद्युति (सं० पु०) चन्द्रमा।
श्वेतद्रुम (सं० पु०) श्वेत द्रुमः। वरुणवृक्ष, वरुणका पेड़।

श्वेतद्विप (सं० पु०) श्वेत शुक्ल द्विपः। १ इन्द्रहस्ती, ऐरावत। २ शुक्लवर्ण हस्ती, सफेद हाथी।
श्वेतद्वीप (सं० पु०) श्वेतो द्वीपः। १ चन्द्रद्वीप। वैकुण्ठाख्य विष्णुधामको श्वेतद्वीप कहते हैं। (भाग० ८।४।१८) २ इङ्गलैण्डका एक नाम। अङ्गरेजी Albania नामके अनुकरण पर इसका श्वेतद्वीप नाम हुआ है।
श्वेतधातु (सं० पु०) श्वेतो धातुः। १ खटिका, दुग्ध पाषाण, दुधखल्ली। २ शुक्लवर्ण धातु द्रव्य।
श्वेतधामन् (सं० पु०) श्वेत धाम किरण यस्य। १ चन्द्रमा। २ कर्पूर, कपूर। ३ समुद्रफेन। ४ अपामार्ग चिचड़ा। ५ अपराजिता।
श्वेतधूपकी (सं० स्त्री०) शुक्लधूनक सफेद धूना।
श्वेतना (सं० स्त्री०) ऊषा कालका आह्वान।
श्वेतनाड़ी (सं० स्त्री०) १ खटिका, फूलखड़ी। २ श्वेता पराजित, सफेद कोयल।
श्वेतनामन् (सं० पु०) श्वेतवर्ण अपराजिता पुष्प।
श्वेतनामा (सं० स्त्री०) श्वेतापराजिता, सफेद कोयल।
श्वेतनिष्पावा (सं० स्त्री०) श्वेतपुष्पनिष्पाव, सफेद सेम। इसका गुण—रुचिकर, मधुर, अल्प कषाय, शीतल, वातवर्द्धक, बल और आध्मानकर तथा पुष्टिकारक।
श्वेतनील (सं० पु०) श्वेतो नीलश्च 'वर्णोवर्णेनेति समासः। १ मेघ, बादल। २ शुक्ल और नीलवर्ण, सफेद और नीला रङ्ग।
श्वेतपक्ष (सं० पु०) श्वेतः पक्षो यस्य। हंस।
श्वेतपट (सं० पु०) एक वैदिक शाखाध्यायीका नाम।
श्वेतपटल (सं० क्ली०) धातु धातु, अस्ता नामक धातु।
श्वेतपत्र (सं० पु०) श्वेत पत्र पक्षो यस्य। १ हंस, राजहंस। २ श्वेत कमल। ३ श्वेत तुलसी। ४ हस्वकुश, छोटा सफेद कुश।
श्वेतपत्ररथ (सं० पु०) १ श्वेत पत्रा हंसो रथो वाहन यस्य। ब्रह्मा।
श्वेतपत्रा (सं० स्त्री०) श्वेत निष्पा, सफेद सेम।
श्वेतपद्म (सं० क्ली०) श्वेत शुक्ल पद्म। सिताम्भोज। गुण—हिम तिक्त मधुर, पित्त दाह अस्र, भ्रम और पिपासानाशक।

श्वेतपर्ण (सं० पु०) १ श्वेतार्जक, सफेद वनतुलसी। (पर्यायमुक्ता०) २ महाभारतपर्वके अन्तर्गत पर्वतविशेष।

श्वेतपर्णा (सं० स्त्री०) वारिपर्णी, जलकुम्भी।

श्वेतपर्णास (सं० पु०) श्वेत तुलसी, पर्याय—अर्जक, गन्धपत्र, कठेरक। (रत्नमाला)

श्वेतपर्वत (सं० पु०) पर्वतभेद। (भारत सभापर्व)

श्वेतपाकी (सं० स्त्री०) श्वेतपाक्याः फल। श्वेतपाकी वृक्षका फल। (पा ४।३।१६७)

श्वेतपाटला (सं० स्त्री०) शुक्लपुष्प पारुल वृक्ष।

श्वेतपाद (सं० पु०) शिवके एक गणका नाम।

श्वेतपारावत (सं० पु०) शुभ्र कपोत, सफेद कबूतर।

श्वेतपाषाण (सं० पु०) १ शुभ्र प्रस्तर, सफेद पत्थर। २ स्फटिक।

श्वेतपिङ्ग (सं० पु०) देहेन श्वेतः जटया पिङ्गश्च वर्णो वर्णेनेति समासः। सिंह।

श्वेतपिङ्गल (सं० पु०) १ सिंह। २ महादेव। (त्रि०) ३ शुक्ल कपिल वर्णयुक्त, सफेद मटमैला रंगवाला।

श्वेतपिङ्गलक (सं० पु०) श्वेतपिंगल कन् स्वार्थे। सिंह।

श्वेतपिण्डीतक (सं० पु०) महापिण्डी तरु, श्वेतपुष्प। मदनवृक्ष।

श्वेतपुङ्खा (सं० स्त्री०) श्वेतपुष्प, शरपुङ्खा।

श्वेतपुनर्नवा (सं० स्त्री०) शुभ्र पुनर्णवा, सफेद गदहपूरना। इसका गुण—कटु, कषायानुरस, दीपन तथा पाण्डु, शोथ, वायु, गरदोष, श्लेष्मा, व्रण और उदररोगनाशक।

श्वेतपुष्प (सं० पु०) १ श्वेत सिन्धुवार वृक्ष, सफेद निर्गुण्डी। २ महाशणक्षुप। ३ सेवन्ती पुष्पवृक्ष। ४ वरुण वृक्ष। ५ अर्कवृक्ष, अकवन। (क्ली०) ६ शुक्ल पुष्प, सफेद फूल।

श्वेतपुष्पक (सं० पु०) १ करवीर वृक्ष, कनेरका पेड़। २ श्वेतकाशतृण। (त्रि०) ३ शुक्ल पुष्पयुक्त, सफेद फूलवाला।

श्वेतपुष्पा (सं० स्त्री०) १ कोषातकी लता। २ श्वेत शण, सफेद सन। ३ श्वेत निर्गुण्डी। ४ श्वेत गोकर्णिका, सफेद अपराजिता। ५ नागदन्ती। ६ मृगेर्व्वारु, सफेद इन्द्रायण।

श्वेतपुष्पिका (सं० स्त्री०) १ पुत्रदात्रीलता। २ महाशण-पुष्पिका, बड़ी सनपुष्पी।

श्वेतपुष्पी (सं० स्त्री०) श्वेतपुष्पिका देखो।

श्वेतपूरीका (सं० स्त्री०) खाद्य द्रव्यभेद। प्रस्तुत प्रणाली—गेहूंके चूर्णमें थोड़ा दस प्रकार मिलाना होगा, जिसमें वह आपे आप पिण्डाकारमें परिणत हो जाय; पीछे उक्त पिण्डमें थोड़ा जल मिला कर अच्छी तरह गूंधे और उसीका पूर अर्थात् पूआ बना कर घृतमें पाक करे। पाकके बाद चीनीके रस अर्थात् चाशनीमें डालनेसे वह अत्यन्त दुर्जर और जड़ताकारक होता है, किन्तु स्वभावतः यह धातुवर्द्धक, स्निग्ध, गुरु, वात और पित्तनाशक है।

श्वेतप्रदर (सं० क्ली०) वह प्रदर रोग जिसमें स्त्रियोंको सफेद रंगकी धातु गिरती है।

श्वेतप्रसूनक (सं० पु०) श्वेतानि प्रसूनानि यस्य। १ शुक्र वृक्ष, मागोरका पेड़। (त्रि०) २ श्वेतवर्णपुष्पयुक्त, सफेद फूलवाला।

श्वेतफला (सं० स्त्री०) शुक्ल वृहती, सफेद भंटा।

श्वेतबुहा (सं० स्त्री०) वनतिक्ता।

श्वेतबृहती (सं० स्त्री०) शुक्ल क्षुद्र वार्त्ताकी, सफेद भंटा। इसका गुण—वातश्लेष्मनाशक, व्यञ्जनयोगमें रोचक तथा नाना प्रकारके नेत्ररोगमें उपकारक।

श्वेतभण्टिका (सं० स्त्री०) शुक्ल वार्त्ताकी, सफेद भंटा।

श्वेतभण्डा (सं० स्त्री०) श्वेत अपराजिता।

श्वेतभानु (सं० पु०) चन्द्रमा।

श्वेतभिक्षु (सं० पु०) पाण्डवभिक्षु। इस सम्प्रदायके लोग पाण्डुवर्ण वस्त्र पहनते और धूर्त्त तपस्वी होते हैं।

श्वेतभुजङ्ग (सं० पु०) ब्रह्माका एक अवतार।

श्वेतभृङ्गराज (सं० पु०) शुक्लपुष्प भृङ्गराज, सफेद भीमराज।

श्वेतमञ्जरी (सं० स्त्री०) तुलसीक्षुप।

श्वेतमण्डल (सं० पु०) १ चक्षुका अभ्यन्तरस्थ शुक्लभाग, आंखके भीतरका सफेद हिस्सा। २ मण्डलीक-सर्पविशेष। (सुश्रुतकल्प)

श्वेतमद्य (सं० पु०) मुस्तक, मोथा।

श्वेतमन्दार (सं० पु०) १ श्वेतार्क वृक्ष। सफेद अकवन। मराठी—श्वेतमदार। कर्णाट—बिलिम मन्दारण। इसका गुण—अति उष्ण, तिक्त, मलशोधन तथा मूत्रकृच्छ्र और कृमिनाशक।

श्वेतमन्दारक (सं० पु०) श्वेतमन्दार देखो।

श्वेतमयूख (सं० पु०) चन्द्रमा।

श्वेतमरिच (सं० पु०) १ शोभाञ्जन बीज, सहिजनके बीज। महाराष्ट्र—पाण्डरे मिरिये, कर्णाट—बिलिय मेनसु, तेलगू—तेल्ल मिरियालु। इसका गुण—कटु, उष्ण तथा विष, भूतग्रह और दृष्टिरोगनिवर्त्तक। युक्तिपूर्वक प्रयोग करनेसे यह रसायनका काम करता है। २ श्वेत शिग्रु, सफेद सहिंजनका पेड़। ३ सफेद मिर्च।

श्वेतमहोटिका (सं० स्त्री०) श्वेत वृहती, सफेद भटा।

श्वेतमाण्डव्य (सं० पु०) ऋषिभेद।

श्वेतमाधव (सं० क्ली०) १ तीर्थभेद। (पु०) २ विष्णु मूर्त्तिभेद।

श्वेतमाल (सं० पु०) श्वेता शुक्लवर्णा माला यस्य। १ मेघ, बादल। २ धूम, धुआं। (विश्व) मेदिनी और शब्दरत्नावलीमें 'श्वतमाल ऐसा पाठ है।

श्वेतमाष (सं० क्ली०) सफेद उड़द।

श्वेतमुर्गा (सं० स्त्री०) सफेद मोरंग फूल।

श्वेतमूत्रता (सं० स्त्री०) कफरोगमें सफेद पेशाब निकलना।

श्वेतमूल (सं० पु०) श्वेत पुनर्णवा, सफेद गदहपूरना।

श्वेतमूला (सं० स्त्री०) पुनर्णवाभेद, एक प्रकारकी गदहपूरना।

श्वेतमृग (सं० पु०) मृगयमृगविशेष। (चरक)

श्वेतमेह (सं० क्ली०) शीतमेह।

श्वेतमोद (सं० पु०) पीडाकारक ग्रहविशेष। इसके आवेशसे मनुष्यके शरीरमें अनेक प्रकारका रोग हो जाता है। (हरिवंश)

श्वेतयावन (सं० त्रि०) श्वेत यातानि श्वेत्या प्रणिप्। श्वेत प्राप्त, जिसमें सफेदी हो।

श्वेतयावरी (सं० स्त्री०) कुछ नदियोंके नाम। इनका जल बड़ा स्वच्छ और सफेद है, इसीसे इनका नाम यह हुआ है। (ऋक् ८।२६।१८)

श्वेतयूथिका (सं० स्त्री०) शुक्लयूथिका, सफेद जूही।

श्वेतरक्त (सं० पु०) श्वेतो रक्तश्च। १ पाटल वर्ण, गुलाबी रंग। (त्रि०) २ पाटलवर्ण विशिष्ट, गुलाबी रंगका।

श्वेतरञ्जन (सं० क्ली०) श्वेत सितान्न रञ्जयति रञ्ज ल्युट्। सीसक, सीसा।

श्वेतरत्न (सं० क्ली०) स्फटिक। (पर्यायमुक्ता०)

श्वेतरथ (सं० पु०) श्वेतो रथो यस्य। १ शुक्रग्रह। २ शुक्लवर्ण स्यन्दन, सफेद रथ।

श्वेतरश्मि (सं० पु०) १ चन्द्रमा। २ श्वेत ऐरावत रूपधारी गन्धर्वविशेष।

श्वेतरस (सं० क्ली०) नवनीत, मक्खन।

श्वेतराजि (सं० स्त्री०) श्वेतेन वर्णेन राजते इति राज अच् ततो गौरादित्वात् ङीष विकल्पे ह्रस्वत्व। चचेण्डा, चिचिण्डा। इसकी तरकारी होती है।

श्वेतराजिका (सं० स्त्री०) श्वेतपीत सर्षप, सफेद और पीली सरसों।

श्वेतराजी (सं० स्त्री०) श्वेतराजिका देखो।

श्वेतराजक (सं० पु०) निर्गुण्डी वृक्ष।

श्वेतरास्ना (सं० स्त्री०) श्वेतपुष्प रास्नाविशेष।

श्वेतरूप्य (सं० क्ली०) अन्तामिश्रित प्युटर नामक धातु।

श्वेतरोचिस् (सं० पु०) श्वेत रोचिर्यस्य। चन्द्रमा।

श्वेतरोध्र (सं० पु०) पट्टिका लोध, पठानी लोध।

श्वेतरोहित (सं० पु०) पुष्पेण श्वेत फलेन लोहितः लस्य रः। १ शुक्लपुष्प रोहित वृक्ष, सफेद रोहेड़ा। इसका गुण—कटु, स्निग्ध, कषाय शीतल तथा क्रिमि दोष, व्रण, प्लीहा, रक्तदोष और नेत्ररोगप्रशामक। (राजनि०) २ गरुडका एक नाम।

श्वेतलक्ष्मणा (सं० स्त्री०) श्वेतकण्टकारिका, सफेद कटकारी।

श्वेतलोध्र (सं० पु०) पट्टिका लोध, पठानी लोध।

श्वेतलोहित (सं० पु०) १ शिवका एक अवतार। २ शिवाशसम्भूत श्वेतकी प्रवर्त्तित शाखा।

श्वेतवक्त्र (सं० पु०) स्कन्दके एक अनुचरका नाम।

श्वेतवच (सं० स्त्री०) १ वचा, सफेद वच। २ अतिविषा, अतीस। इसका गुण—बुद्धि मेधा, आयु और

समृद्धिप्रद, वृष्य, दीपन तथा कफ, मूतग्रह, वात और क्रिमिदोषनिवर्त्तक। भावप्रकाशमें लिखा है, कि पारसीक वच भी सफेद तथा हैमवती कहलाता और श्वेत वचके समान गुणविशिष्ट होता है।

श्वेतवत्सा (सं० त्रि०) श्वेतवर्ण वत्सविशिष्टा गाभी, वह गाय जिसका बच्चा सफेद हो। (शतपथब्रा० ५।३।२।१)

श्वेतवर्णक (सं० क्ली०) श्वेत रक्तचन्दन, सफेद और लाल चंदन।

श्वेतवर्णा (सं० स्त्री०) १ वराटकभेद, सफेद कौड़ी। २ श्वेतपुष्प पाटलवृक्ष, सफेद पढ़ारकी लता।

श्वेतवर्व्वरक (सं० क्ली०) वर्व्वर चन्दन।

श्वेतवर्व्वरिका (सं० स्त्री०) शुभ्र तुलसी, सफेद तुलसी।

श्वेतवल्कल (सं० पु०) श्वेतं वल्कलं यस्य। उदुम्बरवृक्ष, गूलर।

श्वेतवल्ली (सं० स्त्री०) शुक्लवास्तुक शाक, सफेद बथुआ।

श्वेतवस्त्रिन् (सं० त्रि०) श्वेत वस्त्रधारी, सफेद कपड़ा पहननेवाला।

श्वेतवह (सं० पु०) इन्द्र।

श्वेतवाराह (सं० पु०) १ ब्रह्माकी सृष्टिके आदियुगका प्रथम कल्प। इसका परिमाण ४३२०००००० वर्ष है; इस कल्पके स्वायम्भुव, स्वारोचिष, उत्तमज, तामस, रैवत और चाक्षुष आदि छः मनु यथाक्रम गुजर गये हैं। इस समय वैवस्वत नामक सप्तम मनुका अधिकारकाल है, इनका भी सत्ताईस युग व्यतीत हो कर वर्त्तमान अठाईस युगमें कलिका प्रारम्भ हुआ है। २ विष्णुका एक रूप। ३ एक तीर्थका नाम।

श्वेतवाजिन् (सं० पु०) श्वेतो वाजी घोटको यस्य। १ चन्द्रमा। २ अर्ज्जुन। ३ शुक्ल घोटक, सफेद घोड़ा।

श्वेतवारिज (सं० क्ली०) श्वेतपद्म।

श्वेतवार्त्ताकिनी (सं० स्त्री०) श्वेत वृहती, सफेद भंटा।

श्वेतवासस् (सं० पु०) श्वेतं वासो यस्य। १ शुक्लवस्त्रधारी सन्यासी। (हलायुध) (त्रि०) परिहित शुक्लवसन, जो सफेद कपड़ा पहने हुए हो।

श्वेतवाह् (सं० पु०) श्वेतेन वाहनेन उह्यते इति वह णिव (पा ३।२।६४) इन्द्र।

श्वेतवाह (सं० पु०) श्वेतः शुक्लः वाहो घोटको यस्य। १ अर्जुन। २ इन्द्र। ३ अर्जुनवृक्ष। (वाग्भट सू०)

श्वेतवाहन (सं० पु०) श्वेतं वाहनं यस्य। १ शिव। (हरिवंश) २ चन्द्रमा। ३ अर्जुन। ये सफेद घोड़े वाले रथ पर चढ़ कर युद्ध करते थे इसलिये इनका यह नाम पड़ा। ४ मकर। ५ राजाधिदेवके पुत्र और विदुरथके पौत्र। (हरिवंश ३८।२)

श्वेतवाहिन् (सं० पु०) श्वेतवाहः श्वेतघोटकोऽस्यास्तीति इनि। अर्जुन।

श्वेतविट्कता (सं० स्त्री०) श्वेता विट् यस्य, श्वेतविटकः तस्य भावः तल्-टाप्। कफाधिक्य जन्य शुक्ल पुरीषता, कफकी अधिकता होनेसे विष्ठा सफेद हो जाती है।

श्वेतवीज (सं० पु०) श्वेतकुलत्थ, सफेद कुलथी कलाय।

श्वेतवृन्ताक (सं० पु०) शुक्लवर्ण वार्त्ताकु, सफेद बैंगन। यह बैंगन खाना नहीं चाहिये।

श्वेतवृहती (सं० स्त्री०) शुक्लवर्ण क्षुद्रवृहती, सफेद भंटा। कलिङ्ग—विलिय-गुल्लु, बम्बे—पाण्डरी और डोरली। यह वातश्लेष्मनाशक, रुचिकर, अञ्जनके साथ प्रयोग करनेसे नाना नेत्ररोगनाशक होता है।

श्वेतवृक्ष (सं० पु०) श्वेतोवृक्षः। १ वरुणवृक्ष। २ शुक्लवर्णवृक्ष, सफेद पेड़।

श्वेतव्रत (सं० पु०) धर्मसम्प्रदायभेद। (वासवदत्ता)

श्वेतशरपुङ्खा (सं० स्त्री०, श्वेता शरपुङ्खा। क्षुपविशेष, सफेद सरफोंका। गुण—कटु, उष्ण, कृमि और वातरोगनाशक।

श्वेतशर्कराकन्द (सं० पु०) सफेद शकरकंद।

श्वेतशारिवा (सं० स्त्री०) शारिवाभेद, सफेद अनन्तमूल। यह अनन्तमूल दुग्धगर्भा होता है अर्थात् इसको काटने या तोड़नेसे भीतरसे दूधके समान रस निकलता है। इसका गुण—शीतल, मधुर, शुक्रवर्द्धक, गुरु, स्निग्ध, तिक्त, सुगन्धि, कुष्ठ, कण्डू और ज्वरनाशक, देहदौर्गन्ध्य, अग्निमान्द्य, श्वास, कास और अरुचिनाशक, आमदोष, त्रिदोष, विष और रक्तदोषनाशक तथा कफ, अतिसार, तृष्णा, दाह और रक्तपित्तप्रशमक।

श्वेतशाल्मलि (सं० पु०) शुक्लपुष्प किंशुक वृक्ष, सफेद

सेमलका पेड़। इस शाल्मली वृक्षमें सफेद फूल होता है, इसलिये इसे श्वेतशाल्मलि कहते हैं।

श्वेतशिंशपा (सं० स्त्री०) श्वेतपत्र शिंशपावृक्ष सफेद पत्तेवाला शीसमका पेड़। महाराष्ट्र—पाण्डरशिंशपा और शिशव, कलिङ्ग—विलिय इवोड़ू। इसका गुण—तिक्त, शीतल और पित्तदाहनाशक।

श्वेतशिख (सं० पु०) शिवावतार श्वेतप्रवर्त्तित शिव सम्प्रदाय।

श्वेतशिग्रु (सं० पु०) श्वेत शुक्ल शिग्रु। शुक्ल शोभाञ्जन, सफेद सहिजन। महाराष्ट्र—पाण्डरा सेगया, विलियशुगिम। इस पेड़के फूल और पत्ते सफेद होते हैं। गुण—कटु तीक्ष्ण, शोफ, अङ्गव्यथा, मुखजाड्य और वायुनाशक, रुचिकर, दीपन।

श्वेतशिम्बा (सं० स्त्री०) श्वेता शिम्बा, श्वेतशिम्बी। सफेद सेम।

श्वेतशिला (सं० स्त्री०) श्वेतवर्ण पाषाणभेद, सफेद पत्थरचर। इसका गुण—शीतल, स्वादु, मेहकृच्छ्रनाशक, मूत्ररोध, अश्मरी, शूल, क्षय और पित्तनाशक।

श्वेतशीर्ष (सं० पु०) दैत्यविशेष। (हरिवंश)

श्वेतशुङ्ग (सं० पु०) श्वेता शुङ्गा यस्य। १ यव, जौ। (त्रि०) २ शुक्लवर्ण शुङ्गयुक्त।

श्वेतशूक (सं० पु०) श्वेत शूको यस्य। यव, जौ।

श्वेतशूरण (सं० पु०) श्वेत श्वेतवर्ण शूरण। वन शूरण वनभोल। महाराष्ट्र और बम्बई—पाण्डराशूरण, कलिङ्ग—विलियशूरण। इसका गुण—रुचिकर कटु उष्ण, कृमिघ्न, गुल्म, शूल और अरुचिनाशक।

श्वेतशेफालिका (सं० स्त्री०) शुक्लशेफालिकावृक्ष, सफेद निर्गुण्डी।

श्वेतशैल (सं० पु०) पर्वतभेद। (हरिवंश)

श्वेतशैलमय (सं० त्रि०) श्वेतवर्ण मर्मर प्रस्तर द्वारा समाच्छादित। (राजत० ६।३०२)

श्वेतश्रेष्ठ (सं० पु०) चन्दन वृक्ष।

श्वेतसर्ज्ज (सं० पु०) श्वेत श्वेतवर्ण सर्ज्ज। श्वेत धूनक सफेद धूना।

श्वेतसर्प (सं० पु०) १ वरुण वृक्ष। (अदाधर) २ शुभ्रवर्ण सर्प, सफेद साप।

श्वेतसर्षप (सं० पु०) श्वेत सर्षप। श्वेतवर्ण सर्षप, सफेद सरसों।

श्वेतसार (सं० पु०) श्वेत सारो यस्य। १ खदिर खैर। २ सजीव उद्भिज्जादिके अन्तर्निहित श्वेतवर्ण पदार्थ विशेष (starch)। यह ओसके समान सफेद, देखने में उज्ज्वल और टीपनेसे थोड़ा थोड़ा शब्द होता है गेहूं, आलू आदिमें यह बहुतायतसे पाया जाता है।

श्वेतसिंही (सं० स्त्री०) श्वेतवृहती सफेद कटकारी।

श्वेतसिद्ध (सं० पु०) स्कन्दके एक अनुचरका नाम।

श्वेतसुरसा (सं० स्त्री०) श्वेता सुरसा। १ शुक्ल शेफालिका, सफेद निर्गुण्डी। २ श्वेतपुष्प तुलसी वृक्ष।

श्वेतसुरा (सं० स्त्री०) सुराभेद एक प्रकारकी शराब।

श्वेतस्पन्दा (सं० स्त्री०) श्वेतापराजिता।

श्वेतहनु (सं० पु०) सर्पभेद, एक प्रकारका साप।

श्वेतहय (सं० पु०) श्वेतो हय। १ इन्द्राश्व इन्द्रका घोड़ा उच्चैःश्रवा। श्वेतो हयो यस्य। २ अर्जुन। (हेम) ३ शुक्लवर्ण घोटक सफेद घोड़ा। (त्रि०) श्वेतवर्ण अश्व विशिष्ट, सफेद घोड़ावाला।

श्वेतहर (सं० पु०) महाशाल वृक्ष।

श्वेतहस्तिन् (सं० पु०) श्वेतो हस्ती। १ ऐरावत। २ शुक्लवर्ण गज, सफेद हाथी। हस्ती देखो।

श्वेता (सं० स्त्री०) श्वेत टाप्। १ वराटिका, कौड़ी। २ काष्ठपाटला। ३ अतिविषा, अतीस। ४ अपराजिता। ५ श्वेत वृहती, सफेद बनभंटा। ६ श्वेत कण्टकारी, भटकटैया। ७ पाषाणभेद, पखानभेदो। ८ शिलावल्कला। ९ श्वेतदूर्व्वा सफेद दूब। १० वंशरोचना। ११ स्फटी, फिटकरी। १२ स्फटिकारिका फिटकरी। १३ गम्भारी वृक्ष। १४ लूताभेद, एक प्रकारकी मकड़ी। १५ शर्कराजात सुरा, चीनीकी शराब। इसका गुण—कास, अर्श, ग्रहणी, श्वास और प्रतिश्यायनाशक, मूत्र, कफ, स्तन्य रक्त और मांसवर्द्धक। (सुश्रुत सूत्रस्था० ४६ अ०) १६ शरीरकी सात त्वचाओंमेंसे तीसरी त्वचा। इसका प्रमाण व्रीहिका १२वां भाग। यह त्वचा चर्मदल, अजगल्ली और मशक की अधिष्ठानस्वरूप है अर्थात् अजल्ली आदि रोग इसी त्वचामें होता है दूसरी त्वचामें नहीं। १६ स्कन्दकी

ष

ष—संस्कृत या हिन्दी वर्णमालाके व्यञ्जन वर्णोंमें ३१वां वर्ण या अक्षर। इसका उच्चारणस्थान मूर्द्धा है, इससे यह मूर्द्धन्य वर्णोंमें कहा गया है।

"ऋटुरषा मूर्द्धन्या दन्त्या लृतुलसाः स्मृताः।"

(शिक्षाशास्त्र)

तन्त्रोक्त पर्याय—श्वेत, वासुदेव, पीत, प्राज्ञ, विनायक, परमेष्ठी, वामबाहु, श्रेष्ठ, गर्भविमोचन, लम्बोदर, यमीजेश, कामधूक. कामधूमक, सुश्री, उशना, वृष; लज्जा, मरुद्रक्षय, प्रिय, शिव, सूर्यात्मा, जठर, कोप, मन्ता, वक्ष, विदारिणी, कलकण्ठ, मध्यभिन्ना, गुह्यात्मा, मलपू, शिरः। (तन्त्र)

यह वर्ण अष्टकोणयुक्त, रक्तचन्दनसङ्काश, कुण्डलीकार, चतुर्वर्गप्रद, सुधानिर्मित शरीर, पञ्चदेव और पञ्चप्राणमय, रजः, सत्त्व। और तमः गुणत्रय संयुक्त, त्रिशक्ति, त्रिविन्दु और आत्मादि तत्त्वसंयुक्त तथा सर्वदेवमय है। इसको सर्वदा हृदयमें चिन्तना करना कर्त्तव्य है।

इसका प्रयोग केवल संस्कृत शब्दोंमें होता है और उच्चारण दो प्रकारसे होता है। कुछ लोग 'श' के समान इसका उच्चारण करते हैं और कुछ लोग 'ख' के समान। इसीसे हिन्दीकी पुरानी लिखावटमें इस अक्षरका व्यवहार कवर्गीय 'ख' के स्थान पर होता था।

ष (सं० पु०) १ कच, केश। २ मानव ३ सर्व, सभी। ४ गर्भविमोचन। ५ शिक्षक। ६ नाश, ध्वंस, क्षति। ७ अवशेष, बाकी। ८ प्राक्तन संस्कार। ९ ज्ञानलोप। १० मुक्ति, निर्वाण। ११ स्वर्ग। १२ निद्रा। (क्ली०) १३ अङ्कुर। १४ धैर्य। (त्रि०) १५ विज्ञ। १६ श्रेष्ठ, उत्तम। १७ शोभन, सुन्दर।

षङ्गन (सं० पु०) १ आलिंगन। २ समागम, मिलना।

षष् (सं० त्रि०) १ छः, गिनतीमें ६। (पु०) २ छःकी संख्या। ३ षाड़व जातिका एक राग। यह दीपकका पुत्र माना गया है। इसके गानेका समय प्रातः १ दंडसे ५ दंड तक है। इसमें सबसे कोमल स्वर लगते हैं। कोई कोई इसे आसावारी, ललित, टोड़ी और भैरवी आदि रागिनियोंसे उत्पन्न संकर राग मानते हैं।

षटि (सं० स्त्री०) शटी, कचूर।

षट्क (सं० त्रि०) षड्भिः क्रीतं षट्-कन् (संख्याया अतिदन्तायाः कन्। पा ५।१।२२) १ छः अर्थात् छःगुनेसे खरीदा हुआ। स्वार्थे कन्। (पु०) २ ६की संख्या। ३ छः वस्तुओंका समूह। इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख और ज्ञानके समूहको प्रायः षट्क कहते हैं।

षट्कटु (सं० क्ली०) सोंठ, पीपल, मिर्च, चई, चीता और पिपरामूल ये छः कटु द्रव्य षट्कटु कहलाते हैं।

षट्कनिघण्टु (सं० पु०) वैद्यकनिघण्टुभेद।

षट्कपाल (सं० त्रि०) छः कपालकार पात्रविशिष्ट।

षट्कर्ण (सं० त्रि०) १ जहां छः कान एकत्र हों। प्राचीन नीति है, कि छः कान अथवा तीन मनुष्योंका समावेश हो, वहां कोई गुप्त मन्त्रणा नहीं करनी चाहिए, करनेसे वह अवश्य ही सबों पर प्रकट हो जायगी। २ एक प्रकारकी वीणा या सितार जिसमें छः कान होते हैं।

षट्कर्मन् (सं० क्ली०) १ यजन प्रभृति छः प्रकारके कर्म। यजन, याजन, अध्ययन, अध्यापन, दान और प्रतिग्रह आदि कर्मोंको भी षट्कर्म कहते हैं। ब्राह्मण इन छः प्रकारके कर्मों द्वारा जीविकानिर्वाह और धर्मानुष्ठान करते हैं, इसीसे ब्राह्मणका दूसरा नाम षट्कर्मा हुआ है। इस षट्कर्मके मध्य याजन, अध्यापन और प्रतिग्रह ये तीन धर्म हैं। उक्त तीन कार्य द्वारा धर्मानुष्ठान तथा बाकी तीन द्वारा जीविका निर्वाह करना ब्राह्मणोंका कर्त्तव्य है।

२ छः प्रकारके शान्ति आदि कर्म। तन्त्रशास्त्रमें षट्कर्मका विधान इस प्रकार लिखा है—शान्तिकर्म, वशीकरण, स्तम्भन, विद्वेषण, उच्चाटन और मारण इन छः प्रकारके कर्मोंके नाम षट्कर्म हैं। इस षट्कर्ममेंसे जिस कर्म द्वारा रोग, कुकृत्या और ग्रहदोष निवारण होते हैं, उसे शान्तिकर्म कहते हैं। सभी लोगोंको वशमें लानेका नाम वशीकरण अर्थात् जिस क्रिया द्वारा मनुष्य वशीभूत होते हैं उसीको वशीकरण कहते हैं। जिस क्रिया द्वारा सबोंकी प्रवृत्ति रुक जाती

ह अर्थात् कार्यकारिताशक्ति जाती रहती है, उसे स्तम्भन, आपसके प्रणयविजनका ह्रदजनक जो कार्य है उसे विद्वेषण, जिस कर्म द्वारा स्वदेशसे उच्छेद कर दिया जाता है उसे उच्चाटन तथा जिसके द्वारा प्राणिहरण होता है उसे मारण कहते हैं। तन्त्रमें इस षट्कर्मको आभिचारिक क्रिया कहा है। तन्त्रशास्त्रमें अभिज्ञ व्यक्तिगण यदि यथाविधान इन सब कार्योंका अनुष्ठान करें तो शीघ्र ही फललाभ होता है। यह षट्कर्म करनेमें पहले सभी कर्मोंके देवता, दिशा और कालादिका ज्ञान रहना आवश्यक है। इन सब कर्मोंमें शान्तिकार्यके देवता रति, वशीकरणके देवता वाणी, स्तम्भन कार्यके देवता रमा विद्वेषणके ज्येष्ठा, उच्चाटनके दुर्गा और मारण कार्यके देवता काली हैं। अतएव इन षट्कर्मोंमें जो कर्म करना होगा उसके देवताकी पहले यथानियम पूजादि कर कार्यसाधन करना होता है।

षट्कर्ममें तिथि आदिका विशेष नियम है। तन्त्रोक्त तिथि वारादिका निरूपण करनेके बाद उस कार्यका अनुष्ठान करना होता है। बुध और बृहस्पतिवारमें पञ्चमी, द्वितीया, तृतीया और सप्तमी तिथिमें विद्वेषण कार्य प्रशस्त है। शनिवार और कृष्णाष्टमी तिथिमें उच्चाटन कार्य करना होता है। इस कार्यमें प्रदोषकाल अति प्रशस्त है। शनि और मङ्गलवारमें कृष्णाष्टमी, कृष्णा चतुर्दशी या अमावस्या होनेसे उसी दिन मारण कार्य करना उचित है। चन्द्र और बुधवारमें शुक्ला पञ्चमी, शुक्ला दशमी और पूर्णिमा तिथि पड़नेसे स्तम्भन कार्य तथा शुभग्रहके उदय और शुभ दिनमें शान्ति कार्य करना होता है। अशुभ ग्रहके उदयमें विद्वेषणादि अशुभ कार्य उत्तम है। रविवारमें रिक्ता तिथि होनेसे मृत्युयोगमें मारणकार्य करना चाहिये।

इस षट्कर्ममें जपकार्यका भी विशेष विशेष विधान लिखा है। वशीकरण कार्यमें पूर्वमुख हो जप आभिचारकार्यमें पश्चिममुख, आकर्षणमें अग्निकोणमें, मारणमें नैऋतकोणमें और उच्चाटनमें वायुकोणमें बैठ कर जप करे। मारण कार्य करनेके समय वसन और उष्णीष आदि सभी लोहित वर्ण करने होते हैं। इस कार्यमें लौहनिर्मित भूषणका धारण तथा वाम हस्तसे पूजादि करने कहे गये हैं।

मारणकार्यमें मनुष्यको स्नायुनिर्मित रज्जु प्रस्तुत कर युद्ध मिन्न मृत व्यक्तिकी अथवा गर्दभके दन्तकी जपमाला बना कर उसीसे जप करे। आकर्षण कार्यमें मत्त हस्तिदन्तनिर्मित माला द्वारा जप तथा विद्वेषण और उच्चाटन कार्यमें साध्य व्यक्तिके केशरूप सूत द्वारा अश्वदन्तनिर्मित माला बना कर जप करना होता है।

षट्कर्मका आसनादि नियम—पद्मासन, स्वस्तिकासन, विकटासन, कुक्कुटासन, वज्रासन और भद्रासन षट्कर्ममें प्रशस्त हैं। इसके सिवा पद्म, पाश, गदा, मूषल, वज्र और खड्ग नामकी छः मुद्राका भी षट्कर्ममें जरूरत होती है। यथा—शान्तिकर्ममें पद्ममुद्रा, वशीकरणमें पाशमुद्रा इत्यादि। षट्कर्म करनेके समय पञ्च तत्त्वका उदय स्थिर कर कार्य करना होता है। जलतत्त्वके उदयकालमें शान्तिकार्य, वह्नितत्त्वके उदयमें वशीकरण, पृथ्वीतत्त्वमें स्तम्भन, आकाश तत्त्वमें विद्वेषण वायुतत्त्वके उदयमें मारण कार्य करे।

इस पञ्चतत्त्वका उदय निम्नोक्त प्रकारसे स्थिर होता है। भूमितत्त्वके उदयकालमें दोनों नासापुटसे दण्डाकारमें श्वास निकलता है, जलतत्त्व और अग्नितत्त्वके उदयकालमें नाकके ऊर्ध्वभागसे वायुतत्त्वके उदयकालमें वक्रभावसे और आकाशतत्त्वके उदयकालमें नाकके मध्यभागसे श्वास निकलता है। इन सब श्वास निर्गमनके लक्षणों द्वारा किस समय किस तत्त्वका उदय होता है, उसका निरूपण कर यही कार्य सम्पन्न करें।

पञ्चतत्त्वका उदय और पञ्चभूतका मण्डल ज्ञान कर पीछे कर्मानुष्ठान करना आवश्यक है। जिस तत्त्वके उदयमें जो कार्य कहा गया है, उसी तत्त्वका मण्डल बना कर यह कार्य करे।

उक्त षट्कर्ममें 'ठ, यं, ल, ह, य, र' इन छः बीज मन्त्र द्वारा यथाक्रम यह सब कर्म करने होंगे तथा उन कार्योंमें ग्रथन, विदर्भ, सम्पुट, रोधन, योग और पल्लव इन छः प्रकारके मन्त्रोंका विन्यास करना होता है।

षट्कर्मके मन्त्र तथा देवताके श्वेत, रक्त, पीत मिश्र, कृष्ण और धूम्र ये छः प्रकारके वर्ण कहे गये हैं। शान्ति आदि षट्कर्ममें यथाक्रम उक्त छः प्रकारके वर्णविशिष्ट मन्त्र और देवताका ध्यान कर चन्दन, गोरोचना, हरिद्रा,

गृहधूम चिताङ्गार और आठ प्रकारके विषद्रव्यों द्वारा यथाक्रम मन्त्र लिखना होगा। श्येन पक्षीकी विष्ठा, चितामूल, विट्‌लवण, धतूरेका रस, गृहधूम, मरिच, पीपर और सोंठ इन्हें अष्टविष कहते हैं।

उच्चाटन कर्म करनेके समय मन्त्रके अन्तमें वषट्, मारणमें हुं फट्, स्तम्भनमें नमः, शान्तिकर्म और पौष्टिक कार्यमें स्वाहा पदका योग करना होता है। होम और तर्पण में मन्त्रके अन्तमें स्वाहा तथा न्यास और पूजा-मन्त्रके शेषमें नमः शब्द भी जोड़ा जाता है।

शान्ति आदि षट्कर्मोंमें मन्त्रके ग्रन्थनादि संस्कार-के लिये पात्रकी पृथकता निर्दिष्ट हुई है। शान्तिकार्य में रजत या ताम्रपात्र और वशीकरणमें भूर्जपत्र पर मन्त्र लिख कर ग्रथनादि संस्कार करे। सुवर्ण पात्रोंका सभी प्रकारके कार्योंमें व्यवहार हो सकता है। मार-णादि क्रूर कर्मोंमें प्रेतके वस्त्र पर मन्त्र लिखना होता है। शान्तिकार्यमें तीन प्रकारकी गंध, वशीकरणमें पञ्चगव्य, सर्वकार्यमें अष्टगन्ध और मारणमें अष्टविषका व्यवहार करे। शान्तिकर्ममें दूर्वा, वशीकरण आदिमें मयूरपुच्छ, सभी कार्योंमें सुवर्ण तथा क्रूरकर्मोंमें काक पुच्छकी कलम बना कर उसीसे मन्त्र लिखना होगा। अपने घरमें बैठ शान्तिकार्य, चण्डिकालयमें वशीकरण, देव गृहमें सभी कार्य और श्मशानमें क्रूर कार्य करना होता है। साधकको चाहिये, कि वे सम्यग्रूपसे देवता, काल और मुद्रादि जान कर षट्कर्मका अनुष्ठान करें। ऐसा करनेसे इस कर्मका फललाभ होगा। जो ये सब विषय अच्छी तरह नहीं जानते हैं उन्हें षट्कर्ममें नियुक्त होना उचित नहीं।

शान्ति आदि षट्कर्मोंका विधान तन्त्रसार और अन्यान्य तन्त्रोंमें लिखा है। विस्तार हो जानेके भयसे यहां उनका उल्लेख नहीं किया गया।

२ योगशास्त्रोक्त छः प्रकारके कर्म। धौति, वस्ति, नेति, नौलिकी, त्राटक और कपालभाति आदि योगशास्त्रोक्त क्रियाको षट्कर्म कहते हैं।

योगशास्त्रके मतसे षट्कर्मका आचरण करनेसे देहादि विशुद्ध और ज्ञानलाभ होता है। इस षट्कर्मके अनुष्ठान द्वारा आसन दृढ़ तथा चित्त शुद्ध होता है।

योग शब्द देखो।

षट्कल (सं० त्रि०) छः कलाविशिष्ट।

षट्कला (सं० पु०) संगीतमें ब्रह्मतालके चार भेदोंमेंसे एक भेद।

षट्कसम्पत्ति (सं० पु०) छः प्रकारके कर्म—शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा और समाधान।

षट्कार (सं० पु०) षट् शब्द उच्चारण, वषट्कार।

षट्कारक (सं० पु०) कर्त्तृ, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण इन छःकी समष्टिको षट्कारक कहते हैं। कारक शब्दमें इनका विस्तृत विवरण देखो।

कारक देखो।

षट्कुक्षि (सं० त्रि०) षडोदरसम्पन्न।

षट्कुलीय (सं० त्रि०) षट्कुल सम्बन्धी।

षट्कूटा (सं० स्त्री०) भैरवीविशेष। नीचे इसके मन्त्र, मन्त्र और पूजादिका विषय लिखा जाता है।

मन्त्र—ज्ञानार्णवमें लिखा है, कि 'डरलकसहैं डरलक-सहीं डरलकसहौं' इस मन्त्रसे षट्कूटा भैरवीकी पूजा करनी होती है। कोई कोई तृतीय बीज अर्थात् 'डरल-कसहौं' की जगह 'डरलकसहौः' ऐसा विसर्गान्त पढ़ते हैं। ध्यान—

"बालसूर्यप्रभां देवीं जवाकुसुमसन्निभाम्।
मुण्डमालावलीरम्यां बालसूर्यसमांशुकाम्।
सुवर्णकलसाकारपीनोन्नतपयोधराम्।
पाशाङ्कुशौ पुस्तकञ्च तथा च जपमालिकाम्।

(तन्त्रसार)

षट्कृत्वस् (सं० अव्य०) छः बार।

षट्कोण (सं० क्ली०) १ जातककी कोष्ठीके जातचक्रके लग्नस्थानसे छठवां घर। इस स्थानको ज्योतिषशास्त्रमें रिपुगृह कहते हैं। (ज्योतिस्तत्त्व)

षट्कोणा यस्य। २ वज्र, हीरक। (राजनि०) ३ तन्त्रोक्त यन्त्रभेद, गणेश यन्त्र। यह यन्त्र प्रथमतः ऊर्द्ध्वमुख त्रिकोण, उसके ऊपर अधोमुख त्रिकोण लिखनेसे जो षट्कोण होगा, उसके मध्यस्थ पणवमें गं यह गणेशबीज लिखे। प्रणवके चारों ओर श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं यह मन्त्र लिखना होगा। पीछे इसके बाहरवाले छः कोष्ठों-में ओं श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं यह छः बीज लिखने होंगे। इसके बाद छः सन्धिस्थानों में नमः, स्वाहा, वषट्, हुं,

षौषट् और फट ये छः अङ्ग मन्त्र लिखें। अनन्तर पद्मके अष्टदलमें तीन तीन मन्त्र वर्ण लिख कर अवशिष्ट वर्ण शेषदलमें विन्यास करे। यथा गणप १, तयेमव २, रद्वैव ३ रद स ४ र्वजन ५ मन ६ मानय ७ स्वाहा ८। पीछे उसे एक पंक्ति अनुलोम वर्ण एक पंक्ति विलोम वर्ण द्वारा वेष्टन कर उसके बहिर्भागमें आ क्रों इस वर्ण द्वारा वेष्टन करे। यह मन्त्र फिरसे दो भूपुर द्वारा वेष्टन करना होगा। लाक्षा, कुंकुम, गोरोचन, और मृगमद द्वारा भोजपत्र पर मन्त्र लिख कर सुवर्णके कवचमें रख कर पहननेसे साधक सर्वजन प्रार्थनीय सम्पत्ति भी आसानीसे लाभ कर सकते हैं। महा गणपतिका यह यन्त्रविधान देवताओंका भी पूज्य, सर्व सिद्धिकर और निखिल पुरुषार्थप्रद है।

षट्कोप (सं० पु०) एक पुराने आचार्यका नाम।

षट्खेटक—नगरभेद।

षट्चक्र—तन्त्रोक्त साधनाङ्गभूत निगूढ़ मानसप्रक्रियाके लिये दैहिक छः कल्पित पद्म। तान्त्रिक साधकोंने षट्चक्रभेदतत्त्व अच्छी तरह ज्ञान कर देहके सूक्ष्मतत्त्व ज्ञानलाभके सम्बन्धमें यथेष्ट उत्कर्ष लाभ किया था। हम श्रीमत्पूर्णानन्द प्रणीत षट्चक्रनिरूपण नामक ग्रन्थ पढ़नेसे उसका आभास पाते हैं। षट्चक्रनिरूपण ग्रन्थ में तान्त्रिक योगियोंके शरीरविषयशास्त्रको सूक्ष्मज्ञान वाहिनी नाड़िकाओंके क्रियातत्त्व (Psycological Physiology of the nervous sytem) सम्बन्धमें अति सूक्ष्म आलोचना देखी जाती है। वर्त्तमान एनाटमी (Anatomy) या फिजिओलोजी (Physiology) शास्त्रमें षट्चक्रके सूक्ष्मतत्त्वका हाल नहीं रहने पर भी हम इन सब जड़ीय विज्ञानके षट्चक्रकी सूक्ष्म भित्ति योगविद्याके प्रखर आलोकसे अति स्पष्टरूपमें देख पाते हैं। केवल nervous system षट्चक्रका आलोच्य विषय नहीं है, मास्तिष्क पदार्थमें भी (Cerebral substance) परमतत्त्व प्रबोधक ज्ञान निरूपित हुआ है। इन सब विषयोंका समावेश होनेके कारण ही षट्चक्रमें लिखी हुई उक्तियोंकी अच्छी तरह आलोचना होना उचित है। यहां पर पहले षट्चक्रका कुछ स्थूल आभास दिया जाता है—

मेरुदण्डके (spinal chord) मध्य तीन नाड़ी हैं, इड़ा, सुषुम्ना और पिङ्गला; बाईं ओर इड़ा, दाहिनी ओर पिङ्गला और दोनोंके बीचमें सुषुम्नाका अवस्थान है।

षट्चक्रग्रन्थकारका कहना है, कि मेरुदण्डके बहि र्भागमें वाम और दक्षिण ओर इड़ा तथा पिङ्गला नामकी दो नाड़ियां तथा मध्यस्थलमें सुषुम्ना नामकी नाड़ी विद्य मान है। यह नाड़ी चन्द्रसूर्याग्निरूपा है तथा उसने मस्तक की ओर अग्रसर हो कर खिले हुए धतूरेपुष्पका आकार (medulla oblongata) धारण किया है। इस सुषुम्ना वज्रनाड़ी है। नाड़ीमें एक और नाड़ी है। उसका नाम वज्रनाड़ी मेढ्रदेशसे उत्पन्न हो कर मस्तकमें फैल गई है। वज्रनाड़ी उज्ज्वल प्रभामयी है। मेरुदण्ड ही जीवसृष्टि का प्रधान गठन है। पाश्चात्यचिकित्साविज्ञानका Embriology पढ़नेसे जाना जाता है, कि मेरु दण्ड ही पहले पहल बनता है। फलतः मेरुदण्ड ही जैवशक्ति है। यह सबसे पहले अभिव्यक्त हो कर दैहिक क्रियाका सञ्चार करता है। ये सब नाड़ियाँ (nerves) पृष्ठवंश या मेरुदण्डसे उत्पन्न होती हैं। ये समुज्ज्वल और पद्मतन्तुकी तरह पतली हैं। (चित्र देखो)

हम पाश्चात्य शरीरविद्य (Physiology) ग्रन्थमें भी यह तत्त्व देखते हैं*।

---

* The spinal chord gives origin in its course to thirty one pairs of spinal nerves each nerve having two roots anterior and posterior the latter being distinguished by its greater thickness and by the presence of an enlargement called a ganglion, in which are found numerous bipolar cells The anterior root is motor the posterior sensory The mixed nerve after junction of the roots contains (a) sensory fibres passing posterior roots, (b) motor fibres coming from the anterior roots; (c) sympathetic fibre either Vaso motor or Vaso dilator The trunk of the great sympathetic nerve consists of a chain of swellings or ganglia (चक्र) connected by intermediate chords of grey nerve fibre,

षट्चक्रके साथ सुषुम्ना नाड़ीका ही घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसी सुषुम्ना नाड़ीमें षट्चक्रका अवस्थान है। सुषुम्ना नाड़ीमें जो सात पद्म दिखलाये गये हैं, उनमेंसे छः पद्म षट्चक्र कहलाते हैं। सप्तपद्मके नाम ये सब हैं,—१ मूलाधार, २ स्वाधिष्ठान, ३ मणिपुर, ४ अनाहत, ५ विशुद्ध, ६ आज्ञा और ७ सहस्रदल।

पहले साधारणभावमें इन सब पद्मोंका परिचय दिया जाता है। आधार-पद्म पायु-देशके कुछ ऊपर सुषुम्ना नाड़ीमें संलग्न है। उसके चार दल हैं; उन चार दलोंमें वं शं षं सं ये चार वर्ण हैं। इस पद्मके मध्य धराचक्र नामक एक चतुष्कोण चक्र है। उसके आठों ओर आठ शूल हैं। मध्यस्थलमें पृथ्वीबीज लं तथा कर्णिकामें त्रिकोणयन्त्र चित्रित है। इस पद्मके मध्य लिङ्गरूपी महादेव वास करते हैं तथा उसके अमृत निर्गमन स्थानमें मुँह सटा कर सर्परूपा कुण्डलिनी शक्ति रहती है। स्वाधिष्ठान पद्म लिङ्गमूलमें रहता है। उसके छः दल हैं। उन छः दलोंमें बं भं मं यं रं लं ये छः वर्ण हैं। उस पद्मके मध्यस्थलमें गोलाकृति वरुण मण्डल और उस मण्डलके बीच अर्द्धचन्द्र है; उसमें वं यह वर्ण अङ्कित है। उस पद्ममें वारुणी शक्ति रहती है। मणिपुर पद्म नाभिमूलमें अधिष्ठित है। उसके दश दल हैं। उन दश दलोंमें डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं ये दश वर्ण लिखे हैं। उस पद्मके मध्यस्थलमें त्रिकोण अग्निमण्डल है। उस त्रिकोणके तीन पार्श्वमें स्वस्तिक आकारके तीन भूपुर और मध्यस्थलमें रं यह वर्ण चिह्नित है। इस पद्मके मध्य लाकिनी शक्ति रहती है। अनाहत नामक पद्म हृदयमें अवस्थित है। उसके बारह दल हैं। उन बारह दलोंमें कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं ये बारह वर्ण अङ्कित हैं। इस पद्ममें छः कोणवाला वायुमण्डल तथा उसके मध्य यं बीज विद्यमान है। उस पद्ममें शिव और काकिनी शक्ति वास करती है। विशुद्ध नामक पद्म कण्ठदेशमें अवस्थित है। उसके सोलह दल हैं। उन सोलह दलोंमें, अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं लॄं एं ऐं ओं औं अं अः ये सोलह वर्ण लिखे हैं। उस पद्मके मध्यस्थलमें गोलाकार चन्द्रमण्डल तथा उसके भीतर गोलाकृति नभोमण्डल और हं बीज वर्त्तमान है। उस पद्ममें शाकिनी शक्ति वास करती है। भ्रूके मध्य आज्ञा नामक द्विदल पद्म है। उसके दो दलोंमें हं क्षं ये दो वर्ण हैं। उसके मध्य त्रिकोणाकृति शक्ति और उस शक्तिके मध्य शिव अवस्थित हैं। इस पद्ममें हाकिनी शक्ति रहती है। इसके कुछ ऊपर प्रणवाकृति परमात्मा है। उसके ऊपरी भागमें चन्द्र-बिन्दु, उसके ऊपर शङ्खिनी नाड़ी और सबके ऊपर सहस्रदल पद्म है। उसके पचास दलोंमें आकारादि क्षकार पर्यन्त सबिन्दु पचास वर्ण हैं। इस पद्मके मध्य गोलाकृति चन्द्रमण्डल, उसके मध्य त्रिकोणयन्त्र तथा सबके मध्य शिवस्थानमें परम शिव वास करते हैं।

तान्त्रिकसाधनाके बहुत पहले उपनिषदादिमें भी नाड़ीतत्त्वकी आलोचना होती थी। हम छान्दोग्य-उपनिषद्में, यहां तक कि वेदसंहितामें भी नाड़ीका परिचय पाते हैं। धर्मसाधनाके साथ देहतत्त्वका सम्बन्ध जैसा अभिव्यक्त हुआ है, दूसरे और किसी भी शास्त्रमें वैसा नहीं देखा जाता। सुषुम्नाके किस चक्रका कैसा कार्य है, उसके अन्तर्गत किस नाड़ीकी कैसी आध्यात्मिक क्रिया है, शिवसंहिता और षट्चक्रनिरूपणमें उसकी यथेष्ट आलोचना देखी जाती है। हम इस श्रेणीके ग्रन्थोंका अंगरेजी भाषामें Physio-psychology नाम रख सकते हैं। फलतः शिवसंहिता और और षट्चक्रनिरूपण अध्यात्म-आधिभौतिक विज्ञान विशेष है। इन सब ग्रन्थोंमें नाड़ीविज्ञान (Nervous Physiology) के सम्बन्धमें अति सूक्ष्मतत्त्व लिखा गया है। हम यहां पर इस सम्बन्धमें और भी दो एक दृष्टान्त देते हैं।

पहले ही कहा जा चुका है, कि सुषुम्नाके मध्य वज्र नामकी एक नाड़ी है। षट्चक्र ग्रन्थका तृतीय श्लोक पढ़नेसे जाना जाता है, कि वज्र नाड़ीके मध्य

---

and extending nearly sympathetically on each side of the Vertebral column (इड़ा और पिङ्गला) from the base fo ter of Cranium to the Coccyx (मूलाधार-चक्रस्थान)

चित्रिणी नामकी एक और नाडी है। यह नाडी मकडी के तन्तुकी तरह बारीक है। यह चर्मचक्षुकी अगोचर है, किन्तु योगियोंकी योगगम्या और प्रणवविलसिता है। योग द्वारा जब तक चित्त विशुद्ध नहीं होता, तब तक यह नाडी किसीको भी दिखाई नहीं पड़ती। अणुवीक्षणकी सहायतासे भी इस नाडीको नहीं देख सकते। इस चित्रिणीमें एक और नाडी है जिसका नाम ब्रह्मनाडी है। यह नाडी गुह्यस्थ मूलाधार पद्म स्थित स्वयम्भूलिङ्गके मुखगह्वरसे निकल कर शीर्षस्थ सहस्रदलाधिष्ठित आदिदेव परमात्माको स्पर्श किये हुए है। साधक जीवात्माको इस नाडीके बीचसे परिचालित कर परमात्मामें भेजते हैं।

ब्रह्मनाडी विद्युन्मालाविलासनी और अति सूक्ष्म है। यह नाडी शुद्ध ज्ञानको उद्बोधन करती है, सभी प्रकारके सुखकी उत्सस्वरूप है। इसके मुखभागमें ही ब्रह्मद्वार है।

पाश्चात्यचिकित्साविज्ञान पढ़नेसे जाना जाता है, कि ज्ञानक्रिया और गतिक्रिया स्नायु (nerve) नामक नाडीविशेषका ही कार्य है। ज्ञानक्रिया (Sensory) और गतिक्रिया (Motor) के कारण पृथक् पृथक् सूक्ष्म स्नायु द्वारा सारी देह ढकी हुई है। किन्तु पाश्चात्यविज्ञानसे जिन सब स्नायुओंका पता चला है, वे सब स्नायु केवल स्थूल ज्ञानके वाहक मात्र हैं। षट्चक्र और शिवसंहिता आदि तान्त्रिक ग्रन्थोंमें स्थूलज्ञानवाहिनी नाडियोंका विशेष उल्लेख नहीं है। जिन सब सूक्ष्मसे सूक्ष्म नाडियोंकी सहायतासे तत्त्वज्ञानकी स्फूर्ति होती है, ब्रह्मतत्त्व उपलब्ध होता है, इन सब ग्रन्थोंमें उन नाडियोंकी आलोचना की गई है। स्नायु ताडितशक्ति (electricity) का जो विलासस्थल है पाश्चात्यविज्ञानमें उसका स्पष्ट उल्लेख है। षट्चक्रकारने भी इन सब नाडियोंका 'तडिन्माला विलासा' नामसे वर्णन किया है। जर्मनीके Physiologist या शरीरविषयशास्त्रक पण्डित Nervous Electricity के सम्बन्धमें आज भी गहरी खोज कर रहे हैं। बहुत समय पहले तान्त्रिकयोगियोंने इन सब सूक्ष्मतत्त्वका सिद्धान्त संस्थापन किया है यह कम गौरवकी बात नहीं है। आधुनिक पण्डित अनेक यन्त्रोंकी सहायतासे भी वैसे सूक्ष्मतत्त्व पर पहुंच न सके हैं। किन्तु भारतीय योगियोंने केवल योगविद्याबलसे वे सब सूक्ष्मतम तत्त्व मालूम कर लिये थे।

षट्चक्रकारने सूक्ष्म जैवपदार्थमें कई जगह तडितका (Electricity) कार्य देखा है। यथा—

१। "वज्राख्या वक्त्रदेशे विलसति सततं कर्णिका मध्यसंस्थं कोणं तत्त्रैपुराख्यं तडिदिव विलसत् कोमलं कामरूपम्। कन्दर्पो नाम वायुर्निवसति सततं तस्य मध्ये समन्तात् जीवेशो बन्धुजीवप्रकरमभिहसन् कोटिसूर्यप्रकाशम्॥"

२। शङ्खावर्त्तनिभा नवीनचपलामाला विलासास्पदा सुप्ता सर्पसमा शिरोपरिलसत् सार्द्ध त्रिवृत्ताकृतिः।

इससे जाना जाता है, कि ये सब तडिन्मालाविलासा नाडियाँ जीवकी जीवनीशक्ति (Vital principle) की जड़ हैं। कन्दर्प वायुका स्थान मूलाधार है। यह कन्दर्पवायु ही प्राणवायु है। उद्धृत दो श्लोकोंमें हम कुण्डलिनी शक्तिका विवरण देखते हैं। उसके बादके श्लोकमें कुलकुण्डलिनीका और भी सविशेष परिचय है। यथा—

'कूजन्ती कुलकुण्डलीव मधुरं मत्तालिमालास्फुटं,
वाचः कोमलकाव्यबन्धरचनाभेदातिभेदक्रमैः।
श्वासोच्छ्वासविभञ्जनेन जगतां जीवो यया धार्यते
सा मूलाम्बुजगह्वरे विलसति प्रोद्दामदीप्तावली॥"

यह कुलकुण्डलिनी भी नवीन चपलामालाकी तरह विराजित है। यह भुजङ्गवत् सार्द्ध त्रयवेष्टनसे परिवेष्टित है तथा मूलाधारके कमलमें अवस्थित है। ये ही श्वासोच्छ्वासक गमनागमन द्वारा जीवकुलके प्राणकी रक्षा करते हैं। आधुनिक फिजिओलाजीका स्पष्ट कहना है कि Spinal chord में श्वासक्रियाके स्नायु (Nerves) उत्पन्न हुए हैं, किन्तु षट्चक्रकारने उन्होंने जैसा निर्देश किया है, पाश्चात्य विज्ञानमें वैसा स्थान निर्देश नहीं है पाश्चात्यविज्ञानका सिद्धान्त प्रमाण नहीं है, हम योगियोंके योगज्ञको प्रत्यक्ष प्रमाण मान सकते हैं। अतएव कुलकुण्डलिनी ही श्वासप्रश्वासक्रियाशक्तिका जो कन्दस्थान है यही सिद्धान्त अधिक समीचीन है।

इस कुलकुण्डलिनीमें महाप्रभा महाद्युति विलास करती हैं। वे चपलामालाकी तरह समुज्ज्वल हैं।

इस षट्चक्रमें चतुर्बाहुधारी श्रीनारायण देवको ध्येयरूपमें देखते हैं।

श्रीमन्नारायण देव स्वाधिष्ठान पद्म पर विराजित हैं। इसी प्रकार षट्चक्रमें शक्तिशिवादि देवताओंका अधिष्ठान वर्णित है। किस चक्रमें किस देवताका ध्यान करनेसे कैसा फल मिलता है, उसकी भी फलश्रुति ग्रन्थमें लिखी है। सहस्रदलपद्ममें (Cerebral centre) एक शून्य स्थान प्रकल्पित हुआ है। उस स्थानका विशद विवरण और उस स्थानमें चित्तनिवेशकी फलश्रुति भी लिखी है। उस स्थानको शैव लोग शिवस्थान, वैष्णव लोग विष्णुस्थान, कोई हरिहरपद, शाक्त लोग शक्तिस्थान और ऋषि लोग प्रकृतिपुरुषका निर्मल स्थान कहते हैं। इसके सिवा इसमें अमा कला चन्द्रकला, निर्वाणकला आदि विराजमान हैं।

षट्चक्रभेदकी प्रणाली इस प्रकार है—साधक यमनियमादि अच्छी तरह सीख कर विशुद्ध ज्ञानलाभ करनेके बाद गुरुसे षट्चक्रभेदका विषयक्रम जान लें। वे हुङ्कार बीजसे तेज और वायुके आक्रमण द्वारा सन्तप्त कुलकुण्डलिनीको मूलाधार पद्मस्थित स्वयम्भुलिङ्गपथसे सहस्रदलकमलमें ला कर भावना करे, बिना गुरुपदेशके इस प्रकारका साधन या इन सब विषयोंका ज्ञानलाभ होना बिलकुल असम्भव है। फलतः षट्चक्रमोक्षलाभका एक प्रकारका अध्यात्म-आधिभौतिक साधन (Physio-psychological process) विशेष है। इसके बाद यह देहतत्त्व बाउल, सहजिया, किशोरी भजन आदि सम्प्रदायमें भी घुस गया है।

षट्चत्वारिंश (सं० त्रि०) षट्चत्वारिंशतत्पूरणः षट्चत्वारिंशत् डट्। षड्धिक चत्वारिंशत् संख्यकका पूरक, छियालीस।

षट्चत्वारिंशक (सं० त्रि०) छियालीस संख्यासे पूरित।

षट्चत्वारिंशत (सं० स्त्री०) छियालीसकी संख्या।

षट्चरण (सं० पु०) षट्चरणा यस्य। १ भ्रमर, भौंरा। (हलायुध) २ यूका, खटमल। (त्रि०) ३ षट्पादविशिष्ट, छः पैरवाला।

षट्चरणयोग (सं० पु०) षड्धारण योग।

षट्चितिक (सं० त्रि०) छः चिति विशिष्ट।

षट्तक्रतैल (सं० पु०) वैद्यकका एक तेल जिसमें तेलसे छः गुना तक्र या मट्ठा मिलाया जाता है।

षट्तन्त्री (सं० स्त्री०) छः तन्त्रोंमें अभिज्ञ।

षट्तय (सं० त्रि०) छः प्रकारका, छः किस्मका।

षट्ताल (सं० पु०) १ मृदंगका एक ताल जो आठ मात्राओंका होता है। इसमें पहले २ आघात, १ खाली फिर ४ आघात और अंतमें १ खाली होता है। २ एक प्रकारका ख्याल जो एकताला ताल पर बजाया जाता है।

षट्तिलदान (सं० क्ली०) देवताके उद्देशसे तिलदानरूप व्रतविशेष।

षट्तिला (सं० स्त्री०) माघ महीनेके कृष्ण पक्षकी एकादशीका नाम। इसमें तिलके व्यवहार और दानका बहुत फल कहा गया है।

षट्तिलिन् (सं० त्रि०) उद्वर्त्तनादिभेदेन षट् प्रकारास्तिलाः सन्त्यस्येति षट् तिल-इनि। जन्मतिथि आदिमें तिल द्वारा षट्कर्मकारी अर्थात् जो जन्म तिथि आदिमें संपिष्ट तिल द्वारा गोत्रोद्वर्त्तन और पीछे स्नान, तिलहोम, तिलदान, तिलभोजन तथा तिलवपन करते हैं, वे षट्तिली कहलाते हैं। (तिथ्यादितत्त्व)

षट्त्रिंश (सं० त्रि०) षट् त्रिंशतः पूरणः। छत्तीसको संख्या पूरा करनेवाला।

षट्त्रिंशत् (सं० त्रि०) षड्धिका त्रिंशत्। संख्याविशेष, छत्तीस।

षट्त्रिंशत्क (सं० त्रि०) षट्त्रिंश संख्या समन्वित।

षट्त्रिंशदहस् (सं० अव्य०) छत्तीस दिनमें।

षट्त्रिंशन्मत (सं० क्ली०) षट्त्रिंशतः तत्संख्यक धर्मशास्त्रकाराणां मुनीनां मतम्। छत्तीस धर्मशास्त्रप्रयोजक मुनियोंका मत। मनु, विष्णु, यम, दक्ष, अङ्गिरा, अत्रि, बृहस्पति, आपस्तम्ब, उशना, कात्यायन, पराशर, वशिष्ठ, व्यास, संवर्त्त, हारीत, गोतम, प्रचेताः, शङ्ख, लिखित, याज्ञवल्क्य, काश्यप, शातातप, लोमश, जमदग्नि, प्रजापति, विश्वामित्र, पैठीनसी, बौधायन, पितामह, छागलेय, जाबाल, मरीचि, च्यवन, भृगु, ऋष्यशृंग और नारद इन छत्तीस स्मृतिशास्त्रकारक ऋषियोंका जो मत है, उसे षट्त्रिंशन्मत कहते हैं।

षट्त्व (सं० क्ली०) छः का भाव या धर्म।

षट्पक्ष (सं० क्ली०) तीन मास, एक एक कर छः पक्षात्मक काल।

षट्पञ्चवर्ण (सं० त्रि०) छः या पांच वर्णोंका।

षट्पञ्चाश (सं० त्रि०) षट्पञ्चाशतः पूरण षट्पञ्चाशत् डट्। छप्पनका पूरक, जो गिनतीमें पचास और छः हो।

षट्पञ्चाशत् (सं० स्त्री०) छप्पनकी संख्या, ५६।

षट्पञ्चाशत्तम (सं० त्रि०) षड्धिकपञ्चाशत पूरणः षट्पञ्चाशत् तमट् (वि शत्यादिभ्यस्तमडन्यतरस्याम्। पा ५।२।५६) षट्पञ्चाश, या ५६।

षट्पत्र (सं० त्रि०) छः पत्तोंवाला। (भृगि होवमनीयोप०)

षट्पद (सं० त्रि०) छः पैरवाला। (अथर्व १३।१।२७)

षट्पद (सं० त्रि०) षट् पदानि यस्य। १ षट्पदविशिष्ट, जिसके छः पैर हों। २ छः पदमात्र, षट्चरण। ३ भ्रमर।

वसन्तराजशाकुनमें लिखा है, कि यात्रा कालमें बाई ओर यदि भौंरे मनोहर शब्द करे या दूसरी ओरसे मन मनाता हुआ बाईं ओर चले आय अथवा इसी प्रकार किसी सुगन्धित पुष्पके मधुपानमें रत हों, तो गमनकारी का अति शुभ फल तथा उसके चित्तको प्रसन्नता होती है।

भ्रमरको छोड़ अन्यान्य छः पैरवाले जीव भी यदि यात्राकालमें बाईं ओर रहे, तो भी शुभ फल होता है। (वसन्तराजशाकुन) ४ यूक, जूं।

षट्पदज्या (सं० त्रि०) कामधेनु। कामदेवके धनुषकी ज्या मक्खियोंकी पंक्तिसे बना थी।

षट्पदयातिन (सं० पु०) स्वर्णचक्र।

षट्पदस्थल (सं० पु०) १ सुरपुन्नाग। नागकेसर पुष्पवृक्ष।

षट्पदप्रिय (सं० पु०) १ पद्म, कमल। २ नागकेसर का वृक्ष।

षट्पदप्रिया (सं० स्त्री०) वनमल्लिका।

षट्पदमोदिनी (सं० स्त्री०) बब्बूलवृक्ष, बबूलका पेड़।

षट्पदा (सं० स्त्री०) १ कीटभेद, एक प्रकारका कीड़ा। २ यूका, खटमल। ३ भ्रमरपत्नी, भौंरी।

षट्पदातिथि (सं० पु०) षट्पदः अतिथिर्यस्य यत्र। १ आम्रवृक्ष, आमका पेड़। २ स्वर्णचाक चम्पा।

षट्पदाधार (सं० पु०) कदम्बका वृक्ष।

षट्पदानन्दवर्द्धन (सं० पु०) षट्पदानामानन्दं वर्द्धयति वृध ल्यु। १ देवजम्बू रक्त, देवबबूर। २ किङ्किरात वृक्ष अशोकका पेड़।

षट्पदानन्दा (सं० स्त्री०) वार्षिका मल्लिका, बेल मल्लिका।

षट्पदाभिधर्म (सं० पु०) बौद्धोंका एक धर्मशास्त्र।

षट्पदालय (सं० पु०) सुरपुन्नाग वृक्ष।

षट्पदाली (सं० स्त्री०) मक्षिका श्रेणी, मक्खियोंका समूह।

षट्पदिका (सं० स्त्री०) षट्पदी देखो।

षट्पदी (सं० त्रि०) १ छः पैरवाली। (स्त्री०) २ भ्रमरी, भौंरी। ३ एक छन्द जिसमें छः पद या चरण होते हैं छप्पय।

षट्पदीमक्ष (सं० पु०) गन्धात्मक भक्षणजन्य अश्व-रोग। घोड़ोंका एक रोग जो उन्हें जहरीला कीड़ा खाने से होता है। इसमें घोड़ोंके शोथ, श्वास, भ्रम, मूर्च्छा आदि उपद्रव होते हैं।

षट्पदेष्ट (सं० पु०) कदम्ब। (रत्नमाला)

षट्पलिक (सं० त्रि०) छः पलका।

षट्पाद (सं० पु०) एक प्रकारका कीड़ा। यह छोटा पाण्डुवर्णयुक्त कपिल या हरिद्वर्णविशिष्ट होता है। इसके छः पैर होते हैं और इसका माथा छोटा होता है।

षट्पितापुत्रक (सं० पु०) संगीतमें तालका एक भेद। इसमें १२ मात्राएं होती हैं। एक प्लुत, एक लघु, दो गुरु एक लघु, एक प्लुत यह इसका प्रमाण है।

षट्पुर (सं० क्लो०) असुराधिष्ठित एक नगर।

षट्प्रगाथ (सं० क्ली०) छः प्रगाथविशिष्ट।

षट्प्रज्ञ (सं० पु०) षट्सु रसेषु प्रज्ञा यस्य। १ कामुक, लम्पट। पर्याय—विड्ग कलोक, कामकलि, विट्पक, पोटकलि पोटमर्द, मक्लि, छिदुर, विद।

षट्सु धर्मादिषु प्रज्ञा यस्य। २ धर्मादिज्ञाताभिज्ञ बौद्ध। जो व्यक्ति धर्म, अर्थ काम, मोक्ष तथा लोकाचार और तत्त्वार्थ इन छः विषयोंमें अति उत्तम ज्ञान लाभ कर सकते हैं, वे षट्प्रज्ञ कहलाते हैं।

षट्प्रश्नोपनिषद् (सं० स्त्री०) प्रश्नोपनिषद् देखो।

षट्भद्रिका (सं० स्त्री०) बालरोगाधिकारोक्त औषध-विशेष। पारसीक अजवायन, मोथा, पीपर, काकडा-सिंगी, विडंग और अतीस इन छः द्रव्योंको चूर्ण एक साथ मिला कर यह औषध तैय्यार होता है।

षट्रस (सं० पु०) छः प्रकारके रस या स्वाद।

षट्राग (सं० पु०) १ संगीतके छः राग—भैरव, मल्लार, श्रीराग, हिंडोला, मालकोस और दीपक। २ आडम्बर, बखेड़ा, जंजाल। ३ झंझट।

षट्रिपु (सं० पु०) षड़्रिपु देखो।

षट्लवण (सं० क्ली०) मूत्रलवणयुक्त पञ्चलवण, काच, सैन्धव, सामुद्र, विट् और सौवर्चल इन पांच लवणों-के साथ मूत्रलवण संयुक्त होनेसे यह षट्लवण कह-लाता है।

षट्लौहसम्भव (सं० क्ली०) शिलाजतु, शिलाजीत।

षट्शत (सं० क्ली०) १०६ या ६००की संख्या।

षट्शम (सं० त्रि०) छः शम्या विस्तृत या तत्परिमित।

षट्शस् (सं० अव्य०) छः छः बार।

षट्शास्त्र (सं० पु०) हिन्दुओंके छः दर्शन।

षट्शास्त्रिन् (सं० त्रि०) षट्दर्शनाभिज्ञ, छः दर्शनोंका जाननेवाला।

षट्वाङ्ग (सं० पु०) खट्वाङ्ग नामक राजर्षि जिन्हे केवल दो घड़ीकी साधनासे मुक्ति प्राप्त हुई थी।

षट्षष्ट (सं० त्रि०) षड़धिकषष्टेः पूरण षट्षष्टि डट्। छासठवां।

षट्षष्टि (सं० स्त्री०) ६६की संख्या।

षट्षष्टितम (सं० त्रि०) षट्षष्टि, जो गिनतीमें साठ और छः हो।

षट्षोडशिन् (सं० त्रि०) छः षोडस्तोमविशिष्ट।

षट्सप्त (सं० त्रि०) १ छियत्तरकी संख्याका पूरक। २ छः गुना सात अर्थात् ४२की संख्या।

षट्सप्तत (सं० त्रि०) षट्सप्तति-डट् डित्वाट्टिलोपः। षट्सप्ततितम, छहत्तरवां।

षट्सप्तति (सं० स्त्री०) षडधिका सप्ततिः। ७६की संख्या।

षट्सप्ततितम (सं० त्रि०) षट्सप्तते पूरणः षट्सप्तति-तमट्। (पा ५।२।५६) ७६की संख्याका पूरक।

षट्सहस्र (सं० त्रि०) छः हजार संख्या द्वारा पूरित।

षट्सहस्रशत (सं० त्रि०) छः लाख।

षडंश (सं० पु०) षष्ठांश, षड् भाग, छः भागका एक भाग।

षड़क्ष (सं० त्रि०) षट् अक्षिविशिष्ट, ६ आंखवाला।

षडक्षर (सं० त्रि०) षट् अक्षराणि यस्य। षड़क्षरविशिष्ट, छः अक्षरयुक्त। (शुक्लयजुः ३।३२) छः अक्षरविशिष्ट छन्दः, षडक्षर मन्त्र, षड़क्षरी विद्या आदि।

षड़क्षरी (सं० स्त्री०) वैष्णवोंके रामानुज सम्प्रदायवालों का मुख्य मन्त्र।

षडक्षीण (सं० पु०) षट्सु रसेषु अक्षीणः। मत्स्य, मछली जिसे छः आँखें कही जाती हैं।

षडङ्ग (सं० क्ली०) षण्णां अङ्गानां समाहारः। १ शरीर-का षड़वयव। शरीरके छः अवयवको षडङ्ग कहते हैं। दो जांघ, दो बाहु, मस्तक और मध्य यही छः शरीरके अवयव हैं।

२ वेदाङ्ग षट्शास्त्र, वेदके अङ्गभूत छः शास्त्रोंका नाम षडङ्ग है। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छन्द यही छः वेदके अङ्ग हैं।

ब्राह्मणको षड़ङ्गवेदका अध्ययन करना चाहिये। षडङ्ग-वेदका अध्ययन करनेसे उसकी ब्रह्मलोकमें गति होती है। वेदके दोनों पांव छन्द, कल्प हस्त, ज्योतिष नेत्र-स्वरूप, निरुक्त श्रोत, शिक्षा, घ्राण और व्याकरण वेदके मुखस्वरूप है। वेदके यही छः अङ्ग हैं।

३ आद्यश्राद्धीय दानाङ्ग पीठादि। आद्यश्राद्धकालमें प्रेतके उद्देशसे षडङ्ग देना होता है; किन्तु शास्त्रमें इसका प्रमाण देखनेमें नहीं आता, सभी जगह व्यवहार देखनेमें आता है। प्रेतके स्वर्गार्थ षोड़शदान तथा प्रेतके उद्देश-से षडङ्गदान करना होता है। श्राद्धतत्त्वमें लिखा है, कि प्रेतको आसन, छत्र, उपानह और शय्या देनी होती है। ये चार द्रव्य तथा अन्न और जल, यही छः ले कर षडङ्ग हुआ है।

४ छः प्रकारके गव्यद्रव्यविशेष, यथा—गोमय, गोमूत्र, दधि, दुग्ध, घृत और गोरोचन ये छः प्रकारके गव्य द्रव्य सर्वदा पवित्र हैं।

५ तन्त्रके मतसे हृदयादि षड़वयव। यथा—हृदय,

मस्तक, शिखा कवच नेत्रत्रय और करतलपृष्ठ। षडङ्ग न्यासमें इन सब स्थानोंमें न्यास करना होता है। किसी देवताका ह्रीं बीज मन्त्र होने पर षडङ्गन्यास इस प्रकार होगा—

"ह्रां हृदयाय नमः, ह्रीं शिरसे स्वाहा, ह्रूं शिखायै वषट्, ह्रैं कवचाय हुं, ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ह्रः करतल पृष्ठाभ्यां अस्त्राय फट्' इस प्रकार षडङ्गन्यास हस्त द्वारा न्यास करना होता है। प्रति देवताके पूजामें केवल बीजमन्त्रकी पृथकता होगी और सभी वैसे ही होंगे।

६ छ प्रकारके योगाङ्ग। अमृतनादोपनिषद्में इन छ प्रकारके योगाङ्गका वर्णन है। यथा—प्रत्याहार, *ध्यान, प्राणायाम, धारणा, तर्क और समाधि।* ७ राजाओं के छ प्रकारके बल अर्थात् सैन्यावयवविशेष। मौल, भृत्य, सुहृत्, श्रेणी, द्विषत् और आटविक यही छ सेना षडङ्ग हैं।

(पु०) षट् अङ्गानि यस्य। ८ वेद।

"शिक्षाकल्पव्याकरणं निरुक्तं छन्दसाञ्च य।
ज्योतिषामयनञ्चैव षडङ्गो वेद उच्यते॥" (राजनि०)

९ क्षुद्र गोक्षुरक, छोटा गोखरू।

षडङ्गक (स० क्ली०) षडवयवविशिष्ट देह।

षडङ्गघृत (स० क्ली०) अतीसार रोगाधिकारमें उपकारक घृतौषधविशेष। प्रस्तुतप्रणाली—इन्द्रयव दारु हरिद्रा, पीपर, सोंठ, लाख और कटकी इन छ द्रव्यों का कल्क और क्वाथ द्वारा यथाविधान घृतपाक करना होता है। इस घृतका सेवन करनेसे अतिसाररोग अति *शीघ्र जाता रहता है। यह अत्यन्त पाचक है।*

षडङ्गजित् (स० पु०) षडङ्ग जितवान् जि क्विप् तुक् च। १ विष्णु। (त्रि०) २ षडङ्गजेता, सब अङ्गोंको वशमें लानेवाले।

षडङ्गपानीय (स० क्ली०) पाचनरूप औषधविशेष।
पञ्चयूष देखो।

षडङ्गयूष (स० पु०) षडङ्गपानीय, पाचनभेद। मोथा *पित्तपापड़ा, खसखसकी जड़,* रक्तचन्दन सुगन्धवाला, सोंठ या हर्रे, कुल मिला कर २ तोला। इसे एक साथ कूट कर चार सेर जलमें पाक करे। पीछे दो सेर रहते उतार कर कपड़ेमें छान ले। इसके बाद ठंढा होने पर यह जल रोगीको पिलावे। इसका सेवन करनेसे पिपासाज्वर विनष्ट होता है।

वैद्यकशास्त्रमें लिखा है, कि ज्वर आनेके सात दिन बाद औषधका सेवन करना होता है, किन्तु सात दिनके भीतर ही इस षडङ्गपानीय पानकी व्यवस्था है। इससे समझना होगा कि तरुण ज्वरमें गुरुपाक औषध अर्थात् दशमूलादिका क्वाथ आदि निषिद्ध है, किन्तु तीव और पेयादि सेवन निषिद्ध नहीं है।

षडङ्गिन् (स० त्रि०) षडङ्गोऽस्यास्तीति षडङ्ग इनि। षडङ्गकल्पविशिष्ट, छ अङ्गवाला।

षडङ्गुलिदत्त (स० पु०) पाणिनिवर्णित एक व्यक्ति।

षडङ्घ्रि *(स० पु०) भ्रमर, भौंरा। (भाग० ३।२३।१५)*

षडग्नि (स० स्त्री०) कर्मकाण्डके अनुसार छ प्रकारकी अग्नि—गार्हपत्य आहवनीय दक्षिणाग्नि सभ्याग्नि आवसथ्य और औपासनाग्नि। इनमेंसे प्रथम तीन प्रधान हैं। कुछ लोगोंने अग्निके ये छ भेद किये हैं—धूमाग्नि मन्दाग्नि, दीप्ताग्नि मध्यमाग्नि, घराग्नि और भस्माग्नि।

षडण्ड *(स० पु०) एक दैत्यका नाम। (पा ४।२।१२७)*

षडधिक (स० त्रि०) छःसे बढ़ाया हुआ।

षडधिकदशन् (स० त्रि०) षोडश, सोलह।

षडधिकदशनाडीचक्र (स० क्ली०) सोलह नाड़ी द्वारा वेष्टित चक्र अर्थात् हृदय।

षडभिज्ञ (स० पु०) षट्सु धर्मार्थकाममोक्षलोकतत्त्वार्थेषु अभिज्ञा यस्य। बुद्धदेव। धर्म, अर्थ, काम मोक्ष, लोक और तत्त्वार्थ इन छ विषयोंमें उनको अभिज्ञता थी, इसलिये उनका नाम बुद्ध हुआ है।

षडर (स० त्रि०) छः अरयुक्त, छः आरोवाला।

षडरत्नि (स० त्रि०) छ अरत्नि परिमित छः हाथका।

षडर्च (स० क्ली०) षड्ऋच। *(शाङ्खायन श्रौ० १८।२३।६)*

षडस्र (स० क्ली०) अग्निकोण निर्दिष्ट छः कोण।

षडशीति (स० स्त्री०) रविसङ्क्रान्तिविशेष। मिथुन, कन्या धनु और मीनराशिमें सूर्यका सङ्क्रमण होनेसे उसको षडशीतिसङ्क्रान्ति कहते हैं। ज्येष्ठमासके बाद आषाढ़के प्रथममें मिथुनराशिमें, भाद्रमासके बाद आश्विनके आरम्भमें कन्याराशिमें, फाल्गुनमासके बाद

चैत्रमासके आरम्भमें मीनराशिमें और अग्रहायण मासके बाद पौष मासके आरम्भमें जिस धनुराशिमें सूर्यका संक्रमण होता है, उसे षडशीति संक्रान्ति कहते हैं।

२ षड्धिक अशीति संख्या, जो गिनतीमें अस्सीसे छः अधिक हो, छियासी, ८६।

षड्शीतिचक्र (सं० क्ली०) षडशीतेश्चक्र। संक्रान्तिचक्र विशेष। मिथुन, कन्या, धनु और मीनराशिस्थ सूर्य का शुभाशुभ जाननेके लिये नक्षत्राङ्कित नराकारचक्र। इस चक्र द्वारा उन सब मासोंके रविग्रहका शुभाशुभ फल जाना जाता है। यह फल नक्षत्र द्वारा स्थिर करना होता है।

एक नरको अङ्कित कर उसके अङ्गविशेषमें सभी नक्षत्र विन्यास करने होते हैं। नक्षत्रविन्यासप्रणाली इस प्रकार है—सूर्य जिस नक्षत्रमें रह कर संक्रमित होते हैं, उस नक्षत्रसे नक्षत्र मान लेना होता है। सूर्य स्थित नक्षत्रसे उस नरके मुखमें १ नक्षत्र, वामहस्तमें ४, पादयुग्ममें दो दो, क्रोडमें ५, दक्षिण हस्तमें ४, नेत्रमें दो दो और मस्तकमें ३। इन सब नक्षत्रोंको सूर्यस्थित नक्षत्रसे ले कर दूसरेके बाद रखना होगा। मुखमें दुःख, करमें लाभ, दोनों पादमें भ्रमण, हृदयमें स्त्रीलाभ, वाम करमें बंधन, नेत्रद्वयमें सम्मान, मस्तकमें अपमान और गुह्यमें मृत्युफल होता है। जिसका जिस नक्षत्रमें जन्म हुआ है, उसका जन्मनक्षत्र, इस नरके किस स्थानमें पड़ा है, यह स्थिर कर उक्त प्रकारसे फलनिर्णय करना होगा।

यदि किसीकी भी संक्रान्ति अशुभ हो, तो कनक-धतूरेका बीज, सर्वौषधि जलमें स्नान और विष्णुमन्त्रका जप करनेसे शुभ होता है।

षड्शीतितम (सं० त्रि०) ८६वीं संख्याका पूरक।

षड्श्व (सं० त्रि०) षट् अश्वाः यत्र। ६ घोड़ेका रथ, ६ घोड़ेकी गाड़ी। (ऋक् १।११६।४) जिसमें छः घोड़े हों।

षड्ष्टक (सं० क्ली०) योगविशेष, वर और कन्याकी अपनी अपनी राशिसे परस्पर छठवीं और आठवीं राशिका सम्बन्ध। विवाहस्थलमें वर और कन्याकी राशिका षडाष्टम सम्बन्ध हुआ है या नहीं, यह देखनेके बाद विवाह करना उचित है। क्योंकि शास्त्रमें षडष्टक विशेष निन्दित हुआ है। यह मित्र-षडष्टक और अरि-षडष्टकके भेदसे दो प्रकारका है।

यदि कन्याके अष्टममें वरका और वरके षष्ठमें कन्याकी राशि हो, तो उसे अरिषडष्टक कहते हैं। इस अरिषडष्टकका देवगण भी वर्जन करते हैं। अतएव विवाहकालमें वर और कन्याका अरिषडष्टक संबन्ध होने पर विवाह देना उचित नहीं। इससे अमङ्गल होता है।

अन्यविध—मकर और सिंह, कन्या और मेष, मीन और तुला, कर्कट और कुम्भ, वृष और धनु, वृश्चिक और मिथुन, कन्या और वरकी राशि होने पर भी अरि-षडष्टक सम्बन्ध होता है, अतएव ऐसा सम्बन्ध होनेसे भी विवाह नहीं करना चाहिये।

मित्र-षडष्टक—मकर और मिथुन, कन्या और कुम्भ, सिंह और मीन, वृष और तुला, वृश्चिक और मेष, कर्कट और धनु कन्या और वरकी राशि होनेसे मित्रषडष्टक होता है। यह मित्रषडष्टक भी विवाहमें निन्दनीय है। षडष्टक सम्बन्ध ही दोषावह है, पर उसमें अरि-षडष्टक ही विशेष निन्दनीय है। मित्रषडष्टकमें उन सब राशि अधिपति ग्रहोंको परस्पर मित्रता रहनेसे अशुभ होने पर भी कुछ शुभ होता है।

गरुडपुराणमें मित्रषडष्टकका विषय इस प्रकार लिखा है,—सिंह और मकर, कन्या और मेष, तुला और मीन, कुम्भ और कर्कट, धनु और वृषभ, मिथुन और वृश्चिक ये सब राशि परस्पर मित्रषड्ष्टक हैं।

कोष्ठीविचार स्थलमें भी षडष्टक सम्बन्ध देखनेमें आता है। इस षडष्टक सम्बन्धमें ग्रहोंके रहनेसे उनका अशुभ फल होता है। शुभ भावाधिपति हो कर यदि ऐसे सम्बन्धमें रहें तो शुभफलके ह्रासकी कल्पना करनी होती है। पितापुत्रका यदि इस प्रकार षड्ष्टक राशि-सम्बन्ध हो तो उनके परस्पर मतका मेल नहीं रहता, विरोध होता है। मित्रषड्ष्टक होने पर कुछ शुभ होगा।

षड्स्र (सं० त्रि०) षट्कोणविशिष्ट, जिसमें छः कोने हों।

षड्स्रि (सं० त्रि०) जिसमें छः कोने हों।

षडह (सं० पु०) छः दिन।

षडहोरात्र (सं० पु०) छः दिन और रात।

षडाशमन् (सं० लि०) अग्नि।

षडानन (सं० पु०) कृत्तिकादीनां षण्णामास्तन्यपानार्थं षट् आननानि यस्य। कार्त्तिकेय। (महाभारत ३।२३१।८०) मत्स्यपुराणमें लिखा है, कि अग्निपुत्र कुमार शरवनमें पैदा हुए तथा कृत्तिकादिके अपत्य होनेसे कार्त्तिकेय कहलाये। शाख, विशाख और नैगमेय नामक इनके और भी तीन अनुजोंने जन्मग्रहण किया। (मत्स्यपु० ५ अ०) २ संगीतमें स्वरसाधनकी एक प्रणाली। (त्रि०) ३ जिसमें ६ मुंह हों।

षडाम्नाय (सं० पु०) शिवके मुखसे निकले हुए छःप्रकारके तन्त्रशास्त्र। शिवजीने यथाक्रम पूर्व, दक्षिण पश्चिम उत्तर ऊर्द्ध्व और अधोमुखी हो कर इन तन्त्रोंकी यथायथ व्याख्या की, इस कारण इसका नाम षडाम्नाय नाम पड़ा है। नीचे उक्त छः आम्नायके देवताओंका क्रमशः उल्लेख किया जाता है, यथा—

पूर्वाम्नाय—श्रीविद्यासमूह तथा तारा, त्रिपुरा, भुवनेश्वरी और अन्नपूर्णा, ये सब पूर्वाम्नायके देवता हैं।

दक्षिणाम्नाय—बगलामुखी, धूमिनी अर्थात् बालभैरवी महिषघ्नी और महालक्ष्मी, दक्षिणाम्नायके ये देवता हैं।

पश्चिमाम्नाय—महासरस्वती वाग्वादिनी, प्रत्यङ्गिरा और भवानी ये देवता पश्चिमाम्नाय सम्बन्धीय हैं।

उत्तराम्नाय—सभी तारें और कालिकाभेद मातङ्गी भैरवी छिन्नमस्ता और धूमावती ये उत्तराम्नायके देवता हैं तथा कलिमें आशु फल देनेवाली हैं।

ऊर्द्ध्वाम्नाय—कालिकादेवीके जितने प्रकारके भेद हो सकते हैं वे सभी इस आम्नायके देवता हैं।

अध आम्नाय—वागीश्वरी आदि देवियाँ इस आम्नायकी देवता मानी गई हैं।

इन छः आम्नायमें अध और ऊर्द्ध्वाम्नाय केवल मोक्षप्रद है और बाकी चार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चतुर्वर्गका फल देनेवाले हैं। अतएव विधानानुसार ये सब आम्नायोक्त कार्य करनेसे अवश्य ही उपयुक्त फल मिलता है। विशेषतः उत्तराम्नायोक्त फल बहुत जल्द प्राप्त होता है।

निरुत्तरतन्त्रमें प्रत्येक आम्नायका आचार प्रणाली इस तरह लिखी है,—पूर्व और दक्षिणाम्नायका कार्य पश्वाचारमें, पश्चिमाम्नायका कार्य वीर और पशुभावमें उत्तराम्नायका कार्य दिव्य और वीरभावमें तथा ऊर्द्ध्वाम्नायोक्त कर्म दिव्यभावमें सम्पन्न करना होगा। श्मशानमें बैठ कर बिना वीरासनके वीरभावमें पूजा करनेसे भी उक्त दिव्याचारका कार्य सिद्ध हो सकता है।

षडायतन (सं० क्ली०) चक्षु, कर्ण, नासिका जिह्वा, त्वक् और मन।

षडावली (सं० स्त्री०) १ छः वस्तुकी श्रेणी। २ सूर्यग्रहणादि छः ज्ञातक।

षडाहुति (सं० स्त्री०) १ छः बार आहुति। (कात्यायनश्रौ० ५।६।४।३) (त्रि०) २ जिसके उद्देशसे छः आहुति दी जाती हैं। (आश्व० गृह्य० ३।९।३)

षडाहुतिक (सं० लि०) षडाहुतिविशिष्ट।

(कात्या० श्रौ० १०।८।३०)

षडिक (सं० पु०) षडङ्गुलिदत्तका रक्षित नाम।

(पा ५।३।८ वार्त्तिक)

षडिड् पदस्तोभ (सं० क्ली०) सामभेद।

षड्गुर (सं० लि०) छः दाता या धाराली मद्दूशक्ति।

(पञ्चविंश ब्रा० १०।२।४)

षड्दाम (सं० क्ली०) छः रज्जु।

षड्न (सं० त्रि०) १ छः मात्राहीन, जिसमें छः कम हों। २ छः कम।

षड्मि (सं० स्त्री०) छः तरङ्ग।

षड्रूषण (सं० क्ली०) षण्णा ऊषणानां समाहारः। मिश्रित छः कटु द्रव्य अर्थात् सोंठ, पीपर, मिर्च, चई पिपरामूल और चित्रक इन छः कटु द्रव्यों का एकत्र समावेश होनेसे उसको षड्रूषण कहते हैं। इसका गुण—पञ्चकोलके समान अर्थात् यह रस और पाकमें कटु रुचिकर, तीक्ष्ण उष्ण, पाचक दीपन वात कफघ्न, प्लीहा, गुल्म, उदर, आनाह और शूलनाशक तथा पित्त प्रकोपक।

शब्दचन्द्रिकामें लिखा है, कि पीपर, मिर्च और सोंठ ये तीन मध्य त्रिकटु त्र्यूषण, व्योष और कटुत्रिक तथा इनके साथ पिपरामूल मिलनेसे चतुरूषण चित्रक मिलनेसे पञ्चोषण और चई मिलनेसे यह षड्रूषण कहलाता है।

षड्ग (सं० पु०) षड्ज।

षड्गया (सं० स्त्री०) षड्विधा गया। छः प्रकारकी गया। गयाक्षेत्रके गयागज, गयादित्य, गायत्री, गदाधर, गया और गयासुरको ले कर यह षड्गया हुई है। इस षड्गयामें पिण्डदान करनेसे मुक्ति होती है।

षड्गर्भ (सं० पु०) दानवपुत्रगणभेद। हरिवंशटीकामें नील-कण्ठने लिखा है,—हंस, सुविक्रम, क्राथ, दमन, रिपु-मर्द्दन और क्रोधहन्ता ये छः दानवपुत्र षड्गर्भ कहलाते हैं।

षड्गव (सं० त्रि०) षट्गावो यत्र समासे अच्। १ गोषट्क युक्त। आह्निकतत्त्वमें लिखा है, कि छः बैलोंको हलमें जोत कर अपनी जीविका निर्वाह करे। २ प्रत्ययविशेष। षट्त्व अर्थ होनेसे प्रकृतिके उत्तर षड्गव प्रत्यय होता है। प्रकृत्यर्थस्य षट्त्वे षड्गवश्च। (पा ५।२।२९) इत्यस्य वार्त्तिकोक्तया भवतो।

(क्ली०) षण्णां गवां समाहारः। ३ छः बैलोंका समाहार, छः बैलोंका सम्मिलन।

षड्गवीय (सं० त्रि०) षट्गोसम्बन्धी।

षड्गुण (सं० पु०) षट् संख्यका. गुणाः। १ छः गुणोंका समूह—ऐश्वर्य, ज्ञान, यश, श्री, वैराग्य और धर्म। २ राजनीतिकी छः बातें—सन्धि, विग्रह, यान (चढ़ाई), आसन (विराम), द्वैध और आश्रय। (त्रि०) ३ षट् गुण यस्य। ३ जिसमें उक्त छः प्रकारके गुण हों। ४ जो छःसे गुणा किया गया हो।

षड्गुरुशिष्य (सं० पु०) आश्वलायनश्रौतसूत्रटीका, वेदान्तदीपिका नामका ऋग्वेदसर्वानुक्रमणीवृत्ति और सिद्धान्तरत्नावली नामक तीन ग्रन्थके रचयिता। इन्होंने विनायक, त्रिशूलाङ्क (शूलपाणि), गोविन्द, सूर्य, व्यास और शिवयोगी इन छः गुरुके शिष्य हो कर सर्वशास्त्र अध्ययन किया था, इसलिये वे उक्त नामसे प्रसिद्ध हुए हैं।

षड्ग्रन्थ (सं० पु०) करञ्जक।

षड्ग्रन्था (सं० स्त्री०) षट् ग्रन्था यस्याः। १ वचा, वच। २ श्वेतवचा, सफेद वच। ३ शठी, साड़ी। ४ महाकरञ्ज।

षड्ग्रन्थि (सं० क्ली०) षड्ग्रन्थयो यस्य। १ पिप्पलीमूल, पीपरामूल। २ वचा, वच। (पु०) षट्पर्ण।

षड्ग्रन्थिका (सं० स्त्री०) षड्ग्रन्था एव स्वार्थे कन्, टापि अत इत्वं। १ शटी, कचूर। २ आम्रहरिद्रा।

षड्ग्रन्थी (सं० स्त्री०) षड् ग्रन्था यस्या ङीप्। वचा, वच।

षड्ज (सं० पु०) षड्भ्यः जायते इति-जन-ड। संगीतके सात स्वरोंमेसे चौथा स्वर। यह मयूरके स्वरसे मिलता जुलता माना गया है। इसका उच्चारण-स्थान छः कहे गये हैं—नासा, कण्ठ, उरः, तालु, जिह्वा और दन्त इसीसे इसका नाम षड्ज पड़ा। मूल स्थान दन्त और अन्त स्थान कण्ठ है। देवता इसके अग्नि हैं। वर्ण रक्त, आकृति ब्रह्माकी सी, हिमवार, रविवार, छन्द अनुष्टुभ और सन्तति इसकी भैरव राग है। सङ्गीतदर्पणके मतसे इसकी चार श्रुति हैं—तिव्रा, कुमुद्वती, मन्दा और छन्दोवती।

षड्दर्शन (सं० क्ली०) वैशेषिक, न्याय, सांख्य, पातञ्जल, वेदान्त और मीमांसा हिन्दुओंके छः दर्शन। इन सब दर्शनोंका विशेष विवरण उन्हीं सब शब्दोंमें लिखा है।

षड्दर्शनी (हिं० पु०) दर्शनोंका जाननेवाला, ज्ञानी।

षड्दुर्ग (सं० क्ली०) षट् प्रकारं दुर्गं। छः प्रकार दुर्ग या कोट्ट। महाभारत शान्तिपर्व राजधर्मपर्वाध्यायमें इन छः प्रकारके दुर्गोंका उल्लेख है। यथा—धन्वदुर्ग, महीदुर्ग, गिरिदुर्ग, मनुष्यदुर्ग मृद्दुर्ग और वनदुर्ग। (भारत शान्ति-प०) मनुमें भी इस प्रकार छः दुर्गोंका विषय लिखा है। धन्वदुर्ग अर्थात् मरुवेष्टितदुर्ग, महीदुर्ग पाषाण या ईंटका बना हुआ दुर्ग, अब्दुर्ग, या जलवेष्टित दुर्ग, वार्क्ष दुर्ग अर्थात् महावृक्ष कण्टक गुल्मलतादि व्याप्त दुर्ग, नृदुर्ग चारों ओर बहुतेरे हाथी, घोड़े और सेनासे परिवृतदुर्ग तथा गिरिदुर्ग पर्वतके ऊपरीभागमें दुर्गम निभृत दुर्ग। राजा इन छः प्रकारके दुर्गोंको बना कर वहां वास करें।

षड्धरण (सं० पु०) वातव्याधिरोगाधिकारोक्त योगविशेष, यह योग इस प्रकार है—चीता, इन्द्रजौ, आकनादि, कटुकी, आतइच और हरीतकी इन्हें यथाविधाना-नुसार पाक कर वातव्याधि रोगमें प्रयोग करनेसे यह रोग जल्द आराम होता है।

षड्भाग (सं० पु०) षष्ठ भाग, छः भागका एक भाग।

मन्वादिशास्त्रमें लिखा है, कि राजा प्रजासे छ भागका एक भाग कर ले।

षड्भाव (सं० पु०) १ षट् पदार्थ। द्रव्य, गुण कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय इन छ प्रकारके भाव पदार्थको षड्भाव कहते हैं। वैशेषिक दर्शनमें यह षट् पदार्थ स्वीकृत हुआ है। वैशेषिक देखो। २ ज्योतिषके मतसे लज्जित आदि छ भाव। लज्जित गर्वित क्षुधित तृषित मुदित और क्षोभित ये छ भाव षड्भाव कहलाते हैं। भाव देखो।

३ छ विभिन्न अवस्था।

षड्भाववादिन् (सं० त्रि०) षड्भाव वदति वद् णिनि। षट्पदार्थवादी, द्रव्य गुण, कर्म आदि षट्पदार्थवादी कणाद। कणादने षट् पदार्थ स्वीकार किया है इस लिये लोग उन्हें षट्पदार्थवादी कहते हैं।

षड्भुज (सं० पु०) षट् भुजा यस्य। १ छ हाथवाला, जिसे छ हाथ हो अर्थात् मूर्त्तिमान ज्वररूप। हरिवंशमें लिखा है कि मूर्त्तिमान ज्वरके तीन पैर तीन मस्तक छ हाथ और नौ चक्षु हैं। ये बड़े प्रचण्ड और कालान्तक यमके सदृश तथा भस्मप्रहरण अर्थात् भस्मधारी हैं। २ चैतन्यदेव। जनसाधारणमें प्रसिद्ध है कि ये पुरुषो त्तम क्षेत्र जा कर स्वयं षड्भुज रूप श्रीजगन्नाथ देवके शरीरमें विलीन हो गये।

षड्भुजा (सं० स्त्री०) षट् भुजा इव रेखा यस्याः। १ फल लताविशेष, खरबूजा। पर्याय—मधुफला, षड्रेखा, वृत्त कर्कटी, सिक्ता, तिक्तफला, मधुपाका वृत्तेर्वारु पण्मुजा। इसके फलका गुण—बहुत छोटी अवस्थामें तिक्त आसन्न पक्व अवस्थामें मधुर, अमृत तुल्य, तर्पण पुष्टिद, वृष्य, दाह और श्रमनाशक मूत्रशुद्धिकारक, पित्तोन्मादापहारक कफप्रद धातुवर्द्धक और पवन पर कुछ आनन्दजनक होता है। (राजनि०)

२ दुर्गामूर्त्तिभेद। वृहन्नन्दिकेश्वर पुराणकी दुर्गा पूजापद्धतिमें चण्डिका, रुद्रचण्डा और चण्डवती ये तीन मूर्त्तियां षड्भुजा कह कर निर्दिष्ट हुई हैं। यथा—

चण्डिका—पीनोन्नतपयोधरा, अग्निप्रभा, षड्भुजा चण्डिका देवी पूर्वदलमें अवस्थित हैं, इनकी दाहिनी तीन भुजाओंमें गदा, अभय और वज्र तथा बाईं भुजामें शक्ति शूल और परशु विद्यमान हैं।

रुद्रचण्डा—ये दक्षिण दलमें अवस्थित हैं तथा कृष्णवर्णा, दिव्याभरणभूषिता, प्रसन्नवदना और षड् भुजा हैं। दाहिनी तीन भुजामें वज्र शूल और परशु तथा बाईं भुजामें पाश अंकुश और कशा हैं।

चण्डवती—ये वायुकोणस्थ दलमें अवस्थित हैं तथा धूम्रवर्णा, प्रसन्नवदना सर्वालङ्कारभूषिता, षड्भुजा हैं। दाहिनी तीन भुजामें अंकुश, पाश और अक्षसूत्र तथा बाईंमें खड्ग, शूल और डमरू हैं।

षड्यन्त्र (सं० पु०) १ किसी मनुष्यके विरुद्ध गुप्त रीतिसे की गई कार्रवाई, भीतरी चाल। २ कपटपूर्ण आयोजन, जाल।

षड्योग (सं० पु०) योगके छ प्रकरण।

षड्योनि (सं० पु०) शिलाजतु शिलाजीत। रांगा, सीसा, तांबा, रूपा सुवर्ण और लोहा इन छ धातुओंमेंसे किसी एककी सुगन्ध शिलाजीतमें अवश्य आती है इसीसे इसे षड्योनि कहते हैं। कारण यह, कि ऊपर कही हुई धातुओंमेंसे किसी एक धातुका अंश जिसमें होगा उसी पर्वतसे शिलाजीतकी उत्पत्ति होगी।

षड्रस (सं० पु०) छ प्रकारके रस या स्वाद मधुर, अम्ल, लवण, कटु तिक्त और कषाय। इनके प्रत्येकके गुण कर्मादिका विशेष विवरण रस और उन्हीं सब शब्दोंमें लिखा गया है।

षड्रसामय (सं० पु०) शरीरस्थ रसके पुष्टिरूप मेद धातु।

षड्रात्र (सं० क्ली०) षण्णां रात्राणां समाहारः। षडह छ दिन और रात।

षड्रिपु (सं० पु०) काम, क्रोध आदि मनुष्यके छ विकार।

षड्रेखा (सं० स्त्री०) षट् रेखा यत्र। १ षड्भुजा। २ षड् राजा।

षड्लवण (सं० क्ली०) षड् गुणित लवण। मूत्रोक्त पञ्चलवण। षट्लवण देखो।

षड्लोह (सं० क्ली०) छ धातु।

षड्वक्त्र (सं० पु०) षट् वक्त्राणि यस्य। कार्त्तिकेय, षडानन।

षड्वर्ग (सं० पु०) छ वस्तुओंका समूह या वर्ग।

क्षेत्र, होरा, द्रेक्काण, नवांश, द्वादशांश और त्रिंशांश षड्वर्ग कहलाते हैं। विशेष विवरण राशि और उन उन शब्दोंमें देखो। २ काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सरका समूह।

षड्विंश (सं० त्रि०) जो गिनतीमें बीस और छः हो।

षड्विंशक (सं० त्रि०) छब्बीस संख्यासे बनाया हुआ।

षड्विंशति (सं० स्त्री०) छब्बीसकी संख्या।

षड्विंशतिक (सं० त्रि०) षड्विंश, छब्बीसवां।

षड्विंशतितम (सं० त्रि०) षड्विंश, छब्बीसवां।

षड्विंशतक (सं० त्रि०) छब्बीस संख्या द्वारा क्रत।

षड्विकार (सं० पु०) १ प्राणीके छःविकार या परिणाम अर्थात् (१) उत्पत्ति, (२) शरीरवृद्धि, (३) बालपन (४) प्रौढ़ता, (५) वृद्धता और (६) मृत्यु। २ काम क्रोध आदि छः विकार।

षड्विध (सं० त्रि०) षड्विधाः प्रकारा यत्र। षट् प्रकार, छः तरहका।

षड्विधान (सं० क्ली०) विधान शब्द देखो।

षड्विन्दु (सं० पु०) १ विष्णु। २ कीटविशेष, गुबरालेकी जातिका एक कीड़ा। इसकी पीठ पर छः गोल बिंदियां होती हैं। इसे पूरबमें 'छबुंदवा' कहते हैं।

षड्विन्दुतैल (सं० क्ली०) शिरोरोगाधिकारोक्त पक्वतैल विशेष। प्रस्तुत प्रणाली—तिल तैल ४ सेर, भृङ्गराजरस १६ सेर। कल्कार्थ एरण्डमूल, तगरपादुका, सोयां, जीवन्ती, रास्ना, सैन्धव, दारचीनी, विडङ्ग, यष्टिमधु और सोंठ, प्रत्येक वस्तु ६ तोला ३ माशा और २ रत्ती ले कर यथोक्त विधानसे पाक करना होगा। यह तैल ललाट, शङ्ख और ब्रह्मरन्ध्रमें अभ्यङ्ग तथा नासिकाद्वारमें नस्यका व्यवहार करनेसे शीघ्र ही शिरोरोग दूर होता है।

षण्ड (सं० पु०) षणु दाने (अमन्ता डः। उण् १।११३) इति ड बहुलवचनात् सत्वाभावः। वृषभ, सांड़। पर्याय—गोपति, षण्ढ, शण्ड, शण्ढ। (शब्दरत्ना०) २ क्लीव, नपुंसक, हीजड़ा। क्लीव देखो। ३ राशि समूह। ४ झाड़ी। ५ कमलोंका समूह। (माघ ११।१५) ६ चिह्न। (भागवत ४।१६।२३) ७ शिवका एक नाम। ८ धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम।

षण्डक (सं० पु०) षण्डः स्वार्थे कन्। षण्ड देखो।

षण्डकापालिक (सं० पु०) एक वैदिक आचार्यका नाम।

षण्डता (सं० स्त्री०) षण्डका भाव या धर्म।

षण्डत्व (सं० क्ली०) षण्डता, नामर्दी, हीजड़ापन।

षण्ड्योनि (सं० स्त्री०) वह स्त्री जिसे मासिक धर्म न होता हो और जिसके स्तन न हों अर्थात् जो पुरुषसमागमके अयोग्य हो।

षण्डामर्क (सं० पु०) शुक्राचार्यके पुत्रका नाम।

षण्डाली (सं० स्त्री०) १ तेल नापनेकी एक छोटी धरिया जिसमें एक छटांक वस्तु आ सकती हो। षण्डेन वृषभवत् कामुकपुरुषेण अलति पर्याप्नोतीति। अल्-अच् गौरादित्वात् ङीष्। २ कामुकी स्त्री, व्यभिचारिणी। ३ ताल, तलैया।

षण्डी (सं० स्त्री०) वह स्त्री जिसे मासिक धर्म न होता हो, स्तन छोटे हों और जो पुरुष-समागमके अयोग्य हो।

षण्ढ (सं० पु०) शाम्यति शिश्नाभावात् शम ढ (शमेर्ढः उण् १।१०१) १ नपुंसक, हीजड़ा, नामर्द। नारदके मतसे चौदह और कामतन्त्रके मतसे बीस प्रकारके षण्ढ माने गये हैं। नीचे यथायथभावमें उनके नाम और लक्षणादि दिये जाते हैं।

नारदका कहना है, कि निसर्ग, वद्ध, पक्ष और ईर्षाषण्ढ तथा सेव्य, वातरेता, मुखेभग, आक्षिप्त, मोघबीज, शालीन और अन्यापति, ये ग्यारह प्रकार तथा गुरुजनका अभिशाप, आशु शुक्रक्षयकारक रोगादि और देवतादिके क्रोधसे उत्पन्न बाकी तीन प्रकारके षण्ढोंका विषय शास्त्रमें लिखा है।

कामतन्त्रमें निसर्ग, वद्ध, पक्ष, कीलक, स्तब्ध, ईर्षक, सेव्यक, आक्षिप्त, मोघबीज, शालीन, अन्यापति, मुखेभग, वातरेता, कुम्भीक, षण्ड, नष्टक, आसेव्य, सुगन्धी और छिन्नलिङ्गक, ये उन्नीस तथा गुरुजनके अभिशापसे भी एक प्रकार, इस तरह कुल बीस षण्ढोंका उल्लेख है। इनके विषय नीचे लिखे जाते हैं।

निसर्गषण्ढ—ये पुरुषाङ्गहीन हो कर ही जन्मग्रहण करते हैं।

वद्ध—अण्डहीन क्लीवका नाम वद्धषण्ढ है।

पक्षषण्ड—ये एक पक्षके अन्तर पर मैथुन कार्यमें समर्थ होते हैं।

कालक—ये षण्ड अपनी स्त्रीको पहले पर पुरुषके साथ सङ्गत कर पीछे स्वयं उसकी सेवा करते हैं।

रतिस्तब्ध—जिनका शुक्र रतिकालमें या सर्वदा स्तम्भित होता रहता है।

ईर्षक—दूसरेका मैथुन कार्य देखने ही लिङ्ग सम्भोग करनेकी प्रवृत्ति उत्पन्न होता है।

सेव्यक—अपरिचित स्त्रीसेवाके कारण जिन्हें मैथुनकी इच्छा नहीं होती।

आक्षिप्तबीज—मैथुन समावसान कालमें स्त्रीके पहले जिनका रेत स्खलित हो जाता है।

मोघबीज—निर्लज्ज या सम्मत स्त्रियोंके पास रहनेके कारण उनका हावभाव देखते ही जिनका रेतःपात होता है।

अन्यपति—दूसरेकी स्त्रीमें उपगत होनेके समय जिनका पुंस्त्व विद्यमान रहता है, किन्तु अपनी स्त्रीके समय विलोप हो जाता है।

मुखेभग—ये स्त्री या पुरुष जिस किसी व्यक्तिके मुखमें ग्राम्यधर्म मैथुनकर्म करते हैं।

वातरेत—जिनका रेतःपतनके समय सरेतोवात या केवल वायु निकलती है।

कुम्भीक—जो नर या नारीके हस्ततलमें मैथुनकार्य करते हैं।

षण्ड—जो पुंस्त्वहीन हैं अथवा जिनका मेढ्र किसी तरह विकृत नहीं होता।

नष्ट—रोगादिके कारण जिनका शुक्र विनष्ट नहीं होता और न ध्वजोच्छ्राय ही होता है।

सुगन्धिक—जो योनि और लिङ्गका आघ्राण ले कर बल पाते हैं।

छिन्नलिङ्ग—जिनके पायु मेढ्र, चर्म आदि सभी इन्द्रियां नष्ट हैं।

उक्त षण्डोंका दर्शन या स्पर्शन करनेसे पुण्यतोयामें स्नानादि द्वारा पापक्षालन करना होता है।

शौचहीन वृत्ति विकल ब्राह्मण, पतिपुत्रहीना स्त्री तथा जो देव और पितृलोक, धर्मशास्त्र, यज्ञ और सत्कार्यादिके निन्दक हैं उन्हें दर्शन या स्पर्शन करनेसे सूर्यावलोकन करके शुद्धिलाभ करना होता है। इसके सिवा रजस्वला स्त्री, अन्त्यज जातिका शव, मिश्र धर्मावलम्बिनी सूतिका, षण्ड, चण्डाल जातिका उत्पन्न शवनि, मृत व्यक्तिका निर्यातनकारी, परदाररत, मद्यप्रसक्त, अमङ्गल जन्तु षण्ड इन्दुर और मार्जार, कुक्कुट, ग्राम्यशूकर तथा स्वयं निराश्रित अथवा पितृमातृ परित्यक्त परिपालित चण्डालादि, इन्हें स्पर्श करनेसे सचेलस्नानादि द्वारा शुद्धिलाभ करना होता है।

२ वातोपहता योनिसे उत्पन्न नष्टार्तवा स्तन रहिता स्त्री-शरीरविशेष। योनिकी वातापसृष्टता और पुरुषवीर्यकी दुष्टताके कारण ऐसी सन्तान उत्पन्न होती है। ये अनुपभोग्या अर्थात् मैथुन धर्मसे अनुपयुक्त हैं। (वाग्भट उ० ३३ अ०)

षण्डक (सं० पु०) षण्ड स्वार्थे कन्। षण्ड देखो।

षण्डता (सं० स्त्री०) षण्डस्य भाव तल् टाप्। षण्डका भाव या धर्म, षण्डत्व, नपुंसकता।

षण्डतिल (सं० पु०) वह तिल जिससे तेल नहीं निकलता हो।

षण्डा (सं० स्त्री०) वह स्त्री जिसकी चेष्टा पुरुषोंकी सी हो।

षण्डिता (सं० स्त्री०) षण्डी देखो।

षण्णगरिक (सं० पु०) षण्णगर जनपद प्रचलित शाखा व्यापी।

षण्णगरी (सं० स्त्री०) छः नगरी, प्राचीन कालका छः नगरोंका एक दलभाग। (पा ८।४।४८)

षण्णवत (सं० त्रि०) जो गिनतीमें नब्बे और छः हो।

षण्णवति (सं० स्त्री०) षडधिका नवतिः। छः अधिक नवति संख्या, ९६।

षण्णवतितम (सं० त्रि०) छियानवा।

षण्णाडीचक्र (सं० पु०) षड्विध नाडी चक्र। मनुष्योंके जन्मादि छः नक्षत्रघटित चक्रविशेष। जन्म, कर्म, सांघातिक, समुदाय, विनाश और मानस इन छः नाडियोंका षण्णाडी कहते हैं। षण्णाडी इस प्रकार स्थिर करना होती है। जिसका जिस नक्षत्रमें जन्म होता है उसका वही जन्मनक्षत्र जन्मनाडी कहलाता है।

जन्मनक्षत्रसे दशवें नक्षत्रको कर्मनाड़ी तथा जन्मसे सोलहवें नक्षत्रको सांघातिक नाड़ी, अठारहवें नक्षत्रसे समुदय नाड़ी, तेईसवें नक्षत्रसे विनाशनाड़ी और पचीसवें नक्षत्रसे मानसनाड़ी होती है।

इस नाड़ीका फल—जन्मनाड़ीसे देह और अर्थहानि, कर्मनाड़ीमें कर्महानि, मानस नाड़ीसे मनोपीड़ा, सांघातिक नाड़ीमें मित्र तथा अपने अर्थकी हानि, समुदय नाड़ीमें मित्र, भार्या और अर्थक्षय तथा विनाशनाड़ीमें देह, धन और सम्पत्तिका विनाश होता है।

जन्मकालमें इसी प्रकार जन्मनक्षत्र पकड़ कर षण्णाड़ी स्थिर करनी होती है। जो नक्षत्र षण्णाड़ीस्थ होता है, वह नक्षत्र उसके लिये अशुभ है। यदि किसीका भी कोई ग्रह उक्त षण्णाड़ीस्थ नक्षत्रमें हो, तो वह अशुभ फलदायक होता है। जन्म एवं ग्रहोंका शुभाशुभ देखनेसे पहले यह देखना होगा, कि वह षण्णाड़ीस्थ हुआ है या नहीं। पीछे उसका शुभाशुभ विचार करना आवश्यक है। ग्रहोंके गोचर कालमें भी इस षण्णाड़ीका विषय विशेषरूपसे देखा जाता है। शुभग्रह भी यदि गोचरमें षण्णाड़ीस्थ हो, तो उक्त प्रकारका अशुभ फल तथा अशुभ ग्रह षण्णाड़ीस्थ हो, तो विशेष अशुभ होता है।

षण्णाभि (सं० पु०) छः नाभिविशिष्ट चक्र।

षण्मात्र (सं० त्रि०) षड़ मात्राविशिष्ट।

षण्मास (सं० क्ली०) छः मास, आध साल।

षण्मासिक (सं० त्रि०) षण्मासे भवः ठञ् (अवयवि ठञ्च। पा ५।१।८४) छः मासमें होनेवाला।

षण्मास्य (सं० त्रि०) षण्मासे भवः षण्मास (षण्मासाद्ण्यच्च। पा ५।१।८३) इति यत्। षाण्मास्य, षण्मासिक, छः मासमें होनेवाला।

षण्मुख (सं० पु०) षट् मुखानि यस्य। १ कार्त्तिकेय, षडानन। (हलायुध) (क्ली०) २ षट् संख्यक वदन, छः मुख। (त्रि०) ३ छः मुंहवाला।

षण्मुखा (सं० स्त्री०) षट् मुखानीव रेखा यस्याः। षड्मुखा, खरबूजा। इसमें छः मुखकी तरह रेखा है इसीसे इसे षण्मुखा कहते हैं।

षण्मुहूर्त्त (सं० पु०) छः मुहूर्त्त।

षत्व (सं० क्ली०) षस्य भावः षत्व। मूर्द्धन्य षकारका भाव, ष होना।

षत्वविधान (सं० क्ली०) दन्त्य स स्थानमें मूर्द्धन्य ष होनेकी व्याकरणोक्त विधि, यह सब विधि जिनके अनुसार शब्दके स का ष प हुआ हो।

षर्वणी (सं० स्त्री०) पक्षिविशेष। इस पक्षीकी आकृति मयूर पक्षी-सी होती है।

षष् (सं० त्रि०) संख्याविशेष, छः की संख्या। तद्वाचक शब्द, वज्रकोण, शिशिरनेत्र, तर्क, ऋतु, दर्शन, चक्रवर्त्ती, कार्त्तिकेयमुख, गुण, रस, अनु, उत्तराषाढ़ और कूट।

षष्ट (सं० त्रि०) षष्टिसंख्या सम्बन्धी या ६० का।

षष्टि (सं० स्त्री०) षड् दशतः परिमाणमस्य। (पंक्ति विंशति त्रिंशदिति। पा ५।१।५९) इति निपातनात् साधु.। संख्याविशेष, ६० की संख्या।

षष्टिक (सं० पु०) षष्टिरात्रेण पच्यन्ते इति (षष्टिकाः षष्टिरात्रेण पच्यन्ते। पा ५।१।९०) इति कन् प्रत्ययेन निपातितः। धान्यविशेष, साठी धान। यह धान साठ दिनमें होता है, इसीसे इसको षष्टिक या साठी कहते हैं। पर्याय—षष्टिशालि, षष्टिज, स्निग्ध तण्डुल, षष्टिशालरज। भावप्रकाशमें इसका विषय इस प्रकार लिखा है, जो अन्न पेटमें जाते ही पच जाता है उसको षष्टिक धान्य कहते हैं।

षष्टिक, शतपुष्प, प्रमोदक, मुकुन्दक और महाषष्टिक नामभेदसे षष्टिक धान अनेक प्रकारका होता है। इसको व्रीहिधान्य भी कहते हैं। क्योंकि व्रीहिधान्यके लक्षण इसमें दिखाई देते हैं। गुण—मधुर रस, शीतवीर्य, लघु, मलरोधक, वातघ्न, पित्तनाशक, शालिधान्यकी तरह गुणयुक्त होता है।

षष्टिक धान्योंमें षष्टिकाख्य धान्य ही श्रेष्ठ गुणयुक्त है। यह लघु, स्निग्ध, त्रिदोषनाशक, मधुर रस, मृदुवीर्य, धारक, बलकारक, ज्वरनाशक तथा रक्तशालिकी तरह गुणयुक्त है। अन्यान्य षष्टिकधान्य इसकी अपेक्षा अल्प गुणान्वित है। (भावप्र०)

(त्रि०) २ षष्टि संख्या द्वारा क्रीत, जो साठ पर खरीदा गया हो।

षष्टिका (सं० स्त्री०) षष्टिक स्त्रियां टाप्। षष्टिकधान्य, साठी धान।

षष्टिकान्न (सं० क्ली०) षष्टिकमन्न, साठी धानका भात। गुण—दीपन बलकर, नेत्रहितकर, पाचन, त्रिदोषशमन, क्षयरोग और विषदोषनाशक।

षष्टिक्य (सं० त्रि०) षष्टिकानां भवनं क्षेत्रं षष्टिक (यव यवकषष्टिकत्वात् यत्। पा ५।१।२) इति यत्। षष्टिक धान्योपयुक्त क्षेत्रादि, वह खेत जो साठी धान बोनेके लायक हो।

षष्टिज (सं० पु०) षष्टिकशालि, साठी धान।

षष्टितन्त्र (सं० क्ली०) सांख्यशास्त्र। सांख्यशास्त्रको षष्टितन्त्र कहते हैं।

इस शास्त्रमें ६० पदार्थों पर विचार किया गया है, इसीसे इसको षष्टितन्त्र कहते हैं। ये ६० पदार्थ ये सब हैं,—१ प्रकृति और पुरुषका नित्यत्व, २ प्रकृति और पुरुषका परत्व, ३ प्रकृतिमें भोग और विवेकसाक्षात्कारका वास्तविक सम्बन्ध, ४ प्रकृतिके बाद प्रयोजनसाधकत्व, ५ पुरुषमें प्रकृतिका भेद, ६ अकर्त्तृत्व ७ पुरुषबहुत्व, ८ सृष्टिकार्यमें प्रकृति और पुरुषका संयोग, ९ मुक्तिकालमें प्रकृति और पुरुषका वियोग, १० महत्तत्त्व आदि कारणोंमें अवस्थिति, १५ पांच प्रकारके विपर्यय, यथा—अविद्या, अस्मिता राग, द्वेष और अभिनिवेश। इन पांच प्रकारके विपर्ययको तमः मोह, महामोह तामिस्र और अन्धतामिस्र भी कहते हैं। २४ तुष्टि—नौ प्रकार। आध्यात्मिक तुष्टि—४ प्रकार, उनके नाम हैं प्रकृति उपादान, काल और भाग्य। बाह्यतुष्टि ५ प्रकार, इस तुष्टिके हेतु शब्दादि ५ प्रकारके विषय वैराग्य। ५२ अशक्ति—अठाईस प्रकार। यथा—बुद्धि व्याघातके साथ ग्यारह प्रकारके इन्द्रिय व्याघातको अशक्ति कहते हैं। तुष्टि तथा सिद्धिका विपर्यय प्रयुक्त बुद्धि व्याघात सत्रह प्रकारका है। बुद्धि व्याघात शब्दमें बुद्धिको अकर्मण्यता, तुष्टि सिद्धिके समय जिस प्रकार सत्त्वगुणका उदय होता है, उसकी हानि पश्चात् तुष्टिकी सिद्धि न होने या उसका विरोधी भावान्तर होनेसे बुद्धिव्याघात होता है। यद्यपि इन्द्रिय व्याघात बधिरता अन्धता और मूकता आदि हैं, तथापि उसके लिये बुद्धिवृत्तिका अनुदय या बुद्धिकी अन्यथा भावोदय होनेके कारण यहां इन्द्रिय व्याघात शब्दमें मानना होगा। तुष्टि ९ प्रकार तथा सिद्धि प्रकार उसका विपर्यय है अर्थात् उसको अभाव या विरोधी भावका उदय होता है यह तथा पूर्वोक्त और ग्यारह इन्द्रियोंका नाश, यही अठाइस प्रकार की अशक्ति है। ६० सिद्धि ८ प्रकारकी है यथा आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक ये तीन दुःख नाश, आत्मतत्त्वविषयक ग्रन्थपाठ उस ग्रन्थका अर्थग्रहण, प्रकृतिपुरुषके विवेकके विषयमें अनुमान, सुहृदोंके साथ उस विषयमें आलोचना तथा उक्त विवेक ज्ञानकी विशुद्धि अर्थात् निदिध्यासन और विवेक साक्षात्कार यह आठ प्रकारकी सिद्धि है।

षष्टितम (सं० त्रि०) षष्टि (षष्ट्यादेश्चा सङ्ख्यादेः। पा ५।२।५८) इति तमट्। ६०का पूरक, साठवां।

षष्टिधा (सं० अव्य०) षष्टि प्रकारार्थे धाच्। षष्टि प्रकार, ६० किस्म।

षष्टिपथ (सं० पु०) शतपथब्राह्मणके ६० पथ या अध्याय।

षष्टिपथिक (सं० त्रि०) षष्टिपथ अध्ययनकारी।

षष्टिमत्त (सं० पु०) षष्ट्या वर्षैर्मत्त। हस्ती हाथी।

षष्टिरात्र (सं० पु०) षष्टिसंख्यक रजनी, ६० रात।

षष्टिलता (सं० स्त्री०) भ्रमरमारी, एक प्रकारका पौधा।

षष्टिवर्षिन् (सं० त्रि०) षष्टिवर्षविशिष्ट, जो ६० वर्षका हो।

षष्टिवासरज (सं० पु०) षष्टिवासरे जायते पच्यते जन् ड। षष्टिक धान्य, ६० दिनमें यह धान पकता है, इस लिये इसका नाम षष्टिवासरज है।

षष्टिविद्या (सं० स्त्री०) सांख्यविद्या, षष्टितन्त्र।

षष्टिमत (सं० क्ली०) मतभेद।

षष्टिशालि (सं० पु०) षष्टिक धान्य, साठी धान।

षष्टिसंवत्सर (सं० पु०) प्रभवादि षष्टि संख्यक वर्ष, प्रभव आदि ६० वत्सरको षष्टिसंवत्सर कहते हैं। ज्योतिषके मतसे इन सब वत्सरोंमें विभिन्न फल होते हैं। कौन वर्ष शुभ होगा और कौन वर्ष अशुभ इस साठ संवत्सरोंके फल द्वारा यह जाना जाता है। इन सब संवत्सरोंके नाम ये हैं—१ प्रभव, २ विभव, ३ शुक्ल, ४ प्रमोद, ५ प्रजापत्य ६ अङ्गिरा, ७ श्रीमुख, ८ भाव, ९ युवा, १० धाता, ११ ईश्वर, १२ बहुधान्य १३ प्रमाथी, १४ विक्रम, १५ वृष, १६ चित्रभानु १७ स्वभानु

१८ दारुण, १९ पार्थिव, २० व्यय, २१ सर्वजित्, २२ सर्वधारी, २३ विरोधी, २४ विकृत, २५ खर, २६ नन्दन, २७ विजय, २८ जय, २९ मन्मथ, ३० दुर्मुख, ३१ हेमलम्ब, ३२ विलम्ब, ३३ विरोध, ३४ सर्वरी ३५ प्लव, ३६ शुभकृत, ३७ शोभन, ३८ क्रोध, ३९ विश्वावसु, ४० पराभव, ४१ प्लवङ्ग, ४२ कीलक, ४३ सौम्य, ४४ सर्वसाधारण, ४५ विरोधी, ४६ परिधावी, ४७ प्रमाथी, ४८ आनन्द, ४९ राक्षस, ५० अनल, ५१ पिङ्गल, ५२ कालयुक्त, ५३ सौद्र, ५४ दुर्मति, ५५ रौद्र, ५६ दुन्दुभि, ५७ रक्त, ५८ रक्ताक्ष, ५९ क्रोध और ६० क्षर।

इन सब वत्सरोंमेंसे कौन वर्ष प्रभवादि होगा, वह गणना द्वारा स्थिर करना होता है। (ज्योतिस्तत्त्व)

वत्सर और संवत्सर शब्दमें विशेष विवरण देखो।

षष्टिहायन (सं० पु०) षष्टिर्हायना आयुः कालो यस्य। १ गज, हाथी। २ धान्यविशेष, एक प्रकारका धान। ३ ६० वत्सर। (त्रि०) ४ षष्टिवत्सरविशिष्ट, जो ६० वर्षका हो।

षष्टिहृद (सं० क्ली०) तीर्थविशेष।

षष्ट्यब्द (सं० क्ली०) प्रभवादि ६० संवत्सर।

षष्ठ (सं० त्रि०) षष् (तस्य पूरणे डट्। पा ५।२।४८) इति डट् (षट् कति कतिपय चतुरां थुक्। पा ५।२।५१) इति थुक्। जिसका स्थान पाँचवेंके उपरान्त हो, छठा।

षष्ठक (सं० त्रि०) षष्ठो भागः (मानपश्वङ्गयोः कन् लुकौ च। पा ५।३।५१) इति कन्। षष्ठ, छठा।

षष्ठकाल (सं० पु०) षष्ठः कालः। षष्ठ ऐसा काल, छठा समय।

षष्ठभक्त (सं० क्ली०) षष्ठकालीय भोजन।

षष्ठवत् (सं० त्रि०) षष्ठ अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। षष्ठ भागविशिष्ट, छठा।

षष्ठवती (सं० स्त्री०) छठी। (भाग० ५।१९।१८)

षष्ठांश (सं० पु०) षष्ठोऽशः। षष्ठभाग, छठा हिस्सा। ब्राह्मणसे इतर अन्य वर्ण यदि निधि पावे, तो राजा षष्ठांश दे कर बाकी सब भाग स्वयं ले लें।

षष्ठान्न (सं० पु०) वह भोजन जो तीन दिनोंके बीचमें केवल एक बार किया जाय।

षष्ठान्नकाल (सं० पु०) एक व्रत जिसमें तीन दिनमें केवल एक बार भोजन किया जाता है। एक मास तक षष्ठान्नकाल अर्थात् दो दिन अनाहार रह कर तीसरे दिन भोजन आदि द्वारा अपाङ्क्तेयोंके पाप दूर होते हैं।

षष्ठान्नकालक (सं० स्त्री०) षष्ठान्नकालता, दो दिन भूखा रह कर तीसरे दिन शामको भोजन करना।

षष्ठान्नकालिक (सं० त्रि०) षष्ठान्नकालभोजनयुक्त, जो दो दिन भूखा रह कर तीसरे दिन शामको भोजन करे।

षष्ठाह्नकालक (सं० त्रि०) द्विव्यहान्तरभुक्त, दो या तीन दिनके बाद खानेवाला।

षष्ठाह्निक (सं० त्रि०) षडह, छः दिनमें होनेवाला।

षष्ठिका (सं० स्त्री०) षष्ठी स्वार्थे कन्। षष्ठी देवी।

षष्ठिमत्त (सं० पु०) हस्ती, हाथी।

षष्ठिहायन (सं० पु०) १ हस्ती, हाथी। २ षष्ठिक धान्य, साठी धान।

षष्ठी (सं० स्त्री०) षष्ठ-ङीप्। १ कात्यायनी। (मेदिनी) २ सोलह मातृकाओंमेंसे एक मातृका। यह देवी प्रकृतिकी षष्ठीकला और स्कन्दभार्या है। ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके प्रकृतिखण्डमें लिखा है,—मातृकाओंमें यह देवी प्रधान है। यह छोटे छोटे बच्चोंका प्रतिपालन करनेवाली तथा प्रकृतिकी षष्ठांश स्वरूपिणी है, इसीसे इनका नाम षष्ठी हुआ है। ये कार्त्तिकेयकी स्त्री हैं। इस देवीके प्रसादसे पुत्रपौत्रादि लाभ होते हैं, इस कारण जगद्धात्री है। बारहों महीने इनके उद्देशसे शुक्लपक्षकी षष्ठीतिथिमें पूजा करना कर्त्तव्य है।

शिशुओंका लालनपालन और रक्षा, यह देवीका ही कार्य है, इस कारण बालकका जन्म होनेसे सूतिकागारमें छठे दिनकी रातको इनकी पूजा करनी होती है। इस देवीके अप्रसन्न होनेसे सन्तानलाभ नहीं होता, अतएव सन्तानकामी व्यक्तिको चाहिये, कि वे तनमनसे इनकी पूजा करें।

किस समयसे इनका पूजाविधान प्रचलित हुआ और किस व्यक्तिने पहले पहल इस देवीकी पूजा की, इसका विषय ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें इस प्रकार लिखा है,—स्वायम्भुव मन्वन्तरमें प्रियव्रत नामक एक राजा थे। ये अत्यन्त धर्मपरायण थे तथा सर्वदा तपस्यामें निरत रहते थे। एक दिन ब्रह्माने इन्हें सन्तानके लिये विवाह

करने कहा। प्रियव्रतने ब्रह्माकी आज्ञा शिरोधार्य मान कर विवाह कर लिया। बहुत दिन बीत गये, पर उन्हें एक भी सन्तान उत्पन्न न हुई। इस पर उन्होंने कश्यप ऋषि द्वारा पुत्रेष्टियज्ञ कराया। प्रियव्रतकी पत्नीने चरु भोजन कर उसी समय गर्भधारण किया किन्तु दैव परिमाण बारहवर्ष गर्भधारणके बाद उन्होंने एक मृतपुत्र को प्रसव किया। राजा वह मृत पुत्र ले कर श्मशान गये। इसी समय उज्ज्वल विमान पर चढ़ कर एक देवी वहां उतरी। राजाने बड़े विस्मयके साथ उनसे पूछा, 'हे सुशोभने! तुम कौन हो, किसकी कन्या और किसकी स्त्री हो?' देवीने जवाब दिया, मैं ब्रह्माकी मानसी कन्या हूं, देवसेना मेरा नाम है मैं मातृकाओंमें विख्यात हूं कार्त्तिकेय मेरे स्वामी हैं, मैं प्रकृतिके षष्ठांशसे उत्पन्न हुई हूं, इसीसे लोग इस विश्वमें मुझे षष्ठी कहते हैं)।

अनन्तर इस षष्ठी देवीने उस मृत बालकको तपस्या द्वारा जिला दिया और वह उसे ले कर जानेको तैयार हो गई। राजा यह अलौकिक व्यापार देख कर उनका स्तव करने लगे। राजाके स्तवसे षष्ठी देवीने सन्तुष्ट हो उनसे कहा 'राजन् तुम यदि त्रिलोकमें सभी जगह मेरी पूजाका प्रचार कर स्वयं भी मेरी पूजा करो, तो तुम्हें यह बालक लौटा सकती हूं।' राजाने इसे स्वीकार कर लिया। षष्ठी देवी बड़ी प्रसन्नतासे उन्हें पुत्र प्रदान कर त्रिदिव राज्यको चली गई। राजा पुत्रको ले कर हृष्टचित्तसे घर लौटे। यहां उन्होंने षष्ठीदेवीकी धूमधामसे पूजा की तथा ब्राह्मणों को प्रचुर धन दान किया। तभीसे राजा प्रतिमासकी शुक्लाषष्ठी तिथिको षष्ठीकी पूजा तथा उनके उद्देशसे महोत्सव करने लगे। बालकोंके सूतिकागृहके छठे और २१वें दिन शुभसंस्कार कार्यमें अर्थात् नामकरण अन्नप्राशन आदि कार्योंमें षष्ठीपूजा होता है। कहीं कहीं तीस दिनमें सूतिकाशौच दूर होनेके बाद षष्ठीदेवीकी पूजा होती देखी जाती है। ग्रामग्राम शिला, घर, वटवृक्षमूल या घरकी दीवारमें पुत्तलिका बना कर इस देवीकी पूजा करनी होती है।

स्कन्दपुराणमें बारह मासका बारह षष्ठीके पृथक् पृथक् नाम देखे जाते हैं। वैशाखमासमें चान्दनी षष्ठी, ज्येष्ठमें अरण्यषष्ठी, आषाढ़में कर्दमीषष्ठी, श्रावणमें लुण्ठनषष्ठी, भाद्रमासमें चपेटाषष्ठी, आश्विन मासमें दुर्गाषष्ठी, कार्त्तिक मासमें नाड़ीषष्ठी, अग्रहायणमें मूलकषष्ठी पौषमें अन्नषष्ठी, माघमासमें शीतलषष्ठी फाल्गुनमें गोरूपिणी और चैत्र मासमें अशोकषष्ठी।

प्रतिमासमें भी इन सब षष्ठियोंमें षष्ठीव्रत करना उचित है इस व्रतमें षष्ठीपूजाके विधानानुसार देवीकी पूजा कर षष्ठीकी कथा सुननी होती है तथा उस दिन अन्नभोजन न करके फलमूलादि भोजन कर रहना होता है।

ज्यैष्ठमासकी षष्ठीका नाम अरण्यषष्ठी है। उस दिन अरण्यषष्ठीव्रत करना होता है। यह षष्ठी जमाइषष्ठी कहलाती है। इस दिन भी षष्ठीपूजा और छः प्रकारके फल षष्ठीदेवीके उद्देशसे उत्सर्ग कर पुत्र या जमाई आदिको देने होते हैं। इस दिन स्त्रियां स्नान करनेके समय ताड़का पंखा हाथमें ले कर स्नान करती हैं तथा स्नानके बाद अपनी सन्तानोंको उसी पंखेसे हवा करती हैं।

तिथितत्त्वमें लिखा है, कि उस षष्ठी तिथिमें स्त्रियोंका तालवृन्त और अन्यान्य पूजाके सामानादि ले कर वन जाना, और वहां अरण्यषष्ठीदेवीकी पूजा कर उपाख्यान श्रवण और व्रताचरण कर उस दिन फलमूलादि खा कर रहना चाहिये। इस तरह अरण्यषष्ठीव्रत करनेसे सन्तान आदि दीर्घायु और ऐश्वर्यशाली होता है।

षष्ठी तिथिमें सङ्कल्प कर आसनशुद्धि, जलशुद्धि और गणेशादि देवताओंकी पूजा करे पीछे षष्ठीका ध्यान कर पूजा समाप्त करनी होती है। ध्यान इस प्रकार है—

'ओं द्विभुजां युवतीं षष्ठीं वराभययुतां स्मरेत्।
गौरवर्णां महादेवीं नानालङ्कारभूषिताम्॥
दिव्यवस्त्रपरिधानां वामक्रोड़े सुपुत्रिकाम्।
प्रसन्नवदनां नित्यां जगद्धात्रीं सुखप्रदाम्॥
सर्वलक्षणसम्पन्नां पीनोन्नतपयोधराम्।
एवं ध्यायेत् स्कन्दषष्ठीं सर्वदा विन्ध्यवासिनीम्॥'

इस ध्यानसे यथाविधान पूजा कर निम्नोक्त मन्त्रसे प्रणाम करे। प्रणाम मन्त्र इस प्रकार है—

'जय देवि जगन्मातर्जगदानन्दकारिणि।
प्रसीद मम कल्याणि नमस्ते षष्ठि देवि ते॥'

इस मन्त्रसे प्रणाम कर व्रतकथा सुने। भविष्यपुराणमें इस देवीका व्रतोपाख्यान लिखा है।

विधि षष्ठी—भाद्रमासकी शुक्लाषष्ठीका नाम अक्षयाषष्ठी है। इस षष्ठी तिथिमें स्नानादि जो कुछ किया जाता है, वह अक्षय होता है। अग्रहायणमासकी शुक्लाषष्ठीका नाम गुहषष्ठी है। इस दिन शिवा शान्ति करनी होती है। चैत्रमासकी शुक्लाषष्ठीको स्कन्दषष्ठी कहते हैं। इस तिथिमें कार्त्तिकेयकी पूजा करनेसे इहकालमें सुख और सौभाग्य तथा अन्तकालमें वैकुण्ठकी प्राप्ति होती है।

पुत्रकन्यादिके जन्मके बाद छठे दिन रातको सूतिका गृहमें षष्ठी पूजा करनी होती है। इसको सूतिका षष्ठीपूजा कहते हैं, किन्तु कहीं कहीं अशौचके बाद अर्थात् ३१ दिनमें षष्ठीपूजा होती है। ब्राह्मणादि उच्च वर्णके घर पुत्र जन्म लेनेसे २१ दिनमें और कन्या होनेसे ३१ दिनमें षष्ठीपूजा होती है। अन्य वर्णकी पुत्रकन्या दोनों ही जगह ३१ दिनमें पूजा होती है। पुत्रकन्याके जन्म लेने पर पिताको अशौच होता है, किन्तु अशौच होने पर भी षष्ठीपूजाकालमें उसकी तात्कालिकी शुद्धि होती है। यह शुद्धि छः दिनके लिये जाननी होगी। उस दिन रातको षष्ठीपूजा कर रात्रिजागरण तथा जातसन्तानके समीप खड्गादि रखने होते हैं।

कहीं कहीं पुत्र कन्या जन्म लेनेके छठे दिन रातको षष्ठीदेवीके उद्देशसे एक सौ आठ मौलसिरीके पत्तेसे होम होता है। ३१ दिनमें प्रतिदिन शामको षष्ठीका स्तव तथा आपदुद्धारक स्तव आदि सूतिकागृहमें प्रसूति सुनती है। जब तक सूतिका षष्ठीपूजा नहीं होती, तब तक प्रसूति सूतिकागृहमें रहती है।

पुत्रादि जन्मके छठे दिन रातको प्रदोषकालमें पिता कृतस्नान हो पूर्वमुखसे स्वस्तिवाचन करें। पीछे संकल्प करना होता है। संकल्प इस प्रकार है—'विष्णुरोम् तत्सदद्य अमुके मासि अमुके पक्षे अमुके तिथौ अमुक गोत्रस्य मम अभिनवजातनवकुमारस्य संरक्षणकामः सूतिकागारदेवतापूजनमहं करिष्ये।' पीछे संकल्पसूक्त पढ़ कर सूतिकागृहके द्वार पर क्षेत्रपालकी पूजा करें। अनन्तर माषभक्त ले कर 'एष माषभक्त बलिः ओं क्षेत्रपालाय नमः' इस मन्त्रसे प्रदान कर प्रार्थना करे।

"ओं क्षेत्रपाल नमस्तुभ्यं सर्वशान्तिफलप्रद।
बालस्य विघ्ननाशाय मम गृहाणेमं बलिं॥"

इसके बाद फिरसे माषभक्त बलि ले कर 'एष माषभक्त बलिः ओं भूतदैत्यपिशाचादि गन्धर्वयक्षराक्षसेभ्यो नमः' इस मन्त्रसे उत्सर्ग कर प्रार्थना करनी होती है।

पीछे इन्द्रादि दशदिक्पालकी पूजा कर द्वारपालोंकी पूजा करें।

द्वारदेश पर इन सबकी पूजा कर घरमें घुसे और घटस्थापन पूर्वक सामान्यपूजापद्धतिके नियमानुसार आसनशुद्धि भूतशुद्धि आदि करके गणेश, शिवादि, पञ्चदेवता आदित्यादि नवग्रह, इन्द्रादि दश दिक्पाल आदिकी पूजा करनी होती है। षष्ठीका ध्यान—

"द्विभुजां हेमगौराङ्गीं रत्नालङ्कारभूषितां।
वरदाभयहस्ताञ्च शरच्चन्द्रनिभाननां॥
पीतवस्त्रपरीधानां पीनोन्नतपयोधरां।
अङ्कार्पितसुतं षष्ठीमम्बुजस्थां विचिन्तयेत्॥"

इस ध्यानसे यथाविधान और यथाशक्ति उपचार द्वारा षष्ठीकी पूजा कर प्रार्थना करे।

इसके बाद कार्त्तिकेयकी पूजा कर उनके मन्त्रसे प्रणाम करना होता है।

अनन्तर योगिनी, डाकिनी, राक्षसी, जातहारिणी, बालघातिनी चोरा, पिशिताशना, वासुदेव, देवकी, यशोदा और नन्द इन सबकी पूजा करनी होती है।

पीछे व्यजनस्थ वस्त्रके ऊपर बालकको रख कर षष्ठीदेवीके चरणोंमें समर्पण और मन्त्रपाठ करना होता है।

इसके बाद बालकको सर्वाङ्ग हस्त द्वारा स्पर्श करे। पीछे वस्त्र पर विष्णुके द्वादश नाम लिख कर उसे शिशुके मस्तक पर रखना होगा। द्वादश नाम ये सब हैं,—केशव, अच्युत, पद्मनाभ, गोविन्द, त्रिविक्रम, हृषीकेश, पुण्डरीकाक्ष, वासुदेव, नारायण, हयग्रीव और वामन। अनन्तर यथाक्रम त्रिलोचना, अश्वत्थामा, बलि, व्यास, हनुमान्, विभीषण, कृप और परशुराम इन सात चिरजीवीकी पूजा करनी होगी। षष्ठीके वाहन कृष्ण मार्जार और अश्वत्थ वृक्षकी भी पूजा करनी होती है।

इस प्रकार पूजा समाप्त कर दक्षिणा, शान्ति और अच्छिद्रावधारण करे। (कृत्यतत्त्व)

जहां षष्ठीकी प्रतिमा बना कर पूजा की जाती है वहां प्राणप्रतिष्ठा और विसर्जन करना होता है। षष्ठी ठाकुरको जलमें विसर्जन करनेकी प्रथा नहीं देखी जाती। अश्वत्थ वृक्षके नीचे उस ठाकुरको रखा जाता है। लोग उसी स्थानको षष्ठीतला कहते हैं।

२ चन्द्रमाकी षष्ठकलाक्रियारूप तिथिविशेष, षष्ठी तिथि। शुक्ल और कृष्णभेदसे यह तिथि दो प्रकारकी है। चन्द्रके वृद्धानुकूल षष्ठकला क्रियारूप जो तिथि है, उसे शुक्लाषष्ठी और चन्द्रके ह्रासानुकूल षष्ठकला क्रियारूप तिथिको कृष्णाषष्ठी कहते हैं। यह तिथि सप्तमीयुक्त ग्राह्य है अर्थात् जिस दिन षष्ठी सप्तमीका योग होता है उसी दिन षष्ठीके कार्यादि होंगे।

शारदीया दुर्गापूजाकालमें नवमीके दिन बोधनकी व्यवस्था है, यदि नवमी तिथिको बोधन न हो, तो षष्ठी तिथिमें शामको बोधन करना होगा।

"नवम्यां बोधनासामर्थ्ये तु षष्ठ्यां सायं बोधनं यथा भविष्ये—'षष्ठ्यां बिल्वतरौ बोधं सायं सन्ध्यासु कारयेत्' नवमीके बोधनमें 'इषे मास्यसिते पक्षे नवम्यामार्द्रयोगतः। इस मन्त्रस्थलमें —"षष्ठम्याश्विने षष्ठ्यां सायाह्ने बोधयाम्यतः।" इस मन्त्रका पाठ करे।

षष्ठीके साथ कालमें बोधन करना होता है। यदि षष्ठी पूर्व दिन शामको पड़े, तो पूर्व दिन शामको बोधन होगा। दूसरे दिन आमन्त्रण और अधिवास करना उचित है। यदि दोनों ही दिन शामको षष्ठी तिथि न पाई जाय तो दूसरे दिन पूर्वाह्णमें षष्ठी तिथिको बोधन होगा। (तिथितत्त्व) बोधन और दुर्गोत्सव देखो।

ज्योतिषमें लिखा है, कि षष्ठीतिथिमें जन्म होनेसे जातक विद्वान्, चतुर, श्रेष्ठ सुकीर्त्ति, दीर्घबाहु मणाङ्कित गात्र, सत्यवादी धन और पुत्रविशिष्ट तथा दीर्घायु होता है। (कोष्ठीप्रदीप)

इस तिथिमें यात्रा नहीं करनी चाहिये। करनेसे व्याधि होती है।

षष्ठीजाय (सं० त्रि०) षष्ठी षष्ठसंख्यका जाया यस्य। जिसे छः स्त्री हो।

षष्ठीदास (सं० पु०) १ विख्यात ज्योतिषी, ज्योतिःसमुद्रकार। २ मुग्धविद्रमन संस्कृत काव्यके रचयिता। इनके पिताका नाम था जयकृष्ण। पद्यावलीमें इनकी कविता उद्धृत है।

षष्ठीप्रिय (सं० पु०) स्कन्द, कार्त्तिकेय।

षाट् (सं० अव्य०) सम्बोधन।

षाट्कौशिक (सं० त्रि०) छः कोषयुक्त। कोष देखो।

षाट्पौरुषिक (सं० त्रि०) षट्पुरुष सम्बन्धी।

षाड़व (सं० पु०) १ रागकी एक जाति। इसमें केवल छः स्वर लगते हैं निषाद वर्जित है। जैसे—दीपक और मेघ। षाड़व दो प्रकारका होता है—(१) शुद्ध षाड़व। २ मिठाई। ३ हलवाईका काम। ४ मनोविकार, मनोराग।

षाड़विक (सं० पु०) मिष्टान्नविक्रेता, हलवाई।

षाड्गुण्य (सं० क्ली०) षड्गुणा एव (चातुर्वर्ण्यादीनां स्वार्थे। पा ५।१।१२४) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या ष्यञ्। राज्यरक्षार्थ राजाओंके अवलम्बित छः प्रकारके उपाय। महाभारतमें राज्यरक्षाके लिये सन्धि, विग्रह अर्थात् युद्धयात्रा, शत्रुता करनेके बाद बड़े ठाट बाटसे स्वस्थानमें रहना, शत्रुको भय दिखानेके लिये अनेक यानवाहनादि दिखलाते हुए स्वस्थानावस्थिति, द्वैधीभाव अर्थात् सन्धि और विग्रह ये दो भाव दिखला कर अवस्थान तथा किसी दुर्गादि आश्रय या अन्य किसी बलवान् राजाधिराजका आश्रय ग्रहण, ये ही छः प्रकारके उपाय निर्दिष्ट हैं।

षाड्वर्गिक (सं० त्रि०) इन्द्रिय षड्वर्गका विषय, छः इन्द्रियके ग्रहणीय छः विषय। जैसे—घ्राणका विषय गन्ध रसनाका विषय आस्वाद इत्यादि।

षाड्विध्य (सं० क्ली०) छः प्रकारका भाव।

षाड्रसिक (सं० पु०) वह जिसे छओं रसोंका ज्ञान हो।

षाण्ड (सं० पु०) षण्ड शिव।

षाण्ढ्य (सं० क्ली०) १ षण्ढता क्लीवत्व। (सुश्रुत) २ लिङ्गका अनुत्थान।

षाण्मातुर (सं० पु०) षण्णां मातृणामपत्यमिति षण्मातृ अण् (मातुरुत् संख्या सम्भद्रपूर्वायाः। पा ४।१।११५) उकारश्चान्त्यादेशः। कार्त्तिकेय। इन्होंने कृत्तिकादि छः स्त्रियोंके स्तन पान कर जीवन धारण किया था इसीसे इनका यह नाम पड़ा।

षाण्मासिक (सं० त्रि०) षण्मास ठञ् (पा ५।१।८३)। १ छ महीनेमें होनेवाला। मनुने लिखा है, कि उत्कृष्ट कर्मचारी को भृतिस्वरूप प्रतिदिन छः पण तथा घरमें झाड़ लगानेवाले और भार ढोनेवाले निकृष्ट भृत्योंको एक मास पर द्रोण परिमित (एक माप जो चार आढक या १० सेरकी होती है) धान तथा छः मास पर दो वस्त्र देना उचित है। (पु०) २ मृतक सम्बन्धी एक कृत्य जो किसीकी मृत्युके छः महीने पीछे किया जाता है, छमासी।

षाण्मास्य (सं० त्रि०) षण्मास यत् (पा ५।१।८३) षाण्मासिक, छः महीनेमें होनेवाला।

षात्वणत्विक (सं० त्रि०) षत्वणत्वविधायक शास्त्रकी व्याख्यासे उत्पन्न।

षादतर (सं० पु०) संगीतमें एक बनावटी सप्तक जो मंद्रसे भी नीचा होता है। यह सप्तक केवल बजानेके काममें आता है।

षाष्टिक (सं० त्रि०) षष्टिसम्बन्धी।

षाष्टिपथ (सं० त्रि०) षष्टिपथं वेत्ति अधीते वा षष्टिपथ अण्। जो षष्टिपथ जानते या अध्ययन करते हों।

षाष्ठ (सं० त्रि०) षष्ठ अण् स्वार्थे। १ षष्ठ, छठा। (षष्ठाष्टमाभ्याञ्च। पा ५।३।५०) इति ञ। (पु०) २ षष्ठ भाग, छः भागका एक भाग। (सिद्धान्तकौमुदी)

षिड्ग (सं० पु०) षट् अनादरे बाहुलकात् अतोऽपि गन् सत्वाभावश्च (उण् १।१२३ टीका) १ कामुक, व्यभिचारी, लंपट। २ शूरवीर।

षु (सं० पु०) गर्भविमोचन। (एकाक्षरकोष)

षू (सं० स्त्री०) गर्भविमोचन।

षोड़ (सं० पु०) षोडत् देखो।

षोडत् (सं० पु०) षट् दन्ता अस्य (षषउत्वं दतृशधासूत्तरपदादेष्टुत्वञ्च। पा ६।३।१०९ वार्त्तिक) इति षष अन्तस्य उत्व उत्तरपदस्यादेष्टुत्वात् दस्य डः छः दाँतका बैल, जवान बैल।

षोडश (सं० त्रि०) षोडशाणां पूरणः षोड़शन् डट्। (सिद्धान्तकौ०) सोलहवाँ।

षोड़शकल (सं० त्रि०) १ षोड़श कलाविशिष्ट, जिसमें १६ कला या अंश हों। (पु०) २ चन्द्रमा। ३ भगवान्की एक विराट् मूर्त्ति। इसमें एकादश इन्द्रिय और पञ्च महाभूत हैं। षोडश कला या अंश विद्यमान रहनेके कारण ऐसा कल्पित हुआ है।

षोडशकला (सं० स्त्री०) षोडश संख्यान्वित कला, चन्द्रमाके सोलह भाग जो क्रमसे एक एक करके निकलते और क्षीण होते हैं। तन्त्रसारमें लिखा है, कि प्राण प्रतिष्ठा कर निम्नोक्त रूपसे मन्त्रपाठ कर उक्त कला या अंशोंकी यथाविधान पूजा करनी होती है। मन्त्र जैसे—'अं अमृतायै नमः' इस प्रकार आं मानदायै, इं पूषायै, ईं तुष्ट्यै, उं पुष्ट्यै, ऊं रत्यै, ऋं धृत्यै, ॠं शशिन्यै, ऌं चन्द्रिकायै, ॡं कान्त्यै, एं ज्योत्स्नायै ऐं श्रियै, ओं प्रीत्यै, औं अङ्गदायै, अं पूर्णायै, अः पूर्णामितायै कह कर प्रत्येकके अन्तमें नमः शब्द उच्चारण करना होगा। शक्तिके अनुसार अलग अलग हर एकका आवाहन कर गन्धादि द्वारा पूजा की जाती है।

षोडशगण (सं० पु०) पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच भूत और एक मन इन सबका समूह।

षोडशगृहीत (सं० त्रि०) आहृत षोड़शबलि।

षोडशदान (सं० क्ली०) षोडश प्रकारं दानम्। सोलह प्रकारके दान जो श्राद्धादिके समय दिये जाते हैं। दान ये हैं—१ भूमि, २ आसन ३ जल, ४ वस्त्र, ५ दीप, ६ अन्न, ७ ताम्बूल, ८ छत्र, ९ गन्ध, १० माल्य, ११ फल, १२ शय्या, १३ पादुकायुगल, १४ धेनु, १५ हिरण्य और १६ रजत। (शुद्धितत्त्व)

गयाश्राद्धपद्धतिमें सोलह दानके सम्बन्धमें सोलह द्रव्य इस प्रकार निर्दिष्ट हुए हैं। जैसे—स्वर्ण, रौप्य, ताम्र, कांस्य, गो, हस्ती, अश्व, गृह, भूमि, वृष, वस्त्र, शय्या, क्षेत्र, पादुकायुगल, दासी और अन्न।

षोडशधा (सं० अव्य०) सोलह प्रकार।

षोडशन् (सं० त्रि०) षट् च दश च (पृषोदरादीनि यथोदिष्टम्। पा ६।३।१०९) १ जो गिनतीमें दशसे छः अधिक हो, सोलह। (पु०) २ सोलह कला। ३ सोलह मातृका। (कविकल्पलता)

षोडशभाग (सं० पु०) सोलह भाग।

षोडशपिण्ड (सं० पु०) पिण्डदान-क्रियाविशेष, उन्नीस पिण्डदानक्रिया, इसे षोडशपिण्डदान कहते हैं। यह

शब्द, पारिभाषिक है अर्थात् उनाम पिण्डका नाम ही षोडशपिण्ड है। प्रेतपक्षको अमावस्या और तीर्थ प्राप्तिमें यथाविधान पार्वणश्राद्ध करके १६ पिण्डदान करने होते हैं। प्रेतशिलोक्त रीतिके अनुसार द्वादशपिण्ड और षोडश पिण्ड प्रदान करे। गयामें प्रेतशिला पर जिस रीतिसे मातृषोडशी और पितृषोडशी मन्त्र द्वारा षोडश पिण्डदान करना होता है उसी प्रणालीके अनुसार यह पिण्डदान करना उचित है। इस शब्दको पञ्चाग्नि शब्दको तरह पारिभाषिक समझना होगा।

यथाविधान पार्वण श्राद्ध समाप्त करके षोडश पिण्ड दान करे। इस पर पहले दक्षिणाग्र पांच रेखा उसके ऊपर ६ रेखा अङ्कित करनेसे २० घर होंगे। इन सब स्थलोंमें नीचे कुश बिछा देना होगा। पीछे उस आस्तृत कुश पर तिलयुक्त जल द्वारा मन्त्र पढ़ कर पितृपुरुषोंकी अर्चना करे। मन्त्र पढ़ कर पितृकुल, मातृकुल और बन्धुकुलके गतिहीन व्यक्तियोंको आवाहन करे तथा कुशा के ऊपर तिल छिड़क दे। इसके बाद सतिल जलाञ्जलि ले कर इस मन्त्रसे कुशाके ऊपर सतिल जल देना होगा। पीछे यथाविधान घृतादि द्वारा पिण्डको सिक्त कर १६ पिण्ड बनावे। अनन्तर कुशके मूल स्थानमें क्रमशः एक एक मन्त्र पढ़ कर पितृतीर्थ क्रमसे पांच पांच करके तीन पंक्तिके पन्द्रह घरोंमें तथा नैऋत कोणस्थित घरको बाद दे कर पश्चिम ओरकी अन्तिम पंक्ति चार घरोंमें चार, यही १६ पिण्ड देने होंगे।

१६ मन्त्रपाठ कर यह षोडश पिण्डदान करे। श्राद्धतत्त्व और श्राद्धपद्धतिमें यह मन्त्र लिखा है वह जानके भयसे यहां उसका उल्लेख नहीं किया गया। तीर्थ स्थलमें तीर्थप्राप्तिनिमित्तक श्राद्ध और महालयामें पार्वण कर इसी प्रकार षोडशपिण्ड है।

षोडशपूजन (सं० पु०) सोलहों सामग्रीके साथ पूजन।

षोडशभुज (सं० पु०) षोडश हस्तविशिष्ट, जिसे सोलह हाथ हो।

षोडशभुजा (सं० स्त्री०) षोडश भुजा यस्याः सोलह हाथवाली दुर्गा।

कालिकापुराणमें इस देवीकी पूजाविधि इस प्रकार लिखी है—आश्विनमासकी कृष्ण एकादशीमें उपवास रह कर दूसरे दिन द्वादशीमें वा समस्त दिनोंके बाद रातको हविष्यान्न भोजन कर रहना होगा। इसके बाद चतुर्दशीके दिन यथाविधान महामायाका बोधन करके नैवेद्यादि नाना प्रकारके उपकरण द्वारा गीतवाद्यादि कर उनकी पूजा शेष करना होगी। दूसरे दिन अमावस्यासे परपक्षीय शुक्ला नवमी तक दिनको उपवासी रह कर रात को हविष्यान्न भोजन करना होगा। ज्येष्ठा नक्षत्रमें आरम्भ कर उत्तराषाढ़ामें पूजा समाप्त करनेके बाद श्रवणामें विसर्जन देना होगा। (कालिकापुराण)

षोडशम (सं० त्रि०) सोलहवां।

षोडशमातृका (सं० स्त्री०) षोडशसंख्यका मातृका। एक प्रकारकी देवियां जो सोलह हैं—गौरी, पद्मा, शची, मेधा, सावित्री, विजया, जया, देवसेना, स्वधा, स्वाहा, लक्ष्मी, शान्ति, पुष्टि, धृति, तुष्टि और आत्मदेवता।

षोडशर्त्विक्क्रतु (सं० पु०) षोडश ऋत्विजो यत्र तादृश क्रतु। ज्योतिष्टोम याग।

षोडशविध (सं० त्रि०) षोडशविधा यस्य। सोलह प्रकारका।

षोडशशृङ्गार (सं० पु०) पूर्ण शृङ्गार जिसके अन्तर्गत सोलह बातें हैं, पूरा सिंगार।

षोडशसंस्कार (सं० पु०) वैदिक रीतिके अनुसार गर्भाधानसे ले कर मृतक कर्म तकके १६ संस्कार जो द्विजातियोंके लिये कहे गये हैं।

षोडशसहस्र (सं० क्ली०) षोडशानां सहस्र। सोलह हजार।

षोडशांश (सं० पु०) षोडशोऽंश। सोलहवां भाग।

षोडशांशु (सं० पु०) षोडश अंशवो यस्य। १ शुक्र ग्रह। (त्रि०) २ जिसमें सोलह किरणें हों।

षोडशाङ्घ्रि (सं० त्रि०) षोडशपदयुक्त, जिसे सोलह पैर हों।

षोडशाक्षर (सं० त्रि०) षोडश अक्षराणि यस्य। १ जिसमें सोलह अक्षर हों। (क्ली०) २ सोलह अक्षर।

षोडशाङ्ग (सं० क्ली०) षोडश द्रव्याणि अङ्गानि यस्य। धूप विशेष सोलह प्रकारके सुगन्धित द्रव्यमिश्रित धूप। तन्त्रमें इस षोडशाङ्ग धूपका विषय इस प्रकार लिखा है—गुग्गुल, सरल, दारु, पत्र, श्वेतचन्दन, हावेर, अगुरु, कुष्ठ, गुड़, धूना, मोथा, हरीतकी, नखी, लाक्षा, जटामांसी और

शैलज इन सोलह प्रकारके द्रव्योंको मिला कर घृतके साथ धूप प्रस्तुत करना होता है। इसीको षोडशाङ्ग धूप कहते हैं। यह दैव्य और पैत्रकार्यमें प्रशस्त है।

षोडशाङ्घ्रि (सं० पु०) षोडश अङ्घ्रयो यस्य। १ कर्कट, केकड़ा। (हेम) (त्रि०) २ षोडश चरणयुक्त, जिसे सोलह पैर हों।

षोडशात्मक (सं० पु०) सोलह गुणोंका चेतन करनेवाला।

षोड़शात्मन (सं० पु०) षोडश कला अर्थात् पञ्चभूत तथा एकादश इन्द्रियको प्रधान।

षोडशार (सं० क्ली०) षोडश अराणि इव दलानि यस्य। १ षोडश दलपद्म। २ जलाशयोत्सर्गमें वेदीके ऊपर प्रयोजनीय चक्रविशेष। पञ्चवर्णके चूर्ण द्वारा वेदीके ऊपरी भागमें षोड़शदल पद्मगर्भ चतुर्मुख अर्थात् चार द्वार विशिष्ट चक्र बनाने होंगे। पीछे यथायथ मन्त्रोच्चारण कर उसमें प्रत्येक ओर समस्त लोकपाल और ग्रहोंका विन्यास करनेकी व्यवस्था है।

षोड़शार्चिस् (सं० त्रि०) षोड़श अर्चींषि यस्य। १ सोलह शिखायुक्त। (पु०) २ शुक्रग्रह।

षोडशावर्त्त (सं० त्रि०) षोड़श आवर्त्ता यस्य। १ षोडशावर्त्तनयुक्त, सोलह घुमाववाला। (पु०) २ शङ्ख।

षोड़शाश्रि (सं० पु०) वह घर या मन्दिर जो सोलह कोनोंका हो। ऐसे घरमें सदा अंधेरा रहता है।

षोडशिक (सं० त्रि०) षोड़शयुक्त।

षोड़शिका (सं० स्त्री०) एक प्राचीन तौल जो मागधी मानसे १६ माशे और व्यवहारिक मानसे ८ तोलेके बराबर होती थी। (परिभाषाप्रदीप)

षोड़शिकाम्र (सं० क्ली०) पल परिमाण, ८ तोला।

षोड़शिन् (सं० पु०) सोमरसपूर्ण यज्ञपात्रविशेष।

षोड़शिमत् (सं० त्रि०) सषोड़शिक, पलपरिमित, आठ तोलेका।

षोड़शिसामन (सं० क्ली०) साममेद।

षोड़शी (सं० त्रि स्त्री०) १ सोलहवीं। २ सोलह वर्षकी स्त्री। ३ सोलह वर्षकी स्त्री, नवयौवना स्त्री। ४ दश महाविद्याओंमेंसे एक। दशमहाविद्या देखो। ५ एक यज्ञपात्र। ६ इन सोलह पदार्थोंका समूह—ईक्षण, प्राण, श्रद्धा, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, इन्द्रिय, मन, अन्न, वीर्य, तप, मन्त्र, कर्म और नाम। ७ एक प्राचीन तौल, पलका एक भेद जो मागधी मानसे ५ तोला और व्यवहारिक मानसे ४ तोलेके बराबर होता था। ८ मृतक-सम्बन्धी एक कर्म जो मृत्युके दसवें या ग्यारहवें दिन होता है।

षोड़शीबिल्व (सं० क्ली०) पलपरिमाण, आठ तोला।

षोडशोपचार (सं० पु०) पूजनके पूर्ण अंग जो सोलह माने गये हैं। नीचे उनके नाम दिये जाते हैं; जैसे—आसन, स्वागत, पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, मधुपर्क, पुनराचमनीय, स्नान, वसन, आभरण, गन्ध, पुष्प धूप, दीप, नैवेद्य और चन्दन।

शक्तिपूजामें इनकी अपेक्षा द्रव्यमें थोड़ा उलट-फेर दिखाई पड़ता है। जैसे—पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, स्नान, वसन, भूषण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, पुनराचमनीय, मधु, ताम्बूल, तर्पण और नति।

षोढ़ा (सं० अव्य०) षष्-धाच् पृषोदरादित्वात् साधुः। छः प्रकार।

षोढ़ान्यास (सं० पु०) षोढ़ा षड़् विधो न्यासः। विधिपूर्वक शरीरमें मन्त्रविन्यास।

षौडत (सं० त्रि०) षोडत्-अण् स्वार्थे। (पा ५।४।३८) षोड़त् देखो।

ष्ठ्यूम (सं० पु०) १ चन्द्रमा। २ दीप्ति।

ष्ठीवन (सं० क्ली०) थूकना।

ष्ठीवि (सं० त्रि०) निष्ठीवनयुक्त, थूकसे भरा हुआ।

ष्ठीविन् (सं० त्रि०) १ निष्ठीवनयुक्त, थूकसे भरा हुआ। २ थूकनेवाला।

ष्ठीवी (सं० स्त्री०) थूकना।

ष्ठेवन (सं० क्ली०) थूकना।

ष्ठ्यूत (सं० त्रि०) १ निरस्त। २ थूका हुआ।

स

स—हिन्दी वर्णमालाका बत्तीसवां व्यञ्जन। इसका उच्चारणस्थान दन्त है। इसलिये यह दन्ती स कहा जाता है।

कामधेनुतन्त्रमें इस वर्णको शक्तिबीज कोटि विद्युल्लेखासदृश, कुण्डलीत्रयसंयुक्त पञ्चदेवतामय, पञ्च प्राणात्मक तथा त्रिबिन्दु सहित सत्त्व, रज और तमोगुण कहा है।

स (स-पु०) १ ईश्वर। २ शिव, महादेव। ३ सर्प, साँप। ४ पक्षी चिड़िया। ५ विष्णु। ६ पूर्वोक्त कोई वस्तु, व्यक्ति या विषय। ७ वायु हवा। ८ जीवात्मा। ९ चन्द्रमा। १० भृगु। ११ दीप्ति कान्ति, चमक। (स्त्री०) १२ ज्ञान। १३ चिन्ता। १४ गाड़ीका रास्ता, सड़क। १५ व्याकरणके सूत्रानुसार तद् शब्दके पुलिङ्गमें प्रथमाके एक वचनमें तथा समास और कृत् प्रकरणमें सह और समान शब्दकी जगह आदिष्ट वर्ण विशेष। जैसे—तद् सु=स, पुत्र सह=सपुत्र, गोत्रके समान=सगोत्र, समान इव दृश्यते' समासकी तरह दिखाई पड़ता है समान दृश् टक=सदृश।

१६ संगीतमें षड्ज स्वरका सूचक अक्षर। १७ छन्दः शास्त्रमें 'सगण' शब्दका सूचक अक्षर या संक्षिप्त रूप।

स (स० अव्य) १ एक अव्यय जिसका व्यवहार शोभा, समानता, संगति, उत्कृष्टता, निरन्तरता, औचित्य आदि सूचित करनेके लिये शब्दके आरम्भमें होता है। जैसे,—संयोग, संताप संतुष्ट आदि। कभी कभी इसे जोड़न पर भी मूल शब्दका अर्थ ज्योंका त्यों बना रहता है, उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता। २ से।

संउतना (हि० क्रि०) १ लीपना, पोतना, चौका लगाना। २ संचय करना। ३ यह देखना जितना और जैसा चाहिए उतना और वैसा है या नहीं, सहेजना।

संकट (हि० पु०) एक प्रकारका वसन्त।

संकट चौथ (हि० स्त्री०) माघ मासके कृष्णपक्षकी चतुर्थी। इस दिन संकट दूर करनेवाले गणेश देवताके उद्देशसे व्रत आदि रखा जाता है।

संकरा (हि० वि०) १ जो अधिक चौड़ा या विस्तृत न हो, पतला और तंग। (पु०) २ कष्ट दुःख, विपत्ति।

संकराना (हि० क्रि०) १ संकुचित करना, तंग करना। २ बंद करना।

संकरिया (हि० पु०) एक प्रकारका हाथी जो कमरिया और मिरगीके बीचका श्रेणीका होता है। इसका मूल्य कमरियासे कम होता है।

संकलपना (हि० क्रि०) १ किसी बातका दृढ़ निश्चय करना। २ किसी धार्मिक कार्यके निमित्त कुछ दान देना, संकल्प करना। ३ विचार करना, इरादा करना।

संकला (हि० पु०) शङ्खद्वीप।

संकलपना (हि० क्रि०) सङ्कल्पना देखो।

संकलितकण्ठास्थिक (Pharyngognatha)—जिसके कण्ठकी सभी हड्डियां एकत्र मिल कर एकखण्ड हो गई हों।

संकतना (हि० क्रि०) संकटमें डालना।

संकोचना (हि० क्रि०) संकुचित करना, संकोच करना।

संक्रन्दन (स० पु०) १ शक्र इन्द्र। २ पुराणानुसार भौत्य मनुके एक पुत्रका नाम। ३ क्रन्दन देखो।

संक्रम (सं० पु०) १ संक्रमण, संक्रान्ति। २ प्राप्ति। ३ कष्ट या कठिनतापूर्वक बढ़नेकी क्रिया, सम्प्रवेश। ४ पुल आदि न कर किसी स्थानमें प्रवेश करना। ५ सेतु, पुल। ६ उपाय।

संक्रमण (सं० क्ली०) १ गमन चलना। २ अतिक्रमण। ३ सूर्यका एक राशिसे निकल कर दूसरी राशिमें प्रवेश करना। ४ पर्यटन, घूमना, फिरना।

संक्रमणि (सं० स्त्री०) सोपानश्रेणीविशेष।

संक्रमणिका (सं० स्त्री०) सोपानमञ्च (Gallery)।

संक्रमित (सं० त्रि०) १ निवेशित, स्थापित। २ प्रवेशित। ३ गमित। ४ प्रतिबिम्बित।

संक्रान्त (सं० त्रि०) १ संक्रमणविशिष्ट। २ सम्बन्धीय। ३ प्रतिबिम्बित। ४ गत, प्राप्त। ५ युक्त। ६ प्रविष्ट। ७ सञ्चारित। ८ व्याप्त। (पु०) ९ दायभागके अनुसार वह धन जो कई पीढ़ियोंसे चला आया हो। १० सूर्यका एक राशिसे दूसरी राशिमें प्रवेश करना।

संक्रान्ति (सं० स्त्री०) १ सञ्चार, गमन। २ सूर्यका एक

राशिसे दूसरी राशिमें जाना। ३ प्रतिबिम्बन। ४ व्याप्ति। संक्रान्त शब्द देखो।

संक्रामक (सं० वि०) जो संसर्ग या छूत आदिके कारण एकसे औरोंमें फैलता हो। जैसे,—चेचक, प्लेग, महा मारी, क्षयी आदि रोग संक्रामक होते हैं।

संक्षोभ—एक हिन्दू राजा। ये परमवैष्णव थे, इसलिये परिव्राजक महाराज नामसे विख्यात हुए थे। शिला लिपिसे जाना जाता है, कि ये गुप्त सम्राटोंके अधीन ५२८-२९ ई०में बुन्देलखण्डके अन्तर्गत डाहल नगरमें राज्य करते थे। ये धर्मप्राण राजा सुशर्माके पुत्र और भरद्वाज गोत्रीय थे।

संख (हिं० पु०) शङ्ख देखो।

संखहुली (हिं० स्त्री०) शङ्खपुष्पी देखो।

सांखा (हिं० पु०) चक्कीके ऊपरी पाटमें लगी हुई लकड़ी-की खूंटी जिसमें एक और छोटी लकड़ी जड़ी रहती है, हत्था।

संखार (हिं० पु०) एक प्रकारका पक्षी। इसका रंग अबलक होता है और इसकी चोंच चिपटी होती है।

संखिया (हिं० पु०) १ एक प्रकारकी बहुत जहरीली प्रसिद्ध उपधातु या पत्थर। यह कुमायूं, चित्राल, स्वात, काश्गर, उत्तरी बरमा और चीन आदिमें पाया जाता है। प्रायः इसका रंग सफेद या मटमैला होता है और यह चिकना तथा चमकीला होता है। जिस समय यह खानसे निकलता है, उस समय बहुत कड़ा होता और बहुत कठिनतासे गलता है। पाश्चात्य वैज्ञानिक हरताल और मैनसिलको भी इसीके अन्तर्गत मानते हैं। भारत वासी प्रायः यही समझते हैं, कि इस पत्थर पर बहुत जहरीले बिच्छूके डंक मारनेसे संखिया बनता है। २ उक्त धातुका तैयार किया हुआ भस्म जो देशी और विला-यती दोनों तरहका होता है। यह बजारोंमें सफेद, पीले, लाल, काले आदि कई रंगोंका मिलता है और प्रायः औषधोंमें काम आता है। कुछ लोग कृत्रिम रूपसे भी संखिया बनाते हैं। यह बहुत विकट विष होता है और प्रायः हत्या आदिके लिये काममें आता है। वैद्यकके अनुसार यह वीर्य्य तथा बलवर्द्धक, कान्तिजनक, लोह-भेदक, दाहजनक, वमनकारक, रेचक, त्रिदोषघ्न तथा सब प्रकारके दोषोंका नाश करनेवाला माना जाता है। वैद्यकके अतिरिक्त हिकमत और डाक्टरीमें भी इसका व्यवहार होता है और उनमें भी इसे बहुत बलवर्द्धक माना गया है।

संग (फा० पु०) १ पाषाण, पत्थर। (वि०) पत्थरकी तरह कठोर, बहुत कड़ा।

संग अंगूर (हिं० पु०) एक प्रकारकी वनस्पति जो हिमालय पर पाई जाती है। यह औषधके काममें आती है। इसे शेफा, गिरि बूटी या पेवराज भी कहते हैं।

संगअसवद (अ० पु०) काले रंगका एक बहुत प्रसिद्ध पत्थर। यह कावेकी एक दीवारमें लगा हुआ है और इसे हज करनेके लिये जानेवाले मुसलमान बहुत पवित्र समझते तथा चूमते हैं। मुसलमानोंका यह विश्वास है, कि यह पत्थर स्वर्गसे लाया गया है और इसे चूमनेसे पापोंका नष्ट होना माना जाता है।

संगकूपी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी वनस्पति जो औषधोंके काममें आती है।

संगखारा (फा० पु०) एक प्रकारका पत्थर जो कुछ नीलापन लिये भूरे रंगका और बहुत कड़ा होता है, चक-मक पत्थर।

संग जराहत (अ० पु०) एक प्रकारका सफेद चिकना पत्थर जो घाव भरनेके लिये बहुत उपयोगी होता है। इसे पीस कर बारीक चूर्ण बनाते हैं जिसे "गच" कहते हैं और जो सांचा बनानेके काममें भी आता है। इसका गुण यह है, कि पानीके साथ मिलने पर यह फूलता है और सूखने पर कड़ा हो जाता है। इसलिये इससे मूर्त्तियां आदि भी बनाते हैं। इसे कुलगार, फारसी, सफेद सुरमा या सिलखड़ी भी कहते हैं।

संगठन (हिं पु०, १ बिखरी हुई शक्तियों, लोगों या अंगों आदिको इस प्रकार मिला कर एक करना कि उन-में नवीन जीवन या बल आ जाय, किसी विशिष्ट उद्देश्य या कार्य सिद्धिके लिये बिखरे हुए अवयवोंको मिला कर एक और व्यवस्थित करना, एकमें मिलाने और उप-योगी बनानेके लिये की हुई व्यवस्था। २ वह संस्था या संघ आदि जो इस प्रकारकी व्यवस्थासे तैयार हो।

संगठित (हिं॰ वि॰) जो भली भांति व्यवस्था करके एकमें मिलाया हुआ हो, जो व्यवस्थित रूपमें और काम करनेके योग्य मिला कर बनाया गया हो।

संगणिका (सं॰ स्त्री॰) १ समाज। २ जगत्।

संगत (हिं॰ स्त्री॰) संगत देखो।

संगतरा (हिं॰ पु॰) एक प्रकारकी बड़ी और मीठी नारंगी, संतरा।

संगतराश (फा॰ पु॰) १ पत्थर काटने या गढ़नेवाला मज़दूर, पत्थरकट। २ एक औज़ार जो पत्थर काटनेके काममें आता है।

संगतिया (हिं॰ पु॰) वह जो गाने या नाचनेवालेके साथ रह कर सारंगी तबला, या और कोई साज़ बजाता हो, साज़िंदा।

संगती (हिं॰ पु॰) १ वह जो साथमें रहता हो। संगतिया देखो।

संगदिल (फा॰ वि॰) जिसका हृदय पत्थरकी तरह कठोर हो निर्दय।

संगदिली (फा॰ स्त्री॰) संगदिल होनेका भाव, निर्दयता।

संगपुश्त (फा॰ पु॰) पत्थरकी तरह कड़ी पीठवाला, कच्छप, कछुआ।

संगबसरी (फा॰ पु॰) एक प्रकारकी मिट्टी जिसमें लोहेका अंश अधिक होता है और जो इसी कारण दवाके काममें आती है। यह फारसमें होती है और वहींसे आती है।

संगमर (हिं॰ पु॰) वैश्योंकी एक जाति।

संगमर्मर (अ॰ पु॰) एक प्रकारका बहुत चिकना, मुलायम और सफेद प्रसिद्ध पत्थर जो बहुत किमती होता है। यह मूर्त्ति, मन्दिर तथा महल इत्यादि बनानेमें काम आता है। आगरेका ताजमहल इसी पत्थरका बना है। भारतमें यह जयपुरमें अधिक पाया जाता है। इसके अतिरिक्त अजमेर, किशनगढ़ और जोधपुर आदिमें भी इसकी कुछ खानें हैं। मर्मर देखो।

संगमूसा (फा॰ पु॰) एक प्रकारका काला, चिकना, कीमती पत्थर जो मूर्त्ति आदि बनानेके काममें आता है।

संगयशब (फा॰ पु॰) एक प्रकारका कीमती पत्थर। इसका रंग कुछ हरापन लिये हुए होता है। इसे घोट पीस कर पीनेसे दिलका धड़कना कम हो जाता है। इसका ताबीज बना कर भी लोग पहनते हैं। इसका दूसरा नाम हौलदिली भी है।

संगर (फा॰ पु॰) १ वह धूस या दीवार जो ऐसे स्थानमें बनाई जाती है जहां सेना ठहरती है, रक्षा करनेके लिये सेनाके चारों ओर बनाई हुई खाई, धूस या दीवार। २ मोरचा।

संगरा (फा॰ पु॰) १ कुओंके तलने पर बना हुआ वह छेद जिसमें पानी खींचनेका पम्प बैठाया हुआ होता है। २ मोटे बांसका वह छोटा टुकड़ा जिसकी सहायतासे पेशराज लोग पत्थर उठाते हैं, सेंगरा।

संगरासिब (फा॰ पु॰) तांबेकी मैल जो खिज़ाब बनानेके काममें आती है।

संगरेजा (फा॰ पु॰) पत्थरके छोटे छोटे टुकड़े, कंकड़, बजरी।

संगल (हिं॰ पु॰) एक प्रकारका रेशम जो अमृतसरसे आता है। यह दो तरहका होता है—बरदवानी और दनारी। यह बारीक और मजबूत होता है इसलिये गोटा, किनारी आदि बनानेके काममें बहुत आता है।

संगसार (फा॰ पु॰) १ प्राचीन कालका एक प्रकारका प्राणदंड। यह प्रायः अरब, फारस आदि देशोंमें प्रचलित था। इस दंडमें अपराधी भूमिमें आधा गाड़ दिया जाता था और लोग पत्थर मार मार कर उसकी हत्या कर डालते थे। (वि॰) २ नष्ट, चौपट।

संगसाल (फा॰ पु॰) अफगानिस्तानकी उत्तरी सीमा पर एक पहाड़ोंमें कटा हुआ पत्थरकी बहुत बड़ी मूर्त्तिका नाम। अफगानिस्तानकी उत्तरी सीमा पर तुर्किस्तानके मार्गमें समुद्रसे आठ हजार फुटकी ऊंचाई पर हिन्दुकुशकी घाटीमें बहुत सा पुरानी इमारतोंके चिह्न हैं। यहीं पहाड़में बनी हुई दो बड़ी मूर्त्तियां भी हैं, जिनमेंसे एक १८० और दूसरी ११७ फुट ऊंची है। यहाके लोग इन्हें संगसाल और शाहयम्मा कहते हैं।

संगसी (हिं॰ स्त्री॰) संड़सी देखो।

संगसुरमा (फा॰ पु॰) काले रंगकी वह उपधातु जिस

पिस कर आँखोंमें लगानेका सुरमा बनाया जाता है।

संग सुलेमानी (अ० पु०) एक प्रकारके रंगीन पत्थरके नग जिनकी मालाएं आदि बना कर मुसलमान फकीर पहना करते हैं।

संगाती (हिं० पु०) १ वह जो संग रहता हो, साथी, संगी। २ मित्र, दोस्त।

संगी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका कपड़ा जो विवाहआदि-में वरका पाजामा तथा स्त्रियोंके लहंगे इत्यादिके बनाने-के काममें आता है।

संगी (फा० वि०) पत्थरका, संगीन। जैसे,—संगी मकान।

संगीन (फा० पु०) १ एक प्रकारका अस्त्र जो लोहेका बना हुआ तिफला और नुकीला होता है। यह बंदूकके सिरे पर लगाया जाता है। इससे शत्रुको भोंक कर मारते हैं। (वि०) १ पत्थरका बना हुआ। जैसे,—संगीन इमारत। २ मोटा। जैसे,—संगीन कपड़ा। ३ टिकाऊ, पायदार। ४ पेचीदा। ५ असाधारण, विकट।

संगृहीत (सं० त्रि०) संकलित, संग्रह किया हुआ, एकत्र किया हुआ।

संगृहीतृ (सं० पु०) वह जो संग्रह करता हो, एकत्र करनेवाला, जमा करनेवाला।

संगोतरा (हिं० पु०) एक प्रकारकी नारंगी, संगतरा।

संगोपन (सं० क्ली०) छिपानेकी क्रिया, पोशीदा रखना, छिपाना।

संगोपनीय (सं० त्रि०) छिपानेके योग्य, पोशीदा रखनेके लायक।

संगोपित (सं० त्रि०) लुकायित, छिपा हुआ।

संग्रह (सं० पु०) सङ्ग्रह देखो।

संग्रामपुर—चम्पारण जिलेका एक नगर। यह गण्डक नदीके किनारे अक्षा० २६°२८´३८″ उ० तथा देशा० ८४° ४४´ पू० के मध्य अवस्थित है।

संग्रामशाह—दक्षिणविहारके अन्तर्गत खड्गपुरके एक हिन्दूराजा। इन्होंने मुगल सम्राट् अकबर शाहकी अधीनता स्वीकार नहीं की, इस कारण सम्राट्ने उनके विरुद्ध मुगलवाहिनी भेजी थी। घमसान युद्धके बाद संग्रामशाह युद्धमें मारे गये और उनकी संतानोंको बलपूर्वक इस्लाम धर्ममें दीक्षित किया गया।

संग्राम सा—गढ़मण्डलके ४८वें गोंड़राज। ये वीर, योद्धा और उदार थे। इन्होंने अपने भुजबलसे सागर और जब्बलपुरके समीपस्थ प्रदेशोंको जीत कर अपनी राज्यसीमा बढ़ाई। इसके बाद उन्होंने नरसिंहपुर और शिवनी प्रदेशमें अपना राजदण्ड फैलाया था।

संग्रामसिंह—मेवारके एक प्रबल पराक्रान्त राजा। राणा सङ्ग नामसे ही इनकी प्रसिद्धि थी। ये राणा रायमल्लके बड़े लड़के थे। चित्तोरका सिंहासन ले कर इनके साथ छोटे भाई पृथ्वीराज और जयमल्लका विवाद खड़ा हुआ। इस सूत्रसे उन दोनोंने मिल कर निःसहाय अवस्थामें सङ्ग पर आक्रमण कर दिया। युद्धमें घायल हो कर सङ्गने उदावत् वंशीय बीदा नामक एक राठोर राजपूतके आश्रममें जा जान बचाई।

राणा रायमलने पुत्रोंके इस दुर्व्यवहारसे दुःखित हो पृथ्वीराजको राज्यसे निकाल बाहर कर दिया। पिता-की मृत्युके बाद राणा सङ्ग चित्तोरके सिंहासन पर बैठे। १५१२ ई० में इन्होंने ८० हजार घुड़सवार और ५०० सिपाहीसे अपनी शक्ति मजबूत कर राजपूत जातिका शीर्षस्थान अधिकार किया। इस समय राजपूतानेके अधीश्वरवर्ग, यहां तक कि जयपुर और मारवाड़के राजे उनके छत्रतलमें आ कर राजपूत जातिकी गौरव-रक्षामें बद्धपरिकर हुए थे।

१५२७ ई०में इन्होंने दिल्लीश्वरका पक्ष ले कर राज-पूतराजाओंके साथ मुगलविजेता बाबरशाहका मुकाबला किया। इस समय लाखसे ऊपर राजपूतसेना उनके साथ गई थी। वियानाके निकटवर्त्ती कनूया रणक्षेत्रमें अग्रगामी पन्द्रह सौ मुगलसेना राजपूतोंके हाथसे परा-भूत और विध्वस्त हो प्राण ले कर भाग चली थी।

इसके बाद पिलाखालके किनारे बाबरने फिरसे सेना इकट्ठा की। पहले संधिका प्रस्ताव चलने लगा। बाबर राणाको कर देने और पिलाखालको दोनोंके अधि-कृत सीमारूपमें निर्दिष्ट रखने स्वीकृत हुए, किन्तु शिला-हदि नामक एक विश्वासघातकके कौशलसे संधि टूट गई। अब युद्ध अनिवार्य हो उठा। शिलाहदिने राणाको आश्वासन दिया था, कि वह उन्हींको ओरसे लड़ेंगा,

पर कार्यकालमें उसने बाबरका पक्ष ले कर राणाके विरुद्ध हथियार उठाया। राजपूतगण उसी गड़बड़ीमें रणक्षेत्र में मारे गये। संग्राम युद्धमें हार खा कर चित्तौरको राजधानीको छोड़ मेवाड़के पहाड़ी प्रदेशमें भाग गये। उसी साल मेवाड़के सम्मुखस्थ बसवा नामक स्थानमें भग्नमनोरथ संग्रामके प्राणपखेरू उड़ गये।

संग्राम सिंह (२ य)—उक्त वंशके एक दूसरे राणा। ये राणा २य अमर सिंहके पुत्र थे। जिस समय राणा संग्राम मेवाड़के सिंहासन पर बैठे उस समय महम्मद शाह दिल्लीके सिंहासन पर अधिष्ठित थे। १७१६-१७३४ ई० तक उन्होंने मेवार राज्यका शासन किया। उनके सुयोग्य मन्त्री विहारीदास पञ्चालीकी चातुरीसे मेवार राज्य फिरसे प्रणष्ट गौरवका उद्धार करनेमें समर्थ हुआ। खोये हुए बहुतसे राज्य भी फिर हाथ आ गये। संग्रामके मरने पर विहारी दास फिर बुद्धिबलसे मराठोंके आक्रमणसे राज्यरक्षा करनेमें समर्थ न हुए। महाराष्ट्र सरदारने संग्रामके पुत्र २य जगत् सिंहसे चौथ अदा किया था।

संघराना (हिं० क्रि०) दुखी या उदासीन गौको, उसका दूध दूहनेके लिये परचाना और फुसलाना। जब बच्चा देनेके उपरान्त गौ उस बच्चेको नहीं चाटती या दूध नहीं पिलाती, तब उस बच्चेके शरीर पर शीरा आदि लगा देते हैं जिसकी मिठासके कारण वह उसे चाटने और दूध पिलाने लगती है। इसी प्रकार जब बच्चा मर जाता है और गौ दूध नहीं देती तब कुछ लोग उसके बछड़ेकी खालमें भूसा भर कर उसे गौके सामने खड़ा कर देते हैं जिसे देख कर वह दूध दूहने देती है। गौके साथ इसी प्रकारकी क्रियाएं करनेको संघराना कहते हैं।

संघाती (हिं० पु०) १ साथी, सहचर। २ मित्र। (वि०) ३ संघातक, प्राणनाशक।

संघेरना (हिं० क्रि०) रस्सीसे दो चौपायोंमेंसे एकका दाहिना और दूसरेका बायां पैर एकमें इसलिए बांधना कि जिसमें वे चरनेके समय जंगलमें बहुत दूर न निकल जाय।

संघेरा (हिं० पु०) वह रस्सी जिससे दो चौपायोंका एक पैर इसलिये एक साथ बांध दिया जाता है जिसमें वे जंगलमें चरते चरते बहुत दूर न निकल जाय।

सजमनी (हिं० स्त्री०) यमराजको नगरी।

संजमनीपति (हिं० पु०) यमराज, यमदेव।

संजमी (हिं० पु०) १ संयमी, नियमसे रहनेवाला। २ व्रती। ३ जितेन्द्रिय।

संजाफ (फा० स्त्री०) १ झालर किनारा, कोर। २ चौड़ी और आड़ी गोट जो प्रायः रजाइयों और लिहाफों आदि के किनारे किनारे लगाई जाती है, गोट मगजी। (पु०) ३ एक प्रकारका घोड़ा जिसका रंग या तो आधा लाल आधा सफेद होता है या आधा लाल आधा हरा।

संजाफी (फा० वि०) १ जिसमें संजाफ लगी हो, किनारेदार झालरदार। (पु०) २ वह घोड़ा जिसका रंग संजाफी हो, आधा लाल आधा हरा घोड़ा।

संजाब (हिं० पु०) १ एक प्रकारका घोड़ा। सजाफ देखो। २ एक प्रकारका चमड़ा।

संजाब (फा० पु०) चूहेके आकारका एक जन्तु। यह प्रायः तुर्किस्तानमें होता है। इसका मांस वक्षःस्थलकी पीड़ा कास और व्रणके लिये उपकारक माना जाता है। इसकी खाल पर बहुत मुलायम रोएं होते हैं और उससे पोस्तीन बनाते हैं।

संजीदगी (फा० स्त्री०) विचार या व्यवहार आदिको गंभीरता।

संजीदा (फा० वि०) १ जिसके व्यवहार या विचारोंमें गंभीरता हो, गंभीर, शान्त। २ बुद्धिमान, समझदार।

संजुता (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका छन्द। इसके प्रत्येक चरणमें स, ज, ज, ग, होते हैं। इसे 'संयुत' या 'संयुता' भी कहते हैं।

संजोग (हिं० पु०) संयोग देखो।

संजोगी (हिं० वि०) १ संयुक्त, मिले हुए। २ भार्या सहित, प्रिया सहित। ३ योगी देखो। (पु०) ३ दो जुड़े हुए पिंजड़े जो बहुधा तीतर पालनेवाले रखते हैं।

संजोना (हिं० क्रि०) सज्जित करना, सजाना।

संजोह (हिं० पु०) लकड़ीका वह चौकठा जो जुलाहे कपड़े बुनते समय छतसे लटका देते हैं और जिसमें रस्सी या कंघी लगी रहती है। इसको पेंकते समय इसे आगे बढ़ा देते हैं और उसके पश्चात् इसे खींच कर बानेको कसते हैं। इसे 'हत्था' भी कहते हैं।

संडसा (हिं० पु०) लोहेका एक औजार जो दो छड़ोंसे बनता है। इनके एक सिरे पर थोड़ा सा छोड कर दोनों छड़ोंको आपसमें कीलसे जड देते हैं। प्रायः इसे लोहार गरम लोहा आदि पकड़नेके लिये रखते हैं।

संड़सी (हिं० स्त्री०) पतले छड़ोंका एक प्रकारका संडसा। इसके दोनों छड़ोंका अगला भाग अर्द्ध वृत्ताकार मुड़ा हुआ होता है। इससे पकड़ कर प्रायः चूल्हे परसे गरम बटुली आदि गोल मुंहवाले वरतन उतारते हैं। इसे जंबूरी भी कहते हैं।

संडा (हिं० वि०) १ हृष्ट पुष्ट, मोटा ताजा। (पु०) २ मोटा और बलवान् मनुष्य।

संडाई (हिं० स्त्री०) मशककी तरह बना हुआ भैंस आदिका वह हवा भरा हुआ चमड़ा जिसे नदी आदि पार करनेके लिये नावके स्थान पर काममें लाते हैं।

संडास (हिं० पु०) १ कूपंकी तरहका एक प्रकारका गहरा पाखाना, शौच-कूप। यह जमीनके नीचे खोदा हुआ एक प्रकारका गहरा गड्ढा होता है जिसका ऊपरी भाग ढंका रहता है। केवल एक छिद्र बना रहता है जिस पर बैठ कर मल त्याग करते हैं। मल उसीमें जमा हो जाता है। अधिक दुर्गन्ध होने पर उसमें खारो नमक आदि कुछ ऐसी चीजें छोडते हैं जिसमें मल गल कर मिट्टी हो जाता है। इसका प्रचार अधिकतर ऐसे नगरोंमें है जिनमें नल नहो होता और नित्य मल वाहर फेंकनेमें कठिनता होती है। पर जवसे नलका प्रचार हुआ तवसे इस प्रकारके पाखाने बंद होने लगे हैं। २ इसोसे मिलता जुलता वह पाखाना जिसका आकार ऊंचे खडे नलका-सा होता है और जिसका नीचेका भाग पृथ्वी तल पर होता है। इसमें मकानसे वाहरकी ओर एक खिड़की रहती है जिसमेंसे मेहतर आ कर मल उठा ले जाता है।

संत (हिं० पु०) सत् देखो।

संतरा (हिं० पु०) एक प्रकारको वड़ा और मीठा नीबू, बड़ी नारंगी। सगतरा देखो।

संतरी (हिं० पु०) १ किसी स्थान पर पहरा देनेवाला सिपाही, पहरेदार। २ द्वार पर खड़ा हो कर पहरा देनेवाला, द्वारपाल।

संतोष (हिं० पु०) सन्तोष देखो।

संतोषना (हिं० क्रि०) १ सन्तोष दिलाना, सन्तुष्ट करना तबीयत भरना। २ सन्तुष्ट होना, प्रसन्न होना।

संथा (हिं० पु०) १ एक वारमें पढ़ाया हुआ अंश, पाठ, सवक।

संद (हिं० पु०) दरार, छेद, बिल। २ चन्द्रमा। ३ दबाव।

संदल (फा० पु०) श्रीखण्ड चन्दन। चंदन देखो।

संदली (फा० वि०) १ संदलके रंगका, हलका पीला। २ संदलका, चन्दनका। (पु०) ३ एक प्रकारका हलका पीला रंग जो कपड़ेको चन्दनके बुरादेके साथ उबालनेसे आता है। इससे कपड़ेमें सुगन्धित भी आ जाती है। आज कल कई तरहकी बुकनियोंसे भी यह रंग तैयार किया जाता है। ४ एक प्रकारका हाथी जिसे दांत नहीं होते। ५ घोड़ेकी एक जाति।

संदान (फा० पु०) एक प्रकारका निहाई जिसका एक कोना नुकीला और दूसरा चौड़ा होता है, अहरन, घन। २ रस्सी, डोरो। ३ बांधनेको सिकड़ी आदि। ४ बांधनेकी क्रिया। ५ हाथीका गंडस्थल जहांसे उसका मद बहता है।

संदास (हिं० पु०) सफेद डामर धूप, कहरुवा। इसका वृक्ष प्रायः पश्चिमी घाटमें पाया जाता है। यह सदा हरा रहता है।

संदि (हिं० स्त्री०) सन्धि, मेल।

संदूक (अ० पु०) लकड़ी, लोहे, चमड़े आदिका बना हुआ चौकोर पिटारा जिसमें प्रायः कपड़े गहने आदि चीजें रखते हैं, पेटो, बक्स।

संदूकया (अ० पु०) छोटा संदूक, छोटी पेटो।

संदूख (अ० पु०) संदूक देखो।

संदूर (हिं० पु०) सिंदूर देखो।

सद्दृष्टिक (सं० लि०) दृष्टिगोचर।

संदेसा (हिं० पु०) किसीके द्वारा जवानी कहलाया हुआ समाचार आदि, खबर, हाल।

संधावेणिका (सं० स्त्री०) क्रीड़ाविशेष, एक प्रकारका खेल। (दिव्या० ४७५।१)

संनिधानिन् (सं० त्रि०) सामाजिक। (दिव्या० ६५६।४)

संपेरा (हिं० पुं०) साँप पालनेवाला मदारी, साँपका तमाशा दिखानेवाला।
संपोला (हिं० पुं०) साँपका बच्चा।
संपोलिया (हिं० पुं०) साँप पकड़नेवाला, संपेरा।
संप्रसिद्धि (सं० स्त्री०) सफलता।
संप्रस्थित (सं० त्रि०) युद्धस्थ प्रस्थानमें आरूढ़।
संबुल खताई (फा० पुं०) तुर्किस्तानका एक पौधा यह औषधके काममें आता है और इसकी पत्तियोंकी लच्छे मिठाईमें पड़ती हैं।
संबेसर (हिं० पुं०) निद्रा नींद।
संबोधिया (हिं० पुं०) वैश्योंकी एक जाति।
संभलना (हिं० क्रि०) १ किसी बोझ आदिका ऊपर ठहर सकना, थामा जा सकना। २ किसी सहारे पर टिका रह सकना, आधार पर ठहरा रहना। ३ स्वस्थता प्राप्त करना चंगा होना। ४ बुरी दशाको फिर सुधार होना। ५ कार्यका भार उठाया जाना, निर्वाह सम्भव होना। ६ सचेत होना, होशियार होना। ७ चोट या हानिसे बचाव करना, गिरने पड़नेसे रुकना।
संभली (हिं० स्त्री०) कुटनी, दूती।
संभवना (हिं० क्रि०) १ उत्पन्न करना पैदा करना। २ उत्पन्न होना पैदा होना। ३ सम्भव होना, हो सकना।
संभाल (हिं० स्त्री०) १ रक्षा, हिफाजत। २ पोषणका भार। ३ प्रबन्ध, इन्तजाम। ४ तन बदनकी सुध, होश हवास। ५ देखरेख निगरानी।
संभालना (हिं० क्रि०) १ भारका ऊपर ठहराना, भार ऊपर ले सकना। २ रोक या पकड़में रखना, इस प्रकार थामे रहना कि छूटने या भागने न पावे काबूमें रखना। ३ पालन पोषण करना, परवरिश करना। ४ प्रबन्ध करना, इन्तजाम करना। ५ किसी मनोवेगको रोकना, जोश थामना। ६ दशा बिगड़नेसे बचाना; रोग व्याधि, आपत्ति, इत्यादिको रोक करना। ७ बुरी दशाको प्राप्त होनेसे बचाना, बिगड़ी दशामें सहायता करना, खराबीसे बचाना। ८ निर्वाह करना, किसी कार्यका भार अपने ऊपर लेना, चलाना। ९ कोई वस्तु ठीक ठीक है इसका इतमीनान कर लेना, सहेजना। १० किसी वस्तुको अपनी जगहसे हटने, गिरने पड़ने, खिसकने आदिसे रोकना; थामना। ११ रक्षा करना, हिफाजत करना। १२ गिरने पड़नेसे रोकनेके लिये सहारा देना, गिरनेसे बचाना। १३ देख रेख करना, निगरानी करना।

संमत (सं० त्रि०) सम्मत देखो।
संमति (सं० स्त्री०) सम्मति देखो।
संमान (सं० पुं०) सम्मान देखो।
संमित (सं० त्रि०) सम्मित देखो।
संमेलन (सं० पुं०) सम्मेलन देखो।
संय (सं० पुं०) कङ्काल पञ्जर।
संयत् (सं० पुं० स्त्री०) संयच्छन्त्यत्रेति सं-यम क्विप्, (गमादीनां। पा ६।४।४०) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या मलोप तुक्। १ युद्ध समर। २ नियत स्थान, बंधी हुई जगह। ३ वादा, करार। ४ एक प्रकारकी ईंट जो यज्ञकी वेदी बनानेमें काम आती थी। (त्रि०) ५ सम्बद्ध, लगा हुआ। ६ अखण्डित लगातार।
संयत (सं० त्रि०) सं-यम-क्त। १ बद्ध, बंधा हुआ, जकड़ा हुआ। २ पकड़में रखा हुआ, दबावमें रखा हुआ। ३ बन्द किया हुआ, कैद। ४ क्रमबद्ध व्यवस्थित, कायदेका पाबन्द। ५ हदके भीतर रखा हुआ उचित सीमाके भीतर रोका हुआ। ६ कृतसंयम, जिसने इन्द्रियों और मनको वशमें किया हो। संयत हो कर धर्म कर्मोंका अनुष्ठान करना होता है। यही शास्त्रका आदेश है। असंयत चित्तसे किसी धर्म कार्यका अनुष्ठान किया जा नहीं सकता, करनेसे उसके सम्यक फललाभ नहीं होता है। ७ उद्यत तैयार। (पुं०) ८ शिव। ९ कृतसंयमी, संन्यासी।
संयतचेतस् (सं० त्रि०) कृतसंयमचित्तविशिष्ट, संयतमानस।
संयतप्राण (सं० त्रि०) १ जिसने प्राणवायु या श्वासको वशमें किया हो प्राणायाम करनेवाला। २ इन्द्रियोंको वशमें करनेवाला।
संयताक्ष (सं० त्रि०) निमीलितनेत्र।
संयताञ्जलि (सं० स्त्री०) बद्धाञ्जलि।
संयतात्मन् (सं० त्रि०) चित्तवृत्तिका निरोध करनेवाला जिसने मनको वशमें किया हो।

संयताहार (सं० त्रि०) स्वल्प या परिमिताहारी, थोड़ा खानेवाला।

संयति (सं० स्त्री०) निरोध, वशमें रखना।

संयतिन् (सं० त्रि०) संयमनशील।

संयतेन्द्रिय (सं० त्रि०) संयतानि इन्द्रियाणि यस्य। इन्द्रियको अपने वशमें करनेवाला।

संयत्त (सं० त्रि०) १ प्रस्तुत। २ अनुरक्त। ३ सतर्क।

संयत्वर (सं० पु०) १ वागयत, वह जिसने वाक्य संयम किया हो। २ जन्तुसमूह।

संयद्वर (सं० पु०) संयच्छतीति संयम (छित्वरच्छत्वरेति। उण् ३।१) इति ष्वरच् प्रत्ययेन साधुः। नृप, राजा।

संयद्वसु (सं० त्रि०) १ बहुत धनवाला, धनवान्। (पु०) २ सूर्यकी सात किरणोंमेंसे एक।

संयद्वाम (सं० त्रि०) अविच्छिन्न प्रेम या आकाङ्क्षा युक्त। (छान्दोग्य ४।१५।२)

संयद्वीर (सं० त्रि०) वीरोंका पोषणक्षम, सतत वीरयुक्त, जिसमें सतत वीर हो।

संयन्तृ (सं० त्रि०) संयम तृच्। १ नियन्ता, परिचालक। २ संयमकारक।

संयन्तृ (सं० त्रि०) १ संयम करनेवाला, रोकनेवाला। २ शासक, अधिकारी।

संयन्त्रित (सं० त्रि०) १ बद्ध, बंधा हुआ, जकड़ा हुआ। २ बन्द। ३ रुद्ध, रोका हुआ, दबाया हुआ।

संयपन (सं० क्ली०) जल या घीसे हुए द्रव्यका मिलाना।

संयम (सं० पु०) संयम (यमः समुपनिविषु। पा ३।३।६३) इति अप्। १ व्रतादिका अङ्ग, पूर्वदिनकर्त्तव्य आचारविशेष। जिस दिन उपवास आदि और कार्यादि करने होते हैं, उसके पूर्व दिन संयम करना होता है। उस दिन कांस्य अर्थात् कांसेके बरतनमें भोजन, मांस, मसूर, चना, कोरदूषक, शाक, मधु, परान्न और रात्रिकालमें भोजन, आमिष, द्यूत, अत्यम्बु पान, लोभ, मिथ्याकथन, व्यायाम, व्यवाय, दिवास्वप्न, अञ्जनलेपनकार्य और तिलपिष्टादि खाना मना है। उस दिन सभी इन्द्रियोंका निग्रह करना होता है।

इधर उधर फैले हुए सोनेको एकत्र करनेसे उसमें शक्तिविशेषका प्रादुर्भाव होता है। वर्षाकालमें चारों ओरके प्रवाहको रोक कर एक धारा प्रवाहित रखनेसे उसमें जिस प्रकार जोरोंका वेग होता है, उसी प्रकार नाना विषयोंसे चित्तवृत्तिको प्रतिनिवृत्त कर एक विषयमें रख सकनेसे उसमें एक ऐसी अपूर्व शक्तिका प्रादुर्भाव होता है, कि उसके प्रभावसे सभी प्रकारकी सिद्धि हो सकती है। एकदम रोक कर नदीका वेग छोड़ देनेसे जिस प्रकार और भी अतिरिक्त वेग पैदा होता है, उसी प्रकार सारी चित्तवृत्तिको रोक कर वैसे परिशुद्ध चित्तको विषय विशेषमें अवस्थापित करनेसे उससे भी अधिक शक्तिका प्रादुर्भाव होता है। संयमकी पूर्वभूमि अर्थात् अवस्थाविशेषका दमन होते देख अजित अव्यवहित उत्तर भूमिमें उसे नियोग करना होता है।

२ बन्धन, बांधना। ३ वशमें रखनेकी क्रिया या भाव, रोक। ४ हानिकारक या बुरी वस्तुओं से बचनेकी क्रिया, परहेज। ५ बन्द करना, मूंदना। ६ प्रयत्न, उद्योग। ७ धूम्राक्षके एक पुत्रका नाम। ८ प्रलय।

संयमक (सं० त्रि०) संयच्छतीति संयम ण्वुल्। नियन्ता।

संयमन (सं० क्ली०, संयम-ल्युट्। १ बांधना, जकड़ना, कसना। २ रोक। ३ आत्मनिग्रह, मनको वशमें रखना। ४ खींचना, तानना। ५ बन्द रखना, कैद रखना। ६ दमन, दबाव। ७ यमपुर। (पु०) संयच्छतीति संयम-ल्यु। ८ नियन्ता।

संयमनिन् (सं० पु०) १ राजा। २ शासन करनेवाला।

संयमनी (सं० स्त्री०) संयम्यतेऽस्यामिति संयम अधिकरणे ल्युट्। यमपुरी, यमकी नगरी। यह मेरु पर्वत पर मानी गई है।

संयमवत् (सं० त्रि०) संयम-अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। संयमविशिष्ट, कृतसंयम।

संयमित (सं० त्रि०) संयमोऽस्य जातः तारकादित्वादितच्। १ इन्द्रियनिग्रही, जो मनको रोके हो। २ रोकमें रखा हुआ, काबूमें लाया हुआ। ३ दमन किया हुआ। ४ पकड़में लाया हुआ, कस कर पकड़ा हुआ। ५ बंधा हुआ, कसा हुआ।

संयमिन् (सं० पु०) संयमोऽस्यास्तीति संयम-इनि। १ मन और इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाला, आत्मनिग्रही, योगी। २ शासक, राजा। (त्रि०) ३ रोक या दबावमें

रखनेवाला काबूमें रखनेवाला। ४ बुरी या हानि कारक वस्तुओंसे बचनेवाला, परहेजगार।

संयाज (सं० पु०) १ यज्ञ और बलि। २ सम्यक् रूपमें याजन करना।

संयाज्य (सं० त्रि०) १ बलि देनेके उपयुक्त। (पु०) २ बलिदाय। ३ स्विष्टकृत् यज्ञमें व्यवहृत याज्या और पुरोनुवाक्या मन्त्रभेद। (ऋक् ३।११२)

संयात (सं० त्रि०) १ एक साथ गया हुआ, साथ साथ लगा हुआ। २ प्राप्त, पहुंचा हुआ दाखिल।

संयाति (सं० पु०) १ नहुषके एक पुत्रका नाम। (भाग० ६।१८।१) २ बहुगव या प्राचीनवतके एक पुत्रका नाम। (भारत आदिपर्व) ३ वराङ्ग गर्भजात पुरु राजाके एक पुत्रका नाम। (हरिवंश० २८।६)

संयात्रा (सं० स्त्री०) १ द्वीपान्तर गमन। २ सम्यक यात्रा।

संयान (सं० क्लो०) संया ल्युट्। १ सहगमन, साथ जाना। २ यात्रा, सफर। ३ प्रस्थान, रवानगी। ४ प्रेतनिर्हार, मृत प्रेतके साथ जाना। ५ शकट, गाड़ी।

संयाम (सं० पु०) सम् यम (यम उपसर्गेनिवृत्त। पा ३।३।६३) इति पक्षे घञ्। संयम। (अमर)

संयाव (सं० पु०) सं यु (समि युद्रु दुवः। पा ३।३।२३) इति घञ्। एक प्रकारका पकवान या मिठाई, पिराक, गोझिया।

संयुक्त (सं० त्रि०) संयुज क्त। १ जुड़ा हुआ, लगा हुआ। २ मिला हुआ। ३ सहित साथ। ४ सम्बद्ध, लगाव रखता हुआ। ५ समन्वित, लिए हुए।

संयुक्तक (सं० त्रि०) जो आ कर संयुक्त हो, आगत।

संयुक्तसञ्चयपिटक (सं० क्लो०) बौद्धका शास्त्रविशेष।

संयुता (सं० स्त्री०) १ मानतंकी लता अपराजिता। २ एक छन्दका नाम।

संयुता—कन्नौजके राजा जयचन्द्रकी कन्या और भारतके अन्तिम हिन्दूराज पृथ्वीराजकी स्त्री।

विशेष विवरण पृथ्वीराज शब्दमें देखो।

संयुतागम—बौद्धागमभेद।

संयुताभिधर्मशास्त्र (सं० क्लो०) बौद्धोंका एक धर्मग्रन्थ।

संयुग (सं० पु०) १ युद्ध, लड़ाई। २ संयोग, समागम। ३ मिश्रण मिलना।

संयुज (सं० त्रि०) संयुज क्विप्। १ गुणवान, गुणाढ्य। २ संयुक्त। (पु०) ३ जामाता।

संयुत (सं० त्रि०) १ संयुक्त, जुड़ा हुआ। २ समन्वित। ३ सहित, साथ। ४ सम्बद्ध एक साथ लगा हुआ। (पु०) ५ एक छन्द। इसके प्रत्येक चरणमें एक सगण दो जगण और एक गुरु होता है।

संयुति (सं० स्त्री०) ग्रहसमावेश।

संयुयुत्सु (सं० त्रि०) सम् युध सन् उ। सब तरह युद्ध करनेकी इच्छा करनेवाला।

संयुयुत्सु (सं० त्रि०) सम् यु सन् उ। अच्छी तरह मिलानेमें इच्छुक।

संयोग (सं० पु०) सम् युज घञ्। १ मिलन, दो वस्तुओंका एकमें या एक साथ होना, मिलान। २ न्यायके मतसे चौबीस गुणपदार्थोंके अन्तर्गत एक गुण। यह एक सम्बन्धविशेष है अर्थात् दो अप्राप्तवस्तुकी परस्पर प्राप्ति या उनकी सन्निकृष्टता। यह अन्यतरकर्मज, उभयकर्मज और संयोगज भेदसे तीन प्रकारका है।

३ सूर्योदयके पूर्व और दशमीका शेष भाग। सूर्योदयके कुछ पहले दशमी शेष होने पर उसे संयोग कहते हैं। (तिथ्यादितत्त्व)

४ समागम मिलाप। यह शृङ्गाररसके दो भेदोंमेंसे एक है। इसीको संयोग शृङ्गार भी कहते हैं। ५ सम्बन्ध, लगाव। ६ स्त्री पुरुषका प्रसङ्ग, सहवास। ७ विवाह सम्बन्ध। ८ दो राजाओंका किसी बातके लिये सन्धि। ९ किसी विषय पर भिन्न व्यक्तियोंका एक मत होना, मतैक्य। १० दो या अधिक व्यञ्जनोंका मेल। ११ जोड़, मीजान। १२ दो या कई बातोंका इकट्ठा होना, इत्तफाक।

संयोगपृथक्त्व (सं० क्लो०) संयोगेन पञ्चमसम्बन्धभेदन पृथक्त्व नानाविधत्व यत्र। ऐसा पृथक्त्व या अलगाव जो नित्य न हो।

संयोगमन्त्र (सं० क्लो०) विवाहके समय पढ़ा जानेवाला वेदमन्त्र।

संयोगविरुद्ध (सं० त्रि०) संयोगेन विरुद्धम्। वे पदार्थ जो परस्पर मिल कर खाने योग्य नहीं रहते—जैसे यदि

खाये जायं तो रोग उत्पन्न करते हैं। जैसे,—घी और मधु, मछली और दूध। विस्तृत विवरण विरुद्ध शब्दमें देखो।

संयोगित (सं० त्रि०) संयोग इतच्। जातसंयोग, जो मेल किया गया हो। (भरत)

संयोगिता—संयुक्ता देखो।

संयोगिन् (सं० त्रि०) संयोगोऽस्यास्तीति संयोग-इनि। १ संयोगविशिष्ट, मेलका। २ संयोग करनेवाला, मिलानेवाला। ३ विवाहिता, व्याहा हुआ। ४ जो अपनी प्रियाके साथ हो।

संयोगी—वैष्णव सम्प्रदायभेद। रामात् निमात् आदि चार सम्प्रदाययुक्त जो सब वैरागी विवाह कर स्त्री पुत्रादिके साथ संसारयात्रा निर्वाह करता है, वह संयोगी कहलाता है। मट्ठकाधारी देखो।

संयोगी स्वामिन्—हिन्दुस्तानवासी एक सम्प्रदाय।

संयोजक (सं० त्रि०) १ मिलानेवाला, जोड़नेवाला। (पु०) २ व्याकरणमें वह शब्द जो दो शब्दों या वाक्योंके बीच केवल जोड़नेके लिये आता है।

संयोजन (सं० क्ली०) सम् युज-ल्युट्। १ मैथुन, स्त्री पुरुषका प्रसङ्ग। २ एकत्रीकरण, जोड़ने या मिलानेकी क्रिया। ३ आयोजन, प्रबन्ध, इन्तज़ाम। ४ भवबन्धनका कारण, संसारके बंधनमें रखनेवाला।

संयोजना (सं० स्त्री०) १ आयोजन, व्यवस्था, इन्तज़ाम। २ मेल, मिलान। ३ सहवास, स्त्रीपुरुषका प्रसङ्ग। ४ भवबन्धनका कारण, जन्म मरणके चक्रमें बद्ध रखनेवाली बातें। कामराग, रूपराग, अरूपराग, परिघ, मानस, दृष्टि, शीलव्रतपरमार्ष, विचिकित्सा, औद्धत्य और अविद्या इन सबकी गणना संयोजनामें होती है।

संयोजित (सं० त्रि०) सम्-युज् णिच क्त। मिलाया हुआ, जोड़ा हुआ। पर्याय—उपाहित, सयोगित। (भरत)

संयोज्य (सं० त्रि०) १ संयोजनके योग्य, मिलाने लायक। २ जो मिलाया या जोड़ा जानेवाला हो।

संयोद्धृ (सं० त्रि०) समान वीर, जो प्रतिपक्षता कर युद्ध करनेमें समर्थ हो।

संयोद्धव्य (सं० त्रि०) प्रतिद्वन्द्वितापूर्वक युद्ध करनेमें उपयुक्त।

संयोत्कण्टक (सं० पु०) एक यक्षका नाम।

संरक्त (सं० त्रि०) १ अनुरक्त, आसक्त। २ सुन्दर, मनोहर। ३ कुपित, क्रोधसे लाल।

संरक्षक (सं० त्रि०) १ रक्षक, रक्षा करनेवाला। २ देख रेख और पालन पोषण करनेवाला। ३ आश्रय देनेवाला। ४ सहायक।

संरक्षण (सं० क्ली०) १ परिरक्षण, हानि या नाश आदिसे बचानेका काम, हिफ़ाज़त। २ तत्त्वावधारण, देखरेख, निगरानी। ३ अधिकार, कब्ज़ा। ४ रख छोड़ना। ५ प्रतिबन्ध, रोक।

संरक्षणीय (सं० त्रि०) १ रक्षा करने योग्य, हिफ़ाज़तके लायक। २ रख छोड़ने लायक।

संरक्षित (सं० त्रि०) १ भली भांति रक्षित, हिफ़ाज़तसे रखा हुआ। २ अच्छी तरह बचाया हुआ।

संरक्षितव्य (सं० त्रि०) १ जिसका संरक्षण करना हो। २ जिसका संरक्षण उचित हो।

संरक्षिन् (सं० त्रि०) १ संरक्षण करनेवाला। २ देख भाल करनेवाला।

संरक्ष्य (सं० त्रि०) १ जिसका संरक्षण करना हो। २ जिसका संरक्षण उचित हो।

संरञ्जनीय (सं० त्रि०) सम्यक् प्रकारसे तुष्टिसाधनके योग्य।

संरब्ध (सं० त्रि०) १ आश्लिष्ट, खूब मिला हुआ। २ जो एक दूसरेको खूब पकड़े हुए हो। ३ क्षुब्ध, उद्विग्न। ४ हाथमें हाथ मिलाये हुए। ५ उत्तेजित, जोशमें आया हुआ। ६ सूजा हुआ, फूला हुआ। ७ क्रोधसे भरा हुआ। ८ क्रुद्ध, नाराज।

संरम्भ (सं० पु०) सम् रभ घञ् नुम्। १ क्रोध, कोप। २ आटोप, आडम्बर। ३ सम्भ्रम। (भागवत ८।६।२४) ४ वेग। ५ उत्साह, उत्कंठा, शौक। ६ आक्रोश। ७ गर्व, ऐंठ, ठसक। ८ ग्रहण करना, पकड़ना। ९ फोड़े या घावका सूजना या लाल होना। १० युद्ध, लड़ाई। ११ शोक। १२ आयति, विस्तृति। १३ एक अस्त्रका नाम। १४ आरम्भ, शुरू।

संरम्भण (सं० क्ली०) सम् रम्भ-ल्युट्। १ संरम्भ। (त्रि०) २ संरम्भकारक।

संरम्भिन् (सं० त्रि०) संरम्भयुक्त। (भागवत ३।२६।८)

संरब्ध (सं० त्रि०) विशालमूल। (सुश्रुत चि०)

संराग (सं० पु०) अनुरक्ति, अत्यासक्ति।

संराजितृ (सं० त्रि०) सम्‌राज्‌ तृच्‌। दीप्तिमान। (पा ८।३।२५)

संराद्धि (सं० स्त्री०) सम्‌ राध क्ति। संराधन, अच्छी तरह सिद्धकरण।

संराधक (सं० त्रि०) ध्यान करनेवाला, आराधना करनेवाला।

संराधन (सं० पु०) १ तुष्टीकरण, प्रसन्न करना। २ पूजा करना। ३ ध्यान। ४ जयजयकार।

संराधनीय (सं० त्रि०) पूजाके योग्य।

संराधि (सं० स्त्री०) सम्पूर्ण भावसे कार्य सुसिद्ध करना।

संराधित (सं० त्रि०) आराधित सेवित, अर्च्चित।

संराध्य (सं० त्रि०) आराधनाके योग्य।

संराव (सं० पु०) सम्‌ रु घञ्‌। (उपसर्गे रुवः। पा ३।३।२२) १ कोलाहल शोर। २ हलचल, धूम।

संराविन्‌ (सं० त्रि०) खूब शोर करनेवाला।

संरुग्ण (सं० त्रि०) सं रुज्‌ क्त। खण्डित, चूर चूर।

संरुजन (सं० क्ली०) रुक्‌ पीड़ा।

संरुद्ध (सं० त्रि०) १ अच्छी तरह रोका हुआ। २ घेरा हुआ। ३ अच्छी तरह बन्द। ४ ठसाठस भरा हुआ। ५ वर्ज्जित मना किया हुआ। ६ आच्छादित ढका हुआ।

संरुध्‌ (सं० स्त्री०) सम्‌ रुध क्विप्‌। बाधक रोधकारी।

संरूढ़ (सं० त्रि०) सम्‌ रुह क्त। १ प्रौढ़, दृढ़। २ अङ्कुरित, जमा हुआ। ३ आविर्भूत, प्रकट। ४ धृष्ट, प्रगल्भ। ५ अच्छी तरह बढ़ा हुआ। ६ खूब जमा हुआ, अच्छी तरह लगा हुआ। ७ अंकुर फेंकता हुआ पनपता हुआ सूखता या अच्छा होता हुआ।

संरोचन (सं० पु०) एक पर्वतका नाम।

संरोदन (सं० क्ली०) खूब रोना।

संरोध (सं० पु०) सम रुध घञ्‌। १ प्रतिबद्ध रोक छेंक। २ अवरोध गढ़ आदिको चारों ओरसे घेरना। (भागवत १०।७३।२) ३ निक्षेप, फेंकना। ४ परिमिति हदबन्दी। ५ कैद करने या मूंदनेकी क्रिया। ६ अड़चन, बाधा। ७ हिंसा नाश।

संरोधन (सं० क्ली०) १ रोकना, छेंकना, रुकावट डालना। २ अवरोध करना, घेरना। ३ हद बांधना। ४ बाधा डालना, कार्य्यमें हानि पहुंचाना। ५ बन्दी करना, कैद करना। ६ बन्द करना, मूंदना।

संरोधनीय (सं० त्रि०) रोकने छेंकने या घेरने योग्य।

संरोध्य (सं० त्रि०) १ जो रोका, छेंका या घेरा जानेवाला हो। २ जिसे रोकना या घेरना उचित हो।

संरोपण (सं० क्ली०) १ पेड़ पौधा लगाना, जमाना, बैठाना। २ घाव सुखाना, घाव अच्छा करना।

संरोपित (सं० त्रि०) जमाया या लगाया हुआ।

संरोप्य (सं० त्रि०) १ जो जमाया या लगाया जाने वाला हो। २ जिसे जमाना या लगाना उचित हो।

संरोपित (सं० त्रि०) ऊपर लगाया हुआ, छोपा हुआ, पोता हुआ।

संरोह (सं० पु०) १ जमना, ऊपर छाना या बैठना। २ घाव पर पपड़ी जमाना, घाव सूखना। ३ अंकुरित होना, जमना। ४ आविर्भूत होना, प्रकट होना।

संरोहण (सं० पु०) १ जमना, ऊपर छाना। २ घाव सूखना। ३ पेड़ पौधा लगाना, जमाना।

संरोहिन्‌ (सं० त्रि०) उत्पन्न, जात।

संलक्षण (सं० पु०) रूप निश्चित करना लखना, पहचानना, ताड़ना।

संलक्षित (सं० त्रि०) १ लखा हुआ पहचाना हुआ ताड़ा हुआ। २ रूप निश्चित किया हुआ, लक्षणोंसे जाना हुआ।

संलक्ष्य (सं० त्रि०) संदर्शनीय, जो लखा जाय, जो देखनेमें आ सके।

संलक्ष्यक्रम व्यङ्ग्य (सं० पु०) ध्वन्यात्मक दो भेदोंमेंसे एक, यह व्यञ्जना जिसमें वाच्यार्थसे व्यङ्ग्यार्थकी प्राप्तिका क्रम लक्षित हो। इसके द्वारा वस्तु और अलङ्कारकी व्यञ्जना होती है। जैसे—पेड़का पत्ता नहीं हिलता, इसका व्यङ्ग्यार्थ हुआ कि हवा नहीं चलती। इसमें वाच्यार्थके उपरान्त व्यङ्ग्यार्थकी प्राप्ति लक्षित होती है। रसव्यञ्जना या भाव व्यञ्जनामें क्रम लक्षित नहीं होता इसीसे उसे असंलक्ष्य क्रम कहते हैं।

संलग्न (सं० क्ली०) मिलन संयोग।

संलग्न (सं० त्रि०) सम्‌-लग-क्त । १ संयुक्त, बिलकुल लगा हुआ, सटा हुआ। २ भिड़ा हुआ, लड़ाईमें गुथा हुआ। ३ आबद्ध, जुड़ा हुआ।

संलपन (सं० क्ली०) संलाप, प्रलाप, गपशप।

संलय (सं० पु०) १ निद्रा, नींद। २ प्रलय, लीन होनेकी क्रिया। ३ पक्षियोंका नीचे उतरना या नीचे बैठना।

संलयन (सं० क्ली०) १ लयको प्राप्त होना, लीन होना। २ नष्ट होना, व्यक्त न रहना। ३ पक्षियोंका नीचे उतरना या नीचे बैठना।

संलाप (सं० पु०) १ परस्पर वार्त्तालाप, आपसकी बातचीत। २ निर्जनमें बातचीत करना। (कौमुदी) ३ नाटकमें एक प्रकारका संवाद। इसमें क्षोभ या आवेग नहीं होता, पर धीरता होती है।

संलापक (सं० पु०) १ संलाप, नाटकमें एक प्रकारका संवाद। २ एक प्रकारका उपरूपक या छोटा अभिनय।

संलिप्त (सं० त्रि०) लीन, भलीभांति लिप्त। २ खूब लगा हुआ।

संलिप्सु (सं० त्रि०) अच्छी तरह लाभ करनेमें इच्छुक।

संलीन (सं० त्रि०) १ खूब लीन, अच्छी तरह लगा हुआ। २ आच्छादित, ढका हुआ। ३ संकुचित, सिकुड़ा हुआ।

संलेख (सं० पु०) पूर्ण संयम।

संलोकिन् (सं० त्रि०) सन्दर्शक, अच्छी तरह देखनेवाला।

संलोड़न (सं० क्ली०) सम्‌-लोड़ि-ल्युट्। १ जल आदिको खूब हिलाना या चलाना। २ मथना। ३ खूब हिलाना डुलाना, उथलपुथल करना।

संवत् (सं० पु०) १ वत्सर, वर्ष, साल। २ वर्ष विशेष जो किसी संख्या द्वारा सूचित किया जाता है, चली आती हुई वर्ष गणनाका कोई वर्ष, सन। ३ महाराज विक्रमादित्यके कालसे चली हुई मानी जानेवाली वर्ष गणना। विशेष विवरण संवत्सर शब्दमें देखो। ४ संग्राम, लड़ाई। (स्त्री०) ५ भूमि विशेष। (त्रि०) ६ मामभेद।

संवत्सम् (सं० अव्य०) सांवत्सर पर्यन्त, वत्सरावधि।

संवत्सर (सं० पु०) संवसन्ति ऋतवो यत्र सम्‌-वस-त्सरन् (सं पूर्वात् चित्। उण् ३।७२) १ वत्सर, वर्ष, साल। २ पांच पांच वर्षके युगोंका प्रथम वर्ष। पञ्च वत्सर ये हैं—संवत्सर, परीवत्सर, इडावत्सर, अनुवत्सर और इद्वत्सर। इस वत्सरमें तिलदान करनेसे महाफल होता है। (विष्णुधर्मोत्तर)

संवत्सरसे संवत् शब्द हुआ है। संवत् कहनेसे लोग विक्रमसंवत् समझते हैं, किन्तु बहुत पहलेसे हम भारतवर्षमें अनेक प्रकारके संवत् प्रचलित थे। अभी अब्द, सन् या काल कहनेसे जिस प्रकार वर्ष समझा जाता है, पूर्व कालमें संवत्सर वा संवत् कहनेसे उसी प्रकार विभिन्न राजवंशके राज्याङ्क निर्देशके विभिन्न वर्ष समझे जाते थे। पहले भारतवर्षमें प्रधानतः निम्न लिखित संवत् व्यवहृत होते थे—

नाम	आरम्भ काल
१ सप्तर्षिकाल या लौकिक संवत्	६७७७ खृ० पू०
२ बार्हस्पत्य काल वा षष्टि संवत्सर	३१२८ „
३ कलियुगगताब्द या कल्यब्द	३१०२ „
४ भारत युद्धाब्द या यौधिष्ठिर संवत्	„ „
५ परशुराम चक्र या सहस्र संवत्सर	११७७ „
६ बुद्धनिर्वाणाब्द या बौद्ध संवत्	५४३ „
७ महावीरमोक्षाब्द या वीर संवत् (जैन)	५२७ „
८ मौर्याब्द या मौर्य संवत्	३३२ „
९ सलौकी संवत् (Era of the Seleukidae)	३१२ „
१० पार्थिव संवत् (Era of the Parthia)	२४७ „
११ मालव-गताब्द या विक्रम संवत्	५७१ „
१२ ग्रहपरिवृत्तिचक्र	२४ „
१३ शकभूपकाल, शकाब्द या शक संवत्	७८ खृष्टाब्द
१४ चेदी या कलचुरी संवत्	२४९ „
१५ गुप्तकाल या गुप्त संवत्	३१९ „
१६ वलभीकाल या वलभी संवत्	„
१७ हर्षाब्द या श्रीहर्ष संवत्	६०७ „
१८ त्रिपुराब्द (पार्वत्य स्वाधीन त्रिपुरामें प्रचलित अब्द)	६२१ „

१९ कोलम्बाब्द (कोल्लम् आण्डु) या परशुराम ८२४ ,
शक वा परशुराम संवत्
२० नेवार अब्द या नेपाली स वत् ८८० ,
२१ चालुक्य स वत् १०१६ ,
२२ सिंह स वत् (शिवसिंह स वत्) १११४ „
२३ लक्ष्मणसेनाब्द या लक्ष्मणसेन संवत् (ल स) १११६ „
२४ चैतन्याब्द (महाप्रभु चैतन्यदेवके जन्म १४८६ „
दिनसे)
२५ राज्याभिषेकाब्द या शिवाजी सवत् १६६४ „

उपरोक्त विभिन्न अब्दोंके अलावा पाश्चात्य प्राच्य और मुसलमानी प्रभावसे और भी कितने अब्द प्रचलित हुए हैं यथा—

२६ ब्रह्म स वत् (ब्रह्मदेशीय बौद्धो का पवित्र अब्द खृ० पू० ५४३ अब्दमें आरम्भ)
२७ खृष्टाब्द (ईसामसीहके जन्मदिनसे रोमक पञ्जिकानुसार ७५३ अब्द या जुलियन अब्दके ४५वें अङ्कसे आरम्भ)
२८ यवद्वीपमें प्रचलित शकाब्द ७४ ई०सन्से आरम्भ ।
२९ बालिद्वीपमें प्रचलित शक ८१ ई०सन्से आरम्भ ।
३० हिजरी (पैगम्बर महम्मदके मक्कासे मदीना भागनेके दिन १६२२ ई०की १६वीं जनवरीसे आरम्भ)
३१ पारसी जलाली (Yardezard Era) ६३२ ई०की १६वीं जूनसे आरम्भ ।
३२ ब्रह्मदेशमें प्रचलित मगी ६३८ ई०से आरम्भ ।
३३ मालिकी जलाली १०७९ ई०के मार्च माससे आरम्भ
३४ सूर सन (अरबी अब्द हिजरीके १३४ अङ्कमें आरम्भ) १३४४ ई०को महाराष्ट्र देशमें प्रचलित हुआ ।
३५ बङ्गला सन्—सुलतान हुसेन शाहके समय इस सनका प्रचार हुआ ।
३६ फसली सन्—हिजरीको ४ वर्ष बाद दे कर गिना जाता है । यह १५५६ ई०से प्रचलित हुआ है ।
३७ विलायती या आमली सन्—उत्कलमें प्रचलित, १५५६ ई०में आरम्भ ।
३८ तारीख इलाही—सम्राट् अकबर द्वारा १५८४ ई०में प्रवर्तित ।
३९ विजापुरी जुलूस् सन—विजापुरके २य आदिल शाह द्वारा १६५६ ई०में प्रवर्तित ।
४० परगणाति सन्—पूर्व बङ्गालमें यह अब्द प्रचलित था, प्राचीन कागजातोंमें मिलता है ।

उल्लिखित विभिन्न स वत् वा अब्दोंके सिवा पाश्चात्य जगत्में और भी कुछ अब्द प्रचलित थे । उनमेंसे—

१ तुर्क वा कनस्तुन्तिन् अब्द (Constantinople Era) जगत्की सृष्टि ले कर गिना जाता है । ईसाइयोंके ग्रोक सम्प्रदायमें आज भी यह अब्द प्रचलित है । वे लोग ई०सन्के ५५०९ वर्ष पहलेसे इस अब्दका आरम्भ मानते हैं ।

२ नाबोनासरका अब्द (Era of Nabonassar) ७४६ ई०की २६ वीं फरवरीसे यह अब्द आरम्भ है ।

३ चीनाब्द—२३५७ ई० सन्से आरम्भ ।

४ रोमकाब्द (Roman Era)—रोमनगरके प्रतिष्ठाकाल ७५२ ई० सन्के पहलेसे यह अब्द माना जाता है ।

५ ओलिम्पियाद्—७७६ ई०सन्के पहले १ली जुलाईसे आरम्भ ।

संवत्सरकर (स ० पु०) शिव ।
संवत्सरदीपव्रत (स ० स्त्री०) दीपदानरूप उत्सवविशेष ।
संवत्सरपर्व्वन् (स ० स्त्री०) संवत्सरसम्बन्ध पर्वसमूह ।
संवत्सर प्रवर्ह (स ० पु०) गवामयन यागभेद ।
स वत्सर प्रवल्ह (स० पु०) क्रतुविशेष । प्रवल्ह देखो ।
स वत्सरभ्रमिन् (स ० त्रि०) वर्षभ्रमणकारी ।
स वत्सरभृत (स ० त्रि०) संवत्सरपालनकारी ।
स वत्सरमय (स ० त्रि०) स वत्सरयुक्त ।
स वत्सररय (स ० त्रि०) एक वर्ष तक होनेवाला ।
संवत्सरसत्र (स० स्त्री०) सोमयज्ञ ।
स वत्सरसद् (स ० त्रि०) स वत्सर वासकारी ।
स वत्सरसमित (स ० त्रि०) स वत्सर परिमित ।
स वत्सरसहस्र (स ० स्त्री०) वर्ष सहस्र ।
स वत्सरावर (स ० त्रि०) न्यूनकल्प एक वत्सर ।
स वत्सरिक (स ० त्रि०) स वत्सरसम्बन्धी सांवत्सरिक । ०
स वत्सरीण (स० त्रि०) स वत्सरेण निर्वृत्तम् संवत्सर ख (स पारवृतात् ख च । पा ४।१।९२) स वत्सर तक उत्पन्न ।
स वत्सरीय (स ० त्रि०) संवत्सरोत्पन्न ।

संवत्सरोपासीत (सं० त्रि०) १ संवत्सरभृत। २ संवत्सर तक उपासित।

संवदन (सं० क्ली०) सम्-वद-ल्युट्। १ आलोचना, विचार। २ वशीकरण। ३ संवाद, संदेशा, पैगाम। ४ परस्पर कथन, वातचीत। ५ सदृशीकरण। ६ दृष्टि।

संवदना (सं० स्त्री०) १ वशमें करनेका क्रिया, वशीकरण। २ मन्त्र, औषधि आदिसे किसीको वशमें करनेकी क्रिया।

संवदितव्य (सं० त्रि०) १ संवदनके उपयुक्त। २ सम्यक् प्रकारसे कथितव्य, अच्छी तरह कहने लायक।

संवनन (सं० क्ली०) सम्-वन-ल्युट्। संवदन देखो।

संवन्दन (सं० क्ली०) सम्यक् प्रकारसे वन्दन।

संवर (सं० क्ली०) सं-वृ-अप् (ग्रहवृदृनिश्चिगमश्च। पा ३।३।५८) १ जल। २ धन। ३ बौद्धव्रतविशेष। (पु०) ४ दैत्यविशेष। शम्बर देखो। ५ मत्स्यविशेष। ६ हरिणविशेष। ७ शैलविशेष। ८ बौद्धविशेष। ९ सेतु, पुल। १० सञ्चय। ११ बंद, बाध। १२ रोक, परिहार। १३ इन्द्रिय निग्रह, मनको दवाना या वशमें करना। १४ चुनना, पसंद करना। १५ कन्याका वर चुनना।

संवरण (सं० क्ली०) सम्-वृ ल्युट्। १ हटाना, दूर करना। २ वन्द करना, ढकना। ३ आच्छादित करना, छोपना। ४ गोपन करना, छिपाना। ५ छिपाव, दुराव। ६ ढकनेका परदा। ७ घेरा जिसको भीतर सब लोग न जा सके। ८ बंद, बाँध। ९ सेतु, पुल। १० किसी चित्तवृत्तिको रोकनेकी क्रिया, निग्रह। ११ मुद्राके चमडे की तीन परतोंमेंसे एक। १२ कुरुके पिताका नाम। १३ लेनेके लिये पसंद करना, चुनना। १४ कन्याका विवाहके लिये वर या पति चुनना। (पु०) १५ तपुपलता, खीराकी लता।

संवरणीय (सं० त्रि०) १ निवारण करने योग्य, रोकने लायक। २ संगोपनीय छिपाने लायक। ३ विवाहके योग्य, वरने लायक।

संवरना (हिं० क्रि०) १ बनना, दुरुस्त होना। २ सजना, अलंकृत होना।

संवरित (सं० त्रि०) १ गोपित, छिपा हुआ। २ आच्छादित, छोपा हुआ।

संवरिया (हिं० वि०) सांवला देखो।

संवर्ग (सं० पु०) १ अपनी ओर समेटना, अपने लिये बटोरना। २ भक्षण, भोजन, चट कर जाना। ३ खपत, लग जाना। ४ गुणनफल। ५ एक वस्तुका दूसरीमें समा जाना या लीन हो जाना।

संवर्गजित् (सं० पु०) लामकायन गोत्रमें उत्पन्न एक वैदिक आचार्यका नाम।

संवर्गम् (सं० अव्य०) सम्यक् रूपसे वर्जन करनेवाला।

संवर्ग्य (सं० त्रि०) वर्गके द्वारा गुणनके उपयुक्त।

संवर्जन (सं० क्ली०) १ हरण करना, छीनना, खसोटना। २ खा जाना, उड़ा जाना।

संवर्णन (सं० क्ली०) व्याख्याकरण।

संवर्त्त (सं० पु०) सं-वृत-घञ्। १ प्रलय, कल्पान्त। (भाग० ८।१५।२६) २ मुनिविशेष। ये एक धर्मशास्त्र प्रवर्त्तक थे। इनके पिताका नाम अङ्गिरस तथा भाईका वृहस्पति था। (मार्क०पु० १३०।११) ३ मेघ, बादल। ४ इन्द्रका अनुचर एक मेघ जिससे बहुत जल बरसता है। मेघोंके आवर्त्त, सम्वर्त्त, पुष्कर, द्रोण आदि कई नाम कहे गये हैं। जिस प्रकार आवर्त्त विना जलका माना गया है, उसी प्रकार संवर्त्त अत्यन्त अधिक जलवाला कहा गया है। ५ ग्रहोंका एक योग। ६ संवत्सर, वर्ष। ७ एक दिव्यास्त्र। ८ जुटना, भिड़ना। ९ लपेटनेकी क्रिया या भाव। १० फेरा, घुमाव, चक्कर। ११ एक कल्पका नाम। १२ लपेटी या बटोरी हुई वस्तु। १३ पिण्डी, गोल। १४ बट्टी, टिकिया। १५ घनासमूह, घनी राशि। १६ कर्षफल वृक्ष। १७ विभीतक वृक्ष, बहेड़ा।

संवर्त्तक (सं० पु०) संवर्त्तयतीति सं वृत्-णिच्-ण्वुल्। १ कृष्णके भाई बलदेव। २ बलदेवका अस्त्र, लांगला हल। ३ वड़वानल। (भागवत १२।४।६) ४ विभीतक वृक्ष, वहेडा। ५ प्रलय नामक मेघ। ६ प्रलय मेघकी अग्नि। ७ एक नाग। ८ लपेटनेवाला। ९ लय या नाश करनेवाला।

संवर्त्तकल्प (सं० पु०) प्रलयका एक भेद।

संवर्त्तकिन् (सं० पु०) संवर्त्तकोऽस्त्यस्येति इनि। बलदेव।

संवर्त्तकेतु (सं० पु०) एक केतुका नाम। यह सन्ध्या समय पश्चिम दिशामें उदय होता है और आकाशके तृतीयांश तक फैला रहता है। इसकी चोटी धूमिल रङ्ग लिये ताम्र वर्णकी होती है। इसके उदयका फल राजाओं का नाश कहा गया है।

संवराण (सं० पु०) मनु सावर्णके एक पुत्रका नाम। (हरिवंश)

संवर्त्तन (सं० क्ली०) १ लपेटना। २ फेरा या चक्कर देना। ३ किसी ओर फिरना, प्रवृत्त होना। ४ प्राप्त होना, पहुंचना। ५ हल नामक अस्त्र।

संवर्त्तनी (सं० स्त्री०) सृष्टिका लय, प्रलय।

संवर्त्तनीय (सं० वि०) लपेटने योग्य, फेरने योग्य।

संवर्त्तम् (सं० अव्य०) सम्यक् प्रकारसे आवर्त्तन।

संवर्त्तमरुत्तीय (सं० त्रि०) संवर्त्त और मरुत्त सम्बन्धी। (भारत आदिपर्व)

संवर्त्ति (सं० स्त्री०) सम्यक् प्रकारेण वर्त्तते इति सम् वृत् इन (इगुपिध्वहाति। उण् ४।११९) संवर्त्तिका। (अमरटीकामें भरत) संवर्त्तिका देखो।

संवर्त्तिका (सं० स्त्री०) १ कमलका बंधा पत्ता। २ कोई बंधा हुआ पत्ता। ३ वर्त्ति, बत्ती। ४ बलरामका अस्त्र, हल। ५ लपेटी हुई वस्तु।

संवर्त्तित (सं० त्रि०) १ लपेटा हुआ। २ फेरा या घुमाया हुआ।

संवर्द्धक (सं० त्रि०) संवर्द्धयतीति सम् वृध णिच् ण्वुल्। संवर्द्धनकारी, बढ़ानेवाला।

संवर्द्धन (सं० क्ली०) सम् वृध ल्युट्। १ वृद्धिको प्राप्त होना, बढ़ना। २ पालना, पोसना। ३ उन्नत करना, बढ़ाना। ४ क्रीड़ करना, खेलना।

संवर्द्धनीय (सं० त्रि०) १ बढ़ाने या बढ़ने योग्य। २ पालने पोसने योग्य।

संवर्द्धित (सं० त्रि०) सम् वृध णिच् क्त। १ बढ़ा हुआ। २ बढ़ाया हुआ। ३ पाला पोसा हुआ।

संवर्षण (सं० क्ली०) मृषानुमान, झूठा अनुमान।

संवर्ह (सं० क्ली०) सम्बर्ह देखो।

संवलन (सं० क्ली०) १ मिलना, जुटना। २ संयोग मेल। ३ मिश्रण, मिलावट।

संवलित (सं० त्रि०) सम्-वल क्त। १ मिश्रित मिला हुआ। २ मिला हुआ, जुटा हुआ। ३ युक्त सहित। ४ चूर्णित, चूर्ण किया हुआ। ५ वेष्टित, घिरा हुआ।

संवसथ (सं० पु०) संवसन्त्यत्रेति सम् वस अथ (उण् ३।११४) बस्ती, गांव या कसबा।

संवसन (सं० त्रि०) वास करनेके योग्य, बसने लायक।

संवसु (सं० त्रि०) अच्छी तरह वास करनेवाला।

संवह (सं० पु०) संवहतीति सम् वह अच्। १ वहन करनेवाला ले जानेवाला। २ एक वायु जो आकाशके सात मार्गोंमेंसे तीसरे मार्गमें रहती है। ३ अग्निकी जिह्वाओंमेंसे एक।

संवहन (सं० क्ली०) संवह ल्युट्। १ वहन करना, ले जाना। २ प्रदर्शित करना, दिखाना।

संवहितृ (सं० त्रि०) संवहति संवह तृच्। संवाहक, वहन करनेवाला।

संवाच्य (सं० पु०) बात चीत करने या कथा कहनेकी कला। यह ६४ कलाओंमेंसे एक है।

संवाटिका (सं० स्त्री०) शृङ्गाटक सिंघाड़ा।

संवाद (सं० पु०) संवाद घञ्। १ संदेश वाक्य, समाचार। पर्याय—वाचिक, संदेश, सन्दिष्टवाच्। २ कथोपकथन बातचीत। ३ वृत्तान्त, हाल। ४ प्रसङ्ग कथा चर्चा। ५ व्यवहार, मामला, मुकद्दमा। ६ स्वीकार, रजामन्दी। ७ सहमति, एक राय। ८ नियुक्ति, नियति।

संवादक (सं० त्रि०) १ भाषण करनेवाला बात चीत करनेवाला। २ सहमत होनेवाला। ३ स्वीकार करनेवाला माननेवाला, राजी होनेवाला। ४ बजानेवाला।

संवादन (सं० क्ली०) १ भाषण, बात चीत करना। २ सहमत होना, एक मत होना। ३ राजी होना, मानना। ४ बजाना।

संवादिका (सं० स्त्री०) १ कीट, कीड़ा। २ पिपीलिका, च्यूंटी।

संवादित (सं० त्रि०) १ बोलनेमें प्रवृत्त किया हुआ। २ बातचीतमें लगाया हुआ। ३ मनाया हुआ, राजी किया हुआ।

संवादिता (सं० स्त्री०) १ सादृश्यता, समानता। २ एक मेलका होना।

संवादिन् (सं० त्रि०) १ संवाद करनेवाला, बातचीत करनेवाला। २ सहमत होनेवाला, राजी होनेवाला। ३ अनुकूल होनेवाला। ४ बजानेवाला। (पु०) ५ संगीतमें वह स्वर जो वादीके साथ सब स्वरोंके साथ मिलता और सहायक होता है।

संवार (सं० पु०) १ आच्छादन, ढाँकना, छिपाना। २ शब्दोंके उच्चारणमें कण्ठका आकुंचन या दबाव। ३ उच्चारणके बाह्य प्रयत्नोंमेंसे एक जिसमें कण्ठका आकुंचन होता है, विवारका उलटा। ४ बाधा, अड़चन।

संवारण (सं० क्ली०) १ हटाना, दूर करना। २ रोकना, न आने देना। ३ निषेध करना, मना करना। ४ छिपाना, ढाँकना।

संवारणीय (सं० त्रि०) १ हटाने या दूर करने योग्य। २ रोकने योग्य। ३ छिपाने या ढाँकने योग्य।

संवारना (हिं० क्रि०) १ सजाना, अलंकृत करना। २ दुरुस्त करना, ठीक करना। ३ क्रमसे रखना, ठीक ठीक लगाना। ४ कार्य सुचारुरूपसे सम्पन्न करना, काम ठीक करना।

संवारयिष्णु (सं० त्रि०) संवारणीय।

संवारित (सं० त्रि०) १ रोका हुआ, हटाया हुआ। २ मना किया हुआ। ३ ढाँका हुआ।

संवार्य (सं० त्रि०) १ हटाने योग्य, दूर करने लायक। २ मना करने योग्य, रोकने लायक। ३ ढाँकने या छिपाने योग्य।

संवास (सं० पु०) संवसन्त्यत्रेति सम्-वस घञ्। १ मकान, घर, रहनेका स्थान। २ सार्वजनिक स्थान ३ वह खुला हुआ स्थान जहां लोग विनोद या मन बहलावके निमित्त एकत्र हों। ४ सभा, समाज। ५ साथ बसना या रहना। ६ परस्पर सम्बन्ध। ७ सहवास, प्रसंग, मैथुन।

संवास्य (सं० त्रि०) छेदने योग्य।

संवाह (सं० पु०) संवाहयतीति सम्-वह-णिच् अच्। १ ले जाना, ढोना। २ खुला उपवन जहां लोग एकत्र हों। सम्-वह-घञ्। ३ अङ्गमर्दन, पैर दबाना। (मार्क०पु० १६।१५) ४ बाजार, मंडी। ५ पीड़न, सताना, जुलम।

संवाहक (सं० त्रि०) संवाहयतीति सम्-वह-णिच् ण्वुल्। १ अङ्गमर्दकारक, बदन मलनेवाला, पैर दबानेवाला। पर्याय—अङ्गमर्दक, अङ्गमर्द। २ वाहक, ढोनेवाला, पहुंचानेवाला।

संवाहन (सं० क्ली०) सम वह-णिच् ल्युट्। १ अङ्गमर्द्दन, हाथ पैर दबाना या मलना। (मार्क०पु० १०।७४) वैद्यकमें इसका गुण—मांस, रक्त और त्वक्का प्रसन्नताकारक, सुखकर, प्रीतिवर्द्धक, निद्राकर, वृष्य तथा कफ, वायु और श्रमनाशक। (सुश्रुत चि० २४ अ०) २ भारादि वहन, ढोना। ३ ले जाना, पहुंचाना। ४ परिचालन, चलाना।

संवाहिका (सं० स्त्री०) पिपीलिकाविशेष, एक प्रकारकी च्यूंटी। (सुश्रुत कल्प०)

संवाहित (सं० त्रि०) १ मर्द्दित, जिसके हाथ पैर दबाये गये हों। २ ले गया हुआ, ढोया हुआ। ३ पहुंचाया हुआ। ४ परिचालित, चलाया हुआ।

संवाहिन् (सं० त्रि०) १ अङ्ग मर्द्दन करनेवाला, हाथ पैर दबानेवाला। २ ले जानेवाला, पहुंचानेवाला। ३ ढोनेवाला। ४ चलानेवाला।

संवाह्य (सं० त्रि०) सम्-वह-ण्यत्। १ मलने योग्य, दबाने लायक। २ वहन करने योग्य।

संविग्न (सं० त्रि०) सम विज-क्त। १ भीत, डरा हुआ। २ उद्विग्न, घबराया हुआ।

संविज्ञात (सं० त्रि०) अच्छी तरह जानकार।

संविज्ञान (सं० क्ली०) सं-वि-ज्ञा-ल्युट्। १ सम्यक् बोध, पूर्ण ज्ञान। २ सहमति, एकमत। ३ स्वीकृति, मंजूरी।

संवित् (सं० स्त्री०) सम् विद्-क्विप्। १ अङ्गीकार। २ ज्ञान। ३ सम्भाषा। ४ क्रियाकारो, कर्गठ। ५ युद्ध, लड़ाई। ६ आचार। ७ संकेत, इशारा। (रघु ७।३१) ८ नाम। ६ सन्तोष, तोषण। १० समाधि। ११ बुद्धि, महत्तत्त्व। १२ नियम। १३ युद्धको ललकार। १४ शरण। १५ भङ्ग, भांग। १६ सम्पत्ति, जायदाद। १७ प्राप्ति, लाभ।

१८ योगकी एक भूमि जिसकी प्राप्ति प्राणायामसे होती है।

संवितिफल (सं० स्त्री०) सेवीफल, सेव।

संवित्ति (सं० स्त्री०) सम्-विद्-क्तिन्। १ प्रतिपत्ति। २ अविवाद, ऐकमत्य, एक राय। ३ चेतना, ज्ञान। ४ अनुभव। ५ बुद्धि। ६ संविद्। ७ पूर्वस्मृति।

संविद् (सं० त्रि०) १ चेतन, चेतनायुक्त। (पु०) २ वादा, समझौता, इकरार।

संविदामञ्जरी (सं० स्त्री०) गाञ्जा।

संविदित (सं० त्रि०) सम्-विद्-क्त। १ पूर्णतया ज्ञात जाना हुआ। २ ढूंढा हुआ, खोजा हुआ। ३ ते पाया हुआ सबकी रायसे ठहराया हुआ। ४ उपदिष्ट, समझाया बुझाया हुआ। ५ वादा किया हुआ, जिसका करार हुआ हो।

संविद्वाद (सं० पु०) यूरोपीय दर्शनका एक सिद्धान्त जिसमें वेदान्तके समान चैतन्यके अतिरिक्त और किसी वस्तुकी पारमार्थिक सत्ता नहीं स्वीकार की गई हो, चैतन्य वाद।

संविद्व्यतिक्रिया (सं० स्त्री०) प्रतिज्ञा भंग करना।

संविध (सं० स्त्री०) संविधा, सेवाकी सामग्री, उपचार द्रव्य।

संविधा (सं० स्त्री०) १ आचार, व्यवहार, रहन सहन। २ व्यवस्था, आयोजन, डौल। ३ रचना। ४ विचित्रता, अनूठापन।

संविधातृ (सं० त्रि०) सं-वि-धा-तृच्। संविधान कारी।

संविधान (सं० स्त्री०) १ व्यवस्था, आयोजन। २ विधि रीति, दस्तूर। ३ रचना, सजना। ४ विचित्रता, अनूठापन।

संविधानक (सं० क्ली०) विचित्र क्रिया या व्यापार, अलौकिक घटना।

संविधि (सं० स्त्री०) संविधा देखो।

संविधेय (सं० त्रि०) १ जिसका प्रबन्ध या डौल करना हो। २ जिन करना हो। ३ जिसका प्रबन्ध उचित हो।

संविन्मय (सं० त्रि०) चिन्मय, ज्ञानमय।

संविभक्त (सं० त्रि०) सम्-वि-भज-क्त। १ अच्छी तरह बंटा हुआ। २ जिसके सब अंग ठीक हिसाबसे हों, सुडौल। ३ प्रदत्त, दिया हुआ।

संविभक्तृ (सं० त्रि०) विभागकर्त्ता, भाग करनेवाला।

संविभजन (सं० क्ली०) १ बांट, बटाई। २ साझा।

संविभाग (सं० पु०) १ पूर्णतया भाग करना, हिस्सा करना, बांट, बटाई। २ प्रदान।

संविभागिन् (सं० त्रि०) प्रविभागकारी, अच्छी तरह विभाग करनेवाला।

संविभाज्य (सं० त्रि०) अच्छी तरह विभाग करनेके योग्य।

संविभाव्य (सं० त्रि०) संचिन्त्य।

संविमर्द (सं० पु०) अच्छी तरहसे विमर्दन।

संविवर्द्धयिषु (सं० त्रि०) सम्-वि-वृध णिच् सन् उ। अच्छी तरह बढ़ानेमें इच्छुक।

संविवादिन् (सं० त्रि०) सं-वि-वद-णिनि। सम्यक विवादयुक्त परस्पर विरुद्धमतविशिष्ट।

संविषा (सं० स्त्री०) अतिविषा, अतीस।

संविष्ट (सं० त्रि०) सम्-विश-क्त। १ ग्थित, सोया हुआ। २ निविष्ट बैठा हुआ। ३ आगत, प्राप्त, पहुंचा हुआ। संविष्ट क। ४ परिच्छदविशिष्ट।

संविहार (सं० पु०) अच्छी तरह विहार।

संवीक्षण (सं० क्ली०) सम्-वि-ईक्ष-ल्युट्। १ अन्वेषण, खोज, तलाश। २ अवलोकन, इधर उधर देखनेकी क्रिया।

संवीत (सं० त्रि०) सम्-व्ये-क्त। १ दृढ़ ढका हुआ। २ आवृत, ढका हुआ, छिपा हुआ। ३ कवच धारण किये हुए। ४ पहने हुए। ५ अदृश्य, न दिखाई देता हुआ, नजरसे गायब। ६ अलङ्कृत किया हुआ, जिसे देख कर लोग राजी गये हों। (पु०) ७ पहनावा वस्त्र, आच्छादन। ८ श्वेत किनिही, सफेद करमी।

संवीतिन् (सं० त्रि०) जो यज्ञोपवीत पहने हो।

संवुवूर्षु (सं० त्रि०) सम्-वृ सन् उ। संवरण करनेमें इच्छुक।

संवृक्त (सं० त्रि०) १ छूटा हुआ, हरण किया हुआ। २ बढ़ाया हुआ, आगे लाया हुआ।

संवृक्तधृष्णु (सं० त्रि०) घर्षणशील अर्थात् उद्धतोंको छिन्न विछिन्न करनेवाला।

संवृज् (सं० त्रि०) स्वीकर्त्ता, स्वीकार करनेवाला।

संवृत् (सं० त्रि०) आच्छादित, ढका हुआ।

संवृत (सं० त्रि०) सम्-वृ-क्त। १ आच्छादित, ढका हुआ। २ वेष्टित, घिरा हुआ। ३ रक्षित। ४ युक्त, सहित। ५ लपेटा हुआ। ६ जो किनारे या अलग हो गया हो। ७ रुंधा हुआ। ८ सीमा किया हुआ। ९ दमन किया हुआ, दबाया हुआ। (पु०) १० जलवेतस, एक प्रकारका वेंत। ११ वरुण देवता। १२ गुप्तस्थान।

संवृतकोष्ठ (सं० पु०) कोष्ठता, कब्जियत।

संवृतमन्त्र (सं० पु०) गुप्त मन्त्रणा, भेदकी बातचीत।

संवृति (सं० स्त्री०) ढकने या छिपानेकी क्रिया।

संवृत्त (सं० पु०) सम्-वृत्-क्त। १ वरुण देवता। २ एक नागका नाम। (त्रि०) ३ समागत, पहुंचा हुआ। ४ घटित, जो हुआ हो। ५ जो पूरा हुआ हो। ६ उपस्थित, मौजूद। ७ उत्पन्न, पैदा।

संवृत्ति (सं० स्त्री०) सम्-वृत्-क्तिन्। १ सम्यक् प्रकारसे प्रवर्त्तन। २ आवरण। ३ गोपन, छिपाना। ४ निष्पत्ति, सिद्धि। ५ एक देवीका नाम।

संवृद्ध (सं० त्रि०) १ बढ़ा हुआ। २ उन्नत।

संवृद्धि (सं० स्त्री०) सम्-वृध-क्ति। १ बढ़नेकी क्रिया या भाव, बढ़ती। २ समृद्धि, धन आदिकी अधिकता।

संवेग (सं० पु०) सम्-विज-घञ्। १ पूर्ण वेग या तेजी। २ आवेग, घबराहट, घलबली। ३ अतिरेक, जोर। ४ भय, सहम।

संवेजन (सं० क्ली०) १ उद्विग्न करना, घबराना, खलबली डालना। २ सहमाना, डराना। ३ उत्तेजित करना, भड़काना।

संवेद (सं० पु०) सम्-विद-घञ्। १ अनुभव, सुख दुःख आदिका ज्ञान पड़ना, वेदना। २ ज्ञान, बोध।

संवेदन (सं० पु०) १ अनुभव करना, सुख दुःख आदिकी प्रतीति करना। क्लेश, आनन्द, शीत, ताप आदिको मनमें मालूम करना। २ प्रकट करना, जताना। ३ छिद्रिका, नकछिकनी नामकी घास।

संवेदना (सं० स्त्री०) संवेदन देखो।

संवेदनीय (सं० त्रि०) १ अनुभव योग्य, प्रतीति योग्य। २ बोध कराने योग्य, जताने लायक।

संवेदित (सं० त्रि०) १ अनुभव किया हुआ, प्रतीत किया हुआ। २ बोध कराया हुआ, जताया हुआ।

संवेद्य (सं० त्रि०) १ ज्ञेय, दूसरेको अनुभव कराने योग्य, जताने लायक। २ अनुभव करने योग्य, प्रतीत करनेयोग्य, मनमें मालूम करने लायक।

संवेश (सं० पु०) सम्-विश-घञ्। १ निद्रा, नींद। २ कामशास्त्रानुसार एक प्रकारका रतिबन्ध। ३ पीठ, आसन। ४ उपभोग स्थान। (भागवत ३।२३।२० स्वामी) ५ शयन, लेटना, सोना। ६ उपवेशन, बैठना, आसन जमाना। ७ शय्या। ८ पास जाना, पहुंचना। ९ प्रवेश, घुसना। १० अग्नि देवता जो रतिके अधिष्ठाता माने गये हैं।

संवेशक (सं० त्रि०) ठीक ठिकानेसे रखनेवाला, तरकीब देनेवाला।

संवेशन (सं० पु०) १ रतिक्रिया, रमण। २ उपवेशन, बैठना। (भाग० ५।६।१०) ३ लेटना, पड़ रहना, सोना। ४ प्रवेश करना, घुसना। (क्ली०) ५ अनियत शयन स्थान। (चरकसू० १५ अ०)

संवेशनीय (सं० त्रि०) संवेशनं प्रयोजनमस्य संवेशन छ। (पा ५।१।११) जिसे संवेशनका प्रयोजन हो।

संवेशपति (सं० पु०) सुरतपति। (शुक्लयजुः २।२०)

संवेश्य (सं० त्रि०) १ लेटने योग्य। २ घुसने योग्य।

संवेष्ट (सं० त्रि०) १ वेष्टित, घेरा हुआ। (पु०) २ आच्छादन, लपेटनेका कपड़ा इत्यादि।

संवेष्टन (सं० क्ली०) १ लपेटना, ढांकना, बन्द करना। २ घेरना।

संवोढ़ृ (सं० त्रि०) सम्-वह-तृच् (पा ४।३।१२० वार्त्तिक) अच्छी तरह ढोनेवाला।

संव्यवस्य (सं० त्रि०) मीमांसनीय।

संव्यवहरण (सं० क्ली०) अच्छी तरहका व्यवहार।

संव्यवहार (सं० पु०) १ अच्छी तरहका व्यवहार, अच्छा सलूक, एक दूसरेके प्रति उत्तम आचरण। २ संसर्ग, लगाव। ३ उपभोग, पूरा सेवन, इस्तेमाल।

४ प्रसंग, मामला। ५ प्रचलित शब्द, आम फहम लफज। ६ व्यवसायी लेनदेन करनेवाला, दूकानदार।

सव्यवहारवत् (सं० त्रि०) व्यवहारविशिष्ट।

सव्याध (सं० पु०) भिन्न स्थानसे समागत लोकसङ्घ।

संव्याध (सं० पु०) युद्ध, लड़ाई। (शतपथब्रा० १।२।४।२)

सव्यान (सं० क्लो०) संवीयते अनेनेति सम्‌-व्या-ल्युट्। १ उत्तरीय वस्त्र, चादर, दुपट्टा। २ वस्त्र, ओढ़नेका कपड़ा। ३ अंशुक।

सव्याप (सं० पु०) १ आच्छादन वस्त्र। २ ओढ़ना।

सव्यूढ (सं० त्रि०) धृष्ट, धर्षणयुक्त।

संव्यूह (सं० पु०) १ संविभाग प्रविभाग, अच्छी तरह भाग करना। (भागवत ३।७।२७) २ एकत्रीकरण, मिलाना।

संव्यूहन (सं० क्ली०) १ एकत्रीकरण, मिलाना। २ संविभाग।

संव्यूहिम (सं० पु०) मृदुवीणा वाद्यप्रकारविशेष।

संव्रात (सं० पु०) १ प्रचुर, यथेष्ट। २ बहुसंख्यक।

संव्लय (सं० पु०) अच्छी तरह निमज्जन।

संशकला (सं० स्त्री०) गोहत्या।

संशप्त (सं० त्रि०) १ जो शापग्रस्त हो। २ शपथबद्ध, जिसने किसीके साथ प्रतिज्ञा की या शपथ खाई हो।

संशप्तक (सं० पु०) १ वह योद्धा जिसने बिना सफल हुए लड़ाई आदिसे न हटनेकी शपथ खाई हो। २ वह जिसने यह शपथ खाई हो कि बिना मारे न लौटेंगे। ३ कुरुक्षेत्रके युद्धमें एक दल जिसने अर्जुनके वधकी प्रतिज्ञा की थी पर स्वयं मारा गया था। (महाभारत द्रोणपर्व)

संशंस (सं० पु०) १ स्तुति, प्रशंसा। २ निवाचन, कथन। ३ अलङ्कार।

संशंसन (सं० क्लो०) १ अच्छी तरह उल्लेख करना। २ स्तुति करना, प्रशंसा करना।

संशस्य (सं० त्रि०) १ सम्यक् उल्लेखनीय। २ स्तुतिवादयुक्त। (सत्य बनारे)

संशम (सं० पु०) चित्तशान्ति कामनाकी पूर्ण निवृत्ति।

संशमन (सं० क्ली०) संशाम्यन्ति शमयतीति सम्‌-शम-ल्युट्। १ आकाशागुण भूमिपुद्रव्य। २ शान्त करना निवृत्त करना। ३ नष्ट करना, न रहने देना। ४ वद्यक्रमसे द्वारा दुष्ट दोषोंका निर्हरण और अदुष्ट दोषका अनुदीरण कर शान्ति करना।

नीचे यथाक्रम वात पित्त और कफप्रशमक कुछ संशमन द्रव्योंका उल्लेख किया जाता है, यथा—

वातसंशमन द्रव्य—देवदारु कुट, हरिद्रा, वरुणत्वक्, मेषशृङ्गी, बला, अतिबला, अर्जुनवृक्षत्वक्, केवाच, सल्लकी, कुबेराक्षी, शर क्षुरा, गनियारी, गोलक्ष एरण्ड, पाषाणभेद, मर्क अर्क, शतमूली, पुनर्नवा, वरफूल, सूपवरा, धुस्तूर, वरगो दलकपास, वृश्चिकाली, पत्तमकाष्ठ, वदर, यव कोल और कुलथी आदि तथा विदारीगन्धादिगण और पञ्चमूल।

पित्तसंशमन—रक्तचन्दन पद्मक सुगन्धवाला, खसकी जड़, मधुपोड़, क्षीरकाकोली भूमिकुष्माण्ड, शतमूली, गांभारी, शैवाल, कहार, कुमुद, नीलोत्पल, कदली दूर्वा और मूर्वा आदि तथा काकोल्यादि सारिवादि, अञ्जनादि, उत्पलादि न्यग्रोधादि और तृणपञ्चमूल।

श्लेष्मसंशमन—कालेयक, अगर, तिलपर्णी कुट, हरिद्रा, कपूर, सोवा सरला रास्ना करञ्ज, ऊहर करञ्ज, इङ्गुदी जाती, हिमा, विषलाङ्गली, हस्तिकर्ण, मुञ्ज वीरणमूल आदि तथा बड़ी पञ्चमूल, कण्टकपञ्चमूल, पिप्पल्यादि, बृहत्यादि, मुष्ककादि, वचादि, सुरसादि और आरग्वधादिगण।

संशमनवर्ग (सं० पु०) वे औषधियां जो संशमन करें। जैसे,—देवदारु, कुट हल्दी आदि।

संशमनीय (सं० त्रि०) संशमनके योग्य।

संशय (सं० पु०) सम्‌-शी-अच्। १ सन्देह, शक।

एक ही धर्मविशिष्ट पदार्थमें एक ही समय उसके विपरीत भाव और अभाव, ये दोनों प्रकारके ज्ञान उत्पन्न होनेसे उसको संशय कहते हैं। फलतः दो सन्दिग्ध पदार्थोंमें जो दोनोंका साधारण धर्म है उसका उपलब्धि ही संशयका कारण है। जैसे 'अयं स्थाणुर्वा पुरुषो वा' यह शाखा पत्र विच्छिन्न वृक्ष है या एक पुरुष। जिस समय इन दोनोंमें किसी एकका विशेष धर्म मालूम नहीं कर केवल उनके साधारण धर्मका ऊंचाई मालूम होता है, तब ही पुतलेकी तरह पुरुषाकार खड़े पुरुषको देख कर स्थाणु या शाखापल्लवविहीन वृक्षका तथा वैसे धनको देख कर पुरुषका सन्देह होता है।

आयुर्वेदके मतमें विसदृश हेतुद्वयका दर्शन और सन्दिग्धार्थका अनिश्चय, इन दोनों प्रकारके ज्ञानको संशय कहते हैं।

२ लेट रहना, पड़ रहना। ३ आशंका, खतरा। ४ संदेह नामक काव्यालङ्कार।

संशयच्छेद (सं० पु०) सन्देहका नाश, संशय दूर करना।

संशयशमहेतु (सं० पु०) संशयच्छेदनहेतु।

संशयसम् (सं० पु०) न्यायदर्शनमें २४ जातियों अर्थात् खण्डनकी असंगत युक्तियोंमेंसे एक वादीके दृष्टान्तको ले कर उसमें साध्य और असाध्य दोनों धर्मोंका आरोप करके वादीके साध्य विषयको सन्दिग्ध सिद्ध करनेका प्रयत्न।

संशयस्थ (सं० त्रि०) सन्देहयुक्त, संशयापन्न।

संशयाक्षेप (सं० पु०) १ संशयका दूर होना। २ अलङ्कारविशेष। संशयकी जगह कोई कारण दिखाई पड़नेसे पुनः उसका अपलाप हो, तो वहां संशयाक्षेप अलङ्कार होता है।

संशयात्मक (सं० त्रि०) सन्देहजनक, जिसमें सन्देह हो, शुबहेका।

संशयात्मन् (सं० त्रि०) सन्देहवादी, विश्वासहीन, जिसका मन किसी बात पर विश्वास न करे।

संशयान (सं० त्रि०) संशययुक्त, सन्देहपरायण।

संशयापन्नमानस (सं० त्रि०) संशयमापन्नं मानसं यस्य यद्वेति वा। १ संशययुक्त। २ संशयान्वित विषय। पर्याय—सांशयिक।

संशयालु (सं० त्रि०) अतिशय सन्देहान्वित, बातबातमें सन्देह करनेवाला।

संशयित (सं० त्रि०) १ संशययुक्त, दुबधामें पड़ा हुआ। २ सन्दिग्ध, अनिश्चित।

संशयितृ (सं० त्रि०) सम्-शी-तृच्। संशयकर्त्ता, संशय करनेवाला।

संशयोपमा (सं० स्त्री०) एक प्रकारका उपमा अलंकार। इसमें कई वस्तुओंके साथ समानता संशयके रूपमें कही जाती है।

संशयोपेत (सं० त्रि०) संशययुक्त, सन्दिग्ध, अनिश्चित।

संशर (सं० पु०) सं-शॄ-अप्। एकदम भङ्ग, एक साथ अलग अलग करना।

संशरण (सं० क्ली०) सम्-शॄ-ल्युट्। १ उपक्रम, युद्धका उपक्रम। २ शरणमें जाना, पनाह लेना। ३ दलित करना, चूर्ण करना। ४ भंग करना, तोड़ना।

संशारुक (सं० त्रि०) १ भंग करनेवाला, तोड़नेवाला। २ दलन या मर्दन करनेवाला।

संशान (सं० क्ली०) साममेद। (शतपथब्रा० १२।८।३।२६)

संशान्ति (सं० स्त्री०) सम्यक् प्रकारसे निवृत्ति।

संशासन (सं० क्ली०) १ सम्यक् शासन, उत्तम राज्यप्रबन्ध। २ निरूपित कर्म पालनका आदेश, आदेश-पत्र।

संशित (सं० त्रि०) सम्-शो-क्त। १ सम्यक् रूपसे सम्पादित, निर्वाहित। २ निर्णीत, स्थिरीकृत, निर्द्धारित। ३ सम्पूर्ण, पूरा। ४ सम्यक् शाणित, सान पर चढ़ाया हुआ, चोखा या तीखा किया हुआ। ५ उद्यत, उतारू, आमादा। ६ दक्ष, निपुण, पटु। ७ कर्कश, कटु कठोर।

संशितव्रत (सं० पु०) वह जो यथानियम व्रतके पालनमें पक्का हो, कठारतासे नियम या व्रत आदिका पालन करनेवाला।

संशिति (सं० स्त्री०) १ संशय, सन्देह, शक। २ खूब टेना या तेज करना, खूब सान पर चढ़ाना।

संशिशरिषु (सं० त्रि०) सम्-शॄ-सन्-उ। संशरण करनेमें इच्छुक।

संशिशान (सं० त्रि०) खूब टेया या तेज किया हुआ, खूब सान पर चढ़ाया हुआ।

संशिश्रीषु (सं० त्रि०) सम्-श्रि-सन्-उ। आश्रय करनेके लिये इच्छुक, जो शरण पानेके लिये इच्छा करता हो।

संशिश्वन् (सं० त्रि०) एक शिशुक, एक बच्चावाला।

संशिश्वरी (सं० स्त्री०) बछपयस्का, जिसका दूध हमेशा बढ़ता रहे। (ऋक् ८।५४।११)

संशिष्ट (सं० त्रि०) बचा हुआ, बाकी रहा हुआ।

संशिस् (सं० स्त्री०) सं-शास्-क्विप्, शिष्टादेशः। आदेश।

संशीत (सं० त्रि०) १ अत्यन्त शैत्ययुक्त, जो ठंढा हुआ हो। २ ठंढसे जमा हुआ।

संशीलन (सं० क्ली०) अभ्यास, पुनः पुनरालोचना।

संशुद्ध (सं० त्रि०) १ विशुद्ध यथेष्ट शुद्ध। २ शुद्ध किया हुआ, साफ किया हुआ। ३ चुकता किया हुआ, चुकाया हुआ, बेबाक। ४ परीक्षित, जांचा हुआ। ५ अपराधसे मुक्त किया हुआ।

संशुद्धि (सं० स्त्री०) सं शुध क्तिन्। १ सम्यक् शोधन, पूरी सफाई। २ शरीर मार्जन, शरीरकी सफाई।

संशुष्क (सं० त्रि०) १ आतपादि द्वारा संशोषित वस्तु, धूपमें खूब सुखाई हुई वस्तु। २ नीरस। ३ जो सहृदय न हो अरसिक।

संशोधक (सं० त्रि०) १ शोधन करनेवाला दुरुस्त या ठीक करनेवाला। २ सत्कार करनेवाला, बुरीसे अच्छी दशामें लानेवाला। ३ चुकानेवाला, अदा करनेवाला।

संशोधन (सं० क्ली०) सम् शुध-ल्युट्। १ शुद्ध करना, साफ करना। २ त्रुटि या दोष दूर करना, दुरुस्त करना। ३ चुकता करना, अदा करना, बेबाक। ५ देहस्थ वातादि दोषप्रशमक द्रव्य, वह सब वस्तु जिनके योगसे वमन, विरेचन, अनुवासन, निरूहण और नावन (नस्य), इन पांच कर्मो से शरीरस्थ प्रकुपित या प्रविलम्ब वातादि सभी दोष अच्छी तरहसे परिशोधित होते हैं।

संशोधनीय (सं० त्रि०) १ साफ करने योग्य। २ सुधारने या ठीक करने योग्य।

संशोधित (सं० त्रि०) सम् शुध-क्त। १ परिशोधित, खूब शुद्ध किया हुआ। २ परिष्कृत, मार्जित, साफ किया हुआ। ३ सुधारा हुआ, ठीक किया हुआ।

संशोधिन् (सं० त्रि०) १ सुधारनेवाला, दुरुस्त करनेवाला। २ साफ करनेवाला।

संशोध्य (सं० त्रि०) १ साफ करने योग्य, सुधारने या ठीक करने योग्य, जिसका सुधार करना हो। ४ जिसे साफ करना हो।

संशोष (सं० पु०) शोषण, शुष्कता।

संशोषण (सं० क्ली०) १ बिलकुल सोखना, अन्त करना। २ सुखाना।

संशोषणीय (सं० त्रि०) सोखने योग्य।

संशोषित (सं० त्रि०) सोखा हुआ।

संशोष्य (सं० त्रि०) सोखने योग्य, जिसे सोखना या सुखाना हो।

संश्चत् (सं० क्ली०) संचिनोति मायामिति सम् चि अति (सश्चित्तृाद इत्। उण् २।८५) इति निपातनात् साधु। कुहक, छल।

संस्त्यान (सं० त्रि०) १ शीत द्वारा संकुचित ठिठुरा हुआ। २ घनीभूत, जमा हुआ। (वापदेव)

संश्रय (सं० पु०) सं श्रि अच्। १ आश्रय, शरण, पनाह। २ संयोग, मेल। ३ समागम, लगाव। ४ अवलम्बन, सहारा। ५ राजाओंका परस्पर रक्षाके लिये मेल, अभिसन्धि। स्मृतियोंमें यह राजाके छः गुणोंमें कहा गया है और दो प्रकारका माना गया है—(१) शत्रुसे पीड़ित हो कर दूसरे राजाका सहायता लेना और (२) शत्रुसे पहुंचनेवाला हानिकी आशङ्कासे किसी दूसरे बलवान् राजाका आश्रय लेना। ६ शरण स्थान, पनाहकी जगह। (रामायण २।४१।६) ७ रहने या ठहरनेकी जगह, घर। ८ किसी वस्तुका अङ्ग, हिस्सा। ९ उद्देश्य, लक्ष्य, मतलब।

संश्रयण (सं० क्ली०) सं श्रि ल्युट्। १ अवलम्ब पकड़ना सहारा लेना। २ शरण लेना, पनाह लेना।

संश्रयणीय (सं० त्रि०) सं श्रि अनीयर्। १ संश्रय योग्य, शरण लेने योग्य। २ सहारा लेने योग्य।

संश्रयितव्य (सं० पु०) सं श्रि तव्य। संश्रयके उपयुक्त आश्रयदाता।

संश्रयिन् (सं० त्रि०) सं श्रि इनि। १ शरण लेनेवाला। २ सहारा लेनेवाला। (पु०) ३ भृत्य, नौकर।

संश्रव (सं० पु०) सं श्रु अप्। १ अङ्गीकार, स्वीकार रजामन्दी। २ कान देना सुनना। ३ प्रतिज्ञा वादा, करार। (त्रि०) ४ जो सुना जाय।

संश्रवण (सं० क्ली०) सं श्रु ल्युट्। १ अङ्गीकार करना, स्वीकार करना। २ खूब कान देना, सुनना। ३ वादा करना, करार करना।

संश्रवस् (सं० क्ली०) १ साममेद। (शतपथब्रा० १३।८।३।२६) (पु०) २ सौवर्च्चनसका गोत्रापत्य पद ऋषि। (तैत्तिरीय सं० १।७।२।१)

३ राजपथ बड़ा रास्ता। ४ रणारम्भ, लड़ाईका छिड़ना। ५ संसार, जगत्। ६ नगरके तोरणके पास यात्रियोंके लिये विश्रामस्थान, शहरके फाटकके पास मुसाफिरोंके ठहरनेका स्थान, सराय। ७ एक जन्मसे दूसरे जन्ममें जानेकी परम्परा, भवचक्र।

संसर्ग (सं० पु०) सं सृज घञ्। १ सम्बन्ध, सम्पर्क, लगाव। न्यायदर्शनके मतसे समवायादि सम्बन्धको संसर्ग कहते हैं। शास्त्रमें लिखा है, कि दुष्टके साथ संसर्ग नहीं करना चाहिये, करनेसे पतित होना पड़ता है। एक न्याय है, कि प्राय सभी सहचर समान गुण विशिष्ट होता है। "प्रायेण समानगुणा सहचरा भवन्ति" (न्याय) सुनरां दुष्टका संसर्ग करनेसे दुष्ट होना पड़ता है। २ स्त्रीपुरुषका सहवास। ३ मेल, मिलाप। ४ सहवास, समागम, संग। ५ परिचय घनिष्ठता। ६ आयदादका एकके होना, इश्तमाल। ७ वह बिन्दु जहां एक रेखा दूसरीको काटती हो। ८ वात पित्तादिमेंसे दोका एक साथ प्रकोप। ९ घाल मेल, घपला।

संसर्गक (सं० पु०) संसर्ग स्वार्थे कन्। संसर्ग।

संसर्गदोष (सं० पु०) वह बुराई जो किसीके साथ रहनेसे आवे, संगतका दोष।

संसर्गवत् (सं० त्रि०) संसर्गो विद्यतेऽस्य संसर्ग मतुप मस्य व। संसर्गविशिष्ट, संसर्गयुक्त।

संसर्गवत्त्व (सं० क्ली०) संसर्गवतो भावः संसर्गवत् भावे त्व। संसर्गकारीका भाव या धर्म, संसर्ग सहवास।

संसर्गविद्या (सं० स्त्री०) व्यवहारकुशलता लोगोंसे मिलने जुलनेका हुनर।

संसर्गाभाव (सं० पु०) संसर्गेण सम्बन्धेन अवच्छिन्नोऽभावः। १ संसर्गका अभाव, सम्बन्धका न होना। २ न्यायमें अभावका एक भेद, किसी वस्तुके सम्बन्धमें दूसरी वस्तुका अभाव। नैयायिकोंके मतसे अभाव दो प्रकारका होता है,—संसर्गाभाव और अन्योन्या भाव। यह संसर्गाभाव फिर तीन प्रकारका होता है,—प्रागभाव, ध्वंसाभाव और अत्यन्ताभाव। भेद भिन्न अभावको ही संसर्गाभाव कहते हैं।

संसर्गिता (सं० स्त्री०) संसर्गिणो भावः तल् टाप्। संसर्गीका भाव या धर्म, संसर्ग।

संसर्गिन् (सं० त्रि०) संसर्गोऽस्यास्तीति इनि यद्वा सं-सृज (सम्पृचानुरुधेति। पा ३।२।१४२) इति घिणुन्। १ संसर्ग या लगाव रखनेवाला। (पु०) २ मित्र, सहचर। ३ वह जो पैतृक सम्पत्तिका विभाग हो जाने पर भी अपने भाइयों या कुटुम्बियों आदिके साथ रहता हो। (स्त्री०) ४ शुद्धि, सफाई।

संसर्जन (सं० क्ली०) १ संयोग होना, मिलना। २ सम्बद्ध होना, जुड़ना। ३ अपनी ओर मिलाना, राजी करना। ४ त्याग करना, छोड़ना, हटाना।

संसर्प (सं० पु०) सं सृप घञ्। १ धीरे धीरे चलना, खिसकना। २ रेंगना, सरकना। ३ वह अधिक मास जो क्षय मासवाले वर्षमें होता है।

संसर्पण (सं० क्ली०) सं सृप ल्युट्। १ धीरे धीरे चलना, खिसकना। २ रेंगना, सरकना। ३ चढ़ना। ४ सहसा आक्रमण, अचानक हमला।

संसर्पिन् (सं० त्रि०) संसर्पोऽस्यास्तीति इनि, यद्वा सं सृप णिनि। १ रेंगनेवाला, सरकनेवाला। २ संचार करनेवाला फैलनेवाला। ३ पानीके ऊपर तैरनेवाला, उतरानेवाला।

संसव (सं० पु०) सोमयज्ञके समय होनाओंका विपर्य यात्मक कर्म।

संसद् (सं० पु०) १ गोष्ठी जमावड़ा। २ सभा, समाज, मण्डली।

संसाधन (सं० क्ली०) १ एकत्र करना, जुटाना। २ क्रम बद्ध करना, तरकीबसे लगाना।

संसाधित (सं० त्रि०) १ एकत्र किया हुआ, जुटाया हुआ। २ सजाया हुआ, तरकीब दिया हुआ।

संसाधक (सं० त्रि०) १ वशमें करनेवाला, जीतने वाला। २ पूर्णतया साधन करनेवाला, सम्पन्न करने वाला, अंजाम देनेवाला।

संसाधन (सं० क्ली०) १ वशमें करना, जीतना। २ आयोजन, तैयारी। ३ अच्छी तरह करना, पूरा करना अंजाम देना।

संसाधनीय (सं० त्रि०) १ वशमें लाने योग्य जीतने लायक। २ साधनेके योग्य, पूरा करने लायक।

संसाध्य (सं० त्रि०) १ दमन करने योग्य, जीतने लायक। २ पूरा करने योग्य। ३ जिसको वशमें करना या जीतना हो। ४ जिसे करना हो, करने लायक।

संसार (सं० पु०) संसरत्यस्मादिति सं सृ गतौ घञ्। १ नैयायिकोंके मतमें मिथ्याज्ञानकी वासना।

मिथ्याज्ञानका जो संस्कार है, उसका नाम संसार है। न्यायोपनिषद शरीर परिग्रहको भी संस्कार कहते हैं।

बौद्धके मतसे जन्ममरण परिग्रहरूप गतिका नाम संसार है। "संसरणं संसारः * * जन्ममरणपरम्परेत्यर्थः। अथवा संसरन्त्यस्मिन् सत्वा इति संसारः।"

जीव अपने अपने अदृष्ट द्वारा जो शरीर धारण करता है, उसीका नाम संसार है। अर्थात् अदृष्टानुसार जन्मग्रहण करनेको ही संसार कहते हैं। यह मिथ्याज्ञान जन्य वासना द्वारा होता है। अतएव मिथ्याज्ञान जन्य संस्कार ही इसका कारण है। इस कारण निवृत्ति होनेसे संस्कारकी निवृत्ति होती है। जब तक संस्कार विनष्ट नहीं होता, तब तक संसार अवश्यम्भावी है। ज्ञान द्वारा ही यह मिथ्याज्ञान निवृत्त होता है, अतएव जब तक ज्ञान नहीं होता, तब तक संसारकी निवृत्ति नहीं होती। संसार ही दुःखका कारण है, जब तक संसरण अर्थात् यातायात या जन्ममृत्यु रहती है, तब तक दुःखसे छुटकारा पाना मुश्किल है। इस कारण जब तक संसार रहता है, तब तक दुःख रहता है, संसारकी निवृत्ति होनेसे दुःखकी भी निवृत्ति होती है। संसारका मूल ही अज्ञान है। श्रवण, मनन और निदिध्यासन द्वारा ही अज्ञान दूर होता है, अज्ञानके दूर होनेसे अज्ञानमूल जो संसार है, वह भी दूर होता है।

पर्याय—दुःखलोक, भव, कष्टकारक। (त्रि०)

२ मर्त्यलोक, जगत्। ३ परिवार।

संसारगमन (सं० क्ली०) जन्मान्तरपरिग्रह, आत्माका देहान्तरावगमन।

संसारगुरु (सं० पु०) संसारस्य गुरुः। १ कामदेव, स्मर। (त्रि०) २ जगद्गुरु, संसारको आदेश देनेवाला।

संसारचक्र (सं० पु०) १ जन्म पर जन्म लेनेकी परम्परा, नाना योनियोंमें भ्रमण। २ मायाका जाल, दुनियाका चक्कर, प्रपंच। ३ जगत्‌का इधरका उधर फेर।

संसारण (सं० स्त्री०) अग्रगमन, आगे चलना।

संसारतरणी (सं० पु०) नवनीत।

संसारतिलक (सं० पु०) एक प्रकारका उत्तम चावल।

संसारधारा—युक्तप्रदेशके देहरादून जिलेका एक पहाड़ी धारा। यह अक्षा० ३०° २१´ उ० तथा देशा० ७८° ६´ पू०के मध्य विस्तृत है। यह जलधारा पर्वतका भेद कर जल प्रपाताकारमें नीचे गिरती है। इसके सामने एक बहुत बड़ा गड्ढा है, इसका भीतरी भाग स्वभावजात चूना पत्थरकी स्टेलाक्टाइटों (Stalactites) द्वारा सुशोभित है। कुछ आज भी असम्पूर्ण अवस्थामें मौजूद है। देखने होसे मालूम होता है, कि यह स्थान किसी देवताके निमित्त निकुञ्जरूपमें शिल्पकारों द्वारा बनाया गया था, कालवशतः यह क्रमशः ध्वंसको प्राप्त होता जा रहा है।

यहांके लोग इस स्थानको देवाधिदेव महादेवकी पवित्र विहारभूमि समझते हैं। अभी यह हिन्दुओंका पुण्य तीर्थ माना जाता है। बहुतसे तीर्थयात्री यहां आ कर महादेवकी पूजा करते हैं। मसूरी शैलावाससे यह स्थान १२ मीलकी दूरी पर अवस्थित है।

संसारपथ (सं० पु०) १ संसारमें आनेवाला मार्ग। २ स्त्रियोंकी जननेन्द्रिय।

संसार-भावन (सं० पु०) संसारको दुःखमय जानना, यह ज्ञान चार प्रकारका है—नरकगति, तिर्यग्गति, मनुष्य गति और देव गति।

संसारमण्डल (सं० क्ली०) भूमण्डल, जगन्मण्डल।

संसारमार्ग (सं० पु०) संसारस्य मार्गः। योनि, स्त्रियोंकी जननेन्द्रिय। योनिद्वार हो कर जीवकी उत्पत्ति होती है, इसलिये वह संसारमार्ग कहलाता है।

संसारमोक्षण (सं० क्ली०) संसारस्य मोक्षणं। १ भवमोचन, भवबन्धनमुक्ति, जन्म-मृत्युके हाथसे मुक्तिलाभ, मोक्ष प्राप्ति। (त्रि०) संसारस्य मोक्षणं यस्मात्।

४ संसारतारक, जिससे संसारका मोक्षण या जिसकी कृपासे भवबन्धन मुक्त होता है।

संसारवत् (सं० त्रि०) संसार अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। संसारविशिष्ट संसारी।

संसारसागर (सं० पु०) संसाररूप समुद्र, संसार महोदधि।

संसारसारथि (सं० पु०) १ संसारपथको पार करने वाला। २ शिव, महादेव।

संसारावर्त्त (सं० पु०) जलावर्त्तकी तरह संसारचक्रमें जीव पुनः पुनः भ्रमण करता है, इसलिये संसार आवर्त्त रूपमें कहा गया है।

संसारिन् (सं० पु०) संसारोऽस्त्यस्येति इनि। १ संसार सम्बन्धी, लौकिक। २ संसारमें रहनेवाला। ३ बार बार जन्म लेनेवाला, भवबन्धमें बंधा हुआ। ४ लोक व्यवहारमें कुशल, दुनियादार।

संसिक्त (सं० त्रि०) खूब सींचा हुआ, जिस पर खूब पानी छिड़का गया हो।

संसिच (सं० त्रि०) सेचनकर्त्ता, सींचनेवाला।

संसिद्ध (सं० त्रि०) सं-सिध-क्त। १ पूर्णतया सम्पन्न, अच्छी तरह किया हुआ। २ लब्ध प्राप्त। ३ उद्यत, प्रस्तुत, तैयार। ४ मुक्त, जिसका योग सिद्ध हो गया हो। ५ स्वस्थ जो आरोग्य हो गया हो, चंगा। ६ अच्छी तरह सीखा या पका हुआ। ७ निपुण, कुशल, किसी बातमें पक्का।

संसिद्धि (सं० स्त्री०) सं-सिध-क्तिन्। १ स्वभाव, प्रकृति। २ सम्यक् पूर्त्ति, किसी कामका अच्छी तरह पूरा होना। ३ परिणाम, आखिरी नतीजा। ४ पकना सीझना। ५ हृष्टकामता, मत्तता, कामवासना। ६ मदोन्मत्ता, मदमत्त स्त्री। ७ स्वरूपता। ८ निश्चित बात, पक्की बात, न टलनेवाला वचन। ९ पूर्णता। १० मोक्ष, मुक्ति। ११ निसर्ग, प्रकृति।

संसी (हिं० स्त्री०) लोहेकी रेती।

संसी—राजपूताने और उत्तर पश्चिम प्रदेशके गाङ्गेय अन्तर्वेदवासी निम्न श्रेणीकी जातिविशेष। आचार व्यवहारमें ये लोग अन्य श्रेणीके हिन्दूसे बड़ी निकृष्ट हैं। चोरी और डकैती वृत्ति ही इनकी प्रधान उपजीविका है। रुपयेके लोभमें पड़ कर ये लोग नरहत्या करनेसे भी बाज नहीं आते। इस कारण अंग्रेजी शासकों शासन विवरणीमें इन्हें 'क्रिमिनल ट्राइब' कहा है।

संसी—बम्बई प्रदेशके कोल्हापुर जिलान्तर्गत एक बड़ा ग्राम। यह पालमवे नगरसे (१६ २४ उ० तथा ७४ २६ पू०) एक मील दक्षिण पश्चिममें अवस्थित है। यहां श्रीस्वामी नारायणका एक मन्दिर विद्यमान है।

संसुतसोम (सं० पु०) संस्तर। (कात्या० [illegible])

संसुद (सं० त्रि०) सुन्दर दानकारी। (ऋक् ८।१७।६)

संसुप (सं० त्रि०) खूब सोया हुआ।

संसूचक (सं० त्रि०) १ प्रकट करनेवाला, जतानेवाला। २ भेद खोलनेवाला। ३ समझाने बुझानेवाला। ४ कहने सुननेवाला। ५ डांटने डपटनेवाला।

संसूचन (सं० क्ली०) १ प्रकट करना, जताना। २ बात खोलना। ३ कहना सुनना। ४ भर्त्सना करना, फटकारना, डांटना डपटना।

संसूचित (सं० त्रि०) १ प्रकट किया हुआ, जताया हुआ। २ डांटा डपटा हुआ, जिसे कुछ कहा सुना गया हो।

संसूचिन् (सं० त्रि०) १ प्रकट करनेवाला, जतानेवाला। २ भला बुरा कहनेवाला, फटकारनेवाला।

संसूच्य (सं० त्रि०) १ प्रकट करने योग्य जताने लायक। २ जिसे प्रकट करना या जताना हो। ३ भला बुरा कहने योग्य, जिसे भला बुरा कहना हो या जिसके लिये भला बुरा कहना हो।

संसूद (सं० पु०) पशु आदिका मुखस्थित तालु भाग।

संसृज (सं० स्त्री०) मिश्रण, संसर्ग। (ऋक् १०।८४।६)

संसृति (सं० स्त्री०) सं-सृ-क्तिन्। १ संसार, जगत्। २ जन्म पर जन्म लेनेकी परम्परा, आवागमन, भवचक्र।

संसृप् (सं० स्त्री०) दशरूप, अग्नि, सरस्वती, सविता, पूषा, बृहस्पति, इन्द्र, सोम, त्वष्टा और विष्णु आदि देवता। राजसूय यज्ञके दशपेय यागमें इन देववृन्दका पृथक् आवाहन विधान है।

संसृष्टहविस् (सं० क्ली०) संसृष्टदेववृन्दकी प्रीतिके लिये प्रदत्त हवि। (कात्यायनश्रौ० १५।८।१)

संसृपेष्टि (सं० स्त्री०) दशपेय यागमें अग्नि आदि देवताओंकी उद्देशक उत्सर्गादि यज्ञक्रिया।

संसृष्ट (सं० त्रि०) सं-सृज-क्त। १ एक साथ उत्पन्न या आविर्भूत। २ संश्लिष्ट, मिश्रित, एकमें मिला जुला। ३ सम्बद्ध, परस्पर लगा हुआ। ४ अन्तर्भूत, अन्तर्गत, शामिल। ५ बहुत परिचित, हिला मिला हुआ। ६ सम्पन्न किया हुआ, अंजाम दिया हुआ। ७ वमनादि द्वारा शुद्ध किया हुआ, कोठा साफ किया हुआ। ८ संगृहीत, जुटाया हुआ। ९ जो जायदादका बंटवारा होने पर भी सम्मिलित हो गया हो। (पु०) १० घनिष्ठता, हेलमेल। ११ पुराणानुसार एक पर्वतका नाम।

संसृष्टजित् (सं० त्रि०) संसृष्टं जयति जि-क्विप्। सम्मिलित व्यक्तियोंको जीतनेवाला। (ऋक् १०।१०३।३)

संसृष्टत्व (सं० क्ली०) संसृष्टस्य भावः त्व। १ संसृष्ट होनेका भाव या धर्म। २ जायदादका बंटवारा हो जानेके पीछे फिर एकमें होना या रहना।

संसृष्टहोम (सं० पु०) अग्नि और सूर्यकी एक होममें मिली हुई आहुति।

संसृष्टि (सं० स्त्री०) सं-सृज-क्तिन्। १ एक साथ उत्पत्ति या आविर्भाव। २ परस्पर सम्बन्ध, लगाव। ३ मिश्रण, एकमें मेल या मिलावट। ४ एकत्र करना, इकट्ठा करना, जुटाना। ५ घनिष्ठता, हेलमेल। ६ संयोजन, बनानेकी क्रिया या भाव। ७ अलङ्कारका एक साथ मिलन। एक श्लोकमें दो वा तीन अलङ्कार रहनेसे संसृष्टि होती है। अलङ्कारशास्त्रमें संकर और संसृष्टि पृथक् रूपसे अभिहित हुई है। जहां उपमादि अलंकार समूहके प्रत्येक अलङ्कारकी प्रधानता रहती है, वहां संसृष्टि होती है।

संसृष्टिन् (सं० त्रि०) संसृष्टत्वमस्यास्तीति इनि। १ संसृष्टत्वविशिष्ट, सम्बन्धविशिष्ट। २ एकत्रवासी, विभागान्तर मिलित।

संसेक (सं० पु०) सम्-सिच्-घञ्। सम्यक् रूपसे सेक, अच्छी तरह पानी आदिका छिड़काव।

संसेवन (सं० क्ली०) सम्-सेव ल्युट्। १ पूर्णतया सेवन, हाजिरीमें रहना, नौकरी बजाना। २ उपयोगमें लाना, व्यवहार करना, खूब इस्तेमाल करना।

संसेवा (सं० स्त्री०) सं-सेव-अङ्-टाप्। सम्यक् सेवा।

संसेवितृ (सं० त्रि०) सं-सेव-तृच्। अच्छी तरह सेवा करनेवाला।

संसेविन् (सं० त्रि०) सं-सेव-णिनि। संसेविता, अच्छी तरह सेवा करनेवाला।

संसेव्य (सं० त्रि०) सं-सेव-यत्। अच्छी तरह सेवा करने योग्य।

संस्कन्ध (सं० पु०) बालग्रहभेद। (भारत १।३४।५)

संस्करण (सं० क्ली०) १ ठीक करना, दुरुस्त करना। २ शुद्ध करना, सुधार करना। ३ परिष्कृत करना, सुन्दर या अच्छे रूपमें लाना। ४ आवृत्ति, पुस्तकोंकी एक बारकी छपाई। ५ द्विजातियोंके लिये विहित संस्कार करना।

संस्कर्त्ता (सं० त्रि०) सम्-कृ-तृच् सुडागमः। संस्कार करनेवाला।

संस्कर्त्तव्य (सं० त्रि०) सं-कृ-तव्य। संस्कारके योग्य।

संस्कार (सं० पु०) सं-कृ-घञ्। १ प्रतियत्न, दुरुस्ती, सुधार। २ अनुभव। ३ मानस कर्म, मनोवृत्ति या स्वभावका शोधन। ४ नैयायिकोंके मतसे गुणविशेष। यह संस्कार तीन प्रकारका है, वेगाख्य संस्कार, स्थितिस्थापकसंस्कार और भावनाख्य संस्कार। वेगाख्य संस्कार मूर्त्तिपदार्थ स्थायी है अर्थात् मूर्त्त पदार्थमें अवस्थितिशील एकमात्र मूर्त्तपदार्थमें ही यह संस्कार हुआ करता है। यह कहीं वेगजन्य और कहीं कर्मजन्य होता है। स्थितिस्थापक संस्कार पृथिवीका गुणविशेष है किसी किसीने नैयायिकोंके मतसे पृथिव्यादि चतुःपदार्थगुण है, यह अतीन्द्रिय और स्पन्दनकारक है। यह भावनाख्य संस्कार आत्माका अतीन्द्रिय गुण है। यह उपेक्षानात्मक निश्चय जन्य तथा स्मरण भी प्रत्यभिज्ञाका कारण है।

(भाषापरिच्छेद १५८।१५९)

५ वे कृत्य जो जन्मसे ले कर मरण काल तक द्विजातियोंके संबंधमें आवश्यक होते हैं। अशुद्ध द्रव्य संस्कार द्वारा विशुद्ध होते हैं, जिस क्रिया द्वारा अशुद्धि

दूर होती है, उसे संस्कार कहते हैं। शास्त्रमें लिखा है कि जीव दश प्रकारके संस्कार द्वारा विशुद्ध होते हैं। वे दश प्रकारके संस्कार ये हैं—१ विवाह, २ गर्भाधान, ३ पुंसवन, ४ सीमन्तोन्नयन, ५ जातकर्म, ६ निष्क्रमण ७ नामकरण, ८ अन्नप्राशन, ९ चूड़ाकरण, १० उपनयन। कोई कोई समावर्त्तनको भी संस्कार कहते हैं।

पुराणके मतसे देवगृहकी प्रतिष्ठा करनेमें जो फल है देवगृहका संस्कार करनेसे उससे आठ गुना अधिक फललाभ होता है, अतएव अपना या दूसरेका देवगृह होने पर भी विभवके अनुसार जीर्णसंस्कार करे, यही शास्त्रका विधान है।

६ शुद्धि, दोष या त्रुटिका निकाला जाना। ७ निर्मली करना, पवित्र करना। ८ भूषित करना, सजाना। ९ जीर्णोद्धार, मरम्मत। १० व्याकरणादिशुद्धि, व्याकरणादिशास्त्रमें विशेष व्युत्पत्ति, जैसे अमुकका संस्कार है। ११ प्रस्तुतकरण, तैयार करना। १२ परिष्कार, धो मांज कर साफ करना। १३ प्रीत, बदनकी सफाई। १४ शिक्षा, उपदेश, संगत आदिका मन पर पड़ा हुआ प्रभाव दिल पर जमा हुआ असर। १५ पूर्व जन्मकी वासना, पिछले जन्मकी बातोंका असर जो आत्माके साथ लगा रहता है। जैसे—विना पूर्व जन्मके संस्कारके विद्या नहीं आता। यह वैशेषिकके २४ गुणोंमेंसे एक है। १६ मृतककी क्रिया। १७ इन्द्रियोंके विषयोंके ग्रहणसे उत्पन्न मन पर जमा हुआ प्रभाव। १८ मन द्वारा कल्पित या आरोपित विषय, प्रत्यय। पञ्च स्कन्धोंमें चौथा स्कन्ध संस्कार है जो भवव धनका कारण कहा गया है। १९ साफ करने या मांजनेका आवा, पत्थर आदि, झांवाँ। २० धारणा, विश्वास।

संस्कारक (सं० त्रि०) सं-कृ-णिच्-ण्वुल्। १ संस्कार करनेवाला। २ शुद्ध करनेवाला।

संस्कारज (सं० त्रि०) संस्कारेण जात जन-ड। संस्कार द्वारा जात, संस्कार द्वारा निष्पन्न।

संस्कारनामन् (सं० क्ली०) नामकर्म।

संस्कारमय (सं० त्रि०) १ संस्कारविनिष्ट। २ संस्कृत।

संस्कारवत् (सं० त्रि०) संस्कार अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। संस्कारविशिष्ट संस्कारयुक्त।

संस्कारवर्जित (सं० त्रि०) संस्कारेण वर्जित। १ उपनयन संस्कारहीन। संस्कारके मध्य उपनयन संस्कार ही प्रधान है, इसलिये संस्कारहीन कहनेसे उपनयनसंस्कार रहित समझा जाता है व्रात्य। २ दशविध संस्कारहीन, जिसका दशों प्रकारका संस्कार नहीं हुआ हो।

संस्कारहीन (सं० पु०) संस्कारेण हीन। संस्कार रहित, व्रात्य, जिनका उपनयन संस्कार नहीं हुआ है। उपनयन संस्कारका निम्नोक्त समय बीत जाने पर उसे संस्कारहीन कहते हैं, ब्राह्मणका १६ वर्ष, क्षत्रियका २२ और वैश्योंका २४ वर्ष बीत जाने पर पीछे १५ वर्ष सावित्री पतित रहनेसे उसीको संस्कारहीन कहते हैं। यह काल बीत जाने पर व्रात्य प्रायश्चित्त करनेके बाद उसका संस्कारकार्य होगा।

संस्कारादिमत (सं० त्रि०) संस्कारादिविशिष्ट, संस्कार प्रभृति युक्त।

संस्कारिन् (सं० त्रि०) १ संस्कार करनेवाला। (पु०) २ सोलह मात्राओंका एक छन्द।

संस्कार्य (सं० त्रि०) सं-कृ-ण्यत्। १ संस्कारार्ह, संस्कार करने योग्य। २ जिसकी सफाई या सुधार करना हो। ३ धूपणार्ह अलङ्करणके उपयुक्त।

संस्कृत (सं० क्ली०) सं-कृ-क्त। १ लक्षणोपेत अर्थात् पाणिन्यादि कृत व्याकरणसूत्र द्वारा उपेत साधु शब्द, व्याकरण लक्षणाधीन साधनयुक्त शब्द। जो सब शब्द आदि व्याकरण सूत्रादि द्वारा साधुरूपमें निष्पन्न होता है, उसे संस्कृत कहते हैं, पवित्र भाषा, देववाणी।

संस्कृतभाषा देखो।

(त्रि०) २ कृत्रिम, करण द्वारा निर्वृत्त। यथा—'कृत्रिमो घटादि' (भरत) घटादि क्रिया द्वारा निर्वृत्त। ३ पक्व पकाया हुआ सिझाया हुआ। ४ संस्कार किया हुआ। ५ शुद्ध किया हुआ। ६ धो मांज कर साफ किया हुआ। ७ भूषित, सजाया हुआ आरास्ता। ८ मग्न पूत। ९ परिष्कृत, परिमार्जित। १० जिसका उपनयन आदि संस्कार हुआ हो।

संस्कृतत्व (सं० क्ली०) विशसनादि संस्कार।

संस्कृतभाषा—भारतमें प्रचलित एक सबसे प्राचीन भाषा। हम ऋक्-सूक्तमें प्राचीनतम संस्कृत भाषाका निदर्शन पाते हैं।

"संस्कृत" शब्दके प्रयोगसे ही स्वयं ऐसा मालूम होता है, कि इस देशमें बहुत पहले एक प्रकारकी भाषा प्रचलित थी। उस भाषाका संस्कार करके संस्कृत भाषा संगठित हुई। जिस नियमावली द्वारा उस आदिम प्राकृत भाषाका संस्कार होता है, वही नियमावली शब्दानुशासन या व्याकरण कहलाती है। सुप्राचीन वैदिक युगमें आर्यों ने म्लेच्छ भाषाके संमिश्रणसे अपनी अपनी भाषाको विशुद्ध भावसे रखनेकी चेष्टा की थी। उसी चेष्टाके फलसे वर्त्तमान संस्कृत भाषाकी उत्पत्ति हुई थी। महाभाष्यकारने लिखा है—

'तेऽसुरा हेलयो हेलय इति कुर्वन्तः पराबभूवुस्तस्माद् ब्राह्मणेन न म्लेच्छितवै नापभाषितवै म्लेच्छोऽह वा एष यदपशब्दः। म्लेच्छा मा भूमेत्यध्येयं व्याकरणम्।

यस्तु प्रयुङ्क्ते कुशलो विशेषे शब्दान् यथावद्व्यवहारकाले सोऽनन्तमाप्नोति जयं परत्र वाग्योगविद् दुष्यति चापशब्दैः।

योहि शब्दान् जानाति अपशब्दानप्यसौ जानाति। यथैव हि शब्दज्ञाने धर्म एवमपशब्दज्ञानेऽप्यधर्मः अथवा भूयानधर्मः प्राप्नोति भूयांसोऽपशब्दाः अल्पीयांसः शब्दाः। एकैकस्य शब्दस्य बहवोऽपभ्रंशाः, तद्यथा—गौरित्यस्य शब्दस्य गावीगोणी, गोता गोपोतलिकेत्येवमादयो बहवोऽपभ्रंशाः।

* * "प्रयाजाः सविभक्तिकाः कार्याः।" न चान्तरेण व्याकरणं प्रयाजाः सविभक्तिकाः शक्याः कर्त्तुम्। 'यो वा इमां पदशः स्वरशोऽक्षरशो वाचं विदधाति स आर्त्विजीनो भवति।"

इससे स्पष्ट प्रमाणित होता है, कि अपशब्दके परिहार और विभक्ति आदिके प्रयोजन द्वारा वैदिक कार्य शुद्धिके लिये आर्योंने व्याकरण संगठन कर भाषाका संस्कार कर दिया था। वही परिशोधित भाषा संस्कृत भाषा नामसे प्रसिद्ध हुई।

ऋङ्मन्त्र प्रकाशके पहले संस्कृत भाषा कैसी थी, प्राकृत ही कैसा था, उसका कोई भी निदर्शन नहीं है। ऋक् मन्त्रके प्रकाश-कालसे वैदिक संस्कृतका निदर्शन मिलता है, किन्तु उस समय प्राकृत भाषा कैसी थी, उसका निदर्शन नहीं मिलता।

अनन्तर वैदिक युगके तिरोधानके बाद लौकिक संस्कृत भाषाका प्रचार हुआ। वैदिक युगमें सच पूछिये तो सुप्राचीन भाषा 'संस्कृत' नामसे प्रचलित नहीं थी। महाभारतमें संस्कृत भाषाको ही 'ब्राह्मी वाक्' या 'ब्राह्मी भाषा' कहा है। यथा—"राजवत् रूपवेशौ ते ब्राह्मी वाचं विभर्षि च।" (१।८१।१३) वाल्मीकि रामायणमें 'संस्कृतं वदन्' इत्यादि उक्तियोंसे हमें प्रथम संस्कृत भाषाका प्रयोग तथा वैदिक और लौकिक संस्कृतका पार्थक्य मालूम होता है। पाणिनिके बहुत पहले लौकिक संस्कृत भाषाके अनेक व्याकरण बनाये गये। उन सब व्याकरणका परिचय व्याकरण शब्दमें दिया जा चुका है। संस्कृत भाषाकी प्रकृति व्याकरण या शब्दानुशासन शास्त्रमें आलोचित हुई है। बिना व्याकरणकी आलोचनासे संस्कृत भाषाकी संगठन प्रणाली नहीं जानी जा सकती। बहुत बढ़ जानेके भयसे यहां उसका कुछ भी उल्लेख नहीं किया गया।

व्याकरण देखो।

हम संस्कृत भाषामें लिखे हुए ग्रन्थादिकी पर्यालोचना द्वारा दो प्रकारसे संस्कृत देखते हैं—वैदिक और लौकिक। ऋक्, यजुः, साम और अथर्वसंहिता, ब्राह्मण ग्रन्थ और उपनिषद् वैदिक संस्कृत भाषामें लिखे गये हैं। परवर्त्ती कालके सूत्र ग्रन्थ, संहिता ग्रन्थ, इतिहास, पुराण और काव्यादि ग्रन्थ लौकिक संस्कृत भाषामें विरचित हैं। वैदिक संस्कृत भाषा व्याकरणको नियमाधीन होने पर भी वैसा निखार प्राप्त नहीं होता। परवर्त्ती कालमें व्याकरण जैसा पूर्णाङ्ग हो कर परिपुष्ट हो गया था तथा लौकिक साहित्यमें व्याकरणका नियमबन्धन जैसा सुदृढ़ भावसे प्रतिभात हुआ था, वैदिक भाषा व्याकरणके नियमोंसे वैसी आबद्ध नहीं है। लौकिक संस्कृत भाषाकी उन्नतिके साथ साथ प्राचीन वैदिक शब्दोंमें भी विभक्तियोंका बहुत हेर फेर हुआ। लौकिक संस्कृतमें वैदिक पदोंका बिलकुल व्यवहार नहीं है तथा विभक्तिका

भी बदले हैं रूपान्तर हुआ है। शब्दोंमें बहुतसे शब्द भिन्न अर्थोंमें व्यवहृत होते हैं, इस परिवर्त्तनके फलसे वैदिक संस्कृत भाषा तथा लौकिक संस्कृत भाषामें ऐसा विशाल परिवर्त्तन हुआ, कि लौकिक संस्कृत भाषामें विशेष पाण्डित्य लाभ करने पर भी वैदिक संस्कृत भाषा एक प्रकारसे अबोध्य है। लौकिक संस्कृत भाषाविद् वैदिक संस्कृत भाषाका प्रायः कुछ भी समझ नहीं सकते तथा वैदिक संस्कृत समझने या सीखनेके उद्देश्से उस विषयमें पारदर्शी एक शिक्षककी जरूरत पड़ जाती है। बिना भाष्यके वैदिक शब्दका अर्थबोध कठिन है। उसमें विभक्तिके सम्बन्धमें भी यथेष्ट परिवर्त्तन दिखाई देता है।

वैदिक संस्कृतमें अनेक अपशब्दों का संमिश्रण था। फलतः वैदिक संस्कृत भाषामें शब्दकी अधिक बहुलता थी। महाभाष्यकार भगवान् पतञ्जलिने लिखा है—

"एवं हि श्रूयते बृहस्पतिरिन्द्राय दिव्यं वर्षसहस्रं प्रतिपदोक्तानां शब्दानां शब्दपारायणं प्रोवाच—नान्तं जगाम। बृहस्पतिश्च प्रवक्ता, इन्द्रश्चाध्येता, दिव्यं वर्षसहस्रं अध्ययनकालो नान्तञ्च जगाम।'

अर्थात्—ऐसा सुना जाता है, कि बृहस्पतिने इन्द्रको दिव्य सहस्रवर्ष तक प्रतिपदोक्त शब्दों का शब्दपारायण कहा था, किन्तु फिर भी उन्हें शब्दपारायणका अन्त न मिला। बृहस्पति प्रवक्ता और इन्द्र अध्येता थे तथा देवपरिमाणका एक हजार वर्ष अध्ययन काल था तथापि उन्होंने शब्दपारायणका अन्त नहीं पाया।

संस्कृत भाषाके शब्दपारायणकी इस प्रकार बहुलताके कारण वैयाकरणोंने अनेक शब्दोंका परित्याग कर तथा अनेक प्रकारके पदप्रयोगका परिहार कर प्राचीन भाषाकी लाघवता साधन की थी। लाघवता व्यापार भी भाषा संस्कारके अन्तर्गत है। अतएव परवर्त्ती वैयाकरणोंने यद्यपि व्याकरणके अनेक नियमोंसे भाषाको परिसीमित, पूर्णाङ्ग और संस्कृत कर लिया था, तथापि इस कार्यके निष्पादनके लिये वे अनेक शब्दों और पदादिको छोड़नेमें बाध्य हुए थे।

जिस लौकिक संस्कृत भाषामें हम असंख्य ग्रन्थ देखते हैं, वह संस्कृतभाषा किसी भी समय जनसाधारण या पण्डितोंके मध्य वाक्यालापमें व्यवहृत होती थी या नहीं यह भी आलोचनाका विषय है। प्राचीन कालमें संस्कृत भाषामें जो सब नाटक लिखे गये थे, उन सब नाटकोंमें भी स्त्रियोंके मुखसे कथित प्राकृत भाषाका ही कवियोंने व्यवहार किया है। इससे जाना जाता है, कि अशिक्षित लोग कभी संस्कृत भाषामें वाक्यालाप नहीं करते थे। संस्कृत भाषा शिक्षित पण्डितोंकी भाषा था। जनसाधारण देशभेदसे भिन्न भिन्न प्राकृत भाषामें बातचीत करते थे। इस कारण प्राकृत भाषा भी कई प्रकारकी हो गई है।

भारतवर्षमें कई जगह पालि भाषाकी भाषाका प्रचार था। शाक्यसिंहके आविर्भावके बहुत पहलेसे पालि भाषा परिपुष्ट थी तथा भारतवर्षके अनेक स्थानोंमें ही मातृभाषारूपमें प्रचलित हुई। शाक्यसिंहके समयमें भी इस भाषाका यथेष्ट प्रचार था। शाक्यसिंहने अपने शिष्योंको संस्कृत भाषाके बदले देशी लोकसमाजमें प्रचलित मातृभाषामें उपदेश देनेकी अनुमति दी थी। बौद्ध प्रभावसे संस्कृत भाषाओंका गौरव बहुत कुछ घट गया। अशोकके समय भी संस्कृत भाषाका गौरव भारतमें सर्वत्र दिखाई नहीं देता था। बौद्धसम्राट अशोकके राज्यकालमें भारतमें सभी जगह उनका अनुशासन प्रचलित हुआ। वे सब अनुशासन भारतके अनेक स्थानोंमें बहुतसे पर्वतों तथा प्रस्तर स्तम्भ पर आज भी खोदे हुए हैं। अशोकने संस्कृत भाषाके बदलेमें स्थानीय बोलचालकी भाषामें वे सब आदेश लिपिबद्ध करनेकी अनुमति दी। उत्तर-पश्चिम प्रदेशमें काबुल, दक्षिणमें वलभी, यहां तक कि पूर्वमें उड़ीसा पर्यन्त भूखण्डमें महाराज अशोकको जो सब खोदित लिपि दृष्टिगोचर होती है, वे सभी आदेशलिपि वहांकी भाषामें उत्कीर्ण हैं। वे सब भाषा संस्कृतसे विभिन्न हैं। फलतः बौद्ध प्रभावसे संस्कृत भाषाका गौरव ह्रास हो गया था इसमें सन्देह नहीं।

कुल्यपाग नामक एक ग्रन्थ पढ़नेसे जाना जाता है, कि शाक्यसिंह संस्कृत भाषाके बदले जनसाधारणकी कथित भाषाका ही अधिक आदर करते थे। उक्त ग्रन्थमें लिखा है, कि शाक्यसिंहके कुछ ब्राह्मण शिष्य शाक्य

सिंहके उपदेशोंका संस्कृत भाषामें अनुवाद कर उनके गौरवकी रक्षा करनेमें प्रयासी हुए थे। किन्तु शाक्यसिंहने इस पर बाधा डाल कर कहा, कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी मातृभाषामें मेरा उपदेश सीखेगा। शाक्यसिंह अपनी मागधी भाषामें बातचीत करते थे।

इससे मालूम होता है, कि शाक्यसिंहके पहले इस देशमें संस्कृत भाषाका यथेष्ट प्रचार था। अधिकांश मनुष्य संस्कृत भाषा लिखते थे, संस्कृत भाषामें बोल चाल करते थे, पत्रव्यवहारादि भी संस्कृत भाषामें हो चलता था। शाक्यसिंहके आविर्भावके पीछे भी भारतवर्षमें संस्कृत भाषाका यथेष्ट प्रचार था। परन्तु उनके प्रभावसे उनके शिष्यानुशिष्योंके मध्य संस्कृत शास्त्रके पाठ और संस्कृत भाषामें ग्रन्थ लिखनेका प्रचार बहुत ह्रास हो गया। फिर बौद्धाचार्यगण उस समय संस्कृत व्याकरण और कोषादि ग्रन्थ लिख कर संस्कृतभाषाके सम्मानकी रक्षा कर गये हैं। वे सब ग्रन्थ संस्कृत पाठार्थियोंके तत्त्वज्ञान लाभके परम सहायरूपमें गिने जाते हैं। बौद्धयुगमें भी राजकीय कागजात तथा शिलालिपि आदि संस्कृत भाषामें लिखी जाती थी। शाक्यसिंह स्वयं संस्कृत भाषामें अपना उपदेश प्रचार नहीं करने पर भी बौद्धगण संस्कृत भाषाकी यथेष्ट आलोचना करते थे। संस्कृतभाषाविद् प्रतिकूलवादी ब्राह्मणपण्डितोंके साथ संस्कृत भाषामें विचार तथा अपने धर्ममतका संस्थापन और हिन्दू दार्शनिक सिद्धान्तादिका खण्डन करनेके लिये संस्कृत भाषामें ग्रन्थरचना उनके संस्कृत शास्त्रपाठका अकाट्य प्रमाण है।

जैनों द्वारा भी संस्कृत भाषाकी यथेष्ट आलोचना हुई थी। जैनोंमें बहुतेरे पण्डितोंका आविर्भाव हुआ। वे सब पण्डित यथारीति संस्कृत शास्त्रका अध्ययन करते थे तथा बौद्ध और जैन लोग पाणिनीय व्याकरणकी प्रणाली अवलम्बन कर विशुद्ध साधुसंस्कृत भाषामें ग्रन्थकी रचना कर गये हैं। वे लोग मातृभाषाकी तरह विशुद्ध संस्कृत भाषामें बोलचाल भी करते थे।

यद्यपि हिन्दूसमाजको बड़ी बड़ी मुसीबतोंका सामना करना पड़ा है, यद्यपि हिन्दूधर्मसे अनेक अहिन्दू सम्प्रदायकी उत्पत्ति हुई है, यद्यपि वैदेशिक राजाओंके शासन-प्रभावसे हिन्दूसमाजमें बहुत परिवर्त्तन हुआ है, तथापि आज भी संस्कृत भाषाका गौरव अटूट और अटल है। सारे भारतवर्षमें चिर गौरवार्ह संस्कृत भाषा आज भी गौरवान्वित है।

संस्कृति (सं० स्त्री०) सं-कृ-क्तिन्। १ शुद्धि, सफाई। २ संस्कार, सुधार, परिष्कार। ३ सजावट, आराइश। ४ सभ्यता, रहन सहन आदिकी रुचि, शाइस्तगी। ५ २४ वर्णके वृत्तोंकी संज्ञा।

संक्रिया (सं० स्त्री०) सं कृ (कृञः श च। पा ३।३।१००) इति श। १ शवदाहादि क्रिया, अन्त्येष्टि क्रिया। (त्रिका०) २ संस्कार। ३ शोधन, परिष्कार करण।

संस्कृत्रिम (सं० त्रि०) संस्कारेण निवृत्तिः सं-कृ-त्रिमक्। संस्कार द्वारा निर्वृत्त, संस्कृत।

संस्खलन (सं० क्ली०) १ च्युत होना, गिरना। २ भूल करना, चूकना।

संस्खलित (सं० त्रि०) १ च्युत, गिरा हुआ। २ भूला हुआ, चूका हुआ। (क्ली०) ३ भूल, चूक।

संस्तब्ध (सं० त्रि०) १ एक बारगी रुका या ठहरा हुआ। २ निश्चेष्ट, भौंचक्का, ठक। ३ सहारा दिया हुआ, जिसे टेक या सहारा दिया हो।

संस्तम्भ (सं० पु०) संस्तम्भ-घञ्। १ गतिका सहसा रोध, एक बारगी रुकावट। २ निश्चेष्टता, चेष्टाका अभाव, ठक हो जाना, हाथ पैर रुक जाना। ३ शरीरकी गतिका मारा जाना, लकवा। ४ दृढ़ता, धीरता। ५ आधार, टेक, सहारा। ६ हठ, टेक, जिद।

संस्तम्भन (सं० क्ली०) संस्तम्भ-ल्युट्। १ गतिका सहारा रुकना या रोकना, एकबारगी ठहर जाना। २ निश्चेष्ट करना या होना, ठक कर देना या हो जाना। ३ सहारा देना, टेकना। ४ बंद करना।

संस्तम्भनीय (सं० त्रि०) सं-स्तम्भ-अनीयर्। संस्तम्भनार्ह, संस्तम्भनके योग्य।

संस्तम्भयितृ (सं० त्रि०) सं-स्तम्भ-णिच् तृच्। संस्तम्भकारक, निवारक। (ऋक् ६।६।१)

संस्तम्भयिषु (सं० त्रि०) सं-स्तम्भयितुमिच्छुः, संस्तम्भ

णिच् सन् उ। संस्तम्भ करनेमें इच्छुक, निवारण करनेमें अभिलाषी।

संस्तर (सं० पु०) सं स्तृ अच्। १ शय्या, बिस्तर। २ तृणशय्या, घास फूस फैला कर बनाया हुआ बिस्तर। ३ घास फूससे बनाया हुआ आच्छादन। ४ तह पहल। (त्रि०) ५ छितराया हुआ।

संस्तरण (सं० क्ली०) सं स्तृ ल्युट्। १ संस्तर, शय्या, बिस्तर। २ बिछौना फैलाना। ३ छितराना, बिखेरना। ५ तह चढ़ाना, परत फैलाना।

संस्तव (सं० पु०) सं स्तु अप्। १ परिचय, जान पहचान। (किरात ४।२५) २ प्रशंसा, स्तुति तारीफ। ३ उल्लेख, जिक्र।

संस्तवन (सं० क्ली०) सं स्तु-ल्युट्। १ यश गाना, कीर्ति बखानना। २ प्रशंसा करना, स्तुति करना।

संस्तवान (सं० त्रि०) संस्तवातीति सं स्तु (सम्यानच स्तुव। उण् २।८६) इति आनच्। १ स्तवका। २ वाग्मी। ३ उद्गाता। ४ इन्द्र।

संस्तार (सं० पु०) सं स्तृ घञ्। १ शय्या, बिस्तर। २ तह, पहल। ३ एक यज्ञका नाम।

संस्तारपंक्ति (सं० स्त्री०) वैदिक छन्दोभेद।

संस्ताव (सं० पु०) समेत्य स्तुवन्ति यस्मिन् देशे छन्दोगा इति सं स्तु (यज्ञे समि स्तुवः। पा ३।३।३१) इति घञ्। १ यज्ञमें स्तुति करनेवाले ब्राह्मणोंका अवस्थान भूमि। २ परिचय, जान पहचान। ३ स्तुति, प्रशंसा।

संस्तिर (सं० पु०) सं स्तृ क। आच्छादन। (ऋक् १।१४०।७)

संस्तीर्ण (सं० त्रि०) १ फैलाया हुआ। २ बिखेरा हुआ, फैलाया हुआ। ३ छितराया हुआ।

संस्तुत (सं० त्रि०) सं स्तु क्त। १ परिचित, ज्ञात। २ प्रशंसित जिसकी खूब स्तुति की गई हो। ३ एक साथ गिना हुआ, गिनतीमें शामिल किया हुआ।

संस्तुति (सं० स्त्री०) सं स्तु क्तिन्। सम्यक् स्तुति, खूब प्रशंसा, गहरी तारीफ।

संस्तोभ (सं० पु०) सं स्तुभ घञ्। १ सम्यक् रोग। (क्ली०) २ साममेद।

संस्त्याय (सं० पु०) सं स्त्यै घञ् आतो युक्। १ संघात, समूह। २ निविड़ सन्निवेश। ३ संस्थान। ४ विस्तार, फैलाव। (मेदिनी) ५ गृह, मकान। (हेम) ६ आलाप।

संस्थ (सं० पु०) संतिष्ठते स्वपरराष्ट्रेषु इति सं स्था क। १ चर, दूत। २ निजराष्ट्रक, स्वराज्यवासी। (त्रि०) ३ अवस्थित। ४ मृत, मरा हुआ।

संस्था (सं० स्त्री०) संतिष्ठतेऽनयेति सं स्था अङ्। १ ठहरनेकी क्रिया या भाव, ठहराव, स्थिति। २ व्यवस्था बंधा, नियम। (मनु १।२१) ३ अभिव्यक्ति प्रकाश प्रकट होनेकी क्रिया या भाव। ४ आकृति, रूप, आकार। ५ गुण, सिफत। ६ ठिकाने लगाना। ७ अन्त, समाप्ति, खातमा। ८ मृत्यु, जीवनका अन्त। ९ नाश। १० प्रलय चतुष्टय, नित्य, नैमित्तिक, प्राकृतिक और आत्यन्तिक इन चार प्रकारके प्रलयको संस्था कहते हैं। ११ यज्ञका मुख्य अंग। १२ हिंसा, वध। १३ गुप्तचरों या भेदियों का दल। इसके अन्तर्गत पांच प्रकारके दूत कहे गये हैं—वणिक्, भिक्षु, छात्र, लिंगी (साम्प्रदायी) और कृषक। १४ व्यवसाय पेशा। १५ जत्था, गरोह। १६ समाज, मंडल, सभा। १७ राजाज्ञा, फरमान। १८ सादृश्य, समानता। (मेदिनी)

संस्थात्व (सं० क्ली०) संस्थाया भाव त्व। संस्था का भाव या धर्म।

संस्थान (सं० क्ली०) सं स्था-ल्युट्। १ ठहराव, स्थिति। २ खड़ा रहना, डटा रहना, जमा रहना। ३ सन्निवेश, विन्यास, बैठाना। (मनु ८।३७१) ४ अस्तित्व, जीवन। ५ सम्यक् पालन, पूरा अनुसरण, पूरी पैरवी। ६ ठहरने या रहनेकी जगह, डेरा, घर। ७ जनपद, बस्ती। ८ सार्वजनिक स्थान, सर्वसाधारणको इकट्ठे होनेकी जगह। ९ आकृति रूप, शकल। १० सौन्दर्य, कान्ति। ११ प्रकृति, स्वभाव। १२ रोगका लक्षण। १३ अवस्था, दशा, हालत। १४ समष्टि, योग जोड़। १५ समाप्ति, अन्त, खातमा। १६ मृत्यु नाश। (मेदिनी) १७ निर्माण, रचना, बनावट। १८ सामीप्य, निकटता। १९ चतुष्पथ, चौराहा। (अमर) २० प्रबन्ध, आयोजन, डौल। २१ ढांचा, चौखटा। २२ सांचा, ढांचा ढाल। २३ चिह्न।

संस्थानवत् (सं० त्रि०) संस्थान अस्त्यर्थे मतुप मस्य व। संस्थानविशिष्ट, संस्थानयुक्त।

संस्थापक (सं० त्रि०) सं स्थापयति सं स्था णिच

ण्वुल्। १ स्थापित करनेवाला, खड़ा करनेवाला, उठाने वाला। २ प्रवर्त्तक, कोई नई बात चलानेवाला। ३ कोई सभा, समाज या सर्वसाधारणके उपयोगी कार्य खोलनेवाला। ४ रूप या आकार देनेवाला। ५ चित्र, खिलौने आदि बनानेवाला।

संस्थापन (सं० क्ली०) सं-स्था-णिच्-ल्युट्। १ निर्मित करना, खड़ा करना, उठाना। २ स्थिर करना, जमाना, बैठाना। ३ कोई नई बात चलाना, नया काम जारी करना। ४ रूप या आकार देना। भगवान्ने गीतामें कहा है, कि जभी धर्मकी ग्लानि तथा अधर्मका अभ्युदय होता है, तभी भगवान् साधुओंके परित्राण, दुष्कृतके विनाश तथा धर्मसंस्थापनके लिये अवतीर्ण होते हैं।

संस्थापनीय (सं० त्रि०) संस्थापनके योग्य।

संस्थापित (सं० त्रि०) सं-स्था णिच्-क्त। १ निर्मित, खड़ा किया हुआ, उठाया हुआ। २ प्रतिष्ठित, बैठाया हुआ। ३ जारी किया हुआ, चलाया हुआ। ४ संचित, बटोरा हुआ। ५ ढेर लगाया हुआ।

संस्थाप्य (सं० त्रि०) सं-स्था णिच्-यत्। १ संस्थापनके योग्य। २ जिसका संस्थापन करना हो।

संस्थावन् (सं० त्रि०) समानरूपसे स्थितियुक्त।

संस्थावयववत् (सं० त्रि०) संस्थावयव अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। संस्था और अवयवविशिष्ट, संस्था अर्थात् रचना और अवयवयुक्त। (भाग० २।८।८)

संस्थास्नुचारिन् (सं० त्रि०) स्थितियुक्त और चलनशील। (भारत ७ पर्व नीलकण्ठ)

संस्थित (सं० त्रि०) संस्था-क्त। १ खड़ा या उठाया हुआ। २ ठहरा हुआ, टिका हुआ। ३ दृढ़तासे अड़ा हुआ, जमा हुआ। ४ निर्मित, रूपमें लाया हुआ। ५ समाप्त, ठिकाने लगाया हुआ, खतम। ६ मृत, मरा हुआ। ७ ढेर लगाया हुआ, बटोरा हुआ।

संस्थितयजुस् (सं० क्ली०) यज्ञ समाप्तिके पहले की जानेवाली सोमक्रिया। (ऐतरेयब्रा० १।११)

संस्थितहोम (सं० पु०) यज्ञान्तका पूर्ववर्त्ती होम।

संस्थिति (सं० स्त्री०) सं-स्था-क्तिन्। १ खड़े होनेकी क्रिया या भाव। २ ठहराव, जमाव। ३ बैठनेकी क्रिया या भाव। ४ एक अवस्थामें रहनेका भाव। ५ ज्योंका त्यों रहनेका भाव। ६ अस्तित्व, हस्ती। ७ रूप आकृति, सूरत। ८ अवस्था, तरकीब। ९ गुण, सिफत। १० प्रकृति, स्वभाव। ११ समाप्ति, खातमा। १२ मृत्यु, मरण। १३ कोष्ठबद्धता, कब्जियत। १४ राशि, ढेर।

संस्पर्द्धा (सं० स्त्री०) १ किसीके बराबर होनेकी प्रबल इच्छा, बराबरकी चाह। २ ईर्ष्या, डाह।

संस्पर्द्धिन (सं० त्रि०) १ बराबरीकी इच्छा करनेवाला। २ ईर्ष्यालु, डाही।

संस्पर्श (सं० पु०) सं-स्पृश-घञ्। १ अच्छी तरह छू जानेका भाव, एक अंगका दूसरेसे लगना। धर्मशास्त्रोंमें कुछ लोगोंका संस्पर्श होने पर द्विजातियोंके लिये प्रायश्चित्तका विधान है। यह संस्पर्शदोष शरीरके छू जाने, आलाप, निश्वत, सहभोजन तथा एक शय्या पर बैठने या सोनेसे कहा गया है।

२ घनिष्ठ सम्बन्ध, गहरा लगाव। ३ मिलाप, मेल। ४ मिश्रण, मिलावट। ५ थोड़ा-सा आविर्भाव, कुछ प्रभाव। ६ इन्द्रियोंका विषय ग्रहण।

संस्पर्शन (सं० क्ली०) सं-स्पृश्-ल्युट्। संस्पर्श अंगसे अंग लगना, छूना। २ मिलना, सटना।

संस्पर्शा (सं० स्त्री०) सं स्पृश्यतेऽसौ इति सं-स्पृश कर्मणि घञ् टाप्। गन्धद्रव्यविशेष, जनी नामक गन्ध द्रव्य। (वैद्य)

संस्पर्शिन् (सं० त्रि०) सं-स्पृश् णिनि। संस्पर्श कारक, स्पर्श करनेवाला, छूनेवाला।

संस्पृश् (सं० त्रि०) संस्पृशतीति स्पृश क्विप्। संस्पर्शी, छूनेवाला।

संस्पृष्ट (सं० त्रि०) सं स्पृश् क्त। १ छूआ हुआ। २ सटा हुआ, लगा हुआ। ३ परस्पर संबद्ध, जुड़ा हुआ। ४ पास ही पड़ता हुआ, जो निकट ही हो। ५ लेशमात्र प्रभावित, जिस पर बहुत कम असर पड़ा हो।

संस्फाल (सं० पु०) सम्यक् स्फालः स्फुरणं यस्य। मेष, भेड़।

संस्फुट (सं० त्रि०) संस्फुटतीति सं-स्फुट इगुपधेति क। १ विकसित, खूब खिला हुआ। २ प्रस्फुटित, खूब फूटा या खुल पड़ा हुआ।

संस्फेट (सं० पु०) संस्फिट अनादरे अधिकरणे घञ्। युद्ध, लड़ाई।

संस्फोट (सं० पु०) संस्फोटयत्यनेनेति सम्-स्फुट मेदने घञ्। युद्ध, लड़ाई।

संस्मरण (सं० क्ली०) सम्-स्मृ ल्युट्। १ पूर्ण स्मरण, खूब याद, अच्छी तरह नाम लेना या सुमिरना। २ संस्कार जन्य ज्ञान।

संस्मरणीय (सं० त्रि०) सम्-स्मृ अनीयर्। १ पूर्ण स्मरण करने योग्य। २ नाम जपने योग्य। ३ महत्त्वका भूलनेवाला, जिसकी याद बराबर बनी रहे। ४ अतीत, जिसका स्मरण मात्र रह गया हो।

संस्मारक (सं० त्रि०) संस्मारयति सम्-स्मृ णिच् ल्युट्। स्मरण करानेवाला, याद दिलानेवाला।

संस्मारण (सं० क्ली०) सम्-स्मृ णिच् ल्युट्। १ स्मरण कराना याद दिलाना। २ गिनती करना गिनना।

संस्मारित (सं० त्रि०) १ स्मरण कराया हुआ। २ ध्यानमें लाया हुआ, याद किया हुआ।

संस्मृत (सं० त्रि०) स्मरण किया हुआ, याद किया हुआ।

संस्मृति (सं० स्त्री०) सम्-स्मृ क्तिन्। पूर्ण स्मृति, पूरी याद।

संस्यन्दिन् (सं० त्रि०) सम्-स्यन्द् णिनि। सम्-स्यन्द युक्त सम्यक् गमनशील।

संस्रव (सं० पु०) सम्-स्रु अप्। १ एक साथ बहना। २ पूरा बहाव। ३ बहती हुई वस्तु। ४ बहता हुआ जल। ५ एक प्रकारका पिण्डदान। ६ किसी वस्तुका नीचा हुआ, मल उच्छिष्ट हुआ पिण्ड। ७ रसना, चूना झरना।

संस्रवण (सं० क्ली०) सम्-स्रु ल्युट्। १ प्रवाहित होना, बहना। २ चूना झरना, गिरना।

संस्रवभाग (सं० पु०) यज्ञमें प्रदत्त हविर्भागविशिष्ट, यज्ञमें जो सब हवि प्रदत्त हुई है, जिन सब देवताका उस हविमें भाग है। 'संस्रवभागा स्थेषा बृहन्तः।' (शुक्ल यजु २।१८) 'संस्रवभागा विलीनमाज्य संस्रवः स एव भागो येषा।' (महीधर)

संस्राव (सं० त्रि०) १ मायोजन करनेवाला। २ मिलाने जुलानेवाला। ३ रचनावाला बनानेवाला। ४ भिड़ने वाला, लड़ाईमें जुटनेवाला।

संस्राव (सं० पु०) सम्-स्रु घञ् (३।३।१४१) १ प्रवाह, बहाव। २ भलीभांति इकट्ठा होना। ३ किसी द्रव पदार्थके नीचे जमा हुआ पदार्थ, तलछट।

संस्रावण (सं० क्ली०) १ प्रवाहित करना, बहाना। २ प्रवाहित होना, बहना। ३ झरना चूना, टपकना।

संस्रावभाग (सं० पु०) संस्रावः भागो यस्य। संस्रवभाग देखो।

संस्रावित (सं० त्रि०) १ बहाया हुआ। २ बहा हुआ। ३ झरा हुआ। ४ टपका हुआ।

संस्राव्य (सं० त्रि०) १ बहाने या टपकाने योग्य। २ जिसे बहाना या टपकाना हो।

संस्वेद (सं० पु०) सम्-स्विद् घञ्। स्वेद, पसीना।

संस्वेदज (सं० त्रि०) पसीनेसे उत्पन्न।

संस्वेदयु (सं० त्रि०) घर्मशील, जिसे खूब पसीना चलता हो। (पा ३।२।१७)

संस्वेदिन् (सं० त्रि०) सम्-स्विद् णिनि। संस्वेदविशिष्ट, पसीनावाला। (सुश्रुत)

संहत् (सं० स्त्री०) सम्-हन् क्विप्। पुञ्जीभूत।

संहत (सं० त्रि०) सम्-हन् क्त। १ सम्पूर्ण सम्बद्ध, खूब मिला हुआ जुटा या सटा हुआ। २ एक हुआ एकमें मिला हुआ। ३ संयुक्त सहित। ४ जो मिल कर ठोस हो गया हो कड़ा, सख्त। ५ जो विरल या झोना न हो, गठा हुआ, घना। ६ दृढ़ाङ्ग मजबूत। ७ एकत्र इकट्ठा। ८ मिश्रित, मिला हुआ। ९ आहत, घायल चोट खाया हुआ। (पु०) १० नृत्यमें एक प्रकारकी मुद्रा।

संहतकुलीन (सं० त्रि०) सम्मिलित परिवारका।

संहतजानु (सं० त्रि०) संहत जानुनी यस्य। लग्न जानुक, जिसने दोनों घुटने सटाये हों।

संहतजानुक (सं० त्रि०) संहतजानुरेव स्वार्थे कन्। लग्न जानुक, जिसने दोनों घुटने सटाये हों। पर्याय—संज्ञु, संहतजानु संज्ञ। (भरत)

संहतता (सं० स्त्री०) संहतस्य भाव तल् टाप्। संहतत्व, संहतका भाव या धर्म।

संहतपत्रिका (सं० स्त्री०) शतपुष्पा, सोया।

संहतपुच्छि (सं० अव्य०) संयुक्त पुच्छविशिष्ट, जिस की पूंछ मिली हो।

संहतल (सं० पु०) मिलित पाणिद्वय, दोनों हाथ मिले हुए। (भरत)

संहनाश्व (सं० पु०) पवमान नामक अग्नि।

संहनान्न (सं० त्रि०) दृढ़ाङ्ग, हृष्टपुष्ट, मजबूत।

संहताञ्जलि (सं० त्रि०) कर-बद्ध जो हाथ जोड़े हो।

संहतापन (सं० पु०) नागभेद।

संहताश्व (सं० पु०) निकुम्भ राजाके पुत्रका नाम।

संहति (सं० स्त्री०) सं-हन क्तिन्। १ समूह झुंड। २ मेल, मिलाव। ३ जुटाव, इकट्ठा होनेका भाव। ४ राशि, ढेर। ५ निविड़ संयोग, परस्पर मिल कर ठोस होनेका भाव, ठोसपन, घनत्व। ६ सन्धि, जोड़। ७ सम्यक् वध, अच्छी तरह मार डालना। ८ पारमाणविक आकर्षणभेद, परमाणुओंका परस्पर मेल। जिस गुणके रहनेसे स्वजातीय परमाणु एक दूसरेको आकर्षण कर एकत्र हो जाते हैं, उसका नाम संहति है

वैज्ञानिकोंके मतसे ससक्ति, संहति और सम्बन्ध के भेदसे आणविक आकर्षण तीन प्रकारका है। जगत्‌की सभी जड़ वस्तु अत्यन्त सूक्ष्म अणुओंकी समष्टि है। अतएव जिस शक्ति द्वारा जड़ वस्तुके सभी अणु एकत्र हो जाते हैं, उसीको संहति कहते हैं। संहति अर्थात् इस शक्तिका पराक्रम अधिक होनेसे सङ्घात अर्थात् कठिन भावकी उत्पत्ति होती है। कठिनकी अपेक्षा तरलावस्थामें संहतिका प्रभाव बहुत थोड़ा है तथा वाय वीय अवस्थामें उसका कोई प्रभाव ही नहीं दिखाई देता। उष्णताकी जितनी अधिकता होती है, उसका प्रभाव उतना ही घटता जाता है। इस कारण उत्तप्त होनेसे कठिन द्रव्य द्रव और द्रव द्रव्य वाष्प हो जाता है। बर्फ, जल और जलीय पदार्थका भिन्नरूप मात्र है। जब संहतिकी अधिकता होती है, तब जल जम कर बर्फ होता है, फिर जब उष्णताकी वृद्धि होती है, तब संहतिका बल घट जाता है, पीछे वही वाष्पाकार धारण करता है।

परमाणुओंका भिन्न भिन्न प्रकार होनेके कारण संहतिका अनेक तारतम्य हुआ करता है तथा उससे द्रव्यकी भारसहिष्णुता, कठोरता, आघातसहन आदि गुणोंमें भी हेरफेर होता है। जहां तरल द्रव्य अधिक मात्रामें रहता है, वहां माध्याकर्षणका ही अधिक प्रभाव दिखाई देता है। इस कारण वहां तरल द्रव्यका कोई निर्दिष्ट आकार दिखाई नहीं देता, किन्तु जहां कोई तरल वस्तु बहुत थोड़ी मात्रामें रहती है, वहां संहतिके बलसे वह गोल हो जाता है।

संहतिपुष्पिका (सं० स्त्री०) शतपुष्पा, सोआ।

संहत्यकारिन् (सं० त्रि०) एकत्रकारी, मिल कर काम करनेवाला।

संहनन (सं० क्ली०) संहन्यते इति सं-हन ल्युट्। १ शरीर, देह। २ शरीरका मर्दन, मालिश। ३ वध, मार डालना। ४ संहत करना, एकमें मिलाना, जोड़ना। ५ खूब मिला कर घना या ठोस करना। ६ संयोग, मेल, मिलावट। ७ दृढ़ता, कड़ाई। ८ पुष्टता, बलिष्ठता, मजबूती। ९ सामञ्जस्य, अनुकूलता, मुआफिकत। १० कवच, बकतर। (त्रि०) ११ कठिन, कड़ा। (भागवत ५।६।१०)

संहननाङ्ग (सं० त्रि०) संहन्यन्ते निविडीभवन्ति अङ्गानि यस्य। कठिनावयव, कठिन अवयवविशिष्ट।

संहनु (सं० त्रि०) संहतहनुयुक्त। (अथर्व ५।२८।१३)

संहन्तृ (सं० त्रि०) सं-हन तृच्। संहारकर्त्ता, वध करनेवाला, मारनेवाला।

संहर (सं० पु०) १ एक असुरका नाम। (हरिवंश) २ पवमान नामक अग्नि।

संहरण (सं० क्ली०) सं-हृ-ल्युट्। १ संहार करना, ध्वंस करना। २ संग्रह करना, बटोरना। ३ एक साथ बांधना, गूथना। ४ प्रलय। ५ जबरदस्ती ले लेना, छीनना।

संहराख्य (सं० पु०) संहर इति आख्या यस्य। पावक।

संहर्त्तृ (सं० त्रि०) १ इकट्ठा करनेवाला, बटोरने या समेटनेवाला। २ नाश करनेवाला। ३ वध करनेवाला।

संहर्ष (सं० पु०) सं-हृष घञ्। १ पुलक, उमंगसे रोओंका खड़ा होना। २ भयसे रोंगटे खड़े होना। ३ स्पर्द्धा, चढ़ा ऊपरी, एक दूसरेसे बढ़नेकी चाह। ४ ईर्ष्या, डाह। ५ मर्दन, शरीरकी मालिश। ६ संघर्ष, रगड़।

संहर्षण (सं० क्ली०) सं-हृष-ल्युट्। १ पुलकित होना। २ स्पर्द्धा, लाग डांट, चढ़ा ऊपरी। (त्रि०) ३ पुलकित, करनेवाला, आनन्दसे प्रफुल्लित करनेवाला।

संहर्षा (सं० स्त्री०) पर्पटक, पित्त पापड़ा।

संहर्षित (सं० त्रि०) पुलकित।

संहर्षिन् (सं० त्रि०) सं हृष णिनि, या संहर्षो अस्त्यर्थे इनि। १ पुलकित होनेवाला। २ पुलकित करनेवाला। ३ स्पर्द्धा या ईर्ष्या करनेवाला।

संहवन (सं० क्ली०) सं हु ल्युट्। सायक प्रकारस आहुति।

संहात (सं० पु०) १ संघात, समूह, जमावड़ा नाटकमें उपयुक्त अथच संक्षेप पद्योजना द्वारा जो वर्णना व्यक्त की जाती है। (साहित्यद०) २ एक नरकका नाम। (मनु ४।८९) ३ शिवके एक गणका नाम।

संह्लाद (सं० पु०) अट्टहास पर्यायिक वैयाकरण। संह्राद।

संहार (सं० पु०) संहियतेऽनेनेति संहृ घञ् (पा ३।३।१२२)। १ एक साथ करना, इकट्ठा करना, बटोरना, समेटना। २ संग्रह संचय। ३ समेट कर बांधना, गूंथना। ४ समाप्ति, अन्त, खातमा। ५ ध्वंस, प्रलय। ६ कौशल, निपुणता। ७ छोड़े बाणको फिर लेनेकी क्रिया, निवारण, रोक। ८ ध्वंस, नाश। ९ संकोच आकुंचन, सिकुड़ना। १० छोड़े हुए बाणको वापस लेना। ११ एक नगरका नाम। १२ संक्षेप कथन, खुलासा, सार।

संहारक (सं० त्रि०) संहारयति सं हृ णिच् ण्वुल्। १ संहारकारी, संहार करनेवाला, नाशक। २ संग्रह कर्त्ता एकत्र करनेवाला।

संहारकारिन् (सं० त्रि०) संहार या नाश करनेवाला।

संहारकाल (सं० पु०) संहारः कालः। विश्वके नाश का समय, प्रलयकाल।

संहारना (हिं० क्रि०) १ मार डालना। २ ध्वंस करना, नाश करना।

संहारबुद्धिमत् (सं० त्रि०) संहारबुद्धि अस्त्यर्थे मतुप्। संहारबुद्धिविशिष्ट, संहारबुद्धियुक्त।

संहारभैरव (सं० पु०) भैरवके आठ रूपों या मूर्त्तियोंमेंसे एक, काल भैरव। (तन्त्रसार)

संहारमुद्रा (सं० स्त्री०) मुद्राविशेष देवताको विसर्जन या आत्मसमर्पण करनेके समय यह मुद्रा प्रदर्शन करनी होती है। पूजाके अन्तमें संहारमुद्रा द्वारा पुष्प ले कर उसी पुष्पको सूंघ कर छोड़ देना होता है।

संहारवर्मन् (सं० पु०) दशकुमारचरितवर्णित राजभेद।

संहारवेगवत् (सं० त्रि०) संहारवेग अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। संहार वेगविशिष्ट।

संहारिक (सं० त्रि०) संहार करनेवाला।

संहारिन् (सं० त्रि०) सं हृ णिनि। १ संहारकारक विनाश करनेवाला। (पु०) २ भैरवविशेष। दुर्गापूजाके समय इस भैरवकी पूजा करनी होती है।

संहार्य (सं० त्रि०) १ सं हृ ण्यत्। १ संहार करने योग्य। २ संग्रह करने योग्य समेटने या बटोरने योग्य, इकट्ठा करने लायक। ३ एक स्थानसे हटा कर दूसरे स्थान पर करने योग्य, हटाने लायक। ४ जिसे ले जाना हो। ५ निवारण या परिहारके योग्य, रोकने योग्य। ६ जिसका निवारण या परिहार करना हो, जिसे रोकना हो।

संहित (सं० त्रि०) सं धा क्त, 'धाञोहि' इति धा स्थाने हि आदेश। १ एकत्र किया हुआ, बटोरा हुआ, समेटा हुआ। २ सम्मिलित, मिलाया हुआ। ३ सम्बद्ध, जुड़ा हुआ, लगा हुआ। ४ संयुक्त, सहित। ५ मेलमें आया हुआ, हेलमेलवाला। ६ योगका चिह्न, + ऐसा चिह्न।

संहितपुष्पिका (सं० स्त्री०) संहितानि मिलितानि पुष्पाणि यस्याः कापि अत इत्त्व। १ शतपुष्पा, सोआ नामका साग। २ धनिया।

संहिता (सं० स्त्री०) सम्यक् धीयते स्मेति धा कर्मणि क्त, यद्वा सम्यक् हित प्रतिपाद्य यस्याः। १ वह ग्रन्थ जिसमें पदपाठ आदिका क्रमनियमानुसार चला आता हो। मन्वादि प्रणीत उन्नीस धर्मशास्त्रको उन्नीस संहिता कहते हैं। पर्याय—स्मृति धर्मसंहिता, श्रुतिजाजिका।

मनु, अत्रि आदिने जो सब धर्मशास्त्र प्रणयन किये हैं, उन्हीका नाम संहिता है। मनु अत्रि, विष्णु, हारीत, याज्ञवल्क्य उशना, संवर्त्त, कात्यायन, वृहस्पति, पराशर, व्यास, लिखित, दक्ष, गौतम, शातातप और वशिष्ठ प्रणीत उन्नीस संहिता है। इन सब संहिताओंमें धर्म अर्थात् जीवका कर्त्तव्याकर्त्तव्य कर्म चातुर्वर्ण्यों का धर्म, अशौच, संस्कारकर्म जीविका आदि सभी विषय विशेषरूपसे लिखे हैं। इनमें धर्मतत्त्व लिखित होनेके कारण यह धर्मसंहिता नामसे भी प्रसिद्ध है।

२ सम्भोग, मेल। ३ व्याकरण या शब्दशास्त्रके अनुसार दो अक्षरोंका परस्पर मिल कर एक होना सन्धि। ४ वेदोंका मन्त्र भाग, मुख्य वेद।

संहितान्त (सं० त्रि०) संहिताका शेष, शेषयुक्त।

संहितीभाव (सं० पु०) संहित-भू अभूततद्भावे च्वि। जो वस्तु संहित या मिली नहीं थी उसीका मिलन, एक भाव।

संहितोपनिषद् (सं० स्त्री०) उपनिषद्भेद।

संहितोरु (सं० त्रि०) संयुक्त ऊरुविशिष्ट।

संहूति (सं० स्त्री०) संह्वे-क्तिन्। बहुत लोगों द्वारा एक साथ आह्वान।

संहृत (सं० त्रि०) सं-हृ-क्त। १ एकत्र किया हुआ, समेटा हुआ। २ संगृहीत, जुटाया हुआ। ३ नष्ट, ध्वंस, नाश। ४ समाप्त, खतम। ५ निवारित, रोका हुआ। ६ संक्षिप्त। ७ संकुचित।

संहृतबुसम् (सं० अव्य०) आहरण सामभेद। संहृतबुसम् या संहृतयवम् दोनों पाठ देखा जाता है।

संहृति (सं० स्त्री०) सं हृ-क्तिन्। १ संग्रह, जुटाव। २ बटोरने या समेटनेकी क्रिया। ३ ध्वंस, नाश। ४ प्रलय। ५ समाप्ति, अन्त। ६ परिहार, रोक। ७ संक्षेप, खुलासा। ८ हरण, छीनना, लूट।

संहृतिमत (सं० त्रि०) संहृति अस्त्यर्थे मतुप्। संहारविशिष्ट, विनाशयुक्त।

संहृष्ट (सं० त्रि०) सं-हृष-क्त। १ पुलकित, प्रफुल्ल, जिसके रोएं उमंगसे खड़े हों। २ खड़ा। ३ भीत, जिसके रोएं डरसे खड़े हों, डरा हुआ।

संहोत्र (सं० क्ली०) समीचीन यज्ञ। (ऋक् १०।८६।१०)

संह्राद (सं० पु०) संह्राद शब्दे घञ्। शब्द, ध्वनि, ऊंचा स्वर।

संह्रादन (सं० त्रि०) संह्रादयति संह्र-दि-ल्यु। १ संह्रादकारक, शब्द करनेवाला। (क्ली०) संह्राद-ल्युट्। २ कोलाहल करना, शोर मचाना।

संह्रादि (सं० पु०) राक्षसभेद। (रामायण)

संह्रादिन् (सं० त्रि०) सं-ह्राद-णिनि। १ संह्रादकारक, शब्द करनेवाला। (पु०) २ राक्षसविशेष।

संह्रादीय (सं० त्रि०) संह्राद सम्बन्ध। (हरिवंश)

संह्रियमाण (सं० त्रि०) सं-हृ-शानच्। १ आहृत। २ विमर्द।

संह्रीण (सं० त्रि०) सं-ह्री-क्त। लज्जाशील, लाजुक।

संह्लाद (सं० पु०) सं-ह्लाद-घञ्। सम्यक् ह्लाद आह्लाद।

संह्लादिन् (सं० त्रि०) सं-ह्लाद-णिनि। आनन्दित, आह्लादयुक्त।

सइल (हिं० स्त्री०) लकड़ीकी वह खूंटी या गुल्ली जो गाड़ीके कंधावरमें लगाई जाती है। इसके लगानेसे बैलकी गरदन दो सैलोंके बीच रहनेमें ठहरी रहती है और वह इधर उधर नहीं हो सकता। कभी कभी यह लोहेकी भी होती है। इसे समदूल या सैला भी कहते हैं।

सई (अ० स्त्री०) १ मल्लाहोंकी परिभाषामें नाव खींचनेकी गूनको कड़ा करना। २ प्रयत्न, कोशिश।

सईकंटा (हिं० पु०) एक प्रकारका पेड़।

सईल (हिं० स्त्री०) सइल देखो।

सईस (हिं० पु०) साईस देखो।

सऊर (अ० पु०) शऊर देखो।

सऋक्ष (सं० त्रि०) नक्षत्र सहित।

सकंकर (हिं० पु०) गोहकी तरहका एक जन्तु जिसका रङ्ग लाल या पीला होता। इसका मांस खारा और फीका पर बहुत बलवर्द्धक माना जाता है। इसे रेतकी मछली या रेग माही भी कहते हैं।

सक (सं० पु०) वे, वह व्यक्ति।

सकङ्कट (सं० त्रि०) आलिङ्गन द्वारा अवरुद्ध, आलिङ्गित।

सकञ्चुक (सं० त्रि०) कञ्चुक सहित वर्त्तमान।

सकट (सं० पु०) कटेन अशुचिना शवादिना सह वर्त्तमानः। शाखोट वृक्ष, सिहोर।

सकट (हिं० पु०) शकट, गाड़ी, सग्गड़।

सकटाक्ष (सं० क्ली०) कटाक्षके सहित, वर्त्तमान।

सकटान्न (सं० क्ली०) कटशब्देन अशौचं लक्ष्यते तत्सहचरितमन्नं। सकटान्न, जिसे किसी प्रकारका अशौच हो उसका अन्न। शास्त्रमें लिखा है, कि अशुद्ध अन्न भोजन नहीं करना चाहिये, जिन्हें अशौच है, उनका अन्न अशुद्ध होता है। जो अशुद्ध अन्न भोजन करते हैं, वे भी अशुद्ध होते हैं। अतएव जिन्हें अशौच है, उनका अन्नभोजन करनेसे अन्नभोजन करनेवालेको भी अशौच होता है।

सकटी (हिं० स्त्री०) १ गाड़ी। २ छोटा सग्गड़।

सकड़ी (हि० स्त्री०) सिकड़ी देखो।

सकण्टक (स० पु०) कण्टकेन सह वर्त्तमान । १ शैवाल, सेवार। २ करञ्जविशेष करञ्ज। (त्रि०) ३ कण्टकयुक्त, जिसमें कांटा हो। ४ लोमाञ्चित।

सकण्डूर (स० पु०) कर्णपालीगत रोम।

सकत (हि० स्त्री०) १ शक्ति ताकत, बल। २ सामर्थ्य।

सकता (अ० पु०) १ एक प्रकारका मानसिक रोग जिसमें रोगी बेहोश हो जाता है बेहोशीकी बीमारी। २ विराम, यति।

सकती (हि० स्त्री०) १ शक्ति ताकत, बल। २ शक्ति नामक अस्त्र। शक्ति शब्द देखो।

सकन (हि० पु०) लता कस्तूरी, मुश्कदाना।

सकना (हि० क्रि०) कोई काम करनेमें समर्थ होना, करने योग्य होना। जैसे—खा सकना, चल सकना, बोल सकना, देख सकना, कह सकना। इस क्रियाका व्यवहार सदा किसी दूसरी क्रियाके साथ संयोज्य क्रियाके रूपमें ही होता है, अकेले नहीं होता। परन्तु बंगालमें कुछ लोग भूलसे या बंगलाके प्रभाववश कभी कभी अकेले भी इस क्रियाका व्यवहार कर बैठते हैं। जैसे,—हमसे नहीं सकेगा।

सकपकाना (हि० क्रि०) १ चकपकाना, आश्चर्ययुक्त होना। २ हिचकना, आगा पीछा करना। ३ भय, लज्जा या शङ्काके कारण उद्भूत एक प्रकारकी चेष्टा। ४ लज्जित होना, शरमाना।

सकमल (स० पु०) कमलेन सह वर्त्तमानः। पद्मके सहित वर्त्तमान। (रघु ६।१६)

सकम्प (सं० पु०) कम्पेन सह वर्त्तमानः। कम्पयुक्त, कम्पायमान। (कुमारस० ६।५६)

सकर (सं० त्रि०) करेण सह वर्त्तत इति। १ हस्तयुक्त। २ राजस्वविशिष्ट। ३ शुण्डयुक्त। ४ किरणविशिष्ट।

सकर (सक्कर)—सिन्धुप्रदेशके शिकारपुर जिलान्तर्गत एक प्राचीन नगर। मुसलमानी अमलमें यह स्थान उन्नतिकी चरम सीमा तक पहुंच गया था। स्थानीय मुसलमान कोठरियां आज भी उसकी साक्षी देती हैं। प्राचीन सकर नगरमें शाह खैरउद्दीनका समाधि मन्दिर है। इस मन्दिरमें जो शिलालिपि है उससे जाना जाता है कि खैरउद्दीन बगदादवासी थे। १०२३ हिजरीमें उनकी मृत्यु हुई।

वर्त्तमान नगर भागमें मीर मसूमका प्रतिष्ठित मानार उल्लेखयोग्य है। यह १००२ हिजरीमें मीर मसूम शाह द्वारा शुरू किया गया था और १०२९ हिजरीमें उसके लड़के मीर बुजिर्ग मानवर द्वारा उसका निर्माण कार्य समाप्त हुआ। मानार ईंटोंका बना है, उसका दीवारकी ऊपरवाली मेहराकी परिधि ८४ फुट तथा उसके ऊपर एक सुन्दर गुम्बज है। इसके सिवा इस भागमें मीर मसूमके वंशधर मासुमी सैयदोंके कुछ समाधिस्तम्भ देखे जाते हैं। उन स्तम्भोंमें मीर मसूमके पिता मीर सफाइकी समाधि उल्लेखयोग्य है। उसमें मीर सफाइका मृत्युकाल १५८३ ई०में लिखा हुआ है। इसकी बगलमें १००४ हिजरीमें निर्मित एक दूसरी मसजिदका खण्डहर दिखाई देता है। यह अष्टकोण तथा चार द्वारविशिष्ट है। पूर्व और पश्चिम द्वारके ऊपर छत लगा हुआ बरामदा है। भीतर १४ फुट ऊपर जाने पर सोपानमञ्च तथा उसके ऊपर कुरानके लिखे हुए कुछ प्रसिद्ध नीतिवाक्य दीवारमें लिखे हैं। मीर मसूम शाहका एक दूसरा मानार भी है। उसमें जो शिलालिपि उत्कीर्ण है, उससे जाना जाता है कि मीर मसूम शाह १६०४ ई०में इस लोकसे चल बसे।

सकरकंदी (हि० स्त्री०) शकरकंद देखो।

सकरकन (हि० पु०) शकरकंद देखो।

सकरना (हि० क्रि०) १ स्वीकार आना, मञ्जूर होना। २ कबूला जाना, माना जाना।

सकरपारा (फा० पु०) १ शकरपारा नामकी मिठाई। विशेष विवरण शकरपारा शब्दमें देखो। २ कपड़े पर की एक प्रकारकी सिलाई जो शकरपारेकी आकृतिकी होती है। शकरपारा देखो। ३ एक प्रकारका काबुली नीबू।

सकरा (हि० वि०) संकरा देखो।

सकरिया (फा० स्त्री०) लाल शकरकंद रतालू।

सकरुह (गुज० पु०) सकुरु ह या साकु ह नामक वृक्ष। इसकी पत्तियों आदिका व्यवहार औषधिक रूपमें होता है। वैद्यकके अनुसार यह कषाय, रुचिकर, दीपन और वातनाशक माना जाता है।

सकरुण (स० त्रि०) करुणया सह वर्त्तमानः। सदय, दयाशील।

सकर्ण (स० त्रि०) कर्णाभ्यां सह वर्त्तमान। १ श्रवण

सकलेश्वर (स० पु०) १ सबोंका ईश्वर। २ विष्णु।

सकलेश्वर—ज्ञानदीपिकाके रचयिता।

सकसकाना (हि० क्रि०) बहुत डरना, डरके कारण कांपना।

सकसाना (हि० क्रि०) भयभीत होना, डर मानना।

सका (अ० पु०) १ पानी भरनेवाला, भिश्ती। २ वह जो घूम घूम कर लोगोंको पानी पिलाता हो, विशेषतः मसाफिर (मुसलमानों को) पानी पिलानेवाला।

सका (स० स्त्री०) वह स्त्री।

सकाकुल (हि० पु०) १ एक प्रकारका कन्द जिसे शकर कन्द कहते हैं। २ एक प्रकारका जानवर। ३ शका कुल मिश्री, सुधामूली।

सकाकुल मिश्री (हि० स्त्री०) १ सुधामूली। २ शकर कन्द।

सकाकोल (सं० पु०) मनुके अनुसार एक नरकका नाम।

सकाना (हि० क्रि०) १ शंका करना सन्देह करना। २ भयके कारण सङ्कोच करना। ३ दुःखी होना, रंज होना। ४ सकना का प्रेरणार्थक रूप।

सकाम (स० त्रि०) कामेन सह वर्त्तमानः। १ जिसे कोई कामना या इच्छा हो। २ स्वरकाम, जिसकी कामना पूरी हुई हो। ३ कामवासनायुक्त, कामी। ४ जो कोई कार्य भविष्यमें फल मिलनेकी इच्छासे करे जो निःस्वार्थ हो कर कोई कार्य न करे बल्कि स्वार्थके विचारसे करे। ५ प्रेम करनेवाला।

सकामकर्म (स० क्ली०) कामनाके सहित वर्त्तमान कर्म कामनायुक्त कर्म। शास्त्रमें लिखा है, कि सकाम कर्म बन्धका कारण है, सकाम कर्मानुष्ठान करनेसे जीव भव बन्धनसे मुक्त नहीं होता, उसे बार बार जन्म लेना पड़ता है, इस कारण सकाम कर्मका परित्याग कर निष्काम कर्मानुष्ठान करना उचित है।

फलकी आकांक्षा करके अर्थात् सकाम कर्मका अनुष्ठान न करे अथवा कर्मफलमें भी आसक्त न हो। गीतामें यह भी लिखा है, कि सकाम कर्म जो बन्धनका कारण होता है, उसका हेतु यह है, कि जीव फलकी कामना करके आसक्त चित्तसे अहङ्कारबुद्धिसे कर्म करता है, किन्तु जीव यदि फलाकांक्षा रहित हो कर अनासक्त चित्तसे कर्त्तव्य बुद्धिकी प्रेरणासे कर्म कर सके, तो कर्म उसे बांध नहीं सकता।

"अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः।
स सन्न्यासी च योगी च न निरग्निर्नचाक्रियः॥"
(गीता ६।१)

कर्मफलकी आकांक्षा न करके कर्त्तव्यबुद्धिसे जो कर्म करते हैं, वे ही सन्न्यासी हैं, वे ही योगी हैं, साधारण तौर पर यदि देखा जाय, तो मालूम होगा, कि कर्म बन्धका कारण है किन्तु कर्मका अनुष्ठान इस तरह किया जा सकता है, कि कर्म भी किया जायेगा, साथ साथ कर्मजनित बन्धन न होगा। ऐसे कर्मकौशलका नाम ही योग है।

सकाम कर्मानुष्ठान द्वारा यह योग नहीं होता अतएव ऐसा योग करनेमें कर्मफलकी आकांक्षा छोड़ देनी होगी, अपने कर्तृत्वाभिमान त्याग तथा तृतीय कर्म ईश्वरमें समर्पण करना होगा।

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।" (गीता २।४७)

कर्ममें तुम्हारा अधिकार है, फलके साथ सम्पर्क न रखो। अनासक्त हो कर फलकामनाका परित्याग कर कर्त्तव्यबुद्धिसे कर्मका अनुष्ठान करो। इस प्रकार जो कर्म कर सकते हैं, वे ही यथार्थ निष्कामकर्मी हैं। उनके सभी कर्म कामना और सङ्कल्पविहीन हैं, वे कर्ममें प्रवृत्त होते हैं सही, पर यह कर्म उनकी देहका व्यापार मात्र है। उनके साथ उनके चित्तका आसङ्ग या लेश नहीं रहता। निष्कामकर्मन देखो।

सकामनिर्जरा (स० पु०) जैनियोंके अनुसार चित्तकी वह वृत्ति जिसमें बहुत अधिक हानि होने पर भी शत्रु या पीड़ा देनेवालेको परम शान्तिपूर्वक क्षमा कर दिया जाता है। यह वृत्ति उपशान्त चित्तवाले साधुओंमें होती है।

सकामा (स० स्त्री०) वह स्त्री जो मैथुनकी इच्छा रखती हो, काम पीड़िता, कामवती।

सकामिन् (स० त्रि०) १ कामनायुक्त, वासनायुक्त, जिसे किसी प्रकारकी कामना हो। २ कामी विषयी।

सकार (स० पु०) १ 'स' अक्षर। २ 'स' वर्णकी सी ध्वनि।

सकारण (सं० क्ली०) कारणेन सह वर्त्तमानं। कारणके साथ विद्यमान, हेतुयुक्त, सहेतुक।

सकारना (हिं० क्रि०) १ स्वीकार करना, मंजूर करना। २ महाजनोंका हुंडीकी मिती पूरी होनेके एक दिन पहले हुंडी देख कर उस पर हस्ताक्षर करना। जो लोग किसी महाजनको हुंडी पर रुपये देते हैं, वे मिती पूरी होनेसे एक दिन पहले अपनी हुंडी उस महाजनके पास उसे दिखलाने और उससे हस्ताक्षर करानेके लिये ले जाते हैं। इससे महाजनको दूसरे दिनके दातव्य धनकी सूचना भी मिल जाती है और रुपये पानेवालेको यह निश्चय भी हो जाता है, कि कल मुझे रुपये मिल जायगे।

सकारविपुला (सं० स्त्री०) अन्त्यगुरु त्रिपदाश छन्दोविशेष।

सकारा (हिं० पु०) महाजनोंमें वह धन जो हुंडी सकारने और उसका समय फिरसे बढ़ानेके लिये लिया जाता है।

सकालत (अ० स्त्री०) १ सकील या गरिष्ठ होनेका भाव। २ गुरुता, भारीपन।

सकाली (सं० स्त्री०) समुद्रके किनारेका एक स्थान।

सकाश (सं० पु०) काशः प्रकाशस्तेन सह वर्त्तते इति। १ समीप, निकट। (त्रि०) २ काशयुक्त।

सकीत—युक्तप्रदेशके एटा जिलान्तर्गत एक प्राचीन नगर यह अक्षा० २७° २६' १०'' उ० तथा देशा० ७८° ४६' १५'' पू०के मध्य विस्तृत है। एटा नगरसे १६ मील दक्षिण-पूर्व एक ऊंची भूमिके ऊपर यह नगर बसा हुआ था। अभी यह क्रमशः जनशून्य और श्रीहीन हो गया है। इस राजधानीकी विशेष समृद्धिके समय पार्श्ववर्ती शैलशृङ्ग पर स्थानीय राजाओंने एक गिरिदुर्ग बनवाया था। अभी वह बिलकुल तहस नहस हो गया है। नगरके मध्य १३वीं सदीमें स्थापित एक प्राचीन मसजिद उक्त स्थानके पूर्वतन मुसलमानी प्रभावका परिचय देती है। १४८८ ई०में बहलोल लोदीका यहां पर देहान्त हुआ। इसके बाद १५१० ई०में इब्राहिमलोदीने यहां एक मुसलमान उपनिवेश बसाया था।

सकीन (हिं० पु०) एक प्रकारका जन्तु।

सकील (अ० वि०) १ जो जल्दी हजम न हो, गरिष्ठ, गुरुपाक। २ भारी, वजनी।

सकुक्षि (सं० त्रि०) कुक्षियुक्त।

सकुच (हिं० पु० स्त्री०) संकोच, लाज, शर्म।

सकुचना (हिं० क्रि०) १ संकोच करना, लज्जा करना, शरमाना। २ फूलोंका संपुटित होना, बंद होना।

सकुचाई (हिं० स्त्री०) १ संकुचित होनेका भाव। २ संकोच, शर्म, लज्जा, हया।

सकुची (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी मछली जो साधारण मछलियोंसे भिन्न और प्रायः कछुएके आकारकी होती है। इसके छोटे छोटे चार पैर होते हैं और एक लंबी पूंछ होती है। इसी पूंछसे यह शत्रुको मारती है। जहां पर इसकी चोट लगती है, वहां घाव हो जाता है और चमड़ा सड़ने लगता है। कहते हैं, कि यह मछली ताड़के वृक्ष पर चढ़ जाती है। पानीमें और जमीन पर दोनों जगह यह रह सकती है।

सकुचीला (हिं० वि०) संकोच करनेवाला, जिसे अधिक संकोच हो, शरमीला।

सकुचौंही (हिं० स्त्री०) लज्जावती लता, लाजवंती।

सकुड़ना (हिं० क्रि०) सिकुड़ना देखो।

सकुतूहल (सं० त्रि०) कुतूहलेन सह वर्त्तते। कौतुकयुक्त।

सकुन (हिं० पु०) १ पक्षी, चिड़िया। २ शकुन देखो।

सकुना (हिं० स्त्री०) पखेरू, चिड़िया।

सकुरुण्ड (सं० पु०) साकुरुण्ड वृक्ष। गुण—कषाय, रुचिकर, दीपन, श्लेष्म और वातनाशक, वस्त्र-रञ्जक और लघु। (राजनि०)

सकुल (सं० पु०) १ मत्स्यविशेष, सकुची मछली। २ उत्तम कुल, अच्छा कुल, ऊंचा खानदान।

सकुलज (सं० वि०) समान कुलजात, एक ही कुलमें उत्पन्न।

सकुला (सं० पु०) बौद्ध भिक्षुओंका नेता या सरदार।

सकुलादनी (सं० स्त्री०) १ महाराष्ट्री लता, मरेठी। २ कुटकी। (जयदत्त)

सकुली (सं० स्त्री०) मत्स्यविशेष, सकुली मछली।

सकुल्य (सं० त्रि०) समानकुले भवः यत्। १ सगोत्र,

जल इसी नदीमें गिरता है। मुन्नेरमें यह नदी गङ्गासे मिली है। इस नदीका जल ले कर बहुस्थानके खेतोंकी सिंचाई होती है।

सक्रुध् (सं० त्रि०) उत्तरोत्तर क्रोधनशील, क्रोधपरायण, क्रोधी।

सक्रोध (सं० पु०) क्रोधेन सह वर्त्तमानः। सरोष, क्रुद्ध, नाराज।

सक्लेश्वर (सकलेश्वर)—महिसुर राज्यके हसन जिलान्तर्गत एक गण्डग्राम। अक्षा० १२° ५७′ २०″ उ० तथा देशा० ७५° ५०′ ३१″ पू० हेमवतीनदीके दाहिने किनारे हसन शहरसे २३ मील पश्चिममें यह ग्राम बसा हुआ है। यहां म्युनिसपलिटी है। यह ग्राम मञ्जराबाद तालुकका प्रधान सदर तथा काफीका वाणिज्य केन्द्र है। इस ग्रामके नीचे हिमवती नदी पर एक लोहेका पुल है।

सक्ष (सं० त्रि०) १ अतिक्रमणीय। २ पराभूत, हारा हुआ। (तैत्तिरीयस० ३।५।५।१)

सक्षण (सं० त्रि०) १ पराभूत, हारा हुआ। (ऋक् ५।४१।४) २ लब्धावसर।

सक्षणि (सं० त्रि०) सचनीय, सेव्य, सेवा करने योग्य।

सक्षम (सं० त्रि०) क्षमेण क्षमया वा सह वर्त्तमानः। १ क्षमताविशिष्ट, जिसमें क्षमता हो। २ समर्थ, काम करनेके योग्य।

सक्षार (सं० त्रि०) क्षारेण सह वर्त्तमानः। क्षारयुक्त, नमकीन।

सक्षित् (सं० त्रि०) समानकार्य प्राप्त।

सक्षीर (सं० त्रि०) क्षीरेण सह वर्त्तमानः। क्षीरयुक्त।

सख (हिं० पु०) १ सखा, मित्र, साथी। २ एक प्रकारका वृक्ष।

सखत्व (सं० क्ली०) सखा होनेका भाव, सखापन, मित्रता, दोस्ती।

सखर (सं० पु०) एक राक्षसका नाम।

सखरस (हिं० पु०) मक्खन, नैनू।

सखरा (हिं० पु०) १ क्षारयुक्त, खारा। २ निखराका उलटा। सखरी देखो। ३ वह भोजन जो घीमें न पकाया गया हो, कच्ची रसोई। सखरी देखो।

सखरी (हिं० स्त्री०) १ कच्ची रसोई, कच्चा भोजन। २ छोटा पहाड़, पहाड़ी।

सखा (हिं० पु०) १ वह जो सदा साथ रहता हो, साथी, संगी। २ मित्र, दोस्त। ३ सहयोगी, सहचर। ४ साहित्यमें वह व्यक्ति जो 'नायक'का सहचर हो और जो सुख दुःखमें उसके समान सुख दुःखको प्राप्त हो। ये चार प्रकारके होते हैं—पीठमर्द, विट, चेट और विदूषक।

सखावत (अ० स्त्री०) १ सखी या दाता होनेका भाव, दानशीलता। २ उदारता, फैयाज़ी।

सखि (सं० पु०) समानः ख्यायते इति समान ख्या (समाने ख्यः सचोदात्तः। उण् ४।१३६) इति इन्, टिलोप यलोपौ समानस्य सभावश्च, यद्वा समानं ख्यायते जनैः नाम्नि ति डिः सतीपाठित्वात् ख्यातेर्यलोपः समानस्य सभावः। १ सौहार्द युक्त, दोस्त। पर्याय—आनन्द, मित्र, सुहृत्, वयस्य, सवयस्, स्निग्ध, सहचर। (हेम) २ सहाय, सहचर। जो विच्छेद सह नहीं कर सकता, उसे बन्धु, जो सर्वदा अनुगामी रहता, उसे सुहृत् तथा सब विषयोंमें एक कार्यकारी होनेसे मित्र और अपना मत एक भावका होनेसे सखा होता है। शास्त्रमें लिखा है, कि जो कोई सखाकी पत्नीके साथ गमन करता है, उसे गुरुपत्नीगमनका प्रायश्चित्त करना पड़ता है।

सखिता (सं० स्त्री०) सख्युर्भावः तल्-टाप्। १ सखी होनेका भाव। २ बन्धुता, मैत्री, दोस्ती।

सखित्व (सं० क्ली०) सख्युर्भावः त्वतलौ भावे, इति त्व। बन्धुता, मित्रता, दोस्ती।

सखित्वन (सं० क्ली०) सख्यार्थ। "कंस सखित्वनाय वावृधुः" (ऋक् ६।५२।१४) 'सखित्वनाय सख्यार्थं'। (सायण)

सखिदत्त (सं० पु०) पाणिनि वर्णित व्यक्तिभेद।

सखिपूर्व (सं० क्ली०) बन्धुत्व, मित्रता।

सखिल (सं० त्रि०) परिशिष्टविशिष्ट।

सखिवत् (सं० त्रि०) सखि अस्त्यर्थे मतुप् मस्य वा। सहायविशिष्ट, बन्धुयुक्त।

सखिविद् (सं० त्रि०) सखि विद्-क्विप्। यजमानज्ञ।

सखिसर्वार—डेरा गाजी खाँ जिलान्तर्गत एक सुप्रसिद्ध मुसलमान मसजिद। सुलेमान गिरिश्रेणीके पाददेशस्थ निर्जन और मरुमय प्रदेशमें एक पहाड़ी नदीके किनारे यह मसजिद प्रतिष्ठित है। सयेदी सहदके सम्मानार्थ

पहले यह मसजिद बनाई गई थी, पीछे सब सखी सखी अन्दर के सखिसयारो नामसे प्रसिद्धि लाभ करने पर मसजिद भी उसी नामसे पुकारी जाने लगी। १८२० ई०में उमरा पिना बगदाद नगरसे आ कर सियालकोटमें बस गया। सखी अहद यहां इबादतमें मशगूल रहता था। कहते हैं कि दिल्लीके बादशाहने उसका अलौकिक कार्यादि देख कर चार पत्थरकी गाड़ी पर लदा कुआ घत दिया था। उसी धनसे यह मसजिद बनाई गई था। लाहोरके दो हिन्दू वणिक्ने मसजिदमें सीढ़ी बनवा दी। मन्दिर के पास हो नदी तट तक यह सीढ़ी चली गई थी। मसजिदमें बहुतसे घर हैं, एक घरमें सखिसयारका मकबरा है। इसके सिवा यहां बाबा नानकका स्मृतिचिह्न सखिसयारकी स्त्री मुसम्मात बाबी भाइका मकबरा और एक ठाकुरघर प्रतिष्ठित है। इस मसजिदमें हिन्दू और मुसलमान स्थापत्यका निदर्शन देखनेमें आता है। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही श्रेणीके लोग यह मसजिद देखने आते हैं। सखिसयारके तीन नौकरोंके वंशधर इस मसजिदके रक्षक और सेवाइत हैं। मसजिदका आय १६१० भागोंमें विभक्त होती है। पहले नौकरके वंशधर ७०० भाग, दूसरेके ६०० भाग और तीसरेके वंशधर ३०० भाग पाते हैं। समूचा वर्ष यहां मक्का का मेला लगा रहता है। यहां खानेका वस्तु बहुत महंगी मिलती है।

सखा (स० स्त्री०) सख्य (शिवादि भाषायां। पा ४।१।६२) इति ङीष्। १ सहचरी, सहेली। पर्याय—आलि, वयस्या, सध्रीची। (हेम) २ साहित्यके मतानुसार वह स्त्री जो नायिकाके साथ रहती हो और जिससे वह अपना कोई बात न छिपावे। सखीका चार प्रकारका काम होता है—मण्डन, शिक्षा, उपालम्भ और परिहास। ३ एक प्रकारका छन्द। इसके प्रत्येक चरणमें १४ मात्राएं और अन्तमें १ मगण या १ यगण होता है। इसकी रचनामें आदिसे अन्त तक दो दो कल होता है—२+२+२+२+२+२ और कभी कभी २+३+३+२+२+२ भी होता है और विराम ८ और ६ पर होता है। विराम भेदके अनुसार कविपीने इसके दो भेद किये हैं—(१) विज्ञात और (२) मनोरम।

सखी (फा० वि०) दाता, दानी।

सखीभाव—वैष्णवोंका भगवद्भजनप्रकारविशेष। वृन्दावनमें श्रीराधाकी सखियोंने श्रीकृष्णके प्रति जैसी निर्लिप्त और निस्पृह ऐकान्तिक भक्तिसे प्रेम किया था, श्रीभगवानके ऊपर उसी भावसे चित्तार्पण करनेका नाम सखीभाव है। गौड़ीय वैष्णवोंकी मतोपासनामें सखियां नन्द रससूचन श्रीश्री राधाकृष्णलीलाविलासका आस्वादन केवल सखियोंका ही सम्भोग है। सखीको छोड़ इस लीलाविलासमें दूसरे किसीको भी प्रवेशाधिकार नहीं है।

सखुआ (हि ० पु०) शाल वृक्ष, साखू। शाल देखो।

सखुन (फा० पु०) १ वार्तालाप, बातचीत। २ कविता, काव्य। ३ कौल, वचन। ४ कथन, उक्ति।

सखुनचीन (फा० पु०) चुगलखोर, चवाई, इधर उधर बात लगानेवाला।

सखुनचीनी (फा० स्त्री०) सखुनचीनका भाव, चुगलखोरी, चवाव।

सखुनतकिया (फा० पु०) वह शब्द या वाक्यांश जो कुछ लोगोंकी जवान पर ऐसा चढ़ जाता है कि बातचीत करनेमें प्रायः मुंहसे निकला करता है, तकिया कलाम। बहुतसे लोग ऐसे होते हैं जो बातचीत करनेमें बार बार 'जो है सो' 'क्या नाम' 'समझ लीजिए कि' आदि कहा करते हैं। ऐसे ही शब्दों या वाक्यांशोंको सखुनतकिया कहते हैं।

सखुनदां (फा० पु०) १ वह जो सखुन या काव्य अच्छी तरह समझता हो, काव्यका रसिक। २ वह जो बातचीत का मर्म अच्छी तरह समझता हो।

सखुनदानी (फा० स्त्री०) १ बातचीतकी समझदारी। २ काव्य मर्मज्ञता, काव्य-रसिकता।

सखुनपरवर (फा० पु०) १ वह जो अपनी कही हुई बात का सदा पालन करता हो, जबान या बातका धनी। २ वह जो अपनी कही हुई अनुचित या गलत बातका भी बार बार समर्थन करता हो, हठी, जिद्दी।

सखुनशनास (फा० पु०) १ वह जो सखुन या काव्य अच्छी भांति समझता हो काव्यका मर्मज्ञ। २ वह जो बातचीतका मर्म बहुत अच्छी तरह समझता हो।

सखुनसंज (फा० पु०) १ वह जो बात समझता हो। २ वह जो काव्य समझता हो।

सखुनसञ्जी (सं० स्त्री०) सखुनसंजका भाव।

सखुनसाज (फा० पु०) १ वह जो सखुन कहता हो, कवि, शायर। २ वह जो सदा झूठी बातें गढ़ता हो, अपने मनसे झूठी बातें बना कर कहनेवाला।

सखुनसाज़ी (फा० स्त्री०) १ सखुनसाजका भाव या काम। २ कवि होनेका भाव या काम। ३ झूठी बातें गढ़नेका गुण या भाव।

सखेद (सं० त्रि०) खेदेन सह वर्त्तमानः। खेदयुक्त, दुःखी।

सखेरा—बड़ोदा राज्यका एक शहर। यहां एक छोटा दुर्ग है। १८०२ ई०में बहुतेरे वृटिश सैन्योंने यह दुर्ग अपने कब्जेमें कर लिया। सखेराका छींट तथा रंगा हुआ कपड़ा बहुत प्रसिद्ध है। इसके अलावा काठ पर खुदाईका काम यहां सुचारुरूपसे होता है।

सखोल (सं० क्ली०) राजतरंगिणीके अनुसार एक प्राचीन नगरका नाम। (राजतर० १।३४२)

सख्य (सं० क्ली०) सख्युर्भावः कर्म्म वा सखि-यत्। १ सखाका भाव, सखत्व, सखापन। पर्याय—सौहार्द, साप्तपदीन, मैत्र, अजर्य, सङ्गत। २ वैष्णव मतानुसार ईश्वरके प्रति वह भाव जिसमें ईश्वरावतारको भक्त अपना सखा मानता है। ३ पल। (मैषज्यरत्ना०)

सख्यता (सं० स्त्री०) मैत्री, दोस्ती।

सग (फा० पु०) कुक्कुर, कुत्ता।

सगजुबान (फा० पु०) वह घोड़ा जिसकी जीभ कुत्तेके समान पतली और लम्बी हो। ऐसा घोड़ा प्रायः ऐबी समझा जाता है।

सगड़ी (हिं० स्त्री०) छोटा सग्गड़।

सगण (सं० त्रि०) गणेन सह वर्त्तते। १ गणयुक्त, फलविशिष्ट। (शुक्लयजुः २५।४६) (पु०) २ छन्दःशास्त्रमें एक गण। इसमें दो लघु और एक गुरु अक्षर होते हैं। इस गणका प्रयोग छन्दके आदिमें अशुभ है। इसका रूप ॥ऽ है।

सगदा (हिं० पु०) एक प्रकारका मादक द्रव्य जो अनाजसे बनाया जाता है।

सगद्गद (सं० त्रि०) गद्गद वाक्यविशिष्ट, गद्गद वाक्ययुक्त।

सगन (सं० पु०) १ सगण देखो। २ शकुन देखो।

सगनौती (हिं० स्त्री०) सगुनौती देखो।

सगन्ध (सं० पु०) गन्धेन सह वर्त्तमान इति। १ ज्ञाति। (निका०) (त्रि०) २ गन्धयुक्त, जिसमें गन्ध हो, महक दार। ३ गर्वविशिष्ट, जिसे अभिमान हो, अभिमानी।

सगन्धा (सं० स्त्री०) सुगन्ध शालि, बासमती चावल।

सगन्धिन् (सं० त्रि०) सगन्ध अस्त्यर्थे इनि। गन्धविशिष्ट, जिसमें गन्ध हो, महकदार।

सगपन (हिं० पु०) सगापन देखो।

सगपहती (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी दाल जो साग मिला कर बनाई जाती है। प्रायः लोग सगपहती बनानेके लिये उड़दकी दालमें सोआ पालक या बथुएका साग मिलाते हैं। कभी कभी अरहरकी दाल भी मिला कर बनाई जाती है।

सगपिस्तां (फा० पु०) बहुवार, लिसोड़ा।

सगपु (सं० पु०) अमरकी।

सगबग (हिं० वि०) १ सराबोर, लथपथ। २ द्रवित। ३ परिपूर्ण। (क्रि० वि०) ४ तेजीसे, जल्दीसे, चटपट।

सगबगाना (हिं० क्रि०) १ लथपथ होना, किसी वस्तुसे भीगना या सराबोर होना। २ शंकित होना, भयभीत होना, सकपकाना।

सगमत्ता (हिं० पु०) एक प्रकारका भात जो साग मिला कर बनाया जाता है। इसमें पकाते समय चावलमें साग मिला देते हैं।

सगर (सं० पु०) गरेण सह वर्त्तमानः। १ अर्हद्भेद। २ सूर्यवंशीय राजविशेष, अयोध्यापति बाहुराजपुत्र। पद्मपुराणके स्वर्गखण्डमें सगर राजाका उत्पत्ति विवरण इस प्रकार लिखा है,—सूर्यवंशमें बाहु नामक प्रबल पराक्रान्त एक राजा थे। इनकी स्त्रीका नाम यादवी था। एक दिन हैहय, तालजङ्घ, काम्बोज, पह्लव, पारद, यवन और शक सबोंने मिल कर बाहु राजाके राज्य पर चढ़ाई कर दी। युद्धमें बाहु परास्त हुए। पीछे पत्नीके साथ भाग कर उन्होंने वनमें आश्रय लिया। इस समय उनकी

भी गर्भिणी थी। यादवकी सपत्नीको जब मालूम हुआ कि यादवीके गर्भ रह गया है, तब उसने उसको विष पिला दिया था, किन्तु दैवशक्तिसे यादवी विषपान करके भी मृत्युमुखमें पतित न हुई और न उनकी गर्भस्थ सन्तानका कोई अनिष्ट ही हुआ। राजा बाहु राज्यभ्रष्ट हो वनक्लेशको सहन न कर सकनेके कारण पञ्चत्वको प्राप्त हुए। रानी यादवी स्वामीकी चिता तैयार कर उन्हीं के साथ सती होनेवाली थी। इसी समय ऋषि और्वने उन्हें इस कामसे रोका। यादवी मान गई और और्वके आश्रममें जा कर रहने लगी। समय पूरा होने पर यादवी ने विषके साथ एक पुत्र प्रसव किया। और्वने उसका जातकर्मादि संस्कार कर गर अर्थात् विषके साथ उत्पन्न होनेके कारण सगर नाम रखा। पीछे और्वने उनका यथाविधि संस्कारकार्य सम्पन्न कर उन्हें अखिल वेद और सभी शास्त्रोंकी शिक्षा दी। सगर अस्त्रशस्त्रमें विशेष पारदर्शिता लाभ कर हैहय आदिको युद्धमें परास्त कर एक एक कर उन्हें यमपुर भेजने लगे। इस पर वे होने अत्यन्त भयभीत हो कर वशिष्ठ देवकी शरण ली। वशिष्ठदेवने उन्हें अभय दे कर सगरको इस कामसे रोका। इस पर सगरने उन लोगोंका धर्म नाश कर उन्हें दूसरा वेश धारण कराया। तभीसे शकगण अर्द्ध शिर मुण्डित, यवन और कम्बोज सर्वशिर मुण्डित, पारद मुक्तकेश और पह्लव श्मश्रुधारी इत्यादि वेशोंसे विराजित हुए। किन्तु वे सबके सब तभीसे वेदरहित और धर्मच्युत हो रहे। राजा सगर इस प्रकार शत्रुओं को परास्त कर राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित हुए थे।

महाभारतमें इनका विवरण कुछ स्वतन्त्र भावमें लिखा है। इक्ष्वाकुवंशमें सगर नामक एक राजाने जन्म लिया। इनके वैदर्भी और शैब्या नामकी दो पत्नी थी। ये हैहय और तालजङ्घ आदिको समूल नष्ट कर राजसिंहासन पर अधिरूढ हुए। किन्तु कोई सन्तान न रहनेके कारण वे बड़े कष्टमें दिन बिताने लगे। पीछे उन्होंने यह स्थिर किया, कि देवताके प्रसन्न नहीं होनेसे पुत्रलाभका कोई उपाय नहीं है। इस कारण वे दोनों स्त्रियोंके साथ महादेवके उद्देशसे कठोर तपस्या करने लगे। उनकी तपस्यासे प्रसन्न हो महादेवने सगरके पास आ कर उन्हें वर दिया, कि, तुम्हारी इन दो पत्नियोंमें एक पत्नीसे अति बलवान् साठ हजार पुत्र होंगे तथा उन सब पुत्रोंका एक साथ नाश होगा। दूसरी पत्नीसे शौर्यशील एक वंशधर जन्म लेगा।

इसके बाद राजा सगर अत्यन्त प्रसन्न हो कर दोनों पत्नियोंके साथ घर लौटे। यथा समय दोनों ही रानी गर्भवती हुई। कुछ समय बाद वैदर्भीने एक कद्दू और शैब्याने कार्त्तिकके समान देवरूपी एक पुत्र प्रसव किया। पुत्रका नाम असमञ्जा रखा गया। राजा जब उस कद्दूको बहुत दूर फेंकनेको तैयार हुए, तब अन्तरीक्षमें दैववाणी हुई 'हे राजन्! तुम इस कद्दूको मत फेंको। इसमेंसे सभी बीज निकाल कर उन्हें पृथक् पृथक् घृतपूर्ण उष्ण पात्रमें यत्नपूर्वक रखो। उन बीजोंसे तुम्हें साठ हजार पुत्र उत्पन्न होंगे। इसका अन्यथा होनेको नहीं। महादेवने इसी नियमानुसार तुम्हें पुत्र होनेका उपदेश दिया है।'

राजा सगरने अन्तरीक्षसे यह दैववाणी सुन कर उस कद्दूमेंसे सभी बीज निकाल लिये और एक एक कर पृथक् पृथक् घृतकुम्भमें रखे। पीछे उन्होंने उनकी देखभाल करनेके लिये एक एक कुम्भके पास एक एक धात्री नियुक्त कर दी। इस प्रकार बहुत दिन बीत जानेके बाद महाबलिष्ठ पुत्र कुम्भसे निकले। कुछ समय बाद वे सब पुत्र अत्यन्त बलवान् और क्रूरप्रकृति हो देवदानवोंके प्रति भीषण अत्याचार करने लगे। इन लोगोंके अत्याचारसे सभी लोग भारी कष्ट पाने लगे। देवताओंने उनके अत्याचारको सहन न कर सकनेसे ब्रह्माकी शरण ली। आखिर ब्रह्माने उनसे कहा, तुम लोग अपने अपने आश्रममें जाओ, अभी इसका प्रतिविधान होगा।

अनन्तर कुछ दिन बीत जाने पर राजा सगरने अश्वमेध यज्ञ ठान दिया। यज्ञीय घोड़ेके साथ उनके साठ हजार लड़के पृथिवी पर विचरण करने निकले। वह घोड़ा समुद्रमें जा कर अन्तर्हित हो गया। पीछे राजपुत्रोंने पिताके पास आ कर उस घोड़ेके अपहृत और अदृश्य हो जानेकी बात उनसे कह दी। राजाने उनसे कहा 'तुम लोग जाओ और उसकी तलाश करो।' अनन्तर उन लोगोंने पिताके आज्ञानुसार सभी दिशाओंमें भ्रमण

कर सारी पृथ्वी पर उसका अन्वेषण किया, किन्तु घोड़ या घोड़के चुरानेवालेका पता न चला। आखिर सबोंने मिल कर पिताके पास जा उनसे कहा, 'पिताजी! हम लोगोंने आपके आज्ञानुसार समुद्र, नद, नदी, द्वीप, पर्वत, कन्दर, वन, उपवन और पृथिवी तमाम ढूंढा, पर कहीं भी घोड़ेका पता न लगा।

राजा सगर उन लोगोंकी यह बात सुन कर बहुत क्रोधित हुए और उन लोगोंसे बोले, 'बिना घोड़ेके लौट आना तुम लोगोंको उचित न था, इसलिये फिर जा कर समस्त लोकमें इसका अन्वेषण करो। वह यज्ञका घोडा है, बिना उसके यज्ञ किस प्रकार शेष होगा? अतः तुम लोग अभी उसकी खोजमें फिर निकलो, देर न करो।' अनन्तर सगरके पुत्रोंने पिताके आज्ञानुसार पुनः घोड़ेको ढूंढ निकालनेके लिये सारी पृथ्वी पर परिभ्रमण किया। किन्तु कहीं भी वह यज्ञीय अश्व देखनेमें न आया। आखिर वे लोग पर्यटन करते करते समुद्रके किनारे आये और वहां एक जगह उन्हें पृथिवी फटी हुई दिखाई दी। पीछे वे बड़े यत्नसे कुदाली ले कर वह गड्ढा खोदने लगे। इससे समुद्रको चोट पहुंची और वह बहुत दुःखित हुआ तथा असुर, पन्नग और राक्षसादि सभी प्राणी सगरके पुत्रके अत्याचारसे आर्त्तनाद करने लगे। हजारों प्राणीके मस्तक छिन्न हो गये, देह भग्न हो गई तथा चमड़े, अस्थि और सन्धिस्थल भिन्न दिखाई देने लगे। सगरके पुत्रोंके इस प्रकार समुद्र खनन करनेमें बहुत समय बीत गये। किन्तु कहीं भी घोडा नहीं मिला। अनन्तर उन्होंने अत्यन्त क्रुद्ध हो पूर्व उत्तरप्रदेशमें पातालतलको फाड़ डाला और वहां उस घोड़ेको भूपृष्ठ पर विचरण करते तथा तेजोराशिस्वरूप महात्मा कपिल मुनिको ज्वालाप्रदीप्त पावककी तरह देखा। राजपुत्रोंने उस घोड़ेको देख कपिलदेवकी अवज्ञा की और घोड़ेको लेनेको लिये तैयार हो गये। उस समय कपिलदेवने आंखें फाड़ कर उन लोगोंकी ओर देखा और साठों हजार सगरपुत्र उसी समय जल कर खाक हो गये।

पहले असमञ्जा दुर्बल बालकोंका गला पकड़ कर एक कोस दूर नदीमें फेंक आता था। इससे नगरवासियोंने भयभीत हो राजा सगरसे कहा था, कि आप हम लोगोंको सभी भयसे त्राण करते आये हैं, अभी असमञ्जाके अत्याचारसे हम लोग तंग तंग आ गये हैं। राजाने इस दुर्व्यवहारकी बात सुन कर पुत्रको निर्वासित किया। उसीका पुत्र अंशुमान था।

इधर देवर्षि नारद कपिल द्वारा साठ हजार सगरके पुत्रोंका भस्म वृत्तान्त सुन कर सगरके पास गये और उन्हें यह समाचार कह सुनाया। राजा सगर पुत्रोंके मृत्युसंवाद सुन कर बड़े दुःखित हुए और यज्ञसमाप्तिके विषयकी चिन्ता करने लगे। पीछे उन्होंने शैब्याके गर्भजात असमञ्जाके पुत्र अंशुमानको बुला कर कहा, वत्स! अमित तेजस्वी साठ हजार पुत्र कपिलदेवके क्रोधसे भस्म हो गये हैं। मैंने अपनी धर्मरक्षाके लिये पुरवासियोंके हितार्थ तुम्हारे पिताको निर्वासित कर दिया है। इसलिये अभी यज्ञीय अश्व ला कर जिससे यज्ञ समाप्त हो, उसीका उपाय करो। अंशुमान् पितामहके वाक्यानुसार समुद्र पथसे कपिलके पास गये और उन्हें विविध प्रकारके स्तव कर प्रसन्न किया। कपिलदेवने संतुष्ट हो कर उन्हें वर मांगने कहा। अंशुमानने पितामहके यज्ञीय अश्व और पितरोंके उद्धारके लिये प्रार्थना की। कपिलदेवने बड़े प्रसन्न हो कर कहा, 'तुम्हारा अभिलाष सिद्ध होगा। राजा सगर तुम्हारे ही द्वारा यज्ञ समाप्त करेंगे। सगरके साठ हजार पुत्र तुम्हारे ही प्रभावसे स्वर्गगामी होंगे। तुम्हारा पौत्र सगरके पुत्रोंको पवित्र करनेके लिये महादेवकी आराधना कर गङ्गाको यहां लावेगा।' अनन्तर अंशुमान कपिलदेवसे विदा हो घोड़ेके साथ सगरके पास पहुंचे। राजाने वह अश्व पा कर यज्ञ समाप्त किया। पीछे उन्होंने बहुत दिनों तक राज्यशासन कर पौत्र पर राज्यभार सौंप स्वर्गयात्रा की।

अंशुमान्‌के पुत्र दिलीप थे। दिलीपने पितरोंका उद्धार करनेके लिये गंगा लानेकी बड़ी चेष्टा की, किन्तु वे कुछ भी कृतार्थ न हो सके। पीछे दिलीपके पुत्र भगीरथने गङ्गाको ला कर सगरके साठ हजार पुत्रोंका उद्धार किया। (भारत वनपर्व १०५-६ अ०)

रामायणके आदिकाण्डमें ४० सर्ग तक सगरका उपा-

उपान आया है। रामायणके मतमें विशेषता यह है, कि राजा सगरने अंशुमान्‌के मुखसे हो पुत्रों का मृत्युसंवाद सुना तथा यज्ञाश्व प्राप्त न कर कल्पसूत्रोक्त विधानके अनुसार यज्ञ समाप्त किया था।

(त्रि०) ३ गर अर्थात् विषके साथ वर्त्तमान, विष युक्त।

सगर (हि० पु०) १ तालाब। २ झील।

सगरी (सं० स्त्री०) एक प्राचीन नगरीका नाम।

सगर्भ (सं० पु०) समानो गर्भो यस्य, समानस्य स आदेशः। १ एक ही गर्भसे उत्पन्न सहोदर, सगा। (शब्दरत्ना०) २ अन्तर्गत सूक्ष्मपत्रादियुक्त। ३ गर्भ विशिष्ट।

सगर्भा (सं० स्त्री०) १ गर्भवती स्त्री, वह स्त्री जिसे गर्भ हो। २ सहोदरा, सगी बहन।

सगर्भ्य (सं० पु०) समानगर्भे भवः (सगर्भसयूथसनुतात् यन्। पा ४।४।११४) इति यत्। १ सहोदर, एक ही गर्भमें उत्पन्न। (शुक्लयजु० ४।२०)

सगलगी (सं० स्त्री०) घासिका मास, गोश्त।

सगरा (हि० पु०) शोभाञ्जन, सहिजन।

सगर्व (सं० त्रि०) गर्व्वेण सह वर्त्तमानः। अहङ्कारी, अभिमानी।

सगा (हि० वि०) १ एक मातासे उत्पन्न सहोदर। २ जो सम्बन्धमें अपने ही कुलका हो, बहुत ही निकटके सम्बन्धका।

सगाई (हि० स्त्री०) यह निश्चय कि अमुक कन्याके साथ अमुक वरका विवाह होगा, विवाहसम्बन्धी निश्चय मंगनी। २ स्त्री पुरुषका वह सम्बन्ध जो छोटी जातियोंमें विवाह हाके तुल्य माना जाता है। प्राय ऐसा सम्बन्ध विधवा या पति परित्यक्ता स्त्रीके साथ होता है। ३ सम्बन्ध, नाता, रिश्ता।

सगाना (फा० पु०) खञ्जन पक्षी ममोला।

सगापन (हि० पु०) सगा होनेका भाव, सम्बन्धकी आत्मीयता।

सगाबी (फा० स्त्री०) १ एक प्रकारका नेवला। २ ऊद बिलाव नामक जन्तु जो पानीमें रहता है।

सगावत (हि० स्त्री०) सगा होनेका भाव, सम्बन्धकी आत्मीयता, सगापन।

सगु (सं० त्रि०) गायमें साउका सगम।

सगुण (सं० त्रि०) गुणैः सह वर्त्तमानः। १ गुणयुक्त गुणवान्। २ (पु०) ३२ परमात्मा वह रूप जो सत्त्व रज और तम तीनों गुणोंसे युक्त है, साकार ब्रह्म। ३ वह सम्प्रदाय जिसमें ईश्वरका सगुण रूप मान कर अवतारोंकी पूजा होती है। मध्यकालसे उत्तरीय भारतमें भक्तिमार्गके दो भिन्न सम्प्रदाय हो गये थे। एक ईश्वरके निर्गुण निराकार रूपका ध्यान करता हुआ मोक्षकी प्राप्तिकी आशा रखता था और दूसरा ईश्वरका सगुणरूप राम, कृष्ण आदि अवतारोंमें मान कर उनकी पूजा कर मोक्षकी इच्छा रखता था। पहले मतके कबीर, नानक आदि मुख्य प्रचारक थे और दूसरेके तुलसी, सूरदास आदि।

सगुणता (सं० स्त्री०) सगुण होनेका भाव, सगुण पन।

सगुणवती (सं० स्त्री०) सगुण मतुप् मस्य व, स्त्रियां ङीप। सगुणविशिष्टा, गुणवती।

सगुणा (सं० स्त्री०) गुणविशिष्टा, गुणवती।

सगुणिन् (सं० त्रि०) सगुण अस्त्यर्थे इनि। सगुण विशिष्ट, गुणयुक्त।

सगुन (हि० पु०) १ शकुन देखो। २ सगुण देखो।

सगुनाना (हि० क्रि०) १ शकुन बतलाना। २ शकुन निकालना या देखना।

सगुनिया (हि० पु०) वह मनुष्य जो लोगोंका शकुन बतलाता हो, शकुन विचारने या बतलानेवाला।

सगुनौती (हि० स्त्री०) प्रचलित विश्वासके अनुसार वह क्रिया जिससे भावी शुभाशुभका निर्णय किया जाता है, शकुन विचारनेकी क्रिया।

सगृह (सं० त्रि०) गृहेण सह वर्त्तमान। १ गृहयुक्त, घरवाला। २ सपत्नीक, जिसकी स्त्री वर्त्तमान हो।

सगोती (हि० पु०) १ एक गोत्रके लोग, सगोत्र। २ आपसदारीके या रिश्ते नातेके लोग, भाई बन्धु।

सगोत्र (सं० क्ली०) समानं गोत्रमिति समानस्य स आदेशः। कुल। (पु०) समानं गोत्रमस्य (ज्योतिर्जनपद रात्रिनाभिनामगोत्ररूपस्थानवर्णवयोवचनबन्धुषु। पा ६।३।८५) इति समानस्य स। २ सजातीय एक गोत्रका।

सगोनोमर (हि० पु०) शालवृक्ष सागौन।

सगोष्ठी (सं० स्त्री०) जिसकी गोष्ठी वर्त्तमान हो।

सगोनी (हिं० स्त्री०) गानेका साम, गोणत।

सगौरव (सं० त्रि०) गौरवविशिष्ट, गुरुतायुक्त।

सग्धि (सं० स्त्री०) सहभोजन, एकत्र भोजन।

सग्म (सं० पु०) यजमान। (शुक्ल यजु० ४।२६)

सघ—बौद्ध यतिभेद। (तारनाथ)

सघन् (सं० पु०) गृध्रिनी, शकुनि।

सघन (सं० त्रि०) १ घना, अविरल, गुंजान। २ ठोस, ठस।

सघनता (सं० स्त्री०) सघन होनेका भाव, निविडता।

सघृण (सं० त्रि०) घृणया सह वर्त्तमानः। घृणायुक्त, घृणाविशिष्ट।

सङ्कक्षिका (सं० स्त्री०) वाझोंका परिधेय वासविशेष।

सङ्कट (सं० त्रि०) सम् (संप्रोदश्च कटच्। पा ५।२।२९) वा सम्यक् कटति आवृणोतीति सङ्कटं अच्। १ आपद्-जनक, दुःखदायी। २ सङ्कीर्ण, संकरा, तंग। ३ जनता-युक्त, घनीभूत। ४ एकत्रित, एकत्र किया हुआ। ५ निविड। ६ अभेद्य, अनुत्तीर्य। (क्ली०) ७ विपत्ति, आफत, मुसीबत। ८ दुःख, कष्ट, तकलीफ। ९ समूह, भीड़। १० वह तंग पहाड़ी रास्ता जो दो बड़े और ऊंचे पहाड़ोंके बीचसे हो कर गया हो।

सङ्कटचतुर्थी (सं० स्त्री०) व्रतविशेष। श्रावण मासकी कृष्णा चतुर्थीमें यह व्रत करना होता है।

सङ्कटस्थ (सं० त्रि०) १ विपद्ग्रस्त, संकटमें पड़ा हुआ। २ दुःखी।

सङ्कटा (सं० स्त्री०) सम्यक् कटति आवृणोति या सम्-कट-अच्-टाप्। देवीविशेष, सङ्कटा देवी। बड़े सङ्कट-में पड़ कर इन देवीकी पूजा करनेसे सङ्कटका निवारण होता है, इसीसे यह देवी सङ्कटा नामसे पूजित होती है। वाराणसीमें यह देवी प्रसिद्ध है। मनस्कामनाकी सिद्धिके लिये हिन्दू रमणियाँ सङ्कटाव्रत करती हैं। पहले अग्र-हायण मासके शुक्लपक्षके शुक्रवारको सङ्कटाव्रत आरम्भ करना होता है। इसके बाद प्रति वर्ष उसी मासके शुक्लपक्षके शुक्रवारको अन्यान्य मासके शुक्लपक्षमें भी इस देवी पूजाका विधान है। देवीकी पूजाके बाद स्त्रियाँ पारणस्वरूप केवल मुखमें धूल रख कर व्रत समाप्त करती हैं। उक्त मासमें उसी दिन बिना नमककी खिचड़ी पका कर खानेका विधान है।

२ ज्योतिषके मतसे आठ योगिनियोंमेंसे एक योगिनी।

सङ्कटाक्ष (सं० पु०) सङ्कट अश्नातीति अश व्याप्तौ अण्। धववृक्ष, धौंका पेड़।

सङ्कटिक (सं० त्रि०) सङ्कट सम्बन्धी।

सङ्कटिन् (सं० त्रि०) सङ्कट (प्रेक्षादित्वादिन। पा ४।२।८०) सङ्कटयुक्त, विपद्ग्रस्त।

सङ्कथन (सं० क्ली०) सम्यक् कथनं। सम्यक् भाषण।

सङ्कथा (सं० स्त्री०) १ सम्यक् कथा। २ परस्पर भाषण।

सङ्कर (सं० पु०) सङ्कीर्यते इति संकृ विक्षेपे अप्। १ सम्मार्जनी द्वारा क्षिप्त धूलि प्रभृति, वह धूल जो झाड़ देनेके कारण उड़ती है।

पर्याय—अवकर, सङ्कार। (शब्दरत्ना०) २ मिश्रित-तत्त्व, मिश्रण, मिलन। ३ अग्नि चटत्कार, आगके जलने-का शब्द। ४ नैयायिकोंके मतसे परस्पर अत्यन्ताभाव और समानाधिकरणका ऐकाधिकरण्य। ५ वर्णसङ्कर जाति। विभिन्न वर्णके संसर्गसे जिसका जन्म होता है, उसीको सङ्करवर्ण कहते हैं। वर्णसङ्कर देखो।

जिस राज्यमें वर्णदूषक सङ्कर वर्ण उत्पन्न होता है, वह राज्य जल्दी ही चौपट लग जाता है। इसलिये राज्यमें जिससे सङ्करवर्णकी सृष्टि होने न पावे, उस ओर विशेष लक्ष्य रखना चाहिये।

५ शब्द और अलङ्कारोंका मिश्रण। एक जगह दो या तीन अलङ्कार मिश्रित होनेसे सङ्कर कहलाता है। इस अलङ्कारका मिश्रण सङ्कर और संसृष्टि भेदसे दो प्रकार-का है। संसृष्टि शब्द देखो।

अलङ्कारोंके एकत्र मिश्रित होनेसे उन्हें संसृष्टि और सङ्कर कहते हैं। यह व्यक्त, अव्यक्त और व्यक्ताव्यक्त भेदसे तीन प्रकारका है। जैसे,—तिल तण्डुल और छायादर्श अर्थात् तिल और तण्डुल पृथक् पृथक् हैं, फिर एक साथ भी हैं। दर्पण और प्रतिबिम्ब यह एकत्र है, फिर पृथक् भी है, इसीका नाम व्यक्त है। अलङ्कारका इस प्रकार मिश्रण जहां होता है, वहां

सशुद्धि हुई है ऐसा कहना होगा। और मीर जल वायु और पार्थिव इनके निश्वास परोभाव प्राप्त होता है, इसीलिये इनका नाम अव्यक्त है। इस प्रकार अव्यक्त मिश्रण होनेसे सङ्कर होगा। (भावप्रकाश)

सङ्करक (स० वि०) मिश्रणशील, मिलनेवाला।

सङ्करकृत्या (स० स्त्री०) सङ्करीकरण। (मनु ११।१२९)

सङ्करता (स० स्त्री०) सङ्करस्य भाव तल टाप्। सङ्कर होनेका भाव या धर्म, साङ्कर्य, मिलावट।

सङ्कराश्व (स० पु०) खच्चर।

सङ्करित (स० वि०) मिश्रित, जिसमें मिलावट हो मिला हुआ।

सङ्करिन् (स० त्रि०) जो भिन्न वर्ण या जातिके पिता और माताम उत्पन्न हो सङ्कर होगया। (भरत मल्लिक) (स्त्री०) २ सङ्करी देखो।

सङ्करी (स० स्त्री०) सम-कृ-अच्, गौरादित्वात् ङीष्। सद्यदूषित कन्या। (मल्लि)

सङ्करीकरण (स० क्ली०) असङ्कर सङ्कर क्रियतेऽनेनेति सङ्कर कृ ल्युट्, अभूततद्भावे च्वि। १ नौ प्रकारके पापों मेंसे एक प्रकारका पाप। गधे, घोडे, ऊंट मृग हाथी, बकरा मेढा, मीन, सांप या भैसेका वध करनेसे यह पाप होता है। प्रायश्चित्तविवेकमें लिखा है कि इस सङ्करीकरण पापका अनुष्ठान किये जाने पर उसके प्राय श्चित्त स्वरूप एक महीना जौ भोजन तथा कृच्छ्र या अतिकृच्छ्र प्रायश्चित्त करनेसे इस पापकी शुद्धि होती है। २ एकत्रीकरण, दो पदार्थोंको एकमें मिलानेकी क्रिया। ३ जातिभ्रंशकरण।

सङ्कर्ष (स० पु०) सङ्कृ घञ्। सम्यक् कर्षण आकर्षण।

सङ्कर्षण (स० पु०) सम्यक् कर्षतीति सङ्कृष-ल्यु। १ कृष्णके भाई बलरामका एक नाम। २ आकर्षण, खींचने की क्रिया। ३ कृषिकर्म हलसे जोतनेकी क्रिया। ४ वैष्णव सम्प्रदायका एक भेद। ५ वैष्णवों का एक सम्प्रदाय। इसके प्रवर्तक निम्बार्क थे।

सङ्कर्षण—भारतवासी हारावलीकार तथा शाक्य मन्यु इन दोनोंके आचार्य रचयिता। ये ... नाम ... पुत्र थे।

सङ्कर्षणशरण—दैवज्ञधर्मसुरद्रुममञ्जरीके प्रणेता।

सङ्कर्षणसूरि—भूमिहस्तपूरके प्रणेता।

सङ्कर्षणीश्वरतीर्थ (स० क्ली०) तीर्थविशेष। (रेवा)

सङ्कर्षिन् (स० त्रि०) सम्यक् रूपसे आकर्षणकारी सूत्र को खींचनेवाला।

सङ्कल (स० पु०) सम कल भावे अच्। १ सङ्कलन, बहुत सी चीजोंको एक स्थान पर एकत्र करना। २ योग, मिलाना। ३ गणितकी एक क्रिया जिसे जोड़ कहते हैं। सङ्कलन देखो।

सङ्कलन (स० क्ली०) सम कल ल्युट्। १ एकत्रीकरण, योजन। लीलावतीमें लिखा है कि 'स योजनायुता सङ्कलन' संयोजन अर्थात् एकत्र मिलन या योग होता है इसलिये इसे सङ्कलन कहते हैं। २ संग्रह, ढेर। ३ अनेक ग्रन्थोंसे अच्छे अच्छे विषय चुननेकी क्रिया। ४ वह ग्रन्थ जिसमें ऐसे चुने हुए विषय हों।

सङ्कलित (स० वि०) सम कल क्त। १ लवादि द्वारा संयुक्त। पर्याय—संगृह। (अमर) २ योजित, जोड़ लगाया हुआ। ४ एकत्र किया हुआ, इकट्ठा किया हुआ।

सङ्कलितन् (स० त्रि०) सङ्कलित देखो।

सङ्कसुर (स० पु०) सांकुसा पाप।

सङ्कल्प (स० पु०) १ कार्य करनेकी वह इच्छा जो मनमें उत्पन्न हो, विचार इरादा। २ दान, पुण्य या और कोई देवकार्य आरम्भ करनेसे पहले एक निश्चित मन्त्रका उच्चारण करते हुए अपना दृढ़ निश्चय या विचार प्रकट करना। ३ वह मन्त्र जिसका उच्चारण करके इस प्रकार का निश्चय या विचार प्रकट किया जाता है। इस मन्त्रमें प्रायः संवत् मास, तिथि, वार, स्थान, दाता या कर्त्ताका नाम उद्देश और दान या कृत्य आदिका उल्लेख होता है। ४ दृढ़ निश्चय अथवा विचार। ५ सङ्कल्पके एक पुत्रका नाम। (हरिवंश) ६ ब्रह्माके एक पुत्रका नाम।

सङ्कल्पज (स० त्रि०) सङ्कल्पविनिष्ट।

सङ्कल्पजन्मन् (स० पु०) सङ्कल्पात् जन्म यस्य। कामदेव कन्दर्प।

सङ्कल्पन (स० क्ली०) सङ्कल्प ल्युट्। सङ्कल्प, अभिलाषा, इच्छा।

सङ्कल्पना (सं० स्त्री०) सङ्कल्पन-टाप्। १ सङ्कल्प करनेकी क्रिया। २ वासना, इच्छा, अभिलाषा।

सङ्कल्पनामय (सं० त्रि०) सङ्कल्पना-मयट्। सङ्कल्पनास्वरूप।

सङ्कल्पनागरी (सं० स्त्री०) अणिमादि सिद्धि।

सङ्कल्पनीय (सं० त्रि०) सङ्कल्प-अनीयर्। सङ्कल्पार्ह, सङ्कल्प करनेके योग्य।

सङ्कल्पभव (सं० पु०) सङ्कल्पात् भव उत्पत्तिर्यस्य। १ कामदेव। (त्रि०) २ अभिलाष सम्भूत मात्र।

सङ्कल्पयोनि (सं० पु०) सङ्कल्पात् योनिर्यस्य। कामदेव।

सङ्कल्पराम (सं० पु०) एक आचार्यका नाम। ये नारायणस्वामी और सत्सुखानुभवके प्रणेता इच्छारामके गुरु थे।

सङ्कल्पा (सं० स्त्री०) दक्षकी एक कन्या जो धर्मकी भार्या थी।

सङ्कल्पावत् (सं० त्रि०) सङ्कल्प अस्त्यर्थे मतुप् मस्य-व। सङ्कल्पविशिष्ट।

सङ्कल्पितव्य (सं० त्रि०) संकल्प-तव्य। सङ्कल्पके योग्य।

सङ्कष्टहरव्रत (सं० क्ली०) व्रतविशेष।

सङ्कसुक (सं० त्रि०) सम्यक् कसति इतस्ततो गच्छतीति सम्-कस गतौ (शमि कसे कस्न। उण् ४।२६) इति उकञ्। १ अस्थिर। २ दुर्बल। ३ मन्द। ४ सङ्कीर्ण। ५ अपवादशील। ६ दुर्जन। ७ अनित्य।

सङ्का (सं० त्रि०) एकत्र शब्दकारक, एक साथ शब्द करने या चिल्लानेवाला। (ऋक् ६।७५।५)

सङ्कार (सं० पु०) सङ्कीर्यते इति सं-कृ विक्षेपे घञ्। १ सम्मार्ज्जनी द्वारा क्षिप्त धूलि, कूड़ा कर्कट या धूल जो झाड़ देनेसे उड़े। (शब्दरत्ना०) २ अग्नि चटत्कार, आगके जलनेका शब्द।

सङ्कारी (सं० स्त्री०) नवदूषित कन्या।

सङ्कालन (सं० क्ली०) सङ्कलन देखो।

सङ्काश (सं० अव्य०) सम्यक् काशते प्रकाशते इति काश पचाद्यच्। १ सदृश, समान, मिलते जुलते। २ अन्तिक, समीप, निकट।

सङ्किल (सं० पु०) दहनोल्का। (त्रिका०)

सङ्किस—युक्तप्रदेशके फर्रुखाबाद जिलान्तर्गत एक प्राचीन जनपद। अभी यह उजाड़-सा हो रहा है, पूर्वस्मृति बिलकुल नहीं है। वर्त्तमान सङ्किस ग्राम उसके ऊपर अवस्थित है। यह नगर फतेगढ़से २३ मील पश्चिम काली नदीके किनारे अवस्थित है। ४१५ ई०में फा-हियान और ६३६ ई०में यूएनचुवंग यह नगर देख कर यहांके बौद्धप्रभावका उल्लेख कर गये हैं। यही सुप्राचीन साङ्काश्य नगरी है।

यह स्थान बौद्धोंका एक पवित्र तीर्थ है। प्रवाद है, कि शाक्यबुद्ध तीन मास त्रयस्त्रिंशत् स्वर्गमें रहनेके बाद स्वर्गसे इन्द्रके साथ यहां उतरे। यहां उन्होंने अपनी माता मायाको धर्मोपदेश दिया। बुद्धदेव जिन सोने, चांदी और मणिकी सीढ़ियोंके बल पृथ्वी पर उतरे थे, वे सीढ़ियां उनके आविर्भावके बाद ही भूगर्भमें विलीन हो गईं, केवल उनके स्थान पदचिह्न उस स्थानमें दिखाई देते हैं। सम्राट् अशोकने उस घटनाको चिरस्मरणीय रखनेके लिये एक बड़े मन्दिरमें स्तम्भ खड़ा करा दिया था। यूएनचुवंग यह मन्दिर और स्मृतिस्तम्भ देख गये हैं। दुःखका विषय है, कि अभी उसका चिह्नमात्र भी नहीं है।

वर्त्तमान ग्राम ४१ फुट ऊंचे और १५००×१००० फुट चौड़े स्तूपके ऊपर बसा हुआ है। उस स्थानके अधिवासी उसको किला या प्राचीन दुर्गस्थान कहते हैं। यहांसे एक मील दक्षिण एक दूसरा इष्टकस्तूप दिखाई देता है। उसके ऊपर विशारीदेवी (विशाली) का मन्दिर विद्यमान है। उस मन्दिरस्तूपसे ४०० फुटकी दूरी पर एक स्तम्भचूड़ा पड़ी हुई है। उसका घण्टाकार गठन और उपरिस्थ हस्तिमूर्त्तिके साथ अशोकके प्रयागस्थ स्तम्भका सौसादृश्य देख कर डा० कनिंहम उसे ई०सन्से ३ सदी पहले स्थापित स्तम्भ अनुमान करते हैं।

विशारीदेवीमन्दिरसे २०० फुट दक्षिण एक दूसरा छोटा स्तूप दिखाई देता है। इससे ६०० फुट पूरब ६००×५०० फुट विस्तृत निवि-का कोट नामक एक और स्तूप है। यह किसी बौद्ध सङ्घारामका ध्वस्त निदर्शन-सा प्रतीत होता है। उक्त दुर्ग तथा विशाली

मन्दिरके चारों ओर २०००×२००० फुट विस्तृत स्थान की स्तूपराशि तथा ध्वंसावशेषका निरीक्षण करनेसे प्राचीन नगरकी पूर्ण समृद्धिका यथेष्ट प्रमाण मिलता है। ऐतिहासिकोंकी धारणा है, कि दिल्लीश्वर पृथ्वीराजके साथ कन्नौजपतिका जो युद्ध हुआ था उसीमें यह नगर ध्वंस हुआ। इसके पास ही सरायघाट नामक मुहल्लेमें और भी कितने ध्वस्त निदर्शन पड़े हुए हैं।

सङ्कीर्ण (सं० पु०) सं कृ क्त। १ जनादि द्वारा निरवकाश, बहुत लोगोंका एकत्र होना, भीड़। पर्याय—सङ्कुल, आकीर्ण, निचित, व्याप्त, समाकीर्ण। (शब्दरत्ना०) २ सङ्कट विपत्ति। (अमर) ३ परस्पर विजातीय। (भरत) ४ वर्णसङ्कर। ५ वह राग या रागिणी जो दो अन्य रागों या रागिणियोंको मिला कर बने। इसके सोलह भेद कहे गये हैं—चैल मङ्गलक नगनिका, चर्चा, अति नाउ, उत्तरी, दोहा, वहुला, गुर्जरला गीता, गोनि, देश्ना, कोपी कारिका, त्रिपदिका और अधा। ६ साहित्यमें एक प्रकारका गद्य जिसमें कुछ वृत्तगन्धि और कुछ अवृत्त गन्धिका मेल होता है। (त्रि०) ७ अशुद्ध, अपवित्र। ८ सङ्कुचित, संकरा, तंग। ९ तुच्छ, नीच। १० क्षुद्र, छोटा।

सङ्कीर्णता (सं० स्त्री०) १ सङ्कीर्ण होनेका भाव। २ सकरापन, तंगी। ३ क्षुद्रता ओछापन। ४ नीचता।

सङ्कीर्णीकरण (सं० क्ली०) सङ्कोरण, फैली हुई वस्तुको एकत्र करना या सिमेटना।

सङ्कीर्तन (सं० क्ली०) सं कीर्त ल्युट्। सम्यक प्रकारसे देवताका नामोच्चारण। गुणादिकथन, गान द्वारा भगवद्गुणवर्णन। सङ्कीर्तन माहात्म्यके विषयमें लिखा है, कि जहां भगवानका नामसंकीर्तन होता है, वह स्थान परम पवित्र है तथा उस स्थानमें जिसकी मृत्यु होती है, वह मुक्ति लाभ करता है। सङ्कीर्तन ध्वनि सुन कर जो व्यक्ति नृत्य करता है उसके पादरज स्पर्शसे पृथ्वी सद्य पूता होती है। (बृहन्नारदीय)

नारदपञ्चरात्रमें लिखा है कि पुष्करतीर्थमें नारदसे ब्रह्माने कहा था, कि तुम वीणाध्वनिके साथ श्रीकृष्णका रसमङ्गीत अर्थात् गोपियोंका वस्त्रहरण, रास महोत्सव आदि भगवानका गुणवर्णनरूप सङ्कीर्तन करो। यह कृष्णसङ्कीर्तन सुनते ही मनुष्य पवित्रता लाभ करते हैं। सात आदमी मिल कर जहां यह सङ्कीर्तन करते हैं, वहां सभी पुण्यतीर्थ तथा स्वयं मूर्तिमती पुण्य अचलभावमें खड़ी होती हैं तथा उनकी सङ्कीर्तनध्वनि सुननेसे पाप दूर भाग जाता है। कृष्णसङ्कीर्तन करनेसे जीवका अतिपातक, महापातक और उपपातक विनष्ट होता है।

भक्तिरसामृतसिन्धुमें यह लिखा है —

"नामलीलागुणादीनामुच्चैर्भाषातुकीर्त्तनं।"

(२ लहरी पूर्वभाग)

अर्थात् नाम, लीला और गुणादिक उच्चैःस्वरसे उच्चारण करनेको ही कीर्त्तन कहते हैं। शास्त्रमें नाम कीर्त्तन, लीलाकीर्तन और गुणकीर्त्तन इन तीनों ही प्रकारके कीर्त्तनका यथेष्ट माहात्म्य गाया गया है। उपास्य देवताकी नामलीला और गुणसङ्कीर्तनकी प्रथा प्राचीन वैदिक कालसे ही चली आती है। ऋषि लोग एकत्र हो कर विविध छन्दोंसे वैदिक मन्त्रका उच्चारण करते थे। अन्तमें इस प्रथाको पुष्ट करनेके लिये गीत छन्दोंमें मन्त्र रचे गये। परवर्त्ती कालमें इन सब कीर्त्तन कारियोंकी भाषा साम गानमें परिणत हुई। सामवेद संहिता इस वैदिक सङ्कीर्तनकी ही साक्षीरूपमें आज भी विराजमान है। सङ्कीर्तन द्वारा उपासना प्रणाली जो वैदिक युगमें भी थी साम सङ्गान ही उसका प्रमाण है। वैदिकयुगके बाद भी इस प्रथाका विलोप नहीं हुआ। पौराणिक साहित्यमें श्रीभगवान्‌के नामगुण लीलादि कीर्त्तनका यथेष्ट उल्लेख है।

श्रीमद्भागवतमें कलियुगकी उपासनाके सम्बन्धमें संकीर्तनकी व्यवस्था की गई है। (११ स्कन्ध)

प्राचीन संस्कृत साहित्यकी आलोचना करनेसे मालूम होता है, कि नामलीला और गुणादिका जोरसे उच्चारण करना ही सङ्कीर्तन है। किन्तु अति प्राचीन वैदिक युगका साममन्त्र ही यथार्थमें गाया जाता था। ऋषिगण दलके दल आ कर यज्ञादिमें सामगान करते थे। वैदिक मन्त्रके पवित्र संकीर्तनसे यज्ञस्थली गूंज उठती थी। सैकड़ों पवित्रचेता ऋषि विस्मयसे आंखें फाड़ फाड़ कर उस सङ्कीर्तन सम्प्रदायकी ओर देखते थे तथा भक्तिभावसे नामसङ्कीर्तन सुनते थे। क्रमसे

इस पद्धतिका प्रचार कम तथा कब यह लुप्तप्राय हो गया, उसका पता लगाना कठिन है। किन्तु परवर्त्ती समयमें बहुत दिनों तक शायद इस प्रथाका वैसा प्रचार न रहा होगा। पौराणिक साहित्यमें यह कीर्त्तन-माहात्म्य अच्छी तरह लिपिबद्ध रहने पर भी कीर्त्तन उपासनाका अङ्ग है, ऐसा कह कर इस देशमें बहुत दिनों तक न समझा गया।

वर्त्तमान कालमें सङ्कीर्त्तन कहनेसे जिस आनन्दमय कीर्त्तनकी बात इस देशका आबालवृद्धवनिताको याद आ जाती है, नवद्वीपके अवतार श्रीगौराङ्ग महाप्रभु ही उस सङ्कीर्त्तनके प्रवर्त्तक थे। मृदङ्ग, करताल, रामशिङ्गार, आदि वादनादोंसे उद्घोषित, ध्वजपताकाधारी भक्तोंके भक्तिपूर्ण कण्ठसे निनादित, विविध नर्त्तनविलाससे पुष्ट जिस सङ्कीर्त्तनके महारोलसे गौड़ीय भक्तोंके प्राणमें गोलकका सुखमय भाव जग उठा वह श्रीगौराङ्ग महाप्रभुके द्वारा ही सबसे पहले प्रवर्त्तित हुआ था।

फलतः हमलोगोंके श्रुतिपुराणादिसे सङ्कीर्त्तन द्वारा धर्मसाधनके यथेष्ट प्रमाण देखनेमें आते हैं। किन्तु श्रीगौराङ्गदेवने सङ्कीर्त्तन-प्रथाको जैसा अनुप्राणित और सञ्जीवित कर दिया था, सङ्कीर्त्तनके इतिहासमें इसका वैसा प्रभाव तथा विस्तार और कहीं भी दिखाई नहीं देता। आज भी भारतमें घर घर सङ्कीर्त्तनकी भुवन पावन मङ्गलमय ध्वनि प्रायः प्रतिदिन सुनी जाती है।

कृष्णकीर्त्तन देखो।

सङ्कीर्त्तना (सं० स्त्री०) सङ्कीर्त्तन-टाप्। सङ्कीर्त्तन देखो।

सङ्कीर्त्तित (सं० त्रि०) सं-कीर्त्ति-क्त। १ सम्यगुच्चारित। २ संस्तुत। ३ वर्णित।

सङ्कील (सं० पु०) पुराणानुसार एक ऋषिका नाम।

सङ्कुचन (सं० क्ली०) १ सङ्कुचित होनेका क्रिया, सिकुड़ना। (पु०) २ बालकोंका एक प्रकारका रोग जिसकी गणना बाल-ग्रहमें होती है। ३ सङ्कुटन देखो।

सङ्कुचित (सं० क्ली०) सं-कुच-क्त। १ सङ्कोचयुक्त, लज्जित। २ सिकुड़ा हुआ, सिमटा हुआ। ३ सङ्कीर्ण, तग, संकरा। ४ अनुदार, क्षुद्र।

सङ्कुटन (सं० क्ली०) सं-कुट-ल्युट्। मृत्यु, मरण।

सङ्कुल (सं० क्ली०) सङ्कुलतीति संकुल संस्त्याने इगुपधेति कः। १ युद्ध, समर, लड़ाई। २ परस्पर पराहतवाक्य। पर्याय—क्लिष्ट (भरत) परस्पर विरुद्ध-वाक्य। ३ असङ्गत वाक्य, ऐसे वाक्य जिनमें परस्पर किसी प्रकारकी संगति न हो। ४ समूह, झुंड। ५ भीड़। ६ जनता। (त्रि०) सङ्कुलति सङ्कुलं कुरुत-बन्धुसंहत्योः संपूर्वः इगुपधात् कः। ७ जनादि द्वारा निरवकाश, भरा हुआ, घना। पर्याय—संकीर्ण, आकीर्ण, कलिल, गहन, वहुलोकसमाकीर्ण।

सङ्कुलित (सं० त्रि०) सं-कुल-क्त। १ जो संकुलित हो, भरी हुई। २ व्यस्त। ३ घना।

सङ्कुश (सं० पु०) मत्स्यविशेष, एक प्रकारकी मछली। इसे शङ्कु भी कहते हैं।

सङ्कुसुमित (सं० त्रि०) सम्यक् प्रस्फुटित, विकसित। बुद्धका 'नक्षत्रराजसङ्कुसुमिताभिज्ञ' नाम है।

सङ्कृति (सं० त्रि०) सम्यक्रूपसे या यथारीति निष्पन्न।

सङ्क्लृप्ति (सं० स्त्री०) इच्छा, वासना।

सङ्केत (सं० पु०) मारत्यनेऽकर्तरि च सं-कित घञ्। १ अपना भाव प्रकट करनेके लिये किया हुआ कायिक परिचालन या चेष्टा, इङ्गित, इशारा। २ कामशास्त्र सम्बन्धी इंगित, शृंगार-चेष्टा। ३ प्रेमी प्रेमिकाके मिलनेका पूर्व निर्दिष्ट स्थान, वह स्थान जहां प्रेमी और प्रेमिका मिलना निश्चित करें, सहेट। ४ चिह्न, निशान। ५ पतेकी बातें।

सङ्केतक (सं० क्ली०) सङ्केत स्वार्थे कन्। सङ्केत।

सङ्केतकेतन (सं० क्ली०) सङ्केतस्थान।

सङ्केतनिकेतन (सं० क्ली०) संकेतस्य निकेतनं। संकेत निकेत, प्रेमी प्रेमिकाके मिलनेका निर्दिष्ट स्थान।

सङ्केतभूमि (सं० स्त्री०) संकेतस्य भूमिः। संकेतस्थान, संकेतनिकेत।

सङ्केतगतप्रवेश (सं० पु०) बौद्धोंकी समाधि।

सङ्केतवाक्य (सं० क्ली०) संकेतज्ञतकं वाक्यं। संकेतज्ञतकवाक्य, जो वाक्य बोलनेसे प्रेमी उसका अभिप्राय जान सके उसे संकेतवाक्य कहते हैं।

सङ्केतस्तव (सं० पु०) शाक्तसम्प्रदायोक्त स्तुतिविशेष।

सङ्केतस्थान (स० क्ली०) सङ्केतस्य स्थान। सङ्केत भूमि सङ्केतनिकेतन।

सङ्केतोद्यान (स० क्ली०) सङ्केतकानन। श्रीकृष्ण गोप बालकोंको गौ चरानेमें नियुक्त कर सङ्केतकाननमें श्रीराधाको ले कर क्रीडा करते थे।

सङ्कोच (सं० पु०) सङ्कुचनोति सम् कुच घञ्। १ मत्स्यविशेष, एक प्रकारकी मछली। २ सिकुड़नेकी क्रिया खिंचाव, तनाव। ३ लज्जा, शर्म। ४ भय। ५ आगा पीछा, सोच पेच, हिचकिचाहट। ६ कमी। ७ एक अलङ्कार जिसमें 'विकास अलङ्कार' से विरुद्ध वर्णन होता है। या किसी वस्तुका अतिशय सङ्कोच वर्णन किया जाता है, सङ्क्षेप। श्राद्धविवेकमें इसका लक्षण इस प्रकार लिखा है, "सामान्यशास्त्रस्य विशेषविषयत्व सङ्कोच।"

(क्लो०) ८ कुङ्कुम, केसर।

सङ्कोचक (स० त्रि०) सङ्कुचनोति सं कुच ण्वुल्। सङ्कोचनकारी।

सङ्कोचन (स० क्ली०) सं-कुच ल्युट्। सङ्कोचकरण, सिकुड़नेकी क्रिया।

सङ्कोचना (स० स्त्री०) सम् कुच-ल्यु, टाप्। लज्जालु नामकी लता। (रत्नमाला)

सङ्कोचपत्रक (स० त्रि०) वृक्षोंका एक प्रकारका रोग। इसमें उनके पत्तोंके ऊपर कुछ दाने से निकल आते हैं और पत्ते सिकुड़ जाते हैं।

सङ्कोचपिशुन (स० क्ली०) सङ्कोचेन पिशुनं। कुङ्कुम, केसर। (भावप्र०)

सङ्कोचित (स० त्रि०) १ सङ्कोचयुक्त, जिसमें सङ्कोच हो। २ अविकसित जो विकसित या प्रफुल्लित न हो। ३ लज्जित, शर्मिंदा। (पु०) ४ तलवारके बत्तीस हाथोंमेंसे एक हाथ तलवार चलानेका एक ढंग या प्रकार।

सङ्कोचिन् (स० त्रि०) १ सङ्कोच करनेवाला। २ सिकुड़नेवाला। ३ जिसे सङ्कोच या लज्जा हो, शर्म करनेवाला।

सङ्कोचिता (स० स्त्री०) सङ्कोचिन् तल् टाप्। सङ्कोचका भाव या धर्म।

सङ्क्रन्द (स० पु०) १ क्रन्दन, रोना। २ शोक प्रकाश करना। ३ युद्धादि आस्फालन।

सङ्क्रन्दन (स० पु०) सङ्क्रन्दयति असुरानिति सम् क्रन्द णिच् ल्यु। शक्र, इन्द्र। (अमर) २ पुराणानुसार भौत्य मनुके एक पुत्रका नाम। (मार्कण्डेयपु० १००।३२) सम् क्रन्द भावे ल्युट्। (क्ली०) ३ क्रन्दन रोना। सङ्क्रन्दयति शत्रुनिति। (त्रि०) ४ शत्रुनाशक।

सङ्क्रम (स० पु० क्ली०) सङ्क्रामति अनेन सङ्क्रम्यतेऽसौ वा सम् क्रम घञ्। १ सम्प्रवेश कष्ट या कठिनतापूर्वक चलनेकी क्रिया। २ पुल आदि बना कर किसी स्थानमें प्रवेश करना। ३ सेतु पुल। ४ सङ्क्रमण सङ्क्रान्ति। ५ प्राप्ति।

सङ्क्रमण (स० पु०) सं क्रम ल्युट्। १ गमन चलना। २ सूर्यका एक राशिसे निकल कर दूसरी राशिमें प्रवेश करना। (कालको०) ३ प्रापण। (हारव० ३२।१६) ४ कष्टगति, प्रतिहत गमन। ५ पर्यटन घूमना। ६ अतिक्रम।

सङ्क्रमद्वादशाह (स० पु०) द्वादशाह कृत्यभेद।

सङ्क्रान्त (स० त्रि०) सङ्क्रान्तिरस्यास्तीति अच्। १ सङ्क्रान्तिविशिष्ट। (मलमासतत्त्व) सम् क्रम क्त। २ प्राप्त। ३ गत। (पु०) ४ क्रमागत धनादि, दायभागके अनुसार वह धन जो कई पीढ़ियोंसे चला आया हो। ५ सूर्यका एक राशिसे दूसरी राशिमें जाना।

८ क्रान्ति देखो।

सङ्क्रान्ति (स०स्त्री०) सम् क्रम क्तिन्। राशिचक्रमें सर्योगानुकूल व्यापार एक राशिसे दूसरी राशिमें जाना। सूर्य एक राशिसे जो दूसरी राशिमें जाते हैं उसको रविकी सङ्क्रान्ति कहते हैं। सूर्य प्रायः ३० दिन एक राशिमें रह कर अन्य राशिमें जाते हैं। उनका यह जाना या सङ्क्रमण ही सङ्क्रान्ति है। यह संक्रमण अति अल्प कालमें होता है। शास्त्रमें लिखा है कि सङ्क्रान्तिमें स्नान, दान आदि विशेष पुण्यजनक है। सङ्क्रमण काल बहुत थोड़ा है। उस समय स्नान दानादि सम्भवपर नहीं है। अतएव सङ्क्रान्तिस्थल कहनेसे समझना होगा, कि सङ्क्रान्तिके पुण्यकालमें ये सब कार्य्य करने होंगे। तिथितत्त्वमें सङ्क्रान्तिकी व्यवस्था विशेषरूपसे वर्णित है, पर यहां सङ्क्षेपमें लिखी जाती है—

पहले संक्रान्तिके दो नाम रखे गये हैं, उत्तरायण-संक्रान्ति और दक्षिणायन-संक्रान्ति। उत्तरायण और दक्षिणायनकी कारणीभूत दो संक्रान्ति एक सूर्यके मृग अर्थात् मकरराशिमें संक्रमण और दूसरी कर्कटमें संक्रमणसे होती है। सूर्यका तुला और मेष राशिमें संक्रमण विषुवत् रेखासे संघटित होता है, इसीसे उसको विषुवता संक्रान्ति कहते हैं।

इस उत्तरायण और दक्षिणायन संक्रान्तिके विषयकी आलोचनाके देखनेसे मालूम होता है, कि इस देशमें अश्विनी नक्षत्रके प्रथम अंशसे राशिचक्रका प्रथम आरम्भ निरूपित है। पृथिवीके विषुवृत्तकी तरह उस चक्रके मध्यभागमें पूर्व पश्चिममें व्याप्त एक सरल रेखा कल्पित है जिसका नाम विषुवरेखा है। प्रति वर्ष अयनमण्डलके जिन दो स्थानों पर विषुवरेखा मिलती है, उसे क्रान्तिपात कहते हैं तथा वहां सूर्यके आने पर दिन रात समान होती है। जिस दिन विषुवती संक्रान्ति होती है, उसी दिन दिनरातका मान बराबर होता है।

अभी ९वीं या १०वीं चैतको एक बार, तथा ९ वीं या १० वीं आश्विनको क्रान्तिपात होता है, अतएव उन दो दिनोंमें दिनरात समान होती है। ये दोनों क्रान्तिपात वासन्तिक (Vernalequinox) और शारदीय (Autumnal equinox) कहलाते हैं।

गणना द्वारा जाना गया है, कि १३८१ वर्ष पहले चैत्र और आश्विन मासके ३० या ३१ दिनमें अश्विनी नक्षत्रके प्रथमांशमें तथा चित्रानक्षत्रके षष्ठांश ४० कलामें ये दोनों क्रान्तिपात होते थे अर्थात् इन दोनों नक्षत्रके उल्लिखित अंशोंमें विषुव रेखा रहती थी तथा उन दो स्थानोंमें उसके साथ अयनमण्डलका संयोग हुआ करता था। भारतीय ज्योतिर्विदोंने अश्विनी नक्षत्रके प्रथमांशमें जो क्रान्तिपात होता है, सूर्यदेवके वहां आनेसे उस दिनका नाम महाविषुवसंक्रान्ति तथा चित्रा नक्षत्रके षष्ठांशमें जो क्रान्तिपात होता है, सूर्यदेवके वहां उपस्थित होनेसे उस दिनका नाम जल विषुवसंक्रान्ति रखा है। आज भी यह नियम प्रचलित है किन्तु अभी इन दो स्थलोंमें विषुवरेखाके साथ अयनमण्डलका फिर सम्मिलन नहीं होता।

यूरोपियनोंके मतसे प्रति वर्ष ५० विकला १५ अनुकला तथा हिन्दुओंके मतसे ५४ विकला अयनमण्डलके पश्चिमभागमें हट जाता है। अर्थात् उसी प्रमाणसे प्रति वर्ष विषुवरेखाके सञ्चालनकी कल्पना की जाती है तथा उसके सञ्चालनको अयनांश कहते हैं।

अयनांश गणनामें इस प्रकार विभिन्नता होनेका कारण यह है, कि यद्यपि अश्विनीको अचल नक्षत्र कहते हैं, तथापि इस नक्षत्रके ३ विकलासे कुछ अधिक परिमाणमें एक स्वाभाविक गति है, ऐसा स्वीकार किया जाता है। उस गतिको क्रान्तिपातके वार्षिक सञ्चालनके साथ जोड़ कर हिन्दूज्योतिषियोंने इस सञ्चालनका परिमाण ५४ विकला स्थिर किया है।

अभी ९ वीं या १० वीं चैतको अश्विनी नक्षत्रके प्रथम अंशसे प्रायः २१ अंशके अन्तर पर इस देशमें जिस स्थानको मानराशिका ९ अंशयुक्त माना जाता है, उस स्थानमें वासन्तिक क्रान्तिपात होता है तथा सूर्यदेव भी उस दिन क्रान्तिपातमें उपस्थित रह कर दिन और रात समान बनाते हैं। इस कारण इङ्गलैण्ड और अन्यान्य देशोंमें उस दिनसे रविका मेषसंक्रमण तथा उस स्थानसे मेषराशिका आरम्भ स्थिर हुआ है। इस प्रणालीके अनुसार जो गणना होती है उसको सायन गणना कहते हैं।

इस देशमें साधारणतः चैत्रमासके ३० या ३१ दिनमें सूर्य अश्विनी नक्षत्रके प्रथमांशमें उपस्थित होते हैं, इस कारण उस अंशसे मेषराशिक आरम्भकी गणना की जाती है, इस गणनाका नाम निरयन गणना है। इस निरयन मतसे ही हम लोगोंके देशमें पञ्जिकाकी गणना होती है तथा इसीसे हम ३० वीं या ३१ वीं चैतको महाविषुव संक्रान्तिकी गणना करते हैं।

हिन्दुओंके मध्य शेषोक्त मत प्रचलित रहनेका कारण यह है, कि सायनके मतसे किसी एक अपरिवर्तनीय स्थानसे मेषराशिका आरम्भ नहीं होता, प्रति वर्ष उसका आरम्भ स्थान बदलता रहता है। उस सम्बन्धमें निरयनमत ही समीचीन मालूम होता है। क्योंकि अचल अश्विनी नक्षत्रसे मेषसंक्रान्तिकी गणना करनेमें एक ही स्थानमें मेषारम्भकी गणना होती है। फलतः

उक्त दोनों गणनामें प्रभेद यह है, कि सायन मतमें जभी जिस दिन मेषसंक्रान्ति होती है, उसके प्राय २१ दिन बाद निरयन मतमें वह संक्रान्ति होती है।

सायनके मतसे अभी अश्विनी मेषारम्भ माना जाता है, निरयनके मतमे यहांसे प्राय २१ अंश पीछे मेषारम्भ होता है। सायनके मतसे वास्तविक क्रान्तिपात अयनमण्डलसे चाहे जितना ही पश्चिम क्यों न हट जाय वहां से मेषराशिका आरम्भ निर्दिष्ट होगा। अतएव इस मतमें कालक्रमसे मेषादि द्वादशराशिका सीमा परिवर्त्तित होगी। अयन शब्द देखो।

पहले ही कहा जा चुका है, कि पृथिवीके निरक्ष वृत्तकी तरह राशिचक्रका भी एक निरक्षवृत्त कल्पित हुआ है तथा उसका नाम है विषुवरेखा। उस रेखाके उत्तरदक्षिण २३ अंश २८ कलाके अन्तर पर दो विन्दु की कल्पना की जाती है। उनमेंसे एक उत्तरायणान्त विन्दु (Winter solstice) है अर्थात् सूर्यके उत्तर जाने की अन्तिम सीमा है। दूसरा दक्षिणायनान्त विन्दु (Summer solstice) है, सूर्यके दक्षिण जानेकी अन्तिम सीमा है। उन दोनों विन्दुओंके मध्य जो एक कल्पित रेखा मौजूद है उसका नाम अयनान्तवृत्त है। सूर्य जिस पथसे उत्तरकी ओर जाते हैं उसे उत्तरायण तथा जिस पथसे दक्षिणकी ओर जाते हैं, उसे दक्षिणायन कहते हैं। १३ १ वर्ष पहले माघ और श्रावणमासके प्रथम दिनमें अयन परिवर्त्तन होता था अर्थात् उत्तरायण और दक्षिणायन संक्रान्ति होती थी। १ली माघको सूर्यके मकरराशिमें प्रवेश होनेसे ले कर आषाढ़के शेषमें सूर्यके मिथुनराशिके शेषांश गत होने तक वह काल उत्तरायण तथा १ ली श्रावणको सूर्यके कर्कटराशिमें प्रवेश होनेसे ले कर पौषके शेषमें सूर्यके धनुराशिके शेषांशगत होने तक वह काल दक्षिणायन कहलाता है।

परन्तु अभी उक्त निर्दिष्ट समयके प्रायः २१ दिन पहले अयन संक्रान्ति हो कर अयन परिवर्त्तन होता है अतएव धनुराशिके प्राय ९ अंशमें आरम्भ हो कर मिथुन राशिके प्राय ९ अंशमें उत्तरायण शेष होता है। फिर मिथुनराशिके उक्त अंशमें आरम्भ हो कर धनुराशिके प्राय ९ अंशमें दक्षिणायन शेष होता है, अतएव उन दोनों ही दिन उत्तरायण और दक्षिणायन संक्रान्ति का होना ही सङ्गत है। इसलिये अभी उत्तरायण संक्रान्ति दक्षिणायन संक्रान्ति, महाविषुवसंक्रान्ति, और जलविषुवसंक्रान्ति इन चार संक्रान्तियोंमें बड़ी गड़बड़ी है।

उक्त नियमानुसार ९वीं या १०वीं चैत तथा ९वीं या १०वीं आश्विनमें विषुवसंक्रान्ति, ९वीं या १०वीं आषाढ़ तथा ९वीं या १०वीं पौषमासमें उत्तरायण और दक्षिणायन संक्रान्तिका होना उचित था।

शास्त्रमें इस अयनसंक्रान्ति और विषुवती संक्रान्ति को विशेष पुण्यजनक कहा है। इन चार संक्रान्तियोंके अतिरिक्त अपर सभी संक्रान्ति गोल अर्थात् राशिचक्रके मध्य ही होती हैं। सूर्यके बारह मासमें बारह राशिमें जानेसे १२ संक्रान्ति होती हैं। इन बारह संक्रान्तियोंमेंसे कुछ षडशीति और विष्णुपदी संक्रान्ति कहलाती हैं। इनमेंसे सूर्यका धनु, मिथुन, कन्या और मीनराशिमें जो संक्रमण होता है उसे षडशीति संक्रान्ति और सूर्यके वृष, वृश्चिक, सिंह और कुम्भ राशिमें संक्रमणको विष्णुपदी संक्रान्ति कहते हैं।

इन सब संक्रान्तियोंके पुण्यकाल विषयमें लिखा है, कि उत्तरायण संक्रान्ति दिवाभागमें होनेसे सूर्यके संक्रमणकालके बादसे २० कलामें भोगकाल तक अर्थात् २० दण्ड तक पुण्यकाल है। दक्षिणायन संक्रान्ति दिवाभागमें होनेसे संक्रान्तिके पूर्व ३० दण्ड पुण्य काल है। अर्द्ध रात्रिके पूर्व संक्रमण होनेसे उस अर्द्ध रात्रिके पूर्ववर्त्ती दिवाका परार्द्ध पुण्यकाल तथा अर्द्ध रात्रि बीत जानेके बाद संक्रमण होनेसे दूसरे दिनका प्रथमार्द्ध पुण्यकाल है। इस अर्द्धरात्र संक्रमणके सम्बन्धमें विशेषता यह है, कि अर्द्धरात्रिका सम्पूर्णावस्थामें अर्थात् रात्रिके मध्यस्थित दो दण्ड कालमें संक्रमण होनेसे उदय तथा अस्त समयके सन्निहित दिवाका दो याम पुण्यकाल है अर्थात् पूर्व दिनका परार्द्ध और पर दिनका प्रथम दो प्रहर पुण्यकाल माना जाता है। अर्द्ध रात्र पूर्ण नहीं होने पर अर्थात् पूर्ण होनेमें कुछ बाकी रहने पर संक्रमण होनेसे पूर्वदिनका परार्द्ध, अर्द्ध रात्रिकी सम्पूर्णावस्थामें संक

मण होनेसे भी पूर्वदिनका परार्द्ध तथा दूसरे दिनका प्रथम दो प्रहर काल ही पुण्यकाल होता है। अर्द्धरात-के बाद संक्रमण होनेसे केवल दूसरे दिनका प्रथम दो प्रहर ही पुण्य काल होता है।

षडशीति संक्रान्ति तथा उभय विषुवसंक्रान्तिका पूर्व-वर्त्तीकाल ही पुण्यकाल है। दक्षिणायनका परवर्त्ती काल तथा उत्तरायणका पूर्ववर्त्ती काल पुण्यजनक है ; यदि दिवाभागस्थित तिथिको ही रात्रिकालमें संक्रमण हो, तो उसके आदिमें ही पुण्यकाल होगा। अर्द्धरात्रके बाद इस प्रकार संक्रमण होनेसे दूसरे दिनका प्रथम काल ही पुण्यजनक माना जाता है।

१२ मासमें जो १२ संक्रान्ति होती हैं, उनके ध्रुवादि नक्षत्रोंमें होनेसे वे मन्दा, मन्दाकिनी, ध्वाङ्क्षी, घोरा, महोदरी, राक्षसी और मिश्रिता इन सात नामोंसे पुकारी जाती हैं। इनमेंसे उत्तरफल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तरभाद्र-पद और रोहिणी नक्षत्रको ध्रुवगणमें सूर्य संक्रमण होनेमें मन्दा संक्रान्ति होती है। इसी प्रकार मृदुगण नक्षत्रमें संक्रमण होनेसे मन्दाकिनी संक्रान्ति, क्षिप्र-गणमें ध्वाङ्क्षी संक्रान्ति, उग्रगणमें घोरा संक्रान्ति, चर-गणमें महोदरी संक्रान्ति, क्रूरगणमें राक्षसी और मिश्रित नक्षत्रमें संक्रमण होनेसे मिश्रिता संक्रान्ति होती है।

दिवाभागमें संक्रमण होनेसे समूचा दिन पुण्यकाल होता है। परन्तु 'षडशीतिमुखेऽतीते' इत्यादि वचनो द्वारा जिस विशेष पुण्यकालका निर्देश किया गया है, वह समस्त काल दिवाभागके मध्य विशेष पुण्यकाल कहा गया है। मन्दा और मन्दाकिनी आदि संक्रान्तिमें ३ या ४ दण्ड आदि जो पुण्यकाल कहा गया है, उसे पुण्यतम काल कहते हैं केवल यही समझा जायेगा।

रात्रिसंक्रमण-स्थलमें रात्रिका प्रथमार्द्ध पूर्ण होनेके एक दण्ड पहले संक्रमण होनेसे उस रात्रिके ठीक पूर्ववर्त्ती दिवाभागका शेष द्विप्रहरकाल पुण्य तथा रात्रिके ठीक मध्यवर्त्ती दो दण्डके मध्य संक्रमण होनेसे तथा उस समय दिवाभागको तिथि वर्त्तमान रहनेसे उस दिवाभागका ही अन्तिम दो प्रहर पुण्यकाल होगा। फिर यदि उस समय दिवाभागकी तिथि वर्त्तमान न हो कर एक दूसरी तिथि वर्त्तमान हो, तो उस रात्रिके ठीक पूर्व-वर्त्ती दिवाका अन्तिम दो प्रहर तथा परवर्त्ती दिवाका भी प्रथम दो प्रहर पुण्य होगा। इस प्रकार दोनों दिन पुण्य काल होने पर भी यदि पूर्वदिन संक्रान्ति-विहित धर्म-कार्यका अनुष्ठान न हो, तो दूसरे दिनके कार्यका ही अनुष्ठान होगा।

ठीक दो प्रहर रातको यदि दक्षिणायन-संक्रमण हो तथा उसमें दिवाभागकी तिथि वर्त्तमान रहे या न रहे, उस दिवाभागका ही अन्तिम दो प्रहर मात्र पुण्यकाल होगा तथा ठीक दो प्रहर रातको यदि उत्तरायणसंक्रान्ति हो, तो तिथि जो चाहे हो, दूसरे दिनका प्रथम दो प्रहर काल पुण्यजनक होगा।

मध्यरात्रिके अन्तिम एक दण्डके बादसे रात्रिके शेष पर्यन्त कालके मध्य संक्रमण होनेसे दूसरे दिनका प्रथम दो प्रहर ही पुण्यकाल माना जाता है। संध्या-संक्रमण के विषयमें केवल इतना ही कहना है, कि जिस संध्याके अन्तर्भूत दिवादण्डमें संक्रमण होनेसे दिवाभागके संक्रमणकी जैसी व्यवस्था की गई है, उसीके अनुसार पुण्य-काल स्थिर करना होता है। संध्याके रात्रिदण्डमें संक्रमण होनेसे रात्रिकालके व्यवस्थानुसार पुण्यकाल स्थिर करना उचित है।

ग्रहोंका संक्रमण-काल—सूर्य एक राशिसे दूसरी राशिमें जाते हैं, इस कारण उक्त संक्रमणको रविसंक्रान्ति कहते हैं। इसी प्रकार चन्द्र मङ्गल आदि ग्रहगण भी एक राशिसे दूसरी राशिमें संक्रमण करते हैं। इस संक्रमण कालके विषयमें लिखा है, कि राशिचक्र ३६० अंशोंमें विभक्त है। रवि ३६५ दिन १५ दण्ड ३१ पल ३१ विपल और २४ अनुपलमें वह चक्र अतिक्रमण करते हैं। यही रविकी वार्षिक गति। फिर ५९ कला ८ विकला १० अनुकला उनकी दैनिक गति है। किन्तु राशिचक्रकी वक्रिमाके कारण सूर्यकी गति कभी बहुत तेज और कभी धीमी हो जाती है। इस कारण उक्त गतिको मन्दगति कहते हैं। रविकी दैनिक शीघ्र गति १ अंश १ कला और ५ विकला है तथा वह एक एक मास करके प्रत्येक राशिका भोग करते हैं। इसी प्रकार सभी रविसंक्रान्ति होती है। चन्द्र २७ दिन १९ दण्ड १७ पल ४२ विपलमें राशिचक्र अतिक्रमण करते हैं। चन्द्रका प्रत्येक राशि भोगकाल २। दिन है।

मङ्गल ६८६ दिन ५८ दण्ड ६ पल २० विपलमें राशिचक्र अतिक्रमण करते हैं। यह ग्रह चक्री नहीं होनसे डेढ़ मास एक राशिका भोगकाल है।

बुध ८७ दिन ५८ दण्ड ६ पल १७ विपलमें एक बार राशिचक्रका परिभ्रमण करते हैं। १८ दिन इनका एक राशिका भोगकाल है।

वृहस्पति ११ वर्ष १० मास १५ दिन २६ दण्ड ८ पलमें एक बार राशिचक्रको अतिक्रमण करते हैं। इनका प्रत्येक राशिका भोगकाल न्यूनाधिक एक वर्ष है।

शुक्र २२४ दिन ४२ दण्ड ३ पलमें एक बार राशि चक्रको घूम आते हैं।

शनिग्रह २६ वर्ष ५ मास १७ दिन १२ दण्ड ३० पलमें एक बार राशिचक्र पर्यटन करते हैं। इनका प्रत्येक राशिका भोगकाल न्यूनाधिक २ वर्ष ६ मास है। राहु और केतु चक्रगति द्वारा दक्षिणावर्त्तमें १८ वर्ष ७ मास १८ दिन १५ दण्डमें एक बार राशिचक्र परिभ्रमण करते हैं। यह ग्रह क्रमसे न्यूनाधिक १ वर्ष ६ मास २० दिनमें एक राशि भोग करते हैं।

ग्रहोंका यह जो राशिसंक्रमणकाल कहा गया, वह स्थूलमात्र है। उस कालमें वे संक्रमण करते हैं सही पर ठीक उस प्रकृत अक्षांशमें उपस्थित नहीं होते। उस अक्षांशमें लौटनेमें जो समय लगता है, उसे सूक्ष्म संक्रमण काल कहते हैं। सूर्य जिस दिनमें जिस वारमें जिस अंशमें भ्रमण करना शुरू करते हैं, २८ वर्ष बाद उसी दिन उसी वारको उस पूर्व निर्दिष्ट स्थानमें पहुंचते हैं। इसी प्रकार चन्द्रमा १६ वर्षके बाद ठीक उसी स्थानमें उपस्थित होते हैं। उस समयसे पहलेकी तरह पूर्णिमा और अमावस्यादि तिथि तथा नक्षत्रका भोग होता है। मङ्गल ७९ वर्षके बाद, बुध ४६ वृहस्पति ८३, शुक्र ८ शनि ५९, राहु और केतु ९३ वर्षके बाद उक्त उक्त अक्षांशमें पुनरागमन करते हैं।

संक्रान्तिको शास्त्रमें पर्वदिन कहा है, अतएव इस दिन स्त्री तैल मत्स्य और मांसादि भक्षण निषिद्ध है। इस दिन सायं सन्ध्या नहीं करनी चाहिये। किन्तु सायं सन्ध्याके समयमें वैदिक सन्ध्या ही निषिद्ध है तान्त्रिक सन्ध्या नहीं। तर्पणस्थलमें संक्रान्तिके दिन कपड़ेके निचोड़े हुए जलसे तर्पण नहीं करना चाहिये तथा इस दिन कपड़ेमें क्षार आदि लगाना भी मना है।

चैत्रसंक्रान्तिमें आरोग्यकी कामना करके स्नुही वृक्षके नीचे घण्टाकर्णकी पूजा करनी होती है।

घण्टाकर्ण देखो।

मेषसंक्रान्तिमें देवता और पितरोंके उद्देशसे सत्तु और जलपूर्ण घट दान करना होता है। इस दानसे सभी पाप विनष्ट होते हैं। (तिथितत्त्व)

सङ्क्रान्तिचक्र (सं० क्ली०) संक्रान्त्याश्चक्रं। मनुष्यका शुभाशुभ जाननेके लिये नक्षत्राङ्कित नराकारचक्र। मनुष्यको किस संक्रान्तिमें शुभ और किस संक्रान्तिमें अशुभ होगा जन्मनक्षत्र द्वारा वह जाना जाता है। इस नराकार चक्रका वह नक्षत्र जिस स्थानमें रहता है, उसीके शुभाशुभ फल द्वारा शुभाशुभ फल जाना जायेगा। यह चक्र महाविषुव, जलविषुव उत्तरायण और दक्षिणायन, षडशीति और विष्णुपदी इन छः संक्रान्तियोंमें भिन्न रूपसे जानना होगा। ज्योतिस्तत्त्वमें इस चक्रका विशेष विवरण लिखा है। उन उन शब्दोंमें इसका विषय देखो।

सङ्क्राम (सं० पु०) संक्रम घञ्। दुर्गसञ्चर।

संक्रमण देखो।

सङ्क्रामक (सं० त्रि०) संक्रमकारक, जो संसर्ग या छूत आदिके कारण एकसे औरोंमें फैलता हो।

सङ्क्रामकरोग (सं० पु०) संसर्गजरोग, वह रोग जो छूत आदिके कारण एकसे औरोंमें फैलता है। इस संक्रामकरोगके विषयमें माधवनिदानमें लिखा है, कि प्रसङ्ग, गात्रस्पर्शन, निःश्वास, एकत्र भोजन, एक शय्या पर शयन, एक आसन पर उपवेशन एक वस्त्र परिधान, एक माल्य धारण इत्यादि कारणोंसे कुष्ठ, ज्वर, शोष नेत्राभिष्यन्द तथा औपसर्गिक रोग एकसे दूसरेमें संक्रामित होता है इसीसे इन सब रोगोंको संक्रामक रोग कहते हैं।

सङ्क्रामण (सं० क्ली०) अतिक्रम करना।

सङ्क्रामयितव्य (सं० त्रि०) अतिक्रम करनेके योग्य।

सङ्क्रामिन् (सं० त्रि०) संक्रम णिनि। संक्रामक, जो लोगोंमें रोगोंका संक्रमण करता हो, रोग फैलानेवाला।

सङ्गतार्थ (सं० त्रि०) सङ्गतोऽर्थो यत्र। युक्तार्थ, सुसङ्गत वाक्ययुक्त।

सङ्गति (सं० स्त्री०) सम-गम-क्तिन्। १ सङ्गम, मेल, मिलाप। २ संसर्ग, सहवास। ३ योग, संग, साथ, सोहबत। ४ सम्बन्ध, ताल्लुक। ५ किसी विषयका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये बार बार प्रश्न करनेकी क्रिया। ७ युक्ति। ८ पहले कही या लिखी हुई बातके साथ बादमें कही या लिखी हुई बातका मेल, आगे पीछे कहे जानेवाले वाक्यों आदिका मिलान।

सङ्गतिन् (सं० त्रि०) एकत्र सम्मिलित। "श्राद्धसङ्गतिनो विप्राः।" (मार्क० पु० १४।६०)

सङ्गथ (सं० पु०) १ सङ्गमन। (ऋक् २।३८।१०) २ संग्राम, लड़ाई। (निघण्टु २।१७)

सङ्गनेर—राजपूतानेके अन्तर्गत जयपुर राज्यका एक शहर। यह अक्षा० २६°४८´ उ० तथा देशा० ७५°४७´ पू०के मध्य आमन-इ शाह नदीके किनारे जयपुर शहरसे ७ मीलकी दूरी पर अवस्थित है। यह शहर राजपूताना-मालव रेलवेके सङ्गनेर स्टेशनसे ३ मील दूर पड़ता है। जनसंख्या ४ हजारके करीब है। यहां बहुत देवमन्दिर और जैनकीर्त्ति हैं। इसकी एक कीर्त्ति हजार वर्षसे भी पुरानी है। यहां कपड़ेमें रंग चढ़ाया जाता और छाप दी जाती है। शहरमें एक डाकघर और एक अपर प्राइमरी स्कूल है।

सङ्गम (सं० पु० क्ली०) सं-गम (ग्रहवृदृनिश्चिगमश्च। पा ३।३।५८) इति अप्। १ सङ्ग, साथ, सोहबत। २ दो नदियोंके मिलनेका स्थान। जैसे, गंगासागरसङ्गम। ३ स्त्री और पुरुषका संयोग, मैथुन, प्रसंग। यह तीन प्रकारका है,—प्रथम, मध्यम और उत्तम।

निर्जन स्थानमें परस्त्रीके साथ अदेशकालभावादि द्वारा अभिव्यक्ति, कटाक्षावेक्षण और हास्यादिको प्रथम सङ्गम, गन्ध, माल्य, वस्त्र और भूषणादि प्रेरण तथा अन्नपानादि द्वारा प्रलोभनको मध्यम; निर्जन स्थानमें स्त्रियोंके साथ एक जगह उपवेशन, परस्पर समाश्रय तथा केशाकेशि ग्रहणको उत्तम सङ्गम कहते हैं।

४ दो वस्तुओंके मिलनेकी क्रिया, मिलाप, सम्मेलन। ५ ज्योतिषमें ग्रहोंका योग, कई ग्रहों आदिका एक स्थान पर मिलना या एकत्र होना।

सङ्गम—मन्द्राज प्रदेशके नेल्लूर जिलान्तर्गत एक बड़ा ग्राम। यह नेल्लूर सदरके एनिकटसे २० मील दूर पेन्नारनदीके किनारे अवस्थित है। यहां भी नदीके ऊपर एक पुल है।

सङ्गमक (सं० त्रि०) पथज्ञापक, रास्ता दिखानेवाला।

सङ्गम(श्री)ज्ञान (सं० पु०) बौद्धयतिभेद।

सङ्गमन (सं० त्रि०) १ गन्तव्य स्थान। (ऋक् १०।१४।१) सम्-गम ल्युट्। (क्ली०) २ सम्यक् प्रकारसे गमन। ३ सङ्गम, मेल।

सङ्गमनीय (सं० त्रि०) सङ्गमनके योग्य, सम्मिलनके योग्य।

सङ्गमनेर—१ बम्बईके अहमदनगर जिलेका एक तालुका। यह अक्षा० १९°१२´से १९°४७´ उ० तथा देशा० ७४°१´ से ७४°३१´ पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण ७०४ वर्ग-मील और जनसंख्या ६० हजारसे ऊपर है। इसमें सङ्गमनेर नामक १ शहर और १५१ ग्राम लगते हैं। यहां प्रवरा और मूला नामकी दो नदी बहती हैं। सूती कपड़ा, रेशमी कपड़ा, पगड़ी, कम्बल और सोरा आदि इस स्थानका प्रधान वाणिज्य द्रव्य है।

२ उक्त तालुकेका एक शहर। यह अक्षा० १९°३४´ उ० तथा देशा० ७४°१३´ पू० अहमदनगरसे ४६ मील उत्तरपश्चिममें अवस्थित है। जनसंख्या १३ हजारसे ऊपर है। शहरमें एक सब-जजकी अदालत, डिसपेन्सरी और एक अंगरेजी स्कूल है।

सङ्गमय (सं० त्रि०) १ सङ्गविशिष्ट। २ ऐकान्तिक आकांक्षायुक्त।

सङ्गमिन् (सं० त्रि०) सङ्गमशील। (मार्क०पु० ५९।६)

सङ्गमेश्वर—१ बम्बई प्रदेशके रत्नगिरि जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० १६° ४६´ से १७° २०´ उ० तथा देशा० ७३° २५ से ७३° ५०´ पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण ५७६ वर्ग मील और जनसंख्या लाखसे ऊपर है। इसमें १६० ग्राम लगते हैं। शास्त्री नदी इसको दो भागोंमें विभक्त करती है।

२ उक्त तालुकेका प्राचीन सदर। यह अक्षा० १७° १६´ उ० तथा देशा० ७३° ३३´ पू० शास्त्री नदीके किनारे अवस्थित है। जनसंख्या तीन हजार है।

महाद्रिखण्डमें लिखा है कि मङ्गलेश्वरका प्राचीन नाम रामक्षेत्र था। यहां परशुराम या मागवरामके बनाये हुए बहुतसे मन्दिर थे। ७वीं सदीमें यहां चालुक्य राजगणकी राजधानी थी। उन्होंने बहुतसे मन्दिर और किले बनवाये थे। उनमेंसे कर्णेश्वर नामका मन्दिर प्रधान था। १४वीं सदीमें लिङ्गायतवंशके प्रतिष्ठाता वासवने यहां बहुत दिनों तक वास किया था। जनवरी और फरवरीके महीनेमें यहां प्रति वर्ष मेला लगता है। नदीसङ्गम पर बहुतसे तीर्थस्थान हैं जिनमेंसे 'पूतपाप' या पापनाशक तीर्थ ही प्रधान है। इसी स्थानमें शिवाजीके लड़का शम्भाजी मुगलोंसे कैद किया गया और १६८९ ई०में मार डाला गया था। यहां पाठ स्कूल है।

मङ्गलेश्वर (स० पु०) १ विश्वनाथ शिवका एक नाम। २ शैवतीर्थ। ३ इस नामका एक नगर।

मङ्गर (स० पु०) स गृणन्ति शब्दायन्ते वीरा यत्र स गृ शब्दे अप। १ युद्ध, लड़ाई। २ आपद्, विपत्ति। ३ मङ्गीकार, स्वीकार। ४ संवित्। (अमर) ५ क्रियाकार, कर्मकरण। ६ क्रयविक्रयनिर्धारण। ७ प्रतिज्ञा। ८ प्रश्न, सवाल। ९ नियम। १० विष, जहर। (क्ली०) ११ गवां घृतका फल। (मेदिनी)

मङ्गरण (स० क्ली०) अनुधावन, किसीके पीछे चलना।

मङ्गल—पञ्जाबके झङ्ग जिलेके एक प्राचीन शहरका ध्वंसावशेष। यह शहर पहाड़ी अधित्यकाके ऊपर बसा हुआ है। अभी इसे लोग सङ्गलवाला टीला कहते हैं। पुराणमें जिसे शाकल द्वीप कहा है, बौद्ध लोग जिसे सागल कहते थे और अलेकसन्दरके समसामयिक ऐतिहासिक जिसे सांगल कह गये हैं, जेनरल कनिङ्घमके मतसे यहां सङ्गल वह इतिहास प्रसिद्ध स्थान है।

उक्त प्राचीन भग्नावशेषके उत्तर समतल भूमि है। उस समतल भूमिसे यह स्थान २१० फुट ऊंचा है। यहां इंटोंकी दीवारका खड़हर और पुरानी ईंटें आज भी दिखाई देती हैं। इसके दक्षिण पूर्व बहुत विस्तृत जलाभूमि है। वर्षाकालमें यहां तीन फुटसे अधिक जल होता है। किन्तु ग्रीष्मकालमें जल बिलकुल सूख जाता है। पश्चात् उत्तर पूर्व प्रदेशमें दो बड़े बड़े ईंटोंके भग्न मीनार दृष्टिगोचर होते हैं। उन ईंटोंका आकार बहुत बड़ा है। उसकी बगलमें ही एक प्राचीन कूप है। उत्तरपश्चिम पार्श्वमें मुण्डका पुरा नामका एक पहाड़ है। इस पहाड़के ऊपर भी बहुतसी ईंटें देखी जाती हैं। महाभारत पढ़नेसे जाना जाता है, कि शाकलमें मद्रराजोंकी राजधानी थी। जानक और वाहक राजाओंने भी परवर्त्ती कालमें यहां पर राजधानी बसाई थी। आज भी इस स्थानका पार्श्ववर्त्ती भूखण्ड मद्रदेश कहलाता है। यह स्थान आपगा नदीके ऊपर स्थापित है। कोई कोई कहते हैं, कि यह आपगा नदी आयक नदका नामान्तर है।

पहले कहा जा चुका है, कि बौद्ध ग्रन्थमें यह स्थान सागल (शाकल) नामसे प्रसिद्ध है। उन लोगोंका कहना है, कि कुश राजाकी स्त्री प्रभावतीको हरण करनेके लिये इस सागल शहरमें सात विदेशी राजे आये। कुश एक हाथी पर चढ़ कर वज्रगम्भीर नादसे उन्हें भयभीत किया। उनका गर्जन सुनते ही सातों राजे जान ले कर भागे। ग्रीक ऐतिहासिक येरियन डार्टियस और दियोदोरस आदि बहुतोंने ही सागल शहरका नामोल्लेख किया है। सागल ऊंची दीवारसे घिरा था तथा उसके चारों ओर बड़े हद थे। अलेकसन्दरने इस शहर पर आक्रमण किया था। उस समय भी उन्होंने दुर्गका भग्न स्तूप देखा था। वे शहरमें बौद्ध भजनालय, ५०० बौद्ध धर्मयाजक और दो बौद्धस्तूप देख गये हैं। उनमेंसे एक स्तूप राजा अशोकका बनाया हुआ है।

मङ्गव (स० पु०) सङ्गता गावो दोहनार्थं यत्र, निपातनात् साधु। प्रातःकालके बाद तीन मुहूर्त्तकाल। सूर्योदयसे तीन मुहूर्त्तकाल तकको प्रातःकाल, उसके बाद तीन मुहूर्त्तकालको सङ्गव काल कहते हैं। दो दण्डसे कुछ कम कालका नाम मुहूर्त्तकाल है। इस हिसाबसे प्रायः ६ दण्डके बाद १२ दण्ड तक सङ्गव काल हुआ।

ऋक् भाष्यमें सायणने लिखा है कि गौएं जिस समय दोहन-भूमिमें सम्मिलित होती हैं उस समयको सङ्गवकाल कहते हैं। रात्रिके शेषमें गौएं वनसे हिम तृण खा कर सङ्गवकालमें लौटती हैं।

मङ्गलवत् (स० त्रि०) मङ्गो विद्यतेऽस्य मङ्ग-मतुप् मस्य व। सङ्गविशिष्ट, मङ्गी।

झलकता है। उस समय नर्त्तक नाचते और गायक गान करते थे। (१।२।१६।४)

उस समय सङ्गीत जो पूर्णरूपसे परिस्फुट हुआ था तथा एकमात्र गन्धर्वगण हो जो उसके परिपोषक थे, उसका प्रमाण १।२१६।८ श्लोकके "अनुगायमाना गन्धर्वाः शोभमानमहायववान्।" पदद्वारा मिलता है। इसके सिवा महाभारतके ४।७०।२० ४।७२।२६, ७।८२।२३, २।४।७, १४।७०।७ आदि स्थलोंमें मागध नान्दीवाद्य, वन्दी, गायन, सौख्यशायिक वैतालिक, कथक ग्रन्थिक गाथा, कुशीलव नट सूत आदि सङ्गीतव्यवसायियोंका उल्लेख है। उक्त श्रेणीके व्यक्तियोंने राजदरबारमें रह कर स्तुतिवाद और वंशानुचरितगान या कीर्त्तन द्वारा निःसन्देह सङ्गीतकी पुष्टि की थी।

पुराणका अनुसन्धान करनेसे यह भी जाना जाता है, कि महर्षि नारद ही सङ्गीतके एकमात्र प्रवर्त्तक और प्रचारक थे।

महर्षि नारद हाथमें वीणा ले कर नृत्यगानकी चर्चा किया करते थे। शल्यपर्व (६।५४।१८) में लिखा है, कि देवर्षि श्रुतिसुखकर कच्छपी वीणा हाथमें ले कर भ्रमण करते तथा वे नृत्यगीतकुशल और देवब्राह्मण पूजित थे, साथ साथ कलहकर्त्ता और कलहप्रिय भी थे। उनके बाद नाट्यशास्त्रके प्रणेता भरत वाल्मीकि विश्वामित्र आदि ऋषि ही सङ्गीताचार्यके पद पर बैठे।

पौराणिक युगमें जब संगीताध्यापना और उसकी आलोचना सम्प्रदायपूजित ऋषियोंके हाथमें थी, तब सङ्गीतशास्त्र गन्धर्ववेद कहलाता था। वनपर्वके ६१वें अध्यायमें लिखा है, कि पाटान विश्रावसुके पुत्रने नृत्य गीत वाद्य और सामगान सीखा था।

उस समय सङ्गीत कहनेसे गान नृत्य वाद्य और सामगान इन चारोंका बोध होता था। उस समय नाट्य भी विभाषा (३।२०।१०) और स्वर भी मतविध (१३।१८४।३६ और १४।५०।५३) माना जाता था।

इस युगमें जब ऋषि लोग सङ्गीतकी आलोचना करते थे, तब नृत्यगीत समाजमें निन्दनीय नहीं समझा जाता था। अर्जुनने वृहन्नला रूपमें विराट राजकन्या उत्तराको सङ्गीतविद्या सिखलाई थी।(विराटपर्व ११।८।१२ इस समय राजान्तःपुरवासिनी राजकुलललनाएं भी सङ्गीतचर्चा करती थीं यही उसका प्रमाण है।

पौराणिक युगके अन्तिम समयमें नाट्याभिनय और सङ्गीतका जो प्रसार हुआ था, वह हम हरिवंश (२।८९।७२) से जान सकते हैं। पीछे जब यह नटनर्त्तक की वृत्ति और जीविकारूपमें परिणत हुआ, तब ही लोग उसे दुष्कर्म समझने लगे थे तथा उस सम्प्रदायके लोगोंको रातदिन कुक्रियामें रत देख राजगण नट नर्त्तक और गायकोंको नगरके बाहर रहनेका हुक्म देते थे।

महाभारतके अनुशासन पर्वमें यह भी लिखा है, कि राजा गायक तथा नर्त्तकोंको कभी स्थान न दे।

इनमेंसे स्तुतिवादक कुशीलव आदि अपाङ्क्तेय थे। (१३।६०।११) पुरोहित भी यदि व्यवसायी होते थे निन्दनीय समझे जाते थे।

बौद्धयुगमें भी सङ्गीतविषयकी यथेष्ट चेष्टा देखी जाती है। जातक निचयसे हम इसका आभास पाते हैं। महाकवि कालिदास भवभूति, बाणभट्ट आदि नाटककारोंके ग्रन्थ गीतका सन्निवेश देखनेसे अनुमान होता है, कि उस समय भारतवर्षमें सङ्गीतका बड़ा आदर था। नाटक देखो।

अति प्राचीन कालसे भारतीय आदि आर्योंने प्रकृति का मधुरतर स्वरझङ्कारोंके सामने सङ्गीतशास्त्ररूपमें प्रकाश किया था। क्रमशः उनके अनुशीलन फलसे उसका पूर्ण विकाश हुआ तथा उसीके अनुसार भारतीय सङ्गीताचार्योंने बहुतसे सङ्गीत शास्त्र प्रणयन किये। दुःखका विषय है, कि कालके करालकवलमें वे सब प्रायः विलुप्त हो गये हैं। अभी बहुत थोड़े ग्रन्थ प्रचलित हैं जिनमेंसे निम्नलिखित ग्रन्थोंके नाम उल्लेख योग्य हैं—

ग्रन्थोंके नाम।	रचयिता।
गीतप्रकाश	हरिभट्ट
गानमञ्जर	मैथिल माधव मिश्र
रागचन्द्रोदय	भिमन
रागतत्त्वविरोध	श्रीनिवास
रागध्यानादिकथनाध्याय	
रागप्रस्तार	

ग्रन्थोंके नाम ।	रचयिता ।
रागमञ्जरी	पुण्डरीक विट्ठल
रागमाला	क्षेमकर्ण (१५७० ई०)
रागमाला	जीवराज दीक्षित
रागमाला	पुण्डरीक विट्ठल
रागरत्नाकर	गन्धर्वराज
रागरागिणीस्वरूपवेलावर्णन	
रागलक्षण	
रागविरोध	मुद्गलपुत्र सोम
रागविरोधविवेक	सोमनाथ
रागविवेक	
रागाणां स्त्रीपुत्रादिपरिवारवर्णनम्	
रागार्णव	
रागोत्पत्ति	
सङ्गीतकलानिधि	हरिभट्ट
संगीतकल्पद्रुम	
संगीतकौमुदी	„
संगीतचिन्तामणि	कमललोचन
संगीतदर्पण	हरिभट्ट
संगीतदामोदर	दामोदर
संगीतनारायण	नारायण
संगीतनृत्यरत्नाकर	विट्ठल
संगीतनृत्याकर	भरताचार्य
संगीतपारिजात	अहोवल
संगीतपुष्पाञ्जलि	वेद
संगीतमकरन्द	
संगीतमीमांसा	कुम्भकर्ण महिमेन्द्र
संगीतमुक्तावली	देवेन्द्र
संगीतरत्न	
संगीतरत्नमाला	मम्मट
संगीतरत्नाकर	शार्ङ्गदेव
संगीतरत्नावली	सोमराजदेव
संगीतरागलक्षण	
संगीतराघव	चिन्नवोम्मभूपाल
संगीतराज	कुम्भकर्ण महिमेन्द्र
संगीतविनोद (नृत्याध्याय)	
संगीतशास्त्र	कैवल्याश्रमप्रभु
संगीतशिरोमणि	
संगीतसागर	
संगीतसार	
संगीतसारसंग्रह	„
संगीतसारामृत	तुलजीराज
संगीतसारोद्धार	हरिभट्ट
संगीतसिद्धान्त	रामानन्द तीर्थ
संगीतसुधा	भीमनरेन्द्र
संगीतसुधाकर	सिंहभूपाल
संगीतसुन्दर	सदाशिव दीक्षित
संगीतामृत	कमललोचन
संगीतार्णव	
संगीतोपनिषद्	सुधाकलश (१३२४ ई०)
संगीतोपनिषत्सार	सुधाकलश (१३५० ई०)

इसके सिवा कण्ठसंगीतके सम्बन्धमें और भी कितने ग्रन्थ रचे गये, पर अभी वे दुष्प्राप्य हैं। हिन्दी भाषामें लिखित कृष्णानन्द व्यासदेव विरचित रागसागरोद्भवकल्पद्रुम नामक सुवृहत् ग्रन्थ सङ्गीतालोचनाका एक उत्कृष्ट उपादान है। इसमें प्रत्येक रागके स्त्रीपुत्र-परिवार तथा उनकी मूर्त्ति और उत्पत्तिका विवरण आदि लिपिबद्ध हैं।

उन सब ग्रन्थोंसे नाद और नादोत्पत्तिप्रकार, श्रुति-विवरण, स्वरविवरण, वाद्यविवरण, ग्राम्यविवरण, मूर्च्छना, कूटतान, रागविवरण, ऋतुभेदसे रागरागिणीका विनियोगविवरण, रागादिका ध्यान, नर्त्तनप्रकरण आदि संगीतशास्त्रोक्त अनेक विषय मालूम हो सकते हैं।

परवर्त्ती इतिहासका अनुसरण करने पर भी हम देखते हैं, कि हिन्दू और मुसलमान राजे राजसभाके अलङ्कारस्वरूप राजसभामें संगीत-शास्त्रवित् बहुतसे गायक रखते थे। मुगल-सम्राट् अकबर शाहकी सभामें सैकड़ों सुगायक थे।* उनमेंसे तानसेन सर्वप्रधान थे। प्रवाद है कि तानसेन हिन्दू थे तथा ग्वालियरके तत्-

* आइन ई अकबरी ग्रन्थमें उन सब प्रधान प्रधान गायकोंकी नामतालिका दी हुई है।

सामयिक किया हि दू राजाका स भामें रहते थे। अकबर शा के विशेष अनुरोध करने पर वे दिल्ला आये। थ०१ सम्राट्ने उन्हें मिया तानसेनकी उपाधिसे भूषित किया। इन्हीं तानसेनने सङ्नाइ नामक वाद्यय न्त्रकी सृष्टि की।

मुसलमान जातिने भी जातीय उन्नतिके समय सगीतशास्त्रकी बडी उ नति की। खलीफाओं के शासन कालसे ले कर भारतीय मुगल बादशाहों के प्राधान्यकाल तक मुसलमान जगत्में स गीत (गीत और वाद्य) के नाना प्र ग प्रत्य गकी सृष्टि हुई थी। उसके साथ साथ नाना प्रकारके वाद्यय न्त्र भी बनाये गये। उन वाद्यय न्त्रोंके विवरण और चित्र वाद्ययन्त्र शब्दमें दिये जा चुके हैं। वाद्ययन्त्र देखो। मुसलमान सभ्यता और विलासिता विस्तारके साथ सुदूर यूरोप खण्डमें भी सगीत विलास का अभिनव छायापात हुआ।

प्राचीन सभ्य और ग्रीसमगन ग्रीक और रोमकोंके वैभव विलासके प्रति दृष्टि डालनेसे देखा जाता है कि स गीतकी मोहिनी शक्तिने उन लोगोंके भी मनको चुरा लिया था। गृहाङ्गनमें या मन्दिरके चबूतरे पर वीणादि यन्त्रधारिणी मोहिनी प्रस्तरपुत्तलिका आज भी उनकी स गीत साधनाके आतिशय्यका आभास देती हैं। प्राचीन ग्रन्थादिमें भी उसका स्मृ त अप ण है।

रोम राज्यके अध पतनके बाद जब मुसलमानी प्रभाव सुदूर स्पेन राज्य तक फैल गया, तब यूरोपमें फिर संगीतालोचना नये भावमें जग उठी। उस समय हीनवीर्य रोमकोंके मध्य इस चित्तद्रावक श्रुतिसुखमयी स गीत विद्याका आदर और भी बढ गया। अभी सारे यूरोप खण्डमें सभ्यताके और विद्याके साथ इस कलाविद्या की बड़ी उन्नति हुई है। अभी यद्यपि कण्ठ-सगीतका वैसा आदर नहीं रहने पर भी यन्त्रसगीतकी उ नति दिन पर दिन होती जा रही है।

हरिवंशमें लिखा है कि सङ्गीतका अवसान होनेके बाद सङ्गीतकारियोंको ताम्बूलदान करना होता है।

सङ्गीतक (स० क्ली०) स गीत स्वार्थे कन्। सङ्गीत देखो।

सङ्गीतगृह (स० क्ली०) स गीतकस्य गृह । स गीत शाला।

सङ्गीतविद्या (स० स्त्री०) स गीत विषयक विद्या, स गीत शास्त्र।

सङ्गीतवेश्मन् (स० क्ली०) स गीतस्य वेश्म। स गीत गृह, सगीतशाला।

सङ्गीतशास्त्र (स० क्ली०) सङ्गीतविषयक शास्त्र। सगीत विषयक शास्त्र, जिस शास्त्रमें गाने, बजाने, नाचने और हावभाव आदि दिखलानेकी कलाका विवेचन हो, उसे स गीतशास्त्र कहते हैं। सोमेश्वर, भरत, हनुमत् और कल्लिनाथके मतसे यह शास्त्र चार प्रकारका है। अभी हनुमत् मत प्रचलित है। इसमें सात अध्याय हैं—स्वाध्याय रागाध्याय, तालाध्याय, नृत्याध्याय, भावाध्याय, कोकाध्याय और हस्ताध्याय। सगीत देखो।

सङ्गीति (स० स्त्री०) स -गै (स्थागापापचो भावे। पा ३।३।९५) इति क्तिन्। १ वार्तालाप, बातचीत। २ स गीत।

सङ्गीतिप्रासाद (स० पु०) स गीतशाला।

सङ्गीर्ण (स० त्रि०) स गृ क्त। अ गीकृत, प्रतिज्ञात।

सङ्गुण (स० त्रि०) सम्यक गुणन। (गोलाध्याय)

सङ्गुप्त (स० पु०) स गुप क्त। १ बुद्धभेद। (त्रि०) २ सगोपनाश्रय।

सङ्गुप्ति (स० स्त्री०) स गुप क्तिन्। सम्यकगुप्ति, सम्यक रूपसे गोपन।

सङ्गूढ (स० पु०) सम-गुह क्त। रेखा या लकीर आदि खींच कर निशान की हुई राशि या ढेर। प्रायः लोग अन्न या और किसी प्रकारकी राशि लगा कर उसे रेखाओंसे घेर या अ कित कर देते हैं जिसमें यदि कोई उस राशिमेंसे कुछ चुरावे, तो पता लग जाय। इसी प्रकार अ कित की हुई राशिको स गूढ कहते हैं।

सङ्गृहीत (स० त्रि०) सङ्कलित, स ग्रह किया हुआ एकत्र किया हुआ, जमा किया हुआ।

सङ्गृहीति (स० स्त्री०) धारणकारी। द्विजिह्व स गृहीत कहनेसे सर्प और खल समझा जाता है।

सङ्गृहीतृ (स० त्रि०) स ग्रहकारक, एकत्र करनेवाला, जमा करनेवाला।

सङ्गोपन (स० क्ली०) स -गुप-ल्युट्। छिपानेकी क्रिया, पोशीदा रखना, छिपाना।

सङ्गोपनीय (स० त्रि०) स गुप अनीयर्। स गोपन योग्य, छिपानेके योग्य, पोशीदा रखने लायक।

सङ्ग्रथन (स० क्ली०) सम् ग्रथ ल्युट्। सम्यक्रूपसे ग्रथन।

सङ्ग्रसन (सं० क्ली०) अतिरिक्त भोजन, बहुत अधिक खाना।

सङ्ग्रह (सं० पु०) सम्-ग्रह अप्। १ समाहृति, समाहरण, एकत्र करनेकी क्रिया, जमा करना। २ ग्रन्थविशेष, वह ग्रन्थ जिसमें अनेक विषयोंकी बातें एकत्र की गई हों। सूत्र और भाष्यादिमें जो सब विषय सविस्तर वर्णित हैं, वही सब विषय संक्षेपमें एकत्र संग्रह कर जो निबन्ध रचा जाता है, उसे संग्रह कहते हैं। ३ मन्त्रबलसे अपने फेंके हुए अस्त्रको अपने पास लौटानेकी क्रिया। ४ भोजन, पान, औषध आदि खानेकी क्रिया। ५ निग्रह, संयम। ६ जमघट, जमाव। ७ सभा, गोष्ठी। ८ ग्रहण करनेकी क्रिया। ६ स्वीकार, मंजूरी। १० मैथुन, स्त्रीप्रसंग। ११ रक्षा, हिफाजत। १२ पाणिग्रहण, विवाह। १३ सोमयाग। १४ सूची, फेहरिस्त। १५ कोष्ठबद्धता, कब्ज। १६ शिवका एक नाम।

सङ्ग्रहग्रहणी (सं० स्त्री०) एक प्रकारका रोग। इसमें भोजन किया हुआ पदार्थ पचता नहीं, बराबर पाखानेके रास्ते निकल जाता है। इसमें पेटमें पीड़ा होती है और दस्त दुर्गन्धयुक्त, कभी पतला कभी गाढ़ा और कभी रुक कर एक पखवारे, एक मास या दश दिनके अन्तर पर होता है। रोगीके पेटमें गुड़ गुड़ शब्द होता है, कमरमें वेदना होती है। शरीर दुर्बल और निस्तेज हो जाता है। रातकी अपेक्षा दिनके समय यह रोग अधिक कष्ट देता है। यह रोग प्रायः अधिक दिनों तक और कठिनतासे अच्छा होता है। यह रोग चार प्रकारका होता है, वातज, कफज, पित्तज, और सन्निपातज। विशेष विवरण ग्रहणी शब्दमें देखो।

सङ्ग्रहण (सं० क्ली०) सम्-ग्रह-ल्युट्। १ स्त्रीको हर ले जानेकी क्रिया। २ प्राप्ति। ३ ग्रहण। ४ मैथुन, सहवास। ५ व्यभिचार। ६ नगों को जड़नेकी क्रिया।

सङ्ग्रहणी (सं० स्त्री०) संक्षिप्ता ग्रहणी। ग्रहणीरोगविशेष। ग्रहणी और संग्रहग्रहणी शब्द देखो।

सङ्ग्रहवत् (सं० त्रि०) संग्रह अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। संग्रहयुक्त।

सङ्ग्रहीतृ (सं० त्रि०) संग्रह तृच्। संग्रहकारक, एकत्र करनेवाला।

सङ्ग्राम (सं० पु०) संग्राम-भावे घञ्। युद्ध, लड़ाई। संग्राम देखो।

सङ्ग्रामजित् (सं० त्रि०) संग्रामं जयति जि क्विप् तुक् च। युद्धजेता, संग्रामविजयी।

सङ्ग्रामपटह (सं० पु०) संग्रामस्य पटहः। रणभेरी, रणडिमडिम।

सङ्ग्रामभूमि (सं० स्त्री०) संग्रामस्य भूमिः। संग्रामस्थल, युद्धभूमि, लड़ाईका मैदान।

सङ्ग्राह (सं० पु०) संग्रह्णाति सम्-ग्रह (शमि मुष्टौ। पा ३।३।३६) इति घञ्। १ दस्ता या मूठ पकड़ना। २ हाथकी बंधी हुई मुट्ठी, मुक्का।

संग्राहक (सं० त्रि०) संग्रहकारी, एकत्र या जमा करनेवाला।

सङ्ग्राहिन् (सं० पु०) सङ गृह्णाति मलमिति सं-ग्रह-णिनि। १ कुटजवृक्ष। (राजनि०) २ वह पदार्थ जो कफादि दोष, धातु, मल तथा तरल पदार्थोंका खो चता हो। ३ वह पदार्थ जो मलके पेटसे निकलनेमें बाधक होता है, कब्जियत करनेवाली चीज।

सङ्ग्राह्य (सं० त्रि०) सम्-ग्रह-ण्यत्। संग्रह करनेयोग्य, जमा करने लायक।

सङ्घ (सं० पु०) संहन (सङ्घोद्घौगणप्रशंसयोः। पा ३।३।८६) इति अप् टिलोपो घत्वञ्च निपात्यते। १ समूह, समुदाय, दल, गण। २ मनुष्योंका वह समुदाय जो किसी विशेष उद्देशसे एकत्र हुआ हो, समिति, सभा, समाज। ३ प्राचीन भारतका एक प्रकारका प्रजातन्त्र-राज्य जिसमें शासनाधिकार प्रजा द्वारा चुने हुए प्रतिनिधियोंके हाथमें होता था। ४ इसी संस्थाके ढंग पर बना हुआ बौद्ध श्रमणों आदिका धार्मिक समाज जिसकी स्थापना महात्मा बुद्धने की थी। पीछेसे यह बौद्ध धर्मके त्रिरत्नोंमेंसे एक रत्न माना जाता था। त्रिरत्नमें शेष दो बुद्ध और धर्म थे। बौद्ध शब्दमें विस्तृत विवरण देखो। ५ साधुओं आदिके रहनेका मठ, संगत।

सङ्घक (सं० पु०) सङ्घ-स्वार्थे-कन्। सङ्घ देखो।

सङ्घगुप्त (सं० पु०) वाग्भटके पिताका नाम।

सङ्घगुह्य (सं० पु०) एक बौद्ध यतिका नाम।

सङ्घचारिन् (सं० पु०) संघेन चरतीति चर-णिनि।

१ मत्स्य मण्डल। (हेम) (त्रि०) २ जो अधिकांश लोगोंका साथ दे बहुपक्षका अनुसरण करनेवाला। ३ जो झुण्ड या समुदायमें चलता हो।

सङ्घजीविन् (स० पु०) सङ्घेन आजीवतीति जीव णिनि। मालीन वह जो शारीरिक परिश्रम करके अपनी जीविका निर्वाह करता हो।

सङ्घर्ष (स० पु०) सं घट अच्। १ संघटन मिलन संयोग। २ परस्पर संघर्ष, लड़ाई झगड़ा।

सङ्घटन (स० क्ली०) सं घट ल्युट्। १ संयोग, मेल। २ संघर्ष। ३ उपकरणों के द्वारा किसी पदार्थका निर्माण, रचना। ४ साहित्यमें नायक नायिकाका संयोग, मिलाप। ५ बनाना। ६ संगठन देखो।

सङ्घटना (स० स्त्री०) सङ्घटन टाप्। परस्पर मिलन, सङ्घटन।

सङ्घट्ट (स० पु०) सं घट्ट घञ्। १ अन्योऽन्य विमर्द्दन। २ गठन, रचना, बनावट। ३ चक्रविशेष, सङ्घट्टचक्र।

सङ्घट्टचक्र (स० क्लो०) सं घट्ट पद चक्र। फलित ज्योतिषमें युद्ध-फल विचारनेका नक्षत्रोंका एक चक्र। इस चक्र द्वारा यह जाना जाता है कि युद्धमें जीत होगी या हार। यदि युद्धमें जानेवालेका जन्मनक्षत्र इस चक्रके शुभ स्थानमें रहे, तो वह युद्धमें विजय लाभ करता है और यदि अशुभमें रहे तो पराजय। स्वरोदयमें इस चक्रका विषय इस प्रकार दिया है। एक त्रिकोण चक्र बना कर उस चक्रमें टेढ़ी रेखाएं खोंच कर उसमें अश्विनी आदि २७ नक्षत्र अङ्कित करने चाहिये। दो नक्षत्रों का एक साथ वेध होगा। वेधक्रम इस प्रकार होता है—अश्विनीका रेवती और ज्येष्ठाके साथ, मघाका पुष्याके साथ, सर्प नक्षत्रका पितृ नक्षत्रके साथ अश्लेषाका मूलाके साथ और ज्येष्ठाका मूलाके साथ वेध होता है। यदि राजाका जन्म नक्षत्र इस चक्रवेधमें न हो या सौम्यनक्षत्र और ग्रह सहित वेध हो, तो उस समय युद्ध नहीं होगा। यदि क्रूर नक्षत्रके साथ वेध हो, तो उस समय भीषण युद्ध होगा। भीम स्थामा, मित्रामित्र आदि ग्रहोंसे चक्र तथा अतिचार प्रभृति गति द्वारा भी शुभाशुभका निर्णय होता है।

सङ्घट्टन (स० क्लो०) सं घट्ट ल्युट्। १ संयोग मिलन। २ गठन, बनावट। ३ घटना। ४ संघट्ट देखो।

सङ्घट्टना (स० स्त्री०) सं घट्ट युच् टाप्। १ सङ्घट्टन मिलन। २ गठन, बनावट। ३ घटना।

सङ्घट्टा (स० स्त्री०) सङ्घट्ट इति सं घट्ट अच् टाप्। लता, बल्ली बेल।

सङ्घट्टित (स० त्रि०) सं घट्ट क्त। १ संयोजित एकत्र किया हुआ। २ गठित, निर्मित, बना हुआ। ३ चलित चलाया हुआ। ४ घर्षित।

सङ्घट्टिन् (स० पु०) १ सदागर। (त्रि०) २ सङ्घट्ट कारक।

सङ्घनल (स० पु०) सङ्घे संहते नले यस्य। मिलित प्रनलद्वय, संहनल।

सङ्घनिष्ठ (स० त्रि०) बहु संख्याविशिष्ट।

सङ्घनाम (स० पु०) एक बौद्ध यतिका नाम।

सङ्घपति (स० पु०) मनुष्य पति। दलपति, नायक, वह जो किसी संघ या समूहका प्रधान है।

सङ्घपुष्पी (स० स्त्री०) सङ्घानि पुष्पाणि यस्या। धातकी, धौ। (राजनि०)

सङ्घभद्र (स० पु०) एक बौद्ध यतिका नाम। (तारनाथ)

सङ्घमण्डल (स० क्लो०) दलसमूह।

सङ्घ(रा)मित्र—एक प्राचीन कवि।

सङ्घरक्षित (स० पु०) एक बौद्ध यतिका नाम।

सङ्घरा—एक कवि।

सङ्घर्ष (स० पु०) सं घृष घञ्। १ सङ्घर्षण, रगड़ घिस्सा। २ दो विरोधी व्यक्तियों या दलों आदिमें स्वार्थोंके विरोध के कारण होनेवाली प्रतियोगिता या स्पर्द्धा। ३ मर्द्दन, घोटन किसी चीजका घोटने या रगड़नेकी क्रिया। ४ वह अहङ्कारसूचक वाक्य जो अपने प्रतिपक्षीके सामने अपना बड़प्पन जतलानेके लिये कहा जाय। ५ धीरे धीरे चलना रेंगना। ६ शर्त लगाना, बाजी लगाना।

सङ्घर्षण (स० क्ली०) सङ्घर्ष देखो।

सङ्घर्षिन् (स० त्रि०) सं घृष णिनि। १ सङ्घर्षकारक, जो किसी प्रकारका संघर्ष करता हो। २ किसीके साथ प्रतियोगिता करता हो प्रतिस्पर्द्धा करनेवाला। ३ घर्षण कारी, रगड़ने या घिसनेवाला।

सङ्घवर्द्धन (स० पु०) एक बौद्ध आचार्यका नाम। (तारनाथ)

सङ्घवृत्ति (सं० स्त्री०) साथ कार्य करनेके निमित्त एकत्र होने या सम्मिलित होनेका क्रिया, सहयोग।

सङ्घशस् (सं० अव्य) सङ्घ शस्। भूरिशः, बहुशः, दल दलमें।

सङ्घाट (सं० पु०) सङ्घेन अटति अट घञ्। दल, समूह या संघ आदिमें रहनेवाला, वह जो दल बाँध कर रहता हो।

सङ्घाटिका (सं० स्त्री०) सङ्घाटयतीति सं-घट णिच् ण्वुल् टापि अत इत्वं। १ युग्म, जोड़ा। २ कुट्टनी, वह स्त्री जो प्रेमी और प्रेमिकाको मिलावे, कुटनी। ३ स्त्रियों का प्राचीन कालका एक प्रकारका पहनावा। ४ सिंघाड़ा। ५ घ्राण।

सङ्घाटी (सं० स्त्री०) बौद्ध भिक्षुओंके पहननेका एक प्रकारका वस्त्र।

सङ्घाणक (सं० पु०) श्लेष्मा, कफ।

सङ्घात (सं० पु०) सं-हन-घञ्। १ समूह, समष्टि, जमाव। २ आघात, चोट। ३ हत्या, वध। ४ कफ। ५ नरकभेद, इक्कीस नरकोंमेंसे एक नरकका नाम। ६ नाटकमें एक प्रकारकी गति। ७ निवास स्थान, संघात। ८ शरीर (त्रि०) ६ सघन, निविड़, घना।

सङ्घातक (सं० पु०) १ संघातकारी, घात करनेवाला प्राण लेनेवाला। २ वह जो बरबाद करता हो, नष्ट करनेवाला।

सङ्घातचारिन् (सं० त्रि०) संघातेन चरति चर णिच्। जो अपने वर्गके और प्राणियों या लोगोंके साथ मिल कर या उनका संघ बना कर रहता हो।

सङ्घातपत्रिका (सं० स्त्री०) संघातयुक्तानि पत्राणि यस्याः, कापि अत इत्वं। १ शतपुष्पा, सोआ। २ मिश्रेया, सौंफ।

सङ्घातबलप्रवृत्त (सं० पु०) सुश्रुतके अनुसार एक प्रकारका आधिभौतिक और आगन्तुक रोग।

सङ्घातवत् (सं० त्रि०) संघात अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। संघातविशिष्ट, संघातयुक्त।

सङ्घातशूलवत् (सं० त्रि०) संघातशूल नामक रोगकी यन्त्रणाके समान।

सङ्घातिन् (सं० त्रि०) संघातक, प्राणनाशक।

सङ्घात्य (सं० पु०) संघातक, संहारक।

सङ्घाधिप (सं० पु०) संघस्य अधिपः। संघपति।

सङ्घानन्द (सं० पु०) बौद्धोंके सत्रहवें आचार्यका नाम।

सङ्घाराम (सं० पु०) बौद्ध भिक्षुओं तथा श्रमणों आदिके रहनेका मठ, विहार।

सङ्घावशेष (सं० पु०) बौद्ध मतके अनुसार एक प्रकार का पाप।

सङ्घुषित (सं० त्रि०) १ सम्यक् प्रकारसे घोषित, प्रचारित। २ शब्दित। भावे क्त। (क्ली०) ३ शब्दघोषणा।

सङ्घुष्ट (सं० त्रि०) सङ्घुषित देखो।

सङ्घोष (सं० पु०) सम्-घुष घञ्। घोष, जोरका शब्द।

सङ्घोषिन् (सं० त्रि०) घोषणाकारी, जोरका शब्द करनेवाला।

सच् (सं० स्त्री०) ब्रह्मणस्पति, इस नामका देवता।

सच (हिं० वि०) जो यथार्थ हो, सत्य, वास्तविक।

सचक्र (सं० त्रि०) चक्रेण सह वर्त्तमानः। चक्रके सहित वर्त्तमान, चक्रवाला।

सचक्रिन् (सं० त्रि०) रथचालक, सारथी।

सचक्षुस् (सं० त्रि०) चक्षुसा सह वर्त्तमानः। चक्षुष्मान्।

सचप (सं० पु०) सचन, यागसहायकरण।

सचथ्य (सं० क्ली०) सर्व, सकल। (ऋक् ५।५०।२)

सचन (सं० क्ली०) सेवा करनेका क्रिया या भाव, सेवन।

सचनावत् (सं० त्रि) सकल कर्तृक भजनविशिष्ट, जिसका भजन सब लोग करते हैं।

सचमस् (सं० त्रि०) समानान्न, तुल्य अन्नविशिष्ट।

सचमुच (हिं० अव्य०) १ यथार्थतः, ठीक ठीक, वास्तव में। २ निश्चय, निस्सन्देह, अवश्य।

सचर्म (सं० क्ली०) सम्मुखका पद। (कौशि० १३८)

सचर (सं० पु०) श्वेत झिण्टी, सफेद कटसरैया।

सचराचर (सं० पु०) संसारकी सब चर और अचर वस्तुएं, स्थावर और जंगम सभी वस्तुएं।

सचल (सं० पु०) १ वह वस्तु जिसमें गतिकी सामर्थ्य हो, सचर, चर, जंगम। (त्रि०) २ चलायमान, चर, चलनेवाला।

सचललवण (सं० पु०) सौवर्चल लवण, सोंचर नमक।

सचा (सं० स्त्री०) सखा, मित्र।

सचाई (हिं० स्त्री०) १ सच्चा होनेका भाव, सत्यता, सच्चापन। २ यथार्थता, वास्तविकता।

सचान (सं० पु०) श्येन पक्षी, बाज।

सचाभू (सं० त्रि०) हमारे साथ अवस्थित।

साच (सं० स्त्री०) सच समवाये (सर्वधातुभ्य इन्। उण् ४।११८) इति इन्। शची।

सचिक्कण (सं० त्रि०) अत्यन्त चिकना, बहुत अधिक चिकना।

सचिक्कन (सं० त्रि०) अत्यन्त स्निग्ध बहुत अधिक चिकना।

सचित् (सं० त्रि०) चित्तयुक्त, जिसे ज्ञान या चेतना हो।

सचित्क (सं० त्रि०) चेतनाधिष्ठित। (भागवत ३।२।१।५)

सचित्त (सं० त्रि०) एकचित्तविशिष्ट, एकमना, जिसका ध्यान एक ही ओर लगा रहे। (अथव ६।१००।१)

सचिन्त (सं० त्रि०) चिन्तायुक्त, जिसे चिन्ता हो। फिक्रमंद। (मृच्छकटिक ७।७)

सचिपत्र (सं० पु०) १ विलग्न वस्तु। २ कुदर्शन।

सचिव (सं० पु०) सच समवाये इन, तथा सच् वातीति वा क। १ मन्त्री, वजीर। २ सहायक, मददगार। ३ मित्र, दोस्त। ४ कृष्ण धुस्तूर काला धतूरा। (राजनि०)

सचिवता (सं० स्त्री०) सचिवस्य भावः तल् टाप्। सचिव होनेका भाव या धर्म, सचिवत्व।

सचिवत्व (सं० क्ली०) सचिव होनेका भाव या धर्म, सचिवता।

सचिवामय (सं० पु०) सचिवानामामयः। १ पाण्डुरोग, पीलिया। (राजनि०) २ विसर्परोग।

सचिविदु (सं० त्रि०) सचिविद्, जो सचि अर्थात् सखा को जानता हो।

सचिह्न (सं० त्रि०) चिह्नयुक्त।

सची (सं० स्त्री०) सचि कृदिकारादिति ङीष्। १ शची, इन्द्राणी। २ अगुरु, अगर।

सचीन—गुजरात प्रदेशके अन्तर्गत एक देशी राज्य। जो सब ग्राम इस राज्यके अधीन हैं, वे एक सीमाभुक्त नहीं हैं। कोई कोई ग्राम वृटिश शासित स्थानमें और कोई बड़ौदा राज्यके मध्यवर्त्ती हैं। इस स्थानका जलवायु स्वास्थ्यकर है। यहां धान, कपास और ईख आदिसे काफी आमदनी होती है। यहां ताती अधिक संख्यामें रहते हैं। ये लोग कपड़े और सूत आदि तैयार करते हैं।

यहांके नवाब जातिके हबसी हैं। इनके पूर्वपुरुष कब इस देशमें आये थे, उसका पक्का प्रमाण नहीं मिलता। ये लोग दण्डराजपुर तथा जञ्जिराके सिद्दी नामसे पश्चिम उपकूलमें परिचित हैं। पहले ये लोग अहमदनगर और विजापुरराजके अधीन जञ्जिराके अध्यक्ष थे। १६६० ई० में उन लोगोंके पूर्वपुरुष औरङ्गजेबके अधीन जहाजके अध्यक्ष रूपमें नियुक्त हुए। उस समय उनके पारिवारिक खर्च वर्चके लिये औरङ्गजेबने उन्हें वार्षिक ३ लाख रुपये आयकी एक सम्पत्ति दी। मुगल साम्राज्यके अवसानके बाद सिद्दी लोग समुद्री डाकूके व्यवसायमें प्रवृत्त हुए। ये लोग बलपूर्वक जहाजका माल असबाब लूट लिया करते थे। केवल अंगरेज वणिकोंके साथ इनका सद्भाव था। शिवाजी और मुगलोंके युद्धके समय जञ्जिराके सिद्दी लोग जञ्जिरामें राज्य करते थे।

शिवाजी और मुगलोंके तथा पेशवा और अंगरेज गवर्मेण्टके युद्धमें सिद्दी लोग मौका देख कर कभी कभी एककी ओरसे युद्ध करते थे। बालूमीयां सिद्दीने जञ्जिराके ज्ञातियों द्वारा १७९१ ई०में भगाये जा कर महाराष्ट्र और अंगरेजोंकी शरण ली। पेशवा लोगोंने जञ्जिराका अधिकार पानेकी आशासे बालूमीयांको सचीन राज्य प्रदान किया।

सचीनक (सं० त्रि०) चीन दुकूल सहित।

सचीपुत्र (सं० पु०) सच्याः नन्दनः। १ शचीका पुत्र जयन्त। २ श्रीचैतन्यदेव। चैतन्य देखो।

सचेत (हिं० वि०) १ चेतनायुक्त। सचेतन देखो। २ सज्ञान, समझदार। ३ सजग, सावधान, होशियार।

सचेतन (सं० त्रि०) चेतनया सह वर्त्तमानः। १ चैतन्य, चेतनायुक्त। २ सावधान, होशियार। ३ चतुर, समझदार। (पु०) ४ विवेकयुक्त प्राणी, वह प्राणी जिसे चेतना हो। ५ चेतन, वह वस्तु जो जड़ न हो।

सचेतस् (सं० त्रि०) १ समानमनस्क। (ऋक् १०।६।३) २ चेतनायुक्त।

सचेती (हिं० स्त्री०) १ सचेत होनेका भाव। २ सावधानी, होशियारी।

सचेतु (सं० त्रि०) शोभनचित्त।

सचेष्ट (सं० त्रि०) चेष्टया सह वर्त्तमानः। १ चेष्टायुक्त, जिसमें चेष्टा हो, जो चेष्टा करे, उद्योगी। (पु०) २ आम्र वृक्ष, आमका पेड़।

सचोर—गुजराती ब्राह्मणोंकी एक जाति। ये लोग प्रायः रसोईका काम कर अपनी जीविका चलाते हैं।

सच्चरित (सं० क्ली०) सत्-चरितं। १ सच्चरित, साधु चरित्र। २ सदाचरण। (त्रि०) ३ उत्तम चरित्रविशिष्ट, जिसका चालचलन अच्छा हो।

सच्चर्या (सं० स्त्री०) उत्तम आचरण, अच्छा चालचलन।

सच्चा (हिं० वि०) १ सत्यवादी, सच बोलनेवाला, जो कभी झूठ न बोलता हो। २ यथार्थ, जिसमें झूठ न हो, ठीक, वास्तविक। ३ विशुद्ध, असली। ४ बिलकुल ठीक और पूरा, जितना या जैसा चाहिए उतना या वैसा।

सच्चाई (हिं० स्त्री०) सच्चा होनेका भाव, सच्चापन, सत्यता।

सच्चापन (हिं० पु०) सत्य होनेका भाव, सत्यता, सचाई।

सच्चार (सं० पु०) सम्पत्तिपरिरक्षक, वह जो सम्पत्तिकी रक्षा करता हो। (काम०नीति १२।३४)

सच्चारा (सं० स्त्री०) हरिद्रा, हल्दी।

सच्चाहट (हिं० स्त्री०) सच्चा होनेका भाव, सच्चापन, सत्यता।

सच्चित् (सं० क्ली०) सं श्व चिच्च। सत् और चित्से युक्त, ब्रह्म।

सच्चिदानन्द (सं० पु०) संश्चासौ चिच्चासौ आनन्दश्चेति त्रिपदे कर्मधारयः। नित्य ज्ञानसुखस्वरूप ब्रह्म। सत्, चित् और आनन्द ये तीन ब्रह्मके स्वरूप हैं।

विशेष विवरण ब्रह्म शब्दमें देखो।

सच्चिदानन्द—१ अनुभावसार और गुरुशतकके प्रणेता। ये सच्चिदानन्द यति नामसे प्रसिद्ध थे। २ श्रुतिसारसमुद्धरण तोटककी टीका और सिद्धान्ततत्त्वबिन्दुटीकाके रचयिता।

सच्चिदानन्द तीर्थ—आकाशोपन्यासके प्रणेता चिद्घनसेशानन्द तीर्थके गुरु।

सच्चिदानन्द नाथ—सौभाग्यरत्नाकरके प्रणेता विद्यानन्दनाथके गुरु। इन्होंने लघुचन्द्रिकापद्धति और ललिताचनचन्द्रिका नामक दो तन्त्रोंकी रचना की है।

सच्चिदानन्द भारती—गुरुवंशकाव्य, मीनाक्षीस्तवराज, रामचन्द्र महोदय और सन्धानकल्पवल्लीके रचयिता।

सच्चिदानन्दमय (सं० त्रि०) सच्चिदानन्द स्वरूपे मयट्। सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म।

सच्चिदानन्द योगीन्द्र—पञ्चशतिका और स्वच्छन्दपद्धतिके प्रणेता। ये विमलानन्द योगीन्द्रके शिष्य थे।

सच्चिदानन्द शास्त्री—न्यायकौस्तुभके प्रणेता।

सच्चिदानन्द सरस्वती—आत्मनिरूपणव्याख्या और आर्याव्याख्या (वेदान्त)-के प्रणेता। ये शङ्कराचार्यके शिष्य कह कर विख्यात थे।

सच्चिदानन्द स्वामी—वेदान्तसंग्रहके रचयिता।

सच्चिन्मय (सं० त्रि०) सच्चित् मयट्। सत् और चैतन्य स्वरूप, सत् और चैतन्यसे युक्त।

सच्छन्दस् (सं० त्रि०) छन्दोलक्षणयुक्त।

सच्छन्दस्य (सं० त्रि०) छन्दोलक्षणविशिष्ट।

सच्छाय (सं० त्रि०) छायया सह वर्त्तमानः। छाया युक्त, छायाविशिष्ट।

सच्छात्र (सं० क्ली०) सत्-छात्र। उत्तम स्वभाव युक्त छात्र, उत्तम विद्यार्थी।

सच्छेद (सं० त्रि०) छेदविशिष्ट, जिसमें छेद हो।

सच्छ्लोक (सं० क्ली०) उत्तम श्लोक।

सच्युति (सं० स्त्री०) दलबल सहित चलना।

सज (हिं० स्त्री०) १ सजनेकी क्रिया या भाव। २ रूप बनाव, डौल, शकल। ३ शोभा, सौन्दर्य। (पु०) ४ एक प्रकारका बहुत लंबा वृक्ष। इसके पत्ते शिशिरमें झड़ जाते हैं। यह हिमालय, बंगाल और दक्षिणभारतमें अधिकतासे पाया जाता है। इसके हीरकी लकड़ी बहुत कड़ी और मजबूत होती है। इसकी लकड़ीका रंग स्याही लिये हुए भूरा होता है। लकड़ी जहाज, नाव आदि बनानेमें काम आती है। इसे कहीं कहीं असीन भी कहते हैं।

सजग (हि० वि०) सचेत, सावधान, सतर्क, होशियार।

सजदार (हि० वि०) जिसकी आकृति अच्छी हो सुन्दर।

सजधज (स० स्त्री०) बनाव, सिंगार, सजावट।

सजन (सं० त्रि०) जनेन सह वर्त्तमानः। १ जनयुक्त, जिसमें लोग हों। (पु०) २ सज्जन, भला आदमी शरीफ। ३ पति भर्त्ता। ४ प्रियतम, प्यारा, यार।

सजनपद (सं० त्रि०) जनपदयुक्त।

सजना (हि० क्रि०) १ भूषण वस्त्र आदिसे सज्जित करना, अलंकृत करना, शृंगार करना। २ शोभा देना, शोभित होना भला जान पड़ना। ३ वस्तुओंको उचित स्थानमें रखना जिसमें वे सुन्दर जान पड़े, सजाना, साजना। (पु०) ४ सन्दिग्ध देखो।

सजनीय (स० क्ली०) लोकप्रसिद्ध, मशहूर।

सजनु (सं० त्रि०) सरलभावसे दण्डायमान।

सजन्य (सं० त्रि०) १ सम्पर्कयुक्त, आत्मम श्लिष्ट। (ऋक् ४।५०।६) २ सजनीय। (काठक ३४।४)

सजबज (हि० स्त्री०) सजधज देखो।

सजम्बाल (सं० त्रि०) जम्बालेन पङ्केन सह वर्त्तमान। पङ्किल।

सजल (सं० त्रि०) १ जलसे युक्त या पूर्ण जिसमें पानी हो। २ अश्रुपूर्ण, आँसुओंसे पूर्ण।

सजला (हि० वि०) १ चार सहोदरोंमेंसे तीसरा मंझलेसे छोटा, पर सबसे छोटेसे बड़ा। (स्त्री०) २ जलयुक्त, जलसे भरा हुई।

सजवाई (हि० स्त्री०) १ सजवानेकी क्रिया। २ सुसज्जित करनेका भाव। ३ सजानेकी मजदूरी।

सजवाना (हि० क्रि०) किसीके द्वारा किसी वस्तुको सुसज्जित कराना, सुसज्जित करना।

सजा (फा० स्त्री०) १ अपराध आदिके कारण होनेवाला दण्ड। २ कारागारका दण्ड, जेलमें रखनेका दण्ड।

सजाई (हि० स्त्री०) १ सजानेकी क्रिया, सजानेका काम। २ सजानेका भाव। ३ सजानेकी मजदूरी।

सजागर (सं० त्रि०) १ जागता हुआ। २ सजग, होशियार।

सजात (सं० त्रि०) समानजन्मा, ज्ञाति भिन्न बान्धव

सजातयशस्या (स० स्त्री०) राज्य और ज्ञातिकी कामना करनेवाली। (तैत्तिरीयस० २।३।६।७)

सजातवनि (स० त्रि०) समान कुलमें जात व्यक्ति द्वारा यज्ञीय पुरोडाशादि स्वीकार करनेवाला।

सजातवत् (स० त्रि०) सजात अस्त्यर्थे मतुप मस्य व। सजातविशिष्ट।

सजाति (सं० पु०) समाना जातिरस्य समानस्य सः। १ समान श्रेणी, एक जाति। २ समान जातीय स्त्रीपुरुष का पुत्र। (त्रि०) ३ समानजातिविशिष्ट, एक जातिका।

सजातीय (सं० त्रि०) जातौ भवः जातीयः समानो जातीयः, समानस्य स। एक जाति या गोत्रका।

सजात्य (सं० त्रि०) सजाति देखो।

सजाना (हि० क्रि०) १ वस्तुओंको यथास्थान रखना, यथाक्रम रखना, तरकीब लगाना। २ अलंकृत करना, संवारना।

सजाय (सं० त्रि०) जायया सह वर्त्तमान। जो अपनी स्त्रीके साथ वर्त्तमान हो।

सजायाफता (फा० पु०) वह जिसने दण्ड विधानके अनुसार दण्ड पाया हो, वह जो सजा भोग चुका हो।

सजायाब (फा० वि०) १ दण्डनीय, जो दण्ड पानेके योग्य हो। २ जो कानूनके अनुसार सजा पा चुका हो, जिसे कारागारका दण्ड मिल चुका हो।

सजार (हि० पु०) शल्यक साहिली।

सजारु (हि० पु०) साही देखो।

सजाव (हि० पु०) १ एक प्रकारका दही। इसे बनानेके लिये दूधको पहले खूब गरम करते हैं और तब उसमें जामन छोड़ते हैं। इस प्रकार जमा हुआ दही बहुत उत्तम होता है। उसकी साढ़ी या मलाई बहुत मीठी और चिकनी होती है। (स्त्री०) २ सजावट देखो।

सजावट (हि० स्त्री०) १ सज्जित होनेका भाव या धर्म। २ शोभा। ३ तैयारी।

सजावल (फा० पु०) १ सरकारी कर उगाहने वाला कर्मचारी, तहसीलदार। २ राजकर्मचारी। ३ सिपाही, जमादार।

सजावार (फा० वि०) दण्डनीय, जो दण्डका भागी हो, जो सजा पानेके योग्य हो।

सजित्वन् (सं० त्रि०) समान जेता, समान जीतनेवाला।

सजित्वरी (सं० स्त्री०) समान जीतनेवाली।

सजिना (हिं० पु०) सहिंजन देखो।

सजीला (हिं० वि०) १ सजधजके साथ रहनेवाला, छैला, छबीला। २ सुन्दर, सुडौल, मनोहर।

सजीव (सं० त्रि०) १ जीवयुक्त, जीवित, जिसमें प्राण हों। २ तेज, फुरतीला। ३ ओजयुक्त, ओजस्वी। (पु०) ४ जीवधारी, प्राणी।

सजीवता (सं० स्त्री०) सजीव होनेका भाव, सजीवपन।

सजीवन (हिं० पु०) संजीवनी नामक बूटी।

सजीवनबूटी (हिं० स्त्री०) रुदन्ती, रुद्रवन्ती।

सजीवनी मन्त्र (सं० पु०) १ वह कल्पित मन्त्र जिसके सम्बन्धमें लोगोंका विश्वास है कि मरे हुए मनुष्य या प्राणीको जिलानेकी शक्ति रखता है। ३ वह मन्त्र जिससे किसी कार्यमें सुभीता हो, उपकारी मन्त्रणा।

सजुता (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका छन्द। इसके प्रत्येक चरणमें एक सगण, दो जगण और एक गुरु होता है।

सजुष् (सं० अव्य०) सहार्थ, सहित।

सजूरी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी मिठाई।

सजूष् (सं० त्रि०) जुष सेवे क्विप् जुषा सह वर्त्तते इति सहस्य सः (स सजुषोरुः। पा ८।२।६६) इति रु ततो दीर्घः। १ प्रीतियुक्त। २ सेवायुक्त। ३ तापस।

सजोष (सं० त्रि०) समान प्रीतियुक्त, जिनमें समान प्रीति हो।

सजोषण (सं० त्रि०) परस्पर अभ्यस्त प्रीति या आनन्दालाप, बहुत दिनोंसे चली आई हुई समान प्रीति।

सजोषस् (सं० त्रि०) एकमत होनेके कारण परस्परमें सङ्गत।

सज्ज (सं० त्रि०) सज्जनीति सज्ज-अच। १ सम्बन्ध। २ सम्भूत। ३ निभृत। (शब्दरत्ना०) ४ सज्जित, सजा हुआ। ५ वर्म्मित, कवचधारी। ६ प्राकारादि द्वारा सुरक्षित।

सज्जक (सं० त्रि०) सज्ज स्वार्थे-कन्। सज्जा, सजावट।

सज्जटा (सं० स्त्री०) सुगन्धित जटा।

सज्जण (सं० पु०) १ फौजकी तैयारी। २ सज्जन देखो।

सज्जता (सं० स्त्री०) सज्जस्य भावः तल् टाप्। सज्जाका भाव या धर्म्म, सजावट।

सज्जन (सं० क्ली०) सज्ज-णिच् ल्युट्। १ चौकीदार, संतरी। पर्याय—उपरक्षण। (अमर) २ घट्ट, घाट। ३ सज्जा, सजावट। (पु०) सन् चासौ जनश्चेति। ४ सत्पुरुष, भला आदमी, शरीफ। ५ प्रियतम, प्रिय मनुष्य। ६ अच्छे कुलका मनुष्य।

जो वर्णाश्रमधर्मोक्त अपना आचार ग्रहण तथा वेदविधानानुसार कर्मका अनुष्ठान करते हैं और सर्वदा पापाभिलाषसे रहित होते हैं, उन्हें सज्जन कहते हैं। जो धर्मपरायण हैं, वही सज्जन हैं।

७ आयोजन। ८ सजाना। ९ गज-सज्जीकरण, हाथी सजाना।

सज्जन—एक प्राचीन अभिधानकार। मल्लिनाथने इनका उल्लेख किया है। २ सूक्तामृतपुनरुक्तोपदंशनदशन नामक वैद्यक ग्रंथके रचयिता।

सज्जन—दाक्षिणात्यकी तेली जातिकी एक शाखा। ये लोग गलेमें लिङ्ग धारण करते हैं इसलिए समाजमें सम्मानित हैं और सज्जन कहलाते हैं। अन्यान्य शाखाभुक्त तेलियोंके साथ इनका सामाजिक संस्रव नहीं है।

सज्जनता (सं० स्त्री०) सज्जन होनेका भाव, सत्पुरुषता, भलमंसाहत, भलमंसी।

सज्जना (सं० स्त्री०) सज्ज-णिच्-ल्युट् अस्यैति युच्-टाप्। वह हाथी जिस पर नायकका सरदार चढ़ता हो।

सज्जपुर (सं० पु०) १ एक जनपद या देशका नाम। २ उस देशका निवासी।

सज्जा (सं० स्त्री०) सज्ज-अच् टाप्। १ सजानेकी क्रिया, या भाव, सजावट। २ वेशभूषा।

सज्जा (हिं० स्त्री०) १ सोनेकी चारपाई, शय्या। २ चारपाई, तोशक, चादर आदि वे सामान जो किसीके मरने पर उसके उद्देश्यसे महापात्रको दिये जाते हैं। विशेष विवरण शय्यादान शब्दमें देखो। वि० ३ दाहिना।

सज्जादा (अ० पु०) १ बिछानेका वह कपड़ा जिस पर मुसलमान नमाज पढ़ते हैं, मुसल्ला, जानमाज़। २ आसन। ३ फकीरों या पीरों आदिकी गद्दी।

सज्जादानशीन (अ० पु०) १ वह जो गद्दी या तकिया लगा कर बैठता है। २ मुसलमान पीर या बड़ा फकीर।

मञ्जित (सं० त्रि०) मज्ज-क्त। १ भूषित, सजा हुआ। आरास्ता। २ आवश्यक वस्तुओंसे युक्त तैयार। ३ वर्मित, कवच धारण करनेवाला।

सज्जी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका प्रसिद्ध क्षार जो सफेदी लिए हुए भूरे रंगका होता है। सज्जी दो प्रकारकी होती है। एक घर भो मनुष्यको ओर बनाई जाती है। इस में बनी बड़ी झाड़ियां तोड़ कर उनमें पत्तोंकी शाखाएं और पत्ते आदि भर कर आग लगा देते हैं। जब ये जल कर राख जाते हैं तब उनकी राखको खारी कहते हैं। इसी खारीसे भूमिमें सज्जी बनाते हैं। दूसरे प्रकारकी सज्जी खारयाली जमीनमें होती है। खारके कारण भूमि फूल जाती है और उसी फूली हुई मिट्टीको सज्जी कहते हैं। वैद्यकके अनुसार सज्जी गरम, तीक्ष्ण और वायुगोला, शूल, वात कफ कृमिरोग आदिको शान्त करनेवाली मानी जाती है।

सज्जाखार (हिं० पु०) सज्जी देखो।

सज्जीबूटी (हिं० स्त्री०) क्षुप जातिकी एक वनस्पति जो प्रति वर्ष उत्पन्न होती है। यह एक १८ इंच तक ऊंची होती है। इसकी शाखाएं कोमल और पत्ते बहुत छोटे और लिकोन होते हैं। पुष्प छोटे और एकसे पांच तक साथ लगते हैं। बीजकोष १।१ इंच तक घेरेमें गोलाकार होता है। इसका रंग प्रायः धमकीला गुलाबी होता है। इसमें बहुत ही छोटे छोटे बीज होते हैं। प्रायः इसीके डंठलों और पत्तियोंसे सज्जीखार तैयार होता है। यह कई नाम प्रकारका पाया जाता है।

सज्जुता (हिं० स्त्री०) सयुक्त मात्रक शब्द।

सज्जुष्ट (सं० त्रि०) उत्तर आनन्दविधायक, सुखदायक।

सज्य (सं० त्रि०) गुणविशिष्ट, जिसमें ज्या हो।

सज्योतिस् (सं० त्रि०) समान ज्योतिस्, समान ज्योति वाला।

सज्वर (सं० त्रि०) ज्वरयुक्त।

सझ (हिं० स्त्री०) १ सजावट। २ तैयारी।

सझणु (हिं० पु०) तैयारी सञ्जित करनेकी क्रिया, शीघ्र तैयार करना।

सझना (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका छोटा पक्षी। इसकी पीठ काला छाती सफेद और चोंच लाली होता है।

सञ्च (सं० पु०) सञ्चिनोति वर्णानिति सं चि-ड। लिखन की स्याही।

सञ्चक (सं० पु०) छापाङ्कित मुद्राविशेष।

सञ्चम् (सं० पु०)(सञ्चत् वदे इत्। उण् ४।११५) सञ्चम सञ्चर, अनि प्रत्ययान्तो निपात्यते। प्रतारक।

सञ्चय (सं० पु०) सञ्चीयते इति सम् चि (एरच्। पा ३।३।५६) इत्यच्। १ समूह, राशि, ढेर। २ संग्रह। ३ अधिकता ज्यादती बहुतायत।

सञ्चयन (सं० क्लो०) सं चि ल्युट्। सञ्चय संग्रह।

सञ्चयवत् (सं० त्रि०) सञ्चयो विद्यतेऽस्य सञ्चय मतुप मस्य व। सञ्चयविशिष्ट, सञ्चयी, जमा करनेवाला।

सञ्चयिक (सं० त्रि०) संचयकारी, जमा करनेवाला।

सञ्चयित्व (सं० क्लो०) सञ्चयिनो भावः त्व। संचयीका भाव या धर्म, संचय, संग्रह।

सञ्चयिन् (सं० त्रि०) सं चि इन्। १ संचयविशिष्ट संचय करनेवाला, जमा करनेवाला। २ कृपण, कञ्जूस। नीतिशास्त्रमें लिखा है, कि 'सञ्चयो नावसीदति' सञ्चयी व्यक्ति अवसन्न नहीं होता। इसलिये सभीको सञ्चय करना परम आवश्यक है।

सञ्चर (सं० पु०) सञ्चरन्तेऽनेनेति सम् चर (गोचरसंचरेति। पा ३।३।११९) इति घ। १ गमन, चलना। २ सेतु, पुल। ३ जल निकलनेका मार्ग। ४ मार्ग, पथ, रास्ता। ५ स्थान जगह। ६ शरीर, देह। ७ सहायक, साथी।

सञ्चरण (सं० क्लो०) सं चर ल्युट्। १ गमन, चलना। २ कम्पन, कांपना। ३ प्रसारण फैलाना।

सञ्चरित (सं० त्रि०) सं-चर क्त। प्रचलित, प्रविष्ट गत।

सञ्चरिष्णु (सं० त्रि०) सं चर शीलार्थे इष्णु। सञ्चरण शील घूमनेवाला।

सञ्चरेण्य (सं० त्रि०) सर्वतः सञ्चार, चारों ओर घूमने वाला। (ऋक् १।१३०।१)

सञ्चल (सं० क्ला०) सौवर्चल लवण, सोंचर नमक।

सञ्चलन (सं० क्लो०) सम् चल ल्युट्। १ कम्पन कांपना। २ हिलना डोलना। ३ चलना फिरना।

सञ्चलनाड़ी (सं० स्त्री०) धमनी, रग, नस।

सञ्चान (सं० पु०) श्येन पक्षी बाज।

सञ्चाय्य (सं० पु०) सञ्चीयतेऽस्मिन् सोम इति सं-चि (क्रतौकुण्डपाय्यसञ्चाय्यौ। पा ३।१।१३०) इति ण्यदायादेशौ निपात्येते। क्रतु, एक प्रकारका यज्ञ।

सञ्चार (सं० पु०) सं-चर-घञ्। १ दुर्गसञ्चर। २ गमन, चलना। ३ विस्तार, फैलने या विस्तृत होनेकी क्रिया। ४ कष्टगति मुश्किलसे जाना। ५ कष्ट, विपत्ति। ६ पथप्रदर्शन, रास्ता दिखलानेकी क्रिया। ७ उत्तेजन। ८ चालन, चलानेकी क्रिया। ९ संक्रामण। १० सर्पमणि। सञ्चरत्यस्मिन्निति अधिकरणे घञ्। ११ देश। (रामायण टीका ३।११।१८) १२ रति-मन्दिरकी अवधि।

१३ ग्रहों या नक्षत्रोंका एक राशिसे दूसरी राशिमें जाना। ग्रहगण एक राशिसे जो दूसरी राशिमें जाते हैं उसको सञ्चार कहते हैं। ज्योतिषके मतसे ग्रहोंके सञ्चारकालमें चन्द्रमा जैसे भावमें रहते हैं, फल वैसा ही होता है अर्थात् सञ्चारकालमें चन्द्रमा यदि शुद्ध रहे तो जो ग्रह शुभ भावस्थ होता है उस ग्रहके शुभ फलकी वृद्धि होती है। सञ्चारकालमें चन्द्र शुद्ध यदि न रहे, तो उस शुभ भावस्थ शुभ ग्रहके शुभ फलकी न्यूनता होती है। कोई अशुभ ग्रह यदि सञ्चारकालमें अशुभ भावस्थ हो तथा चन्द्र यदि शुद्ध रहें, तो सञ्चारकालमें चन्द्रशुद्धि रहनेसे अशुभ फलकी न्यूनता होती है। फिर यदि कोई अशुभग्रह अशुभभावस्थ हो, तथा चन्द्रशुद्धि न रहे तो विशेष अशुभ फल हुआ करता है।

चन्द्रके सञ्चारकालमें यदि तारा शुद्ध रहे, तो चन्द्र शुभ फल प्रदान करते हैं। रविके सञ्चारकालमें चन्द्रशुद्धि रहनेसे रवि शुभ फलप्रद होते हैं। मङ्गलादि ग्रह सञ्चार कालमें यदि रवि शुद्धि रहे तो शुभ फल होता है रवि, मङ्गल और शनि इन तीन ग्रहोंके सञ्चारकालमें यदि नाडी नक्षत्र हो, तो इन तीन ग्रहोंके गोचरमें अत्यन्त अशुभ फल होता है। (दीपिका) गोचर देखो।

सञ्चारक (सं० पु०) १ सञ्चार करनेवाला, चलानेवाला। २ चलनेवाला। ३ दलपति, नायक, नेता। ४ स्कन्दानुचर भेद। (भारत शल्यपर्व)

सञ्चारजीविन् (सं० त्रि०) सञ्चारेण जीवति जीव-णिनि। शरणापन्न, शरणागत। (त्रिका०)

सञ्चारण (सं० क्ली०) प्रसारण, फैलाना।

सञ्चारणीय (सं० त्रि०) सञ्चर-णिच्-अनीयर्। सञ्चारण योग्य, सञ्चार करने लायक।

सञ्चारपथ (सं० पु०) सञ्चारस्य पन्थाः। सञ्चारमार्ग, सञ्चारका पथ।

सञ्चारिका (सं० स्त्री०) सञ्चारयति नायकयो वार्त्तामिति सं-चर-णिच् ण्वुल् टाप्, अत इत्वं। १ कुट्टनी, कुटनी, दूती। २ युगल, जोड़ा। ३ नासिका, नाक।

सञ्चारिणी (सं० स्त्री०) १ हंसपदी नामकी लता। २ लाल लजालू।

सञ्चारित (सं० त्रि०) सं-चर-णिच्-क्त। जिसका सञ्चार किया गया हो, चलाया या फैलाया हुआ।

सञ्चारिन् (सं० पु०) सञ्चरतीति सं-चर णिनि। १ धूप नामक गन्ध द्रव्य २ वायु, हवा। ३ भावविशेष। स्थायी सात्विक और सञ्चारी आदि भेदसे भाव अनेक प्रकारका है। नाना अभिनय सम्बन्धसे शृंगार आदि रसको भावित करता है, इसलिये उसे भाव कहते हैं। जहां यह भाव नाना विषयोंमें संचारशील होता है, वहां यह भाव होता है।

शृङ्गार आदि रसोंमें स्थायिभाव, सञ्चारिभाव और सात्विकभाव हैं। वात्सल्यरसमें अनिष्ट शङ्का, हर्ष और गर्व्वादि सञ्चारिभाव हैं।

इस प्रकार धीर रसमें धृति, मति, गर्व, स्मृति, तर्क, रोमाञ्च ये सब सञ्चारि-भाव हैं। इन सब सञ्चारि भावों द्वारा स्थायिभावकी पुष्टि होती है।

जैसे श्लोक, गान, छन्द आदिके चार चार चरण रहते हैं, संगीतके अनुसार वैसे ही आलापके भी चार चरण निर्दिष्ट हैं। पहले जिससे सुरवन्धन किया जाता है अथवा जो पहला चरण है, उसका नाम आस्थायी, दूसरे चरणका नाम अन्तरा, तीसरेका सञ्चारी और चौथेका नाम आभोग है।

४ संगीतशास्त्रके अनुसार किसी गीतके चार चरणोंमेंसे तीसरा चरण। ५ आगन्तुक। (त्रि०) ६ सञ्चरण करनेवाला, गतिशील।

सञ्चारिणी (सं० स्त्री०) सञ्चारिन्-ङीप्। १ हंसपदी लता। २ रक्तलज्जालुका, लाल लजालू। ३ गतिशीला।

सञ्चार्य (सं० त्रि०) सञ्चारण योग्य, प्रेरणशील।

सञ्चाल (सं० पु०) १ कम्पन, कांपना। २ चलन, चलना।

सञ्चालक (स ० त्रि०) परिचालक, जो स चालन करता हो, गति देने या चलानेवाला ।

सञ्चालन (स ० पु०) १ परिचालक, चलानेकी क्रिया । २ प्रतिपादन, काम जारी रखना या चलाना । ३ नियन्त्रण । ४ देख रेख ।

सञ्चाली (स० स्त्री०) गुञ्जा, घुघची ।

सञ्चिकीर्षु (स ० त्रि०) स चि मन् उ । सञ्चयाभिलाषी, स चय करनेमें इच्छुक ।

सञ्चिक्षिप्सु (स० त्रि०) सञ्चिक्षेप्तु इच्छु, स क्षिप् सन् उ । स क्षेप करनेमें इच्छुक ।

सञ्चिचीषु (स० त्रि०) सञ्चिकीर्षु देखो ।

सञ्चित (स ० त्रि०) स चि क्त । १ स गृहीत । २ सम्पूर्ण, स चय किया हुआ । ३ राशीकृत, ढेर लगाया हुआ ।

सञ्चिता (स ० स्त्री०) एक प्रकारकी धनस्पति ।

सञ्चिति (स० स्त्री०) एक पर एक रखना, तही लगाना ।

सञ्चित्रा (स ० स्त्री०) सम्यक चित्रमस्यामिति । मूषो कर्णी, मूसाकानो ।

सञ्चिन्त्य (स ० त्रि०) स चि त यत् । सम्यक्रूपसे चिन्त नीय, खूब चिन्ता करने योग्य ।

सञ्चिन्वानक (स ० त्रि०) स चय करनेमें व्यापृत ।

सञ्चृत् (स ० त्रि०) स बद्ध । (ऋक् ६।८४।०)

सञ्चेय (स ० त्रि०) स चि य । सञ्चयनीय, सचय करने योग्य ।

सञ्चोदक (स० पु०) १ ललितविस्तरके अनुसार एक देवपुत्रका नाम । (त्रि० , स-चोद ण्वुल् । २ सञ्चोदन कारी, प्रेरणकारी, भेजनेवाला ।

सञ्चोदन (स० क्ली०) स-चोद ल्युट् । प्रेरण, भेजना ।

सञ्चोदयितव्य (स० त्रि०) स चोद णिच्-तव्य । प्रेर यितव्य भेजने लायक ।

सञ्चोर—राजपूतनावासी श्रीमाली ब्राह्मणोंकी एक शाखा । सिरोहीके अन्तर्गत सञ्चोरा नामक स्थानमें वास करनेके कारण ये लोग सञ्चोर ब्राह्मण कहलाये ।

सञ्छर्दन (स ० क्ली०) १ वमन, कै । २ छर्दिस्थान । ३ पुरद्वार । ४ ग्रहणमें एक प्रकारका मोक्ष । राहु यदि ग्राह्य म डलमें पूर्व भागसे ग्रसना आरंभ करके फिर पूर्व दिशाको ही चला आवे तो उसको स छर्दन मोक्ष कहते हैं । फलित ज्योतिषके अनुसार इसमें स सारका म गल और धान्यकी वृद्धि होती है ।

सञ्छेत्तृ (स ० त्रि०) स च्छिद् तृच । सम्यकछेत्ता, छेदकारक निवारक ।

सञ्छेत्तव्य (स ० त्रि०) स छिद् तव्य । सञ्छेदार्ह, निवारणके योग्य ।

सञ्ज (स ०पु०) सम्यक् जायते इति स जन ड, सम्यक् जयशील जि अ पक्षपाति वा ड । १ ब्रह्मा । २ शिव ।

सञ्जय—कौरवराज धृतराष्ट्रके एक म त्री । ये गवल्गन नामक मुनिके पुत्र और धृतराष्ट्रके परामर्शदाता थे । व्यासदेवकी कृपासे दिव्यदृष्टि पा कर इन्होंने धृतराष्ट्रके सामने कुरुक्षेत्र युद्धका वर्णन किया था । यह भारतके युद्धके समाप्त होने पर युधिष्ठिरके राज्यकालमें हस्तिना पुरमें रहते थे पीछे धृतराष्ट्र, गान्धारी और कुन्तीके साथ वनको चले गये थे । वनमें जानेके थोड़े दिनोंके पीछे उस वनमें आग लगी । धृतराष्ट्र गान्धारी और कुन्ती इन तीनोंने वहां प्राणत्याग किये । परन्तु भाग कर सञ्जयने अपने प्राणकी रक्षा की । अनन्तर हिमालय प्रदेशकी ओर जा कर इन्होंने अपना शेष जीवन बिताया ।

२ महाभारतके अनुवादक एक प्राचीन बंगाली कवि । प्रसिद्ध बंगाली कवि कवीन्द्र परमेश्वरने जो महाभारतका अनुवाद किया उसमें सञ्जय वर्णित भाग और भाषाका यथेष्ट सौसादृश्य है, इसीसे मालूम होता है, कि सञ्जय कवीन्द्रके पहले हो गये हैं ।

सञ्जन (स ० क्ली०) सञ्ज ल्युट् । १ बन्धन । २ बांधनेकी क्रिया । ३ स घटन, बिखरे हुए अ गों आदिको मिला कर एक करना ।

सञ्जनन (स ० क्ली०) स जन-ल्युट् । सम्यक् जनन, उत्पादन ।

सञ्जना (स ० स्त्री०) वैदिक कालका एक प्रकारका सत्र जिसमें वध या हत्या की जाती थी ।

सञ्जपाल (स ० पु०) काश्मीरराजके अधीनस्थ एक सामन्त । (राजतर० ८।१२२१)

सञ्जय (स ० त्रि०) स जि अप् । सम्यक् जेता ।

सञ्जय कविशेखर—एक प्राचीन कवि ।

सञ्जयत् (स ० त्रि०) प्राप्त अधिकृत ।

सञ्जयन्ती (सं० स्त्री०) महाभारतके अनुसार एक नगरी का नाम।

सञ्जयिन् (सं० पु०) एक बौद्धयतिका नाम।

सञ्जर (सं० पु०) जलना, कथा-वार्त्ता, बातचीत।

सञ्जवन (सं० क्ली०) सञ्जवन्ति संमिलन्त्यत्रेति सं-जु-गतौ अधिकरणे ल्युट्। अन्योन्याभिमुख गृहचतुष्टय, चतुःशाल। पर्याय—चतुःशाल, संयमन, चतुःशाली, सञ्जीवन, शाला, निलय, चतुःशालक।

सञ्जा (सं० स्त्री०) छागी, बकरी। (त्रिका०)

सञ्जात (सं० त्रि०) १ प्राप्त। २ उत्पन्न। (पु०) ३ पुराणानुसार एक जातिका नाम। (विष्णुपुराण)

सञ्जान—बम्बई प्रदेशके थाना जिलान्तर्गत एक गण्डग्राम। पहले यह एक समृद्ध नगर था तथा यहीं पहले जोराष्ट्र वैदिक पार्सी जाति भारतमें आ कर बस गई थी। पुर्त्त गीजोंको विवरणोंमें तथा उसके पीछे भी यह स्थान सेण्टजन कहलाता था। इस समय उसकी पूर्व समृद्धि एक प्रकारसे विलुप्त हो गई है। यहां बम्बई बड़ौदा और मध्य-भारत रेलवेका एक स्टेशन है।

सञ्जिघृक्षु (सं० त्रि०) संगृहीतुमिच्छुः, सं-ग्रह सन्, सन्नन्तादुः। संग्रह करनेमें इच्छुक।

सञ्जिजीवयिषु (सं० त्रि०) सञ्जिजीवयितुमिच्छुः, सं-जीव-णिच्-सन् उ। सञ्जीवित करनेमें इच्छुक।

सञ्जिजीविषु (सं० त्रि०) सं-जीव सन् उ। जीवनाभिलाषी, जो अधिक दिन जीनेकी इच्छा करता हो।

सञ्जित् (सं० त्रि०) सं-जि-क्विप्-तुक् च। सम्यक् जेता।

सञ्जिति (सं० स्त्री०) प्राप्ति, युद्धमें जयलाभ।

सञ्जितवत् (सं० त्रि०) जयवान्। (पा ८।२।९)

सञ्जिहीर्षु (सं० त्रि०) संहर्त्तुमिच्छुः सं-हृ सन्-उ। संहाराभिलाषी, संहार या नाश करनेमें इच्छुक।

सञ्जीव (सं० त्रि०) १ पुनर्जीवनदानकारी, मरे हुएको फिरसे जिलानेवाला। (पु०) २ पुनर्जीवन दान, मरे हुएको फिरसे जिलाना। ३ बौद्धोंके अनुसार एक नरकका नाम।

सञ्जीवक (सं० त्रि०) १ सञ्जीवनकारी, मरे हुएको जीवन दान देनेवाला। (पु०) २ वृषभेद।

सञ्जीवककरणी (सं० स्त्री०) १ एक प्रकारकी विद्या जिसके प्रभावसे मृत मनुष्य जीवित हो जाता है। महाभारतमें लिखा है, कि शुक्राचार्य यह विद्या जानते थे। २ एक प्रकारकी कल्पित ओषधि जिसके सेवनसे मृत व्यक्तिका जीवित होना माना जाता है।

सञ्जीवन (सं० क्ली०) सञ्जीव्यतेऽस्मिन्निति सं-जीव अधिकरणे ल्युट्। १ सञ्जवन। सं-जीव भावे ल्युट्। २ भली भांति जीवन व्यतीत करनेकी क्रिया। (पु०) ३ मनुके अनुसार इक्कीस नरकोंमेंसे एक नरकका नाम। (मनु ४।८८) (त्रि०) ४ जीवन देनेवाला।

सञ्जीवनी (सं० स्त्री०) सञ्जीवन-ङीप्। १ जीवनदायिनी ओषधिविशेष। २ विद्याविशेष, सञ्जीवनी विद्या। इस विद्याके प्रभावसे मरा हुआ आदमी जी उठता है, इसीसे इसका नाम सञ्जीवनी-विद्या हुआ है। महाभारतमें लिखा है, कि दैत्यगुरु शुक्राचार्य यह विद्या जानते थे। इस विद्याके प्रभावसे शुक्राचार्य देवताओंके साथ युद्धमें मरे हुए दैत्योंको फिरसे जिला देते थे। देवताओं या उनके गुरु बृहस्पतिको यह विद्या मालूम न थी। देवताओंने यह विद्या पानेके लिये बृहस्पतिके पुत्र कचकी शरण ली तथा उनसे कहा, कि आप शुक्रसे यह विद्या सीख आइये, हम लोग आपको यज्ञफलका भागी बनायेंगे।

अनन्तर कच सञ्जीवनी विद्या सीखनेके लिये असुरपुरमें शुक्राचार्यके पास गया। शुक्राचार्यने उसको अपना शिष्य बना लिया। पीछे कचने गुरुके आदेशसे ब्रह्मचर्य व्रतानुष्ठान कर पांच सौ वर्ष विताये। असुरोंने कचका अभिप्राय जान कर उन्हें कई बार मार डाला, पर शुक्राचार्यके इस मन्त्रप्रभावसे वह प्रत्येक बार जीवित होता गया। पीछे दानवोंने कोई उपाय न देख कचको एकान्तमें हत्या कर शुक्राचार्यको खिला दिया। शाम होने पर भी जब कच गुरुगृह नहीं लौटा, तब शुक्राचार्यकी लड़की देवयानीने पितासे कहा, 'कच अब तक नहीं लौटा है, सम्भव है, कि वह कहीं मारा गया, इसलिये आप मन्त्रशक्तिके प्रभावसे उसको जिला दीजिये।' इस पर शुक्राचार्यने कहा, 'दानवोंने कई बार उसकी हत्या की, पर मैं हर बार उसे जिलाता गया, इस प्रकार किस तरह उसकी रक्षा हो सकती है।' पीछे देवयानीके हठ करने

पर शुक्राचार्यने सञ्जीवनी मन्त्रका प्रयोग कर कचको आह्वान किया। कच गुरुपाचार्यके उदरमेंसे बोला, 'हे गुरो! आपकी कृपासे मेरी स्मरणशक्ति विलुप्त नहीं हुई है, जब जैसी घटना घटती है, कुल मुझे याद है। फिर गुरुका उदर फाड़ कर निकल आनेसे कहीं मुझे पाप पङ्कमें निमग्न होना न पड़े, इसीलिये जठरावासका क्लेश सहन कर रहा हूं। असुरोंने मुझे वध, दग्ध और चूर्ण कर सुराके साथ आपको पिला दिया था।' यह सुन कर शुक्राचार्यने सञ्जीवनी उसे दे दी। कच यह विद्या पा कर गुरुके पेटमेंसे निकल पड़े और उसी विद्याके प्रभावसे पीछे उसने गुरुको जिला दिया। (भारत आदिप० ७१ ८० अ०) देवयानी और कच शब्द देखो।

सञ्जीविका (सं० स्त्री०) वामवदत्ताउणित नायिका भेद।

सञ्जीविन् (सं० त्रि०) संजीव णिनि। सञ्जीवक, जो मृतको फिर जीवन दान देता हो, मुर्देको जिलानेवाला।

सञ्जुक (सं० पु०) संयुक्त देखो।

सञ्जेली—बम्बई प्रदेशके रेवाकांठा विभागान्तर्गत एक छोटा सामन्तराज्य। भूपरिमाण ३॥ वर्गमील है। यहांके ठाकुर साहब किसीको कर नहीं देते।

सञ्ज्ञ (सं० स्त्री०) १ पीतकाष्ठ, भाऊ। (पु०) २ वह जो सब बात अच्छी तरह जानता हो, वह जो सब विषयोंका अच्छा जानकार हो।

सञ्ज्ञक (सं० त्रि०) संज्ञा स्वार्थे कन्। संज्ञाविशिष्ट संज्ञावाला। इस शब्दका प्रयोग प्रायः यौगिक बनानेमें शब्दके अन्तमें होता है।

सञ्ज्ञपन (सं० क्ली०) संज्ञा णिच् ल्युट्। १ हत्या मार डालनेकी क्रिया। २ विज्ञापन, कोई बात लोगों पर प्रकट करनेकी क्रिया।

सञ्ज्ञप्ति (सं० स्त्री०) सं ज्ञा णिच् क्तिन्। सञ्ज्ञपन देखो।

सञ्ज्ञा (सं० स्त्री०) संज्ञा देखो।

सञ्ज्ञु (सं० त्रि०) संहते जानुनी यस्य (प्रसम्भ्यां जानुनोर्ज्ञुः। पा ५।४।१२९) इति ज्ञु। संज्ञु। (अमर)

सञ्ज्वर (सं० पु०) सम्यक् ज्वर। संज्वर।

सञ्ज्वरवत् (सं० त्रि०) सं ज्वरमतुप् मस्य व। सम्यक् ज्वरविशिष्ट, जिसे खूब ज्वर चढ़ा हो।

सञ्ज्वरिन् (सं० त्रि०) सं ज्वर इन्। सम्यक् ज्वर विशिष्ट जिसे खूब ज्वर चढ़ा हो।

सट (सं० स्त्री०) सटतीति सट अवयवे अच्। जटा।

सटक (हिं० स्त्री०) १ सटकनेकी क्रिया धीरेसे चम्पत होने या खिसकनेका व्यापार। २ तम्बाकू पीनेका लम्बा लचीला नैचा जो भीतर छल्लेदार तार दे कर बनाया जाता है। यह रबरकी नलीकी भांति लचीला और लपेटने योग्य होता है। अधिक लम्बे बांसकी निगाली रखनेमें अड़चन होती है अतः लोग सटकका व्यवहार करते हैं। ३ पतली लचनेवाली छड़ी।

सटकना (हिं० क्रि०) १ धीरेसे खिसक जाना, रफूचक्कर होना, चम्पत होना। २ बालोंमेंसे अनाज निकालनेके लिये उसे कूटनेकी क्रिया, कूटना, पीटना।

सटकाना (हिं० क्रि०) १ किसीको छड़ी, कोड़े आदिसे मारना जिसमें सट शब्द हो। २ सड़ सड़ या सट सट शब्द करते हुए हुक्का पीना।

सटकार (हिं० स्त्री०) १ सटकानेकी क्रिया या भाव। २ फटकारने या झटकारनेकी क्रिया। ३ गौ आदिको हांकनेकी क्रिया, हटकार।

सटकारना (हिं० क्रि०) १ पतली लचीली छड़ी या कोड़े आदिसे किसीको सटसे मारना, सट सट मारना। २ फटकारना, झटकारना।

सटकारा (हिं० वि०) चिकना और लम्बा।

सटकारी (हिं० स्त्री०) लचनेवाली पतली छड़ी, सांटी।

सटका (हिं० पु०) १ सटका देखो। २ दौड़ झपट।

सटना (हिं० क्रि०) १ दो चीजोंका इस प्रकार एकमें मिलना जिसमें दोनोंके पार्श्व एक दूसरेसे लग जाय। २ चिपकना। ३ संयोग होना। ४ साथ होना, मिलना। ५ लाठी या डंडे आदिसे मार पीट होना।

सटपट (हिं० स्त्री०) १ सिटपिटानेकी क्रिया, चकपकाहट। २ शील, संकोच। ३ संकट, दुविधा, असमञ्जस।

सटपटाना (हिं० क्रि०) १ सटपटकी ध्वनि होना। २ सिटपिटाना देखो। ३ सटपट शब्द उत्पन्न करना।

सटरपटर (हिं० वि०) १ तुच्छ, छोटा मोटा। २ बहुत साधारण, बिलकुल मामूली। (स्त्री०) ३ उलझनका काम, बखेड़ेका काम। ४ व्यर्थका या तुच्छ काम।

सटसट (हिं० क्रि० वि०) १ सट शब्दके साथ, सटासट। २ शीघ्र, बहुत जल्दी, तुरंत।

सटा (सं० स्त्री०) सट-अवयवे अच्-टाप्। १ जटा। २ शिखा। ३ घोड़े या शेरके कंधे परके बाल, अयाल, केसर।

सटाक (हिं० पु०) सट शब्द।

सटाका (हिं० स्त्री०) चमड़ेकी वह रस्सी या पट्टी जो पैनेके सिरे पर बाँधी जाती है। पैना बाँसका एक पतला छोटा डंडा होता है जिससे हल जोतनेवाला या गाड़ी हाँकनेवाला बैल हाँकता है। इस पैनेको कोड़ेका आकार देनेके लिये इसमें चमड़ेकी पतली पतली पट्टियाँ बाँधते हैं। इन्हीं पट्टियोंको सटाकी कहते हैं। सटाकी छड़ा दोनों मिल कर पैना होता है।

सटाङ्क (सं० पु०) सटा अङ्कं चिह्नं यस्य। सिंह, शेर।

सटान (हिं० स्त्री०) १ सटनेकी क्रिया या भाव, मिलान। २ दो वस्तुओंके सटने या मिलनेका स्थान, जोड़।

सटाना (हिं० क्रि०) १ दो चीजोंको एकमें संयुक्त करना, मिलाना, जोड़ना। २ लाठी, डंडे आदिसे लड़ाई करना, मार पीट करना। ३ स्त्री और पुरुषका संयोग करना, संभोग करना।

सटाव (हिं० वि०) १ न्यून, कम। २ हलका, घटिया, खराब।

सटाल (सं० पु०) सटा-अस्त्यर्थे लच्। सटायुक्त, केसरि, सिंह।

सटि (सं० स्त्री०) सटतीति सट-अवयवे इन्। सटी, कचूर।

सटिका (सं० स्त्री०) गन्धपत्रा, वन आदा, जंगली कचूर।

सटिया (हिं० स्त्री०) १ सोने या चांदीकी एक प्रकारकी चूड़ी। २ चांदीकी एक प्रकारकी कलम जिससे स्त्रियां मांगमें सिन्दूर देती हैं। ३ साटी देखो।

सटी (सं० स्त्री०) सटि वा ङीष्। गन्धद्रव्यविशेष, वन आदी, जंगली कचूर। गुण—कटुतिक्त, अम्लरस, लघु, उष्ण, रुचिप्रद, ज्वर कफ, श्वास कष्ट, व्रणदोष और वातार्शनाशक तथा हृद्य।

सटीक (सं० वि०) जिसमें मूलके साथ टीका भी हो, टीका सहित, व्याख्या सहित।

सटीक (हिं० वि०) बिलकुल ठीक, जैसा चाहिये ठीक वैसा ही।

सट्ट (सं० पु०) १ दरवाजेके चौखटमें दोनों ओरकी लकड़ियां, बाजू।

सट्ट (हिं० पु०) सट्टा देखो।

सट्टक (सं० क्ली०) १ नाटकभेद। इसमें प्राकृत शब्द बहुत रहेगा तथा प्रवेशक और विष्कम्भक नहीं रहेगा। इस ग्रन्थमें बहुतायतसे अद्भुत रस वर्णित होगा। इसके सभी अंक यवनिका कहलायेंगे और सब नाटिकाके समान होंगे। नाटक देखो।

२ जीरा मिलाहुआ मट्ठा।

सट्टा (सं० स्त्री०) १ एक प्रकारका पक्षी। २ वाद्य, बाजा।

सट्टा (हिं० पु०) वह इकरारनामा जो काश्तकारोंमें खेतके साझे आदिके सम्बन्धमें होता है, बटाई। २ वह इकरारनामा जो दो पक्षोंमें कोई निश्चित काम करने या शर्तें पूरी करनेके लिये होता है, इकरारनामा। ३ वह स्थान जहां लोग वस्तुएं खरीदने बेचनेके लिये एकत्र होते हैं, हाट, बाजार।

सट्टा बट्टा (हिं०पु०) १ मेल मिलाप, हेल मेल। २ उद्देश्य सिद्धिके लिये की हुई धूर्ततापूर्ण युक्ति, चालबाजी।

सट्टी (हिं० स्त्री०) वह बाजार जिसमें एकही मेलकी बहुत-सी चीजें लोग दूर दूरसे ला कर बेचते हों, हाट।

सठ (हिं० पु०) शठ देखो।

सठता (हिं० स्त्री०) १ शठ होनेका भाव, शठका धर्म्म, शठता। २ मूर्खता, बेवकूफी।

सठियाना (हिं० क्रि०) १ साठ वर्षकी अवस्थाको प्राप्त होना, साठ बरसका होना। २ वृद्धावस्थाको प्राप्त होना, बुड्ढा होना। ३ वृद्धावस्थाके कारण बुद्धि तथा विवेक शक्तिका कम हो जाना। इस अर्थमें इस शब्दका प्रयोग व्यक्ति और बुद्धि दोनोंके लिये होता है।

सठी (सं० स्त्री०) शठी, कचूर।

सठेरा (हिं० पु०) सनका वह डंठल जो सन निकल जाने पर बच रहता है, संठा, सरई।

सठौरा (हिं० पु०) सोंठौरा देखो।

सट्ठोते (हिं० पु०) क्रमेलक, ऊंट।

सड़क (हि० स्त्री०) १ राजमार्ग राजपथ, आने जानेका चौड़ा रास्ता। २ मार्ग रास्ता,

सड़का (हि० पु०) सरका देखो।

सड़न (हि० स्त्री०) सड़नेकी क्रिया या भाव, गलन।

सड़ना (हि० क्रि०) किसी पदार्थमें ऐसा विकार होना जिससे उसके संयोजक तत्त्व या अंग बिलकुल अलग अलग हो जायं, उसमेंसे दुर्गन्ध आने लगे और वह कामके योग्य न रह जाय। २ किसी पदार्थमें खमीर उठना या आना। ३ दुर्दशामें पड़ा रहना, बहुत बुरी हालतमें रहना।

सड़सठ (हि० पु०) १ साठ और सातकी संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—६७। (वि०) २ जो गिनतीमें साठसे सात अधिक हो।

सड़सठवां (हि० वि०) गिनतीमें सड़सठके स्थान पर रहनेवाला।

सड़सी (हि० स्त्री०) सड़सी देखो।

सड़ा (हि० पु०) वह औषध जो गौओंको बच्चा होनेके समय पिलाते हैं। प्रायः यह औषध सड़ाकर बनाते हैं इसीसे इसे सड़ा कहते हैं।

सड़ाइंद (हि० स्त्री०) सड़ायंध देखो।

सड़ाक (हि० पु० स्त्री०) १ कोड़े आदिकी फटकारकी आवाज जो प्रायः सड़के समान होती है। २ शीघ्रता, जल्दी।

सड़ान (हि० स्त्री०) सड़नेका व्यापार या क्रिया, सड़ना।

सड़ाना (हि० क्रि०) सड़नाका सकर्मक रूप किसी वस्तुको सड़नेमें प्रवृत्त करना, किसी पदार्थमें ऐसा विकार उत्पन्न करना कि उसके अवयव गलने लगें और उसमेंसे दुर्गन्ध आने लगे।

सड़ायंध (हि० स्त्री०) सड़ी हुई चीजकी गन्ध।

सड़ाव (हि० पु०) सड़नेकी क्रिया या भाव, सड़ना।

सड़ासड़ (हि० अव्य०) सड़ शब्दके साथ, जिसमें सड़ शब्द हो।

सड़ियल (हि० वि०) १ सड़ा हुआ, गला हुआ। २ निकम्मा रद्दी, खराब। ३ तुच्छ, नीच।

सढ़ (हि० पु०) पैरोंकी एक जाति।

सणगार (हि० पु०) शृंगार, सजावट।

सणसूत्र (सं० पु०) सणका सूत। सणसूत्र पवित्रक।

सणहाद (सं० पु०) ग्राम भेद।

सण्ड (सं० पु०) षण्ड साड़।

सण्डिश (सं० पु०) षण्डिश, सण्डीन।

सण्डीन (सं० क्ली०) खगगतिक्रियाविशेष पक्षियोंकी एक प्रकारकी गति। डीन, उड्डीन सण्डीन और प्रडीन आदि पक्षियोंकी गति निर्दिष्ट हुई है। उड्डयनके निमित्त प्रयत्नको डीन, आकाशगमनको उड्डीन तथा वृक्षादिसे पतनको सण्डीन कहते हैं।

सत् (सं० क्ली०) अस्तीति अस शतृ। १ ब्रह्म। ओं तत् सत् यह तीन ब्रह्मस्वरूप हैं।

स्मृतिशास्त्रमें लिखा है, कि कोई विहित कर्मानुष्ठान करनेसे पहले 'ओं तत् सत्' उच्चारण करके कर्ममें प्रवृत्त होगा। क्योंकि यह शब्द उच्चारण कर कर्ममें प्रवृत्त होनेसे तीन प्रकारका उपकार होता है। प्रथम अविद्यमान वस्तु विद्यमान होता है। द्वितीय असाधु वस्तुका साधुत्व, तृतीय आलस्य, भ्रम और प्रमादादिका वैगुण्यदोष दूर होता है।

(वि०) २ सत्य। ३ साधु सज्जन। ४ विद्यमान। ५ प्रशस्त। ६ धीर। ७ नित्य, चिरस्थायी। ८ विद्वान्, पण्डित। ९ मान्य, पूज्य। १० शुद्ध, पवित्र। ११ श्रेष्ठ उत्तम भला।

सत (सं० पु०) वैतस पात्र।

सत (हि० पु०) १ सत्यतापूर्ण धर्म। २ किसी पदार्थका मूल तत्त्व सार भाग। ३ जीवनीशक्ति, ताकत। (वि०) ४ सत देखो। ५ सातका संक्षिप्त रूप जिसका व्यवहार यौगिक शब्द बनानेमें होता है।

सतकार (हि० पु०) सत्कार देखो।

सतकोन (हि० वि०) जिसमें सात कोने हों सात कोनेवाला।

सतगड़िया (हि० स्त्री०) एक प्रकारकी वनस्पति जिसकी तरकारी बनाई जाती है।

सतगुरु (हि० पु०) अच्छा गुरु। २ परमेश्वर, परमात्मा।

सतजीत (हि० अव्य०) सत्यजित देखो।

सतमौरो (हि ० स्त्री ०) हिन्दुओं में विवाहके समयकी एक रीति। इसमें वर और वधूको अग्निकी सात बार प्रदक्षिणा करना पड़ती है। इसे भाँवरी पड़ना भी कहते हैं।

सतमख (हि ० पु०) जिसने १०० यज्ञ किये हों, इन्द्र।

सतमम्मा (हि ० स्त्री०) मार्कण्डेयपुराणके अनुसार एक नदीका नाम।

सतमासा (हि ० पु०) १ सात मास पर उत्पन्न शिशु, वह बच्चा जो गर्भसे सातवें महीने उत्पन्न हुआ हो। ऐसा बच्चा प्रायः बहुत रोगी और दुबला होता है और जल्दी जीता नहीं। २ वह रसम जो स्त्रीके गर्भमें आने पर सातवें महीने की जाती है।

सतमूली (हि ० स्त्री०) शतावरी सतावर।

सतयुग (हि ० पु०) सत्ययुग देखो।

सतरंग (हि ० वि०) सतरंगा देखो।

सतरंगा (हि ० वि०) जिसमें सात रंग हों, सात रंगों वाला। जैसे,—सतरंगा साफा, सतरंगी साड़ी।

सतरंज (हि ० स्त्री०) शतरंज देखो।

सतरंजी (हि ० स्त्री०) शतरंजी देखो।

सतर (अ० स्त्री०) १ लकीर रेखा। २ पंक्ति, अवली, कतार। (पु० स्त्री०) ३ मनुष्यका वह अंग जो ढका रखा जाता है और जिसके न ढके रहने पर उसे लज्जा आती है, गुप्त इन्द्री। ४ ओट, आड़, परदा। (वि०) ५ वक्र, टेढ़ा। ६ कुपित क्रुद्ध।

सतरह (हि ० पु०) सत्रह देखो।

सतराना (हि ० क्रि०) १ क्रोध करना, कोप करना। २ कुढ़ना, चिढ़ना बिगड़ना।

सतरा (हि ० स्त्री०) सदाद्र्रा नामक ओषधि।

सतर्क (स ० वि०) तर्कण सह वर्त्तमान। तर्कयुक्त, युक्तिसे पुष्ट, दलीलके साथ। २ सावधान, होशियार, खबरदार।

सतर्कता (स ० स्त्री०) सतर्क होनेका भाव, सावधानी, होशियारी।

सतर्ष (स ० वि०) तृषित, प्यासा।

सतल (स ० वि०) तलयुक्त।

सतलज (हि ० स्त्री०) पंजाबकी पाँच नदियोंमेंसे एक प्रसिद्ध नदी।

सतलड़ा (हि ० वि०) जिसमें सात लड़ हों। जैसे, सतलड़ा हार।

सतलड़ी (हि ० स्त्री०) गलेमें पहननेकी सात लड़ियों की माला या हार।

सतवन्ती (हि ० स्त्री०) सती पतिव्रता, सतधारी।

सतवर्ग (हि ० पु०) शतवर्ग देखो।

सतसंग (हि ० पु०) सत्संग देखो।

सतसंगति (हि ० स्त्री०) सत्संग देखो।

सतसंगी (हि ० वि०) सत्संगी देखो।

सतम् (स ० अव्य०) सरलभावसे। (निरुक्त ३।२०)

सतसई (हि ० स्त्री०) १ वह ग्रन्थ जिसमें सात सौ पद्य हों, सात सौ पद्योंका समूह या संग्रह सप्तशती। हिन्दी साहित्यमें सतसई शब्दसे प्रायः सात सौ दोहे ही समझे जाते हैं। जैसे—बिहारीकी सतसई।

सतसल (हि ० पु०) शीशमका पेड़।

सतसा (सं० स्त्री०) नागवल्लीभेद, पानकी लता।

सतह (अ० स्त्री०) १ किसी वस्तुका ऊपरी भाग, बाहर या ऊपरका फैलाव, तल। २ रेखागणितके अनुसार वह विस्तार जिसमें लंबाई और चौड़ाई हो पर मोटाई न हो।

सतहत्तर (हि ० वि०) १ सत्तर और सात जो गिनतीमें तीन कम अस्सी हो। (पु०) २ सत्तरसे सात अधिककी संख्या या अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—७७।

सतहत्तरवाँ (हि ० वि०) जिसका स्थान सतहत्तर पर हो जो क्रमसे सतहत्तरके स्थान पर पड़ता हो।

सताग (हि ० पु०) रथ, यान।

सतानन्द (स ० पु०) गौतम ऋषिके पुत्र। ये राजा जनकके पुरोहित थे। इनका दूसरा नाम शतानन्द भी था।

सताना (हि ० क्रि०) १ संताप देना, कष्ट पहुँचाना, दुःख देना। २ तंग करना, हैरान करना। ३ किसीके पीछे पड़ना।

सतार (स ० वि०) १ तारायुक्त। २ तारक सहित।

सतारा (हि ० स्त्री०) १ तारागणसह। २ राज्यभेद।

सताइक (स ० पु०) एक प्रकारका कुष्ठ या कोढ़ जिसमें शरीर पर लाल और काली फुंसियाँ निकलती हैं।

सताक़ (सं० पु०) सताक्क देखो।

सतालू (हिं० पु०) एक पेड़ जिसके गोल फल खाये जाते हैं, शफतालू, आड़ू। यह पेड़ मझोले कदका होता है और भारतके ठंढे प्रदेशोंमें पाया जाता है। पत्ते लम्बे, नुकीले और श्यामता लिये गहरे रंगके होते हैं। पतझड़के पीछे नये पत्ते निकलनेके पहले इसमें लाल रंगके फूल लगते हैं। फल गूलरकी तरह गोल और पकने पर हरे और लाल रङ्गके होते हैं जिनके ऊपर बहुत महीन सफेद रोइयाँ होती हैं। ये खानेमें बड़े मीठे होते हैं। बीज कड़े छिलके और बादामकी तरहके होते हैं। इसकी लकड़ी मजबूत और ललाई लिये होती है तथा उसमेंसे एक प्रकारकी हलकी सुगंध निकलती है।

सतावर (हिं० स्त्री०) एक झाड़दार बेल जिसकी जड़ और बीज औषधके काममें आते हैं, शतमूली, नारायणी। यह बेल भारतके प्रायः सब प्रान्तोंमें होती है। इसकी टहनियों पर छोटे छोटे महीन कांटे होते हैं। पत्तियाँ सोयेकी पत्तियोंकी सी होती हैं और उनमें एक प्रकारकी क्षारयुक्त गंध होती है। फूल सफेद होते और गुच्छोंमें लगते हैं। फल जङ्गली बेरके समान होते हैं और पकने पर लाल रङ्गके हो जाते हैं। प्रत्येक फलमें एक या दो बीज होते हैं। इसकी जड़ बहुत पुष्टिकारक और वीर्य-वर्द्धक मानी जाती है। स्त्रियोंका दूध बढ़ानेके लिये भी यह दी जाती है। वैद्यकमें इसका गुण शीतल, मधुर, अग्निदीपक, बलकारक और वीर्यवर्द्धक माना गया है। ग्रहणी और अतिसारमें भी इसका क्वाथ देते हैं।

सतासती (सं० स्त्री०) १ सहसती। २ सपत्नी और सपत्नी-पुत्रादि। ३ तद्रूल् छेपाछेपिभाव।

सतासी (हिं० वि०) १ अस्सी और सात, जो गिनतीमें अस्सीसे सात अधिक हो। (पु०) २ सात ऊपर अस्सीकी संख्या या अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—८७।

सतासीवाँ (हिं० वि०) जिसका स्थान अस्सीसे सात अधिककी संख्या पर हो, जो क्रममें सतासी पर पड़ता हो।

सताह (सं० क्ली०) एक प्राचीन गाँवका नाम।

सति (सं० स्त्री०) सनु दाने क्तिच् (सनः क्तिचि-लोप श्चास्यान्यतरस्यां। पा ६।४।५४) इति नलोपः। १ दान। २ अवसान। (भरत)

सतिनरा (सं० स्त्री०) सतोनरा, सतरा।

सतिवन (हिं० पु०) एक सदाबहार बड़ा पेड़ जिसकी छाल आदि दवाके काममें आती है, सप्तपर्णी, छतिवन। इसका पेड़ ४०-५० हाथ ऊंचा होता है और भारतके प्रायः सब तर स्थानोंमें पाया जाता है। भारतवर्षके बाहर अफ्रि-किया और अमेरिकाके कुछ स्थानोंमें भी यह मिलता है। यह बहुत जल्दी बढ़ता है। पत्ते सेमरके पत्तोंके समान और एक सींकेमें सात सात लगते हैं। इसकी लकड़ी मुलायम और सफेद होती है और सजावटके सामान बनानेके काममें आती है। फूल हरापन लिये सफेद होता है। फूलोंके झड़ जाने पर हाथ भरके लगभग लंबी पतली रोईंदार फलियां लगती हैं। यह बसन्त ऋतुमें फूलता और वैशाख जेठमें फलता है। फूलोंमें एक प्रकारकी सहायक गन्ध होती है इसीसे कवियोंने कहीं कहीं इस गन्धकी उपमा गजमदसे दी है। आयुर्वेदके अनुसार इसकी छाल त्रिदोषनाशक, अग्निदीपक, ज्वरघ्न और बलकारक होती है। ज्वर दूर करनेमें इसकी छालका काढ़ा कुनैनके समान ही होता है। ज्वरके पीछेकी कमजोरी भी इससे दूर होती है।

सतिमिर (सं० त्रि०) अन्धकारयुक्त, अंधियाला।

सतिल (सं० स्त्री०) तिलके सहित, तिलयुक्त।

सती (सं० स्त्री०) अस्तीति अस शतृ उगित्वात् ङीप्। १ दुर्गा। २ साध्वी स्त्री, पतिव्रता स्त्री। ३ वह स्त्री जो अपने पतिके शवके साथ चितामें जले, सहगामिनी स्त्री। ४ दक्षकन्या, शिवानी, भवानी।

सती महादेवकी पत्नी और दक्षकी कन्या थी। कालिकापुराणमें इनका उत्पत्ति-विवरण इस प्रकार लिखा है—

पहले ब्रह्माके पुत्र प्रजापति दक्षने महामायाको कन्यारूपमें पानेके लिये महामायाके उद्देशसे कठोर तपस्या ठान दी। महामायाने दक्षकी तपस्यासे प्रसन्न हो उन्हें वर मांगने कहा। दक्षने उनसे प्रार्थना की, 'आप मुझे यही वर दीजिये, कि आप मेरी कन्याके रूपमें जन्मग्रहण कर शिवकी पत्नी हों।' इस पर महामाया

बोलो, 'प्रजापते ! मैं तुम्हारी पत्नीके गर्भमें कन्यारूपमें उत्पन्न हो कर शङ्करकी सहधर्मिणी हूंगी। किन्तु जिस दिन तुम मेरा अनादर करोगे उसी दिन देह त्याग करूंगी और यदि आदरकी शिथिलता न हुई तो मैं सर्वदा तुमसे रहूंगी।'

प्रजापति दक्षने यह वर पा कर हृष्ट चित्तसे तपस्या बन्द कर दी। अनन्तर उन्होंने बिना स्त्रीके प्रजासृष्टि करना चाहा और सङ्कल्प, अभिसन्धि, मानस तथा चिन्तासे महायत्नसे प्रजा उत्पादन की। किन्तु उन लोगोंमेंसे कोई भी सृष्टिका विस्तार न कर सके। अनन्तर उन्होंने मैथुन धर्मसे प्रजा उत्पादन करनेके लिए इच्छानुरूप वीरण की कन्या जिनका नाम वीरिणी या असिक्नी था विवाह किया। इनके गर्भसे महामाया उत्पन्न हुई। महामायाके जन्म लेने पर मेघ गम्भीर पुष्प वृष्टि होने लगी, दिङ्मण्डलने प्रशान्तभाव धारण किया। महामायाने जन्म ग्रहण किया है, जब दक्षको यह मालूम हुआ, तब वे परिणाम छोड़ कर महामायाका स्तव करने लगे। इस पर महामायाने दक्षको मायासे मोहित किया। कन्या दिन पर दिन बढ़ने लगी। दक्षने इस कन्याकी सत्ता अर्थात् साधुता और शिवपरायणता देख उनका 'सती' नाम रखा।

अनन्तर महामाया एक दिन पिताकी बगलमें बैठी हुई थी, इसी समय ब्रह्मा और नारद कन्याको देखने वहां आये। सतीने दोनोंको प्रणाम किया। नारदने सतीके प्रति दृष्टिपात कर यह आशीर्वाद दिया, कि जो तुम्हारी कामना करते हैं, और जिसे तुम पतिरूपमें पाना चाहती हो, वह जगदीश्वर शिव तुम्हारे पति हों। जो तुम्हें छोड़ कर दूसरी स्त्रीको ग्रहण नहीं करते और न करेंगे तुम वही अनन्य सदृश पति लाभ करो। अनन्तर कुछ देर ठहर कर वे दोनों अपने स्थानको चल दिये।

अनन्तर सतीने युवावस्थामें कदम बढ़ाया। उनकी रूपराशि दूना बढ़ चढ़ा। अब दक्षको महादेवके हाथ उन्हें सौंपनेकी चिन्ता होने लगी तथा सती भी महादेवको पानेके लिये उनके उद्देश्यसे तपस्या करने लगी।

एक दिन शिवके दर्शनके लिये सावित्रीके साथ ब्रह्मा और लक्ष्मीके साथ नारायण उनके पास गये। उन्होंने शिवसे कहा, 'भगवन्! आपको विवाह करना होगा। क्योंकि आपके विवाह नहीं करनेसे सृष्टिमें धक्का पहुंचेगा।' महादेवने ब्रह्माकी यह बात सुन कर कहा, 'मैं सदा ब्रह्मध्यानमें निरत रहता हूं, अतएव विवाह करनेकी मेरी बिल्कुल इच्छा नहीं है पर यदि आप लोगोंके विशेष अनुरोध करने पर मुझे विवाह करना ही पड़ा तो एक ऐसी स्त्री स्थिर कर दीजिये जो मेरे योगमग्न होने पर योगिनी और कामासक्त होने पर मोहिनी होगी। फिर जब मैं परब्रह्मकी चिन्तामें आसक्त हो कर समाधिस्थ हूंगा और जो स्त्री उसमें विघ्न न डालेगी, वही मेरी भार्या हो सकती है। यह सुन कर ब्रह्माने कहा प्रजापति दक्षके सती नामक एक कन्या है। यह कन्या सभी प्रकारसे आपकी अनुरूपिणी है तथा यह आपको पतिरूपमें पानेके लिये आपके उद्देश्यसे तपस्या कर रही है। आखिर शिवके दारपरिग्रहका विषय स्वीकार कर लेने पर स्वयं ब्रह्मा दक्षके पास गये और विवाह सम्बन्ध स्थिर किया। पीछे महादेवने ब्रह्मा, विष्णु और ऋषियोंके साथ दक्षालय जा कर यथाविधान सतीसे विवाह किया। सतीसे ब्याह कर महादेव कभी कैलास पर, कभी देवदेवी पर्वत शिखर पर, कभी दिक्पालोंके उद्यानमें भ्रमण करने लगे। इस प्रकार नाना स्थानोंमें भ्रमण कर सुखसे सतीके साथ विहार करने लगे। सतीमें आसक्त महादेवका दिनरातका ध्यान जाता रहा। वेद, तपस्या और शम दमादिकी ओर उनका ध्यान न जाने लगा केवल सतीको सन्तोष रखना ही उनका एकमात्र कार्य हो उठा। सती भी एकमात्र शिवपरायण हो अवस्थान करने लगी।

इधर दक्ष अन्दरमें गर्वित हो उठा। उसने सर्वाङ्गसम्पन्न एक यज्ञका अनुष्ठान किया। उस यज्ञमें ८० हजार ऋत्विक् होता, ६४ हजार देवर्षि उद्गाता, नारद आदि अनेक ऋषि अध्वर्यु तथा होता और सभी देवताओंके साथ विष्णु इस यज्ञके अधिष्ठाता हुए। स्वयं ब्रह्मा उनके वेदविधिविशारद थे। इस यज्ञमें ऐसा कोई नहीं था जिसे दक्षने वरण न किया हो। देवता, देवर्षि, मनुष्य, पशु पक्षी आदि सभी इस यज्ञमें आये। केवल शिव और सतीको इस यज्ञमें निमन्त्रण न दिया गया। दक्षने यह

सोच कर उन दोनोंको निमन्त्रण नहीं दिया, कि महादेव कपाली हैं, इसलिये वे यज्ञार्ह नहीं हैं, सती प्रियतनया होने पर भी कपालीकी भार्या है, इससे वह भी यज्ञमें आने योग्य नहीं है। जब सतीको मालूम हुआ, कि पिताने एक बड़े यज्ञका अनुष्ठान किया है, अभिमानके मारे मुझे कपालीकी स्त्री कह कर निमन्त्रण भी नहीं दिया, तब वह बड़ी बिगड़ी और मन ही मन कहने लगी, "गर्व वशतः दक्ष पूर्व वृत्तान्त भूल गया है, उसे मैंने कहा था, कि मेरे प्रति किसी तरह अप्रियाचरण करनेसे मैं देह त्याग कर दूंगी। अतएव दक्षसे प्राप्त यह शरीर अभी त्याग करना ही मुझे उचित है। अब तक भी देवताओंके सभी कार्य शेष नहीं हुए हैं, शङ्कर मेरे लिये ही रमणीके प्रति आसक्त हुए हैं, मेरे सिवा और किसी भी रमणीके प्रति उनका अनुराग नहीं है, यह भी निश्चित है, इसलिये मैं इस देहका परित्याग कर हिमालयके घर मेनकाकी कन्यारूपमें उत्पन्न हूंगी।' इस प्रकार स्थिर कर सती पिताके घर बिना निमन्त्रणके ही यज्ञस्थानमें चली गई। वहां शिवकी निन्दा सुन कर वह क्रोधके मारे अधीर हो उठी। सामनेमें किसी प्रकारका शाप न दे कर उन्होंने श्वास रोक कर देहका त्याग कर दिया। प्राणवायु ब्रह्मरन्ध्रको भेद कर निकल गई।

सतीकी मृत्यु पर सभी देव बड़े चिन्तित हुए, सर्व जगत् मानों स्तब्धसा हो रहा। महादेवको जब यह बात मालूम हुई, तब उनके कोपानलसे वीरभद्रकी उत्पत्ति हुई। इसी वीरभद्रने यज्ञस्थलमें जा कर दक्षका यज्ञ ध्वंस किया। दक्ष और दक्षयज्ञ देखो।

अनन्तर महादेव यज्ञस्थानमें जा कर सतीकी देह ले कर बड़े जोरसे आर्त्तनाद करने लगे। सभी देव चिन्तित हुए और कहने लगे, कि यदि शिवका अश्रुजल एक बुन्द भी पृथ्वी पर गिरा, तो तीनों जगत् अभी ध्वंस हो जायगे। उन लोगोंने कोई उपाय न देख शनिको आह्वान किया। शनिने आ कर कहा, मैं देवताओंका कार्य यथासाध्य करूंगा, किन्तु महादेव जिससे मुझे जान न सकें, आप लोगोंको वही करना होगा। इस पर ब्रह्मादि देवताओंने शङ्करके पास जा कर योगमायाके बल उन्हें संमोहित किया। शनिने भी भूतनाथके पास जा कर उनका अश्रुपूर्ण मायाचक ले लिया। किन्तु वे मायाबलको धारण नहीं कर सके और जलधार नामक महागिरि पर उसे फेंक दिया। पीछे वही जल यमद्वारमें तथा वैतरणी नदीरूपमें परिणत हुआ।

अनन्तर शोकसंतप्त महादेव सतीकी शवदेहको कंधे पर रख विलाप करते करते पूर्वकी ओर चल दिये। महादेवका उन्मत्त जैसा भाव देख कर ब्रह्मादि देवगण सतीकी शवदेहको विच्युत करनेका उपाय सोचने लगे। शिवके शरीरमें लगनेसे चाहे जितने दिन क्यों न हो, यह शवशरीर न सड़ेगा न पचेगा। अनंतर ब्रह्मा, विष्णु और शनि ये तीनों जने योगमायाके बलसे अदृश्य हो सतीकी शवदेहके भीतर घुस गये और उसे खण्ड खण्ड कर पुण्यतीर्थ करनेके उद्देश्यसे पृथ्वी पर जहां तहां फेंक दिया। सतीका अङ्ग जहां जहां गिरा, वे सब स्थान एक एक पीठस्थान कह कर प्रसिद्ध हुए। महादेव उन्हीं सब स्थानोंमें लिङ्गरूपमें रहने लगे।

सतीकी देह इस प्रकार खण्ड खण्ड हो कर पृथ्वी पर गिरने पर भी महादेवका वह उन्मत्त भाव दूर नहीं हुआ। तब ब्रह्मादि देवगण स्तव करने लगे। महादेवने देवताओंके स्तवसे कुछ प्रकृतिस्थ हो ब्रह्मासे कहा, 'ब्रह्मन्! मैं जब तक सतीशोकसागर पार न करूं तब तक आप लोग मेरे सहचर हो कर रहें।' ब्रह्मादि देवताओंने इसे स्वीकार कर लिया।

शिव मायामोहित होनेसे ही इस प्रकार सतीविरहसे कातर हुए हैं, अतएव यह माया जिससे शिवके शरीरसे निकल जाये, उसीका उपाय करना आवश्यक है। यह सोच कर देवगण महामायाका स्तव करने लगे। देवताओंके स्तव करने पर महामाया महादेवके हृदयसे एकदम निकल गई। मायाके निकल जाने पर स्वयं विष्णुने शान्ति स्थापनके लिये शिवके भीतर प्रवेश किया। जिस प्रकार प्रतिकल्पमें सृष्टि, स्थिति और प्रलय हुआ करता है, जिस प्रकार सती शिवकी पत्नी हुई और सती कौन है, जिसकी कन्या है, तथा जिस प्रकार उन्होंने देह त्याग किया, सब कुछ दिखला दिया।

अनन्तर महादेवका चित्त शान्त हुआ और वे तब शिवमय हुए, उनका रुद्रभाव जाता रहा। वे फिर शम

दक्ष आदिमें मनोनिवेश कर परम योगी हुए। पीछे देव गण महादेवको प्रणाम कर अपने अपने स्थानको चले दिये। महादेवके मनसे सतीविरह बिलकुल दूर हो गया।

इसके बाद सतीने हिमालयके घर मेनकाके गर्भमें जन्म लिया। जिस समय दक्षकन्या सती शिवके साथ हिमालय पर क्रीड़ा कर रही थी, उस समय मेनका उनकी हितैषिणी थीं और महामायाको कन्यारूपमें पानेके लिये उसने तपस्या की। इसी पर महामायाने उसे यह वर दिया था कि देहत्याग करने पर मैं तुम्हारी कन्यारूपमें उत्पन्न हूंगी। मेनकाकी उसी तपस्याके बल सतीने उनके घर कन्यारूपमें जन्म लिया था।

सती हिमालयगृहमें जन्म ले कर दिन पर दिन शशि कलाकी तरह बढ़ने लगी। इधर सतीकी मृत्युके बाद महादेव कठोर ध्यानमें निमग्न रहने थे। उनका यह ध्यान भङ्ग करनेकी किसमें सामर्थ्य थी? वहां आनेमें सभी योगी हो जाते थे। देवगण महादेवके विवाहके लिये बड़े चिन्तित हुए। वे आपसमें कहने लगे कि जब तक उनका ध्यान भङ्ग नहीं किया जायेगा, तब तक विवाहका कोई भी उपाय नहीं है। उधर पार्वती भी महादेवको पतिरूपमें पानेके लिये कठोर तपस्या करने लगी।

अनन्तर सभी देवताओंने सोच विचार कर कामदेवको महादेवकी तपस्या भङ्ग करनेके लिये नियुक्त किया। कामदेव जहां शिवजी तपस्या करते थे, वहां गये और उन पर सम्मोहनादि बाण फेंके। किन्तु इससे परमयोगी शिवका तपोभङ्ग नहीं हुआ, काम स्वयं उनकी नेत्राग्निसे जल कर खाक हो गये।

इधर पार्वतीने महादेवको न पा कर कठिन तपस्या ठान दी। आशुतोषने उनकी तपस्यासे प्रसन्न हो कर उन्हें वर दिया, कि तुम मेरी स्त्री होगी। देवताओंने यह वृत्तान्त जान कर नारदको हिमालयके यहां भेजा। देवर्षि नारदने वहां जा कर विवाह सम्बन्ध स्थिर किया। पीछे महादेवने देवता और प्रमथ आदि गणोंके साथ गिरि भवनमें आ कर पार्वतीसे विवाह किया। (कालिकापु० १० से २४ अ० और ४१ से ४५ अ०) पार्वती देखो।

श्रीमद्भागवतमें दक्षके यज्ञ करनेका कारण इस प्रकार लिखा है। शिवने दक्षकी कन्या सतीसे ब्याह किया, इसी लिये वे दक्षके जामाता हुए। दक्षको इसी बातका अहङ्कार था कि वह शिवका पूज्य है। एक दिन विश्व सृष्टके रूपमें सभी देवऋषिगण एकत्र हुए, इसी समय दक्ष प्रजापति भी पहुंचा। उसे आते देख देवताओं और ऋषियोंने खड़े हो कर उनका स्वागत किया। किन्तु ब्रह्मा विष्णु और शिव इन तीनोंमेंसे कोई भी खड़े नहीं हुए। शिवको खड़े हुए न देख दक्ष अत्यन्त क्रुद्ध हो देवताओंके सामने शिवकी निन्दा करने लगा। यथेच्छ निन्दा करके भी उसका चित्त शान्त नहीं हुआ। उसने कहा कि परमेष्ठी ब्रह्माकी बातमें पड़ कर मैंने सतीको उसके हाथ सौंप कर बड़ा भारी अन्याय किया है। जो व्यक्ति उन्मत्त है, श्मशान जिसका घर है उसे भले बुरेका विचार कहां? इस प्रकार निन्दा कर दक्षने महादेवको शाप दिया, कि वह अब देवताओंके साथ यज्ञका भाग नहीं पा सकता। इस पर महादेवने कुछ भी जवाब नहीं दिया। किन्तु नन्दीको यह बुरा मालूम हुआ, सो उसने दक्षको भी शाप दिया।

दक्ष इस प्रकार जामाताको शाप दे कर बड़े क्रुद्ध चित्तसे घर लौटा। इस शापसे शिवविहीन यज्ञ करनेका किसीको भी साहस नहीं हुआ। दक्षने जब देखा कि यज्ञ एक तरहसे लोप हुआ जा रहा है तब वह स्वयं यज्ञ करने लग गया। इस यज्ञमें सभी बुलाये गये, सिवा शिव और सतीके। सती शिवके मना करने पर भी बिना निमन्त्रणके पिताके घर यज्ञ देखने गई। सतीको देख कर दक्ष शिवकी बार बार निन्दा करने लगा। सतीने शिवनिन्दा सुन कर उसी यज्ञस्थलमें देहत्याग किया। (भागवत ४।८ १० अ०)

महाभागवतपुराणमें लिखा है कि जब सतीने दक्ष यज्ञमें पिताके घर जानेकी इच्छा प्रगट की, तब महादेवने उसे निषेध किया। इस समय देवीने दशमहाविद्याका रूप धारण कर शिवको विभ्रान्त कर डाला।

५ सौराष्ट्रमृत्तिका, सोंधी मिट्टी। ६ दान। ७ अवमान। ८ सावित्री। ९ विद्यमाना। १० छन्दोविशेष। इसके प्रत्येक चरणमें एक नगण और एक गुरु होता है। "गुरुणो तव पद नमति सा ननु सती।" (छन्दोम०)

११ मादा स्त्री, पशु। १२ विश्वामित्रकी स्त्रीका नाम। १३ अङ्गिराकी स्त्रीका नाम।

सतीक (सं० क्ली०) जल, पानी।

सतीचौरा (हिं० पु०) वह वेदी या चबूतरा जो किसी स्त्रीके सती होनेके स्थान पर उसके स्मारकमें बनाया जाता है।

सतीत्व (सं० क्ली०) सती भावे त्व। सती होनेका भाव, पातिव्रत्य, पतिव्रता। पतिव्रता देखो।

सतीत्वहरण (सं० पु०) परस्त्रीके साथ बलात्कार, सतीत्व नष्ट करना।

सतीदाह—पतिव्रता स्त्रियोंका स्वामीकी मृत देहके साथ अनुमरण। अति प्राचीन कालमें भारतीय हिन्दू स्त्रियां स्वामीकी चिता पर जीते जी दग्ध हो कर सती नामसे यशस्विनी होती थीं। उसके पीछे भी हिन्दू ललनायें उस प्रथाका अवलम्बन करती रहीं। स्वामीके साथ इस प्रकार जीवन विसर्जन करनेका नाम 'सतीदाह' हुआ। अंगरेजी अमलमें राजप्रतिनिधि लार्ड विलियम वेण्टिङ्क महोदयने इस प्रथाको उठा दिया। अनुमरण और सहमरण देखो।

सतीदोषोन्माद (सं० पु०) स्त्रियोंका वह उन्माद रोग जिसका प्रकोप किसी सतीचौरेको अपवित्र आदि करनेके कारण होना माना जाता है।

सतीन (सं० पु०) १ वंश, बांस। २ जल। (निघण्टु १।१२) ३ एक प्रकारका मटर। ४ अपराजिता।

सतीनक (सं० पु०) सतीन एव स्वार्थे कन्। सतीलक।

सतीनकङ्कत (सं० पु०) उदकचारी अल्पविषविशिष्ट।

सतीनमन्यु (सं० त्रि०) उदकाभिवर्षण-बुद्धियुक्त।

सतीनसत्वन् (सं० त्रि०) उदकका सादयिता अर्थात् गमयिता, जो जलको चलाता हो। (ऋक् १।१००।१)

सतीय (सं० पु०) १ एक जनपदका नाम। २ इस जनपदका अधिवासी। (विष्णुपुराण)

सतीपन (हिं० पु०) सती रहनेका भाव, पातिव्रत्य, सतीत्व।

सतीर्थ (सं० पु०) समानस्तीर्थो गुरुर्यस्य, समानस्य सादेशः। सहपाठी ब्रह्मचारी, एक ही आचार्यसे पढ़ने वाला।

सतीर्थ्य (सं० पु०) समाने तीर्थे वासीति (समान तीर्थे वासी। पा ४।४।१०७) इति यत् (तीर्थे ये। पा ६।३।८७) इति समानस्य सः। सतीर्थ, एक ही आचार्यसे पढ़नेवाला।

सतील (सं० पु०) तीलेन तीलवत् कृष्णवर्णचिह्नेन सह वर्त्तते निपातनादिकारस्य दीर्घः। १ वंश, बाँस। २ वायु, हवा। ३ अपराजिता।

सतीलक (सं० पु०) सतील एव स्वार्थे कन्। कलाय। (अमर)

सतीला (सं० स्त्री०) अपराजिता, कोमल लता।

सतीव्रता (सं० स्त्री०) १ सतीव्रतावलम्बनीय स्त्री। २ वासवदत्ता वर्णित नायिकाभेद।

सतीश्वर (सं० क्ली०) लिङ्गभेद, शिवलिङ्ग विशेष।

सतीसरस् (सं० क्ली०) सती नाम पर उत्सर्ग किया हुआ काश्मीरका पुण्यतोया ह्रदविशेष। (राजतर० १।२४)

सतुआ (हिं० पु०) भ्रष्ट यवादि चूर्ण, भुने हुए जौ और चनेका चूर्ण जो पानी डाल कर खाया जाता है, सत्तू।

सतुआन (हिं० स्त्री०) सतुआ संक्रांति।

सतुआ संक्रान्ति (हिं० स्त्री०) मेषकी संक्रान्ति जो प्रायः वैशाखमें पड़ती है। इस दिन लोग सत्तू दान करते और खाते हैं।

सतुआ सोंठ (हिं० स्त्री०) सोंठकी एक जाति,

सतुष (सं० क्ली०) तुषेण सह वर्त्तमानः। तुषयुक्त शस्य, धान्य।

सतून (फा० पु०) स्तम्भ, खंभा।

सतूना (फा० पु०) बाजकी एक झपट। इसमें वह पहले शिकारके ठीक ऊपरमें उड़ जाता है और फिर एकबारगी नीचेकी ओर उस पर टूट पड़ता है।

सतूल (सं० त्रि०) गुम्फ या पुच्छयुक्त।

सतृण (सं० त्रि०) तृणयुक्त।

सतृष् (सं० त्रि०) तृषासह वर्त्तमानः। तृष्णायुक्त। पर्याय—तृषित, तर्षित।

सतृष्ण (सं० त्रि०) १ तृष्णायुक्त, पिपासित। २ अभिलाषी, सस्पृह।

सतेजस् (सं० त्रि०) तेजसा सह वर्त्तमानः। तेजस्वी, बलवान्।

सतेर (स ० पु०) तुष, भूसा।

सतेरक (स ० पु०) ऋतु मौसिम।

सतेरी (हि ० स्त्री०) एक प्रकारकी मधुमक्खी।

सतोक (स ० त्रि०) पुत्र पौत्रादि अपत्य सहित।

सतोगुण (हि ० पु०) सत्यगुण देखो।

सतोगुणी (हि० पु०) सात्त्विक सत्वगुणवाला, उत्तम प्रकृतिका।

सतोदर (हि ० पु०) शतोदर देखो।

सतोबृहत् (स ० त्रि०) समदीर्घ, समान ऊंचाईका।

सतोबृहती (स ० त्रि०) त्रिपदी छन्दोविशेष। इसके प्रति पादमें १२ अक्षर रहते हैं। (शुक्लयजु० १४।९)

सतोवार (स ० त्रि०) प्राप्तवीर्य। (ऋक् ६।७५।९)

सतौला (हि ० पु०) प्रसूता स्त्रीका वह विधिपूर्वक स्नान जो प्रसवके सातवें दिन होता है।

सतौसर (हि ० पु०) सतलड़ा, सात लड़का।

सत्कथा (स ० स्त्री०) १ साधुसंगत अच्छों का साथ। २ विष्णुकथा, विष्णुसम्बन्धी कथा। ३ साधु कथा अच्छी बात।

सत्कदम्ब (स ० पु०) एक प्रकारका कदम्ब।

सत्कर (स ० त्रि०) सत्कार्ययुक्त।

सत्करण (स ० क्ली०) १ सत्कार करना, आदर करना। २ मृतककी अन्तिम क्रिया करना, क्रिया कर्म करना।

सत्करणीय (स ० त्रि०) आदरणीय सत्कार करनेयोग्य, पूज्य।

सत्कर्त्तृ (स ० पु०) सता कर्त्ता। १ विष्णु। (विष्णु सहस्रनाम) २ सत्कारक आदर सत्कार करनेवाला। ३ सत्कर्म करनेवाला।

सत्कर्त्तव्य (स ० त्रि०) सत् कृ तव्य। १ सत्कारके योग्य। २ जिसका सत्कार करना हो।

सत्कर्मन् (स ० क्ली०) सत् प्रशस्त कर्म। १ अच्छा कर्म अच्छा काम। २ पुण्य धर्म या उपकारका काम। ३ अच्छा सत्कार। (पु०) ४ धृतराष्ट्रका पुत्र।

सत्कला (स० स्त्री०) सुन्दर शिल्प।

सत्कवि (स ० पु०) १ श्रेष्ठ कवि। २ उत्तम कवि। सत्कवि मिश्र—एक भाषा कवि।

सत्काञ्चनार (स ० पु०) रक्त काञ्चन।

सत्काण्ड (स० पु०) श्येन पक्षी, बाज।

सत्कायदृष्टि (स० स्त्री) मृत्युके उपरान्त आत्मा लिंग, शरीर आदिके बने रहनेका मिथ्या सिद्धान्त।

सत्कार (स ० पु०) सत्करणमिति सत् कृ घञ्। १ पूजा। २ आये हुएके प्रति उत्तम व्यवहार, आदर, सम्मान, खातिरदारी। ३ आतिथ्य, मेहमानदारी। ४ पुरस्कार। ५ मङ्गल। ६ उत्सव, पर्व। ७ शवदाहादि क्रिया। (लोकप्रसिद्ध) शवदाहनादि अन्त्येष्टिक्रियाका नाम सत्कार है।

सत्कार्य (स ० क्ली०) सत् कार्य। १ सत्कर्म उत्तम कार्य अच्छा काम। (त्रि०) २ सत्कार करने योग्य। ३ जिसका सत्कार करना हो। ४ जिस मृतकका क्रिया कर्म करना हो।

सत्कार्यवाद (स ० पु०) सत्कार्यविषयक वाद। यह जगत्कार्य सत्कारणसे हुआ है। सांख्य सत्कार्यवादी हैं। सांख्यदर्शनके मतसे यह जगत् सत् पदार्थसे उत्पन्न हुआ है।

कार्य देख कर कारणका अनुमान किया जाता है। यह जगत् कार्य है, अतएव इसका कारण है। इस जगत् का कारण क्या है, तथा वह सत् है या असत्, इस विषयमें वादियोंके मध्य नाना प्रकारका मतभेद प्रचलित है। इस पर कोई कोई अर्थात् शून्यवादी बौद्ध लोग कहते हैं, कि असत्से सत्का जन्म होता है, असत्के अभावसे ही वस्तुकी उत्पत्ति होती है। वेदान्तवादी का कहना है कि सत् अर्थात् एक परमार्थ सत् वस्तुका विवर्त्त यह जगत् है यह यथार्थमें सत् नहीं है, मिथ्या है। फिर नैयायिक लोग कहते हैं, कि सत् अर्थात् सत् कारण परमाणुसे इस असत् जगत्रूप कार्यकी उत्पत्ति होती है। किन्तु सांख्य लोग सत्कार्यवादी हैं, वे सत् कारणसे ही सत् कार्यकी उत्पत्ति बतलाते हैं।

बौद्धमतमें असत्से सत्की उत्पत्ति होती है यह यदि स्वीकार किया जाय तो असत् निरुपाख्य अर्थात् अनिर्वचनीय हो कर किस प्रकार सुखादिक स्वरूप शब्दादिसे अभिन्न होगा। सत और असत्में अभेद नहीं हो सकता अतएव असत्से सत्की उत्पत्ति होती है, ऐसा नहीं कह सकते।

सत्तासी (हिं० वि०) १ अस्सी और सात, जो गिनतीमें तीन कम नव्वे हो। (पु०) २ तीन कम नव्वेकी संख्या या अंक, ८७।

सत्तासीवां (हिं० वि०) जो क्रममें तीन कम नव्वेके स्थान पर पड़े।

सत्ति (सं० स्त्री०) प्रवेश।

सत्तू (हिं० पु०) भुने हुए जौ और चने या और किसी अन्नका चूर्ण या आटा जो पानी घोल कर खाया जाता है।

सत्तृ (सं० त्रि०) निषण्ण, उपविष्ट।

सत्त्र (सं० क्ली०) सतः साधून् त्रायते इति त्र-क, यद्वा सीदन्ति सजन्ती यत्र, सद गतौ (गुधृवीपचिवचीति · उणा ४।१६६) इति त्र। १ यज्ञ। २ सदादान, सदावर्त्त। ३ परिवेषण, परोसना। ४ वह स्थान जहां मनुष्य छिप सकता हो। ५ मकान, घर। ६ कैतव, धोखा। ७ धन, सम्पत्ति। ८ दान। ९ सरोवर, तालाब। १० एक सोमयाग जो १३ या १०० दिनोंमें पूरा होता है।

सत्त्रगृह (सं० क्ली०) सत्त्रस्य गृहं। सत्त्रशाला, यज्ञगृह।

सत्त्रयाग (सं० पु०) यज्ञ, सत्त्र।

सत्त्रराज् (सं० पु०) द्वादशाहादि साध्य यज्ञमें राजमान्। "सत्त्रराट् अस्य-मिमातिहा" (शुक्लयजुः ५।२४) 'सत्त्रराट् सत्त्रेषु द्वादशाहादिषु राजते' (महीधर)

सत्त्रवसति (सं० स्त्री०) सत्र, यज्ञ।

सत्त्रशाला (सं० स्त्री०) सत्त्रस्य शाला। अन्नादिदानगृह, यज्ञशाला।

सत्त्रसद् (सं० त्रि०) जीवनदाता, जीवन देनेवाला।

सत्त्रसद्मन (सं० क्ली०) सत्त्रस्य सद्म। सत्त्रगृह, यज्ञशाला।

सत्त्रायण (सं० त्रि०) १ शौनकका गोत्रापत्य। २ वृहद्भानुके पिता।

सत्त्रि (सं० पु०) १ मेघ, मेढ़ा। २ हस्ती, हाथी। (त्रि०) जयशील, जीतनेवाला।

सत्त्रिजातक (सं० क्ली०) सत् साधु त्रिजातकं तुल्य-त्वगेलापत्रादिकं यत्र। व्यञ्जनविशेष, एक प्रकारका मांसका व्यञ्जन।

प्रस्तुत प्रणाली—मांसको पहले घीमें अच्छी तरह भुन लेना होगा, पीछे उसे गरम जलमें सिद्ध तथा जीरादि डाल कर उसे परिशुद्ध करना होगा। यह परिशुद्ध मांस जब घृत और तक्रके साथ पाक किया जाता है, तब उसे सत्त्रिजातक कहते हैं।

सत्त्रिन् (सं० पु०) सत्त्रमस्त्यस्येति इनि। गृहपति, गृहस्थ। २ नित्य प्रवृत्तान्नदान, वह जो प्रतिदिन अन्नदान करते हों। (त्रि०) ३ यज्ञान्वित, यज्ञविशिष्ट।

सत्त्रिय (सं० त्रि०) सत्त्रविशिष्ट।

सत्त्वभूत (सं० त्रि०) भूतोंका रक्षक।

सत्त्वोत्थान (सं० क्ली०) सत्त्वसे उत्थान।

सत्त्व (सं० क्ली०) सतो भावः, सत् त्व। प्रकृतिका गुणविशेष, सत्त्वगुण, प्रकाश ज्ञान, सुखजनक गुण। इसका धर्म प्रसाद, हर्ष, प्रीति, असन्देह, धृति और स्मृति है। सत्त्व, रजः और तमोगुणकी साम्यावस्थाका नाम प्रकृति है। जगदवस्थामें इन तीन गुणों का सर्वदा विरूप-परिणाम होता है, इससे सुख, दुःख और मोह होता है। जब इन तीन गुणोंका स्वरूप परिणाम होगा, तब जगत्‌का प्रलय होगा। उस समय सुख दुःख मोह कुछ भी नहीं रहेगा।

'सत्त्वं लघुप्रकाशकमिष्टमुपष्टम्भकं चलञ्च रजः।
गुरुवरणमेव तमः प्रदीपवच्चार्थतो वृत्तिः।" (सांख्यकारिका १३)

सत्त्व, रजः, और तमः इन तीन गुणोंमें जब जिस गुणकी प्रबलता होती है, तब उसी गुणका धर्म प्रकाश पाता है। सत्त्वगुणके प्रबल होनेसे रजः और तमः अभिभूत हो जाते हैं, तथा उसका धर्मसुख ही प्रकाश पाता है। इसी प्रकार और सभी गुणोंके विषयमें जानना होगा। (सांख्यका०)

गीतामें लिखा है, कि सत्त्व, रज और तम ये तीन गुण प्रकृतिसम्भव हैं। ये तीनों गुण निर्विकार देहीको देहमें आबद्ध करते हैं। इन तीन गुणोंमें सत्त्वगुण निर्मलताके कारण प्रकाशक, ज्ञानोद्दीपक और अनामय (दुःखशून्य) है। वह देहीको सुख और ज्ञानके साथ आबद्ध करता है। इसका तात्पर्य यह, कि जिसके हृदयमें सत्त्व गुणकी अधिकता रहती है, उसकी सभी चित्त वृत्तियां निर्मल होती हैं। वह सभी प्रकारके दुःखोंसे रहित हो कर सुख और ज्ञानमें रत रहता है।

सत्व गुण देहीको तथा तम गुण ज्ञानको आच्छन्न कर प्रमादादिम संसक्त करता है। सत्वगुण जब प्रबल होता है, तब रज और तमोगुण परास्त हो कर सत्व गुणकी सहायता करता है। जिस समय इस देहमें ज्ञानका प्रकाश होता है, उस समय जानना चाहिये, कि सत्वगुणका उद्भव हुआ है। सत्वगुणके उद्भवकालमें सभी इन्द्रियोंमें ज्ञानका विकाश होता है। रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्दकी आवरणशक्ति नहीं रहती। सत्व गुणसे ज्ञान होता है। जिनका चित्त सत्वगुण प्रधान है, वे ज्ञानलाभ कर सकते हैं।

सत्वगुणकी वृद्धि होनेसे दैवसम्पद् लाभ होता है अर्थात् उस समय अभय, अन्तःकरणकी पवित्रता, ज्ञान योगमें अवस्थान, दम यज्ञ स्वाध्याय, तपस्या, सरलता अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शान्ति परदोषका अदर्शन सबभूत पर दया, लोभशून्यता, कोमलता, लज्जा और अचपलता ये सत्व गुण होते हैं।

पातञ्जल दर्शनमें लिखा है कि शौचसिद्धि होनेसे सत्व शुद्धि होती है। बाह्य शौच और आभ्यन्तर शौच जब सिद्ध होता है, तब सत्व शुद्धि आदि पांचोंका उदय होता है। (पातञ्जलद० २।४१)

चित्त त्रिगुणात्मक होने पर भी इसमें सत्वगुणका भाग अधिक है। सत्व गुणका परिणाम ही सुख है। चित्तभूमिमें तृष्णा द्वारा सत्व अभिभूत रहनेसे नैसर्गिक सुखका प्रकाश नहीं हो सकता। तृष्णाका क्षय होनेसे वह अखण्ड आनन्द लाभ होता है। सुखके लिये प्राणान्त न कर विषय सुखको दुःखका कारण समझ उसे छोड़ देनेसे ही सभी विषयोंका कल्याण होता है।

प्रकृति और त्रिगुण देखो।

२ असु, प्राणवायु। ३ व्यवसाय चेष्टा। ४ चित्तादि। ५ बल, शक्ति। ६ स्वभाव। ७ आत्मा। ८ वित्त। ९ रस। १० आयु। ११ कुबेर। १२ धन। १३ आत्मता। १४ द्रव्य पदार्थ। १५ मन अन्तःकरण। १६ स्वाभाविक अवस्था। १७ धैर्य। १८ उत्साह। १९ स्थिति। २० पराक्रम साहस। २१ जन्तु, प्राणी। २२ गर्भ, हमल। २३ धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम।

सत्वकर्त्ता (सं० पु०) प्रजापति।

सत्वधामन् (सं० क्ली०) १ सत्वप्रकाश। २ विष्णु।

सत्वपति (सं० पु०) जीवजगत्‌का पति।

सत्वप्रकाश (सं० पु०) १ सत्वगुणका प्रकाश। २ विष्णु।

सत्वमय (सं० त्रि०) सत्वस्वरूपसे मयट्। सत्वस्वरूप।

सत्वमूर्त्ति (सं० त्रि०) सत्व मूर्त्तिर्यस्य। सत्व ही है जिनकी मूर्त्ति, विष्णु।

सत्वलक्षण (सं० स्त्री०) १ गुर्विणी, गर्भवती। २ जिस सन्तान होनेकी सम्भावना हो।

सत्ववत् (सं० त्रि०) सत्व अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। १ सत्वगुणविशिष्ट। २ स्थायी। ३ स्वाभाविक। ४ धार्मिक, निष्पाप।

सत्ववती (सं० स्त्री०) १ तन्त्रवर्णित देवीभेद। २ गर्भवती स्त्री।

सत्त्वशालिन् (सं० त्रि०) सत्त्वेन शालते शाल णिनि। सत्वविशिष्ट, सत्वगुणयुक्त।

सत्वसर्ग (सं० पु०) सत्वेन सर्गः। सत्वगुण द्वारा सृष्ट।

सत्वस्थ (सं० त्रि०) सत्वे तिष्ठतीति स्था क। सत्व वृत्तिशाली, सत्वप्रधान, जो विशुद्ध सत्वप्रधान है, उच्च ऊर्ध्व गति होती है।

सत्वस्थान (सं० क्ली०) सत्वका आधार।

सत्वहर (सं० त्रि०) हरतीति हृ अच्, सत्वस्य हरः। सत्वनाशक सत्वगुणनाशक। (भागवत ३।१।२२)

सत्वात्मन् (सं० त्रि०) सत्व आत्मा स्वरूपो यस्य। सत्वस्वरूप सत्व मूर्त्ति विष्णु। (भागवत ६।१२।२१)

सत्नामी—वैष्णव सम्प्रदायविशेष। ये लोग परमेश्वरको 'सत्नाम' कहते हैं। इसीसे इनका सत्नामी नाम पड़ा है। अयोध्या प्रदेशके अधिवासी जगजीवन दास नामक एक क्षत्रियने इस पन्थकी चलाया। ऐसा प्रवाद है, कि ये आसफउद्दौला नवाबके समय विद्यमान थे। यह नवाब १७७५ ई०में अयोध्याके गद्दी पर अधिरूढ़ हुए। इस हिसाबसे १८ वीं सदीके शेषभागमें यह पन्थ चलाया गया। अयोध्यापुरीके पास ही सरदहा ग्राम जगजीवनका जन्म स्थान था। कोटवा ग्राममें इनकी गद्दी और समाधि है। प्रति वर्षके वैशाख और

कार्त्तिक महीनेमें आवरणकुण्ड स्थानके उपलक्षमें यहां मेला लगता है। उस समय गृहस्थ शिष्य यहां जा कर पूजा करते हैं। बेंगवाढा, तेलोई, हरचन्द्रपुर, उमापुर आदि स्थानोंमें भी इनका आस्थान है। ये सब ग्राम लखनऊ जिलेके अन्तर्गत हैं।

जगजीवन साहबके शिष्य जलाली दास, जलाली दासके शिष्य गिरिवर दास, गिरिवर दासके शिष्य जवाहिर दास, जवाहिर दासके शिष्य वशकरण दास और वशकरण दासके शिष्य हनुमान दास और बलदेव दास थे। शेषोक्त दो जने १८०६ शकमें मौजूद थे। पूर्वोक्त आसफउद्दौलाको खाँने सतनामियोंको बहुत सताया था, इस सम्बन्धमें गिरिवर भी एक श्लोक बना गये हैं, जो इस प्रकार है,—

"गुल्ला मारे बन्दरे रात रखिये चोर।
भजन करे भगवान्के बेगम लेगी पीर॥"

अर्थात् बानरको गोलोसे मारो। सारी रात भजन कर चोरको भगाओ। भगवान्की साधना करते रहो, बेगम क्या लेगी?

गिरिवर दासके शिष्य रामदासने भी इस विषयमें एक और श्लोककी रचना की जो इस प्रकार है—

"अवद्पुरीको बसिये बसिये कौनि ओर।
ए तीनों दुःख देवत् हैं बेगम बान्दर चोर॥"

अर्थात् अयोध्यापुरीके किस अंशमें वास करें? बेगम, बानर और चोर ये तीनों ही यहां दुःख देते हैं।

जगजीवन दास यावज्जीवन संसाराश्रममें रह कर हिन्दी भाषामें ज्ञानप्रकाश, महाप्रलय, प्रथम ग्रन्थ आदि कई ग्रन्थ लिख गये हैं। उनका ज्ञानप्रकाश नामक ग्रन्थ १८१७ सम्वत्में लिखा गया।

ये लोग निर्गुण सत्स्वरूप परब्रह्मके उपासक कह कर अपना परिचय देते हैं तथा वैदान्तिक मतानुरूप जीवब्रह्मके अभेद भावादि भी स्वीकार करते हैं। बाउल आदि कोई कोई वैष्णव-सम्प्रदायी जिस प्रकार देहको ही ब्रह्माण्ड स्वरूप मानते हैं, इन लोगोंमें भी वैसा ही मत प्रचलित देखा जाता है,—

"अन्दर खोज मिलेगो ज्ञानी।
नीचे शुल मूल है ऊचे अनभो अकन कहानी।
सात द्वीप नौखण्ड मा सोऽहं सो भर सन्तन जानी।"

अर्थात् जो व्यक्ति भीतरका अनुसन्धान पा लेता है, वही ज्ञानी है। निम्नभागमें कदम्ब और ज्ञाना तथा ऊर्द्ध्वभागमें मूल यह अनाहत और ब्रह्मपद कहते हैं। साधु लोग सात द्वीप नौ खण्ड और सोऽहं शब्द जानते हैं।

सतनामियोंमें गृहस्थ और उदासीन दोनों प्रकारके लोग हैं। गृहस्थ लोग नेपाल, पटना, कानपुर, मथुरा, दिल्ली, लाहोर, अयोध्या, मूलतान, हैदराबाद, गुजरात, आदि नाना प्रदेशोंमें वास करते हैं। ये सब भी पल्टूदासी और बाबा पन्थियोंकी तरह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यादि नाना जातियोंमें विभक्त हैं। किन्तु फकीर अर्थात् उदासिनोंके मध्य वैसा वर्णविचार प्रचलित नहीं है। उन लोगोंमेंसे कोई भी भीख नहीं मांगता, गृहस्थ शिष्य-सेवक द्वारा अपना गुजारा चलाता है। इस सम्प्रदायके फकीरोंका उपाधि दास और साहब है। महंतको साहब तथा बाकी सभीको दास कहते हैं। इसके सिवा किसी फकीरको सम्मान दिखलानेकी इच्छासे साहब भी कहा जाता है।

किसी गृहस्थ सतनामीकी जब मृत्यु होती है, तब मुखाग्नि क्रिया करके उसे जमीनमें गाड़ देते हैं। स्त्रियोंकी मृत्यु होने पर दस दिन अशौच मान कर अन्तिम दिन उसका श्राद्ध करना होता है। पुरुषके मरने पर [illegible]वें दिनमें अशौचान्त और तेरवें दिनमें श्राद्ध होता है। उदासीन सतनामीकी मृत्यु पर इसी प्रकार देह-सत्कार और आद्यकृत्य अनुष्ठान करनेकी प्रथा प्रचलित है।

इस सम्प्रदायके गृहस्थ राम मन्त्रसे दीक्षित होते हैं। वह मन्त्र इस प्रकार है—"ओं रा रा रङ्कार ओंकार शून्य शब्द निरङ्कार आदु जोत किन् पसार ब्रह्म-वरे उतरे पार, जगज्जीवन गुरु सतनाम आधार, राम नाम गहिं भज उपरि पार दया सद्गुरुकी।"

सतनामी फकीर भी यही मन्त्र ग्रहण कर पहले भजनादि, पीछे साधनामें कुछ परिपक्व होने पर गायत्री क्रियाका अनुष्ठान करते हैं। ये लोग प्रति दिन हनूमानजीको धूप दान कर पूर्वलिखित राममन्त्र पढ़ते हैं। फिर मङ्गलवारको हनुमानजीका, कृष्णपक्षीय सप्तमीको भस्य-

सत्यकीर्त्ति (स ० त्रि०) १ यशस्कर्मशाली। (पु०) २ एक वानरका नाम। (रामा० ६।३०।२) एक अस्त्र जो मन्त्रबलसे चलाया जाता है।

सत्यकृत् (स ० त्रि०) सत्य करोति कृ क्विप् तुक् च। सत्यकारक, सत्य करनेवाला।

सत्यकेतु (स ० पु०) १ मनुवंशीय एक राजाका नाम, धर्मकेतुके पुत्र। २ सुकुमारके एक पुत्रका नाम। ३ अक्रूरके एक पुत्रका नाम। ४ एक बुद्धका नाम।

सत्यक्रिया (स ० स्त्री०) बौद्धोंका मन्त्रात्मक कर्मभेद।

सत्यक्षेत्र—दाक्षिणात्यका एक पुण्यतीर्थ। सत्यक्षेत्र माहात्म्यमें इसका विशेष विवरण लिपिबद्ध है।

सत्यखान्—१ बङ्गालके नगरा द्वार। आप पुराणसर्वस्वके प्रणेता गोवर्द्धन पाठकके प्रतिपालक थे।

२ इशानके एक पुत्रका नाम। ये महाभारतटीकाके प्रणेता अर्जुनमिश्रके पृष्ठपोषक थे।

सत्यग्राम—एक प्राचीन ग्राम। (दिग्वि० प्र०)

सत्यगिर् (स ० त्रि०) सत्यागीर्यस्य। सत्यवाक्, सच बोलनेवाला।

सत्यगिर्वाहस (स ० त्रि०) अवितथ वादिफलरूपी स्तुत्य वहनकारी, जिनका वाक्यफल अन्यथा न हो।

सत्यघ्न (स ० त्रि०) सत्य हन्ति हन क। सत्यमारक, जो सत्यका प्रतिपालन न करे।

सत्यङ्कार (स ० पु०) सत्यस्य कार इति कृ घञ् (कारे सत्यागदस्य। पा ६।३।७०) इति मुम्। मैं यह अवश्य करूंगा ऐसा प्रतिज्ञा। पर्याय—सत्यापन सत्याकृति, सत्या वचा। (अमर)

सत्यङ्कारकृत (स ० त्रि०) सत्याङ्कारेण कृतः। अवश्य मैं यह खरीदूंगा, ऐसा प्रतिज्ञा कर जो देता है वह स्थिर कर पेशगी देना।

सत्यङ्गम्—मन्द्राज प्रदेशके तिन्नेवल्ली जिलान्तर्गत नङ्गुनेरि तालुकका एक नगर। यहां क्षेत्रफल ८०७ द्रव्यादिके क्रयविक्रयका जोरां वाणिज्य चलता है।

सत्यजा (स ० त्रि०) सत्यता। (ऋग्वेद १०।४।१०)

सत्यजित् (स ० त्रि०) १ सत्यवान्। (शुक्लयजु १७।८३) (पु०) २ राजभेद। (भारत मन्दि०) ३ पृथ्वतनय पुत्रभेद। (हरिवं) ४ कृष्णके पुत्रभेद। (हरिवं) ५ सुनीतके पुत्र। (विष्णुपु०) ६ अमित्रजितके पुत्र। ७ दानवभेद। ८ यक्षभेद। (भागवत १२।११।४४) ९ तृतीय मन्वन्तरके इन्द्र। (भाग० ८।१।२४) १० आनक पुत्र। ११ सुनीथके पुत्र।

सत्यज्ञ (स ० त्रि०) सत्य जानाति ज्ञा क। सत्य प्रतिज्ञ, सत्यको जाननेवाले।

सत्यज्ञानानन्दतीर्थ—१ वाराणसीवासी एक साधु पुरुष, रामकृष्णानन्दतीर्थके शिष्य। काशीस्तोत्र, गङ्गाष्टक और रामात्मैक्यप्रकाशिका नामक ग्रन्थ इन्होंने बनाये हुए हैं। २ हंसगीत और हंसविवेक नामक दो धर्मशास्त्रके प्रणेता।

सत्यज्योतिस् (स ० त्रि०) अति उज्ज्वल दिव्यज्योति विशिष्ट।

सत्यतपस (स ० पु०) सत्य तपो यस्य। १ मुनि विशेष। वराहपुराणमें इन मुनिका विवरण है। ये पहले व्याध थे पीछे घोर तपस्या करके दुर्वासा ऋषिके वरसे वशादि सर्वशास्त्रज्ञ हो सत्यतपा नामसे विख्यात हुए थे। (वराहपु०)

सत्यतपस्—एक प्राचीन स्मृतिनिबन्धकार, हेमाद्रिने इनका उल्लेख किया है। इनके सिवा कालमाधवका मदनपारिजात और निर्णयसिन्धु आदि ग्रन्थोंमें इनका निर्देश उद्धृत है। सत्यव्रतस्मृति नामक एक स्मृति वैदिनगर, हेमाद्रि और माधवाचार्यने उद्धृत की है। पर यही सत्यतपस् विरचित है।

सत्यतस् (स ० अव्य०) सत्य तसिल्। सत्य विषयमें ठीक ठीक वास्तवमें, सचमुच।

सत्यता (स ० स्त्री०) सत्यस्य भाव तल् टाप्। १ सत्यका भाव या धर्म, सचाई। २ नित्यता।

सत्यतितिक्षावत् (सं० त्रि०) सत्य और तितिक्षा सम्पन्न।

सत्यदर्शी (स ० त्रि०) सत्य पश्यति दृश णिनि। १ सत्यदर्शी, सत्यदर्शी। (पु०) २ ब्राह्मणविशेष। (ललितविस्तर) ३ त्रयोदश मन्वन्तरीय ऋषिभेद।

सत्यदृश् (स ० त्रि०) सत्य पश्यति दृश क्विप्। सत्य दर्शी, सत्यदर्शी।

सत्यद्युम्न—एक प्राचीन कवि।

हाट्टी और हसनूर नामक दो गिरिसङ्कट हैं। अन्तिम पथसे बहुतसे लोग महिसुर राजधानी जाते हैं।

सत्यमहत् (सं० त्रि०) सत्यमद, अवितथमद।

सत्यमन्त्र (सं० त्रि०) अवितथ मन्त्रसामर्थ्योपेत, सत्य-मन्त्रार्थयुक्त, जो मन्त्र जिस कार्यमें प्रयुक्त होता है वही मन्त्रार्थयुक्त। जो मन्त्र निष्फल नहीं होता, उसे सत्य-मन्त्र कहते हैं। (ऋक् १।१०।४)

पुरश्चरणादिका अनुष्ठान करनेसे मन्त्रसिद्ध होता है, मन्त्र सिद्ध होनेसे जिस जिस फलका उद्देश करके मन्त्र प्रयुक्त होता है। मन्त्रशक्तिके प्रभावसे उसी समय वह फल मिलता है। इस मन्त्रको सत्यमन्त्र कहते हैं।

सत्यमन्मन (सं० त्रि०) सत्यज्ञानी, यथार्थदर्शी।

सत्यमय (सं० त्रि०) सत्यस्वरूपे मयट्। सत्य स्वरूप।

सत्यमान (सं० क्ली०) सत्यं यत् मानं प्रमाणं। सत्य-भूत प्रमाण।

सत्ययुग (सं० त्रि०) सत्याम सत्य द्वारा शत्रुओंका उद्धारयिता या उद्गूर्ण सत्य।

सत्यमेवस् (सं० पु०) विष्णु।

सत्यमौद्गल्य (सं० पु०) वैदिक आचार्य।

सत्यम्भरा (सं० स्त्री०) रत्नद्वीपस्थित महानदीविशेष। इस नदीका जल स्पर्श करनेसे रजस्तमोमल उसी समय दूर होता है। (भागवत ५।२०।४)

सत्ययज् (सं० त्रि०) अन्नदाता या हविके द्वारा देवताओं-का यज्ञ करनेवाला, जो देवताओंके उद्देशसे हविद्वारा याग करते हैं।

सत्ययुग (सं० क्ली०) सत्यं युग। युगभेद। सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि यही चार युग हैं। इन चार युगोंमें सत्ययुग प्रथम युग है। इसका दूसरा नाम कृतयुग है। सत्ययुगकी उत्पत्ति आदिके विषयमें प्रचलित पञ्जिकामें लिखा है, कि वैशाख मासकी शुक्ला तृतीया तिथि रवि-वारको इस युगकी उत्पत्ति हुई। तभीसे वैशाखी शुक्ला तृतीया सत्ययुगाद्य कहलाता है। इस युगमें भगवान्‌के चार अवतार हुए हैं, मत्स्य, कूर्म, वराह और नृसिंह। इस युगमें पुण्य ही था, पाप कुछ भी नहीं था। सभी पुण्यकर्मा थे। धर्म चतुष्पाद, कुरुक्षेत्र तीर्थ, ब्राह्मण तथा प्राण मज्जागत थे, इच्छा मृत्यु व्याधि आदिसे किसीकी भी मृत्यु नहीं होती थी मनुष्य इक्कीस हाथ लम्बे होते थे। लाख वर्ष उनकी परमायु थी। भोजन-पात्र सोनेके थे। सत्ययुगाब्द १७२८००० था। इस युगमें बलि, वेण, मान्धाता, पुरूरवा, धुन्धुमार और कार्त्तवीर्य ये सब राजा हो गये हैं। इस युगका लक्षण यह कि सभी नित्य सत्यधर्मरत, तीर्थसेवापरायण तथा सत्यवादी और सभी देवता सर्वदा आनन्दित रहते थे।

इस युगमें तारक ब्रह्मनाम, यथा—

"नारायणपरा वेदा नारायणपराक्षराः।
नारायणपरा मुक्तिर्नारायणपरा गतिः॥" (पञ्जिका)

मनुसंहितामें लिखा है, कि देव परिमाण चार हजार वर्ष सत्ययुग है। मनुष्य-मानका एक वर्ष देवताओंका एक दिन होता है। इस सत्ययुगके चार सौ वर्ष संध्या और चार सौ वर्ष सन्ध्यांश है। सत्ययुगमें सभी धर्म सर्वाङ्गसम्पन्न होते और सत्य सम्पूर्णतासे विराजमान रहता है। इस कालमें शास्त्रनिषिद्ध उपाय द्वारा अर्थ या विद्याका अर्जन नहीं किया जाता। इस युगमें कोई भी रोग मनुष्यको नहीं छूता और उनका आयुपरिमाण चार सौ वर्ष होता है। इस समय तपस्या ही प्रधान धर्म है। (मनु १ अ०)

महाभारतमें लिखा है, कि इस जगत्‌के क्षय होने पर आदिकारण परमात्मासे यह जगत् ऐन्द्रजालिक व्यापारकी तरह निष्पन्न होता है। देवपरिमाण ४ हजार वर्षमें सत्ययुग होता है तथा उसकी युगसन्धि ४ सौ वर्ष तथा संध्यांश भी ४ सौ वर्ष है। सत्ययुगमें अधर्मका विनाश, धर्मकी वृद्धि और मनुष्य क्रियावान् होते हैं। इस युगमें आश्रम, धर्मशाला, चतुष्पाठी, तड़ाग, पुष्करिणी, देवायतन, नानाविध यज्ञ और क्रिया कलाप होते हैं। प्रजा ब्रह्मपरायण, साधु मुनि और तपस्वी होते हैं, क्या आश्रमी क्या आश्रमभ्रष्ट सभी सत्यवादी और सत्यव्रतपरायण हैं। बीज मात्र ही रोप्यमान है, सभी ऋतुमें समान शस्य होता है। मानवगण दान, व्रत और तपोनिरत, ब्राह्मणगण धर्मार्थी और जपयज्ञपरायण होते हैं। क्षत्रियगण धर्मानुसार इस वसुन्धराके पालनमें वैश्य कृषिकार्यमें और शूद्र इन तीनोंकी सेवामें लगे रहते हैं। किसीको भी कोई दुःख नहीं रहता, सभी प्रसन्न रहते हैं, दुःख शोक नहीं कहनेमें भी अत्युक्ति न होगी। यही सत्ययुगका लक्षण है। (भारत वनपर्व १९० अ०)

सत्ययुगाद्या (सं० स्त्री०) सत्ययुगस्य आद्या तिथि, ६तत्। वैशाख शुक्ल तृतीया जिस दिनसे सत्ययुगका आरम्भ माना गया है, अक्षय तृतीया तिथि।

सत्ययुगी (सं० त्रि०) १ सत्ययुगका, सत्ययुग सम्बन्धी। २ बहुत प्राचीन। ३ बहुत सच्चा और अच्छा। सच्चरित्र। कलियुगीका उलटा।

सत्ययोनि (सं० त्रि०) सत्य योनिर्यस्य, सत्यनिदान।

सत्ययौवन (सं० पु०) सत्यमेव यौवनमिव यस्य। विद्याधर।

सत्यरत (सं० त्रि०) सत्येरतः। १ सत्य पुरुष। (पु०) २ सत्यव्रत राजपुत्र। (मत्स्यपु० १२ अ०)

सत्यरथ (सं० पु०) मैथिल राजभेद, मीनरथके पुत्र। आप अत्यन्त आत्मतत्त्वविशारद थे।

सत्यराज (सं० पु०) महाद्रिनिर्मित राजभेद।

सत्यराजन् (सं० त्रि०) जिनके प्रभु अविनाशी हैं।

सत्यराधस् (सं० त्रि०) सत्यं राधः धनं यस्य। सत्य धन जिसका सत्य ही एक मात्र धन है।

सत्यरूप (सं० पु०) सत्यं रूपं यस्य। सत्यस्वरूप, विष्णु।

सत्यलोक (सं० पु०) सत्योलोकः। ऊपरके सात लोकोंमेंसे सबसे ऊपरका लोक जहां ब्रह्मा रहते हैं। इसे ब्रह्मलोक भी कहते हैं।

यह लोक पृथ्वीसे बारह करोड़ पन्द्रह लाख योजन ऊपर है। इस लोकमें मनुष्यकी मृत्यु नहीं होती। इस लोकमें आ कर फिर लौटना नहीं पड़ता।

सत्यलौकिक (सं० क्ली०) सत्य और लौकिक अर्थात् वैदिक और लौकिक कृत्य।

सत्यवचन (सं० क्ली०) सत्यं वचनं। १ सत्यभाषण, यथार्थ कथन, सच कहना। २ सत्यवादी सच बोलने वाला। ३ प्रतिज्ञा, कौल वादा।

सत्यवचस् (सं० पु०) सत्यं वचो यस्य। १ ऋषि विशेष। (त्रि०) २ सत्यवादी। (क्ली०) सत्यं वचः। ३ सत्यभाषण सच कहना।

सत्यवत् (सं० त्रि०) सत्यं विद्यतेऽस्य सत्य-मतुप् मस्य व। सत्यविशिष्ट, सत्ययुक्त।

सत्यवती (सं० स्त्री०) सत्यवत्-ङीप्। १ व्यासकी माता, पर्याय—काली, योजनगन्धा, गन्धकाली, मत्स्योदरी, सत्या, चित्राङ्गदसू, विचित्रवीर्यसू, वासवी, दासेयी, दाशनन्दिनी। (शब्दरत्ना०)

पराशरके औरस और सत्यवतीके गर्भसे व्यासदेवका जन्म हुआ। सत्यवती शब्दमें विशेष विवरण देखो।

२ ऋचीकमुनिकी स्त्री और जमदग्निकी माता। कालिका पुराणमें लिखा है, कि ब्रह्माके पुत्र भृगु और भृगुके पुत्र ऋचीक थे। एक दिन किसी जङ्गलमें कुशिकपुत्र गाधि तपस्या कर रहे थे। इसी समय उनके एक कन्या पैदा हुई। सत्यवती उसी कन्याका नाम रखा गया। इधर ऋचीक विवाह करनेकी इच्छासे गाधिके पास आये और पत्नीके लिये कन्या मांगने लगे। गाधिने कहा, 'ब्राह्मणको कन्या देना मुझे उचित नहीं, किन्तु शुल्कग्रहण करना हम लोगोंका धर्म है। फिर यह शुल्क जैसा तैसा नहीं। जो व्यक्ति एक हजार काले घोड़े मुझे ला कर देगा, उसीके हाथमें अपनी कन्या सौंपूंगा।' ऋचीकने जवाब दिया 'राजन्! मैं ठीक वैसे ही एक हजार घोड़े दूंगा, आप कुछ समय ठहरें, ला कर देता हूं।' अनन्तर ऋचीक घोड़े लानेके लिये कान्यकुब्जमें गङ्गाकिनारे गये। वहां उन्होंने वरुण तथा वरुणको स्तवादि द्वारा प्रसन्न कर उनके प्रसादसे उक्त लक्षणके हजार घोड़े पाये। जहां पर सब अश्व मिले थे, वह स्थान आज भी अश्वतीर्थ कहलाता है। ऋचीकने उन घोड़ोंको ला कर गाधिको दिया। बाद गाधिने भी अपनी पूर्व प्रतिज्ञाके अनुसार सत्यवतीको ऋचीकके हाथ सौंप दिया। ऋचीक सत्यवतीको भार्यारूपमें पा कर बड़े हर्षितमनसे अपने आश्रममें लाये और आनन्दपूर्वक दिन बिताने लगे। भृगुको जब मालूम हुआ कि पुत्र ऋचीकने विवाह कर लिया है, तब वे पुत्रवधूको देखनेके लिये उनके आश्रममें गये और उन्हें देख कर बड़े प्रसन्न हुए। पीछे उन्होंने पुत्रवधूसे कहा 'पुत्रि! वर मांगो।' सत्यवतीने अपने लिये वेदपारग तपोनिष्ठ पुत्र तथा माताके लिये अमितबलपराक्रमशाली वीरपुत्रके लिये प्रार्थना की। 'ऐसा ही होगा' कहते कहते भृगु अन्तर्धान हो गये। पीछे उनके विश्रामस्थलसे दो चरु निकले। भृगुने पुत्रवधू सत्यवतीको दोनों चरु दे कर कहा, 'तुम और तुम्हारी

माता ऋतुस्नान करके ये दोनों चरु खाना। तुम्हारी माता पुत्र प्रसव करनेके लिये पीपल वृक्षका आलिङ्गन कर यह लाल चरु खायेगी और तुम गूलर वृक्षका आलिङ्गन कर यह सफेद चरु खाना। इसमें तुम्हारे तपोधन अत्युत्कृष्ट पुत्र होगा।'

अनन्तर ऋतु स्नानके दिन सत्यवतीने भूलसे पीपल वृक्षका आलिङ्गन कर लाल चरु और उनकी माताने सफेद चरु खा लिया। महर्षि भृगुको जब यह बात मालूम हुई तब वे दौड़े आये और बोले 'भद्रे! तुमने चरु खाने और वृक्षालिङ्गन करनेमें बड़ी भारी भूल कर दी, इससे तुम्हारा पुत्र क्षत्रियाचारी ब्राह्मण और तुम्हारी माताका पुत्र ब्राह्मणाचारी क्षत्रिय होगा।' भृगुकी बात सुन कर सत्यवतीने उन्हें प्रसन्न कर कहा 'मेरा पुत्र जिससे गुणसम्पन्न हो, वैसा ही उपाय कर दीजिये।' इस पर भृगु, 'तथास्तु' कह कर चले गये। अनन्तर सत्यवतीने यथासमय जमदग्निको और उनकी माताने विश्वामित्रको प्रसव किया। यही कारण है, कि जमदग्नि क्षत्रियाचारी हुए थे।

सत्यवतीसुत (सं० पु०) सत्यवत्याः सुतः। १ व्यास। २ जमदग्नि। (कालिकापु० ८४ अ०)

सत्यवदन (सं० त्रि०) सत्यवादी।

सत्यवरतीर्थ—एक संन्यासी और सम्प्रदायके गुरु। ये पहले कृष्णाचार्य नामसे प्रसिद्ध थे। अपने गुरु सत्यसन्ध तीर्थकी मृत्युके बाद ये गुरुपद पर अधिष्ठित हुए। १७१८ ई०में इनका देहान्त हुआ।

सत्यवर्त्मन् (सं० त्रि०) सत्यपथ, सत्यमार्ग।

सत्यवर्य्य पञ्चपदी विवृति नामक व्याकरणके प्रणेता।

सत्यवसु (सं० पु०) विश्वदेवामेंसे एक।

सत्यवाक् (सं० पु०) सत्यवाचन, सच कहना।

सत्यवाक्य (स ०क्ली०) सत्यं वाक्य। १ यथार्थ कथन, सच वचन। (त्रि०) सत्यं वाक्यं यस्य। २ सत्यवादी, सच बोलनेवाला।

सत्यवाक्यदेव—दाक्षिणात्यके चेरराजवंशका एक राजा।

सत्यवाच् (स ० पु०) सत्या वाक् यस्य। १ ऋषि। २ काक, कौआ। ३ सावर्ण मनुके एक पुत्रका नाम। (मार्कपु० ८०।११) ४ सत्य वचन। ५ प्रतिज्ञा, करार। (त्रि०) सत्या वाक् यस्य। ६ सत्यवादी, सच बोलनेवाला।

सत्यवाचक (सं० त्रि०) सत्यं वाचयतीति, सत्य वच णिच्-ण्वुल्। सत्यवादी, सच बोलनेवाला।

सत्यवाद (सं० पु०) सत्यस्य वादः। १ सत्यविषयक वाद, सच वचन। २ धर्म पर दृढ़ रहना, ईमान पर रहना।

सत्यवादिता (स ० स्त्री०) सत्यवादिनो भावः तल्-टाप्। सत्यवादित्व, सत्य कथन।

सत्यवादिन् (सं० त्रि०) सत्यं वदतीति वद णिनि। १ यथार्थवक्ता, सच बोलनेवाला। २ प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहनेवाला, वचनको पूरा करनेवाला। ३ धर्म पर दृढ़ रहनेवाला, धर्म कभी न छोड़नेवाला।

सत्यवादिनी (सं० स्त्री०) १ दाक्षायिणीका एक नाम। २ बोधिद्रुमकी एक देवी।

सत्यवादी (सं० त्रि०) सत्यवादिन् देखो।

सत्यवान् (सं० पु०) सत्यवत्। राजविशेष, सावित्रीके पति।

"सत्यं वदत्यस्य पिता सत्यमाता प्रभाषते।
ततोऽस्य ब्राह्मणाश्चक्रुर्नामैतत् सत्यवानिति॥"

(भारत ३।२९३।१२)

इनके मातापिता सर्वदा सत्यवाक्य कहा करते थे, इसीसे ब्राह्मणोंने इनका सत्यवान् नाम रखा। महाभारतमें लिखा है, कि, शाल्वदेशमें द्युमत्सेन नामक एक राजा थे। कालक्रमसे वे अंधे हो गये। इसी समय उन्हें एक पुत्र हुआ। ब्राह्मणोंने उस पुत्रका नाम सत्यवान् रखा। द्युमत्सेनको नेत्रहीन देख उनके पूर्व शत्रुओंने राज्य पर चढ़ाई कर दी। राजा कोई उपाय न देख स्त्री समेत जंगल चले गये। यहां वे सर्वदा तपस्यामें निरत रह कर समय बिताने लगे। इस प्रकार कुछ दिन बीत गये। एक दिन अश्वपतिकी कन्या सावित्री पतिकी खोजमें घरसे निकल कर जंगल आई। यहां सत्यवान् पर उनकी एकाएक दृष्टि पड़ी और मन ही मन उनको वरमाला पहना दी। पीछे घर आ कर सावित्रीने कुल वृतान्त अपने पितासे कह सुनाया। उसी समय नारद ऋषि भी वहीं बैठे थे। नारदने यह वृतान्त सुन कर

नारदने कहा 'राजन् ! सत्यवान् सभी गुणोंसे युक्त होने पर भी उनकी परमायु बहुत थोड़ी है, आजसे एक वर्ष पूरा होने पर उनकी आयु नष्ट होगी।'

तब राजा अश्वपतिने सावित्रीसे कहा, 'तुम सत्यवानकी आशा छोड़ दो किसी दूसरे गुणवान् व्यक्तिको वरो। क्योंकि सत्यवान एक वर्ष बाद ही शरीरत्याग करेगा पीछे तुम्हें दारुण वैधव्यका भोग करना होगा। सावित्रीने कहा, 'पिताजी ! आप ऐसा न कहें मैं जब उन्हें वर चुकी हूँ, तब किसी हालतसे फेर नहीं सकती।'

अश्वपतिने सावित्रीका दृढ़ सङ्कल्प जान कर सत्यवान्के साथ उसका विवाह सम्बन्ध स्थिर किया। शुभ दिन देख कर वे विवाहोपयोगी उपकरण और सावित्रीको साथ ले जङ्गलमें गये। वहां द्युमत्सेनके पास जा कर उन्होंने राजासे कहा, 'राजर्षे ! सावित्री नामकी मेरी एक सुन्दरी कन्या है, आप स्वधर्मानुसार उसे अपनी पुत्रवधू बनावें।'

द्युमत्सेनने कहा, 'हम लोग राज्यसे विच्युत हो कर जङ्गल आये हैं यहां संयत और तपस्वी हो कर धर्माचरण करते हैं, किन्तु आपकी कन्या वनमें रहने योग्य नहीं है, तब फिर किस प्रकार आश्रममें रह कर वे वन क्लेश सहन करेगी ?'

अश्वपतिने उत्तरमें कहा, 'राजन् ! सुख और दुःख ये दोनों ही अनित्य हैं, कभी उत्पन्न और कभी विनष्ट होता है, मेरी कन्या यह अच्छी तरह जानती है। अत एव आप मुझे निराश न लौटावें सावित्रीको वधूरूपमें ग्रहण करें।' अश्वपतिके विशेष हठ करने पर द्युमत्सेनने उस आश्रमके सभी ब्राह्मणोंको बुलाया और यथाविधि विवाह कार्य सम्पन्न कराया। राजा अश्वपति सत्यवान्‌को कन्या तथा यथायोग्य परिच्छदादि प्रदान कर हृष्टचित्तसे घर लौटे। सत्यवान् उस सर्वगुणान्विता भार्याको पा कर बड़े प्रसन्न हुए और अभिलषित पति पा कर सावित्रीके भी आनन्दका पारावार न रहा। इसके बाद सावित्रीने सभी आभरण परित्याग कर वल्कल पहना। सावित्री परिचर्यागुण सत्यादि गुणावलि, कायिक इन्द्रियनिग्रह और सबोंके अभिलाषानुरूप कार्यानुष्ठान द्वारा सबोंको प्रसन्न करने लगी। इस प्रकार कुछ दिन बीत गए। किन्तु नारदने जो बात कही थी, सावित्रीके अन्तःकरणमें वह दिनरात जगमगा रही थी, सोते बैठते किसी भी अवस्थामें वह उसे भूल नहीं सकी थी।

अनन्तर कुछ दिन इसी प्रकार बीत गया। सावित्री नारदके कथनानुसार दिन गिनती जाती थी। आजसे चौथे दिन सत्यवान्‌की मृत्यु होगी यह अच्छी तरह जान कर उन्होंने त्रिरात्रव्रतका अनुष्ठान किया। इस व्रतमें तीन दिन उपवास रहना होता है। जिस दिन सत्यवान्‌की मृत्यु होगी, सूर्यदेवके उदय होनेके बाद आज ही वह दिन है, ऐसा समझ कर प्रदीप्त हुताशनमें आहुति देने लगी, पीछे ब्राह्मण, ससुर सासको अभिवादन कर कृताञ्जलि हो खड़ी रही। ब्राह्मणोंने उन्हें अवैधव्यसूचक आशीर्वाद दिया। ससुर और सासने अब सावित्रीसे कहा, 'तुम्हारा त्रिरात्रव्रत शेष हो गया, अब भोजन कर लो, क्योंकि तीन दिनसे तुम भूखी हो।' सावित्रीने उत्तर दिया 'मेरा व्रतशेष हुआ सही परन्तु विधाता यदि मुझे भोजन दें तो आज सूर्यास्त होने पर भोजन करूंगी।

इस समय सत्यवान् कुठार हाथमें लिये वन जानेके लिये तैयार हुए। सावित्रीने स्वामीसे कहा, आज अकेले आपको जाने नहीं दूंगी मैं आपके साथ चलूंगी। किसी हालतसे आज आपको छोड़ न सकती।' इस पर सत्यवान्‌ने कहा, 'तुम पहले कभी वन नहीं गई हो, वनका रास्ता बड़ा ही दुर्गम है, विशेष तीन दिन उपवास करनेसे तुम्हारा शरीर कमजोर हो गया है इस लिये पैदल किस प्रकार जा सकोगी ?' सावित्री बोली मैं उपवासके कारण क्लान्त या परिश्रमका कुछ भी अनुभव नहीं करती आपके साथ जानेकी मेरी उत्कट इच्छा है, इसमें आप बाधा न डालें। तब सत्यवान्‌ने कहा, 'यदि तुम सच मुच वन जाना चाहती हो, तो मेरे माता पितासे अनुमति ले लो। अनन्तर सावित्री ससुर और सासके पास गई और उन्हें प्रणाम कर कहा, स्वामी फल लानेके लिये वन जा रहे हैं, आज मेरी भी इच्छा उनके साथ जानेकी है इस लिये प्रार्थना है कि आप मुझे जानेकी आज्ञा अनुमति दीजिये। गुरु और अग्निहोत्रके लिये आप पुत्र वन जा रहे हैं, इस लिये उन्हें रोकना

भी उचित नहीं'।' द्युमत्सेनने सावित्रीका नितान्त आग्रह देख कर वन जानेको अनुमति दे दी।

सावित्री सत्यवान्के साथ वनको चली। किन्तु नारदोक्त मुहूर्त्तके विषयकी चिन्ता कर उनका कलेजा फटने लगा। अनन्तर फलकाष्ठादि तोडते समय सत्यवान्का शिर एकाएक चकराने लगा। शिरके दर्दसे अत्यन्त व्याकुल हो उन्होंने सावित्रीसे कहा, 'सावित्री! मेरे अङ्ग प्रत्यङ्ग मानो टूट रहे हैं, जरा भी चैन नहीं' है, मालूम होता है मेरा मृत्युकाल पहुंच गया है, क्षणकाल भी अब मैं ठहर नहीं' सकता' इतना कह कर वे सावित्रीकी गोद पर मस्तक रख कर सो गये।

अनन्तर सावित्री नारदोक्त मुहूर्त्त उपस्थित देख कर अत्यन्त व्याकुल और विषण्ण हुई। पीछे सावित्रीने देखा कि लाल वस्त्र पहने, डील डौलमें सुन्दर, श्याम गौरवर्ण और लोहितलोचनवाले एक भयङ्कर पुरुष हाथमें पाश लिये सत्यवान्की बगलमें खडे हैं और उन्हें एक टकसे देख रहे हैं। सावित्रीने उन्हें देख कर कहा, 'आप क्या देवता हैं, किस अभिप्रायसे यहां आये हैं।' इस पर उक्त पुरुषने जवाब दिया, 'मेरा नाम यम है, तुम्हारी पतिकी मृत्यु हो गई है, मैं उसे लेने आया हूं। सत्यवान् अत्यन्त पुण्यात्मा और तुम पतिव्रता हो, मेरे दूत गण तुम्हारे सामने इन्हें नहीं ले जा सकेंगे, यह जान कर मैं ही स्वयं आया हूं।'

इतना कह कर यम अङ्गुष्ठ मात्र पुरुषको पाशमें बांध कर दक्षिणकी ओर जाने लगे। सावित्री भी उनके पीछे पीछे चली। यम उन्हें लौट जानेके लिये बार बार कहने लगे, 'सावित्री! तुम जा कर इसकी अन्त्येष्टिक्रिया करो, तुम स्वामीके ऋणसे उऋण हो गई। मनुष्यको जहां तक करना सम्भव है वहा तक तुम कर चुकी, इस लिये अब लौट जाओ, और अन्त्येष्टिक्रिया जा कर करो।'

अनन्तर सावित्रीने कहा, 'मेरे स्वामीको आप जहां ले जा रहे हैं और आप भी जहा जाते हैं, मुझे भी वहीं जाना उचित है। क्योंकि, यही सनातन धर्म है। तपस्या, गुरुभक्ति, पतिस्नेह, व्रत और आपके प्रसादसे मेरी गति अप्रतिहत होगी।' इत्यादि प्रकारसे वे यमसे पूछने लगी। तब यमने सावित्रीसे कहा, 'हम तुम्हारी बातसे बहुत सन्तुष्ट हुए, तुम सत्यवान्का जीवन छोड कर जो इच्छा हो, वर मांगो।' सावित्री बोली, 'मेरे श्वशुर अपने राज्यसे विच्युत हो अंधे हो गये हैं, इससे यही वर चाहती हूं कि वे जिससे नेत्रलाभ कर सूर्यके समान तेजस्वी हों।' यमने वैसा ही वर दिया और कहा, 'अब लौट जाओ, आनेका वृथा कष्ट न करो।'

अनन्तर सावित्रीने कहा, 'स्वामीके पास रहते मुझे कष्ट किस बातका? स्वामीकी जो गति है, वही मेरी स्थिर गति होगी। आप जहां मेरे पतिको ले जायगे, मैं वहीं जाऊंगी।' इत्यादि प्रकारसे सावित्रीने यमको मुग्ध कर दिया।

यमने फिर सावित्रीसे कहा, 'तुम सत्यवान्का जीवन छोड़ दूसरा वर ले कर लौट जाओ।' इस बार सावित्रीने श्वशुरके राज्यलाभ तथा पिताके सौ पुत्रलाभके लिये प्रार्थना की। यमने उन्हें यही वर दे कर कहा, कि अब घर लौट जाओ। अनन्तर सावित्री फिर यमको नाना प्रकारके स्तवादि द्वारा प्रसन्न करने लगी। यमने फिर कहा, 'सत्यवान्के जीवनको छोड कर चौथा वर मांगो।' इस पर सावित्री बोली, 'सत्यवान्के औरस और मेरे गर्भसे जिससे सौ पुत्र उत्पन्न हो, वही वर मुझे दीजिये।' 'तथास्तु' कह कर यम जाने लगे। किन्तु सावित्रीने फिर मधुर और हितार्थयुक्त वचनोंसे यमको मोहित किया। यमने नितान्त परितुष्ट हो कर उससे कहा, 'सावित्री! तुम एक वर और ऐसा मांगो, जो पाये हुए चार वरोंसे परे हो।' सावित्री बोली, 'मैं यही वर प्रार्थना करती हूं, कि सत्यवान् जीवित हों। क्योंकि, बिना पतिके मैं मृतवत् हूं, पतिविहीन हो कर मैं सुख, स्वर्ग, ऐश्वर्य यहां तक कि जीवनधारणकी भी इच्छा नहीं करती। देखिये! आपने ही मेरे सौ पुत्र होनेका वर दिया है, फिर भी आप मेरे पतिको लिये जा रहे हैं।' तब यमने सावित्रीके प्रति दया दिखला कर उन्हें सत्यवान्के जीवनदानरूप वर दिया, 'भद्रे! मैंने यही तुम्हारे स्वामीको छोड़ दिया। सत्यवान् रोगमुक्त और सिद्धार्थ हुए, तुम्हारे साथ चार सौ वर्ष परमायु लाभ कर सुख भोग करेंगे। तुम्हारे गर्भसे भी सौ पुत्र

उत्पन्न होंगे।' इस प्रकार वर दे कर यमने प्रस्थान किया।

अनन्तर सत्यवानने सोते की तरह उठ कर सावित्री से कहा, 'अब तक तुमने मुझे उठाया था क्यों नहीं? एक श्यामवर्ण पुरुष मानो मुझे खींचे जा रहे थे, वे कहां गये? यदि तुम जानती हो तो मुझे कहो।' सावित्री बोली 'रात अधिक चढ़ आई। आपके माता पिता आपके लिये बहुत व्याकुल होते होंगे, इस लिये यह वृत्तान्त कल कहूंगी। अभी यदि आपका शरीर स्वस्थ हो गया हो, तो घर चलिये अथवा रात यहीं बिता कर कल सवेरे आया जावेगा।' इस पर सत्य वान्ने कहा बहुत अच्छा, अभी जाना ही अच्छा है, क्योंकि वे लोग हमारे लिये घबड़ाते होंगे। जंगली पथ मेरा चिराभ्यस्त है तारोंका ज्योतिसे जानेमें कष्ट न होगा।' इतना कह कर दोनों घरकी ओर चल दिये।

इधर राजा द्युमत्सेनने हठात् चक्षुलाभ किया। किन्तु सावित्री और सत्यवान्का आश्रममें अब तक आए न देख कर बड़े कातर भावमें रोने लगे। ऋषि गण वहां आ कर उन्हें सान्त्वना देने लगे। इसी समय उस गहरी रातको सावित्री और सत्यवानने वहां पहुंच ऋषियों और पितामाताका अभिवादन किया।

अनन्तर ऋषियोंने उन दोनोंसे कहा 'तुम्हारे माता पिता मृतप्राय हो गये हैं, हम लोगोंने इन्हें नाना प्रकार की सान्त्वना दे कर अब तक जीवित रखा है। तुम लोगों को आनेमें क्यों विलम्ब हुआ? यदि यह बात कोई गोप नीय न रहे तो क्या बात है, कहो जिससे हमलोगोंका कुतूहल दूर हो। इस पर सत्यवानने कहा, मैं कुछ भी नहीं जानता, वनमें लकड़ी तोड़ते समय मेरे शिरमें वड़ापक दर्द हुआ इससे मैं कातर हो कर बड़ी देर तक सावित्री की गोद पर सो रहा। इस समय यदि कोई घटना घटी हो, उसे सावित्री ही जानती होगी, मैं नहीं।' अनन्तर उन्होंने सावित्रीसे पूछा। सावित्रीने नारदसे पतिकी मृत्युके विषयमें ले कर सत्यवान्की मृत्यु तथा यमका प्रसन्न कर किस प्रकार उन्होंने वरलाभ किया कुल वृत्तान्त कह सुनाया। श्वशुरके चक्षु और राज्यलाभ, पिताके सौ पुत्र और अपने सौ पुत्र तथा सत्यवानका चार सौ वर्ष परमायु ये चार वर जो पाये हैं, वह भी उन्होंने कह दिया। ऋषिगण यह वृत्तान्त सुन कर सावित्रीकी भूरि भूरि प्रशंसा करने लगे।

इधर द्युमत्सेनके अमात्यने शत्रुओंका विनाश और राज्यका उद्धार कर द्युमत्सेनको राज्य लौटा दिया। पीछे सत्यवान्के सौ पुत्र और माल्वीके गर्भसे अश्वपतिके भी सौ पुत्र हुए। एक सावित्रीने ही पिता, माता, सास, ससुर और पति इन सबोंको सभी प्रकारकी विपदसे उद्धार किया था। (भारत वनप० २९६से २९८अ०)।

सावित्री देखो।

सत्यवाह (सं० पु०) भरद्वाज गोत्रीय ऋषिभेद।

सत्यवाहन (सं० त्रि०) १ सत्यशील, सच बोलनेवाला। २ धर्मपर दृढ़ रहने वाला।

सत्यविज्ञतीर्थ—सत्यपूर्ण तीर्थके शिष्य। आप प्रथम जीवनमें कृष्णाचार्य नामसे प्रसिद्ध थे। १७४० ई०में आपका देहान्त हुआ।

सत्यविजयशिष्य—वेङ्कटेशसहस्रनामटीकाके प्रणेता।

सत्यविक्रम (सं० त्रि०) १ सत्यपराक्रम। २ सत्यवादी।

सत्यव्रततीर्थ—माध्वसम्प्रदायके एक गुरु सत्यपराक्रम तीर्थ (१८६४ ई०) के शिष्य। वे पहले वीघरायाचार्य नामसे प्रसिद्ध थे।

सत्यवृत्त (सं० त्रि०) सत्यं वृत्तं यस्य। १ सत्यवादी। (क्ली०) २ सच्चरित्र।

सत्यवृत्ति (सं० त्रि०) सत्य कथनका भाव, सच्चरित्रता।

सत्यवृध (सं० त्रि०) ऋतावृध। (शतपथब्रा० ६।८।३।४२)

सत्यवेध—एक प्राचीन कवि।

सत्यबोध—परमहंसपरिव्राजक, महाभारतटीकाके प्रणेता देवबोधके गुरु।

सत्यबोधतीर्थ—सत्यप्रिय तीर्थके शिष्य। ये अपने गुरुके मरने पर सम्प्रदायके गुरुपद पर अधिष्ठित हुए। प्रथम जीवनमें रामाचार्य नामसे इनकी प्रसिद्धि थी। १७८४ ई में इनका देहान्त हुआ।

सत्यव्रत (सं० पु०) सत्यमेव व्रतं यस्य। १ त्रेता युगमें सूर्यवंशीय पचासवें राजा। (मत्स्यपु० १२ अ०) विष्णुपुराणमें लिखा है, कि ये ही त्रिशङ्कु राजा थे। (विष्णुपु० ४।३ अ०) २ धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम।

(भारत १।६३।११७) ३ महादेव। (भागत १३।१७।१५०) (क्ली०) ४ सत्यरूप व्रत। ५ सत्य बोलनेकी प्रतिज्ञा या नियम। (त्रि०) ६ सत्यव्रतविशिष्ट, जिसने सत्य बोलनेकी प्रतिज्ञा की हो।

सत्यव्रततीर्थ—वेदनिधितीर्थके शिष्य। पहले ये जनार्दनाचार्य नामसे परिचित थे। १६३६ ई०में इनका तिरोधान हुआ।

सत्यशपथ (स० त्रि०) सत्यप्रतिज्ञ, जिसका सत्य ही शपथ है।

सत्यशवस् (सं० त्रि०) अवितथ बल, सत्यबलयुक्त मरुत्। (ऋक् १।८६।८)

सत्यशील (सं० त्रि०) सत्यं शीलं यस्य। सत्यस्वभाव, सत्यका पालन करनेवाला, सच्चा।

सत्यशीलिन् (सं० त्रि०) सत्यशीलयुक्त, सत्यस्वभाव।

सत्यशुष्म (सं० त्रि०) अवितथ बलयुक्त, यथार्थ बल रखनेवाला।

सत्यश्रवस् (सं० क्ली०) १ सत्यविषयश्रवणाकारी। २ वाय्यके पुत्र ऋषिभेद। ये वैदिक आचार्य थे। (ऋक् ५।७६।१) ३ मार्कण्डेयके पुत्रभेद। ४ वीतिहोत्रके पुत्रभेद। (भाग० ६।२।२०)

सत्यश्री (सं० पु०) १ सत्यहितके पुत्रभेद। (स्त्री०) २ एक जैन श्राविका। (शत्रुञ्जयमा० १४।३१७)

सत्यश्रुत् (सं० त्रि०) सत्य द्वारा प्रसिद्ध।

सत्यसंहति (सं० त्रि०) सत्ये संहतिः। सत्यप्रतिज्ञ, सत्यका नियम पालन करनेवाला।

सत्यसङ्कल्प (सं० पु०) सत्ये सङ्कल्पो यस्य। दृढ सङ्कल्प, जो विचारे हुए कार्यको पूरा करे।

सत्यसङ्कल्पतीर्थ—माध्व सम्प्रदायके एक गुरु, सत्यधर्मतीर्थके शिष्य। ये पहले श्रीनिवासाचार्य नामसे परिचित थे। १८४२ ई०में इनका परलोकवास हुआ।

सत्यसङ्काश (सं० त्रि०) सत्यस्य सङ्काशः सदृशः। सत्यसन्निभ।

सत्यसङ्गर (सं० पु०) सत्यः सङ्गरः, प्रतिज्ञा युद्धं वा यस्य। १ कुवेर। २ ऋषि विशेष। (त्रि०) ३ अन्यायरहित युद्ध।

सत्यसतो (सं० स्त्री०) सत्यशीला रमणी।

सत्यसत्वन् (सं० पु०)। 'स सत्यसत्वन् सत्याः सत्वानो भटा यस्य। (माघरण)

सत्यसद् (सं० त्रि०) ऋतसद्। (तैत्तरेयब्रा० ४।२०)

सत्यसन्तुष्टतीर्थ—सत्यसङ्कल्पतीर्थके शिष्य। ये पहले रामाचार्य नामसे प्रसिद्ध थे। १८४२ ई०में इनका तिरोधान हुआ।

सत्यसन्ध (सं० पु०) सत्ये सन्धा अभिसन्धिर्यस्य। १ रामानुज। (भरत)। २ रामचन्द्र। ३ जनमेजय। ४ विष्णु। ५ धृतराष्ट्रपुत्र। ६ स्कन्दका अनुचर। ७ सह्याद्रिवर्णित राजभेद। (त्रि०) ८ सत्यप्रतिज्ञ, वचनको पूरा करनेवाला।

सत्यसन्धता (सं० स्त्री०) सत्यसन्धस्य भावः तल्-टाप्। सत्यसंधका भाव या धर्म।

सत्यसन्धा (सं० स्त्री०) सत्य सत्याभिसन्धि यस्याः। द्रौपदी।

सत्यसव (सं० त्रि०) अवितथ प्रेरण।

सत्यसवन (सं० त्रि०) अवितथ प्रेरणशील।

सत्यसवस् (सं० त्रि०) अवितथ प्रेरणकारी।

सत्यसह (सं० त्रि०) सत्ययुक्त।

सत्यसहस (सं० पु०) मनुपुत्र विशेष, स्वधाममनुके पुत्र। (भाग० ८।१३।२६)

सत्यसाक्षिन् (सं० त्रि०) सत्यप्रधान साक्षी।

सत्यसार (सं० त्रि०) सत्यं सारो यस्य। सत्यवादी, जिनका एक मात्र सार ही सत्य है।

सत्यसेन (सं० पु०) १ धर्म और सुनृतासे उत्पन्न मनुपुत्रविशेष। (भागवत ८।१।२५) २ भारतवर्णित एक योद्धाका नाम। (भारत कर्णपर्व) ३ दाक्षिणात्यके एक सामन्त राजा। ये यवनभञ्ज उपाधिसे भूषित थे।

सत्यस्थ (सं० त्रि०) सत्येतिष्ठति स्था-क। सत्यमें अवस्थित, सत्यावलम्बी, जो सर्वदा सत्य पर डटे रहते हैं।

सत्यहविस् (स० त्रि०) यज्ञमें प्रदत्त हविर्भेद।

सत्यहव्य (सं० पु०) ऋषिभेद। सातहव्य देखो।

सत्यहित (सं० त्रि०) १ सत्य अथच हितकर। (पु०) २ राजभेद, राजा पुष्पवान्‌के पिता और पुत्र। (भागवत ६।२२।७) ३ आचार्यभेद।

सत्या (सं० स्त्री०) सत्यमस्त्यस्या इति सत्य अच्-टाप्। १ सीता, रामकी स्त्री। २ व्यासकी माता सत्यवती। ३ दुर्गा। ४ कृष्णकी पत्नी सत्यभामा। ५ अजयुकी पत्नी। ६ सत्यका सद्भाव।

सत्याकृति (सं० स्त्री०) सत्यस्य आकृति करण (सत्यादशपथ। पा ५।४।६६) इति डाच्। कोई चीज खरीदनेकी प्रतिज्ञा। पर्याय—सत्यङ्कार, सत्यापन।

सत्याग्नि (सं० पु०) सत्यस्य अग्नि। अगस्त्यमुनि।

सत्याग्रह (सं० पु०) सत्यके लिये आग्रह या हठ।

सत्याङ्क (सं० पु०) जम्बूद्वीपवासी शूद्रजातिभेद।

सत्यात्मक (सं० त्रि०) सत्य आत्मा यस्य। सत्य स्वरूप।

सत्यात्मज (सं० पु०) सत्यभामाके पुत्र।

सत्यात्मन् (सं० त्रि०) सत्यस्वरूप, सत्यमय।

सत्याषाढहिरण्यकेशिन्—हिरण्यकेशि श्रौतसूत्र, गृह्य सूत्र और धर्मसूत्र ग्रन्थके प्रणेता। इन तीनों ग्रन्थों को छोड़ निम्नोक्त ग्रन्थ भी उन्हींके विरचित हैं। यथा—आग्रयणप्रयोग, आधान, आप्तोर्य्यामप्रयोग, चयन प्रयोग चातुर्मास्यप्रयोग, ज्योतिष्टोमप्रयोग, दर्शपूर्णमास प्रयोग, पितृमेधसूत्र, प्रवर्ग्यप्रयोग, प्रायश्चित्तप्रयोग, वाजपेयप्रयोग सोमप्रयोग।

सत्यानन्द—त्रिपुरसुन्दरी के रचयिता।

सत्यानन्दतीर्थ—वेदप्रदीपके रचयिता। ये रामकृष्णा नन्दतीर्थके शिष्य थे।

सत्यानन्दपरमहंस (परिव्राजक)—एक साधुपुरुष महाभाष्यप्रदीप विवरणके प्रणेता ईश्वरानन्दके गुरु ये पहले रामचन्द्र सरस्वती नामसे प्रसिद्ध थे।

सत्यानास (हिं० पु०) सत्यानाश। मटियामेट।

सत्यानासी (हिं० वि०) १ सत्यानास करनेवाला, चौपट करनेवाला। २ अभागा, बदकिस्मत। (स्त्री०) ३ एक कँटीला पौधा। यह प्रायः कँकड़ीली और उजाड़ स्थानों पर जमता है। इस पौधेके मध्यमें सामान्य पौधेका सरल एक काण्ड ऊपरको और रहता है। उसके चारों ओर नोकदार छिदे हुए कंगूरेदार पत्ते निकलते हैं जिन पर चारों ओर पीले काँटे होते हैं। इस पौधेको काटने या तोड़नेसे एक प्रकारका पीला दूध या रस निकलता है। फूल पीला, कटोरेके आकारका और देखनेमें सुन्दर पर गन्धहीन होता है। जब फूल झड़ जाते, तब गुच्छोंमें फल या पोनकोश लगते हैं जिनमें राईकी तरह काले काले बीज भरे रहते हैं। इन बीजोंसे एक प्रकारका बहुत तीक्ष्ण तेल निकलता है। यह तेल खुजली पर लगाया जाता है। वैद्यकमें सत्यानासी कड़वी, दस्तावर, शीतल तथा कृमिरोग, खुजली और विषको दूर करनेवाली मानी गई है।

सत्यानृत (सं० क्ली०) किञ्चित् सत किञ्चिदनृतं सत्यं सहितमनृतं वा यत्र। वाणिज्य, व्यापार, दूकानदारी। इसमें कुछ सच और कुछ झूठ दोनों ही बोलने पड़ते हैं, इसीसे वाणिज्यको सत्यानृत कहते हैं। २ झूठ सचका मेल।

सत्यापन (सं० क्ली०) सत्यस्य करणं सत्य (सत्यापपाश। पा ३।१।२५) इति णिच्। आपुक्च ततो ल्युट्। सत्याकृति किसी सौदे या इकरारका पूरा होना।

सत्यापना (सं० स्त्री०) सत्याप युच टाप्। सत्यापन देखो।

सत्यापन (सं० पु०) सत्यापना देखो।

सत्याभिनवतीर्थ—भागवतपुराणटीकाके प्रणेता। ये पहले नरसिंहाचार्य नामसे प्रसिद्ध थे। ये माध्यसम्प्रदायके अन्यतम गुरु सत्यनाथ तीर्थसे यतिधर्ममें दीक्षित हुए और पीछे कुछ समय गुरुपद पर बैठ कर १७०७ ई०में सुरधामको सिधारे।

सत्यायु (सं० पु०) ऐलके औरस और उर्वशीके गर्भसे उत्पन्न एक पुत्रका नाम। इनके पुत्र श्रुतञ्जय थे।

सत्यावत् (सं० त्रि०) सूनावत्। (शतपथब्रा० ७।३।१।३४) अथर्वसंहिता ४।२६।१ मन्त्रमें सत्यावान् और सत्यावत् पाठ देखा जाता है। मन्त्रविशेषमें प्रथमोक्त शब्दसे व्यक्तिविशेषका बोध होता है। शेषोक्त शब्द सत्ययुक्त या सत्यप्रतिष्ठ पुरुष अर्थप्रकाशक है।

सत्याशिस (सं० स्त्री०) १ सत्य आशीर्वाद। (त्रि०) सत्या आशीर्यस्य। २ आशीर्वादविशिष्ट।

सत्याश्रय (सं० पु०) चालुक्यवंशीय सुप्रसिद्ध राजा। चालुक्य राजवंश देखो।

सत्याषाढ (सं० पु०) मुनिभेद।

सत्याषाढ़ी (सं० स्त्री०) कृष्ण-यजुर्वेदकी एक शाखाका नाम।

सत्येतर (सं० त्रि०) सत्याद् इतरः। सत्यसे इतर, मिथ्या।

सत्येषु (सं० पु०) असुरभेद। (भारत १२ पर्व)

सत्येष्टतीर्थ—सत्यकामतीर्थके शिष्य। इनका पूर्व नाम नरसिंहाचार्य था। १८९३ ई०में इनका देहान्त हुआ।

सत्येयु (सं० पु०) रौद्राश्वके एक पुत्रका नाम।

सत्योक्ति (सं० स्त्री०) सत्यस्य उक्तिः। सत्यकथन, सच बोलना।

सत्योत्तर (सं० त्रि०) सत्यभूयिष्ठ. सत्य बातका स्वीकार।

सत्योद्य (सं० त्रि०) सत्यस्य वदनं यस्य। सत्यवादी, सच बोलनेवाला।

सत्योपयाचन (सं० क्ली०) सत्यभिक्षा।

सत्योपयाचन (सं० पु०) शरवंडा नदीके पश्चिम तट-पर स्थित एक पवित्र फलप्रद वृक्ष।

सत्यौजस् (सं० त्रि०) अविनश्य बल।

सत्र (सं० क्ली०) सद्यते संतन्यते इति सद-त्रन्। यज्ञविशेष। सत्र देखो।

सत्रप (सं० क्ली०) १ दूसरी जगह उठा कर रखना। २ क्षत्रपशब्दका अपभ्रंश (Satrap)

सत्रह (हिं० वि०) सत्तरह देखो।

सत्रा (सं० स्त्री०) १ सत्यनाम। (ऋक् १।१७८।६) २ सह, साथ।

सत्राकर (सं० त्रि०) फलविषयमें सत्यकारी।

सत्राज (सं० पु०) पूर्ण जय, पूरी जीत।

सत्राजित् (सं०पु०) सत्रेण आजयति लोकानिति आ-जि-क्विप्। १ एक यादव जिसकी कन्या सत्यभामा श्रीकृष्ण को ब्याही थी। इसने सूर्यकी तपस्या करके दिव्य स्यमन्तक मणि प्राप्त की थी उसके खो जाने पर इसने श्रीकृष्ण को चोरी लगाई। जब श्रीकृष्णने वह मणि ढूंढ़ कर ला दी, तब सत्राजित बहुत लज्जित हुआ और उसने श्रीकृष्णको अपनी कन्या सत्यभामा ब्याह दी। २ सन्तत जयनी है।

सत्राजिती (सं० स्त्री०) सत्राजित्की कन्या सत्यभामाका एक नाम।

सत्रादावन् (सं० त्रि०) अभीष्ट फलके साथ प्रदाता, जो सभी प्रकारके अभीष्ट फलके साथ देते हैं।

सत्रास (सं० त्रि०) त्रासेन सह वर्त्तमानः। त्रासके साथ वर्त्तमान, भयभीत।

सत्रासाह (सं० त्रि०) युगपद् शत्रुनाशक।

सत्रासाहीय (सं० क्ली०) सामभेद।

सत्राहन् (सं० त्रि०) अनेक शत्रुओंका हनन करनेवाला।

सत्रिजातक (सं० क्ली०) त्रिजातकेन सह वर्त्तमानः। मांसव्यञ्जनविशेष। प्रस्तुतप्रणाली—मांसको अधिक घीमें भून कर गरम जलमें पाक करे। पीछे जीरा, मट्ठा आदि डाल कर उतार ले। इसीको सत्रिजातक कहते हैं। (पाकरा०)

सत्रि (सं० पु०) १ बहुत यज्ञ करनेवाला। २ हाथी। ३ बादल। ४ मेघ।

सत्व (सं० पु०) सत्त्व देखो।

सत्वक (सं० पु०) मृत मनुष्यकी जीवात्मा, प्रेत।

सत्वच् (सं० पु०) त्वचा सह वर्त्तमानं। त्वचके साथ वर्त्तमान, वल्कलयुक्त। (मनु ४।४७)

सत्वचस् (सं० त्रि०) त्वचविशिष्ट।

सत्वन् (सं० पु०) देशभेद और उस देशके अधिवासी।

सत्वत (सं० पु०) १ माधव (मागध) राजपुत्र भेद। (हरिवंश) २ अंशके पुत्रभेद।

सत्वधाम (सं० पु०) विष्णुका एक नाम।

सत्वन् (सं० पु०) प्रभूत बलयुक्त, शत्रुओंका सादक।

सत्वप्रधान (सं० त्रि०) जिसकी प्रकृतिमें सत्वगुणकी अधिकता या प्रधानता हो।

सत्वभारत (सं० पु०) व्यासका एक नाम।

सत्वर (सं० क्ली०) त्वरया सह वर्त्तते इति। शीघ्र, जल्द, तुरंत, झटपट।

सत्वी (सं० स्त्री०) वैननेयकी कन्या और बृहन्मनाकी पत्नी।

सत्सङ्ग (सं० पु०) साधुओं या सज्जनोंके साथ उठना बैठना। सत्सङ्ग करनेसे स्वर्गवासके समान फल और असत्सङ्गसे सर्वनाश होता है।

सत्सङ्गति (सं० स्त्री०) सत्सङ्ग देखो।

सत्सङ्गी (सं० त्रि०) १ सत्संग करनेवाला, अच्छो

साहचर्य रखनेवाला। २ लोगोंके साथ बातचीत आदिका व्यवहार रखनेवाला, मेलजोल रखनेवाला।

सम्भ्रमविस्मय (सं० त्रि०) सविस्मय।

सत्समागम (सं० पु०) भले आदमियोंका समागम।

सत्सार (सं० पु०) सत्सारो यस्य। १ वृक्षविशेष, एक प्रकारका पौधा। २ चित्रकर, चितेरा। ३ कवि। (त्रि०) ४ उत्तम सारयुक्त

सथम्बा—बम्बई प्रदेशके महीकान्था विभागके अन्तर्गत एक छोटा राज्य। यहांके सामन्त सरदार बड़ौदाके गायकवाड़को वार्षिक ५९१) रु०, बालासिनोरके अधिपतिको ४०१) रु० और लूनावाड़के राजाको १२७) रु० कर देते हैं। यहांके सरदार बारिया कोलि वंशसम्भूत और ठाकुर साहबकी उपाधिसे परिचित हैं। ठाकुर आजमसिंह (१८८७ ई०) अपने शिक्षागुणसे राज्यकी बहुत उन्नति की। यहांके सरदारको गोद लेनेका अधिकार नहीं है। एकमात्र बड़े लड़के ही सिंहासनके अधिकारी होते हैं।

सथिया (हिं० पु०) १ एक प्रकारका मङ्गलसूचक या सिद्धिदायक चिह्न जो कलश, दीवार आदि पर बनाते हैं और जो समकोण पर काटती हुई दो रेखाओंके रूपमें होता है, स्वस्तिक चिह्न। २ फुड़िया आदिके पकनेका एक चिह्न। ३ फोड़े आदिकी चीरफाड़ करनेवाला जर्राह।

सधुङ्कार (सं० क्ली०) धाधूकार, धुङ्कारके साथ वर्त्तमान।

सद—१ विनाशनभेद। २ गमन। ३ अवसादन विशर।

सदंश (सं० पु०) सह दंशेन सह वर्त्तमानः। कर्कट, केंकड़ा।

सदंशवदन (सं० पु०) सदंशं दंशनाकारमस्ति वदनं यस्य। कङ्कपक्षी।

सद (हिं० अव्य०) १ तत्क्षण तुरन्त। (वि०) २ ताजा। ३ नया ताजा, हालका। (स्त्री०) ४ प्रकृति आदत टेव। (पु०) ५ पक्षियोंका एक प्रकारका रोग।

सदक (सं० पु०) तुषरहित अनाज।

सदका (अ० पु०) १ वह वस्तु जो ईश्वरके नाम पर दी जाय, दान। २ वह वस्तु जो किसीके सिर परसे उतार कर दानमें दी जाय, उतारा। ३ निछावर।

सदक्ष (सं० त्रि०) ज्ञानयुक्त अप्रमत्त।

सदक्षिण (सं० त्रि०) दक्षिणया सह वर्त्तमानः। दक्षिणाके साथ वर्त्तमान, दक्षिणायुक्त।

सदञ्जन (सं० क्ली०) सत् अञ्जन। कुसुमाञ्जन, पीतलसे निकलनेवाला एक प्रकारका अञ्जन।

सदण्ड (सं० त्रि०) दण्डके साथ वर्त्तमान, दण्डयुक्त।

सदन (सं० क्ली०) सीदत्यस्मिन् सद् अधिकरणे ल्युट्। १ गृह, घर, मकान। २ जल, पानी। ३ विराम, ठहराव। ४ शैथिल्य, थकावट।

सदन—एक हरिभक्तिपरायण साधक। ये जातिके कसाई कुलमें जन्म लेने पर भी एकान्त भगवद्भक्त होनेके कारण यह वैष्णव समाजमें पूजाई हुआ था।

सदना (हिं० क्रि०) १ छेदमेंसे रसना चूना। २ नावके छेदोंमेंसे पानी आना।

सदनासद् (सं० त्रि०) यज्ञगृहमें रहनेवाला।

सदन्त (सं० त्रि०) दन्तयुक्त, दांतवाला।

सदग्नि (सं० त्रि०) सदा शुद्धाग्नि।

सदापरेत (सं० त्रि०) मार्गविचरणशील निशाचर।

सदबर्ग (फा० पु०) हजारा गेंदा।

सदम (सं० त्रि०) दमयुक्त। (ऋक् १।१०६।७)

सदमा (अ० पु०) १ आघात धक्का। २ मानसिक आघात, रञ्ज दुःख। ३ बड़ा हानि भारी नुकसान।

सदम्भ (सं० त्रि०) दम्भेन सह वर्त्तमान। दम्भयुक्त, अहङ्कारके साथ वर्त्तमान।

सदय (सं० त्रि०) दयया सह वर्त्तमानः। दयाविशिष्ट, दयालु।

सदर (सं० पु०) १ शत्रुभेद। (त्रि०) २ भययुक्त डरा हुआ।

सदर (अ० वि०) १ प्रधान खास। (पु०) २ वह स्थान जहां कोई बड़ा कचहरी हो या बड़ा हाकिम रहता हो। ३ सभापति मुख्य।

सदर अदालत (अ० स्त्री०) प्रधान दण्डविधान विभागालय।

सदर आला (अ० पु०) अदालतका वह हाकिम जो जजके नीचे हो, छोटा जज।

सदर दरवाजा (फा० पु०) खास दरवाजा, सामनेका द्वार, फाटक।

सदरदीवानी अदालत—अंगरेज कम्पनीके अमलका प्रथम प्रतिष्ठित विचारालय। बंगेश्वर मुर्शिदकुली खांने बङ्गालकी विचार प्रणालीका संशोधन कर मुर्शिदाबादमें विशेष विशेष अपराधका विचार करनेके लिये चार प्रकारके विचारालय स्थापन किये। उनमेंसे अदालत उल-आलिया-निजामत और महकुमे अदालते-दीवानी सर्वप्रधान थी। इसके सिवा महकुमे काजी (काजीकी अदालत) और फौजदारी भी थी। १७६५ ई०में लार्ड-क्लाइवने दिल्लीश्वरकी सनदके बल बङ्गालकी दीवानी पा कर नवाब निजामउद्दौलाको निजामती खर्च वर्चके लिये कुल वार्षिक ५३८६१३१॥ निर्द्धारित कर दिया। १७६६ ई०के अप्रिल मासमें प्रचलित प्रथानुसार मुर्शिदाबाद दरबारमें कम्पनीका प्रथम पुण्याह (तौजी) हुआ। उस दिन दीवान कम्पनीके प्रतिनिधि क्लाइवने नवाबी मसनदके दाहिनी ओर आसन ग्रहण किया था। इस घटनाके बादसे राजस्व संग्रहका भार सम्पूर्णरूपसे कम्पनीके अधीन हुआ। अंगरेजी राजपुरुषोंने भी उस सूत्रसे दुर्बल नवाबोंका वेतन घटा दिया १७७१ ई०की ८वीं अगस्तके पत्रानुसार डाइरेक्टर कम्पनीके कलकत्ता गवर्नरने दीवानीका कार्य अपने हाथ लिया और राजस्व वसूलीका फरमान निकाला। १७७२ ई०में वारेन हेष्टिंग्सकी कृपासे नवाबी वृत्ति १६ लाख रुपये हो गई। इस समय खालसा-दफ्तर (राजस्व-विभाग) मुर्शिदाबादसे उठा कर कलकत्तेके खास गवर्नर और और कौन्सिलके अधीन रखा गया। राजा दुर्लभरामके पुत्र महाराज राजवल्लभ उस समय कम्पनीकी ओरसे प्रथम रायराया नियुक्त हो कर राजस्वविभागका कार्य करने लगे।

बड़े लाट वारेन हेष्टिंग्सने इस समय फौजदारी विचारका भार भी सकौन्सिल गवर्नरके अधीन कर लिया। चार वर्ष इसी तरह चलता रहा सही, पर उससे विचारभागमें बड़ी गड़बड़ी मची। यह देख कर उन्हों ने इस विभागका भार पुनः नवाब कर्मचारीके ऊपर सौंप देनेकी व्यवस्था कर दी। इसी समय राजकीय व्यापारमें लिप्त नन्दकुमार हेष्टिंग्सकी आँखों पर चढ़ गये। नयी सुप्रीमकोर्टके विचारसे उन्हें जाली अपराधमें अपराधी पा कर फांसी दे दी गई। १७९० ई०में लार्ड कार्नवालिसके हुक्मसे फौजदारी विचार विभाग भी अंगरेज गवर्मेन्टने अपने हाथमें ले लिया। इस समयसे कलकत्तेमें फिर निजामत अदालत खुली थी। १७९६ ई०में समस्त बङ्गालका विचार कार्य चलानेके लिये कोर्ट आव सर्किट नामकी चार मफस्सल अदालत खोली गई। विस्तृत विवरण कलकत्ता और बङ्गदेश शब्दमें देखो।

सदरपुर—१ युक्तप्रदेशके अयोध्या विभागान्तर्गत सीतापुर जिलेका एक परगना। भूपरिमाण १०८ वर्गमील है। २ उक्त जिलेका एक नगर और सदर। यह सीतापुर नगरसे ३० मील दक्षिणपूर्वमें अवस्थित है।

सदरबाजार (अ० पु०) १ बड़ा बाजार, खास बाजार। २ छावनीका बाजार।

सदर बोर्ड (अं० पु०) मालकी सबसे बड़ी अदालत।

सद्रस (शतरत्न पत्तन)—मन्द्राज प्रदेशके चिङ्गलपट जिलान्तर्गत चिङ्गलपट तालुकका एक नगर। यह अक्षा० १२ ३३´ २५´ ३० तथा देशा० ८०´ ११´ पू०के मध्य मन्द्राजसे ४३ मील दक्षिणमें अवस्थित है। बहुत प्राचीनकालसे यह नगर दाक्षिणात्यके वाणिज्य-केन्द्ररूपमें गिना जाता था। १६४७ ई०में ओलन्दाज वणिकोंने भारतीय वाणिज्य फैलानेकी आशासे यहां सबसे पहले एक कोठी खोली। उस समयके बहुत पहलेसे ही यहांके जुलाहोंसे तैयार किया हुआ एक प्रकारका 'मसलिन' कपड़ा बहुत प्रसिद्ध चला आता था। वैदेशिक वणिक्प्रधान ओलन्दाजने उस वस्त्र संग्रहके लिये ही यहां वाणिज्यकेन्द्र खोला था। उन लोगोंने अपने वाणिज्यको अक्षुण्ण रखनेके अभिप्रायसे तथा औपनिवेशिकोंको शत्रुके हाथसे बचानेके लिये यहां समुद्रके किनारे एक बहुत बड़ा और मजबूत किला बनवाया। वह किला तथा उस समयके प्रधान प्रधान ओलन्दाज राजकर्मचारियोंके मकान आज भी नजर आते हैं। दुःखका विषय है, कि वे सब अभी खंडहरमें पड़े हैं।

१७८१ ई०में अंगरेजोंने यह नगर आक्रमण और अधिकार

किया तथा वे १८१८ ई०में फिरसे ओलन्दाजोंके हाथ समर्पण करने बाध्य हुए। इसके कुछ वर्ष बाद १८२४ ई०में कमजोर ओलन्दाजोंने सन्धिसूत्रसे आबद्ध हो अंगरेजोंको नगर और दुर्ग लौटा दिये। तभीसे ले कर आज तक यह स्थान अंगरेजोंके हाथमें है। अंगरेज लोग सन्धि शर्तके अनुसार आज भी यथाविधान दुर्गमण्डलस्थ ओलन्दाज समाधिके सम्मान और मर्यादाकी रक्षा करते आ रहे हैं।

यहां ईसा धर्म प्रचार करनेके लिये दुर्गके दूसरा और यस्प्लानेड नामक रास्तेके किनारे जमन लुथारन और वसलियन मिसनके दो गिरजा घर स्थापित हैं। नगरमें अब वैसा वणिक्‌समागम नहीं है वस्त्रवयनशिल्पकी यथेष्ट अवनति हुई है। बहुत थोड़े जुलाहे यद्यपि पूर्व गौरवकी रक्षा कर भी रहे हैं पर वे अब अपने अपने अध्यवसाय और बुद्धिकौशलसे वैसे बारीक कपड़े नहीं बुन सकते। नगरसे कुछ मील दक्षिण पालरनदीके मुहाने पर बालूका चर पड़ जानेसे नदीगर्भ बहुत उन्नत हो गया है। अतएव उस पथसे अब समुद्रगामी पोतादिके जाने आनेकी सुविधा नहीं है, इस कारण यहांकी वाणिज्य समृद्धिका दिनों दिन ह्रास होता जा रहा है। बकिहम नहरसे यह नगर मन्द्राज राजधानीके साथ मिला हुआ है।

सदरी (अ० स्त्री०) विना आस्तीनकी एक प्रकारकी कुरती या बंडी जो और कपड़ों के ऊपर पहनी जाती है। इसका चलन अरबमें बहुत अधिक है। मुसलमानी मतके साथ इसका प्रचार अफगानिस्तान, तुर्किस्तान और हिन्दुस्तानमें भी हुआ।

सदर्थ (स० पु०) १ साधु अर्थ, मुख्य विषय अमल बात। (त्रि०) २ सद्भूत अर्थविशिष्ट, धनी।

सदर्प (स० त्रि०) दर्पके साथ वर्त्तमान अभिमानी।

सदलगि—बम्बई प्रदेशके बेलगाव जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० १६° ३३' उ० तथा देशा० ७४° ३३' पू० बेलगाम शहरसे ५१ मील वत्तरमें अवस्थित है। यहां धागा तैयार करनेके लिये इसका मेला होता है तथा गुड़ और चोनी बनानेका बड़ा कारबार है।

सदलङ्कृति (स० स्त्री०) अलङ्कारवती।

सदश (स० त्रि०) १ दश (स्ताम) विशिष्ट। (शाङ्खा० श्रौ० १४।२७।६) २ जिसमें पाड़ या किनारा हो, हाशियेदार।

सदशन (स० त्रि०) दशनके साथ वर्त्तमान, दन्तयुक्त, दांतवाला।

सदशनार्चिस (स० त्रि०) दशनार्चिके साथ वर्त्तमान।

सदश्व (स० पु०) १ समरराजके पुत्र। (हरिवंश) २ उत्कृष्ट अश्वयोजित रथ, वह रथ जिसमें अच्छे घोड़े जोते गये हों। ३ विद्यमानाश्व, बड़वाश्व।

सदश्वसेन (स० पु०) राजभेद।

सदश्वोर्मि (स० पु०) राजभेद। (भारत सभापर्व)

सदस (स० स्त्री० क्ली०) सीदन्त्यस्यामिति सद (सर्वधातुभ्योऽसुन्। उण् ४।१८८) इति असुन्। १ सभा समाज मजलिस। २ मकान, घर। ३ यज्ञशालामें एक छोटा मण्डप जो प्राचीन यज्ञके पूर्व बनाया जाता था।

सदसत् (स० त्रि०) १ सच और झूठ। २ किसी वस्तुके होने और न होनेका भाव। ३ अच्छा और खराब, बुरा और भला।

सदसत्त्व (स० क्ली०) सदसद्‌ त्व। १ सत और असतका धर्म। २ प्रधान गुणभाव।

सदसत्पति (स० पु०) सत् और असत् कार्यका नायक।

सदसद्‌फल (स० क्ली०) सत् और असत् फल भला और बुरा फल।

सदसदात्मक (स० त्रि०) सत् असच्च आत्मा स्वरूप यस्य। सत् और असत् स्वरूप।

सदसदात्मता (स० स्त्री०) सदसदात्मनो भावः तल् टाप्। सत् और असत् रूपका भाव या धर्म।

सदसद्भाव (स० पु०) सदसद्‌भावः। सत् और असत्‌का भाव, सत् और असत्‌का विद्यमानता।

सदसद्रूप (स० त्रि०) सच और असत्‌ रूप यस्य। सत् और असत् रूप विशिष्ट सत् और असत् प्रयुक्त।

सदसद्विवेक (स० पु०) अच्छे और बुरेकी पहचान, भले बुरेका ज्ञान।

सदसन्मय (स० त्रि०) सदसत् स्वरूपे मयट्। सत् और असत् स्वरूप।

सदस्पति (सं० पु०) १ एतन् संज्ञक देवमय आशीर्वाद ।

सदस्य (सं० पु०) सदसि साधुः यत् । १ विधिदर्शी, याजक । यज्ञादि स्थलमें सदस्य रहना होता है । यज्ञादि स्थलमें कोई चीज घटी या बढ़ी तो नहीं है, किसी बातमें भूल तो नहीं है, यह देखनेके लिये जो नियुक्त रहते हैं उनका नाम सदस्य है ।

"प्रश्नवक्ता सदस्यः" (संस्कारतत्त्व)

२ किसी सभा या समाजमें सम्मिलित व्यक्ति, सभ्य, सभासद, मेम्बर ।

सदहा (सं० पु०) १ यज्ञ करनेवाला, याजक । २ सभासद, मेम्बर ।

सदहा (हिं० वि०) सैकड़ों ।

सदहा (हिं० पु०) अनाज लादनेकी बड़ी बैलगाड़ी ।

सदा (सं० अव्य०) १ नित्य, हमेशा । २ निरन्तर, लगातार ।

सदा (अ० स्त्री०) १ प्रतिध्वनि, गूंज । २ ध्वनि, आवाज । ३ पुकार ।

सदाकत (अ० स्त्री०) सत्यता, सच्चाई ।

सदाकान्ता (सं० स्त्री०) नदीभेद । (भारत भीष्मपर्व)

सदाकारिन् (सं० त्रि०) आकारविशिष्ट ।

सदाकाल (सं० अव्य०) सकल समय, हमेशा ।

सदाकालवह (सं० त्रि०) सदाकालं वहति वह-अच् । १ जो हमेशा बहती हो ।

सदाकालवहा (सं० स्त्री०) सदाकाल वहा नदी, हमेशा बहनेवाली दरिया । (मार्कण्डेय पु० ५७।३२)

सदाकुसुम (सं० पु०) धातकी, धव ।

सदागति (सं० पु०) सदा सर्वदा गतिर्यस्य । १ वायु, हवा । २ सूर्य । ३ निर्वाण । ४ विभु, ईश्वर । (त्रि) ५ सर्वदा गमनशील, हमेशा चलनेवाला ।

सदागतिशत्रु (सं० पु०) एरण्ड, अण्डीका पेड़ ।

सदागम (सं० पु०) १ सज्जनका आगमन । २ सत् शास्त्र, अच्छा सिद्धांत ।

सदाचरण (सं० क्ली०) सत् आचरणं । १ साधु आचरण, अच्छा चाल चलन । सतां आचरणं । २ साधुओंका आचरण ।

सदाचार (सं० पु०) सतां साधुनामाचारः । १ साधुओंका आचरण, सात्त्विक व्यवहार । मनुमें लिखा है, कि सरस्वती और दृषद्वती इन दो देवनदियोंके मध्य जो सब प्रदेश हैं उनका नाम ब्रह्मावर्त्त है । इस देशमें चारों वर्ण और उनके अन्तर्गत जातियोंके मध्य जो सब आचरण परम्परासे चला आता है उसको सदाचार कहते हैं । इन सब देशसम्भूत अग्रजन्मा ब्राह्मणोंसे पृथ्वी परके सभी लोगोंको सदाचार सीखना कर्त्तव्य है । साधु लोग जिस आचारका अवलम्बन करते हैं, वही सदाचार कहलाता है । पद्मपुराण स्वर्गखण्ड २६, ३०, ३१ अध्याय, विष्णुपुराण ३।२१ अध्याय, वामनपुराण १४ अ०, मनु ४ अ०, मार्कण्डेयपुराण सदाचार नामक अध्याय आदि ग्रन्थोंमें सदाचारके विषयमें विशेष विवरण लिखा है । सन साधुराचारो यस्य । २ शिष्ट व्यवहार, भलमनसाहत । ३ रीति, रवाज । ४ (त्रि०) सदाचारणीय, सदाचारी ।

सदाचारवत् (सं० त्रि०) सदाचार अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व । सदाचारविशिष्ट, सदाचारयुक्त ।

सदाचारी (सं० पु०) सदाचार अस्त्यर्थे इनि । १ सदाचारविशिष्ट, अच्छे आचरणवाला । २ धर्मात्मा, पुण्यात्मा । सदा चरतीति चर णिनि । ३ सदा विचरणशील, हमेशा भ्रमण करनेवाला ।

सदाचार्य—एकाक्षरनिघण्टुके प्रणेता ।

सदातन (सं० पु०)सदा भवः सदा सोयं चिरमिति । इति ट्यु ट्युलौ तुट च । (पा ४।३।२३) १ विष्णु । (त्रि०) २ नित्य ।

सदातोया (सं० स्त्री०) सदा तोयं यत्र । १ पलापर्णी । २ करतोया नदी ।

सदात्मन् मुनि—प्रबोधचन्द्रोदयटीकाके रचयिता ।

सदादान (सं० पु०) सदादानं मदजलं यस्य । १ ऐरावत । २ गणेश । ३ मत्तहस्ती, वह हाथी जिसे सदा मद बहता हो । ४ नित्यदान, सदाव्रत ।

सदान (सं० त्रि) दानके साथ ।

सदानन्द (सं० पु०) सदा आनन्दो यस्य । १ शिव । (त्रि०) २ सदा आनन्दविशिष्ट, हमेशा प्रसन्न रहनेवाला ।

सदानन्द—१ छन्दोगाह्निकके प्रणेता। २ तत्त्वविवेकटीका, प्रत्यकतत्त्वचिन्तामणि और स्वप्रभा नाम्नी उसकी टीकाके रचयिता। ३ दिव्यसप्रद नामक दीधितिके प्रणेता। ४ नैषधीय टीकाके रचयिता। ५ पाराशरटीका और भास्वती टीका नामक ज्योतिर्ग्रन्थके प्रणेता। ६ ब्रह्मसूत्रतात्पर्य प्रकाशक प्रणेता। ७ भागवतपद्यत्रयी व्याख्याके रचयिता। ८ मोक्षधर्मसारोद्धारके प्रणेता। ९ वाम केश्वर तन्त्रटीका और विष्णुपूजाक्रमदीपिकाटीका, इन दो ग्रन्थोंके रचयिता। १० यज्ञेन्दुचरितके प्रणेता। ११ अद्वैतदीपिकाविवरण अध्यात्मरामायणटिप्पन, अवधूतगीताटीका, ज्ञानामृत टिप्पनी पञ्चदशीटीका, ब्रह्मगीताव्याख्या योगवाशिष्ठतात्पर्यप्रकाश और शिवसंहिताटीका नामक अनेक ग्रन्थोंके प्रणेता। किन्तु भाषा देखनेसे उक्त सभी टीका ग्रन्थोंका एक आदमीकी रचना नहीं कह सकते।

सदानन्द काश्मीर—अद्वैतब्रह्मसिद्धि, स्वरूपनिर्णय और स्वप्रकाश नामक तीन ग्रन्थोंके रचयिता। ये ब्रह्मानन्द और नारायणके शिष्य थे।

सदानन्द नाथ—तन्त्रकौमुदीके प्रणेता।

सदानन्दमय (स० त्रि०) सदानन्द स्वरूपे मयट्। सदा नन्द स्वरूप।

सदानन्द योगीन्द्र—वेदान्तसारके प्रणेता। ये अद्वया नन्दके शिष्य थे।

सदानन्द व्यास—भगवद्गीताभावप्रकाशके प्रणेता। इन्होंने १७८० ई०में उक्त ग्रन्थकी रचना की।

सदानन्द शुक्ल—गणेशार्च्चनचन्द्रिकाके रचयिता।

सदानर्त्त (स० पु०) सदा नृत्यतीति नृत अच्। १ खञ्जन पक्षी। (त्रि०) २ सदा नृत्यकारक, जो बराबर नाचता हो।

सदानिरामया (स० स्त्री०) नदीभेद।

सदानीरवहा (स० स्त्री०) वहतीति वह अच्। सदा सर्वदा नीरस्य वहा। करतोया नदी।

सदानीरा (स० स्त्री०) सदा नीरं यस्याः। करतोया नदी। गौरीके विवाह कालमें महादेवके कर अर्थात् हाथसे जो जल गिरा था उसीसे इस नदीकी उत्पत्ति हुई, इसीसे इसका नाम करतोया पड़ा है। करतोया देखो।

श्रावणमासमें सभी नदियां रजस्वला होती हैं, किन्तु यह नदी नहीं होती। इस कारण इसका जल हमेशा काममें लाया जाता है और इसीसे इसका एक नाम सदानीरा भी हुआ।

वेदमें इस नदीका उल्लेख है। आर्य शब्द देखो।

सदानोपा (स० स्त्री०) पलाशपर्णी, पलाशी।

सदान्वा (स० स्त्री०) सर्वदा आक्रोशकारिणी।

सदापरिभूत (स० पु०) १ बोधिसत्त्वभेद। (त्रि०) २ सदापरिभवप्राप्त, जो सर्वदा परिभूत होते हैं।

सदापर्ण (स० त्रि०) सर्वदा पत्रयुक्त।

सदापुर (स० पु०) कैवर्त्त मुस्तक, केवटी पौधा।

सदापुष्प (स० पु०) सदापुष्प यस्य। १ नारिकेल वृक्ष नारियलका पेड़। २ श्वेत आकन्द, सफेद मदार। ३ रक्त आकन्द लाल मदार। ४ कुन्द वृक्ष और उसका फूल। ५ कार्पास वृक्ष कपासका पौधा। ६ आकन्द वृक्ष, अकवन। (त्रि०) ७ सर्वदा कुसुमयुक्त, जिसमें हमेशा फूल लगते हों।

सदापुष्पफलद्रुम (स० त्रि०) सदा पुष्प फलद्रुमो यत्र। सर्वदा पुष्प और फलयुक्त वृक्षविशिष्ट।

सदापुष्पी (स० स्त्री०) सदा पुष्प यस्या ङीष्। १ रक्तार्क वृक्ष लाल आक। २ आकन्द, आक। ३ कार्पास, कपास। ४ मल्लिका, एक प्रकारकी चमेली।

सदापृण (स० त्रि०) सर्वदा दानशील, सदा दान देनेवाला।

सदाप्रमुदित (स० क्ली०) सिद्धिभेद।

सदाप्रमुदिता (स० स्त्री०) मत् प्रमुदिता सिद्धि।

सदाप्रसून (स० पु०) सदा प्रसून यस्य। १ रोहितक वृक्ष। २ रक्त रोहितक। ३ कुन्दवृक्ष। ४ अपावृक्ष। (त्रि०) ५ सर्वदा पुष्पविशिष्ट।

सदाफल (स० पु०) सदा फल यस्य। १ हस्व फल नारियल। २ उडुम्बर वृक्ष, गूलर। ३ श्रीफल, बिल्व। ४ पनस, कटहल। ५ एक प्रकारका नीबू।

सदाफला (स० स्त्री०) सदा फल यस्याः। त्रिसन्धि पुष्प एक प्रकारका बैंगन। इसका गुण—त्रिदोषनाशक, रक्तपित्तप्रसादक कण्डू और कृच्छ्ररोगनाशक।

सदाफली (स० स्त्री०) सदाफल देखो।

सदावरत (हिं० पु०) सदाव्रत देखो।

स्थित हैं। दुर्गके वहिर्भागमें दुगस काम्न और भी तीन कार्यालय हैं। उनमेंसे पर्वतके दक्षिण जलगर्भमें उत्तोलित एक कार्यालय, दूसरा पर्वतके पूर्व ढालवे प्रदेशमें और तीसरा मूल दुर्गके दूसरी ओर मव स्थित है। अतिव अट्टालिका आदि और धर्मादिसे सुशोभित हैं। परवर्त्तिकालमें अंगरेज गवर्मेण्टने पर्वतके दक्षिण कोणमें दो बहुले बनवा दिये थे।

१६७४से १७३१ ई०के मध्य किसी समय सोएड सरदारने इस दुर्गका निर्माण कराया। १७५२ ई०में पुर्त्तगीजोंने सोएडराज पर आक्रमण कर यह दुर्ग अधिकार किया तथा पाचे उस दुर्गमें पुत्तगीज सेना रखी गई थी। १७५४ ई०में पुत्तगीजोंने यह दुर्ग फिरसे सोएड सरदारके हाथ समर्पण किया। १७६३ ई०में हैदरअलीके सेनापति फजल उल्ला खाने दुर्गको अधिकार कर लिया। १७८० ई०में अंगरेज सेनापति जेनरल मैथिउने दलबलके साथ आ कर दुर्ग पर छापा मारा। १७९६ ई०में टीपू सुल्तानने इस दुर्गमें अपनी सेना रखी थी।

सदाशिवगढ़ पहाड़के नीचे चितोकूल नामक ग्राम और बन्दर अवस्थित है। एक समय यह चिताकूल बहुत दूर तक फैला हुआ एक प्रधान वाणिज्यकेन्द्र था। करीब ६०० ई०में आरबजाती भ्रमणकारी मसूदीसे ले कर अंगरेज भौगोलिक आगिल्भी तक अनेक ग्रन्थकारोंने इस स्थानका चिन्ताकोर चिन्तापोर, चिन्ताबोला चिन्ताकारा चित्तकुल या चितकुला शब्दसे उल्लेख किया है। अंगरेजी अधिकारमें आनेसे यह सदाशिवगढ़ या चिताकूल कारवाड़ शुल्कविभागके एक केन्द्ररूपमें निर्द्धारित हुआ है और इसीसे यहां एक कष्टम हाउस स्थापित हुआ है।

सदाशिव तीर्थ—एक सन्यासी। ये सर्वालिङ्गस्न्यास निर्णयके प्रणेताके गुरु थे।

सदाशिव त्रिपाठी—ज्ञानमनोहरके रचयिता। इन्होंने १६७६ ई०में अपने प्रतिपालक राजा मनोहर दासके आदेशसे उक्त ग्रन्थकी रचना की।

सदाशिव दीक्षित—१ प्रदपद्धतिदीपिकाके प्रणेता। २ सङ्गीत सुन्दरके रचयिता। ये परमशिवके पुत्र थे।

सदाशिवद्विवेदी—दण्डिनीरहस्य और शालग्रामलक्षणके रचयिता।

सदाशिव ब्रह्मेन्द्र—आत्मविद्याविलास, नक्षत्रमालिका, नवमणिमाला, नवरत्नमाला, बोधार्या और सदाशिवब्रह्म वृत्तिके प्रणेता।

सदाशिव भट्ट—शब्देन्दुशेखरटीकाके रचयिता।

सदाशिव भाउ—एक प्रसिद्ध महाराष्ट्र-सरदार। ये चिमनाजीके पुत्र और पेशवा बालाजी बाजीरावके भतीजे थे। ये १७६२ ई०को १४वीं जनवरीको पानीपतकी लड़ाईमें अहमदशाह अबदलीसे मारे गये। इनके साथ साथ महाराष्ट्रशक्ति भी जाती रही। इतिहासमें ये सदाशिव चिमनाजी भाउ नामसे भी परिचित हैं।

सदाशिवकी वीरता और रणप्रतिभाने उस समय विशेष प्रतिष्ठा लाभ की थी। इनकी मृत्युके बाद नाना स्थानोंमें जाली भाउ सदाशिवका आविर्भाव हुआ। उन सब जाली सदाशिव भाउमेंसे एकने १७७६ ई०में वारा णासीसे मर्म आ कर अपनको भाउ साहब बतलाते हुए लोगोंको उत्तेजित किया। पीछे उन्होंने सेनासमूह ले कर नगरमें अशान्ति मचा दी। उनका दमन करनेके लिये अंगरेज-कप्तानने उन्हें चुनार दुर्गमें कैद रखा। १७८२ ई०में महामति हेष्टिंग्सने इन्हें छोड़ दिया।

सदाशिव भाउ भास्कर—एक महाराष्ट्र सेनापति। ये सिन्धियाराजकी ओरसे १८०१ ई०में होल्करराजके विरुद्ध लड़े थे। १८०२ से १८०४ ई०में इन्होंने कभी सिन्द, कभी होलकरपति और कभी अंगरेजोंकी ओरसे युद्ध किया था।

सदाशिव भाउ मङ्कोशिर—एक मराठा राजसचिव। १८०३ ई०में पेशवा बाजीरावने पुनः राजछत्र पर बैठ कर इन्हें अंगरेज रेसिडेन्सीके कार्यालय देखनेके लिये नियुक्त किया। १८०९ ई०में मि० एलफिन्ष्टनके रेसिडेण्ट रहनेके समय तक इन्होंने इस पद पर रह कर कूट नीतिका परिचय दिया था।

सदाशिवमुनिसारस्वत—वृत्तरत्नावली नामकी वृत्तरत्ना करटीकाके रचयिता।

सदाशिव मूलोपाध्य—दण्डपाणिस्तवके प्रणेता। ये विट्ठलके पुत्र थे।

सदाशिव शुक्ल—कल्पसूत्रागमटीका और पञ्चसूत्रागमटीकाके रचयिता।

सदाशिवानन्दनाथ—गुरुस्तोत्रग्रन्थके रचयिता।

सदाशिवेन्द्र—सारतस्वमंदीपिका विवरणके प्रणेता।

सदाशिवेन्द्रसरस्वती—एक प्रसिद्ध पण्डित और संन्यासी। ये गोपालेन्द्र सरस्वतीके शिष्य और सिद्धान्त मुक्तिरत्नप्रकाशके प्रणेता रामेश्वरके गुरु थे।

सदाशिस् (स० स्त्री०) सदा आशीर्वाद।

सदासद (स० त्रि०) सर्वदा शत्रुओंके अभिभूत हेतु।

सदासा (सं० त्रि०) सर्वदा सज्जमान।

सदासुख (सं० त्रि०) सदा सुखं यस्य। १ सर्वदा सुखयुक्त, सर्वदा सुखी। (क्ली०) २ सर्वदा सुख।

सदासुख—प्रयागवासी एक कायस्थ कवि। ये गुलाब रायके पौत्र और विष्णुप्रसादके पुत्र थे। इन्होंने १८०२ ई०में उर्दू भाषामें 'मुन्तखब त्सुर्वद' नामसे गद्य और पद्य रचनाप्रणालीविषयक एक अलङ्कार शास्त्रकी रचना की। इसके सिवा इनकी बनाई हुई उर्दूभाषाकी एक उपाख्यानमाला भी मिलती है।

सदासुहागिन (हिं० वि०) १ जो सदा सुहागवती रहे, जो कभी पतिहीन न हो। (स्त्री०) २ वेश्या, रंडी। ३ सिन्दूरपुष्पीका पौधा। ४ एक प्रकारकी छोटी चिड़िया। ५ एक प्रकारका मुसलमान फकीर जो स्त्रियोंके वेशमें घूमते हैं।

सदिया (फा० स्त्री०) लाल पक्षीका एक भेद जिसका शरीर भूरे रंगका होता है, बिना चित्तीकी मुनिया।

सदिया—ब्रह्मपुत्र नदीके दक्षिणी या उत्तरी किनारेका विस्तृत एक भूभाग। यह आसामके उत्तर पूर्वसीमा पर अवस्थित है। वर्त्तमान सदिया थाना लखिमपुर जिलेके डिब्रूगढ़ उपविभागके मध्य बसा है। भूपरिमाण १७८ वर्गमील है।

सदिया—आसाम विभागके लखिमपुर जिलान्तर्गत एक बड़ा ग्राम। यह ब्रह्मपुत्र नदीके दाहिनी किनारे डिब्रूगढ़से ७० मील दूर अक्षा० २७°४८´४५´´ उ० तथा देशा० ९५°४१´३५´´ पू०के मध्य विस्तृत है।

ब्रह्मराज्यमें अहोम राजाओंने आसाम पर आक्रमण कर पहले सदियाको कब्जा किया। यहां रह कर अहोमराजप्रतिनिधि अधिकृत प्रदेशोंका शासन करते थे। सदियामें उनका शासन निरूपित था, इस कारण 'सदिया खोवा' नामसे उनकी प्रसिद्धि थी। प्रायः सेना ले कर सारे आसाममें फसाद किया, यहांसे यह उपाधि स्थानीय किसी सामन्ती सरदारके ऊपर सौंपी गई। अंगरेजोंने १८२६ ई०में आसाम विजयके बाद उक्त पंजीय सरदारको ही 'सदिया खोवा' करार किया। अंगरेजोंकी सन्धिके अनुसार उक्त सदिया खोवा १०० सेनासे मदद पहुंचाने वाध्य हुआ।

स्थानीय खामती, मिशमी और सिङ्गफो आदि असभ्य जातियोंके साथ मित्रता बढ़ानेके लिये प्रति वर्षको माघीपूर्णिमामें यहां एक मेला लगता है। राजनीतिकुशल वृटिश सरकार ही यह मेला लगाती है। लखिमपुरके डिपटी कमिश्नर स्वयं इस मेलेमें उपस्थित रह कर भिन्न भिन्न जातिके सरदारोंको इनाम देते हैं।

यहांका असभ्य मिशमी, खामती, आप आदि जातियां इस मेलेमें नाना प्रकारके पदार्थ, द्रव्य, गोंद, मोम, मृगनाभि, वस्त्र, चटाई, कटारी, हस्तिदन्त और रबर आदि बेचने लाती हैं। सदिया रबर कलकत्तेका एक प्रधान वाणिज्योपकरण है। अभी तेजपुर दार्जिलिङ्ग आदि पहाड़ी प्रदेशोंसे भी अधिक तादादमें रबरकी आमदनी होती है। आबर और मिशमी जातिमें मतान्तर हो जानेसे इस मेलेमें भारी धक्का पहुंचा था।

वर्षाकालमें जब ब्रह्मपुत्र नद लबालब हो जाता है, तब लोग स्टीमरसे सदिया जाते हैं। इस स्थानसे चीनराज्यके साथ थोड़ा वाणिज्य चलता है।

सदिवस् (सं० अव्य०) दासियुक्त, चमकीला।

सदी (अ० स्त्री०) १ सौ वर्षोंका समूह, शताब्दी। २ किसी विशेष सौ वर्षके बीचका काल।

सदीश्वर (सं० पु०) सदागति, वायु।

सदुःख (सं० त्रि०) दुःखके साथ वर्त्तमान, दुःखित।

सदुक्ति (सं० स्त्री०) सती उक्तिः। उत्तम उक्ति, साधु कथन।

सदुपदेश (सं० पु०) १ अच्छा उपदेश, उत्तम शिक्षा। २ अच्छी सलाह।

सदूर्वा (सं० त्रि०) दूर्वायुक्त।

सदृक् (सं० पु०) सुमिष्ट खाद्यविशेष।

सदृक (सं० पु०) एक प्रकारकी मिठाई।

सदृक्ष (सं० त्रि०) समान दृश्यते इति समान दृश क्स्। समानस्य सादेशः। सदृश।

सदृग्बोध (सं० क्ली०) वस्तुका अनुरूप ज्ञान।

सदृश (सं० त्रि०) समान इव दृश्यतेऽसौ समान दृश (समानान्ययोश्चेति वक्तव्य। पा ३।२।६०) इत्यस्य वार्त्ति कोक्त्या क्विन् (दृग्दृशवतुषु। पा ६।३।८६) इति समानस्य सादेश। १ सम, तुल्य, बराबर। २ उचित, मुनासिब। ३ अनुरूप समान।

सदृशचिकित्सा (सं० स्त्री०) Homeopathy (Similia Similibus Curantor)। सदृशव्यवस्था देखो।

सदृशता (सं० स्त्री०) सदृशत्व देखो।

सदृशत्व (सं० क्ली०) सदृशस्य भाव त्व। सदृशका भाव या धर्म, समानता तुल्यता।

सदृशाकृति (सं० त्रि०) समानकार्यविशिष्ट, जिनका आचतोरा अभिन्न है।

सदृशव्यवस्था (सं० स्त्री०) तुल्य व्यवस्था (Homeopathy)। जिस औषधका सेवन करनेसे किसी रोगके सदृश रोग उत्पन्न होने पर भी उसी औषध द्वारा फिर वह रोग दूर हो, जिस चिकित्साशास्त्रमें ऐसा विधान है उसे सदृशव्यवस्था कहते हैं।

सदृशस्पन्दन (सं० क्ली०) निष्पन्द।

सदेव (सं० त्रि०) देवेन सह वर्त्तमानः। देवताके साथ वर्त्तमान, देवतायुक्त।

सदेवक (सं० त्रि०) देव स्वार्थे कन् देवक देवकेन सह वर्त्तमानः। देवकके साथ वर्त्तमान देवयुक्त।

सदेश (सं० त्रि०) देशेन सह वर्त्तमान। १ निकट, पास, नजदीक। २ देशान्वित।

सदेह (सं० क्रि० वि०) इसी शरीरसे, बिना शरीर त्याग किये। जैसे, त्रिशङ्कु सदेह स्वर्ग जाना चाहते थे।

सदैकरस (सं० त्रि०) सदा एकरसो यस्य। सर्वदा एक रसविशिष्ट। (पु०) २ ब्रह्म।

सदैव (सं० अव्य०) सर्वदा, हमेशा।

सदोद्यम (सं० त्रि०) सदा उद्यमो यस्य। १ सर्वदा उद्यमविशिष्ट, उद्योगी। (पु०) २ सदा ही उद्यम, हमेशा यत्न करते रहनेकी क्रिया।

सदोविशाव (सं० क्ली०) सामभेद।

सदोहविधान (सं० क्ली०) सामभेद।

सदोहविधानिन् (सं० त्रि०) सदः और हविधानविशिष्ट।

सदोष (सं० त्रि०) दोषेण सह वर्त्तमान। १ दोषके साथ वर्त्तमान, जिसमें दोष हो। २ अपराधी, दोषी।

सद्गति (सं० त्रि०) सती गतिर्यस्य। १ उत्तम गति विशिष्ट। (स्त्री०) २ उत्तम गति, मुक्ति, निर्वाण। मृत्युके बाद धर्मात्मा की जो उत्तमलोककी गति होती है उसीको सद्गति कहते हैं। शास्त्रमें लिखा है कि जो सर्वदा धर्मकार्यका अनुष्ठान करते हैं, उन्हीं को सद्गति मिलती है। पापका फल असद्गति लाभ है। अतएव सबोंको सद्गति पानेके लिये धर्मकर्मका अनुष्ठान करना कर्त्तव्य है। ३ सद्व्यवहार अच्छा वर्त्ताव। ४ सच्चरित्र, अच्छा चाल चलन।

सद्गुण (सं० त्रि०) सद्गुण यस्य। १ सद्गुणविशिष्ट, जिनके पास दया दाक्षिण्यादि सद्गुण हो। (क्ली०) २ उत्तम गुण, दया आदि गुण।

सद्गुण आचार्य—प्रमेयमार्त्तण्डके रचयिता।

सद्गुणी (सं० पु०) अच्छे गुणवाला।

सद्गुरु (सं० पु०) सत् गुरु। १ उत्तम गुणविशिष्ट गुरु। जो गुरु सभी प्रकारके गुणोंसे युक्त, विद्वान् और क्रियाशील हैं उन्हींको सद्गुरु कहते हैं। सद्गुरुसे मन्त्र ले कर यथाविधान कार्य करनेसे शीघ्र ही मन्त्र सिद्ध होता है।

शिष्य होनेसे ही सद्गुरु उसे मन्त्र देंगे, सो नहीं उसे एक वर्ष अपने पास रख कर विशेष रूपसे परीक्षा करनेके बाद उसे मन्त्र दें। शास्त्रमें सद्गुरुका लक्षण इस प्रकार लिखा है—जो शान्त, दान्त कुलीन, विनीत शुद्धवेशसम्पन्न, विशुद्धाचार, सुप्रतिष्ठ पवित्रस्वभाव, कार्यदक्ष सुबुद्ध आश्रमी, ध्याननिष्ठ, तन्त्रमन्त्रविशारद, शिष्यके प्रति शासन और अनुग्रह करनेमें समर्थ, सत्यवाक्य और गृही हैं, वे ही सद्गुरु कहलानेके योग्य हैं। ऐसे ही गुरुसे मन्त्र लेना उचित है। (तन्त्रसार) गुरु देखो।

बहुजन्मार्जित तपस्याके फलसे सद्गुरु लाभ होता है। वेदान्तसारमें लिखा है, कि जो संसारविरागी, मुमुक्षु हैं, जिनके शम, दम उपरति और तितिक्षादि साधन सिद्ध हो चुके हैं, वे ब्रह्मनिष्ठ श्रोत्रिय सद्गुरुके

पास जाय। सद्गुरु उन्हें तत्त्वमस्यादि तत्त्वोपदेश दें।

सद्गोप—वङ्गदेशवासी कृषिजीवी हिन्दूजाति विशेष।

वङ्गालमें सभी जगह सद्गोप जातिका वास देखा जाता है। जमीन जोत कोड़ कर खेतीबारी करना ही इनकी प्रधान वृत्ति और उपजीविका है। इनकी सामाजिक अवस्था विशेष उन्नत है तथा आचार व्यवहारमें ये उच्चवर्णके समान हैं। अभी पाश्चात्य शिक्षाके प्रभावसे इस सम्प्रदायके बहुतोंने राजकार्यमें नियुक्त हो उच्च सम्मान पाया है। इनमें अनेक जमींदार भी उदारताके कारण स्वनाम धन्य हो गये हैं। मणिमाधवके 'सद्गोप-कुलाचार' नामक ग्रन्थमें लिखा है, कि सद्गोप जाति गोप (ग्वाले)से सम्पूर्ण स्वतन्त्र है। बहुतोंका अनुमान है, कि ये लोग पहले गोपजातिके थे, दूध बेचनेका व्यवसाय छोड़ देनेसे समाजमें सद्गोप नामसे परिचित हुए हैं। लेकिन यह कहां तक सच है, कह नहीं सकते, पर हां ब्राह्मणप्रधानता-कालमें सद्गोपगण जो हिन्दूसमाजमें जलाचरणीय नवशाखके मध्य लिये गये हैं, इसमें जरा भी सन्देह नहीं। सद्गोपके हाथका जल और मिष्टान्नादि खानेमें कोई दोष नहीं।

कायस्थोंकी तरह इन लोगोंमें भी कुलीन और मौलिक नामक दो समाजगत विभाग देखे जाते हैं। स्थानविशेषमें रहनेके कारण कुलीन लोग दो भागोंमें विभक्त हैं। गङ्गा नदीके पूर्व-दिग्वासी सद्गोप कुलीन पूर्व-कुलिया कहलाते हैं। इनमें शूर, विश्वास और नियोगी पदवी देखी जाती है। गङ्गाके पश्चिमवासी पश्चिमकुलिया कहलाते हैं। इनमें कुडार, मल्लिक, हाजरा, राणा, राय और लोहा पदवी प्रचलित है। इसके सिवा घोष, पाल, सरकार, हालदार, पान, चौधरी और काफी मौलिक सद्गोपोंकी वंशोपाधि है। वे सब उपाधियां कर्मज्ञापक और स्थानवाचक हैं। मणिमाधवके कुलग्रन्थमें उन सब उपाधियोंके प्रथम प्रचलनका कारण विस्तृत भावमें लिखा है।

वङ्गालके अन्तर्गत वर्द्धमान, मेदिनीपुर, हुगली, नदिया, २४ परगना और बांकुड़ा जिलेमें प्रधानतः सद्गोप जातिका वास है। उन लोगोंकी संख्या ६ लाखसे ऊपर नहीं है।

सद्गोरक्ष (सं० पु०) एक प्रसिद्ध आयुर्वेदवित्।

सद्ग्रन्थ (सं० पु०) अच्छा ग्रन्थ, सन्मार्ग बतानेवाली पुस्तक।

सद्ग्रह (सं० पु०) सन् ग्रहः। शुभग्रह, वृहस्पति और शुक्र ग्रह। ग्रहोंमें उक्त दो ग्रह ही सद्ग्रह कहलाते हैं। चन्द्र और बुध ये शुभग्रह होने पर भी जब पापयुक्त होते हैं, तब वे पापग्रह कहलाते हैं। अतएव वृहस्पति और शुक्र ही सद्ग्रह हैं। (वृहत्संहिता २८।२१)

सद्घन (सं० पु०) चिद्घन, आनन्दघन, सच्चिदानन्द ब्रह्म।

सद्धर्म (सं० पु०) सन्-धर्मः। १ साधुधर्म, उत्तम धर्म। जो सर्ववादिसम्मत है, जिसमें कोई विरोध नहीं है, वही सद्धर्म कहलाता है। २ बौद्ध धर्म।

सद्धर्मचारी (सं० त्रि०) सद्धर्ममाचरतीति चर णिनि। जो साधुधर्माचरण करते हैं।

सद्धेतु (सं० पु०) सन् हेतुः। साधुहेतु, वह हेतु जिसमें कोई दोष नहीं है। न्यायदर्शनमें सत् और असद् दसे हेतु दो प्रकारका कहा गया है। जिन सब हेतुमें हेत्वाभास आदि कोई दोष नहीं, वही सद्धेतु कहलाता है। यह सद्धेतु पांच प्रकारका है, यथा—पक्षसत्त्व, सपक्ष सत्त्व, विपक्षसत्त्व, अबाधित विषयत्व और असत्प्रतिपक्षितत्व। विशेष विवरण हेतु शब्दमें देखो।

सद्भाग्य (सं० क्लो०) सन्भाग्यं। सुभाग्य, शुभादृष्ट।

सद्भाव (सं० पु०) सतोभावः। १ सत्ता, स्थिति। २ प्रेम और हितका भाव, अच्छा भाव। ३ मैत्री, मेल जोल। ४ निष्कपट भाव, अच्छी नीयत।

सद्भावश्री (सं० स्त्री०) काश्मीरकी एक देवीमूर्त्ति।

सद्भूत (सं० त्रि०) सन् भूतः। सत्य, यथार्थ।

सद्भृत्य (सं० पु०) साधुभृत्य, उत्तम नौकर।

सद्मन् (सं० क्ली०) सीदन्त्यत्रेति सद मनिन्। १ गृह, मकान। (रघु ३।१६) २ जल, पानी। अवसायन्ते प्राणिनो यत्र। ३ संग्राम, युद्ध। ४ बैठनेवाला। ५ दर्शक। ६ पृथ्वी और आकाश।

सद्मिनी (सं० स्त्री०) १ बड़ा मकान, हवेली। २ प्रासाद, महल।

सद्मबर्हिस् (सं० त्रि०) सोमविशेष, जिन सब सोमोंका बर्हिशब्दोपलक्षित यज्ञ हुआ है, उसे सद्मबर्हिस् कहते हैं।

सद्ममखस् (सं० त्रि०) प्राप्ततेजस्क, जो तेजको प्राप्त हुए हैं। (ऋक् ३।१८।६)

सद्य (स० क्रि०) तत्क्षणात्, इसी समय, अभी। २ आज ही। ३ शीघ्र, तुरन्त। (पु०) ४ शिवका एक नाम, सद्योजात।

सद्यउति (स० त्रि०) सद्योगमनयुक्त, अभी आनेवाला। (ऋक् १०।७८।२)

सद्यःकृत (स० क्लो०) सद्यस्तत्क्षणात् कृत। १ नाम। (त्रि०) २ तत्क्षणकृत, जो उसी समय किया गया हो।

सद्यः (स० अव्य०) सद्य देखो।

सद्यःक्री (स० त्रि०) १ जो अभी निष्पन्न हुआ हो। (पु०) २ एकाहसाध्य सोमयाग। ३ दीक्षा, उपसद् और सुत्या आदि सद्यकार्य कर्म।

सद्यःक्षत (स० त्रि०) तत्क्षणात् जो क्षत हुआ है जो अभी घायल हुआ है।

सद्य पर्युषित (स० त्रि०) सद्यस्तत्क्षणात् पर्युषित। तत्क्षणात् जो पर्युषित हुआ है, जो अभी बासी हो।

सद्य पाक (स० त्रि०) जिसका फल तुरत मिले, जिसके परिणाममें विलम्ब न हो। २ जो तुरत पाक किया गया हो। (पु०) ३ रातके चौथे पहरका स्वप्न, जो लोगोंके विश्वासके अनुसार ठीक घटा करता है।

सद्य पातिन् (स० त्रि०) सद्य पतति पत णिनि। सद्य पतनशील, जो तुरत गिरा हो।

सद्यप्रक्षालक (स० त्रि०) तत्क्षणात् प्रक्षालनकारी तुरत साफ करनेवाला।

सद्य प्रसूता (स० स्त्री०) तत्क्षणात् प्रसूता, जिसे अभी बच्चा हुआ हो।

सद्यःप्राणकर (स० त्रि०) सद्यस्तत्क्षणात् प्राणस्य बलस्य कर। तत्क्षणात् बलकारक द्रव्य।

"सद्योमांसं नवान्नञ्च बाला स्त्री क्षीरभोजनम्।
घृतमुष्णोदकञ्चैव सद्यःप्राणकराणि षट्॥" (चाणक्य)

जिन सब द्रव्योंका सेवन करनेसे उसी समय बल आ जाता है उन्हें सद्य प्राणकर कहते हैं। ये सब बलकारक द्रव्य ये हैं—ताजा मांस, नवान्न अन्न बालास्त्री, सहवास, क्षीर, घृत, और उष्ण जल।

सद्य प्राणद (स० त्रि०) सद्यस्तत्क्षणात् बल और आयु नाशक द्रव्यादि, ये सब द्रव्य जिनका सेवन करनेसे बल और आयुका तुरत नाश होता है।

"शुष्कं मांसं स्त्रियो वृद्धा बालार्कस्तरुणं दधि।
प्रभाते मैथुनं निद्रा सद्य प्राणहराणि षट्॥" (चाणक्य)

शुष्क अर्थात् बासी मांस भोजन, वृद्धा स्त्री सहवास, प्रातःकालका रौद्रसेवन, बासी दधि भोजन, प्रभात कालमें मैथुन और निद्रा, ये छः सद्य प्राणहर हैं।

सद्यःप्रीणन (स० क्लो०) सद्यस्तत्क्षणात् प्रीणन। आहार। भोजन करते ही मन प्रसन्न रहता है।

सद्यःफल (स० त्रि०) सद्य फलं यस्य। तत्क्षणात् फलयुक्त, जिसका फल तुरन्त मिल जाय।

सद्यश्छिन्न (स० स्त्री०) सद्यः छिन्न। तत्क्षणात् छिन्न।

सद्य शुद्धि (स० स्त्री०) सद्य शुद्धि। तत्क्षणात् शुद्धि, सद्य शौच।

सद्यःशोथा (स० स्त्री०) सद्य शोथो यस्या। कपिकच्छू, कवांच। कवांच छू जानेसे तुरन्त खुजली और सूजन होती है।

सद्य शौच (स० क्लो०) सद्य एव शौच शुद्धि। तत्क्षणात् शुद्ध, जो सब अशौच उसी समय निवृत्त होता है, उसे सद्य शौच कहते हैं।

शिल्पी वैद्य, दासी, दास भृत्य, पाक कर्मकारी सात्विक ब्राह्मण, श्रोत्रिय और राजा इन लोगोंका सद्यः शौच होता है अर्थात् अशौच होने पर उसी समय शुद्धि होती है। क्योंकि, शास्त्रमें लिखा है, कि चित्रकारादि शिल्पी जो कर्म करते हैं, यह कर्म दूसरा नहीं कर सकता, इस कारण वे कर्मविषयमें शुद्ध हैं अर्थात् अशौच होने पर भी उनका सद्य शौच होता है। इसी प्रकार दास दासी आदिका काम भी दूसरा नहीं कर सकता इससे ये लोग अपने अपने काम करनेमें विशुद्ध हैं।

दुर्भिक्ष, राष्ट्र विप्लव, औपसर्गिक महामारी और पीड़न आदि समयमें सबोंका सद्य शौच होता है।

मनुमें सद्यःशौचका विषय इस प्रकार लिखा है,— यज्ञ बीतने पर यदि सपिण्डादिका मृत्यु संवाद सुना जाय तो सद्य शौच होता है। राजत्व के समासनकालमें राजाका, ब्रह्मचर्य कालमें ब्रह्मचारीका और यज्ञ कालमें याजकोंका सद्यःशौच होता है। क्योंकि प्रजाकी रक्षा करनेके लिये राजाका राजसिंहासन पर बैठना

पड़ता है। इससे उन्हें अशौच दोष नहीं होता। राजा विहीन युद्धमें जो मारा गया है, वज्र या राजदण्ड द्वारा जिसकी मृत्यु हुई है, गोब्राह्मणकी भलाईमें जिनके प्राण गये हैं तथा राजा जिनके अशौचाभावकी इच्छा करते हैं, उन सब व्यक्तियोंका सद्यःशौच होता है।

सद्यस् (सं० अव्य०) समानेऽहनि इति (सद्यः परुत्परार्य्यैषम इति। पा ५।३।२२) इति थप्रत्ययः समानस्य समावश्च निपात्यते। तत्क्षण, तुरन्त।

सद्यस्क (सं० त्रि०) सद्यः कायतीति कै-क। अभिनव, नया।

सद्यस्कार (स० त्रि०) सद्योजात, तुरन्तका उत्पन्न।

सद्यस्काल (सं० पु०) सद्यः कालः। तत्क्षणात्, उसी समय।

सद्यस्त्व (सं० क्ली०) सद्यः भावे त्व। सद्यस्कालत्व, तुरंतका किया हुआ काम।

सद्यसुत्या (सं० स्त्री०) सद्यनिष्काशित, वह दिन जब सोमरस निकाला जाता है। (ऐतरेयब्रा० ६।३४)

सद्यस्नेहन (सं० क्ली०) नित्य तैलसिक्तकरण, रोज तेलमें डुबाना।

सद्युक्ति (सं० स्त्री०) सती युक्तिः। उत्तमयुक्ति, साधु मन्त्रणा।

सद्योअर्था (सं० त्रि०) जिस समय हविके द्वारा होम किया जाता है उसी समय हविके साथ देवताओंके पास जानेवाला। २ सद्योगमनविशिष्ट, तुरंत जानेवाला।

सद्योज (सं० त्रि०) सद्यस्तत्क्षणात् जायते जन-ड। तत्क्षणात् जात, तुरतका उत्पन्न।

सद्योजात (सं० पु०) सद्यस्तत्क्षणात् जातः। १ तुरंतका उत्पन्न बछड़ा। २ शिवका एक स्वरूप या मूर्त्ति। शिवरात्रि व्रतमें 'ओं सद्योजाताय नमः' इस मन्त्रसे महादेवको स्नान करना होता है। शिवरात्रिव्रत देखो। (त्रि०) तत्क्षणोत्पन्न, जो तुरंत उत्पन्न हुआ हो।

सद्योजातपाद (स० पु०) शिव, महादेव।

सद्योजू (सं० त्रि०) सद्य उत्तेजनशील।

सद्योदुग्ध (सं० क्ली०) सद्यस्तत्क्षणादुत्पन्नं दुग्धः। तत्क्षणात जात दुग्ध, तुरन्तका उत्पन्न दूध।

सद्योभव (सं० त्रि०) सद्यो भवः उत्पत्तिर्यस्य, १ तत्क्षणात् उत्पत्तिविशिष्ट। २ तत्क्षणात् जात।

सद्योभाविन् (सं० पु०) सद्यो भवतीति भू णिनि। सद्योजात वत्स, तुरंतका जन्मा बछड़ा।

सद्योऽभिवर्ष (सं० पु०) सद्योवृष्टि।

सद्योमण्डलपत्रक (सं० पु०) श्वेत पुनर्नवा, सफेद गदहपूरना।

सद्योमन्यु (सं० त्रि०) सद्यस्तत्क्षणादेव मन्युर्येन्य। तत्क्षणात् क्रोधान्वित, चिड़चिड़ा।

सद्योमरण (सं० क्ली०) तत्क्षणात् मृत्यु, तुरन्तकी मौत।

सद्योमांस (सं० क्ली०) अभिनव मांस, ताजा मांस। मांस यदि खाना हो, तो सद्योमांस भोजन करे, क्योंकि यह सद्यःप्राणकर माना गया है। बासी मांस कदापि नहीं खाना चाहिये। सद्यःप्राणकर देखो।

सद्योमृत (सं० त्रि०) तत्क्षणात् मृत, तुरंतका मरा हुआ।

सद्योयज्ञसंस्था (सं० स्त्री०) एकाहयज्ञमें उत्सर्गोका स्थापन या संरक्षण। (षड्विंशब्रा० ४।१)

सद्योवर्ष (सं० पु०) सद्यो वर्षणः। सद्योवृष्टि, तत्क्षणात् वर्षण।

सद्योवृध् (सं० त्रि०) उसी समय वर्द्धमान।

सद्योवृष्टि (सं० स्त्री०) सद्यस्तत्क्षणात् वृष्टिः। तत्क्षणात् वर्षण। वराहकृत बृहत्संहितामें सद्योवृष्टिका विशेष विवरण लिखा है। नीचे संक्षेपमें दिया जाता है।

आकाशमण्डल और चन्द्रसूर्यका कोई कोई लक्षण देखनेसे तत्क्षणात वृष्टि होगी, किन्तु वह वर्षण कम होगी या अधिक, उसका भी पता लक्षणसे लग जायेगा। वर्षा होगी या नहीं? यदि ऐसा प्रश्न किया जाय तथा उस समय चन्द्र यदि कर्कट, कुम्भ, मीन, कन्या और मकरके शेषार्द्धमें रह कर लग्नगत अथवा शुक्लपक्षमें केन्द्रगत हों और शुभ ग्रह यदि उसे देखता हो, तो उस समय प्रचुर वृष्टि और यदि पापग्रहकी दृष्टि पड़ती हो, तो कम वृष्टि होगी तथा वह वृष्टि बहुत देर तक नहीं रहती। फिर यह भी देखना होगा, कि प्रश्नकर्त्ता यदि आर्द्र द्रव्य या जल अथवा तत्संज्ञक कोई द्रव्य स्पर्श करे, यदि जलके निकटवर्त्ती या जलसम्बन्धीय किसी कर्ममें रत हो तथा प्रश्न कालमें

जल या जलचरका कोई शब्द सुना जाय, तो शीघ्र ही जल होगा ऐसा जानना चाहिये। चन्द्र विरस, आकाशमण्डल गोनेत्रसदृश सभी दिशाएं विमल लवणके जलकणोंमें विकृति, काकाण्ड सदृश मेघोदय, पवन निश्चल, मत्स्यगणका पुनः पुनः लम्फन और मण्डूक गणकी बार बार ध्वनि, मार्जारके नख द्वारा पृथ्वी विलेखन, लोहेके मलमें कच्चे मांसकी सी गन्धका अनुभव बिना उपघातके पिपीलिकाकी डिम्बक्रान्ति, सर्पगणका स्त्रीसङ्ग, भुजङ्गगणका वृक्षादि रोहण, गोसमूहका लम्फन तथा पशुओंको घरसे बाहर निकलनेकी अनिच्छा यदि ये सब लक्षण दिखाई दें, तो सद्योवृष्टि होगी।

यदि गिरगिट वृक्षके शिखर पर चढ़ कर आकाशकी ओर दृष्टि डाले तथा गो वत्स ऊर्द्ध्वनेत्रसे सूर्यको देखे तथा गृहपटलमें कुत्ते रहें या अपना मुंह ऊपरकी ओर उठाये रहें, तो भी शीघ्र ही वृष्टि होगी। जब चन्द्रमा शुक या कपोत लोचनसदृश या मधु सन्निभ हो और जब आकाशमें प्रतिचन्द्र विराजित हो, तो जानना चाहिये, कि वृष्टि शीघ्र होनेवाली है। लताओंके सब पल्लव यदि गगनतलोन्मुख हों, विहङ्गम पांशु या जल द्वारा स्नान और सरीसृपगण तृणके अग्रभागमें विचरण करें, तो जल्द ही वर्षा होगी। सूर्यास्त समय यदि आकाश तीतर पक्षीके डैनेके रंगसा दिखाई दे तथा पक्षिगण आनन्दित हो कर कलरव करें, तो भी वृष्टि शीघ्र ही होगी।

वर्षाकालमें चन्द्रमा यदि शुभग्रहसे दृष्ट हो कर शुक्रसे सप्तमस्थानगत अथवा शनिसे नवम पञ्चम या सप्तम स्थानगत हो तो वृष्टि शीघ्र होगी ऐसा जानना चाहिये। प्रत्येक उदयास्तकालमें मण्डल संक्रमण और समागम होनेसे पक्षक्षयमें, अयनान्तमें और सूर्यके आर्द्रा नक्षत्रगत होने पर उसी समय वृष्टि होती है। बुध शुक्रके समागममें बुधवृहस्पति या वृहस्पति और शुक्र समागममें अल्प पानी बरसेगा।

ये सब लक्षण देख कर सद्योवृष्टि स्थिर करना होगा।

सद्योव्रण (सं० पु०) सद्योजात व्रण, जो फोड़ा अभी निकला हो। नाना प्रकारके शस्त्रादिके शरीरके भीतर स्थानोंमें पड़नेसे जो विभिन्न प्रकारके व्रण उत्पन्न होते हैं उन्हें सद्योव्रण कहते हैं। यह सद्योव्रण ६ प्रकारका है छिन्न, भिन्न विद्ध, क्षत पिच्छित और घृष्ट।

वाग्भटके मतसे उक्त व्रण ८ प्रकारका है यथा—घृष्ट अवकृत्त विच्छिन्न, प्रविलम्बित पातित, विद्ध भिन्न और विदलित।

वाह्यहेतु अर्थात् अस्त्रपात बन्धन पतन दन्ताघात, नखाघात विषस्पर्श अग्नि और शस्त्रसे जो सब व्रण उत्पन्न होते हैं, उनका नाम सद्योव्रण है। इसे आगन्तु व्रण भी कहते हैं। व्रण शब्द देखो।

सद्योहत (सं० त्रि०) तत्क्षणात् हत, तत्क्षणात् विनष्ट।

सद्रत्न (सं० क्ली०) सत् रत्न। उत्तम रत्न।

सद्रि (बड़ा)—राजपूतानेके उदयपुरराज्यान्तर्गत एक नगर। यह निमाचेसे २३ मील दक्षिण पश्चिम अवस्थित है। नगर पहले पत्थरकी दीवारसे घिरा था और बीचमें पहाड़के ऊपर दुर्ग अवस्थित था। अभी यह दुर्ग और प्राचीर भग्नावस्थामें पड़ा है। स्थानीय सामन्तराज उस दुर्गमें रहते हैं। ८० ग्राम ले कर सद्रि सामन्त राज्य संगठित है।

सद्रि (छोटा) उक्त राज्यका एक दूसरा नगर। यह निमाचसे १३ मील दक्षिण पश्चिममें अवस्थित है। यह नगर भी मजबूत दीवारसे घिरा है। यहांके पक्का ग्राम और शालके पेड़ बहुतायतसे मिलते हैं।

सद्रु (सं० त्रि०) सीदति गच्छति सद् गतौ (सिशद रुः। पा ३।२।१५९) इति रु। गमनकर्त्ता जानेवाला।

सद्वंश (सं० पु०) १ उत्तम वंश। २ सद्वंशोत्पन्न, जो किसी उत्तम कुलमें जन्म हुआ हो।

सद्वक्तृ (सं० पु०) सत् वक्ता। उत्तम वक्ता, वाग्मी।

सद्वत्सला (सं० स्त्री०) सद्वत्सभावः सन् टाप् या सती वत्सला। उत्तम वत्सला सद्वत्सला।

सद्वचन (सं० क्ली०) उत्तम वाक्य साधु वचन।

सद्वृत् (सं० त्रि०) उत्तम साधु।

सद्वती (सं० स्त्री०) पुण्यदक्षकी कन्या और अंगिराकी स्त्री।

सद्विद्र (सं० त्रि०) इन्द्रयुक्त का समाहार विशेष।

सद्भाव (सं० पु०) सद् भावः। प्रेम, भाव।

सद्दह (सं० पु०) राजपुत्र भेद।

सद्वार्त्ता (सं० स्त्री०) सती वार्त्ता, उत्तम वार्त्ता, सुसंवाद, खुश खबरी।

सद्विच्छेद (सं० पु०) वह विच्छेद जो सुखकर हो।

सद्विद्या (सं० स्त्री०) सती विद्या। उत्तम विद्या, ब्रह्मविद्या, ब्रह्मज्ञान। एक मात्र ब्रह्म ही सत पदार्थ है, ब्रह्मको छोड़ और सभी असत् है। अतएव ब्रह्मविषयक विद्या ही सद्विद्या कहलाती है।

सद्विधान (सं० क्ली०) सत् विधानं। सुविधान, उत्तम विधान।

सद्विवेचना (सं० स्त्री०) सती विवेचना। उत्तम विवेचना, साधु विवेचना।

सद्बुद्धि (सं० स्त्री०) सती बुद्धिः। उत्तम बुद्धि, साधु विचार। (त्रि०) सती बुद्धिर्यस्य। २ सद्बुद्धिविशिष्ट, जिसका उत्तम विचार हो।

सद्वृक्ष (सं० पु०) सुवृक्ष, उत्तम पेड़।

सद्वृत्त (सं० त्रि०) सद्वृत्तं यस्य। सच्चरित्र, साधु।

सद्वृत्ति (सं० स्त्री०) सती वृत्तिः। साधुवृत्ति, सुवृत्ति, उत्तम व्यवहार। शास्त्रमें लिखा है, कि सद्वृत्तिका अवलम्बन कर सबोंको जीविकार्जन करना चाहिये।

शास्त्रमें जो सब वृत्तियां निन्दित बताई गई हैं उन्हें छोड़ देने और जो निन्दित नहीं बताई गई हैं उन्हें करने को ही सद्वृत्ति कहते हैं। (त्रि) २ सद्वृत्तिविशिष्ट, उत्तम व्यवहारवाला।

सद्वृत्तिभाज् (सं० त्रि०) सद्वृत्तिं भजतीति भज क्वि। सद्वृत्तिविशिष्ट।

सद्वैद्य (सं० पु०) सन् वैद्य। उत्तम वैद्य, सुचिकित्सक। जो चिकित्सा कार्य करता है, उसका साधारण नाम वैद्य है। जो शास्त्रार्थमें विशेष व्युत्पन्न, दृष्टकर्मा, चिकित्साकुशल, सुसिद्धहस्त, शुचि, कार्यदक्ष, अभिनव औषध और चिकित्साके उपयोगी उपकरणोंसे सुसज्जित, उपस्थित-बुद्धि, धीशक्ति-सम्पन्न, चिकित्सा व्यवसायी, मिष्टभाषी, सत्यवादी और धर्मपरायण आदि गुण जिस वैद्यमें रहते हैं, उसे सद्वैद्य कहते हैं। (भावप्र०) वैद्य देखो।

सध (सं० अव्य०) सहार्थं।

सधन (सं० त्रि०) धनके साथ वर्त्तमान, धनयुक्त, धनी।

सधनता (सं० स्त्री) सधनस्य भावः तल् टाप्। सधनत्व, धनविशिष्टका भाव या कार्य, धनीका धर्म।

सधना (हिं० क्रि०) १ सिद्ध होना, पूरा होना, काम होना। २ काम चलाना, मतलब निकालना। ३ अभ्यस्त होना, हाथ बैठना। ४ प्रयोजन सिद्धिके अनुकूल होना, गौं पर चढ़ना। ५ लक्ष्य ठीक करना, निशाना ठीक होना। ६ घोड़े आदिका शिक्षित होना, निकालना। ७ ठीक उतरना, नापा जाना।

सधनिन् (सं० त्रि०) धनिना सह वर्त्तमानः। धनीके साथ वर्त्तमान।

सधनी (सं० त्रि०) समानधनविशिष्ट। (शुक्ल ४।४।१४)

सधनुष्क (सं० त्रि०) समानः धनुर्यस्य, कप्। समान-शब्दस्य स आदेशः। समान धनुविशिष्ट, तुल्य धनुष्क।

सधनुस् (सं० त्रि०) धनुके साथ वर्त्तमान, धनुर्विशिष्ट, धनुष्पाणि।

सधमाद् (सं० पु०) मत्ततायिशिष्ट। (ऋक् ४।२७।१)

सधमाद्य (सं० त्रि०) सहमदनिमित्त, मद निमित्त।

सधमित्र (सं० पु०) गोत्रप्रवर्त्तक ऋषिभेद।

सधर (सं० पु०) ऊपरका ओंठ।

सधर्म (सं० पु०) १ समान धर्म, समान गुण या क्रियावाला। २ तुल्य, समान।

सधर्मक (सं० त्रि०) समधर्मविशिष्ट।

सधर्मचारिणी (सं० स्त्री०) सहधर्मं चरतीति चर-णिनि (वोपसर्ज्जनस्य। पा ६।३।८२) इति सहस्य सः। भार्या, स्त्री। शास्त्रमें लिखा है, कि पत्नीके साथ धर्माचरण करना होता है, इसीसे पत्नीको सधर्मचारिणी कहते हैं।

सधर्मत्व (सं० क्ली०) सधर्मणो भाव त्व। सधर्माका भाव या धर्म, तुल्य धर्मत्व।

सधर्मन् (सं० त्रि०) समानो धर्मो यस्य (धर्मादनिच केवलात्। पा ५।४।१२४) इति अनिच्। सदृश, तुल्य।

सधर्मिन् (सं० त्रि०) सहधर्मोऽस्त्यस्येति (धर्मशील वर्णान्ताच्च। पा ५।२।८२) इति इनि, (वोपसर्ज्जनस्य। पा ६।३।८२) इति सहस्य सः। १ समानधर्माचारी, एक धर्माक्रान्त। २ सदृश, समान।

सधर्मिणी (सं० स्त्री०) सधर्मिन् ङीप्। भार्या, पत्नी।

सधवा (सं० स्त्री०) धवेन भर्त्रासह वर्त्तमाना। जीवितपतिका स्त्री, वह स्त्री जिसका पति जीवित हो, जो

विधवा न हो, सुहागिन । संस्कृत पर्याय—सभर्तृका पतिवत्नी, सनाथा । (स्त्रीवर्ग)

स्वामीकी शुश्रूषा ही एकमात्र सधवा स्त्रियोंका श्रेष्ठ धर्म है। स्वामी दुःशील दुर्भाग वृद्ध जड़रोगी या धनहीन होने पर भी सधवा सत्नी उसकी अनुगामिनी और सेवापरायण होगी।

सधवीर (सं० पु०) सध्वीर।

सधस्तुति (सं० स्त्री०) सहस्तुति, एक साथ मिल कर जो स्तुति की जाती है उसे सधस्तुति कहते हैं।

सधस्तुत्य (सं० त्रि०) अन्यके साथ स्तुत्य दूसरेके साथ स्तवके उपयुक्त। (ऋक् ८।२६।१)

सधस्थ (सं० क्ली०) सहस्थान। (ऋक् ४।८।१)

सधाना (हिं० क्रि०) साधनेका काम दूसरेसे कराना दूसरेको साधनेमें प्रवृत्त करना।

सधावर (हिं० पु०) वह उपहार जो गर्भवती स्त्रीको सातवें मासमें भेजा दिया जाता है।

सधि (सं० पु०) अग्नि।

सधिस् (सं० पु०) सहते इति सह (सहस्तुच । उण् ४।२१४) इति इसिन् धस्यान्तादेश । वृषभ बैल।

सधुर (सं० त्रि०) समान कार्योद्वहन। (भट्टि ३।२०।१)

सधूम (सं० त्रि०) धूमके साथ वर्तमान, धूमविशिष्ट।

सधूमक (सं० त्रि०) धूमयुक्त।

सधूमवर्णा (सं० स्त्री०) सधूम्रवर्णा, अग्निकी सात जिह्वाओंमेंसे एक जिह्वा।

सधूम्र (सं० त्रि०) धूम्रके साथ वर्तमान, धूम्रविशिष्ट।

सधूम्रवर्णा (सं० स्त्री०) धूमवर्णयुक्ता।

सधोर (हिं० पु०) सधावर देखो।

सध्रि (सं० पु०) ऋग्वेदोक्त ऋषिविशेष।

सध्री (सं० अव्य०) सीमान्तमें।

सध्रीचा (सं० स्त्री०) सह अञ्चति या सा अञ्च क्विप् टाप् । सह सधि, अञ्चतेर्लोपश्चेति इति टाप्, अञ् इत्यकारस्य चादिति दीर्घ । सखी।

सध्रीचीन (सं० त्रि०) सहगमनकारी।

सध्र्यञ्च (सं० त्रि०) सह अञ्चति अञ्च क्विन् ऋत्विगादिना क्विन्, सहस्य सध्रि। १ सहचर। २ सम्यक्।

सध्वंस (सं० पु०) ऋग्वेदके कण्वगोत्रीय ऋषिभेद।

सन् (सं० पु०) व्याकरणोक्त प्रत्ययविशेष । व्याकरण के मतसे इच्छार्थमें धातुके उत्तर सन् प्रत्यय होता है।

सन् (अं० पु०) १ वर्ष साल। २ कोई विशेष वर्ष, संवत्।

सन (सं० पु० स्त्री०) १ हस्तिकर्णास्फाल। (पु०) २ भीमा नामक पेड़। ३ सनत्कुमार। ४ सनक। ५ सनन्दन। ६ सनातन। (क्ली०) ७ दान। (त्रि०) ८ अखण्डित।

सन (हिं० पु०) बोया जानेवाला एक प्रसिद्ध पौधा। इसका छालके रेशेसे मजबूत रस्सियां आदि बनती हैं। विशेष विवरण शण शब्दमें देखो।

सनई (हिं० स्त्री०) छोटी जातिका सन।

सनक (सं० पु०) विष्णु पारिषद्भेद। ये ब्रह्माके चार मानस पुत्रोंमें एक पुत्र हैं। श्रीमद्भागवतमें लिखा है, कि ब्रह्माने आदि सृष्टि करनेका सङ्कल्प कर पहले अविद्याकी सृष्टि की, इससे तामिस्र अन्धतामिस्र मोह और महामोह आदि उत्पन्न हुए। ब्रह्माको ये सब असत् सृष्टि देख कर शान्ति न मिली उन्होंने ध्यानमग्न हो मन द्वारा अन्य प्रकारकी सृष्टि करना चाहा। अनन्तर उनके सनक, सनन्द सनातन और सनत्कुमार ये चार मानस पुत्र उत्पन्न हुए। ये सब पुत्र निष्क्रिय और ऊर्द्ध्वरेता हुए। ब्रह्माने जब इन पुत्रोंको सृष्टि करने कहा, तब ये लोग बोले संसार दुःख और मायागार है। अतएव मायामें आबद्ध हो हम लोग दुःखभोग करना नहीं चाहते। इतना कह कर वे लोग भगवद्ध्यान परायण हो कालातिपात करने लगे।

काशीखण्डमें लिखा है, कि सनकका वासस्थान जनलोक है। धर्मशास्त्रके मतानुसार देव तर्पणके बाद ही सनक आदि ऋषियोंके उद्देश्य तर्पण करना होता है। यह तर्पण प्रतिदिन करना कर्त्तव्य है। पहले ब्रह्मा, विष्णु रुद्र और प्रजापतिका तर्पण कर सनक, सनन्द, सनातन कपिल आसुरि आदि ऋषियोंके उद्देश्य तर्पण करना होगा। यह तर्पण प्रत्येकके उद्देश्यसे दो बार करके करना होता है। सामवेदी ब्राह्मणोंको निवीती और प्रत्यङ्मुख हो कर शानापात्र तीर्थमें करना चाहिये। सामभिन्न अन्य वेदीगण

उत्तरमुखसे तर्पण करें। निम्नोक्त मन्त्र पढ़ कर दो अञ्जलि जल देनेसे इनका तर्पण किया जाता है। मन्त्र इस प्रकार है,—

"ओं सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः।
कपिलश्चासुरिश्चैव वोढुः पञ्चशिखस्तथा।
सर्वे ते तृप्तिमायान्तु मद्दत्तेनाम्बुना सदा॥"
(आह्निकतत्त्व) तर्पण देखो।

२ एक असुरका नाम। (ऋक् १।३३।४)

सनक (हिं० स्त्री०) १ किसी बातकी धुन, मनकी मौज। २ उन्मादकी-सी वृत्ति, खब्त।

सनकना (हिं० क्रि०) १ पागल हो जाना, पगलाना। २ वेगसे हवामें जाना या फेंका जाना।

सनकाना (हिं० क्रि०) किसीको सनकनेमें प्रवृत्त करना।

सनकानीक (सं० पु०) देशभेद और उस देशके अधिवासी।

सनकियाना (हिं० क्रि०) सङ्केत करना, इशारा करना।

सनकुरंगी (हिं० पु०) एक प्रकारका बड़ा पेड़। इसके हीरकी लकड़ी बहुत मजबूत और स्याही लिए लाल होती है। इसकी कुर्सियाँ आदि बनती हैं। यह वृक्ष तिने-वली और त्रिवाङ्कोड़में अधिक पाया जाता है।

सनग (सं० पु०) वैदिक आचार्यभेद।

सनगढ़—पञ्जाब प्रदेशके डेरागाजी खाँ जिलेकी एक तह-सील। यह अक्षा० ३०° २३' से ३१° २०' उ० तथा देशा० ७०° २४' से ७०° ५०' पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण १०६५ वर्गमील और जनसंख्या ८० हजारके लगभग है। इसमें १६६ ग्राम लगते हैं। इसके उत्तरमें सिन्धु नद और पश्चिममें खाचीन राज्य है। इस तहसीलमें सनगढ़ नदी बहती है, उसी नदीके नामसे तहसीलका नामकरण हुआ है।

सनगढ़—बम्बईके थर और पार्कर जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० २४° ४० से २६° १५ उ० तथा देशा० ६८° ५१' से ६९° २५' पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण १०५० वर्गमील और जनसंख्या ४० हजारसे ऊपर है।

सनगिरि—पञ्जाब प्रदेशके सिमला पहाड़ी राज्यके अन्त-र्गत एक छोटा सामन्त राज्य। यह शतद्रु नदीके दक्षिण-में अवस्थित है। पहले यह राज्य कुलूराजके अधिकार-में था। १८१५ ई०में अंगरेजी सेनाने गोरखोंको यहांसे भगा कर यह स्थान कुलूपतिको दे दिया। सिखसेनाके कुलूराज्य पर आक्रमण करनेसे कुलूराजने भाग कर सनगिरिमें आश्रय लिया था। प्रथम सिखयुद्धके बाद जब यह प्रदेश अंगरेजोंके अधिकारमें आया, तब अंग-रेज गवर्मेण्टने १८४७ ई०में कुलूराजके भतीजेको यहांका राजा बनाया। १८८४ ई०में राजपूत कुलतिलक हीरा सिंह 'सनगिरिके ठाकुर' अर्थात् राजा थे।

सनगुड़—बम्बई प्रदेशके धारवाड़ जिलान्तर्गत हङ्गल तालुकका एक बड़ा ग्राम। यह हङ्गलसे १४ मील पूर्व उत्तरमें अवस्थित है। यहांके वीरभद्रमन्दिरमें १०८६ शकमें उत्कीर्ण एक शिलालिपि देखी जाती है।

सनगोड़—राजपूतानेके कोटाराज्यान्तर्गत एक नगर।

सनद्रु (सं० पु० स्त्री०) परिष्कृत चर्म, साफ चमड़ा।

सनज (सं० त्रि०) नित्य जात, प्रति दिन होनेवाला।

सनत् (सं० पु०) १ ब्रह्मा। २ सर्वदा, सभी समय।

सनता (सं० स्त्री०) सनातन, नित्य। (ऋक् ४।३।१)

सनत्कुमार (सं० पु०) सनतो ब्रह्मणः कुमारः। ब्रह्माके पुत्र। सनत् शब्दका अर्थ ब्रह्मा है, उनका कुमार, या सनत् शब्दका अर्थ नित्य है, जो नित्य हैं, उनका कुमार, इसी अर्थमें सनत्कुमार हुआ।

हरिवंशमें लिखा है, कि ये ब्रह्माके मानसपुत्रोंमें सर्व-श्रेष्ठ थे। जन्म लेते ही इन्होंने यतिधर्मका आश्रय ले कर परमात्मामें मन लगाया तथा प्रजावर्ग और भोग विलासका बिलकुल परित्याग कर दिया। जैसे शरीरसे ये उत्पन्न हुए थे वैसे ही शरीरमें विद्यमान हैं, इसीसे इनका नित्यकुमार या सनत्कुमार नाम पड़ा। मार्क-ण्डेय मुनिके कठोर तपस्या करने पर सनत्कुमारने उनके पास जा उनके कुल सन्देह दूर किये थे। हरिवंश १७ १८।१९ अध्यायके सनत्कुमारसंवाद नामक अध्याय-में इनका विस्तृत विवरण लिखा है।

२ धर्मके औरस और अहिंसाके गर्भसे उत्पन्न एक पुत्रका नाम। ये ब्रह्माके दत्तक पुत्र थे। वामनपुराणमें लिखा है, कि धर्मकी अहिंसा नामकी एक पत्नी थी। उनके गर्भसे सनत्कुमार, सनातन, सनक, सनन्दन और कपिल आदि पुत्र उत्पन्न हुए। धर्मने इन सब पुत्रोंमें पञ्चशिखको श्रेष्ठ समझ कर उन्हींको सांख्ययोगकी

शिक्षा दी। बड़े तो थे सनत्कुमार, पर उ हें योगोप देश न दिया गया। इस पर सनत्कुमार ब्रह्माके पास गये और योग विज्ञान सिखानेके लिये अनुरोध किया। ब्रह्माने कहा, कि मैं तुम्हें उसी शर्त पर सांख्ययोग विज्ञानका उपदेश दे सकता हूं, यदि तुम्हारे मातापिता तुम्हें मुझे पुत्ररूपमें दें। पीछे धर्म और अहिंसाने सनत्कुमारको ब्रह्माके हाथ सौंप दिया और तब ब्रह्माने उन्हें सांख्य योगकी शिक्षा दी। (वामन पु० ५९।६०-६८ अ०)

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें लिखा है कि ये पञ्चहायन वयस्क, चूड़ादि संस्कार और वेद सन्ध्याविहीन हैं। ये ब्रह्मतेज में ब्रह्मतेजसे प्रज्वलित हो नानावस्थामें रहते हैं और सर्वदा कृष्णमन्त्र जपा करते हैं। अनन्त कल्पकाल ये नाना मायाओंके साथ विद्यमान हैं। ये वैष्णवोंमें अग्रणी और ज्ञानियोंके गुरु हैं। (श्रीकृष्णजन्म० १२६ अ०)

३ जिनमतसे बारह सार्वभौमके अन्तर्गत एक सार्वभौम।

सनत्कुमारज (सं० पु०) जैनोंके देवगणविशेष।

सनत्कुमारीय (सं० क्ली०) सनत्कुमारप्रोक्त।

सनना (हिं० पु०) वह वृक्ष जिस पर रेशमके कीड़े पाले जाते हैं।

सनतन (सं० त्रि०) सनातन। (अथर्व १०।८।३०)

सनत्सुजात (सं० पु०) ब्रह्माके पुत्र ऋषिभेद।

सनद (अ० स्त्री०) १ तकिया गाह। २ भरोसा करनेकी वस्तु। ३ प्रमाण दलील। ४ प्रमाणपत्र सार्टिफिकेट।

सनदयाफ्ता (फा० वि०) १ जिसे किसी बातकी सनद मिली हो, प्रमाणपत्र प्राप्त। २ किसी परीक्षामें उत्तीर्ण।

सनद्रयि (सं० त्रि०) दीयमान धन। (ऋक् १।५२।१)

सनद्राज (सं० त्रि०) दीयमानान्न। (ऋक् १।६२।२३)

सनना (हिं० क्रि०) १ जलके योगसे किसी चूर्णके कणों का एकमें मिलना या लगना, गीला हो कर एकके रूपमें मिलना। २ आप्लावित होना ओतप्रोत होना।

सनना (हिं० स्त्री०) पानीमें भिगोया हुआ भूसा या सूखा चारा जो चौपायोंको दिया जाता है, सानी।

सनन्द (सं० पु०) ब्रह्माके चार पुत्रोंमेंसे मानस पुत्र विशेष। ये जनलोकवासी और दिव्य मनुष्य थे। सनक देखो।

सनन्दक (सं० पु०) ब्रह्माके मानसपुत्रविशेष।

सनन्दन (सं० पु०) १ ब्रह्माके मानसपुत्रविशेष। (त्रि०) नन्दयतीति नन्दनयु। २ नन्दन, आनन्दकारी।

सनम (अ० पु०) प्रिय, प्यारा।

सनपर्णी (सं० स्त्री०) आसनपर्णी।

सनमान (हिं० पु०) सम्मान देखो।

सनय (सं० त्रि०) सनातन पुराना।

सनर (सं० त्रि०) १ संभजनीय। (ऋक् १।६६।८) नरेण सह वर्त्तमान। ८ मनुष्यके साथ वर्त्तमान, मनुष्ययुक्त।

सनर (सं० क्ली०) मरुदेशभेद। (तारनाथ)

सनवित्त (सं० त्रि०) चिरकालसे आरम्भ करके प्राप्त, जो बहुत परिश्रमके बाद मिला हो।

सनश्रुत (सं० त्रि०) सनातनरूपमें प्रसिद्ध।

सनस (सं० अव्य०) सना देखो।

सनसनाना (हिं० क्रि०) १ हवामें भोंकसे निकलने या जानेका शब्द होना। २ खौलते हुए पानीका शब्द होना। ३ हवा बहनेका शब्द होना।

सनसनाहट (हिं० पु०) १ हवा बहनेका शब्द। २ हवा में किसी वस्तुके वेगसे निकलनेका शब्द। ३ खौलते हुए पानीका शब्द। ४ सनसनी।

सनसनी (हिं० क्रि० १ संवेदन सूत्रोंमें एक प्रकारका स्पन्दन झनझनाहट। २ उद्वेग, घबराहट, खलबली। ३ अत्यन्त भय आश्चर्य आदिके कारण उत्पन्न स्तब्धता। ४ नीरवता, सन्नाटा।

सनसय (सं० पु०) आचार्यभेद।

सनसूत्र (सं० क्ली०) सनका सूत। पवित्रक। क्षत्रियों का उपवीत सनसूत्रमय होना चाहिये। (मनु०)

सनहाना (हिं० पु०) वह नाँद या बड़ा बरतन जिसमें भरे हुए खराब मिले अन्नमें धानके पूर्ण मलनेके लिये डाले जाते हैं।

सनहकी (अ० स्त्री०) मिट्टीका एक बरतन जो बहुधा मुसलमान काममें लाते हैं।

सना (सं० अव्य०) नित्य, सनातन।

सनाभु (सं० त्रि०) दीर्घ काल तक वियोगविशिष्ट।

सनातुर (सं० त्रि०) महाजीर्ण।

सनाढ्य (हिं० पु०) ब्राह्मणोंकी एक शाखा जो गौड़ोंके अन्तर्गत कहा जाता है।

सनात् (सं० अव्य०) नित्य, सनातन।

सनातन (सं० पु०) सदाभवः (सायञ्चिरं प्राह्णे प्रगे इति। पा ४।३।२३) इति ट्युट्युलौ तुट् च। १ विष्णु। २ शिव। ३ ब्रह्मा। ४ पितरोंके अतिथि। ५ ब्रह्माके मानसपुत्रभेद। ये दिव्यमनुष्य और जनलोकवासी थे। सनन्द शब्द देखो। अग्निपुराणके मतसे इनका तपोलोक है। मत्स्यपुराणमें इन्हें वैराग्यराज कहा है।

६ प्राचीनकाल, अत्यन्त पुराना समय। ७ प्राचीन परम्परा, बहुत दिनोंसे चला आता हुआ क्रम। ८ वह जिसे सब श्राद्धोंमें भोजन कराना कर्त्तव्य हो। (त्रि०) ९ अत्यन्त प्राचीन, बहुत पुराना। १० परम्परागत, जो बहुत दिनोंसे चला आता हो। ११ नित्य, सदा रहने वाला।

सनातन गोस्वामी—कर्णाटराज अनिरुद्धदेवके वंशधर कुमारदेवके पुत्र और एक परम वैष्णव साधु पुरुष। दुर्भाग्यवशतः पैतृक राज्यसे वञ्चित हो उनके पूर्व पुरुष पहले नवहट्ट ग्राममें, पीछे वहांसे चल कर इनके पिता कुमारदेव फरीदपुरके अन्तर्गत फतेयाबाद परगनेमें बस गये। यहां सनातन और छोटे भाई रूप गोस्वामीने आर्यशास्त्रादिमें अच्छी व्युत्पत्ति लाभ कर गौड़राज सभामें मन्त्रीका पद पाया। इन्होंने तथा दक्षिणराढ़ीय कायस्थसमाजके प्रतिष्ठाता पुरन्दर खांने मिल कर गौडेश्वर सुलतान हुसेन शाहकी सभाको उज्ज्वल कर दिया था।

पूज्यपाद सनातन गोस्वामी प्रायः १४८० से १५८८ ई० तक जीवित थे। प्रवाद है, कि एक दिन सवेरे जोरोंसे वृष्टि हो रही थी, इसी समय बादशाहके हुक्मसे इन्हें दरबारमें जाना पड़ा। इसी समय एक भिखारिणीने अपने स्वामीसे कहा, 'सवेरा हो चला, भिक्षाके लिये निकलो।' स्वामीने जवाब दिया, 'वृष्टि जोरोंसे हो रही है, इस समय शृगाल कुत्ते भी घरसे निकल नहीं सकते। जो इस समय घरसे निकले हैं, वे निश्चय ही दूसरेके अन्नदास होंगे।' भिक्षुककी बात सुन कर सनातनने शृगालसे भी अधम और म्लेच्छका अन्नदास समझ अपनेको खूब ललकारा और उसी समय उन्हें संसार-मर्यादासे घृणा हो गई। उसके साथ साथ विवेकका उदय होनेसे उन्होंने कुछ समय बाद ही वैराग्यका अवलम्बन किया। उनके साथ उनके छोटे भाई श्रीरूप और वल्लभ संसारधर्मका त्याग कर श्रीचैतन्य महाप्रभुके शिष्य हो गये। सनातनके वैराग्य-सम्बन्धमें यह संवाद भित्तिहीन है।

वैष्णवतोषिणी ग्रन्थमें सनातनके सम्बन्धमें ऐसा लिखा है,—

पूर्वकालमें सर्वज्ञ जगद्गुरु नामक कर्णाटकदेशके एक राजा थे। भरद्वाजगोत्रीय ब्राह्मणवंशमें इनका जन्म हुआ था। इनमें ऐसी क्षमता थी, कि सभी राजे इनका सम्मान करते थे। उनके अनिरुद्धदेव नामक एक पुत्र था। उन्हीं विख्यातयशा अनिरुद्धदेवके औरससे उनकी दो स्त्रियोंके गर्भसे दो गुणवान् पुत्र उत्पन्न हुए। उन दोनोंके नाम थे रूपेश्वर और हरिहर। रूपेश्वरने सभी शास्त्रोंमें पाण्डित्य लाभ किया था।

अनिरुद्धदेवने सुरधाम सिधारनेके पहले अपना राज्य रूपेश्वर और हरिहरके बीच बांट दिया था। छोटा हरिहर बड़े रूपेश्वरको राज्यसे निकाल कर स्वयं समूचे राज्यका अधिकारी बन बैठा।

श्रीरूपेश्वर देव इस प्रकार दुश्मनों द्वारा राज्यसे भगाये जाने पर अपनी स्त्री और आठ घोड़ोंके साथ उत्तर पौलस्त्य देशको चल दिये। वहां शिखरेश्वर नामक राजाके साथ इनकी मित्रता हो गई और वे परम सुखसे वहीं रहने लगे। उसी स्थानमें रूपेश्वरके पद्मनाभ नामक एक गुणवान् पुत्र उत्पन्न हुआ। इस प्रकार बहुत दिन बीत गये। यथासमय पद्मनाभके अठारह कन्या और पांच पुत्र उत्पन्न हुए। उनमेंसे पहलेका नाम पुरुषोत्तम, दूसरेका जगन्नाथ, तीसरेका नारायण, चौथेका मुरारि और पांचवेंका नाम मुकुन्द था।

मुकुन्दके पुत्रका नाम द्विजवर कुमार था। लड़ाई झगड़ा हो जानेके कारण वे जन्म भूमि छोड़ बङ्गालमें आ बसे*। जो हो, कुमारके पुत्रोंमें तीन श्रेष्ठ तथा

* इस स्थानका नाम फतेयाबाद है जो फरीदपुर जिलेके अधीन है। (भक्तिरत्नाकर)

माननीय वैष्णवोंके प्रियतम थे। इन तीन पुत्रोंने इहकाल और परकालमें अपने गोत्रका उद्धार किया है। उन तीनोंके नाम यथाक्रम ये थे,—सनातन, रूप और वल्लभ (महाप्रभुने इनका नाम अनुपम रखा था)। ये तीनों भाई संसारविरागी हो गये और अपनी सम्पद् छोड़ कर भगवान् श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुके कृपाभाजन हुए। श्रीकृष्णकी प्रेमभक्तिरूप सम्पत्ति द्वारा इन्होंने साम्राज्यलाभ किया था। अर्थात् वे सम्राट् हुए थे। इन तीनोंमें सबसे छोटेका नाम वल्लभ था। वे ही हमारे (जायक) पिता थे। श्रीरूपके साथ नीलाचल पर जाते इन्होंने गौड़देशमें गङ्गामें देहत्याग कर श्रीरामचन्द्रका पादपद्मलाभ किया। सनातन और रूपने जा कर मथुरामण्डलके सभी गुप्त तीर्थोंका आविष्कार किया। वहां रह कर उन्होंने श्रीव्रजराजनन्दन श्रीकृष्णके प्रति जो भक्ति है, उसका समग्र प्रचार किया था। सनातन और रूपके प्रियतम मित्र रघुनाथ दास थे। वे श्रीराधाकृष्णके महाप्रेमरूप समुद्रकी तरङ्गमालामें हमेशा लहर खाया करते थे। श्रेष्ठ आर्योंने कहा है कि त्रिभुवनमें विख्यात सनातन और रूपका दृष्टान्त नहीं है, किन्तु आश्चर्य यही है, कि रघुनाथ दासने इन दोनोंका तुल्य पद ग्रहण किया था। गोपबालकका रूप धारण कर दूध दुहनेके बहाने स्वयं श्रीकृष्णने सनातन और रूपको दर्शन दिये थे। सनातन और रूपमें रूप ही छोटा था। उनके प्रणीत ग्रन्थ ये सब हैं, १ हंसदूतकाव्य २ उद्धवसन्देश, ३ अष्टादश छन्द। स्तव ग्रन्थ—४ उत्कलिकावल्ली, ५ गोविन्दविरुदावली ६ प्रेमेन्दुसिन्धुसागर आदि (इन सबोंका समष्टि ही स्तवमाला है। इसमें ७३ छोटे छोटे स्तवग्रन्थ हैं)

७ विदग्धमाधव और ८ ललितमाधव ये दो नाटक, ९ दानकेलिकौमुदी नामकी भाणिका, १० दो रसामृत अर्थात् भक्तिरसामृतसिन्धु और उज्ज्वलनीलमणि। ११ मथुरामाहात्म्य, १२ पद्यावली, १३ नाटकचन्द्रिका और १४ संक्षिप्तभागवतामृत। रसामृतसे ये सब ग्रन्थ रूपगोस्वामीके संग्रह हैं। इनके एक दूसरे बड़े भाई श्रील सनातनगोस्वामीकृत ग्रन्थोंमें प्रधान ये हैं,—१ श्रीभागवतामृत, हरिभक्तिविलास और उसकी दिक्दर्शिनी नामकी टीका। २ लीलास्तवटिप्पनी अर्थात् वैष्णवतोषणी।

सुविख्यात नैयायिक वासुदेव सार्वभौम और उनके सहचर विद्यावाचस्पति सनातनके शिक्षागुरु थे। श्रीपाद सनातनने अपनी श्रीभागवत (तोषणी) व्याख्यामें स्पष्ट रूपसे उसका उल्लेख किया है। यथा—

"भट्टाचार्यसार्वभौमं विद्यावाचस्पतीन् गुरून्।"

यह एक ओर जैसे संस्कृतज्ञ थे, दूसरी ओर अरबी भाषामें भी वैसी ही उनकी यथेष्ट अभिज्ञता थी। इसके सिवा राजकार्यमें सनातनकी असाधारण क्षमता थी। वे उस समय गौड़के शासनकर्त्ता हुसेन शाहके मन्त्री थे। हुसेन शाह इनके ऊपर कुल कार्यभार सौंप कर निश्चिन्त रहते थे। मालदहके प्राचीन रामकेलि ग्रामके ध्वंसावशेषमें आज भी श्रीपाद सनातन और उनके छोटे भाई श्रीरूपके अनेक स्मृति चिह्न दिखाई देते हैं। इसके सिवा यशोर जिलेके चेङ्गुटिया परगनेमें चेङ्गुटिया ग्रामके पास रूपसनातनका मठ और उनकी खुदवाई हुई एक बड़ी पुष्करिणी नजर आती है। ये श्रीमन्महाप्रभु गौराङ्गदेवके प्रधानतम पार्षद थे।

जिस दिन सनातनको श्रीगौराङ्गकी सुशीतल पदच्छाया मिली, उसी दिनसे इन महाप्रभावशील राजपुरुषके हृदयमें एक विशाल परिवर्तन हुआ। विषयव्यापारकी ओरसे इनका मन खिंच गया, राजकार्यमें धीरे धीरे उनका चित्त शिथिल होने लगा। मुसलमान राजाके यहां नौकरी करनेकी सनातनकी पहलेसे ही इच्छा न थी केवल डरके मारे उन्हों ने नौकरी पकड़ ली थी।

हुसेन शाहने सनातनको साकरमल्लिक उपाधिसे भूषित किया था। जो हो, सनातनका हृदय धीरे धीरे वैराग्यकी ओर झुकने लगा। जिस प्रकार श्रीचैतन्यका आश्रय ले कर तापित प्राणको शीतल करें, यही पिपासा चरितार्थ करें, वे केवल दिनरात इसीकी चिन्ता करने लगे। ऐसी अवस्थामें राजकार्यमें शिथिलता अवश्य आयी थी।

सनातनके प्रति महाप्रभुका अनुग्रह हुआ। वृन्दावन जाते समय वे रामकेलि ग्राममें पहुंचे। रामकेलि मालदह जिलेमें पड़ता है। आज भी रामकेलि

विद्यमान है, आज भी यहां वैष्णव महोत्सवादि हुआ करते हैं। महाप्रभुके रामकेलि ग्राम पहुंचने पर चारों ओर हर्षध्वनिकी बाढ़ उमड़ने लगी। गौड़ाधिप हुसेन शाह यह अद्भुत जनसङ्घ और हरिध्वनि सुन कर विस्मित हो गये। केशव छत्री, श्रीपाद सनातन और रूपने उन्हें श्रीगौराङ्गदेवके आनेका समाचार दिया। इस समय हुसेन शाह भी श्रीगौराङ्गके अलौकिक प्रभावसे अभिभूत हो उठे थे। जो हो, एक दिन रातको सनातन अपने छोटे भाई रूपको साथ ले दीनवेशमें महाप्रभुके पास गये और भूमि पर दण्डवत् हो दीनातिदीनकी तरह रोने लगे।

दोनोंमें अनेक धर्मालाप हुए। कुछ दिन ठहरनेके बाद महाप्रभुने वृन्दावन जानेकी इच्छा प्रकट की। इस समय श्रीपाद सनातनने महाप्रभुको कुछ सारगर्भ बातें कही थीं।

वैराग्य-तरङ्ग श्रीरूपके हृदयमें इस प्रकार उमड आई कि वे अधिक दिन घरमें ठहर न सके। वैराग्यका अवलम्बन कर वे श्रीमद्गौराङ्गचन्द्रसे मिलनेके लिये वृन्दावनकी ओर दौड़ पड़े। इधर सनातन तब भी विषय बंधनसे मुक्त नहीं हुए थे। परन्तु एक वणिक्के यहां वे दश हजार रुपये जमा कर संसार-बंधनसे मुक्त होनेका उपाय सोचने लगे।

राजकार्य्य ही सनातनका कठिन बंधन था। हुसेन शाह सनातनको दक्ष और बुद्धिमान् मन्त्री जान कर किसी हालतसे छोड़ना नहीं चाहते थे। किन्तु संसार वैराग्य और भगवदनुरागने बड़े जोरसे उनके हृदयको अधिकार कर लिया था। आखिर सनातनने यह स्थिर किया, कि हुसेन शाहका अप्रीतिभाजन होना ही मुक्तिका प्रधान उपाय है।

धीरे धीरे सनातनका हृदय वैराग्य और भगवद्भक्तिसे परिपूर्ण हो गया। अपनी अस्वस्थता प्रकट करते हुए उन्होंने नौकरी छोड़ दी। राजकार्य्यमें विशृङ्खला उपस्थित हुई। सनातनकी हालत कैसी है, यह जाननेके लिये हुसेन शाहने राजवैद्यको सनातनके पास भेजा। वैद्यने जा कर देखा, कि सनातनके शारीरिक कोई अस्वस्थता नहीं है। वे रात दिन पण्डितोंके साथ शास्त्रालोचना किया करते हैं। राजवैद्यने यह हाल हुसेन शाहसे जा कहा। हुसेन शाहको अब समझनेमें देर न लगी, कि सनातनका संसारमें रहनेकी बिलकुल इच्छा नहीं है। वे मन्त्रीके ऐसे आचरण पर बड़े बिगड़े जिससे बुद्धिमान् सनातनकी आशालता मुकुलित हुई। सुलतान हुसेन शाह एक दिन अपने नौकरके साथ सनातनके घर पर हठात् जा पहुंचे और असली बात अपनी आंखों देखी।

बादशाहके पूछने पर सनातन अब मनका भाव छिपा न सके, उन्होंने सुलतानसे अपना भाव साफ साफ कह सुनाया। इस पर सुलतान उन्हें भय दिखलाने लगा। सनातनने बड़े विनीत भावमें कहा, आपकी जो इच्छा हो, कर सकते हैं। सनातनका स्वाधीन उत्तर सुन कर हुसेन शाह और भी आग बबूला हो गया। डर दिखलानेसे कहीं सनातनका भाव बदल न जाय, यह सोच कर उसने सनातनको कैद कर लिया। इस समय सनातनने एक ऐसी कविता बनाई जिसे सुन कर जिस रक्षकके हवाले उन्हें कर दिया था, उसका हृदय पिघल गया। लेकिन वह करता ही क्या, राजाज्ञाको किस प्रकार टाल सकता था। सनातनने उसे समझा कर कहा, सुलतान दक्षिणकी ओर गये हे, आनेमें विलम्ब है। आने पर मैं उन्हे समझा बुझा दूंगा। आखिर सात हजार रुपये ले कर उसने सनातनको छोड़ दिया। अब वे छुटकारा पा कर ईशान नामक एक नौकरके साथ श्रीगौराङ्गके उद्देशसे श्रीवृन्दावनकी ओर चल दिये। जंगली और पहाड़ी रास्तामें उन्हें कई दिन भूखों रहना पड़ा। एक पहाड़ पर आठ डकैतोंके चंगुलमें पड़ कर उनके प्राण जाते जाते पर हो गये थे। वृन्दावन यात्राके पहले ईशानने आठ हजार अशर्फियां साथ लेली थी। सनातनको यह बिलकुल मालूम नहीं था। उन अशर्फियोंको आठों डकैतोंके हवाले कर ईशानने सनातन की जान बचायी। उसने केवल सात ही अशर्फी दी थी, एक अपने पास रख ली थी। सनातनने ईशानसे कहा, तुम रुपये ले कर मेरे साथ चले हो, इसलिये मेरे साथ जानेकी अब तुम्हारी जरूरत नहीं। वही एक अशर्फी ले कर तुम चले जाओ।' ईशान बड़ा ही दुःखित हो कर वहांसे विदा हुआ।

सनातन हाजीपुर पहुंचे, श्रीकान्त हाजीपुरमें हुसेन शाहके लिये घोड़े खरीद रहे थे। वे सनातनके बहनोई होते थे। श्रीकान्तने दूर हीसे साधारण वस्त्र पहने मैले कुचैले वेशमें सनातनको आते देखा। आपसमें मिलने पर जब सब बातें मालूम हुईं, तब श्रीकान्तने सनातनको एक मोटा कम्बल दे कर यह सङ्कल्प छोड़ देनेके लिये तरह तरहके उपदेश दिये। किन्तु सनातनने एक भी न सुना। वे वाराणसीकी ओर चल दिये। जब उन्होंने सुना कि महाप्रभु काशीधाम पहुंच गये तब उनके आनन्दका पारावार न रहा। काशी जा कर वे बड़ी व्यग्रतासे महाप्रभुकी खोज करने लगे।

इस समय महाप्रभु चन्द्रशेखर नामक किसी वैद्यके घर ठहरे हुए थे। सनातनका अनुसन्धान सफल हुआ। महाप्रभु सनातनका दैन्य आर्तनाद सुन कर बड़े व्याकुल हुए उनकी दोनों आंखें डबडबा आईं।

महाप्रभुने बड़े प्यारसे आलिङ्गन कर सनातनसे कहा मैं तुम्हारे जैसे भक्तको स्पर्श कर पवित्र हो गया।

इसके बाद चन्द्रशेखर और तपन मिश्रसे वे मिले। चन्द्रशेखरको जब मालूम हुआ, कि वे सिर्फ एक वस्त्र ले कर आये हैं, तब उन्होंने पहननेके लिये सनातनको एक नया कपड़ा दिया। सनातनने उसे न लेते हुए कहा नया वस्त्र ले कर मैं क्या करूंगा, मुझे एक पुराना कपड़ा दीजिये। सनातनने पुराना वस्त्र ले कर उसे फाड़ डाला और उससे दो कौपीन और एक कन्था बनाये। इस समय वे बिलकुल वैरागीसे दिखाई देने लगे। यह वेश देख कर दयामय महाप्रभु बड़े आनन्दित हुए। भोजनका समय उपस्थित हुआ, सनातन महाप्रभुका जूठा पा कर कृतार्थ हुए। एक महाराष्ट्री ब्राह्मण यद्यपि सनातनको प्रतिदिन अपने यहां जिमाते थे पर उन्होंने प्रतिदिन ब्राह्मणका अन्न ध्वंस करना अच्छा नहीं समझा। इस प्रकार काशीमें महाप्रभुके साथ रह कर वे माधुकरी वृत्तिके अवलम्बन पर दिन बिताने लगे।

सनातनके विनय वैराग्य और दैन्य देख कर महाप्रभु परम सन्तुष्ट हुए। सनातन कौपीन पहनते, माधुकरी द्वारा जीवन बिताते थे फिर भी भोटकम्बल दिया हुआ भोट कम्बल सदा उनके शरीर पर रहता था। महाप्रभुने देखा, कि सनातनके शरीर पर यह मूल्यवान् कम्बल शोभा नहीं पाता। उन्होंने कुछ कटाक्ष भावमें भोटकम्बलकी ओर दृष्टि फेरी। बुद्धिमान् सनातन उसी समय महाप्रभुका मनोगत भाव समझ कर स्नान करने गंगामें चले गये। वहां उन्होंने देखा कि एक गौड़ीय अपने शरीरका फटा हुआ कपड़ा सुखा रहा है। सनातनने उससे कहा, कि मेरा यह कम्बल आप लीजिये और अपना चीथड़ा मुझे दीजिये। गौड़ीयाने पहले तो इसे मजाक समझा, पीछे सनातनके विशेष हठ करने पर आपसमें बदल लिया। सनातन बड़े हृष्ट चित्तसे वह चीथड़ा ले कर चल दिये। गौड़ीया विस्मित भावसे जहां तक नजर जा सकी सनातनको देखता रहा। इसके बाद सनातन महाप्रभुके पास पहुंचे।

श्रीगौराङ्ग महाप्रभु सनातनके आचरण पर बड़े आनन्दित हुए। उन्होंने समझा, कि प्रेमभक्तिका विमल धर्म प्रचार करनेके लिये श्रीरूप और सनातन ही उपयुक्त पात्र हैं। इससे पहले वे श्रीरूपको शक्तिसञ्चार कर उपदेश दे चुके थे। अब वे काशीधाममें वैष्णव धर्मके सारसिद्धान्तका उपदेश सनातनको देने प्रवृत्त हुए। श्रीपाद सनातनने जिज्ञासु भावमें महाप्रभुके पास बैठ कर जो सब धर्मतत्त्व सुने उनके ग्रन्थोंमें वही अभिव्यक्त हुए हैं। काशीधाममें ही श्रीपाद सनातन महाप्रभुसे जो सब उपदेश पाये थे, चैतन्यचरितामृत ग्रन्थमें उन्हीं उपदेशोंका संक्षिप्त मर्म लिपिबद्ध है।

इसके बाद महाप्रभुके आदेशसे वे वृन्दावन गये। वहां जा कर वे कठोर साधनामें लग गये।

श्रीपाद सनातन इस समय जो सब ग्रन्थ लिख गये हैं गौड़ीय वैष्णवोंका वही प्रधान अवलम्बन है। उनके बनाये हुए हरिभक्तिविलास और उसकी टीका गौड़ीय वैष्णवोंके दैनिक आचार व्यवहार और भजनपूजनका प्रधान ग्रन्थ है। उनकी 'तोषणी' व्याख्यामें श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्धके श्लोकोंका जैसा अति अद्भुत समुज्ज्वल आलोक विकीर्ण हुआ है, किसी प्राचीन टीकामें श्रीभागवतका प्रकृत मर्म वैसा नहीं दिखलाया गया है।

उनका बनाया वृहद्भागवतामृत वैष्णव सिद्धान्तका एक उत्कृष्ट ग्रन्थ है। मर्मनिपुण सनातन जब विषय

व्यापारमें लिप्त थे, उस समय भी वे हुसेन शाहके वृहत् राज्यके महामन्त्री थे। सनातनने जब भक्ति राज्यमें प्रवेश किया, तब भी उनका पद्गौरव प्रधानतम मन्त्रीकी तरह हो उठा। कौपीनधारी सनातन जो विधि व्यवस्था कर गये हैं, सारा वैष्णवसमाज उसीको मान कर चलता है। श्रीवृन्दावनमें भुवनविख्यात श्रीगोविन्दजीका जो विशाल मन्दिर है, वह इन्हीं कौपीन कन्था करङ्गधारी सनातन और उनके छोटे भाई श्रीरूपके प्रयत्नसे बनाया गया है। इन दोनों भाइयोंके कीर्त्तिकलापके अनेक चिह्न आज भी श्रीवृन्दावनधाममें दिखाई देते हैं। फलतः वर्त्तमान श्रीवृन्दावनतीर्थ इन्हींके विशालकीर्त्तिका साक्षिस्वरूप है। आज भी भक्त लोग भक्तिपूत चित्तसे श्रीवृन्दावनमें सनातनका समाधिस्थान देखने आते हैं। जयपुर आदि स्थानोंमें आज भी सनातनके अनेक अनुशिष्य वर्त्तमान हैं। सनातन बीच बीचमें पुरीधाम जा कर श्रीमन्महाप्रभुके दर्शन कर आते थे। उड़ीसामें भी सनातनकी शिष्यशाखा है। तोरणीटीकाकी भूमिका पढ़नेसे जाना जाता है, कि सनातनने जब भागवतके दशम स्कन्धकी यह टीका लिखनी आरम्भ की, तब श्रीमद् गोपालभट्ट और दास रघुनाथ गोस्वामी आदि उनके सहचर थे।

श्रीपाद सनातन दीर्घजीवी थे, महाप्रभुके तिरोधानके बहुत पीछे ये श्रीवृन्दावनधाममें वैशाखीपूर्णिमाको सुरधाम सिधारे।

गौड़ीय वैष्णव जनसाधारणका विश्वास है, कि गोस्वामीने किसीको भी मन्त्रदीक्षा नहीं दी। किन्तु उनके समसामयिक उत्कलका 'निराकार-सारस्वत' ग्रन्थ पढ़नेसे जाना जाता है, कि उन्होंने महाप्रभु श्रीचैतन्यदेवके आदेशसे उड़ीसाके प्रसिद्ध भक्तकवि अच्युत दासके कानोंमें मंत्र दिया था।

सनातन चक्रवर्त्ती—एक प्राचीन वङ्गकवि। इन्होंने द्वादशस्कन्ध भागवत सुललित छन्दमें वङ्गभाषामें अनुवाद किया।

सनातनतम (सं० पु०) अयमेषामतिशयेन सनातनः तमप्। विष्णु। (भारत १३।१४९।१०६)

सनातनधर्म (सं० पु०) १ प्राचीन धर्म। २ परम्परागत धर्म। ३ वर्त्तमान हिन्दू धर्मका वह स्वरूप जो परम्परासे चला आता हुआ माना जाता है। इस धर्ममें पुराण, तन्त्र, बहुदेवोपासना, प्रतिमापूजन, तीर्थमाहात्म्य सब समान रूपसे माननीय हैं।

सनातनपुरुष (सं० पु०) विष्णु भगवान्।

सनातनशर्मन् (सं० पु०) तात्पर्यदीपिका नाम्नी मेघदूतटीकाके प्रणेता।

सनातनी (सं० स्त्री०) सनातन टित्वात् ङीप्। १ दुर्गा। २ लक्ष्मी। ३ सरस्वती। ४ जो बहुत दिनोंसे चला आता हो, जिसकी परंपरा बहुत पुरानी हो। ५ सनातनधर्मका अनुयायी।

सनाथ (सं० त्रि०) नाथेन प्रभुणा सह वर्त्तमानः। १ प्रभुके साथ वर्त्तमान, जिसकी रक्षा करनेवाला कोई स्वामी हो। (स्त्री०) २ सनाथा जीवद्भर्त्तृका स्त्री, वह स्त्री जिसका स्वामी मौजूद हो।

सनाथता (सं० स्त्री०) सनाथस्य भावः तल् टाप्। सनाथका भाव या धर्म।

सनाभ (सं० पु०) सनाभि, सहोदर भाई।

सनाभा (सं० स्त्री०) श्वेत पाटलवृक्ष, सफेद पढ़ारका पेड़।

सनाभि (सं० पु०) समानो नाभिर्गोत्रमस्य। (ज्योतिर्जनपदस्येति। पा ६।३।८५) इति समानस्य स। १ सपिण्ड, एक ही पूर्वजसे उत्पन्न पुरुष। २ सहोदर भाई। (त्रि०) ३ तुल्य, समान। ४ स्नेहयुक्त।

सनाभ्य (सं० पु०) सपिण्ड, ज्ञाति, सात पीढ़ियोंके भीतर एक ही वंशका मनुष्य। (मनु ५।८४)

सनाम (सं० त्रि०) समानं नाम यस्य, समानशब्दस्य, स आदेशः। समान नामयुक्त, एक नामका।

सनामक (सं० त्रि०) समानं नाम यस्य, कन्। १ समान नामयुक्त। (पु०) २ शोभाञ्जनवृक्ष, सहिजनका पेड़।

सनामन् (सं० त्रि०) समान नामयुक्त।

सनाय (अ० स्त्री०) एक पौधा जिसकी पत्तियां दस्तावर होती हैं, स्वर्णपत्री, सोनामुखी।

इस पौधेकी अधिकतर जातियाँ अरब, मिस्र, यूनान, इटली आदि पश्चिमके देशोंमें होती हैं। केवल एक जातिका पौधा भारतवर्षके सिन्ध, पंजाब, मन्द्राज आदि

शब्दके बाद तत शब्द रहनेसे विकल्पमें सम् शब्दके मकार-का लोप होता है। सन्तत, सतत। (अव्य०) २ सदा निरन्तर, बराबर, लगातार।

सन्ततज्वर (सं० पु०) ज्वरभेद। सात दिन, दश दिन या बारह दिन तक लगातार जो ज्वर रहता है उसे संतत कहते हैं। ७, १० या १२ दिन यह जो अनियत कालकी कल्पना की गई है उसमें समझना होगा, कि वातिकादि भेद अर्थात् वायुकी प्रबलतासे ७ दिन, पित्तकी प्रबलतासे १० दिन, पित्तकी प्रबलतासे १२ दिन लगातार ज्वर भुगतना होगा। इसकी गणना विषम ज्वरोंमें की जाती है।

सन्तताभ्यास (सं० पु०) सन्ततं यथा तथा अभ्यासः। निरन्तराभ्यास, स्वाध्याय। (भूरिप्र०)

सन्तति (सं० स्त्री०) सम्-तन्-क्तिन्। १ गोत्र। २ पंक्ति। ३ विस्तार, प्रसार। ४ परम्पराभव, किसी बातका लगातार होता रहना। ५ बालबच्चे, सन्तान, औलाद। ६ व्याप्ति, फैलाव। ७ पारम्पर्य। ८ अविच्छेद, धारा। ९ दल, झुण्ड। १० दक्षकी कन्या और क्रतुकी पत्नी। (मार्क० पु० ५०।२३) ११ अलर्कके एक पुत्रका नाम।

सन्ततिपथ (सं० पु०) योनि, जिस मार्गसे संतान उत्पन्न होती है, भग।

सन्ततिमत् (सं० त्रि०) सन्तति अस्त्यर्थे मतुप्। सन्तति-विशिष्ट, औलादवाला।

सन्ततिहोम (सं० पु०) होमभेद।

सन्ततेयु (सं० पु०) रौद्राश्वके एक पुत्रका नाम।

सन्तनि (सं० त्रि०) सतत गमनकारी, हमेशा चलनेवाला।

सन्तनु (सं० पु०) राधाके साथ रहनेवाला एक बालकका नाम। (पद्मरत्न २।४।४६)

सन्तपन (सं० क्ली०) सम्-तप-ल्युट्। सम्यक्रूपसे तपन।

सन्तप्त (सं० त्रि०) सम्-तप-क्त। १ परिश्रम द्वारा श्रान्त, बहुत थका हुआ। २ जला हुआ। ३ जिसे बहुत अधिक सन्ताप हो, दुःखी, पीड़ित। ४ विमनस, मलिन मन।

सन्तमक (सं० पु०) एक प्रकारका रोग, दमा।

सन्तमस् (सं० क्ली०) समन्तात् तमः (अवसमन्धेभ्यस्तमसः। पा ५।४।७९) इति अच्। १ अन्धकार, तम, अंधेरा। २ मोह।

सन्तरण (सं० क्ली०) सम्-तॄ-ल्युट्। १ सम्यक् प्रकारसे तरण, अच्छी तरह तैरने या पार होनेकी क्रिया। (त्रि०) २ तारक, तारनेवाला। ३ नाशक, नष्ट करनेवाला।

सन्तरुत्र (सं० त्रि०) उपद्रवके निवारक।

सन्तर्जन (सं० पु०) १ डाँट डपट करना, डराना धमकाना। २ ताड़ना, भगाना। ३ कार्त्तिकेयके एक अनुचरका नाम।

सन्तर्द्दन (सं० पु०) भागवतके अनुसार राजा धृष्टकेतुके एक पुत्रका नाम।

सन्तर्पक (सं० त्रि०) सन्तर्पकारक, तृप्तिकारक।

सन्तर्पण (सं० क्ली०) सन्तर्पयति इन्द्रियानीति सम्-तृप्-णिच्-ल्युट्। १ एक प्रकारका चूर्ण जिसमें दाख, अनार, खजूर, केला, लाजाका चूर्ण, मधु और घृत पड़ता है। (त्रि०) २ तृप्तिकारक, संतुष्ट करनेवाला।

सन्तर्पणीय (सं० त्रि०) सम्-तृप्-णिच्-अनीयर्। सन्तर्पण-योग्य।

सन्तर्प्य (सं० त्रि०) सम्-तर्पि-यत्। सन्तर्पणार्ह।

सन्तस्थान (सं० पु०) संतोंके रहनेका स्थान, साधुओं-का निवासस्थान, मठ।

सन्ताड्य (सं० त्रि०) सम्-तड्-ण्यत्। सम्यक् रूपसे ताड़नके योग्य, भगाने लायक।

सन्तान (सं० पु०) सन्तनोति विस्तारयति पुत्रपुत्रादीनिति सम्-तन-विस्तारे (तनो ते रुपसंख्यानं। पा ३।१।१४०) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या ण। १ कल्पवृक्ष, देव-तरु। संतन्यते इति तन्-घञ्। २ वंश, कुल। ३ बाल-बच्चे, लड़के बाले, औलाद ४। विस्तार, फैलाव। ५ प्रबन्ध, इन्तजाम। ६ धारा, वह प्रवाह जो अविच्छिन्न रूपसे चलता हो। ७ व्याप्ति। ८ अस्त्रविशेष। महाभारतमें लिखा है, कि इस अस्त्रसे विद्ध होने पर मनुष्य पञ्चत्वको प्राप्त होता है। (५।९६।४०)

सन्तानक (सं० पु०) सन्तान-कन्। १ कल्पवृक्ष, देवतरु। २ पुराणनुसार एक लोक जो ब्रह्मलोकसे परे है। (त्रि०) ३ विस्तृत, फैला हुआ।

सन्तानकमय (सं० त्रि०) १ देवतरुविशिष्ट। २ पुत्रादि युक्त।

सन्तानगणपति (सं० पु०) गणपतिभेद।

सन्तानगोपाल (स० पु०) गोपालभेद ।

सन्तानवत् (स० त्रि०) सन्तान अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व । सन्तानविशिष्ट औलादवाला ।

सन्तानिक (स० त्रि०) सन्तानविशिष्ट ।

सन्तानिका (स० स्त्री०) सन्तानो विस्तारोऽस्त्यस्या इति सन्तान ठन्-टाप् । १ मकड़ीजाल नामकी घास । २ छुरी का फल चाकूका फल । ३ फेन । ४ दुग्धका सर, मलाई, माठा । इसका गुण—गुरु, शीतल, बलकर पित्त, रक्त वातनाशक । ५ सुमिष्ट द्रव्यविशेष । पाक-राजेश्वरमें इसका प्रस्तुत प्रणाली इस प्रकार लिखी है,—चार शराव या चार सेर दूधको उबाल कर मलाई निकालें । पाव भर घीमें उसे भून कर पाव सेर चाशनीमें उसे मिलावें । इसीका नाम सन्तानिका है । यह अत्यन्त स्वादिष्ट और गुरु होती है । (पाकराजेश्वर)

५ क्षारमागर ।

सन्तानिन् (स० पु०) पारस्पद ।

सन्तानित (स० त्रि०) सन्तान अस्त्यस्य इतच् । विस्तारित फैला हुआ ।

सन्ताप (स० पु०) सम् तप घञ् । १ अतिशय ताप, अग्नि या धूप आदिका ताप जलन, आंच । संस्कृत पर्याय—संज्वर, ताप और उष्ण । २ सम्यक् ताप, कष्ट, दुःख । ३ मानसिक कष्ट, मनोवेदना । ४ रिपु शत्रु । ५ ज्वर । ६ दाहरोग । दाहरोग देखो ।

सन्तापन (स० पु०) सन्तापयतीति सम् तप णिच् ल्यु । १ कामदेवके पांच बाणोंमेंसे एक बाणका नाम । २ सन्ताप देनेकी क्रिया, जलाना । ३ बहुत अधिक दुःख या कष्ट देना । ४ पुराणानुसार एक प्रकारका अस्त्र जिसके चलानेसे शत्रुको सन्ताप होना माना जाता है । (त्रि०) ५ ताप पहुंचानेवाला, जलानेवाला । ६ दुःख देनेवाला कष्ट पहुंचानेवाला ।

सन्तापवत् (स० त्रि०) सन्ताप अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व । सन्तापविशिष्ट, सीन्तापवाला ।

सन्तापित (स० त्रि०) सम् तप-णिच्-क्त । सन्तापयुक्त जिसे बहुत सन्ताप पहुंचाया गया हो ।

सन्तापिन् (स० त्रि०) सम्-तप् णिच्-णिनि । सन्ताप कारक दुःख देनेवाला ।

सन्तापी (स० पु०) सन्ताप देनेवाला, दुःखदायी ।

सन्ताप्य (स० त्रि०) सम्-तप णिच् ण्यत् । १ सन्ताप, कष्ट या दुःख देनेके योग्य । २ जलानेके योग्य, तपानेके लायक ।

सन्तार (स० पु०) १ तैरना । २ तरण, पार करना ।

सन्तारक (स० त्रि०) सन्तारकारी, तैरनेवाला ।

सन्तार्य (स० त्रि०) सन्तरणशील, तैरनेवाला ।

सन्ति (स० स्त्री०) सनु दाने क्तिच् (जनः क्तिचि कोसरवा स्मात्वस्यात्वा । पा ६।४।४५) इति न लोपश्चात्वा । १ दान । २ अवसान, अन्त ।

सन्तुषित (स० पु०) देवपुत्रभेद ।

सन्तुष्ट (स० त्रि०) सम्-तुष क्त । १ जिसका सन्तोष हो गया हो, जिसकी तृप्ति हो गई हो । २ जो माना गया हो, जो राजी हो गया हो ।

सन्तुष्टि (स० स्त्री०) सम्-तुष् क्तिन् । सम्यक् तृप्ति, सन्तोष ।

सन्तेजन (स० क्ली०) ताक्ष्णीकरण, तेज करना ।

सन्तोदिन् (स० त्रि०) आघातकारी ।

सन्तोष (स० पु०) सम्-तुष घञ् । १ मनकी वह वृत्ति या अवस्था जिसमें मनुष्य अपनी वर्तमान दशामें ही पूर्ण सुखका अनुभव करता है । पर्याय—धृति, स्वास्थ्य । जो सभी विषयोंमें सन्तुष्ट रहते हैं उन्हें फिर किसी विषय में दुःख नहीं होता । पातञ्जल दर्शनमें लिखा है कि सन्तोष एक योगाङ्ग है, यह नियमके अन्तर्गत है । शौच, सन्तोष, तपस्या स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान ये सब नियम कहलाते हैं । योगियोंको पहले शौच सिद्धि हो जाने पर सन्तोष अवलम्बन करना चाहिये । चाहे जिस अवस्थामें क्यों न रहे सभी अवस्थामें सन्तोष रखना होगा । इस प्रकार जब सन्तोषकी सिद्धि होती है, तब अनुत्तम सुख लाभ होता है ।

शास्त्रमें लिखा है, कि योगी जब योगमार्गका अवलम्बन करे, तब पहले यत्नपूर्वक बाह्यशौच और पीछे अभ्यन्तर शौचमें सिद्ध होंगे । इस अभ्यन्तर-शौचमें सिद्धि होनेसे ही सन्तोष लाभ होता है । सुखके लिये प्रयत्न न करके यदि विषय सुखको दुःखका कारण समझ कर परित्याग किया जाय, तो सभी विषयों और

सभी अवस्थामें सन्तोषलाभ होता है। इस सन्तोषके सिद्ध होनेसे अखण्ड सुख प्राप्त होता है। (पातञ्जलद०)

२ शान्ति, तृप्ति। ३ प्रसन्नता, सुख, हर्ष, आनन्द।

सन्तोषण (सं० क्ली०) सम्-तुष-ल्युट्। संतोष, सन्तुष्टि।

सन्तोषणीय (सं० त्रि०) सम् तुष-अनीयर्। सन्तोषार्ह, सन्तोष करने योग्य।

सन्तोषवत् (सं० त्रि०) सन्तोष अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। सन्तोष युक्त, संतुष्ट, आल्हादित।

सन्तोषित (सं० पु०) जिसका सन्तोष हो गया हो, संतुष्ट। इस शब्दका प्रयोग केवल हिन्दी कवितामें होता है।

सन्तोषिन् (सं० त्रि०) सन्-तुष-णिनि। सन्तोषविशिष्ट, सन्तुष्ट।

सन्तोष्टव्य (सं० क्ली०) संतुष्टिके योग्य।

सन्तोष्य (सं० त्रि०) सम् तुष यत्। सन्तोषार्ह, सन्तोषके लायक।

सन्त्य (सं० त्रि०) १ फलप्रद, फल देने वाला। (पु०) २ अग्निदेव। (ऋक् १।१५।१२)

सन्त्याग (सं० पु०) सम् त्यज-घञ्। सम्यक्रूपसे त्याग, एक दम छोड देना।

सन्त्यागिन् (सं० त्रि०) सम्-त्यज् णिनि। सम्यक्रूपसे त्यागकारी, एकदम छोड़ देनेवाला।

सन्त्याज्य (सं० त्रि०) सम्-त्यज् ण्यत्। त्यागयोग्य, छोड देने लायक।

सन्त्राण (सं० क्ली०) सम्-त्रा-ल्युट्। सम्यक्रूपसे त्राण, अच्छी तरह रक्षा करनेकी क्रिया। (मार्कण्डेयपु० ६१।७१)

सन्त्रास (सं० पु०) सम् त्रसु-घञ्। सम्यक् भय।

सन्त्रासन (सं० क्ली०) सम्-त्रस्-णिच् ल्युट्। सम्यक् त्रास, भय।

सन्दंश (सं० पु०) सन्दशतीवेति सम्-दन्श अच्। १ कङ्कमुख, संडसी नामका लोहेका औजार। यह दो प्रकारका होता है, सनिग्रह सन्दंश और अनिग्रह सन्दंश। कर्मकारको संडसीकी तरह अर्थात् खीलदार औजारको सनिग्रह सन्दंश और जिसमें खील नहीं होती उसे अनिग्रह सन्दंश कहते हैं। ये दोनों प्रकारके औजार १६ अंगुल लंबे होंगे। चमड़े, मास, शिरा और स्नायुमें चुभे हुए कांटे आदि इस औजारसे निकाले जाते हैं।

२ न्याय या तर्कके अनुसार अपने प्रतिपक्षीको दोनों ओरसे उसी प्रकार जकड या बांध देना जिस प्रकार सड़सासे कोई बरतन पकडते हैं।

सन्दंशक (सं० पु०) सन्दंश स्वार्थे कन्। सन्दंश।

सन्दंशिका (सं० स्त्री०) सन्दशतीवेति सम् दन्श ण्वुल्, टापि अत इत्वं। १ संडसी। २ चिमटी। ३ कैंची।

सन्दंशित (सं० त्रि०) सम्-दंश-क्त। सम्यक्रूपसे दंशित।

सन्दद् (सं० त्रि०) सम्मुखमें सम्यक् दानकारी।

सन्दर्प (सं० पु०) सन्-दृप् घञ्। सम्यक् दर्प, अत्यन्त अभिमान।

सन्दर्भ (सं० पु०) सम् दृभ ग्रन्थने-घञ्। १ रचना। २ प्रबन्ध। ३ ग्रन्थन। ४ ग्रन्थ विशेष, परम्परान्वित रचना।

जिस ग्रन्थमें गूढ अर्थोंका प्रकाश और सारोक्ति है तथा जो नाना अर्थविशिष्ट है और जिससे सभी विषय जाने जाते हे, उसे सन्दर्भ कहते हैं। सन्दर्भ ग्रन्थको टीका ग्रन्थ विशेष कहा जा सकता है। ५ संग्रह। ६ विस्तार।

सन्दरु—पञ्जाब प्रदेशके वसहर राज्यान्तर्गत एक गिरिसङ्कट, हिमालयको पार कर इस पथसे कुणावर जाया जाता है। उसका सर्वोच्च स्थान समुद्रपृष्ठसे १६ हजार फुट ऊंचा है। यह अक्षा० ३१°२४´ उ० तथा देशा० ७८°२´ पू०के बीच विस्तृत है। वर्षमें सिर्फ दो मास यह स्थान वर्फहीन रहता है। उस समय स्थानीय अधिवासी उसी पथसे जाते आते हैं।

सन्दर्श (सं० पु०) सम्-दृश-अच्। सन्दर्शन।

सन्दर्शन (सं० पु०) सम् दृश-ल्युट्। १ सम्यक् प्रकारसे दर्शन, अच्छी तरह देखनेकी क्रिया, अवलोकन। २ परीक्षा, इम्तहान। ३ ज्ञान। ४ मूर्त्ति, आकृति, शक्ल। ५ अच्छी तरह दिखाना। ६ रामायणके अनुसार एक द्वीपका नाम।

सन्दर्शनद्वीप (सं० पु०) द्वीपभेद। (रामायण ४।४०।६४)

सन्दर्शनपथ (सं० पु०) सन्दर्शनस्य पन्था, पच् समासान्त। सन्दर्शनका पथ, अवलोकनपथ।

सन्दर्शयितृ (सं० त्रि०) सम्-दृश णिच तृच्। सम्यक् रूपसे दर्शनकारक, अच्छी तरह देखनेवाला।

सन्दष्ट (सं० त्रि०) सम्-दंश-क्त। १ संश्लिष्ट, संलग्न। २ काटा, चाबना।

सन्दातृ (सं० क्ली०) सम्-दा-तृच्। सम्यक् दान।

सन्दान (सं० क्ली०) सं-दा-ल्युट्। १ दाम, रस्सी। २ शृङ्खल बांधनेकी सिकड़ी आदि। ३ सम्यक् रूपसे दान। ४ बंधन, बांधनेकी क्रिया। ५ सम्यक् छेदन। ६ हाथीके दोनों जानुका अधोभाग, गुल्फका ऊर्ध्वदेश, कपोलदेश, जहांसे उसका मद बहता है।

सन्दानिका (सं० स्त्री०) रिट्खदिर।

सन्दानित (सं० त्रि०) संदान जातमस्येति सन्दान इतच्। १ बद्ध, शृङ्खलित। २ पशादिमें बद्ध। ३ छिन्न।

सन्दानिनी (सं० स्त्री०) गोगृह, गोशाला।

सन्दाव (सं० पु०) सम्यक् दाव।

सन्दाव (सं० पु०) सं दु (समि-युद्रुदुवः। पा ३।३।२३) इति घञ्। पलायन, भागनेकी क्रिया।

सन्दिग्ध (सं० त्रि०) सम् दिह क्त। १ संदेहयुक्त, जिसमें किसी प्रकारका संदेह हो। (पु०) उत्तराभास, मिथ्या उत्तरका एक लक्षण। ३ एक प्रकारका व्यंग्य जिसमें यह नहीं प्रकट होता, कि वाचक या व्यंजक व्यंग्य है।

सन्दिग्धत्व (सं० क्ली०) सन्दिग्धस्य भाव त्व। १ सन्दिग्धका भाव या धर्म, संदेह। २ अलङ्कारशास्त्रोक्त दोषभेद। यह दोष उस समय माना जाता है जब कि किसी उक्तिका ठीक ठीक अर्थ प्रकट नहीं होता, अर्थके सम्बन्धमें कुछ संदेह बना रहता है।

सन्दिग्धमति (सं० त्रि०) सन्दिग्धा मतिर्यस्य। जिसकी बुद्धि सर्वदा संदेहयुक्त हो, शङ्का, वहमी।

सन्दिग्धार्थ (सं० पु०) संदिग्धोऽर्थः। १ संदेहविषयी भूतार्थ यह अर्थ जिसमें संदेह हो। (त्रि०) २ संदिग्धार्थविशिष्ट, जिसमें संदेह हो।

सन्दित (सं० त्रि०) सन् दो-क्त। बद्ध बंधा हुआ।

संदिदृक्षु (सं० त्रि०) संद्रष्टुमिच्छुः, सम् दृश-सन् उ। संदर्शन करनेमें इच्छुक देखनेकी अभिलाषा।

सन्दिधक्षु (सं० त्रि०) संदग्धुमिच्छुः सम् दह सन उ। सम्यक् रूपसे दग्ध करनेमें इच्छुक।

सन्दिष्ट (सं० क्ली०) सम् दिश क्त। १ वार्त्ता, बातचीत। २ समाचार खबर। (त्रि०) ३ कथित कहा हुआ बताया हुआ।

सन्दिष्टार्थ (सं० पु०) संदिष्टोऽर्थो यस्य। वह जो एकका समाचार दूसरे तक पहुंचाता हो, संदेसा ले जानेवाला दूत।

सन्दिह् (सं० स्त्री०) सम्यक् उपचित।

सन्देहान (सं० पु०) सं दिह शानच्। संदिग्ध संदेहान्वित।

सन्दी (सं० स्त्री०) शय्या, पलंग। "निषद्या खट्विका सन्दी" (त्रिका०)

सन्दीन (सं० त्रि०) दीन, दुःखी, दरिद्र।

सन्दीपक (सं० त्रि०) सन् दीप ण्वुल्। सम्यक् रूपसे उद्दीपक, उद्दीपन करनेवाला।

सन्दीपन (सं० क्ली०) सम् दीप ल्युट्। १ सम्यक् रूपसे दीपन, सम्यक् प्रकारसे उत्तेजन उद्दीप्त करनेकी क्रिया। (पु०) २ कृष्णके गुरुका नाम। ३ कामदेवके पांच बाणोंमेंसे एक बाणका नाम। (त्रि०) ४ सन्दीपनकारी, उत्तेजन करनेवाला।

सन्दीपनवत् (सं० त्रि०) संदीपन अस्त्यर्थे मतुप मस्य व। संदीपनविशिष्ट, उत्तेजनविशिष्ट।

सन्दीपनी (सं० स्त्री०) १ सङ्गीतमें पञ्चम स्वरकी चार श्रुतियोंमेंसे तीसरी श्रुति। (त्रि०) २ संदीपन करनेवाला।

सन्दीपित (हिं० वि०) १ जिसका संदीपन किया गया हो मन्दाग्नि उद्दीप्त। २ प्रज्वलित, जलाया हुआ।

सन्दीप्य (सं० पु०) १ मयूरशिखावृक्ष। (त्रि०) २ संदीपन करनेके लिये योग्य, संदीपनीय।

सन्दूर—मन्द्राज प्रदेशके अन्तर्गत बेलारी जिलेका एक सामन्त राज्य। यह अक्षा० १४° ५८' से १५° १४' उ० तथा देशा० ७६° २५' से ७६° ४२' पू०के मध्य अवस्थित है। इसका भूपरिमाण १६१ वर्गमील और जनसंख्या ११ हजारसे ऊपर है। इसमें बीस ग्राम लगते हैं। इस राज्यका अधिकांश स्थान जंगल और पर्वतसे ढका है।

इसके पश्चिममें सन्दूर या रामनदुग गिरिमाला शोभा देता है। उत्तरसे तिमप्पा गौड़ श्रेणी राज्यका

पूर्व सीमा तक फैल गई है। उस पर्वत पर तीन घाटी या पहाड़ी रास्ते हैं। येट्टिनहट्टि या भीमगण्डोर घाटसे बेलारी जाया जाता है। रामणगण्डी नामक उपत्यकामें हसपेट नगरवासियोंके साथ वाणिज्य व्यापार चलता है। ओवलागण्डी गिरिपथसे बैलगाड़ी जाती आती है। इस शैल पर रामणदुर्ग, कुमारस्वामी और कोम्बरबू नामकी तीन अधित्यका भी है। ये तीनों ही समुद्र पृष्ठसे प्रायः ३ हजार फुट ऊंची है।

पर्वतगात्रका अधिकांश स्थान शालवनसे समाच्छन्न है। उस शालवन हो कर पहाड़ी सोते बह गये हैं। इस प्रकार अनेक सोते नन्दूर नदी या नारि नालारूपमें पुष्ट हो हसपेटके अन्तर्गत दरोजी बांधमें जा गिरे हैं।

यहांके जंगलमें बाघ, चिता, माही नामक जन्तु, भालू, सूअर, सम्बर-हरिण और जंगली बकरे मिलते हैं। धातव पदार्थोंमें खनिज लौह तथा स्लेट, लौहका आक्सिड मिश्रित क्लोरिटिक स्लेट और कोआर्टज यहां बहुतायतसे पाया जाता है। रामणदुर्ग शैल पर भिन्न भिन्न रंगकी मिट्टी देखी जाती है। उनमेंसे कपास बुनने लायक काली मिट्टी और चूनामिट्टी विशेष उल्लेखयोग्य है। कुमारस्वामी शैल-शिखर पर एक मन्दिर है।

मल्लजी राव घोरपडे नामक एक मरठा सेनापति इस राजवंशके प्रतिष्ठाता थे। ये पहले विजयपुरराजके सेनापति थे। पिताके उपयुक्त पुत्र वीर बीराजी दूसरेके दासत्व बंधनको घृणित समझ कर महाराष्ट्र केशरी शिवाजीके अधीन जातीय गौरव रक्षामें बद्धपरिकर हुए। पहले यह राज्य किसी वेदार-पोलिगारके शासनाधीन था। बीराजीके पुत्र सिद्दाजीने अपने बाहुबलसे वेदारके राजाको परास्त कर सन्दूरराज्य अधिकार किया। शिवाजीके वंशधर शम्भाजीने सिद्दाजीको इस लघुराज्यका अधीश्वर स्वीकार कर उन्हींको सन्दूरकी मसनद पर बैठाया। १७१५ ई०में सिद्दाजीकी मृत्यु हुई। पीछे उसके लड़के गोपाल राव सन्दूरका राजसिंहासन पर बैठे। किन्तु वे पिताकी तरह प्रतिष्ठालाभ न कर सके। इतिहासकी आलोचना करनेसे केवल इतना ही जाना जाता है, कि गोपाल रावके बादसे ही सन्दूर राजवंश कमजोर होता गया। १७७६ ई०में गुटी जानेके कुछ बाद ही हैदर-अलीने इस स्थानको दखल किया। हैदर अलीने यहां दुर्ग बनाना शुरू किया, पर वह उसे पूरा न कर सका, उसके लड़के टीपू सुलतानने पूरा किया। १७८५ ई०में गोपालरावके पुत्र शिवराव पितृराज्यका उद्धार करनेके लिये हैदर अलीके विरुद्ध खड़े हुए और उसी युद्धमें खेत रहे।

१७९० ई०में शिवरावके भाई वेङ्कटरावने अपने भतीजे सिद्दाजीका पक्ष ले सन्दूरसे टीपू सुलतानके सेनादलको मार भगाया, किन्तु श्रीरङ्गपत्तनका पतन न होने तक उन्हें सन्दूर पर चढ़ाई करनेका साहस नहीं हुआ। १७९६ ई०में सिद्दाजीकी मृत्यु हुई। इसके बाद पेशवाने सन्दूर राज्य अपने अधिकारभुक्त करनेका दावा किया। पीछे वह राज्य जीत कर उन्होंने यशोवन्त राव घोरपडे नामक सिन्देराजके एक सेनापतिको उसके कार्यके पुरस्कारमें दे दिया। यशोवन्त राव मल्लजी राव घोरपडेके वंशधर थे। यशोवन्त रावके भाग्यमें राज्यसुखभोग बदा नहीं था। अकस्मात् उनकी मृत्यु हो गई। पीछे सिद्दाजीकी पत्नीने यशोवन्तके छोटे भाई खण्डेरावके पुत्र शिवरावको गोद लिया। जो हो, पेशवा बहुत दिनों तक सन्दूर राज्यकी आकांक्षाका त्याग न कर सके। धीरे धीरे उनकी राज्य पिपासा बलवती होती गई। उन्होंने नाबालिग शिवरावके विरुद्ध १८१५ ई०में सेना भेजी, किन्तु वे विफल मनोरथ हो लौट आये। इसके बाद उन्हींकी प्रार्थनाके अनुसार १८१७ ई०में अंगरेज गवर्मेण्टने सर-टामस मनरोको सन्दूर जीतनेके लिये भेजा। उसी सालके अक्तूबर महीनेमें सन्दूर दुर्ग और राज्य अंगरेज सेनापतिके हाथ सपुर्द हुआ। सर टामस मनरोके अनुरोधसे पेशवाने वार्षिक १० हजार रुपये आयकी जागीर शिवरावको क्षतिपूरणस्वरूप दी थी।

१८१८ ई०में पेशवाकी राज्यशासनशक्ति एकदम विलुप्त हो गई। इसी समय अंगरेज गवर्मेण्टने शिवरावको उनका पैतृक राज्य प्रदान किया। १८२६ ई०में अंगरेज गवर्मेण्टने उनके आचरण पर प्रसन्न हो उन्हें तथा

उनके उत्तराधिकारियोंको सन्दूर प्रदेश निष्कर भोग करनेके लिये एक सनद दी। १८४० ई में शिवरावकी मृत्यु हुई। पीछे उनके भतीजे वेङ्कटराव तख्त पर बैठे। १८६१ ई० तक राज्य करनेके बाद वे परलोक सिधारे। अनन्तर उनके बड़े लड़के नाबालिग शिवषण्मुख राव राज्येश्वर हुए। किन्तु १८६३ ई० तक उन्हें सनद नहीं मिली। १८७६ ई०को २४वीं जनवरीको भारतराजप्रतिनिधि लार्ड नार्थब्रूकने उन्हें राजाकी उपाधि दी। यह उपाधि उनके जो वंशधर मसनद पर बैठेंगे, वे भी पा सकेंगे। १८७८ ई०में शिवषण्मुख रावकी मृत्यु हुई। पश्चात् उनके वैमात्रेय भाई रामचन्द्र विट्ठल राव राजा हुए। १८९२ ई०में उन्हें सी आई, ई, की उपाधिसे भूषित किया गया। परन्तु दुःखका विषय कि उसी साल उनका देहान्त हुआ। पीछे उनके लड़के राजसिंहासन पर अधिरूढ़ हुए। यही वर्त्तमान राजा हैं।

इस राज्यका रामणमलय नामक शैलग्राम उल्लेख योग्य है। यह स्थान समुद्रपृष्ठसे ३१५० फुट ऊंचा है। पीड़ित सेनाको ही साधारणतः इस स्वास्थ्यावासमें स्थान दिया जाता है।

कुमारस्वामी शैलशिखरके ऊपर जो मन्दिर है उसका हाल पहले लिखा जा चुका है। यह मन्दिर बहुत प्राचीन और प्रत्नतत्त्वविदोंके आदरकी सामग्री है। मन्दिरका द्वार पूर्वमुखी है। प्रवेशपथके वामभागमें पार्वतीका मन्दिर है तथा दक्षिणमें साक्षात् लयमूर्त्ति शिवका मन्दिर शोभा दे रहा है। शिव और पार्वतीको पार कर पश्चिमकी ओर जानेसे उनके पुत्र कुमार स्वामी (षडानन कार्त्तिकेय) का मन्दिर दृष्टिगोचर होता है। कुमारस्वामी मन्दिरके सामने अगस्त्यतीर्थ नामक एक कुण्ड है। दरवाजेके सामने भी एक लम्बा स्तम्भ दिखाई देता है। उसका पेंदीमें तीन मुंहका आकार खुदा हुआ है। उसमेंसे सबसे बड़ा मुंह कुमारस्वामी द्वारा मारे गये तारकासुरका मुंह माना जाता है। प्रति तीन वर्षमें यहां एक महोत्सव होता है। उस महोत्सवमें खूब धूमधाम होती है। प्रायः ३० हजार तीर्थयात्री उस मेलेमें आते और देवपूजादि करते हैं। मन्दिराध्यक्षके पास ८१५ संवत् (७१३ ई०) में उत्कीर्ण एक 'शासन' है।

कुमारस्वामी शैलका जलवायु विशेष स्वास्थ्यकर है। रामणदुर्गकी तरह शीतल नहीं है।

राजाको पुलिसविभागमें १ इन्सपेक्टर प्रधान का न्सटेबल और २५ कान्सटेबल तथा ४ पुलिस स्टेशन रखनेका अधिकार है। कम और ज्यादे मुद्दतके कैदी जेलखानेमें रखे जाते हैं जिनकी संख्या १५ से ऊपर नहीं हो सकती। वे सब कैदी सड़क आदि मरम्मत किया करते हैं। बिना मन्द्राज सरकारकी अनुमतिके इन्हें प्राण-दण्ड देनेका अधिकार नहीं है। इस राज्यमें लोअर सिकेण्ड्री स्कूल, सात प्राइमरी स्कूल और एक बालिका स्कूल है।

सन्दूर—मन्द्राज प्रदेशके बेलारी जिलान्तर्गत एक शैलमाला। यह १५ मील लम्बा तथा उत्तर पश्चिमसे दक्षिण पूर्व हसपेट तक विस्तृत है। यह सन्दूरराज्यकी पश्चिमी सीमा है। इस पर्वतकी सबसे ऊंची चूड़ा रामणदुर्ग (३१५० फुट) कहलाती है। इस कारण इस पर्वतको लोग रामणदुर्ग कहते हैं। १८४६ ई०में यहांके रामणमलय नामक पर्वत पर एक स्वास्थ्यावास स्थापित है।

सन्दुह्य (सं० त्रि०) सम्-दुह क्यप्। सन्दोह्य, सम्यक् दोहनीय, अच्छी तरह दूहने लायक।

सन्दूषण (सं० क्ली०) सम्-दूष ल्युट्। १ सम्यक् रूपसे दूषण। (त्रि०) २ सम्यक् प्रकारसे दूषणकारक।

सन्दृश् (सं० स्त्री०) सम्-दृश क्विप्। सन्दर्शन, अवलोकन।

सन्दृश्य (सं० त्रि०) सम्-दृश् यत्। सन्दर्शनयोग्य, देखनेके लायक।

सन्दृष्टि (सं० स्त्री०) सम्-दृश क्तिन्। सम्यक् दृष्टि, सम्यक् दर्शन। (ऋक् १।१४५।७)

सन्देघ (सं० पु०) सम्-दिघ (दिह) घञ्। सन्देह।

सन्देव (सं० पु०) हरिवंशके अनुसार देवकके एक पुत्रका नाम।

सन्देवा (सं० स्त्री०) वसुदेवकी स्त्री और देवककी कन्याका नाम। इनका नाम श्रीदेवा या सुदेवा भी है।

सन्देश (सं० पु०) सम्-दिश घञ्। १ संवाद, खबर, हाल। २ एक प्रकारकी बंगला मिठाई जो छेने और चीनीके योगसे बनती है। ३ उपदेश देना।

सन्देशक (सं० पु०) सन्देश ददाति दा-क। सन्देशदायक, संवाद।

सन्देशपद (सं० क्ली०) १ जिस पदके शब्द द्वारा प्रकृत संदेश सुगम होता है। २ शब्द या स्वर लक्षण।

सन्देशवाच् (सं० स्त्री०) संदेश एव वाक्। संदेशरूप वाक्य, संवाद, वार्त्ता। पर्याय—वाचिक।

सन्देशहर (सं० पु०) हरतीति हृ-अच्, हरः, संदेशस्य हरः। समाचार या संदेसा ले जानेवाला, वार्त्तावह, दूत, कासिद।

सन्देशहार (सं० पु०) संदेशं हरति 'कर्मण्युपपदे इति' हृ-अण्। वार्त्तावह, दूत।

सन्देशहारक (सं० पु०) संदेशं संवादं हरतीति हृ-ण्वुल्।

सन्देशहारिन् (सं० त्रि०) संदेशं हरति हृ-णिनि। दूत, संवाद ले जानेवाला।

सन्देशार्थ (सं० पु०) वार्त्ताके लिये, संवादके लिये।

सन्देशोक्ति (सं० स्त्री०) संदेशस्य उक्तिः। संदेश-कथन, संवाद कहना।

सन्देश्य (सं० त्रि०) संदेश-ण्यत्। समानदेशभव, स्वदेशजात।

सन्देह्य (सं० त्रि०) अनुसंधेय। "किं नु खलु दुष्यन्तस्य युक्तरूपमस्माभिः सन्देह्यम्"। (शकुन्तला)

सन्देसा (हिं० पु०) किसीके द्वारा जबानी कहलाया हुआ समाचार आदि, खबर, हाल।

सन्देह (सं० पु०) सं-दिह-घञ्। एकधर्मिक विरुद्धभावाभावप्रकाशक ज्ञान, वह ज्ञान जो किसी पदार्थकी वास्तविकताके विषयमें स्थिर न हो। पर्याय—विचिकित्सा, संशय, द्वापर। एक धर्माक्रान्त दो पदार्थोंका संशयात्मक जो ज्ञान है उसे सन्देह कहते हैं। द्वैध ज्ञान, रज्जु देख कर यह सर्प है या रज्जु, इस प्रकार जो संशयात्मक ज्ञान होता है, वही सन्देह है।

साधुओंको संदेहपद वस्तुमें अर्थात् जिस वस्तुमें साधुओंको संदेह होता है वहां उनकी अंतःकरणवृत्ति ही प्रमाण है, मन जो कहता है, वही ठीक है।

२ अर्थालङ्कार विशेष। यह उस समय माना जाता है जब किसी चीजको देख कर संदेह बना रहता है, कुछ निश्चय नहीं होता। 'भ्रान्तिमान्' और इसमें यह अन्तर है, कि भ्रान्तिमें तो भ्रमवश किसी एक वस्तुका निश्चय हो भी जाता है, पर इसमें कुछ भी निश्चय नहीं होता। कवितामें इस अलङ्कारके सूचक प्रायः धौं, किधौं आदि संदेह-वाचक शब्द आते हैं। यह अलङ्कार तीन प्रकारका है—शुद्ध, निश्चयगर्भ और निश्चयान्त। जहां संशय ही पर्यवसान होता है वहां शुद्ध सन्देह, जहां आदि और अन्तमें संशय तथा मध्यमें निश्चय होता है उसे निश्चयगर्भ सदेह तथा जहां आदिमें सन्देह और अन्तमें निश्चय होता है वहां उसे निश्चयान्त सन्देह कहते हैं। जैसे, सारी बीच नारी है कि नारी बीच सारी है कि सारी ही की नारी है कि नारी ही की सारी है।

सन्देहत्व (सं० क्ली०) संदेहस्य भावः त्व। संदेहका भाव या धर्म।

सन्देहालङ्कार (सं० पु०) संदेह नामक अलङ्कार।

सन्देह देखो।

सन्देहालङ्कृति (सं० स्त्री०) संदेहालङ्कार।

सन्दोल (सं० त्रि०) १ सुंदर हिंडोला। २ कानमें पहननेका कर्णफूल नामका गहना।

सन्दोह (सं० पु०) सन्-दुह-घञ्। समूह, झुण्ड।

सन्दोह्य (सं० त्रि०) सम्-दुह-ण्यत्। संदोहनीय, अच्छी तरह दुहनेके योग्य।

सन्द्रभ (सं० पु०) गूंथनेकी क्रिया, गुंथन।

सन्द्रष्टव्य (सं० त्रि०) सम्-दृश्-तव्य। सम्यक् द्रष्टव्य, अच्छी तरह देखनेके योग्य।

सन्द्रष्टृ (सं० त्रि०) सम्-दृश तृच्। सम्यक् द्रष्टा, सम्यक् दर्शनकारी।

सन्द्राव (सं० पु०) सम्-द्रु (समि-युद्रुदुवः। पा ३।३।२३) इति घञ्। पलायन, युद्धक्षेत्रसे भागनेकी क्रिया।

सन्द्वीप (सनद्वीप)—बङ्गालके नोआखाली और चट्टग्राम जिलेका एक द्वीप। यह नोआखाली जिलेके एक अंश मेघनासागर-सङ्गम पर अवस्थित है। मेघना नदी जहां समुद्रमें मिली है वहां मुहाने पर जितने चर पड़ गये हैं उनमें यही चर सबसे बड़ा है। यह अक्षा० २२°२३´ से २२° ३७´ उ० तथा देशा० ९१° २२´ से ९१° ३५´ पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण २५८ वर्गमील और जनसंख्या लाखसे ऊपर है।

सन्द्वीप द्वीपाकारमें समुद्रसे निकलनेके बाद उसके

दक्षिण दो तीन मीलकी दूरी पर एक और चर बन गया है। वह चर धीरे धीरे पुष्ट हो गया है। १८६५ ई०में इस अन्तिम चरका नाम कालीचर रखा गया। यह चर इतना ऊंचा हो गया है, कि समुद्रके भीषण तरङ्गाघात और जलप्लावनसे सन्द्वीपके उपकूलभागका उतना नुकसान नहीं हो सकता। सन्द्वीप और कालीचरके बीच पहले जो खाई थी वह अभी भर कर मूल सन्द्वीपके साथ मिल गई है।

भूतत्त्वकी आलोचनासे हमें मालूम होता है, कि इतिहासातीत कालसे सन्द्वीपका गठन आरम्भ हुआ था। जङ्गलभागके निकलनेके बाद यहां बङ्गालदेशवासियोंकी आबादी हुई। पाश्चात्य वणिक् और भ्रमणकारिगण इस राहसे बङ्गालमें प्रवेश कर सन्द्वीपके सौंदर्यका वर्णन कर गये हैं। १५६५ ई०में भेनिस नगरवासी देश पर्यटक सिजर फ्रेडरिकने इस देशके लोगोंको 'मूर' अर्थात् मुसलमान कह कर लिपिबद्ध किया है। उनके विवरणसे यह भी मालूम होता है, कि यह द्वीप उस समय विशेष उर्वरा, जनपूर्ण और धनजनसे पूर्ण था। फसल काफी तौरसे उपजनेसे अनाज सस्ता बिकता था। तथा प्रति वर्ष प्रायः २०० मन लवणको बोझाई करके जहाज यहांसे देशान्तर भेजा जाता था। इसके सिवा बड़ा जहाज बनानेकी लकड़ी इतनी सस्ते दरमें मिलती थी, कि कुस्तुन्तुनियाके सुलतान अलेकजन्द्रिया बन्दरसे अपने आवश्यकीय पोतादि न बना कर यहांसे तुर्कराज्यके सभी अर्णवपोत तैयार करा कर ले जाते थे। करीब १६२० ई०में पाचासन लिखा है, कि यहांके उपकूलके अधिकांश अधिवासी मुसलमान थे। उन लोगोंकी उपासनाके लिये जो सब मसजिद बनी हैं व भी सौ वर्षसे भी पुराना है। १६२५ ई०में सर टामस हार्बर्ट यहांका जनसमृद्धिकी बातका उल्लेख कर लिखा है, कि सन्द्वीपमें नारियल बहुत उपजता है तथा यहांसे चट्टग्राम और आराकान प्रदेशमें उसका रफ्तनी होता है। यहां इसकी खेती भी काफी होती है।

१७वीं सदीमें आराकान मुसलमान और पुर्त्तगीजोंमें चट्टग्रामको उपकूलस्थ वाणिज्य प्रधानता ले कर जो घोर युद्ध चला था, उसका भारी धक्का सन्द्वीप पर लगा। उस समय यहां बहुतसे दुर्ग भी बनाये गये। १६०६ ई०के मार्च मासमें पुर्त्तगीजोंने जब इस द्वीपमें पदार्पण किया तब उन दुर्गोंमेंसे एकमें मुसलमानी फौज रखी गई थी। पुर्त्तगीजोंने बहुत दिनों तक घेरा डालनेके बाद दुर्गको जीता और दुर्गवासी मुसलमान सेनाको तलवारसे कतल किया। १६१६ ई०में भीषण प्रकृतिवाले आराकनियोंने पुर्त्तगीजोंसे सन्द्वीप छीन लिया। १६६५ ई०में बङ्गेश्वर साइस्ता खांने सन्द्वीप फिरसे दखल करनेके लिये बड़ी सजधजके साथ यात्रा की। फरासी भ्रमणकारी वार्नियरके भ्रमणवृत्तान्तमें उसका पूर्णचित्र दिया गया है।

मुगल सम्राट् औरङ्गजेबके हुक्मसे नवाब साइस्ता खांने नौवाहिनी तैयार कर आराकनपतिका दमन किया और उसी समयसे चट्टग्राम मुगलोंके अधीन हुआ। आराकन, चट्टग्राम, नोआखाली और पुर्त्तगीज शब्द देखो।

मुगलोंके जमानेमें ढाकाके दक्षिणतीरवासी दर्वीत अथवा राजद्वारमें दण्डित अपराधी इसी द्वीपमें भेजे जाते थे। यह द्वीप पीछे हिन्दू मुसलमान और मग आदि जातियोंके उपनिवेशमें बदल गया। उन सब अधिवासियोंमेंसे कुछ जमीन जोत कर, कुछ मछली पकड़ कर और कुछ जल या स्थल पथमें डकैती कर जीविकानिर्वाह करते थे। वे सब ऐसे उद्दण्ड प्रकृतिके लोग थे, कि स्थानीय जमींदारोंके साथ हमेशा लड़ाई दंगा किया करते थे। इस कारण प्रत्येक जाति दूसरी जातिकी दुश्मन बन गई थी। छोटी छोटी बातोंके लिये वे आपसमें लड़ पड़ते थे। १७६० ई०में यह द्वीप जब अंगरेजोंके दखलमें आया तब उसके बाद भी कई बार यहां अशान्ति फैल गई थी। तालुकदारोंके आवेदनसे अंगरेज गवर्मेण्टने यह अशान्ति दूर करनेका प्रयत्न किया। १७८१ ई०में सन्द्वीपको भिन्न भिन्न जाल में विभक्त कर प्रजाके बीच बांट देनेकी व्यवस्था हुई। एक कलकृर उसका दखलमें नियुक्त हुए। १८२२ ई० तक सन्द्वीप चट्टग्रामके शासनभुक्त रहा। उसी साल नोआखाली स्वतन्त्र जिला हो जानेसे सन्द्वीप उसीके साथ मिला लिया गया है।

पहले सन्द्वीप एक फौजदार द्वारा शासित होता था। १७७१ ई०में यहां सेना रखनेमें बहुत खर्च देख अंगरेज

गवर्मेण्टने डनकान साहबको सेनावास उठा लानेके लिये भेजा। तदनुसार फौजदारी पद विलुप्त हुआ और एक दारोगा उस स्थानके शासनकर्त्ता हुए। किन्तु वे फौजदारकी तरह यहांके सर्वमय कर्त्ता नहीं थे। वह दारोगा १७६० ई० सन्के पहलेहीसे नायब-आहददारके अधीन थे। सात दिनमें सिर्फ एक दिन नायबआहद्दार अदालतमें बैठ कर राज्यशासन संबंधीय कार्य पर्यवेक्षण करते थे। दारोगा और उनके सहकारी मुकदमेकी नत्थी उनके सामने रखते थे। किन्तु विचारकार्यके समय नायब आहद्दार, दारोगा, कानूनगो और स्थानीय जमींदार अदालतमें बैठ कर मुकदमे पर विचार करते थे। उस विचारालयमें दीवानी और फौजदारी सभीका विचार होता था। केवल आहद्दार ही राजस्व-विभागके एकमात्र कर्त्ता थे।

डानकनसाहबके विवरणसे जाना जाता है, कि उस समय यहां भी क्रीतदासकी प्रथा प्रचलित थी। उन दासोंके साथ जो व्यक्ति विवाह सम्बन्धमें आवद्ध होता था, उसे भी उस दासके नियमाधीन अपने मालिकको सेवामें नियुक्त रहना पड़ता था।

समुद्रपृष्ठसे सन्द्वीपकी ऊंचाई अधिक नहीं होनेसे यह स्थान प्रायः समुद्रकी बाढ़में डूब जाया करता है। १८६४ और १८७६ ई०के भीषण तूफानसे समुद्रका जल इतना ऊंचा उठा, कि इसकी महती क्षति हुई। करीब ४० हजार लोगोंके प्राण गये थे। उसके बाद महामारीके प्रकोपसे आबादी और भी घट गई। इसी दुःखके ऊपर डकैत अधिवासियोंके अत्याचारसे यह स्थान और भी उजाड़ सा हो गया था।

सन्धनाजित् (सं० त्रि०) सम्यक् धनजयकारी।

सन्धा (सं० स्त्री०) सम्-धा-घञ्। १ स्थिति। २ प्रतिज्ञा, करार। ३ संधान, मिलन। ४ संध्याकाल, साँझ। ५ अनुसंधान, तलाश।

सन्धातव्य (सं० त्रि०) सम्-धा-तव्य। संधानके योग्य, तलाश करने लायक।

सन्धातृ (सं० पु०) १ शिव। २ विष्णु।

सन्धान (सं० क्ली०) संधीयते यदिति सं-धा ल्युट्। १ मद्यसन्धोकरण, शराब बनानेका काम। पर्याय—अभिषव, संधानी, संधिका। संधीयते संधानं वंशाङ्कार-फलादीन् बहुकालं संधाययन् क्रियते। २ सङ्घट्टन, योजन। ३ काञ्जिक, काँजी। ४ मदिरा, शराब। ५ अवदंश, गजक, चाट। ६ सौराष्ट्र या काठियावाड़का एक नाम। ७ धनुष पर वाण चढ़ानेकी क्रिया, निशाना लगाना। ८ अन्वेषण, खोज। ९ संधि, मेल। १० सुस्वादु वस्तु, अच्छे स्वादकी चीज। ११ मुरदेको जलानेकी क्रिया, संजीवन। (त्रि०) सन्दधातीति सं-धा-ल्यु। १२ धारक।

सन्धानक (सं० त्रि०) १ संलग्नकारण, जोड़ना।

सन्धानकारिन् (सं० त्रि०) संधानं करोतीति कृ-णिनि। संधानकारक, तलाश करनेवाला।

सन्धाननाल (सं० पु०) कालमानभेद।

सन्धाना (सं० पु०) अचार, खटाई।

सन्धानिका (सं० स्त्री०) संधानमस्त्यस्या इति संधान-ठन्। खाद्यद्रव्यविशेष, एक प्रकारका आमका अचार। पाकराजेश्वरमें इसकी प्रस्तुतप्रणाली इस प्रकार लिखी है—सर्षप एक शरावका सोलहवाँ भाग, मरिच २ तोला, हलदी १ तोला, नागरमोथा १ तोला, मंगरैला। १ तोला इन सब द्रव्योंको अच्छी तरह चूर्ण करे। पीछे २० आमको दो या चार खण्ड कर उनमेंसे गुठली निकाल ले। बादमें उन कटे हुए आमोंके बीच उक्त चूर्ण भर कर तेलके बरतनमें डुबो दे। इसीका नाम संधानिका है। (पाकराजेश्वर)

सन्धानित (सं० त्रि०) संधान-इतच्। १ संधानविशिष्ट। २ सङ्घट्टित।

सन्धानिनी (सं० स्त्री०) गोगृह, गोशाला।

सन्धानी (सं० स्त्री०) संधीयते यस्यामिति सं धा-ल्युट्। ङीप्। १ संधि, मिलन। २ प्राप्ति। ३ बंधन। ४ अन्वेषण। ५ पालन। ६ त्वक्सङ्कोच, चमड़ेका सिकुड़ना। ७ अचार, खटाई। ८ संयोजन। ९ सुस्वादु वस्तु, अच्छे स्वादकी चीज। १० सङ्घट्टन। ११ संधान, धनुष पर वाण चढ़ानेकी क्रिया। १२ वह स्थान जहां ढलाई की जाती है। १३ वह स्थान जहां मदिरा बनाई जाती है।

सन्धानीय (सं० त्रि०) सम्-धा अनीयर्। संधान योग्य, तलाश करनेके लायक।

सन्धानीयवर्ग (सं० पु०) वैद्यकोक्त मांससंयोजन कषाय द्रव्यगण। ये द्रव्य ये सब हैं,—मुलेठी, गुलञ्च पिठवन, आकनादि वराकान्ता, मोचरस, धवका फूल लोध, प्रियङ्गु और कायफल।

सन्धारण (सं० त्रि०) सम्-धृ-ल्युट्। सम्यक्रूपसे धारण।

सन्धार्य (सं० त्रि०) सम्-धृ-ण्यत्। सन्धारणके योग्य। अच्छी तरह पकड़नेके लायक।

सन्धि (सं० पु०) सन्धानमिति सम्-धा-कि। १ राजाओंके छः गुणोंमेंसे एक गुण, आपसका मिलाप। एक राजा जब दूसरे एक विपक्ष राजाके साथ विशेष नियमसे आबद्ध हो कर मिलते हैं, तब उसे सन्धि कहते हैं। मनुमें लिखा है, कि राजा सन्धि, विग्रह, यान, आसन द्वैध और आश्रय इन छः गुणोंका अवलम्बन कर सब काम करे।

राजाको जब यह अच्छी तरह मालूम हो जाय कि थोड़े ही दिन बाद उनकी सैन्यसंख्या बढ़ेगी तथा अपेक्षाकृत वे विशेष बलशाली हो सकेंगे, तब कुछ न कुछ क्षति स्वीकार करके भी उन्हें सन्धि कर लेना कर्त्तव्य है। यदि विपक्ष राजा युद्ध न करके मित्रभावमें नौजनेवालेके हाथ आत्मसमर्पण कर दे अथवा उत्कृष्ट रत्नादि या स्वराज्यका कुछ अंश उन्हें दे दे, तो उनके साथ युद्ध न करके सन्धि कर लेना ही उचित है। (मनु ७ अ०)

भोजराजने युक्तिकल्पतरुमें लिखा है, कि रत्नादि दे कर आपसमें जो मिलन होता है उसका नाम सन्धि है। दलबद्ध अथवा कुछ नियमोंसे आपसमें आबद्ध होने पर उसको भी सन्धि कहते हैं। एक दूसरेमें जो उपकार है वे ही सन्धि करते हैं। आपसमें सन्धि हो जाने पर सर्वथाका उल्लङ्घन करना उचित नहीं। नियम भङ्ग करनेसे सन्धि शिथिल होता है, अतएव सन्धिकी मर्यादाकी रक्षा करना सभीका परम उचित है।

विष्णुशर्माकृत हितोपदेशमें सन्धि नामक चतुर्थ कथा प्रसङ्गमें सन्धिका विशेष विवरण है। कोई राजा यदि प्रबल राजासे आक्रान्त हो बचावका कोई उपाय न देखे तो उसे उचित है, कि उससे मेल कर ले। यह सन्धि १६ प्रकारकी है, यथा—१ कपाल, २ उपहार, ३ सन्तान, ४ सङ्गत, ५ उपन्यास, ६ प्रतिकार, ७ संयोग, ८ पुरुषान्तर, ९ अदृष्टनर, १० आदिष्ट, ११ आत्मादिष्ट १२ उपग्रह, १३ परिक्रय, १४ उच्छिन्न, १५ परभूषण, और १६ स्कन्धोपनेय।

२ अस्थिसंयोगस्थान, जोड़। जहां दो हड्डियां मिलती हैं उसे सन्धि कहते हैं।

अस्थिकी सन्धियां दो प्रकारकी हैं, एक काम करनेवाली और दूसरी स्थिर। हाथ, पैर, हनु और कमर इन सब स्थानोंमें जो सब सन्धि हैं, वे काम करनेवाली हैं इसके सिवा और सभी सन्धियोंको निश्चल सन्धि कहते हैं।

महर्षि सुश्रुतने कहा है, कि देहियोंकी देहमें कुल २१० सन्धि हैं। उनमेंसे हाथ पैरमें ६८, कोष्ठदेशमें ५६, गलेके ऊपर ८३ प्रत्येक पैरकी उंगलीमें तीन तीन करके १२ और अंगूठेमें २ कुल मिला कर १४, घुटने, गुल्फ और वंक्षणमें एक एक, इसी प्रकार एक एक पैरमें १७ करके ३४ सन्धि हैं, कटि और कपालदेशमें पृष्ठदण्डमें २४, दोनों पार्श्वमें २४, वक्षमें ८, ग्रीवामें और स्कन्धदेशमें ३। नाड़ी, हृदय और क्लोमका सन्धि १८ है, जितने दांत हैं उतनी ही दन्तसन्धि हैं, कण्ठदेशमें १, नासिकामें १ नेत्रमें २ गण्ड, कर्ण और शङ्खमें एक एक, हनुमें दो, भ्रूके ऊपरी भागमें दो, दोनों शङ्खमें दो, मस्तकके कपाल अर्थात् खोपड़ीमें पांच तथा मूर्द्धदेशमें एक।

उक्त सन्धियां फिर आठ प्रकारकी हैं, यथा—कोर, प्रतर, उदूखल, सामुद्ग, तुन्नसेवनी, वायसतुण्ड, मण्डल और शङ्खावर्त्त। अङ्गुलि, मणिबन्ध, गुल्फ, जानु और कूर्परसन्धिकी सन्धिको कोरसन्धि, वक्षण ... दन्तकी सन्धिको उदूखल, अंसपीठ, गुह्य, योनिदेश और नितम्बस्थित सन्धिका सामुद्ग, ग्रीवा और पृष्ठवंशकी सन्धिको प्रतर, मस्तक, कटिदेश और कपालस्थित सन्धिको तुन्नसेवनी, दोनों हनुकी सन्धिको वायसतुण्ड, कण्ठ, हृदय क्लोम और नाड़ीकी सन्धिका शङ्खावर्त्त सन्धि कहते हैं।

सन्धि करनेसे हो अस्थिसन्धि समझी जाती

क्योंकि, पेशी, स्नायु और शिरा आदिमें सन्धि नहीं है सन्धियोंकी आकृतिके अनुसार उक्त सात प्रकारके नाम रखे गये हैं। (सुश्रुत शारीरस्था० ५ अ० भावप्र० पूर्व ख०)

३ संयोग। पर्याय—श्लेष। ४ सुरङ्गा। ५ भग। ६ सङ्घट्टन। ७ रूपकके सुखादि अङ्ग। ८ सावकाश। ९ भेद। १० साधन। ११ व्याकरणके मतसे दो वर्णका मिलन। दो स्वर या व्यञ्जनके एकत्र मिलनेसे उसको सन्धि कहते हैं। अर्द्धमात्रोच्चारण काल द्वारा अव्यवहित दो वर्णका जो द्रुततर उच्चारण होता है उसका नाम संधि है। जो दो शब्द अर्द्धमात्रामें उच्चारित होते थे उन सन्निहित दो शब्दोंका जो द्रुततर अर्थात् अति शीघ्र जो उच्चारण होता है उसीको सन्धि कहते हैं। इस नियमके अनुसार श्लोकार्द्ध या मन्त्रार्द्धकी संधि नहीं होगी, क्योंकि अर्द्धमात्रोच्चारण कालका व्यवधान ही युक्तियुक्त है, अतएव वहां व्यवधान रहनेसे संधि नहीं होती।

व्याकरणके सन्धिप्रकरणमें जो सब सूत्र दिये गये हैं, उन सब सूत्रोंके अनुसार जो सब कार्य किये जाते हैं, उन्हींको संधि कहते हैं।

स्वर, विसर्ग और व्यञ्जनसंधिके भेदसे संधि तीन प्रकारकी है। जहां स्वरवर्णके साथ स्वरवर्णका संधि होती है वहां उसे स्वरसंधि जहां स और र की जगह विसर्ग और इस विसर्ग संबंधीय संधियां होती है वहां उसे विसर्गसंधि, जहां स्वर और व्यञ्जनवर्णमें अथवा व्यञ्जन और व्यञ्जनवर्णमें संधि होती है वहां उसे व्यञ्जनसंधि कहते हैं।

१२ सत्य-त्रेतादि युगका मध्य समय। इसका नाम युगसंधि है। सत्यत्रेतादि प्रत्येक युगका निर्दिष्ट संधिकाल है। युग शब्द देखो। १३ नाटक ग्रंथका अंश विशेष।

सन्धिक (सं० पु०) स्वनामख्यात सन्निपातज्वरविशेष। इसका लक्षण—समस्त शरीरमें अत्यन्त वेदना, सभी संधियोंमें सूजन, मुख कफसे भरा हुआ, नीदका नहीं आना और खांसी, ये सब लक्षण जिस सन्निपात ज्वरमें होते हैं उसे संधिक सन्निपात कहते हैं। यह सन्निपातज्वर अतिकष्टसाध्य है। संधिक ज्वरको कोई कोई संधिग भी कहते हैं। ज्वर और सन्निपात देखो।

सन्धिका (सं० स्त्री०) संधा प्रदानार्थे कन्। मद्य सधान।

सन्धिकुसुमा (सं० स्त्री०) त्रिसंधिपुष्पवृक्ष।

सन्धिगा (सं० पु०) संधिग नामक सन्निपात ज्वर।

सन्धिगुप्त (सं० पु०) वह स्थान जहां शत्रुकी आनेवाली सेना पर छापा मारनेके लिये सैनिक लोग छिप कर बैठते हैं। (Ambush)

सन्धिचोर (सं० पु०) संधिकृत्-सुरङ्गाकारी चौरः, संधिना चौरः इति वा। चोरविशेष, सेंध लगा कर चोरी करनेवाला।

सन्धिच्छेद (सं० पु०) संधिका छेद, संधि भङ्ग, संधि तोड़ना।

सन्धिच्छेदक (सं० त्रि०) जो संधिके नियमोंका भंग करता हो, आहदनामेकी शर्तें तोड़नेवाला।

सन्धिज (सं० क्ली०) संधेर्जायते यदिति जन ड। मद्य आसवादि, चुआ कर तैयार किया हुआ मद्य, आस आदि, २ वह फोड़ा जो शरीरकी किसी संधि या गांठ पर हो। (त्रि०) ३ संधिसमुत्पन्न, गिरह पर होनेवाला।

सन्धिजीवक (सं० पु०) संधिना अभिसंधिना जीवतीति जीव-ण्वुल्। कुसृति द्वारा जिसवान्वेषी, वह जो स्त्रियोंको पुरुषोंसे मिला कर जीविका चलाता हो, कुटना। पर्याय—पारवक।

सन्धित (सं० त्रि०) संधा जाताऽस्येति संधा इतच्। १ संधियुक्त, जिसमें संधि हो। (पु०) २ आसव, अर्क।

सन्धितस्कर (सं० पु०) संधिकृत् तस्करः। संधिचोर, सेंध लगा कर चोरी करनेवाला।

सन्धित्सु (सं० त्रि०) संधातुमिच्छुः, सम्-धा-सन्-उ। संधि करनेमें इच्छुक, संधिका अभिलाषी।

सन्धिन् (सं० पु०) संधिविग्रहिक, वह सचिव जो युद्धमें संधि करता है।

सन्धिनी (सं० स्त्री०) संध्यास्तस्या इति इनि ङीप्। वृष द्वारा आक्रांत ऋतुमता गाभी, गाभिन गौ। २ अकालदुग्धदायिनी गाभी, वह गौ जो गाभिन होने पर भी दूध दे। ऐसी गौका दूध सेवन नहीं करना चाहिये। ३ गौ जो दिनरातमें केवल एक वार दूध दे। ४ वह गौ जो विना बछड़ेके दूध दे।

सन्धिपूजा (सं० स्त्री०) सन्धौ अष्टमी नवमी सन्धिक्षणे पूजा। शारदीया और वासन्ती महापूजाके अन्तर्गत तृतीय पूजा। महाष्टमी और महानवमी सन्धिक्षणमें यह पूजा होती है, इसीसे इसको सन्धिपूजा कहते हैं। अष्टमीका अन्तिम एक दण्ड तथा नवमीका प्रथम एक दण्ड ये दोनों दो दण्डकाल सन्धिक्षण हैं। इस कालमें उक्त पूजा करनी होती है। दिवा या रात्रिके जिस समय यह सन्धिक्षण होगा, उसी समय उक्त पूजा करनी होगी। इस सन्धिक्षणमें पूजाका विशेष फल कहा है। सन्धिक्षणका काल बहुत थोड़ा है अतएव उस समय अष्टमी और नवमी आदिकी तरह यथाविधान सम्पन्न पूजा होना असम्भव है। इसलिये उस समय नियमपूर्वक केवल मूलपूजा करनी होगी, इसीसे समस्त पूजाका फललाभ होगा।

अष्टमी और नवमी सन्धिकालमें जो पूजा होती है, वह तृतीया पूजा है। क्योंकि सप्तमीमें प्रथमा पूजा अष्टमीमें द्वितीया पूजा और सन्धिक्षणमें जो पूजा होती है उसका नाम तृतीया पूजा है। इस सन्धिक्षणमें जो पूजा की जाती है उससे तिगुना फल मिलता है। सन्धिक्षण दिवाभागकी अपेक्षा रात्रिभागमें ही प्रशस्त है।

सन्धिपूजाके बलिदानस्थानमें अष्टमी नवमीके सन्धिक्षणमें अर्थात् जिस समय अष्टमी जा कर नवमी तिथिमें पड़ती है, उसी मुहूर्त्तमें प्रशस्त है, किन्तु अष्टमी दण्डमें बलिदान नहीं होगा। अष्टमी बीतने पर यदि कुछ नवमी भी पड़े, तो कोई दोष नहीं किन्तु अष्टमी रहते कदापि बलि न चढ़ावे। क्योंकि सन्धिपूजामें अष्टमीमें बलिदान करनेसे पुत्रादि नाश होते हैं।

बृहन्नन्दिकेश्वर और देवीपुराणादिके मतसे सन्धिपूजाकालमें भगवती दुर्गाकी पूजा करनी होती है। किन्तु कालिकापुराणके मतसे पूजाकालमें भगवती दुर्गाको चामुण्डारूपिणी समझ कर उनकी पूजा करनी होती है। दुर्गा शब्द देखो।

सन्धिप्रच्छादन (सं० पु०) सङ्गीतमें स्वर साधनकी एक प्रणाली।

सन्धिबन्ध (सं० पु०) सन्धिं बध्नातीति बन्ध अच्। भूमिचम्पक, भुई चम्पा।

सन्धिबन्धन (सं० क्ली०) सन्धेर्बन्धनं यस्मात्। १ शिरा, नाड़ी नस। यही शिरा सन्धिस्थानको बांधे रहती है, इसीसे इसको सन्धिबन्धन कहते हैं। २ अस्थिभङ्ग सन्धिस्थलका टूट जाना।

सन्धिभग्न (सं० पु०) एक प्रकारका रोग। इसमें अङ्गकी सन्धियोंमें अत्यन्त पीड़ा होती है।

सन्धिभङ्ग (सं० पु०) वैद्यकके अनुसार हाथ या पैर आदिका किसी जोड़का फूटना।

सन्धिमत् (सं० त्रि०) सन्धियुक्त।

सन्धिमति (सं० पु०) काश्मीरके जये द्रराजमती। ये पीछे काश्मीरके राजा हुए।

सन्धिमुक्तभग्न (सं० क्ली०) दो प्रकारके भग्नरोगोंमेंसे एक प्रकार। इसका लक्षण—सन्धिके विश्लेष होने पर वह स्थान स्पर्शासहिष्णु होता है तथा प्रसारण, आकुञ्चन या करवट बदलनेमें बहुत पीड़ा होती है। यह सन्धि छः प्रकारकी है। यथा—उत्पिष्टसन्धिविश्लेष विश्लिष्ट सन्धि विवर्त्तित, तिर्य्यग्गत क्षिप्त और अधःक्षिप्त।

सन्धिरन्ध्रका (सं० स्त्री०) सन्धि रन्ध्रेण कायतीति कैक टाप्। सुरङ्गा, सेंध।

सन्धिराग (सं० पु०) सन्ध्याका राग। सिंदूर, सेंदुर।

सन्धिला (सं० स्त्री०) सन्धिं लातीति ला क। १ सुरङ्गा, सेंध। २ नदी। ३ मदिरा, शराब।

सन्धिविग्रह (सं० पु०) वह मन्त्री जिसकी सलाहसे सन्धि और युद्धका काम चलता है।

सन्धिविग्रहकायस्थ (सं० पु०) सान्धिविग्रहिक।

सन्धिविद्ध (सं० पु०) एक प्रकारका रोग जिसमें हाथ पैरके जोड़में सूजन और पीड़ा होती है।

सन्धिवेला (सं० स्त्री०) सन्धिकी वेला। कालविशेष, सन्ध्याका समय। दिवा और रात्रिकी सन्धिवेलामें सन्ध्याको उपासना करनी होती है। सन्ध्या देखो।

सन्धिसामन् (सं० क्ली०) सामभेद।

सन्धिसितासितरोग (सं० पु०) चक्षुरोगभेद।

सन्धिहारक (सं० पु०) सन्धिना हरतीति हृ ण्वुल्। सन्धिचौर, वह चोर जो सेंध लगा कर चोरी करता हो, सन्धिया चोर।

सन्धुक्षण (सं० त्रि०) १ उद्दीपनकारी। २ प्रज्वलनकारी। (क्ली०) ३ उद्दीपन। ४ प्रज्वलन।

सन्धुक्षित (सं० त्रि०) सम्-धुक्ष-क्त। उद्दीपित, प्रज्ज्वलित, उत्तेजित।

सन्धेय (सं० त्रि०) सम् धा-यत्। संधि करनेके योग्य, जिसके साथ संधि की जा सके।

सन्ध्य (सं० त्रि०) संधिमय, संधिका।

सन्ध्यक्षर (सं० क्ली०) संधिगत अक्षर, स्वरवर्ण या युक्त व्यञ्जनवर्ण।

सन्ध्यर्क्ष (सं० क्ली०) संधि ऋक्ष, संधि नक्षत्र, जिस नक्षत्रमें दोनों राशि होती हैं उसे संधिनक्षत्र कहते हैं। जैसे कृत्तिका नक्षत्र, इस नक्षत्रके प्रथम पादमें मेषराशि और शेष तीन पादोंमें वृष राशि होती है, इस नक्षत्रमें दो राशि होनेसे कृत्तिका संधि नक्षत्र है।

सन्ध्यवेला (सं० स्त्री०) ऊषा और सायंकाल।

सन्ध्या (सं० स्त्री०) सं सम्यक् ध्यायत्यस्यामिति सं ध्यै चिंतने आतश्चोपसर्गे इत्यङ्, यद्वा संदधातीति सं धा (अन्यादयश्च। उण् ४।१११) इति यक् प्रत्ययेन निपातितः। १ कालविशेष, दिवारात्रसम्बंधीय दण्डद्वयरूप काल, दिवारात्रिका मिलनकाल। दिवा और रात्रिका एक एक दण्ड करके दो दण्ड कालको संध्या काल कहते हैं। प्रातः और सायंके भेदसे संध्या दो प्रकारकी है। रात्रिके अंतिम एक दण्ड और दिनके प्रथम दण्डात्मक कालको प्रातः संध्याकाल तथा दिनके अंतिम एक दण्ड और रात्रिके प्रथम दण्डात्मक कालको सायं संध्या कहते हैं।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें लिखा है, कि संध्या, रात्रि और दिवा ये तीन कालकी भार्या हैं।

दिवा और रात्रिका जो संधिकाल है, उसीको संध्या कहते हैं। अर्द्ध अस्तमित और अर्द्ध उदित सूर्यमण्डल जिस समय होता है, वही प्रकृत संध्याकाल है। यह काल प्रकृत संध्या होने पर भी दिवा और रात्रिका एक एक दण्ड करके संध्याकाल माना गया है। सूर्य जिस समय आधे डूब जाते और तारोंका उदय नहीं होता तथा सवेरे सूर्यका जब उदित अर्द्धोदय होता है और तेजका सम्यक् विकाश नहीं होता, तब उन्हीं दोनों कालोंको संध्या कहते हैं।

प्रातः और सायंको छोड़ कर और भी एक संध्या है जिसे मध्याह्न कहते हैं। जिस समय सम्पूर्ण अर्थात् आकाशमण्डलके ठीक मध्यस्थलमें सूर्यदेव जाते हैं, वही समय मध्याह्नसंध्या है। यह संध्याकाल सप्तम मुहूर्त्तके बाद अष्टम मुहूर्त्तकालमें होता है। मुहूर्त्त प्रायः दो दण्डका है दिवा और रात्रिके परिमाणभेदसे मुहूर्त्त कालके दण्डादिका भी न्यूनाधिक्य होता है।

योगी याज्ञवल्क्यने तीनों संध्याका साधारण लक्षण इस प्रकार बताया है। जिस समय तीन वेद तथा ब्रह्मा, विष्णु, और महेश्वर इन तीन देवताओंका समागम और अन्यान्य सभी देवताओंकी संधि होती है, उसी कालका नाम संध्या है।

२ त्रिसंध्यकालोपासना। उक्त तीन संध्याकालमें जो उपासना की जाती है उसको संध्या कहते हैं। ३ संध्याकालोपास्य देवता। संध्याकालमें जिस देवताकी उपासना की जाती है उसे भी संध्या कहते हैं। श्रुतिमें लिखा है, "अहरहः संध्यामुपासीत" (श्रुति) प्रतिदिन संध्या समय उपासना करे। संध्योपासना अवश्य कर्त्तव्य है। यह संध्या नित्यकार्यमें गिना जाती है, इसलिये नहीं करनेसे प्रत्यवाय होगा।

उक्त त्रिकालमें ही द्विजातियोंको संध्योपासना अवश्य कर्त्तव्य है। विना संध्या किये उन्हें जलग्रहण नहीं करना चाहिये। मन्वादि सभी शास्त्रोंमें संध्योपासनाका विशेष विवरण दिखाई देता है। आह्निकतत्त्वमें संध्योपासनके विधिका विषय इस प्रकार लिखा है,—एकमात्र संध्याके ऊपर ही ब्राह्मण्य प्रतिष्ठित है। संध्याहीन ब्राह्मण किसी कर्मके योग्य नहीं है अर्थात् उनसे कोई कर्म नहीं कराना चाहिये तथा उन्हें किसी कर्ममें अधिकार नहीं रहता। वे अब्राह्मण कहलाते हैं। शातातपने छः छः प्रकारके अब्राह्मणका उल्लेख किया है उनमेंसे संध्योपासनावर्जित ब्राह्मण एक है।

अतएव द्विजातिके लिये संध्योपासना अवश्य कर्त्तव्य है और एकमात्र श्रेय है। ब्राह्मण यदि संध्योपासनादि न करें तो वे कदापि ब्राह्मण नहीं कहला सकते। अतएव प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल इन तीनों ही समय यथाविधान संध्योपासना करना कर्त्तव्य है।

प्रातःकालमें पूर्वमुख बैठ कर प्रातः संध्या और

मध्याह्न कालमें पूर्व या उत्तरमुख बैठ कर तथा साय-कालमें पश्चिमोत्तरकोणादिकी ओर बैठ कर सन्ध्या करनी होती है। प्रातःकालमें अखण्ड सूर्यमण्डल देखते देखते सन्ध्योपासना करना उचित है। किन्तु सायंकालमें पूर्वमुख बैठ कर कदापि सन्ध्या न करे।

एकमात्र सन्ध्योपासना द्वारा ब्राह्मण ब्राह्मणत्वसे हीन नहीं होते। सन्ध्या प्रतिदिन करनी चाहिये, किन्तु दिनमें सायं सन्ध्या निषिद्ध है। द्वादशी, अमावस्या पूर्णिमा, संक्रान्ति और श्राद्ध (जिस दिन पितरोंके उद्देशसे पार्वण और एकोद्दिष्ट श्राद्धादि किये जाते हैं उस) दिन सायंकालमें सन्ध्या नहीं करनी चाहिये।

जब प्रातःसन्ध्या करनी होती है, तब सूर्यदर्शन पर्यन्त एक स्थान खड़े हो कर गायत्री जप तथा सायंसन्ध्या कालमें आसन पर बैठ कर नक्षत्रदर्शन पर्यन्त गायत्री जप करना उचित है। क्योंकि शास्त्रमें लिखा है, कि प्रातःकालमें खड़ा हो कर करनेसे रातके किये हुए सभी पाप तथा सायंकालमें बैठ कर जप करनेसे दिनमें किये हुए पाप दूर होते हैं। अतएव सन्ध्या करनेसे दैनन्दिन उत्पन्न पाप दूर होते हैं। किन्तु जो दिवा और सायंकालमें ऐसी सन्ध्याकी उपासना नहीं करते, वे शूद्रकी तरह सभी द्विज कर्मों से बहिष्कृत होते हैं।

ब्राह्मण एकमात्र गायत्रीकी उपासना द्वारा ही परम पद पाते हैं। यह गायत्री प्रातःकालमें गायत्री, मध्याह्न कालमें सावित्री और सायंकालमें सरस्वती कहलाती हैं। शास्त्रकी उक्ति है कि जो इसका जप करते, उन्हें प्रतिग्रह, अन्नदोष आदि पाप स्पर्श नहीं कर सकते इस कारण इसका गायत्री नाम, सवितृद्योतनके कारण सावित्री और जगत्‌की प्रसविनी तथा वाग्रूपत्वके कारण सरस्वती नाम पड़ा है। इसकी उपासना करनेसे सभी प्रकारका मङ्गल होता है और एकमात्र ब्रह्मकी उपासना की जाती है। ब्रह्मकी उपासना द्वारा चित्तशुद्धि और पीछे ब्रह्मसाक्षात्कार लाभ होता है। अतएव सन्ध्योपासना ही एकमात्र ब्रह्मप्राप्तिका उपाय है।

प्रातः, मध्याह्न और सायंकालमें ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर, सत्त्व, रजः और तमः तथा भूः भुवः और स्वः इन सबकी उपासना होती है। प्रातःकालमें ब्रह्माकी, मध्याह्नकालमें विष्णुकी और सायंकालमें महादेवकी उपासना की जाती है। अतएव एकमात्र सन्ध्योपासनासे ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरकी उपासना होती है। अस्तु ब्रह्म सन्ध्याका परित्याग कर दूसरेकी उपासना न करें एक सन्ध्याकी उपासना करनेसे सबोंकी उपासना होती है।

पहले कहा जा चुका है, कि ब्राह्मण अवहित हो कर इस सन्ध्यात्रयकी उपासना करें। जो ब्राह्मण त्रिसन्ध्या वर्जित हैं, वे अब्राह्मण हैं, विषहीन सर्पकी तरह निस्तेजस्क हैं उन्हें धर्म कर्ममें कोई अधिकार नहीं है। पितृगण उनका पिण्डग्रहण नहीं करते।

उपनयन संस्कारके बादसे इसी प्रकार त्रिकालमें सन्ध्या करनी होती है, इस कारण इस सन्ध्याका नाम वैदिकी सन्ध्या है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीनों वर्णोंका उक्त सन्ध्यामें अधिकार है। इसके सिवा एक और तान्त्रिक सन्ध्या है। जो तंत्रके मतसे दीक्षा ग्रहण करते हैं, उन्हें दीक्षा लेनेके बादसे ही सन्ध्या करना कर्त्तव्य है। तान्त्रिकी सन्ध्यामें सभी वर्णोंका अधिकार है। दीक्षित मात्र ही यह सन्ध्या कर सकते हैं। अमावस्या, द्वादशी आदिमें जो सायंसन्ध्या निषिद्ध बताई गई है, वह वैदिकी सन्ध्याके विषयमें जानना होगा। तान्त्रिकी सन्ध्या निषिद्ध नहीं है। सभी दिन यह सन्ध्या कर सकते हैं। केवल अशौच होने पर यह सन्ध्या नहीं होगी।

ब्राह्मणादि तीनों वर्ण पहले वैदिकी सन्ध्या कर पीछे तान्त्रिकी सन्ध्या करें। वैदिकी प्रातःसन्ध्या करनेके बाद तान्त्रिक सन्ध्या करनी होती है। इसी प्रकार वैदिक मध्याह्न सन्ध्याके बाद तान्त्रिकी मध्याह्न सन्ध्या तथा सायंसन्ध्या विषयमें भी जानना चाहिये। समय पर सन्ध्या नहीं करनेसे वैदिक सन्ध्याकी तरह तान्त्रिक गायत्रीका दश बार जप कर पीछे तान्त्रिक सन्ध्या करे।

साम, ऋक् और यजुर्वेदसे वैदिकी सन्ध्या भी तीन प्रकारकी है। सामवेदिगण सामवेदानुसार यजुर्वेदिगण यजुर्वेदानुसार और ऋग्वेदिगण ऋग्वेदानुसार सन्ध्या करें। किन्तु तान्त्रिकी सन्ध्यामें ऐसा कोई प्रभेद नहीं है, सभी वर्ण एक प्रकारसे सन्ध्या कर सकते हैं।

तान्त्रिक संध्या ।

इस वैदिक संध्याके अतिरिक्त और भी एक संध्या करनी होती है। उसे तान्त्रिक सन्ध्या कहते हैं। ब्राह्मणादि चार वर्ण जो तन्त्रके मतसे दीक्षित हुए हैं, उन सबोंको यह संध्या करनी होती है। वेदभेदसे जिस प्रकार संध्या भिन्न प्रकारकी है, तन्त्रमतसे उसी प्रकार वर्णभेदमें संध्याका कोई प्रभेद नहीं है। सभी वर्ण उपास्य देवके उद्देशसे एक ही प्रकारकी संध्या विधिका आचरण करें। वैदिक संध्याकी तरह यह तान्त्रिक संध्या भी नित्य है, अर्थात् नहीं करने पर प्रत्यवाय है। तीनों संध्याकी उपासना नहीं करनेसे दीक्षाका फललाभ नहीं होता। तंत्रोक्त वचनमें लिखा है, कि प्रातः संध्या नहीं करनेसे स्नानका फल और मध्याह्न संध्या नहीं करनेसे पूजाका फल नहीं होता तथा सायं संध्या नहीं करनेसे जपमें विघ्न पड़ता है। अतएव दीक्षित व्यक्ति यदि सिद्धि-लाभ करना चाहें तो एकान्त चित्तसे तीनों संध्याकी उपासना करें।

स्त्रियोंको भी तांत्रिक संध्यामें अधिकार है। वे भी यथाविधान संध्याका अनुष्ठान करें। संक्रान्ति, अमावस्या, पूर्णिमा, द्वादशी और श्राद्धदिन इन सब दिनोंमें सायंकालको वैदिक संध्या नहीं करनी चाहिये। यह विधि वैदिक संध्या स्थलमें कही गई है। किंतु तांत्रिक संध्याविषयमें यह निषिद्ध नहीं है। वरन् तंत्रमें लिखा है, कि इन सब दिनोंमें यदि तांत्रिक संध्या न की जाय, तो नरक होता है, उसे इस लोकमें दरिद्रता और मरनेके बाद शूकरयोनिकी प्राप्ति होती है, अतएव द्वादशी आदिमें सायंकालमें यत्नपूर्वक संध्याकी उपासना करे।

वैदिक संध्याके बाद तांत्रिक संध्या करनी होती है, तंत्रमें ऐसा ही विधान है। अतएव द्वादशी आदिमें जब संध्या निषिद्ध हुई है, तब दोनों ही संध्या निषिद्ध है, ऐसा जो कहते हैं, वे भूलते हैं। क्योंकि विशेष वचनमें यह संध्या कही गई है, इस कारण यह संध्या अवश्य कर्त्तव्य है। फिर किसी किसीका कहना है, कि यह कौलपर है, जो कौल हैं केवल वे ही उक्त निषिद्ध दिनमें संध्यानुष्ठान करेंगे, यह भी युक्तिसंगत नहीं है। किन्तु जनन या मरणाशौच होने पर किसीको भी संध्यामें अधिकार नहीं है। कोई भी संध्याचरण नहीं कर सकता, किन्तु संध्या नहीं करनी चाहिये कह कर मूलमंत्र जप निषिद्ध नहीं है, यथाविधान संध्या न करके केवल मूलमंत्रका जप करना होगा। कोई कोई कहते हैं, कि जनन या मरणाशौच संध्या निषिद्ध नहीं है अर्थात् अशौचमें भी करनी होगी, यह मत सङ्गत नहीं है। क्योंकि, दूसरे वचनसे संध्या निषिद्ध नहीं होने पर भी वैसे अधिकारीभेदसे संध्याको कर्त्तव्य बताया है, वह सर्वसाधारणके लिये नहीं है।

संध्याका समय बीत जाने पर प्रायश्चित्त करके संध्यानुष्ठान करना होता है, यह पहले ही कहा जा चुका है। दश बार गायत्री जप ही उसका प्रायश्चित्त है। समयातिपातमें वैदिक और तांत्रिक इन दोनों ही संध्यास्थानमें वैदिक गायत्री दश बार जप करके वैदिक संध्या और तांत्रिक गायत्रीका दश बार जप करके तांत्रिक संध्याका आचरण करना होगा या केवल वैदिक गायत्री दश बार जप करके दोनों संध्या करनी होगी? यह रघुनन्दन शास्त्रमें मीमांसित हुआ है, केवल वैदिक प्रायश्चित्तात्मक दश बार वैदिक गायत्री जप करके दोनों ही संध्या करनी होगी, भिन्न भिन्न रूपमें प्रायश्चित्त नहीं करना होगा, एक बार प्रायश्चित्त करनेसे उसके द्वारा दोनोंका ही प्रायश्चित्त सिद्ध हो। क्योंकि शास्त्रमें वैदिक गायत्रीका प्राशस्त्य कहा गया है। प्रातःकृत्य किये बिना संध्या और संध्या नहीं किये बिना देवपूजा नहीं करनी चाहिये।

वैदिक संध्याकी तरह तांत्रिकसंध्यामें भी तर्पण है। जिसके पिता जीवित हैं, उसे वैदिक संध्यामें पितरोंके उद्देशसे तर्पण नहीं करना चाहिये, किन्तु तांत्रिक संध्यामें ऐसो छान बीन नहीं है। संध्या स्थानमें जो तर्पण लिखा है, सभी त्रिसन्ध्याकालमें वह तर्पण कर सकते हैं। वैदिक सन्ध्यास्थलमें मध्याह्न संध्याको ही केवल तर्पण करने कहा गया है, अन्य संध्यामें नहीं। वैदिक संध्याङ्ग जो तर्पण है उसमें पितादिके नाम गोत्रका उल्लेख कर तर्पण करना होता है, किन्तु तांत्रिक संध्यामें उस

प्रकार तामसीका कोई उल्लेख नहीं है, अतएव पितरोंके उद्देशसे जो तर्पण किया जाता है वहां पितृ शब्दके अर्थ से प्राणान्तिमात्र समझना होगा। सुतरां जीवत्पितृकका दोष नहीं होगा।

वैदिक सन्ध्यामें जिस प्रकार सबके लिए एक गायत्री निर्दिष्ट हुई है तान्त्रिक सन्ध्यामें उस प्रकार नहीं है, प्रत्येक देवताकी भिन्न भिन्न गायत्री है। जो जिस देवताकी उपासना करेंगे वे उसी देवताकी गायत्री और जप आदि करें। सन्ध्याविधिमें जो साधारणरूपसे कर्त्तव्य है, सिर्फ उसीका उल्लेख यहां पर किया गया। तान्त्रिक सन्ध्यामें शाक्त और वैष्णवादि भेदसे कुछ कुछ प्रभेद है।

३ महाशिवदेव। ४ युगसन्धि एक युगकी समाप्ति और दूसरे युगका आरम्भ समय, दो युगोंके बीचका समय। ५ सीमा, हद। ६ संधान। ७ पुष्पविशेष।

सन्ध्यांश (सं० पु०) सन्ध्यायाः अंशः। युगसन्धि, सत्य और त्रेतादियुगका प्रथम और शेषांश। प्रत्येक युगके सन्ध्या और सन्ध्यांश हैं।

दैव परिमाणसे चार हजार वर्षका सत्ययुग होता है। इस युगके पूर्व चार सौ वर्ष सन्ध्यांश होता है अन्यान्य और तीन युग हैं उनका सन्ध्या और सन्ध्यांश एक हजार और एक सौ वर्ष करके घटता जाता है अर्थात् त्रेता युगका परिमाण तीन हजार वर्ष, इसके पूर्व तीन सौ वर्ष सन्ध्या और उत्तर तीन सौ वर्ष सन्ध्यांश होता है। इसी प्रकार द्वापरयुग दो हजार वर्ष, इसके पूर्व दो सौ वर्ष सन्ध्या और शेष दो सौ वर्ष सन्ध्यांश है। कलियुगका परिमाण हजार वर्ष इसका प्रथम एक सौ वर्ष सन्ध्या और शेष एक सौ वर्ष सन्ध्यांश होता है। अन्यान्य विवरण उन्हीं सब युगमें देखो।

सन्ध्याकाल (सं० पु०) सन्ध्यारूप कालः। १ सायंकाल। २ सन्ध्या करनेका समय, सन्ध्योपासना करनेका समय। सन्ध्या शब्द देखो।

सन्ध्याचल (सं० पु०) सन्ध्याया अचलः। पर्वतविशेष। कालिकापुराणमें लिखा है, कि इस पर्वतमें कामा नदी निकली है। वशिष्ठदेवने उस नदीके किनारे बैठ कर सन्ध्योपासना की थी, इसीसे पहाड़का नाम सन्ध्याचल पड़ा है।

सन्ध्यात्व (सं० क्ली०) सन्ध्याया भाव त्व। सन्ध्याका भाव या धर्म।

सन्ध्यानाटिन् (सं० पु०) सन्ध्यायां नटतीति नट इनि। शिव, महादेव।

सन्ध्यापुष्पी (सं० स्त्री०) सन्ध्या पुष्प यस्याः, ङीष्। जातीपुष्प।

सन्ध्यावधू (सं० स्त्री०) रात्रि, रात।

सन्ध्याबल (सं० पु०) राक्षस, निशाचर।

सन्ध्याबाल (सं० पु०) शिवालयस्थित मृत्काष्ठादि निर्मित वृष, शिवालयोंका वह बैल जो मिट्टी या काठका बना होता है।

सन्ध्याभ्र (सं० क्ली०) सन्ध्याया अभ्रमिव तद्वर्णत्वात्। १ सुवर्णगैरिक। २ सन्ध्याकालीन मेघ, शामके समयका बादल।

सन्ध्याराग (सं० क्ली०) सन्ध्या राग इव रागो यस्य। सिन्दूर, सेंदुर।

सन्ध्याराम (सं० पु०) सन्ध्या रामो रमण यस्य। ब्रह्मा।

सन्ध्यावलि (सं० स्त्री०) वरदा देवी।

सन्ध्याशङ्खध्वनि (सं० स्त्री०) सन्ध्याया या शङ्खध्वनि। सन्ध्याकालीन शङ्खनाद। शास्त्रमें लिखा है, कि सायंकाल में शङ्खध्वनि करना होता है इससे अमङ्गल दूर होता है तथा यह शब्द जहां तक जाता है वहां तक शुभ होता है। आज भी प्रति हिन्दूके घर सन्ध्याकालमें शङ्खध्वनि होती है।

सन्ध्योपनिषद् (सं० स्त्री०) उपनिषद्विशेष।

सन्न (सं० त्रि०) सद-क्त। १ अवसन्न नष्ट, गत। २ स्तम्भित सौंचका ठक। ३ हीन, रहित। ४ स्तब्ध, जड़ संज्ञाशून्य। ५ भयसे नीरव, डरसे चुप। ६ सहसा मौन, एक फारसी खामोश। (पु०) ७ पियाल वृक्ष चिरौंजीका पेड़।

सन्नक (सं० पु०) सादयति स्वेनि सद णिच् तत स्वार्थे कन्। खर्व।

सन्नकद्रु (सं० पु०) पियालवृक्ष, चिरौंजीका पेड़।

सन्नत (सं० त्रि०) सम्-नम-क्त । १ प्रणत, झुका हुआ । २ शब्दित, शब्द किया हुआ । ३ नीचे गया हुआ । (पु०) ४ रामकी सेना एक बंदर ।

सन्नति (सं० स्त्री०) सम्-नम-क्तिन् । १ प्रणति, प्रणाम । २ ध्वनि, शब्द । ३ नम्रता, विनय । जहां लज्जा है, वहीं लक्ष्मी है और जहां लक्ष्मी है, वहीं नम्रता है । ४ होम भेद । ५ झुकाव । ६ किसी ओर प्रवृत्ति, मनका झुकाव । ७ कृपादृष्टि, मेहरबानी । ८ दक्षकी पुत्री और क्रतुकी स्त्रीका नाम ।

सन्नतिमत् (सं० त्रि०) सन्नति अस्त्यर्थे मतुप् । १ सन्नतिविशिष्ट । (पु०) २ सुमतिके पुत्रका नाम ।

सन्नतेय (सं० पु०) रौद्राश्वके एक पुत्रका नाम ।

सन्नद्ध (सं० त्रि०) सम्-नह-क्त । १ वर्मित, कवचधारी । २ व्यूढ़, जो व्यूह बन कर खड़ा हो । ३ अस्त्रसज्जित, कवच आदि बांध कर तैयार । ४ आततायी, उपद्रवी । ५ वधोद्यत, मारनेके लिये तैयार । ६ सन्नाहि संयुत । ७ आबद्ध, बंधा हुआ, कसा या जकड़ा हुआ । ८ लगा हुआ, जुड़ा हुआ । ९ समीपका, पासका ।

सन्नद्धव्य (सं० त्रि०) सम्-नह तव्य । सन्नाहयोग्य, सन्नाह्य ।

सन्नय (सं० पु०) समूह, झुंड ।

सन्नभाव (सं० त्रि०) अवसन्नता, भीरुता ।

सन्नम् (सं० स्त्री०) सन्नति, प्रणाम ।

सन्नय (सं० पु०) सं-नी-अच् । १ समूह, ढेर । २ पृष्ठ-स्थायिबल, पीछे खड़ी सेना ।

सन्नहन (सं० क्ली०) सम्-नह-ल्युट् । १ वर्मपरिधान, कवच पहनना । २ उद्योग, तैयारी । ३ अस्त्रबन्धन । ४ रणसज्जा ।

सन्नाटा (हिं० पु०) १ चारों ओर किसी प्रकारका शब्द न सुनाई पड़नेकी अवस्था, निःशब्दता, नीरवता । २ अत्यन्त भय या आश्चर्यके कारण उत्पन्न मौन और निश्चेष्टता, ठक रह जानेका भाव । ३ किसी प्राणीके न होनेका भाव, निर्जनता, निरालापन । ४ काम धंधेसे गुलज़ार न रहना । ५ सहसा मौन, एकदम खामोशी । ६ हवाके जोरसे चलनेकी आवाज, वायुके बहनेका शब्द । ७ हवा चीरने हुए तेजीसे निकल जानेका शब्द, वेगसे वायुमें गमन करनेकी आवाज । (वि०) ८ स्तब्ध, नीरव । ९ निर्जन, निराला ।

सन्नाद (सं० पु०) सम्-नद-घञ् । सम्यक्‌रूपसे नाद, भीषण शब्द ।

सन्नादन (सं० त्रि०) १ सन्नादकारी, शब्द करनेवाला । (क्ली०) २ सम्यक् नाद, सम्यक् शब्द । ३ रामकी सेनाका एक यूथप बन्दर ।

सन्नाम (सं० पु०) नम्रता ।

सन्नामन् (सं० क्ली०) उत्तम नाम, कीर्त्ति ।

सन्नाह (सं० पु०) संनह्यतेऽसौ इति सं-नह घञ् । १ अङ्गत्राण, कवच, बकतर । २ उद्योग, प्रयत्न । ३ परिच्छद, पहनावा ।

सन्नाह्य (सं० पु०) संनह्यते इति सम्-नह-यत् । १ युद्ध योग्य गज, लड़ाई करने लायक एक विशेष प्रकारका हाथी । (वि०) २ सन्नाहयोग्य, वर्मित ।

सन्निकट (सं० अव्य०) समीप, पास ।

सन्निकर्ष (सं० पु०) सम्-नि-कृष-घञ् । १ सान्निध्य, समीपता । २ सम्बन्ध, लगाव । ३ नाता, रिश्ता । ४ पात्र, आधार । ५ इंद्रियोंका विषयोंके साथ सम्बन्ध । विषयके साथ इन्द्रियका जो सम्बन्ध अर्थात् व्यापार है, उसे सन्निकर्ष कहते हैं । भाषापरिच्छेदमें लिखा है, कि विषयके साथ इन्द्रियका जो सम्बंध है, वही सन्निकर्ष है । यह सन्निकर्ष ही ज्ञान सामान्यका प्रति कारण अर्थात् इसीसे ज्ञान लाभ होता है । यह सन्निकर्ष दो प्रकारका है—लौकिक सन्निकर्ष और अलौकिक सन्निकर्ष । लौकिक सन्निकर्षके फिर ६ भेद हैं, यथा—१ इंद्रियसंयोग । २ इंद्रियसंयुक्त समवाय । ३ इंद्रियसंयुक्त समवेत समवाय । ४ श्रोत्रादि समवाय । ५ श्रोत्रादि समवेतसमवाय । ६ सदादि विशेषणता । अलौकिक सन्निकर्षके तीन भेद हैं—सामान्य लक्षणा, ज्ञानलक्षणा और योगज ।

सन्निकर्षण (सं० क्ली०) सम्-नि कृष ल्युट् । १ सन्निधान । पर्याय—सन्निधि, सन्निध्य । २ सम्बन्ध, लगाव, रिश्ता ।

सन्निकाश (सं० त्रि०) १ ज्योतिर्दर्शन, सम्यक् विकाश । २ तुल्य, समान ।

सन्निकृष्ट (सं० त्रि०) सम् नि कृष-क्त। सन्निकर्षविशिष्ट, निकट, पास।
सन्निग्रह (स० पु०) सम्यक् निग्रह, सजा देना।
सन्निचय (सं० पु०) सम् नि चि घञ्। सम्यक्‌निचय, सम्यक् रूपसे सञ्चय।
सन्निरोध (स० पु०) निरोध। (भागवत ५।१७।२)
सन्निध (सं० पु०) १ सान्निध्य। २ अपने सामनेकी स्थिति।
सन्निधातृ (स० त्रि०) सम् नि धा तृ। कर्त्ता।
सन्निधान (सं० त्रि०) सम् नि धा ल्युट्। १ नैकट्य, समीपता। सम्यक् निधीयतऽस्मिन्निति। २ आश्रय। ३ अवस्थान। ४ आविर्भाव। ५ समागम। ६ इन्द्रिय विषय। ७ स्थापित करना, रखना। ८ किसी वस्तुके संग्रहका स्थान। ९ वह स्थान जहां धन एकत्र किया जाय, निधि।
सन्निधि (सं० स्त्री०) सम् नि धा कि। १ सन्निकर्ष समीपता निकटता। २ इन्द्रियगोचर। ३ अवस्थान। ४ उत्तम निधि। ५ सामने सामनेकी स्थिति। ६ पड़ोस।
सन्निनद (सं० पु०) सम् नि नद अप्। सम्यक् निनाद, जोरका शब्द।
सन्निनाद (सं० पु०) सम् नि नद घञ्। सम्यक्‌रूपसे नाद जोरका शब्द।
सन्निपतित (सं० त्रि०) सम् नि पत क्त। १ मिश्रित, मिला हुआ। २ सम्यक् प्रकारसे पतित, एकदम गिरा हुआ। ३ उपस्थित, हाजिर। ४ मृत, मरा हुआ। ५ अवतीर्ण। ६ आगत।
सन्निपात (सं० पु०) सम्यक् निपातो पतनं यत्र। १ तालभेद।
"एकएव गुरुर्यत्र सन्निपात स उच्यते।" (सङ्गीतदामोदर)
२ समूह, समाहार। ३ मिश्रण, संयोग, मेल। ४ संग्राम, युद्ध। ५ सम्यक् प्रकारसे पतन, एक साथ गिरना या पड़ना। ६ नाश बरबादी। ७ अवतरण। ८ उपस्थित। ९ जुटना मिलना। १० इकट्ठा होना, एक साथ जुटना। ११ कफ, वात और पित्त तीनोंका एक साथ बिगड़ना, त्रिदोष। सन्निपातज्वर देखो।
सन्निपातकलिका (सं० स्त्री०) १ अश्विनीकुमारकृत सन्निपात चिकित्सा। २ रुद्रकृत सन्निपातचिकित्सा।
सन्निपातज्वर (स० पु०) सम्यक् निपातो नाशो यस्मात् तादृशो ज्वरः। त्रिदोषज ज्वर, त्रिदोषसे उत्पन्न ज्वर। जहां वायु पित्त और कफ नामके तीनों दोष दूषित हो कर ज्वर रोग होता है वहां उसे सन्निपात ज्वर कहते हैं। वैद्यकमें लिखा है, कि त्रिदोषवर्द्धक आहार, विहार द्वारा शरीरके वायु पित्त और कफ बढ़ कर आमाशयमें जाते हैं तथा वहां उन तीनों दोषोंको दूषित और कोष्ठका अग्निको बहिर्गत कर सन्निपात ज्वर उत्पादन करते हैं। सन्निपातज्वर होनेके पहले वात ज्वर, पित्तज्वर और कफज्वरके जो सब पूर्वलक्षण होते हैं, इस ज्वरको प्रथमावस्थामें भी वही सब पूर्वरूप दिखाई देते हैं। ज्वर देखो।
सन्निपातन (स० क्ली०) १ सम्यक्‌रूपसे पातितकरण, अच्छी तरह गिराने या बिछानेकी क्रिया। २ सन्निपात।
सन्निपाततुर (सं० पु०) सन्निपात तुरतीति तुर क्विप्। नेपालनिम्ब।
सन्निपातभैरवरस (स० पु०) सन्निपातज्वराधिकारोक्त रसौषधविशेष। प्रस्तुतप्रणाली—हिङ्गुल ४॥ तोला, गन्धक २ तोला २ माशा, विष २ तोला २ माशा धतूरे का बीज तीन तोला, सोहागेका लावा १ तोला १ माशा इन्हें बिजौरा नीबूके रसमें घोंट कर छायामें सुखा लें। पीछे सुख जाने पर १ रत्तीकी गोली बनावे। अनुपान अदरकका रस और मधु है। घोरतर सान्निपातिकमें इसकी एक गोली सेवन करनेसे विशेष उपकार होता है।
सन्निपातमृत्युञ्जयरस (स० पु०) ज्वराधिकारोक्त रसौषधविशेष।
सन्निपातसूर्यरस (स० पु०) ज्वराधिकारोक्त रसौषध विशेष।
सन्निपातिन् (सं० त्रि०) सन्निपातयुक्त।
सन्निपात्य (सं० त्रि०) सम् नि-पत ण्यत्। सन्निपात-योग्य, निपातनार्ह।
सन्निबद्ध (सं० त्रि०) सम् नि बध क्त। १ सम्यक् बन्धनयुक्त जकड़ा हुआ। २ लगा हुआ। ३ सहारे पर टिका हुआ।
सन्निबन्धन (स० क्ली०) सम् नि बन्ध ल्युट्। १ सम्यक् रूपसे निश्चित बन्धन, एकमें कस कर बांधना।

२ सम्बंध, लगाव । ३ प्रभाव, तासीर । ४ परिणाम, फल ।

सन्निभ (सं० त्रि०) सम्यक् निभातीति सम्-निभा क । सदृश, तुल्य, समान, मिलता जुलता ।

सन्निभृत (सं० त्रि०) १ अच्छी तरह छिपाया हुआ, गुप्त । २ समझ बूझ कर बोलनेवाला ।

सन्निमग्न (सं० त्रि०) १ खूब डूबा हुआ । २ सोया हुआ ।

सन्निमित्त (सं० क्ली०) सत्‌निमित्तं । १ साधुनिमित्त, उत्तम निमित्त । २ साधुओंके निमित्त ।

सन्नियन्तृ (सं० त्रि०) सम् नि-यम् तृच् । सम्यक् नियन्ता, सम्यक्‌रूपसे नियमकारी ।

सन्नियम (सं० पु०) सम् नि यम्, अप् । सम्यक्‌रूपसे नियम ।

सन्निरुद्ध (सं० त्रि०) सम् नि रुध क । १ सम्यक्‌रूपसे निरुद्ध, सम्यक् प्रकारसे निरोधविशिष्ट, रोका हुआ, ठहराया हुआ । २ दमन किया हुआ, दबाया हुआ । ३ ठसाठस भरा हुआ ।

सन्निरुद्धगुद (सं० पु०) सन्निरुद्धं गुदं यस्मात् । गुह्यद्वारोद्भव रोगविशेष । मलवेगको रोकनेसे कुपित अपान वायु मलवाहिनी स्रोतको संकुचित कर गुह्यद्वारको सूक्ष्म कर डालती है, इस कारण बड़ी मुश्किलसे मल निकलता है । इसी दारुण रोगको सन्निरुद्धगुद कहते हैं । इस रोगके आरम्भ होते ही चिकित्सा करना उचित है ।

सन्निरोद्धव्य (सं० त्रि०) सम-नि-रुध-तव्य । सम्यक्‌रूपसे निरोधयोग्य, अच्छी तरह रोकने या ठहरानेके लायक ।

सन्निरोध (सं० पु०) सम्-नि-रुध-घञ् । १ सम्यक्‌रूपसे निरोध, रोक, रुकावट, बाधा । २ निवारण, दमन । ३ संकोच, तंगी । ४ तंग रास्ता, संकरी गली ।

सन्निवपन (सं० क्ली०) १ अच्छी तरह बोनेकी क्रिया । २ अच्छी तरह कूटा या छांटा हुआ ।

सन्निवर्त्तन (सं० क्ली०) सम्यक्‌रूपसे निवर्त्तन, प्रत्यावर्त्तन, लौटना ।

सन्निवाप (सं० पु०) अच्छी तरह बोना ।

सन्निवाप (सं० पु०) समुदाय, समूह ।

सन्निवारण (सं० क्ली०) सम्यक्‌रूपसे निवारण ।

सन्निवार्य्य (सं० त्रि०) सन्निवारणयोग्य, अच्छी तरह रोकनेके लायक ।

सन्निवास (सं० पु०) सं नि-वस घञ् । १ सम्यक् निवास । २ विष्णु ।

सन्निविष्ट (सं० त्रि०) सम् नि विश-क्त । १ उपविष्ट, एक साथ बैठा हुआ । २ निकट, पास । ३ सम्मुखमें उपस्थित, हाजिर । ४ निकटस्थ, पासका । ५ संक्रान्त, लगा हुआ । ६ स्थापित, रखा हुआ । ७ अंटा हुआ, आया हुआ ।

सन्निवृत्त (सं० त्रि०) सम्-नि वृत-क्त । निवृत्त, विरत, प्रत्यागत ।

सन्निवृत्ति (सं० स्त्री०) सम्-नि वृत क्तिन् । सम्यक् निवर्त्तन, लौटनेकी क्रिया ।

सन्निवेश (सं० पु०) संनिविशन्ति अत्रेति सं-नि विश-घञ् । १ पत्तनादिमें दिगादिपरिच्छिन्न प्रदेश । २ पूर्वादिगाद्यवच्छिन्न गृह । (कलिङ्ग) ३ पुरादिकी बहिर्विहरण भूमि, नगर आदिके बाहरमें अवस्थित विहार-भूमि । पर्याय—आकर्षण । ४ एक साथ बैठना । ५ स्थित होना, जमना । ६ रखना, ठहरना । ७ लगाना, बैठाना । ८ अंटना, भीतर आना । ९ स्थिति, आधार । १० आसन, बैठकी । ११ निवास, घर । १२ पुर या ग्रामके लोगोंके एकत्र होनेका स्थान, चौपाल । १३ एकत्र होना, जुटना । १४ समाज, समूह । १५ व्यवस्था, योजना । १६ रचना । १७ आकृति, गढ़न । १८ स्तम्भ मूर्त्ति आदिकी स्थापना । १९ भीतर प्रवेश करना, घुसना ।

सन्निवेशन (सं० पु०) १ एक साथ बैठना । २ रखना, धरना । ३ स्थित होना, जमना । ४ बैठाना, जड़ना । ५ टिकाना, ठहराना । ६ स्थापित करना, खड़ा करना । ७ व्यवस्था, विधान ।

सन्निवेशित (सं० त्रि०) १ बैठाया हुआ, जमाया हुआ । २ ठहराया हुआ, रखा हुआ । ३ स्थापित, प्रतिष्ठित । ४ भीतर डाला हुआ, अंटाया हुआ ।

सन्निवेशिन् (सं० त्रि०) सम् नि-विश-णिनि । सन्निवेशयुक्त ।

सन्निवेश्य (सं० त्रि०) सन्निवेशयोग्य, सन्निवेशके लायक ।

है। इस तरह गार्हस्थ्य आश्रमके बाद जीवनका तीसरा भाग वानप्रस्थका अवलम्बन लेना है। इसके उपरान्त संन्यासाश्रम है। द्विज अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—ये तीन वर्ण ही उक्त चार आश्रमके अधिकारी हैं। रघुनन्दन आदि आधुनिक स्मार्त्तोंने तो कलिमें एकमात्र ब्राह्मणोंको ही संन्यासका अधिकारी बनाया है।

जिस गृहस्थकी देहका चमड़ा फूलने लगे, बाल पकने लगे और पुत्रके भी पुत्र हो जाये, उसको चाहिये कि वह वानप्रस्थका अवलम्बन करे। वानप्रस्थ शब्द देखो।

वानप्रस्थाश्रममें जीवनका तीसरा भाग बिता कर चतुर्थ भागमें सर्वसंग छोड़ संन्यासाश्रमका अवलम्बन लेना होता है।

प्रजापतियाग समाधा तथा सर्वस्व दक्षिणान्त कर आत्मामें अग्नि आधानपूर्वक ब्राह्मणको संन्यासाश्रम ग्रहण करना चाहिये। जिसने सर्वभूतमें अभयदान कर संन्यासाश्रम ग्रहण किया है, वह इसके फलसे तेजोमय लोक प्राप्त करता है। उससे किसी भी प्राणीको भय नहीं रहता और उसे भी देहत्यागके बाद कुत्रापि कुछ भी भय प्राप्त नहीं होता। द्विज संन्यास अवलम्बन कर दण्ड कमण्डलु आदि साथमें ले काम्यविषय उपस्थित होने पर भी उससे वह आस्थाशून्य हो और सर्वदा मौनावलम्बन धारण करे। उस समय वह ऐक्यमें सिद्धि समझ आत्मसिद्धिके लिये नित्य अकेला असहाय अवस्थामें विचरण करे। जो सङ्गशून्य हो कर अकेला विचरण करता है, वह किसीको भी त्याग नहीं करता अथवा किसीके द्वारा वह परित्यक्त नहीं होता, अर्थात् आत्मसम्बन्धीय त्याग दुःखादिका उसको अनुभव नहीं होता।

इस संन्यासाश्रममें सदा अग्निहीन, वासहीन, व्याधि प्रतिकारकी प्रतीक्षा, स्थिरमति और सदा ब्रह्मभावमें समाहित हो अवस्थान करना होता है। मृण्मय शरावादि भिक्षापात्र, वासके लिये वृक्षका मूल, पहननेके लिये पुराने कौपीन आदि वसन, असहाय भावसे अकेला अवस्थान और सर्वत्र ही समदृष्टि, ये सब संन्यासाश्रमके लक्षण हैं। इस आश्रममें जीवन या मरण किसीकी भी कामना न करे, किन्तु नौकर जैसे वेतनके लिये निर्दिष्ट समयकी प्रतीक्षा करता है, वैसे ही संन्यासी जीवनकाल या मरणकालकी प्रतीक्षा करे। इस आश्रमका अवलम्बन कर पथमें विचरण करते समय पथको खूब अच्छी तरह देख भाल कर चलना चाहिये। जलपान करनेके समय कपड़ेसे जलको छान कर पीना उचित है, वाक्य प्रयोगमें कभी भी झूठ नहीं बोलना चाहिये और मनमें जो पवित्र बोध हो, उसीका अनुष्ठान करना विधिसङ्गत है।

संन्यासियोंका विनाश होता है, उस पापके छुटकारेके लिये उन्हें प्रति दिन स्नान कर छः बार प्राणायाम करना चाहिये। सप्तव्याहृति और दश प्रणवयुक्त प्राणायामत्रय पूरक, कुम्भक और रेचक विधानके अनुसार अनुष्ठित होने पर यह प्राणायाम परम तपस्या कहा जाता है। सोने चांदीमें लगे हुए मल जैसे गर्म करनेसे दूर हो जाते हैं, वैसे ही प्राणायाम द्वारा प्राणवायुका निग्रह करनेसे इन्द्रियोंके समूचे दोष दग्ध हो जाते हैं। अतएव प्राणायाम द्वारा इन्द्रियविकारादि दोषोंको संन्यासी दग्ध करे। स्थानविशेषमें चित्तबन्धनरूप धारणा द्वारा सब पापोंको नष्ट करना होगा। अपने अपने विषयसे इन्द्रियको आकर्षणरूप प्रत्याहार द्वारा विषय संसर्गरूप सब पापोंसे दूर रखनेकी चेष्टा करे और परब्रह्मके ध्यानमें नियुक्त रह करके कामक्रोध आदि सब अनीश्वर गुणोंको जीते। जीवका देवपश्वादि उत्कृष्टापकृष्ट योनिमें क्यों जन्म होता है, आत्मज्ञानहीन लोगोंके लिये सम्पूर्णरूपसे दुर्ज्ञेय है। इससे सर्वदा ध्यानपरायण होना विशेष आवश्यक है।

योगी याज्ञवल्क्यने संन्यासके समय और कर्त्तव्य आदिका विषय इस तरह निर्देश किया है, कि सर्ववेद दक्षिणायुक्त प्राजापत्य यज्ञानुष्ठानके बाद यथानियम वैतान और औपासन अग्नि अपने ही आरोपित कर वानप्रस्थ आश्रमसे संन्यासाश्रम अवलम्बन करना होता है। गृहस्थाश्रमसे वानप्रस्थ अवलम्बन न करके भी यह चतुर्थाश्रम (संन्यास) ग्रहण किया जा सकता है। यथार्थरूपसे इस आश्रमका अधिकार हो तो इस आश्रमका अवलम्बन करना चाहिये। जिस व्यक्तिने वेदाध्ययन और सूक्त जप किया है, जो पुत्रवान् है, जिसने अन्ये

लगाइका यथाशक्ति दान दिया है, आहिताग्नि और नित्यनैमित्तिक यज्ञानुष्ठान किया है उसका ही इस आश्रमका अधिकार है। इसके विपरीत गुणयुक्त होने पर द्विज चतुर्थाश्रमका अधिकारी नहीं होता और यदि वह सन्यास ग्रहण करे, तो पापी होता है। इसलिए कर सभी प्राणियोंके प्रति ही औदासीन्य प्रकाश इस आश्रमवासीका एकान्त कर्त्तव्य है। सन्यासी सदा शान्ति गुणावलम्बी हो यह दण्ड और कमण्डलु धारण, एकान्त अवस्थान और अभिमानमूलक श्रौतस्मार्त क्रियाकलाप परित्याग करे। वह केवल भिक्षाके लिये ग्रामोंमें प्रवेश करे इसके सिवा सन्यासीको ग्राममें जाना उचित नहीं। किसी गुणका परिचय न दे वाक्य नेत्रादिका चापल्य और लोभ परित्याग कर निकृष्ट्तर वर्जित ग्राममें प्राण धारणके लिये आठ भागोंमें विभक्त दिनके पांचवें भागमें भिक्षाटन करे। मृण्मय वेणु (बांस), दारु (लकड़ी) का पात्र सन्यासीका व्यवहार करना चाहिये। इनके सिवा दूसरे किसी तरहका पात्र सन्यासी व्यवहार न करे। ये सब पात्र गोलाङ्गुल केश और जल द्वारा विशुद्ध होते हैं।

यह आश्रमी इन्द्रियोंको विषयसे दूर रखनेकी सर्वदा चेष्टा करे। अनुराग और द्वेष परित्याग तथा इस तरह का काम जिससे प्राणियोंका भय उत्पन्न न हो, सन्यासियोंके लिये विधिसङ्गत है। सन्यासी विषयकाम आदि जनित दोषकलुषित अन्तःकरणको विशेषरूपसे विशुद्ध करे। क्योंकि अन्तःकरण विशुद्धि हो तत्पश्चात् ध्यान तथा ध्यान धारणादि कार्यमें सामर्थ्यलाभकी कारण है। विविध गर्भयन्त्रणा, जन्म मृत्यु निषिद्धाचरणादि जनित नरकगति, व्याधि, आधि, अविद्या अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश, ये पांच क्लेश जरा, अन्यान्य बहुत्वादिजनित रूपविपर्यय, सहस्र सहस्र जातियोंमें उत्पत्ति इष्ट वस्तुओंकी अप्राप्ति और अनिष्ट प्राप्तिका विचार पर्यालोचना कर जिससे फिर संसारमें आना न पड़े, इसके लिये सन्यासीका निदिध्यासनादि द्वारा ब्रह्मसाक्षात्कार करना होगा। (याज्ञवल्क्य ३ अ०)

जो मुमुक्षु हैं वे इस आश्रमका अवलम्बन कर मुक्त लाभ किया करते हैं। मुक्तिको प्राप्तिमें इस सन्यासके बढ़ कर कोई दूसरा मार्ग नहीं। सन्यासी होना।

४ शिवपूजाके उद्देशसे मानसोत्पन्न सन्यास मता वलम्बनरूप व्रतविशेष। चैत्रके महीनेमें संक्रान्तिके दिन महादेवके उद्देशसे ये सब सन्यासी नाना तरहके उत्सव कर महादेवकी पूजा करते हैं। रघुनन्दन आदि प्रणीत धर्मनिबन्धोंमें इसका कुछ उल्लेख दिखाई नहीं देता। वृहद्धर्मपुराणमें लिखा है, कि चैत्र महीनेमें यह उत्सव कर संक्रान्तिके दिन समाप्त कर देना चाहिये। लिखा है—

"चैत्रे शिवोत्सवं कुर्यात् नृत्यगीतमहोत्सवैः।
स्नायात् त्रिसन्ध्यं रात्रौ च हविष्याशी जितेन्द्रियः॥"
(वृहद्धर्मपुराण उत्तरख० ६ अ०)

बङ्गालमें 'चड़क पूजा' के समय सन्यासी होनेकी जो प्रथा है यह सन्यासी सभी वर्णके लोग हो सकते हैं। साधारणतः नीच जातिके लोग ही ऐसे सन्यासी होते हैं। इन सब सन्यासियोंमें एक मूल सन्यासी होता है। यह मूल सन्यासी महादेव मूर्त्तिको सिर पर रख कर लोगोंके घर घर घूमता है। अन्यान्य सन्यासी नृत्य गान करते करते उसका अनुगमन करते हैं। ये दिन भर उपवास रह कर रातको हविष्य भोजन करते हैं। संक्रान्तिके दिन इनकी यह पूजा समाप्त हो जाता है। चड़क, दोल आदि शब्द देखो।

५ रोगविशेष सन्यास रोग। अत्यन्त बलयुक्त प्रकुपित दोष प्राणाधिष्ठित स्थान हृदयका आश्रय कर वाक्य और शारीरिक तथा मानसिक चेष्टाका विनाश कर दुर्बल व्यक्तिको मूर्च्छित करता है, यह व्यक्ति काष्ठवत् या मृतवत् भूमि पर पड़ जाता है इसको सन्यासरोग कहते हैं। यह रोग एक तरहकी मूर्च्छा है। इसके होने पर सूई देने (Enjection) का यदि व्यवस्था शीघ्र न की जावे, तो अचिरात् ही रोगी मानवलीला संवरण करता है।

इसकी चिकित्सा—अति वर्द्धित वीर्य और तमा गुणान्वित प्रयुक्त जो व्यक्ति मूर्च्छित हो कर चैतन्य लाभ नहीं करता उसको सन्यास रोगका रोगी समझना चाहिये। इस अवस्था, रोगीको तीक्ष्ण अञ्जन, नाना प्रकार निषिञ्चनादिका रस प्रदान, उष्ण स्नान शलाकादि द्वारा नखके भीतर विन्धनेको दहन और पीड़न, बल स्नानादि

का उखाड़ना, दाँतोंसे काटना और शरीरमें केवाँचका घिसना, आदि कार्य करना चाहिये। इन प्रक्रियाओंसे यदि रोगी संज्ञालाभ करे, तो उसको मूर्च्छा रोगोक्त औषधियोंका प्रयोग कर रोगमुक्त किया जा सकता है। इस रोगमें मुधानिधिरस, अश्वगन्धारिष्ट आदि और दोष आदिकी अवस्थाका विचार कर अपस्मार और उन्माद रोगोक्त चिकित्सा करनी चाहिये। शिशु तथा बालकोंको यह रोग हो जाने पर एरण्डतैल या रसाञ्जन चूर्ण द्वारा दस्त करा कर उदरमें स्वेद कराना चाहिये। क्रिमिनाशक औषधोंका प्रयोग कराना चाहिये।

इस रोगसे आरोग्य लाभ करने पर जब तक शरीर सबल नहीं हो जाता, तब तक निम्नोक्त निषिद्ध कर्मोंका त्याग करना चाहिये। जैसे—गुरुपाक, तीक्ष्ण वीर्य, रुक्ष और अम्लजनक द्रव्य भोजन, श्रमजनक कार्य सम्पादन, चिन्ता, भय, शोक, क्रोध, मानसिक उद्वेग, मद्यपान, निरन्तर बैठे रहना, आतप सेवा, इच्छाके प्रतिकूल कार्य, घोड़े पर चढ़ना, मल, मूत्र, तृष्णा, निद्रा और क्षुधा आदिका वेग धारण, रात्रिजागरण, मैथुन और दतवन द्वारा दाँतोंका साफ करना निषिद्ध है। इस रोगमें यावतीय पुष्टिकर और बलकारक आहार देना चाहिये।

मूर्च्छा रोग देखो।

सन्न्यासग्रहण (सं० क्ली०) सन्न्यासस्य ग्रहणं। सन्न्यासाश्रम ग्रहण। वानप्रस्थाश्रमके बाद या गृहस्थाश्रमके बाद सन्न्यास ग्रहण करना होता है। सन्न्यास देखो।

सन्न्यासवत् (सं० त्रि०) सन्न्यास अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। १ संन्यासविशिष्ट, संन्यासी। २ संन्यासरोगी।

सन्न्यासी (सं० पु०) संन्यासोऽस्यास्तीति इनि। संन्यासाश्रमविशिष्ट, चतुर्थाश्रमी, जिसने संन्यासाश्रम ग्रहण किया है। पर्याय—पाराशरी, मस्करी, कर्मन्दी, श्रमण, भिक्षु, यति। (जटाधर) इनके लक्षण—जो विषयतृष्णापूर्वक गृहादि त्याग, मस्तकमुण्डन, गैरिक कौपीनाच्छादन, दण्डकमण्डलु धारण और भिक्षावृत्ति द्वारा जीवन धारण कर निर्जन प्रदेशमें अवस्थान पूर्वक केवल परमेश्वरकी उपासना करता है, उसको संन्यासी कहते हैं।

सदन्न या कदन्न, लोष्ट्र या काञ्चन इनमें जिसकी नित्य ही समबुद्धि है, उसको संन्यासी कहते हैं। जो दण्डकमण्डलु धारण और गैरिक वस्त्र पहनते हैं, नित्य प्रवासी या एक स्थानमें अधिक दिन नहीं रहते और लोभादि वर्जित हो केवलमात्र ब्राह्मणके घर अन्नभोजन और किसीसे भी कुछ मांगते नहीं जो किसी तरहके व्यापार तथा किसी आश्रममें अवस्थान नहीं करते, सर्वकर्मविवर्जित हो सदा नारायणके ध्यानपरायण रहते हैं, जो हर समय मौनावलम्बन कर रहते हैं, किसीसे बातचीत या आलाप नहीं करते; जो सब जगह ब्रह्ममय देखते हैं, हिंसाभाववर्जित, सब जगह समान बुद्धि, क्रोध और अहङ्कार आदि रहित और अयाचित रूपसे मीठा या बिना मीठा जो मिल जाता है, वह भोजन कर लेते हैं, भोजनके लिये किसीसे कुछ मांगते नहीं, जो स्त्रियोंका मुख दर्शन तथा उनके निकट नहीं रहते और तो क्या—जो पाषाण या काष्ठनिर्मित स्त्री मूर्त्तिका भी स्पर्श नहीं करते, जो इन धर्मनियमोंके अनुसार चलते हैं, वे ही संन्यासी कहे जाते हैं।

संन्यासी तीन तरहके होते हैं—ज्ञानसंन्यासी, वेदसंन्यासी और कर्मसंन्यासी। इनमें जो सब तरहके संग साथ छोड़, निर्द्वन्द्व, निर्भय और सर्वदा ही आत्मामें अवस्थित अर्थात् आत्माराम हो अवस्थान करते हैं, उनको ज्ञानसंन्यासी कहते हैं। जो मुमुक्षु इन्द्रियोंको जीत कर निरागी और परिग्रह रहित हो कर केवल वेदाभ्यास करते हैं, उनको वेदसंन्यासी तथा जो ब्रह्मार्पणपरायण द्विज अग्निको आत्मसात् कर महायज्ञपरायण हो कर अवस्थान करते हैं, उनको कर्मसंन्यासी कहते हैं। इन तीन प्रकारके संन्यासियोंमें ज्ञानसंन्यासी ही श्रेष्ठ हैं। इनका कोई कर्म या लिङ्ग कुछ भी नहीं है। ये मायादिशून्य, निर्भय, निर्द्वन्द्व, पर्णभोजन, जीर्णकौपीनधारी या नग्न और सदा ही ब्रह्मध्यानपरायण हो कर अवस्थान करते हैं। संन्यासी मरण या जीवन किसीका भी इच्छा न करे, निरपेक्ष भावसे केवल मृत्युकाल की प्रतीक्षा करे। (कूर्मपु० उपवि० २७ अ०)

गीतामें श्रीकृष्ण भगवान्ने कहा है, कि जिसने भगवान्को सर्वकर्म संन्यास अर्थात् सर्व कर्म अर्पण कर दिये हैं, उसको सन्न्यासी कहते हैं। यह संन्यासी दो तरहके हैं—मुख्य और गौण। यह मुख्य संन्यासी भी फिर

दो भागोंमें विभक्त हुए हैं,—विविदिषा सन्यासी और विद्वत्सन्यासी। जो सर्वकर्म परित्याग कर गुणातीत हुए हैं और जो भक्तियोग द्वारा भगवान्‌की उपासना करते हैं, उनको गुणातीत सन्यासी कहते हैं।

जो साधनमार्गमें आरोहण कर सर्वत्यागी हुए हैं, वे ही विविदिषा सन्यासी हैं और जो पूर्व जन्मार्जित कर्मफलसे शुक आदिकी तरह आजन्म सर्वत्यागी हैं, उनको विद्वत्सन्यासी कहते हैं।

बहुत प्राचीन वैदिक युगसे ही सन्यासवैरागी सन्यासीका परिचय मिलता है। अथर्ववेदमें "व्रात्य" नामक जो एक तरहके गृहत्यागी परिव्राजकोंका उल्लेख दिखाई देता है, वे भी वैदिककालके सन्यासी मालूम होते हैं।

स्कन्दपुराणमें सूतसंहितामें चार तरहके सन्यासियोंका प्रसङ्ग आया है—कुटीचक, बहूदक, हंस और परमहंस। वृत्तिभेदसे ये चार तरहके सन्यासी देखे जाते हैं। कुटीचक सन्यास ग्रहण कर अपने तथा मित्रके घरमें भिक्षा करते। वे शिखा रखते, यज्ञोपवीत और काषाय वस्त्र पहनते, शुद्धाचारी बन कर गायत्रीका जप करते और दण्डकमण्डलु हाथमें लिये फिरते हैं। शरीरमें भभूत लगाना, ललाटमें त्रिपुण्ड करना, त्रिसन्ध्यावन्दन और श्रद्धाके साथ शिवकी पूजा करना इनका कर्त्तव्य है।

यह कहनेकी आवश्यकता नहीं, कि कुटीचक सन्यासी मन्वादि संहितोक्त यति और भिक्षुसे पृथक् हैं।

बहूदक सन्यासाश्रम अवलम्बन और बन्धुबान्धवादि परित्याग कर सात घरोंमें भिक्षा माग कर उससे जो प्राप्त होगा, उसीसे अपनी जीविका निर्वाह करे, बहूदक सन्यासी एक गृहस्थका अन्न न खावे, गोपुच्छलोमकी रस्सी बंधा त्रिदण्ड, शिक्य, जलपूत पात्र, कौपीन, कमण्डलु, गात्राच्छादन कंथा, पादुका, छत्र, पवित्र चर्म, सूची, पक्षिणी, रुद्राक्षमाला, योगपट्ट, बहिर्वास खनित्र और कृपाण ग्रहण करे, सर्वाङ्गमें भस्मलेपन, त्रिपुण्ड शिखा और यज्ञोपवीत धारण करे, वेदाध्ययन और इन्द्रियसाधनामें निरत रहे, मौनव्रतावलम्बन कर इष्टदेवकी पूजा करे और सन्ध्याके समय गायत्रीका जप कर स्वधर्मोक्त क्रिया सम्पन्न करे।

हंस कमण्डलु, शिक्य, भिक्षापात्र, कन्था, कौपीन, आच्छादन अङ्ग वस्त्र, बहिर्वास और वंशदण्ड सदा धारण करे, शरीरमें भस्मलेपन, त्रिपुण्ड धारण और शिवलिङ्गकी अर्चना करे, प्रतिदिन एक बार आठ ग्रास भोजन करे, शिखाके साथ शिरके सभी केश मुण्डन करे, सन्ध्याको गायत्रीका जप और अध्यात्मचिन्तन करे, तीर्थसेवा कृच्छ्र और चान्द्रायणादि व्रतानुष्ठानके साथ साथ एक रात्रिमात्र एक एक ग्राममें अवस्थान करे और यथारीति आचरण करे।

परमहंसके लक्षण—परमहंस त्रिदण्ड, गोवाल मिश्रित रस्सी, जलपवित्र, शिक्य, पवित्र कमण्डलु, पक्षिणी, अजिन, सूची, सूत्, खनित्री, कृपाण शिखा, यज्ञोपवीत और नित्यकर्म परित्याग करे, कौपीन आच्छादन वस्त्र शीत निवारण करनेवाली कन्था, योगपट्ट, बहिर्वास, पादुका छत्र, अक्षमाला और वंशदण्ड व्यवहार करे, अग्नि इत्यादि मन्त्र द्वारा अङ्गमें भस्म लेपन करे और तीन बार ओं उच्चारण कर त्रिपुण्डधारण करे, परमहंस नाना स्थानोंसे थोड़ा थोड़ा आहारीय द्रव्य एकत्र कर केवल दिनमें एक बार भोजन करे। अनाहारी और अत्याहारी दोनोंका योग असम्भव है। सुतरां योगानुकूल भोजन, निर्दिष्ट आचारत्याग और सर्ववर्णोचित व्यवहार करना इनका विधान है।

परमहंस दो प्रकारके हैं—दण्डी परमहंस और अवधूत परमहंस। जो दण्ड छोड़ कर परमहंस होते हैं वे दण्डी परमहंस और दूसरे जो अवधूत वृत्तिको अवलम्बन करते हैं, वे अवधूत कहलाते हैं। इनमें कोई ओंकारोपासक, कोई ब्रह्मसंस्थ, कोई देवमूर्त्तिके ही उपासक फिर कोई वामाचारी होते हैं। वीराचारी सुरापान किया करते हैं।

महानिर्वाण तन्त्रमें है—

"अवधूताश्रमं देवि कलौ सन्यासमुच्यते ॥"

कलियें वैदिक सन्यास निषिद्ध होनेसे अवधूताश्रम ही सन्यास कहा गया है।

किन्तु रघुनन्दनके मलमासतत्त्वमें लिखा है, कि कलिमें सन्यासग्रहणके निषेधसूचक वचन क्षत्रिय और

वैश्यके पक्षमें है, किन्तु ब्राह्मणके पक्षमें नहीं। तन्त्रमें चार तरहके अवधूत संन्यासियोंका उल्लेख दिखाई देता है—ब्रह्मावधूत, शैवावधूत, भक्तावधूत और हंसावधूत। ब्राह्मण क्षत्रिय आदि ब्रह्ममन्त्र ग्रहण करनेके बाद गृहस्थ होने पर भी वे अवधूत कहलाते हैं। जो सब मनुष्य पूर्णाभिषेकके नियमसे संन्यास ग्रहण करते हैं, वे शैवावधूत हैं। महानिर्वाण तन्त्र चतुर्दश उल्लास, दशनामी नागा आदि शब्द देखो।

मुण्डमालातन्त्रमें द्वितीय पटलके अनुसार भैरवी, संन्यासिनी और अवधूतादि प्रसङ्ग भी दिखाई देते हैं। ये विभूति, त्रिशूल, गेरुआ और रुद्राक्षादि धारण करते हैं।

संन्यासोपनिषद् (सं० स्त्री०) उपनिषद्भेद। इस उपनिषद्का शङ्कराचार्य प्रणीत भाष्य देखनेमें आता है।

सन्मङ्गल (सं० क्ली०) सत् मङ्गलम्। साधु और मङ्गलजनक।

सन्मणि (सं० पु०) सत् मणिः। सद्रत्न, उत्तम मणि।

सन्मति (सं० स्त्री०) सत् मन-क्तिः। उत्तम बुद्धि।

सन्मन्त्र (सं० पु०) सत् मन्त्रः। साधुमन्त्र, उत्तम मन्त्र। (रघु १७।२६)

सन्मात्र (सं० त्रि०) शिवका एक नाम।

सन्मान (सं० पु०) सम्मान देखो।

सन्मार्ग (सं० पु०) सत् मार्गः। उत्तम मार्ग, सत्पथ, साधु पन्था।

सन्मित्र (सं० क्ली०) सत् मित्रं। उत्तम बंधु, साधु मित्र।

सन्मिश्रकेशव (सं० पु०) द्वैतपरिशिष्ट ग्रन्थके रचयिता, वाचस्पतिमिश्रके शिष्य।

सन्मुनि (सं० पु०) सत् मुनिः। १ साधु मुनि, उत्तम मुनि। २ दैवज्ञ, ज्योतिषी।

सपई (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकारका लंबा कीड़ा जो मनुष्यों और पशुओंकी आंतोंमें उत्पन्न होता है, पेटका केंचुआ। २ बेला नामक फूल।

सपक्ष (सं० त्रि०) समानः पक्षः यस्य समानशब्दस्थाने सादेशः। १ पक्षावलंबी, तरफदार। २ सहाय, मददगार। ३ अनुकूल। ४ तुल्य, समान। ५ समर्थक, पोषक। ६ पक्षविशिष्ट, जिसके पर हों। (पु०) ७ मित्र, सहायक। ८ न्यायमें वह बात या दृष्टान्त जिसमें साध्य अवश्य हो। ९ अनुकूल पक्ष, मुवाफिक राय।

सपक्षक (सं० त्रि०) सपक्ष स्वार्थे कन्। सपक्ष देखो।

सपक्षता (सं० स्त्री०) सपक्षस्य भावः तल्-टाप्। १ सपक्षका भाव या धर्म, पक्षावलम्बन, आनुकूल्य। २ पक्ष होना, पर।

सपक्षी (सं० त्रि०) सपक्ष देखो।

सपटा (हिं० पु०) १ सफेद पाचनार। २ एक प्रकारका टाट।

सपट्टी (सं० स्त्री०) द्वारके चौखटकी दोनों खड़ी लकड़ियां, बाजू।

सपत्र (सं० त्रि०) १ पत्रके साथ वर्तमान, पत्रविशिष्ट, जिसमें पत्ते हों। २ बाण, तीर।

सपत्रक (सं० त्रि०) सपत्र-स्वार्थे-कन्। सपत्र देखो।

सपत्राकरण (सं० क्ली०) सपत्र-कृ-ल्युट्। (सपत्र निष्पत्रादति व्यथने। पा ५।४।६१) इति डाच्। अत्यन्त पीड़न, बहुत कष्ट देना।

सपत्राकृत (सं० पु०) सपत्र-कृ-क्त डाच्। १ शर मृगादि, घायल मृग। २ अतिशय पीड़ित, अत्यन्त क्लिष्ट।

सपत्राकृति (सं० स्त्री०) सपत्र-कृ-क्तिन्-डाच्। अत्यन्त पीड़न। पर्याय—निष्पत्राकृति।

सपत्न (सं० पु०) सह-पतति एकार्थे इति पत-न सहस्य स। शत्रु, वैरी, विरोधी।

सपत्नकर्षण (सं० क्ली०) शत्रुजय, शत्रुको जीतना।

सपत्नक्षपण (सं० क्ली०) शत्रुविनाशन, शत्रुका संहार।

सपत्नघ्न (सं० त्रि०) शत्रुहन्ता, दुश्मनका संहार करनेवाला।

सपत्नघातन (सं० त्रि०) शत्रुघातन, शत्रुनाशकारी।

सपत्नजित् (सं० त्रि०) सपत्नं शत्रुं जयति जि क्विप् तुक् च। १ शत्रुजेता, वैरीको जीतनेवाला। (पु०) २ सुदत्ताके गर्भसे उत्पन्न कृष्णके एक पुत्रका नाम।

सपत्नता (सं० स्त्री०) सपत्नस्य भावः तल्-टाप्। सपत्नका भाव या धर्म, शत्रुता।

सपत्नदमन (स० त्रि०) शत्रु दि सक, दुश्मनका संहार करनेवाला।

सपत्नदूषण (स० पु०) शत्रु दूषण।

सपत्नहन् (स० त्रि०) सपत्न शत्रु हन्ति हन क्विप्। शत्रुनाशक रिपुहन्ता।

सपत्नारि (स० पु०) सपत्नस्य शत्रोरिरिव दुर्गमत्वात्। एक प्रकारका डोम बांस जिसके डंडे या डलिया बनती हैं।

सपत्नी (स० स्त्री०) समान एक पतिर्यस्याः (नित्य सपत्न्यादिषु। पा ४।१।३५) इति ङीप् पातुणकारादेश, समानस्य सभावोऽपि निपात्यते। समानपतिकी स्त्री, एक ही पतिकी दूसरी स्त्री, सौतिन।

शास्त्रमें लिखा है, कि पतिपुत्ररहित स्त्रीका सपिण्डीकरण नहीं होता। किन्तु सपत्नी पुत्रसे भी सपत्नीका पुत्रत्व सिद्ध होता है। सपत्नीके पुत्र रहने पर उसका सपिण्डन होगा, यह मैथिल ब्राह्मणोंका मत है।

परन्तु रघुनन्दन मैथिलोंका यह मत स्वीकार नहीं करते। वे कहते हैं, कि सपत्नीपुत्रमें पुत्रत्व सिद्ध होता है सही पर सपत्नीपुत्र रहनेसे भी उस सपत्नीका सपिण्डीकरण नहीं होगा क्योंकि लघुहारीत वचनमें लिखा है कि पुत्र ही स्त्रियोंका सपिण्डीकरण करेगा, 'पुत्रेणैव तु कर्त्तव्य" यहां 'एव' शब्दसे अतिदिष्ट पुत्र निषिद्ध हुआ है ऐसा जानना होगा। अतएव सपत्नीपुत्र रहते हुए भी अन्य सपत्नीका सपिण्डीकरण शास्त्रसङ्गत नहीं है।

सपत्नीक (स० त्रि०) पत्नीसह वर्त्तमानः कप्। सस्त्रीक स्त्रीके सहित, जोडूके साथ। जैसे आप सपत्नीक तीर्थ करने जाय गे।

सपत्नीत्व (स० पु०) सपत्न्या भाव त्व। सपत्नीका भाव या धर्म, सौतिनका काम।

सपत्न्य (सं० का०) सपत्नीयुक्त सपत्नीविशिष्ट। बृहत् संहितामें लिखा है कि स्त्रियोंके विवाह लग्नमें चौथेमें यदि राहु रहे, तो उसे सौतिन होगी।

सपथ (स० पु०) शपथ देखो।

सपदि (स० अव्य०) सह पद्यते इति पद गतौ इन् पृषोदरादित्वात् सलोप। उसी समय, तुरत, शीघ्र, जल्द।

सपन (हिं० पु०) सपना देखो।

सपना (हिं० पु०) १ वह दृश्य जो निद्राकी दशामें दिखाई पड़े, नींदमें अनुभव होनेवाली बात। २ निद्राकी दशामें दृश्य देखना।

सपद्म (स० त्रि०) पद्मयुक्त, जिसमें कमल हो।

सपर (स० स्त्री०) साधिक, परार्द्धसे भी अधिक।

सपरदाइ (हिं० पु०) गानेवाली तवायफके साथ तबला, सारंगी आदि बजानेवाला, भड़ुआ, समाजी।

सपरना (हिं० क्रि०) १ किसी कामका पूरा होना, समाप्त होना, निबटना। २ कामका किया जा सकना, हो सकना। ३ तैयारी करना, तैयार होना।

सपराना (हिं० क्रि०) १ काम पूरा करना, निबटाना। २ पूरा कर सकना, कर सकना।

सपरिकर (सं० त्रि०) अनुचर वर्गके साथ, ठाठ बाटके साथ।

सपरिच्छद (स० त्रि०) तैयारीके साथ, ठाठ बाटके साथ।

सपरितोष (स० त्रि०) परितोषके साथ वर्त्तमान, संतुष्ट।

सपरिषद्क (सं० त्रि०) परिषद् साहलित, दल बलके साथ।

सपर्या (स० स्त्री०) पूजा, आराधना, उपासना।

सपर्यु (स० त्रि०) परिचरणकर्त्ता।

सपर्यव (स० त्रि०) पूज्य, पूजनीय।

सपलाश (स० त्रि०) पलाश अर्थात् पत्रके साथ वर्त्तमान, पत्रविशिष्ट। (ऐत० ब्रा० ८।१३)

सपशु (स० त्रि०) पशुके साथ वर्त्तमान, पशुविशिष्ट।

सपशुक (स० त्रि०) सपशु स्वार्थे कन्। पशुयुक्त।

सपाट (हिं० वि०) १ समतल, बराबर। २ जिसकी सतह पर कोई उभरी या जमी हुई वस्तु न हो चिकना।

सपाटा (हिं० पु०) १ चलने, दौड़ने या उड़नेका वेग, झोंक, तेजी। २ तीव्रगति दौड़ झपट।

सपाद (स० त्रि०) पादेन सह वर्त्तमान। १ पादयुक्त जिसके पैर हों। २ चतुर्थ भागके साथ जिसमें एकका चौथाई और मिला हो।

सपादक (स० त्रि०) पादविशिष्ट, चरणसहित।

सपादपीठ (स० त्रि०) सपाद पादसहित पीठ यत्र। पादपीठयुक्त सिंहासनादि।

सपादमत्स्य (सं० पु०) मत्स्यविशेष, एक प्रकारकी मछली।

सपादुक (सं० त्रि०) पादुकया सह वर्त्तमानः, पादुकाके सहित, पादुकाविशिष्ट।

सपाल (सं० त्रि०) १ पशुपालके साथ। २ राजपुत्र भेद। ३ लोकका पालन करनेवाला।

सपिण्ड (सं० पु०) समानः पिण्डो मूल पुरुषो निवापो वा यस्य, समानस्य स। सप्तपुरुषान्तर्गत ज्ञाति, सात पुरुष तक ज्ञातिको सपिण्ड कहते हैं। पर्याय—सनाभि। (अमर)

यह सपिण्ड अशौच, विवाह और दायभेदसे कई तरहका है। अशौच विषयमें सात पुरुष तक ही सपिण्ड नामसे परिचित होते हैं। तीन पुरुष तक पिण्डभोजी और उसके ऊपर तीन पुरुष पिण्डके लेपभोजी और पिण्डदाता ये सात पुरुष ही सपिण्ड हैं। यह सात पुरुष के विषयमें जानना चाहिये। स्त्रियोंके लिये विशेष विधान यह है, कि दत्ता कन्याओंके भर्त्तार सपिण्डगण ही उनके सपिण्ड हैं। अदत्ता कन्याओंके लिये पितावधि अर्थात् पिता, पितामह और प्रपितामह ये तीन पुरुष ही सपिण्ड हैं। इनके ऊपरके पुरुषोंमें सपिण्डत्व नहीं रहता।

सपिण्ड ज्ञातिके जनन और मरणमें पूर्ण शौच होता है, किन्तु स्त्रियोंके सपिण्ड तीन ही पुरुष होते हैं, इससे कन्या जननमें तीन पुरुष तक ही पूर्ण शौच होता है। इनके बादके तीन पुरुष त्रिरात्राशौच जानना होगा। अशौचके सम्बन्धमें इसी तरहका सपिण्ड स्थिर कर लेना चाहिये।

विवाहविषयमें सपिण्ड विचारके सम्बन्धमें यह लिखा है, कि पिता और पिताके फुफेरे भाईसे सात पुरुष तक तथा मातामह और मातृबंधु अर्थात् मौसेरे भाईसे पांच पुरुष तक सपिण्ड कहते हैं। विवाहस्थलमें इसी तरह सपिण्ड स्थिर कर लेना चाहिये। वर और कन्याके पितृपक्षमें सप्तम और मातृपक्षसे पंचम पुरुष छोड़ कर विवाह स्थिर करना चाहिये।

दाय विषयमें पिता, पितामह, और प्रपितामह तथा उनके पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र और दौहित्र तथा मातामह, प्रमातामह और वृद्धप्रमातामह और उनके पुत्र, पौत्र तथा प्रपौत्र सपिण्ड शब्दसे अभिहित हुआ करते हैं अर्थात् ये ही दाय विषयमें सपिण्ड हैं।

सपिण्डता (सं० स्त्री०) सपिण्डस्य भावः सपिण्ड-तल्-टाप्। सपिण्डका भाव या धर्म, सापिण्ड्य।

सपिण्डन (सं० क्ली०) सपिण्डीकरण देखो।

सपिण्डी (सं० स्त्री०) सपिण्डीकरण देखो।

सपिण्डीकरण (सं० क्ली०) असपिण्डः सपिण्डकरणं सपिण्ड कृ ल्युट् अभूततद्भावे च्वि। श्राद्ध-विशेष। मृतके पूर्ण संवत्सर होने पर पार्वण और एकोद्दिष्ट करना होता है। पिण्ड आदिके साथ समन्वय कर पहले जो असपिण्ड थे, उनको सपिण्डमें परिगणित करना होता है, इसीसे इसका नाम सपिण्डीकरण हुआ है। प्रेतपिण्डके पितृपिण्डके साथ मिश्रीकरणको ही सपिण्डीकरण कहते हैं। मनुष्यमात्रको ही मृत्यु होनेके बाद जितने दिनों तक सपिण्डीकरण नहीं होता, उतने दिनों तक उसे प्रेत कहते हैं। इस सपिण्डीकरणके बाद वे भोगदेह पाते हैं। मृत तिथिसे पूर्ण संवत्सर पर अर्थात् एक वर्ष पर मुख्यचान्द्र मृततिथिमें सपिण्डीकरण करना चाहिये। जिस तिथिमें मृत्यु हो, उसी तिथिमें सपिण्डीकरण करना चाहिये। प्रेतके उद्देशसे सपिण्डीकरणान्त श्राद्ध षोडश ही प्रेतविमुक्तिका कारण है अर्थात् इस सपिण्डीकरणके बाद प्रेतलोक विमुक्त हो कर भोगदेह प्राप्त होती है। एकोद्दिष्ट, पार्वण प्रभृति सब तरहके श्राद्धोंके भिन्न भिन्न काल निर्दिष्ट हुए हैं। अतः सपिण्डीकरणश्राद्धमें भी अपराह्न है। इस अपराह्नकालमें जब चाहे तब सपिण्डीकरण नहीं हो सकता। इसमें यह विशेषता है, कि अपराह्न शब्दसे मुख्यापराह्न समझना होगा। शास्त्रमें दिन पांच भागोंमें विभक्त हुआ है। १८ दण्डके बाद २४ दण्ड तक समयको अपराह्न कहते हैं। यह मुख्यापराह्न समय ही सपिण्डीकरणका उपयुक्त काल है। मुहूर्त्त साधारणतः प्रायः दो दण्डमें ही होता है, किन्तु दिनमानके न्यूनाधिक्यवश मुहूर्त्तमें भी कमी बेशी हुआ करती है। इसके बाद तीन मुहूर्त्त कालका नाम सायाह्न है। इस सायाह्न कालमें श्राद्ध नहीं करना चाहिये।

इस कालका नाम राहुमा काल है। अतएव इस काल में देव और पैत्र कर्म नहीं किये जाते। किन्तु इस पर्वोद्दिष्ट मध्याह्नमें करना चाहिये। इस साधारण नियमके अनुसार सपिण्डीकरण मध्याह्नमें न हो कर अपराह्नमें करना होगा। इस सम्बन्धमें शास्त्र में बहुत विचार करनेके बाद स्थिर हुआ है, कि अपराह्नमें करना उचित है।

पहले ही कह आये हैं, कि षोडश श्राद्ध ही प्रेत विमुक्तिका कारण है। आद्यश्राद्ध, द्वादश मासमें द्वादश मासिक श्राद्ध और दो षाण्मासिक श्राद्ध तथा सपिण्डीकरण श्राद्ध, इन सोलह श्राद्धोंसे प्रेतत्वका परिहार होता है। पूरे एक वर्ष पर सपिण्डीकरण होगा। किसी किसी स्थलमें वर्ष १३ महीनेका भी हुआ करता है अर्थात् जिस वर्षमें मलमास होता है वह वर्ष १३ महीनेका होता है अतः ऐसे स्थलमें १३ महीनेमें ले कर १७ श्राद्ध करने होंगे।

यदि प्रथम छ महीनेमें मलमास पड़ जावे तो षष्ठ मासकरी पूर्व तिथि ही प्रथम षाण्मासिकका काल है। वर्ष दिन छ मास पूर्ण होनेमें एक दिन बाकी रहने पर जो तिथि हो, उसी तिथिको षाण्मासिक करनेकी विधि बताई गई है। इसी तरह अष्टादश षाण्मासिककी पूर्व तिथि ही द्वितीय षाण्मासिकका उपयुक्त काल है। पुनर्वार मलमास प्रथम षाण्मासिक या द्वितीय षाण्मासिकमें हुआ है यह स्थिर कर फिर श्राद्ध करना चाहिये। प्रतिमासकी मृत तिथिमें ही मासिक श्राद्ध करना उचित है।

पुत्र सम्बन्धर पर सपिण्डीकरण करनेका विधान है। इसके सिवा एक वर्षके भीतर भी सपिण्डीकरण किया जा सकता है उसको अपकर्ष सपिण्डीकरण कहते हैं। पुत्रादिके मङ्गलकार्य उपस्थित होने पर इसमें वृद्धि अर्थात् नान्दीमुखश्राद्ध उपस्थित कर जो सपिण्डीकरण किया जाता है उसको भी अपकर्ष सपिण्डीकरण कहते हैं। इस अपकर्ष सपिण्डीकरणकी विधि स्मृतिशास्त्रादिके मतसे लिखा है, कि सपिण्डीकरणात्मक षोडश श्राद्ध द्वारा प्रेतत्व परिहार होता है। किन्तु जिसका वर्ष पूर्ण होनेसे पहले ही अपकर्ष कर सपिण्डन होता है उसका प्रेतत्व परिहार होता या नहीं? इसका उत्तर शास्त्रमें इस तरह दिया है,—कुछ लोगोंका कहना है, कि अपकर्ष द्वारा सपिण्डीकरण होता है सही किन्तु उससे प्रेतत्व नहीं छूटता। एक वर्ष तक मृत व्यक्तिका प्रेतत्व रहता है। किन्तु यह मत सर्वसङ्गत नहीं। सपिण्डन होनेसे प्रेतत्वका परिहार होता है। इसमें पूर्ण वर्ष या अपकर्ष आदि कुछ भी अपेक्षा नहीं करते। अपकर्षणजन्य प्रेतत्व विमुक्त नहीं होता कहनेसे जितने दिन मृत व्यक्तिका प्रेतत्व रहता है, उतने दिन तक उसके पुत्र आदिके वृद्धि श्राद्ध आदि कार्योंके अधिकारी नहीं समझना होगा।

स्त्रियां भी सपिण्डीकरण श्राद्ध करें। स्त्रियोंके पार्वणमें अधिकार नहीं है सही किन्तु सपिण्डीकरण श्राद्ध करनेमें उनको कोई बाधा नहीं।

सपिण्डीकरण स्थलमें पुरुषके साथ पुरुष और स्त्रीके साथ स्त्रीका सपिण्ड सम्बन्ध करना होता है। अर्थात् पिताका सपिण्डीकरण करना हो, तो पितामह, प्रपितामह और वृद्धप्रपितामहके पिण्डोंमें प्रेतका पिण्ड मिश्रित करना होगा। माताका सपिण्डीकरण करना हो, तो विशेष विधान यह है कि पिता यदि जीवित हो तो पितामही आदिके साथ पिण्ड मिश्रित करना होगा और यदि मर गये हों, तो माता सपिण्डीकरण स्थलमें पिताके साथ ही पिण्डसम्बन्ध करना होगा। जब माता के साथ पति (पिता)का सपिण्डन किया जावे तब श्वशुर और श्वशुरके पिताका अर्थात् पितामह और प्रपितामहका पिण्ड कुश द्वारा आच्छादन कर रखना होता है। इसके तात्पर्य यह मालूम पड़ता है, कि केवल पतिके साथ स्त्रियोंका सपिण्डीकरण अर्थात् पिण्डका मिश्रण करना चाहिये। क्योंकि स्त्रियां मृत्युके बाद स्वामीके साथ ही एकत्व प्राप्त होती हैं। मनुरोक्त सामान स्त्रियां के सहमरणवाचुलन सदाचार हैं इसलिये पितामह और प्रपितामहका पिण्ड कुश द्वारा आच्छादन कर माताके अनुरूपता मानों पुत्र पिताके पिण्डके साथ ही माताका पिण्ड मिलावे।

पिता यदि सन्यास लेने तथा पतित होने पर मृत्युको

प्राप्त हों, तो भी माताका पिण्ड पितामह या प्रपितामहके पिण्डोंके साथ न मिलाना चाहिये। किन्तु पिताके पिण्डसे न मिला कर पितामही आदिके पिण्डोंसे मिलाना चाहिये।

सपिण्डीकरणका प्रयोग पद्धतिमें लिखा है, किंतु बढ़ जानेके कारण यहां दिया नहीं जाता। साम, ऋक्, यजु, इन तीन वेदियोंके सपिण्डीकरण-मंत्रमें कुछ प्रभेद है। किंतु मंत्र आदिका कुछ कुछ प्रभेद रहने पर भी साधारण नियम एक सा ही है। अर्थात् इसमें विकृत पार्वण और एकोद्दिष्ट श्राद्ध करना होगा। विकृत पार्वण शब्दका अर्थ यह है, कि पार्वण श्राद्धमें साधारणतः पितृपक्ष और मातामह पक्ष इन छः पुरुषोंका श्राद्ध करना होगा। किंतु जहा पार्वण विधि द्वारा केवल तीन पुरुषोंका श्राद्ध होता है, उसको विकृत पार्वण कहते हैं। सपिण्डीकरणमें भी यह विकृत पार्वण प्रचलित हुआ है।

वर्ष पूरा होने पर मृततिथिमें सपिण्डीकरण करना होता है। यदि अशौचादि कारणोंसे इसमें बाधा उपस्थित हो अर्थात् श्राद्ध करनेमें किसी तरहकी बाधा उपस्थित हो, तो कृष्ण-एकादशी या अमावस्याको श्राद्ध करना आवश्यक । किंतु इच्छापूर्वक मृत तिथिमें न कर इन तिथियोंमें श्राद्ध किया जाये, तो श्राद्धाधिकारीको प्रत्यवायभागी होना होगा। अतएव मृत तिथि त्याग सर्वतोभावसे निषिद्ध है।

यदि आद्य श्राद्ध और दो चार मासिक श्राद्ध कर ज्येष्ठ पुत्र मृत्युमुखमें पतित हो, तो उसके अव्यवहित कनिष्ठ ही इन सब श्राद्धोंका अनुष्ठान करे। तिथितत्व के सामान्य काण्डमें, श्राद्धतत्वमें और श्राद्धविवेकमें इन विषयोंकी विशेष रूपसे मीमांसा की गई है।

श्राद्ध देखो।

सपित्व (सं० क्ली०) सह प्राप्तव्य, जो एक साथ मिलनेयोग्य है।

सपीतक (सं० पु०) राज-कोपातकी, घीया तुरई, नेनुवा।

सपीति (सं० स्त्री०) बंधु बांधवोंके साथ मिलकर खाना पीना।

सपीतिका (सं० स्त्री०) हस्तिघोषा, लंबी घीया या कद्दू।

सपुत्र (सं० त्रि०) पुत्रेण सह वर्त्तमानः। पुत्रके साथ वर्त्तमान, पुत्रविशिष्ट, पुत्रयुक्त।

सपुरुष (सं० त्रि०) पुरुषके साथ वर्त्तमान, पुरुषविशिष्ट।

सपुष्प (सं० त्रि०) पुष्पयुक्त, जिसमें फूल हो।

सपूत (हिं० पु०) वह पुत्र जो अपने कर्त्तव्यका पालन करे, अच्छा पुत्र।

सपूती (हिं० स्त्री०) १ सपूत होनेका भाव, लायकी। २ योग्य पुत्र उत्पन्न करनेवाली माता।

सपूर्व (सं० त्रि०) सपूर्वो यस्य। जिसके वे प्रथम हुए हैं।

सपेरा (हिं० पु०) संपेरा देखो।

सपेला (हिं० पु०) सांपका छोटा बच्चा।

सपोला (हिं० पु०) सांपका छोटा बच्चा।

सप्त (सं० त्रि०) गिनतीमें सात।

सप्तऋषि (सं० पु०) सप्तर्षि देखो।

सप्तक (सं० त्रि०) सप्तन् कन्। १ सप्तसंख्याका पूरण, सातवां। २ सप्तसंख्याविशिष्ट, जिसमें सातकी संख्या मिली हो। सप्त एव स्वार्थे कन्। (क्लो०) ३ सप्त संख्या, सातकी संख्या। ४ सात वस्तुओंका समूह। ५ सङ्गीतके अंतमें स, ऋ, ग, म, प, ध, नि इन सब सुरोंके एकत्र होनेसे उसको एक पूर्णस्वर कहते हैं। इसीका नाम सप्तक है।

सप्तकर्ण (सं० पु०) एक ऋषिका नाम।

सप्तकी (सं० स्त्री०) काञ्ची, चन्द्रहार, स्त्रियोंका कमरबंद।

सप्तकृत् (सं० पु०) विश्वेदेवाः नामक देव गणभेद, विश्वेदेवामेंसे एक।

सप्तकृत्वन् (सं० अव्य०) सप्त कृतम्। सात सात करके।

सप्तगङ्ग (सं० क्ली०) सप्तानां गङ्गानां समाहारः। १ सात नदियोंका सम्मिलन स्थान। २ ग्रामभेद।

सप्तगण (सं० त्रि०) १ सप्तसंख्याका समष्टियुक्त, सात सात संख्याका समाहार। २ मरुद्गण।

सप्तगु (सं० त्रि०) १ सात गाभाविशिष्ट, जिसमें सात गाय हों। (पु०) २ आङ्गिरसगोत्रीय एक ऋषिका नाम। ये १०।४७ सूक्तके मन्त्रद्रष्टा थे।

सप्तगुण (स० वि०) सप्तगुणविशिष्ट, सतगुना।

सप्तगृध्र (स० पु०) सप्तसंख्यक गृध्र, सात गीध। अथर्ववेद ८।९।१८ मन्त्रमें सात शकुनि लेकर याग विशेषका उल्लेख देखा जाता है।

सप्तगोदावर (स० पु०) सप्तानां गोदावरीनां समाहारः। सात गोदावरीका मिलन। यहां संयत चित्त हो कर स्नान करनेसे महत्पुण्य लाभ तथा देवलोककी प्राप्ति होती है।

सप्तग्रही (स० स्त्री०) एक ही राशिमें सात ग्रहोंका एकत्र होना।

सप्तग्राम (सातगाँव)—बङ्गदेशका एक प्राचीन विख्यात अंश तथा उक्तविभागकी राजधानी। बख्तियार खिलजी (महम्मद-इ-बख्तियार) के बङ्गविजयके पहले बङ्गदेश राढ़, बागडी बङ्ग, वरेन्द्र और मिथिला इन पांच विभागोंमें विभक्त था। उनमेंसे बङ्गके फिर तीन उपविभाग हुए, लक्ष्मणावती, सुवर्णग्राम और सप्तग्राम। इन तीन विभागों के प्रधान तीन शहर भी उक्त तीन नामोंसे पुकारे जाते थे। उस समय ये तीन प्रधान शहर अत्यन्त समृद्धिशाली राजधानीरूपमें गिने जाते थे।

मुसलमान शासनकर्त्ताओंके अमलमें ऊपर कहे गये पांच विभाग उन्नीस खण्डोंमें विभक्त हो 'सरकार' नामसे पुकारे जाते थे। उनमेंसे 'सरकार सातगाँव' एक था। वर्त्तमान चौबीस परगना, नदियाजिलेका पश्चिमांश, मुर्शिदाबादका दक्षिण पश्चिमांश और दक्षिण आयमण्ड हारबर तक यह विस्तृत भूभाग 'सरकार सातगाँव' कहलाता था। सप्तग्राम नगरमें उक्त सरकारकी राजधानी थी। वर्त्तमान हुगली जिलान्तर्गत त्रिवेणी तीर्थके गङ्गासरस्वती सङ्गमके समीप तथा ई० आइ रेलवेके तोसबीघा ष्टेशनके पास सप्तग्राम बन्दर अवस्थित था। अभी सातगाँव नामक एक अति दरिद्र छोटा मुहल्ला उस इतिहासविख्यात अतुल वैभवसम्पन्न महानगरीका साक्ष्य प्रदान करता है। यह स्थान हुगली शहरसे उत्तर पश्चिम प्राय डेढ़ कोस दूर (अक्षा० २२ ५८ २०″ उ० तथा देशा० ८८ २४ १०″ पू०) अवस्थित है।

सप्तग्राम एक अति प्राचीन स्थान है। हिन्दूशासनके समयमें यहां बहुतेरे राजाओंने राज्य किया था। सप्तग्रामके नामकरणके सम्बन्धमें एक पौराणिक उपाख्यान है जिसका मर्म इस प्रकार है—कान्यकुब्जमें प्रियवस्तु नामक एक राजा थे। उनके सात लड़के थे, सातों ही ऋषि थे, प्रत्येक एक एक ग्राममें रह कर तपस्या करते थे। उनका तप स्थान होनेके कारण यह सप्तग्राम कहलाया। प्राचीन कालमें यह स्थान तीर्थस्थलरूपमें गिना जाता था।

अंगरेजोंके आनेके बहुत पहलेसे ही यूरोपीयवणिकवृन्द सप्तग्रामकी सम्पद् और वाणिज्य वैभवसे आकृष्ट हुए थे। सप्तग्राम पुण्यतोया सरस्वतीके तट पर अवस्थित था। चार सौ वर्ष पहले सरस्वतीके विशाल वक्ष पर नाना देशोंकी सुविशाल वाणिज्य नावें चक्कर लगाती थीं। किसी किसीका कहना है, कि एक समय यह सरस्वती सप्तग्रामके नीचेसे क्रमशः पश्चिम दक्षिणकी ओर होती हुई आदमजुड़, आमता और तमलुक आदि देशोंके बीच हो कर भीषण कल्लोलसे बहती थी। मूल सरस्वती शिवपुरके भैषज्योद्यान (Botanical garden) के कुछ नीचे शाँकराइल ग्रामके पास भागीरथीसे मिलती है। तमलुकप्रवाहिणी ऊपर कही गई नदी मूल सरस्वतीकी शाखा मानी जाती थी। यूरोपीय लेखकोंमेंसे किसी किसीने सरस्वती नदीका 'सातगांव रीवर' नाम रखा है। इससे प्राचीन सप्तग्राम और सरस्वती दोनोंका ही प्राचीन गौरवका परिचय मिलता है। सोलहवीं सदीके अन्तमें सरस्वती धीरे धीरे मरी जाने लगी। पीछे उसकी चौड़ाई इतनी छोटी हो गई कि अभी उसका खातचिह्न मात्र दिखाई देता है। किन्तु सरस्वती नदीका गर्भ खोद कर नावोंके तख्ता, श्रृङ्खला, यहां तक कि मिट्टीके बहुत नीचेसे बड़े बड़े अर्णवयानके मस्तूलोंका भग्नावशेष पाया गया है।

ल साहब कहते हैं, कि प्लिनिके समयसे पुर्त्तगीजोंके आगमन काल तक सप्तग्राममें राजकार्य चलता था।

भ्रमणकारी फ्रेडरिक (Fredericke) १५७० ई०में बङ्गदेश आये। उन्होंने सप्तग्राम देख कर लिखा है,—वाणिज्य व्यवसाय करनेके लिये दूर दूर देशके वणिक् यहां आते हैं। सप्तग्राम वाणिज्यका एक प्रधान केन्द्र है। सप्तग्रामके दक्षिण भागीरथी तट पर बेतड़ (Buttor)

नामक ग्राम है। ज्वारके समय वेतडसे थोड़े ही समयमें नाव सप्तग्राम आया जाता है। प्रति वर्ष सप्तग्राम वन्दरसे ३०१३५ वाणिज्य नावें चावल, सूती कपड़ा, लाह, चीनी, कागज, तेल (oil of zerzeline) तथा और भी अनेक प्रकारके वाणिज्य द्रव्य देशान्तर भेजे जाते थे।

जो हो, प्राचीन सप्तग्राम जो अत्यन्त समृद्धिशाली महानगर था वह ऐतिहासिक वृत्तान्त पढ़नेसे सहजमें जाना जाता है। फिर यह भी मालूम होता है, कि यह महानगर सारे जगत्‌के वाणिज्य सम्बन्ध रक्षाका एक प्रधान केन्द्र था। एशिया, यूरोप और अफ्रिका आदि देशोंकी विविध पण्यवाही विशाल वाणिज्य तरणी सप्तग्राममें पहुंच कर सरस्वतीवक्ष पर श्रेणीवद्ध पल्लीकी तरह दिखाई देती थीं। सप्तग्राम नगरमें जिस प्रकार वहुतसे लोगोंका वास था, सप्तग्रामके तलदेशवाहिनी सरस्वती वक्ष पर भी उसी प्रकार असंख्य अधिवासी नावों पर रहते थे। वाणिज्यालय, धनियोंका सुविपुल प्रासाद, विभिन्न जातिके लोगोंके ऊंचे शिखरवाले धर्ममन्दिर, खूब लंबा चौड़ा राजपथ तथा उन सब राजपथोंका अविराम जनप्रवाह मानो इस विशाल नगरकी शोभा बढ़ा रहा तथा सजीवताकी रक्षा कर रहा था। गौड़के नवाव प्रतिवर्ष इस स्थानसे वारह लाख रुपये राजस्व वसूल करते थे। सप्तग्रामके वणिक् विशेष समृद्धिशाली थे।

कविकङ्कण चण्डी, विप्रदासके मनसार गीत, चैतन्य भागवत आदि ग्रंथोंमें सप्तग्रामकी समृद्धिका परिचय दिया गया है।

१८५० ई०के पहले मि डि० मनी नामक एक यूरोपीय परिव्राजक सप्तग्राम देखने आये थे। उन्होंने जाफर खाँ गाजीकी दरगाहमें संस्कृतमें शिलालिपि देखी। स्थानीय एक हिंदूमंदिरको ही जो इस दरगाहमें परिणत किया गया था, दरगाह देखने हीसे उसका पता चलता है। दरगाहका जो अंश आज भी वर्त्तमान है, उसकी सूक्ष्मरूपसे परीक्षा करने पर सहजमें मालूम हो जायेगा, कि वह हिंदू मंदिरका अंतराल भाग है। इसके उत्तर पूर्व और उत्तर-पश्चिमकी ओर दृष्टि डालनेसे ही दर्शकगण देख सकेंगे कि सीताविवाहः, खरत्रिशिरसोर्वधः, श्रीरामेण रावणवधः, श्रीसीतानिर्वासः, श्रीरामाभिषेकः, भरताभिषेकः आदि रामायणकी घटनावली अङ्कित और शिलालिपिमें उनका परिचय लिखा है। महाभारतकी दृश्यावलीमें धृष्टद्युम्नदुःशासनयोर्युद्धम्, चानूरवधः, श्रीकृष्णवाणासुरयोर्युद्धम्, कंसवधः, इत्यादि चिह्न भी अङ्कित हैं तथा उसका परिचय दिया गया है। मुसलमानोंने इस मंदिरका ऊपरी अंश विनष्ट कर डाला था, किंतु नीचेका अंश विनष्ट न करके वह दरगाहमें परिणत किया गया। नीचे जो हिंदूमूर्त्ति हैं वे आपत्तिजनक न समझी जा कर दरगाहमें शोभाके लिये रखी गई हैं। इस मसजिदमें गदाधारी विष्णुमन्दिर भी देखनेमें आता है। प्राचीरमें ध्यानमग्न चार साधुकी मूर्त्ति है। यह देख कर कोई कोई समझते हैं, कि वे वौद्धमूर्त्ति हैं। तेईसवें जैन तीर्थङ्कर पार्श्वनाथकी मूर्त्ति इस दरगाहमें है, ऐसा किसी किसी दर्शकका अनुमान है। फलतः जहां रुकनुद्दीन वारवक शाहाकी शिलालिपि (हिजरी ८६०) खोदित है, उसीके सामनेकी ओर वह मूर्त्ति देखनेमें आती है। उसके दोनों पैरके पीछेसे खड़ा हो कर शेषनाग अपना फण काढ़े हुए हैं।

सप्तग्रामके मुसलमान शासनकर्त्ताओंमें जाफर खाँ सर्वप्रथम था। १२९८ ई०में अरवी भाषामें लिखित शिलालिपि पढ़नेसे जाना जाता है, कि जाफर खाँने काफरोंको तलवार और वल्लमसे मार भगा कर ईश्वरके नाम मसजिद वनवाई। सम्राट् गयासुद्दीन वलवनके पौत्र रुकनुद्दीन कैयस शाह जव वङ्गदेशका शासनकर्त्ता था, उस समय जाफर खाँने अपने भुजवल और दुर्द्दम प्रतापसे सप्तग्रामको दखल किया। शायद जाफर खाँ वङ्गेश्वरका सैन्याध्यक्ष था। त्रिवेणीकी शिलालिपि पढ़नेसे मालूम होता है, कि उक्त जाफर खाँ तुरुष्क जातिका था। सप्तग्राम अभियानके पहले यह देवकोटका शासनकर्त्ता था। इसका पहला नाम दिनाजपुरमें प्राप्त शिलालिपिमें 'उलाघ इ-आजन हुमायूं जाफर खाँ वरहम इंसिल' लिखा है। गयासुद्दीन तुगलकके शासनकालमें लिखित तारीख इ-फिरोजशाही ग्रन्थमें भी सप्त

ग्रामका उल्लेख है। यह यहूका अन्तिम सुलतान बहा दूर शाहको परास्त करनेके लिये सप्तग्राम आया था।

इसके बाद इजुद्दीन इयाह अजमन मुलुकने जङ्गीलाट (Military governor) हो कर सप्तग्रामका शासन किया। हिजरी ७२६ ई०में यहां पहले पहल टकसाल घर खोला गया। इस समय महम्मद तुगलक दिल्लीका सम्राट था। शेरशाहके पुत्र इसलाम शाहके शासनकाल तक भी सप्तग्राममें टकसालघर रहा। कुछ शिलालिपि देखनेसे जाना जाता है, कि १४५५ ई०में इकबार खाँ १४९८ ई०में तरबियत खां, १४८६ उलाघ मजलिस खाँ और १५०५ ई०में उलाघ मसनद खाँ सप्तग्रामके शासन कर्त्ता थे।

महम्मद शाहकी अमलदारीमें गौड़, सुवर्णग्राम सप्त ग्राम, पाण्डुआ, दिनाजपुर, कालना आदि स्थानोंमें मुसल मान शासनकर्त्ताओं द्वारा मसजिद बनवाई गई थी। इन सब मसजिदोंके प्रस्तरफलकमें शासनकर्त्ताओं के नाम और कार्यादि माध्यममें संक्षिप्तभावसे कुछ कुछ तथ्य लिखे हैं तथा वे सब पत्थर मसजिदकी दीवारमें जुड़े हुए हैं। आज भी अनेक प्राचीन मसजिदोंमें अरबी भाषा में लिखित शिलालिपि देखनेमें आती है। सप्तग्रामकी मसजिदके सम्बन्धमें अध्यापक पञ्च ब्लैकमान साहबने लिखा है कि सैयद फकिरुद्दीन काम्पियन समुद्रके उप कूलस्थित आमुल नगरसे सप्तग्राम आये थे। इस मस जिदकी भीतरी दीवारमें एक मेहराब है जो देखनेमें बड़ा ही सुन्दर है। इसके गुम्बज देख कर मालूम होता है, कि ये अपेक्षाकृत आधुनिक हैं। सम्भवतः पठान अधिकारके अन्तमें वे सब मसजिदें बनाई गई हैं। पठानोंके मकान जिस ढंगके बने हैं उस ढंगकी ये सब मसजिदें नहीं हैं। मसजिदके भीतर घुसनेसे भीतरकी ओर द्वारके ऊपर अर्द्धचन्द्राकृति स्थानमें अनेक कारुकार्य देखनेमें आते हैं। मसजिदके बाहर दक्षिणपूर्वकोणके पास दीवारसे घिरा एक स्थान दिखाई देता है। यहां तीन समाधिस्तम्भ विद्यमान हैं। इन तीन स्थानोंमें सैयद फकिरुद्दीन उसकी स्त्री और एक सेनाकी मृतदेह दफनाई गई है। यहां दो काले पत्थर पर पारसी भाषामें लिखित लिपि उत्कीर्ण है। इन सब उत्कीर्ण लिपियोंके साथ दफनाये गये लोगोंके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। कहीं से यह शिला खण्ड ला कर यत्नपूर्वक यहां रखा गया है। फकरुद्दीन के समाधिमन्दिरके गात्रसंलग्न प्रस्तर उत्कीर्ण शिला लिपि देखी जाती है। उसके अक्षर अस्पष्ट हैं।

इस स्थानमें ८६१ हिजरीकी मसजिद निर्माणज्ञापक शिलालिपि देखनेमें आता है। यह अक्षरमें लिखी है।

वर्त्तमान समयमें प्राचीन सप्तग्राम शहरकी परि चायक और दो एक कीर्त्ति देखनेमें आती है। जमाल उद्दीनकी समाधिके पास हो वैष्णव महात्मा उद्धारण दत्तका एक मन्दिर विद्यमान है। इस प्राचीन मन्दिर की अभी मरम्मत हुई है। सुवर्णवणिक् प्रतिवर्ष यहां उत्सवादि करते हैं। यहां पर प्राचीन माधवीलता है। इस स्थानसे एक मील पूरब सरस्वती नदीके किनारे श्रीमद्रघुनाथ दास गोस्वामीका एक प्राचीन स्मृति मन्दिर दिखाई देता है। इसके कुछ दूर पूरब एक विशाल इष्टकस्तूप पड़ा है। प्रवाद है कि यही सप्त ग्रामके प्राचीन दुर्गका ध्वंसावशेष है। तीन बीघासे ले कर विवेणी तक भूखण्डमें यद्यपि लंबे लंबे पेड़ बहुत थोड़े हैं, फिर भी यह स्थान जङ्गलसे आवृत है। इस जङ्गलमें जमीनके अन्दर बहुतसी ईंटें मिलती हैं। ये सब ईंटें प्राचीन सप्तग्रामकी पूर्व समृद्धिका अन्तिम निद र्शन हैं। सरस्वती तटके ईंटोंके बने घाट या सीढ़ियोंके कितने चिह्न आज भी कई जगह देखनेमें आते हैं। ये सब घाट किनारेसे बहुत दूर नदीगर्भमें चले गये थे। आज भी उन सब घाटोंकी प्राचीन स्मृति ईंटोंसे जड़ी हुई है।

सप्तग्राममें पुर्त्तगीजोंके आगमन विवरणसे यहांका इतिहास पाया जाता है। १५३० ई०में इस देशमें पुर्त्तगीज लोग वाणिज्यके लिये आये। इसके ८ वर्ष पीछे सुलतान गयासुद्दीन महम्मद शाह फकरुद्दीन शेर शाह द्वारा मार भगाया गया। फरासीसी इतिहास लेखक डु बारो (Du Barros) ने अपने D3 \51 नामक ग्रन्थमें इसका पठरी मामुद नाम रखा है। ये हुसना वंशसम्भूत थे। इसी समयसे सप्तग्रामका अधःपतन शुरू हुआ। १५४० ई०में सरस्वती धीरे धीरे कीचड़ और बालूसे भर गई। फलतः वाणिज्यकी सुविधा

नहीं रहनेके कारण यह वन्दर क्रमशः विलुप्त हो गया। १५५० ई०में हिजरी ९५७ सालमें यहां अन्तिम वारके लिये सिक्का ढाला गया था। इसके १५ वर्ष बाद सीजर फ्रेडरिक नामक एक परिव्राजकने सप्तग्राममें एक वाणिज्यमेला अपनी आंखों देखा था। सम्राट् अकबर-के समयसे ही सप्तग्रामका अधःपतन शुरू हुआ। उन्होंने पुर्त्तगीजोंको हुगलीमें एक शहर बनानेका हुकुम दिया। तदनुसार कप्तान तेमरेजने हुगलीशहर बसाया। उस नये शहरके बस जानेसे सप्तग्राम जनशून्य हो गया, किन्तु टोडरमलके समयमें भी सप्त-ग्राम एक परगनो या 'सरकार' कह कर अकबरके दफ्तर-में मशहूर था। आईन-इ-अकबरी पढ़नेसे जाना जाता है, कि १७ वीं और १८ वीं सदीमें सप्तग्रामका विपुल वाणिज्यकेन्द्र चुचड़ा, चन्दननगर, श्रीरामपुर और कल-कत्तेमें विभक्त हो गया। इसी प्रकार प्राचीन समृद्धि-शाली सप्तग्रामका अधःपतन हुआ है।

सप्तचत्वारिंश (सं० त्रि०) सप्तचत्वारिंशत् संख्याका पूरण, सैंतालीसवां।

सप्तचत्वारिंशत् (सं० स्त्री०) सैंतालीस।

सप्तचरु (सं० क्ली०) ग्रामभेद।

सप्तचितिक (सं० त्रि०) अग्नि। (शतपथब्रा० ६।६।१।१४)

सप्तच्छद (सं० पु०) सप्त सप्तच्छदा यस्य। वृक्षविशेष, छतिवन। गुण—तिक्त, उष्ण, त्रिदोषघ्न, दीपन, मद-गन्धित्व, व्रण, रक्तामय और कृमिनाशक। (राजनि०)

सप्तजन (सं० पु०) १ मुनिविशेष। (रामायण ४।१३।१७) २ सात व्यक्ति, सात आदमी।

सप्तजिह्व (सं० पु०) सप्तजिह्वा काल्यादयो आहुतिग्रस-नार्था यस्य। १ अग्नि। अग्निकी सात जिह्वाओंके नाम ये हैं,—

"काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता चैव सुधूम्रवर्णा। उग्रा प्रदीप्ता च कृपीटयोनेः सप्तैव कालीः कथिताश्च जिह्वा॥"

कर्म विशेषमें इसका नामान्तर इस प्रकार लिखा है, सात्त्विक याग कर्ममें हिरण्या, कनका, रक्ता, कृष्णा, सुप्रभा, बहुरूपा और अतिरिक्ता, राजसिक यागकर्म काम्यकर्ममें पद्मरागा, सुवर्णा, भद्रलोहिता, लोहिता, श्वेता, धूमिनी और करालिका ये सात नाम तथा तामसिक यज्ञ या क्रूरकर्ममें विश्वमूर्त्ति, स्फुलिङ्गिनी, धूम्रवर्णा, मनोजवा, लोहिता, कराली और काली। इन सब जिह्वाओंके एक एक अधिष्ठात्री देवता हैं। यथा—अमर्त्य, पितृ गंधर्व, यक्ष, नाग, पिशाच और राक्षस।

इन जिह्वाओंका वर्ण और दिक्‌नियम इस प्रकार है,—हिरण्या देखनेमें तपे सोनेके समान वर्णविशिष्ट और उत्तर दिशामें अवस्थित है, कनका वैदूर्यकी [illegible] तथा पूर्व दिशामें अवस्थित है, रक्ता तरुणादित्यकी तरह वर्ण-विशिष्ट और अग्निकोणमें स्थित, सुप्रभा पद्म नागकी तरह आभाविशिष्ट और पश्चिमकी ओर अवस्थित, अति रिक्ता जवाकुसुमकी तरह रक्तवर्णा तथा वायुकोणमें अवस्थित है। बहुरूपा बहुरूपधारिणी और दक्षिणोत्तर दिशामें अवस्थित है।

सप्तज्वाल (स० पु०) सप्तज्वाला यस्य। अग्नि।

सप्ततन्तु (सं० पु०) यज्ञ।

सप्तति (सं० स्त्री०) संख्या विशेष, सत्तर।

सप्ततितम (सं० त्रि०) सप्तति संख्याका पूरण, सत्तरवां।

सप्तत्रिंश (सं० त्रि०) सप्तत्रिंशत् संख्याका पूरण, सैंतीसवां।

सप्तत्रिंशत् (सं० स्त्री०) सप्ताधिक त्रिंशत्। सप्त अधिक त्रिंशत्, सैंतीस।

सप्तत्रिंशति (सं० स्त्री०) सप्तत्रिंशकी संख्याका पूरण, सैंतीस।

सप्तथ (सं० त्रि०) सप्तसंख्याका पूरण, सातवां।

सप्तदश (सं० त्रि०) सप्तदश संख्याका पूरण, सत्तरहवां।

सप्तदशक (सं० त्रि०) सप्तदश-स्वार्थे कन्।

सप्तदश देखो।

सप्तदशता (सं० स्त्री०) सप्तदशन् भावे तल्-टाप्। सप्त-दशका भाव या धर्म।

सप्तदशधा (सं० अव्य०) सप्तदशन् प्रकारार्थे धाच्। सत्तरह प्रकार।

सप्तदशन् (सं० त्रि०) सप्ताधिकादश। संख्या विशेष। सत्तरह।

सप्तदशम (सं० त्रि०) सप्तदशका पूरण, सत्तरहवां।

सप्तदशरात्र (सं० पु०) सप्तदशदिन व्यापी उत्सवविशेष, वह उत्सव जो सत्तरह दिन तक होता है।

सप्तदशार्च (स ० त्रि०) सप्तदश ऋगमन्तयुक्त, जिसमें सत्तरह ऋगमन्त हो।

सप्तदशावत् (स ० त्रि०) सप्तदशस्तोमकारी।

सप्तदशिन् (स ० त्रि०) सप्तदशसंख्या (स्तोत्र) युक्त सत्तरहका।

सप्तदिन (स ० क्ली ०) सप्त संख्यक दिन, सात दिन।

सप्तदिवस (स ० पु०) सप्त दिन, सात रोज।

सप्तदीधिति (स ० पु०) सप्तदीधितयो यस्य। अग्नि।

सप्तद्वीप (स ० पु०) सप्तसंख्यक द्वीप, पुराणानुसार पृथ्वीके सात बड़े और मुख्य विभाग। सात द्वीप ये हैं—जम्बूद्वीप, कुशद्वीप, प्लक्षद्वीप, शाल्मलिद्वीप, क्रौञ्चद्वीप, शाकद्वीप और पुष्करद्वीप।

सप्तद्वीपा (स ० स्त्री०) सप्त द्वीपा यस्याः। पृथिवी पर सात द्वीप हैं इसीसे पृथिवीका नाम सप्तद्वीपा हुआ है। द्वीप शब्द देखो।

सप्तधा (स ० अव्य०) सप्तन् प्रकारार्थे धाच्। सात प्रकार।

सप्तधातु (स ० पु०) सप्तगुणिता धातवः। १ शरीरस्थित सप्त संख्यक धातु। रस रक्त मांस, मेद, अस्थि मज्जा, और शुक्र ये सातधातु हैं।

ये ही सात धातु शरीरको धारण करती हैं। इसीसे इनको धातु कहते हैं, इन सबका क्षय और वृद्धि एक मात्र शोणित (रक्त) के ऊपर निर्भर करता है। अर्थात् शोणितक्षय प्राप्त होने पर सभी धातु क्षीण हो जाती हैं और शोणित वृद्धि होने पर सब धातु बढ़ जाती हैं।

आहारजात रस ही सप्तधातुओंमें परिणत हो जाता है। जो द्रव्य आहार किया जाता है, उसका असार अंश मलमूत्रके रूपमें बाहर निकल आता है और उसका सार अंश सप्तधातुओंमें परिणत होता है। आहारजात रससे पहले रक्त, रक्तसे मांस, मांससे मेद, मेदसे मज्जा और मज्जासे शुक्र (वीर्य)की उत्पत्ति होती है।

इन सब धातुओंमें रस द्वारा शरीरके प्रणीन अर्थात् स्निग्धता आदि कार्य और रक्तकी पोषणक्रिया सम्पादित होती है। मांस शरीरका पोषण तथा मेदका पुष्टिसाधन करता है तथा मेद, स्नेह और स्वेदका पोषण और अस्थिका दृढ़ता सम्पादन करता है। अस्थि देहधारक और मज्जाका पोषणकार्यसम्पादक है, फिर मज्जा प्रीति, स्नेह, बल और शुक्रका पोषक और अस्थिका पूर्णतानिष्पादक है। शुक्र धातु द्वारा वीर्य स्खलन, प्रीति, स्त्रीमें अनुराग, देहका बल, वर्ण और बीजार्थ गर्भका प्रयोजन आदि निर्वाहित होता है।

इन सब धातुओंके उपचय और क्षयसे शरीर क्षीण हो जाता है। रसक्षय होनेसे हृदयमें वेदना, हृत्कम्प, हृदयकी शून्यता और तृष्णा उत्पन्न होती है। रक्तधातु क्षय होने पर चर्मकी रुक्षता (रुखरापन) अम्ल द्रव्य भोजनकी इच्छा और शिराओंमें शिथिलता हो जाती है। मांस धातुके क्षय होने पर नितम्ब (चूतड़), गण्डदेश, ओष्ठ, उपस्थ, उरु वक्ष स्थल, बाहुमूल, पैरकी पसुली, उदर और ग्रीवा—ये सब स्थान शुष्क, रुक्ष, और वेदनायुक्त तथा गात्र शिथिल हो जाता है। मेदके क्षय होनेसे प्लीहाकी वृद्धि होती है। सन्धियां मेदशून्य और शरीर रुक्ष हो जाता है। स्निग्ध मांस भोजनकी अभिलाषा होती है, अस्थि क्षीण होनेसे अस्थिमें वेदना उत्पन्न होती है और दाँत नख आदि रुक्ष हो कर सहज ही टूट जाते हैं। इसीलिये शरीर भी रुक्ष हो जाता है। मज्जा क्षय होनेसे शुक्रकी अल्पता, सन्धि स्थल और आक्षमें वेदना तथा अस्थि मज्जाहीन हो जाती है। शुक्रक्षय होनेसे अण्डकोषमें वेदना और मैथुन शक्तिहीन हो जाता है। इससे शुक्रकी अल्पताप्रयुक्त मज्जामिश्रित अल्प शुक्र भी निकलता है। (सुश्रुत) विशेष विवरण इनके प्रत्येकके नामवाले शब्दमें देखिये।

२ चन्द्रमाके घोड़ोंमेंसे एक। (त्रि०) ३ सात धातुओंसे बना हुआ।

सप्तधान्य (स ० पु०) जौ, धान, उरद आदि सात अन्नों का मेल जो पूजामें काम आता है।

सप्तधार (स ० क्ली०) तीर्थभेद।

सप्तन् (स ० त्रि०) सप समवाये कनिन् तुट्। (उण् ११५६) संख्याविशेष, सात। यह शब्द बहुवचनान्त है।

सप्तनली (स ० स्त्री०) पक्षी पकड़नेका एक यन्त्र।

सप्तनवत (स ० त्रि०) सप्तनवति संख्याका पूरण, सन्तानवे।

सप्तनवति (सं० स्त्री०) संख्याविशेष, नब्बेसे सात अधिक, ९७।

सप्तनवतितम (सं० त्रि०) सप्तनवति संख्या, सनतानवाँ।

सप्तनाड़िक (सं० त्रि०) सप्तनाड़ी चक्रविशिष्ट।

सप्तनाड़िका (सं० स्त्री०) शृङ्गाटक, सिंघाड़ा।

सप्तनाड़ीचक्र (सं० क्ली०) सप्तनाड़ीनां चक्रं। फलित ज्योतिषमें सात टेढ़ी रेखाओंका एक चक्र जिसमें सब नक्षत्रोंके नाम भरे रहते हैं और जिसके द्वारा वर्षाका आगमन बताया जाता है।

सप्तनामन (सं० पु०) वायु।

सप्तनामा (सं० स्त्री०) आदित्यभक्ता, हुलहुल नामका पौधा।

सप्तपञ्चाश (सं० त्रि०) सप्तपञ्चाशत्, संख्याका पूरण, सत्तावनवाँ।

सप्तपञ्चाशत् (सं० पु०) संख्याविशेष, सत्तावन।

सप्तपत्र (सं० त्रि०) सप्त सप्त पत्राणि यस्य। १ जिसमें सात पत्ते या दल हों। २ जिसके वाहन सात घोड़े हों। (पु०) ३ मोतिया, मोगरा, बेला। ४ सप्तपर्ण वृक्ष, छतिवन। ५ सूर्य।

सप्तपद (सं० क्ली०) १ सप्तपादविशेष। २ विवाहकालमें दी जानेवाली वह सात वस्तु जो वरको दी जाती है। ३ वह मन्त्र जिसके आगे सप्तपदी शब्द हो।

सप्तपदी (सं० स्त्री०) सप्तानां पदानां समाहारः (द्विगोः पा ४।१।२१) इति ङीप्। सप्तपदका मिलन।

विवाहका एक रीति जिसमें वर और वधू अग्निके चारों ओर सात परिक्रमाएं करते हैं और जिससे विवाह पक्का हो जाता है। भवदेवभट्टने इस सप्तपदीगमनके विषयमें इस प्रकार लिखा है—यथाविधान पाणिग्रहण हो जानेके बाद सात पिटारसे मण्डल बनाना होता है। उस सात मण्डलमें जमाईको पूर्वकी ओर ले जा कर सात मन्त्र पढ़ वधूको उस सात मण्डलमें एकके बाद दूसरेमें ले जाय। इस प्रकार पादन्यास करनेका नाम सप्तपदीगमन है। वधू पहले अपना दाहिना पैर और पीछे बायां पैर उसमें रखे। उस समय जामाता कहे, बांए पैरसे दाहिना पैर टुकरावो। वधूको उसी प्रकार कार्य करना चाहिये। इस प्रकार सात मण्डलमें पादविक्षेप कर गमन करना होता है। विवाह शब्द देखो।

सप्तपदार्थी (सं० पु०) द्रव्यादि ७ पदार्थ। द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव ये सात पदार्थ हैं। भाषापरिच्छेदमें इन सात पदार्थोंके लक्षण और विशेष विवरण लिखे हैं। न्याय, वैशेषिक दर्शन और उन्हीं सब शब्दोंमें विशेष विवरण देखो।

सप्तपराक (सं० पु०) १ बारह रस्तुमें प्रवृत्तिको रोके रखना। २ सात दिन उपवासी रहना।

सप्तपर्ण (सं० क्ली०) १ मिष्टान्नभेद, एक प्रकारकी मिठाई। दाख, अनार, खजूर, कुंदरवाक, इनसे पहले शक्कर, पीछे लाजचूर्ण, मधु और घी मिलानेसे सप्तपर्ण बनता है। (पु०) सप्त सप्त पर्णानि यस्य। २ वृक्षविशेष, छतिवनका पेड़। (Alstonia Scholaris or Echites Scholaris) कलिङ्ग—एलेकग; महाराष्ट्र—सातवर्णा, पड़ाकुल, अरिटाकु; बम्बई—छातवीन। संस्कृत पर्याय—विशालत्वक्, शारदी, विषमच्छद, शारद, देववृक्ष, दानगन्धि, शिरोरुजा, बहुनाशन, गुच्छपुष्प, शुक्तिपर्ण, सुपर्णक, बृहत्त्वक्। (रत्नमाला) गुण—व्रण, श्लेष्मा, वात, कुष्ठ, रक्तदोष और कृमिनाशक, दीपन, श्वास और गुल्मघ्न, स्निग्ध, उष्ण। (राजनि० सप्तच्छद शब्द देखो।

सप्तपर्णक (सं० पु०) सप्तपर्ण स्वार्थे कन्। सप्तपर्ण देखो।

सप्तपर्णी (सं० स्त्री०) सप्त सप्त पर्णान्यस्याः ङीप्। लज्जालुलता, लज्जावंती।

सप्तपलाश (सं० पु०) सप्तपर्ण देखो।

सप्तपाताल (सं० क्ली०) सप्तानां पातालानां समाहारः। पृथ्वीके नीचेके सात लोक जिनके नाम ये हैं—अतल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल, महातल और पाताल।

सप्तपुत्र (सं० त्रि०) १ सप्तलोक जिसके पुत्र हैं। (ऋक् १।१६४।१) 'सप्तपुत्रं सप्तलोकाः पुत्रा यस्य तं, तादृश" २ सप्तपुत्रविशिष्ट, जिसके सात पुत्र हों। (पु०) ३ सात पुत्र।

सप्तपुत्रसू (सं० स्त्री०) सप्त पुत्रान् सूते इति सू क्विप्। सप्त पुत्रप्रसूता स्त्री, वह औरत जिसने सात पुत्र प्रसव किये हैं।

सप्तपुत्री (सं० स्त्री०) तुरईकी तरहका सतपुतिया नाम की तरकारी।

सप्तपुरी (सं० स्त्री०) सात पवित्र नगर या तीर्थ जो मोक्षदायक कहे गये हैं। अयोध्या मथुरा, माया (हरिद्वार), काशी कांची, अवन्तिका (उज्जयिनी) और द्वारका ये सात पवित्र पुरियाँ हैं।

सप्तप्रकृति (सं० स्त्री०) राज्यके सात अंग जो ये हैं— राजा, मन्त्री सामन्त, देश, कोश गढ़ और सेना।

सप्तबाहु (सं० क्ली०) वाह्लिक देशके अन्तर्गत राज्य विशेष। (हरिवंश)

सप्तभङ्गिनय (सं० पु०) जैनोंके विरामवन्त स्याद्वादानुसार का अङ्गभङ्गिविशेष। सप्तभङ्गी देखो।

सप्तभङ्गी (सं० स्त्री०) जैन न्याय या तर्कके सात अवयव जिन पर स्याद्वादकी प्रतिष्ठा है। ये सातों अवयव या सूत्र स्यात् शब्दसे आरम्भ होते हैं। यथा—स्यादस्ति स्यान्नास्ति, स्यादस्तिचनास्ति स्यादवक्तव्य, स्यादस्ति चावक्तव्य, स्यान्नास्तिचावक्तव्य स्यादस्तिचनास्ति चावक्तव्य।

सप्तभद्र (सं० पु०) सप्तसु स्थानेषु भद्रमस्य। १ शिरीष वृक्ष सिरिसका पेड़। (शब्दच०) २ नवमल्लिका, नवारी। ३ गुंजा, चिरमटी।

सप्तभुवन (सं० पु०) ऊपरके सात लोक। लोक देखो।

सप्तभूम (सं० पु०) १ मकानके सात खण्ड या मरातिब। (त्रि०) २ सतमञ्जिला, सात खण्डोंका।

सप्तम (सं० त्रि०) सप्तानां पूरणः (तस्य पूरणे डट्। पा ५।२।४८) इति डट् (नान्तादसंख्यादेमट्। पा ५।२।४९) इति डटो मडागम। सप्त संख्याका पूरण सातवां।

सप्तमक (सं० त्रि०) सप्तम स्वार्थे कन्। सप्तम देखो।

सप्तमन्त्र (सं० पु०) अग्नि।

सप्तमरीच (सं० पु०) अग्नि। (बृहत्स० ४२।३७)

सप्तमातृ (सं० स्त्री०) सप्त मातरो यस्याः। १ जिसकी माता सात हैं, गङ्गादि ७ नदियां जिसकी माता अर्थात् उत्पादिका हुई हैं। (ऋक् १।३४।८)

जो जल विशेषमें गङ्गादि सात नदियोंकी माता अर्थात् उत्पत्ति स्वरूप हुई हैं, उसे सप्तमातृ कहते हैं।

२ तन्त्रोक्त सात मातृका। मातृका देखो।

सप्तमातृका (सं० स्त्री०) सात माताएं या शक्तियां जिनका पूजन विवाह आदि शुभ अवसरोंके पहले होता है। इनके नाम ये हैं—ब्राह्मी या ब्राह्मणी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही ऐन्द्री या इन्द्राणी और चामुण्डा।

सप्तमानुष (सं० पु०) अग्नि। (ऋक् ८।३९।८)

सप्तमास्य (सं० त्रि०) सप्तयुत। (काठक ३३।८)

सप्तमी (सं० स्त्री०) सप्तम ङ्गियां ङाप्। सप्तमकी पूरणी तिथि, सप्तमी तिथि। चन्द्रकी सप्तकलाक्रिया। यह शुक्ल कृष्ण भेदसे दो प्रकारका है अर्थात् शुक्ला सप्तमी तथा कृष्णा सप्तमी। अमृत पूर्वावच्छिन्न सप्तमकला क्रियारूपा शुक्ल सप्तमी अर्थात् जिस समय चन्द्रकी सप्तमकला पूरण होती है, उसको शुक्ला सप्तमी कहते हैं और अमृतह्रासानुकूल सप्तमकलाक्रिया अर्थात् जिस समय चन्द्रकी सप्तमकलाका ह्रास होता है, उसे कृष्णसप्तमी कहते हैं। पञ्जिकामें शुक्ला और कृष्णा सप्तमीका अङ्क ८२ लिखा रहता है। तिथितत्त्वमें इस सप्तमी तिथिका व्यवस्था आदिके विषयमें यों लिखा है, कि जिस दिन सप्तमी तिथि अखण्डिता होगा, उसी दिन सप्तमीविहित धर्मकर्मका अनुष्ठान करना चाहिये। किन्तु सप्तमी तिथि यदि खण्डिता अर्थात् दो दिन व्यापिनी हो और दोनों दिन ही यदि कर्मयोग्य कालकी प्राप्ति हो तो सप्तमी विहितकार्य षष्ठीयुक्त सप्तमीके दिन करना होगा। क्यों कि पञ्चमी सप्तमी, त्रयोदशी, प्रतिपदा, नवमी, ये कई तिथियां जिस दिन साम्मुख्य होगा, उसी दिन इन सब तिथियोंके विहित कर्म करना आवश्यक है। साम्मुख्य शब्दका अर्थ यह है, कि जिस दिन तिथि सायाह्नव्यापिनी होती है, उसी दिन इसका साम्मुख्य होता है।

अतएव दूसरे दिन सप्तमी सायाह्नव्यापिनी होने पर सप्तमीविहित उपवास षष्ठीयुक्त सप्तमीमें ही होगा। भविष्यपुराणमें भी इसका प्रमाण है। यथा षष्ठीयुक्त सप्तमीमें उपवास करना उचित है अष्टमीयुक्त सप्तमीमें नहीं।

शुक्लपक्षकी सप्तमी तिथिको यदि रविवार पड़ जाये तो उसको विजया सप्तमी कहते हैं। इस दिन दान करनेसे बड़ा फल होता है। इस तिथिमें सूर्यदेवको

तण्डुल (चावल) द्वारा चरुपाक चढ़ानेसे इस चरुमें जितने तण्डुल रहते हैं, उतने वर्ष उसकी सूर्यलोकमें गति होती है। यदि अन्यान्य देवताके उद्देशसे भी इस तिथिमें जिस देवताकी पूजा की जाये और नैवेद्य चढ़ाया जाये, तो तण्डुलके परिमाणानुसार उस देवताके लोकमें वास होता है।

माघ मासकी शुक्लासप्तमी तिथिके दिन उपवास कर सूर्यदेवकी पूजा करनी होती है। इसका विधान यह है, कि षष्ठीके दिन हविष्य और एक बार भोजन कर सप्तमीके दिन उपवास करे। दूसरे दिन अष्टमीके दिन पारण किया जाता है। सप्तमीके दिन सूर्यकी पूजा ही प्रधान कार्य है। जो इस तरहके विधानानुसार एक वर्ष तक इसका अनुष्ठान करते हैं, वह इस जन्ममें आरोग्य, धन, धान्य और अन्त कालमें इस तरहका स्थान अधिकार करते हैं, कि उनको इहलोकमें लौटनेकी जरूरत नहीं होती। इसको आरोग्य सप्तमी कहते हैं, यह सब पापोंका नाश करनेवाली है।

अष्टमीके दिन तिक्त और अम्लशून्य वस्तु द्वारा पारण करे। मूँग, उड़द, तिल और घृत इस पारणमें निषिद्ध है। सूर्यमाहात्म्यप्रकाशक शास्त्रके अनुसार एक पाकमें जो सिद्ध हो जाये, पारणके समय उसी तरहकी वस्तु विहित हुई है।

माघ मासकी शुक्ला सप्तमीका नाम माकरी सप्तमी है। यह सप्तमी तिथि सूर्यग्रहण तुल्य फलप्रद है। अरुणोदयकालमें इस तिथिको स्नान करनेसे वृहत् फल हुआ करता है। यदि अरुणोदयके समय इस तिथिको गङ्गास्नान किया जाय, तो कोटि सूर्यग्रहणकालीन फल होता है।

यह सप्तमी तिथि यदि पूर्वा हो अर्थात् पूर्व दिनके अरुणोदयकाल तक व्यापिनी हो, तो पूर्व दिनका अरुणोदय काल ही सप्तमी स्नान विधेय है।

यह माकरी सप्तमी माघ और फाल्गुन इन दो मासोंमें ही सम्भव है। कुछ लोग ऐसा ख्याल कर सकते हैं, कि माघी सप्तमी मकर राशिगत सूर्यघटित मासकी ही सप्तमी होनेसे इसका नाम माघी सप्तमी हुआ है। सुतरां माघी सप्तमी विहित स्नान करनेके समय राशिका उल्लेख कर स्नान करना होगा। इसके उत्तरमें स्मार्तोंने कहा है, कि इस स्नानमें राशिका उल्लेख नहीं होगा। मकर राशिस्थ सूर्यावच्छिन्न मासमें सप्तमी तिथि होनेसे इसका नाम माकरी सप्तमी या माघी सप्तमी नहीं हुआ। किन्तु सप्तमी तिथिमें चन्द्रमा मकरराशि प्राप्त होते हैं अर्थात् वहाँ चन्द्र होते हैं, इससे ऐसे चान्द्रमासघटित चान्द्रमासीय सप्तमीको माकरी सप्तमी कहते हैं और भी जिस स्थलमें तिथिविहित कार्य होगा, उस स्थलमें चान्द्रमासका ही ग्रहण समझना होगा। चान्द्रमासानुसार यह सप्तमी मकर और कुम्भ इन दो मासोंमें ही सम्भव है।

इस सप्तमीका दूसरा नाम रथसप्तमी है। क्योंकि आदित्यमन्वन्तरमें इस सप्तमी तिथिमें दिवाकर रथारूढ़ हुए थे। इसीलिये इसको रथसप्तमी कहते हैं। इस दिन स्नान दान विशेष पुण्यजनक है। इस तिथिमें स्नानके बाद सूर्यदेवके उद्देशसे अष्टाङ्ग अर्घ देना होता है। इस अर्घमें ८ द्रव्य होते हैं। यथा—जल, दूध, दधि, घी, तिल, तण्डुल, सरसों, कुशाग्र और पुष्प। किसी किसीके मतमें पुष्पके बदले मधु देनेकी व्यवस्था है।

भाद्र मासकी शुक्ला सप्तमीको ललिता सप्तमी या कुक्कुटी सप्तमी कहते हैं। इस सप्तमी तिथिमें नियमपूर्वक स्नान कर जो व्यक्ति मण्डलमें अम्बिकाके साथ शिवकी प्रतिकृति लिख कर पूजा करते हैं, उनके लिये कुछ भी दुष्प्राप्य नहीं रहता। व्रत शब्द देखो।

रघुनन्दनने जिन कई सप्तमियोंका उल्लेख किया है, वही केवल यहां लिखी गई हैं। हेमाद्रिके व्रतखण्ड आदिमें सप्तमी व्रतका उल्लेख दिखाई देता है। वे सब व्रत भी इस व्यवस्थाके अनुसार होंगे।

व्रत और श्राद्ध शब्द देखो।

सप्तमार्कव्रत (सं० क्ली०) व्रतविशेष, सप्तमी तिथिमें कर्त्तव्य सूर्यदेवके उद्देशसे व्रतविशेष।

सप्तमृत्तिका (सं० पु०) शान्ति पूजनमें काम आनेवाली सात स्थानोंकी मिट्टी। राजद्वारकी, राजशालाकी तथा इसी प्रकार और स्थानोंकी मिट्टी मंगाई जाती है।

सप्तरक्त (सं० क्ली०) सप्तानां रक्तानां तद्वर्णानां समाहारः। शरीरके रक्तवर्ण सात अवयव। हस्त और

पदतल, नेत्रान्तर अर्थात् चक्षुका मध्यभाग, तालु, अधर, जिह्वा और नख। सामुद्रिकमें लिखा है कि शरीरके ये सात अवयव यदि रक्तवर्ण हों, तो शुभ जानना चाहिये।

सतर्च (स ० स्त्री०) सात ऋगमन्त्र।

सप्तरत्नपद्मविक्रामिन् (स ० पु०) बुद्धभेद।

सप्तरश्मि (स० त्रि०) १ सप्तसंख्यक गायत्र्यादि छन्दोयुक्त (ऋक् २।५८।१) २ सप्तरज्जुविशिष्ट।

सप्तरात्र (स ० पु०) सप्ताह, सात दिन।

सप्तरात्रिक (सं० क्ली०) सप्तरात्र, सात दिन।

सप्तराय (स ० पु०) गरुड़के एक पुत्रका नाम।

सप्तराशिक (स ० पु०) गणितकी एक क्रिया जिसमें सात राशियां होती हैं।

सप्तरुचि (स ० पु०) अग्निका एक नाम।

सप्तर्षि (स ० पु०) सप्त चामी ऋषयश्चेति। ब्रह्माके मानसपुत्र सात ऋषि। पद्मपुराणके स्वर्गखण्डमें लिखा है, कि आकाश विभागमें सर्वोपरि सप्तर्षि मण्डल सन्निवेशित है। ये सप्तर्षि ब्रह्माके मानस पुत्र हैं। इनका नाम मरीचि, अत्रि पुलह, पुलस्त्य, क्रतु, अङ्गिरा और वशिष्ठ। इन सातों ऋषियोंके यथाक्रम सम्भूति, अनुसूया, क्षमा, प्रीति सन्नति अरुन्धती और लज्जा ये सात स्त्रियां हैं। ये सभी लोकजननी हैं इन लोगोंकी तपस्यासे तीनों लोक अवस्थित है। ये संध्यावन्दन उपासना और गायत्री जपमें तत्पर हो सप्तर्षिमण्डलके साथ अवस्थित हैं।

प्रत्येक मन्वन्तरमें सप्तर्षि भिन्न भिन्न हैं। हरिवंशमें लिखा है,—मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलह, क्रतु पुलस्त्य, और वशिष्ठ ये सात ऋषि ब्रह्माके मानस पुत्र हैं। ये ही पूर्वोत्तर उत्तर और अवस्थानपूर्वक सप्तर्षिमण्डल नामसे परिचित और विराजित हुए हैं। ये सब सप्तर्षि स्वायम्भुव मन्वन्तरमें थे। मनु १४ हैं, इसलिये १४ मन्व न्तरके सप्तर्षि भी भिन्न भिन्न हैं। (हरिवंश ६ अ०)

पुराणोंमें सात ऋषियों के नाममें भी पार्थक्य दिखाई देता है। १४ मन्वन्तरके सप्त ऋषियोंके नाम इस तरह हैं—

१ स्वायम्भुव मन्वन्तरमें—मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह क्रतु, और वशिष्ठ। २ स्वारोचिष मन्वन्तरमें—उर्ज्ज स्तम्भ, प्राण, दत्तोली, ऋषभ, निश्चर, चारु और अर्वोर ये सप्तर्षि हैं। ३ उत्तम मन्वन्तरमें—वशिष्ठके प्रमद आदि सात पुत्र ही सप्तर्षि थे। ४ तामस मन्वन्तरमें—ज्योतिर्धामा, पृथु, काव्य, चैत्र, अग्नि, वनक और पीवर। ५ रैवत मन्वन्तरमें—हिरण्यरोमा वेदश्री ऊर्द्धबाहु, वेदबाहु, सुधामा, पर्जन्य और वशिष्ठ। ६ चाक्षुष मन्वन्तरमें—सुमेधा, विरजा, हविष्मान्, उन्नत, मधु अतिनामा और सहिष्णु। ७ वैवस्वत मन्वन्तरमें—काश्यप, अत्रि वशिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि, और भरद्वाज। ८ सावर्णिक मन्वन्तरमें—गालव दीप्तिमान्, परशुराम, अश्वत्थामा, कृप ऋष्यशृङ्ग और व्यास। ९ दक्ष सावर्णिक मन्वन्तरमें—मेधातिथि, वसु, सत्य, ज्योतिष्मान् द्युतिमान, सबल और हव्यवाहन। १० ब्रह्म सावर्णिक मन्वन्तरमें—आपोमूर्ति, हविष्मत, सुकृति, सत्य, नाभाग, अप्रतिम और वशिष्ठ। ११ धर्म सावर्णिक मन्वन्तरमें—हविष्मत्, वशिष्ठ, आरुणि, निश्चर, अनघ, विष्टि और अग्निदेव। १२ रुद्रसावर्णिक मन्वन्तरमें—द्युति, तपस्वी, सुतपा, तपोमूर्त्ति तपोनिधि, तपोरति और तपोधृति। १३ देवसावर्णिक मन्वन्तरमें—धृतिमान्, अव्यय, तत्त्वदर्शी, निरुत्सुक, निर्मोह, सुतपा और निष्प्रकम्प। १४ इन्द्रसावर्णिक मन्वन्तरमें—अग्नीध्र अग्निबाहु शुचि मुक्त, माधव शुक्र और अजित नामके ऋषि सप्तरूपसे विद्यमान थे। (मार्कण्डेयपु०) विष्णु पुराणके तृतीय अंशमें इन सप्तऋषियोंका विशेष विवरण वर्णित हुआ है। काशीखण्डमें लिखा है, कि शनिलोकके ऊपर और ध्रुव लोकके नीचे सप्तर्षिमण्डल अवस्थित है।

ज्योतिःशास्त्रमतसे सप्तर्षिमण्डल इस समय मघा नक्षत्रमें अवस्थित है। इस सप्तर्षिमण्डलके साथ वशिष्ठ पत्नी अरुन्धती भी विराजित हैं। संवत्सर देखो।

धर्मशास्त्रमें लिखा है, कि प्रति दिन स्नान या सन्ध्याके बाद इन सप्त ऋषियोंके उद्देशसे तर्पण करना होता है। देवतर्पणके बाद ही इस ऋषितर्पणका होना विधिसङ्गत है। तर्पणस्थलमें जो सप्तऋषियोंका विषय लिखा गया है, वहां सात नहीं, बरं दश ऋषियोंका

उल्लेख है। मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेता, वशिष्ठ, भृगु और नारद ये दश ऋषि सप्तऋषि नामसे परिचित हैं। इन दशों ऋषियोंके उद्देशसे तर्पण किया जाता है। सप्तचासौ ऋषयश्चेति, इस समास वाक्यसे सात ऋषि ही होने चाहिये। इसलिये व्याकरणमें कहा है, कि पञ्चाम्र, सप्तर्षि आदि शब्द सप्त संख्याका बोधक न होने पर भी इससे दोष न होगा।

सप्तर्षिक (सं० पु०) सप्तर्षि स्वार्थे कन्।-

सप्तर्षि देखो।

सप्तर्षिचार (सं० पु०) सप्तर्षीणां चारः। सप्तऋषियों-का विचरण। वराहके बृहत्संहितामें सप्तऋषियों-की गतिका विषय इस तरह लिखा है, कि उत्तर ओर सप्तर्षिमण्डल अवस्थित है। राजा युधिष्ठिर जब पृथ्वी-का शासन करते थे, उस समय यह सप्तर्षिमण्डल मघा नक्षत्रमें अवस्थित था। यह सप्तर्षिमण्डल एक एक नक्षत्रमें एक एक सौ वर्ष विचरण करता है। उत्तर पूर्व ओर यह सप्तर्षिमण्डल अरुन्धतीके साथ उदित होता है। इस मण्डलके पूर्व भागमें मरीचि, मरीचिसे पश्चिम वशिष्ठ' इसके बाद अङ्गिरा इसके उपरान्त अत्रि और इसके निकट पुलस्त्य, पुलह और क्रतु यथाक्रमसे पूर्व ओर अव-स्थित हैं। इनमें साध्वी अरुन्धतीने वशिष्ठ देवका आश्रय लिया है। यह सप्तर्षिमण्डल यदि उल्का, अशनि या धूम आदिसे हत, विवर्ण ज्योतिर्विहीन अथवा ह्रस्व हो, तो नाना तरहके संसारमें अमङ्गल हुआ करता है। विपुल और स्निग्ध होनेसे जगत्का मङ्गल होता है।

मरीचि यदि किसी तरह पीड़ित हों, तो गन्धर्व, देव, दानव, मन्त्रौषधि, सिद्ध, यक्ष, नाग और विद्याधरोंको भी पीड़ा होती है। वशिष्ठके अभिहत होनेसे शाक यवन, दरद, पारद, कम्बोज और वनवासी तपस्वियोंका अनिष्ट होता है और किरणशाली होने पर उनका उपचय हुआ करता है। अङ्गिराके उपहत होनेसे ज्ञानी, बुद्धिमान् व्यक्ति तथा ब्राह्मण विनष्ट होते हैं। अत्रिके व्याघात-से वन और जलजात द्रव्य तथा जलनिधि और सरितायें विलुप्त होती हैं, पुलस्त्यके व्याघात होने पर रक्षः, पिशाच दानव, दैत्य, सर्प, पुलहके व्याघात होने पर मूल और फल और क्रतुके विघ्न होने पर याज्ञिकोंका विघ्न हुआ करता है। (बृहत्संहिता १३ अ०)

सप्तर्षिज (सं० पु०) बृहस्पतिग्रह।

सप्तर्षिता (सं० स्त्री०) सप्तर्षि नक्षत्रयुक्ता।

सप्तल (सं० पु०) पाणिनि उक्त व्यक्तिभेद।

सप्तला (सं० स्त्री०) सप्तलातीति ला-क। १ नवमालि-का, नमेली। २ चर्मकषा, चमरखा। ३ गुञ्जा, घुंघची। ४ पाटला, पाढरका वृक्ष। ५ अरण्य, रीठा करञ्ज।

सप्तलिका (सं० स्त्री०) सप्तला।

सप्तवती (सं० स्त्री०) नदीभेद। भागवतमें लिखा है, कि यह नदी भारतवर्षमें अवस्थित है तथा सबसे बड़ी नदी है। इस नदीमें स्नान करनेसे पुण्य लाभ होता है।

सप्तवध्रि (सं० त्रि०) १ बन्धनभूत धातु। (भागवत ३।२१।११) (पु०) २ ऋषि। (ऋक् ५।७८।५)

सप्तवर्ग (सं० पु०) सात दल।

सप्तवर्मन् (सं० पु०) एक प्राचीन वैयाकरण।

सप्तवादी (सं० पु०) सप्तभंगी न्यायका अनुयायी, जैन।

सप्तवार (सं० पु०) १ रवि, सोम, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि ये सात वार। इन सात वारोंमें सोम, बुध, बृहस्पति और शुक्र ये चार वार शुभ हैं, बाकी सभी अशुभ। २ गरुड़के एक पुत्रका नाम।

सप्तविंश (सं० त्रि०) सप्तविंशति संख्याका पूरण, सत्ताई सवाँ।

सप्तविंशक (सं० त्रि०) सप्तविंश—स्वार्थे कन्। सत्ताई-सवाँ।

सप्तविंशति (सं० स्त्री०) १ सत्ताईसकी संख्या या अंक। (त्रि०) २ सत्ताईस।

सप्तविंशतिक (सं० त्रि०) सप्तविंशति-स्वार्थे कन्। सत्ताइस।

सप्तविंशतिगुग्गुल (सं० पु०) भगन्दर रोगाधिकारोक्त औषधविशेष।

सप्तविंशतितम (सं० त्रि०) सप्तविंशति संख्याका पूरण, सत्ताईसवाँ।

सप्तविंशतिम (सं० त्रि०) सप्तविंशति संख्याका पूरण, सत्ताईसवाँ।

सप्तविंशिन् (सं० त्रि०) सप्तविंशति संख्याविशिष्ट, सत्ताईसवाँ।

सप्तविंशाद (स० पु०) वृक्षभेद।
सप्तविध (स० त्रि०) सप्तविधा यस्य। सात प्रकार, सात तरहका।
सप्तशत (स० त्रि०) सात सौ।
सप्तशतिका (स० स्त्री०) सप्तशती देखो।
सप्तशती (स० स्त्री०) सप्तानां शतानां समाहार (द्विगो। पा ४।१।२१) इति ङीप्। १ सप्तशतिका, सात सौ श्लोकों का देवीमाहात्म्य। चण्डीमें सात सौ श्लोक हैं, इसास उसको सप्तशती कहते हैं।

सात सौ श्लोक जिसमें हैं, उसीको सप्तशती कहते हैं भगवद्गीताको भी सप्तशती कहा जा सकता है। क्योंकि उसमें भी ७०० श्लोक हैं। २ सात सौका समूह।
सप्तशती—बङ्गालमें ब्राह्मणोंकी एक श्रेणी। गौडराज आदिशूर द्वारा वङ्गदेशमें पांच सात्त्विक ब्राह्मण लाये जाने-के पहले राढदेशमें सात सौ घर ब्राह्मण रहते थे। वे सप्तशती कहलाते थे।

कुलीन राढ़ीय और वारेन्द्र शब्द देखो।
सप्तशलाक (स० पु०) सप्तशलाका तद्वत् रेखा यत्र। विवाहके शुभाशुभ दिन जाननेके लिये टेढ़ी और ऊंची सात रेखाओं का एक चक्र। उत्तर और दक्षिण सात रेखायें तथा पूर्व और पश्चिम सात रेखायें अङ्कित करनी पड़ती हैं। पीछे उत्तर ओरकी प्रथम रेखासे आरम्भ कर कृत्तिकादि कर अभिजित्‌के साथ २८ नक्षत्र बैठाने होंगे। २७ नक्षत्र और एक अभिजित कुल २८ नक्षत्र टेढ़ी और ऊंची सात रेखाओं के चारों ओर सात सात नक्षत्र बैठानेसे २८ नक्षत्र बैठाये जा सकते हैं। इस तरह यह देखना होगा, कि नक्षत्र न्यास करनेसे सप्त शलाका वेध होता है या नहीं। जिस नक्षत्रमें विवाह होगा, उसमें या उसके सामनेवाले नक्षत्रमें चन्द्रके सिवा यदि कोई ग्रह हो तो सप्तशलाकावेध होता है। इससे विवाह विशेष रूपसे निषिद्ध है। यदि इस निषेधको न मान कर विवाह कर डाले, तो विवाहिता स्त्री उसी रातको उस विवाहका वस्त्र पहने हुए ही पतिके मुखानल देनेको श्मशानमें गमन करती है। इससे विवाहके दिन सप्तशलाकावेध देख लेना चाहिये।

उत्तराषाढ़ाके अन्तिम ५ दण्ड और श्रवणाके पहले चार दण्डको अभिजित कहते हैं। इस अभिजित्‌के साथ रोहिणी नक्षत्रका वेध अर्थात् अभिजित् नक्षत्रमें यदि विवाह हो और इस दिन रोहिणी नक्षत्र पर चन्द्रके सिवा अन्य कोई ग्रह हो तो समझना होगा, कि इस दिन सप्तशलाकावेध हुआ है। इसी तरह कृत्तिकाके साथ श्रवणाका वेध, मृगशिराके साथ उत्तराषाढ़ाका वेध, मघाके साथ भरणीका वेध और पूर्वफल्गुनीके साथ अश्विनीका वेध जानना होगा।
सप्तशिरा (स० स्त्री०) सप्तशिरा यस्याः। नागवल्ली लता।
सप्तशिर (स० त्रि०) सप्तलोकमें शिरस्क, सप्तलोकका मङ्गलकर।
सप्तशिरा (स० स्त्री०) नागवल्ली।
सप्तशीर्षन् (स० त्रि०) १ सप्तशीर्षविशिष्ट। (पु०) २ विष्णुका एक नाम।
सप्तषष्ठ (स० त्रि०) सप्तषष्टि संख्याका पूरण, सड़सठवां।
सप्तषष्टि (स० स्त्री०) सप्ताधिकषष्टि संख्या सड़सठ।
सप्तषष्टितम (स० त्रि०) सप्तषष्टि संख्याका पूरण, सड़सठवां।
सप्तसप्तक (स० त्रि०) सात गुना सात, उनचास।
सप्तसप्तति (स० त्रि०) सप्त सप्तति संख्याका पूरण, सतहत्तर।
सप्तसप्ततितम (स० त्रि०) सतहत्तरवां।
सप्तसप्ति (स० पु०) सप्तसप्तयो घोटका यस्य। १ सूर्य। (त्रि०) २ जिसके रथमें सात घोड़े हों।
सप्तसमुद्र (स० पु०) दधि दुग्ध आदि ७ सागर।
सप्तसमुद्रवत् (स० त्रि०) सप्त समुद्र अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। सप्तसमुद्रविशिष्ट। स्त्रियां ङीप्। सप्तसमुद्रवती, सप्तसागरविशिष्ट पृथिवी।
सप्तसागर (स० पु०) १ सप्तसमुद्र। सप्त सागरा इव कुण्डानि यत्र। २ एक दान जिसमें सात पात्रोंमें घी, दूध, मधु, दही आदि रख कर ब्राह्मणको देते हैं। मत्स्यपुराणमें इस दानका विवरण है।
सप्तसिरा (स० स्त्री०) ताम्बूल पान।
सप्तसू (स० स्त्री०) सप्त सूते इति सू क्विप्। सप्तपुत्र

प्रसूता, वह जिसने ७ पुत्र या कन्याप्रसव की हो। पर्याय-सुत-वरकरा।

सप्तस्पर्द्धा (सं० स्त्री०) नदीभेद।

सप्तस्रोतस् (सं० क्ली०) तीर्थविशेष। भागवतमें लिखा है कि गङ्गादेवीने सप्तर्षियोंको प्रसन्न करनेके लिये अपने स्रोतोंको ७ भागोंमें विभक्त किये हैं। इस कारण वे तभीसे सप्तस्रोत कहलाती हैं।

सप्तस्वर (सं० पु०) सङ्गीतके सात स्वर, स, ऋ, ग, म प, ध, नि।

सप्तस्वसृ (सं० त्रि०) गायत्री आदि ७ छन्द जिसके स्वसृस्वरूप हैं या गङ्गादि ८ नदी जिसकी स्वसा हैं।

सप्तह (सं० क्ली०) सामभेद।

सप्तहन् (सं० त्रि०) सप्तहन्ति हन् क्विप्। सप्तसंख्यक पुरका हन्ता, सात पुरोंका संहार करनेवाला, नमुचि आदि सात असुरोंका विनाशक। (ऋक् १०।४९।८)

सप्तहोतृ (सं० त्रि०) सप्तहोतृविशिष्ट अग्नि, जिस अग्निमें ७ आदमी बैठ कर होम करते हैं, उसे सप्तहोता कहते हैं।

सप्तांशुपुङ्गव (सं० पु०) सप्तभिरंशुभिः पुङ्गव इव श्रेष्ठ त्वात्। शनिग्रह। (जटाधर)

सप्ताक्षर (सं० त्रि०) सप्त अक्षराणि यस्य। सात अक्षर-विशिष्ट, सप्ताक्षर मन्त्र, जिस मन्त्रमें ७ अक्षर हों।

सप्तागारम् (सं० अव्य०) सप्तप्रकोष्ठ घर, सात घरों पर।

सप्ताङ्ग (सं० पु०) सप्त अङ्गानि यस्य। सात अङ्गविशिष्ट राज्य। मनुमें लिखा है, कि राजा, अमात्य, पुर, राष्ट्र, कोष और सुहृद् ये सात राज्योंके अङ्गमें हैं, इसीसे राज्यको सप्ताङ्ग कहते हैं।

याज्ञवल्क्यसंहितामें लिखा है, कि राजा, अमात्य अर्थात् मन्त्री और पुरोहितादि, ब्राह्मणादि प्रजा, दुर्ग, कोषागार, हस्त्यश्वरथ पदाति ये चतुरङ्ग सेना तथा मित्र ये सात राज्यके मूल हैं, इसीसे राज्यका नाम सप्ताङ्ग हुआ है। राज्य देखो।

सप्ताङ्गगुग्गुलु (सं० पु०) व्रणशोथाधिकारोक्त औषध-विशेष। इस औषधका सेवन करनेसे दुष्ट व्रण, अपची, मेह, कुष्ठ आदि रोग शान्त होते हैं।

सप्तात्मन् (सं० त्रि०) सप्त आत्माविशिष्ट। सप्त प्रकृति-वान्।

सप्ताद्रि (सं० पु०) सप्त सप्त संख्यकाः अद्रयः। सप्त पर्वत, महेन्द्र आदि ७ कुलाचल।

सप्तामृतलौह (सं० क्ली०) शूलरोगाधिकारोक्त औषधविशेष।

सप्तार्चिस् (सं० पु०) सप्तअर्चींसि यस्य। १ अग्नि। २ चित्रक वृक्ष, चीता। ३ शनिग्रह। (त्रि०) ४ क्रूर चक्षुविशिष्ट।

सप्तार्णव (सं० पु०) सप्त समुद्र, दधि दुग्ध आदि सात सागर।

सप्तालु (सं० पु०) सताल्, शफताल्।

सप्ताशीति (सं० त्रि०) सत्तासी।

सप्तास्र (सं० त्रि०) सप्त कोणविशिष्ट, सप्त कोणाकार।

सप्ताश्व (सं० पु०) सप्त अश्वा यस्य। १ सूर्य। २ अर्क वृक्ष, अकवन। ३ सात घोड़े।

सप्ताश्ववाहन (सं० त्रि०) सप्त अश्व वाहना यस्य। सूर्य।

सप्ताष्ट (सं० त्रि०) सप्त या अष्ट, सात या आठ।

सप्तास्य (सं० त्रि०) १ सप्त संख्यक छन्दोमय मुखविशिष्ट। (ऋक् ४।५०।४) २ सप्त मुखविशिष्ट, ७ मुंहवाला।

सप्ताह (सं० पु०) १ सात दिनोंका काल; हफ्ता। २ कोई यज्ञ या पुण्य कर्म जो सात दिनोंमें समाप्त हो। ३ भागवतकी कथा जो सात ही दिनोंमें सब पढ़ी या सुनी जाय। इसका बहुत शुभ फल माना जाता है।

सप्ति (सं० पु०) अश्व, घोड़ा।

सप्तिता (सं० स्त्री०) सप्तिका भाव या धर्म, द्रुतगामीत्व, तेजी।

सप्तिन् (सं० त्रि०) सप्तसंख्याविशिष्ट, सप्तसंख्या-युक्त।

सप्तिनी (सं० स्त्री०) वाजिनी, घोड़ी।

सप्तिवत् (सं० त्रि०) सर्पणयुक्त, तेज चलनेवाला।

सप्तिस्पाद (सं० त्रि०) सप्ताशमें खण्डित देह।

सप्त्य (सं० क्ली०) सर्पणीय, गमनयोग्य।

सप्दान (हिं० पु०) वकायनका पेड़।

सप्रकारक (सं० त्रि०) विभिन्न प्रकार, भिन्न भिन्न आकारवाला।

सप्रज (सं० त्रि०) प्रजाके साथ वर्त्तमान, सन्तति-विशिष्ट, प्रजायुक्त। (भागवत ६।१८।३८)

सप्रजस् (सं० त्रि०) प्रजायुक्त, पुत्रवान्। (कौषी० ३)

सप्रजापतिक (सं० त्रि०) प्रजापतिके साथ वर्त्तमान, प्रजापतियुक्त, प्रजापतिविशिष्ट।

सप्रणय (स० त्रि०) प्रणयके साथ।
सप्रयत् (स० त्रि०) गमनयुक्त, गतिविशिष्ट।
सप्रभ (स० त्रि०) प्रभा या दीप्तिविशिष्ट।
सप्रभत्व (स० क्ली०) दीप्ति, चमक।
सप्रभाव (स० त्रि०) प्रभावके साथ विद्यमान, पराक्रमशील, तेजस्वी, पराक्रमी।
सप्रभृति (स० त्रि०) समान प्रकृति।
सप्रसाद (स० त्रि०) प्रसादेन सह वर्त्तमान। प्रसादयुक्त, प्रसादविशिष्ट।
सप्रमाण (स० त्रि०) १ प्रमाण सहित, सबूतके साथ। २ प्रामाणिक, ठीक।
सप्रसाद (स० त्रि०) प्रसादेन सह वर्त्तमानः। प्रसादयुक्त, प्रसादविशिष्ट।
सप्रसव (स० त्रि०) प्रसवयुक्त प्रसवके साथ वर्त्तमान।
सप्राण (स० त्रि०) प्राणयुक्त, प्राणविशिष्ट, जीवित।
सप्राय (स० त्रि०) एक प्रकार एक जातिका।
सप्रेमन् (स० त्रि०) प्रेम या बन्धुत्वयुक्त।
सप्सर (स० त्रि०) १ समान रूप। २ हिंसक।
सफ (स० पु०) १ वासिष्ठ गोत्रोय वैदिक आचार्यभेद। २ सिन्न भिन्न साममेद।
सफ (अ० स्त्री०) १ पंक्ति, कतार। २ लम्बी चटाइ सीतलपाटी। ३ बिछावन, फर्श, बिस्तर।
सफगोल (हि० पु०) इसबगोल।
सफतालू (हि० पु०) एक पेड़ जिसके गोल फल खाए जाते हैं, सताल्, आड़ू।

यह हिन्दुस्तानमें ठंढी जगहोंमें होता है। पेड़ मझोले कदका और लकड़ी लाल मजबूत और सुगंधित होती है। पत्तियां लंबी नोकदार तथा कटावदार लिये गहरे हरे रंगकी होती हैं। फल पकने पर कुछ लाल और कुछ हरे होते हैं और उनके ऊपर महीन महीन रोइयाँ सी होती हैं। बीजोंमें बादामकी तरहका कड़ा छिलका होता है।

सफर (स० पु०) मत्स्यविशेष, सौरी मछली।
सफर (अ० पु०) १ प्रस्थान, यात्रा। २ रास्तेमें चलने का समय या दशा।
सफरदाई (हि० पु०) सफरदाई दवा।
सफरमैना (अ० स्त्री०) सेनाके वे सिपाही जो सुरंग लगाने तथा खाई आदि खोदनेका काम करते हैं।
सफरा (अ० पु०) पित्त।
सफरी (स० स्त्री०) सफर डीप्। मत्स्यविशेष सौरी मछली।
सफरी (अ० वि०) १ सफरमेंका, सफरमें काम आने वाला। (पु०) २ राह खर्च। ३ अमरूद।
सफरोल (हि० पु०) कपूरके लाल तेलसे तैयार होने वाली एक दवा या मसाला।
सफल (स० त्रि०) फलेन सह वर्त्तमान। १ जिसमें फल लगा हो, फलसे युक्त। पर्याय—अमोघ। २ जिसका कुछ परिणाम हो जो व्यर्थ न जाय, सार्थक। ३ कृतकार्य कामयाब। ४ अण्डकोशयुक्त जो बधिया न हो। ५ सशस्य, शस्ययुक्त। ६ पूरा होना। गया तीर्थ जा कर वहांके शास्त्रविहित कृत्य करनेके बाद तीर्थगुरुका पंडा लोगोंके महन्तके पास जा तीर्थकृत्यकी सफलता के लिये प्रार्थना करनी होती है। उस समय वे तीर्थ कामोंसे प्रणामी स्वरूप कुछ अर्थ ले कर सफल देते हैं। इसका अर्थ यह, कि तीर्थमें जो सब क्रिया की गई है, वह सभी फलविशिष्ट हुई।
सफलक (स० त्रि०) जिसके पास ढाल हो।
सफलता (स० स्त्री०) १ सफल होनेका भाव कामयाबी, सिद्धि। २ पूर्णता।
सफला (स० स्त्री०) पौष मासके कृष्ण पक्षकी एकादशी जो विशेष रूपसे व्रतका दिन है।
सफलीकरण (स० पु०) १ सफल करना। २ सिद्ध करना, पूर्ण करना।
सफलीभूत (स० त्रि०) जो सफल हुआ हो, जो सिद्ध या पूरा हुआ हो।
सफहा (अ० पु०) १ रुख, तल। २ पृष्ठ, वरक, पन्ना।
सफा (अ० त्रि०) १ निर्मल, स्वच्छ साफ। २ पवित्र, पाक। ३ जो खुरदुरा न हो, चिकना।
सफाई (अ० स्त्री०) १ निर्मलता, स्वच्छता। २ अर्थ या अभिप्राय प्रकट होनेका गुण। ३ स्पष्टता, जिससे दुर्भाव आदिका निकलना, मनमें मैल न रहना। ४ मैल, कूड़ा, करकट आदि हटानेकी क्रिया। ५ दोषारोपका हटना, इल्जामका दूर होना। ६ कपट या कुटिलताका अभाव। ७ ऋणका परिशोध, कर्ज या हिसाबका चुकता होना। ८ मामलेका निबटेरा, निर्णय।

सफाचट (हिं० वि०) १ एक दम स्वच्छ, विलकुल साफ। २ जो जमा या लगा न रहने दिया जाय, जो निकाल, उखाड़ या दूर कर दिया जाय। ३ जिस पर कुछ जमा या लगा न रह गया हो, जो विलकुल चिकना हो।

सफिपुर—१ युक्तप्रदेशके अयोध्या विभागान्तर्गत उन्नाव जिलेका एक उपविभाग या तहसील। यह अक्षा० २६° ३७´ से २७° २´ उ० तथा देशा० ८०° ६´ से ८०° ३०´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ३६५ वर्गमील है। सफिपुर, फतेपुर, चौरासी और वाङ्गड़र्मी परगनेको ले कर यह उपविभाग बना है।

२ उक्त उपविभागके अन्तर्गत एक परगना। भूपरिमाण १३२ वर्गमील है। यहांकी मिट्टी दलदल कीचड़मय है। इस कारण यहां जौकी फसल अच्छी लगती है। इसके सिवा यहां वनमाला भी यथेष्ट दिखाई देती है।

३ उक्त जिलेका एक नगर और सफिपुर तहसीलका विचार सदर। यह अक्षा० २६° ४४´ १०´´ उ० तथा देशा० ८०° २३´ १५´´ पू०के मध्य अवस्थित है। उन्नावसे यह १७ मील उत्तर पश्चिम हरदोई जानेके रास्ते पर पड़ता है। नगर खूब समृद्धिशाली है। यहां १४ मसजिद और ६ मन्दिर हैं। कहते है, कि साइशुक्ल नामक एक ब्राह्मणने अपने नाम पर इस नगरका नाम साइपुर रखा। कुछ समय पीछे एक मुसलमान फकीरने यहां आ कर अस्ताना किया। इसी नगरमें वह दफनाया गया। तभीसे यह स्थान उस सुफीकी मर्यादाके स्मरणार्थ सफिपुर कहलाता है। १३८६ ई०में जौनपुरके राजा इब्राहिमने नगरके अधिष्ठाता साइ-शुक्लको पराजित और निहत कर अपने सेनापतिके हाथ नगररक्षाका भार सौंपा। तभीसे आज तक उनके वंशधर इस नगरका भोग करते आ रहे हैं।

सफीना (अ० पु०) १ वही, किताव। २ अदालती परवाना, इत्तलानामा, समन।

सफीर (अ० स्त्री०) १ चिड़ियोंकी आवाज। २ वह सीटी जो पक्षियोंको वुलानेके लिये दी जाती है। ३ राजदूत, एलची।

सफील (अ० स्त्री०) पक्की चहारदीवारी, शहरपनाह, परकोटा।

सफूफ (अ० पु०) चूर्ण, वुकनी।

सफेद (फा० वि०) १ श्वेत, धौला। २ जिस पर कुछ लिखा या चिह्न न हो, कोरा, सादा।

सफेदकोह—अफगानिस्तान राज्यके अन्तर्गत एक पर्वत श्रेणी। उक्त राज्यकी राजधानी कावुल और गजनी शहरके मध्यवर्त्ती अटोका नदीके पूर्वांशसे निकल कर यह गिरिमाला ३४° अक्षा०से ७०° ३५´ देशा० ७५ मील पथ तक फैली हुई है और दो शाखामें विभक्त है। उनमेंसे एक खैबर और कावुल नदीके उत्तरपूर्व तथा दूसरी कावुल-सिन्धुसङ्गमके ठीक पूरब तक विस्तृत है। बहुत कुछ अनुसन्धान करनेसे पता चला है, कि इस पर्वतके उत्तर और दक्षिणगात्रवाही स्रोतों द्वारा खैबर, कावुल, खुर्द कावुल, लोगर नेज्जिन, सुरखव, गण्डामाक, कारासु, छिप्रियाल, हिसारक, कोह, मोमन्द, हजार्दरखत, हरिआब, केरिया, पेवार, किर्मान दारा और किर्मान आदि छोटी बड़ी नदियां बहती हैं।

इस पर्वतपृष्ठ पर बहुतसे ऊंचे शृङ्ग और गिरिसङ्कट दिखाई देते हैं। उनमेंसे सीतारामशैल समुद्रपृष्ठसे १५६२२ फुट ऊंचा है। इसके बाद कुछ दूरमें पर्वतपृष्ठ १२५०० से १४८०० फुट ऊंचा देखा जाता है। गिरिसङ्कटके मध्य इपन कोटाल, लताबंध, सुतर गार्डेन, आलतिमुर आदि उल्लेखयोग्य हैं।

जलालाबादकी गण्डशैलमालाके बाद जहांसे सफेदकोह पर्वतकी उत्तरी सीमा आरम्भ हुई है, उस स्थानके पर्वतभाग पर कोई विशेष फलजात वृक्ष दृष्टिगोचर नहीं होता। यह स्थान उतना उर्वरा भी नहीं है। कुन्द, फर्कर और सफेदकोह शैलके ऊंचे पृष्ठ पर पाइन (pine) बादाम और अन्यान्य बड़े बड़े पेड़ लगते हैं। पर्वतके उपत्यकाभागमें प्रचुर मेवेका वागान और धानके खेत भी हैं। उस स्थानसे अनार, अखरोट, पेस्ता, बादाम, अंगूर, किसमिस, आलूबोखारा आदिकी आमदनी होती है।

सफेद धावी (हि० स्त्री०) एक प्रकारका बड़ा पेड़, चकड़ी। यह वृक्ष हिमालय पर पाया जाता है। इसकी लकड़ीकी कंघियां बनाई जाती हैं। इसके फूलोंमें सुगन्ध होती है। इसके पत्ते खादके काममें आते हैं।

सफेद पल्का (फा० पु०) यह कबूतर जिसके पर कुछ सफेद और कुछ काले हों।

सफेदपोश (फा० पु०) १ साफ कपड़े पहननेवाला। २ शिक्षित और कुलीन, भलामानस।

सफेदा (फा० पु०) १ जस्तेका चूर्ण या भस्म जो दवा तथा लोहे लकड़ी आदि पर रंगाईके काममें आता है। २ लखनऊके आस पास मिलनेवाला एक प्रकारका आम ३ एक प्रकारका खरबूजा। ४ एक बहुत ऊंचा और आमेकी तरह सीधा जानेवाला पेड़। यह पञ्जाब और काश्मीरमें पाया जाता है। इसकी छालका रंग सफेद होता है। इसकी लकड़ी सजावटके सामान बनानेके काममें आती है। ५ जूते आदि बनानेका सफेद चमड़ा।

सफेदार (हि० पु०) सीमलका पेड़।

सफेदी (फा० स्त्री०) १ सफेद होनेका भाव, धवलता। २ दीवार आदि पर सफेद रंग या चूनेकी पोताई चूना कारी। ३ सूर्य निकलनेके पहलेका उज्ज्वल प्रकाश जो पूर्व दिशामें दिखाई पड़ता है।

सफेन (स० त्रि०) फेनयुक्त, फेनविशिष्ट।

सफ्तालू (हि० पु०) सफतालू देखो।

सब (हि० वि०) १ जितने हों वे कुल समस्त। २ पूरा, सारा। (स० वि०) ३ गौण, अप्रधान। ४ अधम इस शब्दका प्रयोग प्राय यौगिक शब्दोंके आरम्भमें होता है।

सबक (फा० पु०) १ उतना अंश जितना एक बारमें पढ़ाया जाय, पाठ। २ शिक्षा, नसीहत।

सबकत (अ० स्त्री०) किसी विषयमें औरोंकी अपेक्षा आगे बढ़ जाना विशेषता प्राप्त करना।

सबज (फा० वि०) सब्ज देखो।

सबन्धु (स० त्रि०) बन्धुके साथ, मित्र सहित।

सबब (अ० पु०) १ कारण, वजह। २ द्वार, साधन।

सबर (स० पु०) सब्र देखो।

सबर्दुघ (स० त्रि०) सबः दोग्धि दुह क्विप्। दुग्ध दोहनकारी, दूध दुहनेवाला।

सबल (स० त्रि०) बलेन सह वर्त्तमानः। १ बलविशिष्ट, बलशाली, ताकतवर। २ सैन्ययुक्त फौजवाला।

सबलि (स० पु०) १ विकाल। (त्रि०) २ बलिविशिष्ट, बलिके साथ वर्त्तमान।

सबा (अ० स्त्री०) वह हवा जो प्रभात और प्रातःकालके समय पूर्वकी ओर चलती है।

सबाध (स० त्रि०) बाधया बाधेन वा सह वर्त्तमानः। १ पीड़ायुक्त पीड़ित। २ निषेधयुक्त।

सबान्धव (स० त्रि०) बान्धवके साथ।

सबाह्यान्तःकरण (स० त्रि०) बाह्य और अन्तःकरणके साथ वर्त्तमान।

सबाह्याभ्यन्तर (स० पु०) बाह्य और अभ्यन्तरके साथ बाहर और भीतरके साथ। शास्त्रमें लिखा है कि अप वित्र या पवित्र किसी अवस्थामें चाहे क्यों न हो, भग वान् पुण्डरीकाक्षका नाम जो स्मरण करते हैं, वे उसी समय भीतर और बाहरसे पवित्र होते हैं।

सबाह्याभ्यन्तरात्मन् (स० पु०) पवित्रात्मा वह जिसका चित्त पापरहित हो।

सबिन्दु (स० पु०) एक पर्वतका नाम।

सबीज (स० त्रि०) बीजेन सह वर्त्तमान। बीजके साथ वर्त्तमान, बीजयुक्त बीजविशिष्ट। पातञ्जलदर्शनमें सबीज और निर्बीज इन दोनों प्रकारकी समाधिका विषय लिखा है। उनमेंसे सम्प्रज्ञात समाधि सबीज समाधि और असम्प्रज्ञात समाधि निर्बीज समाधि है। समाधि शब्द देखो।

सबील (अ० स्त्री०) १ रास्ता मार्ग। २ उपाय, यत्न। ३ वह स्थान जहां पर पथिकों आदिको धर्मार्थ जल या शरबत पिलाया जाता है।

सबू (फा० पु०) मिट्टीका घड़ा, मटका।

सबूरा (अ० पु०) काठ या चमड़े आदिका बना हुआ एक प्रकारका लम्बा लण्ड। इससे विधवा या पतिहीना स्त्रियाँ अपनी काम वासना तृप्त करती हैं।

सब्ज़ (फा० वि०) १ कच्चा और ताज़ा। २ हरित, हरा। ३ शुभ, उत्तम।

सब्ज़कदम (अ० वि०) जिसके कहीं पहुंचते ही कोई अशुभ घटना हो, जिसके चरण अशुभ हों। इस शब्दमें सब्जका प्रयोग व्यङ्ग्यरूपसे होता है।

सब्ज़ा (फा० पु०) १ हरी घास और वनस्पति आदि, हरियाली। २ भंग भांग। ३ पन्ना नामक रत्न। ४ एक

प्रकारका गहना जिसे स्त्रियां कानमें पहनती हैं। ५ घोड़े-का एक रंग जिसमें सफेदीके साथ कुछ कालापन भी मिला होता है। ६ वह घोड़ा जो इस रंगका हो।

सब्जी (फा० स्त्री०) १ हरी घास और वनस्पति आदि, हरियाली। २ हरी तरकारी। ३ भंग, भांग।

सब्द (सं० पु०) अज्ञात शब्दविशिष्ट।

सब्र (अ० पु०) धैर्य, संतोष।

सब्रह्मक (सं० त्रि०) सब्रह्म स्वार्थे-कन्। ब्रह्मके साथ, ब्रह्मविशिष्ट। सुरासुर मनुष्य आदि सभी ब्रह्म हैं, उपाधि विशेषसे देवता असुर आदि कहलाते हैं।

"इमं सब्रह्मका लोकाः ससुरासुरमानवाः।"

सब्रह्मचारिक (सं० त्रि०) माध्यन्दिनशाखाध्ययनयुक्त ब्रह्मचारिविशेष।

सब्रह्मचारी (सं० पु०) परस्पर वे ब्रह्मचारी जिन्होंने एक साथ ही एक गुरुके यहां रह कर शिक्षा प्राप्त की हो। सब्रह्मचारी अर्थात् सहपाठीकी यदि मृत्यु हो, तो एक दिन अशौच होगा।

सभरस् (सं० त्रि०) बलविशिष्ट, बलवान्, सद्गुण।

सभर्तृका (सं० स्त्री०) भर्त्तासह वर्त्तमाना। विद्यमान पतिका स्त्री, वह स्त्री जिसका पति जीवित हो, सधवा।

सभव (सं० त्रि०) १ भव अर्थात् शिवयुक्त, शिवके साथ वर्त्तमान। (भागवत ८।२३।६) २ उत्पत्तियुक्त, उत्पत्तिविशिष्ट।

सभस्मन (सं० त्रि०) भस्मवान्, वराहकृत वृहत्संहितामें (६०।१६) 'सभस्मद्विजाः' शब्दसे भस्म या विभूतिलिप्ताङ्ग पाशुपत सम्प्रदाययुक्त ब्राह्मणोंका उल्लेख देखा जाता है।

सभा (सं० स्त्री०) सह भान्ति शोभन्ते यत्रे ति भा ईता-भिदादित्वाद्धिकरणे अङ्, सहस्य सः। १ वह स्थान जहां बहुतसे लोग बैठ कर शोभा पाते हों, मजलिस। पर्याय- समज्या, परिषत्, गोष्ठी, समिति, संसत्, आस्थाना आस्थान, सदः, समाज, पर्षत्। (जटाधर)

व्यवहारतत्त्वमें सभाके लक्षणादिका विषय इस प्रकार लिखा है—जहां राजाके प्रतिनिधिस्वरूप तीन वेदविद् ब्राह्मण बैठते हैं, उसे सभा कहते हैं। जहां विद्वत्समूह रहते हैं अर्थात् पण्डितमण्डली जहां बैठते हैं, वह भी सभा कहलाती है। परिषद् देखो।

जिस कार्यके लिये लोग इकट्ठे होते हैं, उसे भी सभा कहते हैं। कूर्मपुराणमें लिखा है, कि सभास्थलमें अकेला नहीं जाना चाहिये।

मनुमें लिखा है, कि राजा सुसज्जित सभागृहमें बैठ कर प्रजाका विचारकार्य्य करें, उन लोगोंके साथ मीठी-मीठी बातें बोलें और प्रशान्त दृष्टिसे उन्हें देखें।

२ सामाजिक, सभासद्। ३ द्यूत, जूआ। ४ गृह, मकान, घर। ५ समूह, झुंड। ६ प्रजापतिकी कन्या। अथर्ववेद ७।१२।१-मन्त्रमें सभा और समितिको प्रजापतिकी कन्यारूपमें वर्णित देखा जाता है।

सभाकार (सं० पु०) सभां करोतीति कृ-अण। सभाकारक, वह जो सभा करता हो।

सभाक्ष (सं० पु०) हरिवंश वर्णित व्यक्तिभेद।

सभाग (सं० त्रि०) भागेन सह वर्त्तमानः। १ भागके साथ वर्त्तमान, भागविशिष्ट। सभां गच्छतीति गम-ड। २ सभागामी जो सभामें जाते हैं।

सभागृह (सं० क्ली०) सभा एव गृह। सभास्थल, वह स्थान जहां किसी सभा या समितिका अधिवेशन होता हो।

सभाग्य (सं० त्रि०) भाग्ययुक्त, भाग्यवान्।

सभाचर (सं० त्रि०) सभायां विचरति चर अच्। सभास्थलमें विचरणकारी, सभागामी।

सभाजन (सं० क्ली०) सभा-जन ल्युट्। १ गमन और आगमनादिके समय सुहृदादिका आलिङ्गन, अपने मित्रों या संबंधियों आदिके आने पर उनसे गले मिलना, उनका कुशल मंगल पूछना और स्वागत करना। (त्रि०) २ प्रीतिदायक। ३ भाजन अर्थात् पात्रके साथ वर्त्तमान, भाजनविशिष्ट।

सभानर (सं० पु०) १ कक्षके एक पुत्रका नाम। (हरिवंश) २ अनुके एक पुत्रका नाम।

सभापति (सं० पु०) सभायाः पतिः। १ सभाजाधिपति। २ सभाके नेता। जिनके अधीन सभाके सभी कार्य सम्पादित तथा सभास्थलमें सभी लोग जिनके अधीन परिचालित होते हैं, उन्हें सभापति कहते हैं।

सभापति—धारणालक्षण नामक ग्रन्थके रचयिता

सभापरिषद् (सं० स्त्री०) १ बहुतसे लोगोंका एकत्र हो

कर साहित्य या राजनीति आदिसे सबध रखनेवाले किसी विषय पर विचार करना। २ वह स्थान जहां इस प्रकारके कार्यके लिये लोग एकत्र होते हैं, समागृह, सभाभवन।

समापर्व (स० क्ली०) महाभारतके द्वितीय पर्व। इस पर्वमें राजा युधिष्ठिरकी सभा आदिका विषय वर्णित है।

समापाल (स० पु०) समागृहका परिदर्शक।

समापूजन—महाराष्ट्र देशमें प्रचलित विवाह कालका एक सामाजिक प्रक्रिया। अभ्यागतोंको अभ्यर्थना और सम्मान दानसे इस आचाराङ्गका सभापूजन नाम पड़ा है। विवाह उत्सवमें लग्न कङ्कण पहननेके बाद इसका अनुष्ठान होता है। इस उद्देश्यसे कन्या या वर पूर्वदिन आत्मीय स्वजन, ग्रामवासी और बन्धुबान्धवों का निमन्त्रण दे आता है। जब वे सभी जीमने पहुंचते हैं, तो पहले उन्हें आंगन या बैठकखानेमें बैठने दिया जाता है। इस समय नर्त्त कियाँ नाच गान करती हैं। पीछे गृहस्वामी पान, इतर *फूलकी माला या गुलदानसे निमन्त्रणमें आये हुए व्यक्ति* योंका सत्कार करते हैं। उसके बाद उन लोगोंके ऊपर गुलाब जल छिड़का जाता और हाथकी कलाई पर सुगन्धित तेल लगाया जाता है। गाना बजाना समाप्त होने पर आत्मीय स्वजनको एक एक कर नारियल दिया जाता है तथा पुरोहित अथवा उस श्रेणीके अन्यान्य ब्राह्मण और भिक्षुक कुछ कुछ दक्षिणा पा कर घरवालों की मङ्गलकामना करते हुए घर लौटते हैं।

सभावत् (स० त्रि०) सभा अस्त्यर्थे मतुप् छान्दस् मस्य व। उपद्रष्टृरूप सभायुक्त।

सभावी (सं० पु०) वह जो द्यूतगृहका प्रधान हो, जूए खानेका मालिक।

सभाविन् (स० पु०) सभावी देखो।

सभासद् (स० पु०) वह जो किसी सभामें सम्मिलित हो और उसमें उपस्थित होनेवाले विषयों पर सम्मति देनेका अधिकार रखता हो। पर्याय सभास्तार, सामाजिक परिषद्वल, पर्षद्वल, परिषद् पार्षद्, पारिषद्य।

जो धर्मशास्त्रमें अभिज्ञ, कुलीन और सत्यवादी हैं तथा शत्रु और मित्रके प्रति जिनका तुल्य ज्ञान है, राजा उन्हीं को सभासद् बनावें।

बृहस्पतिके मतसे ७, ५ या ३ सभासद् होंगे। राजा इन सभासदोंके साथ मिल कर विचार करें। लोक, वेद और धर्मज्ञ ब्राह्मण ही सभासद् होंगे।

सभासाह (स० त्रि०) सभासहन करनेमें समर्थ।

सभासिंह (स० पु०) राजपुत्रभेद।

सभासिंह—१ बरदाके एक राजा। ये १६७८ शकमें विद्यमान थे। शोभासिंह देखो।

२ बुन्देलखण्डके एक राजा, छत्रशालके पौत्र और हृदयशाहके पुत्र। ये प्रद्युम्नविजयके प्रणेता शङ्कर दीक्षितके गुरु थे।

सभास्तार (स० पु०) सभास्तृणातीति स्तृञ् आच्छादने (कर्मण्यण्। पा ३।२।१) इत्यण्। सदस्य।

सभास्थाणु (स० पु०) सभाया स्थाणुरिव। सभामें स्थिर, निश्चल।

सभिक (स० पु०) सभा द्यूतसभा आश्रयत्वेनास्त्यस्येति, समाद्रीह्यादित्वात् ठन्। द्यूतकारक, वह जो लोगोंका जूआ खेलाता हो।

सभीक (स० पु०) सभिक देखो।

सभृति (स० त्रि०) सह म्रियमाण ऋत्विक्।

सभेद (स० पु०) सभाका सदस्य, सभासद, सभ्य।

सभेय (स० त्रि०) सभाया साधुः (ढश्छन्दसि पा ४।४।१०६) इति ढ। सभ्य।

सभोचित (स० पु०) सभायामुचितः। १ पण्डित। (त्रि०) २ सभायोग्य, सभाके लायक।

सभ्य (स० पु०) सभाया साधुः सभा (सभाया यः। पा ४।४।१०५) इति य। १ सभासद्, सदस्य वह जो किसी सभामें सम्मिलित हो और उसके विचारणीय विषयों पर सम्मति दे सकता हो।

२ प्रत्ययित। ३ सभासम्बन्धी।

सभ्यता (स० स्त्री०) १ सभ्य होनेका भाव। २ सदस्यता। ३ व्यक्तिगत और सामाजिक जीवनकी वह अवस्था जिसमें लोगोंका आचार व्यवहार बहुत सुधर कर अच्छा हो चुका हो। ४ भलमनसाहत, शराफत।

सभ्याभिनव यति—आनन्दतीर्थकृत महाभारततात्पर्यकी दुरुहार्थ प्रकाशिका नामनी वृत्तिके रचयिता। ये सत्य नायक शिष्य थे।

सभ्येतर (स० त्रि०) सभ्यादितरः। सभ्यसे भिन्न।

सम् (सं० अव्य०) १ समार्थ, तुल्यार्थ। २ प्रकृष्टार्थ। ३ सङ्गत। ४ शोभन। ५ समुच्चय। व्याकरणके मतसे प्रपरादि उपसर्गके मध्य सम् चतुर्थ उपसर्ग है। इसका अर्थ प्रकर्ष, आश्लेष नैरन्तर्य्य, औचित्य और आभिमुख्य है। (मुग्धबोधटीका-दुर्गादास)

सम (सं० वि०) समतीति सम वैक्लव्ये पचाद्यच्। १ सब, कुल, तमाम। सम शब्दका जहां सर्व यह अर्थ होता है, वहां इस शब्दको सर्वनाम संज्ञा होती है। सर्व नाम संज्ञा होनेसे शब्दरूपके स्थलमें सर्व शब्दकी तरह रूप होता है। २ समान, बराबर। ३ जिसका तल ऊबड़ खाबड़ न हो, चौरस। ४ जिसे दोसे भाग देने पर शेष कुछ न बचे, जूस।

(पु०) ५ राशियोंकी एक संज्ञा। राशि सम और विषमके भेदसे दो प्रकारकी है। वृष, कर्कट, कन्या, वृश्चिक, मकर और मीन ये सब सम राशि और बाकी सभी विषम राशि हैं।

६ सङ्गीतमें वह स्थान जहां गाने बजानेवालोंका सिर या हाथ आपसे आप हिल जाता है। यह स्थान तालके अनुसार निश्चित होता है। जैसे तितालेमें दूसरे ताल पर और चौतालमें पहले ताल पर सम होता है। इसी प्रकार भिन्न भिन्न तालोंमें भिन्न भिन्न स्थानों पर सम होता है। वाद्योंका आरम्भ और गीतों तथा वाद्यों-का अन्त इसी सम पर होता है, परन्तु गाने बजानेके बीच बीचमें भी सम बराबर आता रहता है।

७ गणितमें वह सीधी रेखा जो उस अंकके ऊपर दी जाती है जिसका वर्गमूल निकालना होता है। ८ अर्था-लङ्कार विशेष। इसमें योग्य वस्तुओंके संयोग या संबंधका वर्णन होता है। यह विषमालङ्कारका बिलकुल उलटा है।

सम (अ० पु०) विष, जहर।

समक (सं० त्रि०) सम-क-स्वार्थे कन्। सम देखो।

समकक्ष (सं० त्रि०) तुल्य, समान, बराबरीका।

समकक्षा (सं० स्त्री०) समतुल्य।

समकन्या (सं० स्त्री०) समा विवाहयुक्ता कन्या, वह कन्या जो विवाहके योग्य हो गई हो।

समकर्ण (सं० पु०) १ शिवका एक नाम। २ गौतम बुद्धका एक नाम। ३ ज्यामितिमें किसी चतुर्भुजके आमने सामनेवाले कोणोंके ऊपरकी रेखाएं। अंगरेजीमें उसका नाम Diagonal है।

समकर्मन् (सं० त्रि०) समं कर्म यस्य। तुल्यकर्मयुक्त, जिसके काम समान हों।

समकर्षण (सं० पु०) शाकविशेष। (वैद्यकनि०)

समकाल (सं० अव्य०) तुल्यकाल, एक समय।

समकालीन (सं० त्रि०) १ समकालोद्भव, जो एक ही समयमें हो। २ एककालीय, एक ही समयमें होनेवाला।

समकृत् (सं० पु०) समं करोति कृ-क्विप्। एक श्लेष्मा।

समकोट—वङ्गके अन्तर्गत एक प्राचीन जनपद।

समकोण (सं० त्रि०) समान कोणविशिष्ट, जिसके आमने सामनेके दो कोण समान हों।

समकोल (सं० पु०) समः कोलो यस्य। सर्प, सांप।

समकौश (सं० पु०) महाभारतके अनुसार एक प्राचीन देशका नाम। (भारत भीष्म ६।६१)

समकोष्ठमिति (सं० स्त्री०) भूम्यादिका परिमाण निर्दे-शक अङ्क प्रक्रियाविशेष। आर्य्य बीजगणितमें भूमिका परिमाण (Superficial contents) निकालनेके लिये समकोष्ठमिति नामक अङ्कसंज्ञा ही हुई है। इससे किसी सम परिमाण वर्गफलके द्वारा एक विस्तृतसीम भूमिका परिमाण सहजमें लाया जाता है।

समक्त (सं० त्रि०) सम्-अञ्ज क्त। गमनकर्त्ता, जानेवाला।

समक्रिय (सं० त्रि०) समा क्रिया यस्य। तुल्य रूप-क्रियाविशिष्ट।

समक्वाथ (सं० पु०) अष्टमांशविशिष्ट क्वाथ। वह काढ़ा जिसका पानी आदि जल कर आठवां भाग रह जाय।

समक्ष (सं० त्रि०) अक्ष्णोः समीपं समासान्त अप्रत्ययः। चक्षुके समीप, आंखोंके सामने।

समखात (सं० क्ली०) कूपाकार गर्त्त, वह गड्ढा जिसके पार्श्व चोड़ा या Cylinder पाइपकी तरह निरन्तर समान्त-राल हो। (बीजगणित)

समगन्धक (सं० पु०) कृत्रिम धूप, नकली धूप।

समगन्धिक (सं० क्ली०) १ उशीर, खस। (त्रि०) २ तुल्य गन्धयुक्त, समान गंधवाला।

समग्र (स० त्रि०) १ समस्त, कुल। २ पूर्ण पूरा।
समग्रणी (स० त्रि०) सम्यक्रूपसे अग्रणी।
समङ्गा (स० स्त्री०) १ माञ्जिष्ठा, मजीठ। २ लज्जालुलता लाजवन्ती। ३ वराहक्रान्ता, गेठी। ४ बाला।
समङ्गिन् (स० त्रि०) १ पूर्णावयवविशिष्ट। २ प्रयोजनीय द्रव्यादि पूर्ण करके नहरा माल असबाबोंसे लदी हुई बैलगाड़ी। (कात्या० श्रौ० ७।३।१२)
समङ्गिनी (स० स्त्री०) बौद्धोंकी एक देवी।
समचतुर (स० त्रि०) समचतुरस्राण।
समचतुर्भुज (स० पु०) वह चतुर्भुज जिसके चारों भुज समान हों।
समचित्त (स० त्रि०) समं तुल्यं चित्तं। वह जिस के चित्तकी अवस्था सब जगह समान रहती हो, वह जिसका चित्त कहीं क्षुब्ध या मुग्ध न होता हो, सम चेता।
समचेत (स० पु०) वह जिसके चित्तकी वृत्ति सब जगह समान रहती हो, समचित्त।
समज (स० क्ली०) १ वन जंगल। (पु०) सम् अज (समुदोरजः पशुषु। पा ३।३।६९) इति अप्। २ पशुसमूह पशुओं का झुंड। ३ मूर्खसमूहति, मूर्खों का साथ।
समजातीय (स० त्रि०) एकजातीय, एक जातिका।
समज्ञा (स० स्त्री०) कीर्त्ति, यश।
समज्जन (स० क्ली०) १ वेशभूषा। (अमर ७।३६।१) (त्रि०) २ तद्विशिष्ट।
समज्जनीय (स० त्रि०) वेशभूषायुक्त।
समञ्जस (स० त्रि०) १ सम्यक् अञ्ज औचित्य यत्र, अच्। १ उचित, ठीक वाजिब। २ अभ्यस्त जिस किसी बातका अभ्यास हो। ३ समीचीन।
समतट (स० पु०) वे फल जिनकी तरकारी बनती हो तरकारीके काम आनेवाले फल। जैसे—परवल, ककड़ा आदि।
समतट (स० क्ली०) १ समुद्रतीरवर्त्ती देशभाग। २ पूर्वबङ्गालका एक प्राचीन विभाग। बङ्ग देश शब्द देखो।
समता (स० स्त्री०) सम या समान होनेका भाव, बराबरी।
समतिक्रम (स० पु०) सम्यक्रूपसे अतिक्रम।
समतिरिक्त (स० क्ली०) सम्यक् अधिक, सम्यक् प्रकार से अतिरिक्त।
समतुला (स० स्त्री०) समकक्ष, बराबरी।
समतल (स० त्रि०) समदेश समानभूमि।
समत्रय (स० क्ली०) समत्रय यत्र। हरें, नागर मोथा और गुड़ इन तीनोंके समान भागोंका समूह।
समत्रिभुज (स० त्रि०) १ तीन समान भुजवाला। (पु०) २ वह त्रिभुज जिसके तीनों भुज समान हों।
समत्व (स० क्ली०) समस्य भाव त्व। समता, बराबरी
समत्सर (स० त्रि०) मत्सरेण सह वर्त्तमान। मत्सर विशिष्ट, डाह करनेवाला।
समद् (स० स्त्री०) युद्ध, लड़ाई। (ऋक् १।५।४)
समद (स० त्रि०) मदेन सह वर्त्तमान। मदयुक्त, मत्ततविशिष्ट।
समदन (स० क्ली०) संग्राम युद्ध। (ऋक् १।१००।६)
समदर्शन (स० त्रि०) समं सर्वत्रतुल्यं दर्शनं यस्य। सर्वत्र तुल्यदर्शी, जो सब मनुष्यों स्थानों और पदार्थों को समान दृष्टिसे देखता हो, सबको एक सा देखने वाला।
समदर्शी (स० स्त्री०) जो सब मनुष्यों, स्थानों और पदार्थों आदिको समान दृष्टिसे देखता हो।
समदलक (स० त्रि०) समान दलविशिष्ट, समान दल वाला।
समदुःख (स० त्रि०) समं दुःखं यस्य। समान दुःख विशिष्ट, जिसके दुःख समान हों।
समदुःखसुख (स० त्रि०) समे दुःखसुखे यस्य। जिस के सुख और दुःख दोनों ही समान हों। (गीता २।१५)
समदृश (स० त्रि०) समं पश्यति दृश क्विप्।

सम शी देखो।

समदृष्टि (स० स्त्री०) समा दृष्टि। १ सर्वत्र तुल्यदर्शन, वह दृष्टि जो सब अवस्थाओंमें और सब पदार्थों को देखने के समय समान रहे।

सुख या दुःख, शत्रु या मित्र इनके प्रति जो बराबर निगाह डाली जाती है, उसे समदृष्टि कहते हैं। (त्रि०) समा दृष्टिर्यस्य। २ समदर्शी, जिसकी दृष्टि सबों पर समान हो।

समद्वन् (सं० त्रि०) यजमान्के साथ युद्धविशिष्ट।

समद्वादशास्र (सं० क्ली०) द्वादश समभुज और समकोण-विशिष्ट (Dodecahadron) चित्रविशिष्ट, वह क्षेत्र आदि जिसके बारह समान भुज हों।

समद्विद्विभुज (सं० त्रि०) चतुर्भुज, वह चतुर्भुज जिसका प्रत्येक भुज अपने सामनेवाले भुजके समान हो।

समद्विभुज (सं० त्रि०) समान द्विभुजयुक्त, दो समान भुजवाला।

समधपुर—युक्तप्रदेशके जौनपुर जिलेका एक बड़ा ग्राम। यह अक्षा० २६° ३' ५५ उ० तथा देशा० ८२° ३१' ३" पू०के मध्य विस्तृत है। यहांके जमींदारोंके प्रतिष्ठाता समध पाइकने अपने नाम पर यह ग्राम बसा कर वासयोग्य बनाया।

समधर्मन् (सं० त्रि०) समान धर्मविशिष्ट, तुल्यधर्मी।

समधिक (सं० त्रि०) सम्यक् अधिकः। अधिक, ज्यादा, बहुत।

समधिगम (सं० पु०) सम-अधि-गम अप्। सम्यक्‌रूपसे अधिगम, प्राप्ति।

समधुर (सं० त्रि०) मधुरके साथ वर्त्तमान।

समधृत (सं० त्रि०) तुल्यरूप, एक ढंगका।

समन (सं० क्ली०) समनस्क। (ऋक् ६।७५।४)

समनगा (सं० स्त्री०) १ विद्युत्, बिजली। २ सूर्यरश्मि, सूर्यकी किरण।

समनन (सं० क्ली०) समभावमें श्वासप्रश्वासत्याग।

समनन्तर (सं० त्रि०) अव्यवहित परवर्त्ती, ठीक बगलवाला।

समनर (सं० पु०) समशङ्कु। (गोलाध्याय)

समनस् (सं० त्रि०) समनस्क, समान मनोयुक्त।

समनस्क (सं० त्रि०) समान मनोविशिष्ट, एक सा ख्याल करनेवाला।

समना (सं० स्त्री०) सम्यगानयती, सम्यक् चेष्टयित्री, अच्छी तरह चेष्टा करनेवाली।

समनीक (सं० क्ली०) संग्राम, युद्ध।

समनुकीर्त्तन (सं० क्ली०) सम् अनु कीर्त्त ल्युट्। सम्यक्‌रूपसे अनुकीर्त्तन, अच्छी तरह कहना।

समनुग्राह्य (सं० त्रि०) सम् अनु-ग्रह-ण्यत्। सम्यक्‌रूपसे अनुग्राह्य, भलीभांति अनुग्रह करनेवाली।

समनुज (सं० त्रि०) अनुजसहित, शिष्ययुक्त।

समनुज्ञा (सं० स्त्री०) अनुज्ञा, अनुमति।

समनुबन्ध (सं० पु०) अनुबन्ध, अच्छी तरह अनुबंध।

समनुयोज्य (सं० त्रि०) सम अनु-युज् ण्यत्। समनुयोजनीय, सम्यक् प्रकारसे योगके लायक।

समनुवर्त्तिन् (सं० त्रि०) सम् अनु-वृत-णिनि। सम्यक्‌रूपसे अनुवर्त्ती, ठीक ठीक पीछा करनेवाला।

समनुव्रत (सं० त्रि०) सम्पूर्णरूपसे अनुव्रत, भक्त।

समनुष्ठेय (सं० त्रि०) सम्-अनु-स्था य। सम्यक् रूपसे अनुष्ठेय, अच्छी तरह करने लायक।

समन्त (सं० पु०) सम्यक् प्रकारेण अन्तः इति तत्पुरुष समासः। १ सीमा, प्रान्त, किनारा। (त्रि०) २ समस्त, सब, कुल।

समन्तकुसुम (सं० पु०) देवपुत्रभेद।

समन्तगन्ध (सं० पु०) देवपुत्रभेद।

समन्तचारित्रमति (सं० पु०) बोधिसत्त्वभेद।

समन्तस् (सं० अव्य०) सम्यक् प्रकारेण अन्तः तस्। चारों ओर अभिव्याप्त, चारों ओर फैला हुआ।

समन्तदर्शी (सं० पु०) १ बुद्ध। (ललितवि०) (त्रि०) समन्तं पश्यति दृश णिनि। २ सकल द्रष्टा, जिसे सब कुछ दिखाई देता हो।

समन्तदुग्धा (सं० स्त्री०) समन्तात् दुग्धं क्षीरमस्या। स्नुही वृक्ष, थूहर।

समन्तनेत्र (सं० पु०) बोधिसत्त्वभेद।

समन्तपञ्चक (सं० क्ली०) कुरुक्षेत्रतीर्थ, कुरुपाण्डवोंका युद्धक्षेत्र। एकबार परशुरामने समस्त क्षत्रियोंको मार कर उनके रक्तसे यहां पांच तालाब बनाए थे। पीछे उन्होंने उसी रक्तसे अपने पिताका तर्पण किया था। तभीसे इस स्थानका नाम समन्तपञ्चक पड़ा।

समन्तप्रभ (सं० पु०) बोधिसत्त्वभेद।

समन्तप्रभास (सं० पु०) बुद्ध।

समन्तप्रसादिक (सं० पु०) बोधिसत्त्वभेद।

समन्तभद्र (सं० पु०) समन्तात् भद्रमस्य। १ बुद्ध। २ एक प्राचीन कवि। ३ एक जैन ग्रन्थकर्त्ता। इन्होंने प्राकृतव्याकरण, लङ्कावतार और यक्षवर्मा रचित शाकटायनव्याकरणवृत्तिकी टीका आदि ग्रन्थ लिखे।

समन्तभुज (सं० पु०) समन्तात् भुङ्क्ते इति भुज क्विप्। अग्नि।

समन्तर (सं० पु०) १ महाभारतके अनुसार एक प्राचीन देशका नाम। २ इस देशका निवासी।

समन्तरश्मि (सं० पु०) बोधिसत्त्वभेद।

समन्तविलोकिता (सं० स्त्री०) बौद्धमतानुसार जगद्भेद।

समन्तबुद्धसागरचन्द्रघ्रघोषण (सं० पु०) गरुड राजभेद।

समन्तपुष्पाभ्यवेक्षण (सं० क्ली०) पुष्पभेद।

समन्तध्वजाग्रमुखदर्शन (सं० पु०) गरुडराजभेद।

समन्तात् (सं० अव्य०) समन्त, चारों ओर फैला हुआ।

समन्तालोक (सं० पु०) ध्यान करनेका एक प्रकार।

समन्तावलोकित (सं० पु०) बोधिसत्त्व भेद।

समन्तिक (सं० अव्य०) सामीप्य पास।

समन्त्रक (सं० त्रि०) मन्त्रेण सह वर्त्तमानः। मन्त्रक साथ वर्तमान, मन्त्रयुक्त।

समन्त्रिन् (सं० त्रि०) मन्त्र अस्त्यर्थे इनि। १ मन्त्र युक्त, मन्त्रविशिष्ट। २ मन्त्रीके साथ।

समन्यु (सं० पु०) मन्युना मन्युना क्रोधेन वा सह वर्त्त मानः। १ शिव। (त्रि०) २ क्रोधयुक्त। ३ यज्ञविशिष्ट।

समन्वय (सं० पु०) १ संयोग, मिलन, मिलाप। २ अविरोध, विरोधका अभाव। ३ कार्य कारणका प्रवाह या निर्वाह।

समन्वित (सं० त्रि०) सम् अनु इन् क्त। १ संयुक्त, मिला हुआ। २ अविरुद्ध, जिसमें कोई रुकावट न हो।

समपद (सं० क्ली०) समे पदे यत्र। १ धनुर्धारियोंका अवस्थान विशेष धनुष चलानेवालोंका एक प्रकारका खड़े होनेका ढंग जिसमें वे अपने दोनों पैर बराबर रखते हैं। २ कामशास्त्रके अनुसार एक प्रकारका रति बंध या आसन।

"योषित्पादौ हृदि स्थाप्य कराभ्यां पीडयेत् स्तनौ।

यथष्ट ताडयेद् योनिं बन्धः समपदः स्मृतः॥" (रतम०)

समपाद (सं० क्ली०) समौ पादौ यत्र। १ समपद देखो। २ वह छन्द या कविता जिसके चारो चरण समान या बराबर हो।

समप्राधान्यसङ्कर (सं० पु०) सम्यक् प्रधानता दिखलानेमें सारहीन कविता।

समबुद्धि (सं० त्रि०) समा बुद्धिर्यस्य। जिसकी बुद्धि सुख और दुःख, हानि और लाभ सबमें समान रहती हो।

समभाग (सं० त्रि०) समो भागो यत्र। १ समानभाग विशिष्ट, समान हिस्सा वाला। (पु०) २ समान भाग, बराबर हिस्सा।

समभिधा (सं० स्त्री०) समनाम, अभिधा।

समभिभाषण (सं० क्ली०) सम् अभि भाष ल्युट्। सम्यक् रूपसे अभिभाषण।

समभिव्याहार (सं० पु०) सम् अभि वि आ हृ घञ्। सहित, साथ।

समभिव्याहारिन् (सं० त्रि०) सम् अभि वि आ हृ णिनि। संङ्गी साथी।

समभिव्याहृत (सं० त्रि०) सम् अभि वि आ हृ क्त। १ एकत्र मिलित एक साथ मिला हुआ। २ सहोच्चरित, एक साथ उच्चारण किया हुआ। ३ चलित गया हुआ।

समभिहार (सं० पु०) सम् अभि हृ घञ्। १ पौनःपुन्य, बार बार होनेका भाव। २ भृशार्थ, अधिकता, ज्यादती।

समभूमि (सं० स्त्री०) समाभूमिः। समान स्थान। पर्याय—भाजि। मन्दिर अट्टालिकादिको ढाह ढाह कर चौरस करना।

समभ्यर्चयितृ (सं० त्रि०) सम् अभि अर्च णिच् तृच्। सम्यक्रूपसे अभ्यर्चनाकारी, अच्छी तरह स्वागत करनेवाला।

समभ्यास (सं० पु०) सम्यक् रूपसे अभ्यास।

समभ्युद्धरण (सं० क्ली०) सम्यक् रूपसे उद्धार।

समभ्युपगमन (सं० क्ली०) सम्यक् अभ्युपगमन, अच्छी तरह सोच विचार कर अनुमोदन।

समभ्युपेय (सं० क्ली०) समभ्युपगमन।

सममण्डल (सं० क्ली०) समान मण्डल, ग्रीष्म मण्डल के उत्तर और दक्षिण उदीच्यवृत्त और उदीच्येतर वृत्त तक दो भूभाग। (Temperate zone)

सममति (सं० त्रि०) समा मतिर्बुद्धिर्यस्य। समबुद्धि विशिष्ट, जिसकी बुद्धि समान रहती हो।

सममय (सं० त्रि०) समान भावविशिष्ट।

सममात (सं० त्रि०) समान मात्राविशिष्ट।

समय (सं० पु०) समागतोति सम्-इण्-गतौ पचाद्यच्। १ काल, योग्यकाल। २ शपथ, सौगन्द। ३ आचार। ४ सिद्धान्त। ५ संवत्। ६ क्रियाकार। ७ निर्देश। ८ भाषा। ९ सङ्केत। १० व्यवहार। ११ सम्पद्। १२ नियम। १३ अवसर। १४ कर्त्तव्यनिर्वाह। १५ वाक्य, वक्तृता, प्रचार, घोषणा। १६ दुःखावसान। १७ निदेश,आ। १८ उपदेश। १९ धर्म। (ति०) २० सौभाग्यशाली।

समयकार (सं० पु०) समयस्य कारः करण। सङ्केत, परिभाषा।

समयक्रिया (सं० स्त्री०) समयस्य क्रिया। समय पर करना।

समयज्ञ (सं० पु०) १ विष्णु। (ति०) २ जो समयका ज्ञान रखता हो, समयके अनुसार चलनेवाला।

समयधर्म (सं० पु०) समयक्रिया।

समयवज्र (सं० पु०) बौद्धयतिभेद।

समयविद्या (सं० स्त्री०) १ समयधर्म। २ योग्यकाल। ३ उपदेश, शिक्षा।

समयसुन्दर गणि—सुगमवृत्ति नाम्नी वृत्तरत्नाकरटीकाके प्रणेता।

समयसुन्दर उपाध्याय (जैन)—समाचारी शतक, विशेष शतक, कल्पलता और शब्दार्थवृत्तिके रचयिता।

समया (सं० अव्य०) समयनमिति सम-इन् गतौ (आ समिन् निकषिभ्या। उण् ४।१७४) इति आ प्रत्ययः। १ निकट, पास, समीप। २ मध्य, बीच। ३ कालविज्ञापन।

समयाचार (सं० पु०) १ धर्म। २ एक प्रसिद्ध तन्त्र शास्त्र।

समयाचारनिरूपण (सं० क्ली०) एक आधुनिक तन्त्रग्रन्थ। सीताराम इसके रचयिता थे।

समयातन्त्र (सं० क्ली०) तन्त्रभेद।

समयाध्युषित (सं० लि०) समयविशेष, वह समय जब कि न सूर्य ही दिखाई देता हो और न नक्षत्र ही, ठीक संध्याका समय।

समयानन्द (सं० पु०) तान्त्रिकोंके एक भैरवका नाम जिनका पूजन कालीपूजाके समय होता है।

समयानन्दनाथ (सं० पु०) समयानन्द देखो।

समयानन्दसन्तोष (सं० पु०) एक प्रसिद्ध शाक्त और तान्त्रिक आचार्य। इन्होंने स्वयं कितने पूजामन्त्रोंकी व्यवस्था की थी।

समयाविषित (सं० त्रि०) कालवशतः नष्ट या विलय प्राप्त। (ऐत० ब्रा० ५।२४)

समयाध्यासित (सं० लि०) कालक्रमसे विध्वस्त।

समर (सं० पु० क्ली०) सम्यक् अरणं प्रापणमिति सं ऋ गतौ अप्, यद्वा सम्यक् ऋच्छन्त्यत्रेति (मन्दन कन्दर शिकरेति। उण् ३।१३१) इति बाहुलकात् अर प्रत्ययेन साधु। युद्ध, संग्राम, लड़ाई।

समरकन्द—रूस राज्यके अधिकृत तुर्किस्तानके अन्तर्गत दुर्गाधिष्ठित तथा प्राचीर और परिखादि परिवेष्टित एक नगर। यह सुप्रसिद्ध बोखारा राजधानीसे १४५ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। यह नगर बहुत प्राचीन है। इसी स्थानमें मुगल-सम्राट् तैमूरलङ्गने अपनी राजधानी बसाई। उस प्राचीन वैभवकी कीर्त्तियां आज भी अतीत स्मृतियोंको जगाए हुई हैं। प्राचीन नगर जब पीछे विध्वस्त हो गया, तब जार-अफगान नदीके किनारे नया समरकन्द स्थापित हुआ। दैवकारणसे नदीकी गति बदल जाने पर नये नगरके सौन्दर्यमें भी बहुत हेर फेर हो गया है। प्राचीन नगरभागमें तीन मदरसा और बोखाराके अमीरोंका प्रासाद है। शेषोक्त अट्टालिका अभी अस्पतालमें परिणत हो गई है तथा मदरसा और विश्वविद्यालयमें आज भी मुसलमान धर्मशास्त्रकी आलोचना और शिक्षा चलती है। पहले यह महानगरी इसलाम धर्म और साहित्य-चर्चाका एक प्रधान केन्द्र समझा जाता था। नया नगरभाग भी प्राचीरसे घिरा है। उसमें घुसनेके छः दरवाजे हैं।

अरबी ग्रन्थादिसे जाना जाता है, कि यह स्थान पहले मरकन्द (मकरन्द) नामसे मशहूर था। पीछे समरकन्द कहलाने लगा। ७०२ ई०में इसलामधर्मावलम्बी अरब जातिने यह स्थान दखल किया। १२१९ ई०में यह चेङ्गीस खाँ तथा १३५९ ई०में तैमूरलङ्गके हाथ लगा। तैमूरके समय नगरकी बड़ी उन्नति हुई थी। इसके बाद परवर्त्ती कुछ सदी तक यह विद्यार्जनका प्रधान केन्द्र रहा। नाना स्थानोंसे मुसलमान लोग समरकन्दके विश्वविद्यालयमें पढ़नेके लिये आया करते हैं। १८६८ ई०में यह रूस राज्यके इलाकेमें आ गया है।

समरकर्म्मन् (सं० क्ली०) युद्धकर्म, लड़ाईका काम।
समरक्षिति (सं० स्त्री०) युद्धक्षेत्र, युद्धस्थान।
समरजित् (सं० पु०) समर जयति जि क्विप् तुक् च। समरजेता, लड़ाईमें फतह पानेवाला।
समरज्जु (सं० स्त्री०) दो वस्तुके बीचमें संलग्न रज्जु वह रस्सी जिससे दो वस्तुओंके बीचकी दूरी मापी जाती है, बीजगणितमें दूरी या गहराई मापनेकी रेखा।
समरञ्जय (सं० पु०) समर जयति जि खच् मुम्। युद्धजेता, समरविजयी।
समरण (सं० क्ली०) १ सम्यक् रूपसे यागदिगमन। (ऋक् १।१५।२) (त्रि०) २ मरणके साथ वर्त्तमान।
समरत (सं० पु०) रतबन्धविशेष, कामशास्त्रके अनुसार एक प्रकारका रतिबन्ध या आसन।

'हस्ताद्धस्तयुक्तं कृत्वा योनिस्तनद्वयम्।
स्त्रीको धृत्वा रमेत् कामी बन्ध समरतः स्मृतः॥'
(रतिमञ्जरी)

समरतुङ्ग (सं० पु०) योद्धृभेद। (कथासरित्सा० ५४।१३७)
समरथ (सं० पु०) मैथिलराजभेद, क्षेमाधिराजपुत्र।
समरपुङ्गव दीक्षित—वासुदेव और यात्राप्रबन्धकाव्यके प्रणेता।
समरपोत (सं० क्ली०) समर समरार्थ पोत, लड़ाईका जहाज।
समरबल (सं० क्ली०) १ युद्धका बल। (पु०) २ राजपुत्रभेद।
समरभट (सं० पु०) १ योद्धृपुरुष। २ राजपुत्रभेद।
समरभू (सं० स्त्री०) युद्धस्थल, लड़ाईका मैदान।
समरमूर्द्धन् (सं० क्ली०) समरभू देखो।
समरवर्मन् (सं० क्ली०) १ समरोपयुक्त वर्म, युद्ध करनेके लायक कवच। (पु०) २ राजपुत्रभेद। (राजतर० ५।११५)
समरवसुधा (सं० स्त्री०) युद्धस्थल, लड़ाईका मैदान।
समरमूर्द्धा (सं० पु०) लड़ाईवाली सेनाका अगला भाग।
समरवीर (सं० पु०) १ समरमें वीर। जो युद्धस्थलमें वीरता दिखलाता है, उसे समरवीर कहते हैं। २ यशोदाके पिता।
समरशायी (सं० पु०) वह जो युद्धमें मारा गया हो।
समरसिंह—एक विद्वान् ज्योतिर्विद्। ये प्राग्वाटवंशज सामन्त कुमारसिंहके पुत्र थे। हायनरत्नमें इनका मत उद्धृत है। जगद्भूषणकोष्ठक, ताजिकतन्त्र, ताजिकतन्त्रसार (गणकभूषण या करणकाल), ताजिकसिद्धान्त, मनुष्यजातक और पञ्चवर्षायणन आदि ग्रन्थ इनके रचित हैं। उक्त ग्रन्थोंसे इनकी वंशावली इस तरह मिलती है—गुजरातके एक चालुक्यराजके प्रसिद्ध मन्त्री चण्डसिंहके पुत्र श्रीअमरदेवके पुत्र सामन्त थे। इन सामन्तसिंहके पुत्र कुमारसिंह ही ग्रन्थकारके पिता थे।

समरसिंह—चौहानवंशी एक राजपूत राजा, मेवाड़के एक प्रसिद्ध महाराणा। टाड लिखित 'मेवाड़का इतिहास' में समरसिंहका जो विवरण प्रकाशित हुआ है वह भ्रमपूर्ण होने पर भी यहां अविकलरूपसे उद्धृत किया जाता है। मेवाड़की राजविवरणीके अनुसार १२०६ सम्वत्में समरसिंहका जन्म हुआ।

उक्त राजविवरणी पर निर्भर कर टाड साहबने लिखा है, कि सुप्रसिद्ध बाप्पारावके वंशधर समरसिंह जिस समय चित्तौरके राजसिंहासन पर बैठे थे उस समय भारतकी राजधानी दिल्लीमें पृथ्वीराज और कन्नौजमें जयचन्द्र राजत्व करते थे। चौहानराज पृथ्वीराजकी बहनके साथ समरसिंहका विवाह हुआ। इस सम्बन्धके कारण ही इन दोनों राज्योंमें प्रेम और सौहार्द्द बढ़ गया था।

देशद्रोही राठौर जयचन्द्रसे पृथ्वीराजका सुख और गौरव तथा समरसिंहका पृथ्वीराजसे सम्बन्ध सहा न गया। अतएव वह पृथ्वीराजकी प्रतिद्वन्द्विता करनेमें प्रवृत्त हुआ। पृथ्वीराजका उसने 'राजसूय' स्वीकार न किया पर भारतकी दिल्लीका उत्तराधिकारी होनेका दावा कर पृथ्वीराजके पास एक पत्र भेजा। फलतः शत्रुताकी वृद्धि हुई। पाटन, मण्डोर और मरुदेशके राजे जयचन्द्रके पक्षमें आ गये। कनौजाधिपति जयचन्द्रने पहले पृथ्वीराजके साथ अपनी पुत्री संयोगिताके विवाह करनेकी बात पक्की कर ली थी, किन्तु इधर शत्रुताकी वृद्धि तथा कुछ लोगोंके साहाय्य प्राप्त करनेके पहले अपना उस बातसे हट गया। दिल्लीश्वरने अपमानित हो कर उसके विरुद्ध युद्धकी घोषणा की।

समरेख (सं० त्रि०) समा रेखा यत्र। समान रेखा युक्त जिसमें सोधी रेखा हो।
समरोचित (सं० त्रि०) युद्धोपयुक्त, समरके लायक।
समरोत्सव (सं० पु०) समरस्य उत्सवः। युद्धयात्राके लिये उत्सव, युद्धोल्लास।
समरोद्देश (सं० पु०) रणक्षेत्र, लड़ाईका मैदान।
समरोपाय (सं० पु०) समरकौशल, लड़ाईमें दक्ष।
समर्घ (सं० त्रि०) सुलभ मूल्य, कम दामका, सस्ता।
समर्च (सं० त्रि०) १ सम्यक् अर्क सख्याविशिष्ट। २ सूक्त।
समर्चन (सं० क्ली०) सम्यक् रूपसे अर्चन पूजन।
समर्ण (सं० त्रि० ; सम् अर्द क्त। १ सम्यक् पीड़ित। २ प्रार्थित।
समर्त्ति (सं० स्त्री०) सम्यक् आर्त्ति या दुःख।
समर्थ (सं० त्रि०) समर्थयते इति सम अर्थ पचाद्यच्। १ शक्तिविशिष्ट बलवान, क्षमतापन्न, ताकतवर। २ प्रशस्त लम्बा चौड़ा। ३ उपयुक्त योग्य। ४ जो अभिलषित हो अभीष्ट। ५ युक्तिके अनुकूल, ठीक। (पु०) ६ हित, भलाई। ७ महाद्रिवर्णित एक राजाका नाम।
समर्थक (सं० त्रि०) १ समर्थनकारी समर्थन करने वाला। (पु०) २ चन्दनकाष्ठ, चन्दनकी लकड़ी।
समर्थता (सं० स्त्री०) समर्थका भाव या धर्म, सामर्थ्य शक्ति ताकत।
समर्थन (सं० क्ली०) सम अर्थ-ल्युट्। १ यह निश्चय करना कि अमुक बात उचित है या अनुचित वाजिब और गैरवाजिबका फैसला करना। २ विवेचना, मीमांसा। ३ निषेध मतादो। ४ सम्भावना। ५ उन्माद। ६ सामर्थ्य, शक्ति, ताकत। ७ विवाद-भङ्ग करना, विवादकी समाप्ति या अन्त करना। ८ किसी मतमें सहमत होना किसीके मतका पोषण करना। ९ दृढ़ीकरण पक्का करना।
समर्थना (सं० स्त्री०) सम् अर्थ युच् टाप्। १ अशक्य विषयमें अध्यवसाय, किसी ऐसे कामके लिये प्रयत्न करना जो असम्भव हो। २ समर्थन देखो।
समर्थनीय (सं० त्रि०) सम् अर्थ अनीयर। समर्थनयोग्य। जिसका समर्थन किया जा सके।
समर्थित (सं० त्रि०) १ विवेचित, जिसकी विवेचना हो। २ मीमांसित जिस पर विचार हो चुका हो। ३ दृढ़ीकृत, जो मजबूत किया जा चुका हो। ४ स्थिरीकृत जो निश्चित हो चुका हो। ५ सम्भावित, जो हो सकता हो।
समर्थ्य (सं० त्रि०) जो समर्थन किया जा सके।
समर्द्धक (सं० त्रि०) समृध्नोतीति सम् ऋधु वृद्धौ ण्वुल्। वरदानकारी वर देनेवाला देवता आदि।
समर्द्धयितृ (सं० त्रि०) पूर्णकारी, कामना पूरी करने वाला।
समर्द्धुक (सं० त्रि०) समर्द्धक, इष्टफलदाता देवतादि।
समर्पक (सं० त्रि०) समर्पयतीति सम् अर्पि ण्वुल्। समर्पणकारी समर्पण करनेवाला।
समर्पण (सं० क्ली०) सम् अर्पि ल्युट्। १ सम्यक् प्रकार से अर्पण किसीको कोई चीज आदरपूर्वक भेंट करना। तन्त्रोक्त पूजा करके पूजाके अन्तमें उसी देवताके उद्देशसे आत्मसमर्पण करना होता है। २ दान देना। ३ स्थापना, स्थापित करना।
समर्पित (सं० त्रि०) १ सम्यक् रूपसे अर्पित प्रदत्त समर्पण किया हुआ। २ स्थापित, जिसकी स्थापना की गई हो।
समर्पितृ (सं० त्रि०) सम अर्पि तृच्। समर्पणकारी समर्पण करनेवाला।
समर्प्य (सं० त्रि०) सम अर्पि-यत्। समर्पणयोग्य जो समर्पण किया जा सके।
समर्य्य (सं० पु०) शत्रु दुश्मन। समर्य्यजित् देखो।
समर्य्याजित् (सं० त्रि०) शत्रुजेता। (ऋक् १।११।१५)
समर्य्याराज्य (सं० क्ली० मनुष्य सहित राज्य।
समर्य्याद (सं० पु०) मर्यादया सह वर्त्तमान। १ निकट, पास, करीब। (त्रि०) २ सीमायुक्त। ३ मर्यादाके साथ। ४ सच्चरित्र जिसका चाल चलन अच्छा हो।
समर्हण (सं० क्ली०) सम् अर्ह ल्युट्। सम्यक्रूपसे पूजा तनमनसे अर्चना करना।
समल (सं० क्ली०) मलेन सह वर्त्तमान। १ विष्ठा, मल, गू। (त्रि०) २ आविल, मैला, मलिन। ३ कलङ्क विशिष्ट।

समलोष्ठाश्मकाञ्चन (सं० त्रि०) समानि लोष्ठाश्मकाञ्चनानि यस्य। जिन्हें ढेले, पत्थर और सोनेमें समान ज्ञान है।

समवकार (सं० पु०) नाटकभेद। नाटक, प्रकरण, भाण, समवकार और डिम आदिके भेदसे नाटक नाना प्रकारका है। इसमें अनेक अर्थोंका समवकिरण अर्थात् एकत्र सन्निवेश होता है, इसीसे इसका नाम समवकार हुआ है। इस समवकारमें ख्यात वृत्त होगा अर्थात् देवता असुरादिका आश्रय कर किसी एक प्रसिद्ध वृत्तान्तके अवलम्बन पर यह प्रणयन करना होगा। यह वीररस-प्रधान है, देवता और असुरोंका युद्ध वर्णन ही इसका प्रधान उद्देश्य है। इसमें तीन अङ्क रहेंगे। नाटकमें जो पञ्चसन्धि कही गई हैं, उनकी चार सन्धि इसमें वर्णित होगी, केवल विमर्शसन्धि इसमें निषिद्ध है। इसका नायक धीरोदात्त है, इसमें प्रत्येकका फल भिन्न प्रकारका है। मन्दकौशिकी वृत्ति तथा गायत्री और उष्णिक् छन्दमें इसका मुखभाग रचा जाता है। पीछे नाना प्रकारके छन्दोंका विन्यास दिखाई देगा। इसमें दन्ती रथादि परिपूर्ण युद्धभेद, तुमुल संग्राम और नगरादि ध्वंसका वर्णन बड़े ढङ्गसे रहता है। त्रिशृङ्गार अर्थात् शास्त्रके अविरोधमें धर्मशृङ्गार, अर्थलाभार्थ कल्पित अर्थशृङ्गार और कामशृङ्गार इन तीन प्रकारके शृङ्गारोंका इसमें वर्णन करना होता है। इन तीन प्रकारके शृङ्गारोंमें कामशृङ्गारका प्रथम अङ्कमें वर्णन करना होगा। पीछे जिस किसी जगह बाकी दो शृङ्गारोंका वर्णन कर सकते हैं। नाटकोक्त त्रिकपट और त्रिविद्रव इसमें वर्णनीय हैं। नाटककी तरह बिन्दु या प्रवेशक इसमें नहीं होगा। साहित्यदर्पणमें समुद्रमन्थन नामक एक समवकारका नाम देख पड़ता है।

नाटक शब्द देखो।

समवतार (सं० पु०) सम्-अव-तॄ-घञ्। १ तीर्थ, घाट, सोपान। २ अवतरण, उतरनेकी क्रिया। ३ उतरनेकी जगह, उतार।

समवधान (सं० क्ली०) सम्-अव-धा-ल्युट्। १ सम्यक् मनोयोग। २ निष्पत्ति।

समवन (सं० क्ली०) सम्-अव-ल्युट्। सम्यक्रूपसे अवन, सम्यक् प्रकारसे रक्षण।

समवर्ण (सं० पु०) समान वर्ण, एक वर्ण।

समवर्त्ती (सं० पु०) १ यमका एक नाम। (त्रि०) २ तुल्यरूपसे स्थित, तुल्यवर्त्तनशील।

समवलम्ब (सं० त्रि०) १ समान अवलम्बविशिष्ट। २ जिस चतुर्भुजकी दोनों लम्बरेखा (Perpendicular) समान हों। (Trapezoid) नामक चतुर्भुज (Rectangle) होनेसे आयतसमलम्ब कहलाता है।

समवसरण (सं० पु०) वह स्थान जहां किसी प्रकारका धार्मिक उपदेश होता हो। (कल्पसूत्रभा० १७४)

समवसर्ग (सं० त्रि०) १ रज्जु अवनमन। २ परित्याग।

समवसृज्य (सं० त्रि०) सम्यक् परित्याज्य, अच्छी तरह छोड़ने योग्य।

समवस्कन्द (सं० पु०) सम्यक्रूपसे दुर्ग द्वारा सुरक्षितकरण, किलेका प्राकार।

समवस्था (सं० स्त्री०) समा तुल्या अवस्था। १ समान अवस्था, एक-सी दशा। २ कालकृत विशेष अवस्था।

समवस्थान (सं० क्ली०) सम्-अव-स्था ल्युट्। सम्यक् रूपसे अवस्थान, सम्यक् प्रकारसे स्थिति।

समवस्रव (सं० पु०) सम्-अव-स्रु अप्। सम्यक्रूपसे अवस्रव, क्षरण, टपकना।

समवहार (सं० पु०) सम्-अव-हृ-घञ्। विभक्त, बटा हुआ। (भागवत ५।१४।१)

समवहास्य (सं० त्रि०) सम्-अव-हस्-ण्यत्। सम्यक् रूपसे अवहसनीय, उपहासयोग्य।

समवाय (सं० पु०) सम अवयते इति सम्-अव-घञ्। १ समूह। (अमर) २ सम्बन्धविशेष, समवायसम्बन्ध, नित्य सम्बन्ध।

घटादिका कपाल आदिसे जो सम्बन्ध है, द्रव्यसे गुण और कर्मका जो सम्बन्ध है तथा द्रव्य, गुण और कर्ममें जातिका जो सम्बन्ध है, उसको समवाय कहते हैं।

यद्यपि इस आदि पदमें साधारणतः अवयवमें अवयवीका सम्बन्ध मालूम हुआ। सुतरां घट और कपालमें जो सम्बन्ध है, द्व्यणुकका अणुमें और त्रसरेणुका द्व्यणुकमें जो सम्बन्ध है, वही समवाय सम्बन्ध है। मूलका सूत्र समवायका केवल परिचायक है, लक्षण नहीं।

समवायका लक्षण करने पर नित्य सम्बन्धत्व ही समवायत्व है। अर्थात् नित्य संबंधको समवाय कहते

समश्रेणी (सं० स्त्री०) समान श्रेणी, एक श्रेणी।

समष्टि (सं० स्त्री०) सम्-अश-व्याप्तौ-क्तिन्। समस्त मिलित, सबका समूह, कुल एक साथ।

समष्ठिल (सं० पु०) समं तिष्ठतीति स्था बाहुलकात् इलच्। १ पश्चिमदेशजात क्षुपविशेष, केकुआ नामका कंटीला पौधा जो प्रायः पश्चिममें नदियोंके किनारे होता है। वैद्यकमें इसे कटु, उष्ण, रुचिकर, दीपन और कफ तथा वातका नाशक माना है। २ गण्डीर या गिंडनी नामका साग।

समष्ठिला (सं० स्त्री०) समष्ठिल स्त्रियां टाप्। १ समष्ठिल, केकुआ। २ जमीकन्द, सूरन। ३ गिंडनी या गंडीर नामका साग। ३ नद्याम्र। ४ शमठ नामक शाकविशेष, सुठिया साग।

समष्ठीला (सं० स्त्री०) समष्ठिला देखो।

समसंख्यात (सं० त्रि०) सम्-संख्या-क्त। समसंख्याविशिष्ट, समान अंकवाला।

समसंस्थान (सं० क्ली०) समरूपसे संस्थान, दोनों ओरके भावका समान करना।

समसंस्थित (सं० त्रि०) सम-संस्था-क्त। समानरूपमें संस्थानयुक्त, दोनों ओर समरूपसे संस्थित।

समसन (सं० क्ली०) सम् अस् ल्युट्। १ संक्षेपण, संक्षेप करना। २ समास।

समसनकचूर्ण—चूर्णौषधभेद। (चिकित्सासार)

समसमयवर्त्तिन् (सं० त्रि०) समसमये वर्त्तते वृत णिनि। समकालस्थित, समकालवर्त्तनशील।

समसापर्वत—मन्द्राज प्रदेशके दक्षिण कनाड़ा जिलान्तर्गत पश्चिमघाट पर्वतमालाका एक गिरिशृङ्ग। इसकी ऊंचाई ६२०० फुट है। यह मङ्गलूरसे ५६ मील दूर अक्षा० १३°८´ उ० और देशा० ७५°१८´ पू०के मध्य विस्तृत है। इस पर्वतकी चोटी पर दक्षिण कनाड़ावासी युरोपीयगणका स्वास्थ्यावास स्थापित है। स्थानीय जलवायु परम रमणीय है। यहां नाना प्रकारके फलमूलादि उत्पन्न होते हैं।

समसुप्ति (सं० पु०) समेषां सर्वेषां सुप्तिर्यत्र। १ कल्पान्त, महाप्रलय। (स्त्री०) समा सुप्तिः। २ तुल्यशयन, समान सोना।

समसूत्र (सं० त्रि०) समान सूत्र या रेखामें जो हो।

समसूत्रग (सं० त्रि०) समसूत्रे गच्छतीति गम ड। समसूत्रगामी, एक-सा चलनेवाला।

समसौरभ (सं० पु०) १ समान सौरभ, एक-सी गंध। (त्रि०) २ तुल्यगंधविशिष्ट, जिसमें एक सी गंध हो।

समस्त (सं० त्रि०) सम् अस क्त। १ समग्र, कुल, सब। २ संयुक्त, एकमें मिलाया हुआ। ३ समासयुक्त, जो समास द्वारा मिलाया गया हो। ४ संक्षिप्त, जो थोड़ेमें किया गया हो।

समस्तल—प्रभासके अन्तर्गत एक तीर्थ। यहां देवीप्रतिमूर्त्ति विराजित हैं। (प्रभासख० १६ अ०)

समस्थ (सं० त्रि०) समे तिष्ठतीति स्था-क। समान।

समस्थली (सं० स्त्री०) समा स्थली, गंगा और यमुनाके बीचका देश।

समस्या (सं० स्त्री०) समसनं उक्ता संक्षेपणं सम् अस यत्। १ किसी श्लोक या छन्द आदिका वह अंतिम पद या टुकड़ा जो पूरा श्लोक या छन्द बनानेके लिये तैयार करके दूसरोंको दिया जाता है और जिसके आधार पर पूरा श्लोक या छंद बनाया जाता है। पर्याय—समासार्था, समस्यार्था, समासार्था। (भरत) २ संघटन। ३ मिश्रण, मिलानेकी क्रिया। ४ कठिन अवसर या प्रसङ्ग।

समस्यापूर्त्ति (सं० स्त्री०) किसी समस्याके आधार पर कोई छन्द या श्लोक आदि बनाना।

समस्यार्था (सं० स्त्री०) समस्या अर्थो यस्याः। समस्या।

समस्वर (सं० त्रि०) समान स्वरविशिष्ट, समान स्वरवाला।

समस्वामित्व (सं० क्ली०) तुल्यस्वत्व, तुल्याधिकार, समान हक।

समह (सं० त्रि०) धनके साथ, धनयुक्त।

समह्वा (सं० स्त्री०) यश, कीर्त्ति।

समां (हिं० पु०) समय, वक्त।

समांश (सं० पु०) समोंऽशः। १ तुल्य अंश, बराबर भाग। (त्रि०) समोंऽशो यस्य। २ तुल्यांशविशिष्ट, समान भागवाला।

समाशहारिन् (स० त्रि०) समाशं हरतीति हृ णिनि। समभागाह, समानभागविशिष्ट। दायभागमें लिखा है, कि पतिकी मृत्युके बाद स्त्री पुत्रोंके साथ समान अंश पाती है।

समांशिक (स० त्रि०) समांशोऽस्त्यस्येति ठन्। समता गाह समान भागके योग्य।

समांशिन् (स० त्रि०) समांशोऽस्त्यस्येति इनि। तुल्य भागविशिष्ट, समान अंशवाला।

समास (स० त्रि०) मासेन सह वर्त्तमान। मासके साथ वर्त्तमान, मासयुक्त मासविशिष्ट, मांसल। शास्त्र में लिखा है, कि देवताओंके उद्देशसे पशु हनन कर समास रुधिर उस देवताके उद्देशसे उत्सर्ग करना होता है।

समासमाना (स० स्त्री०) समां समां विजायते इति (समां समां विजायते। पा ५।२।१२) इति ख। प्रति वर्ष प्रसूतगवी, प्रत्येक वर्ष बच्चा देनेवाली गाय।

समा (स० स्त्री०) सम् वैक्लव्ये पचाद्यच् ततष्टाप्। वर्ष, साल।

समाकार (स० त्रि०) समान आकारविशिष्ट।

समाकर्षण (स० क्ली०) सम् आ कर्षि ल्युट्। सम्यक् रूपसे आकर्षण, अच्छी तरह खींचना।

समाकर्षिन् (स० पु०) समाकर्षति चित्तमिति सम् आ कृष णिनि। १ अति दूरगामी गन्ध, दूर तक फैलनेवाला महक। पर्याय—निर्हारी। (त्रि०) २ आकर्षणकारी करनेवाला।

समाकार (स० त्रि०) समान औज्ज्वल्यविशिष्ट जो एकदम सफेद हो।

समाकुल (स० त्रि०) सम् आकुल अच्। १ जिसकी अक्ल ठिकाने न हो, बहुत अधिक घबराया हुआ। २ संशयित सन्दिग्ध। ३ हतबुद्धि, अभागा।

समाक्रन्दन (स० क्ली०) सम् आ क्रन्द ल्युट्। सम्यक् प्रकारसे आक्रमण।

समाक्रान्त (स० त्रि०) सम् आ क्रम क्त। १ व्याप्त, फैला हुआ। २ सम्यक्रूपसे आक्रान्त। ३ गृहीत। ४ अधिष्ठित।

समाक्षर (स० त्रि०) समान अक्षरविशिष्ट, तुल्य अक्षर।

समाक्षरावक्र (स० पु०) ध्यानका एक प्रकार।

समाक्षेप (स० पु०) सम् आ क्षिप् घञ्। सम्यक् रूपसे आक्षेप या क्षेपण।

समाख्या (स० स्त्री०) समाख्यायतेऽनयेति सम् आ ख्या अङ्। १ कीर्त्ति, यश। २ संज्ञा, नाम।

समाख्यान (स० क्ली०) १ सम्यक् प्रकारसे आख्यान, भली भांति कहना। २ सम् आख्यान, एक सा वर्णन।

समागत (स० त्रि०) सम् आ गम् क्त। १ सम्यक् आगमनविशिष्ट, आया हुआ। २ मिलित, उपस्थित। ३ असाक्षात्कृत्य, भेंट की हुई।

समागति (स० स्त्री०) सम् आ गम क्तिन्। सम्यक् आगमन।

समागम (स० क्ली०) सम् आ गम घञ्। १ समागमन, आगमन, आना। २ सम्प्राप्ति। ३ मिलन, भेंट।

समागमन (स० क्ली०) सम् आ गम ल्युट्। समागम, आना, पहुंचना।

समाघात (स० पु०) समा हन्यतेऽत्र ति सम् आ हन घञ्। १ युद्ध, लड़ाई। २ वध, हत्या, जानसे मार डालना।

समाङ्घ्रक (स० त्रि०) समानचरणविशिष्ट, तुल्य चरण युक्त।

समाचयन (स० क्ली०) एकत्र स्थापन, एक साथ रखना। (पा ३।१।२० वार्त्तिक)

समाचरणीय (स० त्रि०) सम् आ चर अनीयर्। सम्यक् रूपसे आचरणीय।

समाचार (स० पु०) सम् आ चर घञ्। १ सम्यक् आचरण उत्तम व्यवहार। २ संवाद, खबर।

समाचारपत्र (स० पु०) वह पत्र जिसमें सब देशों के अनेक प्रकारके समाचार रहते हों, खबरका कागज अख़बार।

समाच्छन्न (स० त्रि०) सम् आ छद् क्त। आच्छादित, ढका हुआ।

समाज (सं० पु०) सं यीयतेऽत्र ति स अज घञ्। (समुदोरजः पशुषु। पा ३।३।६९) इति वीभावो न। (अजिव्रज्योश्च। पा ७।३।६०) समूह, संघ, गिरोह, दल। २ सभा।

३ वैष्णवोंका समाधि स्थान। ४ हस्ती, हाथी। ५ एक ही स्थान पर रहनेवाले अथवा एक ही प्रकारका व्यवसाय आदि करनेवाले वे लोग जो मिल कर अपना एक अलग समूह बनाते हैं, समुदाय। ६ ब्राह्मणादि वर्णकी सभा। सभी वर्णके प्रधान प्रधान व्यक्ति मिल कर समाज स्थापन करते हैं। सभी समाजके आदेशानुसार चलनेके लिये बाध्य हैं। सभी वर्णोंका समाजबन्धन है, जैसे ब्राह्मण समाज, कायस्थ समाज इत्यादि। ब्राह्मण ब्राह्मण-समाजके नियमानुसार आदान प्रदान और कायस्थ कायस्थ समाजके नियमानुसार आदान प्रदान करते हैं। समाजमें एक प्रधान पुरुष रहता है जिसे समाजपति या गोष्ठीपति कहते हैं। किसी सामाजिक क्रियामें ये समाजपति भी मान्यस्वरूप माला चन्दन पाते हैं।

समाज्ञा (सं० स्त्री०) समाज्ञायते इति सम्-आ-ज्ञा आतश्चोपसर्गे इत्यङ् टाप्। समज्ञा, ख्याति, यश।

समाञ्जन (सं० क्ली०) मिश्रित अञ्जनौषध भेद।

समाता- समातृ देखो।

समातृ (सं० स्त्री०) मातुः समा। १ वह जो माताके समान हो। २ माताकी विपत्नी, विमाता, सौतेली माँ।

समातृक (सं० त्रि०) माता सह वर्त्तमानः। 'उन्नन्द्योसर्पगादः कप' इति कप् समासान्तः। माताके साथ वर्त्तमान, मातृविशिष्ट।

समात्मक (सं० त्रि०) सम आत्मा स्वभावो यस्य। तुल्यस्वभाव, एक सा स्वभाववाला।

समात्मन् (सं० त्रि०) तुल्यस्वभाव, जिसकी चित्तवृत्ति परस्पर समान हो।

समादर (सं० पु०) सम आ दृ-अप्। आदर, सम्मान, खातिर।

समादरणीय (सं० त्रि०) सम् आ-दृ अनीयर्। सम्मानार्ह, आदर सत्कार करनेके लायक।

समादान (सं० क्ली०) सम् आ-दा-ल्युट्। बौद्धोंका सौगताह्निक नामक नित्यकर्म। समादान देखो।

समादृत (सं० त्रि०) सम्-आ दृ-क्त। सम्मानित, जिसका अच्छी तरह आदर हुआ हो।

समादेय (सं० त्रि०) १ प्राप्त, पाया हुआ। २ अभ्यर्थनाके उपयुक्त, स्वागत करने योग्य। ३ आदर या प्रतिष्ठा करनेके योग्य।

समादेश (सं० पु०) सम् आ-दिश घञ्। सम्यक्रूप आदेश आज्ञा, हुक्म।

समादेशन (सं० क्ली०) सम् आ-दिश-ल्युट्। सम्यक् आदेश, आज्ञा।

समाधा (सं० पु०) सम्-आ-धा-क्विप्। १ निष्पत्ति, निपटारा। २ विरोध भञ्जन, विरोध दूर करना। ३ सिद्धान्त। ४ समाधान।

समाधान (सं० क्ली०) सम् आ-धा-ल्युट्। १ चित्तको सब ओरसे हटा कर ब्रह्मकी ओर लगाना, मनको एकाग्र करके ब्रह्ममें लगाना। पर्याय—समाधि, चित्तैकाग्र, अवधान, प्रणिधान। २ किसीके शंका या प्रश्न करने पर दिया जानेवाला वह उत्तर जिससे जिज्ञासु या प्रश्नकर्त्ताका संतोष हो जाय, किसीके मनका संदेह दूर करनेवाली बात। ३ विरोधभञ्जन, किसी प्रकारका विरोध दूर करना। ४ निष्पत्ति, निपटारा। ५ नियम। ६ तपस्या। ७ अनुसन्धान, अन्वेषण। ८ समर्थन। ९ ध्यान। १० नाटकाङ्गविशेष। उत्क्षेप, परिकर, परिन्यास, विलोभन, युक्ति और समाधान आदि नाटकके अङ्ग हैं, अर्थात् नाटकमें इन सब अङ्गोंका वर्णन करना होता है।

समाधानीय (सं० त्रि०) सम्-आ-धा-अनीयर्। समाधानके योग्य।

समाधि (सं० पु०) समाधीयतेऽस्मिन् मनो जनैरिति सम-आ धा-उपसर्गे घोः किः इतिः किः। १ समर्थन। २ नीवाक। ३ नियम। ४ अङ्गीकार। ५ ध्यान। ६ काव्यका गुणविशेष। जहां दो घटनायें दैवक्रमसे एक ही समयमें होती हैं और एक क्रियाके साथ दो कर्त्ताका अन्वय हो कर इस घटना द्वारा प्रकाशित होता है। (काव्यादर्श १।९३-४)

जहां अन्य धर्म अर्थात अप्रस्तुत गुणक्रियारूप धर्म और उससे दूसरी जगह किसी प्रस्तुत विषयमें लोकमर्यादाके अनुसार वक्ता गौण-शब्द प्रयोग द्वारा वाक्यार्थका सम्यक् आधान करते हैं, वहां यह समाधि-गुण होता है।

७ अलङ्कारविशेष।

सुकर कार्यमें यदि दैवात् अन्य एक वस्तुका आगमन हो, तो यह अलङ्कार होता है।

मान अपनोदनके लिये मानिनीके पादद्वयमें निपतित हमारे सौभाग्यक्रमसे उद्दाम यह मेघगर्जन उपकारके लिये ही हुआ है। यहां पाद ग्रहण द्वारा ही मानिनीका मान अपनोदन होना अतएव इस सुकरकार्यमें हठात् मेघगर्जनरूप जन्तुका निपतन होना यही अलङ्कार हुआ। (साहित्य दर्पण।)

८ कारण सामग्री। ९ आरोप। १० प्रतिज्ञा, सम्मति युक्ति। ११ प्रतिरोध। १२ विवादभञ्जन। १३ अन्नाभाव होनेसे शस्यसञ्चय कर रखना। १४ असाध्य विषयमें अध्यवसाय। १५ मौनीभाव। १६ निशा। १७ भविष्य युगके जैन मुनिविशेष। १८ योग। १९ ध्यान। २० एकाग्रता। २१ निरोध।

योगका चरमफल समाधि है। पहले एकाग्र चित्तसे धारणा इसके बाद ध्यान और समाधि है। इन्द्रियोंको निरोध कर किसी एक विषयमें चित्त स्थिर करनेको एकाग्रता कहते हैं। मन एकाग्र होने पर धारणा यह धारणा बद्धमूल होनेसे ध्यान और ध्यान जब बद्धमूल होता है, तब उसको समाधि कहते हैं। पातञ्जल और वेदान्त आदि दर्शनोंमें इस समाधिका विस्तृत विवरण लिखा है।

मैं सत्य, अनन्त, अद्वय ब्रह्मस्वरूप हूं यह ज्ञान होगा और चित्त विनष्ट हो कर अखण्ड ब्रह्मस्वरूपमें अवस्थान करनेमें समर्थ होगा, तभी मानस्य योगीको वास्तवमें समाधिस्थ कहा जाता है। इस समाधिके चरम दशाको निर्विकल्पक समाधि कहते हैं।

ध्यानका परिणाम समाधि है, ध्यान दीर्घकालस्थायी होने पर ही समाधि होती है। मैं अमुकका चिन्ता कर रहा हूं। यहां मात्र ध्यानकी अवस्थामें रहता है। समाधिमें यह नहीं रहता उस समय ज्ञान ध्येय विषयके आकारमें ही भासमान होता है। सुतरां मालूम होता है कि चित्तवृत्ति नहीं है। चित्तवृत्ति रह कर भी न रहनेकी तरह है।

ध्यान ही ध्येय है अर्थात् ध्यानके विषयाकारमें भासमान हो विषय स्वरूपमें उपरत हो जब प्रत्ययात्मक वृत्तिस्वरूप ज्ञानको परित्याग कर ही अवभासित होता है, तब उसको समाधि कहते हैं। जैसे जवाकुसुमके सन्निधानमें परिशुद्ध स्फटिकका अपना शुक्ल गुण भासमान नहीं होता, वैसे ही विषयाकारमें सर्वथा लीन हो कर चित्तवृत्ति पृथक् भावसे अनुभूत नहीं होती, इसी अवस्थाको समाधि कहते हैं। यह सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात भेदसे दो प्रकारकी है। सम्प्रज्ञात समाधि भी चार प्रकारकी है—सवितर्क, सविचार, सानन्द और सास्मित।

चित्त स्थिर करना अतीव कठिन कार्य है। भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा था—

"चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथिबलवद्दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्॥" (गीता ६ अ०)

मन बड़ा ही चञ्चल है वायुकी तरह इसका वशीभूत करना दुष्कर है। अभ्यासद्वारा यद्यपि चित्त प्रशान्त होता है तथापि पुनर्वार अस्थिर होनेकी विशेष सम्भावना है। अतएव जिसमें चित्त अस्थिर न हो इसके लिये अतिशय दृढ़ताके साथ चेष्टा करना योगियोंका सर्वथा कर्त्तव्य है।

इसलिये अभ्यास दृढ़ करना होता है। अभ्यास दृढ़ और परवैराग्य होनेसे चित्त स्थिर होता है। राग द्वेष आदि चित्तके मल हैं, इन्हींके द्वारा इन्द्रियां विषयकी ओर दौड़ती हैं। जिसमें उक्त राग आदि द्वारा इन्द्रियां विषयकी ओर परिचालित न हो ऐसे उपाय अवलम्बनको यतमान संज्ञा कहते हैं। यही वैराग्यका प्रथम भूमिका है। अनन्तर देखना होगा, कि किस किस विषयसे इन्द्रियनिवृत्ति हुई है और कौन कौन बाकी है। इसके पृथक्रूपसे अवधारण करनेका नाम व्यतिरेक संज्ञा है। बहिरिन्द्रियोंके विषयमें निवृत्त होने पर भी औत्सुक्यके साथ मनमें विषयका चिन्ताका नाम एकेन्द्रिय संज्ञा है। अर्थात् चित्तरूप केवल एक इन्द्रियमें विषयका अवस्थान है। अनन्तर जब इस औत्सुक्यकी निवृत्ति हो जाती है तो वशीकार संज्ञा नामक वैराग्यका उदय होता है। अभ्यास और इस वैराग्यके द्वारा चित्त स्थिर होता है। इस तरह जब चित्त स्थिर होता है तभी धारणा आ कर समुपस्थित होती है। यही धारणा काल पा कर ध्यान और ध्यान ही दीर्घ काल तक स्थायी रहनेसे समाधि होती है।

किसी भी एक स्थूल वस्तुका अवलम्बन कर केवल तदाकारमें चित्तकी वृत्तिधाराको संलग्न रखनेको ही सवितर्क समाधि कहते हैं। इस वस्तुके सूक्ष्म भागका अवलम्बन कर तदाकारमें चित्तवृत्ति धारण करनेका नाम सविचारसमाधि है।

चार प्रकारके सम्प्रज्ञात समाधिमें प्रथम सवितर्कमें उक्त चार समाधि ही सन्निविष्ट हैं। द्वितीय सविचारमें वितर्क नहीं रहता, अन्य तीन रहते हैं। तृतीय सानन्द-समाधिमें वितर्क और विचार नहीं रहता, अन्य दो रहते हैं। चतुर्थ अस्मिता समाधिमें वितर्क, विचार और आनन्द ये तीनों ही नहीं रहते, केवल अस्मिता रहती है। उक्त चार प्रकारकी समाधि ही सालंबन है अर्थात् इनमें कोई न कोई आलंबन रह जाते हैं। समाधि जब आलंबनशून्य होता है, तब वह असंप्रज्ञात कहलाता है।

उपर्युक्त चार तरहकी संप्रज्ञात समाधिके प्रकारान्तरसे तीन तरहका कहा जाता है,—ग्राह्यविषयक, ग्रहणविषयक और गृहीतृविषयक। गुणत्रयके तामस भागसे पञ्चभूत और सात्विक भागसे इन्द्रियां उत्पन्न होती हैं। ग्राह्य (जिसके ग्रहणका ज्ञान हो) विषय भी स्थूल और सूक्ष्म भेदसे दो प्रकारका है। स्थूल पञ्चमहाभूत विषयमें समाधिका नाम सवितर्क, और सूक्ष्म पञ्चभूत विषयमें समाधिका नाम सविचार है। ग्रहण—जिसके द्वारा ग्रहण ज्ञान हो, अर्थात् इन्द्रिया। यह भी स्थूल और सूक्ष्म भेदसे दो तरहका है। चक्षुः (नेत्र) प्रभृति स्थूलग्रहण, स्थूलेन्द्रिय और अहंकारतत्त्व सूक्ष्मग्रहण इन्द्रियरूप स्थूलग्रहण विषयमें समाधिका नाम सानन्द, अहंकाररूप सूक्ष्म-ग्रहण विषयमें समाधिका नाम सास्मित है सब स्थलोंमें ही कार्यको स्थूल और कारणको सूक्ष्म कहते हैं। क्योंकि इसमें गृहीता (जो ग्रहण करे और जाने) आत्म अहंकारके साथ अभिन्न भावसे भासमान रहता है।

कार्यावस्थामें सूक्ष्म भावसे कारण रहता है। कारणावस्थामें कार्य रहता ही नहीं। समवायी कारणको परित्याग कर देनेसे कार्य रह नहीं सकता; किन्तु कार्यको परित्याग कर समवायी कारण रह सकता है। सुतरां स्थूल कार्यविषयमें सवितर्क समाधिमें अन्य तीन समाधियोंकी सम्भावना है। ये स्थूलग्राह्य विषयमें ही सूक्ष्मग्राह्य और द्विविधग्रहण विषयक समाधि हो सकती है। यही सम्प्रज्ञात समाधि या सबीज-समाधि है।

जिससे चित्तकी सारी वृत्तियां तिरोहित हों, इस तरहके उपाय पर वैराग्य अवलम्बन करनेसे केवलमात्र संस्कार अवशिष्ट रहता है। ऐसी अवस्थाको असम्प्रज्ञात समाधि कहते हैं। इसका प्रधान उपाय सर्वदा चित्तवृत्तिनिरोध है। चित्तकी जब सारी वृत्तियां निरोहित हो जाती हैं, केवल संस्कार रह जाता है, तब असम्प्रज्ञात समाधि होती है, असम्प्रज्ञात समाधिका कारण परवैराग्य है।

असम्प्रज्ञात समाधिमें जैसे कोई विषय रह नहीं जाता, पर-वैराग्यमें जैसे कोई भी विषय अभीष्ट रह नहीं जाता, सुतरां दोनों ही सदृश ज्ञानपर हैं; दूसरे वैसे ही वैराग्यमें कोई न कोई विषय अभीष्ट रह जाता, इसलिये उसमें असम्प्रज्ञात समाधि हो नहीं सकती। सम्प्रज्ञात समाधि अपर वैराग्यसे उत्पन्न हो सकती है, क्योंकि कुछ विषय रहने पर कुछ विषयोंका न रहना दोनोंमें समान है।

इस समाधिको प्राप्त कर लेने पर ऋतम्भरा-प्रज्ञा लाभ होती है, अर्थात् पूर्वोक्त इस समाधिसे चित्तका नैर्मल्य होने पर जो ज्ञान होता है, उसको ऋतम्भराप्रज्ञा कहते हैं। यह संज्ञा अनुगतार्थक अर्थात् यौगिक है। क्योंकि उक्त प्रज्ञा केवल सत्यको ही धारण अर्थात् विषय करती है, इसमें मिथ्याका लेशमात्र भी नहीं रहता। शास्त्रमें लिखा है, कि श्रवण, मनन और निदिध्यासन इन तीन तरहकी समाधिका अनुष्ठान करनेसे उत्तम योगफल लाभ होता है।

समाधिप्रज्ञा लाभ करने पर योगियोंके प्रज्ञाकृत नये नये संस्कार उत्पन्न होने लगते हैं। इस समाधिसे उत्पन्न संस्कार व्युत्थान संस्कारका नाशक होता है। व्युत्थान संस्कारका अभिभव होने पर उससे फिर ज्ञान उत्पन्न नहीं होता। संस्कार रहने पर ही ज्ञान होता है।

ज्ञान या संस्कार या सुख दुःख आदि किसी भी एक धर्मके आरोप होनेसे ही पुरुषका बन्धन होता है। पुरुषके स्वरूपमें अवस्थितिको ही मुक्ति कहते हैं। समाधि-

अन्य संस्कार चिरकाल रहनेसे पुरुषकी मुक्ति नहीं होती। इसीसे भाष्यकारने कहा है, "न ते चित्तमधिकारविशिष्ट दुर्गति" जिसका धर्म ही पुरुषमें आरोप होता है। उसके चित्तमें प्रतिबिम्ब नहीं पड़ता। चित्त स्थिर और वृत्तिविहीन होने पर अपने होसे पुरुष स्थिर हो सकता है।

सम्प्रज्ञात समाधिका उत्तर योगीका और भी कुछ होता है। निरुद्ध समाधि केवल सबीज सम्प्रज्ञात समाधि प्रज्ञाका विरोधी होता है, ऐसा नहीं, प्रज्ञाकृत संस्कार समुदायका विनाशक होता है। निरोधके स्थिति काल क्रमके अर्थात् दिन मासादिके अनुभवके अनुसार इतना समय मैं समाहित था समाधि भङ्गके बाद योगीको ऐसा ही स्मरण होता है, इसके अनुसार निरोधकालमें चित्तमें संस्कार हुआ इसका अनुमान किया जाता है। व्युत्थान और इसकी निरोध सम्प्रज्ञात समाधि इन दोनों से उत्पन्न संस्कार और कैवल्यभागी निरोध संस्कारके साथ चित्त अपनी प्रकृतिमें अर्थात् अपने कारणमें लय होता है। अतएव उक्त सभी संस्कार चित्तके अधिकारका विरोधी होता है अर्थात् विनाशका भी कारण होता है, स्थितिका कारण नहीं होता। क्योंकि चित्त अधिकारका अवसान होने पर कैवल्य प्रयोजक निरोध संस्कारके साथ निवृत्त होता है, चित्त विनष्ट होने पर पुरुष स्वरूपमें अवस्थान करता है इसीलिये वह उस समय शुद्ध है अतएव मुक्त कहा जाता है।

योगका पहला अवस्था संप्रज्ञात समाधि है, इससे व्युत्थान वृत्तिका निरोधन होता है। समाधि संस्कारसे व्युत्थान संस्कार विनष्ट होता है, संस्कारके सिवा संस्कारका नाशक नहीं होता। संप्रज्ञात समाधि असंप्रज्ञात समाधि द्वारा विनष्ट होता है। संप्रज्ञात समाधि संस्कारके विनाशके लिये असंप्रज्ञात समाधि संस्कार स्वीकार करना पड़ता है। वर्त्तमान अवस्थामें आत्मज्ञान लाभको चेष्टा रहता है। किन्तु एक बार आत्मदर्शन होनेसे फिर वैसे ज्ञानकी भी इच्छा नहीं होती। यही परवैराग्य है।

ज्ञानाग्निके प्रभावसे अविद्यादि सभी क्लेश जैसे दग्धबीजसमान अर्थात् भुने धानकी तरह प्ररोह अर्थात् अङ्कुरजननयोग्य नहीं होता, सब पूर्व संस्कार भी उसी तरह ज्ञानाग्निमें दग्ध हो फिर व्युत्थान ज्ञानका जनक नहीं हो सकता। सब ज्ञानसंस्कार चित्तकी अधिकार समाप्ति पर्यन्त तक अपेक्षा करते हैं अर्थात् अपने अधिकारके अन्त होने पर चित्त विनाशके साथ ही नष्ट हो जाते हैं, आश्रय नाशसे विनष्ट हो जाते हैं। तब असम्प्रज्ञात समाधि होती है। इस समाधिका अन्तिम धर्ममेघ समाधि है।

जिस समय तत्त्वज्ञानी प्रसंख्यानमें भी अर्थात् विवेक साक्षात्कारसे भी अकुसीद अनुरागविहीन होता है किसी तरहके अणिमादि ऐश्वर्यकी कामना नहीं करता और पर विवेकज्ञानसे भी विरक्त होता है, उस समय उसके सर्वदा केवल विवेकज्ञान ही उत्पन्न होता है। संस्कारके बीज अविद्यादि विनष्ट हो जाने से फिर दूसरा तरह प्रत्यय (व्युत्थान ज्ञान) उत्पन्न नहीं हो सकता इस समय योगीको धर्ममेघ समाधि होती है। यही समाधिका अन्त है।

समाधि दो तरहकी है,—सविकल्प और निर्विकल्प। ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय इन तीन विकल्पोंके ज्ञान होने पर भी अद्वितीय ब्रह्म वस्तुमें अखण्डाकारमें आकारित चित्त वृत्तिके अवस्थानको सविकल्प समाधि कहते हैं। उस समय जैसे मृण्मय हस्तीमें हस्तिज्ञान रहने पर भी मिट्टीका ज्ञान रहता है, वैसे ही द्वैत ज्ञान होने पर भी अद्वैतज्ञान होता है। तब द्वैतज्ञान रहने पर भी इस ज्ञानमें साक्षिस्वरूप नित्यात्मा, उत्कृष्ट प्रकाशस्वरूप, जन्म और नाशरहित, अलिप्त, सर्वगत सर्वदा विमुक्त स्वभाव जो अद्वितीय चैतन्य है वही मैं हूं यही ज्ञान स्मरण करता है। द्वैतमें जो अद्वैत ज्ञान है वही सविकल्प समाधि है।

जब ज्ञाता ज्ञान और ज्ञेय इन तीन विकल्प ज्ञानके अभावसे अद्वितीय ब्रह्म वस्तुमें एकीभूत हो कर अखण्डाकाराकारित चित्तवृत्तिका अवस्थान होता है तब निर्विकल्प समाधि होती है। इस समाधिके होने पर ज्ञाता ज्ञान और ज्ञेय इनमें किसी तरहका ज्ञान नहीं रहता केवल एक अद्वितीय अद्वैत ब्रह्मका ही ज्ञान रहता है। उस समय जैसे जलमिश्रित जलाकाराकारित

लवण (नमक) के लवणत्व ज्ञानके अभावमें केवल जलमात्रका ज्ञान रहता है, वैसे ही अद्वितीय ब्रह्माकारा-कारितचित्तवृत्तिके ज्ञानाभावमें भी अद्वितीय ब्रह्मवस्तु मात्रमें ही ज्ञान होता है।

समाधि सुषुप्तिकी तरह है अर्थात् सुषुप्तिके समयमें जैसे कोई ज्ञान नहीं रहता, समाधिकालमें भी वैसे ही बहिर्ज्ञान नहीं रहता केवल ब्रह्मरूपमें अवस्थान रहता है। ऐसा कहनेका यह अर्थ नहीं, कि सुषुप्ति और समाधि एक ही रूप है। दोनोंमें फर्क यह है, कि समाधि और सुषुप्ति दोनों समयमें वृत्तिज्ञानका असत्तांश समान होने पर भी वृत्तिकी सत्ता और असत्ता द्वारा दोनोंकी भिन्नता स्थिर करनी होगी। सुषुप्तिकालमें वृत्तिकी सत्ता रहती है, समाधिमें वृत्तिकी सत्ताका लोप होता है।

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और सविकल्प समाधि ही निर्विकल्प समाधिके अङ्ग हैं। समाधिलाभ करनेमें पहले इन सब अङ्गोंका अभ्यास करना होता है। इन सब अङ्गोंका सम्यक् अनुष्ठान करने पर पीछे निर्विकल्प समाधि प्राप्त होती है। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रहको यम कहते हैं। यम समाधिका पहला अङ्ग है। अहिंसा आदिका ही पहले विशेष रूपसे अनुष्ठान करना होता है। इसके अनुष्ठानमें चित्त विशुद्ध होने पर नियमका अभ्यास करना चाहिये। शुचि, सन्तोष, तपस्या, अध्ययन और ईश्वरप्रणिधानको नियम कहते हैं। इस नियमके बाद आसन (हस्तपदादिके संस्थानविशेषको आसन कहते हैं) जैसे पद्मासन आदि। तब आसन पर बैठ कर प्राणायाम करना होता है। रेचक, पूरक और कुम्भक द्वारा प्राण दमन करनेके उपायको प्राणायाम कहते हैं। इस प्राणायामके अनुष्ठानसे प्राणका निरोध होता है। इसके फलसे इन्द्रिय विजय, चित्तशुद्धि और चित्तके सब विक्षेप दूर हो जाते हैं। इस प्राणायामके अभ्यास कर लेने पर प्रत्याहार अभ्यास करना होता है। इन्द्रियोंके अपने अपने विषयसे खींचनेको ही प्रत्याहार कहते हैं। इससे फिर इन्द्रिया विषय न करेंगी। चक्षु देख कर भी देखेगा नहीं, कान सुन कर भी न सुनेगा, मन मनन कर कुछ भी न करेगा। इस तरह जब प्रत्याहार अभ्यस्त हो जायेगा, तब धारणा होगी—अद्वितीय ब्रह्मवस्तुमें अन्तःकरणके अभिनिवेशको धारणा कहते हैं। अद्वितीय ब्रह्ममें चित्त अभिनिविष्ट होनेके बाद ध्यानका अभ्यास करना चाहिये। अद्वितीय ब्रह्ममें अन्तःकरणके वृत्तिप्रवाहको ध्यान कहते हैं। यह ध्यान स्थायी होनेसे पहले सविकल्प समाधि होती है।

ये सब अङ्गविशिष्ट अङ्गी जो निर्विकल्प समाधि है, उसमें चार प्रकारके विघ्न होनेकी सम्भावना है। उक्त समाधिमें प्रायः चार प्रकारका ही विघ्न उपस्थित होता है। यथा,—लय, विक्षेप, कषाय और रसास्वादन। अखण्डब्रह्मवस्तुको अवलम्बन करनेमें असमर्थ होनेसे अन्तःकरणवृत्तिकी निद्राको लय कहते हैं। अखण्ड ब्रह्मवस्तुको अवलम्बन करनेमें समर्थ न हो कर अन्तःकरण वृत्ति यदि अन्य किसी वस्तुका अवलम्बन करे, तो उसे विक्षेप कहते हैं। लय और विक्षेपके अभावमें और कामना द्वारा अन्तःकरण शुद्ध हो अखण्ड ब्रह्मवस्तुको अवलम्बन करनेमें असमर्थ होने पर कषाय कहा जाता है। निर्विकल्प अखण्ड ब्रह्मवस्तुके अवलम्बनसे अन्तःकरण वृत्तिका सविकल्पक आनन्द आस्वादन या निर्विकल्पक समाधिके आरंभकालीन सविकल्पानन्द आस्वादनको रसास्वादन कहते हैं। ये चार प्रकारके विघ्न निर्विकल्प-समाधिके अन्तराय स्वरूप हैं।

इन चारों विघ्नोंसे रहित चित्त जब वायुशून्य प्रदीप की तरह अचल हो कर केवल अखण्ड चैतन्य मात्रकी चिन्तापर होता है, तब उसको निर्विकल्प समाधि कहते हैं। जब यह समाधि होगी, तब यदि पूर्वोक्त लयरूप विघ्न उपस्थित हो, तो अन्तःकरणमें उद्बोध करे, विक्षेप-युक्त हो, तो उसे शान्ति और कषाययुक्त हो, तो उसको जान कर निवृत्त रखे। अखण्ड ब्रह्मवस्तुमें प्रणिधान होने पर अन्तःकरणको फिर हिलावे डोलावे नहीं। उसीमें स्थिर रखे, उस समय सविकल्प किसी तरह आनन्द आस्वादन करे और प्रज्ञा द्वारा निःसङ्ग हो, तब निर्वात निष्कम्प प्रदीपकी तरह निश्चय हो अवस्थान करे।

यही समाधिका अन्त है। यह समाधि होने पर मुक्ति

होती है। उस व्यक्तिका और कभी पतन नहीं होता है, उस समय वह जोवन्मुक्त हो अवस्थान करता है। पञ्च दशी, वेदान्तदर्शन प्रभृति ग्रन्थोंमें इसका विशेष विवरण लिखा है। विषय बढ़ जानेके भयसे यहां स्थान न दिया गया।

२२ वैश्यभेद, समाधि नामक वैश्य। मार्कण्डेयपुराणान्तगत खण्डमें इसका विवरण लिखा है। राजा सुरथ राज्यच्युत हो मेधस मुनिके आश्रममें गये। समाधि वैश्य भी उसी समय वहां गया। राजाने उसे शोककातर देख कर पूछा, कि तुम्हारा क्या नाम है? तुम अत्यन्त कातर क्यों हो रहे हो? इन प्रश्नोंके उत्तरमें समाधि वैश्यने कहा था—मैंने धनाढ्य कुलमें जन्म लिया है और मेरा नाम समाधि वैश्य है। असाधु स्त्री पुत्रोंने मुझे धनलोभसे निकाल दिया है। मेरा धन उन सबोंने छीन लिया है। उन सबोंके मेरे प्रति इस तरह प्रतिकूलाचरण करने पर भी उनके प्रति मेरा चित्त ममता शून्य नहीं होता। उनका कुशलवार्त्ताके लिये चित्त व्याकुल हो रहा है। मेधस मुनिने कहा, कि यह महामायाका कार्य है। इसके बाद उन्होंने महामायाका माहात्म्य कहा। उस समय समाधि वैश्य को निर्वेद उपस्थित हुआ। समाधि वैश्य और राजा सुरथ दोनों नदीके किनारे गये और वहां देवीकी मिट्टीकी मूर्त्ति निर्माण कर देवीसूक्त जप करते हुए देवीकी पूजामें प्रवृत्त हुए। इस तरह उन्होंने विधि विधानके साथ तीन वर्ष तक देवीकी आराधना की। देवी चण्डिकाने प्रसन्न हो कर उनको वर दिया। राजाको देवीके प्रसादसे राज्य मिल गया। समाधि वैश्यने इतोम यह वर मांगा था कि यह संसार अनित्य है सभी मायाके जालमें फंसे हुए हैं मुझे ऐसा वर दीजिये जिससे मैं मायाके जाल फांससे बच कर ज्ञान प्राप्त कर सकूं। देवीने 'तथास्तु' कहा। समाधि वैश्य अन्त समयमें हो देवीकी कृपासे दिव्य ज्ञान प्राप्त कर मायाके जाल फांससे मुक्त हुए। (मार्कण्डेयपु० चण्डो)

सुरथ शब्दमें विशेष विवरण देखो।

२३ मृत शवदेह या अस्थिको मिट्टीमें गाड़ना कब्र देना। भिन्न भिन्न देशोंमें भिन्न भिन्न जातिके विभिन्न समाजमें यह समाधिप्रथा स्वतन्त्र है। पाश्चात्य जगत्‌में शवप्रोथित कर उस पर एक स्तम्भ (Tomb-stone) निर्माण करनेकी व्यवस्था है। इस स्तम्भमें मृतककी स्मृतिके लिये एक लिपि (Epitaph) खोदी जाती है। प्राच्य और प्रतीच्य जगत्‌की आदि असभ्य जातियोंमें भी इसका प्रथा था उसका नमूना आज भी बहुत विद्यमान है। हमारे देशमें वैष्णव और शैव संन्यासियोंमें समाधि देनेकी विधि है। श्रीवृन्दावनधाममें बहुतेरे वैष्णवोंकी समाधि दिखाई देती है।

समाधिक्षेत्र (सं० क्ली०) समाधिस्थान, वह जगह जहां लाश गाड़ी जाती है कब्रिस्तान। योगियोंकी लाशको न जला कर गाड़ देनेका हो नियम है।

समाधिगर्भ (सं० पु०) बोधिसत्त्वभेद।

समाधित (सं० त्रि०) १ समाधियुक्त जिसने समाधि लगाई हो। २ बन्धुत्व सम्बन्धयुक्त, जिसके साथ मित्रता की गई हो।

समाधित्व (सं० क्लो०) समाधेर्भाव त्व। समाधिका भाव या धर्म।

समाधित्सु (सं० त्रि०) समाधातुमिच्छु, सम्‌-आ-धा-सन्‌ उ। समाधान करनेमें इच्छुक।

समाधिदशा (सं० स्त्री०) वह दशा जब योगी समाधिमें स्थित होता है और परमात्माके प्रेममें बद्ध हो कर निमग्न और तन्मय होता है और अपने आपको भूल कर चारों ओर ब्रह्म ही ब्रह्म देखता है।

समाधिमत्‌ (सं० त्रि०) समाधि अस्त्यर्थे मतुप्‌। १ समाधिविशिष्ट, समाधियुक्त। २ मनोयोगी।

समाधिमतिका (सं० स्त्री०) १ मार्कण्डेयपुराणवर्णित पुरस्त्रीभेद। २ एकाग्रमना, एकान्त मनोयोगी। समाधि मती पद भी होता है।

समाधियाला—बम्बई प्रदेशके काठियावाड़ जिलान्तर्गत गोहेलवाड़ प्रान्तका एक सामन्त राज्य। यहांके सरदार जुनागढ़के नवाब और बड़ौदाके गायकवाड़को कर देते हैं।

समाधियाला चारण—बम्बई प्रदेशके गोहेलवाड़ प्रान्तका एक सामन्त राज्य।

समाधियाला-छमारिया—बम्बई प्रदेशके गोहेलवाड़ प्रान्त

का एक सामन्त राज्य। समाधियाला छमाविया प्रान्तमें सामन्तराज रहते हैं। यहांके सरदार बड़ौदाके गायकवाड़को वार्षिक १८६१ रु० और जूनागढ़के नवाबको ३८६ रु० कर देते हैं।

समाधिविधि (सं० पु०) चित्तागना समाधानपूर्वक भगवदाराधनामें आत्मनियोगके नियमादि।

समाधिसमानता (सं० स्त्री०) बौद्धमतानुसार ध्यानका एक भेद।

समाधिस्तम्भ (सं० पु०) समाधिके ऊपर बनाया हुआ स्तंभ। लाशको जमीनमें गाड़ कर उसके ऊपर जो स्तम्भ खड़ा किया जाता है, उसे समाधिस्तंभ कहते हैं।

समाधिस्थ (सं० त्रि०) समाधेः तिष्ठतीति स्था-क। जो समाधिमें स्थित हो, जो समाधि लगाए हुए हो।
समाधि देखो।

समाधिस्थल (सं० क्ली०) १ समाधिस्थान, समाधि क्षेत्र। २ ब्राह्मजगत्‌का पवित्र स्थानभेद।

समाधेय (सं० त्रि०) सम्-आ-धा-यत्। समाधानके योग्य, समाधानके लायक, जिसका समाधान हो सके।

समाध्मात (सं० त्रि०) सम्-आ-ध्मा-क्त। १ समाक् शब्दित। २ गर्वित। ३ समुद्दीपित। ४ उत्साहित।

समान (सं० त्रि०) समानीति सम्यक् प्रकारेण प्राणितीति सम्-आ-अन्-ल्यु, यद्वा समानं मानमस्य समानस्य छन्दसीति सः। १ सत्। २ सम, बराबर। ३ एकरूप, अभिन्न।

मानेन सह वर्त्तमानं। ४ सगर्व, अहङ्कारके साथ। (पु०) समन्नयतीत्यानयतीति सम् अन घञ्। ५ शरीरस्थ वायुविशेष, समानवायु, पञ्च प्राणके अन्तर्गत तृतीय प्राण। प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान यही पांच प्राण हैं। यह वायु नाभिदेशमें अवस्थित है। प्राण देखो। ६ वर्णभेद, एकस्थानोच्चार्यमान वर्ण। जो वर्ण एक स्थानसे उच्चारित होते हैं उन्हें समानवर्ण कहते हैं।

समानकरण (सं० त्रि०) १ टेढ़ेको सीधा करना, एक जातिको दो वस्तुओंको समान आकारसे लाना। २ शिथिलशिश्नका संयमननिरास।

समानकर्त्तृक (सं० त्रि०) समानः कर्त्ता यस्य। समानकर्त्तायुक्त, तुल्य कर्त्ताविशिष्ट, एककर्त्तृक।

समानकर्मन् (सं० त्रि०) समानं कर्म यस्य। १ समान कर्मविशिष्ट, एक ही तरहका व्यवसाय या कार्य्य करनेवाले। (क्ली०) २ समान समान कार्य्य, तुल्य कर्म।

समानकारण (सं० त्रि०) समानं कारणं यस्य। तुल्य कारणविशिष्ट, समानकारणयुक्त। (क्ली०) २ तुल्य कारण, समान हेतु।

समानकाल (सं० त्रि०) समानः कालो यस्य। १ समानकालविशिष्ट, तुल्य समययुक्त। (पु०) २ तुल्यकाल, समान समय।

समानकालिक (सं० त्रि०) तुल्यकालिक, समानकालोत्पन्न।

समानकालीन (सं० त्रि०) समानकाले भवः, समानकाल-ख। समकालीन, वे जो एक ही समयमें उत्पन्न हुए या अवस्थित रहे हों।

समानगति (सं० त्रि०) समाना गतिर्यस्य। १ तुल्यगतिविशिष्ट, समान चालवाला। (स्त्री०) २ समानगति, तुल्य गमन।

समानगुण (सं० त्रि०) समानगुणविशिष्ट, तुल्यगुणयुक्त।

समानगोत्र (सं० त्रि०) समानं गोत्रं यस्य। तुल्यगोत्र, जो एक ही गोत्रमें उत्पन्न हुए हों।

समानग्राम (सं० पु०) एक ग्राम।

समानग्रामीय (सं० त्रि०) समानग्रामे भवः (गहादिभ्यश्च। पा ४।२।१३८) इति छ। एक ग्रामके रहनेवाले।

समानजन (सं० पु०) तुल्य जन, समानलोक।

समानजन्मन् (सं० त्रि०) समानवयस्क, एक उमरका, जो अवस्था या उम्रमें बराबर हों।

समानजन्य (सं० त्रि०) समानजन सम्बन्धीय।

समानजाति (सं० त्रि०) तुल्यजाति, एक जात, समान वर्ण।

समानजातीय (सं० त्रि०) तुल्यजातीय, सजातीय।

समानतन्त्र (सं० क्ली०) १ एकव्यवसायी हम-पेशा, वे जो वेदकी किसी एक ही शाखाका अध्ययन करते हों और उसीके अनुसार यज्ञ आदि कर्म करते हों।

समानतस् (सं० अव्य०) समान तसिल्। समानरूपमें, समानभावमें।

समानता (सं० स्त्री०) समानस्य भाव तल् टाप्। समानत्व, तुल्यत्व, समानका भाव या धर्म।

समानत्र (सं० अव्य०) एकस्थानस्थायी, एक जगह रहनेवाला। (शतपथब्रा० ३।५।४।१४)

समानत्व (सं० क्ली०) तुल्यरूपता, समान होनेका भाव।

समानदक्ष (सं० त्रि०) समानोत्साह, समान उत्साहवाला।

समानधर्मन् (सं० त्रि०) १ एकरूप धर्मविशिष्ट। २ सधर्मन्।

समानन (सं० त्रि०) सम आननो यस्य। तद्वत् आनन विशिष्ट, एक सा मुंहवाला।

समाननामन् (सं० त्रि०) समानं नाम यस्य। जिनका नाम एकसे हो हो, एक ही नामवाले।

समानप्रभृति (सं० त्रि०) सप्रभृति, ये सब।

समानबन्धु (सं० त्रि०) तुल्यरूप एक बन्धुविशिष्ट, समान बंधनयुक्त। (ऋक् १।११३।२)

समानबर्हिस् (सं० त्रि०) यज्ञीय होमाग्निविशिष्ट समान लक्ष्मी हविर्दानकालीन अग्नि।

समानब्रह्मचारिन् (सं० त्रि०) परस्पर एक ब्रह्मचारी सत थ एक प्रकारके ब्रह्मचर्यवाले। सब्रह्मचारिन् देखो।

समानमूर्द्धन् (सं० त्रि०) समानो मूर्द्धा यस्य (समानस्य छन्दस्यमूर्द्धप्रभृत्युदर्केषु। पा ६।३।८४) इति समानस्य सादेशो भवति। समानमूर्द्धायुक्त, समानमूर्द्धाविशिष्ट।

समानयन (सं० क्ली०) सम् आ-नी-ल्युट्। सम्यक् प्रकारसे आनयन आदरपूर्वक आनेकी क्रिया।

समानयोजन (सं० त्रि०) तुल्य योजन।

समानयोनि (सं० पु०) वे जो एक ही योनि या स्थानसे उत्पन्न हुए हों।

समानरुचि (सं० त्रि०) तुल्य रुचिविशिष्ट, समान रुचि वाला।

समानरूप (सं० त्रि०) तुल्यरूपयुक्त समान शक्ल या आकारवाला।

समानर्षि (सं० त्रि०) जो एक ही ऋषिके गोत्र या वंश में उत्पन्न हुए हों। (गभिल १।८।१)

समानलोक (सं० त्रि०) तुल्य लोक, एकलोक।

समानवचन (सं० त्रि०) सवचन, समानवाक्यविशिष्ट।

समानवयस (सं० त्रि०) समानं वयो यस्य। १ तुल्य वयस्क, समान उम्रवाला। (पु०) २ तुल्यका वयस समान उमर।

समानवर्चस् (सं० त्रि०) तुल्यदीप्तियुक्त, समान ज्योतिवाला। (ऋक् १।६।७)

समानवर्चास् (सं० त्रि०) तुल्य दीप्तिशाली, एक-सा चमकनेवाला।

समानवर्ण (सं० त्रि०) सवर्ण समानवर्णविशिष्ट, एक सा वर्णवाला।

समानबल (सं० त्रि०) १ तुल्य बलविशिष्ट, समान ताकतवाला। (पु०) २ किसी शुद्ध बिन्दुके ऊपर विपरीत ओरसे बलप्रयुक्त होने पर यदि वह बिन्दु किसी ओर न जा कर स्थिर हो कर रहे, तो दोनों बलको समबल कहते हैं। (Equal Forc)

समानशब्द (सं० त्रि०) तुल्य शब्द, समान शब्दवाला।

समानशय्य (सं० त्रि०) १ एक शय्या पर सोनेवाला। २ जिनकी शयनार्थ शय्या एक हो। कात्यायनमें (८।१।२) समानशय्यता पद है।

समानशाख (सं० त्रि०) समशाखायुक्त, जो एक शाखा ध्यायी हो।

समानशील (सं० त्रि०) तुल्यस्वभाव, समान स्वभाव वाला। (भाग० ३।२१।१५)

समानसंख्य (सं० त्रि०) समानसंख्याविशिष्ट, जिसमें बराबर अंक हो।

समान सुखदुःख (सं० त्रि०) समानानि सुखदुःखानि यस्य। जिसके लिये सुख और दुःख दोनों ही समान हों।

समानस्थान (सं० क्ली०) वह स्थान जहां दिन रात दोनों बराबर होते हैं।

समानाक्षर (सं० क्लो०) स्वरवर्ण, जो सन्ध्यक्षर या ऋकारपर नहीं है।

समानाधिकरण (सं० क्ली०) व्याकरणमें वह शब्द या वाक्यांश जो वाक्यमें किसी समानार्थी शब्दका अर्थ स्पष्ट करनेके लिये आता है।

समानार्थ (सं० पु०) तुल्यार्थ, समान अर्थवाला, पर्याय।

समानीत (सं० त्रि०) सम् आ-नी क्त। १ सम्यक्

प्रकारसे आनीत, आदर या यत्नपूर्वक लाया हुआ। २ सङ्गत, मिला हुआ।

समानार्षेय (सं० पु०) एक ऋषिके गोत्रमें उत्पन्न।

समानाल (सं० पु०) नागभेद।

समानान्ययप्रयत्न (सं० त्रि०) शिश्नोत्था प्रयास।

समानिका (सं० स्त्री०) छन्दोभेद।

समानुपात (सं० पु०) दो अथवा बहुत-से अनुपातका समानत्व संबंध। (*Proportion*)

समानोदक (सं० पु०) समानं एकं तर्पणकाले देयं उदकं यस्य। एकोदक, ज्ञातिविशेष, जिनको ग्यारहवीं से चौदहवीं पीढ़ी तकके पूर्वज एक हों। समानोदक ज्ञातिके जनन मरणमें पक्षिणी अशौच होता है। जन्म-नामस्मृति पर्यन्त ज्ञातिको भी समानोदक कहते हैं।

समानोदर्य (सं० पु०) समाने उदरे शयितः (समानोदरे शयित ओ चोदात्तः। पा ४।४।१०८) इति यत्। (विभाषोदरे। पा ६।३।८८) इति पक्षे सादेशो। सहोदर। पक्षमें समान शब्दकी जगह सादेश हो कर सौदर्य्य पद बनता है।

समानोदर्या (सं० स्त्री०) सहोदरा, सगी बहन।

समानोपमा (सं० स्त्री०) उपमालङ्कारभेद।

जहां स्वरूप शब्द वाच्य अर्थात् सरूप श्लिष्टपद द्वारा साधारण धर्मका वर्णन होता है, वहां यह अलङ्कार होगा। समान शब्द इस प्रकार प्रयुक्त होगा, कि वह यदि वाक्यभेदसे श्लिष्ट हो एक शब्दकी तरह प्रतीत हो, तो वहां यह अलङ्कार होगा।

यह उपमा श्लिष्ट पद द्वारा होता है, अतएव इसे समानोपमा न कह कर श्लिष्टोपमा कहना चाहिये था, परन्तु इन दोनो उपमामें भेद यह है, कि जहां अर्थश्लेष हो कर उपमा होगी, वहीं श्लेषोपमा और जहां शब्द-श्लेष हो कर उपमा होगी, वहां समानोपमा अलङ्कार होगा। (काव्यादर्श)

समान्तक (सं० पु०) कामदेव।

समान्तर (सं० त्रि०) परस्पर समान या एक रूप।

समान्तरश्रेणी (सं० स्त्री०) वह राशि जो अपनी अपनी परवर्त्ती राशिकी अपेक्षा समान परिमाणमें गुरु या समान परिमाणमें लघु होती है।

समान्तराल—जो दो सरल रेखा बहुत दूर तक जा कर भी एक दूसरीसे न मिले।

समाप (सं० पु०) समा-आपो-यस्मिन्, ऋक्पूरित्यः (समापईत्वं प्रतिषेधो वक्तव्यः। पा ६।३।९७) इत्यस्य वार्त्तिकोक्तत्या इत्वप्रतिषेधः। देवयजन स्थान।

समापक (सं० त्रि०) समापयति सम् आप् ण्वुल्। समापनकर्त्ता, समाप्त करनेवाला।

समापत्ति (सं० स्त्री०) सम् आ पद-क्तिन्। यदृच्छा-सङ्गति, एक हा समयमें एक ही स्थान पर उपस्थित होना, मिलना।

समापन (सं० क्ली०) सम् आप-ल्युट्। १ परिच्छेद, समाप्ति। २ वध, मार डालना। ३ समाधान। (त्रि०) ४ लब्ध, पाया हुआ।

समापनीय (सं० त्रि०) सम् आप् अनीयर्। १ समापनके योग्य, खतम करनेके लायक। २ वध करनेके योग्य, मार डालनेके लायक।

समापन्न (सं० पु०) सम्-आ-पद-क्त। १ वध, हत्या करना, मार डालना। (त्रि०) २ समाप्त किया हुआ, खतम किया हुआ। ३ क्लिष्ट, कठिन।

समापाद्य (सं० त्रि०) समापत्ति, सन्निकट, सङ्गति।

समापिका (सं० स्त्री०) व्याकरणमें दो प्रकारकी क्रियाओं मेंसे एक प्रकारकी क्रिया जिससे किसी कार्यका समाप्त हो जाना सूचित होता है। जैसे—वह परसों यहांसे चला गया। इस वाक्यमें चला गया समापिका क्रिया है। जहां वाक्यका शेष नहीं होता, आकांक्षा रह जाती है, उसे असमापिका क्रिया कहते हैं। जैसे—जा कर खा कर, भोजन कर इत्यादि असमापिका क्रिया है।

समापित (सं० त्रि०) सम् आप् णिच् क्त। कृत समापन, खतम या पूरा किया हुआ।

समापिन् (सं० त्रि०) सम् आप्-णिनि। समापनकारी, खतम करनेवाला।

समापिपयिषु (सं० त्रि०) समापयितुमिच्छुः सम् आप् सन् उ। समाप्त करनेमें इच्छुक शेष करनेमें अभिलाषी।

समाप्त (सं० त्रि०) सम्-आप् क्त। जिसका अन्त हो गया हो, जो खतम या पूरा हो गया हो।

समाप्तपुनरात्तता (सं० स्त्री०) काव्योक्त दोषभेद। जहां वाक्य समाप्त करके पीछे फिरसे उस वाक्यका ग्रहण होता है, वहां यह दोष हुआ करता है।

समातङ्गम (स० क्ली०) उच्च सख्यामेद ।

समाताल (स० पु०) समाताव अततीति अल् अच् । गति, स्वामी ।

समाप्ति (स० स्त्री०) सम् आप् क्तिन् । १ अवसान, खतम या पूरा होना । २ प्राप्त होने या मिलनेका भाव, प्राप्ति ।

समाप्तिक (स० त्रि०) १ समापनकारी खतम करनेवाला । २ जो वेदों का अध्ययन समाप्त कर चुका हो ।

समाप्त्वया (स० स्त्री०) समाप्त्वा वर्षा यस्याः । समस्या ।

समाप्य (स० त्रि०) सम् आप् ण्यत् । समापनीय, खतम या पूरा करने लायक ।

समाप्रिय (स० त्रि०) सम्यक् प्रिय, अत्यन्त प्यारा ।

समाप्लव (स० पु०) स्नान, अवगाहन ।

समाप्लाव (स० पु०) सम् आ प्लु घञ् । सम्यक्रूपसे आप्लावन, अवगाहन ।

समाभाषण (स० क्ली०) सम् आ भाष ल्युट् । सम्यक् रूपसे आभाषण ।

समाम (स० पु०) दैर्घ्य, उम्बाई । समाम्य देखो ।

समाम्नान (स० क्ली०) १ उक्ति । २ अध्ययन ।

समाम्नाय (स० पु०) सम् आ म्ना य । १ शास्त्र । २ समष्टि, समूह ।

समाम्नायमय (स० त्रि०) शास्त्रमय शास्त्रस्वरूप ।

समाम्नायिक (स० पु०) १ शास्त्रवेत्ता, वह जिसे शास्त्रों का अच्छा ज्ञान हो । (त्रि०) २ शास्त्र सम्बन्धी, शास्त्रका ।

समाम्य (स० त्रि०) दैर्घ्यादियुक्त, जिसमें लम्बाई हो ।

समाय (स० पु०) १ उपस्थिति, आगमन । २ साक्षात्कार गमन ।

समायिन् (स० त्रि०) १ परस्पर एकत्र गमनशील, एक साथ जानेवाला । २ परस्पर एकत्र प्रापणशील, एक साथ मिलनेवाला । (ऐतरेयब्रा० ६।२६)

समायोग (स० पु०) सम् आ युज घञ् । १ संयोग । २ बहुतसे लोगोंका एक साथ एकत्र होना । ३ प्रयोजन, जरूरत ।

समारम्य (स० त्रि०) सम् आ रभ यत् । समारम्भक योग्य, आरम्भ करनेके लायक ।

समारम्भ (स० पु०) १ आरम्भित कार्य । २ आरम्भ ।

समारम्भण (स० क्ली०) १ आलिङ्गन, ग्रहण । २ समालम्भन ।

समारम्भिन् (स० त्रि०) आरम्भशील ।

समाराधन (स० क्ली०) सम् आ राध ल्युट् । सम्यक् रूपसे आराधन, आराधना, सेवा ।

समारुरुक्षु (स० त्रि०) समारोढुमिच्छुः, सम आ रुह सन् उ । समारोहणाभिलाषी, सम्यक् रूपसे चढ़नेमें इच्छुक ।

समारोप (स० पु०) सम् आ रुह घञ् हस्य प । सम्यक् प्रकारसे आरोप । (साहित्यद० १०।१०२)

समारोपण (स० क्ली०) सम्यक् आरोपण, आरोप ।

आरोपण देखो ।

समारोह (स० पु०) सम् आ रुह अप् । १ आडम्बर, तड़क भड़क, धूमधाम । २ आरोहण, चढ़ना । ३ कोई ऐसा कार्य या उत्सव जिसमें बहुत धूमधाम हो । ४ सम्मत होना ।

समारोहण (स० क्ली०) सम् आ रुह ल्युट् । सम्यक् आरोहण बड़ा होशियारीसे चढ़ना ।

समार्थ (स० त्रि०) १ समान अर्थयुक्त, समान अर्थ वाला शब्द । २ पर्यायक शब्द ।

समार्थक (स० त्रि०) समोऽर्थो यस्य, कप । समान अर्थविशिष्ट समार्थ, पर्याय ।

समार्थिन् (स० त्रि०) १ शान्तिका इच्छुक । २ मनका समतासाधनप्रयासी ।

समार्बुद (स० क्ली०) अर्बुद म समातुल्य तत्पूरण, एक अरबके समान ।

समार्ष (स० त्रि०) सम्यक् रूपसे ऋषिसे आगत ।

समालक्ष्य (स० त्रि०) दर्शनयोग्य देखने लायक ।

समालम्भन (स० क्ली०) समालम्भन, आलेपन ।

समालम्ब (स० पु०) सुगन्धरोपित तृण, रूसा नामक घास ।

समालम्बिन् (स० पु०) समालम्बते इति सम् आ-लम्ब-णिनि । भूतृण ।

समालम्भ (स० पु०) सम् आ लभ घञ् । (उपसर्गात् खल्घञोः । पा ७।१।६७) इति नुम् । १ कुङ्कुमादि विलेपन शरीर पर केसर आदिका लेप करना । २ मारण, वध ।

समालम्भन (सं० क्लो०) सम्-आ-लभ-ल्युट्। १ कुङ्कुमादि विलेपन, शरीर पर केसर आदिका लेप करना। २ सम्यक् मारण, हत्या करना। ३ सम्यक् स्पर्शन, छूना।

समालम्भिन् (सं० त्रि०) सम्-आ-लभ-णिनि। १ समालंभकारी, केसर आदि लेपनेवाला। २ मारणकारी, हत्या करनेवाला।

समालाप (सं० पु०) सम्-आ-लप-घञ्। सम्यक् रूपसे आलाप, अच्छी तरह बातचीत करना।

समालिङ्गन (सं० क्लो०) सम्-आ-लिङ्ग-ल्युट्। सम्यक्-आलिङ्गन, अच्छी तरह मिलना।

समाली (सं० स्त्री०) कुसुमकार, फूलका गुच्छा।

समालोक (सं० पु०) सम्-आ-लोक-घञ्। सम्यक् आलोकन, अच्छी तरह देखना।

समालोकन (सं० क्लो०) सम्-आ-लोक-ल्युट्। सम्यक् रूपसे आलोकन, अच्छी तरह देखना।

समालोकिन् (सं० त्रि०) सम्-आ-लोक-णिनि। समालोकनकारी, द्रष्टा, देखनेवाला।

समालोक्य (सं० त्रि०) सम्-आ-लोक-यत्। समालोकनार्ह, देखने योग्य।

समालोच (सं० पु०) सम्-आ-लोच्-घञ्। सम्यक् प्रकारसे आलोचन, समालोचना।

समालोचक (सं० पु०) वह जो किसी चीजके गुण और दोष देख कर बतलाता हो, समालोचना करनेवाला।

समालोचन (सं० क्लो०) सम्-आ-लोच-ल्युट्। समालोचना, दोष गुणकी सम्यक् प्रकारसे आलोचना।

समालोचना (सं० स्त्री०) समालोचनमिति सम्-आ-लोच युच् टाप्। १ सम्यक् प्रकारसे आलोचना, अच्छी तरह देखनेकी क्रिया, खूब देखना भालना। २ किसी पदार्थके दोषों और गुणोंको अच्छी तरह देखना, यह देखना कि किस चीजमें कौनसी बातें अच्छी और कौनसी बातें खराब हैं; विशेषतः किसी पुस्तकके गुण और दोष आदि देखना। ३ वह कथन, लेख या निबन्ध आदि जिसमें इस प्रकार गुणों और दोषोंकी विवेचना हो, आलोचना।

समालोचिन् (सं० त्रि०) सम्-आ-लोच-णिनि। समालोचनाकारी, जो किसी चीजके गुण और दोष देखता हो, समालोचना करनेवाला।

समावच्छस् (सं० अव्य०) साधे और लंबे भावमें।

समावज्जामि (सं० त्रि०) तुल्यजाति, एक जातिका।

समावद्वीर्य (सं० त्रि०) तुल्यसामर्थ्य।

समावद्भाज् (सं० त्रि०) समान भागयुक्त।

समावत् (सं० त्रि०) सम्यक्रूपसे महत्, सुन्दर या श्रेष्ठ।

समावर्जन (सं० क्लो०) सम्-आ-वर्ज-ल्युट्। सम्यक्-रूपसे आवर्जन।

समावर्त्त (सं० पु०) १ वापस आना, लौटना। २ समावर्त्तन देखो।

समावर्त्तन (सं० क्लो०) सम्-आ-वृत-ल्युट्। वेदाध्ययनके बाद गार्हस्थाधिकार-प्रयोजक कर्म। उपनयन संस्कारके बाद गुरुगृहमें ब्रह्मचर्य अवलम्बन कर वेदाध्ययन करना होता है। वेदाध्ययन समाप्त होने पर गुरुकी अनुमति ले समावर्त्तन करना होगा। विद्याशिक्षा कर गुरुके घरसे अपने घर लौट आनेका नाम ही समावर्त्तन है। इस उपलक्षमें जो होमादि कार्य किये जाते हैं, उसको भी समावर्त्तन कहते हैं। मनुमें लिखा है, कि ब्रह्मचारी उपनयन संस्कारके बाद छत्तीस वर्ष तीन वेद अध्ययनके लिये ब्रह्मचर्याश्रमविहित धर्मका आचरण करें अथवा उसका अर्द्धकाल या चतुर्थांश काल अथवा जब तक तीनों वेद समाप्त न हो जाय, तब तक उसे गुरुगृहमें ही रहना होगा। तीन वेद, दो वेद, अथवा एक वेद शाखादिके साथ यथाक्रम अध्ययन कर विद्यालाभ हो जाने पर गार्हस्थ आश्रम अवलंबन करनेके लिये गुरुगृहसे समावर्त्तन करना होता है। ब्रह्मचारी समावर्त्तनके पहले गुरुको कुछ भी धन और गुरुदक्षिणा न दें। जब वे समावर्त्तन स्नान करें, तब उन्हें यथाशक्ति दक्षिणा देनी होगी। समावर्त्तनके बाद विवाह कर गार्हस्थाश्रम अवलंबन करना होता है। (मनु ३।४)

विद्याशिक्षाके बाद जिस किसी दिन समावर्त्तन नहीं होता। ज्योतिषोक्त शुभ दिन देख कर यह करना होता है। शुभ दिन ये सब हैं—शनि और मङ्गलवारको तथा उपनयनके दिन जो सब नक्षत्र कहे गये हैं, उन

सब नक्षत्रोंमें प्रशस्त, बृहस्पति, चन्द्रतारा रिक्ता आदि जिनमें साधारण शुभकार्य मात्र निषिद्ध हैं उन्हें छोड़ शुभ दिनमें, तारा और चन्द्र शुद्धिमें समावर्त्तन करे।

समावर्त्तनकी पद्धतिके अनुसार यथाविधान होम करके नूतन वस्त्र, छत्र, उपानत् माला और अलङ्कारादि धारण कर गृह जावे। समावर्त्तनके होमादिका विशेष विवरण भवदेवादिका पद्धतिमें विशेषरूपसे वर्णित है। विस्तार हो जानेके भयसे इनका उल्लेख यहां पर नहीं किया गया। साम, यजु और ऋक इन तीन वेदियों की ही पद्धति भिन्न भिन्न है। यहीं दान शब्द देखो।

समावर्त्तनीय (सं० त्रि०) सम् आ वृत अनीयर्। १ समावर्त्तनार्ह वापस लौटने योग्य। २ जो समावर्त्तन नामक संस्कार करनेके योग्य हो गया हो।

समावह (सं० त्रि०) समावह्वहनशील।

समावाय (सं० पु०) समूह। समवाय देखो।

समावास (सं० पु०) सम्यक्रूपसे अधिवास।

समाविद्ध (सं० त्रि०) सम् आ विध क्त। संघटित, जिसका संयोग या संघटन हुआ हो।

समाविष्ट (सं० त्रि०) सम् आ विश क्त। १ एकाग्र चित्त, जिसका चित्त किसी एक ओर लगा हो। २ प्रविष्ट, जिसका समावेश हुआ हो।

समावृत (सं० त्रि०) सम् आ वृ क्त। सम्यक् प्रकारसे आवृत अच्छी तरह ढका या छाया हुआ।

समावृत्त (सं० त्रि०) सम् आ वृत क्त। जो विद्या अध्ययन करके समावर्त्तन संस्कारके उपरान्त घर लौट आया हो।

समावृत्तक (सं० पु०) समावृत्त एव स्वार्थे कन्। समावृत्त।

समावृत्ति (सं० स्त्री०) सम् आ वृत् क्तिन्। समावर्त्तन। समावर्त्तन देखो।

समावेश (सं० पु०) सम् आ विश् घञ्। १ एक साथ या एक जगह रहना। २ एक पदार्थका दूसरे पदार्थके अन्तर्गत होना। ३ मनोयोग चित्तका किसी एक ओर लगाना। ४ एकत्र स्थापन एक साथ रखना।

समावेशित (सं० त्रि०) समावेश अस्त्यर्थे तारकादित्वात् इतच्। समाविष्ट देखो।

समाश (सं० पु०) सम्यक् भक्षण, अच्छी तरह खाना।

समाशङ्कित (सं० त्रि०) १ सम्यक् भीत, खूब डरा हुआ। २ सम्यक् सन्दिग्ध, खूब सशंकी।

समाशिर् (सं० त्रि०) सम्यक् आशिर्युक्त (सोम)।

समाश्रय (सं० पु०) सम् आ श्रि अच्। १ सम्यगाश्रय, आश्रय, अवलम्बन, रक्षा। २ सम्यक् आधार। ३ सहाय मदद।

समाश्रित (सं० त्रि०) सम आ श्रि क्त। जिसने किसी स्थान पर अच्छी तरह आश्रय ग्रहण किया हो।

समाश्रयणीय (सं० त्रि०) सम् आ श्रि अनीयर्। सम्यक् रूपसे आश्रयणीय, आश्रयके योग्य।

समाश्रयिन् (सं० त्रि०) सम् आ श्रि णिनि। समाश्रय युक्त, सम्यक्रूपसे आश्रित, समाश्रयविशिष्ट।

समाश्लेष (सं० पु०) सम् आ श्लिष घञ्। सम्यक् रूपसे आश्लेष आलिङ्गन।

समाश्लेषण (सं० क्ली०) सम् आ श्लिष ल्युट्। समाश्लेष।

समाश्वास (सं० पु०) सम् आ श्वस घञ्। १ सम्यक् प्रकारसे आश्वास, धीरज। (त्रि०) २ आश्वासदाता धीरज देनेवाला। (भारत वन०)

समाश्वासन (सं० त्रि०) सम्यक् आश्वासनशील धीरज देनेवाला।

समाश्वास्य (सं० त्रि०) सम्यक् आश्वासयोग्य, धीरज देने लायक।

समास (सं० पु०) सम् अस घञ्। १ संक्षेप। २ समर्थन। ३ समाहार, सम्मिलन। ४ संग्रह। ५ एक पद, दो या बहुपदोंका एक पद बनानेका नाम समास है।

दो या अधिक पदका एक पद करने पर समास होता है। समास होने पर पूर्व पूर्व पदमें जो विभक्तियां होंगी उनका लोप हो जायगा। समर्थानां समासः अर्थात् जो पद समर्थ हैं, उन्हीं पदोंका समास होगा। जिन पदोंका परस्पर अन्वय आकांक्षा और सम्बन्ध रहता है वे ही समर्थ पद हैं उन्हींका समास होगा। अन्वय आकांक्षा और सम्बन्ध न रहने पर परस्पर समास न होगा।

समास छः प्रकारका है, द्वन्द्व, बहुव्रीहि कर्मधारय,

समाह्वातृ (सं० त्रि०) सम् आ ह्वे-तृच्। १ समाह्वान द्वारा बुलानेवाला। २ द्यूतके लिये आह्वानकारी जूआ खेलनेके लिये बुलाना या ललकारना।

समाह्वान (सं० क्ली०) सम् आ ह्वे ल्युट्। १ सम्यक् प्रकारसे आह्वान बुलाना। २ द्यूतके लिये आह्वान, जूआ खेलनेके लिये बुलाने या ललकारनेवाला।

समिक (सं० क्ली०) अस्त्रविशेष बर्छा।

समित् (सं० स्त्री०) समायन्त्यत्र ति सम् इण् क्विप्। युद्ध, लड़ाई।

समित (सं० त्रि०) सम्यक् प्राप्त पाया हुआ।

समिता (सं० स्त्री०) सम्यक् प्रकारेण इता प्राप्ता। गोधूमचूर्ण, मैदा। इसका लक्षण—

"गोधूमा धवला धौता कुट्टिता शोषितास्ततः।
मार्जिता यन्त्रनिष्पिष्टाश्चालिता समिता स्मृता॥"

सफेद गेहूंका अच्छी तरह धो कर कूटे पीछे उसे सुखा कर जलका छींटा दे यन्त्रमें पीस चलनीमें छान ले। इस प्रकार जो द्रव्य प्रस्तुत होता है, उसे समिता कहते हैं। गेहूं जैसा इसमें गुण होता है। इससे नाना प्रकारके खाद्य द्रव्य बनते हैं। कई जगह ना लोगोंका यही प्रधान खाद्य है।

समिति (सं० स्त्री०) सं यान्त्यस्यामिति सं इण् क्तिन्। १ सभा, समाज। २ युद्ध समर, लड़ाई। ३ सङ्ग, साथ। ४ साम्य, समानता। ५ सन्निपात नामक रोग। ६ प्राचीन वैदिक कालकी एक प्रकारकी सभा जिसमें राजनीतिक विषयों पर विचार हुआ करता था। ७ किसी विशिष्ट कार्यके लिये नियुक्त की हुई कुछ आदमियोंकी सभा।

समितिक—एक प्राचीन जाति। बाइबलमें इस जातिके लोग समके वंशधर Semites नामसे प्रसिद्ध हैं। कनाक मतसे समितिकाम नामक फिलिस्तासके इस जातिका नामकरण हुआ है। एक समय एशियामें ले कर समग्र पश्चिम एशियामें इस जातिका वास था। कुछ समय बाद ये लोग विभिन्न सम्प्रदायमें विभक्त हो गये हैं।

समितिङ्गम (सं० पु०) समामन्तिसमें जानेवाले।

समितिञ्जय (सं० त्रि०) समिति जयति जि खस् मुम् च। १ युद्धजेता, जिसने युद्धमें विजय प्राप्त की हो। २ सभाजयकारी जिसने किसी सभा आदिमें विजय प्राप्त की हो। (पु०) ३ यम। ४ विष्णु। ५ भारत वर्णित एक योद्धाका नाम।

समित्कलाप (सं० पु०) समिधकाष्ठका पुलिन्दा या बोझा।

समित्पाणि (सं० त्रि०) समित्पाणौ यस्य। समिद्धस्त, जिसके हाथमें समिध् हो।

समित्व (सं० क्ली०) समिध के धर्म विशिष्ट।

समिथ (सं० पु०) समेतीति सम् इण् (समीथः। उण् २।११) इति थक्। १ अग्नि, आग। २ युद्ध, लड़ाई। ३ आहुति।

समिथुन (सं० त्रि०) मिथुनेन सह वर्त्तमानः। मिथुनके साथ वर्त्तमान, मिथुनयुक्त।

समिद्ध (सं० त्रि०) सम् इन्ध क्त। प्रदीप्त, जलता हुआ। होम प्रज्वलित अग्निमें करना चाहिये अस मिद्ध अग्निमें होम करनेसे पीड़ित और व्याधि होता है।

समिद्धन (सं० क्ली०) सम् इन्ध-ल्युट्। १ अग्निप्रज्वलनार्थ काष्ठादि, जलानेका लकड़ी। २ उद्दीपन, उत्तेजना देना। ३ जलानेकी क्रिया, सुलगाना।

समिद्धवत् (सं० त्रि०) समिद्ध अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। समिद्धविशिष्ट, समिद्ध। (कात्या० श्रौ० १६।१।११)

समिद्धाग्नि (सं० त्रि०) समिद्ध अग्निर्यस्य। प्रदीप्त अग्निविशिष्ट।

समिद्धार (सं० त्रि०) समिध आहरणमें नियुक्त, यज्ञकी लकड़ी संग्रह करनेवाला।

समिद्धाधक (सं० पु०) मुद्राराक्षसवर्णित व्यक्तिभेद।

समिद्भार (सं० पु०) समिधा भारः। समिध का भार।

समिद्वत् (सं० त्रि०) समिध् मतुप् मस्य व। समिध् विशिष्ट, समिध्युक्त।

समिध (सं० स्त्री०) समीध्यतेऽनयेति इन्ध क्विप्। अग्निसन्दीपनार्थ तृणकाष्ठादि अग्नि जलानेके लिये तृण या काष्ठ (काठ), लकड़ी। पर्याय—इन्धन, एध, इध्म, समिन्धन। (शब्दरत्नावली) अश्व, पलाश यज्ञ डुम्बर आदिकी साधारणतः समिध् कहते हैं। शास्त्रमें लिखा है, कि समिध् द्वारा होम करना होता है।

अप्रमाण धम्बन और पत्रके साथ यज्ञडुम्बर प्रभृति

शाखाको प्रादेश परिमाणसे समिध्‌की कल्पना करनी चाहिये। समिध् ग्रहणके समय यदि उसका अग्रभाग, छिलका कटा और पत्ते टूटे हुए हों, तो वह समिध् कहलानेके योग्य नहीं अर्थात् पूर्वोलिखित किसी भी वृक्षका वह टहनी जिसके अग्रभाग पत्तेके साथ मौजूद हों ऐसी टहनीको समिध् कहते हैं। 'समिधेर्जुहुयात्' समिध् द्वारा होम करे। इस विधानके अनुसार लक्षणाक्रान्त समिध् चुन लेने चाहिये पीछे उसके द्वारा होम करना चाहिये।

यह समिध् या टहनी अंगुष्ठ अर्थात् अंगूठेकी तरह मोटी होनी चाहिये, इसका छिलका हटाया न जाय, इस टहनी या समिध्‌में कीड़े न लगे हुए हों और इसका परिमाण प्रादेश तुल्य हो। निवीर्य अर्थात् सूखी टहनीसे समिधका काम न निकालना चाहिये।

विशीर्ण, विदल, ह्रस्व, वक्र, स्थूल, द्विधाकृत (जिसके लम्बाईमें दो टुकड़े किये गये हों), कृमिदष्ट और दीर्घ इस तरहके समिध निषिद्ध हैं अतएव इनके द्वारा होम करना उचित नहीं। करनेसे नाना प्रकारके अमङ्गल होते हैं। समिध् विशीर्ण हो और होमकर्त्ता उससे होम करें, तो उनका आयुक्षय, विदलसे पुत्रनाश, ह्रस्व होनेसे पत्नीनाश, वक्र होनेसे बन्धुनाश, कृमिदष्ट होनेसे रोग, द्विधा होनेसे विक्षेप, दीर्घसे पशुनाश और स्थूल होनेसे अर्थनाश होता है।

अतएव गुणयुक्त समिध् द्वारा होम करना चाहिये। उक्त दोषयुक्त समिध् कभी होमके कार्यमें व्यवहार नहीं करना चाहिये। नवग्रहके होम करनेके लिये अलग अलग नौ तरहके समिध् चाहिये। रविके होममें अर्कसमिध्, चन्द्रके पलास, मङ्गलके खैर, बुधके अपामार्ग, बृहस्पतिके पीपल, शुक्रके उदुम्बर (गूलर) शनिके शमी; राहुके दूर्वा (दूब) और केतुग्रहके लिये कुश—नौ प्रकारके समिध् द्वारा नवग्रहका होम करना चाहिये।

उपनयन आदि संस्कार कार्यमें यज्ञडुम्बरके समिध्‌से ही होम करना चाहिये। तान्त्रिक होमस्थलमें प्रायः ही बिल्वपत्र द्वारा होम होता है।

समिध (सं० पु०) समिध्यते इति सं-इन्ध-क। अग्नि।

समिर (सं० पु०) समीर, वायु।

समिश्र (सं० त्रि०) एक साथ मिल कर रहना।

समिष (सं० पु०) १ प्रक्षेपणशील अस्त्रयुक्त। २ इन्द्र।

समिष्टयजुस् (सं० क्ली०) यज्ञ सम्पादनार्थक मन्त्र।

समिष्टि (सं० स्त्री०) यज्ञसम्पादन।

समीक (सं० क्ली०) सम्-अली कादयश्चेति ईक। युद्ध, संग्राम। (अमर)

समीकरण (सं० क्ली०) सम-कृ च्वि ल्युट्। १ गणितमें एक विशेष प्रकारकी क्रिया जिससे किसी व्यक्त या ज्ञात राशिकी सहायतासे किसी अव्यक्त या अज्ञात राशिका पता लगाया जाता है। (Equation) २ तुल्य करण, समान करनेकी क्रिया, तुल्य या बराबर करना। ३ गौड़देशमें गोष्ठीपतियोंके यत्न और आग्रहसे ब्राह्मण और कायस्थ समपर्यायके कुलीनोंका जो एकत्र समावेश हुआ था, उसे समीकरण कहते हैं।

समीकार (सं० पु०) सम-कृ-च्वि-घञ्। समानीकार, वह जो छोटी बड़ी, ऊंची नीची या अच्छी बुरी चीजोंको समान करता हो, बराबर करनेवाला।

समीकृत (सं० त्रि०) समानीकृत, समान या बराबर किया हुआ।

समीकृति (सं० स्त्री०) समान या तुल्य करनेकी क्रिया।

समीक्रिया (सं० स्त्री०) बीजगणितोक्त अङ्कप्रक्रियाविशेष। (Equation) समीकरण देखो।

समीक्ष (सं० क्ली०) सम्यगाख्यतेऽनेनेति सम्-ईक्ष घञ्। १ सांख्यशास्त्र जिसके द्वारा प्रकृति और पुरुषका ठीक ठीक स्वरूप दिखाई देता है। २ सम्यक् दर्शन, अच्छी तरह देखनेकी क्रिया। ३ दृष्टि, दर्शन। ४ यत्न। ५ अन्वेषण, जाँच पड़ताल। ६ विवेचन। ७ सम्यक् ज्ञान।

समीक्षण (सं० क्ली०) सम्-ईक्ष-ल्युट्। १ सम्यक प्रकारसे दर्शन, अच्छी तरह देखना। २ अन्वेषण, जाँच पड़ताल। ३ आलोचना (त्रि०) ४ प्रकाशक।

समीक्षा (सं० स्त्री०) सम्-ईक्ष-गुरोश्चेत्यः, टाप्। १ सांख्यमें बतलाये हुए पुरुष, प्रकृति, बुद्धि, अहंकार आदि तत्त्व। २ बुद्धि, अक्ल। ३ मीमांसाशास्त्र। ४ यत्न, कोशिश ५ आत्मविद्या। ६ सम्यक् दर्शन, अच्छी तरह देखनेकी क्रिया।

समीक्षित (सं० त्रि०) सम्-ईक्ष-क्त। १ आलोचित। २ अन्वेषित। ३ सम्यक् प्रकारसे दृष्ट।

समीक्षितव्य (स० त्रि०) सम्-ईक्ष-तव्य। सम्यक् प्रकारसे देखने योग्य।

समीक्ष्य (स० त्रि०) सम्-ईक्ष-यत्। समीक्षणयोग्य अच्छी भांति देखने लायक।

समीक्ष्यकारिन् (स० त्रि०) समीक्ष्य कृ णिनि। बुद्धिसे काम करनेवाला।

समीक्ष्यवादी (स० त्रि०) समीक्ष्य वद णिनि। जो किसी विषयको अच्छी तरह जान या समझ कर कोई बात कहता हो।

समीज (स० पु०) सयन्ति नद्यो यस्मिन्निति स इण (समीयः। उण् ४।९२) इति घट दीर्घश्च। समुद्र, सागर।

समीरत (स० पु०) मैथुन सम्भोग।

समीची (स० स्त्री०) संचतीति स इण् टच् दीर्घ ङीप्। १ मृगी। २ वन्दना, गुणगान।

समीचीन (स० त्रि०) सम्यगेव सम्यक् (विभाषाञ्चेर दिक् स्त्रियां। पा ५।४।८) इति ख। १ यथार्थ, ठीक। पर्याय—सत्य सम्यक् ऋत, तथ्य, यथातथ, यथास्थित, सद्भूत। २ उचित, वाजिब। ३ न्यायसङ्गत।

समीचीनता (स० स्त्री०) समीचीनस्य भावः तल् टाप्। समीचीन होनेका भाव या धर्म।

समीद (स० पु०) गोधूमचूर्ण, मैदा।

समीन (स० त्रि०) समामधीष्टो भृतो भूतो भावी वा समा (समायाः खः। पा ५।१।८५) इति ख। १ वत्सर सम्बन्धी वार्षिक। २ सालभर तक वर्त्तमान, जिसमें साल लगे हो।

समीनिका (स० स्त्री०) प्रतिवर्ष प्रसूता गाभी वह गाय जो प्रति वर्ष बच्चा देती है हर साल ब्यानेवाली गाय।

समीप (स० त्रि०) सङ्गता आपो यत्र (ऋक्पूरब्धूः पथामानक्षे। पा ५।४।७४) इति अ। (द्व्यन्तरुपसर्गेभ्योऽप ईत्। पा ६।३।९७) इति ईत्। निकट, नजदीक दूरका उल्टा। इस शब्दका क्लीवलिङ्गमें भी प्रयोग होता है।

समीपकाल (स० पु०) समीपः कालः। निकट समय समापन्न।

समीपग (स० त्रि०) समीप गच्छति गम ड समीप गामी जो पास हो गया हो।

समीपगमन (स० क्ली०) समीप-गम-ल्युट्। निकट गमन।

समीपज (स० त्रि०) समीप जन-ड। समीपजात जो नजदीकमें उत्पन्न हुआ हो।

समीपता (स० स्त्री०) समीपस्य भाव तल् टाप्। समीपका भाव या धर्म।

समीपनयन (स० क्ली०) समीप नी ल्युट्। नजदीक लाना।

समीपवर्त्ती (स० त्रि०) समीप वर्त्तते वृत णिनि। १ निकटगामी समीपगामी। २ पासका, नजदीकका।

समीपस्थ (स० त्रि०) समीपे तिष्ठति स्था क। समीप स्थित जो समीपमें हो।

समीय (स० त्रि०) सम (गहादिभ्यश्च। पा ४।२।१३८) इति छ। समसम्बन्धी तुल्यकारणक, समका।

समीर (स० पु०) सम्यगीर्ते गच्छतीति स ईर गतौ क। १ वायु हवा। २ शमी वृक्ष।

समीरण (स० पु०) समीरयतीति सम् ईर ल्यु। १ वायु, हवा। २ मरुबक वृक्ष, गन्ध तुलसी। ३ पथिक, रास्ता चलनेवाला। (क्ली०) सम्-ईर-ल्युट्। ४ प्रेरण। (त्रि०) ५ प्रेरक।

समीरित (स० त्रि०) सम-ईर् प्रेरणे क्त। १ सम्यक् रूपसे प्रेरित। २ उच्चारित। भावे क्त। (क्ली०) ३ प्रेरण।

समीरूपी (स० स्त्री०) विष्णुविशेष। (भाग० ६।२।२२)

समीहन (स० क्ली०) सम्-ईह-ल्युट्। १ सम्यक् प्रकारसे ईहन सम्यक्रूपसे चेष्टा। (पु०) २ विष्णु।

समीहा (स० स्त्री०) सम् ईह अच् टाप्। १ सम्यक् इच्छा, ख्वाहिश। २ उद्योग प्रयत्न, कोशिश। ३ अनु सन्धान, तलाश जांच पड़ताल।

समीहित (स० त्रि०) सम् ईह क्त। १ सम्यक् चेष्टित। २ समाहृत। भावे क्त। (क्ली०) ३ चेष्टा। ४ इच्छा।

समुंदर (हि० पु०) समुद्र देखो।

समुंदरफूल (हि० पु०) एक प्रकारका विधारा। यह वैद्यकके अनुसार मधुर, कसैला, शीतल और कफ पित्त तथा रुचि विकारको दूर करनेवाला तथा गर्भिणी स्त्री को पीड़ा हरनेवाला होता है।

समुंदरसोख (हिं० पु०) एक प्रकारका क्षुप। यह प्रायः सारे भारतवर्षमें थोड़ा बहुत पाया जाता है। इसकी पत्तियां तीन चार अंगुल लंबी, अंडाकार और नुकीली होती हैं। डालियोंके अन्तमें छोटे छोटे सफेद फूलोंके गुच्छे लगते हैं। उन फूलोंमें छोटे छोटे बीज होते हैं। वैद्यकमें यह वातकारक, मलरोधक, पित्त कारक तथा कफकारक कहा गया है।

समुक्षण (सं० क्ली०) सम्यक् प्रकारसे सिञ्चन, अच्छी तरह सींचनेकी क्रिया।

समुख (सं० त्रि०) मुखेन सह वर्त्तमानः। वाग्मी, जो अच्छी तरह बातें करना जानता हो।

समुचित (सं० त्रि०) १ यथेष्ट, उचित, योग्य, ठीक। २ उपयुक्त, जैसा चाहिये वैसा।

समुच्चय (सं० पु०) सम्-उत्-चि-अच्। १ समाहार, मिलन। २ समूह, राशि। दो या दोसे अधिक राशियोंमें मिलनेको समुच्चय कहते हैं। ३ साहित्यमें एक प्रकारका अलंकार।

कार्यका साधक एक होने पर खल अर्थात् जालमें कपोतन्यायसे यदि दूसरा भी वैसा ही करे अर्थात् उस कार्यका साधक बने, तो यह अलङ्कार होगा। वृद्ध, युवा, शिशु, कपोत सभी जिस प्रकार जालमें फंसते हैं, उसी प्रकार सभी पदार्थ एक समय परस्पर अन्वय-विशिष्ट होने पर उसे कपोतिक न्याय कहते हैं। इस अलङ्कारमें कार्यका साधक एक और उससे एक समय अनेक कार्यों का साधक होगा। गुण और क्रियामें यदि युगपत् गुणक्रियाका आपतन हो, तो भी यह अलङ्कार होता है। (साहित्यद० १०।७३६)

समुच्चरत् (सं० त्रि०) सम्-उत्-चर-शतृ। १ उत्पतन-शील, गिरनेवाला। २ उच्चारण करनेवाला।

समुच्चारण (सं० क्ली०) सम्यक् रूपसे उच्चारण।

समुच्चिचीर्षा (सं० स्त्री०) एकत्र उत्सर्ग करनेकी इच्छा।

समुच्चित (सं० त्रि०) सम-उत्-चि-क्त। १ राशीकृत, ढेर लगाया हुआ। २ संगृहीत, एकत्र किया हुआ।

समुच्छलित (सं० त्रि०) सम् उत्-शल-क्त। १ सम न्तात् विस्तीर्ण, चारों ओर फैला हुआ। २ अच्छी तरह कूदा या उछला हुआ।

समुच्छित्ति (सं० स्त्री०) ध्वंस, विनाश, बरबादी।

समुच्छेद (सं० पु०) सम् उत् छिद्-घञ्। ध्वंस, विनाश, बरबादी।

समुच्छेदन (सं० क्ली०) सम्-उत्-छिद्-ल्युट्। १ जड़से उखाड़ना। २ नष्ट करना, बरबाद करना।

समुच्छ्रय (सं० पु०) सम् उत् श्रि-अच्। १ विरोध, मनमुटाव। २ उत्सेध, ऊंचाई।

समुच्छ्राय (सं० पु०) सम्-उत्-श्रि-घञ्। समुच्छ्रय देखो।

समुच्छ्रित (सं० त्रि०) सम्-उत् श्रि-क्त। उच्च, उन्नत।

समुच्छ्रिति (सं० स्त्री०) सम्-उत्-श्रि-क्तिन्। समुच्छ्रय।

समुच्छ्वसित (सं० त्रि०) सम् उत् श्वस-क्त। पुनर्जी-वित, उच्छ्वासयुक्त।

समुच्छ्वास (सं० पु०) सम्-उत् श्वस-घञ्। १ निश्वास प्रश्वास। २ स्फीति और स्फूर्ति।

समुज्जिहीर्षु (सं० त्रि०) समुद्धर्त्तुमिच्छुः, सम-उत्-हृ-सन्, सन्नन्तादु। सम्यक् रूपसे उद्धार करनेका अभि-लाषी। (भागवत १०।७५।३६)

समुज्ज्वल (सं० त्रि०) सम्-उत्-ज्वल-अच्। खूब उज्ज्वल, चमकता हुआ।

समुज्झित (सं० त्रि०) सम् उज्झ-क्त। त्यक्त, छोड़ा हुआ।

समुत्क (सं० त्रि०) सम्यक् उत्क, सम्यक् अभिलाषी।

समुत्कच (सं० त्रि०) सम्यक् प्रकारसे उत्कच, जिसके बाल अच्छी तरह खड़े हों।

समुत्कण्ठ (सं० त्रि०) सम्यक् रूपसे उत्कण्ठान्वित, व्यग्र, व्यस्त।

समुत्कर्ष (सं० त्रि०) सम् उत् कृष घञ्। सम्यक् उत्कर्ष।

समुत्क्रम (सं० पु०) सम्-उत्-क्रम्-अप्। सम्यक् उत्क्रम।

समुत्कीर्ण (सं० त्रि०) सम्-उत कृ क्त। १ खोदित, विद्ध। २ विदीर्ण, भग्न।

समुत्कोश (सं० पु०) समुत्क्रोशतीति सम् उत् क्रुश अच्। १ कुरर नामका पक्षी। भावे घञ्। २ उच्च शब्द, जोरकी आवाज।

समुत्क्षेप (स० पु०) अच्छी तरह उठा कर फेंक देना।
समुत्क्षेपण (स० क्ली०) समुत्क्षेप देखो।
समुत्तर (स० क्ली०) सम्यगुत्तर। सम्यक् उत्तर, ठीक ठीक जवाब।
समुत्तान (स० त्रि०) उत्तान, चित।
समुत्तार (स० पु०) सम् उत् तॄ घञ्। सम्यक्‌रूपसे उत्तरण अच्छी तरह पार हो जाना।
समुत्थ (स० त्रि०) समुत्तिष्ठतीति सम् उत् स्था क। १ समुद्भूत, उत्पन्न। २ उत्थित उठा हुआ।
समुत्थान (स० पु०) सम् उत् स्था ल्युट्। १ आरम्भ। २ उत्थान उठनेकी क्रिया। ३ उदय, उत्पत्ति। ४ उत्तोलन उठाना। ५ व्याधिनिर्णय। ६ रोगशान्ति, रोगका शान्त होना।
समुत्थाप्य (स० त्रि०) सम् उत् स्था णिच् यत्। समुत्थापनके योग्य, उठाने लायक।
समुत्थित (स० त्रि०) सम् उत् स्था क्त। सम्यक्‌रूपसे उत्थित, अच्छी तरह उठा हुआ।
समुत्थेय (स० त्रि०) सम् उत् स्था य। समुत्थानके उपयुक्त, उठानेके योग्य।
समुत्पतन (स० क्ली०) सम् उत् पत ल्युट्। सम्यक्‌रूपसे उत्पतन अच्छी तरह उड़नेकी क्रिया।
समुत्पत्ति (स० स्त्री०) सम् उत् पद् क्तिन्। सम्यक् विकाश सम्यक्‌रूप उत्पत्ति।
समुत्पन्न (स० त्रि०) सम् उत् पद क्त। १ समुद्भूत उत्पन्न। २ उद्गत घटित।
समुत्पाटन (स० क्ली०) सम् उत् पाटि-ल्युट्। सम्यक् उत्पाटन जड़से उखाड़ना।
समुत्पाटित (स० त्रि०) उन्मूलित जड़से उखाड़ा हुआ।
समुत्पात (स० त्रि०) सम् उत् पत घञ्। उत्पात, उपद्रव।
समुत्पाद (स० पु०) सम्यक् उत्पत्ति।
समुत्पाद्य (स० त्रि०) सम् उत्-पद् ण्यत्। समुत्पादन योग्य।
समुत्पिञ्ज (स० त्रि०) सम् उत् पिञ्ज हि माया अच्। १ अत्यन्त व्याकुल बहुत घबराया हुआ। (पु०) २ व्याकुल सैन्य जो सब सेना तितर बितर गई हो।
समुत्पीड़न (स० क्ली०) सम् उत् पीड ल्युट्। सम्यक्‌रूपसे उत्पीड़न, बहुत कष्ट देना।
समुत्फाल (स० पु०) घोड़ेका उछलता हुआ जाना।
समुत्सर्ग (स० पु०) सम् उत् सृज घञ्। उत्सर्ग, त्याग।
समुत्सव (स० पु०) सम् उत् सु अच्। सम्यक् उत्सव, खूब धूमधाम।
समुत्साह (स० पु०) सम् उत्-सह घञ्। अत्यन्त उत्साह।
समुत्साहता (स० स्त्री०) समुत्साहस्य भावः समुत्साह तल्-टाप्। समुत्साहित्व उत्साहका भाव या धर्म, अत्यन्त उत्साहके साथ कार्य।
समुत्सुक (स० त्रि०) सम्यगुत्सुकः। सम्यक् उत्कण्ठित अभीष्ट लाभके लिये आग्रहयुक्त।
समुत्सृष्ट (स० त्रि०) सम् उत् सृज क्त। सम्यक्‌रूपसे उत्सृष्ट, त्यक्त, छोड़ा हुआ।
समुत्सेध (स० पु०) सम् उत् सिध घञ्। उच्चता, ऊंचाई।
समुद्क्त (स० त्रि०) समुदच्यते, स्मेति सम् उत् अञ्च क्त। १ उद्धृत, निकाला हुआ। २ कूप आदिसे निकाला हुआ जल आदि।
समुद्न्त (स० त्रि०) १ सोमन्त उच्चतायिशिष्ट, समान ऊंचाईका। २ सम्यक् उद्दन्त, विना दांतका।
समुदय (स० पु०) सम उत इन अच्। १ उत्थान, उठने या उदित होनेका क्रिया। २ युद्ध, समर, लड़ाई। ३ दिवस दिन। ४ ज्योतिषके मतसे लग्नको समुदय कहते हैं। ५ छ नाड़ीचक्रके अन्तर्गत चौथी नाड़ी। यह नाड़ी जन्मनक्षत्रसे अठारह अधिक नक्षत्ररूप है। जिसका जो नक्षत्र जन्मनक्षत्र होगा, उस नक्षत्रसे अठारह नक्षत्रों को समुदय नाड़ी कहते हैं।

विशेष विवरण षन्नाड़ीचक्रमें देखो।

(त्रि०) ६ समस्त, सब, कुल।
समुदागम (स० पु०) सम् उत् आ गम घञ्। सम्यक ज्ञान।
समुदाचार (स० पु०) सम् उत् आ चर घञ्। १ आशय अभिप्राय, मतलब। २ शिष्टाचार, सज्जनसतका व्यवहार। ३ अभिवादन, नमस्कार, प्रणाम आदि।

समुद्भूति (सं० स्त्री०) सम् उत् भू क्तिन्। उद्भव उत्पत्ति।
समुद्भेद (सं० पु०) १ उद्भेदन। २ विकास।
३ उत्पत्ति। ४ प्रस्रवण जलादिका उद्गमन।
समुद्यत (सं० त्रि०) सम् उत् यम क्त। सम्यक् उद्यत, अच्छी तरहसे तैयार।
समुद्यम (सं० पु०) सम्यक उद्यम उद् यम् अप। १ सम्यक् उद्यम चेष्टा। २ आरम्भ, शुरू।
समुद्यमिन् (सं० त्रि०) सम् उद् यम् इन्। १ समुद्यम विशिष्ट, चेष्टावान्। २ आरम्भकारी, शुरू करनेवाला।
समुद्योग (सं० पु०) सम् उद् युज् घञ्। सम्यक् उद्योग, यत्न।
समुद्र (सं० पु०) १ जल समूह स्थान अम्बुधि, सागर। चन्द्रोदयसे जहांका जल बढ़ता है, उसका समुद्र कहते हैं। श्रीमद्भागवतमें लिखा है कि समुद्र भगवानके मेढ़ देशसे उत्पन्न हुआ है। ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें लिखा है, कि श्रीकृष्णके औरस तथा विरजाके गर्भसे सात पुत्र उत्पन्न हुए। विरजा शब्द देखो। एक समय विरजा और श्रीकृष्ण एक जगह बैठे हुए थे ऐसे समय पुत्रोंमें झगड़ा हुआ। इस झगड़ेमें छोटा पुत्र मार खा कर चिल्ला चिल्ला कर रोने लगा। पुत्रकी क्रन्दनध्वनि सुन कर विरजाने जा उसे गोदमें उठा लिया और उसे वे सान्त्वना देने लगी। इसी समय श्रीकृष्ण राधिकाके घरमें चले गये। विरजा लौट कर देखती हैं, कि कृष्ण वहां नहीं हैं। उस समय श्रीकृष्णके विरहमें विलाप करने लगी। अन्तमें उन्होंने पुत्रोंके लिए प्रियतमका विरह उपस्थित हुआ है यह सोच कर पुत्रों पर क्रोधित हो शाप दिया, कि तुम लोग लवण समुद्र होगे तुम्हारे जल भी कोई न पायेगा। उन्हींके सात पुत्रोंसे ये सात समुद्र हुए। (श्रीकृष्णजन्म० ख० ३ अ०)

मत्स्यपुराणमें लिखा है कि चन्द्रके उदय होने पर समुद्र उद्रिक्त अर्थात् स्फीत और चन्द्रके अस्त होने पर समुद्र क्षीण होता है। जलराशिका समुद्रेक होता है, इसलिये इसका नाम समुद्र हुआ।

भवा चैव समुद्रकात् समुद्र इति सज्ञित।
उदयत्तीन्दौ पूर्वे तु समुद्रः पूर्यते सदा॥
प्रक्षीयमाणो बहुले क्षीयतेऽस्तमितेन वै।
आपूर्यमाणोह्युदधिरात्मनैवाभि पूर्यते॥' इत्यादि।

चन्द्रमा जैसे उदित होते हैं, वैसे ही समुद्रका जल अतिशय स्फीत हो जाता है। इससे समुद्रकी निकटवर्त्ती नदियोंमें 'ज्वार' होता है और जब चन्द्रमा अस्त होते हैं तब समुद्रका जल घट जाता है, फलतः नदियोंमें 'भाटा' होता है। अतएव समुद्रके घटने बढ़नेका कारण चन्द्रोदय और चन्द्रास्त है। एक समय देवता और राक्षसोंने सम्मिलित हो कर समुद्रमन्थन किया। श्रीमद्भागवतके छठे अध्यायसे ले कर १२वें अध्याय तक इसका विस्तृत विवरण दिया गया है। अमृत प्राप्त करनेके लिये समुद्र मथा गया। किन्तु पहले हलाहल विष उत्पन्न हुआ। इस विषकी ज्वालासे सभी उत्पीड़ित हो उठे। तब वे अन्य उपाय न देख महादेवजीका स्तव करने लगे। महादेवने देवताओंके स्तवपाठसे तुष्ट हो कर वह विष पान किया। इसके बाद फिर समुद्र मथा जाने लगा। इस बार सुरभि और लक्ष्मी आदि तथा धन्वन्तरि अमृत भाण्ड ले कर आविर्भूत हुए। असुरोंने अमृत भाण्डको छीन कर भागना चाहा; किन्तु भगवान् विष्णुने मोहिनी मूर्त्ति धारण कर असुरोंको ठग कर अमृत भाण्ड देवताओंको दे दिया। इस पर तुमुल देवासुर संग्राम हुआ। अन्तमें नारदने आ कर इस संग्रामको मिटाया था। देवताओं द्वारा जो असुर मारे गये थे, उन सबको शुक्राचार्यने जिलाया।

पहले भारतवासी लोग समुद्रपथसे बहुत वाणिज्य यात्रा करते थे। यवद्वीपके बोरोबुदरके मन्दिरसे तथा सारनाथके ध्वंसावशेषमें मिले हुए प्रस्तरफलक पर जहाजके चित्र देखे गये हैं।

उपनिवेश, भारत और पोत शब्द देखो।

कविकल्पलतामें लिखा है कि समुद्रका वर्णन करते समय द्वीप, अद्रि, रत्न ऊर्मि, जहाज जलजन्तु तथा लक्ष्मीकी उत्पत्तिका अङ्कर वर्णन करना चाहिये।

२ किसी विषय या गुण आदिका बहुत बड़ा आगार।
३ एक प्राचीन जातिका नाम।
समुद्रकफ (सं० पु०) समुद्रस्य कफ इव। समुद्रफेन।

भूमिमें तथा कोङ्कणमें समुद्रके किनारे बहुत अधिकतासे पाया जाता है। यह प्राय ३०से ५० फुट तक ऊंचा होता है। इसका छिलका सफेद और बहुत मुलायम होती है। छिलका कुछ भूरा या काला होता है। पत्तियां प्राय तीन इञ्च तक चौड़ी और दश इञ्च तक लम्बी होती हैं। शाखाओंके अन्तमें दो ढाई इञ्चके घेरेके गोलाकार सफेद फूल लगते हैं। इसके फल पकने पर नीचेकी ओरसे चिपटे या चौपहल हो जाते हैं। इसकी जड़ वातनाशक और स्नायुदौर्बल्यमें हितकर मानी गई है। वैद्यकशास्त्रके मतसे इसका गुण—कटु, उष्ण, वातघ्न, मण्डलका विषनाशक, त्रिदोषघ्न, शिरोरोग और भ्रान्तिनाशक है। इस वर्गमें समुद्रसोख और तैलङ्गमें समुद्रपाल कहते हैं।

समुद्रफेन (सं० पु०) समुद्रस्य फेन। समुद्रके पानीका फेन या झाग। यह समुद्रके किनारे पाया जाता है। इसका व्यवहार औषधिके रूपमें होता है।

समुद्रमें लहरें उठनेके कारण उसके खारे पानीमें एक प्रकारका झाग उत्पन्न होता है। यह झाग किनारे पर आ कर जम जाता है। यहां बाजारोंमें समुद्रफेनके नामसे बिकता है। देखनेमें यह सफेद रंगका, खरखरा हल्का और जालीदार होता है। इसका स्वाद फीका तीखा और खारा होता है। कुछ लोग इसे एक प्रकारकी मछलीकी हड्डियोंका पञ्जर भी मानते हैं। इसका गुण—शीतल, नेत्ररोग कफ, कण्ठामय अरुचि और कर्णरोगनाशक। (राजनि०)

वैद्यकनिघण्टुके मतसे यह कसैला, हलका शीतल सारक, रुचिकारक नेत्रोंको हितकारी, विष तथा पित्त विकारनाशक और नेत्र तथा कण्ठ आदिके रोगोंको दूर करनेवाला होता है।

समुद्रमण्डूकी (सं० स्त्री०) जलशुक्ति, सीप।

समुद्रमथन (सं० पु०) १ दैत्यभेद, पुराणानुसार एक दानवका नाम। २ समुद्रालोड़न, समुद्रका मथना।

समुद्रमालिन् (सं० स्त्री०) पृथिवी।

समुद्रमालिनी (सं० स्त्री०) पृथ्वी जो समुद्रका अपने चारों ओर मालाकी भांति धारण किये हुए हैं।

समुद्रमेखला (सं० स्त्री०) समुद्र मेखलेव यस्याः। पृथ्वी जो समुद्रको मेखलाके समान धारण किये हुए हैं।

समुद्रयात्रा (सं० स्त्री०) समुद्र यात्रा गमन। समुद्र गमन, समुद्रके द्वारा दूसरे देशोंकी यात्रा।

समुद्र शब्द देखो।

समुद्रयान (सं० क्ली०) समुद्रस्य यान। १ अर्णवपोत, समुद्र पर चलनेवाली सवारी। जैसे—जहाज, स्टीमर आदि। २ समुद्रयात्रा।

समुद्रयायिन् (सं० त्रि०) समुद्रे गच्छतीति गम णिनि। समुद्रगामी, जिसने समुद्रयात्रा की हो। मनुने इन्हें अपाङ्क्तेय कहा है अर्थात् इन लोगोंके साथ एक पंक्तिमें बैठ कर खानेसे निषेध किया है। ये लोग द्विजाधम हैं।

समुद्ररसना (सं० स्त्री०) समुद्र रसनेव यस्याः। पृथिवी। कहीं कहीं समुद्ररसना ऐसा पाठ भी देखनेमें आता है।

समुद्रलवण (सं० क्ली०) समुद्रजात लवण। जलजात लवण करकच नामका लवण जो समुद्रके जलसे तैयार किया जाता है। पर्याय—समुद्रक, सामुद्र, शिव, वशिर, सारोदध, अक्षीव, लवणाब्धिज। वैद्यकके अनुसार यह लघु, हृद्य, पित्तवर्द्धक, विदाही, दीपन, रुचिकारक और कफ तथा वातका नाशक माना जाता है।

लवण शब्द देखो।

समुद्रवर्मन् (सं० पु०) राजभेद। (कथासरित्सा० ५८।३६५)

समुद्रवसना (सं० स्त्री०) समुद्रा एव वसनं यस्याः। पृथिवी।

समुद्रवह्नि (सं० पु०) समुद्रस्य वह्निः। वड़वानल।

समुद्रवास (सं० त्रि०) समुद्रजल जिसका आच्छादन है, अग्नि। (ऋक् ८।६।१४)

समुद्रवासिन् (सं० त्रि०) समुद्रे समुद्रतीरे वसतीति वस णिनि। १ जो समुद्रमें रहता हो। २ जो समुद्रके तट पर रहता हो।

समुद्रविजय (सं० पु०) १ वृत्ताह त्के पिता। ये जैनतीर्थङ्कर व देवके पुत्र और कृष्णके भाई थे। जैन शब्द देखो।

समुद्रव्यचस् (सं० त्रि०) समुद्रकी तरह व्याप्तियुक्त, समुद्र जिस प्रकार चारों ओर फैला है उसी प्रकार फैला हुआ।

समुद्रशूर (सं० पु०) वणिग्भेद।

समुद्रसूरि—रघुवंशटीकाके प्रणेता।

समुद्रसार (सं० पु०) १ सूक्ति, सीप। २ मुक्ता, मोती।

समुद्रसुभगा (सं० स्त्री०) समुद्रस्य सुभगा, गङ्गा।

समुद्रसेन (सं० पु०) १ वङ्गराजभेद, चन्द्रसेनके पिता। (भरत आदिपर्व) २ वणिग्भेद। (कथासरित्सा० २९।११६) ३ कांगड़ा जिलेके कुलुविभागका एक सामन्त राज। यह ७वीं सदीमें विद्यमान था। शिलालिपिसे जाना जाता है, कि वरुणसेनका पुत्र सञ्जयसेन, सञ्जयका पुत्र वरिसेन, वरिका पुत्र समुद्रसेन था। यह महासामन्त और महाराजकी उपाधिसे भूषित था।

समुद्रस्थली (सं० स्त्री०) समुद्रतीरस्थ तीर्थक्षेत्रभेद।

समुद्रा (सं० स्त्री०) सम्यगुद्गतो रोऽग्निर्यस्याः। १ शमी, सेम। २ शटी, कचूर।

समुद्रान्त (सं० क्ली०) समुद्रस्य अन्त उत्पत्तिस्थानत्वेनास्त्यस्येति अच्। १ जातिफल, जायफल। समुद्रस्य अन्तं। २ समुद्रतीर, समुद्रका किनारा। समुद्रः अन्तो यस्य। (त्रि०) ३ समुद्रान्तविशिष्ट।

समुद्रान्ता (सं० स्त्री०) समुद्रान्त-अच्-टाप्। १ दुरालभा। २ कार्पासी। ३ पृक्का। ४ जवासा।

समुद्राभिसारिणी (सं० स्त्री०) समुद्रदेवकी अनुचारिणी देवबाला, वह कल्पित देवबाला जो समुद्रदेवकी सहचरी मानी जाती है।

समुद्राम्बरा (सं० स्त्री०) समुद्रः अम्बरमिव यस्याः। पृथिवी।

समुद्रायण (सं० त्रि०) समुद्रमें जानेवाली।

समुद्रायणा (सं० स्त्री०) नदी, दरिया।

समुद्रारु (सं० पु०) समुद्रं ऋच्छतीति ऋ-उन्। १ कुम्भीर नामक जलजन्तु। २ सेतुबन्ध। ३ तिमिंगिल नामकी मछली।

समुद्रार्थ (सं० त्रि०) समुद्र ही जिनका एकमात्र गन्तव्य है। (ऋक् ७।४९।२)

समुद्रार्था (सं० स्त्री०) नदी। नदियोंका एकमात्र गन्तव्य स्थान समुद्र है, इसीसे यह नाम पड़ा है।

समुद्रावरण (सं० त्रि०) सागरसमाच्छादित।

समुद्रावरणा (सं० स्त्री०) पृथ्वी।

समुद्रिय (सं० त्रि०) समुद्रे भवः इति समुद्र (समुद्राभ्राद्घः। पा ४।४।११८) इति घ। १ समुद्रभव। २ समुद्रसम्बन्धी, समुद्रका। (शुक्लयजुः ११।४९)

समुद्रीय (सं० त्रि०) समुद्रणीय। समुद्रसंबन्धी।

समुद्रेक (सं० पु०) सम्-उत्-रिच घञ्। सम्यक् प्रकारसे उद्रेक।

समुद्रोन्मादन (सं० पु०) स्कन्दानुचरभेद।

समुद्वह (सं० त्रि०) सम्-उत्-वह क। १ श्रेष्ठ, उत्तम, बढ़िया। २ वहनकारी, ढोनेवाला।

समुद्वाह (सं० पु०) सम्-उत्-वह घञ्। १ सम्यक् प्रकारसे वहन, अच्छी तरह ढोना। २ विवाह, शादी।

समुद्वेग (सं० पु०) सम्-उत्-विज घञ्। सम्यक् उद्वेग, बड़ी उत्कंठा।

समुन्दन (सं० क्ली०) सम्-उन्दी-ल्युट्। आर्द्रभाव, आर्द्रता, भींगा। पर्याय—तेम, स्तेम।

समुन्न (सं० त्रि०) सम्-उन्द-क्त। आर्द्र, जलसिक्त।

समुन्नत (सं० त्रि०) सम-उत्-नम क्त। १ सम्यक् उन्नत, जिसकी यथेष्ट उन्नति हुई हो। २ अति उन्नत, बहुत ऊंचा। (पु०) ३ वास्तु विद्याके अनुसार एक प्रकारका स्तम्भ या खम्भा।

समुन्नति (सं० स्त्री०) सम्-उत्-नम-क्तिन्। १ सम्यक् उन्नति, खासा तरक्की। २ महत्त्व, बड़ाई। ३ उच्चता, ऊंचाई।

समुन्नद (सं० पु०) राक्षसभेद।

समुन्नद्ध (सं० त्रि०) सम्-उत्-नह-क्त। १ पण्डित, जो अपनेको आप बड़ा पण्डित समझता हो। २ गर्वित, अभिमानी। ३ समुद्भूत, जात, उत्पन्न। ४ ऊर्द्ध्वोबद्ध, ऊपरको ओर उठाया या बंधा हुआ। (पु०) ५ प्रभु, स्वामी, मालिक।

समुन्नमन (सं० क्ली०) ऊपरकी ओर उठाने या ले जानेकी क्रिया।

समुन्नय (सं० पु०) सम्-उत्-नी अच्। समुन्नयन।

समुन्नयन (सं० क्ली०) सम्-उत्-नी-ल्युट्। १ ऊपरकी ओर उठाने या ले जानेकी क्रिया। २ उद्भावन। ३ लाभ, प्राप्ति।

समुन्नस (सं० त्रि०) ऊर्द्ध्वनासिकाविशिष्ट, जिसकी नाक ऊपर उठी हो।

समुन्नाद (स० पु०) अनुकरणिक चित्कार, समुद्रनाद।

समुन्नाह (स० पु०) सम् उत् नह घञ्। उच्छ्राय, उभार।

समुन्नेय (स० त्रि०) १ अभिव्यक्तियोग्य प्रकट करने लायक। २ जो सम्यक् आवर्त्तन लाया जाय जो अच्छी तरह काबूमें किया जाय।

समुन्मुख (स० त्रि०) उन्मुख।

समुन्मिश्र (स० त्रि०) उन्मिश्र, मिला हुआ।

समुन्मूलन (स० क्ली०) सम्यक् रूपसे उन्मूलन, नाश, बरबादी।

समुपक्रम (स० पु०) सम् उप क्रम घञ्। सम्यक् उपक्रम, आरम्भ।

समुपगन्तव्य (स० त्रि०) गमनकर्त्तव्य, जानेयोग्य।

समुपचार (स० पु०) सम् उप चर घञ्। सम्यक् उपचार, पूजा।

समुपचित (स० त्रि०) सम् उप चि क्त। १ वृद्धिप्राप्त बढ़ाया हुआ। २ गृहीत, लिया हुआ।

समुपच्छाद (स० पु०) सम् उप छद् घञ्। सम्यक् आच्छादन, बिलकुल ढका हुआ।

समुपजोषम् (स० अव्य०) सम् उप जुष अम्। १ आनन्द पूर्वक। २ भाग्यक्रमसे सौभाग्यवशत। यह शब्द तालव्य शकार भी होता है।

समुपधान (स० क्ली०) १ उत्पादन, जनन। २ स्थापन, रखना।

समुपभोग (स० पु०) सम् उप भुज घञ्। सम्यक् उपभोग।

समुपवेश (स० पु०) १ अभ्यर्थना, आदर सत्कार। २ बैठानेकी क्रिया।

समुपवेशन (स० क्ली०) सम् उप विश ल्युट्। १ अच्छी तरह बैठानेकी क्रिया। २ अभ्यर्थना।

समुपलम्भ (स० पु०) स्पर्श करनेकी क्रिया।

समुपस्था (स० स्त्री०) सम् उप स्था अङ्। १ नैकट्य समीपता। २ घटना।

समुपहव (स० पु०) होमादिके द्वारा देवादिको आमन्त्रण करना।

समुपहार (स० पु०) १ लुका चोरीकी तरह एक प्रकारका खेल। २ गुप्तस्थान। ३ छिपानेका स्थान।

समुपानयन (स० क्ली०) सम् उप आ नी ल्युट्। सम्यक् रूपसे उपानयन।

समुपामिच्छाद (स० पु०) समुपच्छाद।

समुपार्जन (स० क्ली०) सम् उप अर्ज ल्युट्। सम्यक् उपार्जन। (मनु ७।१५२)

समुपालम्भ (स० पु०) सम् उप आ लम्भ घञ्। १ सम्यक् उपालम्भ, तिरस्कार। २ मरोपरावध, क्रोधयुक्त वचन।

समुपेक्षक (स० त्रि०) समुपेक्षाकारी, उपेक्षा करनेवाला। जो ब्राह्मण दीन दुःखियोंकी उपेक्षा करता है उसकी तपस्या विनष्ट होती है।

समुपेत (स० त्रि०) सम् उप इण क्त। समागत आया हुआ।

समुपेयिवस् (स० त्रि०) सम् उप इण क्वसु। १ गमनकर्त्ता, गमनविशिष्ट २ उपस्थित। ३ प्राप्त।

समुपेप्सु (स० त्रि०) सम् प्राप्तुमिच्छु सम् उप आप सन् उ। सम्यक् प्रकारसे पानेमें इच्छुक।

समुपोढ़ (स० त्रि०) सम् उप वह क्त। १ समागत। २ सङ्गत। ३ सञ्जात। ४ समुदित। ५ दायन, दवा रखना।

समुपोलक (स० त्रि०) सम्यक् रूपसे उपवासकारी।

समुल्लसत् (स० त्रि०) सम् उत् लस शतृ। १ सम्यक् उल्लासयुक्त आनन्दित। २ दीप्तिविशिष्ट, चमकता हुआ।

समुल्लसित (स० त्रि०) सम् उत् लस क्त। १ उल्लासयुक्त, आनन्दित। २ शोभित। ३ क्रीडाशाल।

समुल्लास (स० पु०) सम् उत् लस घञ्। १ सम्यक् उल्लास आनन्द, प्रसन्नता, खुशी। ५ ग्रन्थ आदिका प्रकरण या परिच्छेद।

समुल्लासिन् (स० त्रि०) सम् उत् लस णिनि। हर्षविशिष्ट आनन्दित।

समुल्लिखत् (स० त्रि०) सम् उत् लिख शतृ। पादादि द्वारा भूमिखननकर्त्ता, पैरोंसे जमीन कोड़नेवाला।

समुल्लेख (स० पु०) सम् उत् लिख घञ्। समुल्लेखन।

समुल्लेखन (स० क्ली०) सम् उत् लिख ल्युट्। १ सम्यक्रूपसे उल्लेख, कथन। २ खनन खोदना। ३ कुन्दन, खालिस सोना। ४ छिलना।

समुत्तरण (सं० त्रि०) १ सम्यक् उत्तरण, विलक्षण। २ पुष्ट देह, तगड़ा शरीर।

समुष्ण (सं० त्रि०) १ सम्यक् उष्ण, खूब गरम। २ दीप्तिशील, चमकता हुआ।

समुत्फल (सं० त्रि०) सम्यक् उत्तफल।

समुह्यपुरीष (सं० पु०) अग्नि, आग।

समूढ (सं० त्रि०) सम्-वह-क्त। १ पुञ्जित, ढेर लगाया हुआ। २ धृत, पकड़ा हुआ। ३ सञ्चित, एकत्र किया हुआ। ४ भुक्त, भोगा हुआ। ५ विवाहित, जिसका विवाह हो चुका हो। ६ परिष्कृत, साफ किया हुआ। ७ शोधित, संशोधन किया हुआ। ८ सद्यो-जात, जो अभी उत्पन्न हुआ हो। ९ दमित, दमन किया हुआ। १० अनुपद्रुत। ११ सङ्गत, ठीक। १२ मूढ, बेवकूफ।

समूर (सं० पु०) मृगभेद, शंबर या साबर नामक हिरन।

समूरु (सं० पु०) समूर देखो।

समूल (सं० त्रि०) मूलेन सह वर्त्तमान'। १ मूलके साथ, मूलयुक्त, जड़वाला। २ कारणविशिष्ट, जिसका कोई हेतु हो। (क्रि० वि०) ३ मूल सहित, जड़से।

समूलक (सं० त्रि०) समूल-स्वार्थे-कन्। समूल, मूलके साथ।

समूलकाष (सं० अव्य०) समूलं कषति (निमूलसमूलयोः कषः। पा ३।४।३४) इति णमुल्। मूलके साथ हनन, जड़से उखाड़ डालना। "अविद्यादयः पञ्चक्लेशाः समूल-काषं कषिता भवन्ति" (सर्वदर्शनस०) इस शब्दके बाद कष धातुका अनुप्रयोग होता है।

समूलघाति (सं० अव्य०) समूलं हन्ति समूल-हन (समूलाकृतजीवेषु हन् कृञ् ग्रहः। पा ३।४।३६) णमुल्। मूलके साथ हननकारी, जड़से नाश करनेवाला।

समूह (सं० पु०) समूह्यते इति सम्-ऊह-घञ्। १ समुदाय, झुंड, गरोह। २ एक ही तरहकी बहुत-सी चीजों का ढेर, राशि।

समूहक (सं० पु०) समूह-स्वार्थे-कन्। समूह देखो।

समूहगन्ध (सं० पु०) गन्धराज, मोतिया नामक फूल।

समूहन (सं० त्रि०) १ समाहरणकारी, नाश करनेवाला। २ उत्मारण। ३ समूह तर्क।

समूहनी (सं० स्त्री०) समूह्यतेऽनयेति सम्-ऊह-ल्युट्, स्त्रियां ङीप्। सम्मार्जनी, झाड़ू।

समूह्य (सं० पु०) समूह्यते इति सम्-ऊह-ण्यत्। १ यज्ञाग्नि, पर्याय—परिचाय्य, उपचाय्य। (त्रि०) २ सम्यक् ऊहयोग्य, तर्क करनेके लायक, ऊहा करनेके योग्य।

समृज्ञीक (सं० त्रि०) सत्त्वशुद्धिविशिष्ट। मृज्ञोका शब्दका अर्थ सत्त्वशुद्धि है, उसके उद्देशसे उसके लिये किये जानेवाले कार्योंको समृज्ञीक कहते हैं।

समृत (सं० त्रि०) सम-ऋ-क्त। संप्राप्त।

समृति (सं० स्त्री०) सम-ऋ-क्तिन्। संप्राप्ति।

समृद्ध (सं० त्रि०) सम्-ऋधु वृद्धौ क्त। १ समृद्धियुक्त, जिसके पास बहुत अधिक संपत्ति हो, धनवान्। २ उत्पन्न, जात। (पु०) ३ महाभारतके अनुसार एक नागका नाम।

समृद्धि (सं० स्त्री०) सम्-ऋध-क्तिन्। १ सम्यक् वृद्धि, अतिशय सम्पत्ति, ऐश्वर्य, अमीरी। पर्याय—पद्मा, विधा, सम्पत्ति, ऐश्वर्य, उन्नति, वृद्धि, श्रेयः, मङ्गल। २ कृतकार्यता, सफलता। ३ प्रभाव, आधिपत्य।

समृद्धिन् (सं० त्रि०) वर्द्धनशील, जो बराबर अपनी समृद्धि बढ़ाता रहता हो।

समृद्धिमत् (सं० त्रि०) समृद्धि अस्त्यर्थे मतुप्। समृद्धिविशिष्ट।

समृध् (सं० त्रि०) सम्-ऋध-क्विप्। समृद्ध, समृद्धि-विशिष्ट।

समृध (सं० त्रि०) सम्-ऋध-क। समृद्ध।

समेटना (हिं० क्रि०) १ बिखरी हुई चीजोंको इकट्ठा करना। २ अपने ऊपर लेना।

समेडी (सं० स्त्री०) स्कन्दमातृभेद। (भारत ९ प०)

समेत (सं० त्रि०) सम्-आ-इण-क्त। १ सम्यक् प्राप्त। २ संयुक्त, मिला हुआ। (अव्य०) ३ सहित, साथ। (पु०) ४ पुराणानुसार एक पर्वतका नाम।

समेतम् (सं० अव्य०) युक्तभावमें।

समेद्धृ (सं० त्रि०) सम्-इध-तृच्। प्रबोधक।

समेध (सं० त्रि०) १ यज्ञयोग्य, हविर्भागयुक्त (ऐतरेब्राह्मण) (पु०) २ मेरुके अन्तर्गत एक पर्वतका नाम।

समेधन (सं० क्ली०) सम् एध ल्युट्। सम्यक् वर्द्धन अतिशय वर्द्धन।

समेधित (सं० त्रि०) सम् एध क्त। सम्यक् वर्द्धित।

समेश्वरी (सोमेश्वरी)—आसाम प्रदेशके गारोहिल विभागमें प्रवाहित एक नदी। उस देशके वासिन्दे इसे सममाग कहते हैं। तुरा शैलमालाके तुरा नामक एक बड़े गाँवके पाससे निकल कर यह क्रमशः उक्त पर्वतके उत्तरसे होती हुई पूरबकी ओर बह चली है। यहांसे दक्षिणाभिमुखी हो कर बङ्गालके मैमनसिंह जिलेके समतल प्रान्तर होती हुई अन्तमें सुमङ्ग परगनेकी कंस नदीमें आ मिली है।

गारो पहाड़ी प्रदेशकी यह एक प्रधान नदी है। उक्त पहाड़ी प्रदेशमें इस नदी वक्षसे प्रायः २० मील तक पण्यद्रव्य ले कर जाया जाता है। सिजू नामक स्थानसे उत्तर दानेदार पत्थरका पहाड़ रहनेसे नदीकी धारा थोड़ी रुक सी गई है, इस कारण यहां कितना लंबा प्रपात देखा जाता है। इस प्रपातके तीव्र होनेसे नीचेसे नावें ऊपरको नहीं उठ सकती। उसके उत्तरदेशके अधिवासी छोटी छोटी नावें ले कर यातायात करते हैं। समेश्वरी उपत्यकाके जिस स्थानमें यह नदी दानेदार पत्थरसे हो कर बह चली गई, वहां बहुत सी कोयलेकी खान हैं। नदीके दोनों किनारे जगह जगह पर चूने पत्थरका स्तर भी देख पड़ता है। इन सब स्तरोंमें बहुतेरी गुफाएं हैं। कोई कोई गुफा तो ऐसा कौतुकावह है, कि परिदर्शकगण उसे देख विस्मित हो जाते हैं। जहांसे यह नदी निकलती है, उसके निकट इसका दृश्य परम रमणीय है। इस नदीमें बड़ी बड़ी मछलियां होती हैं जिसे गारो लोग पकड़ते और खाते हैं।

समोकस (सं० त्रि०) सम् समान ओकस् वासस्थान यस्य। समान निवास समान वासयुक्त।

समोद—राजपूतानेके जयपुर राज्यके अन्तर्गत एक नगर। समोद जमींदारीमें यह एक वाणिज्य प्रधान स्थान है। नगर खूब समृद्धिशाली है। जयपुरराजके प्रधान प्रधान सामन्तोंमें यहांके ठाकुर एक हैं। राठोर राजसरदारसे समोदपतियोंका पदोच्च सम्मान था तथा वे लोग सच्चे राजपूत और कहलाते थे। अभी जिस शैलपादमूलमें समोद नगर अवस्थित है उस शैलशृङ्ग पर एक दुर्ग बना कर समोदपतिने अपनी रक्षा और बलकी रक्षा की थी।

समोदक (सं० क्ली०) समं उदकं यत्र। १ मथिताख्यदधि, वह मट्ठा जिसमें आधा जल रहता है। पर्याय—उदश्वित्। (त्रि०) २ समान उदकविशिष्ट, जिसमें बराबर जल हो।

समोह (सं० पु०) १ संग्राम, युद्ध, लड़ाई। (त्रि०) २ मोहके साथ वर्त्तमान, मोहयुक्त, मोहविशिष्ट।

सम्प (सं० पु०) पतन, गिरना।

सम्पक्व (सं० त्रि०) सम् पच क्त। पक्व, जो अच्छी तरह पकाया गया हो।

सम्पत्ति (सं० स्त्री०) सम् पद क्तिन्। १ विभवोत्कर्ष। पर्याय—श्री लक्ष्मी, सम्पद्, ऋद्धि, भूति, धन, ऐश्वर्य। २ शोभा। ३ गुणोत्कर्ष। ४ गौरव। ५ अधिकता, बहुतायत। ६ प्राप्ति, लाभ। ७ सफलता, पूर्णता।

सम्पत्तिक (सं० त्रि०) सम्पत्तिविशिष्ट, धनवान्।

सम्पत्प्रद (सं० पु०) पितरोंको फल देनेका एक भेद।

सम्पत्प्रद (सं० त्रि०) सम्पत् प्रददातीति प्र दा क। सम्पत्ति प्रदानकारी जायदाद दान करनेवाला।

सम्पत्प्रदाभैरवी (सं० स्त्री०) भैरवीविशेष। इस भैरवीकी उपासना कर सिद्धिलाभ करनेसे सम्पद् लाभ होती है। इसीसे इसका नाम सम्पत्प्रदा भैरवी हुआ है। इस भैरवीकी पूजा त्रिपुरा भैरवीकी तरह करनी होती है। केवल मन्त्रमें प्रभेद है। त्रिपुरा भैरवीके जो पीठ पूजनादि कहे गये हैं उसीके अनुसार पूजा करे। इनका ध्यान इस प्रकार है—

"आताम्राकसहस्राभां स्फुरच्चन्द्रकलाजटां।
किरीटरत्नविलसच्चित्रचित्रमौक्तिकां॥
स्रवद्रुधिरपङ्काढ्यमुण्डमालाविराजितां।
नयनत्रयशोभाढ्यां पूर्णेन्दुवदनान्विताम्॥
मुक्ताहाररत्नराजत् पीनोन्नतघटस्तनां।
रक्ताम्बरपरीधानां यौवनामदरूपिणीम्॥
पुस्तकञ्चाभयं वामे दक्षिणे चाक्षमालिकां।
वरं दधतीं भजे सम्पत्प्रदां स्मरेत्॥" (तन्त्रसार)

इस ध्यानसे देवीकी पूजा करे, त्रिपुराभैरवीकी पूजाके साथ केवल अङ्गन्यासमें कुछ प्रभेद है। इस भैरवी मन्त्रका पुरश्चरण १ लाख जप और जपका दशांश

होम होता है। दूसरे तन्त्रमें लिखा है, कि एक लाख जपसे भी यह मन्त्र पुरश्चरण हो सकता है।

विशेष विवरण तन्त्रसार शब्दमें देखो।

सम्पद् (सं० स्त्री०) सम्-पद्-क्विप्। १ सम्पत्ति, जायदाद। २ सिद्धि, पूर्णता। ३ ऐश्वर्य, वैभव, गौरव। ४ सौभाग्य, अच्छे दिन। ५ प्राप्ति, लाभ, फायदा। ६ अधिकता, बहुतायत। ७ मोतियोंका हार। ८ वृद्धि नामकी ओषधि।

सम्पद (सं० क्ली०) सम्यक्पदं यत्र। समपदयुग, दोनों पैर जोड़ कर खड़ा होना।

सम्पदा (हिं० स्त्री०) १ धन, दौलत। २ ऐश्वर्य, वैभव।

सम्पदी (सं० पु०) बौद्ध सम्राट् अशोकके एक पुत्रका नाम।

सम्पद्वर (सं० पु०) सम्-पद्-ष्वरच्। राजा, नरपति।

सम्पद्वसु (सं० पु०) सूर्यरश्मिभेद। (विष्णुपु०)

सम्पद्विपद (सं० क्ली०) सम्पदां विपदां समाहारः (द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात् समाहारो। पा ५।४।१०६) इति समाहारे टच्, क्लीवत्वं। सम्पद् और विपद्का समाहार, सम्पद् और विपद्का एकत्र मिलन।

सम्पन्न (सं० त्रि०) सम्-पद्-क्त। १ साधित, पूरा किया हुआ। (पञ्चदशो ८।८१) पर्याय—समग्र, सम्पूर्ण, निष्पन्न, सम्पादित। २ सहित, युक्त, भरा पूरा। ३ सम्पत्तियुक्त, दौलतमन्द। ४ जिसे कुछ कमी न हो, धन धान्यसे पूर्ण, खुशहाल। (पु०) ५ सुस्वादु भोजन, व्यञ्जन।

सम्पन्नक्रम (सं० पु०) बौद्ध-समाधिभेद। (तारनाथ)

सम्पन्नक्रम (सं० पु०) एक प्रकारको समाधि।

सम्पन्नता (सं० स्त्री०) सम्पन्नस्य भावः तल्-टाप्। सम्पन्नका भाव या धर्म, सम्पूर्णता।

सम्पर (सं० स्त्री०) परवर्ती काल। (पा ४।२।८०)

सम्पराय (सं० पु०) सम्यक् परे काले ईयते इति इण-घञ्। १ आपत्, दुर्दिन। २ युद्ध, समर। ३ उत्तरकाल, भविष्य। ४ सन्तान। ५ मृत्यु, मौत। ६ अनादि कालसे स्थिति।

सम्परायक (सं० क्ली०) युद्ध, समर, लड़ाई।

सम्परायिक (सं० क्ली०) युद्ध, समर, लड़ाई।

सम्परिग्रह (सं० पु०) सम्-परि-ग्रह-अप्। १ सम्यक् रूपसे परिग्रह, स्वीकार। २ विवाह, शादी।

सम्परिपालन (सं० क्ली०) सम-परि-पालि-ल्युट्। सम्यक् रूपसे परिपालन।

सम्परिप्रेप्सु (सं० त्रि०) परिदर्शनेच्छुक, देखनेका अभिलाषी।

सम्परिमार्गन (सं० क्ली०) अन्वेषण, तलाश।

सम्परिशोषण (सं० क्ली०) सम्यक् शोषण, क्षय, लोप।

सम्परीय (सं० त्रि०) सम्पर सम्बन्धीय।

सम्पर्क (सं० पु०) सम्-पृच-घञ्। १ मिश्रण, मिलावट। २ संयोग, मिलाप, मेल। ३ संसर्ग, वास्ता, लगाव। ४ मैथुन, रति। ५ स्पर्श, सटना। ६ योग, जोड़।

सम्पर्किन् (सं० त्रि०) सम्-पृच-सम्पर्क (सम्पृचेति। पा ३।२।१४२) इति घिनुण् वा सम्पर्क, अस्त्यर्थे इन्। संपर्क-विशिष्ट, संपर्कयुक्त।

सम्पर्कीय (सं० त्रि०) १ सम्पर्कयुक्त। २ संपर्क सम्बन्धीय।

सम्पर्यासन (सं० क्ली०) सम्यक् परिवर्त्तन।

सम्पवन (सं० क्ली०) पूतकरण, पवित्र करना।

सम्पा (सं० स्त्री०) सम्पतनोति सम्-पत-ड, टाप्। क्षणप्रभा, विद्युत्, बिजली।

सम्पाक (सं० पु०) सम्यक् पाको यस्य। १ आरग्वध वृक्ष, अमलतास। २ सम्यक् परिपक्व, अच्छी तरह पकना। ३ तर्क करनेवाला। (त्रि०) ४ धृष्ट। ५ लम्पट। ६ अल्प। ७ तर्ककारी।

सम्पाचन (सं० क्ली०) सम्यक् पक्व, अच्छी तरह पकना।

सम्पाट (सं० पु०) १ तर्क, तकला। २ किसी त्रिभुजकी बढ़ी हुई भुजा पर लंबका गिरना।

सम्पाठ्य (सं० त्रि०) सम-पठ-ण्यत्। सम्यक् रूपसे पाठनके योग्य, पढ़ने लायक।

सम्पात (सं० पु०) सम्-पत-घञ्। १ एक साथ गिरना या पड़ना। २ गमन, जाना। ३ प्रवेश, पहुँच। ४ समूह, ढेर। ५ पक्षियोंकी गतिविशेष। ६ संसर्ग, मेल। ७ संगम, समागम। ८ संगमस्थान, मिलनेकी

जगह। ९ वह स्थान जहां एक रेखा दूसरी पर पड़े या मिले। १० कुदान, उछाल। ११ युद्धका एक भेद। १२ पतित होना, हाना। १३ द्रव पदार्थके नीचे बैठे हुए वस्तु, तलछट। १४ अवशिष्ट भाग, व्यवहारसे बचा हुआ भाग।

सम्पातवत् (स० त्रि०) प्रस्तुत तैयार।

सम्पाति (स० पु०) १ अरुण पुत्र, पक्षिविशेष जटायुका बड़ा भाई। अरुणके दो पुत्र थे, सम्पाति और जटायु। अरुणकी पत्नीका नाम श्येनी था। इस श्येनीके गर्भसे महाबलिष्ठ दो पुत्र उत्पन्न हुए, बड़ा सम्पाति और छोटा जटायु। ये दोनों पक्षी चिरजीवी थे। वृत्रका विनाश इनके पर जल गये। रामायणमें लिखा है, कि पुरा कालमें इन्द्र द्वारा वृत्रासुर मारे जाने पर सम्पाति और जटायु इन्द्रको जीतनेके लिये सुरपुरमें गये। वहां ये युद्ध करते करते सूर्यके सामने जा गये। जटायु सूर्यकी प्रखर किरण सह न सकनेके कारण छटपटाने लगा। इस पर सम्पातिने जटायुको निष्ठुर देख भ्रातृ स्नेहसे उसे ढक दिया। सम्पाति भी दग्धपक्ष हो विन्ध्य पर आ गिरा।

वानरगण जब सीताकी तलाशमें निकले, तब उन्होंने रावण कर्त्तृक सीताहरणका वृत्तान्त सम्पातिसे ही सुना था। रामायणके किष्किन्धाकाण्डमें ५६ सर्गसे ६२ सर्ग तक इसका विवरण आया है।

जटायुस् शब्द देखो।

सम्पातिक (स० पु०) सम्पाति स्वार्थे कन्। गरुड़का बड़ा भाई।

सम्पातिन् (स० त्रि०) सम्-पत-णिनि। सम्यक् पतन शील एक साथ कूदने या भपटनेवाला।

सम्पाद (स० पु०) सम्-पद घञ्। सम्यक् निष्पादन अच्छी तरह करना।

सम्पादक (स० त्रि०) सम्पादयति सम्-पद-णिच्-ण्वुल्। १ सम्पादन करनेवाला कोई काम पूरा करनेवाला। २ प्रस्तुत करनेवाला, तैयार करनेवाला। ३ प्रदान करनेवाला, प्राप्त करनेवाला। ४ किसी समाचार पत्र या पुस्तकको क्रम आदि लगा कर निकालनेवाला एडिटर।

सम्पादकत्व (स० पु०) सम्पादन करनेका भाव या अवस्था।

सम्पादकीय (स० त्रि०) सम्पादक सम्बन्धी, सम्पादकका।

सम्पादन (स० क्ली०) सम्-पद णिच् ल्युट्। १ निष्पादन किसी कामको पूरा करना। २ प्रस्तुत करना। ३ उपार्जन, हासिल करना। ४ ठीक करना, दुरुस्त करना। ५ किसी पुस्तक या समाचारपत्र आदिका क्रम, पाठ आदि लगा कर प्रकाशित करना।

सम्पादनीय (स० त्रि०) सम्-पादि अनीयर्। सम्पादनके योग्य, सम्पादनके लायक।

सम्पादयितृ (स० त्रि०) सम्-पादि तृच्। सम्पादनकारी, सम्पादन करनेवाला।

सम्पादित (स० त्रि०) सम्-पादि क्त। १ निष्पादित, पूर्ण किया हुआ। २ प्रस्तुत, तैयार। ३ क्रम, पाठ आदि लगा कर ठीक किया हुआ।

सम्पादिन् (स० त्रि०) १ सम्पादनकारी, सम्पादन करनेवाला। २ शोभाविशिष्ट शोभासम्पन्न।

सम्पाद्य (स० त्रि०) सम्-पादि-यत्। १ सम्पादन करनेके योग्य। २ जिस प्रतिज्ञामें कोई क्रियासाधन उद्देश रहे। ज्यामिति शास्त्रकी उद्देशसाधक प्रतिज्ञा (Problem) कहलाता है।

सम्पार (स० पु०) राजभेद सन्नतके पुत्र और पारके भाई। (विष्णुपु० ४।१९।१२)

सम्पारण (स० त्रि०) सम्यक् पूरक, पूरा करनेवाला।

सम्पालित् (स० त्रि०) गवांसम्यनक्षत्रका सम्यक् पार लगनेवाला। (ऋग्वेदभा० ४।११)

सम्पावन (स० क्ली०) सम्यक् पवित्र।

सम्पार्श्वपद्य (स० क्ली०) सामभेद।

सम्पिण्डित (स० त्रि०) सम्यक् पिण्डाकृत, एकत्र मिलित, युक्त।

सम्पान (हि० पु०) एक प्रकारका बांस जिसका टोकरा बनता है। यह आसाम पहाड़ियोंमें होता है।

सम्पिधान (स० क्ली०) सम्-अपि धा-ल्युट्। सम्यक् पिधान आच्छादन।

सम्पिन्व (स० त्रि०) सम्यक् पाता।

सम्पीड़ (स० पु०) सम्-पीड़ अच्। सम्पीड़न अत्यन्त पीड़ा, बहुत तकलीफ।

सम्प्रत्यय (सं० पु०) सम्-प्रति-इ-अच्। १ सम्यक् प्रत्यय, ज्ञान, ठीक ठीक समझ। २ स्वीकृति, मंजूरी। ३ दृढ़ विश्वास, पूरा यकीन। ४ भावना, विचार।

सम्प्रदातन (सं० पु०) इक्कीस नरकोंमेंसे एक।

सम्प्रदातृ (सं० त्रि०) सम्-प्र-दा-तृच्। सम्प्रदानकर्त्ता, दान करनेवाला।

सम्प्रदान (सं० पु०क्ली०) सम्-प्र-दा-ल्युट्। १ सम्यक् प्रकारसे दान, अच्छी तरह दान देनेकी क्रिया या भाव। जो दान करते हैं, उन्हें कर्त्ता और जिन्हें दान किया जाता है, उन्हें सम्प्रदान कहते हैं।

पूजा और अनुग्रहकी कामना करके जो दान किया जाता है और उससे यदि उसका स्वामित्व लाभ हो, तो उसे सम्प्रदान कहते हैं।

कन्यासम्प्रदान स्थलमें पिता स्वयं दान करें। यदि वे दान न कर सकें, तो पितामह, भ्राता, सपिण्डज्ञाति, सकुल्य ज्ञाति, मातामह या मामा कन्यादान करें। इन सबोंका यदि अभाव हो, तो तत्सजातिको कन्यादान करना चाहिये। (उद्वाहतत्त्व) विवाह शब्द देखो।

२ दीक्षा, मन्त्रोपदेश। ३ भेंट, नजर। ४ व्याकरण में एक कारक जिसमें शब्द, 'देना' क्रियाका लक्ष्य होता है। हिन्दीमें इस कारकके चिह्न 'को' और 'के लिये' हैं।

सम्प्रदानीय (सं० त्रि०) सम्-प्र-दा-अनीयर्। सम्प्रदानके योग्य, दान देने लायक।

सम्प्रदाय (सं० पु०) सम्-प्र-दा-घञ् (आतो युक् चिनकृतोः। पा ७।३।३३) १ गुरुपरंपरागत उपदेश, गुरुमन्त्र। पर्याय—आम्नाय। (भरत)

२ गुरुपरंपरागत सदुपदिष्ट व्यक्तिसमूह। जैसे—वैष्णव सम्प्रदाय, शाक्तसंप्रदाय। लोगोंको गुरुपरंपरासे विष्णु या शक्ति विषयमें उपदेश दिया जाता है। ३ दल, सजातीय।

संप्रदायहीन जो मन्त्र है, वह निष्फल है। कलिमें चार संप्रदाय हैं, यथा—श्री, माध्व, रुद्र और सनक। ये चारों वैष्णव संप्रदाय हैं। तन्त्रमें सौर, गाणपत्य और वैष्णव आदि संप्रदायोंका भी विषय लिखा है। ४ दाता, देनेवाला। ५ कोई विशेष धर्मसंबन्धी मत। ६ मार्ग, पथ। ७ रीति, परिपाटी।

सम्प्रदायी (सं० त्रि०) १ संप्रदायविशिष्ट, मतावलम्बी। २ दाता, देनेवाला। ३ सिद्ध करनेवाला, करनेवाला।

सम्प्रधारण (सं० क्ली०) सम्-प्र-धृ-णिच्-ल्युट्। संप्रधारण, उचित अनुचितका विचार।

सम्प्रधारणा (सं० स्त्री०) सम्-प्र-धृ-णिच्-युच् टाप्। कर्त्तव्याकर्त्तव्य निर्णय, उचित अनुचितका विचार। पर्याय—समर्थन।

सम्प्रधार्य (सं० त्रि०) संप्रधारणयोग्य।

सम्प्रपद (सं० क्ली०) सम्-प्र-पद-भावे-क। भ्रमण, पर्यटन।

सम्प्रपुष्पित (सं० त्रि०) प्रचुर पुष्पयुक्त, जिसमें खूब खिले हुए फूल हों।

सम्प्रभव (सं० पु०) सम्-प्र-भू-अप्। सम्यक् उत्पत्तिविशिष्ट।

सम्प्रमर्द्दन (सं० पु०) विष्णु।

सम्प्रमाद (सं० पु०) सम्-प्र-मद्-घञ्। सम्यक् प्रमाद, मोह, भ्रान्ति।

सम्प्रमुक्ति (सं० स्त्री०) सम्-प्र-मुच्-क्तिन्। सम्यक् मुक्ति, मोचन, छुटकारा।

सम्प्रमेह (सं० पु०) प्रमेह रोग। प्रमेह देखो।

सम्प्रमोद (सं० पु०) सम्यक् आमोद।

सम्प्रमोष (सं० पु०) सम्-प्र-मुष-घञ्। चोरी, चोरी।

सम्प्रमोह (सं० पु०) सम्यक् मोह, मानसिक विकृति।

सम्प्रयाण (सं० क्ली०) सम्-प्र-या-ल्युट्। सम्यक् गमन, स्वर्गारोहण, महाप्रस्थान।

सम्प्रयास (सं० पु०) सम्-प्र-यस्-घञ्। सम्यक् प्रयास, अत्यन्त यत्न, बहुत कोशिश।

सम्प्रयुक्त (सं० त्रि०) १ जोड़ा हुआ, एक साथ किया हुआ। २ जोता हुआ, नधा हुआ। ३ संबद्ध, मिला हुआ। ४ भिड़ा हुआ। ५ व्यवहारमें लाया हुआ।

सम्प्रयोग (सं० पु०) सम्-प्र-युज्-घञ्। १ निधुवन, रति, रमण। २ जोड़नेकी क्रिया या भाव, एक साथ करना। ३ संयोग, मेल, मिलाप। ४ धनादिका विनियोग। ५ सापेक्षता। ६ इन्द्रजाल। ७ वशीकरण आदि कार्य। ८ नक्षत्रसे चन्द्रमाका योग। (त्रि०) ९ अर्थित, प्रार्थित।

सम्प्रयोगिन् (स० पु०) सम्प्रयोगोऽस्यास्तीति इनि। १ कन्दर्पि कामुक नट। (त्रि०) २ प्रयोगकर्त्ता। ३ ऐन्द्रजालिक।

सम्प्रयोजन (स० पु०) अच्छी तरह जोड़ना या मिलाना।

सम्प्रयोज्य (स० पु०) सम्-प्र युज यत्। प्रयोगार्ह, जोड़ने लायक।

सम्प्रलाप (स० पु०) सम् प्र-लप-घञ्। सम्यक् प्रलाप बहुत बकना।

सम्प्रवर्त्तक (स० त्रि०) सम्प्रवर्त्तयतीति सम् प्र वृत्ति ण्वुल्। १ प्रवर्त्तनकारी, चलानेवाला। २ प्रचलनकारी, जारी करनेवाला।

सम्प्रवर्त्तन (स० क्ली०) सम् प्र वृत-ल्युट्। १ प्रवर्त्तन चलाना। २ प्रचलन जारी करना। ३ घुमाना।

सम्प्रवाह (स० पु०) सम् प्र-वह घञ्। प्रवाह, धारा।

सम्प्रवृत्त (स० त्रि०) १ अग्रसर आगे गया हुआ। २ उपस्थित मौजूद। ३ आरम्भ किया हुआ, जारी किया हुआ।

सम्प्रवृत्ति (स० स्त्री०) १ सम्यक् आसक्ति। २ अनुगमनेच्छा, अनुसरण करनेकी इच्छा। ३ विकाश आविर्भाव। ४ उपस्थिति, मौजूदगी। ५ संघटन, मेल।

सम्प्रवृद्धि (स० स्त्री०) सम्यक् प्रवृद्धि बहुत उन्नति।

वनस्पतियोंके फल और पुष्पकी यदि अत्यन्त वृद्धि हो तो शस्य सुलभ होता है अर्थात् अनाज सस्ता मिलता है।

सम्प्रवेश (स० पु०) सम् प्र विश घञ्। सम्यक् प्रवेश।

सम्प्रश्न (स० पु०) सम्यक् प्रश्न उचित सवाल।

सम्प्रश्रय (स० पु०) प्रश्रय, विनय, नम्रता।

सम्प्रसर्पण (स० क्ली०) सम्यक् प्रसर्पण सामनेकी ओर जाना।

सम्प्रसाद (स० पु०) सम्-प्र सद घञ्। १ सम्यक् प्रसाद, चित्तकी प्रसन्नता। २ योगशास्त्रोक्त चित्तकी निर्मलता साधक यत्नविशेष, वह जिसमें चित्तकी प्रसन्नता हो। ३ सुषुप्ति। ४ प्रसन्नता। ५ विश्राम।

सम्प्रसाध्य (स० त्रि०) १ प्रसाधनार्ह। २ सुश्रृङ्खला या सुव्यवस्था स्थापन।

सम्प्रसारण (स० क्ली०) सम् प्र सृ णिच् ल्युट्। १ सम्यक् प्रसारण, विस्तारण बिछाना। २ व्याकरणके मतसे संज्ञाविशेष। इकार, उकार, ऋकार और लृकारकी जगह य व, र और ल होनेको सम्प्रसारण कहते हैं। व्याकरणमें इसका विशेष विधान लिखा है।

सम्प्रसूति (स० स्त्री०) प्रसवकारिणी। जो स्त्री ३। तीन या उससे अधिक सन्तान पैदा करती है उसे सम्प्रसूति कहते हैं। (बृहत्सं० ५८।६२)

सम्प्रस्थित (स० त्रि०) सम् प्र स्था क्त। १ सम्यक् प्रस्थित चलित गत, जो प्रस्थान कर चुके या चले गये हों। २ प्रस्थानोद्यत, चलनेको तैयार।

सम्प्रहर्ष (स० पु०) सम् प्र हृष घञ्। सम्यक् हर्ष बड़ा प्रसन्नता।

सम्प्रहर्षिन् (स० त्रि०) सम् प्र-हृष् णिनि। हर्षविशिष्ट, आह्लादित।

सम्प्रहार (स० पु०) सम्यक् प्रहारेण प्रह्रियतेऽत्रेति सम् प्र-हृ घञ्। १ युद्ध समर, लड़ाई। २ गमन चलना। ३ हनन मारना।

सम्प्रहारि (स० पु०) सम् प्र हृ (बाहुलकाद् भाऽपि। उण ४।१२४ इति उज्ज्वलोक्त्या) इञ्। यधिकस हृति।

सम्प्रहारिन् (स० त्रि०) युद्धकारी, लड़ाई करनेवाला।

सम्प्रहास्य (स० त्रि०) सम्यक् हास्य उपहास, हंसी।

सम्प्राप्त (स० त्रि०) सम् प्र आप क्त। १ सम्यक् प्रकार से प्राप्त पाया हुआ। २ उपस्थित पहुंचा हुआ। ३ कथित, कहा हुआ। ४ घटित, जो हुआ हो।

सम्प्राप्तव्य (स० त्रि०) सम् प्र आप तव्य। सम्यक् रूपसे पानेके योग्य।

सम्प्राप्ति (स० स्त्री०) सम् प्र आप क्तिन्। १ सम्यक् प्रापण प्राप्ति लाभ। २ उपस्थित पहुंचना। ३ सङ्घटित होना। ४ रोगका सन्निकृष्ट कारण। ५ रूपविशिष्ट हो कर रोगकी उत्पत्ति। रोगके पञ्चनिदानमें सम्प्राप्ति एक है। वैद्यकमें इसका लक्षण यों लिखा है—

यथाकारण दूषित दोष ऊर्द्ध्व, अध और तिर्यक्-भावसे प्रसारित हो कर रोग उत्पादन करनेसे उसको सम्प्राप्ति कहते हैं। जाति और आगति इसके काल विशेष द्वारा सम्प्राप्तिका भेद जानना होगा।

सम्प्राप्ति ही रोगज्ञानका कारण है। अतएव एकमात्र

संप्राप्ति द्वारा ही रोगका ज्ञान होता है। अनियमित आहार और विहार द्वारा वातादि दोष कुपित रसको तथा वह कुपित दोष आमाशयमें जा कर रसको दूषित और जठराग्निको वहिष्करणादि द्वारा ज्वरकी उत्पत्तिसे लक्षण प्रकट करते हैं तथा व्याधिकी संख्या, दोष, दोषके अंशांशकी कल्पना, रोगकी प्रधानता, बल और काल ये सभी संप्राप्ति द्वारा जाने जाते हैं। चिकित्सकको चाहिये, कि वे इस संप्राप्तिका विषय अच्छी तरह जान कर चिकित्सा करें। (भावप्र० पूर्वखं०)

निदान, पूर्वरूप, रूप, उपशय और संप्राप्ति इन पांचों द्वारा ही रोगका संपूर्ण ज्ञान होता है। माधव निदानके पञ्चनिदानमें इसका विस्तृत विवरण लिखा है। सुश्रुतमें इसका लक्षण इस प्रकार लिखा है—दोष जिस प्रकार कुपित हो कर शारीरिक अवयवविशेषमें अव स्थान या विचरण कर रोगोत्पादन करता है, उसे संप्राप्ति कहते हैं। संख्या, विकल्प, प्राधान्य, बल और कालानुसार यह संप्राप्ति भिन्न भिन्न प्रकारकी होती है। (सुश्रुत) निदान शब्द देखो।

सम्प्राप्तिद्वादशी (सं० स्त्री०) द्वादशीव्रतविशेष।

सम्प्रार्थना (सं० स्त्री०) सम्यक् रूप प्रार्थना, अरज, विनती।

सम्प्रार्थ्य (सं० त्रि०) सम्-प्र-अर्थि-यत्। सम्यक्रूपसे प्रार्थनीय।

सम्प्रिय (सं० त्रि०) सम्यक् प्रिय, अति प्रिय, बहुत प्यारा।

सम्प्रीणन (सं० क्ली०) सम्-प्री-ल्युट्। सम्यक् प्रीणन, प्रीति, प्रणय।

सम्प्रीति (सं० स्त्री०) सम्-प्री-क्तिन्। १ सम्यक् प्रणय। २ सन्तोष, हर्ष।

सम्प्रीतिमत् (सं० त्रि०) संप्रीति अस्त्यर्थे मतुप्। संप्रीतिविशिष्ट, प्रणययुक्त।

सम्प्रेक्षक (सं० त्रि०) सम्-प्र ईक्ष ण्वुल्। सम्यक्रूपसे दर्शनकारी, सम्यक् द्रष्टा, देखनेवाला।

सम्प्रेप्सु (सं० त्रि०) संप्राप्तमिच्छुः, सं प्र-आप् सन् उ। सम्यक्रूपसे पानेके लिये इच्छुक, सम्यक् लाभ करनेमें अभिलाषी।

सम्प्रेक्षण (सं० पु०) १ सम्यक् दर्शन, अच्छी तरह देखना। २ निरीक्षण, खूब देखभाल करना।

सम्प्रेरण (सं० क्ली०) सम्-प्र ईर ल्युट्। सम्यक् रूपसे प्रेरण, अच्छी तरह भेजना।

सम्प्रेष (सं० पु०) सम्प्रैष देखो।

सम्प्रेषण (सं० पु०) सम्-प्र-इष-ल्युट्। सम्यक् रूपसे प्रेषण, अच्छी तरह भेजना।

सम्प्रेषणी (सं० स्त्री०) मृतकका एक कृत्य जो द्वादशाह को होता है।

सम्प्रैष (सं० पु०) १ यज्ञादिमें ऋत्विजोंका लगाना, नियुक्ति। २ आह्वान, आमन्त्रण।

सम्प्रोक्षण (सं० क्ली०) सम्-प्र उक्ष-ल्युट्। १ सम्यक् प्रोक्षण, खूब पानी छिड़कना। पूजादिमें पशुबद्ध स्थानमें पशु पर पहले विशुद्ध जल द्वारा संप्रोक्षण करना होता है। २ खूब पानी छिड़क कर मन्दिर आदि साफ करना, धोना।

सम्प्लव (सं० पु०) सम्-प्लु-अप्। १ प्रलय। २ चाञ्चल्य, हलचल। ३ इतस्ततः पतन, चारों ओर वर्षण। ४ बन्या, बाढ़। ५ भारी समूह, घनी राशि।

सम्प्लुत (सं० पु०) जलमें तराबोर, डूबा हुआ।

सम्फाल (सं० पु०) सम्यक् फालो गमनं यस्य। मेष, भेड़।

सम्फुल्ल (सं० त्रि०) सम्-फुल क्त (उत्फुल्लसम्फुल्लयोरिति वक्तव्यं। पा ८।२।५५) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या निपातितः। विकसित, प्रफुल्ल, प्रस्फुटित।

सम्फेट (सं० पु०) १ क्रोधसे परस्पर भिड़ना, भिड़न्त। २ नाट्योक्तिमें आस्फालन, क्रोधसे कहना। नाटकमें क्रुद्धसे जो आस्फालन किया जाता है, उसे संफेट कहते हैं।

सम्ब (सं० क्ली०) सम्बति सर्पतीति सम्ब-अच्। १ जल, पानी। २ वारद्वय कर्षण, दो वार जोतना। ३ प्रतिलोमकर्षण, उल्टा जोतना।

सम्बद्ध (सं० त्रि०) सम्-बन्ध क्त। १ बंधा हुआ, जुड़ा हुआ, मिला हुआ, संबन्धयुक्त, मिला हुआ। ३ बन्द। ४ संयुक्त, साथ।

सम्बन्ध (सं० पु०) संबध्यते इति सम्-बन्ध-घञ्।

१ समृद्धि, उन्नति। २ न्याय। ३ गहरा मिलना, बहुत मेल जोल। ४ संसर्ग। यह संसर्ग प्रतियोगी, अनुयोगी, आधार, आधेय, विषय और विषयिभावरूप है। शब्दशक्तिप्रकाशिका और व्युत्पत्तिवाद आदिमें इसका विशेष विवरण दिया गया है।

५ सम्पर्क, लगाव वास्ता। यह तीन प्रकारके कहे गये हैं—विद्याज, यौनिज और प्रीतिज। अध्ययन और अध्यापनादि द्वारा विद्याज सम्बन्ध उत्पत्तिहेतुक यौनिज और परस्परके प्रणयसे प्रीतिज सम्बन्ध होता है। इन तीनके सिवा और किसी प्रकारका सम्बन्ध नहीं है।

६ एक साथ बंधना, जुड़ना या मिलना। ७ एक कुलमें होनेके कारण अथवा विवाह, दत्तक आदि सम्स्कारोंके कारण परस्पर लगाव नाता, रिश्ता। ८ संयोग मेल। ९ विवाह, सगाई। १० ग्रन्थ, पोथी। ११ एक प्रकारकी इति या उपद्रव। १२ किसी सिद्धान्तका हवाला। १३ योग्यता। १४ समीचीनता। १५ उपयुक्तता। १६ व्याकरणके मतसे जन्यजनकादि। १७ व्याकरणमें एक कारक जिसमें एक शब्दके साथ दूसरे शब्दका सम्बन्ध या लगाव सूचित होता है। बहुतसे वैयाकरण 'सम्बन्ध'को शुद्ध कारक नहीं मानते। हिन्दीमें सम्बन्धक चिह्न 'का' 'की' 'के' हैं। (त्रि०) १८ शक्त, कठिन। १९ हित भलाई। २० उपयुक्त, लायक। २१ मिश्रित, मिला हुआ।

सम्बन्धक (सं० पु०) सम्बन्ध स्वार्थे कन्। सम्बन्ध देखो।

सम्बन्धन (सं० क्ली०) सम्-बन्ध ल्युट्। सम्यक् बन्धन, अच्छी तरह बांधनेकी क्रिया।

सम्बन्धयितृ (सं० त्रि०) सम्बन्धकारक।

सम्बन्धातिशयोक्ति (सं० स्त्री०) अतिशयोक्ति अलङ्कारका एक भेद। इसमें असम्बन्धमें सम्बन्ध दिखाया जाता है। अतिशयोक्ति देखो।

सम्बन्धिता (सं० स्त्री०) सम्बन्धिनो भाव तल् टाप्। सम्बन्धित्व सम्बन्धविशिष्टका भाव या धर्म।

सम्बन्धी (सं० त्रि०) सम्बन्धोऽस्यास्तीति इनि। १ सम्बन्धविशिष्ट, सम्बन्ध रखनेवाला, लगाव रखनेवाला। पर्याय—गुणयुत, सयुज्। २ विषयक, सिलसिले या प्रसङ्गका। (पु०) ३ मातृपक्षीय। ४ श्वशुरादि। ५ जामाता, जमाई। ६ श्यालकादि, साला। ७ वैवाहिक। ८ मित्र। ९ विद्वान्। १० रिश्तेदार। ११ जिसके पुत्र या पुत्रीका विवाह हुआ हो, समधी।

सम्बन्धु (सं० त्रि०) १ शोभनबन्धु नातेदार, रिश्तेदार। २ आत्मीय, भाई बिरादर।

सम्बल (सं० क्ली०) १ शाल्मली, सेमलका वृक्ष। २ रास्तेका भोजन, सफर खर्च। ३ गेहूँकी फसलका एक रोग। यह रोग पूरबकी हवा अधिक चलनेसे होता है। ४ संखिया, सोमल क्षार। ५ मत्सर। शम्बल देखो।

सम्बहुल (सं० त्रि०) सम्यक् बहुल, प्रचुर, ज्यादा।

सम्बाकृत (सं० त्रि०) सम्ब कृञ् डाच्। वारद्वयकृष्ट क्षेत्र दो बार जोती हुई जमीन। यह शब्द तालव्य शकारादिमें भी होता है।

सम्बादी—सङ्गीतके मतसे सुरभेद, वादीका सहगामी सुर।

सम्बाध (सं० पु०) सम्यक् बाधा यत्र। १ सङ्कट, कष्ट। २ बाधा अड़चन। ३ भीड़, सङ्घर्ष। ४ भग, योनि। ५ नरकका पथ। (त्रि०) ६ अप्रशस्त, सङ्कीर्ण, तंग। ७ जनतापूर्ण, भीड़से भरा। ८ संकुल, पूर्ण।

सम्बाधक (सं० पु०) १ दबानेवाला सतानेवाला २ बाधा पहुंचानेवाला।

सम्बाधन (सं० क्ली०) सम्यक् बाधनं यत्र। १ मदनका द्वार, योनि, भग। २ शूलाग्र। ३ द्वारपाल। ४ दबाव, रेलपेल। ५ बाधा देना, रोकना।

सम्बुद्ध (सं० त्रि०) सम्-बुध क्त। १ जाग्रत ज्ञानप्राप्त। २ ज्ञानी, ज्ञानवान्। ३ ज्ञात, पूर्ण रूपसे जाना हुआ। (पु०) ४ बुद्धावतार। भगवान् बुद्धदेवको सम्यक् बोध हुआ था, इसीसे उनका नाम सम्बुद्ध हुआ है।

सम्बुद्धि (सं० स्त्री०) सम्-बुध क्तिन्। १ सम्बोधन, आह्वान, दूरसे पुकार। २ आमन्त्रण। ३ दर्शन। ४ विशेषण। ५ पूर्णज्ञान, सम्यक् बोध। ६ बुद्धिमानी, होशियारी।

सम्बुबोधयिषु (सं० त्रि०) सम्यक् बोधलाभ करनेमें इच्छुक।

सम्बृहण (सं० क्ली०) बलस विधान। (चरक ८।४)

सम्बोध (सं० पु०) सम्-बुध-घञ्। १ बोधन, सम्यक् ज्ञान, पूरा बोध। २ पूर्ण तत्त्वबोध, पूरी जानकारी। ३ धीरज, सान्त्वना, ढारस। ४ क्षेप। ५ नाश।

सम्बोधन (सं० क्ली०) सम्-बुध-ल्युट्। १ आह्वान करना, पुकारना। २ जगाना, नींदसे उठाना। ३ व्याकरणमें वह कारक जिससे शब्दका किसीको पुकारने या बुलानेके लिये प्रयोग सूचित होता है। व्याकरणके मतसे सम्बोधनमें प्रथमा विभक्ति होती है। नाटकमें सम्बोधनोक्ति और प्रत्युक्ति आकाश भाषित द्वारा निष्पन्न होती है। ४ जताना, ज्ञान कराना। ५ समझाना, बुझाना।

सम्बोधयितृ (सं० त्रि०) १ सम्बोधनकारी। २ ज्ञानदाता।

सम्बोधि (सं० स्त्री०) सम्यक् ज्ञान, प्रज्ञा।

सम्बोध्य (सं० त्रि०) सम्-बुध-ण्यत्। १ जिसको सम्बोधन किया जाय। २ जिसे समझाया या जताया जाय।

सम्भक्त (सं० त्रि०) सम्-भज-तृच्। सम्यक् विभागकारी, अच्छी तरह बांटनेवाला।

सम्भक्ति (सं० त्रि०) १ सम्यक् विभाजन। २ सम्यक् भक्ति।

सम्भक्ष (सं० पु०) सम्-भक्ष-अच्। सम्यक् भक्षण, अच्छी तरह खाना।

सम्भग्न (सं० त्रि०) १ सम्पूर्ण खण्डित, बहुत टूटा हुआ। २ हारा हुआ। ३ विफल। (पु०) ४ शिवका एक नाम।

सम्भय (सं० पु०) सम्-भी-अच्। सम्यक् भय, बहुत डर।

सम्भर (सं० पु०) १ भरण करनेवाला, पोषण करनेवाला। २ साँभर झील।

सम्भरण (सं० पु०) १ इष्टकाभेद, एक प्रकारकी ईंट जो यज्ञकी वेदीमें लगती थी। २ पालन पोषण। ३ एकत्र करना, जुटाना। ४ योजना, विधान। ५ सामान, तैयारी।

सम्भरणी (सं० स्त्री०) सोमरस रखनेका एक यज्ञपात्र।

सम्भरणीय (सं० स्त्री०) सम्भरणके योग्य।

सम्भल (सं० पु०) १ कन्यार्थी पुरुष, किसी लड़कीसे विवाहकी इच्छा रखनेवाला व्यक्ति। २ चेटक, दलाल। ३ एक स्थान जहां विष्णुयश नामक ब्राह्मणके घर विष्णु दसवां कल्कि अवतार होनेवाला है। इसे कुछ लोग मुरादाबाद जिलेका सम्भल नामका कसबा बतलाते हैं।

सम्भली (सं० स्त्री०) कुटनी, कुटनी, दूती।

सम्भव (सं० पु०) सम्-भू-अप्। १ हेतु, कारण। २ उत्पत्ति, जन्म। ३ सम्भावना, मुमकिन होना। ४ सङ्केत, इशारा। ५ उपाय, तदबीर। ६ युक्ति उपाय। ७ क्षति, ध्वंस। ८ समीचीनता, उपयुक्तता। ९ शक्ति, क्षमता। १० संयोग, समागम मेल। ११ प्रसङ्ग, सहवास। १२ अंटना, समाई। १३ घटित होना, होना। १४ परिमाणका एक होना, एक ही बात होना। १५ वर्त्तमान अवसर्पिणीके दूसरे अर्हत् (जैन)। १६ एक छन्दका नाम।

सम्भवतः (सं० अव्य०) हो सकता है, मुमकिन है।

सम्भवन (सं० क्ली०) १ उद्भावन, जन्म। २ मुमकिन होना, हो सकना। ३ घटित होना, होना। (त्रि०) ४ उत्पन्न होनेके योग्य।

सम्भवनाथ (सं० पु०) वर्त्तमान अवसर्पिणीके तीसरे तीर्थङ्कर।

सम्भवनीय (सं० त्रि०) जो हो सकता हो, मुमकिन।

सम्भवपर्वन् (सं० क्ली०) महाभारतके आदिपर्वमें ६५वां अध्याय।

सम्भविन् (सं० त्रि०) सम्भवनीय, मुमकिन।

सम्भविष्णु (सं० त्रि०) सम्-भू-इष्णुच, सहचरेत्यादि इष्णुच्। १ संभवनशील। २ उत्पादनशील।

सम्भव्य (सं० त्रि०) सम्-भू-यत्। १ संभवनीय, संभव या उत्पत्तिके योग्य, मुमकिन। (पु०) २ कपित्थ, कैथ।

सम्भार (सं० पु०) सम्-भृ-घञ्। १ संग्रह, इकट्ठा करना। २ समूह, राशि। ३ परिपूर्णता, अधिकता। ४ पुष्टिसाधन। ५ पोषण, यज्ञका सामान।

सम्भारिन (सं० त्रि०) संभारविशिष्ट, पूर्ण, भरा हुआ।

सम्भार्य (सं० त्रि०) १ संभरणीय, पालन पोषण करनेके योग्य। (पु०) २ अहीनभेद।

सम्भाव (सं० पु०) अवस्था, दशा।

सम्भावन (सं० क्ली०) संभावयत्यनेनेति सम्-भू णिच्-ल्युट्। १ ख्याति, यश। २ पूजा सत्कार, आदर। ३ चिन्ता, फिक्र। ४ योग्यता, पात्रता, काबिलीयत। ५ स्वीकार, मंजूरी। ६ संपादन। ७ कल्पना, अनु-

मान। ८ किसी बातके हो सकनेका भाव, हो सकना मुमकिन होना। ६ प्रतिष्ठा मान इज्जत। १० एक अलङ्कार जिसमें किसी एक बातके होने पर दूसरी बात का होना निर्भर कहा जाता है। ११ व्याकरणके मतसे क्रियामें योग्यताके अध्यवसायको सम्भावन कहते हैं। (त्रि०) १२ सम्भावक, सम्भावनाकारी।

सम्भावना (सं० स्त्री०) सम्भावन देखो।

सम्भावनीय (सं० त्रि०) सम्-भू-णिच्-अनीयर्। १ सम्भावनीय मुमकिन। २ कल्पनाके योग्य, ध्यान में आने लायक। ३ आदरके योग्य सत्कारके लायक।

सम्भावयितव्य (सं० त्रि०) सम्-भू-णिच्-तव्य। सम्भावनीय, सम्भावनाके योग्य।

सम्भावित (सं० त्रि०) सम्-भू-णिच्-क्त। १ सम्भावनाविशिष्ट कल्पित मनमें माना हुआ। २ उपस्थित किया हुआ जुटाया हुआ। ३ पूजित, आदृत। ४ विख्यात, प्रसिद्ध। ५ सम्भव मुमकिन। (क्ली०) ६ सम्भावनाका विषय, नादेहका विषय।

सम्भावितव्य (सं० त्रि०) १ सम्माननीय, सत्कारके योग्य। २ जिसका सत्कार होनेवाला हो। ३ सम्भव मुमकिन। ४ कल्पना या अनुमानके योग्य।

सम्भाव्य (सं० त्रि०) सम्-भू-णिच्-यत्। १ शक्तियुक्त, प्रमतावान्। २ जो हो सकता हो, मुमकिन। ३ पूजा या सत्कारके योग्य। ४ कल्पना या अनुमानके योग्य।

सम्भाष (सं० पु०) सम्-भाष-घञ्। १ सम्भाषण, कथन। २ वादा करार।

सम्भाषण (सं० क्ली०) सम्-भाष-ल्युट्। कथोपकथन बातचीत। सत्ययुगमें पतितके साथ सम्भाषण करनेसे पातित्य होता था, किन्तु कलियुगमें केवल कर्म द्वारा ही पातित्य होता है।

सम्भाषणीय (सं० त्रि०) सम्-भाष-अनीयर्। सम्भाषणके योग्य जिससे सम्भाषण करना उचित हो।

सम्भाषा (सं० स्त्री०) सम्-भाष-अङ्-टाप्। सम्भाषण।

सम्भाषित (सं० त्रि०) सम्भाषणकारी, कथनवाला बात चीत करनेवाला।

सम्भाष्य (सं० त्रि०) सम्-भाष-यत्। सम्भाषणीय, भाषण करनेके योग्य।

सम्भिन्न (सं० त्रि०) सम्-भिद्-क्त। १ सम्यक् भेद विशिष्ट, भली भांति अलग। २ मिलित मिला हुआ। ३ पूर्ण भाव बिल्कुल टूटा हुआ। ४ विदलित। ५ सङ्कुचित चालित। ६ प्रस्फुटित खिला हुआ। ७ गठा हुआ, ठोस।

सम्भु (सं० त्रि०) सम्भवतीति सम्-भू (विप्रसम्भ्योत्स्वसंज्ञायां। पा ३।२।१८०) इति डु। जनिता, जो सम्भव हो अर्थात् उत्पन्न हो उन्हें सम्भु कहते हैं।

सम्भुज (सं० त्रि०) सन्ततव्यापक या सम्यक् भोगके लिये साधु।

सम्भूत (सं० त्रि०) सम्-भू-क्त। १ एक साथ उत्पन्न। २ उत्पन्न, पैदा। ३ युक्त, सहित। ४ कुछसे कुछ हो गया हुआ। ५ उपयुक्त योग्य।

सम्भूतविजय (सं० पु०) सम्भूतो विजयो यस्य। जैनो की एक श्रुतकेवलि। जैन देखो।

सम्भूति (सं० स्त्री०) सम्-भू-क्तिन्। १ उत्पत्ति, उद्भव। २ योगकी विभूति करामात। क्षमता शक्ति। ४ बढ़ती बरकत। ५ उपयुक्तता, योग्यता। ६ दक्ष प्रजापतिका एक कन्या जो मरीचिकी पत्नी थी।

सम्भूय (सं० अव्य०) एक साथ, एकमें, साझेमें।

सम्भूयसन्धान (सं० क्ली०) संभूय मिलित्वा सन्धान। संधिकरण मेल करना।

सम्भूयसमुत्थान (सं० क्ली०) संभूय मिलित्वा समुत्थान कर्मकरण यत्र। १ मिल कर किया हुआ व्यापार साझेका कारवार। २ वह विवाद या मुकदमा जो साझेदारीमें हो।

सम्भृत (सं० त्रि०) सम्-भृ-क्त। १ सम्यक् पुष्ट खूब मोटा ताजा। २ यत्नसिद्ध, सञ्चित जमा किया हुआ। ३ दिया दिया हुआ। ४ लब्ध, पाया हुआ। ५ परिपूर्ण भरा हुआ। ६ सम्यक् वर्द्धित बढ़ा हुआ। ७ प्रस्तुत, तैयार। ८ सङ्कलित बनाया हुआ। ६ जनित पैदा किया हुआ। १० धृत, पकड़ा हुआ। ११ समान रव। १२ युक्त, सहित। १३ पाला पोसा हुआ। १४ समादृत, जिसका इज्जत की गई हो। (पु०) १५ उच्च स्वर, चाव।

सम्भृतक्रतु (सं० त्रि०) सम्पादितकर्मा जिन्होंने काम कर डाला है। (ऋक् १।५२।८)

सम्भृतश्री (सं० त्रि०) सम्भृता श्रीर्यस्याः। जलद, मेघ।

सम्भृतसम्भार (सं० पु०) संपादित यज्ञोपकरण, वह जिन्होंने यज्ञीय उपकरण संग्रह किया हो।

सम्भृताङ्ग (सं० त्रि०) पुष्टाङ्ग, जो खूब तगड़ा हो।

सम्भृताश्व (सं० त्रि०) पुष्टाश्व, मजबूत घोड़े के साथ।

सम्भृति (सं० स्त्री०) सम्-भृ-क्तिन्। १ सम्यक् भरण-पोषण, खूब पालना पोसना। २ सामान, सामग्री। ३ समूह, भीड़। ४ राशि, ढेर। ५ अधिकता, बहुतायत।

सम्भृत्य (सं० त्रि०) सम्-भृञ् (भृञोऽसंज्ञायां। पा ३।१।११२) क्यप्-तुक् च। सम्भार्य।

सम्भृत्वन् (सं० त्रि०) सम्भरणशील।

सम्भेद (सं० पु०) सम्-भिद् घञ्। १ सङ्गम, नदीसङ्गम। २ सम्यक् भेद, खूब छिदना या भिदना। ३ शिथिल होना, ढीला हो कर विभक्त। ४ वियोग, जुदाई। ५ मिले हुए शत्रुओंमें परस्पर विरोध उत्पन्न करना, भेदनीति। ६ किस्म, प्रकार। ७ भिड़ना, जुटना। ८ आसामके अन्तर्गत एक तीर्थ। यहां शुभवासिनी देवी विद्यमान हैं। (बृहन्नील० २२ अ०)

सम्भेदन (सं० क्लो०) सम्-भिद्-ल्युट्। १ सम्यक् भेदन, खूब छेदना या आर पार घुसाना, धंसना। २ जुटाना, मिलाना, भिड़ाना।

सम्भेद्य (सं० त्रि०) सं-भिद् यत्। सम्भेदयोग्य, छेदनेके लायक।

सम्भोक्तृ (सं० त्रि०) सम्-भुज तृच्। सम्यक् भोग कारी।

सम्भोग (सं० पु०) सम्-भुज् घञ्। १ भोग, किसी वस्तुका भलीभांति उपयोग। २ रतिक्रीडा, सुरत, मैथुन। ३ हर्ष, आनन्द। ४ केलिनागर। ५ शृङ्गारभेद। साहित्यदर्पणमें लिखा है, कि शृङ्गार दो प्रकारका है, यथा विप्रलंभाख्य शृङ्गार और संभोगाख्य शृङ्गार।

जहां विलासी और विलासिनी परस्पर दर्शन और स्पर्शनादि द्वारा अनुरक्त हो कर एक दूसरेको प्यार करता है, वह संभोगाख्य शृङ्गार होता है। इस शृङ्गारके वर्णन करनेमें आपसके चुम्बन, आलिङ्गन, अधरपान, चन्द्र और सूर्यका अस्त, षट्-ऋतुवर्णन, जलकेलि, वनविहार, प्रभात, मधुपान, रात्रिवर्णन, अनुलेपन और वेशभूषादिका वर्णन करना होता है।

विप्रलंभ अर्थात् बिना विरहके संभोगका पुष्टिलाभ नहीं होता, इसलिये संभोगशृङ्गारमें विप्रलंभका वर्णन करना होता है। पहले नायक और नायिकाके मिलने पर पूर्वराग उत्पन्न होता है। यह अनुराग जब प्रबल होता है, तब एक दूसरेसे मिलनेकी कोशिश करता है। किसी मौके पर दोनोंमें भेंट हो जानेके बाद फिर इनका विप्रलंभ अर्थात् विच्छेद होता है। इस विच्छेदके समय आपसका अनुराग अत्यन्त प्रबल हो कर संभोगशृङ्गार पूर्ण होता है।

सम्भोगकाय (सं० पु०) बुद्धभेद।

सम्भोगयक्षिणी (सं० स्त्री०) योगिनीभेद।

सम्भोगवत् (सं० त्रि०) संभोग अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। भोगविशिष्ट, भोगयुक्त।

सम्भोगवेश्मन् (सं० क्ली०) संभोगगृह, रतिगृह, केलिगृह।

सम्भोगिन् (सं० त्रि०) संभोगोऽस्यास्तीति इनि। १ संभोगविशिष्ट, संभोग करनेवाला। (पु०) २ केलिनागर।

सम्भोग्य (सं० त्रि०) सम्-भुज-ण्यत्। १ भोग्य, व्यवहार योग्य। २ जिसका व्यवहार होनेवाला हो, जो काममें लाया जानेवाला हो।

सम्भोज (सं० पु०) भोजन, खाना।

सम्भोजक (सं० त्रि०) १ भोजनकारी, भोजन करनेवाला। २ भोजन परसनेवाला।

सम्भोजन (सं० क्ली०) भोज, दावत। जिन्हें भोजन करानेसे मित्रता होती है, उन्हींका नाम सम्भोजन है। श्राद्धमें ऐसे भोजनको निन्दित बताया है। द्विज श्राद्धकर्ममें कभी भी यह सम्भोजन न करावें। द्विजगण द्वारा मित्रताके कारण जो सम्भोजन अर्थात् गोष्ठी भोजन कराया जाता है, ऋषियोंने उसे पिशाचधर्म बताया है। जो ब्राह्मण श्राद्धमें इस प्रकार भोजन कराते हैं, उन्हें इस लोकमें मित्रतालाभ हो सकता है पर इससे पितरोंका कोई उपकार नहीं होता।

सम्भोजनीय (सं० त्रि०) १ जो खाया जानेवाला हो। २ भक्षणीय, खाने योग्य।

सम्भोज्य (सं० त्रि०) १ जो खाया जानेवाला हो। २ भक्षणीय, खाने योग्य।

सम्भ्रम (सं० पु०) सम्-भ्रम-घञ्। १ भयादि जनित व्यस्तता, डरके मारे व्याकुलता। पर्याय—संवेग आवेग प्रवेग त्वरा, इत्यादि। २ भय डर। ३ सम्मान, आदर। ४ भ्रान्ति, भूल। ५ घूर्णन घूमना चक्कर। ६ उतावली आतुरता। ७ हलचल धूम। ८ उत्कण्ठा, गहरी चाह। ९ श्री, शोभा। १० शिवके एक प्रकारके गण।

सम्भ्रान्त (सं० त्रि०) सम्-भ्रम्-क्त। १ मान्य, प्रतिष्ठित गौरवान्वित। २ घूर्णित, घुमाया हुआ, चक्कर दिया हुआ। ३ उद्विग्न, घबराया हुआ। ४ स्फूर्त्तियुक्त तेजस्वी।

सम्भ्रान्ततन्त्र—प्रतिष्ठित व्यक्तियोंका हस्तगत राज्यशासन।

सम्भ्रान्तसमाज—इङ्गलैण्ड देशके राजकीय समास करनेवाले प्रतिष्ठित व्यक्तियोंकी सभा। (House of Lords)

सम्भ्रान्ति (सं० स्त्री०) सम्-भ्रम्-क्तिन्। १ सम्भ्रम मान। २ उद्वेग, घबराहट। ३ आतुरता, हड़बड़ी। ४ चकपकाहट।

सम्मत (सं० त्रि०) सम्-मन-क्त, क्तिति नस्य लोप। १ अभिमत अभिप्रेत, जिसकी राय मिलती हो। (पु०) २ सम्मति राय, सलाह। ३ अनुमति आज्ञा।

सम्मति (सं० स्त्री०) सम्-मन-क्तिन्। १ अनुमति, आदेश, आज्ञा। २ मत, अभिप्राय। ३ सम्मान, प्रतिष्ठा। ४ इच्छा वासना। ५ ऐकमत्य। ६ आत्म ज्ञान। ७ सलाह, राय।

सम्मतिमत् (सं० पु०) पाणिग्युक्त व्यक्तिभेद।

सम्मतीय (सं० त्रि०) सम्मत शाखाभेद।

सम्मद (सं० पु०) सम्-मद (प्रमदसम्मदौ हर्षे। पा ३।३।६८) इति अप्। १ हर्ष, आमोद आह्लाद। २ एक प्रकारकी मछली। विष्णुपुराणमें लिखा है, कि यह मछली अधिक जलमें रहती है और बहुत बड़ी होती है। इसके बहुत बच्चे होते हैं। (त्रि०) ३ आनन्दित, सुखी।

सम्मदमय (सं० त्रि०) सम्यक् हर्ष या आनन्दविशिष्ट, आह्लादित।

सम्मनस् (सं० त्रि०) १ समान मनस्क। २ परस्परानुराग युक्त

सम्मनिमन् (सं० त्रि०) आपसमें समान अनुराग करनेवाला।

सम्मन्तव्य (सं० त्रि०) सम्-मन तव्य। सम्यक् मनन योग्य अच्छी तरह सोचने विचारनेलायक।

सम्मन्त्रणीय (सं० त्रि०) सम्-मन्त्र अनीयर्। सम्यक् रूपसे मन्त्रणीय, सम्यक् मन्त्रणाके योग्य।

सम्मयन (सं० क्ली०) यूपमीयन या यूपके चारों ओर खाई खुदवाना।

सम्मर्द (सं० पु०) सम्मृद्यन्तेऽत्रेति सम्-मृद घञ्। १ युद्ध लड़ाई। २ जनता, भीड़। ३ परस्पर विमर्द, परस्परका विवाद।

सम्मर्दन (सं० पु०) १ वासुदेवके एक पुत्रका नाम। (भागवत ९।२४।५१) २ विद्याधरविशेष। ३ भली भांति मर्दन करनेका व्यापार। ४ वह जो भलीभांति मर्दन करता हो।

सम्मर्दिन् (सं० त्रि०) सम्मर्दयतीति सम्-मृद् ग्रहादित्वा णिन्। (पा ३।१।१३४) सम्मर्दनकारी भली भांति मर्दन करनेवाला।

सम्मर्शन (सं० क्ली०) सम्यक् व्यापन, इधर उधर बिखरा हुआ।

सम्मर्शिन् (सं० त्रि०) विचारकारी विचार करनेवाला।

सम्मर्ष (सं० पु०) सम्यक् मर्ष सहन।

सम्महा (हिं० पु०) अग्नि, आग।

सम्मा (सं० स्त्री०) तुल्य, समान।

सम्मातृ (सं० त्रि०) पतिव्रतापुत्र जिसकी माता पतिव्रता हो।

सम्मातुर (सं० त्रि०) सतीतनय, सतीमातावाला।

सम्माद (सं० पु०) सम्-मद घञ्। उन्माद, पागलपन।

सम्मान (सं० पु०) सम्-मन अच्। १ समादर, प्रतिष्ठा, इज्जत मान। (क्ली०) २ सम्-मा ल्युट्। २ सम्यक् परिमाण। ३ मानसहित। ४ जिसका मान पूरा हो, ठीक मानवाला।

सम्मानन (सं० क्ली०) सम्-मान-ल्युट्। सम्मान, इज्जत।

सम्मानना (सं० स्त्री०) सम्-मान युच्-टाप्। सम्मान, प्रतिष्ठा।

सम्माननीय (सं० त्रि०) सम्-मान-अनीयर्। सम्मानके योग्य, आदरके लायक।

सम्मानित (सं० त्रि०) सम्मानोऽस्य जातः तारकादित्वादितच्। समादृत, जिसका आदर हुआ हो।

सम्मानिन् (सं० त्रि०) सम्मान अस्त्यर्थे इन्। सम्मानविशिष्ट, सम्मानयुक्त।

सम्मान्य (सं० त्रि०) सं-मान-यत्। सम्मानार्ह, आदर सत्कारके योग्य।

सम्मार्ग (सं० पु०) १ साधुमार्ग, श्रेष्ठ पद प्राप्त करनेका रास्ता। २ वह मार्ग जिससे मोक्षकी प्राप्ति होती है।

सम्मार्जक (सं० त्रि०) सम्मार्जयतीति सं-मृज्-ण्वुल्। १ सम्यक्-मार्जनकारी, अच्छी तरह झाड़ू देनेवाला। (पु०) २ सम्मार्जनी, झाड़ू, बुहारन।

सम्मार्जन (सं० क्ली०) सम्-मृज्-ल्युट्। १ संशोधन। २ परिष्कारण।

सम्मार्जनी (सं० स्त्री०) सम्मृज्यतेऽनयेति सम्-मृज-ल्युट्। झाड़ू, बुहारी। पर्याय—शोधनी, ऊहनी, समूहनी, बहुकारी, वर्द्धनी। गृहस्थोंके पञ्चसूनामें यह एक है, कुण्डली, पेषणी, चुल्ली, उदकुम्भी और सम्मार्जनी यही पांच पञ्चसूना हैं, गृहस्थ लोग झाड़ू देते समय प्रति दिन छोटे छोटे अनेक प्राणियोंका वध करते हैं। इस पञ्चसूनासे जो पाप होता है, उससे मनुष्य स्वर्गलाभके अधिकारी नहीं होते, इसी कारण शास्त्रमें प्रति दिन पञ्चयज्ञका विधान है। जो विधिपूर्वक पञ्चयज्ञका अनुष्ठान करते हैं, उनका पञ्चसूना जन्य पाप दूर होता है। पञ्चसूना देखो।

सम्मित (सं० त्रि०) सम्-मा-क्त। समान सदृश, मिलता जुलता।

सम्मिति (सं० स्त्री०) उच्चाकाङ्क्षा, ऊंची और बड़ी कामना।

सम्मिलन (सं० क्ली०) सम्-मिल-ल्युट्। सम्यक् मिलन, मिलाप, मेल।

सम्मिलित (सं० त्रि०) सम्-मिल-क्त। युक्त, मिला हुआ।

सम्मिश्र (सं० त्रि०) सम्यक्प्रकारेण मिश्रयतीति मिश्र मिश्रणे अच्। संयुक्त, मिला हुआ।

सम्मिश्रण (सं० पु०) १ मिलानेकी क्रिया। २ मेल, मिलावट।

सम्मीलन (सं० क्ली०) सम्-मील-ल्युट्। सम्यक् मीलन, सङ्कोचन।

सम्मील्य (सं० त्रि०) सम्-मील-यत्। १ सम्मीलनके योग्य। (क्ली०) २ सामभेद।

सम्मुख (सं० त्रि०) सम्यक् मुखं यस्य। १ अभिमुखागत। पर्याय—अग्रपृष्ठ। (क्ली०) २ समक्ष, अभिमुख, सामने, आगे। ३ समस्त मुख, समूचा मुंह।

सम्मुखिन् (सं० पु०) सम्मुखमस्यास्तीति इति। १ दर्पण, मुकुर, आइना। २ वह जो सामने हो।

सम्मुखीन (सं० त्रि०) सर्वस्य मुखस्य दर्शनः सम्मुख (यथामुखसम्मुखस्य दर्शनः खः। पा ५।२।६) इति ख। १ अभिमुख, सामने। २ सम्मुखवर्त्ती, जो सामने हो।

सम्मूढ (सं० त्रि०) सम्-मुह-क्त। १ मुग्ध, मोहयुक्त। २ निर्बोध, अज्ञान। ३ भग्न, टूटा हुआ। ४ राशिकृत, ढेर लगाया हुआ।

सम्मूढपिडका (सं० स्त्री०) शूकरोगभेद। इसमें लिङ्ग टेढ़ा हो जाता है और उस पर फुंसियां निकल आती हैं। वायुके कुपित होनेसे इसकी उत्पत्ति होती है। शूकरोग देखो।

सम्मूत्रण (सं० क्ली०) सम्यक् मूत्रण, सम्यक् मूत्रत्याग।

सम्मूर्च्छ (सं० पु०) सम्-मूर्च्छ-अच्। १ सम्यक् मोह। २ व्याप्ति।

सम्मूर्च्छज (सं० पु०) तृणादि।

सम्मूर्च्छन (सं० क्ली०) सम्-मूर्च्छ व्याप्तौ मोहे च ल्युट्। १ सर्वतो व्याप्ति, भली भांति व्याप्त होनेकी क्रिया। २ मोह, मूर्च्छा। ३ वृद्धि, बढ़ती। ४ विस्तार, फैलाव। ५ उच्चता, ऊंचाई।

सम्मूर्च्छनोद्भव (सं० पु०) संमूर्च्छनामुद्भवतीति उत्-भू-अच्। मत्स्यादि।

सम्मृष्ट (सं० त्रि०) सम्-मृज-क्त। संशोधित, जिसका संशोधन भला भांति हुआ हो, अच्छा तरह साफ किया हुआ।

सम्मेघ (सं० पु०) १ सम्यक् मेघ। २ मेघयुक्त आकाश।

सम्मेद (सं० पु०) पर्वतभेद, बङ्गालका पारसनाथ पहाड़।

सम्मेलन (सं० क्ली०) १ संयुक्त, मिलन मनुष्योंका किसी निमित्त एकत्र हुआ समाज। २ जमावड़ा, जमघट। ३ सङ्गम, मेल।

सम्मोद (सं० पु०) सम् मुद घञ्। १ आमोद आनन्द, हर्ष। २ प्रीति, प्रेम।

सम्मोदन (सं० क्ली०) सम् मुद-ल्युट्। सम्मोद, हर्ष, आनन्द।

सम्मोह (सं० पु०) सम्-मुह घञ्। १ मोह, प्रेम। २ भ्रम सन्देह। ३ मूर्च्छा, बेहोशी। ४ एक प्रकारका छन्द, जिसके प्रत्येक चरणमें एक तगण और एक गुरु होता है।

सम्मोहक (सं० त्रि०) सम्मोहयतीति सम् मोहि ण्वुल्। १ मोहकारक, लुभावना। (पु०) २ सन्निपात ज्वर विशेष।

जब वायु अत्यन्त प्रबल, पित्त मध्यबल और कफ अति हीनबल हो सन्निपातके लक्षणयुक्त ज्वर उत्पादन करता है, तब उसे सम्मोहक सन्निपात कहते हैं। इस रोगमें वायु अत्यन्त प्रबल रहता है, इस कारण वेदना, कम्प, निद्रा नाश और विभ्रम आदि वायुकोपजन्य सब लक्षण दिखाई देते हैं। दाह पिपासा उन्मत्तता और घर्म आदि पित्तज लक्षण भी उसके साथ साथ अल्परूपमें दिखाई देते हैं। गुरुत्व अग्निमान्द्य उच्छ्वास और मुखनासिकास्राव आदि कफज लक्षण अल्परूपमें दिखाई पड़ते हैं। इसके सिवा प्रलाप आयास अर्थात् अकारण अनवबोध मोह कम्प, मूर्च्छा भ्रम और वाम या दक्षिण भाग एक पक्ष अवसन्न हो जाता है। यह सान्निपातज्वर अति भयानक और कष्टसाध्य है। यह ज्वर होने पर सुविज्ञ चिकित्सकको चाहिये, कि वे बड़ी सावधानीसे चिकित्सा करें। सन्निपात और ज्वर देखो।

सम्मोहन (सं० क्ली०) सम् मुह-ल्युट्। १ मुग्ध करना मोहित करनेकी क्रिया। २ वह जिससे मोह उत्पन्न होता हो मोहकारक। (पु०) ३ प्राचीन कालका एक प्रकारका अस्त्र जिससे शत्रुको मोहित कर देते थे। ४ कामदेवके पांच बाणोंमें एक बाणका नाम।

सम्मोहनतन्त्र (सं० क्ली०) तन्त्रभेद।

सम्यक् (सं० पु०) १ समुदाय, समूह। (त्रि०) २ पूरा सब। (क्रि० वि०) ३ सब प्रकारसे। ४ अच्छी तरह, भली भांति।

सम्यक्समान्त (सं० पु०) सम्यक रूपसे कर्मका सब ओर निष्पादनावस्था।

सम्यक्चारित्र (सं० क्ली०) जैनियोंके अनुसार धर्मत्रयमेंसे एक धर्म बहुत ही धर्म तथा शुद्धतापूर्वक आचरण करना।

सम्यक्त्व (सं० क्ली०) उपयुक्तता।

सम्यग्ज्ञान (सं० क्ली०) जैनियोंके धर्मत्रयमेंसे एक न्यायप्रमाण द्वारा प्रतिष्ठित सात या नौ तत्त्वोंका ठीक और पूरा ज्ञान।

सम्यग्दर्शन (सं० पु०) जैनियोंके अनुसार धर्मत्रयमेंसे एक, रत्नत्रय, सातों तत्त्वों और अर्हन्त आदिमें पूरी पूरी श्रद्धा होना। जैन देखो।

सम्यग्दर्शिन् (सं० त्रि०) धर्मतत्त्वार्थदर्शी जिसे सम्यग्दर्शन प्राप्त हो।

सम्यग्दृश् (सं० त्रि०) सम्पूर्ण दृष्टियुक्त।

सम्यग्दृष्टि (सं० स्त्री०) १ सम्यक् दर्शन। २ अच्छी तरह देखना।

सम्यक्प्रवृत्ति (सं० स्त्री०) सम्यक् इच्छा।

सम्यक्सङ्कल्प (सं० पु०) सम्यक् रूपसे सङ्कल्प।

सम्यक्सत्य (सं० पु०) बौद्धयतिभेद।

सम्यक्समाधि (सं० पु०) बौद्धोंका समाधिविशेष।

सम्यक्सम्बुद्ध (सं० पु०) १ बुद्धका एक नाम। २ वह जिसे सब बातोंका पूरा और ठीक ज्ञान प्राप्त हो गया हो।

सम्यक्सम्बोध (सं० पु०) १ बुद्धभेद। २ सम्यक् ज्ञानयुक्त।

सम्यग्योग (सं० पु०) सम्पूर्ण योग समाधि।

सम्यग्वाच् (सं० स्त्री०) सम्यक् आलाप कथोपकथन।

सम्यच् (सं० त्रि०) सम् अञ्च क्विन् (समः समि। पा ६।३।९३) इति सम्यादेशः। १ सम्यग्जन। सर्वेण सह समञ्चति सङ्गच्छते अञ्च क्विन्। २ सङ्गत। ३ मनोज्ञ।

सम्राज् (सं० पु०) सम्यक् राजते इति सम् राज क्विप्।

(मोरजिसम क्वौ। पा ८।३।२५) इति समो मकारस्य मादेश स्तेन नानुस्वारः। सार्वभौम नरपति, राजसूययज्ञकारी। जिन्होंने सभी राजाओंको जीत कर राजसूय यज्ञका अनुष्ठान किया है, उन्हें सम्राट् कहते हैं। मण्डलेश्वर, द्वादश राजमण्डलके अधिपति, सर्वभूमीश्वर, राजा, राजाधिराज, ससागरा पृथ्वीके अधिपति, ये सब सम्राज्के पर्याय हैं। अमरसिंहने लिखा है, कि जिनके आज्ञानुसार राजगण पृथिवीका शासन करते हैं, उन्हें सम्राट् कहते हैं। इस शब्दका स्त्रीलिङ्गमें सम्राज्ञी ऐसा पद होता है।

सम्राज्ञी (सं० स्त्री०) सम्राजन्-ङीप्। १ सम्राट्पत्नी, राजमहिषी। २ साम्राज्यकी अधीश्वरी।

सम्राट् (सं० पु०) सम्राज् देखो।

सयति (सं० त्रि०) समान यतिविशिष्ट।

सयत्न (सं० त्रि०) यत्नेन सह वर्त्तमानः। यत्नके साथ वर्त्तमान, यत्नविशिष्ट।

सयत्व (सं० क्ली०) सङ्गम, मिलन, सहवास।

सयन (सं० क्ली०) १ बन्धन। (पु०) २ विश्वामित्रके एक पुत्रका नाम।

सयव (सं० त्रि०) यवके साथ वर्त्तमान, यवयुक्त, यवविशिष्ट।

सयावक (सं० त्रि०) १ यावकयुक्त। २ समान गति विशिष्ट।

सयावन् (सं० त्रि०) समानगतिविशिष्ट, तुल्यगति। स्त्रीलिङ्गमें शब्दके अन्तस्थ न की जगह र करके सयावरी पद होगा।

संयुक्त्व (सं० क्ली०) सयुक् भावे त्व। संयोगका भाव या धर्म।

सयुग्वन् (सं० त्रि०) सहाययुक्त। (ऋक् १०।३०।४)

सयुज् (सं० त्रि०) समानयोगविशिष्ट, समानयोगयुक्त।

सयूथ्य (सं० त्रि०) सयूथे भवः (सगर्भसयूथसनुताद्यत्। पा ४।४।११४) इति यत्। सयूथभव।

सयोग (सं० त्रि०) योगके साथ वर्त्तमान, योगयुक्त, संयोग।

सयोनि (सं० पु०) योनिभिः सह वर्त्तमानः। १ इन्द्र। (त्रि०) २ योनिके साथ वर्त्तमान, जो एक ही योनिसे उत्पन्न हुए हों, जिनका उत्पत्तिस्थान एक है।

सयोनिता (सं० स्त्री०) सयोनि भावे तल्-टाप्। सयोनिका भाव या धर्म।

सर (सं० क्ली०) सरतीति सृ अच्। १ सरोवर, ताल, तालाब। २ जल, पानी। ३ दध्यग्र, दधिका अग्रभाग। ४ गति। ५ वाण। ६ लवण। (पु० स्त्री०) ७ निर्झर, झरना। (पु०) ८ महापिण्डीतरु। (त्रि०) ९ सारक। १० भेदक।

सर (फा० पु०) १ सिर। २ सिरा, चोटी, उच्च स्थान।

सर (अं० पु०) एक बड़ी उपाधि जो अङ्गरेजी सरकार देती है।

सर—बङ्गालके पुरी जिलान्तर्गत एक छोटा हद। यह अक्षा० १९° ५१′ ३०″ उ० तथा देशा० ८५° ५५′ पू०के मध्य पुरी नगरसे उत्तर पूर्वमें अवस्थित है। यह पूर्व पश्चिममें ४ मील लम्बा तथा उत्तर-दक्षिणमें २ मील चौड़ा है। चिल्का झीलकी तरह इस छोटी झीलके साथ समुद्रका कोई संयोग नहीं है। यह स्थान प्रायः जनशून्य है। मल्लाह लोग यहांसे मछली पकड़ कर नगरमें बेचने ले जाते हैं। जब वृष्टि बिलकुल नहीं होती, तब आस-पासके कृषक यहांसे नली द्वारा जल ले जा कर अपना अपना खेत सींचते हैं।

सरःकाक (सं० पु०) सरसः काकः। हंस।

सरःकाकी (सं० स्त्री०) हंसी।

सरअंजाम (फा० पु०) सामान, सामग्री, असबाब।

सरई (हिं० स्त्री०) सरहरी देखो।

सरकंडा (हिं० पु०) सरपतकी जातिका एक पौधा जिसमें गांठवाली छड़ें होती हैं।

सरक (सं० क्ली०) सरमेव स्वार्थे कन्। १ सरोवर, तालाब। २ आकाश। (पु० क्ली०) सरतीति सृ वुन्। ३ शीधुपात्र, शराबका प्याला। ४ शीधुपान, मद्यपान। ५ गुड़की बनी शराब। ६ सरकनेकी क्रिया, खिसकना। ७ यात्रियोंका दल, कारवां। (त्रि०) ८ गतिशील।

सरकना (हिं० क्रि०) १ जमीनसे लगे हुए किसी ओर धीरेसे बढ़ना, किसी तरफ हटना। २ नियत कालसे और आगे जाना, टलना। ३ काम चलना, निर्वाह होना।

सरकश (फा० वि०) १ उद्धत, अक्खड़। २ शासन न माननेवाला, विरोधमें सिर उठानेवाला। ३ शरारती।

१८९२ ई०में पालिटिकल एजेण्ट मेजर रफसेजने स्वयं मगगुजा जा कर राज्यकी शृङ्खला स्थापन और विप्लव शान्त करनेकी कोशिश की। बहुत समझाने बुझाने पर भी जब राजकुमारने पोलिटिकल एजेण्टकी सलाह न मानी, तब राजकार्यका सुचारुरूपसे परिचालन करनेके लिये एक दीवान नियुक्त किया गया। उद्धत युवराज और उनके अनुचरोंने उस अंगरेज कर्मचारीको छुरेसे मार डाला तथा वृद्ध राजा और उनकी दोनों रानियोंको कैद करनेकी चेष्टा की। मेजर रफसेज राजाकी रक्षाके लिये जो अंगरेजी सिपाही छोड़ गये थे, उन्होंने बड़ी वीरता दिखा कर विद्रोहियोंके हाथसे उन्हें बचाया। १८१८ ई० तक यहां घोर शासनविशृङ्खला चलती रही। उसी साल मधुजी भोंसले (अप्पा साहब)-ने अंगरेज गवर्मेण्टके साथ बन्दोबस्तके अनुसार यह प्रदेश अंगरेज गवर्मेण्टको सुपुर्द कर दिया। तभीसे यहां शान्ति विराजने लगी। १८२६ ई०में यहाके सरदारने अंगरेज गवर्मेण्टसे महाराजकी उपाधि और यथोपयुक्त उपढौकन पाया। १८८२ ई०में राजा रघुनाथशरण सिंहने बालिग हो कर राजकार्यका भार अपने हाथ लिया। इन्हें १८९५ ई०में महाराजा बहादुरकी पदवी मिली। इन्हें वृटिश गवर्मेण्टको वार्षिक २५००) रु० कर देना पड़ता है।

इस राज्यमें कुल १३३२ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या साढ़े तीन लाखसे ऊपर है। विसरामपुरमें एक जानव चिकित्सालय और एक कारागार है। राज्यमें कुल मिला कर १५ पाठशाला और एक अस्पताल है।

सरघा (सं० स्त्री०) सरं मधुविशेषं हन्तीति हन-ड निपातनात् साधु। मधुमक्षिका, मधुमक्खी।

सरङ्ग (सं० पु०) सरतीति सृ-अङ्गच्। १ चतुष्पाद्। २ पक्षी।

सरज (सं० क्ली०) सरात् जायते इति जन ड। १ नवनीत, मक्खन। २ मलिन, मैला।

सरजन् (सं० त्रि०) पश्चात्कालीन रक्षनकारी।

सरजस (सं० त्रि०) रजनके साथ वर्त्तमान, रजनयुक्त।

सरजस् (सं० स्त्री०) रजसा सह वर्त्तमाना। १ ऋतुमती स्त्री। २ पङ्कज कमल।

सरजा (फा० पु०) १ श्रेष्ठव्यक्ति, सरदार। २ सिंह।

सरजाह (सं० त्रि०) रजोयुक्त।

सरजाहा (सं० स्त्री०) ऋतुमती स्त्री।

सरजीवन (हिं० वि०) १ सजीवन, जिलानेवाला। २ उपजाऊ, हरा भरा।

सरजोर (फा० त्रि०) १ जबरदस्त। २ उद्दंड, दुर्दमनीय।

सरजोरी (फा० स्त्री०) १ जबरदस्ती। २ उद्दंडता।

सरट् (सं० पु०) सरतीति सृ-गतौ (सर्त्तेरटिः। उण् ११३३) इति अटिः। १ वायु, हवा। २ मेघ, बादल। ३ मधुमक्षिका, मधुमक्खी। ४ कृकलास, गिरगिट। ५ छिपकली।

सरट (सं० पु०) सरतीति सृ-गतौ शकादित्वादटन्। १ कृकलास, गिरगिट। ज्योतिस्तत्त्वमें लिखा है, कि यदि सरट मस्तक पर चढ़े, तो राज्यलाभ, कपाल पर ऐश्वर्य, दोनों कान पर भूषणलाभ, दोनों नेत्र पर बन्धुदर्शन, नाक पर सुगन्ध वस्तु लाभ, मुख पर मिष्टान्न भोजन, कण्ठ पर लक्ष्मीलाभ, दोनों भुज पर ऐश्वर्य, बाहुमूल पर धनलाभ, स्तनमूल पर सौभाग्य, हृदय पर सुख, पृष्ठ पर महीलाभ, दोनों पार्श्व पर बन्धुदर्शन, दोनों कटि पर वस्त्रलाभ, गुह्य पर मृत्यु, जङ्घा पर अर्थक्षय, गुह्यदेश पर रोग, दोनों ऊरू पर वाहनलाभ, जानु जङ्घा पर अर्थक्षति, वाम और दक्षिण पाद पर गिरनेसे वह व्यक्ति हमेशा भ्रमण करता रहेगा। रातको यदि यह शरीर पर गिरे, तो मृत्यु या व्याधि आदि नाना प्रकारके अमङ्गल होते हैं। यह यदि ऊपर मुंह किये चढ़े और औंधे मुंह गिरे, तो निश्चय ही शुभफल होता है। जमीन पर गिरते ही यदि यह शरीर पर चढ़ जाय, तो भी शुभफल होता है।

कृकलासके शरीर पर गिरनेसे उसी समय स्नान कर लेना उचित है। स्नानके बाद पञ्चगव्य भक्षण और सूर्यावलोकन करना आवश्यक है। इसके दोषकी शान्तिके लिये शिवस्वस्त्ययनका भी विधान है।

२ वात, वायु। (उणा ४।१०५ उज्ज्वल)

सरटक (सं० पु०) कृकलास, गिरगिट।

सर टामस रो—एक अङ्गरेज पर्यटक और राजदूत।

ये इङ्गलैण्डके राजा प्रथम जेम्सकी आज्ञासे भारतके दिल्ली दरबारमें आये। उस समय मुगलसम्राट् जहांगीर बादशाह थे। उन्होंने राजदूतका खूब आदर सत्कार कर अङ्गरेजराज प्रथम जेमसका कुशल समाचार पूछा। इसके बाद बादशाहने अङ्गरेज कम्पनीको सूरत, अहमदाबाद और बंबई आदि स्थानोंमें वाणिज्यकी सुविधाके लिये कोठियां खोलनेकी आज्ञा दे दी। सर टामस रोने अपने भ्रमण वृत्तान्तमें हिन्दुस्तानके इस श्रेष्ठतम राजदरबारके समृद्धिगौरवका यथेष्ट परिचय दिया है। किन्तु बड़े दुःखकी बात है, कि भारतीय अथवा पाश्चात्य किसी इतिहासमें उन प्राच्य दूतों दौत्यके प्रसङ्ग तादृशा य समाका उल्लेख नहीं है।

सरटि (स० पु०) सरतीति सृ अटिन्। १ वायु हवा। २ मेघ, बादल।

सरटु (स० पु०) सृ अटु। कृकलास, गिरगिट।

सरण (स० क्ली०) सरतीति सृ गतौ (कृत्यल्युटो बहुलम् पा ३।३।११३) इति ल्युट्। १ लौहमल। सृ ल्युट्। २ गमन, आगे बढ़ना। ३ माघयो मद्य। (त्रि०) ४ गमनशील, जानेवाला।

सरणा (स० स्त्री०) सृ युच् टाप्। १ प्रसारणी लता। २ त्रिवृता निसोथ। (त्रि०) ३ गमनकर्त्ता, जानेवाला।

सरणि (स० स्त्री०) सरत्यनयेति सृ गतौ (अर्त्तिसृधृ मीति। उण् २।१०३) इति अनि। १ पंक्ति। २ पन्था, रास्ता। ३ प्रसारणी लता। (भरत)

सरणी (स० स्त्री०) सरणि वा ङीष्। १ पंक्ति। २ पन्था, रास्ता। ३ पगडंडा दुर्गा। ४ लकीर। ५ डरी। ६ प्रसारणीलता। ७ त्रिवृत्।

सरण्ड (स० पु०) सरतीति सृ (अण्डन् कृसृभृवृञः। उण् १।१२८) इति अण्डन्। १ धूर्त्त। २ सरट, छिपकली। ३ भूषाभेद। ४ कामुक। ५ पक्षी।

सरण्य (स० त्रि०) सरणयोग्य। गम्य, जाने योग्य।

सरण्यु (स० पु०) सरत्याप इति सृ गतौ (शृस्वृस्निहित्रप्यसिवसिहनिक्लिदिबन्धिमनिभ्यश्च। उण् ३।२१) इति अन्युच्। १ मेघ बादल। २ वायु हवा। ३ जल पानी। ४ वसन्त। ५ अग्नि।

सरत् (स० स्त्री०) सृ शतृ। १ सूत्र। (त्रि०) २ जाता, जानेवाला।

सरता बरता (हि० पु०) बांट, बटाई।

सरत्नि (स० पु० स्त्री०) रत्नि परिमाण, एक हाथ।

सरथ (स० त्रि०) रथके साथ वर्त्तमान, रथयुक्त।

सरथिन् (स० त्रि०) समानरथयुक्त, एक रथारूढ़।

सरद (फा० वि०) सर्द देखो।

सरदई (फा० वि०) सरदेके रंगका, हरापन लिये पीला।

सरदण्डा (स० स्त्री०) नदीभेद।

सरदर (फा० क्रि० वि०) १ एक सिरेसे। २ सब एक साथ मिला कर, औसतसे।

सरदल (हि० पु०) दरवाजेका बाजू या साह।

सरदा (फा० पु०) एक प्रकारका बहुत बढ़िया खरबूजा जो काबुलसे आता है।

सरदार (फा० पु०) १ किसी मण्डलीका नायक, अगुआ। २ किसी प्रदेशका शासक। ३ अमीर, रईस। ४ वेश्याओं की परिभाषामें वह व्यक्ति जिसका किसी वेश्याके साथ सम्बन्ध हो।

सरदार कवि—१ एक बन्दीजन और भाषाके कवि। संवत् १७३८ में इनका जन्म हुआ था। राणा राजसिंहकी सभा में ये रहा करते थे। इन्होंने राणाजीका जीवन चरित्र बनाया है जिसका नाम रामरत्नाकर है।

२ बनारसके रहनेवाले एक बन्दीजन। ये काशीके महाराज ईश्वरीनारायण सिंहके दरबारमें रहते थे तथा शिवसिंहके समयमें जीवित थे। ये बड़े उत्तम कवि थे। इन्होंने ये ग्रन्थ बनाये हैं—साहित्यसरसी, हनुमत भूषण तुलसीभूषण, मानसभूषण, कविप्रियाकी टीका रसिकप्रियाकी टीका सतसईकी टीका, तीन सौ अस्सा सूरदासके कूटोंकी टीका। नारायण राय आदि बड़े बड़े कवि इनके शिष्य हैं।

सरदारसिंह—१ मेवाड़के एक महाराणाका नाम। ये भीम सिंहके पुत्र जवानसिंहके दत्तक पुत्र थे। ये बड़े कड़े स्वभावके थे। इसलिये सामन्तोंसे इनका मनमुटाव सदा हो रहा करता था। सामन्तों को शान्त करनेके लिये इन्होंने गवर्नमेण्टसे प्रार्थना की तदनुसार गवर्नमेण्टने सन्धि करा दी। परन्तु यह सन्धि कब तक स्थिर रह

सकती थी। अन्तमें महाराणाने गवर्नमेंटके निकट यह प्रस्ताव उपस्थित किया, कि गोरी पल्टन यहां कुछ दिनों तक रहे, परन्तु गवर्नमेंटने इस प्रस्तावको नामंजूर कर दिया। इनके राज्यकालमें मेवाड़ राज्यमें कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। इनका राज्यकाल इधर उधरसे सहायता मांगनेहीमें गया। सन् १८४२ ई०में इनका मायामय शरीरसे सम्बन्ध टूट गया।

२ बीकानेरके महाराज। इनके पिताका नाम था महाराज रतनसिंह जी। महाराज रतनसिंह जीके परलोक-वास होने पर सन् १८५२ ई०में सरदारसिंह बीकानेर की राजगद्दी पर बैठे। उस समय भारतके राजपूत गृह विवादके कारण अपनी वीरता तथा अपना साहस आदि सभी खो चुके थे और वृटिश सिंह उस समय अपनी विशाल मूर्त्ति प्रकट कर रहा था। यह सब देख कर सरदारसिंहने यही निश्चित किया, कि जिस प्रकार हो वृटिशसिंहको प्रसन्न रखनेमें कल्याण है। महाराज सर-दारसिंहके राज्यके पांचवें वर्ष १८५७ ई०में सिपाही-विद्रोहकी आग भड़क उठी। सरदारसिंहने बड़े प्रयत्न से उस समय भीत अंगरेजोंको शरण दी, युद्धमें धन तथा सेनाकी सहायता दी। सिपाहीविद्रोहकी आग बुझ जाने पर सरकारने इन्हें ४१ गाँव उपहारमें दिये जिनकी आय १४२६१) रुपये प्रति वर्ष थी। इन्होंने सामन्तोंके विद्रोहको गवर्नमेंटकी सहायतासे दूर किया।

सरदारी (फा० स्त्री०) सरदारका पद या भाव।

सरद्वत (सं० पु०) १ गौतम मुनि। २ इनके पुत्र।

सरना (हिं० क्रि०) १ चलना, खिसकना। २ हिलना, डोलना। ३ काम चलाना, पूरा पड़ना। ४ संपादित होना, किया जाना।

सरनाम (फा० वि०) प्रसिद्ध, मशहूर।

सरनामा (फा० पु०) १ किसी लेख या विषयका निर्देश जो ऊपर लिखा रहता है, शीर्षक। २ पत्रका आरम्भ या संबोधन। ३ पत्र आदि पर लिखा जानेवाला पता।

सरन्ध्र (सं० वि०) रन्ध्रके सहित, छिद्रविशिष्ट, छेदवाला।

सरपंच (फा० पु०) पंचोंमें बड़ा व्यक्ति, पंचायतका सभा-पति।

सरपट (हिं० क्रि० वि०) घोड़े की बहुत तेज दौड़ जिसमें वह दोनों अगले पैर साथ साथ आगे फेंकता है।

सरपत (हिं० पु०) कुशकी तरहकी एक घास। इसमें टह-नियां नहीं होतीं, बहुत पतली और दो हाथ लंबी पत्तियां एक मूलसे निकल कर चारों ओर घनी फैली रहती हैं। इसके बीचमें पतली छड़ निकलती है जिसमें फूल लगते हैं। यह घास छप्पर आदि छानेके काममें आती है।

सरपत्रिका (सं० स्त्री०) सरःपत्त्र इति ठन्-टाप् अदन्तं। १ पद्म, कमल। २ पद्मपात्र।

सरपरस्त (फा० पु०) १ रक्षा करनेवाला, श्रेष्ठ पुरुष। २ अभिभावक, संरक्षक।

सरपरस्ती (फा० स्त्री०) १ रक्षा। २ अभिभावकता।

सरपेंच (फा० पु०) १ पगड़ीके ऊपर लगानेका एक जड़ाऊ गहना। २ दो ढाई अंगुल चौड़ा गोटा।

सरपोश (फा० पु०) थाल या तश्तरी ढकनेका कपड़ा।

सरफराज (फा० वि०) १ उच्च पदस्थ, ऊंचाईको पहुंचा हुआ। २ धन्य, कृतार्थ।

सरफराज खाँ—बङ्गालके एक मुसलमान नवाब। ये नवाब सुजाउद्दौला या सुजाउद्दीन खाँके पुत्र थे। इन-की माता नवाब मुर्शिद कुली खाँकी कन्या थीं। मुर्शि-दने अपने जमाईको नायब दीवान और पीछे नायब नाजिम पदसे तरक्की कर उड़ीसाका शासनकर्त्ता बना दिया।

श्वसुरकी कृपासे पदोन्नति हुई सही, पर कामा-सक्तिके कारण उनका चरित्र दिन पर दिन कलुषित होने लगा। सरफराजकी माता ज़िन्नत् उन्निसा बेगम धर्मपरायण और पतिव्रता थीं। उसने स्वामीके इस व्यभिचार पर विरक्त हो कर उनका संसर्ग छोड़ दिया और वह मुर्शिदाबादमें आ कर रहने लगीं।

मुर्शिदकी मृत्युके बाद सुजा बंगालका नवाबी पद पानेके लिये दलबलके साथ मुर्शिदाबादकी ओर अग्रसर हुए। उनके पुत्र सरफराज उस समय राजधानीमें हो मौजूद थे। वे अपनेको मातामहकी सम्पत्तिका अधि-कारी बतलाते हुए निश्चिन्त मनसे राज्यभोग सुखका उपभोग कर रहे थे। सुजा पुत्रके विरुद्ध खड़ा होना

कर्त्तव्य ज्ञान कर भी राज्यकी लालसा छोड़ न सके। मर्विदोर उसमानसे उन्होंने मुर्शिदाबादकी ओर यात्रा कर दी। इधर सरफराजने पिताके आनेकी खबर पा कर उन्हें रोकनेके लिये सेना भेजना चाहा, किन्तु धर्मशीला माता और मातामहीके कहनेसे वे रुक गये और पिताको बड़े आदर सत्कारसे ले आये।

सुजा नवाब पद पर प्रतिष्ठित हुए। उन्होंने अपने पुत्र सरफराज खाँको बादशाही दीवानके पद पर नियुक्त किया। नवाब सुजा उद्दौलाकी १७६३ ई०की १८वीं मार्चको देहान्त हुआ। पीछे उनके लड़के अलाउद्दौला नवाब सरफराज खा नामसे बंगालके राजपद पर बैठे। राजोचित गुणग्रामका उनमें अभाव न था रहने पर भी राज्यशासनको ओर उनका वैसा ध्यान नहीं था। धर्म कर्म लौकिक आचारमें ही वे अपना अधिक समय बिताते थे। दुःखका विषय, कि यह सुख भोग अधिक दिन तक उनके भाग्यमें बदा नहीं था, सिर्फ एक वर्ष दो मास राज्य करनेके बाद ये दुर्भाग्य नवाब कूटबुद्धि राजकर्मचारियोंके चक्रान्तमें पड़ कर राज्यच्युत हुए। अलीवर्दी खाँ और हाजी अहमद नवाबके विरुद्ध षड्यन्त्रकारियोंमें प्रधान थे।

नवाबके विरुद्ध राजविद्रोहियोंके अस्त्रधारणके सम्बन्धमें विभिन्न ऐतिहासिकोंने विभिन्न कारण बताया। अलीवर्दी खाके बड़े भाई हाजी अहमदने जब नवाबके दरबारमें विश्वस्त खड़ा कर दी तब वे राजकार्यसे निकाल दिये गये। पीछे उन्होंने इससे और भी नमक मिर्च लगा कर विहारमें अपने भाईके पास इसकी खबर दी तथा वे भाईको बङ्गाल विहार उड़ीसाकी सुबादारीकी सनद इनके लिये दिल्ली दरबारमें चेष्टा करने लगे। सरफराज अपने वकील द्वारा यह संवाद पा कर किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये। आखिर अलीवर्दीको वश करनेके लिये विहारमें प्रेरित सेनाओंको लौट आनेका उन्होंने हुक्म दिया उसके साथ साथ विहारका पूरा हिसाब भी मांग भेजा। किन्तु अलीवर्दीके उसमानसे किसीने भी नवाबका आदेश नहीं माना। यह देख सरफराजने समझा कि, पक्कवारगी इतना दूर बढ़ जाना अच्छा नहीं। हाजीको प्रसन्न करनेके लिये उन्होंने अपना दौहित्रो तथा राजमहलके फौजदार आता उल्ला खाँकी कन्याके साथ अपने पुत्रका विवाह सम्बन्ध स्थिर किया।

इस कन्याके साथ पहले ही मिर्जा महम्मदका सम्बन्ध स्थिर हो चुका था। सरफराजने बलपूर्वक विवाह देनेसे वंशमें कलङ्क लगेगा यह सब बातें हाजी अलीवर्दीको लिख भेजी। यह संवाद पा कर अलीवर्दी नवाबके विरुद्ध दलबलके साथ रवाना हुए। बङ्गाल पहुंच कर अलीवर्दी मौका ढूंढने लगे। आखिर युद्ध अवश्यम्भावी हो गया। सरफराज खाँ ससैन्य गिरियामें अपेक्षा कर रहे थे। भागीरथीके किनारे युद्ध करते करते वे मारे गये। दूसरे ग्रन्थमें लिखा है कि मन्त्री उद्दौलाने यशोर महब्बत जङ्गकी भतीजीके अलौकिक रूपकी बात सुन कर एक बार उसका मुख देखनेकी इच्छा प्रकट की। बहुत आरजू मिन्नत करनेके बाद भी जब इच्छा पूरी न हुई तब उन्होंने आखिर बलपूर्वक उस ललामभूता सुन्दरीका घूंघट उठा कर मुंह देख लिया। सम्भ्रान्तवंशजा पतिव्रता ललना यह अपमान सहन न कर सकी। उसने आखिर विष खा कर अपने अपवित्र शरीरका परित्याग कर दिया। इस अपमानका प्रतिशोध लेनेके लिये ही आताउद्दौला और धनाने नवाबके प्राण ले लिये।

एक दूसरे इतिहासमें लिखा है कि नवाब सरफराज खाँने जगत्सेठ फतेचाँद महताब रायकी बालिकापतोहूके अनिन्दित सौन्दर्यकी बात सुन कर उसे एक बार देखना चाहा। जगत्सेठ डरके मारे गहरी रातमें कुलवधूको नवाबके महलमें ले गये और फिर लौटा लाये। इसके सिवा सरफराज खा मुर्शिद अलीखाके गच्छित सात करोड़ रुपयेका दावा करके फतेचांदको बहुत फटकारा और अपमान किया। जगत्सेठ नाना प्रकारसे अपमानित हो इस समय हाजीके साथ मिल गये और अलीवर्दीको नवाबके विरुद्ध उसकाया।

सरफोका (हिं० पु०) सरकंडा।

सरबराह (फा० पु०) १ प्रबन्धकर्त्ता, इन्तजाम करनेवाला। २ राज मजदूरों आदिका सरदार।

सरबराहकार (फा० पु०) किसी कार्यका प्रबन्ध करनेवाला, कारिन्दा।

सरबराही (फा० स्त्री०) १ प्रबंध, इन्तजाम। २ माल-मसबाबकी निगरानी। ३ सरबराहका पद या कार्य।

सरभ (सं० पु०) शरभ देखो।

सरभस (सं० त्रि०) रभसके साथ वर्त्तमान, वेगयुक्त, वेगवाला।

सरमा (सं० स्त्री०) रमया शोभया सह-वर्त्तमाना। १ राक्षसीभेद। विभीषणकी स्त्री। रावण जब सीताको लङ्कामें हर ले गया, तब उसने सरमाको ही उनकी देखरेख-में रखा था। सीताके साथ इसका गाढ़ा प्रेम हो गया। एकमात्र सरमाके यत्नसे ही सीता दुःखक्लिष्ट हो कर भी सुखसे रहती थी और इससे सीताको लङ्कापुरी और श्री-रामचन्द्रका कुल हाल मालूम होता था। लङ्काकाण्डमें इसका विशेष परिचय दिया गया है। २ देवताओंकी एक कुतिया। ऋग्वेदमें यह इन्द्रकी कुतिया यमराजके चार आंखवाले कुत्तोंकी माता कही गई है। पणि लोग जब इन्द्रकी या आर्योंकी गौएं चुरा ले गये थे, तब यह उन्हें जा कर ढूंढ लाई थी। महाभारतमें इसका उल्लेख देव-शुनीके नामसे हुआ है। सरमा देवशुना ऋग्वेदके एक मन्त्रकी द्रष्टा भी है। ३ कुक्कुरी, कुतिया। ४ कश्यपकी एक स्त्रीका नाम। श्वापदादिगण इसकी सन्तान-सन्तति है।

सरमात्मज (सं० पु०) १ सरमाका आत्मज, सरमाका पुत्र, तरणीसेन। २ कुक्कुरवत्स, कुत्तेका बच्चा, पिल्ला।

सरया (हिं० पु०) एक प्रकारका मोटा धान। इसका चावल लाल होता है और कुआरमें तैयार होता है।

सरयु (सं० पु०) सरतीति सृ गतौ (शवेरयु। उण् ३।२२) इति अयु। १ वायु, हवा। २ एक नदीका नाम।

सरयू (सं० स्त्री०) सरयु-ऊङ्। स्वनामख्यात नदी-विशेष। इस नदीका जल स्वादिष्ट, बलकर और पुष्टि-प्रदायक है। (राजनि०)

कालिकापुराणमें लिखा है, कि स्वर्णमय मानस-पर्वत पर जब अरुन्धतीके साथ वशिष्ठका विवाह हुआ, तब उनका विवाहसूत जल और शान्तिजल पहले मानस-पर्वतके कन्दरमें गिरा, पीछे वह वहांसे सात भागोंमें विभक्त हो हिमालय पर्वतकी गुहा, सानु और सरोवरमें पृथक् पृथक् भागमें गिर कर सात नदीरूपमें बह गया था जो जल हिमालय-समीपवर्ती गुहामें गिरा, उससे सरयू नामक पुण्यसलिला नदीकी उत्पत्ति हुई। यह नदी दक्षिण समुद्रगामिनी और चिरकालस्थायिनी है। इस नदीमें स्नानादि करनेसे गङ्गास्नानादि जैसा फल होता है। अतएव यह नदी गङ्गाके समान पुण्यतोया है। इसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका निदान कहा है।

रामायणमें अयोध्यावर्णनमें प्रवाहित सरयू नदीका उल्लेख है। लक्ष्मण इसी नदीमें देह विसर्जन कर अनन्तदेवरूपमें स्वधाम गये थे। रामचन्द्रने भी लक्ष्मणके महाप्रस्थानका हाल सुन कर इसी नदीमें अपना शरीर छोड़ा। यह नदी बहुत प्राचीन है। वैदिक युगमें इस पुण्यसलिला नदीके किनारे आर्य ऋषियोंका उपनिवेश स्थापित हुआ था।

ऋग्वेदके ४।३०।१८ मन्त्रमें जाना जाता है, कि सरयू-तीरवर्ती देशमें अर्ण और चित्ररथ नामक दो राजाओंकी राजधानी थी। वहां ऋषियोंने इन दोनों राजाओंके मङ्गलकी कामना की है। इसके सिवा ५।५३।९ और १०।६४।९ मन्त्रमें लिखा है, कि ऋषिगण पुण्यसलिला इस नदीके किनारे बैठ कर यज्ञादि किया करते थे। महाभारत, हरिवंश और रामायणमें सरयूका कई जगह उल्लेख देखनेमें आता है। रामायणीयुगमें अयोध्या-प्रवाहित सरयूकी बड़ी उन्नति हुई थी। अयोध्याधिपति राजा दशरथ और श्रीरामचन्द्रने इस नदीके किनारे अव-स्थित अयोध्या नगरमें राज्य किया था।

सरयूकी नदी घघरा नामसे परिचित है और यह हिमवत्पाद विनिःसृता है। अयोध्याप्रदेशमें ही इसका कुछ अंश सरयू कहलाता है। घर्घरा देखो।

सरर (हिं० पु०) बांस या सरकंडेका पतली छड़ी जो ताना ठीक करनेके लिये जुलाहे लगाते हैं, सथिया, सतगारा।

सरराना (हिं० क्रि०) हवा बहने या हवामें किसी वस्तु-के वेगसे चलनेका शब्द होना।

सरल (सं० पु०) सरतीति सृ (वृषादिभ्यश्चित्। उण् १।१०८) इति कलच् बाहुलकात् गुणः। १ वृक्षविशेष, चीड़का पेड़ जिससे गन्धाबिरोजा निकलता है। यह

सरसठ (हिं० वि०) अड़सठ देखो।

सरसठवाँ (हिं० वि०) अड़सठवाँ देखो।

सरसता (सं० स्त्री०) सरसस्य भावः तल्-टाप्। सरसत्व, रसयुक्तता, रसदार।

सरसना (हिं० क्रि०) १ हरा होना, पनपना। २ वृद्धिको प्राप्त होना, बढ़ना। ३ शोभित होना, सोहाना। ४ रसपूर्ण होना। ५ भावकी उमंगसे भरना।

सरसब्ज (फा० वि०) १ हरा भरा, लहलहाता। २ जहां हरियाली हो, जो घास और पेड़ पौधोंसे हरा हो।

सरसम्रत (सं० क्ली०) विकण्टवृक्ष, विकाटा वृक्ष।

सरसर (हिं० पु०) १ जमीन पर रेंगनेका शब्द। २ वायुके चलनेसे उत्पन्न ध्वनि।

सरसराना (हिं० क्रि०) १ सरसरकी ध्वनि होना। २ वायुका सरसरकी ध्वनि करते हुए बहना, वायुका तेजीसे चलना, सनसनाना।

सरसराहट (हिं० स्त्री०) १ साप आदिके रेंगनेसे उत्पन्न ध्वनि। २ शरीर पर रेंगनेका-सा अनुभव, खुजली। ३ वायु बहनेका शब्द।

सरसरी (फा० वि०) १ जम कर या अच्छी तरह नहीं, जल्दीमें। २ चलते ढंग पर, स्थूलरूपसे।

सरसवाणी (सं० स्त्री०) १ मण्डन मिश्रकी स्त्री। मण्डनमिश्र और शङ्कराचार्य देखो। २ सुमिष्ट वाक्य, मीठा वचन।

सरसा (सं० स्त्री०) रसेन सह वर्त्तमाना। १ श्वेत त्रिवृता, सफेद निसोथ। २ रसयुक्ता।

सरसाई (हिं० स्त्री०) १ सरसता। २ शोभा, सुन्दरता। ३ अधिकता।

सरसाना (हिं० क्रि०) १ रसपूर्ण करना। २ हरा भरा करना।

सरसाम (फा० पु०) सन्निपात, त्रिदोष, बाई।

सरसार (फा० वि०) १ मग्न, डूबा हुआ। २ मदमत्त, चूर।

सरसिका (सं० स्त्री०) १ हिङ्गुपत्री। २ छोटा ताल। ३ बावली।

सरसिज (सं० क्ली०) सरसि जायते इति जन-ड, सप्तम्या अलुक् समासः। १ पद्म, कमल। (त्रि०) २ सरोवरजात, जो तालावमें होता हो।

सरसिजयोनि (सं० पु०) कमलसे उत्पन्न, ब्रह्मा।

सरसिरुह (सं० पु०) कमल।

सरसी (सं० स्त्री०) सृ-असुन् गौरादित्वात् ङीप्। १ सरोवर, छोटा ताल। २ पुष्करिणी, बावली। ३ एक वर्णवृत्त। इसके प्रत्येक चरणमें न, ज, भ, ज, ज, ज, र होते हैं। इस छन्दका प्रयोग बहुत कम देखा जाता है। कहीं कहीं इस छन्दका नाम सिंहक और सलिलनिधि है।

सरसीक (सं० पु०) सरस्यां कायति शब्दायते इति कै-क। सारस पक्षी।

सरसीरुह (सं० क्ली०) सरस्यां रोहतीति रुह-क। पद्म, कमल।

सरसुल गोरंटी (हिं० स्त्री०) श्वेत झिण्टी, सफेद कटसरैया।

सरसेटना (हिं० क्रि०) खरी खोटी सुनाना, फटकारना, भला बुरा कहना।

सरसों (हिं० स्त्री०) एक धान्य या पौधा जिसके गोल गोल छोटे बीजोंसे तेल निकलता है, एक तेलहन।

विशेष विवरण सर्षप शब्दमें देखो।

सरस्य (सं० त्रि०) सरसि भवः यत्। सरोवरभव, तालमें होनेवाला। (शुक्लयजु० १९।३७)

सरस्वत् (सं० पु०) सरस् अस्त्यर्थे मतुप्। १ समुद्र, सागर। २ सरोवर, ताल। ३ नद। ४ महिष, भैंस। (त्रि०) ५ रसयुक्त, रसदार।

सरस्वती (सं० स्त्री०) सरो नीरं तद्वत् सरो वाक्त्वरूपा इति सरस-मतुप् मस्य वः, नसी मत्वर्थे इति भत्वान्न पदकार्य। १ नदीभेद, सरस्वती नदी। सप्तपुण्यतोया नदीमेंसे यह एक नदी है। यह नदी पुण्यसलिला है कोई भी पूजादि करनेसे पहले इस नदीका आह्वान करना होता है।

"गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु॥"

(पूजापद्धति जलशुद्धिका मन्त्र)

पूजाके समय पूजार्थ जलमें उक्त पूतसलिला ७ नदी अवस्थित हैं, इस प्रकार करनी है। मनुमें लिखा है, कि सरस्वती और दृषद्वती ये दोनों देवनदियां हैं। इन दोनों

नदियोंका मध्यवर्ती देश ब्रह्मावर्त कहलाता है तथा इस देशका जो प्रचलित आचार है वही सदाचार है।

इस नदीके पर्याय—प्लक्षसमुद्भवा वाक्सृष्टा ब्रह्मसुता भारती, वेदाग्रणी, पयोष्णीजाता, वाणी, विशाला कुटिला। देशभेदसे इस नदीके सात नाम हुए हैं— पुष्करमें पितामहके यज्ञमें यह नदी आहूत हो कर सुप्रभा नामसे, इसी प्रकार नैमिषारण्यमें सत्ययाजी ऋषियों द्वारा आहूत हो कर काञ्चनाक्षी गयदेशमें गयराज यज्ञमें आहूत हो कर विशाला, उत्तर कोशलमें औद्दालक मुनियज्ञमें मनोरमा, कुरुक्षेत्रमें कुरुराजयज्ञमें ओघवती, गङ्गाद्वारमें दक्ष प्रजापतिके यज्ञमें सुरेणु और हिमालय पर्वत पर ब्रह्माके यज्ञमें आहूत हो कर विमलोदा उक्त सात स्थानोंमें सरस्वती सात नामोंसे विख्यात हुई हैं।

सरस्वती एक महापुण्यतीर्थ है। महाभारतमें लिखा है,—सभी सरितोंमें सरस्वती अति पवित्र और सब लोकोंको शुभ देनेवाली है। मानवगणके सरस्वती नदी प्राप्त करनेसे इहलोक या परलोकमें वे अत्यन्त दुष्कृत विषयके लिये भी शोकप्रकाश नहीं करते। इस नदीमें स्नानादि करनेसे सभी पाप विनष्ट होते हैं। सरस्वतीके किनारे वास करनेसे जैसा पुण्य प्राप्त होता है, वैसा और कहीं भी नहीं होता। कितने मनुष्य सरस्वतीको आश्रय कर स्वर्गारोहण कर गये हैं उसकी शुमार नहीं अतएव सरस्वती नदी पुण्यनदियोंमें प्रधान है।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें लिखा है, कि यह नदी अति पुण्य तमा है। यदि कोई इस नदीमें स्नान करे, तो उसके सभी पाप विनष्ट होते हैं तथा वैकुण्ठमें वे विष्णुलोकमें वास करते हैं। चातुर्मास्य, पूर्णिमा, अक्षया, अमावस्या आदि शुभ तिथियोंमें जो सरस्वतीके जलमें अवगाहन करते वे सभी पापोंसे विमुक्त हो मुक्तिलाभ करते हैं। अग्निमें सभी वस्तु जिस प्रकार दग्ध हो जाती हैं, उसी प्रकार इस सरस्वती नदीमें सभी पाप तत्क्षणात् भस्मीभूत होते हैं। (प्रकृतिख० ६ अ०)

लक्ष्मी, सरस्वती और गङ्गा ये तीनों हरिप्रिया थीं और सर्वदा हरिके पास रहती थीं। हरि भी इन तीनोंको समान भावसे देखते थे, किसीके भी प्रति व्यवहारमें कमी बेशी नहीं करते थे। किन्तु एक दिन सरस्वती विष्णुको गङ्गाके प्रति अधिक प्रेमासक्ति देख कर बड़ी क्रोधित हुई और विष्णुकी निन्दा करती हुई बोली, 'जो अच्छे स्वामी हैं, वे कामिनियोंके प्रति सभी स्थानोंमें समान व्यवहार करते हैं, वे इसका विपरीत आचरण करते हैं। अतएव गङ्गाके प्रति आपको अधिक प्रीति दिखाना युक्तियुक्त और धर्मसङ्गत नहीं है। लक्ष्मी इसे भले ही क्षमा कर सकती, पर मैं कदापि नहीं।' सरस्वतीके इस प्रकार विष्णुको तिरस्कार करने पर गङ्गाने उनसे कहा 'स्वामीके सामने हो तुम्हारा दर्प चूर्ण करूंगी, देखूं तो सही, तुम्हारा कान्त क्या कर सकता?' इतना कह कर उन्होंने सरस्वतीको शाप दिया कि, 'तुम आज से सरित्‌रूपमें धरातल पर अवतीर्ण होगी।' इस पर सरस्वतीने भी गङ्गाको यही शाप दिया। इसके बाद एक दूसरेके अभिशापसे दोनों सतीरूपमें परिणत हुई। ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके प्रकृतिखण्डमें इसका विस्तृत विवरण लिखा है। विस्तार हो जानेके भयसे यहां संक्षेपमें लिखा गया। (ब्रह्मवैवर्त्तपु० प्रकृतिख० ६ अ०)

सरस्वतीका ऐसा माहात्म्य क्यों है, उसका कारण हम वेदमें पाते हैं।

सुप्राचीन वैदिक युगमें आर्योंने जब धीरे धीरे उत्तर पश्चिम भारतमें आर्यावर्त्तभूममें आ कर भिन्न भिन्न स्थानमें उपनिवेश बसाया तब उन्होंने प्रधानतः एक एक विमल सलिला खरप्रवाहा पुण्यप्रदा नदीके किनारे अपना अपना वासभवन बनाना स्थिर किया। ऋग्वेदसंहिताकी आलोचना करनेसे हमें मालूम होता है कि उस पश्चिमाभिमुख यह नदी प्रवाहित हो भारतीय आर्य उपनिवेशके मध्य-से बहती थी। इस नदीके किनारे उन्हें स्वभावजात काफी अनाज मिलते थे। ऋक् ७।४१।१६।१८ मन्त्रमें सरस्वतीका अन्नवती, उदकवती और द्युतिमतीरूपमें वर्णन किया गया है। आर्य उनको हमेशा आश्रय किये हुए रहता है तथा वे असमृद्धको समृद्धि दान करती हैं। इसी कारण प्राचीन वैदिक समाजमें सरस्वती 'अम्बितमे, नदीतमे देवीतमे" कह कर पूजित हुई थी। यह नदी सर्वदा वर्द्धमान कलेवरमें (सरस्वती सिन्धुभि पिन्वमाना। ऋक् ६।५२।६) बहती थी। सरस्वती आर्य जातिका जीवनरक्षाकी एकमात्र उपायस्वरूप थी कह

कर आर्य ऋषिगण हृदयकी भक्तिपुष्पाञ्जलि ले कर उनका स्तुतिगान कर गये हैं। ऋग्वेदके प्रथम मण्डलसे दशम मण्डलके अनेक मन्त्रोंमें सरस्वती नदीका उल्लेख रहनेसे मालूम होता है, कि आर्य-समाजने बहुत दिनों तक इस नदीके किनारे वास किया था। (वाजसनेयसंहिता १९।९३, अथर्ववेद ४।४।६ इत्यादि, तैत्तिरीयसंहिता १।८।१३।३, शतपथब्राह्मण १।६।२।४)। आर्य-उपनिवेश जितना ही उत्तर-पश्चिम भारतसे हटता गया, उतनी ही सरस्वतीकी सीमा बढ़ती गई। इस कारण भगवान् मनुने लिखा है—

"सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्यो यदन्तरम्।
तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्त्तं प्रचक्षते॥" (मनु २।१७)

ऋग्वेदके ३।२३।४ मन्त्रकी "दृषद्वत्या मानुष आपयाया सरस्वत्यां रेवदग्ने" उक्तिसे प्रतीत होता है, कि आर्य ऋषियोंने इन्हीं सब स्थानोंको आर्योपनिवेशका उपयुक्त स्थान मनोनीत किया था तथा वे लोग यहां यज्ञ करते थे। "ऋषयो वै सरस्वत्या सत्रमासत" (ऐतरेयब्रा० २।१९)" अथर्ववेदके ६।३०।१ मन्त्र पढ़नेसे जाना जाता है, कि आर्यगण सरस्वतीके किनारे जमीन जोत कर जौ पैदा करते थे।

भारतवर्षमें तीन नदी प्रधानतः सरस्वती नामसे बहती हैं। उनमेंसे वेदोक्त पुण्यतोया सरस्वती पंजाबके अक्षा० ३०° २३´ ३० तथा देशा० ७७° १६´ पू० सिरमूर राज्यकी छोटी शैलमालासे निकल कर अम्बालामें जब बदरी नामक प्रान्तर होती हुई थानेश्वर और कुरुक्षेत्रको भेद कर कर्नाल जिला और पातियाला राज्यमें घुस गई है। आखिर सिरसा जिलेकी (अक्षा० २९° ५१´ ३० तथा देशा० ७६° ५´ पू०) काग्गार (दृषद्वती) नदीमें आ कर विलीन हो गई है। पूर्वकालमें इस मिलित नदीने राजपूतानेके अनेक स्थानोंको जलसिक्त कर दिया था तथा सिन्धुके साथ वह मिल गई थी। इधर प्रयागके निकट गङ्गा और यमुनामें मिल कर त्रिवेणी हो गई थी। जिन सब स्थानोंसे सरस्वती तिरोहित हुई है, वह पौराणिक ग्रन्थमें विनसन नामसे प्रसिद्ध है। लोगोंका विश्वास है, कि प्रयागमें सरस्वती अन्तःसलिला बहती है।

वैदिक कालसे सरस्वती हिन्दूके निकट अति पुण्यतोया कह कर पूजित होती आ रही है। मनुसंहितासे हमें पता चलता है, कि सरस्वती और दृषद्वतीका मध्यवर्त्ती जनपद ही ब्रह्मावर्त्त कहलाता था। इसी स्थानसे भारतमें चातुर्वर्ण्य समाजकी सम्यक् प्रतिष्ठा हुई थी। यह सुप्राचीन नदी जन्द अवस्थामें 'हरकुइति' और चीनोंके निकट 'चौकुन' नामसे परिचित थी। जिस जिस प्राचीन स्थानसे सरस्वती बह गई है, उन्हीं सब स्थानोंमें पापनाशक अनेक तीर्थोंकी उत्पत्ति हुई है। महाभारत और नाना प्राचीन पुराणोंमें उन सब प्राचीन तीर्थोंका माहात्म्य वर्णित है।

२ एक दूसरी सरस्वती राजपूतानेके आबू पहाड़से निकल कर पालनपुर और राधनपुर राज्यके बीचसे बह गई है। स्कन्दपुराणके रेवाखण्डमें इस सरस्वतीका माहात्म्य आया है।

३ बङ्गालके हुगली जिलेमें एक सरस्वती नदी बहती है। पहले यही गङ्गाका मूल स्रोत समझा जाता था। १६वीं शताब्दी पर्यन्त सप्तग्राम तक इस नदीसे बड़े बड़े जहाज आते जाते थे। अभी यह एकदम भर कर खाड़ीमें परिणत हो गई है। प्रयागकी तरह नैहाटीके पास भी एक त्रिवेणी है। त्रिवेणी देखो।

दो सौसे अधिक वर्ष पहले यहां गङ्गा, यमुना और सरस्वतीके स्रोत विलीन हो जाने पर भी आज त्रिवेणी बङ्गवासीके निकट महातीर्थ समझी जाती है।

सरस्वती (स्त्री०) १ जलवती, नदी। २ वाणी। ३ स्त्रीरत्न। ४ गो, गाय। ५ मनुपत्नी। (मेदिनी) ६ ज्योतिष्मती। ७ ब्राह्मी। ८ सोमलता। ९ बुद्धशक्तिविशेष। १० दुर्गा। ११ वाग्देवता। पर्याय—ब्राह्मी, भारती, भाषा, गिर्, वाच्, वाणी, इरा, सारदा, गिरा, गिरांदेवी, गीर्देवी, ईश्वरी, वाचा, वचसामीश, वाग्देवी, वर्णमातृका, गो, श्री, वागेश्वरी, अन्त्यसन्ध्येश्वरी, सायंसंध्या देवता। (कविकल्पलता)

इस देवीका उत्पत्तिविवरण ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें इस तरह लिखा है—परमात्माके मुखसे एक देवीका आविर्भाव हुआ। यह देवी शुक्लवर्णा, वीणाधारिणी और करोड़ चन्द्रकी तरह शोभायुक्ता है। यह देवी श्रुति

और शास्त्रों में श्रेष्ठा और पण्डितोंकी जननी हैं। वाग धिष्ठात्री देवी कवियोंकी इष्टदेवता और शुद्धसत्त्वस्वरूपा होनेसे यह सरस्वती नामसे प्रसिद्ध हैं।

इस पुराणके गणेशखण्डमें लिखा है, कि सृष्टिकाल में प्रधानाशक्ति ईश्वरकी इच्छाके अनुसार पांच भागोंमें विभक्त हुई। वे पञ्चशक्तियां ये हैं—राधा, पद्मा, सावित्री, दुर्गा और सरस्वती। इन पांच भागोंमें विभक्त शक्तियोंमें जो देवी वागधिष्ठात्री और शास्त्रज्ञानदायिनी और कृष्ण कण्ठोद्भूत हैं उनका नाम सरस्वती है।

श्रीकृष्णने पहले इन्हीं देवीकी पूजा की। उसी समय से इन देवीकी पूजा प्रचलित हुई। इनकी आराधना करनेसे मूर्ख भी पण्डित होता है। जब यह देवी कृष्णपादपद्मके मुखसे आविर्भूत हुई, तब उन्होंने श्रीकृष्णकी कामना की। इस पर श्रीकृष्णने कहा— 'हे साध्वि! तुम मदंशसम्भूत चतुर्भुज नारायणकी कामना करो। उनको भजो और वैकुण्ठमें वास करो। माघमासकी शुक्लापञ्चमी तिथिमें और विद्यारम्भके समय सभी तुम्हारी पूजा करेंगे। तुम्हारे प्रसन्न न होने से कोई भी विद्याभ्यास नहीं कर सकता।' श्रीकृष्णकी यह बात सुन कर सरस्वतीने चतुर्भुज नारायणका आश्रय लिया। इसी समयसे माघ सुदी पञ्चमी तथा विद्यारम्भके समय इनकी पूजा होती है।

देवीभागवतमें लिखा है, कि अनन्तशक्तिने ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरको सरस्वती, लक्ष्मी और काली तीन शक्तियोंको प्रदान किया। सृष्टिके प्रारम्भमें अनन्तशक्तिने ब्रह्मासे कहा 'ब्रह्मन्! तुम इस दिव्यरूपा चारुहासिनी रजोगुणयुक्ता श्वेताम्बरधारिणी श्वेत सरोजवासिनी महासरस्वती नामकी शक्तिको क्रीडासहचारिणी करनेके लिये ग्रहण करो। यह अनुत्तमा ललना तुम्हारी प्रियसहचरी होगी। इसको मेरी विभूति समझ सदा ही पूज्यतमा समझना और कभी भी इसकी अवमानना न करना। तुम इसके साथ सत्यलोकमें गमन करो और वहां रह कर महत्तत्त्वरूप बीजसे चतुर्विध जीवोंकी सृष्टि करो।' (देवीभागवत ३।६ अ०)

श्रीभागवतके अनुसार सरस्वती ब्रह्माकी स्त्री हैं। किन्तु ब्रह्मवैवर्तपुराणके अनुसार लक्ष्मी और सरस्वती दोनों चतुर्भुज नारायणकी स्त्री हैं।

फिर कई पुराणोंमें लिखा है, कि सरस्वती ब्रह्माकी मानसकन्या हैं। किसी समय ब्रह्मा अपनी कन्या सरस्वतीको देख कामविमोहित हुए। पीछे बड़े परितापसे कामवेगका दमन कर ब्रह्माने कामदेवको अभिशाप दिया। ब्रह्माके इस शापके बाद ही कामदेव महादेवके त्रिनेत्रानलसे दग्ध हुआ था। ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके प्रकृतिखण्डमें सरस्वतीकी उपासनाका विस्तृत विवरण लिखा है। विषय बढ़ जानेके कारण यहां नहीं दिया गया।

विद्याकामनासे प्रति हिन्दूके घर सरस्वती देवीकी पूजा होती है। माघ महीनेकी शुक्लापञ्चमी ही इनकी पूजाका दिन स्थिर है। सिवा इसके बालकोंका जिस दिन पढ़ाई आरम्भ की जाती है, उस दिन भी इनकी पूजा होती है। इनकी पूजा आदिका विषय स्मृतिमें भी विस्तृतरूपसे लिखा है, उसका विवरण अत्यन्त संक्षेपमें यहां दिया जाता है। वेदमें जैसे श्रीसूक्त द्वारा लक्ष्मीकी पूजा आदि निर्दिष्ट हुई है वैसे सरस्वतीका सूक्त भी देखा जाता है। लक्ष्मीपूजा करने पर भी सरस्वतीकी पूजा की जाती है और सरस्वती पूजाके दिन भी पहले लक्ष्मीकी पूजा करनेका विधान है। इसके बाद अन्य देवताओंकी पूजा करनी चाहिये। सरस्वती देवीके आठ अङ्ग हैं—लक्ष्मी, मेधा, धरा, पुष्टि, गौरी, तुष्टि, प्रभा और धृति। अतएव इन सब अङ्गोंकी भी पूजा होनी चाहिये। पूजाके अन्तमें दक्षिणान्त और अच्छिद्रावधारण कर पूजाका अन्त करना चाहिये। (कृत्यतत्त्व) सरस्वती पूजामें बकुल और द्रोणपुष्प, ये दोनों पुष्प न चढ़ाने चाहिये। इस पूजामें चामक या गड़ाहुलका पुष्प बहुत उत्तम है।

तन्त्रसारमें भी इन देवीकी पूजा और मन्त्रादिका विवरण है। 'वद वद वाग्वादिनि वह्निवल्लभा' सरस्वतीका यह दशाक्षर मन्त्र है। इस मन्त्र द्वारा इनकी उपासना करनेसे सभी विद्या सिद्ध होती है। मेधा प्रज्ञा, प्रभा विद्या, धी, धृति स्मृति बुद्धि और विद्येश्वरी– ये सब इनके पीठदेवता हैं। इन पीठदेवताओंकी भी यथाविधान पूजा करनी चाहिये। इस मन्त्रका दस लाख जप करनेसे पुरश्चरण होता है।

इस दशाक्षर मन्त्रके सिवा अन्य मन्त्र भी हैं। उन सबोंके द्वारा भी पूजन और पुरश्चरण करनेकी विधि है। इन सब मन्त्रोंके ध्यान और पीठशक्ति भिन्न भिन्न हैं। ध्यान—

'शुभ्रां स्वच्छविलेपमाल्यवसनां शीतांशुखण्डोज्ज्वलां
व्याख्यामक्षगुणं सुधाढ्यकलसं विद्याञ्च हस्ताम्बुजैः।
बिभ्राणां कमलासनां कुचनतां वाग्देवतां सस्मितां
वन्दे वाग्विभवप्रदां त्रिनयनां सौभाग्यसम्पत्करीं' ॥"

इसी ध्यानसे पूजा करनी चाहिये। इनके सिवा और भी इनके ध्यान हैं। तन्त्रसारमें इसका विशेष विवरण और यन्त्र, स्तव, कवच आदि भी उल्लिखित है।

तन्त्रसारमें तो पारिजातसरस्वती नामकी एक और सरस्वतीका उल्लेख है। उसमें इनकी पूजापद्धति और मंत्र लिखे गये हैं। तन्त्रमें यह तारादेवी तथा नील सरस्वतीके नामसे प्रसिद्ध हैं।

तारा और नीलसरस्वती शब्द देखो।

सरस्वती-कण्ठाभरण (सं० पु०) १ तालके साठ मुख्य भेदोंमेंसे एक। २ भोजकृत अलंकारका एक ग्रन्थ। ३ एक पाठशाला जिसे धाराके परमारवंशी राजा भोजने स्थापित की थी।

सरस्वतीकुटुम्ब (सं० पु०) कवि।

सरस्वतीतन्त्र (सं० क्ली०) तन्त्रभेद। इस तन्त्रमें सरस्वतीदेवीके मन्त्रतन्त्रादिका विशेष विवरण वर्णित है।

सरस्वतीतीर्थ (सं० क्ली०) तीर्थविशेष, सरस्वतीनदीरूप-तीर्थ। सरस्वती देखो।

सरस्वतीपूजा (सं० स्त्री०) सरस्वतीका उत्सव जो कहीं वसन्तपञ्चमीको और कहीं आश्विनमें होता है।

सरस्वतीवल्लवाणी (सं० स्त्री०) वालकथित भाषा, भाषाभेद।

सरस्वतीवत् (सं० त्रि०) सरस्वती अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। स्तुतिविशिष्ट।

सरस्वतीव्रत (सं० क्ली०) व्रतविशेष, सरस्वती देवीके उद्देशसे जो व्रत किया जाता है, श्रीपञ्चमीव्रत।

सरस्वतीसूक्त (सं० क्ली०) वैदिक सूक्तभेद।

सरहंग (फा० पु०) १ सेनाका अफसर, नायक, कप्तान। २ मल्ल, पहलवान। ३ बलवान, जबरदस्त। ४ पैदल सिपाही। ५ चोबदार। ६ कोतवाल।

सरहंगी (फा० स्त्री०) १ सिपहगिरी, सेनाकी नौकरी। २ वीरता। ३ पहलवानी।

सरह (हिं० पु०) १ पतंग, फतिंगा। २ टिड्डी।

सरहज (हिं० स्त्री०) पत्नीके भाईकी स्त्री, सालेकी स्त्री।

सरहटी (हिं० स्त्री०) सर्पाक्षी नामका पौधा। यह पौधा दक्षिणके पहाड़ों, आसाम, बरमा और लंका आदिमें पाया जाता है। इसकी पत्तियां गावदुम्मी, २से ५ इञ्च तक लम्बी और १से १॥० इञ्च तक चौड़ी, अंडाकार, अनीदार और नुकीली होती हैं। टहनियोंके अन्तमें छोटे छोटे सफेद रंगके फल लगते हैं। बीज बारीक तथा तिकोने होते हैं। सरहटी स्वादमें कुछ खट्टी और कड़वी होती है। कहते हैं, कि जब सांप और नेवलेमें युद्ध होता है, तब नेवला अपना विष उतारनेके लिये इसे खाता है। इसीसे भारतवर्ष और सिंहल आदिमें इसकी जड़ सांपका विष उतारनेकी दवा समझी जाती है। इसकी छाल, पत्ती और जड़का काढ़ा पुष्ट होता है और पेटके दर्दमें भी दिया जाता है।

सरहत (हिं० पु०) खलिहानमें फैला हुआ अनाज बुहारनेका झाड़ू।

सरहद (फा० स्त्री०) १ सीमा। २ किसी भूमिकी चौहद्दी निर्धारित करनेवाली रेखा या चिह्न। ३ सीमा परकी भूमि, सीमान्त, सिवान।

सरहदी (फा० वि०) सरहद-संबंधी, सीमा-सम्बन्धी।

सरहना (हिं० स्त्री०) मछलीके ऊपरका छिलका, चूंई।

सरहर (हिं० पु०) भद्रमञ्जु, रामशर, सरपत।

सरहरा (हिं० वि०) सीधा ऊपरको गया हुआ, जिसमें इधर उधर शाखाएं न निकली हों। २ जिस पर हाथ पैर रखनेमें न जमे, फिसलाववाला, चिकना।

सरहस्य (सं० त्रि०) रहस्यके साथ वर्त्तमान, मन्त्रयुक्त, मन्त्रके साथ।

सरहिंद (फा० पु०) पञ्जाबका एक स्थान।

सराग (हिं० स्त्री०) लोहेकी एक मोटी छड़ जिस पर पीट कर लोहार बरतन बनाते हैं।

सराइकला—१ बङ्गालके सिंहभूम जिलान्तर्गत एक छोटा

राज्य। यह अक्षा० २२ ३१´ से २२ ५४´ ३०´´ पू०के मध्य विस्तृत है और अंगरेज गवर्मेण्टके पालिटिकल विभाग द्वारा परिचालित होता है।

२ उक्त सामन्त राज्यका प्रधान ग्राम। यह अक्षा० २२ ४१ ५२´ उ० तथा देशा० ८५ ५८´ २८´´ पू०के मध्य विस्तृत है।

सराइ खेर—युक्तप्रदेशके जौनपुर जिलान्तर्गत एक बड़ा ग्राम। यह सुटाहा नगरसे ६ मील पूर्वमें अक्षा० २५ ५८´ १६´´ उ० तथा देशा० ८२ ४३´ २१´´ पू०के मध्य अवस्थित है। यहां अवध और रोहिलखण्ड रेलवेका एक स्टेशन रहनेसे स्थानीय वाणिज्यकी बड़ी सुविधा हुई है। यहां एक बड़ी सराय है। सात दिनमें दो बार हाट लगती है।

सराइ मीर—युक्तप्रदेशके आजमगढ़ जिलेका एक नगर।

सराइया कोल—युक्तप्रदेशके इलाहाबाद जिलेकी छैल तहसीलका एक नगर। यह अक्षा० २५ २२´ ४३´´ उ० तथा देशा० ८१ ३० १५´ पू०के मध्य प्रयाग नगरसे २० मील दक्षिण पश्चिममें अवस्थित है। यहां ठठेरा बनियोंका वास है। इनके बनाये पीतलका बरतन और घाव मलहमादि जनसाधारणके आदरकी वस्तु है।

सराइया घाट—युक्तप्रदेशके इटावा जिलेमें अवस्थित एक प्राचीन नगर। अभी इसका अधिकांश तहस नहस हो गया है। इटावासे १३ मील पश्चिम पूर्व और सिङ्किशसे आध कोससे अधिककी दूरी पर कालीनदीके दोनों किनारे यह नगर अवस्थित है।

१७वीं सदीके शेष भागमें फर्रुखाबाद जिलेके तीन अफगान सरदारोंने आ कर यह नगर बसाया और यहां सराय सफदर रसूल और एक मसजिद बनवाई। इस नगरके पश्चिम एक विस्तृत स्तम्भस्तूप दृष्टिगोचर होता है। यह स्तूप भूपृष्ठसे प्राय ४० फुट ऊंचा और इसका व्यास प्राय आध मील है। उसके ऊपर ईंटोंके बने कुछ घर देखे जाते हैं। इन घरोंकी ईंटें जमीनके अन्दर से निकाली गई हैं। जमीनके खोदते समय कुछ बुद्धादि देवमूर्त्ति तथा विभिन्न समयके सोने और तांबेके सिक्के पाये गये हैं। १८०३ ई०में यहां एक जगह खोदते समय प्राय २० हजार रुपयेके घरके सामान और सिक्के पाये गये थे। स्थानीय किंवदन्तीके अनुसार यह स्तूप अगस्त्य मुनिके नाम पर उत्सर्ग किया गया है। अगस्त्यसे उसका नाम अगात और पीछे आघाट हुआ है। ऐसा मालूम होता है, कि यह आघाट प्राचीन साङ्काश्य नगरीका अंशभूत था।

सराइ सालेह—पञ्जाब प्रदेशके हजारा जिलान्तर्गत एक नगर। बहुत प्राचीन कालसे यह स्थान वाणिज्यमें बड़ा प्रसिद्ध हो गया है। हरिपुरके विस्तृत प्रान्तरमें स्थापित होनेके कारण दूर दूर देशोंसे पण्य द्रव्य ले कर इस नगरमें आनेकी सुविधा हुई है। अभी भी यहां पहलेकी वाणिज्यसमृद्धिका अवसान नहीं हुआ है। हल्दी ही यहांका प्रधान वाणिज्यद्रव्य है। स्थानीय जुलाहोंने उत्साह और उद्यमसे कपड़ा बुन कर अपनी बड़ी उन्नति की है। यहां तांबे और पीतलके बरतनका विस्तृत कारोबार है। यहांके सुनार अपनी वाणिज्यवृद्धिकी प्रत्याशासे समय समय पर अफगानिस्तान और मध्य एशिया तक जाया करते हैं। कोई कोई सुनार वंशपरम्परासे इन सब स्थानोंमें रहते हैं।

सराइ सिधु—१ पञ्जाब प्रदेशके मुलतान जिलेकी एक तहसील। भूपरिमाण १७५८ वर्गमील है।

२ उक्त जिलेका एक नगर। यह अक्षा० ३० ३५ ०३´ उ० तथा देशा० ७२ १ पू०के बीच पड़ता है।

सराई (हिं० स्त्री०) मिट्टीका प्याला या दीया, सकोरा।

सरागूड—दाक्षिणात्यके महिसुर जिलान्तर्गत एक गण्ड ग्राम। यह अक्षा० १२ ७´ १०´ उ० तथा देशा० ७६ २५´ पू० महिसुर राजधानीसे ३६ मील दक्षिण पश्चिममें कठधना नदीके दाहिने किनारे पर अवस्थित है। १८७० ई०में इस नगरमें हेगड़ देवनकोट तालुकका विचार सदर स्थापित हुआ है। यहां म्युनिसपलिटी रहनेसे नगर बड़ा साफ सुथरा है।

सराजक (सं० त्रि०) राजाके सह वर्त्तमान, राजयुक्त, राजविशिष्ट।

सराजन् (सं० त्रि०) राजाके सहित वर्त्तमान।

सराट (सं० पु०) एक जनपदका नाम।

सराति (सं० त्रि०) दानयुक्त, दानविशिष्ट।

सराति (सं० त्रि०) समाना रातिः (ज्योतिर्जनपदरात्रि इत्यादि। पा ६।३।८५) इति समानस्य सादेशः। समान गति।

सराफ (हिं० पु०) १ रुपये पैसे या चांदी सोनेका लेन देन करनेवाला महाजन। २ सोने चांदीका व्यापारी। ३ सोने चांदीके बरतन, जेवर आदिका लेन देन करनेवाला। ४ बदलेके रुपये पैसे रख कर बैठनेवाला दूकानदार।

सराफा (हिं० पु०) १ सराफीका काम, रुपये पैसे या सोने चांदीके लेन देनका काम। २ कोठी, बंक। ३ वह स्थान जहां सराफोंकी दूकानें अधिक हों, सराफोंका बाजार।

सराफी (हिं० स्त्री०) १ सराफका काम, चांदी सोने या रुपये पैसेके लेन देनका रोजगार। २ वह वर्णमाला जिसमें अधिकतर महाजन लोग लिखते हैं, महाजनी, मुड़िया। ३ नोट, रुपये आदि भुनानेका बट्टा जो भुनानेवालेको देना पड़ता है।

सराब (अ० पु०) १ मृगतृष्णा। २ धोखा देनेवाली वस्तु। ३ धोखा।

सराबोर (हिं० वि०) बिलकुल भींगा हुआ, तरबतर, नहाया हुआ।

सराय (फा० स्त्री०) १ रहनेका स्थान, घर, मकान। २ यात्रियोंके ठहरनेका स्थान, मुसाफिरखाना।

सराय (हिं० पु०) गुलानामका पहाड़ी पेड़। यह वृक्ष बहुत ऊंचा होता है और हिमालय पर अधिक होता है। इसकी हीरकी लकड़ी सुगन्धित और हलकी होती है और मकान आदि बनानेके काममें आती है।

सरायन—अयोध्या प्रदेशमें प्रवाहित एक छोटी नदी। यह खेरी जिलेके अक्षा० २७° ४६´ उ० तथा देशा० ८०° ३२´ पू०से निकल कर तथा २९ मील दक्षिणपूर्वगतिमें बहती हुई सीतापुर जिलेमें घुस गई है। इसके बाद इस जिलेके अक्षा० २७° ६´ उ० तथा देशा० ८०° ५५´ पू०के मध्य जम्वारी नामकी एक स्रोतस्विनी बाईं ओरसे आ कर इसमें मिल गई है। जम्वारी संगमके बाद यह नदी ३ मील उत्तर-पश्चिम ओर बहती हुई पुनः दक्षिण-पूर्वकी ओर जा कर तथा अक्षा० २७° ६´ उ० तथा देशा० ८०° ५५´ पू०में गोमतीमें मिल गई है। इस नदीकी गति ८५ मील है। वर्षा ऋतुमें बाढ़ होनेसे आस-पासके खेतोंकी फसल नष्ट हो जाती है।

सरारु (सं० पु०) सरात् सरणात् अरुर्यति अर रक्षणे उन्। मृत्युपाशविशेष, मराई।

सराल (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी पहाड़ी बकरी।

सरावग (हिं० पु०) जैन, सरावगी।

सरावगी (हिं० पु०) श्रावक धर्मावलम्बी, जैन धर्म माननेवाला। प्रायः इस मार्गके अनुयायी अगरवाल वैश्य ही अधिक पाये जाते हैं।

सराव सम्पुट (सं० क्ली०) रसौषध फूंकनेके लिये मिट्टीके दो ढकनोंका मुंह मिला कर बनाया हुआ एक बरतन।

सराविका (सं० स्त्री०) स्फोटक रोग।

सरासर (फा० क्रि०वि०) १ एक सिरेसे दूसरे सिरे तक, यहांसे वहां तक। २ बिलकुल, पूर्णतया। ३ साक्षात्, प्रत्यक्ष।

सरासरी (फा० स्त्री०) १ आसानी, फुरती। २ शीघ्रता, जल्दी। ३ मोटा अंदाज, स्थूल अनुमान। ४ बकाया लगानका दावा। (क्रि० वि०) ५ जल्दीसे, हड़बड़ीमें। ६ मोटे तौर पर, स्थूल रूपसे।

सराहन—पञ्जाब प्रदेशके बुसहर राज्यान्तर्गत एक नगर। यह शतद्रु नदीके बायें किनारेसे प्रायः ३ मील दूर हिमालयके कगारेमें अवस्थित है। इसकी एक ओर तुषार-धवलित हिमवत्‌शृङ्ग तथा बाकी तीनों ओर वनमाला विराजित है। यह समुद्रकी तहसे प्रायः ७२४६ फीट ऊंचा है। यहां बुसहर राज्यका ग्रीष्मावास है। यहांका काली-मन्दिर दर्शनीय है। ब्राह्मण अधिवासी नगरके उत्तर प्रान्तमें वास नहीं कर सकते।

सराहना (हिं० क्रि०) १ तारीफ करना, बड़ाई करना। (स्त्री०) २ प्रशंसा, तारीफ।

सराहनीय (हिं० वि०) १ प्रशंसाके योग्य, तारीफके लायक। २ अच्छा, बढ़िया, उम्दा।

सरि (सं० पु० स्त्री०) सरतीति सृ-इन्। १ निर्झर, झरना। (वि०) २ सदृश, समान, बराबर।

सरिक (सं० त्रि०) गमनकारी, जानेवाला।

सरिका (सं० स्त्री०) १ हिंगुपत्री होंगपत्री। २ मोतियों की लड़ी। ३ रत्न। ४ मुक्ता, मोती। ५ एक सांप। ६ छोटा ताल या सरोवर।

सरिगम (हि० पु०) सरगम देखो।

सरित् (सं० स्त्री०) सरतीति सृ गतौ (हसृरुहियुषिभ्य इतिः। उण् ११९६) इति इति। १ नदी। २ सूत्र। ३ दुर्गा।

सरिता (सं० स्त्री०) १ धारा। २ नदी, दरिया।

सरिताम्पति (सं० पु०) सरितां पतिः अलुक्समासः। सरित्पति, समुद्र।

सरित्फेन (सं० क्ली०) नदीका फेन।

सरित्पति (सं० पु०) सरितां पतिः। समुद्र।

सरित्वत् (सं० पु०) सरित् सन्त्यस्येति सरित् मतुप् मस्य वः। समुद्र।

सरित्सुत (सं० पु०) सरितो गङ्गायाः सुत। भीष्म।

सरिदधिपति (सं० पु०) सरितामधिपतिः। समुद्र।

सरिदिहो (फा० स्त्री०) वह नगर या भेंट जो जमींदार या उसका कारिंदा किसानोंसे हर फसल पर लेता है।

सरिद्भर्त्तृ (सं० पु०) सरितां भर्त्ता। समुद्र।

सरिद्वरा (सं० स्त्री०) सरित्सु वरा श्रेष्ठा। १ गङ्गा। २ श्रेष्ठ नदी।

सरिन् (सं० त्रि०) सरतीति सशारीणादिक इनि। गन्ता, गमनशील। (ऋक् १११३८।३)

सरिन्नाथ (सं० पु०) सरितां नाथ। समुद्र।

सरिन्मुख (सं० क्ली०) सरितां मुखं। नदीका मुख, नदीका मुहाना।

सरिमन् (सं० पु०) सरतीति सृ (हृभृधृसृस्तृशृभ्य इमनिच। उण् ४।१४७) इति इमनिच्। १ गमन, जाना। २ वायु।

सरिया (हि० स्त्री०) १ ऊंची भूमि। २ पैसा या और कोई छोटा सिक्का। (पु०) ३ सरकंडेकी छड़ जो सुनहले या रुपहले तार बनानेमें काम आती है, सरई। ४ पतली छड़।

सरियाना (हि० क्रि०) १ तरकीबसे लगा कर इकट्ठा करना, बिखरी हुई चीजें ढंगसे समेटना। २ मारना, लगाना।

सरिर (सं० क्ली०) १ सरित्, सलिल, जल। (त्रि०) २ बहु, अनेक।

सरिल (सं० क्ली०) सलिल रलयोरैक्यात् लस्य रः। सलिल, जल।

सरिवन (हि० पु०) शालपर्णी नामका पौधा, त्रिपर्णी, अंशुमती। यह क्षुप जातिकी वनौषधि है और भारतके प्रायः सभी प्रान्तोंमें होती है। इसकी ऊंचाई तीन चार फुट होती है। यह जंगलों झाड़ियोंमें पाई जाती है। इसका कांड सीधा और पतला होता है। पत्ते बेरके पत्तोंकी भांति एक सीकमें तीन तीन होते हैं। ग्रीष्म ऋतुको छोड़ प्रायः सभी ऋतुओंमें इसके फल फूल देखे जाते हैं। फूल छोटे और आसमानी रंगके होते हैं। फलियां चिपटी, पतली और प्रायः आध इंच लम्बी होती हैं। सरिवन औषधके काममें आता है।

सरिषप (सं० पु०) सृ गतौ अपः युगागमश्च पृषोदरादित्वात् साधु। (उज्ज्वल ३।१४१ उणादि) सर्षप, सरसों।

सरिश्ता (फा० पु०) १ अदालत, कचहरी। २ शासन या कार्यालयका विभाग महकमा, दफ्तर।

सरिश्तेदार (फा० पु०) १ किसी विभागका प्रधान कर्मचारी। २ अदालतों में देशी भाषाओंमें मुकदमोंकी मिसलें रखनेवाला कर्मचारी।

सरिश्तेदारी (फा० स्त्री०) १ सरिश्तेदार होनेका भाव। २ सरिश्तेदारका काम या पद।

सरी (सं० स्त्री० , सरि कृदिकारादिति ङीप्। निर्झर, झरना।

सरीखा (हि० वि०) सदृश समान तुल्य।

सरीफा (हि० पु०) एक छोटा पेड़ जिसके फल खाये जाते हैं। इसकी छाल पतली खाकी रंगकी होती है और पत्ते अमरूदके पत्तोंके से होते हैं। फूल तीन दलवाले चौड़े और कुछ नलीदार होते हैं। फल गोलाई लिये हरे रंगका होता है और उस पर उभरे हुए दाने होते हैं। बीजकोशोंका गूदा बहुत मीठा होता है। इस फलमें बीज अधिक होते हैं। सरीफा गरमीके दिनोंमें फूलता है और कातिक अगहन तक फल पकते हैं। विन्ध्य पर्वत पर बहुत से स्थानोंमें यह आपसे आप उगता है। वहां इसके जंगलके जंगल खड़े हैं। जंगली सरीफेके फल छोटे और गूदा बहुत कम होता है।

सरीमन् (सं० क्ली०) सृ-ईम-निच्। १ वायु। २ गमन। यह प्रत्यय किसीके मतमें इकारान्त हो कर 'सरिमन्' होता है।

सरीसृप (सं० पु०) सरीसृप-क्विप्। सरीसृप देखो।

सरीसृप (सं० पु०) कुटिलं सर्पतीति सृप्-यङ्-लुक्-पच-अच्। १ रेंगनेवाला जन्तु। जैसे—साँप, कनखजूरा आदि। २ सर्प, साँप। ३ विष्णुका एक नाम। (त्रि०) ४ जङ्गम।

सरु (सं० पु०) सृ-उन्। १ खड्गमुष्टि, तलवारकी मूठ। (त्रि०) २ सूक्ष्म।

सरुच् (सं० त्रि०) शोभायुक्त, कान्तिमान्।

सरुज् (सं० त्रि०) रोगयुक्त, रोगी।

सरुज (सं० त्रि०) रुजा पीडा तया सह वर्त्तमानः। रोगयुक्त, रोगी।

सरुजसिद्धाचार्य (सं० पु०) एक आचार्यका नाम।

सरुद्भव (सं० क्ली०) सरोद्भव, सरोजपद्म।

सरुष् (सं० त्रि०) क्रोधयुक्त, कुपित।

सरूप (सं० त्रि०) समानं रूपं यस्य (ज्योतिर्जनपदेति। पा ६।३।८५) इति समानस्य स। १ सदृश, समान। २ रूपयुक्त, आकारवाला। ३ रूपवान्, सुन्दर।

सरूपकृत् (सं० त्रि०) सरूपं करोति कृ-क्विप् तुक् च। सदृशकारी, सरूपकारी।

सरूपाकरण (सं० त्रि०) स्वरूपकृत्।

सरूपता (सं० स्त्री०) सरूपस्य भावः तल्-टाप्। सरूपका भाव या धर्म, सरूपत्व, समानता।

सरूपवत्सा (सं० स्त्री०) सवत्सा गौ, वह गाय जिसके बछड़ा हो।

सरूपा (सं० स्त्री०) भूतकी स्त्री जो असंख्य रुद्रोंकी माता कही गई हैं।

सरूपोपमा (सं० स्त्री०) उपमालङ्कारभेद, समानोपमा। समानोपमा देखो।

सरूर (फा० पु०) १ आनन्द, खुशी। २ हलका नशा, नशेका तरंग, मादकता।

सरेख (हिं० वि०) अवस्थामें बड़ा और समझदार, श्रेष्ठ चालाक, सयाना।

सरेखना (हिं० क्रि०) सहेजना देखो।

सरेखा (हिं० पु०) सरेखा देखो।

सरेतस् (सं० त्रि०) रेतोयुक्त।

सरेदस्त (फा० क्रि० वि०) १ इस समय, अभी। २ फिलहाल, अभीके लिये, इस समयके लिये।

सरेफ (सं० त्रि०) रेफयुक्त।

सरेबाज़ार (फा० क्रि० वि०) १ बाज़ारमें, जनताके सामने। २ खुले आम, सबके सामने।

सरेरा (हिं० पु०) १ पालमें लगी हुई रस्सी जिसे ढीला करनेसे पालकी हवा निकल जाती है। २ मछलीको बंसीकी डोरी, शिस्त।

सरेला (हिं० पु०) सरेरा देखो।

सरेस (फा० पु०) १ एक लसदार वस्तु जो ऊंट, गाय, भैंस आदिके चमड़े या मछलीके पोटेको पका कर निकालते हैं। इसे सहरेस भी कहते हैं। यह कागज, कपड़े, चमड़े आदिको आपसमें जोड़ने या चिपकानेके काममें आता है। जिल्दबंदोंमें इसका व्यवहार बहुत होता है। (त्रि०) २ चिपकनेवाला, लसीला।

सरेसमाही (फा० पु०) सफेद या काले रंगका गोंदके समान एक द्रव्य। यह एक प्रकारकी मछलीके पेटमें निकलता है जिसकी नाक लंबी होती है और जिसे नदी का सूअर कहते हैं। यह दुर्गन्धयुक्त और स्वादमें कड़ुआ होता है।

सरो (हिं० पु०) एक सीधा पेड़ जो बगीचोंमें शोभाके लिये लगाया जाता है, बनझाऊ। इस पेड़का स्थान काश्मीर, अफगानिस्तान और फारस आदि एशियाके पश्चिमी प्रदेश हैं। फारसीकी शायरोंमें इसका उल्लेख बहुत अधिक है। ये शायर नायिकाके सीधे डील डौलकी उपमा प्रायः इसीसे दिया करते हैं। यह पेड़ बिलकुल सीधा ऊपरको जाता है। इसकी टहनियाँ पतली पतली होती हैं और पत्तियोंसे भरी होनेके कारण दिखाई नहीं देती। पत्तियाँ टेढ़ी रेखाओंके जालके रूपमें बहुत घनी और सुन्दर होती है। यह पेड़ झाऊकी जातिका है और उसीकेसे फल भी इसमें लगते हैं।

सरोई (हिं० पु०) एक प्रकारका बड़ा पेड़। यह बहुत ऊंचा होता है। इसकी लकड़ी ललाई लिये सफेद होती है

और चारपाइयां आदि बनानेके काममें आती है। इसकी छालसे रंग भी निकाला जाता है।

सरोकार (फा० पु०) १ परस्पर व्यवहारका सम्बन्ध। २ लगाव वास्ता, मतलब।

सरोग (स० त्रि०) रोगेण सह वर्त्तमानः। रोगयुक्त रोगी।

सरोज (स० क्ली०) सरसि जायते इति जन ड। १ पद्म, कमल। (त्रि०) २ सरोवरजात, तालाबमें उत्पन्न होने वाला।

सरोजन्मन् (स० क्लृ०) सरसः जन्म उत्पत्तिर्यस्य। पद्म, कमल।

सरोजमुखी (स० स्त्री०) कमलके समान मुखवाली सुन्दरी।

सरोजिन् (स० पु०) सरोज उत्पत्तिस्थानत्वेनास्त्य स्येति इनि। १ ब्रह्मा। २ बुद्ध। (त्रि०) ३ कमल वाला। ४ जहां कमल हो।

सरोजिनी (स० स्त्री०) सरोजानि सन्त्यस्यामिति (पुष्करादिभ्यो देशे। पा ५।२।१३५) इति इनि। १ कमलाकर। २ पद्म, कमल। ३ कमलोंका समूह, कमलवन। ४ कमलका फूल। ५ पद्मबहुलपुष्करिणी, कमलोंसे भरा हुआ ताल, कमलपूर्ण सरसी।

सरोत्सव (स० पु०) सरे सरोवरे उत्सवो यस्य। १ सारस पक्षी। २ बक पक्षी, बगुला।

सरोद (फा० पु०) १ बीनकी तरहका एक प्रकारका बाजा। इसमें तांत और लोहेके तार लगे रहते हैं और इसके आगेका हिस्सा चमड़ेसे मढ़ा रहता है। २ नाचने गाने की क्रिया गाना और नृत्य।

सरोध (स० त्रि०) रोधेन सह वर्त्तमान। रुद्ध, रोधयुक्त।

सुरोधा (हि० पु०) श्वासका दाहिने या बायें नथनेसे निकलना देख कर भविष्यकी बातें कहनेकी विद्या।

सरोबिन्दु (स० पु०) एक प्रकारका वैदिक गीत।

सरोमनगर—१ अयोध्या प्रदेशके हरदोई जिलान्तर्गत एक परगना। भूपरिमाण ३५ वर्गमील है। पूर्वकालमें यह स्थान ठठेरोंके अधिकारमें था। १२वीं सदीके मध्य भागमें गौड़ राजपूतोंने ठठेरोंको भगा कर यह स्थान अधिकार कर लिया। इसके कुछ बाद सोमवंशोंने फिर गौड़राजपूतोंको भगा कर यहां अपना आधिपत्य जमाया। मह्मूमदीके अधीश्वर राजा भवानीप्रसादने १८०३ ई०में पाली और मारो परगनेसे कुछ ग्राम निकाल कर इस प्रदेशमें मिला लिया और इसका नाम सरोमनगर रखा।

२ उक्त जिलेके उक्त परगनेका एक नगर। यहां बिहारीश्वर प्रतिष्ठित है। शाहाबादसे यह स्थान ६ मील दक्षिण और हरदोईसे १५ मील उत्तर पश्चिममें अवस्थित है। यहांके अधिवासी सभी हिन्दू हैं। सात दिनमें दो बार हाट लगती है।

सरोरुह् (स० क्ली०) सरसि रोहतीति रुह क्विप्। पद्म कमल।

सरोरुह (स० क्ली०) सरसि रोहतीति रुह क। पद्म कमल।

सरोरुहश्रुत (स० पु०) एक बौद्ध आचार्यका नाम।

सरोरुहासन (स० पु०) सरोरुहमासनं यस्य। पद्मासन। ब्रह्माने प्रलयकालमें विष्णुके नाभिपद्मसे अवस्थान किया था, इसलिये इसका नाम पद्मासन हुआ है।

सरोरुहिणी (स० स्त्री०) सरोजिनी, पद्मिनी।

सरौला (हि० पु०) एक प्रकारकी मिठाई। यह पोस्त, छुहारे, बादाम आदि मेवोंके साथ मैदेके घी और चीनी में पका कर बनाई जाती है।

सरोवर (स० क्ली०) सर सु वर श्रेष्ठ। पद्माकरत्वात्। १ तालाब, पोखरा। २ ताल झील। पुष्करिणी देखो।

सरोष (स० त्रि०) रोषेण सह वर्त्तमानः। रोषयुक्त कुपित।

सरोसामान (फा० पु०) सामग्री, उपकरण, असबाब।

सरोही (हि० स्त्री०) सिरोही देखो।

सरौ (हि० पु०) १ कटोरा, प्याली। २ ढक्कन ढकना। ३ सरो देखो।

सरौता (हि० पु०) सुपारी काटनेका औजार। यह शब्द के दो खण्डोंका होता है। ऊपरका खण्ड छुरीकी भांति धारदार होता है और नीचेका मोटा। जिस पर सुपारी रखते हैं। दोनों खंडों के सिरे दोनों कड़ियोंसे जुड़े रहते हैं जिससे वे ऊपर नीचे घूम सकते हैं। इन्हीं दोनों खण्डोंके बीचमें रख कर और ऊपरसे दबा कर सुपारी काटी जाती है।

२ शाल। ३ मन्इका पेड। ४ मद्दा छोड़नेपर गरम हुआ फगाव।

सर्जगन्धा (स० स्त्री०) सर्जस्येव गन्धो यस्याः। रास्ना।

सर्जन (स० क्ली०) सृज-ल्युट्। १ सैन्यपश्चाद्भाग, सेनाका पिछला भाग। २ विसर्जन, त्याग करना, छोड़ना। ३ सृष्टि, सर्ग। ४ निकालना। ५ माल्का गोन।

सर्जन (अ० पु०) शस्त्रचिकित्सा करनेवाला, चीरफाड़ करनेवाला डाक्टर।

सर्जनामन् (स० पु०) सर्ज नाम यस्य। सर्जतरु।

सर्जनिर्यासक (स० पु०) सर्जस्य निर्यासः स्वार्थे कन्। राल धूना।

सर्जनी (स० स्त्री०) गुदाकी बलियोंमेंसे बीचवाली बली जो मल, पवनादि निकालती है।

सर्जमणि (स० पु०) सर्जस्य मणिरिव। १ धूनक, धूना। २ समलका गोंद, मोचरस।

सर्जरस (स० पु०) सर्जस्य रसः। शालवृक्षका निर्यास, धूना।

सर्जरी (अ० स्त्री०) चीर फाड़ करके चिकित्सा करनेकी क्रिया या विद्या।

सर्जापुर—महिसुर राज्यके बङ्गलूर जिलान्तर्गत एक नगर। य अक्षा० १२ ५२´ उ० तथा देशा० ७७ ४६ ५´´ पू०के मध्य अवस्थित है। हैदर अली और उनके पुत्र टीपू सुलतानके समय यह स्थान बड़ा समृद्धिशाली हो उठा था। उस समय यहां बड़े बड़े धनाढ्य मुसलमान रहते थे। आज कल वे सभी प्राय: दुःस्थ हो गये हैं, उन को बड़ी बड़ी अट्टालिकाएं भी टूट फूट गई हैं। यहां आज भी सूती कपड़े कार्पेट और फोते आदि बनानेका विस्तृत कारबार है। पूर्वका तरह यहां और बढ़िया सूती कपड़ा तैयार नहीं होता।

सर्जि (स० स्त्री०) सर्ज अर्शा इन्। सर्जिकाक्षार सज्जी।

सर्जिका (स० स्त्री०) सर्जिरेव स्वार्थे कन् टाप्। १ सर्जिकाक्षार, सज्जी खार। २ नदीविशेष।

सर्जिकाक्षार (स० पु०) सर्जिका एव क्षारः, यद्वा सर्जिका याः क्षारः। सर्जिक्षार सज्जी मिट्टी। गुण—कटु उष्ण, कफ और वातोदरपीड़ानाशक।

सर्जी (स० स्त्री०) सर्जि वाहुलकात् ङीप्। सर्जिका क्षार सज्जी मट्टी।

सर्जीक्षार (स० पु०) सर्जिकाक्षार, सज्जी मिट्टी।

सर्जू (स० पु०) वणिक्, व्यापारी।

सर्जू (स० स्त्री) सर्जतीति सर्ज (कृषिचमितनिधनीति। उण् १।८२) इति ऊ। १ विद्युत् बिजली। २ अभिसार। ३ हार। ४ वणिक्, व्यापारी। ५ सरयू देखो।

सर्जूर (स० पु०) दिन।

सर्टिफिकेट (अ० पु०) १ परीक्षामें उत्तीर्ण होनेका प्रमाण पत्र सनद। २ चाल चलन स्वास्थ्य योग्यता आदिका प्रमाणपत्र।

सर्त्त (प० स्त्री०) शर्त देखो।

सर्ना (हि० पु०) घोड़ा।

सर्द (फा० वि०) १ ठण्ढा, शीतल। २ सुस्त काहिल, ढीला। ३ मन्द धीमा। ४ बेस्वाद बेमजा। ५ नपुंसक, नामर्द।

सर्दबाई (हि० स्त्री०) हाथीकी एक बीमारी जिसमें उसके पैर जकड़ जाते हैं।

सर्दमिजाज (अ० वि०) १ मुर्दा दिल, जिसमें उत्साह न हो। २ जिसमें शील न हो, बेमुरौवत रूखा।

सर्दा (फा० पु०) बढ़िया जातिका लम्बोतरा खरबूजा जो काबुलसे आता है।

सर्दाबा (फा० पु०) कब्र, समाधि।

सर्दार (फा० पु०) सरदार देखो।

सर्दारशहर—राजपूतानेके बीकानेर राज्यान्तर्गत एक नगर। यह बीकानेर नगरसे ७१ मील उत्तर पश्चिममें अवस्थित है।

सर्दी (फा० स्त्री०) १ सर्द होनेका भाव, ठण्ढ शीतलता। २ जाड़ा, शीत। ३ जुकाम, नजला।

मर्दाना (सरधान)—१ युक्तप्रदेशके मीरट जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २८ १ से २९ १६ उ० तथा देशा० ७७ १६ से ७७४३ पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण २७० वर्गमील और जनसंख्या दो लाखके करीब है। इसमें एक शहर और १२४ ग्राम लगते हैं। इस उप

सौंपा गया था। इस समय समरूपुत्र जाफरने माताके प्रति अत्यन्त घृणित व्यवहार किया था। बेगमके प्रति यह कठोर अत्याचार उसके विश्वस्त पुराने नौकर ग्राज टामसको अच्छा नहीं लगा। उन्होंने उस विपन्न बेगम का पक्ष लिया। उनकी वीरता और राजनीतिक कौशल से बेगम फिरसे राजतख्त पर बैठ कर राजकार्य चलाने लगा। इस समयसे ले कर १८३६ ई०में उसके मृत्युकाल पर्यन्त बेगमने निर्विरोधसे राज्यभोग किया था।

दिल्ली युद्धके बाद १८०३ ई०में उत्तर अन्तर्वेदी प्रदेशमें अंगरेजोंकी विजयपताका जब फहराने लगी, तब बेगमने अङ्गरेजों के प्रति विशेष भक्ति दिखला कर उनकी अधीनता स्वीकार कर ली थी। इस समय बेगम समरूका राज्य बहुत दूर तक फैला हुआ था। सर्द्धाना, बराउत बर्नावा धनकौर आदि वाणिज्यप्रधान नगर उसके दखलमें थे। ये सब नगर आदि मीरट राजधानीके निकटवर्त्ती होनेके कारण विशेष समृद्धिशाली भी हो गये थे। एकमात्र मीरट जिलेकी सम्पत्तिसे उस वार्षिक ५६७२१०) रु०की आय थी। सर्द्धाना जिला, मीरट छावनी, जलालपुर आदि स्थानोंमें बेगम समरूका वासभवन था। इसके सिवा उनके उद्योगसे सर्द्धानामें एक गिरजा घर और दरिद्रालय स्थापित हुआ था। इन दोनोंके कुल खर्च तथा कलकत्ता, मन्द्राज बम्बई और आगराके कुछ कैथलिक गिरजा घरका, सेण्ट जान्स रोमन कैथलिक कालेज और मीरट कैथलिक चापेलके खर्चके लिये उसने बहुत रुपये दान किये। साधारणके हितार्थ उसने कलकत्ता डिशपको लाखसे अधिक सोनेकी मुद्रा दी थी। हिन्दू और मुसलमान धर्म प्रचारके कितनी समितियोंमें भी उसने रुपये दिये थे।

१८०२ ई०में समरूके पुत्र जाफर आयावका मृत्यु हुई। उसके एक मात्र कन्या थी। बेगमने उस कन्याको अपने अधीनस्थ डाइस नामक एक सेनापतिके हाथ समर्पण किया। उस कन्याके गर्भजात एकमात्र पुत्र डेभिड अक्टरलोनी डाइस समरूने १८८१ ई०में पेरिस राजधानीमें देहत्याग किया। पीछे सर्द्धानाराज्य उसकी विधवापत्नी भाइकाउण्ट सेण्ट भिनसण्टकी कन्या आन रैजन मरी पेरा फारेष्टके दखलमें आया।

सर्द्धाना नगरके पूरब बेगमका प्रासाद है जो देखने लायक है। १८९३ ई०में यहांका रोमन कैथलिक काथिड्रेल बनाया गया। चार जैनमन्दिर आज भी यहांके जैन समाजके प्रभावका परिचय देते हैं। लड़करखड़का प्राचीन दुर्ग अभी खण्डहरमें पड़ा है। १८८३ ई०में यहां म्युनिसिपालटो स्थापित हुई है। शहरमें एक मिडिल और छ प्राइमरी स्कूल हैं।

सर्द्धाना—युक्तप्रदेशके मीरट जिलेका एक प्रसिद्ध राज्य। भूपरिमाण २८ वर्गमील है और आय लाख रुपयेसे ऊपर की है। राज्यका सदर सर्द्धाना शहरमें है यह मुसलमान सैयद्‌के अधिकारमें है जो अपनेको आठवें इमाम अली मूसा रजाके वंशधर बतलाते हैं। ये लोग पहले काबुलके निकट पघमानमें रहते थे, पर पीछे कई कारणोंसे वहांसे भगा दिए गये। पीछे एक हजार रुपया मासिक वृत्ति उस वंशको दी गई। सिपाहीविद्रोहमें सयोद महम्मद जान फिसान खाने अंगरेजोंको मीरट और दिल्लीमें काफी मदद पहुंचाई थी। इसके पुरस्कारमें उन्हें नवाब बहादुरकी उपाधि और सर्द्धानाको जागीर मिली। वर्त्तमान नवाबका नाम सयोद अहमदशाह है।

सर्प (सं० पु०) सृप्यते सृप घञ्। १ नागकेशर। (रत्नमाला) सृप भाव घञ्। २ गमन। सर्पति इतस्ततो गच्छतीति सृप अच। ३ श्मश्रुधारी या दाढ़ीदार म्लेच्छजाति विशेष। यह जाति पहले क्षत्रिय था। पुराणानुसार राजा सगरने वशिष्ठकी आज्ञानुसार इनका विनाश न कर वेदका अधिकार छीन हिन्दूवेश बदल देशसे निकाल दिया था। इससे यह जाति दाढ़ीदार म्लेच्छ जातिमें गिनी गई।

"शका यवनकम्बोजा पारदाः पह्लवास्तथा।
कोलिसर्पा महिषका दार्वाश्चोलाः सकेरलाः॥
सर्वे ते क्षत्रियास्तात धर्मस्तेषां निराकृतः।
वशिष्ठवचनाद्राजन् सगरेण महात्मना॥"

४ स्वनामख्यात सरीसृप जातिविशेष। प्रचलित भाषामें सांप कहते हैं। पर्याय—पृदाकु, भुजग भुजङ्ग, अहि भुजङ्गम, आशीविष, विषधर, चक्री, व्याल सरीसृप, कुण्डली गूढ़पात् चक्षुःश्रवस्, काकोदर, फणी, दर्वीकर, दीर्घपृष्ठ, दन्दशूक, बिलेशय उरग पन्नग, भोगी,

श्वनाशन, कुम्भीलस, द्विरसन, भेकभुज्, श्वसनोत्सुक, फणाधर, फणधर, फणावत, फणाकर, फणकर, समकोल, व्याड, दंष्ट्री, विषास्य, गोकर्ण, उरङ्गम, गूढ़पाद, विलवासी, दर्वीभृत्, हरि, प्रचलाकिन्, द्विजिह्व, जलरुण्ड, कञ्चुकी, चिकुर, भुज। इनकी उत्पत्तिका विवरण नाग शब्दमें देखो।

पाश्चात्य प्राणीतत्त्वविदोंने बहु गवेषणा द्वारा इस तरह सर्पतत्त्व प्रकाशित किया है—सर्प जातिकी देह दीर्घायतन, नलाकार या अर्द्ध नलाकार है। कुछ सांप तो पुच्छाग्र सूचीमुख या अपेक्षाकृत कुछ मोटा होता है। इनकी देहमें पैर आदि कोई अङ्ग प्रत्यङ्ग दिखाई नहीं देता, समूची देह केंचुलदार चमड़ेसे आवृत रहती है। इस केंचुलदार चमड़ेके नीचे कुछ रेखाएं बनी हुई हैं। इन रेखाओंके सहारे छातीके बलसे सर्प जाति अनायास ही चलती है। देहाभ्यन्तरकी कसेरुकास्थिके सिवा और कोई अस्थि नहीं है। पञ्जरास्थियां उनके अङ्ग चालनाके साथ ही चालित होती हैं। मस्तक भागमें तालू और हनुकी अस्थि इच्छाक्रमसे सञ्चालित होती है। उक्त तालू और हनुमें सूक्ष्म बारीक सूईकी तरह बहुतेरे दांत दिखाई देते हैं। दोनों आंखें खुली रहती हैं, उन पर परदा नहीं रहता या है ही नहीं। जिह्वा या जीभ बारीक सूतकी तरह दो खण्डोंमें बंटी हुई हैं। कर्णरन्ध्र भी नहीं है इसलिये सर्प जाति द्विजिह्वा अर्थात् दो जीभवाली भी कही जाती है। इनके दोनों गलफड़ आपसमें मिले हुए आगेको और मुंहमें ऐसे मिल गये हैं, जिससे आवश्यकता पड़ने पर बड़े चौड़े हो सकते हैं। जिस सर्पका शिरोभाग कपित्थाकार है, वह सहज ही पूर्ण वयस्क मनुष्यको अपने गलेमें धर दबाता है अर्थात् सर्पका गलफड़ इतना चौड़ा हो सकता है, कि उसकी दशगुनी देह भी उसके मुंहमें सहज ही आ सकती है।

ये अण्डे देते हैं। एक बारमें १० से ८० अण्डे तक देखे गये हैं। अण्डे अर्द्धवृत्ताकार और कोमल चमड़ेसे आच्छादित रहते हैं। उष्ण प्रधान देशोंमें सर्पोंके अण्डोंको फोड़नेमें किसी तरहका यत्न नहीं करना पड़ता। एक जगह अण्डे दे कर हट जाते हैं। ये अण्डे सूर्य उत्तापसे या वहांके जलवायुके कोमल उत्तापसे आप ही फुट जाते हैं और उससे छोटे सर्प शावक (पोआ) बाहर निकल आते हैं। केवल मयाल सर्प ही अपने अण्डेके फोड़नेमें विशेष यत्नतत्पर होते हैं। ये सर्प जब अण्डे देंगे, तभीसे मण्डली बांध उन अण्डोंको घेर कर बैठ जाते हैं और उन्हें अपनी गर्मीसे ताप देते हैं। जब तक इन अण्डोंसे सर्प बाहर निकल नहीं आते, तब तक ये सर्प बड़े यत्नसे उनकी रक्षा करते हैं। अण्डे देनेवाला सर्पिणी अपनेको शत्रु द्वारा आक्रान्त जान कर शावकोंकी रक्षाके लिये अति भीषण भावसे आततायी पर टूट पड़ती है। सुमिष्ट जलमें वास करनेवाले नाना जातीय सर्प, लवण समुद्रज सर्प जाति और वाइपेरिड (Viperidae) और क्रोटालिडि (Crotalidae) श्रेणीकी सर्प जातिके डिम्ब पूर्णकाल तक डिम्बाधारमें रहते हैं। पीछे यथासमय गर्भाशयमें डिम्बस्थ शावक आवरणोन्मुक्त हो मातृजठरसे प्रसूत होते हैं। इसीलिये इन सर्पोंकी Ovoviviparous संज्ञा हुई है।

प्राणीतत्त्वविदोंकी चेष्टासे अब तक जितने सर्पोंका विवरण प्रदत्त हुआ है, उनकी संख्या १५०० है। कुछ प्रसिद्ध ग्रन्थकारोंने इनकी संख्या १८०० तक बताई है। यूरोपके ७०° ३० अक्षांश और अमेरिकाके कालिफोर्निया प्रदेशके ५४° उत्तर अक्षा० और विषुवरेखाके दक्षिण ४०° तक स्थानमें सर्प जातिका वास देखा जाता है। शीतप्रधान या नाति शीतोष्ण देशोंमें सर्पका जाति और उनकी संख्या बहुत कम है। एकमात्र उष्णप्रधान देशमें ही सर्पोंकी बहुलता दिखाई देती है। यहां ये स्वच्छन्दतासे नदी और पोखरोंमें डूबे रहते हैं, कभी सूर्यके उत्तापसे अपनी देहको उत्तप्त कर निश्चिन्त मनसे वायुसेवन करते हैं। इसीलिये यह 'वायु भक्ष' भी कहे जाते हैं।

उष्णप्रधान देशमें कीटपतङ्गादि छोटे छोटे प्राणीसे पूर्ण रहनेसे सर्पोंके आहारका अभाव नहीं रहता। कुछ सर्प छोटे छोटे जानवरोंको भी खा डालते हैं, जैसे—चूहे, छछून्दर मेढ़क और तो क्या ये सर्प कभी कभी बकरीके छोटे छोटे बच्चों या मेमनोंको खा जाते हैं। उष्णप्रधान देशमें अजगर, मयाल आदि भीषणदेह सर्प वृक्षारोहणकारी

सर्प, समुद्र सर्प नाना जातीय विषधर सर्प आदि जो सब विशेष विशेष सर्पजाति दिखाई देती है, पृथ्वीके दूसरे किसी स्थानमें ऐसे सर्प दिखाई नहीं देते। किन्तु केवल इतना ही कहा जा सकता है, कि प्रत्येक देशमें ही वहांकी मिट्टीमें रहने योग्य एक एक तरहके सर्प हैं। जनशून्य मरुभूमिमें भी सर्प देखे जाते हैं। सब जातिके इस तरह सर्वस्थलोंमें वासव्यवस्था देख कर हम जान सके हैं, कि स्थानभेदसे इनके जीवनकी व्यवस्था देहगठन और गतिविधिका वैलक्षण्य हुआ है। एक सर्प देखनेसे ही उसके आकारसे ही उसके अन्तरस्थ गुणका अनुभव किया जाता है। नीचे उसके दृष्टान्त लिखे जाते हैं।

१ बिलेशय सर्प—ये बिल खोद कर जमीनमें रहते हैं, कभी भी ऊपर नहीं निकलते। इनकी देह नलाकार और मजबूत है, ऊपरी भाग कठिन और चिकनी केंचुलसे आच्छादित है, मस्तक गोलाकार क्षुद्र और मुख विवर अप्रशस्त है। चक्षु छोटे तथा दाँत विरल होते हैं। ये मिट्टीके भीतर ही कृमि कीट खाते हैं। इनके दांतमें विष नहीं है।

२ भूचारी सर्प—ये जमीन पर ही रहते हैं जल और जङ्गलमें रहना पसन्द नहीं करते, कभी भी गुल्म लता पर नहीं चढ़ते। इनकी देह नलाकार, कोमल और केचुलदार चमड़ेसे आच्छादित है। इनमें अधिकांश ही विषहीन, किन्तु किसी किसी जातिमें विष अवश्य है। ये प्रायः कीटपतङ्ग पकड़ कर खाते हैं।

३ वृक्षारोही सर्प—ये प्रायः ही वृक्षों पर रहते हैं। जिस वृक्ष पर ये रहते हैं, इनके शरीरका रङ्ग प्रायः उस वृक्षसा ही हो जाता है। इनका शरीर पतला और चिपटा है। इस जातिके अनेक सर्पोंको वृक्ष पर पक्षियोंके घोंसलेमें जा पक्षिशावकोंको खा डालते देखा गया है। हरहरा सर्पका वर्ण कद्दूकी लताके समान ठीक उज्ज्वल हरिद्वर्ण है। इस जातिके सर्प साधारणतः विषाक्त हैं।

४ मीठे जलमें रहनेवाले सर्प—ढोंड़ साँप। ये सदा पोखरे या क्षुद्र जलाशयोंमें रहते हैं। कभी जल पर तैरते दिखाई देते हैं, कभी जलमें डूब जाते हैं। ये मेढक, मछली या अन्य छोटे छोटे जलीय जीवोंको खा कर जीवनधारण करते हैं। इनकी देह मध्यमाकार और गोलाकार होती है, मस्तक चपटा और छोटा, आँख छोटी और पूंछ पतली होती है, मस्तक पर नासारन्ध्र है, इसके द्वारा ही इनकी श्वासक्रिया सम्पादित होती है।

५ समुद्रसर्प—इनकी देह चिपटी और पूंछ ढालकी तरह, पीठ व शल्कयुक्त, पूंछकी हड्डी स्नायुचक्रमी द्वारा ऊर्द्ध्वाधोभावसे रक्षित और परिचालित होती है। ये समुद्रमें ही रहते हैं, कभी भी जलसे बाहर जमीन पर नहीं आते। मत्स्यादि इनकी केवल उपजीविका है। ये विषाक्त हैं, ये पहले शावक ही प्रसव करते हैं।

सर्पमात्र ही दिनमें विचरण करता है। दिनका आलोक या प्रकाश जितना ही तेज होता है उतना ही सर्पोंकी स्फूर्ति बढ़ती है कोई सर्प दारुण प्रखर सूर्य रश्मिमें दो पहरको सो कर अपनी देहको सुखा रहे हैं, कोई सर्प जङ्गलकी जलीय भूमिमें आनन्द कर रहे हैं और कोई वायुसेवन करनेके लिये जमीन पर घूम फिर रहे हैं। दिनमें इनकी प्रकृति जितनी चञ्चल होती है रातको उतनी नहीं होती। रातको इनकी आँख बन्द हो जाती और चक्षुका उपरिस्थ भाग अक्षिके ऊपर चढ़ जाता है।

शीतकालमें ये प्रायः एक स्थानमें ही रहते हैं। शीत का कठोर प्रभाव इनकी कोमल शीतल देहमें सहन नहीं होता। सिवा इसके ये गर्मीमें भी दो एक ही स्थानमें रहना पसन्द करते हैं। जितने दिनों तक एक स्थानमें इनको आहारका अभाव नहीं होता, उतने दिनों तक ये स्थान परिवर्त्तनकी कोशिश नहीं करते।

सर्पमात्र ही मांसभोजी हैं। पहले कह चुके हैं, कि सामने आये हुए कीट पतङ्गोंको सर्प खाते हैं। केवल ये ही नहीं, कोई कोई सर्प पक्षियोंके डिम्ब खाना बहुत पसन्द करते हैं और प्रायः उनकी खोजमें घूमते फिरते हैं। प्रायः सब सर्प ही अपने अण्डे या शावक को खा डालते हैं। कभी कभी मेढकको पकड़ कर निगल जाते हैं। कुछ सर्प अपने शिकारको पकड़ कर अपनी पूंछसे दबा लेते हैं और धीरे धीरे उसको दबाते दबाते

निर्जीव कर देते हैं। विपाक सर्प पहले ही छोटे छोटे पशु या पक्षीको काटते हैं काटते ही वे मर जाते हैं और वहां गिर पड़ते हैं। कभी कभी शिकार आहत होने पर भी वे उसी समय उसको उदरस्थ नहीं करते, इच्छानुसार और समयके मुताबिक इस निहत पशुदेहको निगलते हैं। जीवदेहको निगलते समय अपने दोनों गलफड़ सर्वापेक्षा फैलाते हैं और पहले मस्तक निगलने लगते हैं। इनका यह निगलनेका काम इतना धीरे धीरे होता है, कि कवलित पशुदेह सर्पदेहकी अपेक्षा दशगुनी अधिक होने पर भी अनायास ही सर्पके उदरमें स्थान पाती है। क्योंकि इनके गलेकी नली और उदरदेश इतना स्थितिस्थापक है, कि निगली हुई जीवदेह बड़ी होने पर भी स्थान पाती है और कभी कभी उदरका चमड़ा इतना फैल जाता है, कि निगली हुई जीवदेह बाहरसे स्पष्ट दिखाई देती है। निगलते समय सर्पोंके मुंहसे यथेष्ट लाला या लार निकलती है। इसके द्वारा भी विषधर सर्पके विषके संयोगसे रासायनिक प्रक्रियासे निगली पशुकी अस्थि कोमल हो जाती है।

सर्पजाति साधारणतः हिंस्र नहीं, मनुष्य या पशु को आते देख कर ही आक्रमण नहीं करती; वरं वह वृहदाकार जीवदेहको देख कर भागनेकी चेष्टा करती है। किन्तु करैत आदि दो एक जातिके सर्प मनुष्यको देखते ही उस पर आक्रमण करनेके लिये अपनी फणा फैलाते और उठाते हैं। कई बार देखा गया है, कि करैत साँप मनुष्यकी छाया देख कर ही आक्रमण करते हैं और उन्हें काट लेते हैं। कभी भी तो वे मनुष्यको खदेड़ते खदेड़ते उनके घर तक जा कर काटते हैं। गोखुरा आदि विषधर सर्प करैतकी तरह हिंस्र नहीं हैं, वे कदाचित आत्मरक्षार्थ ही काटा करते हैं।

भारतकी मृत्युसूचीको देखनेसे मालूम होता है, कि प्रति वर्ष भारतके बीस हजार मनुष्य सर्पके काटनेसे मरते हैं। इनके विषका तेज इतना प्रखर है, कि साँपके काटनेके थोड़ी देर बाद ही मनुष्य मृत्युके लक्षण प्रकाशित करने लगता है। उसके मुखसे उस समय लार निकलने लगती है, हाथ पैर नीले रङ्गके हो जाते और ठण्डे पड़ने लगते हैं। यह केवल विषके प्रभावसे ही होता है, लोग ऐसा स्वीकार नहीं करते। स्नायविक धातुविशिष्ट व्यक्ति सर्पदंशनसे मृत्यु सुनिश्चित समझ इतना भीत और शीर्ण हो जाता है, कि उसे तुरत ही हृद्रोग हो जाता है। ऐसा होने पर सर्प विष न होने पर भी मनुष्य मरते देखे गये हैं।

सर्पजाति सरीसृप जगत्में Ophidia श्रेणीमें गिनी जाती है। देश भेदसे और स्थानीय जलवायुके विपर्यय से इनकी आकृति और गठनमें वैलक्षण्य दिखाई देता है। सर्पविद् इनकी जाति और वंशगत पार्थक्य निर्देश करते हैं इसके अनुसार हम भी एक एक जातिको भिन्न भिन्न दलमें निबद्ध करते हैं—

1 Hopoterodontes—(a) Typhlopidæ, (b) Steno stomatidæ.

2 Ophidri Colubri ormes—(a) Tortricidæ, (b) Xenopeltidæ, c) Uropeltidæ, (d) Calamaridæ, (e) Oligodontidæ, (f) Colubridæ, (g) Homalopsidæ, (h) *Psammophidæ*, i) Rhaciodontidæ, (j) Denbrophidae, (k) Drrophidae, l Dipsadidae, (m) Scytalidae, (n Lycodontidae, (o Amblycephalidae p, Erycidae, (q) Boidae, (r) *Pythonieae*, (s) Acrochordidae, (t) Xenodermidae.

इन्हीं बीस दलोंमें नाना जातिके सर्प हैं। ये जमीन पर चलनेवाले और विषहीन हैं।

3 Ophidi Colubriformes Venenosi—(a) Elapide, (b) Atractaspididae, (c) Cansidae, (d Dinophidae, (e) Hydrophidae.

करैत, गोखुरा, समुद्र सर्प आदि विषधर सांप इन पांच दलोंके अन्तर्गत हैं।

4 Ophidii Viperiformes—(a) Viperidae, (b) Crotalidae. झमझम शब्दकारी Rattle snake नामक विषधर सर्प और पिट भाईपार आदि सर्प अन्तिम दलमें हैं।

ऊपर जो कई दल निर्देश किये गये, उनमें पूर्वोक्त प्रायः १८०० विभिन्न प्रकारके सर्प हैं।

हमारे देशमें नागपूजाका विधान है। नागपञ्चमीमें

स्त्रियां सर्पका चित्र अङ्कित कर पूजा करती हैं। मनसा देवी सर्पकी अधिपति हैं। वेहुलाके उपाख्यानसे बङ्गालमें सर्पपूजाका प्रचार हुआ।

हरिशर्मा सर्पमतकी कथा लिखी है। तक्षक द्वारा परीक्षित निहत हुए। उनके सुपुत्र जनमेजयने तक्षक विनाशके लिये सर्पसत्र यज्ञानुष्ठान किया था। इस यज्ञकी होमाग्निमें बहुतेरे सर्पोंका नाश हुआ था। जनमेजय देखो।

अग्निपुराण आदि पुराणोंमें नाना जातीय सर्पोंका विवरण लिखा है।

वैद्यक मतसे सर्प दो तरहका है दिव्य और भौम। जिनका दृष्टि और निश्वासमें विष है वह दिव्य तथा जिनके दांतोंमें विष है, उनको भौम सर्प कहते हैं।

भौम सर्पोंका विष दांतोंमें ही है। इनके काटनेसे जो विकार होता है। जब तक यह काटता नहीं, तब तक इनके विषसे कुछ भी भय नहीं। ये सब सर्प ८० प्रकारके हैं। ये पाच श्रेणियोंमें विभक्त हुए हैं, यथा—दर्वीकर, मण्डली राजिमन्त, निर्विष और वैकरञ्ज। इनमें दर्वीकर जातीय २६ प्रकार, मण्डली २२ प्रकार, राजिमन्त १० प्रकार, वैकरञ्ज ३ प्रकार और निर्विष १२ प्रकारके हैं। वैकरञ्ज जातिसे सात प्रकारकी चित्रा उत्पन्न हुई है। ये मण्डली और राजिमन्त दोनोंके गुणविशिष्ट हैं। वैरसे कुचले, दुष्ट, क्रुद्ध या क्षुधार्त्त होने पर ये बड़े क्रोधसे काटते हैं, उनका दंशन या काटना तीन तरहका है—सर्पित, रदित और निर्विष।

जिसके काटनेसे एक दो अथवा अनेक दांतोंके गम्भीर चिह्न सरक्त हो फूल उठते हैं और दंशन या दंशन स्थान विकृत हो जाता है अथवा मध्भिन्नावस्थामें दन्तश्रेणी चिह्नयुक्त हो फूल उठती है उसको सर्पित कहते हैं। दंशन स्थानमें रक्त, नील, पीत और कृष्ण वर्ण रेखा दिखाई दे, तो उसको रदित कहते हैं। इस दंशनमें कम विष रहता है। यदि दंशनका स्थान फूल न उठे और अल्प दूषित रक्त या अधिक दंशनका चिह्न न दिखाई दे तो उसको निर्विष दंशन कहते हैं।

डरपोक आदमीके शरीरमें किसी तरह सर्प गिर पड़े या छू ले तो उसका वायु बिगड़ जाता है, इससे उसका शरीर फूल जाता, उसको सर्पाङ्गाभिहत कहते हैं। सर्प पीड़ित या उद्विग्न हो कर दंशन करने अथवा देवता, ब्राह्मण, यक्ष या सिद्धोंके निमन्त्रित स्थानोंमें दंशन करनेसे या दंशनकालमें विषघ्न औषध शरीरमें लगा देने पर शरीरमें विषका सञ्चार नहीं होता।

मनुष्योंकी तरह सर्प भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—इन चार वर्णोंमें विभाजित हुए हैं। जिन सर्पोंके मस्तक पर रथाङ्ग हल, छत्र, स्वस्तिक अथवा अङ्कुशका चिह्न रहता है उनको दर्वीकर सर्प कहते हैं। जो फणविशिष्ट, शीघ्रगामी और विविध प्रकारके मण्डलसे मामाविशिष्ट होते हैं, उनको मण्डली कहते हैं। जो सब सर्प चमकीले और जिनके शरीर नीचे ऊपर कई प्रकारकी रेखाओं द्वारा चित्रित हैं, उनका नाम राजिमन्त है। ये सब सर्प मुक्ता अथवा रौप्यकी तरह आभाविशिष्ट हैं। जिन सर्पोंका शरीर सुगन्ध और सुवर्णकी तरह उज्ज्वल है, उनको ब्राह्मण वर्ण कहते हैं, जिनका वर्ण मुलायम अथवा चिकना और जो शीघ्र कुपित होते हैं, वे क्षत्रिय जातिके हैं जिनके शरीरकी आकृति चन्द्र, सूर्य, छत्र या पद्मके रङ्गकी तरह हो अथवा जिनके शरीरमें कृष्ण लोहित, धूम्र या पारावतका रङ्ग और देह वज्र सदृश दृढ़ हो, उनको वैश्य कहते हैं और जिन सर्पोंका वर्ण भैंस या हस्तीकी तरह है अथवा अन्य प्रकार और जिसका चमड़ा अतिशय परुष है, वे शूद्र जातिके हैं।

जो सर्प सङ्कर वर्ण अर्थात् जो असवर्ण जातिके समागमसे उत्पन्न हैं, उनके विषमें दोष कुपित होते हैं। उन लक्षणोंके द्वारा सर्पके पिता माताकी जाति जानी जाती है। रातके अन्त भागमें चित्रा जाति और अपनिष्ट भागमें मण्डली जाति और दिनमें दर्वीकर जाति विचरण करती है।

रस रक्त मांस, मेद, अस्थि मज्जा और शुक्र ये सात धातु और इनके एक एकका अतिक्रम कर विषका एक एक वेग उत्पन्न होता है। विष वायु द्वारा चालित हो कर जितने समयमें पूर्वोक्त किसी एक धातुका भेद करता है, उतने समयको वेगान्तर कहते हैं।

यदि शिशुओंका साँप काटे, तो विषके प्रथम वेगमें

अङ्ग स्फीत होता है और उसका मन दुःखित तथा निद्रा युक्त दिखाई देने लगता है। दूसरे वेगमें लार टपकने लगती है। अङ्ग काला होने लगता है, हृदयमें पीड़ा उपस्थित होती है तथा कण्ठ और ग्रीवा (गरदन) टूट जाती है। चतुर्थ वेगमें वे पुनः पुनः कांपने लगते हैं, निश्चेष्ट होते, दांत पर दांत लगने लगते तथा इसके बाद वे प्राण त्याग कर देते हैं। पक्षियोंके सांपके काटने पर पहले वेगमें वे चिन्तित हो जाते और निश्चेष्ट हो जाते हैं, दूसरे वेगमें विह्वलता और तीसरे वेगमें प्राण त्याग कर देते हैं। कुछ लोगोंका कहना है, कि पक्षियोंका एक ही वेगमें प्राणनष्ट होता। बिल्ली तथा नेवलेके शरीरमें सर्प विष अधिक सञ्चारित नहीं हो सकता। विषधर सर्पके दंशन करने पर अधिकांश स्थलमें ही प्राण नाश होता है। किन्तु सर्पके काटनेके बाद ही यथोक्तरूपसे चिकित्सा की जाये, तो आरोग्य होनेकी सम्भावना है। विषकी क्रिया इतनी जल्द होती है, कि चिकित्सा का समय नहीं रहता। विष द्वारा रसादि धातु दूषित होने पर फिर किसी तरह उसका प्रतीकार नहीं हो सकता।

सर्पदंशन चिकित्सा—हाथ और पैरमें सर्पके काटने पर तुरत ही चार अंगुल ऊपर मुलायम रस्सीसे बांध देना चाहिये। ऐसा करनेसे विषका वेग आगे शरीरमें फैल न सकेगा। इस बंधे हुए स्थानके नीचे तुम्बी या सिंगी द्वारा खून चुसवाना और दाह कराना चाहिये। जगह जगह जरा-जरा छेद कर उससे खून चूस लेना चाहिये। वस्तियन्त्रका मुख मंत्रपूरित कर चूसने पर उपकार होता है। पिचकारी या सिंगाकी तरह एक प्रकारके यन्त्रका नाम वस्तियन्त्र है। यह यन्त्र कटे हुए स्थानमें बैठा कर अधोभागसे आकर्षण कर ऊपरको पूरण करनेको प्रतिपूरण कहते हैं। सिङ्गा बैठानेकी तरह वस्तियन्त्रका एक मुख सर्पदंष्ट्र स्थानमें बैठा कर दूसरा मुख मुंहमें लगा कर आकर्षण करने पर, दंष्ट स्थानसे रक्त समेत विष आकृष्ट हो वस्तियन्त्रमें आ जाता है।

मण्डली सर्पके काटने पर कटे हुए स्थानको दग्ध तुरत ही करना चाहिये। क्योंकि वह पित्तबहुल, तनुस्र-णात् देहमें सञ्चारित होता है।

मन्त्रज्ञ चिकित्सक मन्त्र द्वारा भी विषस्तम्भन कर सकते हैं। जैसे रस्सीसे बांधने पर विषका वेग आगे बढ़ नहीं सकता वैसे ही मन्त्रसे बांधने पर सर्पविषका वेग आगे बढ़ नहीं सकता। सत्य और तपोमय मन्त्रसमूह और देवता और ब्रह्मर्षियोंके वाक्यसे दुर्जय विष शीघ्र ही विनष्ट होता है। सत्य, ब्रह्म और तपोमय मंत्र द्वारा विष जैसे शीघ्र दूर होता है, औषध द्वारा वैसे जल्द दूर नहीं होता। मन्त्र-चिकित्सा ही सर्प विषनिवारणके लिये सर्वश्रेष्ठ उपाय है।

राजिमन्त विषके प्रथम वेगमें पूर्वकी तरह रक्तमोक्षण, घृत और मधु मिला कर अगदपान, द्वितीय वेगमें वमन (कै) करा कर अगद पान, तृतीय वेगमें विषनाशक नस्य और अञ्जनका प्रयोग कराना चाहिये, चतुर्थमें वमन और घृत मधु मिला कर यवका मण्डपान, पञ्चम वेगमें शीतल प्रक्रिया, षष्ठमें अतिशय तीक्ष्ण अञ्जन और सप्तममें नस्य प्रयोग कर्त्तव्य है।

गर्भिणी, बालक और वृद्धोंको सर्पके काटने पर शिरा (नसें) न काट कर मृदु प्रतीकार करना चाहिये। सुविज्ञ चिकित्सक वेग, रोगीकी प्रकृति, अभ्यास, ऋतु, विषका वेग, रोगीके बलाबल पर सूक्ष्म विचार कर शास्त्रोक्त प्रक्रियाके अनुसार चिकित्सा करें।

मानवके समान बकरी, गदहा और गो आदिको भी सर्पके काटने पर उनके भी उक्त प्रणालीसे रक्तमोक्षण तथा औषध अधिक परिमाणमें पिलाना चाहिये।

विषविकारमें चाहे जिस तरह हो देहसे पूरी तरहसे विषका निकालना ही सर्वतोभावसे कर्त्तव्य है। विष अल्पमात्र भी यदि शरीरमें रह जाय, तो पुनर्वार उसका वेग उत्पन्न होता है। इससे शरीरकी अवसन्नता, विवर्णता, ज्वर, खांसी, शिरोरोग, फूलना, शोथ, प्रतिश्याय, तिमिररोग, दृष्टिहीनता, अरुचि और पीनस आदि रोग उत्पन्न होते हैं। इनमें जो रोग उत्पन्न हो, उसका विधानानुसार चिकित्सा करना, इसके बाद विषदोष विमोचनके लिये दष्ट स्थानका बन्धन मोचन कर उसे आच्छादन कर प्रलेप देना चाहिये।

दष्टस्थानमें शुष्क विष रहने पर फिर उससे वेग उत्पन्न होता है। मन्त्र, औषध और चिकित्सा द्वारा

विषका तेज नष्ट होने पर भी पीछे यदि कोई दोष कुपित हो, तो तैल, मत्स्य, कुलत्थ, और अम्ल—इन सबके सिवा अन्य प्रकार स्नेह प्रभृति वायुशान्तिप्रद औषध द्वारा वायुकी शान्ति करना चाहिए। पित्तज्वरनाशक क्वाथ और स्नेह विरेचन द्वारा पित्तकी शान्ति और मधुके साथ आरग्वधादिके क्वाथ द्वारा श्लेष्मनाशक अगद और तिक्त रूक्ष भोजन द्वारा कफकी शान्ति करनी चाहिये।

शास्त्रानुसार सर्प दंशनकी मन्त्र चिकित्सा ही सर्व प्रधान है। मन्त्रशक्तिके प्रभावसे चाहे जो सर्प दंशन करे, वह शीघ्र ही आरोग्य लाभ करेगा। किन्तु इस समय ऐसे चिकित्सक अति विरल हैं।

ऐसे अनेक सँपेरे देखे जाते हैं कि अति विषधर सर्पको देखते ही पकड़ लेते और उससे क्रीड़ा करने लगते हैं। वे पहले उसे पकड़ उसके विषैले दाँतोंको तोड़ देते हैं फिर उसके काटने पर किसीको विष नहीं असर करता।

मन्त्र, जलसार, मंथान आदि बहु प्रकारसे सर्प विष निवारण करनेका उपाय है, ऐसा सुना जाता है, किन्तु इनमें मन्त्रों और औषधोंमें बहुतोंका लोप हो गया है। जो दो चार जानते हैं सही किन्तु वे दूसरोंको बताते ही नहीं, उनका यह ख्याल है, कि इस मन्त्र या औषधका साधारणमें प्रचार करने पर वह सब उतने फलदायक नहीं रह सकते। इसलिए वे बहुत छिपा कर रखते हैं। पुराण और तन्त्र आदिमें भी सर्प और सर्पदंशन चिकित्सा तथा मन्त्रकी बात लिखी है।

अग्निपुराणमें लिखा है, कि शेष वासुकि, तक्षक, आदि भी नाग सर्वश्रेष्ठ हैं। इन सब नागोंसे असंख्य भुजङ्गोंने जन्म ग्रहण किए हैं। इन सब भुजङ्गोंसे यह धरामण्डल परिव्याप्त है। फणी मण्डली और राजिल, इन तीन तरहके सर्प क्रमसे वायुपित्तकफात्मक हैं। इनमें मिश्र सर्प दर्वीकर नामसे विख्यात हैं। ये सब सर्प आषाढ़ आदि तीन मासोंमें गर्भ धारण करते हैं, इसके बाद चौथे मासमें २४ अण्डे देते हैं सर्पिणी ओको छोड़ कर पुनः पुत्रसमूहको ग्रास करती है काले साँप ७ दिनोंमें ही अण्डफोड़ हो जाते हैं। १२ दिनके बाद इनको ज्ञान होता है और सूर्यदर्शनसे ही इनके दाँत निकल आते हैं। इनमें कुछ ३२ दिनोंमें, कुछके २० दिनोंमें ही चार दंष्ट्रा या वृहद्दन्त निकल आते हैं। छः महीनेके बाद ये त्वक् उत्पादन करते हैं। सर्पोंके छत्र, हल, स्वस्तिक, अंकुश आदि चिह्न रहते हैं। इनका परमायु भी ठीक मनुष्यकी तरह १२० वर्षका है।

गोनस साँप दीर्घाकार, मन्दगामी, नाना प्रकार तथा मण्डलाकारमें अवस्थित रहता है। राजिल मुलायम वाणक चिह्न द्वारा ऊर्ध्व और चक्रसाथमें चित्रित रहता है। व्यन्तर मिश्रचिह्नविशिष्ट और भू, वर्षा अग्नि और वायु भेदसे चार प्रकारका होता है। इनमें २० प्रकारका अवान्तर भेद है। गोनस १६ प्रकारके, राजिल १३ प्रकारके और व्यन्तर २१ प्रकारके होते हैं। जो साँप अनुक्तकालमें जन्म लेते हैं, उनको व्यन्तर कहते हैं।

इन साँपोंके काटनेसे प्राणनाश होता है। कृत्तिका दयकाल, इसके सिवा कृत्तिका भरणी, स्वाती, मूला पूर्वफल्गुनी पूर्वभाद्रपद, पूर्वाषाढ़ा, अश्विनी विशाखा, आर्द्रा, मघा, अश्लेषा, चित्रा, श्रवणा, रोहिणी, हस्ता, शनि और मङ्गलवार, पञ्चमी, षष्ठी, रिक्ता, नन्दा और चतुर्दशी, सन्ध्याकाल, दग्धा योग और दग्ध राशि इन सब समयोंमें यदि साँप काटे, तो प्रायः मृत्यु होती है।

देवालय, शून्यगृह, वल्मीक, उद्यान, वृक्षकोटर, पथ सन्धि (चौराहे पर) श्मशान नदी, सिन्धुसङ्गम, द्वीप चतुष्पद सौध, गृह, अस्थि, पद्मताम्र, बिल जीर्णकूप द्वावार, श्लेष्मातक, बहुवारक, जम्बू, डुम्बर वट और पुरानी चहारदिवारी इन्हीं सब स्थानोंमें साँप रहते हैं और मुख, हृदय, कक्ष, जत्रु तालु, शङ्ख, गला, मस्तक, चिबुक, नाभि और पैर इन सब अङ्गोंमें काटने पर प्रायः ही मृत्यु होती है। इस तरहका काटना प्रायः ही अशुभ है।

साँप काटने पर जो आदमी (दूत) खबर देता है, उसके द्वारा ही सर्प दंशनका शुभाशुभ स्थिर किया जा सकता है। दूतके पुष्पहस्त सुवाक् सुधी शुक्ल वस्त्र और शुचि आदि होने पर शुभ जानना और अप्रशस्त, द्वारस्थित अस्त्रधारी, प्रमादी, भूतलमें देखनेवाला गद्गद्भाषी, आर्द्रवस्त्रपरिधायी, पादरेखन (पद द्वारा

भूमि खोदना) इत्यादि गुणयुक्त होनेसे अशुभ समझना।

सर्पदंशनके चिकित्सास्थलमें लिखा है, कि प्रथम 'ओं नमो भगवते नीलकण्ठायस्य' इस मन्त्रसे भगवान् नीलकण्ठको प्रणाम कर इस मन्त्रका जप करना चाहिये।

"ओं ज्वल महामते हृदयाय गरुड विरलशिरसे गरुड शिखायै गरुड विषभञ्जन प्रभेदन, विनाशय विनाशय विमर्दय विमर्दय कवचाय अप्रतिहतशासनं वं हुं फट्. अस्त्राय उग्ररूपधारक सर्वभयङ्कर भीषय सर्वं दह दह भस्मी कुरु कुरु स्वाहा नेत्राय।" इत्यादि।

ये सब मन्त्र यथायथरूपसे प्रयोग करने पर सर्पविष निवारित होता है। ऐसे मन्त्र बहुतेरे हैं, किन्तु विशेष बढ़ जानेके कारण यहां नहीं दिया गया।

गरुडपुराण आदिमें इसका विशेषरूपसे विवरण है। सिवा इनके बहुतेरे लोग अन्य तरहके मन्त्रसे अवगत हैं।

सर्पभय निवारण करनेके लिये मनसादेवीकी पूजा होती है। मनसापूजाके समय साथ ही वासुकि, पद्म, महापद्म, शङ्ख, कुलीर, कर्कट और शङ्ख इन प्रधान अष्टनागकी भी पूजा होती है। नागपञ्चमी और दशहरा तिथिको मनसाकी पूजा होती है।

नागपञ्चमी और मनसा शब्द देखो।

सर्पऋषि (सं० पु०) एक ऋषिका नाम।

सर्पकङ्कालिका (सं० स्त्री०) सर्प कङ्कालीएव स्वार्थे कन्। १ वृक्षविशेष, सर्पलता। पर्याय—तीक्ष्णा, विषदंष्ट्रा, विषापहा। २ गन्धनाकुली।

सर्पकङ्काली (सं० स्त्री०) सर्पस्य कङ्कालमिवाङ्गं यस्याः ङीप्। सर्पकङ्कालिका, सर्पलता।

सर्पगति (सं० स्त्री०) सर्पस्य गतिः। १ सर्पकी गति। २ कुटिल गति, कपटकी चाल। (त्रि०) ३ सर्पके समान गतिवाला।

सर्पगन्धा (सं० स्त्री०) सर्प गन्धयते हिनस्तीति गन्ध हिंसने अण् टाप्। १ वृक्षविशेष। २ गन्धरास्ना, रास्ना। ३ नाकुली नामक महाकन्दशाक। ४ नागदमनी।

सर्पगन्धिनी (सं० स्त्री०) सर्पगन्धा।

सर्पगृह (सं० पु०) सांपका घर, बांबी।

सर्पग्राम—विन्ध्यपार्श्वस्थ एक प्राचीन ग्राम।

सर्पघाति (सं० पु०) इस नामका फलविषभेद।

सर्पघातिन् (सं० त्रि०) सर्पं हन्ति हन-णिनि। सर्पहन्ता, सांप मारनेवाला।

सर्पघातिनी (सं० स्त्री०) सर्पघातिन्-ङीप्। सर्पाक्षी, सरहटी।

सर्पछत्र (सं० क्ली०) शाकविशेष, सर्पच्छत्रक। गुण—मलभेदक, रूक्ष, मधुर, शीतल और विष्टम्भ।

सर्पछिद्र (सं० पु०) सांपका बिल, बांबी।

सर्पण (सं० पु०) १ रेंगना, धीरे धीरे चलना। २ छोड़े हुए तीरका भूमिसे लगा हुआ जाना।

सर्पतनु (सं० पु०) बृहतीका एक भेद।

सर्पतृण (सं० पु०) सर्पस्तृणमिव छेद्यो यस्य। नकुल।

सर्पदंष्ट्र (सं० पु०) सर्पस्य दंष्ट्रेव पुष्पमस्य। १ सांपका दांत। २ जमालगोटा।

सर्पदंष्ट्रा (सं० स्त्री०) सर्पस्य दंष्ट्रेव। १ उदुम्बरपर्णी, दन्ती। २ सिंहपिप्पली। गुण—सारक, उष्ण, कटु, कफ और वातनाशक।

सर्पदंष्ट्रिका (सं० स्त्री०) सर्पदंष्ट्रा स्वार्थे कन्, टापि अत इत्वं। अजशृङ्गी, मेढ़ासिंगी।

सर्पदंष्ट्री (सं० स्त्री०) १ वृश्चिकाली। २ उदुम्बरपर्णी, दन्ती। ३ वृश्चिका, बिछुआ।

सर्पदण्डा (सं० स्त्री०) सर्पं दण्डयतीति दण्ड-अण्-टाप्। सैंहली, सिंहपिप्पली।

सर्पदण्डी (सं० स्त्री०) सर्पं दण्डयतीति दण्ड-अण्-ङीप्। १ गोरक्षी, गोरखइमली। २ नागबाला, गंगेरन।

सर्पदन्ती (सं० स्त्री०) सिंहली पीपल।

सर्पदन्ती (सं० स्त्री०) नागदन्ती, हाथी शुंडी।

सर्पदमनी (सं० स्त्री०) सर्पस्य दमनमस्याः ङीप्। १ वन्ध्या-कर्कोटकी, बांझ ककड़ी। २ नागदन्ती, हाथी शुंडी।

सर्पदष्ट (सं० क्ली०) १ दंशन, सांपका काटना। सुश्रुतमें लिखा है, कि सर्पदष्ट तीन प्रकारका है,—सर्पित, रदित और निर्विष। (सुश्रुत) सर्प देखो।

पता न पा सके और श्रमसे कातर हो उठे। कुछ दूर पर शमीक मुनि मौनी अवस्थामें बैठे थे। राजाने बार-बार उस मृगकी बात उनसे पूछी। किन्तु मुनिने मौनी होनेके कारण कोई उत्तर न दिया। इस पर राजा क्रुद्ध हुए और निकट होमें एक मरा सर्प पड़ा, मुनिके गलेमें लपेट दिया। राजा वहांसे चले गये।

शमीकके पुत्र शृङ्गीने यह देख कर परीक्षित्‌को शाप दिया, कि आजसे सातवें दिन तक्षकके दंशनसे राजा परीक्षित्‌की मृत्यु होगी, जिसने मेरे पिताके गलेमें मृत सर्प लपेटा है। ब्रह्मशापसे तक्षकने यथा समय परीक्षित्‌को काटा। इसके काटते ही राजाने प्राणत्याग किया।

राजा परीक्षित्‌के स्वर्गारोहण करनेके बाद जनमेजयने मन्त्रियों, पुरोहित और ऋषियों को बुला कर कहा, कि मेरे पिताका तक्षकके काटनेसे प्राण नाश हुआ है, अतएव आप लोग ऐसा उपाय बतलाइये, जिससे तक्षक और उसके बन्धुबान्धवोंका विनाश हो। इस पर ऋत्विकोंने कहा—'राजन्! पुराणमें एक सर्पसत्रका विधान है, पहलेसे ही देवताओंने आपके लिये इस यज्ञकी सृष्टि कर रखी है। आपके सिवा अन्य कोई इस महायज्ञका अनुष्ठान कर न सकेगा। हम लोग इस यज्ञके सम्यक विधानको जानते हैं। आपके इस यज्ञके करनेसे सर्प समूल नष्ट होंगे।' राजाने ऋत्विकोंके मुखसे यह बात सुन कर इस सर्पसत्र यज्ञका अनुष्ठान किया था।

ऋत्विकोंके इस सत्रमें आहुति प्रदान करने पर घोर और भीषण सर्प आ कर भस्मीभूत होने लगे। उनके वसा और मेदसे नदी बह चली। निरन्तर जलते हुए सर्पोंकी गन्ध चारों ओर फैल गई। तक्षक भीत हो कर इन्द्रके शरणापन्न हुआ। इधर हुताशनमें बहुतेरे सर्पोंके निपतित होने पर वासुकि अपने परिवारके लोगोंको अल्पावशिष्ट देख कर अत्यन्त दुःखित और किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो उठे। उन्होंने अपनी बहनसे कहा, 'बहन! इस समय हम लोगोंका विनाशकाल उपस्थित है। पहले पितामहने मुझसे कहा था, कि सर्पसत्र आरम्भ होनेसे आस्तीक ऋषि उसे निवारण करेंगे। इस समय तुम आस्तीकको इस यज्ञके निवारण करनेके लिये भेजो।' पीछे आस्तीक मातृ द्वारा आदिष्ट हो वासुकिको मनोव्यथा दूर कर सर्पों के उद्धारके लिये जनमेजयके इस सर्पसत्रमें पधारे। वहां जा कर उन्होंने राजाकी बड़ी प्रशंसा की। राजाने प्रसन्न हो कर वर मांगनेकी आज्ञा दी। आस्तीकने कहा, 'राजन्! यदि आप मुझको वर देना चाहते हैं, तो मुझे यही वर दीजिये, कि आजसे यह सर्पसत्र बन्द हो जाये और एक भी सर्प इसमें न गिरने पावे।' राजाने कहा, 'तुम धनरत्न आदि अन्य वरकी प्रार्थना करो। सर्पसत्र बन्द नहीं हो सकता। आस्तीकने कहा, 'हे राजन्! मुझे अन्य किसी द्रव्यकी आवश्यकता नहीं। मेरी एकमात्र प्रार्थना है, कि यह सर्पसत्र बन्द हो जाये।' राजाके बारंबार दूसरे वर मांगनेके लिये कहने पर भी आस्तीकने दूसरे किसी वरकी अभिलाषा प्रकट नहीं की। पीछे वेदविशारद सभी सदस्योंने मिल कर राजासे कहा, 'अब आप इस ब्राह्मण-कुमारका अभिलषित वर प्रदान करें।' इस समय राजा किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो अगत्या उक्त सदस्योंके अनुरोधसे कहा 'आस्तीक जो कहते हैं, वही हो। ऋत्विक् अपने सर्पसत्र समाप्त करें।' राजाके मुंहसे यह बात निकलते ही सर्पसत्र बन्द कर दिया गया। तब सर्प भयशून्य हो कर अपने स्थानमें पधारे। आस्तीक भी जनमेजयको भूरि भूरि साधुवाद और आशीर्वाद देते हुए अपने स्थानको पधारे। आस्तीककी वरप्रार्थनाके फलसे सर्पोंकी जान बची। इससे सर्पोंने प्रसन्न हो कर उनको यह वर दिया, कि 'आस्तीक' नाम लेनेवालेको सर्पभय न होगा। सर्पगण जननी कद्रुके शाप और जनमेजयके यज्ञमें इस तरह विनष्ट हुए। महाभारतके आदि पर्वमें विस्तृतरूप यह विवरण लिखा है। (भारत आदिप० ४०-४७ अ०)

सर्पसत्रिन् (सं० पु०) सर्पसत्रमस्यास्तीति इनि। राजा जनमेजयका एक नाम। इन्होंने सर्पयज्ञ किया था।

सर्पसहा (सं० स्त्री०) सर्पान् सहते इति सह-अच्। सर्पाक्षी, सरहंटी।

सर्पसामन् (सं० क्ली०) सामभेद।

सर्पसुगन्धा (सं० स्त्री०) सर्पगन्धा, गन्धनाकुली।

सर्पसुगन्धिका (सं० स्त्री०) सर्पगन्धा, गन्धनाकुली।

सर्पहन् (स० पु०) सर्प हन्ति हन क्विप्। १ सर्पको मारनेवाला, नेवल। (स्त्री०) २ सर्पाक्षी सरहटी।
सर्पहृदयचन्दन (स० पु०) चन्दनकाष्ठ।
सर्पाक्ष (स० क्ली०) सर्पस्य अक्षीव अङ्ग यस्य पद्मसमा सात। १ रुद्राक्ष, शिवाक्ष। २ सर्पाक्षी सरहटी।
सर्पाक्षी (स० स्त्री०) सर्पस्य अक्षीव पुष्प यस्याः ङीष्। १ गन्धनाकुली। २ वृक्षविशेष। सरहटी देखो। पर्याय—गरुडाला, नाडीपत्रक। गुण—कटु तिक्त, उष्ण, कृमिनाशक और व्रणरोपण। ३ श्वेत अपराजिता। ४ रक्त अजिती। ५ सर्पणी सापिन।
सर्पाख्य (स० पु०) सर्पस्य आख्या यस्य। १ मदिप चन्दभेद, मैसाकड़। २ नागकेशर। (त्रि०) ३ सर्प नामक, सर्प नामविशिष्ट।
सर्पाङ्गी (स० स्त्री०) सर्पस्येव अङ्ग यस्या ङीष्। १ सर्पकङ्कालीभेद सरहटी। २ सेहली, सिहली पावक। ३ नकुलकन्द।
सर्पादनी (स० स्त्री०) सर्पस्य तद्विषस्य अदनं भक्षणं यस्या ङीप। १ गन्धनाकुली, गंध रास्ना। २ नकुलकन्द।
सर्पान्त (स० पु०) सर्प अन्तयति नाशयति अन्त णिच्। गरुड।
सर्पाराति (स० पु०) सर्पस्य अराति। गरुड।
सर्पारि (स० पु०) सर्पस्य अरिः। १ नकुल, नेवल। २ गरुड। ३ मयूर मोर। (हरिवंश ९८।३७)
सर्पावास (स० क्ली०) सर्पस्य आवासो यत्र। १ चन्दन मलयज, संदल। चन्दनके पेड़ पर सर्प रहता है, इसलिये इसका नाम सर्पावास है। (पु) २ सर्पस्थान सर्पोंके रहनेका स्थान। (हरिवंश ९८।२५)
सर्पाशन (स० पु०) सर्पमश्नातीति अश ल्यु। १ मयूर, मोर। २ गरुड।
सर्पास्य (स० पु०) १ खर नामक राक्षसका एक सेनापति जिसे रामने युद्धमें मारा था। २ सापके समान मुख वाला।
सर्प (स० पु०) १ एक वैदिक ऋषिका नाम। (ऐतरेय ब्रा० ६।२४) २ घृत, घी।
सर्पिका (स० स्त्री०) १ छोटा साप। २ एक प्राचीन नदी। (रामायण २।४४।१२) यह गोमतीकी शाखारूपमें प्रवाहित और वर्त्तमान सई नामसे विख्यात है।
सई देखो।
सर्पिणी (स० स्त्री०) सर्पतीति सृप् णिनि, ङीप्। १ सर्प मादा, सापिन। २ भुजगी लता। यह सर्पके आकारकी होती है और इसमें विषका नाश करने और कफोंका बढ़ानेका गुण होता है।
सर्पित (स० क्ली०) सर्पदंशन, सापके काटनेका क्षत।
सर्पिन् (स० त्रि०) सर्पति गच्छतीति सृप णिनि। धीरे धीरे चलनेवाला।
सर्पिरन्न (स० क्ली०) घृतौदन, घृतमिश्रित ओदन।
सर्पिरब्धि (स० पु०) घृतसमुद्र। (मार्कण्डेयपु० ५४।७)
सर्पिरासुति (स० त्रि०) सर्पि या घी जिस अग्निमें आसिक्त हो। (ऋक् ।७।६)
सर्पिरिला (स० स्त्री०) रुद्राणीविशेष।
सर्पिर्गर्भ (स० क्ली०) नवनीतक।
सर्पिर्ग्रीव (स० त्रि०) घृतसिक्त ग्रीवाविशिष्ट।
सर्पिर्मण्ड (स० पु०) नवनीत खण्ड।
सर्पिर्मालिन् (स० पु०) ऋषिभेद।
सर्पिर्मेह (स० पु०) प्रमेहरोगविशेष, वायुके विगड़ जानेसे यह रोग उत्पन्न होता है तथा इससे सर्पि या घीके समान मेह झड़ता है। (सुश्रुत नि० ६ अ०)
प्रमेह देखो।
सर्पिर्मेहिन् (स० त्रि०) सर्पिर्मेह रोगविशिष्ट, जिसे सर्पिर्मेह रोग हुआ हो। (सुश्रुत नि० ६ अ०)
सर्पिष्कुण्डिका (स० स्त्री०) सर्पिःपात्र, घृतकुम्भ या कुण्ड।
सर्पिष्क (स० क्ली०) घृतविशिष्ट। (पा ३।४।४२)
सर्पिष्टर (स० क्ली०) सर्पिर्युक्त। (पा ८।३।१०१)
सर्पिष्ठा (स० स्त्री०) घृतयुक्तका भाव।
सर्पिष्ट्व (स० क्ली०) घृतयुक्तका भाव या धर्म।
सर्पिस् (स० क्ली०) सर्पतीति सृप गती (अर्चिशुचिहुसृपि छादिभ्यः इसि। उण् २।१०६) इति इसि। १ घृत आज्य, हविस। (अमर) २ उदक पानी। (निघण्टु १।१२)
सर्पिःसमुद्र (स० पु०) सात समुद्रोंमेंसे एक समुद्र।
सर्पिष्मान् (स० अव्य०) सर्पिस् दधार्थे चमात्। सर्पि में देय।

सर्पी (सं० स्त्री०) सर्प-जातौ ङीष्। सर्पिणी।

सर्पेष्ट (सं० क्ली०) सर्पाणां सर्पभार्याणामिष्टं। श्वेतरक्तचन्दन।

सर्पेश्वर (सं० पु०) सर्पाणामीश्वरः। १ सर्पाधिपति वासुकि, नागराज। २ तीर्थविशेष, सर्पेश्वरतीर्थ।

सर्पेष्ट (सं० क्ली०) सर्पाणामिष्टं। श्वेतरक्तचन्दन।

सर्पोन्माद (सं० पु०) एक प्रकारका उन्माद। इसमें मनुष्य सर्पकी भांति लोटता, जीभ निकालता और क्रोध करता है। इसमें गुड़, दूध आदि खानेकी अधिक इच्छा होती है।

सर्फ् (अ० पु०) व्यय किया हुआ, खपा हुआ, खर्च किया हुआ।

सर्फा (अ० पु०) व्यय, खर्च।

सर्बस (हिं० वि०) सर्वस्व देखो।

सर्म (फा० पु०) शर्म देखो।

सर्या—मुजफ्फरपुर जिलान्तर्गत एक बड़ा गांव। यह मुजफ्फरपुर नगरसे १८ मील दक्षिण-पश्चिम बया नामक नदीके किनारे अवस्थित है। छपरा जानेकी एक पक्की सड़क इस गांवके सामनेसे होकर नदीवक्षको पार कर गई है। पहले यह स्थान विशेष समृद्ध था। एक नीलकी कोठी खुल जानेके बादसे ही यहां भिन्न भिन्न श्रेणीके लोगोंका वास हो गया है। इस गांवके पास हो एक ब्राह्मणके चाह पर पत्थरका बना एक ३० फुट ऊंचा स्तम्भ खड़ा है। उसके चोटी पर एक सिंहमूर्त्ति स्थापित है। मिट्टीके भीतर इसकी नींव बहुत दूर तक चली गई है, बहुत दूर खोदने पर भी उसके मूलदेशका पता नहीं चला है। जिस ब्राह्मणके चाह पर यह स्तम्भ है, उसका तथा ग्रामवासी साधारणका विश्वास है, कि उस स्तम्भके नीचे प्रचुर धनरत्न गड़ा हुआ है। धनकी आशासे ब्राह्मणने उसकी बगलमें एक कूप खोदवाया, पर दुःखका विषय है, कि इससे कोई फल नहीं हुआ। स्थानीय लोग उस स्तम्भको 'भीमसेनकी गदा' कहते हैं।

सर्रा (अ० पु०) लोहे या लकड़ीकी छड़ जिस पर गराड़ी घूमता है, धुरी, धुरा।

सर्राफ् (अ० पु०) १ सोने चांदी या रुपये पैसेका व्यापार करनेवाला। २ बदलेके लिये पैसे रुपये आदि ले कर बैठनेवाला। ३ धनी, दौलतमंद। ४ परखने, परखनेवाला।

सर्राफ नामुआ (अ० पु०) विवाह आदि शुभ अवसरों पर कोठावालों या महाजनोंका नौकरोंको मिठाई, रुपया पैसा आदि बांटना।

सर्राफा (अ० पु०) सराफा देखो।

सर्राफी (अ० स्त्री०) सराफी देखो।

सर्व (सं० पु०) सर्वस्मिन् सर्वतीति सर्वं गतो पचाद्यच् वा सृ-गतौ (सर्वनिघृष्वेति। उण् ११५३) इति वन् प्रत्ययेन साधुः। १ शिव, महादेव। यह महादेवकी क्षितिमूर्त्ति है, शिवपूजाकालमें इस सर्वस्वरूप क्षितिमूर्त्तिकी पूजा करनी होती है। 'ओं सर्वाय क्षितिमूर्त्तये नमः' इस मन्त्रसे पूजा करनी चाहिये। २ विष्णु। जो असत् तथा सत् कार्यका मूल तथा अव्यय और जिसे सब विषयमें सर्वदा ज्ञान है, उसे सर्व कहते हैं। ३ पारद, पारा। ४ शिलाजतु, शिलाजीत। ५ रसौत।

सर्व (सं० त्रि०) सृ-वन्। सम्पूर्ण, सकल, समग्र, तमाम। यह शब्द सर्वनाम है। सुतरां व्याकरणके मतसे साधारण अकारान्त शब्दकी तरह रूप न हो कर सर्वनाम शब्दकी तरह रूप होगा।

सर्वंसह (सं० त्रि०) सर्वं सहते इति सह-(पूःसर्वयोर्दारिसहोः। पा ३।२।४१) इति खच्, अरुर्द्विषदिति मुम्। १ सकल सहिष्णु, सर्वक्लेशादिसह, जो सब प्रकारका क्लेश सहन कर सके। (पु०) २ राजा, भूपति।

सर्वंसहा (सं० स्त्री०) पृथ्वी।

सर्वहर (सं० त्रि०) सकल हरणकारी जो सब कुछ हरण या वहन करे। (शाङ्खा० श्रा० ३।१६)

सर्वक (सं० त्रि०) सर्वशब्दस्य टेः पूर्वमकः तस्मात् स्वार्थे कः। सकल, समुदाय।

सर्वकभार्य्य (सं० त्रि०) सर्वोका भार्या यस्य। सर्वोका स्वामी।

सर्वकर्त्तृ (सं० पु०) सर्वेषां कर्त्ता। ब्रह्मा। ब्रह्माने सकल जगत्‌की सृष्टि की है, इसलिये वे सर्वकर्त्ता कहलाते हैं। (शब्दरत्ना०)

सर्वकर्मन् (सं० क्ली०) सर्वं कर्म। सकल प्रकार कर्म, समुदाय कार्य।

सर्वकर्मीण (स० त्रि०) सर्वकर्माणि व्याप्नोतीति सर्व कर्म (तत्सर्वादेः पथ्यङ्ग कर्मपत्रात्र व्याप्नोति । पा ५।२।७) इति ख। सकल कर्मकर्त्ता, सब प्रकारका कम करनेवाला।

सर्वकाञ्चन (स० त्रि०) सर्वं काञ्चनं यस्य। सकल काञ्चनयुत।

सर्वकाम (स० पु०) सर्वः कामः। १ सकल कामना सब प्रकारकी कामना। २ शिवका एक नाम। ३ एक बुद्ध या अर्हत्का नाम। (त्रि०) सर्वः कामो यस्य। ४ सब इच्छाएं रखनेवाला। ५ सब इच्छाएं पूरी करनेवाला।

सर्वकामदा (स० स्त्री०) सब कामनाएं पूरी करनेवाली।

सर्वकामदुघ (स० त्रि०) सर्वान् कामान् दोग्धि दुह क। सकल कामना दोहनकारी।

सर्वकामदुह् (स० त्रि०) सर्वान् कामान् दोग्धि दुह् क्विप्। सकल कामना दोहनकारी।

सर्वकाममय (स० त्रि०) सर्वकाम स्वरूपे मयट्। सकल कामनास्वरूप।

सर्वकामिक (स० त्रि०) १ सब कामनाएं पूरी करने वाला। (भागवत ६।५।१६) २ सब विषयोंकी वासना करनेवाला।

सर्वकामिन् (स० त्रि०) सर्वकाम अस्त्यर्थे इनि। सब प्रकारकी कामनासे युक्त।

सर्वकाम्य (स० त्रि०) सब कामनाका विषयभूत।

सर्वकारक (स० त्रि०) सर्वस्य कारकः। १ सबका कारक। (पु०) २ व्याकरणोक्त कर्त्ता कर्म आदि सब प्रकार कारक।

सर्वकारण (स० क्ली०) सर्वस्य कारण। सबका कारण।

सर्वकारिन् (स० त्रि०) सर्वं करोति कृ णिनि। जो सब करे, सबजगत्स्रष्टा ब्रह्मा।

सर्वकाल (स० पु०) १ सब समय, सदा। २ चिरन्तन।

सर्वकृच्छ्र (स० त्रि०) सब प्रकारका कष्ट या तद्विशिष्ट।

सर्वकृत् (स० त्रि०) सर्व करोति कृ क्विप् तुक् च। सर्वस्रष्टा।

सर्वकृष्ण (स० त्रि०) सर्वः कृष्णो यस्य। सकल कृष्ण वर्णविशिष्ट।

सर्वकेश (स० पु०) सकल केश।

सर्वकेशक (स० त्रि०) सब बालसे उत्पन्न या केशयुक्त।

सर्वकेशिन् (स० पु०) नट, नृत्यकारक।

सर्वकेसर (स० पु०) बकुल वृक्ष या पुष्प, मौलसिरी।

सर्वक्रतु (स० पु०) समग्र यागनिचय। सर्वक्रतु और सर्वयज्ञ शब्द साधारणतः श्रीभगवान्के स्वरूप हो कहा जाता है।

सर्वक्रतुमय (स० त्रि०) सर्वक्रतु मयट्। सर्वयज्ञ स्वरूप विष्णु।

सर्वक्षार (स० पु०) सर्वेषां क्षार। क्षारभेद। पर्याय—बहुक्षार, समुद्रक्षारक स्तोमक्षार महाक्षार, सर्जादि, क्षार भेदक। गुण—अतिशयक्षारत्व, चक्षुष्यत्व वस्तिशोधन, उदावर्त्त और कृमिनाशक, मल और वस्त्र विशोधन।

सर्वक्षिन् (स० त्रि०) सर्वव्यापी।

सर्वग (स० क्ली०) १ जल, पानी। (पु०) २ शिव। ३ ब्रह्मा। ४ आत्मा। ५ भीमका पुत्र। (त्रि०) ६ सर्वव्यापक, जिसकी गति सब जगह हो, जो सब जगह जा सके।

सर्वगत (स० त्रि०) सर्वव्यापी, जो सबमें हो।

सर्वगति (स० त्रि०) जिसका शरण सब लोग लें, जिसमें सब आश्रय लें।

सर्वगन्ध (स० पु०) १ गुड़त्वक्, दालचीनी। २ एला, इलायची। ३ नागपुष्प, नागकेसर। ४ तेजपात। ५ शीतल चीनी। ६ लवङ्ग, लौंग। ७ कुङ्कुम, केसर। ८ शिलारस। ९ अगर, अगर। (त्रि०) १० सर्व गन्धविशिष्ट।

सर्वगन्धिक (स० त्रि०) सब प्रकार गन्धविशिष्ट।

सर्वगा (स० स्त्री०) सर्व गच्छतीति गम ड टाप्। १ प्रियङ्गुवृक्ष। २ सर्वतगामिनी।

सर्वगामिन् (स० त्रि०) सर्वग देखो।

सर्वगायत्र (स० त्रि०) सम्पूर्ण गायत्री मन्त्रविशिष्ट।

सर्वगु (स० त्रि०) गवादि पशुसमष्टिविशिष्ट।

सर्वगुण (स० त्रि०) १ सकल गुणविशिष्ट सब प्रकारके गुणवाला। (क्ली०) २ सब प्रकारका गुण।

सर्वगुणविशुद्धिगर्भ (स० पु०) बोधिसत्त्वभेद।

सर्वगुणसञ्चयगत (स० पु०) बौद्धमतसे समाधिभेद।

त्याग करनेसे अमुक फल प्राप्तिकामा होता है, ऐसा पाठ करना होता है। पहले न्नलोदैयोने इस व्रतका अनुष्ठान किया तथा पाछे उन्होने ही इस व्रतका प्रचार किया। (कृत्यचन्द्रिका)

२ सर्वजय नामका पौधा जो बगीचेमें फूलोंके लिये लगाया जाता है देवकली।

सर्वजित् (स० पु०) सर्वान् जयतीति जि क्विप्-तुकूच्। १ साठ संवत्सरोंमेंसे इक्कीसवां संवत्सर। २ मृत्यु काल। ३ एक प्रकारका एकाह यज्ञ। (त्रि०) ४ सबको जीतनेवाला। ५ सबसे बढ़ा चढ़ा, उत्तम।

सर्वजित्—महाद्रिवर्णित बहुतेरे राजे।

सर्वजीव (स० पु०) सर्वो जीव। मनुष्य जीव।

सर्वजीवमय (स० त्रि०) सर्वजीवस्वरूपे मयट्। सकल जीवस्वरूप।

सर्वजीविन् (स० त्रि०) सर्वजीव इनि। जिसके पिता, पितामह और प्रपितामह तीनों जीते हों।

सर्वज्वरहरलौह (स० पु०) विषमज्वरकी एक औषध। यह दो प्रकारका होती है—स्वल्प और वृहत्। इस औषधका सेवन करनेसे सब प्रकारका ज्वर शीघ्र जाता रहता है।

सर्वज्ञ (स० पु०) सर्वं जानाति ज्ञा क। १ शिव। २ बुद्ध। ३ विष्णु। (त्रि०) ४ सकल ज्ञाता सब कुछ जाननेवाला।

सर्वज्ञ—१ कर्णाट देशके एक राजा। इनके पुत्र अनिरुद्ध अनिरुद्धके पुत्र रूपेश्वर और हरिहर थे। रूपेश्वरके पुत्र पद्मनाभके पुरुषोत्तम आदि पांच पुत्र हुए। इनमें मुकुन्द के पुत्र कुमारदेव थे। इस कुमारदेवके औरससे बहुत राजप हो और वैष्णवप्रधान श्रीसनातन श्रीरूप और श्रीवल्लभने जन्मग्रहण किया। रूप और सनातन देखो।

२ पद्यावलीधृत एक कवि।

सर्वज्ञता (स० स्त्री०) सर्वज्ञस्य भाव तल् टाप्। सर्वज्ञ होनेका भाव, सर्वज्ञता।

सर्वज्ञत्व (स० क्ली०) सर्वज्ञ होनेका भाव सर्वज्ञता।

सर्वज्ञदेव (स० पु०) एक बौद्ध यतिका नाम। ये सब शास्त्रोंमें सुपण्डित थे। (तारनाथ)

सर्वज्ञश्रीनारायण (स० पु०) शूद्र धर्मतत्त्वधृत एक स्मृति निबन्धकार।

सर्वज्ञपुत्र (स० पु०) एक जैनसूरि। इनका दूसरा नाम था श्रीसिद्धसेना दिवाकर थे। कान्यकुब्जपति श्रीमकुण्ड राजके प्रतिपालित श्रीस्कन्दिलाचार्यके शिष्य श्रीवृद्ध वादसूरिके शिष्य थे।

सर्वज्ञम्मन्य (स० त्रि०) आत्मानं सर्वज्ञं मन्यते सर्वज्ञ मन खश् य। सर्वज्ञमानी, जो अपनेको सर्वज्ञ समझे।

सर्वज्ञ रामेश्वर भट्टारक एक प्रसिद्ध दार्शनिक और आयुर्वेदविद्। सर्वदर्शनसंग्रहके रसेश्वर दर्शनमें इनका उल्लेख है।

सर्वज्ञवासुदेव (स० पु०) शार्ङ्गधरपद्धतिधृत एक कवि।

सर्वज्ञविष्णु (स० पु०) एक प्रसिद्ध दार्शनिक।

सर्वज्ञा (स० स्त्री०) १ सब कुछ जाननेवाली। २ दुर्गा देवी। ३ एक योगिनी।

सर्वज्ञातृ (स० त्रि०) सर्व स्व ज्ञाता। सर्वज्ञ, जो सब विषयोंमें जानकार हो।

सर्वज्ञात्ममिगिरि (स० पु०) सर्वज्ञात्ममुनिका एक नाम।

सर्वज्ञात्ममुनि—सक्षेपशारीरकके रचयिता। ये देवेश्वर के शिष्य थे। मनुकुलादित्य नामक एक राजाके आश्रय में रह कर इन्होंने उक्त ग्रन्थ रचा। सर्वज्ञात्मगिरि देखो।

सर्वज्ञान (स० क्ली०) सब विषयोंमें ज्ञान।

सर्वज्ञानमय (स० त्रि०) सर्वज्ञानस्वरूपे मयट्। सर्वज्ञानस्वरूप। (मनु २।७)

सर्वज्ञानी (स० पु०) सर्वज्ञ सब कुछ जाननेवाला।

सर्वज्यानि (स० स्त्री०) समग्र सम्पत्तिका नाश या विलय। (शतपथ ११।३।१५)

सर्वज्योतिस् (स० क्ली०) चार सहस्रभेद।

सर्वत (स० अव्य०) १ सब ओर चारो ओर। २ सब प्रकारसे, हर तरहसे। ३ पूर्णरूपसे, पूरी तरहसे।

सर्वत पाणिपाद (स० पु०) विष्णु जिसका सब जगह हाथ और पैर हो।

"सर्वत पाणिपादन्त सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।"

(गीता १३।१४)

सर्वतनु (स० त्रि०) अङ्गप्रत्यङ्गादिविशिष्ट समग्र देहयुक्त।

तोभद्र यन्त्र मण्डल । मण्डलविशेष । देवप्रतिष्ठा, मठप्रतिष्ठा आदिमें पञ्चवर्णके चूर्णसे जो मण्डल बनाया जाता है, उसे सर्वतोभद्रमण्डल कहते हैं । यह एक प्रकारका पूजाधारयन्त्र है । इस मण्डलके ऊपर घटादि स्थापन कर उसके ऊपर देवपूजा करनी होती है। यह मण्डल अङ्कित करनेसे एक सुन्दर आसन जैसा दिखाई देता है । तन्त्रसारमें इस मण्डल अङ्कनकी प्रणाली विशेषरूपसे वर्णित है। सर्वतोभद्रमण्डल अङ्कन नहीं कर सकनेसे एकदम मशानाभद्रमण्डल और यदि उसको भी अङ्कन न कर सके, तो मण्डल पद्म अङ्कन कर पूजादि करे।

सर्वतोभद्ररस (सं० पु०) १ रसौषधविशेष। इसका सेवन करनेसे सब प्रकारका ज्वर, मन्दाग्नि, आमदोष, विसूचिका, आनाह, मूत्रकृच्छ् आदि रोग जड़से नष्ट होते हैं।
   २ प्लीहरोगाधिकारोक्त रसौषधविशेष। इस औषधके सेवनसे प्लीहा, यकृत्, सब प्रकारके ज्वर आदि शीघ्र विदूरित होते हैं। (रसेन्द्रसारस० प्लीहाधि०)

सर्वतोभद्रलौह (सं० पु०) अम्लपित्तरोगाधिकारोक्त औषधविशेष । इसका सेवनसे अम्लपित्त और शूल आदि रोग जल्द प्रशमित होते हैं।

सर्वतोभद्रा (सं० स्त्री०) सर्वतः भद्रमङ्गलमस्याः। १ गम्भारी काश्मरी वृक्ष। २ अभिनय करनेवाली, नटी।

सर्वतोभद्रिका (सं० स्त्री०) गंभारी, काश्मरी वृक्ष।

सर्वतोभाव (सं० अव्य०) सब प्रकारसे, सम्पूर्णरूपसे, भली भांति।

सर्वतोमुख (सं० क्ली०) १ जल, पानी। २ आकाश। (त्रि०) ३ सब ओर मुखविशिष्ट जिसका मुंह चारों ओर हो। ४ जो सब दिशाओंमें प्रवृत्त हो। ५ व्यापक, पूर्ण। (पु०) ६ एक प्रकारकी व्यूहरचना। ७ शिव। ८ ब्रह्मा। ९ आत्मा। १० विष्णु ११ ब्राह्मण। १२ स्वर्ग। १३ अग्नि।

सर्वतोवृत्त (सं० त्रि०) सर्वव्यापक।

सर्वत्र (सं० अव्य०) सब कहीं, सब जगह हर जगह।

सर्वत्रग (सं० पु०) १ वायु। २ मनुके एक पुत्रका नाम। ३ भीमसेनके एक पुत्रका नाम। (त्रि०) ४ सर्वत्रगामी, सर्वव्यापक।

सर्वत्रगत (सं० त्रि०) सर्वत्रव्याप्त, सम्पूर्ण।

सर्वत्रगामिन् (सं० पु०) १ वायु। (त्रि०) २ सर्वव्यापक।

सर्वत्रसत्त्व (सं० त्रि०) सब जगह सत्ताविशिष्ट, जो सब जगह विद्यमान हैं।

सर्वथा (सं० अव्य०) १ सब प्रकारसे, सब तरहसे। २ बिलकुल, सब। ३ भृश, अतिशय। ४ हेतु, कारण। ५ स्वीकार। ६ निश्चय। ७ प्रतिज्ञा।

सर्वद (सं० त्रि०) १ सर्वदानकारी, सब कुछ देनेवाला। (पु०) २ शिवका एक नाम।

सर्वदण्डधर (सं० पु०) शिव।

सर्वदमन (सं० पु०) १ भरतराज शकुन्तलाका पुत्र। महाभारतमें इसकी नामनिरुक्ति इस प्रकार लिखी है कि यह बालक छः वर्षकी उम्रमें ही आश्रमस्थित सिंह, बाघ, वराह आदिको पकड़ कर निकटवर्त्ती वृक्षमें बांध आता था तथा उनमेंसे किसीकी पीठ पर चढ़ कर क्रीड़ा करता था और इन सबोंका दमन कर रखता था। ऋषियोंने इसका यह अलौकिक सत्त्व देख कर इसका नाम सर्वदमन रखा। (भारत १।७४) शकुन्तला और भरत देखो।
   (त्रि०) २ सर्वदमनकर्त्ता, सबको दमन करनेवाला।

सर्वदराज (सं० पु०) राजभेद, शाक्यमुनि।

सर्वदर्शन (सं० क्ली०) १ सब विषयोंमें दृष्टि, दर्शन। (त्रि०) २ सब विषयोंमें दृष्टियुक्त, जिसकी सब विषयों में दृष्टि हो।

सर्वदर्शनसंग्रह (सं० पु०) दर्शनशास्त्रका एक संग्रह माधवाचार्यने सब दर्शनोंका सारसंग्रह कर यह ग्रन्थ प्रणयन किया। इसमें चार्वाक आदि करके १८ दर्शनोंके सार संग्रह और साधारण मत दिये हुए हैं। इस ग्रन्थको पढ़नेसे सब दर्शनोंका बहुत कुछ ज्ञान हो सकता है। कुछ दिन हुए शङ्कराचार्य रचित 'सर्वदर्शन सिद्धान्तरत्न' नामक एक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है जिसमें शङ्कराचार्य पूर्ववर्त्ती लोकायत, आर्हत आदि सब दर्शनका सार लिखा गया है। दर्शन शब्द देखो।

सर्वदर्शिन् (सं० पु०) १ बुद्ध। २ परमेश्वर। (त्रि०) ३ सर्वद्रष्टा, सब कुछ देखनेवाला।

विशिष्ट ब्रह्म, जिसके सभी नाम हैं। (पु०) २ सर्वोक्त नाम या संज्ञा। ३ व्याकरणकी एक संज्ञा। व्याकरणमें सर्वप्रभृति शब्द सर्वनाम कहलाते हैं। व्याकरणमें सर्वनाम प्रकरण नामक एक प्रकरण है। इस प्रकरणमें किसी किसी शब्दकी सर्वनाम संज्ञा होनी तथा सर्वनाम शब्दके उत्तर कार्य आदिका विषय कहा गया है।

इसे साधारण भाषामें प्रतिसंज्ञा भी कहते हैं। यह व्यक्ति या वस्तु विशेषका प्रतिपन्न करनेका द्वितीय प्रकारका नाम या शब्द है। इस श्रेणीके शब्द व्यक्ति विशेषको या व्यक्तिसमूहको स्वतन्त्र भावमें निर्द्धारित करनेमें समर्थ नहीं है, यह पूर्ववर्णित व्यक्ति या वस्तुका अभिधायक मात्र है। हिन्दीमें सर्वनाम शब्द मैं, तू, यह, है।

सर्वनामस्थान (सं० क्ली०) पाणिनिके अष्टाध्यायिवर्णित संज्ञाभेद। (पा १।१।४२ १।४।१७)

सर्वनाश (सं० पु०) सर्वस्य नाश। सत्यानाश, विध्वंस, पूरी बरवादी। नीतिशास्त्रमें कहा है, कि जब देखा जाय शीघ्र सर्वनाशकी सम्भावना है, तब पण्डित व्यक्ति अर्द्धेक त्याग करे। अर्द्धेक त्याग कर यदि और अर्द्धेक रक्षा जाय तो वह श्रेष्ठ है।

'सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्द्धं त्यजति पण्डितः।

(चाणक्यश्लोक)

सर्वनाशी (सं० त्रि०) विध्वंसकारी, सर्वनाश करनेवाला, चौपट करनेवाला।

सर्वनिरोधा (सं० स्त्री०) संख्याभेद। (ललितवि०)

सर्वनिधान (सं० पु०) १ सबका नाश या वध। २ एक प्रकारका एकाह यज्ञ। (शाङ्ख्य० श्रौ०)

सर्वनियन्ता (सं० त्रि०) सबका अपने नियमके अनुसार ले चलनेवाला सबको वशमें करनेवाला।

सर्वनियोजक (सं० त्रि०) सर्वस्य नियोजक। १ सबको नियोजन करनेवाला। (पु०) २ विष्णु।

सर्वनिलय (सं० पु०) १ सर्वधारसम्पन्न। २ वामगृह युक्त।

सर्वनिवरणविष्कम्भिन् (सं० पु०) बोधिसत्त्वभेद।

सर्वन्दर (सं० पु०) बौद्धयतिभेद।

सर्वन्दम (सं० पु०) सर्व दमयतीति दम खच् ङित्वात् मुम्। भरतराज, दुष्मन्तपुत्र। (हेम)

सर्वन्दमन (सं० पु०) सर्वदमन, भरत।

सर्वपति (सं० पु०) सर्वस्य पति। सबोंका पति, विष्णु।

सर्वपथीण (सं० पु०) सारथि।

सर्वपथीन (सं० पु०) सर्वपथ-ख (पा ५।२।७) रथ, जो रथ सकल पथ व्याप्त हो।

सर्वपद्ध (सं० त्रि०) बहुपदविशिष्ट।

सर्वपद (सं० क्ली०) सब तरहका पद। (नैषध ३।१२)

सर्वपरिफुल्ल (सं० त्रि०) सर्वतोभावसे प्रफुल्ल, उत्फुल्ल।

सर्वपवत् (सं० त्रि०) सब प्रकार ग्रन्थिविशिष्ट।

सर्वपशु (सं० पु०) १ मृगबलि। (कात्या० श्रौ० ५।४।३१) २ सब प्रकारका पशु।

सर्वपा (सं० स्त्री०) सर्व पातीति पा क टाप्। १ बलि राजाकी स्त्री। (त्रि०) २ सब पानकर्त्ता सब कुछ पानेवाला। ३ सर्वरक्षणकर्त्ता।

सर्वपाचक (सं० क्ली०) टङ्कणक्षार, सुहागा।

सर्वपाञ्चाल (सं० पु०) पाञ्चालवासी एक आचार्यका नाम।

सर्वपात्रीण (सं० त्रि०) सर्वपात्र-ख (पा ५।२।७) ओदन।

सर्वपाद (सं० पु०) एक राजामात्य।

सर्वपाल (सं० त्रि०) सर्व पालयति पाल अच्। सबका पालक।

सर्वपालक (सं० त्रि०) सबका पालन करनेवाला।

सर्वपुण्य (सं० क्ली०) सकल पुण्य, समुदय पुण्य।

सर्वपुण्यसमुच्चय (सं० पु०) समाधिविशेष।

सर्वपुर—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके राजमहेन्द्री तालुकके अन्तर्गत एक तीर्थक्षेत्र। ब्रह्मवैवर्तपुराणके सर्वपुरक्षेत्र माहात्म्यमें इसका विशेष विवरण दिया हुआ है।

सर्वपुरुष (सं० त्रि०) १ सकल पुरुषयुक्त। (पु०) २ सकल पुरुष।

सर्वपूत (सं० त्रि०) सब विषयोंमें पवित्र।

सर्वपूरक (सं० त्रि०) सबका पूरणकारी।

सर्वपूर्णत्व (सं० क्ली०) सकलार्थ।

सर्वपूर्व (सं० त्रि०) सबके पूर्व, सबसे पहले।

सर्वपृष्ठ (सं० पु०) १ यागभेद। (त्रि०) २ सबके पश्चात्, सबके पीछे।

सर्वप्रद (सं० त्रि०) सर्वं प्रददातीति प्र-दा-क। सर्वद, सकल प्रदानकारी।

सर्वप्रभु (सं० पु०) सर्वस्य प्रभुः। सबका प्रभु।

सर्वप्रायश्चित्त (सं० त्रि०) १ सकल प्रकार प्रायश्चित्तयुक्त, जिसने सब प्रकारका प्रायश्चित्त किया है। (क्ली०) २ आहवनीय, अग्निमें हवन।

सर्वप्रिय (सं० त्रि०) सर्वेषां जनानां प्रियः। १ सकल जनवल्लभ, सबका प्रिय, सबका प्यारा, जो सबको अच्छा लगे। सर्वस्य शिवस्य प्रियः। २ महादेवका प्रिय। सर्वः शिवः प्रियो यस्य। ३ शिवभक्त।

सर्वफलत्यागचतुर्दशीव्रत (सं० क्ली०) व्रतविशेष। सब फलकामना वर्ज्जन कर चतुर्दशी तिथिमें इस व्रतका अनुष्ठान करना होता है।

सर्ववर्म्मन्—१ एक हिन्दू नरपति, महासामन्तमहाराज समुद्रसेनके पूर्वपुरुष। समुद्रसेन देखो।

२ दूसरे एक राजा। मगधके गुप्तराजवंशको एक शाखाके रय जीवितगुप्तदेवकी शिलालिपिमें ये पूर्ववर्त्ती राजा कह कर उल्लिखित हैं। ३ मौखरीवंशीय एक महाराजाधिराज। इनके पिताका नाम ईशानवर्म्मन् और माताका लक्ष्मीवती था।

सर्ववल (सं० क्ली०) १ संख्याविशेष। २ कातन्त्रवृत्त और धातुपाठ नामक व्याकरण ग्रन्थके रचयिता।

सर्ववर्म्मन् देखो।

सर्ववाहु (सं० पु०) युद्ध करनेकी एक विधि।

सर्ववाह्य (सं० त्रि०) सब लोगों द्वारा परित्यक्त।

सर्ववीजिन (सं० त्रि०) सकल वीजविशिष्ट।

सर्वबुद्धमन्दर्शन (सं० क्ली०) वौद्धजगत्‌भेद।

सर्वभक्ष (सं० त्रि०) सर्वभक्षणकर्त्ता, सब कुछ खानेवाला।

सर्वभक्षा (सं० स्त्री०) छागी, बकरी।

सर्वभक्षिन (सं० त्रि०) १ सर्वभक्षक, सब कुछ खानेवाला। (पु०) २ अग्नि।

सर्वभट्ट—पद्यावलीधृत एक कवि।

सर्वभवारणि (सं० स्त्री०) सबकी जननी।

सर्वभाज् (सं० त्रि०) सर्वं भज-ण्वि। सकल प्रकार भजनाकारी।

सर्वभाव (सं० पु०) १ सम्पूर्ण सत्ता, सारा अस्तित्व। २ सम्पूर्ण आत्मा। ३ पूर्ण तुष्टि, मनका पूरा भरना।

सर्वभावन (सं० त्रि०) सकल प्रकार भावनायुक्त।

सर्वभुज् (सं० त्रि०) सर्वं भुङ्क्ते भुज-क्विप्। सर्वभक्ष, सब कुछ खानेवाला।

सर्वभूत (सं० क्ली०) १ सब प्राणी या सृष्टि, चराचर। २ क्षित्यादि पञ्च महाभूत। (मनु १।१६) (त्रि०) ३ सर्वस्वरूप, जो सब कुछ हो या सबमें हो।

सर्वभूतमय (सं० त्रि०) सर्वभूतस्वरूप, सर्वजीवस्वरूप।

सर्वभूतरुतग्रहणीलिपि (सं० पु०) लिपिभेद। ललितविस्तरमें इस लिपिका उल्लेख देखनेमें आता है।

सर्वभूतहित (सं० पु०) सब प्राणियोंकी भलाई।

सर्वभूतात्मक (सं० त्रि०) सर्वभूतस्वरूप। यह जगत् सर्वभूतात्मक है।

सर्वभूतात्मन् (सं० पु०) सब प्राणियोंको आत्मा।

सर्वभूतात्मभूत (सं० त्रि०) सब भूतोंका आत्मभूत, सब प्राणियोंका आत्मस्वरूप।

सर्वभूताधिपति (सं० पु०) सब प्राणियोंका अधिपति, विष्णु।

सर्वभूताधिवास (सं० पु०) सब भूतोंकी निवासभूमि, विष्णु, श्रीकृष्ण।

सर्वभूतान्तक (सं० पु०) सब भूतोंका अन्तकारी, यम।

सर्वभूतान्तरात्मन (सं० पु०) सब जीवोंका आत्मास्वरूप। (भारत० १२ प०)

सर्वभूमिक (सं० क्ली०) गुड़त्वक्, दारचीनी।

सर्वभोगिन (सं० त्रि०) १ सबका आनन्द लेनेवाला। २ सब कुछ खानेवाला।

सर्वभोग्य (सं० त्रि०) सबोंका भोग्य, सबोंके भोगयके उपयुक्त।

सर्वमङ्गल (सं० क्ली०) १ सब प्रकारका मंगल। (रामायण १।१८।१८) (त्रि०) २ सब प्रकार मंगल विशिष्ट।

सर्वमङ्गला (सं० स्त्री०) सर्वाणि मङ्गलानि यस्याः। १ सब प्रकारका मङ्गल करनेवाली। २ दुर्गा लक्ष्मी।
"मङ्गलं मोक्षवचनं चा शब्दो दातृवाचकः।
सर्वान् मोक्षान् या ददाति सा एव सर्वमङ्गला॥
हर्षे सम्पदि कल्याणे मङ्गलं परिकीर्त्तितं।
तान् ददाति च या देवी सा एव सर्वमङ्गला॥"

मोक्षका नाम मङ्गल और आ शब्दका अर्थ दाता है। जो सब प्रकार मोक्षरूप मङ्गल दान करती है, उसे सर्वमङ्गला कहते हैं अथवा हर्ष सम्पद् और कल्याण ये तीन मङ्गल कहलाते हैं जो इस प्रकार मङ्गलदान करती हैं वे भी सर्वमङ्गला कहलाती हैं। देवीपुराणमें लिखा है—
सर्वाणि हृद्यस्थानि मङ्गलानि शुभानि च।
ददाति चेप्सितान् लोके तेन सा सर्वमङ्गला॥"

जो हृदयस्थितसे सब तरहका शुभ दान करती है, उनका नाम सर्वमङ्गला है। इसके अतिरिक्त और भी बहुत सी नामनिरुक्ति हैं। वर्द्धमानमें सर्वमङ्गलादेवी बड़ी प्रसिद्ध हैं।

सर्वमय (सं० त्रि०) सर्वात्मक सब स्वरूप।

सर्वमलापगम (सं० पु०) समाधिभेद। यह समाधि होनेसे सब चित्तमल विदूरित होता है।

सर्वमहत् (सं० त्रि०) अति वृहत्, बहुत बड़ा।

सर्वमागधक (सं० त्रि०) जो समूचा मगधदेश का रक्षण करता है।

सर्वमातृ (सं० स्त्री०) सबोंकी माता।

सर्वमात्रा (सं० स्त्री०) विराज छन्दोभेद।

सर्वमारमण्डलविध्वंसनकारी (सं० स्त्री०) रश्मि किरण। (ललितवि०)

सर्वमित्र (सं० पु०) सबोंका मित्र।

सर्वमूर्द्धन्य (सं० पु०) शान्त प्रावरभेद।

सर्वमूल्य (सं० क्ली०) १ कपर्दक, कौड़ी। २ छोर छोटा सिक्का।

सर्वमूषक (सं० पु०) काल सर्वनाशक समय।

सर्वमृत्यु (सं० पु०) सब तरहका मरण।

सर्वमेध (सं० पु०) १ एक प्रकारका सोमयाग जो दश दिनों तक होता था। (शत० ब्रा० १३।७।१।१) २ सर्व यज्ञ। ३ उपनिषद्‌भेद सर्वमेधोपनिषद्।

सर्वमेध्यत्व (सं० क्ली०) सम्पूर्ण पूतत्व, पूर्ण पवित्रता।

सर्वम्भरि (सं० पु०) प्राण, प्राण सबका पोषण करता है। (छान्दोग्य उप०)

सर्वयज्ञ (सं० पु०) सब प्रकारका यज्ञ।

सर्वयत्नवत् (सं० त्रि०) सर्वयत्न अस्त्यस्य मतुप् मस्य व। सब प्रकार यत्नविशिष्ट।

सर्वयोग्य (सं० त्रि०) सर्वयज्ञकुशला।

सर्वयोगिन् (सं० पु०) शिवका एक नाम।

सर्वयोनि (सं० पु०) सर्वेषां योनिः। १ सबोंकी योनि, सबका कारण। २ सकल प्रकार योनि।

सर्वरक्षण (सं० क्ली०) सर्वस्य रक्षण। १ सबका रक्षण सबकी रक्षा करना। (त्रि०) २ सबका रक्षक, सब रक्षक।

सर्वरक्षणकवच (सं० क्ली०) सर्वरक्षाकर कवच। यह कवच धारण करनेसे सब विपदमें रक्षा होती है। ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके श्रीकृष्णजन्मखण्डमें इस कवचका विषय और इसका विशेष विधान लिखा है। भोजपत्र पर यह कवच गोरोचन और कुमकुम द्वारा लिख कर पीछे कवच संस्कारके विधानानुसार संस्कार कर हस्त और कण्ठमें धारण करे। इससे सब विपद् दूर होती और सब प्रकारका शुभ होता है। कवच पर लिखे जानेवाले श्लोक बहुत हो जानेके भयसे लिखे न गये।

सर्वरत्न (सं० क्ली०) सब प्रकारका रत्न।

सर्वरत्नक (सं० पु०) जैन शास्त्रानुसार नौ निधियोंमेंसे एक।

सर्वरत्नमय (सं० त्रि०) सर्वरत्न स्वरूपे मयट्। सब रत्नस्वरूप सकल प्रकार रत्न द्वारा निर्मित।

सर्वरथ (सं० क्ली०) सबका व्याप्त रथ।

सर्वरस (सं० पु०) १ धूप वृक्षका निर्यास। २ धूनक धूना। ३ वाद्यभाण्ड, एक प्रकारका बाजा। ४ लवणरस। ५ मधुरादि सकल रस। (त्रि०) ६ सर्वरसविशिष्ट।

सर्वरसा (सं० स्त्री०) लाजाका माड़, धानका लावाका माड़।

सर्वरसोत्तम (सं० पु०) लवणरस।

सर्वराज् (सं० पु०) सभी विषयमें शोभित व्यक्ति।

सर्वराजेन्द्र (सं० पु०) सकल राजश्रेष्ठ प्रधान नरपति।

सर्वगो (सं० स्त्री०) शर्वरी, रात्रि। (धरणि)

सर्वगुणकौशल्य (सं० क्ली०) समाधिभेद।

सर्वगुणसंग्रहणलिपि (सं० स्त्री०) लिपिभेद। ललितविस्तरमें इस लिपिका उल्लेख देखनेमें आता है। इस शब्दका 'सर्वगुणसंग्रहणीलिपि' पाठान्तर देखा जाता है।

सर्वरूप (सं० क्ली०) १ सब प्रकारका रूप। २ एक प्रकारकी समाधि। (त्रि०) ३ सर्वस्वरूप, जो सब रूपोंका हो।

सर्वरूपिन् (सं० त्रि०) सर्वरूप अस्त्यर्थे इनि। सकल रूपविशिष्ट।

सर्वरोग (सं० पु०) सकल प्रकार रोग, सब तरहकी पीड़ा। वैद्यकमें लिखा है, कि कुपित मल ही सब रोगोंका कारण है, मल शब्दसे वायु, पित्त और कफ समझा जाता है। वायु, पित्त और कफ कुपित हो कर हो रोगोत्पादन करता है। मल शब्दसे विष्ठाका भी बोध होता है, दोष परिहार न होनेसे सभी रोग हो सकते हैं।

सर्वरोहित (सं० त्रि०) सम्पूर्णरूपसे रक्तवर्णविशिष्ट।

सर्वर्तु (सं० पु०) सर्वः ऋतुः। सकल ऋतु, ग्रीष्म आदि षड़ ऋतु।

सर्वर्तुक (सं० त्रि०) सब ऋतुमें उत्पन्न पुष्पमाल्य और फलादि द्वारा शोभित। (मनु ७।७६)

सर्वर्तुपरिवर्त्त (सं० पु०) वत्सर, वर्षमें छः ऋतुका परिवर्त्तन होता है। (जटाधर)

सर्वलवण (सं० क्ली०) औवर लवण।

सर्वला (सं० स्त्री०) सर्वं लातीति ला-क, टाप्। तोमर, लोहेका डंडा।

सर्वलिङ्गिन् (सं० त्रि०) १ सब प्रकारके ऊपरी आडम्बर रखनेवाला, पाषण्डी। २ सब प्रकार चिह्नधारी। (पु०) ३ नास्तिक।

सर्वलोक (सं० पु०) सर्वः लोकः, समस्त लोक, निखिल जगत्।

सर्वलोकधातुपद्रवोद्वेगप्रत्युत्तीर्ण (सं० पु०) बुद्ध।

सर्वलोकपितामह (सं० पु०) ब्रह्मा। ब्रह्माके आदेशसे मनुने इस जगत्की सृष्टि की, मनुके पिता ब्रह्मा हैं, इसलिये वे सकल लोकके पितामह कहलाते हैं। (मनु १।६)

सर्वलोकभयान्तर्निमतन्यविध्वंसनकर (सं० पु०) बुद्धभेद।

सर्वलोकमय (सं० त्रि०) सकल लोकस्वरूप।

सर्वलोकान्तरात्मन (सं० पु०) सर्वलोकान्तरव्यापी आत्माविशिष्ट, विष्णु। (भारत १३ प०)

सर्वलोकिन (सं० त्रि०) सर्वलोकविशिष्ट, सकल लोकयुक्त।

सर्वलोकेश (सं० पु०) १ शिव। २ ब्रह्मा। ३ विष्णु। ४ कृष्ण।

सर्वलोकेश्वर (सं० पु०) सर्वलोकेश देखो।

सर्वलोचना (सं० स्त्री०) एक पौधा जो औषधके काममें आता है।

सर्वलोह (सं० पु०) १ लौहमय वाण। २ सब धातु।

सर्वलोहित (सं० त्रि०) सर्वलोहित।

सर्वलौह (सं० क्ली०) ताम्र, तांबा।

सर्ववर्ण (सं० क्ली०) सकल प्रकार वर्ण, ब्राह्मणादि।

सर्ववर्णिका (सं० स्त्री०) गाम्भारी वृक्ष। (जटाधर)

सर्ववर्मन् (सं० पु०) कातन्त्रसूत्रके प्रणेता एक वैयाकरण। सर्ववर्मन देखो।

सर्ववल्लभा (सं० स्त्री०) १ असती नारी, कुलटा स्त्री। (त्रि०) २ सबोंका प्रिय।

सर्ववाट्निधन (सं० पु०) वराहभेद।

सर्ववाङ्मय (सं० त्रि०) सकल वाक्यस्वरूप, प्रणव, सबसे वाक्यका बीजभूत।

सर्ववादिन् (सं० त्रि०) १ सकल वादी, जो सब बोले। (पु०) २ शिव। (भारत अनुशा०)

सर्ववास (सं० पु०) शिव।

सर्वविक्रयिन् (सं० त्रि०) सकल वस्तुविक्रयकारी, निषिद्ध वस्तुविक्रयकारी। (मनु० २।११८)

सर्वविग्रह (सं० पु०) शिव।

सर्वविज्ञानिन् (सं० त्रि०) सकल विज्ञानविशिष्ट, जो सब विज्ञान जानता हो।

सर्वविद् (सं० पु०) १ परमेश्वर, परब्रह्म। २ ओंकार। (त्रि०) ३ सर्वज्ञ।

सर्वविद्त्व (सं० क्ली०) सर्वविद्का भाव या धर्म, सर्वज्ञत्व।

सर्वविद्य (सं० त्रि०) सकल विद्याविशिष्ट, सब विषयमें विद्वान्।

सर्वविद्या (सं० स्त्री०) सकल विद्या, सब प्रकारकी विद्या।
सर्वविद्यामय (सं० पु०) सकल विद्यास्वरूप।
सर्वविद्यालङ्कार—सङ्क्षिप्तसारकारकटिप्पणीके प्रणेता। ये गयघट्ट गाँव थे।
सर्वविद्याविनोद भट्टाचार्य (सं० पु०) पद्यावलीधृत एक कवि।
सर्वविश्व (सं० क्ली०) सकल विश्व समुग्र जगत्।
सर्ववीर (सं० त्रि०) जिसके बहुत से पुत्र हों।
सर्ववीरजित् (सं० त्रि०) सकल वीरपुरुष जयकारी।
सर्ववेत्तृ (सं० पु०) सर्ववित् तृण्। सर्व विद सर्वज्ञ।
सर्ववेद (सं० पु०) १ सर्ववेदाध्येता ब्राह्मण। (त्रि०) २ सब ज्ञ।
सर्ववेदत्रिरात्र (सं० पु०) अहीनयागभेद। (शाङ्ख० श्रौ०)
सर्ववेदमय (सं० त्रि०) सकल वेदस्वरूप प्रणव।
सर्ववेदस् (सं० पु०) सर्वस्वदक्षिण विश्वजिन्नामक यज्ञकारी। जिन्होंने सर्वस्वदक्षिणायुक्त विश्वजित् नामक यज्ञका अनुष्ठान किया है उन्हें सर्ववेदस् कहते हैं।
सर्ववेदस (सं० पु०) विश्वजित् याग। (मनु ११।१)
सर्ववेदसिन् (सं० त्रि०) सर्वस्व दक्षिणादानरूप यज्ञकारी।
सर्ववेदात्मन् (सं० पु०) सर्ववेदस्वरूप।
सर्ववेदिन् (सं० त्रि०) १ सर्ववेदविशिष्ट। २ जो सब जानता हो। (पु०) ३ शिव। (भारत)
सर्ववेशिन् (सं० पु०) १ नट। (हेम) (त्रि०) २ सकल वेशधारी, जो सब प्रकारका वेश धारण करता हो।
सर्ववैनाशिक (सं० त्रि०) आत्मा आदि सबका नाशवान् माननेवाला, क्षणिकवादी बौद्ध।
सर्वव्यापिन् (सं० त्रि०) १ सब पदार्थोंमें गमनशील, सर्वव्यापनशील। (पु०) २ ईश्वर। ३ शिव।
सर्वव्रत (सं० क्ली०) १ सकल व्रत। (त्रि०) २ सकल व्रतविशिष्ट।
सर्वशक्तिमान् (सं० त्रि०) १ सब कुछ करनेकी सामर्थ्य रखनेवाला। (पु०) २ ईश्वर।
सर्वशस् (सं० अव्य०) सर्व प्रकार्। १ पूर्णरूपसे समूचा। २ पूरा पूरा।

सर्वशाकुन (सं० क्ली०) सकल प्रकार शाकुन शास्त्र। १ बृहत्संहितामें लिखा है कि वराह मिहिरने शिष्यों की प्रीतिके लिये सर्वशाकुनसंग्रह प्रणयन किया। जितना प्रकारका शाकुनफल शास्त्रमें निर्दिष्ट है संक्षिप्तभावमें इसमें सन्निविष्ट है। (बृहत्संहिता ८६।४)
सर्वशान्ति (सं० स्त्री०) सब प्रकारकी शान्ति।
सर्वशान्तिकृत् (सं० पु०) १ शकुन्तलाका पुत्र भरत राजा। (त्रि०) २ सकल शमकारक, सब प्रकारका शान्ति करनेवाला।
सर्वशास (सं० त्रि०) सर्व शासि शास् अच्। सबोंका शासक। (ऋक् ५।४४।४)
सर्वशास्त्र (सं० क्ली०) सब प्रकारका शास्त्र।
सर्वशास्त्रमय (सं० त्रि०) सर्वशास्त्रस्वरूपे मयट्। सकल शास्त्र स्वरूप।
सर्वशुचि (सं० पु०) १ अग्नि जो सबको शुचि अर्थात् पवित्र करती है। २ सब पवित्र।
सर्वशुक्लवाल (सं० त्रि०) सकल शुभ्र केश, जिसके सब बाल उजले हो गये हों। (शुक्लयजु० २४।२)
सर्वशून्य (सं० त्रि०) सब शून्य। जिस व्यक्तिके लग्नका दसवाँ शून्य अर्थात् कोई ग्रह न रहे इस प्रकार रवि का ग्यारहवां तथा चन्द्रमा अठारहवाँ होनेसे सर्व शून्य होता है। ये सब प्रकार दारिद्र्ययोग हैं।
सर्वशून्यता (सं० स्त्री०) सर्वशून्यका भाव या धर्म।
सर्वशून्यवादिन् (सं० पु०) बौद्ध।
सर्वशूर (सं० पु०) एक बोधिसत्त्वका नाम।
सर्वश्रेष्ठ (सं० त्रि०) सबसे बड़ा, सबसे उत्तम।
सर्वश्वेत (सं० त्रि०) सकल श्वेतवर्णविशिष्ट सब सफेद।
सर्वश्वेता (सं० स्त्री०) सर्पविशेष, एक प्रकारका विषैला कीड़ा। (सुश्रुत कल्पस्था० ८ अ०)
सर्वसंग्रह सर्वलक्षण (सं० क्ली०) औषध लक्षण।
सर्वसंपन्न (सं० त्रि०) सब प्रकार सब रूपोंसे रहनेवाला।
सर्वसंहार (सं० पु०) काल।
सर्वस (हिं० पि०) सर्वस्व देना।
सर्वसङ्कृत (सं० पु०) १ व्यकराणोक्त सारी भाग।

(शब्दर०) (त्रि०) २ सत्त्वयुक्त। ३ सर्वशोभित।
सर्वसत्त्वप्रियदर्शन (सं० पु०) १ बुद्ध। २ बोधिसत्त्वभेद।
सर्वसत्त्वोजोहारी (सं० स्त्री०) राक्षसी। यह सब प्राणीका बल हरण करती है, इसलिये इसका यह नाम हुआ।
सर्वसत्य (सं० त्रि०) प्रकृत, यथार्थ।
सर्वसन्नहन (सं० क्लो०) समुदय सैन्य सज्जित और सज्जित करना।
सर्वसन्नहनार्थक (सं० पु०) सम्पूर्णसैन्य-सन्नाह।
सर्वसन्नाह (सं० पु०) १ सर्वात्मा। २ सर्वसन्नहन।
सर्वसमता (सं० स्त्री०) सबोंके प्रति समान ज्ञान या व्यवहार। (मनु १२।१२५)
सर्वसमृद्ध (सं० त्रि०) सब विषयोंमें समृद्ध, सब विषयोंमें सम्पन्न।
सर्वसम्पन्न (सं० त्रि०) सर्वसमृद्ध, सब विषयोंमें सम्पन्न।
सर्वसस्यशालिनी (सं० स्त्री०) वसुमती, पृथ्वी।
सर्वसम्भव (सं० पु०) सब विषयका उत्पत्ति स्थान, जहांसे सब विषय उत्पन्न हुआ हो।
सर्वसर (सं० पु०) मुखरोग विशेष, मुंहका एक रोग। इसमें छाले-से पड़ जाते हैं तथा खुजली तथा पीड़ा होती है। यह तीन प्रकारका होता है—वातज, पित्तज और कफज। वातजमें मुखमें सूई चुभनेकी-सी पीड़ा होती है। पित्तजमें पीले या लाल रंगके दाहयुक्त छाले पड़ते हैं। कफजमें पीड़ा रहित खुजली होती है। मुखरोग देखो।
सर्वसह (सं० पु०) १ गुग्गुलु, गुग्गुल। (त्रि०) २ सकल सहिष्णु।
सर्वसहा (सं० स्त्री०) पुराण-वर्णित ईप्सितप्रद गाभी भेद। (भाग० १२।८०)
सर्वसाक्षिन् (सं० पु०) १ सबोंका साक्षि-स्वरूप, ब्रह्म। २ वह्नि। ३ वायु।
सर्वसात् (सं० त्रि०) जिसमें सब लीन हो।
सर्वसाधन (सं० क्लो०) १ स्वर्ण, सोना। २ धन। (पु०) ३ शिव।
सर्वसाधारण (सं० त्रि०) १ सामान्य, जो सबके पास पाया जाता हो, आम। (पु०) २ साधारण लोग, जनता, आम लोग।
सर्वसामान्य (सं० त्रि०) जो सबमें एक-सा पाया जाय, मामूली।
सर्वसार (सं० क्ली०) सब विषयोंका सार।
सर्वसारङ्ग (सं० पु०) एक नागका नाम। (भारत आदिपर्व)
सर्वसारसंग्रहणीलिपि (सं० स्त्री०) लिपिविशेष। ललितविस्तरमें इस लिपिका उल्लेख देखनेमें आता है।
सर्वसारोपनिषद् (सं० स्त्री०) उपनिषद्भेद।
सर्वसाह (सं० त्रि०) सर्व सहते सह-ण्वि। सकल सहनकारी, सब सहन करनेवाला।
सर्वसिद्धा (सं० स्त्री०) शुक्लपक्षकी चतुर्थी, नवमी और चतुर्दशी इन तीन तिथिका नाम।
सर्वसिद्धार्थ (सं० त्रि०) सर्वसिद्ध-कामफल, जिसका सब प्रयोजन सिद्ध हुआ हो। (मनु १।८२)
सर्वसिद्धि (सं० स्त्री०) १ सब कार्यों और कामनाओंका पूरा होना। २ पूर्ण तर्क। ३ श्रीफल, बिल्व वृक्ष।
सर्वसिद्धि—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके विजगापट्टम् जिलेका एक तालुक। भू-परिमाण ३११ वर्गमील है। शैलमल्लिहिनगर यहांका विचार-सदर है।
सर्वसुखदुःखनिरभिनन्दिन् (सं० पु०) समाधिभेद।
सर्वसुरभि (सं० पु०) सम्यक् सुरभि।
सर्वसूक्त (सं० क्लो०) कृत्स्न। (भाग० १२।७०)
सर्वसैन (सं० त्रि०) कृत्स्नसेनायुक्त, समग्र सेनाविशिष्ट। (ऋक् १।३३।३)
सर्वसेन—यशोधरचरित और हरिविजयकाव्यके प्रणेता। ध्वन्यालोकमें आनन्दवर्द्धनने इनका उल्लेख किया है।
सर्वसौवर्ण (सं० त्रि०) सुवर्णमय। (पा ६।२।९३)
सर्वस्तोम (सं० पु०) १ एकाहभेद। (कात्या० श्रौ० २०।८।१३) (त्रि०) २ समग्र स्तोममन्त्रविशिष्ट।
सर्वस्व (सं० क्लो०) जो कुछ अपना हो वह सब किसीकी सारी सम्पत्ति, कुल माल मता।
सर्वस्वरित (सं० त्रि०) स्वरित पाठके युक्त। (वाजसनेय प्राति० २।१)
सर्वस्वर्णमय (सं० त्रि०) सम्पूर्णरूपसे स्वर्णमण्डित।

सर्वसार (स ० पु०) पक्काहमेद ।
सर्वस्विन (स ० पु०) १ वर्णसंकर जातिविशेष । ब्रह्म वैवर्त्तपुराणके अनुसार इस जातिकी उत्पत्ति नापित पिता और गोपकन्या मातासे हुई है । (त्रि०) २ सकल धन विशिष्ट, सकल धनयुक्त ।
सर्वहत्या (स ० स्त्री०) सबोंका नाश ।
सर्वहर (स ० पु०) १ सब कुछ हर लेनेवाला । २ वह जो किसीकी सारी सम्पत्तिका उत्तराधिकार हो । ३ महादेव, शङ्कर । ४ काल । ५ यमराज ।
सर्वहरण (स ० स्त्री०) सकल हरण, सर्वनाश ।
सर्वहरि (स ० पु०) हरिमन्त्रमय सूक्त ।
सर्वहर्षकर (स त्रि०) सकल आनन्ददायक ।
सर्वहायस (स ० त्रि०) बहुबलयुक्त बड़ा ताकतवर ।
सर्वहार (स ० पु०) सकल हर । (मनु ८।२६६)
सर्वहारिन् (स ० त्रि०) सकल हरणकारी, सब कुछ हरण करनेवाला ।
सर्वहित (स ० स्त्री०) १ मरिच, मिर्च । (पु०) २ शाक्य मुनि, गौतम बुद्ध । (त्रि०) ३ सकल हितकारक ।
सर्वहुत् (स ० त्रि०) सर्वात्मक पुरुष जो यज्ञमें हुत होते हैं, उन्हें सर्वहुत् कहते हैं । (ऋक् १०।९०।८)
सर्वहुत (स ० पु०) यज्ञ । (अथर्व १८।४।१३)
सर्वहुति (स ० स्त्री०) यज्ञ जिसमें नाना द्रव्यकी आहुति दी जाती है ।
सर्वहृद् (स० त्रि०) अविकल हृदयविशिष्ट या सब प्रकारको हृदय । (ऋक् १०।१६०।३)
सर्वहोम (स ० पु०) यज्ञमें सब द्रव्यों का होम ।
सर्वाक्रमकर (स ० पु०) समाधिभेद ।
सर्वाकार वरोपेत (स ० पु०) समाधिभेद ।
सर्वाक्ष (स ० पु०) रुद्राक्ष, शिवाक्ष ।
सर्वाक्षिरोग (स ० पु०) सर्व नेत्रगतरोग । समूचा आँखमें यह रोग उत्पन्न होता है इसलिये इस सर्वाक्षिरोग कहते हैं । वाताभिष्यन्द अधिमन्थ हताधिमन्थ अन्यताबात, शिथिलत्व, पित्ताभिष्यन्द, रक्ताभिष्यन्द शुष्काक्षिपाक सशोफाक्षिपाक, अक्षिपाकात्यय अन्यतोवात सन्निपाताभिष्यन्द, वातपित्ताभिष्यन्द, वातकफाभिष्यन्द और पित्तश्लेष्माभिष्यन्द सोलह प्रकारके सर्वाक्षिरोग हैं ।

सर्वाक्षा (स ० स्त्री०) दुग्धिका, दुधिया घास, दुद्धी ।
सर्वाक्ष (स ० पु०) पारद, पारा ।
सर्वागमोपनिषद् (स ० स्त्री०) उपनिषद्भेद ।
सर्वाग्निद (स ० त्रि०) सकल अग्निसम्बन्धी ।
सर्वाङ्ग (स ० क्ली०) १ सम्पूर्ण शरीर, सारा बदन । २ सब अवयव या अङ्ग । ३ सब वेदाङ्ग । (पु०) ४ महादेव ।
सर्वाङ्गरूप (स ० पु०) शिव ।
सर्वाङ्गच्य (स ० क्ली०) वह पद्य जिसके चारों चरणोंके अन्त्याक्षर एक से हों ।
सर्वाङ्गसुन्दर (स ० त्रि०) जिसका सारा अङ्ग सुन्दर हो, मनोरम ।
सर्वाङ्गसुन्दररस (स० पु०) कासाधिकारोक्त औषधविशेष । यह औषध शुभ दिनमें महादेव आदिकी पूजा कर सेवन करनी पड़ती है । इसके सेवनेसे सब प्रकारके कासरोग जल्द दूर होते हैं । विशेषतः क्षय और राजयक्ष्मरोगमें यह बड़ा फायदेमंद है । वातपित्तज्वर, घोर सन्निपातज्वर, अर्श, ग्रहणी गुल्म, मेह और भगन्दर आदि रोगमें भी यह बड़ा फायदा पहुंचाता है ।

सर्वाङ्गसुन्दर महाणक—बालकोंके लिये महौषध । यह औषध ज्वर, ग्रहणी, प्रवाहिका सूतिका, रक्तार्श आदि सब व्याधिविनाशक तथा बालका पिशाच दानव आदि विघ्ननाशक है । (रसेन्द्रसार० ग्रहणी-रोगाधि०)
सर्वाङ्गिन (स ० त्रि०) सर्वावयव सम्यक् युक्त, सर्वावयवयुक्त ।
सर्वाज्ञाय (स ० त्रि०) समस्त उज्ज्वलिकाविशिष्ट ।
सर्वाणी (स ० स्त्री०) शर्वाणी, दुर्गा । जो चराचर विश्वको सबोंका मोक्ष देती हैं उन्हें सर्वाणी कहते हैं ।
सर्वातिथि (स ० पु०) वह जो सबका आतिथ्य करे वह जो सब आये लोगोंका सत्कार करे ।
सर्वातिशयजित् (स० त्रि०) सब अतिशयोंका जय करनेवाला । (भागवत)
सर्वातिसारिन् (स ० त्रि०) सब प्रकार अतिसारयुक्त ।
सर्वात्मक (स ० पु०) सर्वात्मन, सर्वस्वरूप ।
सर्वात्मदृश (स ० त्रि०) सर्वद्रष्टा, सब कुछ देखनेवाला ।
सर्वात्मन् (स ० पु०) १ सम्पूर्ण विश्वमें व्याप्त चेतन

सत्ता, सबकी आत्मा, ब्रह्म। २ शिवका एक नाम। ३ अर्हन्, जिन।

सर्वाधार (सं० पु०) सबोंका आधार।

सर्वाधिकार (सं० पु०) १ सब कुछ करनेका अधिकार, पूर्ण प्रभुत्व, पूरा इख्तियार। २ सब प्रकारका अधिकार।

सर्वाधिकारिन् (सं० पु०) १ पूरा अधिकार रखनेवाला, वह जिसके हाथमें पूरी इख्तियार हो। २ हाकिम।

सर्वाधिपत्य (सं० क्ली०) सबोंका आधिपत्य, सबोंके ऊपर प्रभुत्व।

सर्वाध्यक्ष (सं० पु०) सबोंका अध्यक्ष।

सर्वान् (सरवान)—युक्तप्रदेशके अयोध्या विभागान्तर्गत उनाव जिलेका एक बड़ा ग्राम। यह अक्षा० २६° ३६´ उ० तथा देशा० ८०° ५६´ पू०के मध्य उनाव नगरसे २६ मील पूर्व और पूर्वासे ६ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। यहांके प्राचीन कीर्त्तिस्वरूप यहां एक शिवमन्दिर विद्यमान है। इस नगरकी प्राचीनताके सम्बन्धमें कहते हैं, कि अयोध्यापति महाराज दशरथ एक समय इस प्रदेशमें शिकार खेलनेको आये। रात हो जाने पर उन्होंने सर्वरा नामक स्थानमें एक तालावके किनारे खेमा डाला। ठीक दो पहर रातको वहां सर्वान् नामक एक वैश्य ऋषि आये। वे अपने अन्ध मातापिताके साथ तीर्थपर्य्यटनको निकले थे। सर्वान्को बड़ी प्यास लगी, इस कारण वे पिता-माताको अपने कंधे परसे जमीन पर रख आप पानी पीने तालावमें गये। जलके बुद्बुद शब्दसे राजाने समझा, कि कोई जंगली जानवर पानी पीने आया है। अस्तु उन्होंने उस शब्दको लक्ष्य कर बाण फेंका। बाण लगने पर सर्वान उसी जगह चित हो रहे। उनके आर्त्तनादसे पितामाताने पुत्रका सर्वनाश समझ पुत्र-घातीको अभिशाप दिया और दोनों देहत्याग कर स्वर्गगामी हुए।

सर्वान्के नामानुसार यह स्थान पीछे सर्वान् कहलाया तथा यहां एक नगर भी प्रतिष्ठित हुआ। ऋषिका अभिशप्त स्थान जान कर किसी भी क्षत्रियसन्तानने यहां बसना नहीं चाहा। क्योंकि जिस किसीने कभी यहां आ कर वास किया, उसका किसी न किसी प्रकार अमङ्गल हुआ ही। आज भी सर्वान् नगरमें वह दिग्गी मौजूद है। उसीके किनारे एक वृक्षके नीचे सर्वान्की प्रस्तरप्रतिमूर्त्ति दिख ई देती है। सर्वान्की प्यास यहां बुझने न पाई थी, कि वे मारे गये। स्थानीय लोग उस पिपासातुर ऋषिरत्नकी शान्तिकामनासे उस प्रस्तरमूर्त्तिके नाभिकुण्डमें जल देने आते हैं। आश्चर्यका विषय है, कि नाभिकुण्डमें जितना भी जल क्यों न दिया जाय, वह तुरत सूख जाता है।

सर्वानन्द (सं० त्रि०) १ सब विषयमें आनन्दयुक्त, जिसे सब विषयमें ही आनन्द हो। (पु०) २ सब प्रकारका आनन्द।

सर्वानन्द—१ पद्यावलीधृत एक कवि। २ त्रिपुरार्च्चन दीपिकाके प्रणेता। ३ ब्रह्ममाला नाट्यके रचयिता।

सर्वानन्द कवि—सदुपदेशरत्नाकरके प्रणेता।

सर्वानन्दनाथ—सर्वोल्लासतन्त्रके रचयिता।

सर्वानन्द मिश्र—एक विख्यात पण्डित। इनके वंशमें सांख्यतत्त्वविलासके प्रणेता रघुनाथ तर्कवागीश भट्टाचार्य आविर्भूत हुए।

सर्वानन्द वन्द्यघटीय—अमरकोष टीकाके प्रणेता। १०८१ शकाब्दमें उक्त टीका रची गई। रायमुकुटने इनका मत उद्धृत किया है।

सर्वानवद्याङ्ग (सं० त्रि०) सकल अनिन्दित अङ्ग सम्पन्न, सकल सुन्दर अङ्गयुक्त।

सर्वानुकारिणी (सं० स्त्री०) शालपर्णी।

सर्वानुक्रमणिका (सं० पु०) वेदकी अनुक्रमणिका।

सर्वानुदात्त (सं० त्रि०) सकल अनुदात्त स्वरविशिष्ट।

सर्वानुभू (सं० त्रि०) सब विषयोंका अनुभव करनेवाला।

सर्वानुभूति (सं० स्त्री०) १ श्वेतत्रिवृता। (अमर) (पु०) २ चौबीस भूत अर्हतोंमेंसे एक। (हेम)

सर्वान्तक (सं० त्रि०) सबोंका अन्त करनेवाला।

सर्वान्तहन् (सं० त्रि०) सबोंका अन्त करनेवाला।

सर्वान्तर (सं० पु०) सकल अन्तरयुक्त।

सर्वान्तरस्थ (सं० त्रि०) सकल अन्तरस्थित।

सर्वान्तरात्मन् (सं० पु०) सबोंकी अन्तरात्मा।

सर्वान्तर्यामिन् (सं० पु०) वह जो सबके मनकी बात जानता हो।

सर्वांगप्रसङ्ग (सं० पु० [illegible]) सर्वांग [illegible] प्रायश्चित्त करना पड़ता है। जो प्रायश्चित्त नहीं करता उसे वर्जित होता है। प्रायश्चित्त होना।

सर्वाङ्गीणज्ञ (सं० त्रि०) सारे व्याकरणका मर्म जाननेवाला।

सर्वाङ्गीण (सं० त्रि०) सर्वाङ्गाणि व्याप्नोति सर्वाङ्ग (अनुपदसर्वान्नायानयं। पा ५।२।९) इति ख। सर्वाङ्ग भोगी सबीका भाग लानेवाला।

सर्वाण्डज (सं० पु०) सांप और चिड़िया आदि अंडज जीव।

सर्वाप्ति (सं० स्त्री०) सब विषयोंकी प्राप्ति।

सर्वाभाव (सं० पु०) सब प्रकारका अभाव।

सर्वाभिभू (सं० पु०) १ बुद्ध। (ललितवि०) (त्रि०) २ सबों का अभिभव करनेवाला।

सर्वाभिसन्धक (सं० त्रि०) सबको धोखा देनेवाला।

सर्वाभिसन्धिन (सं० त्रि०) १ पैशुन्यनिरत, छद्म तापस। २ सर्वाभिसन्धानविशिष्ट।

सर्वाभिसार (सं० पु०) चतुरङ्ग सैन्यसन्नाह, चढ़ाईके लिये सम्पूर्ण सेनाकी तैयारी या सजाव।

सर्वाभ्यन्तर (सं० पु०) किसी परिवार या गृहस्थके रहनेवाले घरके प्राणी, नौकर चाकर आदि सब लोग।

सर्वामरी (सं० स्त्री०) सफेद निसोथ।

सर्वायस (सं० त्रि०) सम्पूर्ण लौहमय।

सर्वार—राजपूतानेके किसनगढ़ राज्यके अन्तर्गत एक नगर।

सर्वार्थ (सं० पु०) १ सकल अर्थ या प्रयोजन। (त्रि०) २ सकल प्रयोजनविशिष्ट।

सर्वार्थचिन्तक (सं० त्रि०) सर्वार्थ विषयकी चिन्ता करनेवाला। राजा प्रत्येक नगरमें एक एक सर्वार्थचिन्तक नियुक्त करे। (मनु ७।१२१)

सर्वार्थनामन् (सं० पु०) बोधिसत्वभेद।

सर्वार्थसाधक (सं० त्रि०) सकल प्रयोजनकारी, सर्वार्थ साधनकारी।

सर्वार्थसाधन (सं० क्ली०) सब प्रयोजन सिद्ध होना, सारे मतलब पूरे होना।

सर्वार्थसाधिका (सं० स्त्री०) दुर्गा।

सर्वार्थसिद्ध (सं० पु०) १ शाक्यमुनि बुद्ध। (त्रि०) २ सकल प्रयोजन सिद्धियुक्त।

सर्वार्थसिद्धि (सं० पु०) १ जैनमतसे देवगणभेद। (स्त्री०) २ सब अर्थकी सिद्धि।

सर्वार्थानुसाधिनी (सं० स्त्री०) दुर्गा।

सर्वार्द्धरात्र (सं० पु०) अर्द्धरात्र आधी रात।

सर्वावसु (सं० पु०) सूर्यरश्मिभेद, सूर्यकी एक किरणका नाम।

सर्वावास (सं० पु०) शिव। (भारत १२ पर्व)

सर्वाश्रय (सं० पु०) १ सबका शरण या आधार स्थान। २ शिव।

सर्वाशिन् (सं० त्रि०) सर्वभक्षक, सब कुछ खानेवाला।

सर्वाश्चर्यमय (सं० त्रि०) सकल आश्चर्यस्वरूप, अद्भुत। (भाग० १।८।१९)

सर्वाश्व (सं० क्ली०) सर्व मद्य।

सर्वाश्रमिन् (सं० त्रि०) सकल आश्रमविशिष्ट।

सर्वास्तिवाद (सं० पु०) वह दार्शनिक सिद्धान्त कि सब वस्तुओंकी वास्तव सत्ता है वे असत् नहीं हैं। यह बौद्धमतकी वैभाषिक शाखाके चार भिन्न भिन्न मतोंमें से एक है जिसके प्रवर्त्तक गौतम बुद्धके पुत्र राहुल माने जाते हैं।

सर्वास्तिवादिन् (सं० त्रि०) सर्वास्तिवादका माननेवाला, बौद्ध।

सर्वास्त्रमहाज्वाला (सं० स्त्री०) जैनोंकी सोलह विद्यादेवियोंमें एक।

सर्वास्त्रा (सं० स्त्री०) १ जैनोंकी सोलह विद्यादेवियों में से एक। (हेम) २ सकल अस्त्रयुक्ता।

सर्वास्य (सं० क्ली०) सब मुख।

सर्वाहम्मानिन् (सं० त्रि०) मैं ही सब कुछ हूं ऐसा जो समझते हैं।

सर्वाह्न (सं० पु०) समस्त दिन, सारा दिन।

सर्वाह्निक (सं० त्रि०) समूचे दिनका सारा दिन सम्बन्धी।

सर्वीय (सं० त्रि०) सर्वस्मै हितं सर्व (सर्वपुरुषाभ्यां णढञौ। पा ५।१।१०) इति छ। सर्व सम्बन्धी।

सर्य (सं० पु०) १ भूमिकी नाप जोख पैमाइश। २ वह

से छोटा एक बालिश्त और बड़े से बड़ा दो ढाई या तीन हाथ तक देखा जाता है। नदी तट पर जो सरसों पैदा होती है वह प्रायः तीन तीन हाथ ऊंची होती है। इसका अग्रभाग नोकदार होता है। इसकी फली लम्बी और नोकदार होती है। इसकी फली मटरकी फलीकी तरह दो भागोंमें विभक्त की जा सकती है। इसके बीजमें १५ से २० तक दाने रहते हैं। इन बीजोंके पक जाने पर धूप समेत यह फलिया खुल जाती हैं। उस समय किसान उन्हें काट कर खलिहानके एक कोनेमें रख देते हैं। जब धूपमें ये खूब सूख जाते हैं तब इसे झाड़ कर इससे सरसों निकाल ली जाती है।

पाश्चात्य उद्भिद्विद् इस श्रेणीके तैलकर बीजको Brassica नामसे पुकारते हैं और उन्होंने इसको दो भागोंमें विभक्त किया है। १ एशियाई सरसों और २ यूरोपीय। एशिया खण्डमें सब तरहकी पैदा होनेवाली सरसोंका एशियाई और यूरोपके सारे देशोंमें पैदा होने वाली सरसोंको यूरोपीय सरसों कहते हैं। इन दोनों महादेशजात सरसोंमें और भी सैकड़ों प्रकारके भेद हैं। इन सबोंमें कई तरहकी सरसों साधारणतः बाजारोंमें बिकती हैं। अन्यान्य तैलकर बीजोंमें सरसों भारतीय वणिकोंका एक प्रधान उपकरण है। साधारणके ज्ञान लाभके लिये नीचे कई तरहकी सरसोंका वर्णन किया जाता है—

१ सफेद सरसों—The white mustard (B. alba) यह यूरोप और पश्चिम एशियाखण्डके दक्षिणांशमें प्रभूत परिमाणमें उत्पन्न होती है। पीली हरीके रङ्गके फूलोंके सिवा इसके पौधोंके पहचाननेका अन्य कोई सहज उपाय नहीं है। इसकी फलीमें कम तादादमें दाने रहते हैं।

हिन्दीमें तो इसे सफेद सरसों या सफेद राई भी कहते हैं। गुजराती भाषामें—उजली राई, मराठी—पानधीरा मोहरे, तामिलमें—वेण्ड कोदुगु, तेलगू—तेल्ल आवलु, मलयालम्—वेल्ल-कदुक् कनाडी—बिलि सासवे संस्कृत—सिद्धार्थ, श्वेत सर्षप अरबीमें—खरदल आबयाज; फारसीमें—सिफेदसे सुर्षाफ कहते हैं।

इसके पत्ते कुछ बड़े और सफेद होते हैं। इस बीजोंसे बहुत कम तेल निकलता है उसकी अपेक्षा तेल निकालनेका खर्च अधिक पड़ जाता है, इसलिए कोई इस बीजसे तेल नहीं निकालते। इसका चूर्ण भी वैसा फायदाजनक नहीं होता, किन्तु इसमें तेजी वाली सरसों मिला कर चूर्ण करनेसे यह व्यवहारके उपयुक्त होती है। इसमें Sulphocyanate of acrinyl रहनेसे यह शीतल जलमें घोल कर शरीरमें लेपनेसे ज्वाला अनुभूत होती है।

इसके पत्तोंकी भाजी बना कर भी लोग खाते हैं। इसकी कोमल पत्तियोंकी चटनी बना कर भी यूरोप या भारतमें खाते हैं। यूरोपवाले बकरोंको पुष्ट करनेके लिये इसकी डाली उन्हें खिलाते हैं।

काला सरसों—B. Campestris; यही भारतका एक प्रधान अनाज है। इसके पत्ते रुएदार होते हैं। इस श्रेणीमें B. glauca = राई सरसों, सफेद राई या राजिका गृहीत हुई है। काली सरसोंकी अपेक्षा इस राजिकासे ही अधिक परिमाणमें तेल निकलता है। इस कारणसे यूरोपीय वणिक् इसे समधिक आदरके साथ लेते हैं। वे इसे Rape seed कहते हैं।

तेली कोल्हूमें पेर कर इसका तेल निकालते हैं। सरसोंसे सम्पूर्णरूपसे तेल बाहर नहीं निकलता इस लिये शोरगुजा आदि अन्यान्य तैलकर बीजोंको भी इसमें मिलाते हैं। प्रायः प्रति मनमें कमसे कम १६ सेर तेल और २७ सेर खली होती है।

इसका शुद्ध तेल चर्मरोगके लिये बहुत उपकारी है। उष्णकालमें इसे शरीरमें मालिश करने पर बलवृद्धि तथा मांसपेशियां दृढ़ होती हैं, शरीरमें किसी तरहकी खुजलाहट शान्त तथा चमड़ा चिकना होता है। सरसोंके शुद्ध आध छटांक तेलमें आध आना भर कपूर मिला कर प्रयोग करने पर गठियाकी आकस्मिक वेदना और वात व्याधि उपशम होती है। सुकुमार बालक बालिकाओं-के कार्दीस होनेवाले ज्वरमें श्वास प्रश्वास लेनेमें कष्ट होने पर पैरके तलवेमें और वक्षमें कपूर मिश्रित सरसों का तेल मालिश करने पर विशेष उपकार होता है। केवल शुद्ध सरसोंके तेल मालिश करने पर हैजा नामक उदरमें लाभ होता देखा गया है। शुद्ध सरसोंके तेलमें नमक

सरकारी विभाग जो भूमिको नाप कर उसका नकशा बनाता है।

सर्वेपल्ली—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके नल्लूर जिलेके गुदूर तालुकके अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० १४° १९' ३०" तथा देशा० ८०° ०' ४०" पू०के बीच पड़ता है। यहां रोहिलोंका एक प्राचीन दुर्ग है। फसलका खेत सींचनेके लिये यहां एक सुन्दर दीर्घिका है।

सर्वेश (सं० पु०) सर्वास्य ईशः। सर्वेश्वर।

सर्वेश्वर (सं० पु०) १ शिव। २ ईश्वर। ३ चक्रवर्त्ती, राजा। ४ सबका स्वामी, सबका मालिक। ५ एक प्रकारकी ओषधि।

सर्वेश्वर—१ कामसूत्रटीकाके प्रणेता भास्करनृसिंहके गुरु। २ पद्यावलीधृत एक कवि।

सर्वेश्वरत्व (सं० क्ली०) सर्वेश्वरका भाव या धर्म।

सर्वेश्वर देव—एक हिन्दू नरपति।

सर्वेष्टद (सं० त्रि०) अभिलषित वस्तुदानकारी।

सर्वैश्वर्य (सं० क्ली०) सब प्रकारका ऐश्वर्य।

सर्वोरु त्रिवेदी—विवादसारार्णव नामक एक व्यवहार शास्त्रके प्रणेता। ये मिथिलावासी व्यवहार-शास्त्रविद् थे। सर विलियम जोन्सके अनुरोधसे इन्होंने उक्त ग्रन्थ लिखा।

सर्वोल्लासतन्त्र—एक तन्त्रग्रन्थ, सर्वानन्दनाथ विरचित।

सर्वोच्छेदन (सं० क्ली०) समूल उच्छेद।

सर्वोत्तम (सं० त्रि०) सबसे श्रेष्ठ, सबमें उत्तम।

सर्वोदात्त (सं० त्रि०) सकल उदात्त स्वरविशिष्ट।

सर्वोद्युक्त (सं० त्रि०) सब विषयमें उद्योगी।

सर्वोपध (सं० त्रि०) सकल उपधास्वरयुक्त।

सर्वोपनिषद् (सं० स्त्री०) उपनिषद्भेद। इस उपनिषद्का शङ्कराचार्य प्रणीत भाष्य देखनेमें आता है।

सर्वौघ (सं० पु०) १ चतुरंग सैन्यसन्नाह, सर्वाङ्गपूर्ण सेना। २ एक प्रकारका मधु या शहद।

सर्वौषध (सं० क्ली०) सर्वौषधि।

सर्वौषधि (सं० स्त्री०) आयुर्वेदमें ओषधियोंका एक वर्ग जिसके अन्तर्गत दस जड़ी बूटियां हैं। जैसे—कुष्ठ, जटामांसी, हरिद्रा, वच, शैलेय, चन्दन, मुरा, रक्तचन्दन, कर्पूर और मुस्त।

अन्यविध—मुरा, जटामांसी, वच, कुष्ठ, शिलाजतु, रजनीद्वय (हरिद्रा और दारुहरिद्रा), चम्पक, शटी और मुस्त इन सब द्रव्योंका नाम सर्वौषधि है।

ग्रहवैगुण्य, संक्रान्ति और अशुभ आदि होनेसे सर्वौषधि जलमें स्नान करनेसे शुभ होता है। महास्नानमें भी सर्वौषधि और महौषधिसे देवताका स्नान कराना होता है। पद्मपुराणके उत्तरखण्डमें इन सर्वौषधियोंका विषय इस प्रकार लिखा है—

हरिद्रा, चन्दन, दारुहरिद्रा, मुस्ता, देवताड़क, धन्याक, जीरक, मेथी, धात्रीफल, उशीरक, विष्णुग्रन्थि, शटी, गन्धमांसी, कर्पूर, वच, नखी, मदनक, कुष्ठ, देवदारु, विडङ्ग, सरल, पद्मकाष्ठ, बालक, भद्रमुस्त, ग्रन्थिक, जटामांसी, पलाश, शैलज, शमी, अर्कपर्ण, गरुड़, दूर्वा, मुरामांसी, कुङ्कुम, अपामार्ग, मधुरिका, विकासा, खदिर, कुश, चातुर्जातकसत्त्व, अष्टवर्ग, यक्षकर्दम, नागेश्वर, कस्तूरी, त्रिफला, पद्मकेशर, कक्कोल, धातकीपुष्प, त्रिकटु, रेणुक, यव, तिल, कुन्दुरु, लक्षुक, भार्गी, गोरोचना, धक, शुण्ठीपुष्प, नतुली श्रीफल, वंशलोचन, इन्दीवर, वहुसुता, वकुल, मालतीदल, इन्द्रवीज, कोकनद, जयन्ती, गजपिप्पल और श्वेतापराजिता पुष्प, ये सब सर्वौषधिगण हैं।

सर्वौषधिनिष्यन्दा (सं० स्त्री०) लिपिविशेष।

सर्षप (सं० पु०) सरतीति सृ गतौ (सर्त्तेरपः षुक् च। उण् ३।१४१) इति अपः षुगागमश्च। १ शस्यविशेष। प्रचलित भाषामें इसे सरसों कहते हैं। संस्कृत-पर्याय—तन्तुभ, कदम्बक, सरिषप, तण्डुक, सर्षप, राजसर्षप। (राजनि०) इसके गुण—कफवातघ्न, तीक्ष्ण, उष्ण, रक्तकारक, कटु, कृमि और कुष्ठनाशक। सरसों दो तरहकी होती हैं, काली और गोरी। इसके दाने दो तरहके हैं—एक छोटे छोटे दाने, दूसरे बड़े बड़े दानेवाली राई सरसों नामसे मशहूर हैं। गोरी सरसोंको बाजारमें सफेद सरसों ही कहते हैं।

सरसोंका पौधा भारतवर्षके विभिन्न विभागमें विभिन्न आकारका होता है। इसका पौधा सन्ततः छोटे-

से छोटा एक बालिस्त और बड़े से बड़ा दो ढाइ या तीन हाथ तक देखा जाता है। नदी तट पर जो सरसा पैदा होती है वह प्रायः तीन तीन हाथ ऊंची होती है। इसका अग्रभाग नोकदार होता है। इसकी फली लम्बी और नोकदार होती है। इसकी फली मटरकी फलीकी तरह दो भागोंमें विभक्त की जा सकती है। इसके बीचमें १५ से २० तक दाने रहते हैं। इन दानोंके पक जाने पर धूप समेत यह फलिया सूख जाती है। उस समय किसान उन्हें काट कर खलिहानके एक कोनेमें रख देते हैं। जब धूपमें ये खूब सूख जाते हैं तब इसे झाड़ कर इससे सरसों निकाल ली जाती है।

पाश्चात्य उद्भिद्विद् इस श्रेणीके तेलकर बीजको Brassica नामसे पुकारते हैं और उन्होंने इसको दो भागोंमें विभक्त किया है। १ एशियाई सरसों और २ यूरोपीय। एशिया खण्डमें सब तरहकी पैदा होनेवाली सरसोंका एशियाई और यूरोपके सारे देशों में पैदा होने वाली सरसोंको यूरोपीय सरसों कहते हैं। इन दोनों सम्प्रदायजात सरसोंमें और भी सैकड़ों प्रकारके भेद हैं। इन सबोंमें कई तरहकी सरसों साधारणतः बाजारोंमें बिकती हैं। अन्यान्य तेलकर बीजोंमें सरसों भारतीय वणिकोंका एक प्रधान उपकरण है। साधारणकी ज्ञान स्मारके लिये नीचे कई तरहकी सरसोंका वर्णन किया जाता है—

१ सफेद सरसों—The white mustard (B alba) यह यूरोप और पश्चिम एशियाखण्डके दक्षिणांशमें प्रभूत परिमाणमें उत्पन्न होती है। थोड़ी हल्दीके रङ्गके फूलोंके सिवा इसके पौधोंके पहचाननेका अन्य कोई सहज उपाय नहीं है। इसकी फलीमें कम तादादमें दाने रहते हैं।

हिन्दीमें तो इसे सफेद सरसों या सफेद राई भी कहते हैं। गुजराती भाषामें—धउली राई, मराठी—पानधोरा मोहरी, तामिलमें—वेल्लै कोदुगु, तेलगू—तेल्ल अवलु; मलयालम्—वेल्ल-कदुक, कनाड़ी—बिलि सासवे, संस्कृत—सिद्धार्थ, श्वेत सर्षप, अरबीमें—खर्दल अबयाज; फारसीमें—सिपन्दने सुपीद कहते हैं।

इसके बीज कुछ बड़े और सफेद होते हैं। इन बीजोंसे बहुत कम तेल निकलता है, तेलकी अपेक्षा तेल निकालनेका खर्च अधिक पड़ जाता है, इससे कोई इस बीजसे तेल नहीं निकालते। इसका चूर्ण भी वैसा फायदाकर नहीं होता, किन्तु इसमें तेजी वाली सरसों मिला कर चूर्ण करनेसे यह व्यवहारके उपयुक्त होती है। इसमें Sulphocyanate of acrinyl रहनेसे यह शीतल जलमें घोल कर शरीरमें लगानेसे ज्वाला अनुभूत होती है।

इसके पत्तोंकी भाजी बना कर भी लोग खाते हैं। इसका कोमल पत्तियोंकी चटनी बना कर भी यूरोप या भारतमें खाते हैं। यूरोपवाले बकरीको पुष्ट करनेके लिये इसका खली उन्हें खिलाते हैं।

काला सरसों—B Campestris। यही भारतका एक प्रधान अनाज है। इसके पत्ते दन्दार होते हैं। इस श्रेणीमें B glauca = राइ सरसों सफेद राइ या राजिका गृहीत हुई हैं। काली सरसोंकी अपेक्षा इस राजिकासे ही अधिक परिमाणमें तेल निकलता है। इस कारणसे यूरोपीय वणिक् इसे समधिक समादरके साथ लेते हैं। वे इसे Rape seed कहते हैं।

तेली कोल्हूमें पेर कर इसका तेल निकालते हैं। सरसोंसे सम्पूर्णरूपसे तेल बाहर नहीं निकलता इस लिये गोरगुजा आदि अन्यान्य तैलकर बीजोंको भी इसमें मिलाते हैं। प्रायः प्रति मनमें कमसे कम १३ सेर तेल और २७ सेर खली होती है।

इसका शुद्ध तेल चर्म रोगके लिये बहुत उपकारी है। उत्तमरूपसे इस शरीरमें मालिश करने पर बलवृद्धि तथा मांसपेशियाँ दृढ़ होती हैं, शरीरमें किसी तरहकी खुजलाहट शान्त तथा चमड़ा शीतल होता है। सरसोंके शुद्ध आध छटाँक तेलमें आध आना भर कपूर मिला कर प्रयोग करने पर गरदनकी आकस्मिक वेदना और वात व्याधि उपशम होती है। सुकुमार बालक बालिकाओंको सर्दीसे होनेवाले ज्वरमें श्वास प्रश्वास लेनेमें कष्ट होने पर पैरके तलवेमें और वक्षमें कपूर मिश्रित सरसोंका तेल मालिश करने पर विशेष उपकार होता है। केवल शुद्ध सरसोंका तेल मालिश करने पर डेंगु नामक ज्वरमें लाभ होता देखा गया है। शुद्ध सरसोंके तेलमें नमक

मिला गर्म कर बालक बालिकाओंके सर्दीजनित ज्वरमें उनके पैरके तलवे, वक्ष, कण्ठ और रगोंमें मालिश करने पर दो दिनमें ही सर्दीकी शान्ति होती है।

इसी श्रेणीकी शाहजादा-राई दूसरी एक तरहकी सरसों है। यह राई या राई सरसोंके नामसे भी प्रसिद्ध है। भारतमें इसकी खेती बहुतायतसे होती है। युक्त-प्रदेश और अयोध्याके कृषिक्षेत्रमें बीच बीच या बगलमें किनारे किनारे बोई जाती है। पश्चिम देशोंमें मिश्र और पूर्वके चीन तक यही सरसों थोड़ी बहुत उत्पन्न होते दिखी जाती है। रूस साम्राज्यके दक्षिण, कास्पीय-सागरके उत्तर पूर्वस्थ ष्टेपी प्रान्तर, सरेप्ता, सारातु और मध्य अफरिकामें यह प्रभूत परिमाणमें उत्पन्न होती है। सफेद या काली सरसोंकी तरह इसका रङ्ग भूरा (brown) है। तेलका गुण प्रायः ही समान है। इसका पत्ता मनुष्य और गाय खाती है। काली-राई या तीरा B. nigra मकरा राई नामसे भी कहीं कहीं प्रसिद्ध है। भारत और तिब्बतके पार्वतीय प्रदेशमें तथा मध्य और दक्षिण यूरोपके प्रायः सभी जगह इसी जातिकी राई सरसों उत्पन्न होती है। थिओफ्रासटस, डाइस्कोरिडिस, प्लिनि आदि पाश्चात्य पण्डितोंने इस सरसोंके व्यवहारको उल्लेख किया है। यूरोपमें खाद्य द्रव्यरूपसे ईस्वीसन्‌की १३वीं शताब्दीमें इसकी खेती की गई है। सन् १६६० ई०में इसका तेल पहले परीक्षित हुआ था।

इसके बीजसे सैकड़ा प्रायः २३ भाग तेल होता है। इस तेलमें glycerides, stearic, oleic, erucic और brassic एसिड मिलते हैं। जल द्वारा तेल संशोधन कर लिया जाता है। यह सूखता नहीं, 0° फारेन हिटमें जम जाता है। शुद्ध सरसोंके तेलमें विशेष कोई गन्ध नहीं। फिर जो हम नाकसे अनुभव करते हैं, वह केवल अन्य तैलकर बीजके मिश्रणके फलसे ही होता है। इसमें Virosin रहनेसे शरीरमें 'फोस्का' उत्पादनका कार्य करता है और सरसोंके चूर्णके प्रलेपसे वेदनादि उपशम होती है।

पहले ही कह आये हैं, कि सरसों एक भारतीय प्रधान वाणिज्य पण्यद्रव्य है। बङ्गालसे प्रतिवर्ष १७ लाख, बम्बईसे प्रायः १३ लाख, सिन्धुप्रदेशसे ६ लाख और मद्राससे १ लाख मन सरसों इङ्गलैण्ड, अष्ट्रिया, बेलजियम, डेनमार्क, फ्रान्स, जर्मनी, इटली, मिश्र, अदन आदि पाश्चात्य देशोंमें रफ्तनी होती है।

तेलका गुण—तिक्त, कटु, वातश्लेष्मविकारनाशक, पित्तवर्द्धक, अस्त्रदोषप्रद, कृमि, कुष्ठनाशक और तिलतेल-की तरह आँखके लिये हितकारक है। इसके शाकका गुण—अत्युष्ण, रक्तपित्तप्रकोपन, विदाही, कटुक, स्वादु, शुक्रनाशक और रुचिकर। (राजनि०) राजिका शब्द देखो। २ सरसों भरका मान या तौल। ३ एक प्रकारका विष।

सर्षपक (सं० पु०) एक प्रकारका सांप।

सर्षपकन्द (सं० पु०) एक प्रकारका पौधा जिसकी जड़ विष होती है।

सर्षपी (सं० स्त्री०) एक विषैला कीड़ा।

सर्षपतैल (सं० क्ली०) सर्षपजात स्नेह, सरसोंका तेल।

सर्षपनाल (सं० क्ली०) सर्षपदण्ड, सरसोंका साग।

सर्षपा (सं० स्त्री०) श्वेतसर्षप, सफेद सरसों।

सर्षपारुण (सं० पु०) पारस्कर गृह्यसूत्रके अनुसार असुरोंका एक नाम। (पारस्क० गृ० १।१६)

सर्षपिक (सं० पु०) सुश्रुतके अनुसार एक प्रकारका बहुत जहरीला कीड़ा जिसके काटनेसे आदमी मर जाता है।

सर्षपिका (सं० स्त्री०) १ शुक्ररोगभेद, एक प्रकारका लिङ्गरोग। इस रोगसे लिङ्ग पर सरसोंके समान छोटे छोटे दाने निकल आते हैं। यह रोग प्रायः दुष्ट मैथुनसे होता है। शुक्ररोग देखो। २ मसूरिका रोगका एक भेद। मसूरिका देखो। ३ सर्षपिक नामका जहरीला कीड़ा।

सर्षपी (सं० स्त्री०) १ खञ्जनिका, ममोला। २ क्षारविष। ३ श्वेत सर्षप, सफेद सरसों। ४ पीड़काविशेष, एक प्रकारके छोटे दाने जो शरीर पर निकल आते हैं।

सर्षांका (सं० स्त्री०) छन्दोभेद, विराट्छन्द।

सर्सावा—युक्तप्रदेशके शहारनपुर जिलान्तर्गत एक प्राचीन नगर। यह शहारनपुरसे १० मील पश्चिममें अम्बाला जानेके रास्ते पर पड़ता है। पञ्जाब प्रदेशमें यहांका थोड़ा बहुत वाणिज्य चलता है।

जेनरल कनिंहम इस स्थानको राजा चाँदकी राज-धानी सर्वा या सरसाव्हा अनुमान कर गये हैं। गज्नी-

पति महमूदने १०१६ ई०में यह नगर लूटा था। पलायक राजा और उनके अनुचरोंने पासके पर्वतके जंगलोंमें परा जित कर ३६ हाथी उनके हाथ लगे थी।

सर्सी (हि० स्त्री०) सरसी देखो।

सर्हद (फा० स्त्री०) सरहद देखो।

सलखा नोन (हि० पु०) काच लवण, कचिया नोन।

सल (सं० क्ली०) १ जल पानी। २ सरल वृक्ष। ३ एक प्रकारका कीड़ा जो प्राय घासमें रहता है। इसे बीरभा कहते हैं।

सलई (हि० स्त्री०) १ शल्लकी वृक्ष चीड़। २ चीड़का गोंद, कुंदुर।

सलक (अ० पु०) एक देशाक चुकन्दर।

सलक्षण (सं० त्रि०) लक्षणयुक्त।

सलक्ष्मन् (सं० त्रि०) चिह्नयुक्त।

सलगनान (हि० पु०) कच्छप, कछुआ।

सलगम (फा० पु०) शलजम देखो।

सलज (हि० पु०) पहाड़ी बरफका पानी।

सलजम (फा० पु०) शलजम देखो।

सलज्ज (सं० त्रि०) लज्जाया सङ्कोचशीमान। लज्जाविशिष्ट, जिसे लज्जा हो शर्म और हयावाला।

सलटुक (अ० स्त्री०) चौलाईका साग।

सलतनत (अ० स्त्री०) १ राज्य बादशाहत। २ साम्राज्य। ३ प्रबन्ध, इन्तजाम। ४ सुभीता, आराम।

सलना (हि० क्रि०) १ साला जाना, छिदना, भिदना। २ किसी छेदमें किसी चीजका डाला या पहनाया जाना। (पु०) ३ लकड़ी छेदनेका बरमा।

सलपा (सं० स्त्री०) गोती।

सलपत्र (सं० स्त्री०) गुडत्वक् दाल चीनी।

सलब (अ० त्रि०) नष्ट, बरबाद।

सलमह (फा० पु०) बथुआ नामका साग।

सलमा (अ० पु०) सोने या चांदीका बना हुआ चमकदार गोल लपेटा हुआ तार जो टोपी साड़ी आदिमें बेल बूटे बनानेके काममें आता है। इसे बादला भी कहते हैं।

सलवुक (सं० त्रि०) सरणशील, गमनशील।

सलवट (हि० स्त्री०) सिलवट देखो।

सलवण (सं० त्रि०) लवणयुक्त, नमकीन।

सलहन (हि० पु०) सारिवन।

सलवात (अ० स्त्री०) १ बरकत। २ कुवाच्य, गाली। ३ रहमत मेहरबानी।

सलसलबोल (अ० पु०) बहुमूत्र रोग या मधु प्रमेह नामक रोग।

सलसलाना (हि० क्रि०) १ धीरे धीरे खुजली होना, सरसराहट होना। २ गुदगुदी होना। ३ कीड़ोंका पेटके बल चलना, सरसराना, रेंगना। ४ खुजलाना। ५ गुदगुदाना। ६ शीघ्रतामें कोई कार्य करना।

सलसलाहट (हि० स्त्री०) १ सलसल शब्द। २ खुजली, खारिश। ३ गुदगुदी, कुलकुली।

सलसी (हि० स्त्री०) माजूफलकी जातिका एक प्रकारका बड़ा वृक्ष जो बूक भी कहलाता है। बूक देखो।

सलज (हि० स्त्री०) सालेकी स्त्री सरहज।

सलाइ (हि० स्त्री०) १ धातुकी बनी हुई कोई पतली छोटी छड़ी। २ दिया-सलाइ। ३ सालनेकी क्रिया या भाव। ४ सालनेकी मजदूरी। ५ शल्लकी, सलाई। ६ चाड़की लकड़ी।

सलाख (फा० स्त्री०) १ धातुकी बना हुई छड़, शलाका सलाई। २ लकीर, लत।

सलाजीत (हि० स्त्री०) शिलाजीत देखो।

सलाद (हि० पु०) १ गाजर, मूली, प्याज, सलाद आदिके पत्तोंका अंगरेजी ढंगसे सिरके आदिमें डाला हुआ अचार। २ एक विशिष्ट जातिके कंदके पत्ते जो प्राय कच्चे खाये जाते हैं और बहुत पाचक होते हैं। इसके कई भेद होते हैं।

सलाबत् खां—एक मुसलमान उमराव। ये मुगल सम्राट् शाहजहां बादशाहके अधीन मीर बख्शीका काम करते थे। किसी कारण वश नागौर गजसिंहके पुत्र अमरसिंह राठौर नामक एक राजपूत सरदारके साथ इनका विवाद खड़ा हुआ। राजपूत वीरने १६४४ ई०में एक दिन शामको आगरा दुर्गमें सम्राट्के सामने ही मीरबख्शीके प्राण ले लिये। सम्राट्के अनुचरोंने उसी समय उनका पीछा कर दुर्गद्वारके पास इन्हें मार डाला। तभीसे वह द्वार 'अमरसिंह दरवाजा' नामसे प्रसिद्ध हुआ है।

सलाबत्जङ्ग—दाक्षिणात्यके एक मुसलमान अधिपति,

ये निजाम उल-मुल्क आसफ-जाके तृतीय पुत्र थे। १७५१ ई०में नवाब मुजफ्फरजङ्ग गुप्त हत्याकारीके द्वारा मारे गये। इस समय फरासिसियोंने एकमत हो कर सलाबत् जङ्गको ही दाक्षिणात्यका सिंहासन दिया। इस प्रत्युपकारमें नवाब सलाबत् जङ्गने फरासी सेनापति बुसीको अपने दरबारके उमरावमें गिना तथा फरासी जातिके प्रति कृतज्ञता दिखानेके लिये उन्होंने उत्तर-सरकार प्रदेश बुसीको दे दिया था।

इस समय दाक्षिणात्यमें अपना अपना प्रभाव फैलानेके लिये अङ्गरेज और फरासीमें घोर प्रतिद्वन्द्विता चल रही थी। बुसीके आने पर पहले फरासीदल प्रबल हो उठा और कुछ समयके लिये समस्त दाक्षिणात्य राज्यका राजकीय शासनकार्य बुसी द्वारा ही परिचालित होने लगा। १७५८ ई०में नवाबके भाई निजाम अलीने षड्यन्त्र कर हैदरजङ्गको मार डाला। बुसीने जब देखा कि इस समय राज्यमें एक भीषण अन्तर्विप्लवकी सूचना हो रही है और आर्कट प्रदेशमें महम्मद अली खांके साथ मिल कर अङ्गरेज लोग अपनी ताकत बढ़ा रहे हैं, तब वे अपने स्वजाति वर्गकी रक्षा करनेके अभिप्रायसे राजकार्यसे अपसृत हो फरासी अधिकारमें लौटे। निजामअलीने इस समय सिंहासनको निष्कण्टक जान १७६२ ई०में सलाबत् जङ्गको राज्यच्युत और कारारुद्ध किया। इस प्रकार बन्दी अवस्थामें १७६३ ई०के सितम्बर मासमें सलाबतकी मृत्यु हुई।

सलाम (अ० पु०) प्रणाम करनेकी क्रिया, बंदगी, आदाब।

सलाम कराई (हिं० स्त्री०) १ सलाम करनेकी क्रिया या भाव। २ वह धन जो कन्या पक्षवाले मिलनीके समय वर-पक्षके लोगोंको देते हैं।

सलामत (अ० वि०) १ सब प्रकारकी आपत्तियोंसे बचा हुआ, रक्षित। २ जीवित और स्वस्थ, तंदुरुस्त और जिंदा। ३ कायम। (क्रि० वि०) ४ कुशलपूर्वक, खैरियतसे। (स्त्री०) ५ सालिम या पूरा होनेका भाव, अखण्डित और सम्पूर्ण होनेका भाव।

सलामत् अली—इलाहाबाद राजधानीका एक मुनसिफ। सिपाही-विद्रोहके समय इसने अङ्गरेजके विरुद्ध अस्त्र धारण किया था। १८५७ ई०को उसी नगरमें पकड़े जा कर यह राजाके हुक्मसे प्राणदण्डसे दण्डित हुआ।

सलामत अली खां (हकीम)—एक मुसलमान कवि। वाराणसीधाममें इनका घर था। १९वीं सदीके शुरूमें इन्होंने काशीधाममें रह कर सङ्गीतविषयमें एक ग्रन्थ लिखा।

सलामती (अ० स्त्री०) १ स्वस्थता, तंदुरुस्ती। २ कुशल, क्षेम। ३ जीवन, जिंदगी। ४ एक प्रकारका मोटा कपड़ा।

सलामी (अ० स्त्री०) १ प्रणाम करनेकी क्रिया, सलाम करना। २ शास्त्रोंसे प्रणाम करनेकी क्रिया, सैनिकोंको प्रणाम करनेकी प्रणाली, सिपाहियाना सलाम। ३ तोपों या बन्दूकोंकी बाढ़ जो किसी बड़े अधिकारी या माननीय व्यक्तिके आने पर दागी जाती है।

सलाम्बा—पञ्जाब प्रदेशके गुरगांव जिलान्तर्गत नूह तहसीलका एक बड़ा गाव। यह सोनारसे उत्तर मेवात शैलमालाके पादमूलमें विस्तीर्ण 'नूह-महल' नामक खारी मिट्टीवाले भूमिखण्डके मध्यस्थलमें बसा हुआ है। पहले यहां जो लवण बनता था, उसे लोग सलाम्बा लवण कहते थे। उस लवणकूपका जल सुखा कर और मिट्टी धो कर नमक तैयार किया जाता था। पहले जो नमक बनता था, वह उतना परिष्कार नहीं होता था, उसमें मैगनेसिया, क्लोराइड और अन्यान्य पदार्थ मिले रहते थे। अभी वहां नमक बिलकुल नहीं बनता, क्योंकि सम्बर-झीलसे उत्कृष्ट नमककी आमदनी होनेसे यहांके लोगोंने इस निकृष्ट नमकका कारबार बिलकुल बन्द कर दिया।

सलाया—बम्बई प्रदेशके काठियावाड़ विभागके नवानगर राज्यका एक बन्दर। यह स्थान खम्भालिया नगरसे ६ मील उत्तरमें अवस्थित है। उक्त नगरका जो कुछ वाणिज्य है, वही इस बन्दर द्वारा परिचालित होता है। भारतके पश्चिम उपकूलमें बम्बई और करांचीके बाद ही इस बंदरका प्राधान्य है। इस बन्दरमें घुसनेके दो पथ हैं। एक पथ कुरुम्बर द्वीप और भारतोपकूल तथा दूसरा कुरुम्बर और घानिवेत नामक स्थानके मध्यवर्ती है। बन्दरमें दाखिले समय पोतादि आनेकी सुविधा-

के लिये कुदम्मदशाहने उत्तर पश्चिम ३० फुट ऊंचा एक लाइट-हाउस है। मुगल शासनाधिकारमें भी इस नगरको यथेष्ट वाणिज्यसमृद्धि थी। मीराते अहमदी नामक ग्रन्थमें लिखा है, कि यह बन्दर इस्लाम नगरके अधीन था। यहांसे आज भी काशी घी और रूईको बम्बई कराची और गुजरात आदि स्थानोंमें रफ्तनी होती है।

सलाह (अ० स्त्री०) सम्मति, परामर्श, राय मशवरा।

सलाहकार (फा० पु०) वह जो परामर्श देता हो राय देनेवाला।

सलिङ्ग (स० त्रि०) लिङ्गयुक्त, चिह्नविशिष्ट।

सलिल (स० क्ली०) सलति गच्छतीति सल गतौ (सलिकल्यनीति। उण् १।५५) इति इलच्। जल पानी। जल शब्द देखो।

सलिलकुन्तल (स० पु०) सलिलस्य कुन्तल इव। शैवाल, सिवार।

सलिलक्रिया (स० स्त्री०) सलिलकर्म, उदकक्रिया, तर्पण जलाञ्जलि।

सलिलग्रह (स० पु०) घोड़ेका एक ग्रह। (जयद०)

सलिलचर (स० त्रि०) सलिलचारी, जलचर, जलमें विचरण करनेवाला।

सलिलज (स० क्ली०) सलिले जायते इति जन ड। १ पद्म कमल। २ जलजातमात्र, वह जो जलसे उत्पन्न हो।

सलिलजन्मन् (स० क्ली०) सलिले जन्म यस्य। १ पद्म, कमल। २ सलिलजात वह जो जलसे उत्पन्न हो।

सलिलद (स० त्रि०) सलिलं ददाति दा क। १ सलिलदायी जल देनेवाला। (पु०) २ मेघ, बादल।

सलिलधर (स० पु०) मुस्तक, मोथा।

सलिलनिधि (स० पु०) १ जलनिधि समुद्र। २ छन्दोभेद। इस छन्दके प्रत्येक चरणमें २१ अक्षर होते हैं। इस छन्दका नाम कहीं कहीं सरसी और सिद्धक बतलाया है। छन्दोमञ्जरीमें यह छन्द सरसी कहलाता है। सरसी देखो।

सलिलपति (स० पु०) १ जलके स्वामी, वरुण। २ समुद्र सागर।

सलिलपवनाशिन् (स० त्रि०) जल और वायुभक्षी।

सलिलप्रिय (स० पु०) शूकर, सूअर।

सलिलमय (स० त्रि०) सलिल स्वरूपे मयट्। जलमय जलस्वरूप।

सलिलमुच् (स० पु०) सलिलं मुञ्चति मुच क्विप्। सलिल मोचनकारी, मेघ, बादल।

सलिलयोनि (स० त्रि०) सलिलं योनिरुत्पत्तिस्थानमस्य। १ ब्रह्मा। सलिलसे इनकी उत्पत्ति हुई है। २ वह वस्तु जो जलसे उत्पन्न होती है।

सलिलराज (स० पु० १ जलका स्वामी, वरुण। २ समुद्र, सागर।

सलिलवत् (स० त्रि०) सलिलविशिष्ट जलविशिष्ट, जलयुक्त।

सलिलस्थलचर (स० त्रि०) जो जल और स्थल दोनोंमें विचरण करता हो। जैसे,—हंस, बत आदि।

सलिलाकर (स० पु०) समुद्र सागर।

सलिलाञ्जलि (स० स्त्री०) मृतकके उद्देश्यसे दी जानेवाली जलाञ्जलि।

सलिलाधिप (स० पु०) जलके अधिष्ठाता देवता वरुण।

सलिलार्णव (स० पु०) समुद्र, सागर। (रामायण ५।३५।१)

सलिलालय (स० पु०) समुद्र सागर। (रामा० ५।८९।८८)

सलिलाशन (स० त्रि० स जलमात्र भक्षण कर के रहनेवाला। (भाग० ६।१४।१०) हमारे देशकी रमणियां किसी किसी व्रतमें सामान्य मात्र जलपान कर इष्ट साधन करती हैं।

सलिलाशय (स० पु०) जलाशय पुष्करिणी, तालाब। जलाशय देखो।

सलिलाहार (स० त्रि०) १ सलिलभोजी, केवल जल पी कर रहनेवाला। (पु०) २ केवल जल पी कर रहनेकी क्रिया।

सलिलेचर (स० पु० जलमें रहनेवाला जीव जलचर।

सलिलेन्द्र (स० पु०) जलके अधिष्ठाता देवता वरुण।

सलिलेन्धन (स० पु०) सलिलं इन्धनं यस्य। वाड़वानल।

सलिलेश (स० पु०) सलिलस्य ईशः। वरुण।

सलिलोकस् (स० त्रि०) जलचारी, जलमें रहनेवाला।

सलिलोद्भव (स० पु०) १ पद्म कमल। २ जलमें उत्पन्न

होनेवाली कोई चीज। जैसे,—शंख, घोंघा आदि।
सलिलोपजीविन् (सं० त्रि०) जलोपजीवी, केवल जल पर निर्भर रहनेवाला।
सलिलौकस (सं० त्रि०) १ सलिलवासी, जलमें रहनेवाला। (पु०) २ जलौका, जोंक।
सलिलौदन (सं० पु०) मिश्र तण्डुल, पकाया हुआ अन्न।
सलीका (अ० पु०) १ काम करनेका ठीक ठीक या अच्छा ढंग, शऊर, तमीज। २ सभ्यता, तहजीव। ३ हुनर, लियाकत। ४ चालचलन, वरताव।
सलीकामंद (फा० वि०) १ जिसे सलीका हो, शऊरदार, तमीजदार। २ सभ्य। ३ हुनरमंद।
सलीखा (हि० पु०) त्वक् पत्र, तज।
सलोता (हिं० पु०) एक प्रकारका बहुत मोटा कपड़ा जो प्रायः मारकीन या गजीकी तरहका होता है।
सलीपर (अं० पु०) १ एक प्रकारका हलका जूता जिसके पहनने पर पंजा ढंका रहता है और एड़ी खुली रहती है, आराम पाई, सलपट जूती। २ वह लकड़ीका तख्ता जो रेलकी पटरियोंके नीचे बिछाया रहता है। स्लीपर देखो। ३ ढाल जो पहिये पर चढ़ाई जाती है।
सलीम—एक मुसलमान कवि। इनका असल नाम महम्मद कुली था। मुगलसम्राट् शाहजहां वादशाहके शासनकालमें वे अपनी जन्मभूमि फारसका परित्याग कर भारतवर्ष आये और वजीर प्रवर इसलाम खाँ कर्त्तृक दरबारमें नियुक्त हुए। फारसमें रहते समय उन्होंने लहिजान प्रदेशका प्राकृतिक सौन्दर्य वर्णन कर एक दीवान और एक मसनवि प्रणयन की। भारतवर्षमें आ कर उन्होंने उसका कुछ परिवर्त्तन कर 'काश्मीरवर्णन' नाम रखा। १६४७ ई०में उनकी मृत्यु हुई।
सलीमचिश्ती (शेख)—फतेपुर सिक्रीवासी एक मुसलमान-साधु। इन्हें लोग शेख-उल् इसलाम् कहते थे। मुगल-बादशाह अकबर इन फकीरका बड़ा सम्मान करते थे। ये शेख फरीद सखरगञ्जके वंशधर बहाउद्दीनके पुत्र थे। १४७८ ई०को दिल्ली-राजधानीमें इनका जन्म हुआ। बड़े होने पर इन्होंने उपयुक्त शिक्षा पा कर ख्वाजा इब्राहिम चिश्तीका शिष्यत्व ग्रहण किया। पीछे ये सिक्रीके पास ही एक बड़े पहाड़ पर निर्जन स्थानमें धर्मशास्त्रानुशीलनमें दिन बिताने लगे। प्रवाद है, कि इन्हींके अजनप्रभावसे अकबरको औलाद हुई थी तथा इन्हींके अनुसार अकबरने अपने पुत्र जहांगीरका नाम सलीमशाह रखा।

सम्राट् इन फकीरकी इतनी भक्ति श्रद्धा करते थे, कि इनके रहनेके लिये प्रायः ५ लाख रुपये खर्च कर पूर्वोक्त शैल पर १५७१ ई०में एक मसजिद बनवा दी थी। वह मसजिद आज भी फतेपुर-सिक्रीकी मसजिद नामसे मशहूर है। १५७२ ई०में फकीरका देहान्त हुआ और खूब धूमधामसे उसी पहाड़की चोटी पर इन्हें दफनाया गया। भारतवर्षके इतिहासमें जितने श्रेष्ठ मुसलमान साधुओंका उल्लेख पाया जाता है, उनमें यह एक प्रधान थे। ये अपने जीवित-कालमें चौबीस बार मक्का गये थे। प्रवाद है, कि ये सिंघाड़ेकी रोटी छोड़ कर और कुछ नहीं खाते थे।

इनके पुत्र कुतबुद्दीन जब बङ्गालके शेर अफगान द्वारा मारे गये, तब अन्यतम पुत्र बदरुद्दीन पिताकी मृत्युके बाद गद्दी पर बैठे। इन्हीं बदरुद्दीनके पुत्र इसलाम् खाँको सम्राट् जहांगीरने अमीरकी पदवी दे कर १६०८ ई०में बङ्गालका शासनकर्त्ता बना कर भेजा।
सलीमपुर—अयोध्या प्रदेशके लखनऊ जिलान्तर्गत एक नगर। यह लखनऊ नगरसे २० मील दूर सुलतानपुर जानेके रास्ते पर गोमती नदीके किनारे एक टीले पर बसा हुआ है। यहां नदीके ऊपर एक पुल है।
सलीमपुर—युक्तप्रदेशके मुरादाबाद जिलान्तर्गत अमरोहा तहसीलका एक बड़ा ग्राम। यह अक्षा० २६°५'४५" ३० तथा देशा० ७८° ४१' पू०के मध्य विस्तृत है। एक समय यह स्थान समृद्धिशाली नगरमें परिणत था। प्राचीन ध्वस्त मन्दिर और समाधिमन्दिरादि उसके प्रमाण हैं।
सलीमपुर-मझौली—युक्तप्रदेशके गोरखपुर जिलान्तर्गत देवरिया तहसीलके दो ग्राम। यह अक्षा० २६° १७' ३० तथा देशा० ८३° ५७' पू०के मध्य गण्डक नदीके किनारे अवस्थित है। जनसंख्या ६ हजारसे ऊपर है। इसके पूर्वमें मझौलीके राजा रहते हैं। लोग इसे मझौली सलीमपुर भी कहते हैं। दोनों ग्राम वाणिज्यप्रधान और सुसमृद्ध हैं।

सलाम शाह—मुगल सम्राट् अकबर शाहका एक पुत्र। जहांगीर देखो।

सलामशाह शूर—दिल्लीके शूरवंशीय एक मुसलमान राजा। ये सम्राट शेरशाहके छोटे लड़के थे। इनका असल नाम जलाल खाँ था। पिताके मृत्युकालमें इनके बड़े भाई आदिल खाँ बाहर गये हुए थे, इस कारण ये हो १५४५ ई०में कालिंजर दुर्गमें भाई बिना सिंहासन पर बैठे। सिंहासन पर बैठते समय उन्होंने इसलाम शाह नाम ग्रहण किया था। भगन्दर रोगमें आक्रान्त हो १५५४ ई०में ग्वालियर नगरमें इनका देहान्त हुआ। उनकी लाश सहसराम लाई गई और पिताके मकबरेके बगलमें दफनाई गई।

जिस वर्ष सलीम शाहकी मृत्यु हुई, उसी वर्ष गुजरात के राजा महमूद शाह और अहमदनगरके अधिपति बुरहान निजाम शाहकी भी मृत्यु हुई। इन सर्वजनविदित नाना राजाओंकी मृत्युघटनाको ले कर ऐतिहासिक फिरिस्ता के पिता मौलाना अलाने 'शाह नामा' नामका एक कविता रची है।

सलामसिंह—जैसलमेरके एक प्रधान मन्त्रीका नाम। इस के पिताका नाम स्वरूपसिंह था। स्वरूपसिंह अपनी कूरतासे जब मारा गया तब उसका पुत्र सलीम सिंह ११ बरसका था। पुनः वयस्क होने पर यह प्रधान मन्त्रीके पद पर नियुक्त हुआ। प्रधान मन्त्रीका पद मिलने पर यह पितृहत्याका बदला लेनेके लिये व्यग्र हुआ। एक बार यह जोधपुर भेजा गया था, उस समय निरामिष सामन्तोंने इसे घेर कर मारना निश्चित किया। परन्तु इसके गिड़गिड़ा कर प्राणभिक्षा मांगने पर सामन्तोंने इसे छोड़ दिया। अब इसने महारमूर्त्ति धारण की। पहले तो बड़े बड़े सामन्तोंको इसने विष द्वारा मरवा डाला। फिर राजवंश पर भी इसने हाथ साफ किया था। रावल मूलराज और गजसिंह दोनोंके समयमें यह था। अन्तमें यह मारा गया।

सलीमा बानो बेगम—शाहजादा लड़की सुलेमान-शिकोहकी लड़की। बादशाह औरङ्गजेबके चाचे लड़के शाहजादा मुहम्मद अकबरके साथ इसका विवाह हुआ था। इसके गर्भसे उत्पन्न लड़का निकासियर आगरेमें सम्राट् पद पर अभिषिक्त हुआ था, किन्तु दुर्भाग्यवशतः यह शत्रु शरीके द्वारा राज्यच्युत और बन्दी हुआ।

सलीमा सुलताना बेगम—मुगल सम्राट् बाबरशाहकी पोती। यह बाबरकी कन्या गुलरुख बेगमकी बेटी थी। बाबरके जमाई मिर्जा नूरुद्दीन महम्मदने अपनी लड़की सलीमाको १५५८ ई०में खानखानान बैराम खाँके हाथ सौंपा था। मुगल सम्राट् अकबर शाहके हुकुमसे आल न्हसमें यह विवाह सुसम्पन्न हुआ। बैराम खाँकी मृत्युके बाद अकबर शाहने उसे अपनी स्त्री बनाया। इस स्त्रीके गर्भसे सम्राट्के शाहजादी खानुम नामकी कन्या और सुलतान मुराद नामक एक शाहजादा उत्पन्न हुआ। सलीमा पारसी भाषामें सुपण्डिता थी और कविमादि भी लिख सकती थी। सम्राट् जहांगीरके राज्यकालमें १६१२ ई०को इसका देहान्त हुआ।

सलीमी (अ० स्त्री०) एक प्रकारका कपड़ा।

सलील (सं० त्रि०) लीलाविशिष्ट, लीलायुक्त।

सलीलगजगामिन (सं० पु०) बुद्ध। (ललितवि०)

सलीस (अ० वि०) १ सहज, सुगम, आसान। २ जिसका तल बराबर हो, समतल, हमवार। ३ मुहावरेदार और चलती हुई।

सलूक (अ० पु०) १ रीति, तरीका, ढंग। २ बरताव, आचरण। ३ भलाई, नेकी। ४ मिलाप, मेल।

सलूण (सं० पु०) १ चाड़्गदेवके हिसाबके अनुसार एक प्रकारके बहुत छोटे कीड़े। २ जूं, ढील।

सलूना (हिं० पु०) १ पकी हुई तरकारी या भाजी। २ सलोना देखो।

सलूनी (हिं० स्त्री०) चुक्रिका, चूका शाक।

सलेक (सं० पु०) तैत्तिरीय संहिताके अनुसार एक आदित्यका नाम। (तैत्तिरीयसं० ११५११३)

सलेम—मन्द्राज प्रदेशका एक जिला। सालेम देखो।

सलोक (सं० पु०) १ नगर, शहर। २ वह जो नगरमें रहता हो, नागरिक।

सलोकता (सं० स्त्री०) एक स्थानमें वास।

सलोमय (सं० त्रि०) लोम सम्बन्धी।

सलोतर (हिं० पु०) पशुओं विशेषतः घोड़ों की चिकित्सा-का विज्ञान, शालिहोत्र।

सलोतरी (हिं० पु०) पशुओं विशेषतः घोड़ों की चिकित्सा करनेवाला, शालिहोत्री।

सलोन—१ अयोध्या-प्रदेशके रायबरेली जिलान्तर्गत एक तहसील। यह अक्षा० २५° ४६´ से २६° १६´ ३०" तथा देशा० ८१° १२´ से ८१° ३१´ पू० गङ्गाके उत्तरमें अवस्थित है। भूपरिमाण ४४० वर्गमील और जनसंख्या तीन लाखके करीब है। इसमें दो शहर और ४४४ ग्राम लगते हैं।

२ उक्त उपविभागके मध्यवर्त्ती एक परगना। पहले यह राय बरेली जिलेके अन्तर्भुक्त था। अभी विचार-कार्यकी सुविधाके लिये उसे प्रतापगढ़ जिलेमें मिला लिया गया है। इसके दक्षिण गङ्गा नदी और मध्यदेश हो कर सई नदी बहती है। यहांके विस्तृत जङ्गलमें बहुतसे भग्न दुर्ग दिखाई देते हैं। वहांके लोगोंका कहना है, कि हिन्दू राजाओंके अमलमें उन सब स्थानोंमें दुर्वृत्त दस्युदलका वास था। नाहन तालुकदारने भी एक समय इस जंगलमें दुर्गनिर्माण कर अपना प्रभाव अक्षुण्ण रखा था। कानपुरिया राजपूत वंशधर ही यहांके जमींदार हैं।

३ रायबरेली जिलेका एक नगर और सलोन तहसील-का विचार सदर। यह अक्षा० २६° २´ ३०" तथा देशा० ८१° २८´ पू०के मध्य विस्तृत है। जनसंख्या पांच हजारसे ऊपर है। एक समय यह नगर खूब समृद्धि-शाली था, अभी वैसी समृद्धि नहीं है। प्राचीन भर जातिके अभ्युदयकालमें यह स्थान दुर्गादि द्वारा सुरक्षित हुआ था। मुसलमानी अमलमें भी इस नगरकी यथेष्ट उन्नति थी। उस समय मुसलमानोंके प्रभावसे यहां कुछ मसजिद बनवाई गई थी। आज भी १० मसजिद उसके निदर्शनस्वरूप दण्डायमान हैं। इस नगरके ५०७३ देशमें सम्राट् औरङ्गजेबप्रदत्त एक निष्कर जागीर है। उस जागीरके वर्त्तमान स्वत्वाधिकारी शाह महम्मद मेहन्दी आता है। वृटिश-सरकार आज भी अधिकारीका पूर्व-स्वत्व कायम रखती आ रही है। शहरमें एक मिडिल वर्नाक्युलर स्कूल है।

सलोना (हिं० वि०) १ जिसमें नमक पड़ा हो, नमक मिला हुआ, नमकीन। २ जिसमें नमक या सौंदर्य हो, रसीला, सुन्दर।

सलोनापन (हिं० पु०) सलोना होनेका भाव।

सलोनो (हिं० पु०) हिन्दुओंका एक त्योहार जो श्रावण-मासमें पूर्णिमाके दिन पड़ता है। इस दिन लोग राखी बांधते और बंधवाते हैं।

सलोमन् (सं० त्रि०) लोमयुक्त, रोयेंवाला।

सलोहित (सं० त्रि०) लोहितवर्णयुक्त, सरक्त, लाल।

सलई (हिं० पु०) सल्लद्रुम, सरल वृक्ष।

सल्लकी (सं० स्त्री०) शल्लकी वृक्ष, सलई। महाराष्ट्र—सलठि, कलिङ्ग—सांबड़, बम्बै—शालई। (भाव) गुण—तिक्त, मधुर, कषाय, ग्राहक तथा कुष्ठ, रक्त, कफ, वात, अर्श और व्रणरोगनाशक। (राजनि०)

सल्लक्षणतीर्थ (सं० पु०) एक प्राचीन तीर्थका नाम।

सल्लक्षण (सं० क्ली०) साधुलक्षण, उत्तम लक्षण।

सल्लम (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका मोटा कपड़ा, गजी, गाढ़ा।

सल्लाह (अ० स्त्री०) सलाह देखो।

सल्ली (हिं० स्त्री०) शल्लकी, सलई।

सल्लू (हिं० पु०) चमड़ेकी डोरी।

सल्लोक (सं० पु०) उत्तम लोक, उत्तम स्थान।

सल्व (सं० पु०) १ एक देशका नाम। २ इस देशका अधिवासी। शाल्व देखो।

सवशा (सं० स्त्री०) एक प्रकारका वृक्ष।

सव (सं० क्ली०) १ जल, पानी। २ पुष्परस, पुष्पद्रव। (पु०) सूयते सोमोऽस्मिन् सू-अप्। ३ यज्ञ। ४ सन्तान, औलाद। ५ सूर्य। ६ चन्द्रमा। (त्रि०) ७ अज्ञ, अनाड़ी।

सवगात (तु० स्त्री०) सौगात देखो।

सवजा (सं० स्त्री०) अजगन्धा, बर्बरी।

सवत (हिं० स्त्री०) सौत देखो।

सवत्स (सं० त्रि०) वत्सयुक्त, बच्चेके सहित, जिसके साथ बच्चा हो।

सवन (सं० क्ली०) सु-अभिषवे ल्युट्। १ यज्ञस्नान। २ सोमपान। ३ अध्वर, यज्ञ। ४ सोम-निर्द्दलन। ५ प्रसव, बच्चा जनना। ६ श्योनाक वृक्ष, सोनापाठा। (पु०) सु ल्युट्। ७ चन्द्रमा। (उण् २।७४) ८ भृगुके एक पुत्रका नाम। ९ वशिष्ठके एक पुत्रका नाम। १० रौहित मन्वन्तरके सप्तर्षियोंमेंसे एक ऋषिका नाम। ११ स्वायम्भुव मनुके एक पुत्रका नाम। १२ प्रियव्रतके एक पुत्रका नाम (भाग०पु० ५।१।२६) १३ अग्निका एक नाम। (त्रि०) १४ वनविशिष्ट, वनयुक्त

सवनकर्मन् (स० क्ली०) यज्ञकर्म।

सवनदुर्ग—मन्द्राज प्रदेशके महिसुर राज्यान्तर्गत बङ्गलूर जिलेका एक गिरिदुर्ग। इसके नामसे यह पर्वत भी सवनदुर्ग कहलाता है। इसका दूसरा नाम मगदी शैल है। यह समुद्रपृष्ठसे ४०२४ फुट ऊंचा और अक्षा० १२ ५५ उ० तथा देशा० ७७ २१´ पू०के मध्य विस्तृत है। यह पर्वत ग्रानाइट पत्थरसे गठित तथा प्रायः ८ वर्गमील तक फैला हुआ है। इसका शिखरभाग दो चूड़ाके दो भागोंमें विभक्त है। उनमेंसे एकका नाम करि (कृष्ण) और दूसरे का नाम बिलि (श्वेत) है। दोनों ही शिखर पर प्रचुर जल मिलता है। १५४३ ई०में राजा सामन्तरायने इस शैलशृङ्गके ऊपर अपने नाम पर दुर्ग स्थापन किया। तभीसे यह शैल सामन्त दुर्ग कहलाता है। १६वीं सदीके शेषभागमें बङ्गलूरवासी इम्मडी कम्पे गौड़ इस दुर्गका संस्कार कर परिवारके साथ यहां रहने लगे। उस समय से इसका सवनदुर्ग नाम पड़ा है। १७२८ ई० तक इम्मडी गौड़के वंशधरोंने दुर्गका अधिकार कर यहां वास किया था। इसी साल महिसुरके हिन्दू राजाने यह दुर्ग अधिकार कर लिया। कुछ दिन बाद महिसुरराजके हाथसे यह पुनः हैदरअलीके हाथ आया। मुसलमानोंने इस दुर्गको सेनादल द्वारा सुदृढ़ किया सही, पर वे अङ्गरेजोंके साथ युद्धमें आत्मरक्षा कर न सके। हैदरके पुत्र टीपू सुलतानके साथ जब अङ्गरेजोंका विवाद चल रहा था उस समय अर्थात् १७९१ ई०में लार्ड कार्नवालिस परिचालित अङ्गरेजी सेना दुर्गके सामने आ धमकी। सेनापतिसे आदेश पा कर १० दिसम्बरको कर्नल स्टुअर्टने दलबलके साथ आ कर दुर्गसे ३ मीलकी दूरी पर छावनी डाली। इन्होंने यथाशक्ति कर बड़े कष्टसे दुर्ग तक मार्ग निकाले कमान सजाई थी। २०वीं दिसम्बरसे लगातार गोलाबारी शुरू हुआ। तीन दिनमें दुर्गप्राकार के एक भागको तोड़ डालने देख कर्नल स्टुअर्टने लार्ड कार्नवालिसके ऊपर दुर्ग पर धावा मार देने दिया था। रणकुशल कर्नल स्टुअर्टकी दक्षता और वीरतासे एक घण्टेके मध्य ही वे लोग प्राचीर परिखादि लांघ कर अङ्गरेजी सेना घुस पड़ी और दुर्ग पर कब्जा किया। इस युद्धमें अङ्गरेजोंका एक भी आदमी मारा नहीं गया था।

सवनभाज् (स० त्रि०) यज्ञभागविशिष्ट।

सवनमुख (स० क्ली०) यज्ञका आरम्भ।

सवनविध (स० क्ली०) यज्ञका कार्य।

सवनशस् (सं० अव्य०) सवन-शस्। १ त्रिकालम्। २ मन्द्रमध्यम और तारस्वरयुक्त। (गीतध्वनि)

सवनिक (स० त्रि०) सवन-सम्बन्धी, सवनका।

सवनीय (स० त्रि०) सोमयज्ञ सम्बन्धी।

सवनूर—१ बम्बईप्रदेशके धारवाड़ जिलान्तर्गत एक सामन्त राज्य। यह अक्षा० १४ ५७ से १५ २ उ० तथा देशा० ७५ २२ से ७५´ २५´ पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण ७० वर्गमील है। इसमें ३ शहर और २ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या २० हजारके करीब है।

यहांके राजवंश मुसलमान और अफगान जातिके हैं। मुगलसम्राट् औरङ्गजेबने अब्दुल रऊफ खाँ नामक किसी पठान सेनापतिके युद्धकौशल पर प्रसन्न हो उसे सात हजारी मनसबदार बनाया। उसके साथ साथ सम्राट्की कृपासे अश्वारोही सेनादलके पालन और अपनी मर्यादारक्षाके लिये इसने बङ्कापुर, तोड़गल और आजमनगर जागीरमें पाया था।

परवर्तीकालमें यहांके नवाब टीपू सुलतानके साथ विवाहसूत्रसे आबद्ध हुआ था सही, फिर भी १७८६ ई०में विश्वासघातक टीपू सुलतान इनके राज्य हड़प करनेसे बाज नहीं आया। टीपू द्वारा राज्य छिन जाने पर नवाबने पेशवाकी शरण ली। पेशवा उसके राज्यका पुनरुद्धार न कर सके और उन्होंने (वार्षिक ४८०००) रु० उसकी वृत्ति कायम कर दी। पीछे जेनरल वेलेस्लीके कहनेसे पेशवा उक्त नगद रुपयेकी वृत्तिके बदले भूसम्पत्ति देनेको बाध्य हुए। टीपू द्वारा यह नगर अधिकृत होनेके पहले यहां नवाबके खर्च पर टकसाल घर खोला गया। उस टकसालघरमें 'नवनूरी-हुन' नामक सोनेके सिक्केका प्रचार होता था। उसका मोल प्रायः ४ रुपया था और उसमें नवाबकी मूर्ति अङ्कित रहती थी।

१८ ० ई०में इस राज्यका शासनभार धारवाड़के कलक्टरके अधीन रहा। १८८३ ई०में नवाब अब्दुल दुल्हा खाँके ७ दिन होने पर राज्यभार उनके हाथ

सौंपा गया। पर दुःखका विषय है, कुछ ही समय राज्य करनेके बाद वह परलोक सिधारा।

राज्यकी आय करीब लाख रुपया है। बृटिश-सरकारको कुछ भी कर नहीं देना पड़ता। नवाबको गोद लेनेका अधिकार है। धारवाडके कलक्टर राज्यके पोलिटिकल एजेण्ट हैं। इन्हें डिष्ट्रिक्ट जजका अधिकार है। यहां दो फौजदारी और एक दीवानी अदालत है। राज्यमें ११ स्कूल और एक अस्पताल है।

२ उक्त राज्यका प्रधान नगर। यह धारवाड़से ४० मील दक्षिण-पूर्व अक्षा० १४° ५८´ ३० तथा देशा० ७५° २३´ पू०के मध्य विस्तृत है। जनसंख्या १० हजारके करीब है। नगर गोलाकार और छोटा है। चारों ओर खाई और प्राचीर है। प्राचीर गात्रमें ८ प्रवेशद्वार हैं जिनमेंसे तीन टूटफूट गये हैं। १८६८ से १८७३ ई०के मध्य नगर पथ घाट और कूप आदिसे खूब परिशोभित किया गया। यहां प्रति वर्ष देवताके उद्देशसे मेला लगता है।

सवयस् (सं० पु०) समानं वयो यस्य। १ वयस्य। (त्रि०) २ समान वयस्क, एक उमरका। (स्त्री०) समानं वयो यस्याः (ज्योतिर्जनपदेति। ६।३।८५) इति समानस्य सः। ३ सखी, सहचरी।

सवयस्क (सं० त्रि०) समान वयोविशिष्ट, समान अवस्थावाले, बराबरकी उम्रवाले।

सवर (सं० पु०) १ सलिल, जल। २ शिव। (विश्व०)

सवरलोध्र (सं० क्ली०) पठानी लोध, सफेद लोध।

सवर्ण (सं० त्रि०) समानो वर्णोऽस्य (ज्योतिर्जनपदेति। पा ६।३।८५) इति समानस्य स। १ सदृश, समान। २ समान वर्णका, समान जातिका।

शास्त्रमें ऐसा विधान है कि सवर्णा कन्या हो विवाह करना चाहिए। ब्राह्मणादि चार वर्ण असवर्ण विवाह कर सकते थे, किन्तु कलिमें यह निषिद्ध हो गया है। कलिमें एकमात्र सवर्ण विवाह ही प्रशस्त है।

विवाह देखो।

३ एक स्थानोच्चार्य वर्ण। व्याकरणके मतसे इसकी सवर्ण संज्ञा होती है। यथा—अ, आ, अर्थात् अकारके साथ आकारकी सवर्णता है

सवर्णा (सं० स्त्री०) समानो वर्णो यस्याः। १ सूर्यकी पत्नी छायाका नाम। (शब्दरत्ना०) २ समान वर्णा स्त्री।

सवर्णित (सं० त्रि०) सवर्ण।

सवर्द्ध (सं० त्रि०) श्रेष्ठ गुण या धनविशिष्ट, बलीयान्।

सवल—चम्पारण्यके अन्तर्गत एक प्राचीन ग्राम।

सवलपुर—विशालराज्यके अन्तर्गत एक प्राचीन पुरी।

सवलसिंह—वड़वानके एक हिन्दू राजा। इन्होंने १७३६ ई०में अहमदनगर जिलेका रणपुर दुर्ग अधिकार करनेके लिये दलबलके साथ यात्रा की। इस समय दुर्गाधिकारी अहीमभाई सिंहासन पर अधिष्ठित थे। वे प्राण मान युद्ध करके भी दुर्गकी रक्षा न कर सके। दुर्ग शत्रुके हाथ आया, दुर्गवासियोंको बड़ी मुसीबतें झेलनी पड़ीं। इस समय बड़ौदाके अधिपति दामाजी गायकवाड़ ढोलकामें राजस्व उगाहने आये थे। अहीमभाई छिपके उनके पास गये और अपना दुखड़ा रोया, साथ साथ उनसे सहायता भी मांगी। तदनुसार अहीमभाईके साथ गायकवाड़का सेनादल जब वहां पहुंचा, तब सवलसिंह दुर्गावरोध परित्याग कर नागेशकी ओर भाग गये। गायकवाड़ सेनाने पीछा कर उन पर हमला बोल दिया। इस युद्धमें सवलसिंह पराजित और बन्दी हुए।

सवलसिंह चौहान—चौहानवंशी क्षत्रिय थे। महाभारतके २४ हजार श्लोकोंका अनुवाद दोहे चौपाइयोंमें बहुत संक्षेपमें किया है। कोई कोई कहते हैं, कि ये कवि चन्द्रागढ़के राजा थे। कोई सबलगढ़का राजा इन्हें बतलाता है। इनके वंशवाले जिला हरदोईमें रहते हैं। परन्तु शिवसिंहका कहना है, कि ये कवि जिला इटावेके किसी गांवके जमींदार थे।

सवविध (सं० त्रि०) सवनविध।

सवस (सं० क्ली०) सवन। सवन देखो।

सवहा (सं० स्त्री०) त्रिवृता, निसोथ। (भरत)

सवा (हिं० स्त्री०) सम्पूर्ण और एकका चतुर्थांश, चौथाई सहित।

सवाई (हिं० स्त्री०) १ ऋणका एक प्रकार जिसमें मूलधनका चतुर्थांश ब्याजमें देना पड़ता है। २ मूल धन

सम्पर्घो एक प्रकारका रोग। ३ जयपुरके महाराजाओंकी एक उपाधि। (वि०) ४ एक और चौथाई, सवा।

सवागी (हि० पु०) टङ्कणक्षार, सुहागा।

सवाचम् (सं० त्रि०) उत्कृष्ट पाठसम्वलित।

सवाच् (सं० त्रि०) समान वत्सरविशिष्ट समान वर्षका।

सवात्य (सं० त्रि०) वातमण्डली मध्यस्थ।

सवार्त्तिक (सं० त्रि०) वार्त्तिकके सहित, जिन सब सूत्रोंमें वार्त्तिक हैं।

सवाद (हि० पु०) स्वाद देखो।

सवाब (अ० पु०) १ शुभ कर्मका फल जो स्वर्गमें मिलता है, पुण्य। २ भलाई, नेकी।

सवार (फा० पु०) १ वह जो घोड़े पर चढ़ा हो, अश्वारोही। २ अश्वारोही सैनिक, रिसालेका सिपाही। ३ वह जो किसी चीज पर चढ़ा हो। (वि०) ४ किसी चीज पर चढ़ा या बैठा हुआ।

सवारना (हि० क्रि०) संवारना देखो।

सवारी (फा० स्त्री०) १ किसी चीज पर विशेषतः चलनेके लिये चढ़नेकी क्रिया। २ वह चीज जिस पर यात्रा आदिके लिये चढ़ते हों, सवार होनेकी वस्तु, चढ़नेकी चीज। ३ वह व्यक्ति जो सवार हो। ४ कुश्तीमें अपने विपक्षीको जमीन पर गिरा कर उसकी पीठ पर बैठना और उसी दशामें उसे चित करनेका प्रयत्न करना। ५ जलूस। ६ सम्भोग या प्रसङ्गके लिये स्त्री पर चढ़नेकी क्रिया।

सवाल (अ० पु०) १ पूछनेकी क्रिया। २ वह जो कुछ पूछा जाय, प्रश्न। ३ दरख्वास्त, मांग, याचना। ४ विनती, निवेदन, प्रार्थना। ५ भिक्षाकी याचना। ६ गणितका प्रश्न जो उत्तर निकालनेके लिये दिया जाता है।

सवाल जवाब (अ० पु०) १ वादविवाद, बहस। २ तकरार, हुज्जत, झगड़ा।

सवासस् (सं० त्रि०) वासयुक्त परिच्छदविशिष्ट।

सवासिन् (सं० त्रि०) एक वस्त्रधारी या एकत्रवासकारी।

सविकल्प (सं० त्रि०) १ विकल्प सहित, सन्देहयुक्त, संदिग्ध। २ जो किसी विषयके ज्ञाता ज्ञेय या ज्ञानी आदिका कुछ निर्णय न कर सकनेका कारण मानता हो। (पु०) ३ दो प्रकारकी समाधियोंमेंसे एक प्रकारकी समाधि, वह समाधि जो किसी आलम्बनकी सहायतासे होती है। समाधि देखो। ४ वेदान्तके अनुसार ज्ञाता और ज्ञेयके भेदका ज्ञान।

सविकार (सं० त्रि०) विकारयुक्त, जिसमें विकार हो।

सविकाश (सं० त्रि०) १ विकसित, खिला हुआ। २ असङ्कुचित, प्रसारित, विस्तारित, फैला हुआ।

सविग्रह (सं० त्रि०) विग्रहयुक्त, विग्रहविशिष्ट।

सविचार (सं० त्रि०) १ विचारयुक्त विचारवान्। (पु०) २ समाधिविशेष। सविकल्प समाधि चार प्रकारकी है,—वितर्क, विचार आनन्द और अस्मित।

विशेष विवरण समाधि शब्दमें देखो।

सविज्ञान (सं० त्रि०) विज्ञानके सहित, विज्ञानविशिष्ट।

सविडालम्भ (सं० क्ली०) नाट्यशास्त्रके अनुसार एक प्रकारका परिहास या मजाक।

सवितर्क (सं० त्रि०) १ वितर्क सहित वितर्कयुक्त। (पु०) २ चार प्रकारकी सविकल्प समाधियोंमेंसे एक प्रकारकी समाधि। समाधि देखो।

सविताचल—मेरुके उत्तरका एक पहाड़।

सवितृ (सं० पु०) सूते लोकादीनिति सु-तृच्। १ सूर्य, दिवाकर। इनकी नामनिरुक्ति यों है—

"धीयाच्चवाच्या ब्रह्माणं प्रचोदयति सर्वदा।
सृष्ट्यर्थं भगवान् विष्णु सविता तु कीर्त्तित ॥
सर्वलोक प्रसवनात् सविता तु कीर्त्यते।
यतस्तद्देवता देवी सावित्रीत्युच्यते तत ॥"

(अग्निपु० गायत्रीकल्प)

विष्णु या ब्रह्मवाच्य हैं। विष्णु सृष्टिके लिये सदा ब्रह्माको भेजते हैं इसलिये वे सविता कहलाते अथवा उन्होंने जगत्की सृष्टि की है इसीसे सविता नामसे कीर्तित हुए हैं। ऋग्वेदमें सविता ही आदि देवता कह कर पूजित हैं। ब्राह्मणादि तीन वर्णोंका मूल गायत्रीमें सविता ही उपासित हुए हैं। सूर्य देखो।

२ अर्कवृक्ष, मदारका पेड़।

सवितृतनय (सं० पु०) सवितुस्तनय। सूर्यके पुत्र, हिरण्यपाणि।

सवितृदैवत (सं० पु०) नक्षत्रभेद, हस्ता नक्षत्र। इस नक्षत्रके अधिष्ठाता देवता सूर्य माने जाते हैं।

सवितृपुत्र (सं० पु०) सवितुः पुत्रः। सूर्यके पुत्र हिरण्य पाणि।

सवितृप्रसूत (सं० त्रि०) सवितृसे जात।

सवितृल (सं० त्रि०) सवितृ सम्बन्धी।

सवितृसुत (सं० पु०) सूर्यके पुत्र, शनैश्चर।

सवित्र (सं० क्ली०) सूयतेऽनेन सू (अर्त्ति-लुधुसुखनसहचर इत्रः। पा ३।२।१८४) इति करणे इत्र। प्रसव करना, लड़का जनना।

सवित्रिय (सं० त्रि०) सूर्य-सम्बन्धी, सविता या सूर्यका।

सवित्री (सं० स्त्री०) १ प्रसव करनेवाली, माता, मां। २ गाभी, गौ।

सविद्य (सं० त्रि०) विद्यया सह वर्त्तमानः। विद्वान्, पण्डित।

सविद्युत (सं० क्ली०) विद्युत सहित।

सविध (सं० त्रि०) समाना विधास्येति। १ निकट, पास, समीप। २ समान प्रकार।

सविनय (सं० त्रि०) विनयके साथ, विनीत।

सविमाल (सं० पु०) नखी या हट्टविलासिनी नामक गन्धद्रव्य।

सविभास (सं० पु०) सूर्यका एक नाम।

सविलास (सं० त्रि०) भोगविलास करनेवाला, विलासी।

सविशेष (सं० त्रि०) विशेषके साथ।

सविशेषक (सं० त्रि०) १ विशेष पदार्थके साथ। (भाषा-परि०) २ तीन श्लोकोंमें जहाँ एक क्रियाका अन्वय होता है, उसे विशेषक कहते हैं। इस प्रकार विशेषकयुक्त। (साहित्यद०)

सविशेषण (सं० त्रि०) विशेषणयुक्त, विशेषणविशिष्ट।

सविस्मय (सं० त्रि०) विस्मयापन्न। पर्याय—वीक्षापन्न।

सवीमन् (सं० क्ली०) प्रसव, जनना। (ऋक् ५।५३।३)

सवीर्य्य (सं० त्रि०) वीर्य्यविशिष्ट, तेजोयुक्त।

सवीर्या (सं० स्त्री०) शतावरी, सतावर।

सवृत् (सं० त्रि०) सहवर्त्तनशील, सहवर्त्ती।

सवृध् (सं० त्रि०) पण्डितके सहित वर्त्तमान।

सवृष्टिक (सं० त्रि०) वृष्टियुक्त।

सवेग (सं० त्रि०) वेगयुक्त, वेगविशिष्ट।

सवेणी (सं० स्त्री०) समानवेणी।

सवेदस् (सं० त्रि०) समान एक वेद अर्थात् हविर्लक्षण-धन द्वारा युक्त, एक प्रकार हविर्युक्त। (ऋक् १।६३।६)

सवेरा (हिं० पु०) १ सूर्य निकलनेके लगभगका समय, प्रातःकाल, सुबह। २ निश्चित समयके पूर्वका समय।

सवेश (सं० त्रि०) १ वेशान्वित, वेशविशिष्ट, वेशयुक्त। (धरणि) २ निकट, समीप। (अमर)

सवेशीय (सं० क्ली०) साममेद।

सवैया (हिं० पु०) १ तौलनेका एक बाट जो सवा सेर-का होता है। २ एक पहाड़ा जिसमें एक, दो, तीन आदि संख्याओंका सवाया रहता है। ३ एक छन्द जिसके प्रत्येक चरणमें सात भगण और एक गुरु होता है। इसे मालिनी और दिवा भी कहते हैं। इस अर्थमें कुछ लोग इसे स्त्रीलिङ्ग भी बोलते हैं। ४ सवाई देखो।

सव्य (सं० त्रि०) सू प्रेरणे (माच्छाससिसूभ्यो यः। उण् ४।१०६) इति य। १ वाम, बांया। २ दक्षिण, दाहिना। सव्य शब्दका वाम और दक्षिण दोनों अर्थ होता है, पर साधारणतः यह वामके ही अर्थमें प्रयुक्त होता है। ३ प्रतिकूल, विरुद्ध, खिलाफ। (पु०) सूते विश्वमिति सू य। ४ विष्णु। ५ यज्ञोपवीत। ६ चन्द्र या सूर्यग्रहणके दस प्रकारके ग्रासोंमें एक प्रकारका ग्रास। (वृहत्स० ५।४३) ७ इन्द्राग्निभेद। (ऋक् १०।१६१७ सायण) ८ अङ्गिराके एक पुत्रका नाम। कहते हैं, कि अङ्गिराके तपस्या करने पर इन्द्रने उनके घर पुत्र रूपमें जन्मग्रहण किया था जिनका नाम सव्य पड़ा। ये ऋग्वेदके १।५१-५७ सूक्तके मन्त्रद्रष्टा थे।

सव्यचारिन् (सं० पु०) १ सव्यसाची, अर्जुन। २ अर्जुन वृक्ष, कौह वृक्ष।

सव्यञ्जन (सं० त्रि०) व्यञ्जनवर्णविशिष्ट।

सव्यतस् (सं० अव्य०) सव्य-तसिल्। सव्य भागमें, सव्य-पार्श्वमें। (ऋक् २।११।१८)

सव्यभिचार (सं० त्रि०) १ व्यभिचारविशिष्ट। (पु०) २ नैयायिक मतसे हेत्वाभासभेद। हेत्वाभास देखो।

सव्यष्ठा (सं० त्रि०) रथाधिष्ठित योद्धा। (अथर्व ८।८।२३)

सव्यसाचिन् (सं० पु०) अर्जुन। कहते हैं, कि अर्जुन

दाहिने हाथसे भी तीर चला सकते थे और बायें हाथसे भी, इसीलिये उनका यह नाम पड़ा।
सव्याधि (स० त्रि०) व्याधियुक्त, पीड़ित।
सव्यानत (स० त्रि०) बाईं ओर नत या झुका हुआ।
सव्यापष्टि (स० पु०) मृगया करनेके समय घोड़ेका बाईं ओर हो कर जाना।
सव्यायुग्य (स० पु०) दाहिने और बायें दो घोड़े।
सव्यावृत् (स० त्रि०) दाहिने और बायें हिल मिल कर चलनेवाला।
सव्यावृत्त (स० त्रि०) दाहिने और बायें आवर्तित।
सव्याशून्य (स० त्रि०) सव्य अशून्य। सम्पूर्ण।
सव्याहृति (स० त्रि०) व्याहृतियुक्त प्रणवविशिष्ट।
सव्येतर (स० त्रि०) सव्यसे भिन्न।
सव्येतरतस् (स० अव्य०) सव्येतर तसिल्। दक्षिणकी ओर, दक्षिण मार्गमें। (भागवत ४।८।७६)
सव्येष्ठ (स० पु०) सारथि। (हलायुध)
सव्येष्ठ (स० पु०) सारथि। (अमर)
सव्योत्सार—दाहिने या बायें झुक कर सरना।
सव्रण (स० त्रि०) व्रणयुक्त, व्रणविशिष्ट।
सव्रत—१ समानकर्म, तुल्यकर्मविशिष्ट। (ऋक् ६।७०।३) २ व्रतविशिष्ट, नियमयुक्त।
सव्रतिन् (स० त्रि०) व्रतीयुक्त समान व्रतविशिष्ट।
सशङ्क (स० त्रि०) १ शङ्कायुक्त शङ्कित जिसे शङ्का हो। २ भयभीत, डरा हुआ। ३ भयकारी, भयानक। ४ भ्रामक शङ्का उत्पन्न करनेवाला।
सशब्द (स० त्रि०) शब्दयुक्त।
सशयन (स० त्रि०) शयनयुक्त शय्याविशिष्ट।
सशरीर (स० त्रि०) शरीरधारी।
सशल्य (स० त्रि०) १ शल्ययुक्त। (पु०) २ एक माल्ल।
सशल्यव्रण (स० पु०) व्रणरोगका एक भेद। कांटे आदिके चुभ जानेसे यह व्रण उत्पन्न होता है। इससे चिह्न स्थानमें सूजन होती और फिर पक जाता है।
सशल्या (स० स्त्री०) १ नागदन्ती हाथी शुण्डा। २ शल्ययुक्त भूम्यादि।
सशावो (हि० पु०) कृष्णसारक, काला जीरा।
सशाक (स० क्ली०) आदरक आदी।
सशिरस्क (स० त्रि०) शिरोविशिष्ट, मस्तकयुक्त।
सशीर्षन् (स० त्रि०) शीर्षविशिष्ट, मस्तकयुक्त।
सशुक्र (स० त्रि०) शुक्रयुक्त।
सशूक (स० पु०) १ आस्तिक। (त्रि०) २ शूकरोग विशिष्ट।
सशेष (स० त्रि०) शेषयुक्त बचनेवाला।
सशोक (स० त्रि०) शोकविशिष्ट, जिसे शोक या दुःख हो।
सशोथपाक (स० पु०) एक प्रकारका नेत्ररोग। इस रोगमें आंखोंमेंसे आंसू निकलते हैं और उनमें खुजली तथा शोथ होता है। आंखें लाल भी हो जाती हैं।
सश्चत् (स० त्रि०) सश्च शतृ। बाधकके लिये प्राप्तिविशिष्ट। (ऋक् १।४२।७)
सश्मश्रु (स० स्त्री०) १ श्मश्रुयुक्त स्त्री। पर्याय—नरमालिनी। (त्रि०) २ श्मश्रुयुक्त मूंछ दाढ़ीवाला।
सश्रीक (स० त्रि०) लक्ष्मीयुक्त, धनवान्।
सश्लेष (स० त्रि०) श्लेषयुक्त।
ससत्त्व (स० त्रि०) सत्त्वविशिष्ट।
ससङ्ग (स० त्रि०) सङ्गयुक्त साथवाला।
ससत्त्व (स० त्रि०) प्राणीयुक्त।
ससत्त्वा (स० स्त्री०) गर्भिणी, गर्भवती स्त्री।
ससर (स० क्ली०) यज्ञादि पशुदान, यज्ञमें पशुका वध करना। (अमरटीका)
ससरना (हि० क्रि०) सरकना, खिसकना।
ससपरी (स० स्त्री०) सब जगह शब्दरूपमें सर्पणशील वाक्य। (ऋक् ३।५३।१५)
ससब्रह्मचारिन् (स० पु०) ब्रह्मचारीके साथ।
ससाक्षिक (स० त्रि०) साक्षीके सहित साक्षियुक्त।
ससाध्वस (स० त्रि०) सभय, भययुक्त।
ससोमक (स० त्रि०) सोमकके सहित।
ससुर (स० त्रि०) देवताके सहित।
ससुर (हि० पु०) जिसके पुत्र या पुत्रीसे ब्याह हुआ हो, पति या पत्नीका पिता श्वसुर। श्वसुर देखो।
ससुराल (हि० स्त्री०) १ श्वसुरका घर पति या पत्नीके पिताका घर। २ जेलखाना, बन्दीगृह।

ससौष्ठव (सं० त्रि०) १ वेगगामी, तेज चलनेवाला । २ अति सुन्दर ।

सस्ता (हिं० वि०) १ जो महँगा न हो, जिसका मूल्य साधारणसे कुछ कम हो थोड़े मूल्यका । २ जिसका भाव बहुत उतर गया हो । ३ घटिया, साधारण, मामूली । ४ जो सहजमें प्राप्त हो सके, जिसका विशेष आदर न हो ।

सस्ती (हिं० स्त्री०) १ सस्ता होनेका भाव, सस्तापन । २ वह समय जब कि सब चीजें सस्ते दाम पर मिलती हों ।

सस्त्रीक (सं० त्रि०) सपत्नीक, जिसके साथ स्त्री हो, स्त्री या पत्नीके सहित ।

सस्थान (सं० क्ली०) समान स्थान ।

सस्नि (सं० त्रि०) सस्नक । (ऋक् ६।६१।२०)

सस्नेह (सं० त्रि०) स्नेहयुक्त, प्रीतियुक्त ।

सस्मित (सं० त्रि०) ईषद्धास्ययुक्त, सहास्य ।

सस्य (सं० क्ली०) सस स्वप्ने (माच्छाशसिभ्यो यः । उण् ४।१०६) इति य । १ वृक्षोंका फल । २ धान्य । ३ शस्त्र । ४ गुण । ५ शस्य देखो ।

सस्यक (सं० पु०) सस्येन गुणेन परिजातः सस्वन्धः सस्य (सस्येन परिजातः । पा ५।२।६८) इति कन् । १ वृहत्संहिताके अनुसार एक प्रकारकी मणि । २ असि, तलवार । ३ शालि । ४ साधु ।

सस्यक्षेत्र (सं० क्ली०) शस्यपरिपूर्ण क्षेत्र ।

सस्यपाल (सं० पु०) शस्यरक्षक, धानका रखवाला ।

सस्यमञ्जरी (सं० स्त्री०) अभिनव निर्गत धान्यादि शीर्षक, धानकी नई साँक ।

सस्यमारिन् (सं० पु०) १ मूसा, चूहा । (त्रि०) २ शस्य या अनाजका नाश करनेवाला ।

सस्यरक्षक (सं० पु०) शस्य-रक्षाकारी, अनाजकी रखवाली करनेवाला ।

सस्यवत् (सं० त्रि०) शस्यविशिष्ट, शस्ययुक्त ।

सस्यशीर्षक (सं० क्ली०) कर्ण ।

सस्यशूक (सं० क्ली०) सस्यका तीक्ष्णाग्र सूंग ।

सस्यसंवत्सर (सं० पु०) शाल, साखू ।

सस्यसम्बर (सं० पु०) संवृ-(ग्रह-वृदृनिश्चि गमश्च । पा ३।३।५८) इति अप् । १ शालवृक्ष । २ सहकर्ण, सलई ।

सस्यसम्वरण (सं० पु०) शाल या अश्वकर्ण वृक्ष, साखू ।

सस्यहन् (सं० त्रि०) १ सस्यहन्ता, सस्य या अनाजका नाश करनेवाला । २ मेघ, बादल । (पु०) ३ ऋषिकन्या निर्मोष्टिके गर्भसे दुःसहका औरसजात पुत्र ।

सस्यहन्तृ (सं० पु०) शस्यनाशकारी, शस्य या अनाजका नाश करनेवाला । (मार्क०पु० ५१।८०१)

सस्या (सं० स्त्री०) गणिकारिका, अरनी ।

सस्र (सं० त्रि०) सरणशील, गमनशील, जानेवाला ।

सस्त्र (सं० त्रि०) सरणकुशल, गमनकुशल ।

सस्रुत् (सं० त्रि०) सह प्रवर्त्तमान । (ऋक् १।११।२)

सस्वन (सं० त्रि०) सशब्द, शब्दके सहित ।

सस्वर (सं० त्रि०) स्वरवर्णके सहित, स्वरयुक्त ।

सस्वेद (सं० त्रि०) १ घर्मविशिष्ट पसीनावाला । (स्त्री०) २ दूषिता कन्या । (शब्दरत्ना०)

सह (सं० अव्य०) १ सहित, समेत । (त्रि०) २ विद्यमान, उपस्थित, मौजूद । ३ सहिष्णु, सहनशील । ४ समर्थ, योग्य । (क्ली०) ५ सादृश्य, समानता, बराबरी । ६ यौगपद्य । ७ सम्बन्ध, लगाव । ८ सामर्थ्य, बल, ताकत । ९ पांशुलवण, रेहका नोन । (पु०) १० अग्रहायण मास, अगहनका महीना । (सुश्रुतपु० १४।२७) ११ महादेव । (भारत १३।१७,१२६) (स्त्री०) १२ समृद्धि ।

सहकण्ठक (सं० त्रि०) वाग्रुनला ।

सहकर्तृ (सं० पु०) यज्ञका सहकारी ।

सहकर्मन् (सं० त्रि०) सहाय, साहाय्यकारी, सहायता करनेवाला ।

सहकार (सं० पु०) १ सुगन्धियुक्त पदार्थ । २ आम का पेड़ । ३ कलमी आम । ४ सहयोग, साथ मिल कर काम करना । ५ सहायक, मददगार ।

सहकारता (सं० स्त्री०) सहायता, मदद ।

सहकारभञ्जिका (सं० स्त्री०) प्राचीन कालकी एक प्रकारकी क्रीड़ा या अभिनय ।

सहकारिता (सं० स्त्री०) १ सहकारी होनेका भाव, सहायक होनेका भाव । २ सहायता, मदद ।

सहकारिन् (स० पु०) १ प्रत्यय। (त्रि०) २ सहयोगी, एक साथ काम करनेवाला, साथी। ३ सहायक मददगार।
सहकृत् (स० त्रि०) सहकारी मददगार।
सहकृत्वन् (स० त्रि०) सहकारी, मददगार।
सहक्रम्य (स० त्रि०) क्रमबद्ध। (ऋक्प्राति० १८।१८)
सहखट्वासन (स० क्ली०) खट्वा या आसन सहित।
सहगमन (सं० क्ली०) सह गम्यत सह गमनं। १ साथ जाने की क्रिया। २ पतिके शवके साथ पत्नीके सती होनेका व्यापार, सती होनेकी क्रिया। सहमरण देखो।
सहगामिन् (स० पु०) १ साथ चलनेवाला, साथी। २ अनुकरण करनेवाला, अनुगामी।
सहगामिनी (स० स्त्री०) १ वह स्त्री जो पतिके शवके साथ सती हो जाय, पतिकी मृत्यु पर उसके साथ जल मरनेवाली स्त्री। २ स्त्री, पत्नी सहचरी साथिन।
सहगोप (स० पु०) पशुपालकके सहित।
सहचर (स० पु०) १ झिण्टी, कटसरैया। २ भृत्य, नौकर दास। ३ मित्र, सखा दोस्त। ४ वह जो साथ चलता हो, साथ चलनेवाला, हमराही।
सहचरद्वय (स० क्ली०) पीत झिण्टी और नीलझिण्टी, पीली और नीली कटसरैया।
सहचरा (स० स्त्री०) नील झिण्टी नीली कटसरैया।
सहचराद्यतैल (स० क्ली०) वैद्यकमें एक प्रकारका तेल। यह तेल बनानेके लिये नीले फूलवाली कटसरैया धमासा, वरुणा, जामुनकी छाल, आमकी छाल, मुलेठी कमल गट्टा सब एक एक टके भर लेते हैं और उनका चूर्ण बना कर १६ सेर जलमें डाल कर औटाते हैं। जब चौथाई रह जाता है तब उसे तेल या बकरीके दूधमें पकाते हैं। कहते हैं, कि इसके सेवनसे दाँत मजबूत हो जाते हैं।
सहचरित (स० त्रि०) एकत्रवास और एकरूप आचरणशील।
सहचरी (स० स्त्री०) १ पीत झिण्टी नाली कटसरैया। २ वयस्या, सखी। ३ पत्नी, भार्या जोरू।
सहचार (स० पु०) १ सहचरी संगी। २ साथ संग सौहृदय।
सहचार उपाधि लक्षणा (स० स्त्री०) एक प्रकारकी लक्षणा जिसमें वह सहचारके कारण केवल सहचरी का बोध होता है। जैसे, 'गद्दीको नमस्कार करो' यहां गद्दी शब्दसे गद्दी पर बैठनेवालेका बोध होता है।
सहचारिणी (स० स्त्री०) १ साथमें रहनेवाली, सहचरी, सखी। २ पत्नी, स्त्री, जोरू।
सहचारिता (स० स्त्री०) सहचारी होनेका भाव।
सहचारित्व (स० क्ली०) सहचारी होनेका भाव।
सहचारिन् (स० पु०) १ संगी, सहचर, साथी। २ सेवक, नौकर।
सहछन्दस् (स० त्रि०) गायत्री आदि छन्दोंके सहित।
सहज (स० पु०) सह जायते इति जन ड। १ सहोदर भाई, सगा भाई एक माता वाला भाई। २ निसर्ग, स्वभाव। ३ ज्योतिषमें जन्म लग्नसे तृतीय स्थान भाइयों और बहनों आदिका विचार इसी स्थानको देख कर किया जाता है। (त्रि०) ४ स्वाभाविक स्वभावसे उत्पन्न, प्राकृतिक। ५ साधारण। ६ सरल, सुगम, आसान। ७ साथ उत्पन्न होनेवाला।
सहज—एक तांत्रिक आचार्यका नाम। (तन्त्ररत्नाकर)
सहजकीर्ति—एक जैन वैयाकरण, सारस्वतटीकाकार।
सहजकृति (स० पु०) स्वर्ण, सोना।
सहजक्लैब्य (स० क्ली०) नपुंसकता रोगका एक भेद वह नपुंसकता जो जन्मसे हो।
सहजमित्र (स० स्त्री०) मित्र देखो।
सहजता (स० स्त्री०) १ सहज होनेका भाव। २ सरलता, स्वाभाविकता।
सहजन (हि० पु०) सहिजन देखो।
सहजन्मन् (स० त्रि०) सह जन्म यस्य, १ एक गर्भसे एक साथ ही होनेवाली दो सन्तान, यमज यमल, जोड़ा। २ एक ही गर्भसे उत्पन्न, सहोदर, सगा।
सहजन्य (स० पु०) एक यक्षका नाम।
सहजन्या (स० स्त्री०) एक अप्सराका नाम।
सहजपंथ (हि० पु०) गौडीय वैष्णव सम्प्रदायका एक भिन्न पंथ। इस सम्प्रदायके प्रवर्त्तकोंके मतानुसार भजन साधनके लिये पहले एक नवयौवनसम्पन्न सुन्दर पर कीया रमणीकी आवश्यकता होती है। बाद रसिक भक्त या गुरुसे मस्त्रक स्नान उपदेश ले कर उस नायिकाके

प्रांत तन मन अर्पण कर साधन भजन करनेसे अविलम्ब व्रजनन्दन रसिकशिरोमणि श्रीकृष्णकी प्राप्ति होती है। सहजियोंका कहना है, कि इस प्रकारकी लीला महाप्रभु सर्वसाधारणको न दिखा कर गुप्तरूपसे राय रामानन्द और स्वरूप दामोदर आदि कई धार्मिक भक्तोंको बता गये हैं।

सहजपाल (सं० पु०) काश्मीरराजपुत्रभेद।

सहजमित्र (सं० पु०) स्वाभाविक मित्र। शास्त्रमें भानजा, मौसेरा भाई और फुफेरा भाई सहजमित्र और वैमात्रेय तथा चचेरे भाई सहज शत्रु बताये गये हैं। भानजे आदिसे सम्पत्तिका कोई सम्बन्ध नहीं होता, इसीसे ये सहजमित्र हैं। परन्तु चचेरे भाई सम्पत्तिके लिये झगड़ा कर सकते हैं, इससे वे सहजशत्रु कहे गये हैं। (मिताक्षरा)

सहजललित (सं० पु०) बौद्धयतिभेद। (तारनाथ)

सहजविलास (सं० पु०) बौद्धयतिभेद। (तारनाथ)

सहजशत्रु (सं० पु०) शास्त्रोंके अनुसार वैमात्रेय या चचेरा भाई जो सम्पत्तिके लिये झगड़ा कर सकता है।
विशेष विवरण सहजमित्र शब्दमें देखो।

सहजा (सं० स्त्री०) सहज, सदैव उत्पन्न।

सहजात (सं० त्रि०) १ सहोदर। २ यमज। (त्रि०) ३ सहोदय।

सहजादित्य—एक सामन्तराज, उपाधि राजराज। १२३३ विक्रम-सम्वत्में बुलन्दशहरमें उत्कीर्ण अनङ्ग शिला फलकमें ये उनके पूर्ववर्त्ती राजा रूपमें वर्णित हैं।

सहजाधिनाथ (सं० पु०) ज्योतिषके अनुसार जन्म कुंडलीके तीसरे या सहज स्थानका अधिपति ग्रह।

सहजानन्द तीर्थ—अद्वैतसिद्धि नामक ग्रन्थके प्रणेता।

सहजानन्दनाथ—पुरश्चरणप्रपञ्चके प्रणेता।

सहजानि (सं० स्त्री०) पत्नी, स्त्री, जोरू।

सहजानुप (सं० त्रि०) जानु (जंघा) द्वारा भूमि पर चलनेवालेको जानुप कहते हैं, उसके सहित।

सहजारि (सं० पु०) शास्त्रोंके अनुसार वैमात्रेय या चचेरा भाई जो समय पड़ने पर सम्पत्ति आदिके लिये झगड़ा कर सकता है, सहज शत्रु। शत्रु शब्द देखो।

सहजाशी (सं० पु०) वह अर्श या बवासीर जिसके मस्से कठोर, पीले रंगके और अंदरकी ओर मुंहवाले हों।

सहजित् (सं० त्रि०) एकत्र मिल कर जय करनेवाला।

सहजिया (सहजपन्थी)—धर्मसम्प्रदायभेद। वर्त्तमान समयमें गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायकी यह एक निम्नश्रेणी है। साधारणका विश्वास है, कि श्रीमन्नित्यानन्द प्रभुके पुत्र वीरभद्र गोस्वामीसे ही इस पन्थीका उद्भव हुआ है। किन्तु इसका यथेष्ट प्रमाण है, कि सहज मत बहुत पहलेसे ही गौड़मण्डलमें प्रचलित था। महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री महाशयने नेपालसे ८।६ सौ वर्षका पुराना कानुपाद, डोम्बिपाद, शान्तिदेव आदिके बहुतेरे प्राचीन पद और दोहे संग्रह किये हैं। उन सब पदोंमें सहजियोंके मूल धर्ममतका यथेष्ट उपकरण है। उन सब प्राचीन पदावलियोंकी आलोचना करने पर निःसन्देह यह धारणा होगी, कि बौद्धतान्त्रिक समाजमें ही इस सहजिया मतकी उत्पत्ति हुई है।

ईस्वी सन्‌की पहली शताब्दीमें महायान सम्प्रदाय प्रबल हो उठा था। इनमें फिर माध्यमिक और योगाचार ये दोनों मत प्रचलित हुए। माध्यमिकोंने शून्यवादी होने पर भी नाना बौद्ध और बोधिसत्त्वकी उपासना स्वीकार कर ली, इधर योगाचार मतावलम्बियोंने योगशास्त्र चर्चाके फलसे, जीवात्मा और परमात्माका मिलन स्वीकार कर अनात्मवादी महायानोंमें भी परोक्षमें आत्मवादका प्रचार किया। विभिन्न बुद्ध और बोधिसत्त्वोंकी मूर्त्तिपूजा और साथ ही प्रायः ४थी शताब्दीमें महायानमें मन्त्रयानका प्रभाव विस्तृत होने पर बुद्ध और बोधिसत्त्वोंकी एक एक शक्ति कल्पित हुई। महायान सम्प्रदायसम्भूत मन्त्रयानोंने ही विभिन्न शक्ति पूजाके साथ सर्वत्र तान्त्रिकता घोषणा की थी।

विभिन्न महायान बौद्ध सम्प्रदायमें ध्याननिष्ठा इन्द्रियसंयम और संन्यास वैराग्य द्वारा ही प्रथमतः निर्वाणपद लाभका एकमात्र लक्ष्य था। भगवान् बुद्धशिष्य आनन्दने नारी जातिको भी संन्यासका अधिकार दिया था। समय पा कर बौद्धविहार और संघाराममें बहुतेरे

तन्त्रकी टीकासे ही यह बात समझमें आ जाती है। इन्द्रियचरितार्थतामूलक सहजसाधन जब धर्मका अङ्ग मान लिया गया, तब आपातसुख पिपासी जनसाधारण अनायास ही इस सहजधर्मका आश्रय लेंगे, यह कहनेकी आवश्यकता ही क्या है? गौडवङ्गमें जब बौद्धोंका अधःपतन आरम्भ हुआ, तब वैदिक और हिन्दू तान्त्रिक ब्राह्मणोंके प्रभावसे उच्च जातिके प्रकाश्यरूपसे वज्रयान मत परित्याग कर उच्च धर्मका आश्रय लेने पर भी साधारणके हृदयमें इस सहजधर्मने इतनी जड पकड ली थी, कि उसके उखाड़ फेंकनेकी किसीमें शक्ति नहीं थी। जनसाधारणको हाथमें करनेके लिये शैव और शाक्तोंने 'शक्तिसाधन' और वैष्णवोंने 'सहजभजना' का प्रचार किया। नाममें और व्यवहारमें सामान्य वैलक्षण्य रहने पर भी 'शक्तिसाधन' और 'सहजभजन' वज्रयानका ही संस्कार है, इसमें सन्देह नहीं। शाक्तोंने 'शक्तिसाधन' उपलक्षमें जप ध्यान आदि कुछ पूजाविधि जोड कर इस साधनको वज्रयानसे कुछ दूर हटा लिया है। किन्तु 'सहजभजन'-निरत सहजिया अधिक दूर पीछे हट नहीं सके। जो वज्रसाधन गौड-वङ्गके जनसाधारणमें नित्यानुष्ठानके रूपमें बहुत दिनों तक मान्य था, सामाजिक और राजनीतिक विप्लवके झकोरेमें कहीं उड जायगा, यह कभी सम्भवपर नहीं। महामहोपाध्याय शास्त्री महाशयको धर्मपूजक डोम आदि नीच जातियोंमें बौद्ध धर्मका अन्तिम निदर्शन दिखाई दिया है। हम भी उनके अनुवर्त्ती हो इस समय सहजियोंमें इस भ्रष्ट बौद्धधर्मकी शेष स्मृतिका कुछ परिचय पा रहे हैं। धर्मपूजकोंकी तरह सहजियोंने भी आद्या-शक्तिके सम्बन्धमें अनादि निरञ्जनसे ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरकी उत्पत्तिकी कल्पना की है। किसी भी हिन्दूशास्त्रमें ऐसी बात नहीं पाई जाती।

धर्मठाकुर देखो।

वज्रयानोंने जैसे वज्रसत्त्व और अपनी शक्तिका मिलनावस्थामें 'सहजानन्द' और 'सहजैकस्वभावदशन' का उत्पत्ति प्रकाशित की है, वर्त्तमान सहजियोंने वैष्णव कह अपना परिचय देने पर भी उनके 'आगमसार'में हर-गौरीकी मिलनावस्थामें वैसे ही तत्त्वप्रकाशका आभास पाया गया है। चण्डरोषणतन्त्रकी प्राचीन व्याख्या और गौरीदास रचित 'निगूढार्थप्रकाशावली' नामके सहजिया ग्रन्थको मिला कर देखनेसे यह धारणा होती है, कि चण्डरोषण-तन्त्रकी व्याख्या ही विशदभावसे वङ्गभाषामें निगूढार्थप्रकाशावली नामसे प्रकाशित हुई है।

महाप्रभु चैतन्यदेवके अभ्युदयके बहुत पहले ही वैष्णव तान्त्रिकोंने सहजमत ग्रहण किया था, यह बात चण्डिदासकी पदावलीसे प्रमाणित होती है। चण्डिदासके बहुत पदोंमें 'वाशुली' देवीका नाम मिलता है। इन्हीं देवीके प्रत्यादेशसे चण्डिदासने सहजतत्त्व प्रकाशित किया था।

नेपालके वज्राचार्योंने वज्रसत्त्वकी शक्तिवज्रधात्वीश्वरीकी जिस तरह गुह्यमूर्त्ति चित्रित की थी, उनके साथ नान्नूरकी वाशुली मूर्त्तिका बहुत सादृश्य है। यह कहना व्यर्थ है, कि नान्नूरकी अधिष्ठात्री मूर्त्ति ही चण्डिदासकी इष्टदेवी है। संस्कृतमें वज्रधात्वीश्वरी प्रथमतः वज्रेश्वरी और साधारणके मुखसे अपभ्रंश हो कर वाजशली या वाशुलीमें परिणत हो जाना कुछ विचित्र बात नहीं। अतएव वैष्णव सहजियोंकी आदि उपास्या वाशुली और वज्रयानोंकी वज्रधात्वीश्वरी, मानो एक और अभिन्न देवी मालूम होती है।

गौड-वङ्गसे बौद्धधर्मके प्रभाव विलोपके साथ साथ मुण्डितकेश बौद्ध श्रावक और श्राविकाओंकी नितान्त दुरवस्था उपस्थित हुई। उस समय वैष्णव समाजका आश्रय लाभ कर परवर्त्ती समयमें 'नाडा नाडी' वा 'नेडा नेडी' नामसे परिचित हुए। नित्यानन्द प्रभुके पुत्र वीरभद्रने बहुतेरे नेडा नेडियोंका उद्धार किया था। सम्भवतः उन्होंने उन्हींसे प्रच्छन्न वज्रयान मत (सहजतत्त्व)-को शिक्षा पाई होगी।

पूर्वतन महायान सम्प्रदाय जैसे ज्ञानमार्गका पथिक था, वज्रयान सम्प्रदाय उसी तरह इस मार्गका पथिक है। इस मार्गके पथिकको सहजिया 'रसिक' कहते हैं।

सुतरां देखा जाता है, कि सहजपन्थी ज्ञानमार्ग नहीं चाहते। वे प्रकृति और पुरुषके मिलनको ही पुरुषार्थ समझते हैं। जो इस साधनोमें सिद्ध हैं, वे ही रसिक

भक्त हैं। उनमें गुणी और उदासीन भेद नहीं है, इसमें सभी इसके अधिकारी हैं।

वर्त्तमान सहजिया प्रेमदास रचित आनन्दभैरव, आगमसार, मुकुन्ददास रचित अमृतरत्नावली और अमृतरसावली इन चार ग्रन्थों को ही सहजतत्त्व निरूपक सब प्रधान ग्रन्थ समझते हैं।

इनके मतसे छः गोस्वामी और अन्यान्य साधकवृन्द अपने जीवनमें विशेषरूपसे इस मनन प्रणालीका दिखा गये हैं जो बाहरमें किसी ग्रन्थमें नहीं है। किन्तु सद्गुरु साथ करते करते यह जाना जाता है और इनके पदावलम्बनसे उस श्यामसुन्दर और राधारानीकी कृपा प्राप्त होती है और भी ये कहते हैं, कि इसमें नियम कानून आचार विचार कुछ भी नहीं है। स्त्रियोंके ऋतुके तीन दिन भी ये अस्पृश्य नहीं मानते। उक्त अवस्थामें भी श्रीभगवानकी सेवा पूजा आदि सभी करते हैं। ये नायिकाकी देह ही श्रीवृन्दावन और उक्त नायिकामें ही श्रीश्यामसुन्दर और राधा रानीका अधिष्ठान होनेका विश्वास करते हैं।

सहजतत्त्व समझनेके लिये उनके भाव और प्रेम क्या है? चौतन्य स्वरूप अमृततत्त्व क्या है? सम्यग्ज्ञानतत्त्व, रतितत्त्व, वर्णतत्त्व क्या है? इत्यादि गूढ़ रहस्योंका जानना आवश्यक था। ये सब जाने जाने पर साधन भजन द्वारा भावदेह प्राप्त हो सजक मनेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णका प्राप्त किया जाता है।

सहजीविन् (स० त्रि०) एक साथ जीवन धारण करने वाले साथ रहनेवाले।

सहजेन्द्र (स० पु०) फलितज्योतिषके अनुसार जन्म कुण्डलीके तीसरे या सहज स्थानके अधिपति ग्रह।

सहजोपण (स० त्रि०) परस्परमें आनन्दानुभव। सन्तोषण देखो।

सहण्डुक (स० क्ली०) मांसव्यञ्जनविशेष, एक प्रकारका मांसका जूस। बनानेका तरीका—बकरे आदिकी आधक मांसल स्थानका मांस खण्ड खण्ड कर कूटे और अच्छी तरह धो डाले। पीछे एक पाकपात्रमें घृत (घृतके अभावमें तैल) डाल कर हींग और हल्दी भूने। पीछे उसे छौंक कर फेंके। घृत या तैलमें मांसको भांजमें मास भून ले। जब मालूम पड़े, कि मांस सिद्ध होता आ रहा है, तब उपयुक्त जल और लवण डाल कर पाक करे। मांस पाककी मध्यावस्थामें लवङ्ग मिर्च, धनिया आदि मसाले डाल दे। पीछे यह जब अच्छी तरह सिद्ध हो जाय तो नीचे उतार ले। इस प्रणालीसे पाक करने पर उसे सहण्डुक कहते हैं। इसका गुण—अत्यन्त शुक्रवर्द्धक, बलकारक रुचिकर शरीरका उपचयकारक, त्रिदोष शान्तिके पक्षमें श्रेष्ठ, अग्निप्रदीपक और धातुपोषक।

सहत (अ० पु०) शहद देखो।

सहत महत (हि० पु०) आवस्ती देखो।

सहतरा (फा० पु०) पर्पटक, पित्तपापड़ा।

सहतूत (फा० पु०) शहतूत देखो।

सहत्व (स० क्ली०) १ सहका भाव। २ एक होनेका भाव, एकता। ३ मेल जोल।

सहदइया (हि० स्त्री०) सहदेई देखो।

सहदान (स० क्ली०) बहुतसे देवताओंके उद्देश्यसे एक साथ ही या एकमें किया जानेवाला दान।

सहदानु (स० त्रि०) दानु शब्दका अर्थ दानवी, दनमाता है, उसके सहित या दानवके सहित। (ऋक् १।३२।९)

सहदेई (हि० स्त्री०) क्षुप जातिकी एक वनौषधि जो पहाड़ी भूमिमें अधिक उपजती है। यह तीन चार फुट ऊंची होती है। इसके पत्ते महुएके पत्तोंके समान होते हैं। वर्षा ऋतुमें यह उगती है। बढ़नेके साथ साथ इसके पत्ते छोटे होते जाते हैं। पत्तों की जड़में फूलोंकी कलियां निकलती हैं। ये फूल बरियारेके फूलोंकी भांति पीले रङ्गके होते हैं। इसके पौधे चार प्रकारके पाये जाते हैं।

सहदेव (स० पु०) १ पाण्डुके पञ्चम पुत्र। पञ्च-पाण्डवमें सहदेव पञ्चम थे। माद्रीके गर्भसे इनका जन्म हुआ था। महाभारतमें इनके जन्मादिका विवरण लिखा है। राजा पाण्डुके दो स्त्री थी —कुन्ती और माद्री। मुनिके शाप से पाण्डु स्त्री सहवाससे वञ्चित थे। कुन्तीके गर्भसे पाण्डुके युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए। पाण्डु शब्द देखो।

कुन्तीके पुत्र हुआ है देख कर माद्रीने एक दिन पाण्डुसे एकान्तमें कहा 'हम दोनों सपत्नी समान हैं, परन्तु मेरे एक भी सन्तान नहीं, भाग्यक्रमसे कुन्तीके

तीन पुत्र हुए हैं। अभी यदि कुन्ती मेरी सन्तानोत्पत्ति-का उपाय कर दें, तो उनका मेरे प्रति अनुग्रह होगा और इसमें आपकी भी भलाई होगी। कुन्ती मेरी सपत्नी हैं, इसलिये मैं उन्हें नहीं कह सकती, आप भले ही कह सकते हैं।

इसके बाद पाण्डुने निर्जनमें कुन्तीसे कहा, 'कल्याणि! जिससे मेरा वंश विच्छिन्न न हो तथा जिससे तेरे जैसे माद्रीमें सन्तान हो, वैसा उपाय करो।' यह बात सुन कर कुन्तीने माद्रीसे कहा, 'तुम एक बार किसी देवताका स्मरण करो, उससे तुम्हारे तदनुरूप पुत्र होगा, इसमें सन्देह नहीं। तब माद्रीने मन ही मन अश्विनीकुमारद्वय का स्मरण किया। अश्विनीकुमारद्वयने वहां आ कर निरुपम रूपसम्पन्न यमज पुत्र उत्पादन किये। दोनों पुत्रोंके नाम नकुल और सहदेव रखे गये। ये दोनों सर्वदा युधिष्ठिरके अनुगत थे। (भारत आदिप०)

नकुल शब्द देखो।

२ जरासन्धके पुत्र। ये युधिष्ठिरके समय मगधदेशके राजा थे। ३ हर्य्यश्वके पुत्र। (हरिवंश २९।३) ४ सोमदत्तके पुत्र। (हरिवंश ३२।८०) (त्रि०) देवैः सह वर्तमानः। ५ देवताके साथ वर्त्तमान।

सहदेव—अग्निस्तोत्र, व्याधिसन्धविमर्दन और शाकुन शास्त्रके रचयिता। ब्रह्मवैवर्त्त पुराणमें इनका उल्लेख है।

सहदेव चक्रवर्त्ती—धर्ममङ्गलके प्रणेता एक सुप्रसिद्ध बंगाली कवि। घनराम धर्ममङ्गल रचित होनेके बाद इन्होंने भी तनसंक्रान्त और एक काव्यकी भी रचना की। हुगली जिलेके बालीगढ़ परगनेके राधानगर ग्राम में कविका जन्म हुआ। १७४० ई०में कालू राय नामक देवताके स्वप्नादेशसे इन्होंने धर्ममङ्गलकी रचना आरंभ की। यह धर्ममङ्गल घनराम आदि कवियोंके काव्यानुकरण नहीं है। इसका विषय सम्पूर्ण स्वतन्त्र है। इसमें नाना हिन्दू देव देवियोंके प्रसङ्गके साथ बौद्ध उपाख्यान भी सन्निविष्ट हुए हैं। ग्रन्थ ग्राम्यभाषासे पूर्ण और कई जगह मर्मस्पर्शी है।

सहदेवा (सं० स्त्री०) १ बला, बरियारा। २ दन्तोत्पल। ३ पीतपुष्पी सहदेई। सहदेई देखो। ४ अनन्तमूल, शारिवा। ५ नील। ६ सर्पाक्षी, सरहटी। ७ प्रियंगु। ८ सोनवल्ली नामकी वनस्पति। यह क्षुप जातिकी वनस्पति है तथा भारतवर्षके प्रायः सभी प्रान्तोंमें पाई जाती है। इसकी ऊंचाई दो फुट तक होती है। इसकी डंडीके नीचेके भागमें पत्ते नहीं होते। पत्ते दोसे चार इञ्च तक चौड़े, गोल और सिरे पर कुछ तिकोने होते हैं। इनकी डंडियां १-२ इंच लंबी होती हैं। फूल छोटे छोटे होते हैं। यह औषधके काममें आती है। ९ भागवतके अनुसार देवककी कन्या और वसुदेवकी पत्नी।

सहदेवी (सं० स्त्री०) १ पीतपुष्पी, सहदेई। सहदेई देखो। २ सर्पाक्षी, सरहटी। ३ महानीली। ४ प्रियंगु। ५ सहदेवकी स्त्री।

सहदेवीगण (सं० पु०) ओषधिसमूह। सहदेवी, बला, शतमूली, शतावरी, कुमारी, गुडूची, सिंही और व्याघ्री इन सब द्रव्योंको सहदेवीगण कहते हैं। "या ओषधिः सोमराज्ञी" इत्यादि वैदिक मन्त्र पढ़ कर इन सब द्रव्योंसे स्नान कराना होता है। (गरुड़पु० ४८ अ०)

सहधर्म (सं० पु०) १ धर्म। २ धर्मके सहित। ३ समान धर्म।

सहधर्मचर (सं० त्रि०) सहित धर्माचरणकारी, एकत्र धर्माचरण करनेवाला।

सहधर्मचरण (सं० क्ली०) एकत्र धर्माचरण, सहित धर्मानुष्ठान।

सधर्मचरी (सं० स्त्री०) स्त्री, पत्नी, जोरू।

सधर्मचारिन् (सं० त्रि०) एकत्र धर्मानुष्ठानकारी, एक साथ धर्म करनेवाला।

सहधर्मचारिणी (सं० स्त्री०) सहधर्मचरी, सहधर्मिणी, पत्नी, जोरू।

सहधर्मन् (सं० त्रि०) धर्मके सहित।

सहधर्मिणी (सं० स्त्री०) पत्नी, स्त्री, जोरू।

सहधान्य (सं० त्रि०) १ धान्यके सहित। २ जीवनरक्षाका उपायविशिष्ट।

सहन (सं० क्ली०) सह ल्युट्। १ क्षान्ति, क्षमा, तितिक्षा। २ सहनेकी क्रिया, बरदाश्त करना। (त्रि०) ३ सहनशील, सहनेवाला।

सहन (अ० पु०) १ मकानके बीचमें या सामनेका खुला छोड़ा हुआ भाग, आँगन, चौक। २ एक प्रकारका मोटा

गफ चिकना सूती कपड़ा जो मगहरमें अच्छा बनता है, गाढ़ा। ३ एक प्रकारका बढ़िया रेशमी कपड़ा।

सहनक (सं० पु०) १ एक प्रकारकी छिछली रिकाबी जिसका व्यवहार प्रायः मुसलमान लोग करते हैं, तबक। २ बीबी फातिमाकी निमाज या फातिहा।

सहनभण्डार (सं० पु०) १ कोष, खजाना, निधि। २ धन राशि, दौलत।

सहनर्त्तन (सं० क्ली०) एकत्र गोलाकारमें नाचना।

सहनशील (सं० त्रि०) १ जिसका स्वभाव सहन करनेका हो, जो सरलतासे सह लेता हो, बरदाश्त करने वाला। २ सन्तोषी सब्र करनेवाला।

सहनशीलता (सं० स्त्री०) १ सहनशील होनेका भाव। २ सन्तोष सब्र।

सहना (हिं० क्रि०) १ बरदाश्त करना, झेलना, भोगना। २ परिणाम भोगना, अपने ऊपर लेना, फल भोगना ३ बोझ बरदाश्त करना, भार वहन करना।

सहनाई (फा० स्त्री०) शहनाई देखो।

सहनीय (सं० त्रि०) सह्य, सहन करनेके योग्य, जो सहा जा सके।

सहन्तम (सं० त्रि०) शत्रुओं का अभिभवकारी।

सहन्त्य (सं० त्रि०) शत्रुओंका अभिभवनशील, अग्नि।

सहपति (सं० पु०) १ ब्रह्मा। (त्रि०) २ भर्त्तृयुक्त, पति के सहित। (शुक्लयजु० ३७,२०)

सहपत्नी (सं० स्त्री०) पतिपत्नीयुक्त, दम्पती।

सहपांशुकिल (सं० पु०) वयस्य, सखा। (त्रिका०)

सहपांशुक्रीडन (सं० क्ली०) धूल खेलना।

सहपाठ (सं० स्त्री०) एकत्रपाठ, एक साथ पढ़ना।

सहपाठिन् (सं० त्रि०) सहाध्यायी, जो साथमें पढ़ा हो जिसने साथमें विद्याका अध्ययन किया हो।

सहपान (सं० क्ली०) एकत्र मद्यभक्षण, एक साथ शराब पीना।

सपिण्डक्रिया (सं० स्त्री०) सपिण्डीकरणक्रिया, सपिण्डीकरण श्राद्ध।

सहपीति (सं० स्त्री०) एकत्र मद्यपान, एक साथ शराब पीना।

सहपुरुष (सं० त्रि०) पुरुषयुक्त।

सहपूर्वाह्न (सं० क्ली०) पूर्वाह्न सदृश।

सहप्रम (सं० त्रि०) एकत्र इच्छा परिहार।

सहप्रयायिन् (सं० त्रि०) एकत्रगामी सहगामी।

सहप्रयोग (सं० पु०) एकत्र प्रयोग।

सहप्रसाद (सं० त्रि०) सप्रसाद, प्रसादयुक्त।

सहप्रस्थायिन् (सं० त्रि०) एकत्र प्रस्थानकारी एक साथ जानेवाला।

सहभक्ष (सं० त्रि०) १ समान सोमपानविशिष्ट। (क्ली०) २ सहभोजन साथ खाना।

सहभस्मन् (सं० त्रि०) भस्मके सहित।

सहभाव (सं० पु०) भावके साथ समान भावविशिष्ट।

सहभाविन् (सं० पु०) १ वह जो सहायता करता हो, सहायक, मददगार। २ सहोदर। ३ सहचर, सखा।

सहभुज् (सं० त्रि०) सह भुज् क्विप्। एकत्र भोजन कारी एक साथ खानेवाला।

सहभू (सं० त्रि०) एकत्रोत्पन्न, एक साथ उत्पन्न।

सहभूत (सं० त्रि०) एकत्रके साथ।

सहभोजन (सं० क्ली०) सह भिन्नित्या भोजन। १ एकत्र भक्षण, एक साथ बैठ कर भोजन करना साथ खाना। २ सहभोगकरण।

सहभोजिन् (सं० त्रि०) सह भुज णिनि। एकत्र भोजन-कारी, जो एक साथ बैठ कर खाते हों, साथ भोजन करनेवाले।

सहम (सं० क्ली०) १ सङ्कोच लिहाज। २ ज्योतिषके मतसे ताजकोक्त योग। वर्षविचारके समय सहम स्थिर कर तब फलाफल निरूपण करना होता है। ताजकमें लिखा है—सहम पचास तरहका होता है। पचासोंके नाम इस तरह हैं १ पुण्यसहम, २ गुरु, ३ ज्ञान, ४ यशः, ५ मित्र, ६ माहात्म्य, ७ आशा, ८ समर्थ, ९ भ्राता १० गौरव, ११ राजा १२ पिता, १३ माता, १४ पुत्र १५ जीवित, १६ जल, १७ कर्म, १८ रोग १९ काम, २० कलि, २१ क्षमा, २२ शास्त्र, २३ बन्धु २४ बन्दक, २५ मृत्यु २६ परदेश २७ धन, २८ परदार २९ अन्यकर्म, ३० वाणिज्य, ३१ कार्यसिद्धि ३२ उद्वाह, ३३ प्रसव, ३४ सन्ताप, ३५ श्रद्धा, ३६ प्रीति, ३७ बल, ३८ शरीर ३९ जड़ता ४० व्यापार, ४१ जलपतन, ४२ रिपु, ४३

शौर्य, ४४ उपाय, ४५ दरिद्रता, ४६ गुरुता, ४७ जलपथ, ४८ बन्धन, ४९ कन्या और ५० अश्वसहम। गणनाके समय पहले यह स्थिर किया जाता है, कि इन पचास सहमोंमें कौन सहम हुआ। इसके बाद फलनिरूपण करना होता है।

ताजकमें सहम विचारस्थलमें इनके प्रत्येकका विशेष विवरण दिया गया है। बाहुल्यके भयसे यहां दिया न गया।

सहम (फा० पु०) १ डर, भय, खौफ। २ संकोच, लिहाज, मोलाहजा।

सहमन (सं० त्रि०) जिसका मन दूसरेके साथ मिलता हो, एक मनका।

सहमना (फा० क्रि०) भय खाना, भयभीत होना, डरना।

सहमरण (सं० क्ली०) सहपत्या मरण। यह मृत्यु संकल्पपूर्वक और क्रिया विशेषके साथ सम्पादित की की जाती थी। सहमरण पद्धति देखो। मृतपतिके शव के साथ ज्वलच्चितामें बैठ कर अपनी देहको भस्म करना। जो स्त्री पतिके साथ अनुगमन करती है, उस को सती कहते हैं।

कृष्ण यजुर्वेदीय तैत्तिरीय आरण्यकमें इसके सम्बन्ध में जो कुछ मन्त्र उद्धृत हुआ है वह यह है—

"इयं नारी पतिलोकं वृणाना निपद्यत उपत्वा मर्त्त्य प्रेतम्।
विश्वं पुराण मनुपालयन्ती तस्यै प्रजां द्रविणं चेह धेहि ॥"

सायणाचार्यने इसका निम्न प्रकारसे भाष्य किया है—'हे मर्त्त्य मनुष्य या नारी मृतस्य तव भार्य्या सा पति-लोकं वृणाना कामयमाना प्रेतं मृतं त्वामुपनिपद्यते समीपे नितरां प्राप्नोति। कीदृशी। पुराणं विश्वमनादि-कालप्रवृत्तं कृत्स्नं स्त्रीधर्ममनुक्रमेण पालयन्ती पति-व्रतानां स्त्रीणां पत्या सहैव वासः परमोधर्मः। तस्यै धर्म-पत्न्यै त्वमिह लोके निवासार्थं मनुज्ञां दत्वा प्रजां पूर्वविद्य-माना पुत्रादिकां द्रविणं धनं च धेहि सम्पादय अनुजा-नीहीत्यर्थः।'

इससे प्रतिपन्न होता है, कि सहमरण ही विधवा स्त्रियोंका कर्त्तव्य था, किन्तु पुत्रधन आदिकी रक्षाके लिये मृत पतिकी अनुज्ञा ले उनको सहमरणके दायित्व की रक्षा करनी पड़ती थी।

और एक ऋक् यह है—

"उदीर्ष्व नार्य्यभि जीवलोकं गितासुमेतमुपशेष एहि।"

सायणने इसका भाष्य यों किया है—"हे नारि त्वमि तासुं गतप्राणमेतं पतिमुपशेष उपेत्य शयनं करोषि। उदीर्ष्वास्मात् पतिसमीपात् उत्तिष्ठ। जीवलोकमभि-जीवन्तं प्राणिसमूहमभिलक्ष्यैहि।"

ये दोनों मन्त्र ही तैत्तिरीय-आरण्यक ग्रन्थके छठे प्रपाठकके प्रथम अनुवाकमें उद्धृत हुए हैं। इन दो मन्त्रों द्वारा विशिष्टरूपसे प्रमाणित होता है, कि वैदिक समयमें भी सहमरणकी प्रथा प्रचलित थी। किन्तु पुत्रादि रक्षणके लिये सहमरणमें बाधा उपस्थित होती थी। पिछले कालमें और स्थल-विशेषमें सहमरणप्रथा प्रतिनिवर्त्तक निषेध स्पष्टरूपसे ही विधिबद्ध हुआ था।

"बालापत्यान्वगर्भिण्यो ह्यदृष्टे ऋतवस्तथा।
रजस्वला राजसूते नारोहन्ति चितां शुभे ॥"

(कृत्यतत्त्वार्णवधृत वृहन्नारदीयम्)

सायणके भाष्यमें अग्निप्रवेशकी कोई बात नहीं है। किन्तु स्मार्त्त रघुनन्दनने उक्तमन्त्रके 'अग्रे' पाठके स्थान-में 'अग्ने' पाठकी कल्पना कर यह मन्त्र सहमरणका श्रौत-मन्त्र निर्द्धारित किया है। अनुमृता शब्द देखो।

महाभारतमें भी सहमरणका प्रमाण मिलता है। माद्री पाण्डु राजाको चिता पर चढ़ कर सहमृता हुई थी।

मौषलपर्वमें दिखाई देता है, कि वसुदेवकी मृत्युके बाद उनकी चार रानियाँ उनकी मृतदेहके साथ भस्मी-भूत हुई थीं। उन्होंने भी स्वेच्छापूर्वक पतिकी ज्वल-चितामें बैठ कर अपनी देहकी आहुति कर डाली।

(मौषलप० ७म अध्याय)

द्रोणकी पत्नी भी सहमृता हुई। महाभारतके पन्नों-को उलटनेसे ऐसी सहमृता साध्वी नारियोंकी घटना और अधिक दिखाई दे सकती है। सहमरणकी यह प्रथा बहुत प्राचीनकालसे चली आती है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। हाँ, यह अवश्य है, कि स्त्रीमात्र सह-मृता होती न थी। कोई कोई मृतपतिका अनुगमन करती

[illegible] सूक्त पर मुद्रित हुआ था। यहां राजा बहादुरके [illegible] अनुवाद हमें उद्धृत कर देते हैं—

तैत्तिरीय संहिताकी [illegible] नामकी शाखाके दो श्लोकों-में सहमरण [illegible] कथा सुस्पष्टरूपसे उल्लिखित है। नारायण उपनिषद्के ८४ नम्बर श्लोकमें यह उद्धृत हुआ है।

[illegible] और आश्वलायन आदि वैदिक शास्त्रोंमें [illegible] है। दाक्षिणात्यसे प्रचलित [illegible] 'सहमरणविधि' सुपरिचित ग्रन्थमें उक्त सहमरणकी व्यवस्था दिखाई देती है।

रघुनन्दन भट्टाचार्यने 'शुद्धितत्त्व'में उक्त ऋग्वेद और ब्रह्मपुराणके श्लोक उद्धृत कर प्रमाणित किया [illegible] सहमरणप्रथा वेदविधिसम्मत है। आचार्य [illegible] रघुनन्दनके इस प्रसिद्ध श्लोकको '[illegible] कर्त्तव्य' नामक अङ्गरेजी प्रबन्धमें [illegible] किया है। राजा राधाकान्तने उक्त प्रमाण [illegible] लिखा था,- 'इमा नारीरविधवा,-सपत्नीः आञ्जनेन सर्पिषा संविशन्तु। अनश्रवोऽनमीराः सुरत्ना आरोहन्तु जनयो योनिमग्रे। ऋग्वेदवादात् साध्वी स्त्री न भवेदात्मघातिनी।' आश्वलायनी, सांख्यायनी, [illegible], मण्डूकेयी आदि" यहां देखा जाता [illegible] कि सहमरणके समय विधवाको सधवाके समुदय [illegible] करने होते हैं। यहां "साध्वी" शब्दका अर्थ - स्वामीके साथ चितामें दग्ध हो प्राण त्याग [illegible] स्त्री।

[illegible] और आश्वलायन सूत्रग्रन्थसे भी स्पष्टतः [illegible] कि वैदिक युगमें सहमरणकी प्रथा प्रचलित थी।

[illegible] कहते हैं, कि वेदमें यदि सहमरणकी [illegible] स्मृति और पुराण आदिमें यह प्रथा [illegible] होती। क्योंकि वेदसे गुरुतर [illegible] आवश्यकता है। [illegible] सहमरणका निषेध नहीं किया गया है। तैत्तिरीय संहिताकी नारायणशाखाके श्लोक सहमरण-के अनुकूल हैं। अग्निके प्रति सतीका सम्बोधन वाक्य इसका अकाट्य प्रमाण है।

मीमांसकोंका कहना है, कि—जब दो भिन्न भिन्न विरोधी व्यवस्था दिखाई देती हैं, तब तीसरी व्यवस्था बना लेना युक्तिसंगत है। "तुल्यबलविरोधे विकल्पः"—गौतम-न्याय। कुल्लूक भट्टकी भी यही राय है। वैदिक सूत्रकारोंने किस तरह मीमांसा की है, अब उसकी आलो-चना करें। सूत्रकारोंका कहना है, कि ब्राह्मणके बलिदानार्थ अस्त्रादि या पात्रादि जैसे अग्नि पर रखना होता है, वैसे ही सतीको आग पर रखना कर्त्तव्य है, नहीं तो शुद्धा नहीं होती। किन्तु जो विधवा इच्छापूर्वक सहमृता होना चाहे, उसको अग्निके समीप ले जानेकी आवश्यकता नहीं, क्योंकि वह स्वयं चिताके पास चली जाती है, जो वहां जाने पर राजी नहीं, वह वहां जा कर शुद्धा हो सकती है, किन्तु शुद्धा होना या न होना उसकी इच्छा है। इसीसे श्रुतिने व्यवस्था की है,—विधवायें अपने वशवर्त्तिनी होने दो, बलपूर्वक कोई कार्य करना अनुचित है। तर्क यह है, कि यदि विधवा स्वेच्छापूर्वक सहमृता होना न चाहे तो उसकी इच्छाके विरुद्ध कार्य करना उचित है या नहीं? कभी नहीं। विधवा जब चिता पर शयन कर चुकी, तब समझ लेना होगा कि सहमृता होनेकी उसकी इच्छा है। आठवें श्लोककी आवृत्ति कर पूछा गया है, कि "तुम स्वेच्छापूर्वक सहमृता होने आई हो या नहीं?" दक्षिणादेशका सहमरणविधि नामक ग्रन्थ देखो। यदि वह कहे—"स्वेच्छापूर्वक मैं सती होती हूं।" तो सहमरणकी क्रिया अवश्य हो सकेगी। सम्मता न हो, तो चितासे उठ कर विधवा जा सकती है। ऐसी विधवाओंका नाम चिता-भ्रष्टा है। प्राजापत्य नामधेय प्रायश्चित्त द्वारा ऐसी विधवाओंका पाप नष्ट हो सकता है। क्योंकि शास्त्रमें ऐसी व्यवस्था है। ८वीं ऋक्के सायणकृत भाष्य पढ़िये, "यस्मात् अनुमरणनिश्चयम् अकार्षीत तस्मादागच्छ।" यह अवश्य स्वीकार्य है, कि हिन्दू-स्त्री विधवा होने पर सहमरणका परामर्श उसको कोई सहज ही दे नहीं सकता। पर उसको लोग ऐसा ही परामर्श देते हैं,

---

[illegible] इस [illegible] मूल और प्रमाण उद्धृत हुए हैं।

जिससे वह परिवारमें रह कर प्रकृत वैधव्य धर्मका पालन करते हुए गार्हस्थ्यकर्म सम्पादन करे। किन्तु यदि वह स्त्री सहमृता होना चाहे, तो उसकी इच्छाके विरुद्ध कोई बाधा नहीं दे सकता। अब देखा गया, कि ऋग्वेदकी ८वीं ऋक् सहमरणकी केवल अनुकूल नहीं, वर मन्त्र स्वरूप है। राजा राधाकान्तदेवने इसी तरहसे सतीदाहका समर्थन किया है।

दो सहस्र वर्ष पहले प्रवारटीयस् नामक सुप्रसिद्ध यूनानी पण्डित भारतवर्षकी सहमरणप्रथाका विवरण लिख गये हैं। ययशोद नामक एक अङ्गरेज पण्डितने इस ग्रन्थके कई श्लोकोंका अङ्गरेजीमें अनुवाद किया था।

उन्होंने और भी कहा है, इसके भी बहुत वर्ष पहले सिसिरो नामक भुवनविख्यात यूनानी पण्डित अपने ग्रन्थ में Tusculune सहमरणप्रथाका उल्लेख कर गये हैं। हेरोडोतसने जो विश्वप्रसिद्ध ऐतिहासिक हैं, लिखा है कि थ्रेस देशकी एक जातीय स्त्रियां अपने मृत पतिका कब्रमें आत्मबलि दे कर प्राणत्याग करती थी।

सतीदाहके सम्बन्धमें एक सत्य कहानी सुनिये। पहले ही कहा जा चुका है, कि सन् १८२९ ई०में अङ्गरेज सरकारने कानून बना कर सतीदाहकी प्रथा रोक दी सन् १८२१ ई०में कुछ पूर्व बङ्गालके छोटे लाट सर हालिडे हुगली जिलेके मजिस्ट्रेट थे। उन्होंने अपनी आंखोंसे एक सतीदाहकी घटना देख कर जो विवरण लिपिबद्ध किया था, वह यकलेण्ड साहबके लिखे ग्रन्थमें उद्धृत हुआ है। सर एफ हालिडेने लिखा है,—मैं जब हुगलीका मजिस्ट्रेट था, तब एक दिन सहसा मुझको समाचार मिला, कि मेरे घरसे कुछ मील दूर गङ्गाके किनारे सतीदाहका आयोजन हो रहा है। उस समय गङ्गाके किनारे ऐसी घटना होते सुनी जाती थी। जब यह समाचार मुझे प्राप्त हुआ, उस समय डाक्टर वारन तथा गवरनर जनरेल चापलेन मेरे पास बैठे थे। हम लोग तीनों आदमी घटनास्थल पर उपस्थित हुए। जा कर हम लोगोंने देखा, कि गङ्गातीरके घटनास्थलमें अपार भीड़ खड़ी है। जनतामें सती रमणी बैठी है। हम लोग उनके पास जा कर बैठे। मेरे दो साथियोंने उनको आत्महत्यासे प्रतिनिवृत्त होनेके लिये बहुतेरे उपदेश दिये। सती रमणीने ध्यान दे कर उनकी सारी बातें सुनी किन्तु वे अपने दृढ़ सङ्कल्पसे तिल भर भी पीछे न हटी।

कुछ देरके बाद उन्होंने पतिकी शवदेहके साथ सोनेके लिये निरतिशय उत्कण्ठा प्रकाश करना आरम्भ किया और अनुमति मांगी। उनको प्रतिनिवृत्त करना कठिन समझ मैंने अनुमति दे डाली। इस समय पादरी साहबने बाधा दे कर कहा कि 'मुझे दो एक बातें पूछनी हैं।' उन्होंने सतीसे पूछना आरम्भ किया। सती आपने यह सोच लिया है कि आप जिस काममें प्रवृत्त हो रही हैं, उसमें कितनी यातना होगी। सतीने मेरी ओर अवनत दृष्टिसे देख कर कहा—"एक प्रदीप लाइये।' उन्होंने अपने हाथसे घृतमें डुबो कर बत्ती ठीक कर दी। सतीने जलते हुए दीपक पर अपनी एक उंगली रखी। सती रमणी ताथभावसे मेरी ओर देखने लगी। मानो वे मुझको नीरवरूपसे समझा रही थी, कि हम लोग जो सोच रहे हैं, वह कुछ भी नहीं है। अग्नि सर्वदाहक और सन्तापोत्पादक होने पर भी सतीरमणीको इससे जरा भी यातना नहीं होती। देखते देखते उनकी उंगली झुलस गई, फोड़ा निकल आया तथापि रमणी अटल और अचलभावसे खड़ी थी। उनके मुख पर बिन्दुमात्र भी यातनाका चिह्न दिखाई नहीं दिया। देखते देखते उंगली जल कर काली भी हो गई। किन्तु सतीने उस पर जरा भी अनुभूतिका चिह्न प्रकाश नहीं किया। अन्तमें उंगली जल कर सङ्कुचित हो सिकुड़ी और टेढ़ी हो गई। एक दृढ़ सत्पुरुषकी कुछ दूर अग्निमय तापमें रखने या उसकी जैसी अवस्था होती है सती रमणीकी अवस्था वैसी ही हो गई। इतने समयके भीतर उन्होंने अपनी उंगलीको जरा भी न हिलाया और न वाक्य द्वारा चाहे भाव भङ्गीसे यातना ही प्रगट की। उन्होंने पूछा—आप लोग समझ गये हैं क्या?

मैंने कहा—'अच्छी तरह समझ गया हूं।' तब सतीने कहा,—तब मैं चितामें प्रवेश कर सकती हूं? मैंने सिर हिला कर कहा—हां। सतीने श्मशान शय्या पर शयन किया। उन पर हलकी हलकी लकड़ियां रखी गईं। यदि वे वहांसे उठनेकी इच्छा करतीं, तो सहज ही

उठ जातीं। श्मशान-बन्धुओंने उनको बांध देनेकी चेष्टा की थी, किन्तु मेरी योजनासे वे ऐसा कर न सके। इसी समय उनके बोस वर्षके लड़केने चितामें अग्नि लगा दी। दूर देशमें सतीके पतिकी मृत्यु हुई थी, इससे शवदेह लाई न जा सकी। इससे उनके कपड़ेको ले कर ही सती सहमृता हुई। घृत और धूपसे अग्नि प्रज्वलित हो उठी। चिताके खूब निकट मैं खड़ा हो गया। मैंने देखा कि सजाये हुए काष्ठखण्डोंसे आगकी लपट निकल रही है। इसके भीतर सतीकी देह निस्पन्दभावसे जल रही है। एक बार सामान्य रूपसे काष्ठखण्ड हिले, किन्तु कुछ भी शब्द सुनाई न दिया। नीरव निस्पन्दभावसे सतीकी देह जल उठी। पुत्र शोकाकुल हो कर गङ्गाके किनारे गिर कर रोने लगा। हम लोग वहांसे घर लौट आये। भारतवर्षमें इस तरहके एक दो नहीं, लाखों उदाहरण मिल सकते हैं।

ई० १८११से १८२१ ई० तक कलकत्ते तथा उसके निकटके स्थानोंमें सतीदाहके विवरण मिले हैं। कहीं कहीं बलपूर्वक भी यह घटना हुई है, इसका भी रोमाञ्चकारी विवरण लोगोंकी जबानी सुना गया है। कलकत्तेके सुप्रसिद्ध फोर्टविलियम कालेजमें रामनाथ नामक एक संस्कृत अध्यापक रहते थे, उनसे मालूम हुआ, कि शान्तिपुरके निकट उला-ग्रामके मुक्ताराम बाबू नामक कुलीन ब्राह्मणकी १३ पत्नियां पतिके साथ सहमृता हुई थीं। इनमें एक महिला पहले उत्साहके साथ सहमृता होनेके लिये आई थी, किन्तु मन्त्रोच्चारण करते ही भयभीत हो कर भाग खड़ी हुई। तब उसीके लड़केने बलपूर्वक उसे चितामें फेंक दिया। अपनी एक सपत्नीके गलेमें गला जोड़ उसकी अनिच्छा रहते हुए भी उसको ले कर चिताग्निमें कूदना पड़ा।

सन् १८२९ ई०की चौथी दिसम्बरको Regulation XVII of 1329 सतीदाहके विरुद्ध कानून बनवाने पर भी भारतके बहुत स्थानोंमें सतीदाहकी घटनाएं हुई हैं। कानूनके अनुसार अपराधी भी राजदण्डसे दण्डित हुए हैं। इस समय कानूनके प्रबल शासनसे सती रमणी पति वियोगके दुर्विसह शोकमें आच्छन्न हो कर भी कभी कभी चितानलमें आत्मदेह अर्पण करनेमें सुविधा पा जाती हैं। फिर ऐसी घटना विरल नहीं। अब उसका रूप बदल गया है। शोककी उत्तेजनासे सती रमणियां पतिवियोग-की असीम यन्त्रणाको न सह आत्महत्या कर इस यातनासे छुटकारा पाती है। भारतवर्षमें सर्वत्र ही यह प्रथा प्रचलित थी। सन् १८८३ ई०में जयपुरराज्य-में उतर्णा नामक स्थानमें श्यामसिंह ठाकुरकी पत्नी मृत तणामीकी देहके साथ एक चिता पर भस्मीभूत हुई थी। इसके लिये अपराधीको दण्डित भी होना पड़ा था। कानूनकी प्रबल रुकावट रहने पर भी उत्तर-पश्चिम अञ्चलमें और राजपूतानेमें आज भी कभी कभी सतीदाह-की घटनाका समाचार मिलता ही रहता है।

महाराष्ट्र और राजपूतानेके सम्भ्रान्त महिलाओंमें सहमरणकी प्रथा अत्यन्त प्रचलित था। राजनीतिक कारणसे भी वे मृतपतिका अनुगमन करतीं थी। युद्धमें मुसलमानोंको जय होने पर पाछे मुसलमानोंके हाथ पड़ जायेंगी, इस भयसे राजपूतानेका वीर क्षत्राणियां चिता सजा कर जल जाती थीं। सिक्खोंमें भी यह घटना विरल न थी। इदूरके सुविख्यात जीवनसिंहकी पत्नी सन् १८४३ ई०में सहमृता हुई थी।

मानसिंहकी १५०० पत्नियोंमें ६[illegible] स्त्रियां सहमृता हुई थीं। टाड साहबके राजस्थानमें लिखा है, कि सन् १७८० ई०में आषाढ़ मासमें मारवाड़के राजा अजित-सिंहकी मृत्यु हुई। इस समय उनकी चौहान रानी, देरावल राजकुमारी, तुयर रानी, छवरा रानी, सेखावती रानी, अन्यान्य और भी पचास रानियां सहमृता हुई थी।

महाराष्ट्र प्रदेशमें सती दाह स्थल पर कीर्त्तिस्तम्भ स्थापित करनेकी रीति प्रचलित थी। ऐसे स्तम्भों पर सतीका पैर या हाथ अङ्कित किया जाता था। औकोल-के अन्तर्गत ब्रह्मवाडी नामक स्थानमें बापू गोखलेकी कन्याके चिता भस्म पर जो कीर्त्तिस्तम्भ निर्मित हुआ था, उस पर उनका पैर अङ्कित है। कुडिया गांके युद्धमें अपने स्वामीकी मृत्युका समाचार पा कर इस वीर-रमणीने प्रज्वलित अग्निमें अपनी देह भस्मीभूत कर दी थी।

भोजनगरमें सन् १०७० ई०में राजा लक्ष्रावने प्राण-

त्याग किया था। उनके श्मशानस्तम्भके ऊपर अम्बकी पाठ पर उनकी मूर्त्ति खुदी हुई है। उनके दक्षिणपार्श्वमें आठ और बाईं ओर सात पत्नियोंकी मूर्त्तियां हैं। कुल १५ स्त्रियां सहमृता हुई थीं।

सरगुजाकी काउर जातिमें भी यह प्रथा प्रचलित है। आज भी वहां प्रतापपुरके निकट सतीक्षेत्र विद्यमान है। सम्राट् अकबर इस प्रथाके विरोधी थे। योधपुरके राजकुमारकी मृत्यु होने पर उनकी पुत्रवधू सहमृता होने पर उद्यत हुई। यह समाचार पा कर इसे रोकनेके लिये अकबर एक शीघ्रगामी घोड़े पर चढ़ कर एक सौ मीलकी दूरीसे घटनास्थल पर पहुंचे थे। अकबरका कहना था, कि जो स्वेच्छापूर्वक मरती है, उनको मरने दो, किन्तु बलपूर्वक यह कार्य कराना अत्यन्त गर्हित और निन्दनीय काम है। हिन्दू भी सतियोंको प्रतिनिवृत्त करनेके लिये सहानुभूतिसूचक वाक्योंमें उन लोगोंकी सान्त्वना करते थे। इसका भी यथेष्ट प्रमाण है।

महाराष्ट्र प्रदेशके राजा शाहूकी पत्नी सुखवार बाईके सहमृता होनेके लिये उद्यत होने पर उनको रोकनेकी भरसक चेष्टा की गई। किन्तु उन्होंने कहा, "मैं अपने स्वामी कुलके गौरवकी रक्षाके लिये निश्चय ही सहमृता हूंगी।" यह कह कर वह प्रज्वलित चितामें कूद पड़ी थी।

यूरोपके परिव्राजकों और ऐतिहासिकोंमें बहुतेरोंका ख्याल इस प्रथाके प्रति दृष्टि पड़ी थी। किन्तु उनका विवरण अत्यन्त विभिन्न है। मिष्टर एल्फिन्सन साहबका कहना है, कि दक्षिण भारतमें यह प्रथा सर्वत्र प्रचलित न थी। कृष्णा नदीके दक्षिण भागमें कभी भी ऐसी घटना होनेका समाचार नहीं मिलता था। आधी दुबई इसका समर्थन कर गये हैं। किन्तु मार्कोपोलो और ओडरिकका कहना है कि दक्षिण भारतमें इस प्रथाका प्रचलन अधिक था। सन् १५८० ई०में पुर्त्तगाल परिव्राजक गेसपारो बाल्बीने नागपत्तनमें सतीदाह अपनी आंखों देखा था और यह लिखा है, कि यह प्रथा सर्वत्र ही प्रचलित थी। बर्थोलाम्यूके अबपेरेटर जेमल्स पी०विगम जो १७वीं शताब्दीके मध्यभागमें यहां उपस्थित थे, उन्होंने कनाड़ा अञ्चलमें कितनी ही सतीदाह देखी हैं। उन्होंने यहां कहानी सुनी थी कि मदुराके नायककी ग्यारह हजार स्त्रियां स्वामीके साथ सहमृता हुई थीं। ११ हजार सतीकी बात अत्युक्तिपूर्ण हो सकती है किन्तु मदुरा अञ्चलमें १८वीं शताब्दीके अन्तभाग तक भी सतीदाह प्रथा प्रचलित थी, इसका प्रमाण मिष्टर पी० मार्टिनके १७१३ ई०के लिखे एक पत्रमें लिखा है कि यहांके तीन सम्भ्रान्त व्यक्तियोंके मरने पर एकके साथ ४५, दूसरेके साथ १७ और तीसरेके साथ १२ स्त्रियां सहमृता हुई थीं। तिरुनापल्लीके राजाकी जब मृत्यु हुई, उस समय उनकी पत्नी आसन्नप्रसवा थी, वह सन्तान प्रसव करनेके बाद सहमृता हुई थी।

१८वीं शताब्दीके अन्त तक बङ्गालमें सतीदाहकी प्रथा बहुत प्रचलित था। मद्रास तथा उड़ीसेमें बङ्गालकी तरह अधिक सतीदाह देखा जाता न था। किन्तु गञ्जाम राजमहेन्द्री और विशाखपत्तनमें सतीदाहका प्रचलन था। महाराष्ट्रोंके शासनमें बम्बईमें सर्वत्र ही यह प्रथा प्रचलित हुई।

१९वीं शताब्दीके प्रारम्भमें भी अनेक बार सतीदाहकी प्रथा दिखाई दी। मिष्टर मूरने एक वर्षमें मुट्ठा और मूला नदीके सङ्गमस्थलमें छः सतीदाह देखे थे। नदियोंका सङ्गमस्थल ही सतीदाहका पुण्यस्थल कहा गया है।

भिन्न भिन्न प्रदेशोंमें सतीदाहके पृथक् पृथक् नियम थे। बङ्गदेशमें सतीको चिताके साथ रस्सीसे बांध रखनेकी प्रथा थी। उड़ीसेमें मिट्टीके नीचे श्मशानाग्नि सज्जित होता और सती उस पर झपट कर कूद जाती थी। दाक्षिणात्यमें सती मृतपतिको लिटा गोदमें ले कर बैठ जाती थी। सन् १८१७ ई०में केवल बङ्गदेशमें ७०६ और १८१८ ई०में ८३९ सतीदाह हुए थे। पतिशोकसे सतियां जलमें डूब कर भी प्राणत्याग करती थीं। काशीधाममें इस नामसे कोत्तिस्तम्भ स्थापित किया जाता था। रमणियां स्नान करनेके बाद इन कीर्त्तिस्तम्भों पर जल चढ़ाया करती थीं। सन् १९०१ ई०में गयाके दुखिया नामकी एक स्त्रीने मृत स्वामीकी चिता पर आरो-

हण किया था। कलकत्ता हाईकोर्टके जष्टिस घोष और वेलरके सामने उसका फैसला हुआ।

सिखोंमें सतीदाहकी प्रथा बहुत कम है, सिखग्रन्थोंमें लिखा है, कि जो स्त्री सहमृता होती है, वह यथार्थ सती नहीं। जो पतिके वियोगमें भग्नहृदय हो कर सदा शोकाभिभूत रहा करती है, वही प्रकृत सती है। किन्तु ऐसा उपदेश रहने पर भी कभी कभी सिख रमणियाँ मृतस्वामीका अनुगमन करती थीं, सिखराज सुचेत सिंहकी मृत्यु पर उनकी ३०० रानियोंने सहमृता होनेका सौभाग्य प्राप्त किया था। रणजित्‌सिंहकी मृत्युमें भी चार रानियोंने उनका अनुगमन किया था। प्रत्येक रानीने बड़े अनुरागसे प्रसन्न चित्तसे चितानलमें देह समर्पण कर दिया था। रणजित्‌सिंह और अनुमरण शब्द देखो।

प्राचीन शाकद्वीपियोंमें भी यह प्रथा यथेष्ट थी। सुप्राचीन थ्रेसीय, जिट और शाकगण 'सती'के गौरवसे गौरवान्वित थे। ईसाके ४४ वर्ष पहले डियोडोरस लिख गये हैं, कि ईसाके जन्मके ३ सौ वर्षसे भी अधिक पहले युमेनिसकी सेनावाहिनियोंमें ऐसी एक घटना हुई थी, आरिष्टविलास तथा ओनेसिक्रिटसकी विवरणीका उल्लेख कर ष्ट्राबो, सती माहात्म्यकी क्षीण स्मृति पाश्चात्य जगतमें विकाश करगये हैं। आरिष्टोविउलास तक्षशिलावासिनी पतिहीना रमणियोंकी आत्मोत्सर्ग प्रथाका परिचय दे गये हैं। सिसिरोके 'टासकिलियन डिसपिउटेसन' ग्रन्थमें और ६६ ई०में, प्लुतार्क रचित नीतिमालामें, भारतीय सतियोंकी सहमरण कहानी उज्ज्वल भाषामें वर्णित है। प्रोपार्सियस वर्णित सती कहानी रामुस्योंकी लेखनीमें लिखी हुई है।' भारतीय सतीकी कीर्त्ति १६०० वर्ष पहले सुसभ्य रोमन बड़ी मर्यादाकी दृष्टिसे देखते थे। उस दृश्यने दाम्पत्य-प्रणयका शीर्ष स्थान अधिकार कर एक दिन समग्र जगत्‌को पागल बना दिया था।

उत्तर देशवासी डेनमार्कोंने इस सती-कहानीको अपने देशके बल्डारके उपाख्यानमें विवृत कर रखा है। बल्डारकी सुन्दरी पत्नी नान्नाने स्वामीकी मृत्युसे अपना जीवन असार समझ उसकी चिताग्निमें अपनी देह जला दी थी।

शाकद्वीपीय लोग जानते हैं, कि जो स्त्री अनन्तकालस्वामी प्रेमाकांक्षिणी और अपने सुख दुःख भागिनी है, वही सती है। स्त्रियां भी परलोकमें स्वामिसङ्ग लाभकी आशासे स्वामीकी मृत्युदेहके साथ कब्रमें अपनी देह रखनेके लिये अग्रसर होती हैं। थेसियाओंमें साधारणतः बहुविवाह प्रचलित है। इन सब पत्नियोंमें जो सर्वापेक्षा स्वामीकी प्रियतमा होती, मृतपुरुषका निकटात्मीय उसको अपने हाथसे समाधि पर मार कर इसके बाद मृत-स्वामी-देहके साथ ही गाड़ देते हैं।

चीन देशके तातार कुलोद्भवोंमें शाकद्वीपीय सती प्रथा आज भी जोरोंसे है। यहां सम्भ्रान्तवंशीय व्यक्तियोंमें, विशेषतः राजपुरुषोंमें किसी व्यक्तिकी मृत्यु होनेसे केवल उसकी स्त्री ही नहीं, साथ उनके अनुचरोंको भी मृत्युमुखमें भेज दिया जाता था। सन् १६६२ ई०में सम्राट्‌की मृत्यु होने पर उनके अनुचर परलोकमें सम्राट्‌के कार्योंमें नियुक्त होनेकी आशासे आपसमें मार काट मचा कर मर गये थे।

भारतीय द्वीपपुञ्जके बीच बालि और लम्बक द्वीपमें आज भी ब्राह्मण्य धर्मका प्रबल प्रभाव है। यहाँ आज भी सतीदाहकी प्रथा जैसी प्रचलित है, वैसी भारतमें दिखाई नहीं देती। केवल विधवा पत्नी नहीं, यहां गुलाम स्त्रियां या खरीदी हुई स्त्रियां भी अपने प्रभुकी प्रज्वलित चितामें अपनी देह जला देती हैं। चितानलदाहके सिवा कभी कभी 'किरीच' नामक अस्त्रसे ऐसी नारियां मार डाली जाती हैं। लम्बक द्वीपमें विधवा रमणियां चितानलमें जलनेकी अपेक्षा किरीचसे विद्ध हो कर पतिका अनुगमन करना अधिक पसन्द करती हैं। यहां केवल पुरोहितोंकी स्त्रियां आत्मोत्सर्ग नहीं करतीं, किन्तु जो विशेष धनशाली या सम्भ्रान्त व्यक्ति हैं, उनकी विधवा पत्नियां मृतस्वामीकी चिता पर देह रख कर 'सती' ख्याति प्राप्त करनेमें समर्थ होती हैं। इस समय मृतकी चिताकी बगलमें एक बांसका-मञ्च बनता है। विधवा रमणी इस मञ्च पर चढ़ जाती और इससे पूर्व कई क्रियाओंका अनुष्ठान करती जिससे परलोकमें स्वामीका संगलाभ हो। उसके इन अनुष्ठानोंका अन्त होने पर चितामें अग्नि डाल दी जाती, मृतदेह दग्धीभूत कर

चितानलके प्रबल प्रभावसे प्रज्वलित हो उठने पर विधवा पत्नी इस मन्त्रसे कूद कर अग्निगर्भमें आत्मोत्सर्ग कर देती है।

सहमातृक (सं० त्रि०) समातृक, माताके सहित।

सहमान (सं० त्रि०) १ समर्याद, मानके साथ। २ सर्व शक्तिमान् ईश्वर। (छान्दोग्य उप० ३।१५।२)

सहमाना (सं० स्त्री०) वृक्षभेद। (अथर्व २।२५।२)

सहमाना (फा० क्रि०) किसीको सहमनेमें प्रवृत्त करना, भयभीत करना, डराना।

सहमूर (सं० त्रि०) सहमूल लक्ष्य र। मूलके सहित, मूलयुक्त। (ऋक् १०।८७।११)

सहमूल (सं० त्रि०) समूल, मूलयुक्त।

सहमृता (सं० स्त्री०) भर्त्ता सह मृता। वह स्त्री जो अपने मृत पतिके शवके साथ जल मरे, सहमरण करने वाली स्त्री, सती। अनुमृता और सहमरण देखो।

सहयशस् (सं० त्रि०) यशस्वन्, यशोयुक्त।

सहयायिन् (सं० त्रि०) मिलितगामी, सहयात्री।

सहयुज् (सं० त्रि०) सहयुक्त, युक्त।

सहयुध्वन् (सं० त्रि०) सहयुद्धकारी, एक साथ लड़ने वाला।

सहयोग (सं० पु०) १ साथ मिल कर काम करनेका भाव, सहयोगी होनेका भाव। २ साथ, संग। ३ मदद, सहायता। ४ आधुनिक भारतीय राजनीतिक क्षेत्रमें सरकारके साथ मिल कर काम करने, काउन्सिलों आदिमें सम्मिलित होने और उसके पद आदि ग्रहण करनेका सिद्धान्त।

सहयोगी (सं० पु०) १ सहायक, मददगार। २ वह जो किसीके साथ मिल कर कोई काम करता हो, साथमें काम करनेवाला, सहयोग करनेवाला। ३ वह जो किसीके साथ एक ही समयमें वर्त्तमान हो, समकालीन। ४ समवयस्क, हम उमर। ५ आधुनिक भारतीय राजनीतिक क्षेत्रमें सब कामोंमें सरकारके साथ मिले रहने, उसकी काउन्सिलों आदिमें सम्मिलित होने और उसके पद तथा उपाधियों आदि ग्रहण करनेवाला व्यक्ति।

सहर (सं० पु०) हरिवंशके अनुसार एक दानवका नाम।

सहर (अ० पु०) प्रातःकाल, सवेरा।

सहर (हिं० पु०) १ जादू टोना। २ शहर देखो। ३ सिहार देखो।

सहरक्षस् (सं० त्रि०) अग्नि और असुर।

सहरगही (फा० स्त्री०) वह भोजन जो किसी दिन निर्जल व्रत करनेके पहले बहुत तड़के या कुछ रात रहते ही किया जाता है, सहरी। इस प्रकारका भोजन प्रायः मुसलमान लोग रमजानके दिनोंमें रोज़ा रखने पर करते हैं। वे प्रायः ३ बजे रातको उठ कर कुछ भोजन कर लेते हैं और दिन भर निर्जल और निराहार रहते हैं। हिन्दुओंमें स्त्रियां प्रायः हरतालिका तीजका व्रत रखनेसे पहले भी इसी प्रकार बहुत तड़के उठ कर भोजन कर लिया करती हैं।

सहरना (हिं० क्रि०) सिहरना देखो।

सहरसा (सं० स्त्री०) मुद्गपर्णी, मुगानी।

सहरा (अ० पु०) १ अरण्य, वन जङ्गल। २ सियागोश नामक जन्तु।

सहराष्ट्र (सं० त्रि०) सराष्ट्र, राज्ययुक्त।

सहरि (सं० अव्य०) १ हरिके सहित। (पु०) २ सूर्य। ३ वृष, सांड़।

सहरिया (हिं० पु०) एक प्रकारका गेहूं।

सहरी (अ० स्त्री०) सफरी मछली।

सहरी (अ० स्त्री०) व्रतके दिन बहुत तड़के किया जाने वाला भोजन, सहरगही। सहरगही देखो।

सहरुण (सं० पु०) चान्द्राश्वभेद, चन्द्रमाके एक घोड़ेका नाम।

सहर्ष (सं० पु०) १ स्पर्द्धन। २ हर्ष। (त्रि०) ३ हर्षयुक्त, हर्षविशिष्ट।

सहर्षस (सं० त्रि०) हर्षयुक्त। (तैत्तिरीयब्रा० २६।७।२)

सहल (अ० वि०) जो कठिन न हो, सरल।

सहलनीय (सं० त्रि०) हलसे जोतने योग्य।

सहलाना (हिं० क्रि०) १ धीरे धीरे किसी वस्तु पर हाथ फेरना, मलना, सुहराना। २ गुदगुदाना। ३ मलना।

सहलोकधातु (सं० पु०) बौद्धोंके अनुसार एक लोकका नाम।

सहवत्स (सं० त्रि०) वत्सके सहित, बच्चेके साथ।

सहवत्सा (सं० स्त्री०) धेनु, गाय।

सहवन (हिं० पु०) एक प्रकारका तेलहन जिससे तेल निकाला जाता है।

सहवसति (सं० स्त्री०) एकत्रावस्थान।

सहवसु (सं० पु०) एक असुरका नाम जिसका उल्लेख ऋग्वेदमें है। (ऋक् २।१३।८ सायण)

सहवह (सं० त्रि०) एकत्र वहन। (ऋक् ७।९७।६)

सहवाच्य (सं० त्रि०) एकत्र कथनयोग्य, कहने लायक।

सहवाद (सं० पु०) सह-वद-घञ्। एकत्र कथन, आपसमें होनेवाला तर्क, वितर्क, विवाद, बहस।

सहवास (सं० पु०) सह-वस्-घञ्। १ एकत्र अवस्थिति, साथ रहनेका व्यापार, संग। २ मैथुन, रति, संभोग।

सहवासिक (सं० त्रि०) एकत्र वासकारी, साथ रहनेवाला।

सहवासिन् (सं० त्रि०) सह वासति वस-णिनि। एकत्रवासकारी साथ रहनेवाला।

सहवाह (सं० त्रि०) मिल कर वहन करनेवाला।

सहवीर (सं० त्रि०) पुत्र सहित। (ऋक् ३।४५।१३)

सहवीर्य (सं० त्रि०) वीर्य सहित, सदर्प।

सहव्रत (सं० त्रि०) सहव्रतं यस्य। एकत्र व्रताचरणकारी, साथ व्रत करनेवाला।

सहव्रता (सं० स्त्री०) सहधर्मिणी, पत्नी, भार्या।

सहशय्य (सं० क्ली०) सहशयन, साथ सोना।

सहस (सं० पु०) सहते इति (सहते रसुन्। उण् ४।१९।८) इति असुन्। १ मार्गशीर्षमास, अगहनका महीना। (उज्ज्वल) २ ज्योतिः। ३ बल।

सहसंवाद (सं० त्रि०) संवाद सहित, संवादयुक्त।

सहसंवास (सं० पु०) एकत्र वास, साथ रहना।

सहसंसर्ग (सं० पु०) परस्पर चर्मसंघर्ष, परस्पर सहवास।

सहसकिरन (हिं० पु०) मरीचिमाली, सूर्य।

सहसजीभ (हिं० पु०) शेषनाग।

सहसजातवृद्ध (सं० पु०) एकत्रजात और परिवृद्ध, एक पैदा होना और बढ़ना।

सहसदल (हिं० पु०) शतपत्र, कमल।

सहसनयन (हिं० पु०) सहस्र आँखोंवाला इन्द्र।

सहसफण (हिं० पु०) हजार फणोंवाला, शेषनाग।

सहसबाहु (हिं० पु०) सहस्रबाहु देखो।

सहसमुख (हिं० पु०) हजार मुखोंवाला, शेषनाग।

सहसम्भला (सं० स्त्री०) प्रेमार्थी युक्त, प्रणय सहित।

सहसम्भव (सं० त्रि०) एकत्र जात, जो एक साथ पैदा हुए हों।

सहसवदन (हिं० पु०) शेषनाग।

सहससीस (हिं० पु०) शेषनाग।

सहसा (सं० अव्य०) १ हठात्, एकदमसे, एकाएक, अचानक। पर्याय—अतर्कित, अकस्मात्।

(त्रि०) २ हास्ययुक्त, सहास्य। (माघ ६।५७)

सहसादृष्ट (सं० त्रि०) १ हठात् दृष्ट, अचानक देखा हुआ। (पु०) २ दत्तकपुत्र, गोद लिया हुआ लड़का।

सहसान (सं० पु०) सहते इति सह (ऋञ्जिवृधि मन्दि सहिभ्यः कित्। उण् ३।८७) इति असानच्। १ मयूर, मोर। २ यज्ञ। (त्रि०) ३ क्षमायुक्त। (उज्ज्वल) ४ शत्रुओंका अभिभवकारी। (ऋक् १।१८९।८)

सहसामान् (सं० त्रि०) वेदत्रयतेजः सहित।

सहसावत् (सं० त्रि०) सहस्वत्, तेजोयुक्त, बलयुक्त।

सहसिद्ध (सं० त्रि०) जन्मसे सिद्ध।

सहसिन् (सं० त्रि०) बलवान्, बलयुक्त, ताकतवर।

सहसूक्तवाक् (सं० त्रि०) मन्त्रसूक्तके वाक्ययुक्त।

सहसेविन् (सं० त्रि०) सहसेवाकारी, साथ सेवा करनेवाला।

सहसोद्गत (सं० पु०) एक बौद्ध यतिका नाम।

सहसोम (सं० त्रि०) सोमके सहित। (शुक्लयजु० ८।११)

सहस्कृत् (सं० त्रि०) बलकारक। (शुक्लयजु० ३।१८)

सहस्कृत (सं० त्रि०) बलसे किया हुआ।

सहस्त (सं० त्रि०) हस्तयुक्त, हस्तवाला।

सहस्तोम (सं० त्रि०) स्तोमके सहित, त्रिवृत् और पञ्चदशादि स्तोमके सहित। (ऋक् १०।१३०।७)

सहस्थ (सं० त्रि०) एकत्र स्थितियुक्त, साथ रहनेवाला।

सहस्थान (सं० क्ली०) साथ रहनेका स्थान।

सहस्थित (सं० त्रि०) एकत्रावस्थित, सहस्थ।

सहस्य (सं० पु०) पौष मास, पूसका महीना।

सहस्र (सं० क्ली०) १ दश सौकी संख्या जो इस प्रकार

त्रिओ आनी ३—१०१०। ग्रा प ग र ३—आद्रगोबत्त, शेवरोग, पद्मपत्र, रविदर, अर्जुन, नदनाला, इन्द्रवृष्टि। (कविकल्पलता)

(त्रि०) २ जो गिनतीमें दश सौ हो, पाँच सात्रा दूना।

सहस्रक (स० त्रि०) सहस्र शीर्षविशिष्ट, हजार मुख वाला। सहस्रफण नेत्र देना।

सहस्रकर (स० पु०) सहस्रकिरण, सूर्य।

सहस्रकरपन्नत्र (सं० पु०) सहस्र हस्त, पद और नेत्र युक्त, हजार हाथ, पैर और आंखोंवाला।

सहस्रकाण्ड (स० त्रि०) सहस्रसंख्यक काण्डयुक्त, हजार काण्डोवाला।

सहस्रकाण्डा (स० स्त्री०) श्वेत दूर्वा, सफेद दूब।

सहस्रकिरण (स० पु०) सहस्ररश्मि, सूर्य।

सहस्रकृत्वस् (स० त्रि०) सहस्रावृत्ति, सहस्र बार।

सहस्रकेतु (स० त्रि०) अनेक ध्वजविशिष्ट, बहु पताका युक्त। (ऋक् १।११६।१)

सहस्रगु (स० त्रि०) १ गोसहस्रपरिमित धन। (पु०) २ सूर्य, सहस्रकिरण। (बृहत्स० २८।१८)

सहस्रगुण (स० त्रि०) सहस्रगुणयुक्त, हजार गुना।

सहस्रगुणित (स० त्रि०) सहस्र द्वारा गुणित, हजारसे गुना किया हुआ।

सहस्रचक्षुस् (स० पु०) सहस्र चक्षु यस्य। हजार आंखोंवाला इन्द्र।

सहस्रचरण (स० त्रि०) सहस्र चरणानि यस्य। विष्णु।

सहस्रचित्त (स० पु०) विष्णु।

सहस्रचित्य (स० पु०) राजभेद। (भारत अनु०७०)

सहस्रचेतस् (स० पु०) सहस्रचित्त विष्णु।

सहस्रजित् (स० त्रि०) १ धनसेना यामदस्। शत्रु जय करो। (ऋक् १।१८८।१) (पु०) २ विष्णु। ३ मृगमद कस्तूरी। ४ कृष्णको पटरानी जाम्बवतीके दश पुत्रोंमेंसे एक।

सहस्रणी (स० पु०) हजार ऋषियोंकी रक्षा करनेवाले सोम।

सहस्रतम (स० त्रि०) सहस्र संख्याका पूरण, हजारवां।

सहस्रतय (स० स्त्री०) सहस्र की संख्या हजार।

सहस्रदंष्ट्र (स० पु०) पाठीन मत्स्य बोआरी मछली।

सहस्रदंष्ट्रिन् (स० पु०) बोआर मत्स्य बोआरी मछली।

सहस्रद (स० त्रि०) १ बहुत बड़ा दाता, हजारों गौ आदि दान करनेवाला। (पु०) २ पाठीन मत्स्य बोआरी मछली।

सहस्रदक्षिण (स० पु०) यागभेद, एक प्रकारका यज्ञ जिसमें हजार गौएं या हजार मोहर दान दी जाती है।

सहस्रदल (स० क्ली०) १ पद्म, कमल। (त्रि०) २ सहस्र पत्रविशिष्ट, जिसमें हजार पत्ते हों।

सहस्रदावन् (स० त्रि०) सहस्र धनदाता।

सहस्रदृश् (स० पु०) १ विष्णु। २ इन्द्र।

सहस्रदोस् (स० पु०) कार्त्तवीर्यार्जुन।

सहस्रद्वार (स० त्रि०) बहुद्वारविशिष्ट जिस घरमें बहुत दरवाजे हों। (ऋक् ७।८८।५)

सहस्रधा (स० अव्य०) सहस्र प्रकारार्थं धाच्। सहस्र प्रकार बहुत किस्म। (ऋक् १०।११४।८)

सहस्रधार (स० त्रि०) सहस्रधारायुक्त, जिसमें हजार धारा हों।

सहस्रधारा (स० स्त्री०) देवताओं आदिके स्नान कराने का एक प्रकारका पात्र जिसमें हजार छेद होते हैं। इनसे छेदोंसे जल निकल कर देवता पर पड़ता है।

सहस्रधी (स० त्रि०) तीक्ष्णबुद्धिशाली, बड़ा चतुर।

सहस्रधौत (स० त्रि०) हजार बार धोया हुआ।

सहस्रनयन (स० पु०) १ इन्द्र। २ सहस्र नयनयुक्त।

सहस्रनामन् (सं० क्ली०) १ वह स्तोत्र जिसमें किसी देवताके हजार नाम हों। जैसे,—विष्णुका सहस्रनाम शिवका सहस्रनाम आदि। (पु०) २ विष्णु। ३ शिव। ४ अमरसेन। (भावप्र०)

सहस्रनीथ (स० पु०) इन्द्र। (ऋक् १।७१।७)

सहस्रनेत्र (स० पु०) १ इन्द्र। २ विष्णु।

सहस्रनेत्राननपद्बाहु (स० पु०) विष्णु।

सहस्रपति (स० पु०) वह जो हजार गांवों का स्वामी और शासक हो। (मनु० ७।११५)

सहस्रपत्र (स० क्ली०) कमलपत्र।

सहस्रपर्ण (स० पु०) १ अर तोर। (ऋक् ८।६६।७) २ एक प्रकारका तृण। (सायण)

सहस्रपर्वा (स० स्त्री०) श्वेत दूर्वा सफेद दूब।

सहस्रपाद (सं० पु०) १ विष्णु। २ महादेव। (भारत १३।१४६।३९) ३ ऋषिविशेष। (भारत १।१०।७)

सहस्रपाद (सं० पु०) १ विष्णु। २ सूर्य। ३ कारण्ड-पक्षी, सारस।

सहस्रपोष (सं० पु०) हजार प्रकारसे पोषण।

सहस्रप्राण (सं० त्रि०) सहस्र प्राणयुक्त।

सहस्रबल (सं० पु०) विष्णुपुराणके अनुसार एक राजा-का नाम।

सहस्रबाहवीय (सं० क्ली०) सामभेद।

सहस्रबाहु (सं० पु०) १ बाणराज। ये बलिके ज्येष्ठ पुत्र थे। (भागवत १०।६२।२) २ कार्त्तवीर्य्यार्ज्जुन। इसके विषयमें पुराणोंमें कई कथाएं हैं। यह क्षत्रिय राजा कृतवीर्यका पुत्र था। इसका दूसरा नाम था हैहय। इसकी राजधानी माहिष्मतीमें थी। एक बार यह नर्मदामें स्त्रियों सहित जलक्रीडा कर रहा था। उस समय इसने अपनी सहस्र भुजाओंसे नदीकी धारा रोक दी जिसके कारण समीपमें शिवपूजा करते हुए रावणकी पूजामें विघ्न पड़ा। उसने क्रुद्ध हो कर इससे युद्ध किया, पर परास्त हुआ। एक बार यह अपनी सेना-सहित जमदग्नि मुनिके आश्रमके निकट ठहरा। मुनिके पास कपिला कामधेनु थी। उन्होंने कार्त्तिकेयकी अच्छी खातिर की। राजाने लालचमें आ कर मुनिसे कामधेनु छीन ली। जमदग्निने राजाको रोका और वे मारे गये। कार्त्तिकेय गौ ले कर चला, पर वह स्वर्ग चली गई। परशुराम उस समय आश्रममें नहीं थे। लौटने पर जब उन्होंने अपने पिताके मारे जानेका हाल सुना, तो उन्होंने कार्त्तिकेयको मार डालनेकी प्रतिज्ञा की और अन्तमें उन्हें मार भी डाला। ३ शिव, महादेव। (त्रि०) ४ बहुबाहुयुक्त। (भागवत ४।५।३)

सहस्रबुद्धि (सं० त्रि०) सहस्र धी।

सहस्रभक्त (सं० क्ली०) उत्सवविशेष। (राजतर० ४।२४३)

सहस्रभर (सं० त्रि०) धनभर्त्ता, धनपति।

सहस्रभागवती (सं० स्त्री०) देवीमूर्त्तिभेद।

सहस्रभाव (सं० पु०) हजार प्रकारकी अवस्था।

सहस्रभित् (सं० पु०) १ अमलबेंत। २ मृगमद, कस्तूरी।

सहस्रभुज (सं० पु०) सहस्रबाहु देखो।

सहस्रभुजा (सं० स्त्री०) देवीका वह रूप जो उन्होंने महिषासुरको मारनेके लिये धारण किया था। उस समय उनकी हजार भुजाएं हो गयी थीं इसीसे उनका यह नाम पड़ा था। चण्डीपाठके समय उनकी पूजा करनी होती है। इस देवीकी पूजा करनेसे सब प्रकार-का हित होता है।

सहस्रमङ्गल (सं० क्ली०) नगरभेद।

सहस्रमन्यु (सं० त्रि०) सहस्र प्रकार मनोवृत्तिविशिष्ट।

सहस्रमृति (सं० त्रि०) बहुविध रक्षणविशिष्ट।

सहस्रमूर्त्ति (सं० पु०) विष्णु, ब्रह्मरुद्रादि बहुमूर्त्तिविशिष्ट।

सहस्रमूर्द्धन (सं० पु०) १ विष्णु। २ शिव।

सहस्रमूल (सं० त्रि०) बहुसंख्यक मूलयुक्त।

सहस्रमूलिका (सं० स्त्री०) सहस्रमूली देखो।

सहस्रमूली (सं० स्त्री०) १ काण्डपत्ती। २ मुद्गपर्णी, वनमूंग। ३ मूसाकानी। ४ बड़ी शतावर। ५ बड़ी दन्ती।

सहस्रमौलि (सं० पु०) १ विष्णु। २ अनन्तदेव।

सहस्रयज्ञ (सं० पु०) एक बौद्ध यतिका नाम।

सहस्रयाज् (सं० त्रि०) सहस्रयाजिन्, हजार यज्ञ करने वाला।

सहस्रयाजिन् (सं० त्रि०) सहस्र यज्ञ यजनाकारी।

सहस्रयामन (सं० त्रि०) बहुमार्ग।

सहस्ररश्मि (सं० पु०) सूर्य।

सहस्ररश्मितनय (सं० पु०) सूर्यतनय, सूर्यके पुत्र।

सहस्ररेतस् (सं० त्रि०) बहुविध हिरण्यरेतस्क या प्रभूत-सार। (ऋक् ४।५।३)

सहस्रलोचन (सं० पु०) सहस्र लोचन, इन्द्र।

सहस्रवक्त्र (सं० पु०) सहस्रवदन, विष्णु।

सहस्रवत् (सं० पु०) सहस्रविशिष्ट।

सहस्रवर्चस् (सं० त्रि०) सहस्र किरणविशिष्ट, अतिशय दीप्तिमान्।

सहस्रवाच् (सं० पु०) महाभारतके अनुसार धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम। (भारत आदि०)

सहस्रवाज (सं० त्रि०) १ अपरिमितान्न। २ अपरि-मित बलशाली। (ऋक् १०।१०४।७)

सहस्रवीर (स० त्रि०) हजार शत्रुका जो विशेषरूपसे प्रेरण करे या अनेक पुत्रादिविशिष्ट।

सहस्रशाद (स० त्रि०) प्रभूत बलशाली, बहुत ताकतवर।

सहस्रवीर्या (स० स्त्री०) १ दूर्वा, दूब। २ महाशतावरी, बड़ी शतावर।

सहस्रवेध (स० क्ली०) १ चुक, चूक नामक खटाई। २ काञ्जी। ३ हिङ्गु, हींग।

सहस्रवेधिका (स० स्त्री०) मृगमद, कस्तूरी।

सहस्रवेधिन् (स० क्ली०) १ हिङ्गु हींग। (पु०) २ आम्लवेतस्, अम्लबेत। ३ कस्तूरी। (त्रि०) ४ सहस्र वेधकर्त्ता हजार वेध करनेवाला।

सहस्रशतदक्षिण (स० त्रि०) सहस्र शत दक्षिणायुक्त, जिस यज्ञकी दक्षिणा सौ हजार हो।

सहस्रशस् (स० अव्य०) सहस्र सहस्र, हजार हजार।

सहस्रशाख (स० पु०) सहस्र शाखाविशिष्ट चार वेद। एक एक वेदकी हजार शाखाएं हैं।

सहस्रशिखर (स० पु०) विन्ध्य पर्वत।

सहस्रशिरस् (स० पु०) सहस्रमस्तक, वासुकि।

सहस्रशीर्षन् (स० पु०) विष्णु।

सहस्रशीर्षाक्षिपादिन् (स० त्रि०) विष्णुसम्बन्धकारी।

सहस्रश्रवस् (स० त्रि०) अपरिमित कीर्त्ति।

सहस्रश्रवण (स०) विष्णु।

सहस्रश्रुति (स० पु०) पर्वतभेद, जम्बूद्वीपके मध्य एक पर्वतका नाम।

सहस्रसंवत्सर (स० क्ली०) हजार वर्ष।

सहस्रसनि (स० त्रि०) सहस्र दान, बहु धनदान।

सहस्रसम्मित (स० त्रि०) सर्वपरिमाणयुत।

सहस्रसा (स० त्रि०) सहस्रसंख्यक लाभोपेत, हजार लाभयुक्त।

सहस्रसाव (स० पु०) अश्वमेध यज्ञ।

सहस्रसाम्य (स० क्ली०) भवनभेद एक प्रकारका भवन।

सहस्रस्तुति (स० स्त्री०) भागवतके अनुसार एक नदीका नाम।

सहस्रस्रोत (स० पु०) भागवतके अनुसार एक पर्वतका नाम।

सहस्रस्वधीश्व (स० पु०) इन्द्रका रथ।

सहस्रांशु (स० पु०) सूर्य।

सहस्रांशुज (स० पु०) शनिग्रह।

सहस्रा (स० स्त्री०) १ अम्बष्ठा, मालिका, मोइया। २ मयूरशिखा मोरशिखा।

सहस्राक्ष (स० पु०) १ इन्द्र। २ विष्णु। ३ देवी भागवतके अनुसार एक पीठस्थान। इस स्थानकी देवी उत्पलाक्षी कही गई हैं।

सहस्राक्षजित् (स० पु०) रावणका पुत्र इन्द्रजित।

इन्द्रजित देखो।

सहस्राक्षधनुस् (स० क्ली०) इन्द्रधनुस्, रामधनुष।

सहस्राक्षर (स० त्रि०) अपरिमित वचनयुक्त।

सहस्राख्य (स० पु०) सहस्र आख्यायुक्त, सहस्र आख्याविशिष्ट।

सहस्राङ्क (स० पु०) हजार अङ्क।

सहस्राङ्घ्रि (स० स्त्री०) १ मयूरशिखा, मोरशिखा। २ मधुपालु वृक्ष, पालू।

सहस्राजित (स० पु०) भगवान्‌के पुत्र एक राजाका नाम।

सहस्रात्मन् (स० पु०) आदिदेव, ब्रह्मा।

सहस्राधिपति (स० पु०) वह जो किसी राजाकी ओरसे एक हजार गांवोंका शासन करनेके लिये नियुक्त हो।

सहस्रानन (स० पु०) विष्णु।

सहस्रानीक (स० पु०) राजा शतानीकके एक पुत्रका नाम। राजा शतानीक बहुत हजारों हाथी घोड़े दान करते थे तथा अनेक गुणके आगार थे। ब्राह्मणोंने ऐसे गुणयुक्तके पुत्रको सहस्रानीक नाम रखा।

सहस्रापेय (स० पु०) सहस्रशाख।

सहस्रावसस (स० त्रि०) बहुरूप, अनेक रूपविशिष्ट।

सहस्रामघ (स० त्रि०) बहुधन, अनेक धनयुक्त।

सहस्रायु (स० पु०) सहस्र वत्सर परमायुविशिष्ट, हजार वर्षका।

सहस्रायुताय (स० क्ली०) साममेद।

सहस्रायुध (स० त्रि०) सहस्र आयुधविशिष्ट।

सहस्रायुष्य (स० क्ली०) सहस्र वत्सर परमायुदान, हजार वर्षवाला।

सहस्रायुस् (स० त्रि०) सहस्रायु।

सहस्रार (सं० पु० क्ली०) १ हजार दलोंवाला एक प्रकारका कल्पित कमल। कहते हैं, कि यह कमल मनुष्यके मस्तकमें उलटा लगा रहता है और इसीमें सृष्टि, स्थिति तथा लयवाला परविन्दु रहता है।

(त्रि०) २ बहु चक्राङ्कविशिष्ट।

सहस्रारज (सं० पु०) जैनोंके एक देवताका नाम।

सहस्रार्चिस् (सं० पु०) १ शिव। २ सूर्य।

सहस्रावर्त्तक (सं० क्ली०) पुराणानुसार एक तीर्थका नाम।

सहस्रावर्त्ता (सं० स्त्री०) देवीकी एक मूर्त्तिका नाम।

सहस्राश्व (सं० पु०) पुराणानुसार एक राजाका नाम।

सहस्राह (सं० पु०) सहस्र दिन, हजार रोज।

सहस्रिक (सं० क्ली०) सहस्रक माधु पाठ।

सहस्रिन् (सं० पु०) सहस्रं बलमस्त्यस्येति सहस्र (तपः सहस्राभ्यां विनीनी। पा ५।२।१०२) इति इनि। १ वह वीर या नायक जिसके पास हजार योद्धा, घोड़े या हाथी हों। (त्रि०) २ सहस्रविशिष्ट, हजारका।

सहस्रिय (सं० त्रि०) सहस्र (सहस्रेण सम्मितौ यः। पा ४।४।१३५) सहस्रं विद्यतेऽस्यां अस्मिन् वा इति मत्वर्थे वेदे च। सहस्रयुक्त, हजारवाला।

सहस्रीय (सं० त्रि०) सहस्र सम्बन्धी, हजारका।

सहस्रोति (सं० क्ली०) सहस्र रक्षण, हजार बचाव।

सहस्वत् (सं० त्रि०) सहनयुक्त, सहिष्णु।

सहा (सं० पु०) १ घीकुवार, घीकुमार। २ वनमूंग। ३ दण्डोत्पल। ४ सफेद कटसरैया। ५ ककही या कंघी नामका वृक्ष। ६ रासना। ७ सर्पिणी। ८ सेवती। ९ हेमन्त ऋतु। १० सत्यानाशी। ११ मषवन। १२ देवनाड वृक्ष। १३ मखरंजक, मेंहदी। १४ अगहन मास।

सहाउ (हिं० पु०) सहाय देखो।

सहाचर (सं० पु०) १ पीतझिण्टी, पीली कटसरैया। २ सहचर देखो।

सहादर (सं० अव्य०) सादर, आदरके साथ।

सहादेव (सं० क्ली०) वनमूंग, जङ्गली मूंग।

सहाध्ययन (सं० क्ली०) सहपाठ, एकत्र अध्ययन, साथ पढ़ना।

सहाध्यायिन् (सं० पु०) वह जो साथ पढ़ा हो, सहपाठी।

सहाना (हिं० पु०) एक प्रकारका राग।

शहाना देखो।

सहानी (फा० वि०) एक प्रकारका रंग जो पीलापन लिये हुए लाल रंगका होता है। शहानी देखो।

सहानुगमन (सं० क्ली०) सहमरण, स्त्रीका अपने मृत पतिके शवके साथ जल मरना, सती होना।

सहानुभूति (सं० स्त्री०) किसीको दुःखी देख कर स्वयं दुःखी होना, दूसरेके कष्टसे दुःखी होना, हमदर्दी।

सहापवाद (सं० त्रि०) अपवादके साथ, निन्दायुक्त।

सहाब (फा० पु०) सहाब देखो।

सहाभाति (सं० पु०) ब्रह्मा। (क्षत्रिवि०)

सहाय (सं० पु०) १ सहायता, मदद, सहारा। २ आश्रय, भरोसा। ३ सहायक, मददगार। ४ एक प्रकारका हंस। ५ एक प्रकारकी वनस्पति।

सहायक (सं० त्रि०) १ सहायता करनेवाला, मददगार। २ वह छोटी नदी जो किसी बड़ी नदीमें मिलती हो। जैसे,—यमुना भी गंगाकी सहायक नदियोंमेंसे एक है। ३ किसीकी अधीनतामें रह कर काममें उसकी सहायता करनेवाला। जैसे,—सहायक सम्पादक।

सहायता (सं० स्त्री०) सहाय (ग्रामकजनबन्धुसहायेभ्यस्तल्। पा ४।२।४३) इति तल् टाप्। १ किसीके कार्य-सम्पादनमें शारीरिक या और किसी प्रकार योग देना, ऐसा प्रयत्न करना जिसमें किसीका काम कुछ आगे बढ़े, मदद। २ वह धन जो किसीका कार्य आगे बढ़ानेके लिये दिया जाय, मदद।

सहायन (सं० क्ली०) सहित गमन, साथ जाना।

सहायवत् (सं० त्रि०) सहायविशिष्ट, सहाययुक्त।

सहायिन् (सं० त्रि०) सहाययुक्त, सहायक।

सहायिनी (सं० स्त्री०) सहायता करनेवाली।

सहार (सं० पु०) सह (तुषारादयश्च। उण् ३।१३९) इत्यारन्। १ आम्रवृक्ष, आमका पेड़। २ महाप्रलय।

सहार (हिं० पु०) १ सहनशीलता, बर्दाश्त। २ सहन करनेकी क्रिया।

सहार—युक्तप्रदेशके मथुरा जिलान्तर्गत छाता तहसीलका

मण किया। [illegible] भाग गये। नगर [illegible] मुसलमान [illegible] खून और [illegible] हो [illegible] हुए। प्रजावर्गके ऊपर अत्याचार [illegible] राजा नीरद्र विचलित हो गये। उन्होंने [illegible] राजा और प्रजासाधारणसे मुसलमानोंका अत्याचार और उनकी राज्यापहरण-[illegible] उन लोगोंको मुसलमानोंके विरुद्ध अस्त्र धारण करनेके लिये उत्तेजित किया। उन लोगोंकी [illegible] राजा नीरद्रदेवने मुसलमानोंको नीरद्राबाद-से [illegible] किया और अपना राज्य [illegible] कर उसका [illegible]। अभी इस नगरकी पूर्व समृद्धि बिलकुल नहीं है। [illegible] फैज उद्दीन फकीरका समाधि-मन्दिर यहांके प्राचीनत्वका निदर्शन है।

[illegible] (फा० पु०) [illegible] वह लकड़ी जिसे [illegible] जाती है, [illegible]।

सहासन (सं० क्ली०) सह आसनं। एकासन।

सहासपुर—युक्तप्रदेशके बिजनौर जिलान्तर्गत धामपुर तहसीलका एक नगर। यह अक्षा० २९° ७´ ३० तथा देशा० ७८° ३´ पू०के मध्य विस्तृत है। जनसंख्या ६ हजारके करीब है। यहां एक प्रकारकी बढ़िया सूती [illegible] तैयार होता है। [illegible] दिनमें दो दिन हाट लगती है। [illegible] एक [illegible] है। इस नगरमें सिर्फ एक प्राइमरी स्कूल है।

सहिंजन (हिं० पु०) सहिजन देखो।

सहिजन (हिं० पु०) एक प्रकारका बड़ा वृक्ष जो भारतके प्रायः सभी प्रान्तोंमें [illegible] होता है, पर अवधमें अधिक [illegible] सैजन देखो।

सहित (सं० त्रि०) १ समन्वित, मिलित, संयुक्त। २ [illegible]। ३ [illegible], भलाई करनेवाला।

सहितता (सं० स्त्री०) सहितका भाव या धर्म।

सहितव्य (सं० त्रि०) सह-तव्य। सोढ़व्य, सहन करने-[illegible]।

[illegible] (सं० त्रि०) [illegible]।

[illegible] (सं० त्रि०) [illegible] (पा ४।१।७०)

[illegible] (सं० त्रि०) सहते इति [illegible] [illegible]। सहनशील।

सहितोरु (सं० त्रि०) उरुसंयुक्त, जंघा मिला हुआ। संहितोरु देखो।

सहित्र (सं० क्लो०) सहनेऽनेनेति सह (अर्त्ति-लू-धू-सू-खहचर इत्रः। पा ३।२।१८४) इति इत्रः। सहनकरण, सहन करना, सहना।

सहिरण्य (सं० त्रि०) हिरण्येन सह वर्त्तमानः। हिरण्य-युक्त, स्वर्णयुक्त।

सहिष्ठ (सं० त्रि०) बलवत्तम, बलवान्, ताकतवर।

सहिष्णु (सं० त्रि०) सहते इति सह (अलंकृञ् निराकृञिति। पा ३।२।१३६) इति इष्णुच्। सहनशील, जो सहन कर सके, बर्दाश्त करनेवाला।

सहिष्णुता (सं० स्त्री०) सहिष्णुका भाव या धर्म। पर्याय—तितिक्षा, क्षमा, शान्ति।

सहिसवान (सहासवान्)—१ युक्तप्रदेशके बुदाऊं जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २७° ५७´ से २८° २०´ ३० तथा देशा० ७८° ३०´ से ७६° ४´ पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण ४५४ वर्गमील और जनसंख्या दो लाखके करीब है। इसमें सहिसवान और बिलासी नामक २ शहर और ३२८ ग्राम लगते हैं। सोत नदीके बहनेसे जमीन खूब उपजाऊ हो गई है।

२ उक्त जिलेका एक नगर और सहिसवान तहसीलका विचारसदर। यह अक्षा० २८° ४´ उ० तथा देशा० ७८° ४५´ पू०के मध्य बुदाऊं नगरसे १ मील दूर महरवा नदीके बाएं किनारे अवस्थित है। भूपरिमाण १८००४ वर्गमील है। म्युनिसपुलिटी रहनेसे नगर खूब साफ सुथरा है। प्रवाद है, कि फर्रुखाबाद जिलेके सङ्कीशाके राजा सहस्रबाहु-ने इस नगरको बसाया। उन्होंने यहां एक दुर्ग भी बनवाया था। गुन्नौर, बिशौली, बिल्सी और उझाणी नगरके साथ वाणिज्य चलानेके लिये कई सड़कें चली गई हैं। केवड़ा फूलसे केवड़ा जल तैयार करनेके लिए यहां केवड़ाके पौधेकी खेती होती है। इसके सिवा यहां और किसी प्रकारका कारबार नहीं चलता। इस नगरके एक अंशमें एक बहुत बड़ा स्तूप दिखाई देता है। यह एक प्राचीन दुर्ग और प्रासादका ध्वस्त निदर्शन है। स्थानीय लोग उसे राजा सहस्रबाहु निर्मित दुर्ग बतलाते हैं। अपर प्राइमरी और मिडिल स्कूलकी संख्या मिला कर दस है।

सही (फा० वि०) १ सत्य, सच। २ प्रामाणिक ठीक, यथार्थ। ३ जो गलत न हो, शुद्ध, ठीक। ४ हस्ताक्षर, दस्तखत।

सहीयस (स० त्रि०) शत्रुओंका अभिभवकारी।

सही सलामत (फा० वि०) १ स्वस्थ आरोग्य, भला चंगा। २ जिसमें कोई दोष या न्यूनता न आई हो।

सहुरि (स० पु०) सहते इति सह (वहिसहोर्वरि। उण् ४।७३) इति उरच्। १ सूर्य। (स्त्री०) २ पृथ्वी।

सहूति (स० स्त्री०) स्तुति, स्तव।

सहूलियत (फा० स्त्री०) १ आसानी, सुगमता। २ अदब, कायदा, शऊर।

सहृदय (स० त्रि०) १ सनवेदनायुक्त, जो दूसरेके दुःख सुख आदि समझनेकी योग्यता रखता हो। २ दयालु दयावान्। ३ सज्जन, भला आदमी। ४ प्रसन्नचित्त, खुशदिल। ५ सुन्दमान, अच्छे मिजाजवाला। ६ रसिक।

सहृदयता (स० स्त्री०) १ सहृदय होनेका भाव। २ दयालुता। ३ सौजन्य। ४ रसिकता।

सहृल्लेख (स० क्ली०) विचिकित्सितमात्र दुर्विनात्र।

सहेजना (हि० क्रि०) १ भली भांति जांचना, अच्छी तरहसे देखना कि ठीक या पूरा है या नहीं, संभालना। २ अच्छी तरह कह सुन कर सपुर्द करना।

सहेजवाना (हि० क्रि०) सहेजनेका काम दूसरेसे कराना।

सहेतिकरण (स० त्रि०) इतिपदयुक्त।

सहेतिकार (स० क्ली०) उपसहार या इतिपद द्वारा समाप्त करना।

सहेतु (स० त्रि०) हेतुके सहित, हेतुयुक्त।

सहेतुक (स० त्रि०) हेतुयुक्त जिसका कोई हेतु हो जिसका कुछ उद्देश्य या मतलब हो।

सहेरवा (हि० पु०) हरसिंगार या पारिजातका वृक्ष।

सहेल (स० त्रि०) हेलायुक्त।

सहेल (हि० पु०) यह सहायता जो असामी या काश्तकार अपना जमींदारको उसके खुदकाश्त खेतको काश्त करनेके बदलेमें देता है। यह सहायता प्रायः बेगारी और बीज आदिके रूपमें होती है।

सहेलवाल (हि० पु०) वैश्योंकी एक जाति।

सहेली (हि० स्त्री०) १ साथमें रहनेवाली स्त्री, सखी। २ अनुचरी परिचारिका, दासी।

सहैकस्थान (स० त्रि०) एक स्थानविशिष्ट, एक जगहका।

सहैया (हि० वि०) सहन करनेवाला सहनेवाला।

सहोक्ति (स० स्त्री०) सह उक्तिः। एक प्रकारका काव्यालङ्कार। इसमें सह, सग, साथ आदि शब्दोंका व्यवहार होता है और अनेक कार्य साथ ही होते हुए दिखाए जाते हैं। प्रायः इस अलङ्कारमें क्रिया एक ही होती है।

सहोक्षा (स० पु०) १ आग्न। (ऋक् १।८८।१) २ इन्द्र।

सहोग्र (स० पु०) ऋषियोंके आश्रित रहनेको पर्णकुटी।

सहोढ (स० पु०) १ बारह प्रकारके पुत्रोंमेंसे एक प्रकारका पुत्र। गर्भवती अवस्थामें ब्याही हुई कन्याका पुत्र सहोढ कहलाता है। (मनु ८ अ०)

(त्रि०) २ इन द्रव्यके साथ वर्त्तमान। मनुमें लिखा है कि राजा छल या चुराए हुए वस्तुके साथ चोरको दण्ड दें। (मनु ६।२७०)

सहोत्थ (स० त्रि०) सह उत्थ, सहित उत्थानकारी।

सहोत्थायिन् (स० त्रि०) सह उत्थानकारी।

सहोदक (स० त्रि०) समानोदक।

सहोदर (स० पु०) १ एक ही उदरसे उत्पन्न सन्तान, एक माताके पुत्र। (त्रि०) २ सगा, भाई, खास।

सहोदा (स० त्रि०) पराभिभवसामर्थ्य बलदाता शत्रुको अभिभव करनेकी शक्ति देनेवाला।

सहोपध (स० त्रि०) उपधास्वरविशिष्ट।

सहोपल्लव (स० त्रि०, उपल्लवके सहित।

सहोर (स० त्रि०) सहते अभिविसह। (किशोरादयश्च। उण् १।६०) इति ओरन्। साधु धार्मिक (उज्ज्वल)

सहोर (हि० पु०) एक प्रकारका वृक्ष। यह प्रायः उत्तरी प्रदेशोंमें होता है और विशेषतः शुष्क भूमिमें अधिक उत्पन्न होता है। इसका वृक्ष अत्यन्त गठीला और झाड़दार होता है। प्रायः यह सदा हरा भरा रहता है। पतझड़में भी इसके पत्ते नहीं गिरते। इसकी छाल मोटी होती है और रंग भूरा खाकी होता है। इसका डण्ठा सफेद और साधारणतः मजबूत होता है। इसके पत्ते हरे, छोटे और खुरदुरे होते हैं। फाल्गुन मास तक इसका वृक्ष फूलता फलता है और वैशाखसे आषाढ़ तक फल पकते हैं। फूल

अ थ इंच लम्बे, गोल और सफेद या पीलापन लिये होते हैं। इसके गोल फल गूदेदार होते और बीज गोलाकार होते हैं। इसकी टहनियोंको काट कर लोग दातुन बनाते हैं। चिकित्साशास्त्रके अनुसार यह रक्तपित्त, बवासीर वात, कफ और अतिसारका नाशक है। इसका दूसरा नाम सिहार भी है।

सहोरु (सं० त्रि०) ऊरुके सहित।

सहोवन (सं० क्ली०) दौरात्म्य।

सहोवृध (सं० त्रि०) बलवर्द्धयिता, बल बढ़ानेवाला।

सह्यावन (सं० त्रि०) एक साथ वास करनेवाला।

सहोजस (सं० त्रि० बलके सहित, ताकतके साथ।

सह्य (सं० त्रि०) सह (शकिसहोश्च। पा ३।१।९९) इति यत्। १ सोढव्य सहने योग्य, बर्दाश्त करने लायक। २ आरोग्य। ३ प्रिय, प्यारा। (पु०) ४ दक्षिणदेशमें स्थित एक पर्वत। सह्याद्रि देखो। ५ साम्य, समानता, बराबरी।

सह्यता (सं० स्त्री०) सह्यका भाव या धर्म, सहन।

सह्याद्रि—बम्बई प्रदेशकी एक पर्वतमाला। ताप्ती नदीसे कुमारिका अन्तरीप पर्यन्त विस्तृत पश्चिम घाट पर्वत की शाखा प्रशाखा ही सह्याद्रिशैल कहलाती है। किन्तु लोग दाक्षिणात्यके उपकूलवर्त्ती जिलोंमें विस्तृत पर्वत मालाको ही सह्याद्रि कहते हैं। यह सह्याद्रि शैलखण्ड खान्देशसे दक्षिण और दक्षिण पश्चिममें पुर्त्तगीज उपनिवेश गोआ राजधानी तक फैला हुआ है। पालघाट नामक शाखापर्वत भी इसी पर्वतश्रेणीके अन्तर्भुक्त है। यह उत्तर और दक्षिण कोङ्कण प्रदेशके पूर्व सीमारूप समुद्रोपकूलसे प्रायः समान्तराल भावमें खड़ा है। रत्नागिरि नामक उपकूलवर्त्ती जिला इस पर्वतके दक्षिण-पश्चिममें सर्वस्थित है।

यह पर्वतपृष्ठ साधारणतः २ हजारसे ३ हजार फुट ऊंचा है। इसकी कोई कोई चोटी ५ हजार फुट तक ऊंची चली गई है। कहीं कहीं ऊपर और नीचे आग्नेयगिरिसे उत्पन्न धातव स्तर दिखाई देता है। इस कारण उक्त पर्वतासन्नस्थ भूमि साधारणतः दुरारोह है। थोड़ी मिहनत करनेसे आसानीसे उस पर्वतके ऊपर दुर्गम और दुर्भेद्य दृढ़ गिरिदुर्ग बनाया जा सकता है। यही सुविधा रहनेसे महाराष्ट्र अभ्युदय कालमें यहां बहुत से दुर्भेद्य दुर्ग बनाये गये थे। अनेक गिरि शिखरों पर ही मीठे जलवाले सोते हैं। इस कारण यहां कभी भी जलाभाव नहीं होता। वह जल स्वास्थ्यकर है और दुर्गरक्षित सेनादलके काममें आसानीसे लाया जा सकता है। बहुतसे बांध और चहबच्चेमें वह जल जमा किया जाता है।

इस पर्वतपृष्ठ पर असंख्य गिरिपथ देखे जाते हैं। पूर्वकालमें उन सब घाटियोंसे महाराष्ट्र-सैन्य और देशी-वणिक् आते जाते थे। वाणिज्यकी सुविधाके लिये वृटिश सरकारने उस पर्वत पर बहुतसे रास्ते कटवा दिये हैं। उन घाटियोंका प्राकृतिक दृश्य बड़ा ही मनोरम है। चार हजार फुट पर्यन्त ऊंचे स्थान पर भी अच्छे अच्छे वृक्ष गुल्मादि शोभा दे रहे हैं। देखने हीसे मालूम होता है, कि वसन्त ऋतु यहां हमेशा विराज करती है तथा यहां वसन्त सखाका विश्रामोपवन है। केवल जिन सब स्थानोंमें घोर काले पत्थर दिखाई देते हैं, उन सब स्थानोंमें एक भी लता और उद्भिद् उत्पन्न नहीं होता है।

सह्याद्रि शैलश्रृङ्गके मध्य महाबलेश्वर (४७१७ फुट) सबसे ऊंचा है। यहां इतिहास-प्रसिद्ध दुर्ग और देवमन्दिरादि विद्यमान हैं। महाबलेश्वर देखो। पालघाट और सह्याद्रि शैलके मध्य पथ हो कर मन्द्राजसे वेपुर पर्यन्त एक रेलवे लाइन दौड़ गई है। इसके द्वारा दक्षिण भारतके पूर्व और पश्चिम उपकूलके वाणिज्यादि निर्विघ्न-पूर्वक नाना स्थानोंमें परिचालित होते हैं। पश्चिम घाट, पालघाट, नीलगिरि, पालनिस आदि शब्दोंमें इस पर्वतका प्राकृतिक विवरण लिपिबद्ध हुआ है। विस्तार हो जानेके भयसे उसकी दुहरा कर आलोचना नहीं की गई।

दक्षिण-पश्चिम मौसुम वायुके आरम्भ और शेषमें यहां साधारणतः तूफान, वृष्टि और वज्राघात हुआ करता है।

सह्याद्रिखण्ड—स्कन्दपुराणका एक अंश। इस अंशमें सह्याद्रि शैलके विभिन्न प्रदेशके विभिन्न राजवंशकी वंशावली और परिचय तथा देवस्थानादि कीर्त्तित हैं।

स्कन्दपुराणके सह्यखण्ड अध्यायमें सह्याद्रि प्रदेशका विशद विवरण आया है।

सह्य (सं० त्रि०) शत्रु आदिको अभिभवकारी।

साईं (हिं० पु०) १ स्वामी, मालिक। २ ईश्वर, परमात्मा। ३ पति, भर्त्तार, शौहर। ४ मुसलमान फकीरोंकी एक उपाधि।

साकड़ (हिं० पु०) १ शृङ्खला, जंजीर, सीकड़। २ सिकड़ी जो दरवाजेमें लगाई जाता है। ३ चांदीका बना हुआ एक प्रकारका गहना जो पैरमें पहना जाता है।

सांकड़ा (हिं० पु०) एक प्रकारका आभूषण जो पैरमें पहना जाता है। यह मोटी चपटी सिकड़ीकी भांति होता है। प्रायः मारवाड़ी स्त्रियां इसे पहनती हैं।

साकर (हिं० स्त्री०) १ शृङ्खला, जंजीर, सीकड़। (वि०) २ सकीर्ण, तंग, सकरा। ३ दुःखमय, कष्टमय।

सांकरा (हिं० वि०) १ सकरा देखो। २ सांकड़ा देखो।

साकाहुली (हिं० वि०) शाखाहुली देखो।

सांक्रामिक (सं० त्रि०) संक्राम-ठञ्। संक्रमणशील, छूतसे जो उत्पन्न हो।

सांख्य महर्षि कपिल प्रणीत दर्शनशास्त्र। सांख्य देखो।

सांग (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकारकी बर्छा जो भालेके आकारकी होती है। पर इसकी लम्बाई कम होती है और यह फेंक कर मारी जाती है, शक्ति। २ एक प्रकारका औजार जो कुआं खोदते समय पानी फोड़नेके काममें आता है। ३ भारी बोझ उठानेका डंडा।

सांगरी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका रंग जो कपड़े रंगनेके काममें आता है। यह जवाखारसे निकलता है।

सांगा (हिं० पु०) १ बरछी, सांग। २ बैलगाड़ीमें गाड़ीवानके बैठनेका स्थान जुआ। ३ आली या एक या गाड़ीमें नीचे लगी रहती है और जिसमें मामूली चीजें रखी जाती हैं।

सांग्रामिक (सं० त्रि०) १ युद्धोपयोगी। २ युद्ध सम्बन्धी। ३ युद्धनिपुण, रणकुशल। (पु०) ४ सेनापति।

सांघातिक (सं० त्रि०) संघात संघुः सं घात (गुडादिभ्यः ठञ्। पा ४।३।१०३) इति ठञ्। १ संघातक प्रकारका हनन कारक, मारात्मक। जब रोगादि अति प्रबल हो मारात्मक हो जाता है, तब उसे सांघातिक कहते हैं। (पु०) २ षण्णाडीचक्रोक्त नक्षत्रविशेष। जन्म नक्षत्रसे षोडश नक्षत्र को सांघातिक नाड़ी कहते हैं। इस नक्षत्रमें जो सब ग्रह रहते हैं वे विशेष अनिष्टफलप्रद हैं। ग्रहके इस नाड़ीस्थ होने पर देह, द्रविण और वधुनाश होता है। ग्रहोंके शुभाशुभ फल विचारकालमें ग्रहगण षण्णाडीस्थ हुए हैं या नहीं यह पहले अच्छी तरह देख लेना होगा। षण्णाडीके मध्य यह सांघातिक विशेष अनिष्ट फल देनेवाला है। षण्णाड़ी शब्द देखो।

सांचा (हिं० पु०) १ वह उपकरण जिसमें कोई तरल पदार्थ ढाल कर अथवा गीली चीज रख कर किसी विशिष्ट आकार प्रकारकी कोई चीज बनाई जाती है, फरमा। जैसे—ईंटोंका सांचा, टाइपका सांचा। जब कोई चीज किसी विशिष्ट आकार प्रकारकी बनानी होती है तब पहले एक ऐसा उपकरण बना लेते हैं जिसके अन्दर वह आकार बना होता है। तब उसीमें वह चीज डाल या भर दी जाती है जिससे अभीष्ट पदार्थ बनाना होता है। जब वह चीज जम जाता है तब उस उपकरणके भीतरी आकारकी हो जाता है। जैसे,—ईंटे बनानेके लिये पहले उनका एक सांचा तैयार किया जाता है और तब उसी सांचेमें सुरखी, चूना आदि भर कर ईंटे बनाते हैं। २ वह छोटी आकृति जो कोई बड़ा आकृति बनानेसे पहले नमूनेके तौर पर तैयार की जाती है और जिसे देख कर वही बड़ी आकृति बनाई जाती है। प्रायः कारीगर जब कोई बड़ी मूर्त्ति आदि बनाने लगते हैं, तब वे उसके आकारकी मिट्टी चूने प्लेस्टर आफ पेरिस आदि की एक आकृति बना लेते हैं और तब उसीके अनुसार पत्थर या धातुकी आकृति बनाते हैं। ३ जुलाहोंका वे दो लकड़ियां जिनके बीचमें कूंचकर माल्का दबा कर कसते हैं। ४ एक हाथ लम्बी एक लकड़ी जिस पर सटक बनानेके लिये सलगा बनाते हैं। ५ कपड़े पर बेल बूटा छापनेका ठप्पा जो लकड़ीका बना होता है छापा।

सांचिया (हिं० पु०) १ किसी चीजका सांचा बनानेवाला। २ धातु गला कर सांचेमें ढालनेवाला।

सांची (हिं० पु०) १ एक प्रकारका पान जो आकारमें छोटा होता है। पान देखो। २ पुस्तकोंकी छपाईका वह प्रकार जिसमें पंक्तियाँ सांचे बेडे न हो कर खड़े बलमें

होती है। इसमें पुस्तकें चौड़ाईके बलमें नहीं बल्कि लम्बाईके बलमें लिखी या छापी जाती हैं। प्राचीन कालके जो लिखे हुए ग्रन्थ मिलते हैं, वे अधिकांश ऐसे ही होते हैं। इनमें पृष्ठ लम्बा अधिक और चौड़ा कम रहता है और पंक्तियां लम्बाईके बलमें होती हैं। प्रायः ऐसी पुस्तकें बिना सिली हुई ही होती हैं और उनके पन्ने बिलकुल एक दूसरेसे अलग अलग होते हैं।

सांझ (हिं० स्त्री०) सन्ध्या, शाम।

सांझा (हिं० पु०) व्यापार, व्यवसाय आदिमें होनेवाला हिस्सा, पत्ती। साझा देखो।

सांझी (हिं० स्त्री०) देव-मन्दिरों आदिमें देवताओंके सामने जमीन पर बनी हुई फूल पत्तों आदिकी सजावट जो प्रायः सावनके महीनेमें होता है।

सांट (हिं० स्त्री०) १ छड़ी, सांटी, पतली कमची। २ कोड़ा। ३ शरीर परका वह लम्बा गहरा दाग जो कोड़े या बेंत आदिका आघात पड़नेसे होता है। ४ लाल गदहपूरना।

सांटा (हिं० पु०) १ करघेके आगे लगा हुआ वह डंडा जिसे ऊपर नीचे करनेसे तानेके तार ऊपर नीचे होते हैं। २ कोड़ा। ३ ऐंठ। ४ ईख, गन्ना।

सांटी (हिं० स्त्री०) १ पतली छोटी छड़ी। २ बांसकी पतली कमची, शाखा। ३ मेल, मिलाप। ४ प्रतिकार, प्रतिहिंसा, बदला।

सांठ (हिं० पु०) १ एक प्रकारका कड़ा जिसे प्रायः राजपूतानेके किसान पैरमें पहनते हैं। २ साकड़ा देखो। ३ सरकंडा। ४ वह लम्बा डंडा जिससे अन्न पीट कर दाने निकालते हैं। ५ ईख, गन्ना।

सांठी (हिं० स्त्री०) १ पूंजी, धन। २ पुनर्णवा, गदहपूरना। (पु०) ३ साठी देखो।

सांड (हिं० पु०) १ वह बैल या घोड़ा जिसे लोग केवल जोड़ा खिलानेके लिये पालते हैं। ऐसा जानवर बधिया नहीं किया जाता और न उससे कोई काम लिया जाता है। २ वह बैल जो मृतककी स्मृतिमें हिन्दू लोग दाग कर छोड़ देते हैं, वृषोत्सर्गमें छोड़ा हुआ वृषभ। (वि०) ३ बलिष्ठ, मजबूत। ४ आवारा, बदचलन।

सांडनी (हिं० स्त्री०) ऊंटनी या मादा ऊंट जिसकी चाल बहुत तेज होती है। ऊंट देखो।

सांडा (हिं० पु०) छिपकलीकी जातिका पर आकारमें उससे कुछ बड़ा एक प्रकारका जंगली जानवर। इसकी चरबी निकाली जाती है जो दवाके काममें आती है।

सांडिया (हिं० पु०) १ तेज चलनेवाला ऊंट। २ सांडनी पर सवारी करनेवाला।

सांढ़ियो (हिं० पु०) क्रमेलक, ऊंट।

सांथड़ा (हिं० पु०) बाटियाका वह हिस्सा जो पेंच बनानेके लिये घुमाया जाता है।

सांथरी (हिं० स्त्री०) १ चटाई। २ बिछौना, डासन।

सांथा (हिं० पु०) लोहेका एक औजार जो चमड़ा कूटनेके काममें आता है।

सांथी (हिं० स्त्री०) १ वह लकड़ी जो तानेके तारोंको ठीक रखनेके लिये करघेके ऊपर लगी रहती है। २ तानेके सूतोंके ऊपर नीचे होनेकी क्रिया।

सांद (हिं० पु०) वह लकड़ी आदि जो पशुओंके गलेमें इसलिये बांध दी जाती है जिसमें वे भागने न पावें, लगर, ढेका।

सांदृष्टिक (सं० क्ली०) १ प्रत्यक्ष दृष्टिभव, एक ही दृष्टिमें होनेवाला, देखते ही होनेवाला। (क्ली०) २ दृष्टिपरिकल्पनान्याय, पहले देखे हुए विषयको मन ही मन कल्पना। पहले जो प्रणाली देखी गई है, वैसे स्थानमें वैसी ही कल्पना कर लेनेको सांदृष्टिक न्याय कहते हैं।

पिताके अभावमें माता अधिकारिणी एक जगह कहा गया है, लेकिन पितामहके अभावमें कौन अधिकारी होगा, यह कहा नहीं गया, किन्तु पहले देखा गया है, कि पिताके अभावमें माता—इस सांदृष्टिक न्यायमें पितामहके अभावमें पितामही होगी। जहां ऐसी कल्पना होती है, वहां सांदृष्टिक न्याय होता है।

सांध (हिं० पु०) वह वस्तु जिस पर निशाना लगाया जाय, लक्ष्य, निशाना।

सांधना (हिं० क्रि०) १ निशाना साधना, लक्ष्य करना, संधान करना। २ मिश्रित करना, एकमें मिलाना। ३ रस्सियों आदिमें जोड़ लगाना। ४ पूरा करना, साधना।

साधा (हि० पु०) वो रस्सियों आदिमें दी हुई गांठ।

साप (हि० पु०) १ एक प्रसिद्ध रेंगनेवाला लम्बा कीड़ा जिसके हाथ पैर नहीं होते और जो पेटके बल जमीन पर रेंगता है। विशेष विवरण सर्प शब्दमें देखो। २ बहुत दुष्ट आदमी।

सापा (हि० पु०) सियापा देखो।

सापिन (हि० स्त्री०) १ सांपकी मादा। २ घोड़ेके शरीर परकी एक प्रकारकी भौंरी जो अशुभ समझी जाती है।

सापिया (हि० पु०) एक प्रकारका काला रंग जो प्रायः साधारण सांपके रंगसे मिलता जुलता होता है।

सामर (हि० पु०) १ राजपूतानेकी एक झील जहांका पानी बहुत खारा है। इसी झीलके पानीसे साम्भर नमक बनाया जाता है। २ उक्त झीलके जलसे बना हुआ नमक। ३ भारतीय मृगोंकी एक जाति। इस जातिका मृग बहुत बड़ा होता है। इसके कान लम्बे होते हैं और सींग बारहसिंगोंके सींगोंके समान होते हैं। इसकी गरदन पर बड़े बड़े बाल होते हैं। अक्सर बरके महीनेमें यह जोड़ा खाता है।

सांयात्रिक (सं० पु०) संयात्रा द्वीपान्तरगमन सा प्रयोजनमस्येति तदस्य प्रयोजन इति ठञ्। पोतवणिक वह व्यापारी जो जलपथसे वाणिज्य करता है।

सांयुगीन (सं० त्रि०) संयुग (प्रतिजनादिभ्यः खञ्। पा ४।४।९९) इति खञ्। युद्धकुशल।

सांयोगिक (सं० त्रि०) संयोगाय प्रभवति संयोगान्तरमें प्रभवति (सन्तापादिभ्यः। पा ५।१।१०१) इति ठञ्। संयोगके निमित्त जो प्रभव हो।

सांरक्ष्य (सं० क्ली०) संरक्षका भाव या कर्म।

सांराविन् (सं० क्ली०) सं रु घञ्णिनी (अभिविधौ भाव इनुन। पा ३।३।४४) इति इनुन् (आनिनुण। पा ५।४।१५) इति स्वार्थे अण्। हट्ट सरक्‌राड़, हाटका गोलमाल।

सांवक (हि० पु०) १ वह ऋण जो हलवाहोंको दिया जाता है और जिसके सूदके बदलेमें वे काम करते हैं। २ सावाँ नामक अन्न।

सांवत (हि० पु०) एक प्रकारका राग।

सांवती (हि० स्त्री०) बैलगाड़ी या घोड़ा गाड़ीके नीचे लगी हुई जाली जिसमें घास आदि रखते हैं।

सांवत्सर (सं० पु०) संवत्सर अण्। गणक। बृहत्संहितामें इसका लक्षण लिखा गया है कि सद्वंशसम्भूत, प्रियदर्शन विनीतवेश, सत्यवादी, असूयाशून्य समदर्शी और अविकारी जिसकी गोलकी सन्धिया सुसंहत अचल उपचित, सुलक्षणयुक्त और गम्भीर प्रकृति इन सब लक्षणोंसे सम्पन्न व्यक्ति सांवत्सर हो सकते और वे शुचि, दक्ष, प्रगल्भ, वाक्पटु उपस्थित बुद्धि, देशकालज्ञ, अनभिभवनीय, निपुण, अव्यसनी, शान्ति पौष्टिक अभिचार स्नानादि विद्याविषयमें अभिज्ञ, देव पूजारत और उपवासानिरत, ग्रहगणनामें कौतुहली हो ज्ञानप्रभावविशिष्ट, जिज्ञासित विषयका वक्ता, ग्रहगणित महिता और होरा आदि ग्रन्थोंका अध्येता आदि गुण युक्त होंगे।

ग्रहगणित अर्थात् पौलिश, रोमक, वाशिष्ठ सौर और पितामह इन पञ्चसिद्धान्त शास्त्रमें जो युग वर्ष अयन ऋतु, मास पक्ष अहोरात्र, याम, मुहूर्त्त, नाड़ी, विनाड़ी, प्राण और त्रुटि प्रभृति काल और क्षेत्र कहे गये हैं, उनके सम्यक् वेत्ता, सौर सावन, नाक्षत्र और चान्द्र रूप चतुर्विध मास, अधिमास और क्षय प्रभृतिका कारणाभिज्ञ पञ्चम वत्सर युग वर्ष मास, दिन और होरा प्रभृतिका अधिपतियोंके प्रति पत्तिविषयक विच्छेदमें अभिज्ञ, सौरादि परिमाणोंके सदृशासदृशत्व और योग्यायोग्यत्व के प्रतिपादन विषयमें निपुण अयननिवृत्तिमें सिद्धान्त भेद होने पर सममण्डल रेखा सम्प्रयोग और अभ्युदित अंशोंके प्रत्यक्षकरणमें और छाया जलयन्त्र और दृग गणितकी समता प्रतिपादनमें कुशल, सूर्यादि ग्रहके शीघ्र मन्द, याम्य, उत्तर और नीच उच्च प्रभृति गतियोंके कारणाभिज्ञ सूर्य या चन्द्रग्रहणके आदि और मोक्षकाल, दिक् निरूपण, परिमाण, स्थितिकाल विमर्द, वर्णभेद और देशोंके उपदेष्टा, अनागत ग्रहोंके समागम और युद्धादिका समर्थनिरूपक प्रत्येक ग्रहके हो भ्रमणयोजन, भ्रमण कक्षा आदि प्रति विषयकी योजनाका परिच्छेद विषय में कुशल, पृथ्वी और ग्रहनक्षत्रादिके भ्रमण संस्थान आदि, अक्षांश अवलम्बन, दिन, व्यास, चरार्द्ध, काल, राशि, उदय, छाया, नाड़ी और करण आदि विषयमें अभिज्ञ और नाना प्रकारके कथित प्रश्नोंका भेदज्ञान

द्वारा वाक्यसारसम्पन्न, सब तरहके ज्योतिःशास्त्रके ही सब विषयोंका वक्ता इन सब गुणोंसे गुणान्वित व्यक्ति सांवत्सर नामसे अभिहित होते हैं। मोटी बात यह है, कि ज्योतिःशास्त्रीय सब संहिताओंमें सुनिपुण व्यक्तिको ही सांवत्सर कहते हैं। (बृहत्संहिता २ अ०)

जिनका ज्योतिःशास्त्रमें सम्यक् अधिकार नहीं, शुभा शुभ या ग्रहणकी गति आदिका विषय पूछने पर सम्यक् बोध नहीं होता, वे सांवत्सर पदवाच्य नहीं।

सांवत्सरक (सं० त्रि०) संवत्सरे देयं ऋणं (संवत्सरा ग्रहायणीभ्या ठञ् च। पा ४।३।५०) ठञ्। १ संवत्सरमें दिया जानेवाला ऋण। (पु०) संवत्सर स्वार्थे कन्। २ सांवत्सर, दैवज्ञ, गणक।

सांवत्सरिक (सं० त्रि०) सांवत्सर (कालात् ठञ्। पा ४।३।११) इति ठञ्। १ संवत्सरमें भव, संवत्सर सम्बन्धीय, वार्षिक। २ प्रतिवर्ष कर्त्तव्य श्राद्ध, वर्ष वर्ष पर मृत तिथिमें पित्रादिके उद्देशसे जो श्राद्ध किया जाता है, उसको सांवत्सरिक श्राद्ध कहते हैं।

सपिण्डीकरण श्राद्धके बाद प्रति वर्ष मृताह तिथिमें सांवत्सरिक श्राद्ध करना होता है, जितने दिन सपिण्डी करण नहीं होता, उतने दिनों तक यह श्राद्ध नहीं करना चाहिये। मृताहके पूर्ण संवत्सर पर चान्द्र मृततिथिमें सपिण्डीकरण करना होता है। यदि कोई संवत्सर तिथि छोड़ दे अर्थात् इस तिथि पर सपिण्डीकरण न करे, तो जितने दिनों तक यह छुटा सपिण्डीकरण न हो, उतने दिनों तक सांवत्सरिक श्राद्ध न होगा।

यदि किसीके भी अपकर्ष सपिण्डीकरणमें अर्थात् संवत्सरमें वृद्धिके उपलक्षमें सपिण्डीकरण श्राद्ध करना होता है, ऐसा होने पर संवत्सरमें मृत तिथिमें सांवत्सरिक श्राद्ध नहीं होगा। इसके बाद वर्ष वर्ष पर सांवत्सरिक श्राद्ध करना होगा। पित्रादि तीन पुरुष अर्थात् पिता पितामह, प्रपितामह, माता, पितामही और प्रपितामही इन छः पितरोंका सांवत्सरिक श्राद्ध करना उचित है।

पिता और माताकी मृत्युमें जब तक उसका सपिण्डीकरण न हो, तब तक देहाशुद्धि रहती है। सुतरां यह एक वर्ष नित्य कर्म छोड़ अन्य किसी कर्मका अधिकार नहीं रहता। किन्तु उसके उत्कृष्टरूपसे कालाशौचमें देह अशुद्ध होनेसे पितामहादिका मृताह तिथिमें सांवत्सरिक श्राद्ध कर सकते हैं। यह अशौच इस श्राद्धमें बाधक नहीं होगा। सुतरां यह श्राद्ध अवश्य कर्त्तव्य है। सांवत्सरिक श्राद्ध न करनेसे विशेष प्रत्यवायभागी होना पड़ता है। छोटे चाचा, पितासे बड़े चाचा और उनकी पत्नी, उनके यदि पुत्र न हो, तो उनके भी सांवत्सरिक श्राद्ध अवश्य कर्त्तव्य है। इस श्राद्धको एकोद्दिष्ट श्राद्ध कहते हैं, क्योंकि यह श्राद्ध एकके उद्देशसे किया जाता है। संवत्सर कर्त्तव्य होनेसे ही सांवत्सरिक नाम हुआ है।

स्त्रियोंके श्राद्धमें अधिकार नहीं। किन्तु सांवत्सरिक श्राद्धका विशेष विधान है, कि सधवा स्त्रियां पिता और माताकी मृत्यु पर प्रति संवत्सरकी मृताह तिथिमें यह सांवत्सरिक श्राद्ध कुश और तिलके परिवर्त्तनमें दूर्वा और यव द्वारा सम्पन्न कर सकेंगी। किन्तु यदि मृताह तिथिमें वे कर न सकें, तो पतित या छुटे हुए श्राद्धकी तरह कृष्ण एकादशी या अमावस्या तिथिमें कर सकेंगी। विधवा स्त्रियां यदि उनको पुत्र, पौत्र न हो, तो तिल तथा कुश द्वारा स्वामीकी मृताह तिथिमें सांवत्सरिक श्राद्ध कर सकेंगी। यह श्राद्ध उनके लिये अवश्य कर्त्तव्य है। विधवा अपने पितामाताका सांवत्सरिक तिल और कुश द्वारा करें। पण्डित, ज्ञानी, मूर्ख, स्त्री, ब्रह्मचारी, चाहे कोई व्यक्ति मृत तिथिको यदि अतिक्रम करे अर्थात् मृताह तिथिमें सांवत्सरिक श्राद्ध न करे, तो वे धर्महीन चण्डालरूप धारण करते हैं। सुतरां यह श्राद्ध सबके लिये अवश्य कर्त्तव्य है। किसी तरह यह मृताह-तिथि छोड़नी न चाहिये।

(पु०) ३ गणक, दैवज्ञ। वृहत्संहितामें लिखा है, कि जहां सांवत्सरिक श्राद्ध नहीं होता, वहां ऐश्वर्यकामी मनुष्य वास न करें।

सांवत्सरीय (सं० त्रि०) संवत्सर-सम्बन्धी।

सांवरण (सं० पु०) मनुके गोत्रसम्भूत संवरणात्मज।

सांवरणि (सं० पु०) सांवरणका अपत्यादि।

सासर्गविद् (हिं० स्त्री०) जिसने संसर्गविद्या अध्ययन की हो या उसमें प्राप्त हो।

सांसर्गिक (सं० त्रि०) संसर्ग-ठक्। संसर्गसम्बन्धी।

सांसट (हिं० पु०) १ एक प्रकारका कम्बल। २ योग यौगि-की क्रिया।

सांसा (हिं० पु०) १ श्वास, सांस। २ जिन्दगी, जीवन। ३ प्राण। ४ घोर कष्ट, भारी पीड़ा, तकलीफ। ५ चिन्ता, फिक्र। ६ संशय, सन्देह, शक। ७ भय, डर, दहशत।

सांसारिक (सं० त्रि०) संसार ठञ्। १ संसार सम्ब-न्धी, इस संसारका, लौकिक, ऐहिक। २ संसारोप-योगी।

सांसिद्धिक (सं० त्रि०) स्वाभाविक, जो स्वभावसिद्ध हो, संसिद्धि-सम्बन्धी।

सांनिध्य (सं० क्ली०) संनिकृष्-यञ्। संनिकटका भाव या कार्य, सम्यक् उपस्थिति।

सांसृष्टिक (सं० त्रि०) संसृष्टि-सम्बन्धी, अकस्मात् उत्पन्न।

सांस्कारिक (सं० त्रि०) संस्कार-सम्बन्धी, जो संस्का-रोपयोगी हो।

सांस्थानिक (सं० त्रि०) संस्थाने व्यवहरतीति सांस्थान (कठिनान्तप्रस्तारसंस्थानेषु व्यवहरति। पा ४।४।७२) इति ठक्। १ समान देशीय, एक देशका। २ संस्थानयुक्त।

सांस्फीयक (सं० त्रि०) संस्फीय सम्बन्धी।

सांहत्य (सं० क्ली०) मिलितका भाव या कर्म, मिलन, एकत्र सम्मिलन।

साहातिक (सं० क्ली०) पञ्चाङ्गीनकस्य सांघातिक नक्षत्र।

सांहार (सं० त्रि०) संहार-अण्। संहार-सम्बन्धी।

सांहित (सं० त्रि०) संहिता-अण। संहिता सम्बन्धी।

सांहितिक (सं० त्रि०) संहितामधीते वेद ठञ्। जिन्होंने संहिता अध्ययन की हो या जो संहिताओंके मर्म जानते हो।

सा (सं० स्त्री०) १ गौरी। २ लक्ष्मी। ३ पूर्वोक्त परामर्श विषयभूता, पहले जिसका उल्लेख हुआ है, पीछे उसका और उल्लेख न कर सा शब्दका प्रयोग करनेसे उस पदार्थका बोध कराता है। ४ प्रसिद्ध। ५ संस्कृत भाषामें सर्वनाम उस शब्दके स्त्रीलिङ्गमें प्रथमाके एक वचनमें सा होता है।

सा (हिं० अव्य०) १ तुल्य, सदृश, समान। जैसे,—उसका रंग तुम्हीं-सा है। २ एक प्रकारका मानसूचक शब्द। जैसे,—बहुत-सा, थोड़ा-सा, ज़रा-सा।

साइक्लोपीडिया (अं० स्त्री०) १ वह बड़ा ग्रन्थ जिसमें किसी एक विषयके सब अंगों और उपांगों आदिका पूरा पूरा वर्णन हो। २ वह बड़ा ग्रन्थ जिसमें संसार भरके सब मुख्य मुख्य विषयों और विज्ञानों आदिका पूरा पूरा विवेचन हो, विश्वकोष, इन्साइक्लोपीडिया।

साइत (अ० स्त्री०) १ एक घण्टे या ढाई घड़ीका समय। २ पल, लमहा। ३ मुहूर्त्त, शुभ लग्न।

साइनबोर्ड (अं० पु०) वह तख्ता या टीन आदिका टुकड़ा जिस पर किसी व्यक्ति, दुकान या व्यवसाय आदिका नाम और पता आदि अथवा सर्वसाधारणके सूचनार्थ इसी प्रकारकी और कोई सूचना बड़े बड़े अक्षरोंमें लिखी हो। ऐसा तख्ता मकान या दुकान आदिके आगे अथवा किसी ऐसी जगह लगाया जाता है, जहां सब लोगोंकी दृष्टि पड़े।

साइन्स (अं० स्त्री०) १ किसी विषयका विशेष ज्ञान, विज्ञान, शास्त्र। विज्ञान देखो। २ रासायनिक और भौतिक विज्ञान।

साइवान (फा० पु०) सायवान देखो।

साइयां (हिं० पु०) साईं देखो।

साईं (हिं० पु०) १ स्वामी, मालिक, प्रभु। २ ईश्वर, पर-मात्मा। ३ पति, खाविन्द। ४ एक प्रकारका पेड़।

साई (हिं० स्त्री०) १ वह धन जो गाने बजानेवाले या इसी प्रकारके और पेशेवारोंको किसी अवसरके लिये उनकी नियुक्ति पक्की करके पेशगी दिया जाता है, पेशगी, बयाना। २ एक प्रकारका कीड़ा जिसके घाव पर बीट कर देनेसे घावमें कीड़े पैदा हो जाते हैं। ३ वे छड़ जो गाड़ीके अगले हिस्सेमें बेड़े बलमें एक दूसरेको काटते हुए रखे जाते हैं और जिनके कारण उनकी मजबूती और भी बढ़ जाती है। ४ साईकाँटा देखो।

साईकाँटा (हिं० पु०) एक प्रकारका वृक्ष। यह बंगाल, दक्षिण भारत, गुजरात और मध्यप्रदेशमें पाया जाता है।

इसकी लकड़ी सफेद होती है और छाल चमड़ा सिझानेके काममें आती है। इसमेंसे एक प्रकारका कत्था भी निकलता है। इसका दूसरा नाम साई या मोगली भी है।

साईस (हि० पु०) वह आदमी जो घोड़ेकी खबरदारी और सेवा करता है, उसे दाना घास आदि देता, मलता और टहल ता तथा इसी प्रकारके दूसरे काम करता है।

साईसी (हि० स्त्री०) साईसका काम, भाव या पद।

साइस्ता खाँ (अमीर उल् उमरा)—बङ्गालका एक विख्यात मुगल शासनकर्त्ता। इसका असल नाम आबु तालिब और मिर्जा मुराद था। यह वजीर आसफ खाँका लड़का और इतिमाद उद्दौलाका पोता था। १८४१ ई०में प्रधान मन्त्री आसफ खाँके मरने पर सम्राट् शाहजहाने इसे वजीर बनाया। इसके पहले यह सम्राट्की कृपासे १६३८ ई०में बेरारका शासनकर्त्ता हो चुका था। १६५२ ई०में साइस्ता खाँ गुजरात जीतनेके लिये गया। १६५६ ई०में सम्राट् आलमगीर (औरङ्गजेब)ने इसे दाक्षिणात्यके राजप्रतिनिधिरूपमें नियुक्त कर अपने बड़े लड़के सुलतान महम्मदकी मददमें गोलकुण्डा युद्धमें नायकता करने का हुक्म दिया। १६५८ ई०में जब सम्राट् शाहजहांके पुत्रोंमें पितृसिंहासन लेकर तकरार खड़ा हुआ, तब साइस्ता खाँने खुल्लमखुल्ला दाराशिकोहका पक्ष लिया। किन्तु औरङ्गजेबकी गतिविधि, गोपनाय सबादादि और परामर्श दे कर इसने दाराशिकोहका लक्ष्य भ्रष्ट किया था। १६५९ ई०में सम्राट् आलमगीरने अपने लड़के महम्मद मुआज्जिमको दाक्षिणात्यसे अपने पास दिल्लीदरबारमें बुलाया और साइस्ता खाँको ही वहांका शासनकर्त्ता बनाया। इस समय शिवाजीके साथ इसका युद्ध छिड़ा। १६६६ ई०में यह बङ्गालका शासनकर्त्ता हुआ। इसके समय बङ्गालमें मुगलोंकी अच्छी धाक जम गई थी, तमाम शान्ति विराजती थी। कहते हैं, कि साइस्ता खाँके जमानेमें बङ्गालमें रु० आने मन चावल बिकता था।

साइस्ता खाँने बङ्गाल आ कर ढाका नगरीमें राजपाट स्थापन कर राजकार्य परिचालन किया था। यह सम्राट् औरङ्गजेबका मामा था उसीके जैसा न्याय चतुर और कूटनीतिपरायण था। इसने उस समय कलकत्तेमें ईस्ट इण्डिया कम्पनीका इजाधिकार करीके उद्देश उनके प्रति अन्याय व्यवहार किया। इस कारण हुगलीके निकट वर्ती घोलघाट नामक स्थानमें उस समयकी कम्पनीका काउंसिल गवर्नर जाब चार्णकके साथ इसकी लड़ाई हुई। इस लड़ाईमें किसी भी पक्षका कुछ नुकसान नहीं हुआ। जाब चार्णक देखो।

१६९४ ई०में ९३ चान्द्रवत्सर में इसकी मृत्यु हुई। आगरा नगरमें यमुनाके किनारे इसके बनाये हुए रौजा और उद्यानका खण्डहर आज भी दिखाई देता है। सम्राट् शाहजहांके जमानेमें इसने इलाहाबाद (प्रयाग) दुर्गके पश्चिम यमुनाके किनारे एक सुन्दर ममजिद बनवाई यह मसजिद १८१७ ई० तक विद्यमान थी। सिपाही विद्रोहके बाद ध्वस्त और नष्टप्राय हो गई है।

साक भरी (हि० पु०) सांभर झील या उसके आस पास का प्रान्त जो राजपूतानेमें है।

साकञ्ज (सं० त्रि०) सहोदरता। (ऋक् १।१६४।१५)

साक युज (सं० त्रि०) सहित युक्त, सहित वर्त्तमान।

साकवत् (सं० त्रि०) सहयुक्त।

साकवृध् (सं० त्रि०) प्रवृद्ध। (ऋक् ७।३३।२)

साक (सं० अव्य०) सहाय, सह, सहित, संग।

साक (हि० पु०) १ शाक, साग, सब्जी भाजी, तरकारी। २ शागीन देखो। ३ धाक देखो।

साकट (हि० पु०) १ शाक मतका अनुयायी। २ वह जो मद्य मांस आदि खाता हो। ३ वह जिसने किसी गुरुसे दीक्षा न ली हो, गुरुरहित। ४ दुष्ट, पाजी शरीर।

साकमुक्ष (सं० त्रि०) सहित या युगपत् सिञ्चनकारी साथ जल सींचनेवाला। (ऋक् १।६३।१)

साकमेध (सं० पु०) चातुर्मास्यमें यागभेद।

साकम्प्रस्थायीय (सं० पु०) यागभेद।

साकर (सं० स्त्री०) सांकल देखो।

साकल (हि० स्त्री०) सांकल देखो।

साकल्य (सं० क्ली०) सकल भावे ष्यञ्। १ समुदाय। २ सकलका भाव।

साका (हि० पु०) १ संवत् शाका। २ ख्याति, प्रसिद्धि, शोहरत। ३ धाक, रोब। ४ कीर्त्तिका स्मारक। ५ धाक, रोब। ६ वह ऐसा बड़ा काम जो सब लोग

न कर सकें और जिसके कारण कर्त्ताकी कीर्त्ति हो।

साकाङ्क्ष (सं० त्रि०) १ आकाङ्क्षाके सहित, सस्पृह, लालस। २ लोभी, इच्छुक।

साकार (सं० त्रि०) आकारेण सह वर्त्तमानः। १ आकार-विशिष्ट, जिसका कोई आकार हो, जिसका स्वरूप हो। २ मूर्त्तिमान्, साक्षात्। ३ स्थूल। (पु०) ४ ईश्वरका वह रूप जो साकार हो, ब्रह्मका मूर्त्तिमान् रूप।

साकारता (सं० स्त्री०) साकार होनेका भाव, साकारपन।

साकारोपासना (सं० स्त्री०) साकारस्य उपासना। ईश्वरकी वह उपासना जो उसका कोई आकार या मूर्त्ति बना कर की जाती है, ईश्वरकी मूर्त्ति बना कर उसकी उपासना करना। सगुण-ब्रह्मकी उपासना, प्रथमाधि-कारीके लिये साकारोपासना ही श्रेय है। जिसकी चित्तशुद्धि और इन्द्रियग्राम विजित नहीं हुआ है, वे साकारोपासना द्वारा चित्त शुद्धि आदि लाभ करें।

साकिन (अ० वि०) निवासी, रहनेवाला, बाशिंदा।

साकी (हि० पु०) गन्ध-पलाशी, कपूर कचरी।

साकी (अ० पु०) १ वह जो लोगोंको मद्य पिलाता हो, शराब पिलानेवाला। २ वह जिसके साथ प्रेम किया जाय, माशूक।

साकुच (सं० पु०) शकुल मत्स्य, सकुची मछली।

साकुरुण्ड (सं० पु०) वृक्षविशेष। पर्याय—ग्रन्थिफल, विकट, वस्त्रभूषण, कर्बूरफल, सकुरुण्ड। इसका गुण—कषाय, रुचिकारक, दीपन, मारक, श्लेष्मा, वात-नाशक, वस्त्ररञ्जक और लघु। (राजनि०)

साकुश (हि० पु०) अश्व, घोड़ा, वाजि।

साकूत (सं० त्रि०) साभिप्राय, अभिप्रायविशिष्ट।

साकेत (सं० क्ली०) अयोध्यानगरी, अवधपुरी।

साकेतक (सं० त्रि०) साकेत (धूमादिभ्यश्च। पा ४।२।१२७) इति वुञ्। साकेतदेशवासी, अयोध्याका रहनेवाला।

साकेतन (सं० क्ली०) साकेत, अयोध्या नगर।

साक्तुक (सं० पु०) सक्तुषु साधुः सक्तु (गुडादिभ्यष्ठञ्। पा ४।४।१०३) इति ठञ्। १ यव, जौ। सक्तूनां समूहः सक्तु (अचित्तहस्तिधेनोष्ठक्। पा ४।२।४७) इति ठक्। (क्ली०) २ सक्तुसमूह। (त्रि०) ३ सक्तु सम्बन्धी, सत्तूका।

साक्षत (सं० त्रि०) अक्षत या अरवा चावलके सहित।

साक्षर (सं० त्रि०) १ अक्षरयुक्त, विद्वान्। (क्ली०) २ अपना नाम लिखना, सही करना।

साक्षात् (सं० अव्य०) १ प्रत्यक्ष, सम्मुख। २ प्रत्यक्षी-भूत। ३ स्वयं। ४ तुल्य, सदृश। (पु०) ५ भेंट, मुलाकात, देखा देखी। (त्रि०) ६ मूर्त्तिमान्, साकार।

साक्षात्कर (सं० त्रि०) प्रत्यक्षजनक।

साक्षात्करण (सं० क्ली०) साक्षात्कार, प्रत्यक्ष करना।

साक्षात्कार (सं० पु०) १ मिलन, मुलाकात, भेंट। २ पदार्थोंका इन्द्रियों द्वारा होनेवाला ज्ञान।

साक्षात्कारिन् (सं० त्रि०) १ साक्षात् करनेवाला। २ भेंट या मुलाकात करनेवाला।

साक्षात्कृति (सं० स्त्री०) साक्षात्कार, भेंट, मुलाकात।

साक्षिता (सं० स्त्री०) साक्षीका काम, साक्षित्व, गवाही।

साक्षी (सं० त्रि०) दृष्टा, प्रत्यक्षदर्शन, प्रत्यक्षदर्शी, स्वयंद्रष्टा, जिसने प्रत्यक्षरूपसे सब देखा है। किसी विषय पर जब दो आदमीका विवाद उपस्थित होता है, तब उसकी साक्षी द्वारा मीमांसा होती है। अतः विवाद की मीमांसाके लिये साक्षी ही मूल है।

याज्ञवल्क्यसंहितामें यह विषय यों लिखा है— किसी विषयकी मीमांसाके लिये राजाके यहां नालिश करने पर कमसे कम तीन साक्षी गवाहोंकी गवाहियां दिला कर उसे प्रमाणित करना पड़ता है। तपोनिष्ठ, दानशील, सद्वंशीय, सत्यवादी, धर्मप्रधान, सरल स्वभाव, पुत्र-वान्, सम्पत्तिशाली, यथासम्भव, श्रौतस्मार्त्त और नित्य नैमित्तिक कर्मानुचारी तथा व्यवहर्त्ताके सजाति या सवर्ण इन सब गुणोंसे विशिष्ट तीन साक्षी होने चाहिये। सजाति तथा सवर्ण साक्षी यदि न मिले, तो सब जातिके सभी वर्णोंके साक्षी माने जा सकते हैं।

स्त्री, बालक, वृद्ध, कितव, श्रोत्रियवृद्ध, तापसवृद्ध और परिव्राजक आदि शास्त्रीय वचनानुसार साक्षियोंमें गिने नहीं जाते। इस विषयमें शास्त्रमें भी कोई कारण निर्दिष्ट नहीं हुआ है। मद्य आदिके सेवनसे मत्त, उन्मत्त, अभिशस्त, रङ्गावतारी, पाषण्डी, कूटकारी, विकलेन्द्रिय, पतित, बन्धु, अर्थसम्बन्धी अर्थात् जिसके

साथ विवादी विषयका ज्यादा सम्बन्ध है, सहाय, शत्रु, चोर, साहसी, दुष्टदास, मित्र परित्यक्त इत्यादि गुणवाले व्यक्ति साक्षी होनेके अयोग्य हैं । असत्यवश सम्मत घबड़ा कर ही साक्षी हो किन्तु निन्दित गुणयुक्त व्यक्तियोंको कभी साक्षी न बनावे । राजाको चाहिये, कि गवाही लेते समय गवाहको चेता दे कि झूठ गवाही देने पर क्या दोष है ।

गवाह गवाही देना स्वीकार कर गवाही न दे, तो उसको पाप और दण्ड कूटसाक्षीकी तरह होगा । गवाहो जिसकी लिखित प्रतिज्ञाको सत्य कहता है वह जयी होता है और जिसकी लिखित प्रतिज्ञा झूठ कहता है, वह पराजित । कितने ही गवाहोंके एक तरह बोल चुकने पर भी यदि दूसरे पक्षके या अपने पक्षके वादीके अत्यन्त गुणवान् व्यक्ति दूसरी तरहकी गवाही दे, तो पहलेके गवाह या साक्षी कूटसाक्षी गिने जाते हैं । जो झूठ साक्ष्य दे राजा उसका दण्डविधान करे । मुकदमेमें हारे हुए व्यक्तिको जो दण्ड मिले उससे दूना दण्ड कूटसाक्ष्य प्रदान करनेवालोंको देना चाहिये । राजाको चाहिये, कि कूटसाक्षीको देशसे भगा दे । किन्तु ब्राह्मण कूट साक्षी होनेसे अन्य कोई दण्ड न दे देशसे निकाल देना चाहिये ।

साक्षी साक्ष्य देना स्वीकार कर पीछे अस्वीकार करे, तो मुकदमेमें हारे हुए व्यक्तिको जो दण्ड मिले उसका अठगुना दण्ड उसे मिलना चाहिये । राजा पहले इस तरह उसे दण्डित कर पीछे उसे देशसे निकाल दे । जिस मामलेमें किसी एक अपराधीको प्राणदण्डकी सम्भावना है, उसमें साक्षी उसकी प्राणरक्षाके निमित्त झूठी गवाही दे सकता है । पीछे इस मिथ्याजनित पापका प्रायश्चित्त सारस्वत चरु निर्वपण करे ।

साक्षित्व (स० अव्य०) साक्षित्व अर्थात् आँखोंके सामने, मना देखकर ।

साक्षिभूत (स० पु०) भगवान् विष्णु ।

साक्षिमत् (स० त्रि०) साक्षीयुक्त, साक्षीविशिष्ट ।

साक्षी (हि० स्त्री०) किसी बातको कह कर प्रमाणित करनेकी क्रिया, गवाही, शहादत ।

साक्षेप (स० त्रि०) आक्षेपयुक्त, आक्षेपविशिष्ट ।

साक्ष्य (स० क्ली०) साक्षिन् (दिगादिभ्यो यत् । पा ४।३।५४) इति यत् । १ साक्षीका काम, गवाही, शहादत । २ दृश्य ।

साख (हि० पु०) १ साक्षी, गवाह । २ गवाही प्रमाण शहादत । ३ धाक, रोब । ४ मर्यादा । ५ बाजारमें वह मर्यादा या प्रतिष्ठा जिसके कारण आदमी लेन देन कर सकता हो लेन देनका खरापन या प्रामाणिकता ।

साखी (हि० पु०) १ साक्षी, गवाह । (स्त्री०) २ साक्षी गवाही । ३ ज्ञानसम्बन्धी पद या दोहे, वह कविता जिसका विषय ब्रह्मज्ञान हो । जैसे—कबीरकी साखी ।

साखू (हि० पु०) शालवृक्ष सखुआ ।

साखेय (स० त्रि०) सखि (सुमङ्गल्याद्‌कट्‌जिविति । ४।२।८०) इति ढञ् । सखिसम्बन्धी ।

सखोट (हि० पु०) सिहोर वृक्ष सिहोरा, भूतावास । सिहोर देखो ।

साख्य (स० क्ली०) सखिभावम् । सख्य सादृश्य बन्धुत्व ।

साग (हि० पु०) १ पौधोंकी खाने योग्य पत्तियां, शाक, भाजी । २ पकाई हुई भाजी तरकारी ।

सागर (स० पु०) सगरस्य राज्ञोऽयमिति सगर अण् । १ समुद्र उदधि, जलधि । अमरटीकामें भरतने लिखा है, कि राजा सगरने इसे खनवाया किया, इसलिये समुद्रका नाम सागर हुआ । २ बड़ा तालाब, झील, जलाशय । ३ संन्यासियोंका एक भेद । ४ मगरके एक पुत्रका नाम । (भाग० ९।१०७) ५ एक प्रकारका मृग । (त्रि०) ६ सागर सम्बन्धी ।

सागरक (स० पु०) जनपदभेद ।

सागरग (स० त्रि०) सागर गम ड । सागरगामी सागर पर्यन्त गमनकारी ।

सागरगम (स० त्रि०) सागर पर्यन्त गमनकारी ।

सागरगा (स० स्त्री०) १ नदी दरिया । २ गङ्गा ।

सागरगामिन् (स० त्रि०) सागर पर्यन्त गमनकारी ।

सागरगामिनी (स० स्त्री०) १ नदी । २ सूक्ष्मैला ।

सागरज (स० पु०) समुद्रलवण ।

सागरजमल (स० पु०) समुद्रफेन, अब्धि कफ ।

सागरदत्त (सं० पु०) १ गान्धर्ववंशीय एक प्रसिद्ध व्यक्ति। २ गन्धर्वराजभेद।
सागरधरा (सं० स्त्री०) पृथ्वी, भूमि।
सागरनन्दिन (सं० पु०) एक कोषकार।
सागरनेमि (सं० स्त्री०) पृथ्वी। (हेम)
सागरपर्यन्त (सं० त्रि०) समुद्र पर्यन्त, समुद्र तक।
सागरपाल (सं० पु०) नागराज। (तारनाथ)
सागरमुद्रा (सं० स्त्री०) ध्यानमुद्राभेद।
सागरमेखला (सं० स्त्री०) पृथ्वी। (हेम)
सागरलिपि (सं० स्त्री०) लिपिभेद। ललितविस्तरमें इस लिपिका उल्लेख पाया जाता है। (ललितवि०)
सागरवर्म्मन् (सं० पु०) राजभेद।
सागरवासी (सं० पु०) १ वह जो समुद्रमें रहता हो, समुद्रमें रहनेवाला। २ वह जो समुद्रके तट पर रहता हो, समुद्रके किनारे रहनेवाला।
सागरव्यूहगर्भ (सं० पु०) बोधिसत्त्वभेद।
सागरसूनु (सं० पु०) सागरके पुत्र।
सागरानूपक (सं० त्रि०) सागरवासी, समुद्रमें रहनेवाला।
सागरान्त (सं० त्रि०) सागर पर्यन्त, समुद्र तक।
सागराम्बरा (सं० स्त्री०) सागरः अम्बरं वस्त्रमिव यस्याः। पृथ्वी।
सागरालय (सं० पु०) सागरमें रहनेवाला, वरुण।
सागरावर्त्त (सं० पु०) सागरछोर। (महाभारत वनपर्व)
सागरीका (सं० स्त्री०) रत्नावलीकी सखी।
सागरोत्थ (सं० क्ली०) समुद्रलवण।
सागरोदक (सं० क्ली०) समुद्रजल। महास्नानके समय सागरोदकसे स्नान कराना होता है।
सागवना (हिं० पु०) सागौन देखो।
सागस् (सं० त्रि०) पापके सहित पापयुक्त।
सागू (हिं० पु०) १ ताडकी जातिका एक प्रकारका पेड। यह जावा, सुमात्रा, बोर्नियो आदिमें अधिकतासे पाया जाता है। इसके कई उपभेद हैं जिनमेंसे एकको माड भी कहते हैं। इसके पत्ते ताडके पत्तोंकी अपेक्षा कुछ लम्बे होते और फल सुडौल गोलाकार होते हैं। इसके रेशोंसे रस्से, टोकरे और बुरुश आदि बनते हैं। कहीं कहीं इसमेंसे पाछ कर एक प्रकारका मादक रस भी निकाला जाता है और उस रससे गुड़ भी बनाया जाता है। जब यह पन्द्रह बरसका हो जाता है, तब इसमें फल लगते हैं और इसके मोटे तनेमें आटेकी तरहका एक प्रकारका सफेद पदार्थ उत्पन्न हो कर जम जाता है। यदि यह पदार्थ काट कर निकाल न लिया जाय, तो पेड़ सूख जाता है। यही पदार्थ निकाल कर पीसते हैं और तब छोटे छोटे दानोंके रूपमें बना कर सुखाते हैं। कुछ वृक्ष ऐसे भी होते हैं जिनके तनेके टुकड़े टुकड़े करके उनमेंसे गूदा निकाला जाता है और पानीमें कूट कर दानोंके रूपमें सुखा लिया जाता है। इन्हीं दानोंको सागूदाना या साबूदाना कहते हैं। इस वृक्षका तना पानीमें जल्दी नहीं सड़ता, इसलिये उसे खोखला करके उससे नालीका काम लेते हैं। यह वृक्ष वर्षा ऋतुमें बीजोंसे लगाया जाता है। २ सागूदाना देखो।

सागूदाना (साबूदाना) (हिं० पु०) सागू नामक वृक्षके तनेका गूदा। यह भिन्न भिन्न देशमें भिन्न भिन्न नामसे प्रसिद्ध है। यथा—तामिल—सानारिसि, दाक्षिणात्यमें—सउके-छवल, मलय—सागु, चीन—सिकुमी, फरासी—सागों, जर्मन—सगो, अंगरेजी—स्यागो। पपुआ भाषामें साबू शब्दका अर्थ रोटी है।

पूर्वभारतीय द्वीपपुञ्जमें हमारे देशके ताड़के पेडकी तरह एक प्रकारका पेड़ है जिसे सागूका पेड़ कहते हैं। उद्भिद्विदोंने उसे ताड़ (Palm)की जातिका बताया है और उसका Metroxylon Sago नाम रखा है। साबूके पेडको दूसरे किसी किसी वृक्षके श्वेतसारसे सागू तैयार हो कर बाजारमें साबूदाना या सागू नामसे ही बिकता है। ज्वर, अजीर्ण आदि रोगोंमें यह अरारोट, बार्ली आदिकी तरह पथ्य है।

पेडमें फूल और फल लगनेके पहले ठीक उपयुक्त समय जान कर पेडको काट डालते हैं, पीछे तनेको खंड खंड कर चीरते हैं। उसके भीतर जो सार या मज्जा रहता है, उसे छिलका कर बाहर करके पीसते हैं। पीछे उस चूर्णको मैदेकी तरह जलमें घोल कपडेसे छान लेते हैं। छलनीमेंसे जलके साथ सारपदार्थ माड़के जैसा निकल जाता है और वृक्षज तन्तु उसीमें रह जाते हैं।

इसके बाद वह श्वेतसारमिश्रित जल एक काठके दौने या बड़े बरतनमें डाल दिया जाता है। बरतनकी पेंदीमें श्वेत सार जम जाता है। बरतनके ऊपरका जल धीरे धीरे फेंक कर देनी साबू बनाने और फिरसे उस श्वेतसारको दो बार धो डालते हैं। इस प्रकार धौत और परिष्कृत होनेके बाद साबू सार खाने लायक हो जाता है।

प्रकृत साबू पेड़को छोड़ भारतीय प्रायोद्वीपमें दूसरे जिन सब वृक्षोंसे प्रचुर परिमाणमें साबू तैयार होता है तथा जो बजारमें साबूदानेके रूपमें साबूकी तरह उत्कृष्ट वस्तु कह कर बिकते हैं, उन वृक्षोंकी एक तालिका नीचे दी गई है—

1 Arenga saccharifera
2 Borassus flabelliformis
3 Caryota urens
4 Corypha Umbraculifera
5 Cycas circinalis
6 C Pectinata
7 C Rumphii
8 Metroxylon
9 Phoenix acaulis
10 P Rupicola
11 Tacca pinnatifida

ऊपर जो वृक्षतालिका दी गई उसे देखनेसे जाना जाता है कि ५, ६, ७ और १० पेड़ ताड़का जातिके नहीं हैं। भारतवर्षके एकमात्र तालजातीय साबूके पेड़ Caryota urens से सागूदाना तैयार होता है।

पहले ही कहा जा चुका है, कि उदरामय और ज्वर आदिमें साबू रोगीके लिये उत्कृष्ट पथ्य है। बहुत दिन ज्वर भुगतनेके बाद आरोग्य लाभ करने पर भी जब रोगी दुर्बल अवस्थामें रहता है तब भी साबू खानेको दिया जाता है।

भारत महासागरस्थ पूर्वद्वीपपुञ्जवासी और भारतवासी साधारणतः साबूको गरम जलमें कुछ सिद्ध कर कपड़ेसे छान लेते हैं। साबू सिद्ध हो जाने पर वर्णहीन या जलकी तरह दिखाई देता है तथा उसमें किसी प्रकार की गन्ध नहीं रहती। यह रोगीको दूध मउलीके जूस या नाबूके रसके रस मिला कर दिया जाता है। कभी कभी लोग साबूका पुडिंग भी तैयार करते हैं। बड़े दानेके साबू मूंगकी दालके साथ खिचड़ी बना कर खानेमें बड़ा अच्छा लगता है। द्वीपवासी साबूके सफेद सारको नलम घोल बिस्कुट बना कर सुखा रखते हैं। यह बिस्कुट बहुत दिन रहता है।

सागो (हिं० पु०) सागू देखो।

सागौन (हिं० पु०) शाल देखो।

साग्नि (सं० त्रि०) अग्निके सहित, अग्नियुक्त।

साग्निक (सं० त्रि०) अग्निके सहित, अग्नियुक्त। कलिको छोड़ अन्य युगोंमें सभी ब्राह्मण साग्निक थे। उपनयनके समय जो अग्नि प्रज्वलित होती थी, उपनीत ब्राह्मण यत्नपूर्वक उस आगकी रक्षा तथा प्रति दिन उसमें होम करते थे पीछे अन्तमें उसी अग्निसे उनकी अन्त्येष्टि क्रिया होती थी। साग्निक ब्राह्मणको स्नातक कहते हैं। कलिकालमें सभी ब्राह्मण निरग्निक हैं।

साग्निचित्य (सं० त्रि०) अग्निचयन क्रियायुक्त।

साग्र (सं० त्रि०) १ अग्रके सहित, अग्रयुक्त। २ समस्त, कुल, सब।

साग्रज (सं० त्रि०) अग्रजके साथ आगन्तुक।

साङ्कथिक (सं० त्रि०) सङ्कथायाः साधुः (कथादिभ्यष्ठक्। पा ४।४।१०२) इति ठक्। सङ्कथा विषयमें साधु।

साङ्करिक (सं० त्रि०) सङ्करयण या मिश्रयण-सम्बन्धी।

साङ्कर्य्य (सं० क्ली०) सङ्करस्य भावः ष्यञ्। सङ्करका भाव मिश्रण।

साङ्कल (सं० त्रि०) सङ्कल (सङ्कलादिभ्यश्च। पा ४।२।७५) इति अण्। १ सङ्कल द्वारा निर्वृत्त। २ सङ्कलनसे जात।

साङ्कल्पिक (सं० त्रि०) सङ्कल्प सम्बन्धी।

साङ्काशिन (सं० क्ली०) प्रगुण।

साङ्काश्य (सं० पु०) उत्तर भारतका प्रसिद्ध एक प्राचीन नगर। इसका वर्त्तमान नाम सङ्किसा है। सङ्किस देखो।

साङ्काश्यक (सं० त्रि०) साङ्काश्य सम्बन्धी।

साङ्कुची (सं० स्त्री०) मत्स्यविशेष सङ्कुचा मछली।

साङ्कृत (सं० त्रि०) सङ्कृति प्रवर सम्बन्धी।

साङ्कृति (सं० पु०) एक मुनिका नाम। ये वैताम्राय गोत्रके प्रवर थे।

साङ्कृत्य (सं० पु०) सङ्कृतिका गोत्रापत्य।

साङ्कृत्यायन (सं० पु०) साङ्कृत्यका गोत्रापत्य।

साङ्केतिक (सं० त्रि०) १ सङ्केतकारक, सङ्केत-संबन्धी। (क्ली०) २ संक्षेपसे हिसाव बनाना।

साङ्केत्य (सं० क्ली०) मूल प्रमाणशून्य पाषण्डोंका शास्त्र। (भागव० ५।१४।२६)

साङ्क्रामिक (सं० त्रि०) साङ्क्रामे साधु (गुडादिभ्यष्ठञ्। पा ४।४।१०३) इति ठञ्। जो शीघ्र संक्रम करे।

साङ्क्षेपिक (सं० त्रि०) १ संक्षिप्त। २ सङ्क्षेपकारक।

साङ्ख्य (सं० क्ली० पु०) संख्या सम्यक्ज्ञानं सा अस्त्यत्रेति संख्या-अण् वा सम्यक् ख्यायते प्रकाश्यते वस्तुतत्त्वमनयेति संख्या सम्यक् ज्ञानं तस्यां प्रकाशमान आत्मतत्त्वं साङ्ख्यं। षट्दर्शनोंमें दर्शनशास्त्रविशेष। पर्याय—कापिल। (हेम) महर्षि कपिलने इस शास्त्रको प्रणयन किया था। इस दर्शनके भाष्यकार विज्ञान भिक्षुने इसकी इस तरह व्युत्पत्ति की है—

"सांख्यां प्रकुर्वते चैव प्रकृतिञ्च प्रचक्षते।
तत्त्वानि च चतुर्विंशत् तेन साङ्ख्याः प्रकीर्त्तिताः॥
संख्या सम्यक् विवेकेनात्मकथनं। अतः सांख्य शब्दस्य योगरूढ तया तत्कारणं सांख्ययोगं।"

सांख्य उसीको कहते हैं, जिसमें संख्या, प्रकृति तथा २४ तत्त्व अभिहित हुए हों। सम्यक् विवेक द्वारा आत्मकथनका नाम संख्या है। अतएव जिसमें सम्यक् विवेकख्याति द्वारा आत्मतत्त्व लाभ हो, उसीको सांख्य कहते हैं।

परमज्ञानी भगवान् कपिलने जीवोंके दुःख विमोचनके लिये इस दर्शनशास्त्रका उपदेश दिया है। उन्होंने जिस सांख्यका उपदेश दिया है, उसका नाम तत्त्वसमास है, यह अति संक्षिप्त है। उन्होंने दया कर आसुरि मुनिको यह श्रेष्ठ पवित्र ज्ञान पहले पहल प्रदान किया। पीछे आसुरि मुनिने पञ्चशिखको तथा पञ्चशिख मुनिने पीछे बहुत तरहसे इस ज्ञानका प्रचार किया। इस तरह शिष्य परम्पराक्रमसे यह ज्ञान प्रचारित हुआ।

इस समय जो सांख्यसूत्र प्रचलित है, उन्हें विज्ञान भिक्षु, कपिलप्रणीत स्वीकार करते हैं। उनका कहना है, कि वर्त्तमान सूत्रमें संक्षिप्त सांख्य है, दर्शनके प्रपञ्चन-अर्थात् विस्तृत भावसे व्याख्या इससे इसका नाम सांख्य प्रवचन है। यह भी प्रकारान्तरसे उन्होंने स्वीकार किया है, कि कालक्रमसे यह शास्त्र विलुप्त हुआ था।

"कालार्कभक्षितसांख्य शास्त्रं ज्ञान सुधाकरं।
कलावशिष्टं भूयेऽपि पूरयिष्ये वचोऽमृतैः॥"

(सांख्यभाष्य)

कपिलके शिष्य आसुरिने पञ्चशिखाचार्यको इस शास्त्रका उपदेश दिया, उन्होंने इस दर्शनके प्रकाशके सम्बन्धमें बहुतेरे ग्रन्थ प्रणयन किये। किन्तु कालक्रम से उन ग्रन्थोंमें अधिकांश विलुप्त हो गये हैं। पीछे ईश्वरकृष्णने इस ज्ञानका अवलम्बन कर आर्याश्लोकमें सांख्यकारिका प्रणयन की। यह कारिका ही सांख्यदर्शनका अति समीचीन तथा प्रामाणिक ग्रन्थ है। प्राचीन आचार्य्योंमें आज कलके सूत्रोंकी अपेक्षा सांख्यकारिका समादृत और विशेष प्रामाणिक रूपसे स्वीकृत हुई है। शङ्कराचार्य्यने शारीरकभाष्य में सांख्यदर्शनके मत खण्डन प्रसङ्गमें प्रचलित सांख्य दर्शनका सूत्र उद्धृत न कर ईश्वर कृष्णकी सांख्यकारिका उद्धृत की है। ५वीं शताब्दीमें परमार्थने चीनभाषामें इस कारिकाका अनुवाद प्रकाशित किया। अतः इसमें सन्देह नहीं कि यह कारिका भी अतिप्राचीन ग्रन्थ है। सुतरां इससे मालूम होता है, कि प्रचलित सांख्यसूत्रकी अपेक्षा किसी समय सांख्यकारिका ही विशेष समादृत थी। षडदर्शन टीकाकृत् वाचस्पति मिश्रने भी सांख्यसूत्रकी टीका न कर इस कारिकाकी ही टीका की है। इसका नाम सांख्यतत्त्वकौमुदी है। यह भी अतिप्रामाणिक ग्रन्थ है। वाचस्पति मिश्र इस दर्शनकी टीका न करनेसे षडदर्शनके टीकाकार नहीं होते, सुतरां उन्होंने भी सांख्यसूत्रकी अपेक्षा इस कारिकाको ही प्रामाणिक स्वीकार कर इसीकी टीका की है।

इस समय जो सांख्यदर्शन प्रचलित है, वह भी अध्यायोंमें विभक्त है और सब अध्यायोंमें कुल ४५६ सूत्र हैं। विज्ञानभिक्षुने लिखा है, कि आयुर्वेद शास्त्रमें जैसे रोग, आरोग्य, रोगनिदान और भैषज्य ये चार

व्यूह हैं, वैसे ही सांख्यशास्त्रमें भी हेय, हान, हयहेतु और हानोपाय ये चार व्यूह हैं।

आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक ये तीन प्रकारके दुःख हेय, इन तीन प्रकारके दुःखहानके योग्य, परित्यागके उपयुक्त हैं इसीलिये यह हेय हैं। इन तीन प्रकारके दुःखकी अत्यन्त निवृत्तिका नाम हान है प्रकृति और पुरुषके अविवेक या अभेदज्ञान हेयहेतु विवेकज्ञान अर्थात् प्रकृति या उसका कार्य बुद्धि आदि पुरुष नहीं। पुरुष उससे भिन्न है, प्रकृति और पुरुषका जो भिन्न ज्ञान है, वही हेयहेतु है। इस ज्ञानके उदय होनेसे इन तीनों प्रकारके दुःखोंकी अत्यन्त निवृत्ति होती है।

सांख्यशास्त्रके प्रथम अध्यायमें हेय हान हयहेतु और हानोपाय निर्णीत हुआ है। दूसरे अध्यायमें प्रकृति का सूक्ष्मकार्य, तीसरे अध्यायमें प्रकृतिका स्थूल कार्य, लिङ्गशरीर, अपर वैराग्य और परवैराग्य चौथे अध्याय में शास्त्रप्रसिद्ध कई आख्यायिकाओंका प्रदर्शन करते हुए प्रकारान्तरसे विवेकज्ञानसाधनका उपदेश, पाचवें अध्याय में परपक्षनिरास अर्थात् स्वसिद्धान्तमें वादियोंके समुद्भावित दोषोंका निरास और उनके मतोंका खण्डन, तथा छठे अध्यायमें विस्तृत रूपसे शास्त्रके मुख्य विषय की व्याख्या और शास्त्रार्थका उपसंहारवर्णित हुआ है।

सांख्यदर्शनमें ईश्वरका प्रमाण स्वीकृत नहीं हुआ है। इससे इसका नाम निरीश्वरसांख्य है। शङ्कराचार्यने सांख्यको निरीश्वर और सेश्वर इन दो भागोंमें विभक्त किया है। उनके मतसे कपिलप्रणीत निरीश्वर सांख्य और पतञ्जलि प्रणीत सेश्वरसांख्य है। कपिल स्वयं वासुदेव और पतञ्जलि अनन्तके अवतार हैं। ईश्वर स्वीकार नहीं करते ऐसी बात नहीं है किन्तु उनका कहना है कि उसको प्रमाणित किया जा नहीं सकता अर्थात् ईश्वर असम्भव है। उन्होंने यह प्रतिपादन किया है कि 'ईश्वरासिद्धेः' इस सूत्र द्वारा ही ईश्वर सिद्ध नहीं किया जा सकता। यदि ईश्वर नहीं है यह उनका मत होता, तो वे ईश्वरासिद्धेः इस सूत्रके बदले "ईश्वराभावात्" ऐसा सूत्र करते और भी उन्होंने कहा है कि 'ईश्वरासिद्धेः ए इति निरीश्वरत्वम्' (विज्ञानभिक्षु) ईश्वर स्वरूपतः दुर्ज्ञेय है इसलिये निरा

कपिलके मतसे ज्ञान द्वारा मुक्ति और पतञ्जलिके मतसे योगप्रभावसे मुक्ति होती है।

शङ्कराचार्यने लिखा है कि योगी कापोलीय तत्त्व ज्ञानके लिये प्रस्तुत होंगे। इसी कारणसे श्रुति स्मृति इतिहास, पुराण और भारत और तो क्या शैवागमादिमें भी स्पष्ट सांख्यमत दिखाई देता है*। भगवान्ने गीतामें "नैव सांख्यात परं ज्ञानं" इत्यादि उक्ति द्वारा ज्ञानात्मक पन्थमें सांख्य ही प्रधानशास्त्र स्वीकार किया है। इधर सुप्रसिद्ध राजनीतिक चाणक्यने अपने अर्थशास्त्रमें सांख्य और योग इन दोनों दर्शनको ही आन्वीक्षिकी विद्यामें गिना है†। सेश्वर सांख्यका विवरण पहले लिखा गया है। योग देखो।

सांख्यसूत्र और विज्ञानभिक्षुके भाष्य और ईश्वर कृष्णकी कारिका, योगसूत्र और वाचस्पति मिश्रका तत्त्व कौमुदी—इन कई ग्रन्थोंका आलोचना करनेपर मालूम होता है, कि वाचस्पतिमिश्रको तत्त्वकौमुदीमें ईश्वर स्वीकृत नहीं हुए हैं। किन्तु विज्ञानभिक्षुने प्रकारान्तरसे ईश्वर स्वीकार किया है। उनका कहना है कि सूत्रकारने अभ्युपगमवाद अवलम्बन कर ईश्वरका प्रत्याख्यान किया है। सूत्रकारका अभिप्राय यह है, कि मानो कि विचार मुखसे ईश्वर सिद्ध नहीं हुए किन्तु इसके द्वारा विवेक साक्षात्कार होने पर मुक्ति होनेमें कोई बाधा नहीं हो सकती—विचारस्थलमें यदि ईश्वर न माना जाये तो उसमें क्षति क्या है? कारण जीवका प्रयोजन क्या है? मुक्ति। किन्तु ईश्वर स्वीकार न करनेसे विवेक साक्षात्कार होनेसे ही जब मुक्ति होगी, तब ईश्वरके स्वीकार या अस्वीकार करनेसे क्या आता जाता है? विज्ञानभिक्षु

---

* "योगी कपिल पक्षीय तत्त्वज्ञानमपेक्षते।
श्रुतिस्मृतीतिहासेषु पुराणभारतादिषु।
साङ्ख्यानि दृश्यते स्पष्टं तथा शैवागमादिषु॥"
(पद्मो ।१४)

† 'साङ्ख्ययोगो लोकायत चेत्यान्वीक्षिकी।'
(अर्थशास्त्र १ अ०)

श्वरत्व अभिहित हुआ है। जो प्रयोजन है, वह यदि सिद्ध हो, तो अन्य विषय पर विशेष रूपसे आलोचना करनेकी क्या आवश्यकता है? ईश्वरको स्वीकार न करने से ही जब मुक्तिमें किसी तरहकी बाधा नहीं, तब सेश्वर और निरीश्वर विषय पर वाग्वितण्डा करनेकी क्या आवश्यकता है? उनके इन सब वाक्यों द्वारा स्पष्ट ही मालूम होता है, कि वे ईश्वरका अस्तित्व स्वीकार करते थे।

किन्तु सांख्यसूत्रोंकी विशेषरूपसे पर्यालोचना करने पर मालूम होता है, कि उन्होंने "ईश्वरासिद्धेः" इसी सूत्र द्वारा केवल ईश्वरका अस्तित्व स्वीकार नहीं किया, वरं उन्होंने और भी कितने ही सूत्रों द्वारा निरीश्वरत्व का प्रतिपादन किया है—"प्रमाणाभावान्न तत्सिद्धिः" (सांख्यसू० ५।१०) प्रमाणके अभावसे उसकी सिद्धि नहीं होती अर्थात् प्रमाणके बिना ईश्वरकी सिद्धि नहीं होती।

सांख्यके अनुसार प्रमाण तीन तरहका है,—प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द। इन तीनों प्रमाणोंसे ईश्वर सिद्धि नहीं की जाती। यह कहना ही व्यर्थ है, ईश्वर प्रत्यक्ष सिद्ध नहीं है अर्थात् प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा किसी तरह ईश्वरकी सिद्धि नहीं होती। जहां प्रत्यक्ष द्वारा सिद्धि नहीं होती वहां अनुमान प्रयोग किया जाता है। किन्तु अनुमान प्रमाण द्वारा भी यह सिद्ध नहीं किया जा सकता। 'सम्बन्धाभावान्नानुमानं' (सांख्यसू० ५।११) किसी वस्तुके साथ यदि अन्य किसी वस्तुका नित्य सम्बन्ध हो, तो एक देखनेसे दूसरेका अनुमान होता है। यह नित्य सम्बन्ध या व्याप्ति ही अनुमानका एकमात्र कारण है। जहां यह सम्बन्ध नहीं, वहां पदार्थान्तर अनुमित हो नहीं सकता। इस समय जगत्‌में किसके साथ ईश्वरका नित्य सम्बन्ध है, कि उससे ईश्वरानुमान किया जा सके। इस पर सांख्यकार-का कहना है, कि किसीके साथ नहीं।

तीसरा प्रमाण शब्द है। वेद ही आप्तोपदेश है। वेदमें ईश्वरका कोई प्रसङ्ग नहीं है। वर वेदसे यही प्रतिपादित होता है, कि सृष्टि प्रकृतिकी ही क्रिया है; ईश्वरकृत नहीं।

"श्रुतिरपि प्रधानकार्यत्वस्य" (सांख्यसू० ५।१२)
किन्तु वेदमें ईश्वरका जो उल्लेख दिखाई देता है, वह मुक्तात्माकी प्रशंसा या सिद्धकी उपासना है। सुतरां आप्त प्रमाण द्वारा भी ईश्वर सिद्ध नहीं होता। ईश्वरके अस्तित्वका प्रमाण नहीं है। इस तरह उन्होंने प्रतिपादन किया है और ईश्वरके अनस्तित्वके सम्बन्धमें उक्त रूपसे प्रमाण दिया है। यथा—ईश्वरका लक्षण क्या है? जो सृष्टिकर्त्ता है या पाप-पुण्यके फलविधाता है, वह बद्ध है या मुक्त? यदि मुक्त हो, तो उसकी सृष्टि-कार्यमें प्रवृत्ति हो नहीं सकती। यदि कहो, कि बद्ध है, तो उसको अनन्त ज्ञानशक्ति हो नहीं सकती। तब एक कोई सृष्टिकर्त्ता है, यह असम्भव है।

"मुक्तबद्धयोरन्यतराभावान्न तत्सिद्धिः॥"
"उभयथाप्यसत्करत्वं" (सांख्यसू० १।९३, ९४)

यदि कहो, कि ईश्वर पापपुण्यका दण्ड विधाता है, तो उसको कर्मके अनुसार फलविधान करना होगा। यदि वह ऐसा न करे अर्थात् स्वेच्छानुसार फलविधान करे, तो उसका इस आत्मोपकारके लिये ही करना सम्भव है। इससे उसको सामान्य लौकिक राजाकी तरह आत्मोपकारी और दुःखके अधीन हो जाना पड़ेगा।

यदि यह न कह वह कर्मानुयायी ही फलविधाता हो, तो कर्मको फल विधाता क्यों नहीं कहते, फल-निष्पत्तिके लिये फिर कर्म पर ईश्वरानुमानका प्रयोजन क्या? इत्यादि कारणोंसे निरीश्वरत्व ही प्रतिपादित हुआ है।

यह निःसंशयरूपसे कहा जा सकता है, कि ईश्वर-कृष्णकी कारिकामें ईश्वर अङ्गीकृत नहीं हुआ। सब सांख्यसूत्रोंको देखनेसे भी यह बोध होता है, कि इस कारिकाके अवलम्बन करके ही विज्ञानभिक्षुने अधिकांश सूत्र प्रकाशित किये हैं। ईश्वर-कृष्णकी सांख्यकारिका, गौड़पादाचार्यकृत सांख्यकारिकाभाष्य, वाचस्पतिमिश्र कृत सांख्यतत्त्वकौमुदी, विज्ञानभिक्षुकृत सांख्यभाष्य और सांख्यसार आदि सांख्यशास्त्रके विशेष प्रामाणिक ग्रन्थ हैं।

वाचस्पतिमिश्रने स्वयं कहा है, कि यह सांख्य-कारिका ही सांख्यशास्त्र है। सिवा इसके कोई सांख्य-

शास्त्र विद्यमान नहीं था। शङ्कराचार्य, उदयनाचार्य और इनके पूर्ववर्ती दार्शनिक पण्डित इस कारिकाको ही साङ्ख्यशास्त्र मानते हैं। जिसको इस समय साङ्ख्य-दर्शन या साङ्ख्यप्रवचन कहते हैं, पहले उसका लोग नाम तक नहीं जानते थे।

साङ्ख्याचार्यों के मतमें दुःखत्रयकी अत्यन्त निवृत्ति का नाम परमपुरुषार्थ है। इसकी निवृत्ति ही मुक्ति है। पुरुषका प्रयोजन ही क्या है? मुक्ति है त्रिविध दुःखोंके हाथसे एकान्त और अत्यन्त निवृत्ति ऐसे उपाय का अवलम्बन जिससे किसी समय भी दुःखोत्पत्ति न हो सके। दुःख तीन प्रकारका है, आध्यात्मिक आधिभौतिक और आधिदैविक। जो दुःख आत्माको अधिकार कर निष्पन्न हो आभ्यन्तरीण उपायोंमें जो दुःख सम्पन्न हो, उसको आध्यात्मिक दुःख कहते हैं। साधारण मनुष्य सङ्घात अर्थात् शरीर और इन्द्रियादिको ही आत्मा कहा करते हैं, सुतरां ऐसे उपायसाध्य दुःख ही आध्यात्मिक दुःख है। यह आध्यात्मिक दुःख दो तरह का है—शारीर और मानस। शरीर भी स्थूल और सूक्ष्म भेदसे दो प्रकारका है। इस परिदृश्यमान देहको स्थूल देह और बुद्धि, मन दसों इन्द्रिय और पञ्चतन्मात्रासे गठित अदृश्य देहको सूक्ष्म देह कहते हैं। रोगमें स्थूल देहका दुःख सङ्घटित होता है, वात पित्त कफ (श्लेष्मा)-के समवस्थाका नाम आरोग्य है, यही स्वास्थ्यका निशान है। इनके वैषम्य होनेसे रोगकी उत्पत्ति होती है। सुतरां रोगजनित जो दुःख अनुभव होता है उस को ही शारीर दुःख कहते हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह और भयादिसे जो दुःख अनुभव होता है, उसका नाम मानस दुःख है। आधिभौतिक और आधिदैविक ये दोनों दुःख बाह्य उपायसाध्य हैं। आभ्यन्तरीण उपायसाध्य नहीं। मनुष्य पशु पक्षी, कीट, पतङ्ग आदि भूतोंसे जो दुःख मिलता है उसका आधिभौतिक दुःख कहते हैं। भूतोंसे यह दुःख होता है, इससे इसका नाम आधिभौतिक हुआ है। यक्ष राक्षसोंके आवेशसे जो दुःख होता है उसको आधिदैविक कहते हैं। इन तीनों दुःखोंका अत्यन्त निवृत्ति का नाम मुक्ति है। एकमात्र विवेकज्ञान ही इस दुःख की निवृत्तिका उपाय है। प्रकृति और पुरुषके भेदज्ञानसे अर्थात् प्रकृति तथा उनके कार्य बुद्ध्यादिसे पुरुष पृथक् है यही ज्ञान ज्ञानविवेक है। इस विवेकज्ञानके प्रकाश नाको साङ्ख्यदर्शनका प्रयोजन है।

विवेकज्ञान ही दुःखनिवृत्तिका एकमात्र ऐकान्तिक उपाय है। इस विवेकज्ञान द्वारा एक बार दुःखका उच्छेद साधन होने पर फिर उसकी आवृत्ति नहीं हो सकती। क्योंकि मिथ्याज्ञान दुःखका निदान या आदिकारण है। विवेकज्ञान द्वारा मिथ्याज्ञान समूल उन्मूलन होने पर कारणके अभावमें कार्यकी उत्पत्तिकी आशङ्का ही नहीं हो सकती। वृक्ष उखाड़ देने पर कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति उससे फल पानेकी आशा नहीं कर सकता।

साङ्ख्याचार्योंका कहना है कि 'मा हिंस्यात् सर्वा भूतानि' किसी भी प्राणीकी हत्या न करना, हिंसा करनेसे ही पाप होगा, यही इस निषेधका तात्पर्य है। 'अग्नीषोमीयं पशुमालभेत' अग्नीषोम देवमें पशुहिंसा करो। इस विधिसे मालूम होता है कि यज्ञसम्पादनके लिये पशुहिंसा विहित है। इसका तात्पर्य यही है, कि पशुप्रभृतिकी हिंसाके बिना यज्ञसम्पन्न नहीं होता, अतः वे सब हिंसा करते हुए भी यज्ञसम्पादन करो।

किसी प्राणीकी हिंसा न करो—यह सामान्यशास्त्र है और अग्निषोमीय पशुकी हिंसा करो—यह विशेष शास्त्र है। एक श्रुतिका कहना है, कि हिंसा न करो करनेसे पाप होगा फिर दूसरी श्रुतिका कहना है, कि पशुहिंसाके बिना यज्ञ नहीं होता पशुहिंसा यज्ञका उपकारक है। सुतरां इन दो विधियोंका कुछ भी विरोध नहीं ये सम्पूर्ण रूपसे स्वतन्त्रावधि है। क्योंकि यज्ञीय पशुहिंसा यज्ञका सम्पादन और पुरुषका प्रत्यवाय यह दोनों निर्वाह करने सकता है।

साङ्ख्याचार्योंने प्रतिपादन किया कि ज्योतिष्टोम भी पाप होगा और यज्ञ उपकारक लिये पुण्य भी उत्पन्न होगा। वैदिक यज्ञ अनुष्ठानसे जैसे प्रभूत पुण्य सञ्चय होता है, वैसे ही इस यज्ञके हिंसासाध्य होनेसे प्रभूत पुण्यके साथ साथ यत्किञ्चित् पापकी भी सञ्चय होता है। अतएव यज्ञकर्त्ता जब स्वर्गादि प्राप्त पुण्यराशिके फलस्वरूप स्वर्ग सुखका उपभोग करेंगे, तब उनको हिंसाजनित पापांशके फलस्वरूप यत्किञ्चित् दुःख भी भोगना पड़ेगा। किन्तु

स्वर्गवासी पुरुष स्वर्गकी मोहिनी शक्तिके प्रभावसे ऐसे मुग्ध हो जाते हैं, कि इस दुःखकणिकाको वह दुःख समझते ही नहीं, अनायास ही उसे सह्य कर लेते हैं।

"मृष्यन्ते हि पुण्यसम्भारोपनीतस्वर्गसुधामहाह्रदावगाहिनः कुशलाः पापमात्रोपपादितां दुःखवह्निकणिकां"

(तत्त्वकौमुदी)

वेदोक्त स्वर्गफलजनक कर्म एक प्रकारका नहीं है, उसमें इतरविशेष है। कर्मके तारतम्यके अनुसार कर्मफल स्वर्गके तारतम्य या उत्कर्षापकर्ष है। स्वर्गवासी सम्पूर्णरूपेण दुःखविमुक्त नहीं हैं। स्वर्गवासियोंमें प्रधान अप्रधान हैं। सुतरां इनके भी दुःखकी अत्यन्त निवृत्ति नहीं हो सकती।

दूसरी एक बात यह है, कि स्वर्ग विनाशी है, वह चिरस्थायी या नहीं है। स्वर्गका अर्थ केवल सुखविशेष है। सुख जैसे उत्पन्न होता है, वैसे ही विनष्ट भी होता है। सुख नित्य या अविनाशी नहीं हो सकता। जो कारणवश उत्पन्न होता है, वह कारण विगमसे उसका विनाश होगा ही होगा। इसके विपरीत दुःखनिवृत्ति विवेकज्ञानरूप कारणसाध्य होने पर भी वह अभावस्वरूप भावपदार्थ नहीं है। अभाव उत्पन्न होने पर भी उसका विनाश नहीं होता। मुद्गर गिरानेसे घटका और पाटनके पटका विनाश होता है सही, किन्तु मुद्गरपात या पाटनके विगममें तज्जनित घट-पट विनाशका विनाश नहीं होता। घट-पटका विनाश विनष्ट होनेसे या न होनेसे घट-पटका सत्ता रहनेकी बात है। किन्तु वह सर्वप्रमाणविरुद्ध है और प्रकृतिस्थ व्यक्तिका अनुमत नहीं है। घट-पटादिरूप समुत्पन्न भावपदार्थोंका विनाश किन्तु प्रत्यक्षसिद्ध है। किन्तु दुःखकी अत्यन्त निवृत्ति वैदिक यज्ञानुष्ठानके फलरूपसे कीर्त्तित नहीं हुआ है। स्वर्ग नामक सुख-विशेष ही उसका फल अभिहित हुआ है। सुख अभावरूप नहीं, वह भावरूप है। उत्पन्न भावपदार्थका विनाश है, सुतरां स्वर्गका भी विनाश है। भगवान्‌ने गीतामें कहा है, कि "वे उस विशाल स्वर्गका भोग कर पुण्यक्षीण होनेसे फिर मर्त्यलोकमें प्रवेश करते हैं।"

सुतरां इस वाक्य द्वारा भी समझमें आता है, कि दृष्ट या लौकिक उपायसे औषध आदि या अदृष्ट उपाय याग यज्ञादि किसी प्रकारके उपायसे ही दुःखकी अत्यन्त निवृत्ति हो नहीं सकती। इसलिये कपिलने यह प्रमाण द्वारा प्रमाणित किया है, कि एकमात्र विवेक ज्ञान ही अत्यन्त दुःखकी निवृत्तिका उपाय है।

पहले ही कहा गया है, कि सांख्यके मतमें प्रमाण तीन प्रकारका है—प्रत्यक्ष, अनुमान और आप्तवाक्य अर्थात् शब्दप्रमाण। वाचस्पतिमिश्रने और विज्ञानभिक्षुने इन तीनों प्रमाणोंका विशेष रूपसे आलोचना की है।

विषय और इन्द्रियके सन्निकर्षसे जो अध्यवसाय है अर्थात् बुद्धिवृत्तिविशेष वही प्रत्यक्ष प्रमाण है। व्याप्यव्यापकभाव और पक्षधर्मता ज्ञानजनित जो बुद्धिवृत्ति है, वही अनुमान और आप्त वाक्यके लिये वाक्यार्थ ज्ञान ही शब्द प्रमाण है।

वाचस्पतिमिश्रका कहना है, कि पहले विषयके साथ इन्द्रियोंका संयोग होता है। यह संयोग ही वृत्ति नामसे विख्यात है। इन्द्रियकी उक्त रूप वृत्ति होनेसे भी त्रिगुणात्मिका बुद्धिका तमोगुण अभिभूत हो सत्त्वगुणका समुद्रेक होता है। उस समय सत्त्वगुण प्रधान या प्रबल हो उठता है। यही सत्त्व समुद्रेक ही अध्यवसाय वृत्ति या ज्ञान नामसे विख्यात है। अतएव बुद्धिका यह वृत्ति रूप ज्ञान ही प्रमाण पदवाच्य है।

विषयके साथ जब इन्द्रियका सम्बन्ध होता है, तब मन पहले विषयरूपमें परिणत होता है, उसके बाद अहंकारका परिणाम होता है, इसके बाद विषय। अहं और कृति, ज्ञान, इच्छा, या द्वेष इस त्रिविध वस्तु पर बुद्धिके तीन विकार या परिमाण होते हैं। उक्त तीनोंके परिणामोंमें विषयघटित जो बुद्धि परिणाम है, उसको यहां कथित बुद्धिवृत्ति हो जानना होगा। यही प्रत्यक्ष प्रमाण है।

सांख्यके मतसे अनुमान भी बुद्धिवृत्तिविशेष है, जिस तरह बुद्धिवृत्ति अनुमान है, इसका विषय इस तरह लिखा है,—व्याप्यव्यापक भाव और पक्षधर्मता ज्ञानसे जो बुद्धिवृत्ति होती है, वही अनुमान है। यह अनुमान भी तीन प्रकारका है—पूर्ववत्, शेषवत् और

सामान्यतोदृष्ट। वाचस्पतिमिश्रने इसको वीत और अवीत दो भागोंमें विभक्त किया है। जो साध्य है, ठीक वही वस्तु यदि अन्यत्र दिखाई दे तो उस साध्य अनुमानको पूर्ववत् कहते हैं। किन्तु जो अतीन्द्रिय है बुद्धिके अगोचर है ऐसे साध्यक अनुमान पूर्ववत् हो नहीं सकता, वह शेषवत् होता है। नहीं तो सामान्यतोदृष्ट अनुमान होता है। किन्तु शेषवत् अनुमानकी जगह हेतुसाध्यक व्याप्य व्यापकका भावज्ञान नहीं और इसमें साध्याभाव और हेत्वभावका व्याप्य व्यापक भाव ज्ञान आवश्यक है। इसके फलसे साध्याभावका निषेध होता है, सुतरां साध्य ज्ञान हो जाता है।

पृथ्वीभेद गन्धाभावका व्याप्य है तथा गन्धाभाव पृथ्वीमें नहीं, यह ज्ञान होनेसे पृथ्वीमें पृथ्वीभेद नहीं है, ऐसा ज्ञान होता है। परिणाममें पृथ्वीत्व उसमें है, ऐसा ज्ञान होता है। पृथ्वीत्व इस अनुमितिका विधेय नहीं है, किन्तु मात्र अनुमान द्वारा पर्वत पर जिस वह्निकी (अग्नि) अनुमिति होती है, उसमें वह्नि विधेय होता है। विधेयता भी मनोवृत्ति विशेष है। जिस अनुमितिमें विधेयरूप मनोवृत्तिका समावेश नहीं, वह अनुमितिसाधन प्रमाण ही शेषवत् अनुमान है। सामान्यतोदृष्ट अनुमान पूर्ववत्‌के विपरीत है। जिस साध्यक अनुमानमें प्रवृत्त हो रहा है, उसका या ठीक आकारकी दूसरी एक वस्तुका प्रत्यक्ष कभी न होगा। किन्तु उसका तुलना प्राप्त विभिन्न प्रकार ज्ञानसाधन यावतीय वस्तुका व्याप्य व्यापक भावज्ञान और प्रकृत हेतुमें पक्षधर्मताज्ञान होनेसे जो बुद्धिवृत्ति होती है वही सामान्यतोदृष्ट अनुमान है। (न्यायदर्शनमें भी पूर्ववत्, शेषवत् और सामान्यतोदृष्ट ये ही तीन प्रकारके अनुमान माने गये हैं)। न्यायदर्शन देखो।

वक्ताका दोष अर्थात् अन्य विषयमें भ्रम प्रमाद प्रभृति यदि न रहे, वाक्य श्रवणके बाद प्रतिपाद्य विषयमें जो मनोवृत्ति है, वही शब्द प्रमाण है। उसका फल शब्दबोध है। वेद अपौरुषेय है, सुतरां इसमें प्रमाद नहीं है। इसमें वक्ता या रचयिताके दोषकी सम्भावना नहीं है। अतः वेदवाक्यके सुननेके बाद प्रतिपाद्य विषयके सम्बन्धमें जो मनोवृत्ति होती है वही शब्द प्रमाण है। जो भगवान् व आदि ऋषि हैं, उनके वाक्य भी प्रमाण होते हैं। यही शब्द प्रमाण है। सब प्रमाणोंमें यही प्रमाण श्रेष्ठ है।

वाचस्पति मिश्रने इन तीनों प्रमाणोंके सम्बन्धमें लिखा है कि पहले विषयके साथ इन्द्रियका संयोग होता है। इस संयोगको वृत्ति कहते हैं। इन्द्रियकी उक्त रूप वृत्ति होनेसे ही त्रिगुणात्मिका बुद्धिका तमोगुण अभिभूत होता है तब सत्त्व समुद्रेक अर्थात् सत्त्वगुणका उद्भव और वह प्रबल हो उठता है। इसका नाम अध्यवसायवृत्ति या ज्ञान है। बुद्धिका यह वृत्तिरूप ज्ञान ही प्रमाण नामसे अभिहित होता है। इस ज्ञान द्वारा चेतनाशक्तिका या चेतनाका जो अनुग्रह है, वही प्रमाणफल या प्रमा है। इसीका दूसरा नाम बोध है।

प्रकृति अचेतन है तदुत्पन्न बुद्धिसत्त्व भी अचेतन है। सुतरां बुद्धिका अध्यवसाय या वृत्ति भी अचेतन है। अचेतन होनेसे बुद्धिवृत्ति स्वयं विषयको प्रकाश करनेमें असमर्थ नहीं होती। पुरुष चेतन और अपरिणामी है। सुतरां अपरिणामी पुरुषका ज्ञान या वृत्तिरूप परिणाम हो नहीं सकता।

बुद्धिसत्त्वमें ही पुरुष प्रतिबिम्बित होता है। आवरक तमोगुणके अभिभूत होने पर सत्त्वगुणका उद्भव होता है। सत्त्व स्वच्छ है, उस पर पुरुषका प्रतिबिम्ब पड़ता है। मलिन आदर्श उज्ज्वल आलोकके निकटवर्ती होने पर भी उज्ज्वलित नहीं होता, किन्तु निर्मल आदर्श उज्ज्वल वस्तुके सन्निधानमें उज्ज्वल रूप धारण करता है। उसी तरह चिच्छक्तिके सन्निधान रहने पर भी तमोभिभूत चित्तमें चिच्छाया या प्रकाशरूपता नहीं होती। सत्त्व समुद्रेक होनेसे चिच्छक्तिके सन्निधानवशतः चित्तका भी उज्ज्वलता या प्रकाशरूपता प्राप्त होती है। इसके द्वारा कुछ समझमें आता है कि चित् प्रतिबिम्बका विषय है।

बुद्धि सत्त्वमें चिच्छक्तिका प्रतिबिम्ब पड़नेसे ज्ञानादि बुद्धिधर्म वस्तुगत्या बुद्धिसत्त्वका धर्म होने पर भी पुरुषका धर्म सा प्रतीयमान होता है। मलिन दर्पणमें मुखका प्रतिबिम्ब पड़नेसे दर्पणका मालिन्य

जैसे मुखमें दिखाई देता है, वैसे बुद्धितत्त्व ज्ञानादि वृत्तियाँ भी पुरुषगत रूपसे प्रतिभात होती हैं। इसीका नाम चेतनाशक्तिका अनुग्रह या पुरुषका बोध है। इसके विपरीत बुद्धितत्त्व और उसका अध्यवसाय अचेतन होने पर भी उसमें चेतन पुरुष प्रतिछिन होता है, इससे यह चेतनकी तरह प्रतीयमान होता है। इस अवस्थामें पुरुष और बुद्धिसत्त्व अभिन्न प्रतीयमान होता है। इससे समझमें आता है, कि वाचस्पतिमिश्रके मतसे बुद्धिवृत्तिमें पुरुष प्रतिबिम्बित होता है, किन्तु पुरुषमें बुद्धिवृत्ति प्रतिबिम्बित नहीं होती। प्रकृति और पुरुषके परस्पर प्रतिबिम्बके विषय पर पातञ्जलभाष्यकार वेद व्यासका भी यही मत है। किन्तु विज्ञान भिक्षुका यह मत नहीं। उनका कहना है, कि बुद्धि वृत्ति और पुरुष इन दोनोंमें ही दोनोंका प्रतिबिम्ब पड़ता है। उनके मतसे पुरुष जैसे बुद्धि वृत्तिमें प्रतिबिम्बित होता है, बुद्धि वृत्ति भी वैसे ही पुरुषमें प्रतिबिम्बित होती है। उनका कहना है, कि विषयके साथ इन्द्रियका सन्निकर्ष होनेसे बुद्धिका विषयाकार परिणाम या वृत्ति होती है। वही विषयाकार बुद्धिवृत्ति पुरुषमें प्रतिबिम्बित हो कर भासमान होती है। पुरुष अपरिणामी है, फिर भी, उसका बुद्धिकी तरह विषयाकारताके सिवा विषयग्रहण या विषयभोग हो नहीं सकता। अतएव पुरुषमें प्रतिबिम्बरूपसे विषयाकारता स्वीकार करनी पड़ती है। विज्ञानभिक्षुने इस मतके समर्थन लिये उक्त प्रमाण दिये हैं।

तटस्थ वृक्षोंका प्रतिबिम्ब जैसे सरोवरमें प्रतिफलित होता है, वैसे ही चैतन्यरूप निर्मल दर्पणमें समस्त वस्तुएं प्रतिबिम्बित होती हैं अर्थात् बुद्धिकी विषयाकार वृत्तियां उसमें प्रतिबिम्बित होती हैं। उन्होंने और भी कहा है—

"प्रमाता चेतनः शुद्धः प्रमाणं वृत्तिरेव नः।
प्रमार्थाकारवृत्तीनां चेतने प्रतिबिम्बनम्।"

(भाष्य)

सांख्याचार्योंके मतमें चेतन पुरुष प्रमाता अर्थात् प्रमासाक्षी है। विषयाकारबुद्धिवृत्ति प्रमाण है। इन बुद्धिवृत्तियोंके पुरुषमें जो प्रतिबिम्बन होता है, वही प्रमा है। पुरुष सुखदुःखभोगविवर्जित है, प्रकृतिके प्रतिबिम्बनसे पुरुष सुखी, दुःखी, भोगी है और उसको इत्याकार ज्ञान होता है, प्रकृति अचेतन है। पुरुषके प्रतिबिम्बनमें प्रकृतिका चैतन्ययुक्त ज्ञान हो जाता। परस्परके प्रतिबिम्बनमें परस्परका ऐसा ज्ञान होता है।

बुद्धिवृत्ति और चैतन्यका इस तरह प्रतिबिम्ब होता है, इससे प्रज्वलित लोहपिण्डमें अग्नि व्यवहारकी तरह बुद्धिवृत्तिमें बोध व्यवहार होता है। बुद्धिवृत्ति क्षणभङ्गुर है, इससे बोध भी क्षणभङ्गुर है। विज्ञानभिक्षुने स्पर्द्धाके साथ कहा है, कि अल्प बुद्धिवाले बुद्धिवृत्ति और बोधकके विवेकको पार्थक्यता नहीं समझ सकते। और तो क्या तार्किक भी इसके समझनेमें भ्रम कर गये हैं। (तार्किक शब्दमें नैयायिक) सांख्याचार्य बुद्धिवृत्ति और बोधके विवेकको समझ सके हैं, इससे वे सर्वापेक्षा श्रेष्ठ माने जाते हैं और यह विवेकज्ञान ही अन्य सब शास्त्रोंसे उत्कृष्ट है।

पुरुषमें साक्षात्के सम्बंधमें सुख दुःख आदिका अस्तित्व न रहनेसे भी प्रतिबिम्बरूपसे सुख-दुःखादिका अस्तित्व है।

इस मतसे प्रमेय या सब पदार्थ तत्त्व नामसे अभिहित हुए हैं। प्रमाण द्वारा ही ये सब प्रमेय पदार्थ प्रमाणित हुए हैं। तत्त्व २५ हैं। मूलतत्त्व प्रकृति और पुरुष हैं। प्रकृतिसे २४ तत्त्व और पुरुष ये २५ तत्त्व हुए। पातञ्जलदर्शनमें ईश्वरको ले कर २६ तत्त्व हुए हैं। प्रकृतिके परिणाममें जगत्‌की सृष्टि और प्रलय हो रहा है। प्रकृतिका यह परिणाम दो तरहका है—सरूप परिणाम और विरूप परिणाम। जब प्रकृतिका विरूप परिणाम होता है, तब जगत्‌की सृष्टि होती है और जब इसका सरूप परिणाम होता है तब संसार ध्वंस हो कर प्रलय हो जाता है।

प्रकृति, महत्, अहङ्कार, पञ्चतन्मात्र, शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ये ही पञ्चतन्मात्र हैं, पञ्चज्ञानेन्द्रिय, पञ्चकर्मेन्द्रिय, मन ये ग्यारह इन्द्रियां हैं; पञ्चमहाभूत और पुरुष—ये २५ तत्त्व हुए। इनमें प्रकृत्यादि २४ तत्त्व जड़ हैं और पुरुष चेतन है।

ये सब तत्त्व चार श्रेणियोंमें विभक्त हुए हैं। कोई

तत्त्व केवल प्रकृति, कोई तत्त्व प्रकृतिकी विकृति कोई तत्त्व केवल विकृति और कोई तत्त्व अनुभयात्मक अर्थात् प्रकृति भी नहीं और विकृति भी नहीं है।

"मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त।
षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः।"
(साङ्ख्यका० ३)

प्रकृति शब्दका अर्थ उपादानकारण है। विकृति शब्दका अर्थ कार्य है। मूल प्रकृति अर्थात् जिससे जगत्‌की उत्पत्ति हुई है, उसका दूसरा नाम प्रधान है, उसकी किसी कारणसे उत्पत्ति सम्भव नहीं। क्योंकि मूल प्रकृति कारणजनित होनेसे वह कारण भी कारणान्तरजनित, वह कारणान्तर भी अन्य कारणजनित हो सकता है। इत्यादि रूप अनवस्थादोष आ पड़ता है। अतएव मूल कारण उत्पन्न वस्तु नहीं है। यह स्वतःसिद्ध है, यह स्वीकार करना ही होगा। मूल प्रकृति केवल ही प्रकृति है। महत्तत्त्व अहङ्कार और पञ्चतन्मात्र ये सात प्रकृतिकी विकृतियां हैं। क्योंकि ये किसी किसी तत्त्वकी प्रकृतिसे उत्पन्न हुए हैं। सुतरां ये मूल प्रकृतिकी विकृति हैं और इस महत्से अहङ्कार उत्पन्न हुआ है। अतएव अहङ्कारकी प्रकृति महत् है। इसलिये यह प्रकृति है और यह उत्पन्न हुआ है, इससे केवल विकृति है। पञ्च महाभूत और एकादश इन्द्रियां केवल विकृति हैं अर्थात् इन सबोंसे किसी तत्त्वान्तरकी उत्पत्ति नहीं हुई। पुरुष अनुभयरूप है अर्थात् प्रकृति भी नहीं विकृति भी नहीं।

जिससे वस्त्वन्तरकी उत्पत्ति होती है, उसका नाम प्रकृति है। इसीलिये इसका नाम प्रधान हुआ है। सत्त्व, रज और तमोगुणकी साम्यावस्थाका नाम प्रकृति है यह प्रधान ही विश्वसंसारके कार्यों का मूल है।

पुरुष कूटस्थ अर्थात् अपरिणामी अनाश्रय अधिकारी और सङ्गशून्य है। इसलिये पुरुष कारण नहीं हो सकता। पुरुष नित्य है, उसकी उत्पत्ति नहीं। सुतरां कार्य भी हो नहीं सकता। अतएव पुरुष अनुभयात्मक है।

इस विषय पर दार्शनिकोंका अत्यधिक मतभेद है, कि इस जगत्‌का कारण सत् है या असत्। साङ्ख्याचार्य सत्पदार्थवादी हैं। इस जगत्‌का मूल कारण प्रकृति है यह सत् है। वाचस्पतिमिश्रने अन्यान्यवादियोंके मतको निरास कर सत्पदार्थवाद स्थिर किया है।

बौद्ध दार्शनिक असत्पदार्थवादी हैं। उनका कहना है, कि यह जगत् असत् पदार्थसे उत्पन्न हुआ है। उनके मतसे बीजसे अङ्कुरकी उत्पत्ति नहीं होती किन्तु पार्थिव उष्मा और जलादिक संयोगसे बीजके विनष्ट होने पर उसके बाद अङ्कुरकी उत्पत्ति होती है। सुतरां भावरूप बीज अङ्कुरका कारण नहीं। बीजके ध्वंस रूप अभाव ही अङ्कुररूप भावपदार्थका कारण है। इस दृष्टान्त द्वारा सब स्थलमें ही अभाव ही भावोत्पत्तिका कारण है यही बौद्धाचार्योंका सिद्धान्त है। इसके उत्तरमें साङ्ख्याचार्यने कहा है, कि यह सम्पूर्ण भ्रमात्मक है। कारण बीजके ध्वंस होने पर अङ्कुरकी उत्पत्ति होती है सही, किन्तु इससे बीजका निरन्वय विनाश नहीं होता। यह सच है, कि बीज विनष्ट होता है किन्तु विनष्ट बीजका अवयव विनष्ट नहीं होता। यही भावस्वरूप बीजावयव अङ्कुरका उत्पादक है। बीजका अभाव अङ्कुरका उत्पादक नहीं है। अभाव भावोत्पत्तिका कारण होनेसे अभाव सब स्थलोंमें सुलभ हो कर सब स्थलमें सब पदार्थों को उत्पादन कर सकता था। ऐसा होने पर सब जगह ही सब पदार्थोंकी उत्पत्ति सम्भव है। अतएव स्वीकार करना होगा, कि अभाव भावोत्पत्तिका कारण नहीं। यही भावपदार्थ ही सब भावपदार्थों की उत्पत्तिका कारण है। इसी तरह बौद्धोंका असत्पदार्थवाद खण्डित हुआ है।

वैदान्तिक आचार्य विवर्त्तवादी हैं। बौद्धों की तरह वेदान्तियोंका मत भी खण्डित हुआ है। उनके मतोक्त विवर्त्तवादके परिवर्त्तनमें परिणामवाद संस्थापित हुआ है। यह भी साङ्ख्याचार्य कहते हैं कि रस्सीमें सर्पकी प्रतीति होनेके बाद नैपुण्यके साथ प्रणिधानपूर्वक विवेचना करके देखनेसे मालूम होता है, कि यह सर्प नहीं है। रस्सीमें ऐसा बाधज्ञान उपस्थित होता है। सुतरां यह अच्छी तरह समझमें आता है, कि रस्सीमें सर्पका ज्ञान भ्रमात्मक है। किन्तु जगत्प्रपञ्चके सम्बन्धमें ऐसा बाधज्ञान कभी नहीं हो सकता। सुतरां

यह प्रपञ्चप्रतीति भी भ्रमात्मक है, यह भी नहीं कहा जा सकता। इस युक्ति द्वारा सांख्याचार्योंने विवर्त्तवादमें अनास्था प्रदर्शन कर परिणामवादका समर्थन किया है। उनका कहना है, कि कुछ विशेष प्रणिधान कर देखनेसे मालूम होता है, कि कार्यकारणसे भिन्न नहीं, कारणका अवस्थान्तरमात्र है। दूध दधिरूपमें, सुवर्ण कुण्डलरूपमें, मिट्टी घड़ेके रूपमें परिणत होती है। अतएव दधि, कुण्डल और घट और पट क्रमसे दूध, सुवर्ण, मिट्टी और तन्तुवस्तु स्वरूप रूपसे भिन्न नहीं, एक ही है। कार्य यदि कारणसे भिन्न नहीं हुआ, तो इससे यही मालूम हो सकता है, कि उत्पत्तिके पहले भी कार्य सूक्ष्मरूपसे कारणमें विद्यमान था। कारकव्यापार अर्थात् जिन सब उपायोंसे कार्यकी उत्पत्ति होनेमें सचराचर विवेचना की जाती है, यथार्थमें ये सब उपाय या कारकव्यापार कार्यका उत्पादक नहीं। क्योंकि उसके पूर्व भी कार्य सूक्ष्मरूपसे कारणमें विद्यमान था। सुतरां कारकव्यापार कार्यका उत्पादक नहीं, वरं अभिव्यञ्जक या प्रकाशक है। पहले कारणमें सूक्ष्म और अव्यक्तरूपमें कार्य था, कारकव्यापार द्वारा उसकी केवल स्थूलरूपसे अभिव्यक्ति हुई। सांख्याचार्योंने इत्यादि रूपसे विवर्त्तवाद पर दोषारोपण कर परिणामवादका अवलम्बन ले जगत्का मूलकारण सत् है, यही निरूपण किया है। इन्होंने स्वीकार किया है, कि सत् पदार्थसे असत् पदार्थकी उत्पत्ति होती है। इनके मतसे जगत्का मूल कारण चतुर्विध परमाणु सत् अर्थात् सर्वदा विद्यमान है। द्व्यणुकसे महावयविपर्यन्त कार्य साक्षात् या परम्पराके सम्बन्धसे परमाणुसे उत्पन्न है। अतः कार्योंकी उत्पत्तिके पूर्व असत् नहीं था, सत् था, उत्पत्तिके बाद ही असत् हुआ है, अतः यह सिद्ध हुआ, कि सत्से ही असत्की उत्पत्ति है। इनके मतमें कार्य कारणसे सम्पूर्ण पृथक् है। क्योंकि कार्योत्पत्तिके पहले कारण सत् अर्थात् विद्यमान किन्तु कार्यकालमें असत् विद्यमान नहीं।

इस पर सांख्याचार्योंका कहना है, कि यदि वास्तवमें कार्य असत् विद्यमान नहीं रहता, तो किसी भी कार्यका सत्त्व अर्थात् विद्यमानत्व सम्पादन कर नहीं सकता। शतसहस्र शिल्पी भी यत्न करके नीलेको पीला और पीलेको नीला बना नहीं सकता। ऐसा ही कार्य वस्तुतः असत् होनेसे किसी मतसे ही सत् हो नहीं सकता। जो असत् है, वह सदा असत् है। किसी समय भी वह सत् नहीं हो सकता और जो सत् है, वह चिरकाल ही सत् है। सुतरां कार्य, कारण व्यापारके पहले भी सत् था, इसमें जरा भी सन्देह नहीं। किन्तु कारण व्यापारके पूर्व केवल अनभिव्यक्त रहता है। कारण व्यापार द्वारा उसकी केवल अभिव्यक्ति होती है।

जो स्वतःप्रमाण है, उसके और प्रमाणका प्रयोजन क्या है? किन्तु असत्की उत्पत्तिका एक भी दृष्टान्त नहीं। जो असत् है किसी समय भी उसकी उत्पत्ति नहीं होती और हो भी नहीं सकती। मनुष्य शृङ्ग, कूर्मरोम और आकाशकुसुम—ये सब सत् नहीं, इसीलिये इनकी उत्पत्ति किसीको दिखाई नहीं देती और न सुननेमें ही आती है। अतएव सिद्ध हुआ, कि सत् अर्थात् विद्यमान कार्यका ही कारण व्यापार द्वारा अभिव्यक्ति या आविर्भाव प्रकाश होता है, इससे जगत्की उत्पत्ति नहीं होती और भी एक विशेष बात यह है, कि जिस कारणके साथ जिस कार्यका सम्बन्ध रहता है, उसी कारण द्वारा ही उस कार्यका आविर्भाव होता है। जिस कार्यके साथ जिस कारणका सम्बन्ध नहीं है, उस कारण द्वारा उस कार्यका आविर्भाव नहीं होता। यह अवश्य ही स्वीकार करना होगा।

कार्य सत् है, हेतु असत्का अकरण है, उपादानका ग्रहण, सब सम्भवोंका अभाव और शक्तका शक्य करण इन सब हेतुओंसे अनुमान किया जाता है, कि कार्य सत् है। इन सब हेतुओंका तात्पर्य पहले अभिहित हुआ है। विषय बढ़ जानेके डरसे यहां और अधिक आलोचना नहीं की गई। केवल शब्दार्थमात्र विवृत किया गया। असत्का अकरण, जो था ही नहीं, उसको कभी उत्पन्न नहीं किया जा सकता। उपादानका ग्रहण जब सब स्थलमें सब कार्योंकी उत्पत्ति नहीं होती, तब कार्यके साथ कारणका एक सम्बन्ध है, इस हेतुसे भी कार्य सत् है, शक्तका शक्यकरण अस्तित्व शून्य कार्यमें शक्तिसम्बन्ध असम्भव है, सुतरां कारणमें कार्यका सम्बन्ध

मान लेने पर भी शक्ति रूपमें कार्यको सत् कहना होगा। इस तरह सत्कार्यवादका समर्थन हुआ है।

वाचस्पति मिश्रने इस तरह बौद्ध, नैयायिक वैशेषिक, वेदान्तिक आदि वादियोंके मत उद्धृत कर नाना तरह के युक्तितर्कों द्वारा उन मतोंका खण्डन कर मायोक्त सत्कार्यवादका समर्थन किया है। कपिलसूत्रमें—'नावस्तुनो वस्तुसिद्धि' (साङ्ख्य १।७८) इत्यादि सूत्र द्वारा भी यह समर्थित हुआ है।

साङ्ख्य मतसे सिद्ध होता है, कि जगत्का जो कारण है, वह सत् है, सत् कारणसे ही इस सत् जगत्की उत्पत्ति हुई है। कार्य कारणात्मक है, यह पूर्व ही प्रतिपन्न हुआ है। कार्यकारणशृङ्खला सर्वत्र ही स्वीकृत और समादृत है। कारण भिन्न कार्य हो ही नहीं सकता। जगत् कार्य, उसका कारण, प्रधान या प्रकृति ये प्रधान सुख दुःख और मोहात्मक, जगत् की सब वस्तुओंमें हो सुख दुःख और मोह है। कारणमें यदि सुख दुःख मोह नहीं रहता, तो कार्यमें जो जगत् है, उसमें भी सुख दुःख और मोह नहीं रह सकता। कार्य जब कारणात्मक है, तब सुख दुःख और मोह देख कर इसके कारणमें भी सुख दुःख और मोह है यह निःसन्देह कहा जा सकता है।

प्रत्येक द्रव्यमें ही सुख दुःख और मोह है। वाचस्पति मिश्रने इसका एक दृष्टान्त दिया है कि रूपयौवन कुलशीलसम्पन्ना एक स्त्री अपने स्वामीको सुखी, सपत्नीको दुःखिनी और अपने लोभमें वञ्चित पुरुषान्तरको मोह या विषादयुक्त बना देती है। उसका कारण यही है, कि स्वामीके प्रति उसका सुखरूप समुद्भूत है, दुःखादिरूप अभिभूत है, सपत्नीके प्रति दुःखरूप समुद्भूत और सुखादिरूप अभिभूत है। जो दूसरा पुरुष उसके लोभसे वञ्चित है उसके प्रति उसका मोहरूप समुद्भूत और सुखादिरूप अभिभूत है।

इसके द्वारा सिद्ध हुआ, कि जगत्का जो मूलकारण है, वह सुख दुःख और मोहात्मक है। प्रकृति जब हो जगत् का मूल कारण है, तब प्रकृति सुख दुःख और मोहात्मिका है। सत्त्व, रज और तमोगुणकी साम्यावस्था-का प्रकृति कहते हैं।

सत्त्व, रज और तमः इनको गुण कहते हैं। ये क्या वैशेषिकोक्त गुण पदार्थ हैं? आचार्योंने इसके उत्तरमें कहा है, कि ये गुण पदार्थ नहीं। सत्त्वादिक परस्पर संयोग और लघुत्वादि गुण हैं, इससे ये द्रव्य पदार्थ हैं।

पहले ही कहा गया है, कि सत्त्व, रज और तमो गुणकी साम्यावस्थाका नाम प्रकृति है। यह प्रकृति सदा ही परिणामिनी है। प्रकृतिका यह परिणाम दो प्रकारका है—स्वरूप या सदृशपरिणाम एवं विरूप या विसदृश परिणाम। जब जगत्का प्रलयकाल उपस्थित होता है, तब प्रकृतिका सदृश परिणाम होता है अर्थात् तब सत्त्व सत्त्वरूपमें और रज रजो रूपमें परिणाम होता है। इस परिणाममें महत् अहङ्कार आदि तत्त्वोंका उद्भव नहीं होता। वरं ये सब सत्त्व स्व स्व कारणमें लीन होता है। इन तीन गुणोंका जब विसदृश परिणाम होता है, तब इस जगत्की सृष्टि होती है। समय आने पर तीनों गुण मिल कर एकमें परिणत हो जाते हैं। पृथक्रूपसे इनका परिणाम नहीं होता। जगत्में जो वैषम्य दिखाई देता है, इन तीनों गुणोंका परिणामवैषम्य ही उसका एकमात्र कारण है।

प्रकृतिसे आरम्भ कर चरम कार्य तक समस्त जड़ वर्ग ही संहत अर्थात् मिलित गुणत्रयका स्वरूप है, सुतरां सुखदुःख मोहात्मक है। ये सभी परार्थ हैं अर्थात् अपरके प्रयोजन सम्पादनके लिये ही इसका उद्भव है, गृह शय्या और आसन प्रभृति पदार्थ संघातरूप है। फिर भी परार्थ है यह प्रत्यक्षसिद्ध है। इसके द्वारा अनुमान किया जाता है कि संघातमात्र ही परार्थ है। प्रकृति महदादि सब तत्त्व संघात है, अतएव यह परार्थ है। यहां पर कौन है? किसके प्रयोजनके लिये इसकी प्रवृत्ति होती है। वह परपुरुष ही आत्मा है। इस पुरुषके प्रयोजनके लिये ही प्रकृतिकी प्रवृत्ति होती है।

पुरुष संघातातिरिक्त है अर्थात् वह त्रिगुणात्मक नहीं, त्रिगुणातीत है। क्योंकि पुरुष संघात होनेसे परार्थ होता। इसके परसंघातके द्वारा वह भी परार्थ होगा। इसी तरह अनवस्थादोष उपस्थित होता है। सुतरां पुरुष असंहत है।

त्रिगुणात्मक रथादि सारथि आदि चेतन द्वारा अधिष्ठित है। बुद्धि आदि भी त्रिगुणात्मक हैं, सुतरां वे भी अन्य चेतन द्वारा अधिष्ठित होंगे। इसलिये चेतन ही पुरुष या आत्मा है। सुख अनुकूलवेदनीय और दुःख प्रतिकूल वेदनीय है, बुद्ध्यादि अपने ही सुख और दुःखात्मक है। इसलिये पुरुष सुखके अनुकूलनीय या दुःखके प्रतिकूलनीय हो नहीं सकता। क्योंकि ऐसा होनेसे स्वक्रिया विरोध हो जाता है। बुद्ध्यादि दृश्य उसके द्रष्टारूपसे पुरुष सिद्ध होता है। क्योंकि द्रष्टाके बिना दृश्य रह नहीं सकता। यह पुरुष प्रति शरीरमें भिन्न है। सब शरीरमें एक पुरुष होनेसे जन्म मरण आदिकी व्यवस्था हो नहीं सकती। यह पुरुष साक्षी है। प्रकृति अपने सब आचरणोंको इस पुरुषको दिखाती है। वादी और प्रतिवादी विवाद विषय जिसको दिखाते हैं, उसे लोग साक्षी कहते हैं। प्रकृति भी अपने आचरणोंको पुरुषसे दिखाती है, इससे पुरुष साक्षी और द्रष्टा है। पुरुष त्रिगुणोंसे अतीत है। इसलिये अकर्त्ता, उदासीन और केवल है अर्थात् कैवल्ययुक्त है। पूर्वोक्त-गुणत्रयका अभाव ही कैवल्य है। दुःख गुण धर्म पुरुष गुणातीत है।

प्रधान महद् आदि भोग्य होनेसे भोक्ताकी अपेक्षा करते हैं। क्योंकि भोक्ताके बिना भोग ही नहीं हो सकता। बुद्ध्यादिमें प्रतिबिम्बित पुरुष बुद्ध्यादिगत दुःखको अपना समझता है, विवेकज्ञान द्वारा इस दुःखका परिहार होता है।

विवेकज्ञान और बुद्धि वृत्तिविशेष है, इस कारणसे विवेकज्ञानके लिये पुरुष भी प्रकृतिकी अपेक्षा करता है। इस तरह दोनोंको परस्पर अपेक्षा है, इससे पुरुष और प्रकृतिका आपसमें संयोग होता है। यह संयोग स्वतः ही सृष्ट होता है। गतिशक्तिहीन और दृष्टिशक्तिसम्पन्न पंगु और दृक्शक्तिहीन गतिशक्तियुक्त अन्ध ये दोनों परस्पर संयुक्त होते हैं। दृक्शक्तिविशिष्ट पङ्गु गतिशक्तियुक्त अन्धेके कन्धे पर चढ़ कर प्रदर्शन करता है और अन्धा उसके अनुसार गमन करता है। इस तरह दोनोंकी अभिलाषा पूर्ण होता है। प्रकृति पुरुषका संयोग भी ऐसा ही है। पुरुषदृक्शक्तियुक्त और क्रियाशक्ति शून्य है, पङ्गुके स्थानमें प्रकृति क्रियाशक्तियुक्त और दृक्शक्तिशून्य अन्धेके स्थानमें है। इन दोनोंके संयोगवशतः ही प्रकृति महत् आदि अचेतन हो कर भी चेतन की तरह और पुरुष स्वरूपतः अकर्त्ता हो कर भी गुणके कर्तृत्वमें कर्त्ताकी तरह प्रतीयमान होता है। पुरुषके कैवल्यार्थ प्रकृतिको यह प्रवृत्ति होती है। भोग और मुक्ति पुरुषार्थ है।

जितने दिनों तक पुरुषका अपवर्ग साधन न होगा, उतने दिनों तक प्रकृति पुरुषको परित्याग नहीं करेगी। पुरुषके अपवर्ग साधन होनेसे फिर उसकी प्रवृत्ति न होगी। एक दिन न एक दिन प्रकृतिपुरुषको विवेकका साक्षात्कार करायेगी ही करायेगी। जितने दिन यह नहीं होता, उतने दिनों तक जन्म मृत्यु अपरिहार्य है। पुरुष और प्रकृतिके संयोगसे सृष्टि होती है। यह सृष्टि दो प्रकारकी है प्रत्ययसर्ग तथा तन्मात्रसर्ग। बुद्ध्यादिका नाम प्रत्ययसर्ग और भूतभौतिक सर्गको तन्मात्र सर्ग कहते हैं। प्रकृतिका जो प्रथम परिणाम होता है, उसका नाम बुद्धि या महत् है, इसकी साधारण वृत्ति अध्यवसाय या निश्चय है। इस बुद्धिके धर्म ८ हैं—धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य और अनैश्वर्य इन आठोंमें प्रथम चार सात्विक और परवर्त्ती चार तामसिक हैं।

महत्तत्त्वका कार्य अहङ्कारतत्त्व है, उसकी वृत्ति अभिमान है। मैं इसमें शक्त हूं ये सब विषय मेरे प्रयोजन हैं, इत्यादि अभिमान अहङ्कारको असाधारण वृत्ति है। यह अहङ्कार तीन प्रकारका है--वैकारिक या सात्त्विक, तैजस या राजस और भूतादि या तामस। सात्त्विक एकादश इन्द्रिय सात्त्विक अहङ्कारसे और तामस पञ्चतन्मात्र तामस अहङ्कारसे उत्पन्न है। राजस अहङ्कार इन दोनों वर्गोंकी उत्पत्तिके साहाय्यकारी मात्र हैं चक्षुः, श्रोत्र, घ्राण, रसन और त्वक्—ये पांच बुद्धीन्द्रिय हैं। वाक्, पाणि, पाद, पायु और उपस्थ ये पांच कर्मेन्द्रिय हैं। मन ग्यारहवाँ इन्द्रिय है और यह उभयात्मक है अर्थात् कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय दोनोंमें इसकी गणना होती है। ज्ञानेन्द्रिय या कर्मेन्द्रिय मनके अधिष्ठानके बिना कोई भी स्व स्व विषयमें प्रवृत्त हो नहीं सकता।

सब गुणोंके परिणाम विशेषवशतः ही नाना इन्द्रियों तथा नाना बाह्य पदार्थों की उत्पत्ति हुई है।

मनका असाधारण वृत्ति सङ्कल्प है अर्थात् सम्यक् रूपसे विशेष्यका विशेषणरूपमें कल्पना। चक्षुका रूप, श्रोत्रका शब्द, घ्राणका गन्ध, रसनाका रस और त्वक् का स्पर्श ये पांच बुद्धीन्द्रियका व्यापार या धर्म है। वाक् का वचन या कथन, पाणिका आदान या ग्रहण पादका विहरण या गमन पायुका उत्सर्ग या त्याग और उपस्थ का आनन्द, ये पांच कर्मेन्द्रियके व्यापार या धर्म है। मन अहङ्कार और बुद्धि इन तीनोंका नाम अन्तःकरण है। चक्षु आदि दश बाह्यकरण हैं।

सिवा इसके अन्तःकरणकी एक साधारण वृत्ति भी है। प्राण आदि पञ्चवायु हैं। नासाग्र हृदय नाभि, पादाङ्गुष्ठमें स्थित प्राणवायु कृकाटिका, पृष्ठ पाद, पायु, उपस्थ और पार्श्ववृत्ति अपान वायु, हृदय, नाभि और सब सन्धिस्थानोंमें समान वायु हृदय, कण्ठ, तालु मस्तक और भ्रू स्थित वायुका नाम उदान और त्वक् वृत्ति वायुको व्यानवायु कहते हैं, यह वायु सारे शरीर में व्याप्त है। ये ही अन्तःकरणकी साधारण वृत्तियाँ हैं।

पहले किसी वस्तुके साथ इन्द्रियका योग होनेसे अपरिस्फुट रूपसे वस्तुका जो ज्ञान होता है उसका नाम आलोचन-ज्ञान या निर्विकल्पक ज्ञान है। क्योंकि यह ज्ञान निर्विकल्प है अर्थात् विशेष्यविशेषणभावशून्य है। मूक या बालक जैसे अपने ज्ञात शब्द द्वारा दूसरेको समझा नहीं सकते वैसे ही यह आलोचना ज्ञान भी शब्द द्वारा दूसरेको समझाया जा नहीं सकता अर्थात् अपरिस्फुटरूपसे यह आलोचन ज्ञात होता है। शब्द द्वारा जो प्रतिपादित होता है, वह विशेष्यविशेषणभावापन्न होता है यही आलोचनज्ञान विशेष्य और विशेषण भावापन्न नहीं है।

सांख्याचार्यों का कहना है, कि सब बाह्येन्द्रियाँ ग्रामाध्यक्ष हैं, मन देशाध्यक्ष, बुद्धि सर्वाध्यक्ष और पुरुष महाराजके स्थानमें है। जैसे ग्रामके राजा प्रजा से कर वसूल कर देशपति सर्वाध्यक्ष को तथा वह महाराजको दे देता है, इससे महाराजका प्रयोजन सम्पादन होता है, वैसे ही बाह्येन्द्रिय सब विषयोंकी आलोचना मनके पास अर्पण करता है। बुद्धि उक्त क्रमसे पुरुषके भोगापवर्ग सम्पादन करती है।

भोग अपवर्गरूप पुरुषार्थ निर्वाहके लिये ही सब इन्द्रियोंकी प्रवृत्ति है। पुरुष चिरकाल ही केवल है। किसी समयमें ही वह कैवल्यशून्य नहीं है। सुतरां संसारदशामें भी वह मुक्त है। उक्त प्रणाली क्रमसे बुद्धि ही पुरुषका भोगसम्पादिका है और बुद्धि ही विवेकज्ञान द्वारा पुरुषका मुक्तिसाधन किया करती है। बन्ध, मोक्ष और संसार स्वरूपतः पुरुष नहीं है। बुद्धि पुरुषके आश्रयमें ही बन्ध मोक्ष और संसारभागिनी होती है।

इसी तरह करण तेरह तरहका होता है। दश इन्द्रिय मन अहङ्कार और बुद्धि—इन तरह करणोंमें सब कर्मेन्द्रिय आहरण और अन्तःकरणत्रय साधारण वृत्तिका पञ्च प्राण द्वारा शरीर धारण और पञ्च ज्ञानेन्द्रियां स्व स्व विषय प्रकाश करता है। इसका नाम प्रत्यक्ष सर्ग है।

तन्मात्र सर्ग—तन्मात्र सब सर्ग सूक्ष्म हैं सुतरां यह अस्मदादिके योग्य नहीं हैं। इस कारणसे ये अविशेष नामसे अभिहित हैं। पञ्च तन्मात्रसे पञ्च महाभूतकी उत्पत्ति होती है। शब्द तन्मात्रसे आकाश और इस आकाशका गुण शब्द है शब्द तन्मात्रयुक्त स्पर्श तन्मात्रसे वायु, इस वायुका गुण शब्द और स्पर्श है, शब्द स्पर्श तन्मात्रयुक्त है। रूप तन्मात्रसे तेजः और इस तेजका गुण शब्द, स्पर्श और रूप है। शब्द स्पर्श रूपतन्मात्रके साथ रसतन्मात्रसे जल और उसका गुण शब्द स्पर्श, रूप और रस और उक्त चार तन्मात्रके साथ गन्धतन्मात्रसे पृथ्वीकी उत्पत्ति हुई है, इसका गुण शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध है।

इन पांच महाभूतोंमें कोई सुखकर और लघु कोई दुःखकर और चञ्चल है, कोई विषादकर या गुरु है। इसीलिये ये विशेष नामसे अभिहित है। यह विशेष फिर तीन श्रेणियोंमें विभक्त हुए हैं। सूक्ष्म शरीर, माता पितृज या स्थूल शरीर और इसके अतिरिक्त महाभूत। पञ्च ज्ञानेन्द्रिय पञ्च कर्मेन्द्रिय मन, पञ्च तन्मात्र, अहङ्कार और बुद्धि इस अठारहका सूक्ष्मशरीर कहते हैं। यह सूक्ष्म शरीर कल्पान्त कालस्थायी है।

वाचस्पति मिश्रके मतसे शरीर दो हैं, सूक्ष्म और स्थूल। परन्तु सूत्रभाष्यकार विज्ञानभिक्षुके मतसे शरीर तीन हैं—सूक्ष्म शरीर, अधिष्ठान शरीर और स्थूल शरीर। उनका कहना है, कि स्थूल देहके परित्यागके बाद लिङ्गदेहका जो लोकान्तरगमन होता है, उसका इस अधिष्ठान शरीरमें ही आश्रय होता है। उनके मतसे किसी समयमें भी लिङ्गशरीर आश्रय विना रह नहीं सकता। स्थूल भूतका सूक्ष्म अंश ही अधिष्ठान शरीर नामसे अभिहित होता है। इस अधिष्ठान-शरीरको आतिवाहिक शरीर कहते हैं। मृत्युके बाद रसान्त, भस्मान्त और विष्ठान्त रूपसे स्थूल शरीरका नाश होता है। यह स्थूल शरीर मिट्टीमें गाड़ कर रखनेसे रस, दग्ध करनेसे भस्म और किसी प्राणीसे भक्षण कर जाने पर यह विष्ठा-के रूपमें परिणत होता है। यह सूक्ष्मशरीर धर्म और अधर्म आदि कारणोंसे नानाविध स्थूलशरीर धारण करता है। ये धर्म आदि किसीके स्वाभाविक और किसीके उपायानुष्ठानसाध्य हैं।

प्रत्यय सर्गको फिर प्रकारान्तरसे चार भागोंमें विभक्त किया जा सकता है। जैसे विपर्यय, अशक्ति, तुष्टि और सिद्धि। फिर विपर्यय अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश भेदसे पांच प्रकारका है। इनका दूसरा नामक्रमसे इस तरह है—तमः, मोह, महामोह, तामिस्र और अन्धतामिस्र। अनात्म वस्तुमें आत्म ख्यातिको अविद्या कहते हैं। अनित्य और अनात्मीय वस्तुमें नित्य और आत्मीय रूपमें अभिमानका नाम अस्मिता है, सुखानुशयीको राग, दुःखानुशयीको द्वेष और भयको अभिनिवेश कहते हैं।

उक्त अविद्या भी विषयभेदसे ८ प्रकारकी है। जैसे—प्रकृति, बुद्धि, अहङ्कार और पञ्च तन्मात्र ये आठ प्रकारके अनात्मामें आत्मबुद्धि होती है, इससे अविद्या आठ प्रकारकी कही जाती है। देवगण अणिमादि अष्टविध ऐश्वर्य लाभ कर उसकी नित्य और आत्मीय रूपसे विवेचना करते हैं। किन्तु वास्तविक वह अनात्मीय और अनित्य है।

भोग्य शब्द आदिके उपाय स्वरूप अणिमादि अष्टविध ऐश्वर्य स्वभावतः द्वेष-विषय हैं। क्योंकि अणिमादि ऐश्वर्यका सम्पादन बहु आयाससाध्य है। शब्द आदि दश योग्य विषय हैं और उनके सम्पादक हैं अणिमादि अष्ट प्रकारके ऐश्वर्यसमूह—इन १८ विषयोंमें द्वेष होता है, इससे द्वेष भी १८ प्रकारका है। उक्त १८ विषयोंमें विनाश होता है, अतः विषयभेदसे अभिनिवेश भी १८ प्रकारका है।

ग्यारह इन्द्रियोंकी अशक्ति भी ग्यारह हैं और बुद्धिकी अपनी अशक्ति भी १७ प्रकारकी है, सुतरां अशक्ति २८ प्रकारकी है। चक्षुः आदि इन्द्रियोंकी अशक्ति अन्धत्वादि हैं। तुष्टि नौ प्रकारकी है। सिद्धि आठ प्रकारकी है। इनका विपर्यय या अभावनिबन्धन बुद्धिकी अपनी अशक्ति १७ प्रकारकी है। विषयवैराग्यजनित तुष्टि पांच प्रकारकी है। वैराग्यका हेतु भी पांच प्रकारका है, जैसे—अर्जनदोष, रक्षणदोष, क्षयदोष, भोग और हिंसादोष—ये पाँच दोष देख कर विषयवैराग्य उपस्थित होता है।

धनार्जनके उपाय बड़े कठिन हैं, यह सोच कर विषयवैराग्य होने पर जो तुष्टि होती है, उसका नाम पारा है। अर्जित धन-रक्षा करना विशेष कष्टसाध्य समझ कर जो तुष्टि होती है, उसका नाम सुपार है। महाकष्टसे धन अर्जन और यत्नसे उसकी रक्षा करना तथा भोग द्वारा उसका क्षय होते देख कर जो तुष्टि उत्पन्न होती है, उसका नाम पारापार है। विषयभोगके अभ्याससे भोगाभिलाष दिन पर दिन बढ़ता है। किसी तरह विषयभोग न किया जा सके, तो विशेष कष्ट होता है, यह सोच विषय वैराग्य होनेसे जो तुष्टि उपस्थित होती है, उसका नाम अनुत्तमाम्भ है। प्राणियोंको पीड़ा न दे कर भोग नहीं होता, समस्त भोगोंमें कमवेश प्राणी हिंसा है, इत्यादि हिंसादोष देख विषय वैराग्य होने पर जो तुष्टि उपस्थित होती है, उसका नाम उत्तमाम्भः है विषय वैराग्यजनित इन पांच प्रकारकी तुष्टियोंको बाह्य-तुष्टि कहते हैं। आध्यात्मिक तुष्टि चार प्रकारकी है—प्रकृति तुष्टि, उपादानतुष्टि, कालतुष्टि, और भाग्यतुष्टि। विवेक साक्षात्कार भी प्रकृतिका परिणामविशेष है। सुतरां यह प्रकृतिका कार्य है। प्रकृति ही विवेक साक्षात्-कारकी कर्ता है। मैं (पुरुष) साक्षात्कारका कर्त्ता

शास्त्रार्थ अवधारण करनेसे ही जब तक दूसरेका अर्थात् गुरुशिष्य या सब्रह्मचारीका अनुमोदित न हो, तब तक उसमें विश्वास किया नहीं जाता। अतएव सुहृत्प्राप्ति अर्थात् गुरुशिष्य सब्रह्मचारी आदिकी प्राप्ति चतुर्थ सिद्धि है। इसका दूसरा नाम रम्यक है। विवेकज्ञान शुद्धिका नाम दान है। यह सदामुदित नामसे अभिहित है। आदरके साथ बहुत दिनों तक योगानुशील और विवेकशास्त्राभ्यास द्वारा विवेकख्यातिका शुद्ध सम्पादित होता है। इसी तरहकी विशुद्धविवेकख्याति ही सब तरहके संशय विपर्यायके उच्छेद करनेमें समर्थ होती है। जो कहते हैं, कि एक बार तत्त्वकथा सुननेसे ही तत्त्वज्ञ हुआ जा सकता है यह उनका भ्रम है। यह प्रत्यक्ष सिद्ध है, कि बारंबार तत्त्वकथा सुनने पर भी मिथ्याज्ञान अपनीत नहीं होता। और भी उनको विवेचना करनी चाहिये, कि शुक्ति रजतादि सैकड़ों स्थलोंमें दिखाई देता है, कि तत्त्वज्ञान मिथ्याज्ञान अपनयन करनेमें समर्थ है। रज्जुसर्प भ्रम और दिङ्मोहादि स्थलमें दिखाई देता है, कि अपरोक्ष मिथ्याज्ञान परोक्ष तत्त्वज्ञान द्वारा अपनीत होता है। संसारनिदान, मिथ्याज्ञान या अविवेक अपरोक्ष ज्ञान है। सुतरां तत्त्वज्ञानका अपरोक्षत्व सम्पादनके लिये दीर्घकाल तक श्रवण, मनन और निदिध्यासन आवश्यक है। यही वाचस्पतिमिश्रका मत है।

सांख्यप्रवचनभाष्यकार विज्ञानभिक्षुके साथ इस विषयमें वाचस्पतिमिश्रका मतभेद है। विज्ञानभिक्षुका कहना है, कि गुरुशिष्यभावसे गुरुके समीप जो अध्ययन किया जाता है, उसका नाम अध्ययनसिद्धि है। गुरु शिष्यरूपसे कोई अध्यात्मशास्त्र अध्ययन नहीं किया जाता, किन्तु जो अध्यात्मशास्त्रको पढ़ उससे सुन कर और अपने अध्यात्मशास्त्रकी आलोचना कर जो ज्ञानलाभ किया जाता है, उसका नाम शब्द है। किसी तरहके उपदेश आदि प्राप्त हुए बिना ही पूर्वजन्मके शुभादृष्टवशतः जो तत्त्वज्ञान लाभ हो, उसका नाम ऊह है। दया परवश कोई साधु स्वयं गृहमें उपस्थित हो जो तत्त्वोपदेश करता है और उससे जो ज्ञानलाभ होता है, उसको सुहृत्प्राप्ति कहते हैं। किसी ज्ञानी व्यक्तिको धन द्वारा परितुष्ट कर ज्ञान लाभ करनेका नाम दान है। इन सब सिद्धियोंमें अध्ययन, शब्द और ऊह—इन तीनोंको गौणसिद्धि कहते हैं। यही मुख्यसिद्धि त्रयके अन्तःसाधन हैं।

वाचस्पतिमिश्रका कहना है, कि विपर्याय, अशक्ति और तुष्टि, ये तीन तत्त्वज्ञानलाभके प्रतिबन्धक हैं। उनके मतसे प्रत्यय सर्गके बीच सिद्धि ही उपादेय है। विपर्याय, अशक्ति और तुष्टि हेय है। प्रत्ययसर्गके बिना तन्मात्र सर्ग और उसका पुरुषार्थ साधन नहीं हो सकता। फिर तन्मात्रसर्गके बिना भी प्रत्ययसर्ग और उसका पुरुषार्थसाधन सम्भव नहीं है। इसलिये द्विविध सर्गक अर्थात् तन्मात्रसर्ग और प्रत्ययसर्गकी प्रवृत्ति हुई है। भोग्य शब्दादिका विषय है और भोगायतन शरीरद्वयके बिना भोगरूप पुरुषार्थ हो नहीं सकता, इससे तन्मात्रसर्गकी विशेष उपयोगिता है। क्योंकि शब्दादि विषय और शरीरद्वय तन्मात्रसर्गके अन्तर्भुक्त हैं। पहले यह भी कहा गया है, कि भोगसाधन इन्द्रिय और अन्तःकरणके बिना भोग नहीं हो सकता। धर्मादिके बिना इन्द्रिय और शरीर आदिकी सृष्टि हो नहीं सकती। धर्माधर्मके द्वारा ही सूक्ष्म शरीर बार बार स्थूल शरीर ग्रहण और शरीरमें धर्माधर्मका भोग कर फिर शरीर त्याग करता है। जब तक विवेकख्याति द्वारा धर्माधर्मका नाश नहीं होता, तब तक इस तरहकी जन्ममृत्यु अपरिहार्य है। सुतरां प्रत्ययसर्गकी आवश्यकता अवश्य ही स्वीकार करनी होगी।

अपवर्गरूप पुरुषार्थ विवेकख्याति साध्य है। यह विवेकख्याति भी प्रत्ययसर्ग और तन्मात्रसर्ग ये दोनों सापेक्ष है। इसके द्वारा भी दोनों तरहके सर्गकी आवश्यकता प्रतिपादन हो सकती है। इस पर आपत्ति हो सकती है, कि धर्मादि सृष्टिके सापेक्ष या सृष्टि धर्मादिके सापेक्ष है। अर्थात् धर्म आदिसे सृष्टि होती है, या सृष्टिसे धर्मादिकी उत्पत्ति होती है। सुतरां इससे अन्योन्याश्रयदोष होता है। इस दोषका परिहार करनेके लिये शास्त्रमें लिखा है, कि पूर्वजन्मार्जित धर्मादि द्वारा वर्त्तमान शरीरकी उत्पत्ति हुई है। पूर्वतर जन्मसञ्चित धर्मादि द्वारा पूर्व जन्मके एवं पूर्वतम जन्ममें आचरित कर्मराशि द्वारा पूर्वतर जन्मके शरीर आदि हुए हैं।

यह संसार विचित्र प्रकारके भोगोंकी लीलाभूमि है।

भोगके हाथसे कोई भी परित्राण पा नहीं सकता। संसारमें भोगका औचित्य रहने पर भी जीवका मरणभय स्वाभाविक है। कोई प्राणी ही मृत्युसे बच नहीं सकता। जरामरण आदि जैसे स्वाभाविक है, सुख किन्तु वैसा स्वाभाविक नहीं है। यह आगन्तुक उपायसाध्य है।

संसार प्रकृतिका कार्य है। प्रकृति त्रिगुणमयी है। उसमें रजोगुण दुःख स्वरूप है। सुतरां यह संसार दुःखात्मक है, इसमें किसी तरहका कोई सन्देह नहीं हो सकता। सत्त्वगुण सुखात्मक है, रजोगुणका धर्म जैसे दुःख है वैसे ही सत्त्वगुणका धर्म सुख है। संसारमें जैसे दुःख है, वैसे सुख भी है। ऐसा कौन कहता है कि संसारमें सुख नहीं है। शास्त्रोंने कहा है कि संसारमें सुख है सही, किन्तु वह दुःखके सामने नहींके समान है।

उनके मतसे ब्रह्मलोकसे सत्यलोक तक सत्त्वबाहुल्य है। यहां सत्त्वकी अधिकता होनेके कारण सुखका भाग अधिक है। जो स्वर्ग आदिका भोग करते हैं, वही सुख भोग करते हैं। भूलोक या मनुष्यलोक रजोबाहुल्य है। सुतरां यहां दुःख ही अधिक और स्वाभाविक है। पश्वादि स्थावरान्त सृष्टि तमोबाहुल्य है। सुतरां मोहात्मक है। इसीसे पश्वादि मोहबाहुल्य हैं। समस्त कार्य ही प्रकृतिसे उद्भूत हुए हैं।

साक्षात् या परम्परा प्रकृति ही कार्यमात्रका एकमात्र कारण है। प्रकृतिसे ही सृष्टि हुई है। किन्तु वेदान्तिकोंके मतमें प्रकृति जगत्‌का कारण नहीं। ब्रह्म ही एकमात्र जगत्‌का कारण है। एक ब्रह्मसे ही जगत्‌की उत्पत्ति हुई है। सांख्याचार्योंने वेदान्तिकोंका यह मत खण्डन कर प्रकृतिको जगत्‌का कर्ता बनाया है। चितिशक्ति या ब्रह्म अपरिणामी है सुतरां इस प्रकार जगदाकारमें परिणाम हो ही नहीं सकता।

प्रकृति स्वयं प्रवृत्त होती है। वत्सका परिपोषण करनेके लिये जैसे अज्ञ निकट दुग्धकी प्रवृत्ति होती है पुरुषके भोगापवर्गके लिये वैसे ही अचेतन प्रकृतिकी भी प्रवृत्ति होती है। नर्त्तकी जैसे सभासदोंको नृत्य दिखा कर नृत्यसे पृथक् हो जाती है, वैसे ही प्रकृति भी पुरुषके सामने अपना रूप दिखा कर निवृत्त हो जाती है। गुणवान् पुरुष निर्गुण स्वामीकी आराधना कर किसी तरह की प्रत्युपकारकी आशा नहीं करता है, वैसे ही गुणमयी प्रकृति भी नाना तरहके उपायसे निर्गुण पुरुषका उपकार कर उससे किसी तरहकी आशा नहीं करती। असूर्यम्पश्या कुलवधू दैवात् स्खलित वस्त्राञ्चल अवस्थामें केवल एक बार किसी पुरुष द्वारा देख लेने पर लज्जासे जैसे द्वितीय बार उसको देखना नहीं चाहती, वैसे ही प्रकृति भी किसी पुरुष कर्तृक विवेकज्ञान द्वारा दृष्ट होने पर फिर उसको दिखानेकी इच्छा नहीं करती।

(सांख्यका० ५७-६०)

प्रकृतिके विवेकसाक्षात्कार द्वारा जब पुरुष मुक्त होता है तब प्रकृतिकी फिर सृष्टि नहीं होती। पुरुषके आश्रयमें ही प्रकृतिका बन्ध मोक्ष और संसार है। स्वभावतः पुरुषका बन्ध मोक्ष और संसार नहीं है। भृत्यगत जय पराजय जैसे स्वामीमें उपचरित होती है वैसे प्रकृतिगत बन्धमोक्ष भी पुरुषमें उपचरित होते हैं। रेशमके कीड़े जैसे अपने ही आपको बन्धन करते हैं, प्रकृति भी स्वयं अपनेको बन्धन करती है।

आदरके साथ दीर्घ काल तक निरन्तर साधन पूर्व कथित तत्त्वोंके विवेकज्ञानका अभ्यास करने पर 'मैं पुरुष हूं, मैं प्रकृति बुद्ध्यादि नहीं हूं मैं कर्त्ता नहीं हूं, किसी विषयमें मेरा स्वाभाविक स्वामित्व नहीं है।' ऐसे विवेक विषयमें साक्षात्कारात्मक ज्ञान उत्पन्न होता है। यद्यपि मिथ्याज्ञान या मिथ्याज्ञानवासना अनादि है, तथापि विवेकज्ञान और विवेकज्ञानवासना आदि युक्त है। एक सादि और एक अनादि ऐसा विवेकज्ञान मिथ्याज्ञानका और विवेकज्ञानवासना मिथ्याज्ञान वासनाका उच्छेद सम्पादन कर सकती है। इसमें किसी तरहका बाध नहीं होता। क्योंकि तत्त्वविषयमें बुद्धिका स्वाभाविक पक्षपात है इससे तत्त्वज्ञान प्रबल है और मिथ्याज्ञान दुर्बल। शास्त्रमें लिखा है, कि विरोधक प्रबल दुर्बलका उच्छेद करता है, सुतरां इस न्यायके अनुसार प्रबल तत्त्वज्ञान दुर्बल मिथ्याज्ञानका विलकुल उच्छेद साधन करनेमें समर्थ होता है। सुतरां विवेकज्ञान होने पर फिर मिथ्याज्ञानकी सम्भावना भी नहीं रहती। सुतरां मिथ्याज्ञानजनित जो संसार, जन्म, मृत्यु है, उसका भी उद्भव नहीं होता। अतएव यहां

निर्वेद या कुछ मजाक करते हुए भगवान्ने साङ्ख्ययोगका उपदेश दिया। भगवान्ने उनसे पहले कहा कि जिनके लिये शोक करनेका कर्त्तव्य नहीं, तुम उनके लिये शोक कर रहे हो? पण्डितकी तरह बात कर रहे हो, फिर भी जो पण्डित हैं वे गतासु या अगतासु के लिये शोक नहीं करते। अर्जुनके प्रति भगवान्का प्रथम यही उपदेश था। उन्होंने अर्जुनको यह अच्छी तरह युक्तियों द्वारा समझा बुझा दिया, कि आत्मा अजर और अमर है इसका विनाश नहीं होता। तुम जिनके विनाश होनेकी सम्भावनासे व्याकुल हो रहे हो, कोई भी उनका विनाश नहीं कर सकता। देह आत्मा नहीं है। उनकी यदि यह पार्थिव देह नष्ट भी हो जाय, तो वे कभी विनष्ट नहीं हो सकते। तुम उनके लिये शोक क्यों करते हो? वे पहले भी थे और भविष्यमें भी होंगे। जैसे वस्त्र पुराना हो जाने पर मनुष्य उसे त्याग कर दूसरा नया वस्त्र पहनता है, वैसे ही आत्मा बाल्य कौमार यौवन, जरा अपनी इस पुराना देहको छोड़ कर नयी देहका आश्रय लेती है। यही आत्माकी जन्ममृत्यु है। यथार्थमें उसकी जन्म मृत्यु है ही नहीं। तुम अज्ञानवश उनके लिये शोकाभिभूत हुए हो। कालने स्वयं उन लोगोंका विनाश कर रखा है। तुम इस युद्धमें निमित्तमात्र हो। अतएव तुम्हारा कर्त्तव्य है, कि तुम शोक परित्याग कर युद्ध करो।

जिसका जन्म हुआ है उसकी मृत्यु और जिसकी मृत्यु हो चुकी है उसका जन्म होना अवश्यम्भावी है। इसकी गति कोई जान नहीं सकता। अज्ञानवश मनुष्य की जन्म मृत्यु हुआ करती है। यही प्राकृतिक नियम है। प्राणी जन्मसे पहले अप्रकाशमें और मध्यमें अर्थात् जन्म हो जाने पर प्रकाशमें और इसके बाद फिर अप्रकाशमें पड़ जाते हैं। इस तरह आत्माकी अविनाशिता सिद्ध कर श्रीकृष्णने अर्जुनका मोह अपहरण किया था। गीताके दूसरे अध्यायमें यह विषय विशेषरूपसे लिखा गया है। विषय बढ़ जानेके भयसे यहां और अधिक न लिखा गया। इसका मोटा तात्पर्य यह है कि साङ्ख्य शब्दका अर्थ ज्ञान है। यह ज्ञानसम्बन्धीय योग ही साङ्ख्ययोग है। भगवान्ने कहा था, कि साङ्ख्ययोग और कर्मयोग अवलम्बन कर निःश्रेयस लाभ करते रहो; किन्तु कर्मयोग से साङ्ख्ययोग श्रेष्ठ है। इस पर अर्जुनने विशेष संशयापन्न हो कर श्रीकृष्णसे कहा था, कि आप कर्मयोगकी अपेक्षा इस योगकी श्रेष्ठता प्रतिपादित कर मुझको घोर कर्म करनेकी क्यों आज्ञा देते हैं। इस विभिन्न भावपी का अर्थ मैं नहीं समझ रहा हूं। इस पर भगवान्ने कहा था,—

"लोकेऽस्मिन् द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ।
ज्ञानयोगेन साङ्ख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्॥"
(गीता ३।३)

साङ्ख्ययोग और कर्मयोग इन दोनों योगों द्वारा ही निःश्रेयस लाभ किया जाता है, वे पहले कर्मयोगका आश्रय कर चित्त शुद्धि करें, इसके बाद वे साङ्ख्य या ज्ञानयोग का आश्रय कर मुक्तिलाभ करनेमें समर्थ होंगे। सुतरां पहले कर्मयोग, इसके बाद साङ्ख्ययोगका अवलम्बन करना चाहिये।

साङ्ख्यदर्शनमें जिस योगका विषय अभिहित हुआ है वह भी साङ्ख्ययोगके नामसे ही प्रसिद्ध है।

साङ्ख्य देखो।

साङ्ख्यायन (सं० पु०) एक प्राचीन आचार्य। इन्होंने ऋग्वेदके साङ्ख्यायनब्राह्मणकी रचना की थी। इनका कुछ श्रौतसूत्र भी है। साङ्ख्यायनकामसूत्र इन्हींका बनाया हुआ है।

साङ्ग (सं० त्रि०) अङ्गयुक्त, सम्पूर्ण।

साङ्गतिक (सं० पु०) सङ्गतिरेव (विनयादिभ्यष्ठक्। पा ५।४।३४) इति ठक्। १ सङ्गति सम्मिलन। २ सहाध्यायी ३ विचित्र परिहासादि कथाजीवी। (मनु ३।१०३)

साङ्गत्य (सं० क्ली०) साङ्गतिक।

साङ्गम (सं० पु०) सङ्गम एव स्वार्थे। सङ्गम।

साङ्गमन (सं० पु०) सङ्गम।

साङ्गमिच्छु (सं० पु०) सङ्गमेच्छु।

साङ्गलक्षण (सं० त्रि०) अङ्गलक्षणयुक्त।

साङ्गुष्ठ (सं० त्रि०) अङ्गुष्ठके साथ, अङ्गुष्ठयुक्त।

साङ्गुष्ठा (सं० स्त्री०) १ गञ्जा। २ करजनी।

साङ्गोपाङ्ग (सं० अव्य०) अङ्गों और उपाङ्गों सहित।

साङ्ग्रहण (सं० क्ली०) संग्रह।

साङ्ग्रहसूत्रिक (सं० त्रि०) सङ्ग्रहसूत्रमधीते वेद वा (क्रत्वादि सूत्रान्ताट्ठक्। पा ४।२।६०) इति ठक्। संग्रहसूत्र अध्ययन करनेवाला।

साङ्ग्रहिक (सं० त्रि०) संग्रहे साधुः संग्रह (कथादिभ्यष्ठक्। पा ४।४।१०२) इति ठक्। १ संग्रहकारी, संग्रह करनेवाला संग्रहग्रन्थं अधीते वेत्ति वा संग्रह-ठक्। २ सभी संग्रह ग्रन्थ जाननेवाले।

साङ्ग्राम (सं० त्रि०) संग्रामे कार्यं दीयते इति (व्युष्टादिभ्योऽण्। पा ५।१।९७) इति अण्। १ संग्रामकार्यकारी। (पु०) २ युद्ध, लड़ाई।

साङ्ग्रामजित्य (सं० क्ली०) संग्रामजय।

साङ्ग्रामिक (सं० पु०) संग्रामे साधुः संग्राम (गुडादिभ्यष्ठञ्। पा ४।४।१०३) इति ठञ्। १ सेनापति। (त्रि०) २ संग्रामकुशल। ३ युद्ध सम्बन्धी।

साङ्घटिक (सं० त्रि०) सङ्घटमधीते वेद वा सङ्घट ठञ्। (पा ४।२।६०) जो सङ्घट अध्ययन करे।

साङ्घट्टर (सं० त्रि०) सङ्घट्ट अध्ययनकारी।

साङ्घटिका (सं० स्त्री०, १ स्त्रीप्रसंग, मैथुन। २ एक प्रकारका वृक्ष। ३ वह स्त्री जो प्रेमी और प्रेमिकाका संयोग कराती हो, कुटनी, दूती।

साङ्घात (सं० क्ली०) सङ्घाते दीयते कार्यं अण् (पा ५।१।९६) समूह, दल।

साङ्घातिक (सं० त्रि०) सङ्घाते साधुः (गुडादिभ्योष्ठञ्। पा ४।४।१०३) इति ठञ्। १ सम्यक् प्रकारसे हननकारी, मारात्मक। (पु०) २ सोलह नाड़ीचक्रोंमेंसे एक नाड़ा। जन्म नक्षत्रसे सोलहवीं नाड़ी है। षण्णाड़ीचक्र देखो। ३ एक प्रकारका भिक्षुक।

साङ्घात्य (सं० क्ली०) संहात्य।

साङ्मुखी (सं० स्त्री०) सङ्मुखाय हिता सङ्मुख-अण्-ङाप्। सायाह्नव्यापिनी तिथि। यह तिथि सायं काल तक रहती है। स्मृतिमें लिखा है, कि पञ्चमी, सप्तमी, दशमी, त्रयोदशी, प्रतिपद और नवमी ये सब तिथि साङ्मुखा अर्थात् सायंकालव्यापिनी होनेसे ग्रहण करनी होगी। (तिथितत्त्व)

साचक (तु० स्त्री०) मुसलमानोंमें विवाहकी एक रस्म। इसमें विवाहसे एक दिन पहले वर पक्षवाले अपने यहांसे कन्याके लिये मेहंदी, मेवे, फल तथा कुछ सुगन्धित द्रव्य आदि भेजते हैं।

साचरी (सं० स्त्री०) एक रागिनी जो कुछ लोगोंके मतमें भैरव रागकी पत्नी है।

साचार (सं० त्रि०) आचारेण सह वर्त्तमानः। आचारयुक्त।

साचि (सं० अव्य०) सच-इन्। तिर्यक्, वक्र, वत। पर्याय—तिरः।

साचिवाटिका (सं० स्त्री०) श्वेतपुनर्नवा, सफेद गदहपूरना।

साचिव्य (सं० क्ली०) १ सचिवका भाव या धर्म, सचिवता। २ सहायता, मदद।

साचिव्याक्षेप (सं० पु०) अलङ्कारभेद।

साचीकुम्हड़ा (हिं० पु०) सफेद कुम्हड़ा, भतुआ कुम्हड़ा, पेठा।

साचीकृत (सं० त्रि०) वक्रीकृत, टेढ़ा किया हुआ।

साचीगुण (सं० पु०) १ एक देशका नाम। (ऐतरेयब्रा० ८।२३) २ प्रकृष्ट गुणवान् देश। (भाग० ६।२०।२६ स्वामी)

साचेय (सं० त्रि०) पूरक।

साच्य (सं० त्रि०) समवेतव्य। (ऋक् ३।१४०।३)

साज (सं० पु०) १ पूर्वभाद्रपद नक्षत्र। (वृहत्स० १०।१७) (त्रि०) २ अजके साथ।

साज (फा० पु०) १ सजावटका काम, तैयारी, ठाट बाट। २ वह उपकरण जिसकी आवश्यकता सजावट आदिके लिये होती, वे चीजें जिनकी सहायतासे सजावट की जाती है, सजावटका सामान। ३ लड़ाईमें काम आनेवाले हथियार। ४ मेल जोल, घनिष्ठता। ५ वाद्य, बाजा। ६ बढ़इयोंका एक प्रकारका रंदा जिससे गोल गलता बनाया जाता है। (वि०) ७ बनानेवाला, मरम्मत या तैयार करनेवाला, काम करनेवाला। इस अर्थमें इस शब्दका व्यवहार यौगिक शब्दोंके अन्तमें होता है।

साजक (सं० क्ली०) बाजरा, बजरा।

साजगिरी (हिं० स्त्री०) सम्पूर्ण जातिका एक राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

साजड़ (हिं० पु०) गुलू नामक वृक्ष। इससे कतीरा गोंद निकलता है। गुलू देखो।

साजन (हिं० पु०) १ ससा, पति, स्वामी। २ प्रेमी वल्लभ। ३ ईश्वर। ४ सज्जन, भला आदमी।

साजना (हिं० पु०) साजन देखो।

साज बाज (हिं० पु०) १ तैयारी। २ घनिष्ठता, मेल जोल।

साजर (हिं० पु०) गुलू नामक वृक्ष। इससे कतीरा गोंद निकलता है। गुलू देखो।

साज सामान (फा० पु०) १ सामग्री, उपकरण, असबाब। २ ठाट बाट।

साजात्य (सं० क्ली०) सजाति धर्म। सजाति होनेका भाव। वस्तु धर्म दो प्रकारका है—साजात्य और वैजात्य। समान जाति सम्बन्धी जो धर्म है उसका नाम साजात्य, सजातीयता, एकधर्मावच्छिन्नता, एक विधता है।

साजिन्दा (फा० पु०) १ वह जो बाद साज बजाता हो, साज या बाजा बजानेवाला। २ वेश्याओंकी परिभाषा में तबला, सारंगी या जोड़ा बजानेवाला समाजी, सपरदाई।

साजिश (फा० स्त्री०) १ मेल, मिलाप। २ किसीके विरुद्ध कोई काम करनेमें सहायक होना किसीको हानि पहुंचानेके लिये किसीको सलाह या मदद देना।

साझा (हिं० पु०) १ किसी वस्तुमें भाग पानेका अधिकार शराकत हिस्सेदारी। २ हिस्सा, भाग, बांट।

साझी (हिं० पु०) वह जिसका किसी काम या चीजमें साझा हो, साझेदार, हिस्सेदार।

साझेदार (हिं० पु०) शरीक होनेवाला, हिस्सेदार, साझी।

साझेदारी (हिं० स्त्री०) साझेदार होनेका भाव, हिस्सेदारी, शराकत।

साञ्जरिक (सं० त्रि०) सञ्जारके योग्य।

साञ्ज (सं० पु०) एक प्राचीन ग्रन्थकारका नाम।

साञ्जन (सं० पु०) १ कृकलास, गिरगिट। (त्रि०) २ अञ्जन विशिष्ट। ३ शरीरेन्द्रिय-सम्बन्धी। सर्वदर्शन संग्रहमें लिखा है, कि साञ्जन और निरञ्जन ये दो प्रकारके सिद्ध हैं। जहां शरीरके साथ इन्द्रियका सम्बन्ध है, उसे साञ्जन और उससे रहितका नाम निरञ्जन है।

साञ्जीवीपुत्र (सं० पु०) एक वैदिक आचार्यका नाम।

साञ्ज्ञायनि (सं० पु०) संज्ञाका अपत्य।

साट (हिं० स्त्री०) सांट देखो।

साटक (हिं० पु०) १ छिलका, भूसा। २ बिलकुल तुच्छ और निरर्थक वस्तु निकम्मी चीज। ३ एक प्रकारका छन्द।

साटन (हिं० पु०) एक प्रकारका बढ़िया रेशमी कपड़ा जो प्रायः एकरुखा और कई रंगोंका होता है।

साटना (हिं० क्रि०) १ दो चीजोंको इस प्रकार मिलाना कि उनके तल आपसमें मिल जाय, सटाना जोड़ना। २ सटाना देखो।

साटना (हिं० स्त्री०) कलन्दरोंकी परिभाषामें भालूका नाम।

साटी (हिं० स्त्री०) १ पुनर्नवा, गदहपूरना। २ सामग्री, सामान। सांटी देखो। ३ कमची साटा।

साठ (हिं० वि०) १ पचास और दस जो पचपनसे पांच ऊपर हो। (पु०) २ पचास और दसके योगकी संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—६०। (स्त्री०) ३ साठी देखो।

साठनाठ (हिं० वि०) १ जिसकी पूंजी नष्ट हो गई हो निर्धन, दरिद्र। २ नीरस, रूखा। ३ तितर बितर, इधर उधर।

साठसाती (हिं० स्त्री०) साढ़ेसाती देखो।

साठा (हिं० पु०) १ ईख, गन्ना, ऊख। २ एक प्रकारका धान जिसे साठी कहते हैं। साठी देखो। ३ एक प्रकारकी मधुमक्खी जिसे सतपुरिया कहते हैं। ४ वह खेत जो बहुत लंबा चौड़ा हो। (वि०) ५ जिसकी अवस्था साठ वर्षकी हो, साठ वर्षका उम्रवाला।

साठी (हिं० पु०) एक प्रकारका धान। कहते हैं कि यह धान ६० दिनमें तैयार हो जाता है इसीसे इसे साठी कहते हैं। इसके दाने दो प्रकारके होते हैं—काले और सफेद। कालेकी अपेक्षा सफेद दानेवाला अधिक अच्छा होता है। इसमें गुण अधिक होता है।

साढ़ा (हिं० पु०) १ घोड़ोंका एक प्राणघातक रोग। २ बांसका वह टुकड़ा जो नावमें मल्लाहोंके बैठनेके स्थानके नीचे लगा रहता है।

साढ़ि (सं० पु०) सड़का गोत्रापत्य।

साड़ी (हिं० स्त्री०) १ स्त्रियोंके पहननेकी धोती जिसमें चौड़ा किनारा या वेल आदि बनी होती है, सारी। २ साड़ी देखो।

साढ़साती (हिं० स्त्री०) साढ़ेसाती देखो।

साढ़ी (हिं० स्त्री०) वह फसल जो आषाढ़में बोई जाती है, असाढ़ी। २ दूधके ऊपर जमनेवाली मलाई, मलाई। ३ शाल वृक्षका गोंद। ४ साड़ी देखो।

साढ़ू (हिं० पु०) पत्नीकी बहनका पति, साली का पति।

साढ़ेचौहारा (हिं० पु०) एक प्रकारकी बांट जिसमें फसलका ५वां अंश जमींदारको मिलता है और शेष ११वां अंश काश्तकारको।

साढ़ेसाती (हिं० स्त्री०) शनि ग्रहकी साढ़े सात वर्ष, साढ़े सात मास या साढ़े सात दिन आदिकी दशा। फलित ज्योतिषके अनुसार इसका फल बहुत बुरा होता है।

साण्ड (सं० पु०) अण्डेन सह वर्त्तते। अण्डयुक्त, अण्डविशिष्ट।

सात् (सं० क्ली०) सात् सुखे क्विप्। ब्रह्म।

सात (सं० क्ली०) १ सुख। २ दत्त। ३ नष्ट।

सात (हिं० वि०) १ पांच और दो, छः से एक अधिक। (पु०) २ पांच और दोके योगकी संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—७।

सातत्य (सं० क्ली०) सतत-ष्यञ्। सतत सम्बन्धी, अविच्छेद।

सातदोला—मेदिनीपुर जिलान्तर्गत एक गण्डग्राम। यह मोगलमारी ग्रामसे ५ मील दूरमें अवस्थित है। विख्यात दांतनसे मोगलमारी २ मील उत्तर पड़ता है। यहां एक समय मोगल (मुगल) और मराठी सेनाकी घोर लड़ाई छिड़ी थी, इसलिये इसका नाम मोगलमारी पड़ा।

राजपाटका रास्ता जब सातदोला ग्राम हो कर निकाला गया था, उस समय यहांकी जमीन खोदते समय बड़े बड़े राजभवनादिके ध्वंसावशेष निदर्शन बहुतेरे ईंट और पत्थरके टुकड़े मिले थे। इन्हें देखनेसे अनुमान होता है, कि एक समय यहां किसी प्राचीन राजवंशकी राजधानी थी। मुगलमारी देखो।

सातपूर्ती (सं० स्त्री०) सतपुतिया देखो।

सातफेरी (हिं० स्त्री०) विवाहका भांवर नामक रीति जिसमें वर और वधू अग्निकी सात बार परिक्रमा करते हैं।

सातभाई (हिं० स्त्री०) सप्तभ्राता देखो।

सातय (सं० त्रि०) सातयतीति सात सुखे (अनुपसर्गात् लिम्पविन्देति। पा ३।१।१३८) इति श। सुखजनक।

सातला (सं० स्त्री०) एक प्रकारका थूहर जिसका दूध पीले रंगका होता है, सप्तला, भूरिफेना। शालग्राम निघंटुमें लिखा है, कि यह एक प्रकारकी बेल है जो जङ्गलोंमें पाई जाती है। इसके पत्ते गोरखके पत्तोंकी भांति और फूल पीले होते हैं। इसमें पतली चिपटी फली लगती है जिसे सीकाकाई कहते हैं। इसके बीज काले होते हैं जिनमें पीले रंगका दूध निकलता है। परन्तु इंडियन मेडिकल प्लान्टसके मतानुसार यह क्षुप जातिकी वनस्पति है। इसकी डाल एकसे तीन फुट तक लंबी होती है जिसमें रोएं होते हैं। इसके पत्ते एक इञ्च लंबे और चौथाई इञ्च चौड़े अण्डाकार कनीदार होते हैं। डालके अन्तमें बारीक फूलोंके घने गुच्छे लगते हैं जो लाल रंगके होते हैं। फल चिपटे और छोटे होते हैं। यह वनस्पति सुगंधयुक्त होती है। इसका तेल सुगन्धित और उत्तेजक होता है जो मिरगी रोगमें काम आता है।

सातवाहन (सं० पु०) राजा शालिवाहन। कथासरित्सागरमें लिखा है, कि सात नामक गुह्यक इनको वहन करता था, इसलिये राजाका नाम सातवाहन हुआ।

भारतवर्ष शब्दमें अन्ध्रभृत्यवंशका विवरण देखो।

सातसइका—वर्द्धमान जिलान्तर्गत एक बड़ा परगना। इस परगनेके पूर्वतन अधिवासी ब्राह्मण हो सप्तशती या सातशती नामसे परिचित हैं।

सातहन् (सं० त्रि०) सातं सुखं हन्ति हन-क्विप्। सुखहन्ता, सुखनाशक।

साति (सं० स्त्री०) सन्-क्तिन् (जनसनखनामिति। पा ६।४।४२) इति नस्य आत्वं, यद्वा सनु दाने क्तिन्,

(ऊर्विदुविद्रुतिसानीति। पा ३।३।६७) इति आतव। १ अवमान शेष। २ दान। ३ वेदना। (अमर) ४ समञ्जन।

सातिरेक (स० त्रि०) अतिरिक्त अतिरेक विशिष्ट।

सातिशय (स० त्रि०) अतिशयके साथ अतिशययुक्त।

सातिसार (स० त्रि०) अतिसारके साथ, अतिसार रोग विशिष्ट।

साती (हिं० स्त्री०) सांप काटनेकी एक प्रकारकी चिकित्सा, जिसमें सांप काटे हुए स्थानको चीर कर उस पर नमक या बारूद मलते हैं।

सातीन (स० पु०) १ वंश। २ सतीलक। (क्ली०) ३ जल।

सातीलक (स० पु०) सतीलक, कलाय।

सातु (स० पु०) १ पश्वादि लक्षण दान। २ दाप्ति।

सातोवाहन (स० त्रि०) सतोवृहतो नामक यज्ञसम्बन्धी।

सात्त्व (स० त्रि०) सत्त्व अण्। सत्त्वसम्बन्धी।

सात्त्विक (स० त्रि०) सत्त्व ठञ्। सत्त्वसम्बन्धी।

सात्त्व (स० त्रि०) सत्त्वगुण सम्बन्धी सात्त्विक।

सात्त्वकि (स० पु०) सत्त्वकस्य गोत्रापत्य (बाह्वादिभ्यश्च। पा ४।१।९६) इति इञ्। सत्त्वकका गोत्रापत्य।

सात्त्वत (स० पु०) १ बलराम। २ श्रीकृष्ण। ३ यादव मात्र। ४ विष्णु। ५ विष्णुभक्त विशेष। जगत्में भगवान् ही एकमात्र सत्य हैं, उस भगवान्की जो उपासना करता है, वही सात्त्वत कहलाता है। पद्मपुराणके उत्तर खण्डमें इसके लक्षण यों लिखे हैं—

जो अनन्यचित्तसे सत्त्वगुणाश्रय सत्त्वस्वरूप एकमात्र भगवान्की सेवा करता है उसको सात्त्वत कहते हैं और जो सब तरहके काम्य कर्मोंको त्याग कर एकान्त चित्तसे सत्त्वगुणविशिष्ट हो कर हरिकी उपासना करता है उसीको सात्त्वत कहते हैं। जो सदा मुकुन्दकी पादसेवामें रत रहता है जो भगवान् हरिके अर्चनमें दास्य और सख्यभावसे सदा विद्यमान रहता है और आत्मसमर्पणमें दृढ़ रति, वही सात्त्वत पदवाच्य है।

जो सब कर्मोंका त्याग कर अनन्यचित्तसे श्रीकृष्णकी उपासना करता है वही सात्त्वत नामक वैष्णव है।

हिन्दू धर्ममें जो सब उपासक सम्प्रदाय हैं, साधारणतः वे सब सम्प्रदाय पांच भागोंमें विभक्त हैं—सौर, गाणपत्य, शैव, शाक्त और वैष्णव। इसका अत्यधिक प्रमाण है, कि वैष्णव धर्म बहुत प्राचीन तथा वैदिक है। विष्णु देखो। सुप्राचीन ऋग्वेदमें विष्णुकी उपासनाके बहुतेरे मन्त्र हैं। एक श्रेणीके उपासक सात्त्विक भावमें विष्णुका भजन करते थे उनको स्वर्गकामना न थी, जीवनबलि भी न थी और न उनमें सोम (मद्य) पानकी ही प्रथा था। वे विशुद्ध सात्त्विक भावसे भगवान् विष्णुकी आराधना करते थे। वे विष्णुको 'सत्त्व' कहते थे। सत् शब्दका अर्थ सात्त्वमूर्त्ति था भगवान् मालूम होता है। जो सात्त्विकभावसे इस सत्त्वमूर्त्ति श्रीविष्णुकी उपासना करते, वे ही सात्त्वत नामसे अभिहित होते थे।

यह सात्त्वत सम्प्रदाय समूचे वैष्णव सम्प्रदायमें सर्वश्रेष्ठ गिने जाते। इनका आचार-व्यवहार रीति नीति और उपासनापद्धति सर्वतोभावसे उत्तम, निष्काम और भगवद्भावपूर्ण था। वे सब प्रकारके काम्य कर्मोंका परित्याग कर एकान्तभावसे श्रीहरिकी उपासना करते थे। उनकी पादसेवा और उनका नाम सुनाते तथा उनका नाम गुणगान किया करते थे। उनका जीवन श्रीभगवान्के स्मरण, मनन, उनके नाम गुणादि कीर्त्तन और उनकी सेवामें निरन्तर निमग्न रहता था। इसी श्रेणीके भगवद्भक्त वैदिक समयमें भी सात्त्वत कहे जाते थे।

सात्त्वत सम्प्रदाय ही विशुद्ध वैष्णव सम्प्रदायका प्रवर्त्तक है। कूर्मपुराणके पढ़नेसे मालूम होता है कि यदुवंशके सत्त्वत नृपतिने इस सात्त्वत धर्मकी यथेष्ट उन्नति की थी। सत्त्वत नृपति अंशु राजाके पुत्र थे। इनके पुत्रका नाम सात्त्वत है। सात्त्वत राजाने नारदसे इस सात्त्वत धर्मका उपदेश ग्रहण किया था। वे सदा वासुदेवकी अर्चनामें ही निमग्न रहते थे। इन्होंने कुण्डगोल आदि द्वारा सात्त्वत धर्मका प्रवर्त्तन किया। पञ्चरात्र शब्दमें विस्तृत विवरण देखो।

६ यदुवंशीय सात्त्वत राजपुत्र।

७ वर्णसङ्कर जातिविशेष। मनुसंहितामें इसका विवरण इस तरह लिखा है, कि व्रात्य वैश्य द्वारा सवर्णा

स्त्रीसे उत्पन्न सन्तान सुधन्वाचार्य, कारुप, विजन्मा मैत्र, और सात्वत नामसे परिचित हुए।

(पु०) ८ एक देशका नाम, सात्त्वदेश।

सात्वती (सं० स्त्री०) १ शिशुपालकी माता। (भारत २।४५।६) २ सुभद्रा। (भारत १।२२२।६६) ३ साहित्यके अनुसार एक प्रकारकी वृत्ति। इसका व्यवहार वीर, रौद्र, अद्भुत और शान्त रसोंमें होता है। यह वृत्ति उस समय मानी जाती है, जब कि नायक द्वारा ऐसे सुन्दर और आनन्दवर्द्धक वाक्योंका प्रयोग होता है जिससे उसकी शूरता, दानशीलता, दाक्षिण्य आदि गुण प्रकट होते हैं।

सात्त्विक (सं० पु०) १ ब्रह्मा। २ विष्णु। (भारत १३।१४६।१०६) ३ तीन भावोंमें भावविशेष। सत्त्वगुण प्रबल हो कर अन्तःकरणमें जो भाव प्रबल होता है, उसको सात्त्विक भाव कहते हैं। इस सात्त्विक भावके उपस्थित होने पर ये सब लक्षण दिखाई देते हैं—स्वेद, स्तम्भ, रोमाञ्च, स्वरभङ्ग, वेपथु, वैवर्ण्य, अश्रुपात, और प्रलय अर्थात् मूर्च्छा।

(त्रि०) ४ सत्त्वगुणविशिष्ट, सत्त्वगुणयुक्त। सत्त्वगुणसे जो वस्तुएं उत्पन्न होती हैं, उनको सात्त्विक कहते हैं। यह जगत् सत्त्व, रजः और तमोगुणसे उत्पन्न हुआ है, सुतरां यह सात्त्विक, राजसिक और तामसिक भेदसे तीन प्रकारका है। जिन विषयोंमें सत्त्वगुणका भाग अधिक है, वे विषय सात्त्विक समझने चाहियें। आयु, सत्त्व, बल, आरोग्य, सुख और प्रीतिवर्द्धक अर्थात् जिन द्रव्योंके भोजन करनेसे आयु, बल-आदि बढ़ते हैं, जो रस्य या रसाल, स्थिर या हृद्य है, वे ही सात्त्विक आहार कहे जाते हैं।

शास्त्रमें लिखा है, कि जो मुक्तिकामी हैं, वे पहले यत्नपूर्वक सात्त्विक भोजन करें, देह अन्नमय कोष है और इन्द्रियां भोजन द्वारा पुष्ट होती हैं, अतएव यदि सात्त्विक भोजन किया जावे, तो इसमें तनिक सन्देह नहीं, कि उससे देह और इन्द्रियां सत्त्वगुणविशिष्ट होती हैं शास्त्रमें भोजनके लिये जो इतनी बाध्य बाध्यकता दिखाई देती है, उसका कारण यह है, कि सात्त्विक भोजन न करनेसे सात्त्विक प्रकृति नहीं होती। अतएव मुक्ति चाहनेवालोंको राजसिक और तामसिक आहारोंका परित्याग कर सात्त्विक भोजन करना अवश्य कर्त्तव्य है। इस आहारसे शरीर सुस्थ, मानसिक बल तथा आयु बढ़ता है। छांदोग्य उपनिषद्में लिखा है, कि—"आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः" आहारकी शुद्धिसे सत्त्वकी शुद्धि होती है।

जिस यज्ञमें किसी तरहकी फल कामना नहीं है, और यह विधिपूर्वक शास्त्रके नियमानुसार अनुष्ठित हुआ है तथा यह यज्ञ करना मेरा अवश्य कर्त्तव्य है, ऐसा समझ कर जो यज्ञ किया जाता है, वह यज्ञ अवश्य ही सात्त्विक यज्ञ कहलाता है।

फलकामना रहित हो अत्यन्त भक्तिके साथ जो तीन प्रकारकी तपस्याओंका अनुष्ठान होता है, उनको सात्त्विक तपस्या कहते हैं। यह मैं दान करूंगा, ऐसा निश्चय कर किसी तरहके उपकारकी प्रत्याशा न रख गङ्गा तीर्थ चन्द्रग्रहण आदिके समय और ब्राह्मण आदि सत्पात्रको जो दान किया जाता है, उसको सात्त्विक दान कहते हैं।

आत्माभिमान और फलकामनाका परित्याग कर यह कर्म मेरा कर्त्तव्य है, इस बुद्धिसे जो किया जाता है, उसको सात्त्विक त्याग कहते हैं जिस ज्ञानसे सब भूतोंमें एक अविनाशी अभिन्नभाव लक्षित होता है, उसको ही ज्ञान कहते हैं। जो बुद्धि प्रवृत्ति और निवृत्ति, कार्य्य और अकार्य्य, भय और अभय तथा बन्धन और मुक्ति समझनेमें समर्थ है, उसीको सात्त्विक बुद्धि कहते हैं। सात्त्विकी बुद्धि द्वारा सब विषयोंका स्वरूप जाना जा सकता है।

जो किसी तरहके फलकी आकांक्षा नहीं करता, अनहंवादी अर्थात् यह मैं कर रहा हूं, इस तरहका अहंज्ञानशून्य, धृति और उत्साहयुक्त, सिद्धि और असिद्धि विषयमें विकारशून्य हैं, उनको ही सात्त्विककर्त्ता कहते हैं। जिसको फलकी आकांक्षा नहीं है, उनको कार्यकी सिद्धि और असिद्धिकी कुछ भी परवाह नहीं रहता, अतएव उनको सब अवस्थामें तुल्य ज्ञान रहता है, मैं कुछका कर्त्ता नहीं और उनके कार्यों में सदा धैर्य्य (धृति) और उत्साह बना रहता है, कार्य्य करना ही होगा, इस बुद्धिसे जो कार्यानुष्ठान करते हैं, वह सात्त्विक कर्त्ता हैं।

जो पुरुष फलाशक्तिशून्य, निःसङ्ग और रागद्वेषादि-

युक्त हो कर नित्य कर्मों का अनुष्ठान करते हैं, उस पुरुष के द्वारा अनुष्ठित होनेवाले कर्म 'सात्त्विक कर्म' कहलाते हैं। फलकामनारहित कर्माधिकारी पुरुष अहङ्कार और अभिमानशून्य तथा रागद्वेषादि विरहित हो कर जिन सब नित्यकर्मोंका अनुष्ठान करते हैं वे ही सात्त्विक कर्म कहे जाते हैं।

जो सुख पहले विषकी तरह, पीछे अमृत तुल्य होता है आत्मज्ञान द्वारा उत्पन्न सुख ही सात्त्विक सुख कहलाता है। यह सुख पहले बहुत कष्टकर होता है, क्योंकि यम नियम आदिका अनुष्ठान करने पर बहुत कष्ट होता है, इससे इसकी पहली अवस्था क्लेशकर है, किन्तु परिणाममें यह अमृत तुल्य है। ऐसा सुख आत्म तत्त्वज्ञान द्वारा उत्पन्न होता है इस सुखकी उत्पत्ति होनेसे फिर निवृत्ति नहीं होती है। इसलिये यह अमृत तुल्य है।

गीतामें इस तरह सात्त्विक राजसिक और तामसिक भेदसे त्रिविध कर्म और उनके पृथक् पृथक् लक्षण निर्दिष्ट हुए हैं। सत्त्वगुणका फल सुख है जिससे सुख होता है और जो सब वस्तुएं सुखकर हैं, वे सात्त्विक हैं।

वेदव्यासप्रणीत जो अट्ठारह महापुराण हैं, वे भी सात्त्विक राजसिक और तामसिक भेदसे त्रिविध हैं। पाद्मकतसे इन अट्ठारहों पुराणोंमें *विष्णु, नारद, भागवत, गरुड* पद्म और वराह ये छः पुराण सात्त्विक हैं।

स्मृति भी इसी तरह सात्त्विकादि भेदसे तीन तरह की है, *सात्त्विक स्मृति यह है—वाशिष्ठ, हारीत,* व्यास पराशर, भारद्वाज और काश्यप।

सात्त्विकी (सं० स्त्री०) सात्त्व सत्त्वगुणोऽस्त्यस्या इति सात्त्व-ठन्, ङीप्। १ दुर्गा। २ पूजाविशेष। सात्त्विक, राजसिक और तामसिक तीन प्रकारकी पूजा है। उसमें जपयज्ञादि और निरामिष नैवेद्य द्वारा जो पूजा की जाती है, उसे सात्त्विकी पूजा कहते हैं। ४ सत्त्वगुणसे सम्बन्ध रखनेवाली, सत्त्वगुणकी।

सात्म (सं० त्रि०) आत्माके सहित आत्मायुक्त।

सात्मक (सं० त्रि०) आत्मना सह वर्त्तते कप्। आत्माके सहित, आत्मायुक्त। सर्वदर्शनसंग्रहमें लिखा है, कि दुःखान्त दो प्रकारका है—अनात्मक और सात्मक। इसमें सब प्रकारके दुःखका अत्यन्त उच्छेद रूपको अनात्मक तथा दृक्क्रियाशक्तिलक्षण ऐश्वर्यको सात्मक कहते हैं।

सात्मन् (सं० त्रि०) आत्माके सहित।

सात्म्य (सं० क्ली० आत्मने हित कर्म आत्म्य, आत्म्येन सह वर्त्तमान। सुखजनक। जिस रसका सेवन करनेसे शरीरको उपकार और व्यायाम आदि चाहे किसी तरहसे शरीरके उपचय होनेका नाम सात्म्य है। देश, काल, ऋतु रोग, व्यायाम, जाति, बल, रस और दिनका सोना प्रकृतिविरुद्ध होने पर भी यदि शरीरमें कोई पीड़ा न हो और शरीरपोषणमें उपकारी हो, तो वह सात्म्य नामसे अभिहित होते हैं। चरकमें लिखा है, कि जो कुछ शरीरके लिये उपकारी हैं, वे सात्म्य हैं, जिस ऋतुमें जैसा आहार विहार हितकर है उस तरहका आहार विहार हो उस ऋतुका सात्म्य है अर्थात् उसका ऋतुसात्म्य कहते हैं। जिस ऋतुमें जो सब द्रव्य शरीरके पीड़ाकारक हैं, उनको सात्म्य नहीं, वर असात्म्य कहते हैं। फिर, किसी व्यक्तिविशेषकी प्रकृतिके अनुसार अभ्यासवशतः उसका जिस तरहका आहार विहार सुखजनक होता है उस तरहके आहार विहारको ओक सात्म्य कहते हैं। और अनूप आदि *देशोंके और ज्वर आदि रोगोंके* जो जो धर्म हैं, उस धर्मके विपरीत धर्मविशिष्ट जो आहार और विहार है वही उस देशका और उस रोगका सात्म्य समझना चाहिये। *आयुर्वेदमें ऋतुसात्म्य, ओकसात्म्य देशसात्म्य रोग* सात्म्य आदिका विशेष विवरण वर्णित हुआ है। इस का तात्पर्य यह है कि ऋतु काल, रोग आदि सब विषयोंमें जो कुछ शरीरका उपकारक हो, वह सात्म्य है। (चरकसूत्र ६ अ० ७ अ०) घृत क्षीर (दूध, तैल, और मांसरस, तथा मधुर आदि छः रस ही जिनके सात्म्य हैं, वे बलवान्, क्लेशसह और दीर्घजीवी होते हैं। रूक्ष द्रव्य, और एक रस जिनका सात्म्य है, वे अल्प बलवान् क्लेशासहिष्णु और अल्पायु होते हैं। फिर जो व्यामिश्रसात्म्य है,—अर्थात् जो कुछ सात्म्य और कुछ असात्म्य है, वे मध्यबलवान होते हैं।

(चरक विमानस्था० ८ अ०) २ धैर्य। ३ सान्त्वना, सद्भावना।

सात्यक (सं० पु०) सात्यकि।

सात्यकामि (सं० पु०) सत्यकामका गोत्रापत्य।

सात्यकायन (सं० पु०) सात्यकका गोत्रापत्य।

सात्यकि (सं० पु०) वृष्णिवंशीय सत्यकके पुत्र। ये श्रीकृष्णके सारथि थे। पर्याय—शैनेय, शिनिनप्ता, युयुधान, योध। महाभारतमें लिखा है, कि सात्यकि अर्जुनके प्रिय शिष्य थे। कौरव पाण्डवकी लड़ाईमें इन्होंने पाण्डवोंका पक्ष लिया था। महाभारतकी लड़ाईमें दोनोंके पक्षके सभी योद्धाओंके हत होने पर भी ये जीवित थे। पाण्डवोंके पक्षमें पांचों पाण्डव, वासुदेव तथा सात्यकि ये सात तथा कौरवोंके पक्षमें अश्वत्थामा, कृतवर्मा, कृप और शारद्वत ये चार जीवित थे।

सात्यकिन् (सं० पु०) सात्यकि देखो।

सात्यङ्कार्य (सं० पु०) सत्यङ्कारस्य गोत्रापत्यं सत्यङ्कार यञ्। (पा ४।१।६१) सत्यङ्कारका गोत्रापत्य।

सात्यदूत (सं० पु०) वह होम जो सरस्वती आदि देवियोंके उद्देशसे किया जाय।

सात्यमुग्र (सं० पु०) सत्यमुग्रका गोत्रापत्य।

सात्यमुग्रि (सं० पु०) सत्यमुग्र इञ् (पा ४।१।९५) सात्यमुग्रस्य, सत्यमुग्रका गोत्रापत्य। ये एक सामवेदके आचार्य थे।

सात्यमुग्र्य (सं० पु०) सामवेदीय एक शाखा या तत्शाखाध्यायी मात्र।

सात्ययज्ञ (सं० पु०) १ एक वैदिक आचार्यका नाम। (शतपथब्रा० ३।१।१।४) २ सत्ययज्ञका गोत्रापत्य, सोमशुष्माका सात्य। (शत० ब्रा० ११।६।२।१)

सात्यरथि (सं० पु०) सत्यरथ-इञ्। सत्यरथका गोत्रापत्य।

सात्यवत (सं० पु०) सत्यवत्यां भव-अण्। सत्यवतीके पुत्र वेदव्यास।

सात्यवतेय (सं० पु०) सात्यवत देखो।

सात्यहव्य (सं० पु०) सत्यहव्य गोत्रापत्यार्थे अञ्। १ सत्यहव्यका गोत्रापत्य। (ऐत० ब्रा० ८।२३) २ वशिष्ठके वंशके एक प्राचीन ऋषिका नाम।

सात्रव (सं० पु०) गंधक।

सात्राजित (सं० पु०) सत्राजितो गोत्रापत्यं सत्राजित्-अञ्। सत्राजितका गोत्रापत्य, शतानीक।

सात्राजिती (सं० स्त्री०) सत्यभामा।

सात्रासाह (सं० पु०) १ पाञ्चालराज शोणका गोत्रापत्य। २ नागभेद।

सात्त्व (सं० त्रि०) सत्त्वगुण-सम्बन्धी, सात्त्विक।

सात्वत (सं० पु०) सत्वतस्यापत्यं पुमान् अञ्। १ बलदेव। २ श्रीकृष्ण। ३ यादवमात्र। ४ विष्णु

सात्वत शब्द देखो।

सात्वतीय (सं० त्रि०) सात्वत-सम्बन्धी, यादव सम्बन्धी।

साथ (हिं० पु०) १ मिल कर या संग रहनेका भाव, सहचार। २ वह जो संग रहता हो, बराबर पास रहनेवाला। ३ मेल मिलाप, घनिष्ठता। ४ कबूतरोंका झुंड या टुकड़ी। (अव्य०) ५ एक सम्बन्ध सूचक अव्यय जिससे प्रायः सहचारका बोध होता है, सहित। ६ प्रति, से। ७ द्वारा। ८ विरुद्ध, से।

साथरा (हिं० पु०) १ बिस्तर, बिछौना। २ चटाई। ३ कुशकी बनी चटाई।

साथी (हिं० पु०) १ वह जो साथ रहता हो, साथ रहनेवाला, हमराही। २ दोस्त, मित्र।

साद (सं० पु०) सद-घञ्। १ विषाद, अप्रसन्नता, आलस्य। (रघु ३।२) २ स्मरण। ३ गति। ४ कार्श्य, कृशता। ५ विनाश। ६ हिंसा। ७ पवित्रता, विशुद्धि। ८ इच्छा, अभिलाष।

सादगी (फा० स्त्री०) १ सादा होनेका भाव, सादापन। २ निष्कपटता, सीधापन।

सादत्—एक मुसलमान कवि। यथार्थ नाम मीर सादत् अली था। आप अमरोहाके वाशिन्दे थे। प्रसिद्ध मुसलमान मौलवी शाह विलायत उल्ला आपके शिक्षा गुरु थे। आप "सहेली सखियाँ" की रचना कर बहुत प्रसिद्ध हो गये हैं। आपकी यह पुस्तक लैला मजनूके ढंग पर दो प्रेमी प्रेमिकाओंके प्रेमचित्रका चित्रण है। वजीर-प्रधान नवाब कमारुद्दीन खाँ आपके प्रतिपालक थे।

सादत् अली खाँ (नवाब)—अयोध्याके एक मुसलमान नवाब। इसका नाम जेमेन उद्दौला भी है। इसके भ्राता-

का नाम आसफुद्दौला था। आसफकी मृत्युके बाद उसका दत्तक पुत्र वजीर अली खाँ लखनऊमें अयोध्या की मसनद पर बैठा। इसको बेकार समझ कर अङ्गरेज प्रतिनिधि सर जान शोरने सन् १७९८ ई०की २१वीं जनवरीको इसे राज्यच्युत कर इसकी जगह सादत् अली खाँ को बैठाया। सन् १८१४ ई० तक यह इस तख्त पर बैठा रहा। इसके बाद इसका पुत्र गाजी उद्दीन् हैदर अयोध्याके सिंहासन पर बैठा। यह यहांका राजा कहलाता था। सादत अलीके साथ अङ्गरेजों की जो सन्धि हुई, उस शर्तके अनुसार अङ्गरेज ७६ लाख रुपये कर स्वरूप पाने लगे। इसके साथ साथ अयोध्याप्रदेशमें १० हजार अङ्गरेज सैनिक रखनेका अधिकार तथा क्षतिपूरणस्वरूप इलाहाबादका प्रसिद्ध किला अङ्गरेजों को मिला। उसको गद्दी पर बैठनेमें जो कष्ट अङ्गरेजों को सहना पड़ा था, उसके पुरस्कार स्वरूप उन्हें १२ लाख रुपये मिले। अङ्गरेजों की आज्ञासे ही नवाबका वैदेशिक सम्बन्ध और अन्यान्य अङ्गरेज कर्मचारियोंकी नियुक्तिके अधिकारसे वञ्चित रहना पड़ा था।

सादत उल्ला खाँ—दाक्षिणात्यके कर्णाटक प्रदेशका एक मुसलमान नवाब। यह अपुत्रक था, इसस इसने अपने दो भतीजोंको गोद लिया। अपने ज्येष्ठ पुत्र दोस्त अलीको नवाबी आसन पर बैठा अपने छोटे पुत्र बाकर अलीको वेलूरका शासक बनाया। सिवा इसके उसने अपनी स्त्रीके भतीजे गुलामको अपने राज्यका प्रधान मन्त्री या दीवान बनाया। सन् १७१० ई०से १७३२ ई० तक राज्यशासन कर उसने प्रजाको शोक सागरमें निमग्न कर परलोक गमन किया।

गजीर उल उमरा नामक मुसलमान इतिहासके पढ़नेसे मालूम होता है, कि नवाब सादत् उल्लाने सम्राट् आलमगीरके राज्यकालमें सन् १७३२ ई० तक राज्यशासन किया था। दोस्त अली और उसका पुत्र हसनअली सन् १७४० ई०में महाराष्ट्रोंसे युद्ध करते समय मारे गये। इसके बाद उसका पुत्र सफदर अली नवाबी मसनद पर बैठ कर कर्णाटकका राज्यशासन करने लगा। उसका यह राज्यसुख उसके साला मुर्तजा अलीसे देखा न गया। सन् १७४२ ई०की २रा अक्तूबरको मुर्तजाने अपने बहनोई नवाब सफदर अलीको विष दे कर यमसदन भेज दिया। इसके बाद मुर्तजा ही कर्णाटककी नवाबी करने लगा। किन्तु उसके भाग्यमें भी यह सुख अधिक दिन तक बदा न था। सन् १७४४ ई०में निजाम उल मुल्क दाक्षिणात्यका सूबेदार नियुक्त हुआ। उसकी आज्ञासे अर्काटके नवाब अनवरउद्दीनने मुर्तजा को सिंहासनच्युत कर उस प्रदेशका शासनभार अपने हाथमें लिया।

सादत् खाँ—अयोध्याके मुसलमान राजवंशका प्रतिष्ठाता। इसीके शौर्य और चार्तुर्यसे अयोध्या प्रदेश एक मुसलमान नवाब वंशके अधिकारमें आया। यह खुरासान वासी एक वणिक् जाफीर खाँका पुत्र था। इसका असल नाम महम्मद अमीन था। उसका बाप मुगल सम्राट बहादुरशाहके राजत्वकालमें भारतमें माल बेचनेके लिये आया था। उसकी मृत्युके बाद महम्मद अमीन भी कारोबार देखनेके लिये भारत आया। इसने अत्यन्त अध्यवसाय और अपनी अद्भुत अस्त्रचालन शक्तिसे बहुत धन कमा लिया। सम्राट् महम्मद शाहके राजत्व कालके आरम्भकालमें यह हैदनाके फौजदार पद पर नियुक्त हुआ। इसके बाद अयोध्याके नामजादा राजा गिरिधरको मालवके नामक पदसे अलग कर सन् १७२४ ई०में उसीको यह पद दिया गया। इस समय उसको बुरहान उल्-मुल्क खिताब मिला। प्रसिद्ध जुल्मी नादिर शाहके विरुद्ध इसने दिल्लीके बादशाहकी ओरसे अस्त्र उठाया था। किन्तु सौभाग्यवश यह नादिरके दिल्लीके कत्लेआमकी एक रात पहले ही इस दुनियासे कूच कर गया (१७३९ ई० ९ वीं मार्च)। इसके बाद इसकी नव दह इसके साथ सादत् खाँकी बनाई कब्रका इमारतमें गाड़ी गई।

इसके भतीजा अबुल् मनसुर खाँ सफदर जङ्गके साथ इसकी इकलौती पुत्रीका विवाह हुआ। इसका यह भतीजा ही पीछे अयोध्याके नवाब पद पर नियुक्त किया गया। नीचे सब वंशकी सूची दी गई —

१ बुरहान उल् मुल्क सादत् खाँ

२ अबुल मनसुर खाँ सफदर जङ्ग

३ सुजाउद्दौला
४ आसफ उद्दौला
५ वजीर अली खाँ
६ सादत्अली खाँ
७ गाजीउद्दीन हैदर
८ नसीरुद्दीन हैदर
९ महम्मद अली शाह
१० आमजद् अली शाह
११ वाजिद अली शाह

यही अयोध्याका अन्तिम नवाब था। अङ्गरेजोंने इसको राज्यच्युत कर अयोध्याका राज्य अपने हाथमें ले लिया।

सादत् यार खाँ—१ एक मुसलमान ऐतिहासिक। यह प्रसिद्ध रोहिला-सर्दार हाफिज रहमत् खाँका पौत्र और महम्मद यार खाँका पुत्र था। अपने चचा मुस्तजा खाँ-रचित 'गुलिस्तान रहमत' नामक इतिहासके आधार पर सन् १८०३ ई०में इसने "अली रहमत" नामक एक संक्षिप्त इतिहासकी रचना की। इस पुस्तकमें उसके पिताकी जीवनी और युद्धकी विवरणी भी लिपिबद्ध है।

२ एक मुसलमान कवि भी इसी नामका हो गया है। यह कवि मुखन्-उद्दौला तहःमास्प-बेग खाँ यातशाह जङ्ग बहादुरका पुत्र था। "मेहेर-व माह" नामकी एक कविताकी रचना कर इसने रङ्गीन खिताब पाया। यह पुस्तक सम्राट् जहांगीरके राजत्वकालमें दिल्ली राजधानीमें विद्यमान एक सैयद पुत्रके साथ एक जौहरीकी कन्याकी प्रेम-कहानीके आधार पर रची गई है। इस पुस्तकमें कुछ ऐतिहासिक छाया भी मिलती है। सिवा इसके ग्रन्थकार विरचित कई दीवान भी मिले हैं। इनमें एक उर्दू भाषामें लिखा और आदिरसपूर्ण है। दिल्ली और लखनऊ नगरके महल्लोंमें रहनेवाली ललनाओंके चरित्र-चित्रकी अद्भुत कौतुक कहानी इसमें विशदरूपसे लिखी गई है। सन् १८३४ ई०में ८० वर्षकी उम्रमें ग्रन्थकारकी मृत्यु हुई।

सादयोनि (सं० त्रि०) योनिमें अवसन्न।

सादन (सं० क्ली०) सद स्वार्थे णिच्-ल्युट्। सदन, गृह। २ उच्छेदन, विनाश करना। ३ विनाशन। ४ अवसादन, क्लान्तकरण। ५ दूरीकरण।

सादनस्पृश् (सं० त्रि०) गृहपुत्रादि दाता।

सादनी (सं० स्त्री०) कटुकी।

सादन्य (सं० त्रि०) गृहकर्मकुशल, घरके कामोंमें चतुर। (ऋक् १।९१।२०)

सादमय (सं० त्रि०) अवसन्न, अवसादविशिष्ट।

सादर (सं० त्रि०) आदरके साथ, आदरयुक्त।

सादस (सं० त्रि०) सदः-विद्यतेऽस्य। सदोयुक्त।

सादसत (सं० त्रि०) सदसत्शब्दोऽस्मिन्नस्ति (विमुक्तादिभ्योऽण्। पा ५।२।६१) इति अण्। सत् और असत् पदार्थका विषयक।

त्रयोविंश भाग सम्पूर्ण।